मनुस्मृति सटीक

मन्वर्थभास्कर भाषा टीका सहित

सकलस्मृतिशिरोमणिमनुस्मृतिनिरशेषार्थः सी. आई. ई. इत्यु-
पाधिधर श्री मुंशीनवलकिशोराणामाज्ञया पं॰ मिहिरचन्द्रेण
आद्योपान्त धर्मशास्त्रतात्पर्यं संगृह्य यथावर्णाश्रमाणान्धर्म-
निर्वर्तव्यता दायभागादिकम्भाषामात्राभिज्ञैरप्यनाया-
सेनावगम्येन तथा भाषायाम् विवृतः

यह सकल स्मृतियों का शिरोमणि मनुस्मृति जिसका सम्पूर्ण अर्थ
मुंशी नवलकिशोर जी (सी, आई, ई) की आज्ञा से महामहो-
पाध्याय धर्मशास्त्राग्रगण्य श्री पण्डित मिहिरचन्द जी ने
परिश्रम से सम्पूर्ण धर्मशास्त्रों के तात्पर्य्य को सं-
ग्रह करके दायभागादि व चारोंवर्णों व आ-
श्रमों के धर्मोंकी कर्त्तव्यता का भाषा में
विवरण किया

अलीगढ़ सभा की सहायता व धर्मशास्त्रानुरागियों के उपकारार्थ
वाजपेयि पण्डित रामरत्न के प्रबन्ध से

प्रथम बार

लखनऊ

मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेखाने में छापी गई
नवम्बर सन १८९० ई॰

मनुस्मृतिसटीकका विज्ञापनपत्र ॥

सम्पूर्ण धर्मशास्त्रोंका अग्रणी व सकल धर्मानुरागियोंसेपूजित यह मनुस्मृतिग्रंथ जिसकीमान्यता व मर्यादा का विस्तार अच्छेप्रकार संसारमें है—यद्यपि इसग्रंथ के बहुतसे अनुवाद ब्रज, यामिन्यादि भाषाओंमें कियेगये हैं परंतु उनमेंसे कोई भी ऐसानहींहै जिससे प्रत्येक वार्ताओं का समाधान सब कोई सुगमतासे समझकर उसके तात्पर्य्यको जानलेवे इसकारण सम्पूर्णधर्मकर्मानुरागियों व विद्या रस विलासियों के उपकारार्थ व अलीगढ़ की भाषासंवर्द्धिनीसभा की सहायतार्थ सकलकर्म धर्मधुरीण मर्य्यादा लवलीन पुण्यपीन गुणिभणप्रवीन सर्वैश्वर्य्य भूषित दोषादूषित उत्तमवंशी दुष्टाशय ध्वंशी श्रीमान् मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) ने बहुतसाद्रव्य व्ययकरके धर्मशास्त्राग्रगण्य सकलगुणगण मण्डलीमण्डन महामहोपाध्याय श्रीपण्डित गिरिरचन्द्रजी से अन्यधर्मशास्त्र ग्रंथों के तात्पर्य्यों से संवलित व सारोंसे मिश्रित और सकलटीकाओं के रहस्योंसे युक्त उक्तग्रंथ का पदच्छेद अन्वय तात्पर्य्य व भावार्थ से भूषित अच्छेप्रकार देशभाषामें विवरणकराय मन्वर्थभास्करनाम तिलक मूलश्लोकों सहित लक्ष्मणपुरस्थ स्वयंत्रालयमें मुद्रितकर प्रकाशितकिया—संसार में यावत् कर्म धर्म चतुर्वर्ण अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र, व चतुराश्रम अर्थात् ब्रह्मचर्य गृहस्थ वानप्रस्थ व संन्यासादि के हैं सविस्तार इसमें वर्णन कियेगये हैं—इसके सिवाय और भी सारे जगत् का वृत्त अर्थात् जगदुत्पत्ति स्वर्ग भूम्यादि सृष्टि वर्णन देवगणादिकों की सृष्टि धर्माधर्म बिवेक मनुजी की उत्पत्ति व यक्षगंधर्वादिकोंकी उत्पत्ति व मनु. पशु, पक्षी, कृमि, कीट, जरायुज, अण्डज, स्वेदज उद्भिज, वनस्पति, गुल्मलता वृक्षादिकोंकी उत्पत्ति, दिनरात्रि प्रमाण व युगोंका प्रमाण व्रतादिकों के करनेका नियम व फल,देशोंका कथन मनुष्यों के जातकर्म नामकरण व चूड़ाकरण यज्ञोपवीतादिकी क्रिया कथन वेदके अध्ययन करनेका ढंग व नियम व इन्द्रियोंके संयमों के उपायोंकाकथन आचार्य उपाध्याय व गुरु आदिका वर्णन पितृकर्ममें श्राद्धादि करनेका नियम भक्ष्याभक्ष्य वस्तुओंके भोजन करनेका नियम निषेध व प्रायश्चित्त ऋणलेने देने के नियम व दायभागादि दीवानी फ़ौजदारी के मुक़द्दमोंका यथाविधि निपटारा करना यह सब वार्त्तायें अच्छे प्रकारसे इसमें दर्शाई गई हैं जिनसे प्रत्येक मनुष्योंके कार्य होते चले आते हैं और भी बहुतसी राज्यनीति सम्बन्धी वार्तायें जो कि राजाओं को करना योग्य है वह सब इसमें उत्तम रीति से सविस्तर वर्णन कीगई हैं - उत्तम बार्ता तो यह है कि केवल इसी पुस्तकके अवलोकन करने से संपूर्ण कर्म धर्म नीति आदि की रीतें मनुष्य सहजमें जानलेंगे द्वितीयग्रंथ के देखने की आवश्यकता न पड़ेगी—आशा है कि जो विद्वद्वर धर्मशास्त्र व मर्यादाप्रिय महाशय इसको अवलोकन करेंगे वे परमानन्दित हो कृपाकटाक्ष से ग्रंथकर्त्ता व यंत्रालयाध्यक्षको आशीर्वाददेंगे और कदाचित् ऐसे वृहद्ग्रंथके मुद्रणकरने में कोई अशुद्धि रहगईहो तो उसका अपराधक्षमाकरेंगे ॥

पद्यानि

इयं-सी-आई-ई-पदमुपगतैर्भार्गवकुलैः सुभाषायांमुंशीतिनवलकिशोरैरनुयुजा ॥
मयाकारिप्रज्ञाविवृतिरनुकूलामनुकृतेः तदत्रक्षन्तव्यम्भवतियदिदोषोबुधवराः १
ऋषिवारिधिनन्दहिमांशुमिते शरदःशुचिमासासितान्यदले ॥

अवसानगतःकतितोनवला दिकिशोरयशःप्रथयत्वनिशम् २
नहिधर्मधनेनहिबुद्धिबलम् नहिबाहुबलन्नहिशौर्यबलम् ॥
तरणंममविद्गुरुयत्कमला ननुसूत्यगभीरपयोधिमनोः ३
कृपयाविबुधाममन्दमतेः क्षमयन्त्वतिसाहसमत्रयदि ॥
शिरसानमनम्प्रतिगृह्यमनु स्मृतिभास्करअर्थदर्शिकुरुत ४
यद्वाह्योबेलनावमत्रसुजनामाश्रित्यवारान्निधिः तीर्णामिबहवःसुजीवनपराःयस्यांत्यनेकेजनाः ॥
सन्त्यन्येसुयशःप्रतापविभवामुञ्चन्तियन्नोकचित् सायंमुंशिवरायशःस्वजनयुक्जीयाच्चिरम्भूतले ५
यस्यान्तिमे क्षेमजनिश्चयोगः योत्रास्तिसम्प्रेरक एत्य बोधम् ॥
सोयम्वकीलोसुतधर्मशाली तोतादिरामान्त उदेतुभूमौ ६
मन्वर्थभास्करोह्येषः मनुतात्पर्यबोधकः । सुदृष्टयार्स्वायबुद्धयाचा वलोक्योमर्थनाविदः ७
मुंशिभ्रातृभवामाधवप्रसादाभिधोऽभवत् । सानुकूलोऽभवन्मेपि सुखीस्त्वःस्थोस्तुमेर्थनम् ८
लांखाख्येनगरेऽभवद्धरिसहायाख्योन्वयेगौतमे तत्सूनुद्वयगामरक्षकवराज्जातोस्म्यहंज्येष्ठकः ॥
तेनायम्मिहिरादिचन्द्रविदुषाग्रन्थोमनुर्विवृतः भाषायांस्तनपानयोग्यमतितोविज्ञपुकःसाहसी ९

काशीस्थराजकीयप्रधानपाठशालायां
विशिष्टपरीक्षोत्तीर्णः
पं॰मिहिरचन्द्रशर्म्मा

इति

मनुस्मृति सटीकका सूचीपत्र ॥

तीसरा अध्याय ॥

चौथा अध्याय ॥

पांचवां अध्याय ॥

छठवां अध्याय ॥

सातवां अध्याय ॥

आठवां अध्याय ॥

नवां अध्याय ॥

दशवां अध्याय ॥

ग्यारहवां अध्याय ॥

बारहवां अध्याय ॥

इतिउन्नामप्रदेशान्तर्गततारगांवनिवासिपण्डितरामविहारीसुकुलकृतंमनुस्मृतिसूचीपत्रस्यभाषानुवादंसमाप्तम् ॥

भगवद्गीतानवलभाष्यकाविज्ञापनपत्र ॥

प्रकटहो कि यह पुस्तक श्रीमद्भगवद्गीता सकल निगम पुराण स्मृति सांख्यादि सारभूत परमरहस्यगीताशास्त्रका सर्व्वविद्यानिधान सौशील्य विनयौदार्य्य सत्यसंगर शौर्य्यादिगुण संपन्न नरावतार महानुभाव अर्जुनको परम अधिकारी जानके हृदय जनित मोहनाशार्थ सबप्रकार अपार संसार निस्तारक भगवद्भक्तिमार्ग दृष्टिगोचर कराया है वही उक्तभगवद्गीता वज्रवत्वेदांत व योग-शास्त्रान्तर्गत जिसको अच्छे२ शास्त्रवेत्तार अपनी बुद्धिसे पारनहींपासके तब मंदबुद्धी जिनको कि केवल देशभाषाही पठन पाठन करने की सामर्थ्य है वह कब इसके अन्तराभिप्रायको जानसके हैं—और यह प्रत्यक्षही है कि जबतक किसी पुस्तक अथवा किसी वस्तुका अन्तराभिप्राय अच्छेप्रकार बुद्धिमें न भासितहो तबतक आनन्द क्योंकर मिलै इसप्रकार संपूर्ण भारतनिवासी श्रीमद्भगवत्पा-दाब्जरसिकजनों के चित्तानन्दार्थ व बुद्धिबोधार्थ सन्तत धर्म्मधुरीण सकलकलाचातुरीण सर्व्व विद्याविलासी भगवद्भक्तअनुरागी श्रीमान्मुन्शीनवलकिशोरजी (सी, आई, ई) ने बहुतसा धन व्ययकर फ़र्रुखाबाद निवासि स्वर्गवासि पण्डित उमादत्तजी से इसमनोरंजन वेदवेदांतशास्त्रोपरि पुस्तकको श्रीशंकराचार्य्य निर्मित भाष्यानुसार संस्कृतसे सरलदेशभाषामें तिलकरचाय नवल भाष्य आख्य से प्रभातकालिक कमलसरिस प्रफुल्लित करादिया है कि जिसको भाषामात्रके जा-ननेवाले पुरुष भी जानसक्ते हैं ॥

जबछपनेका समयआया तो बहुतसे विद्वज्जन महात्माओं की सम्मति से यह विचारहुआ कि इस अमूल्य व अपूर्व्व ग्रन्थकी भाष्यमें अधिकतरउत्तमता उससमयपरहोगी कि इसशंकराचार्य्य कृत भाष्य भाषाकेसाथ और इस ग्रन्थके टीकाकारोंकी टीका भी जितनीमिलें शामिलकीजावें जिसमें उन टीकाकारों के अभिप्रायका भी बोधहोवे इसकारणसे श्रीस्वामी शंकराचार्य्यजीकी शंकरभाष्य का तिलक व श्रीआनन्दगिरिकृत तिलक अरु श्रीधरस्वामिकृत तिलकभी मूल श्लोकों सहित इसपुस्तकमें उपस्थितहै ॥

मिताक्षरा सटीकका विज्ञापनपत्र॥

संसारमेंमर्यादा स्थितरखनेके अभिप्राय औरसर्व साधारणके उपकारदृष्टिसे भगवान्याज्ञवल्क्य ने अनेकप्राचीन आचार्यो और महर्षियोंके मतलेकर मिताक्षरा नामक धर्मशास्त्र "आचार" "व्यव हार" और "प्रायश्चित्त" नामक तीनभागोंमें निर्माणकियाथा। यह "याज्ञवल्क्यस्मृति,, भारतवासी मात्र चतुर्वर्णोंका मुख्य धर्मशास्त्रहै और इसीके अनुसार यहांके निवासियोंके धर्मसम्बन्धी समस्त कार्य होते चलेआतेहैं॥

आचाराध्याय नामक प्रथम खंडमें गर्भाधान से लेकर मरण पर्यन्त के समस्त संस्कार चतुर्वर्णो और विविध जातियोंकी उत्पत्ति ब्राह्मण आदि चतुर्वर्णो और ब्रह्मचर्यादि चतुराश्रमोंकेधर्माचरण, साधारण शिक्षा, आठप्रकारके विवाहोंके लक्षण, भक्ष्याभक्ष्य पदार्थोंका विवेक, दान लेने देनेकी विधि, सर्वप्रकारके श्राद्धोंकानिर्णय, नवग्रहोंकीशांति राजाओंके धर्म आचारादि अनेकविषय विस्तारपूर्वक वर्णन कियेगयेहैं॥

" व्यवहारकाण्ड " में न्यायसभा निरूपण, सबप्रकारके दीवानी और फौजदारी मुक़द्दमोंकेनिर्णयकरनेकी विधि: भूमि सम्बन्धी झगड़ोंका विस्तार; ऋणलेने-देने, गिरवीरखने औरव्याज लगाने की विधि, धरोहरका विवाद; साक्षियों के सत्यासत्य का विचार और दण्ड; दस्तावेजों का विचार; खरे, खोटे और कमतौल वस्तुओंका विचार, विष देनेवालेका विचार; नातेदारी का वृत्तान्त; हिस्सा बांटकी विधि; संस्कार विहीन भाई-बहिनोंके संस्कारके अधिकार और और विधि; १२प्रकारकेपुत्रों का वर्णन; वारिस होनेका विचार; दत्तकलेने की विधि; स्त्रीधन और कन्याधनका निर्णय सीमा के झगड़ोंका निपटारा; पशु व्यतिक्रम विचार, परधन, परस्त्री हरण आदिका विचार; देय अदेय दानों का विचार; वस्तु क्रय विक्रय विचार; सेवाधर्म विचार; राजसम्बन्धी गूढ़संवित समय संकेतों के व्यतिक्रमका? विचार वेतन, मजूरी, किराया आदि विषयक झगड़ोंका विचार; युवारी आदि दुराचारियोंका विचार; गाली-गलौज तथा मार-पीटका विचार; चोर, डाकू, लुटेरे आदिकोंकाविचार और नाना अपराधों और कुकर्मो तथा राजाश्रय नाना व्यवहारोंका अति विस्तार पूर्वक वर्णन है॥

प्रायश्चित्त काण्ड में जलदान प्रकार व अशौच सूतकदिनावधि कथन व सद्यः शौच व्यवस्था जगदुत्पत्ति प्रपंच विस्तार व बुद्ध्यादि समवाय व प्रायश्चित्त करणदोष व नरकादि नामस्वरूप व अतिपातक और पातकादिलक्षणभेद व सकाम सुरापानादि महापातक प्रायश्चित्तकथन व स्वर्णापहारादि प्रायश्चित्त व अवरुद्धवध प्रायश्चित्त कथन और प्रत्येक बातोंके स्वरूप व नियमादि वर्णन कियेगयेहैं परन्तु यह विस्तृतग्रन्थ संस्कृतमें होनेकेकारण सर्वसाधारणके देखनेमें न आताथाइसकारण भारतवासी पुरुषोंके उपकारार्थ यन्त्रालयाध्यक्ष श्रीमानमुन्शी नवलकिशोर ने बहुतसाधन पारितोषिककी रीतिपर देकर आगरा निवासी मर्यादाप्रिय पण्डित दुर्गाप्रसाद शुक्ल से सरल साधारण भाषामें अनुवादकराय स्वयन्त्रालय में मुद्रितकराया आशाहै कि जो कोई मर्य्यादा प्रिय पुरुष इसको दृष्टिगोचर करेंगे वह प्रसन्नहोकर इसको ग्रहण करेंगे और यन्त्रालयाध्यक्षको धन्यवाददेंगे—

मनुस्मृतिः

मन्वर्थभास्करटीकासहिता ॥

मनुमेकाग्रमासीनमभिगम्य महर्षयः । प्रतिपूज्य यथान्यायमिदं वचनमब्रुवन् १

पद । मनुम् एकाग्रम् आसीनम् अभिगम्य महर्षयः प्रतिपूज्य यथान्यायम् इदम् वचनम् अब्रुवन् ॥

योजना । महर्षयः एकाग्रं आसीनं मनुं अभिगम्य यथान्यायं प्रतिपूज्य इदं वचनं अब्रुवन ॥

भावार्थ । सुखसे स्वस्थचित्त बैठेहुये मनु को सन्मुखजाकर और किया है अपना (ऋषियोंका) पूजन जिसने ऐसे मनुका पूजन करके न्याय (नमस्कार भक्ति श्रद्धाआदि) से सम्पूर्ण बड़े २ ऋषि यह वचन (जो अग्रिम श्लोकमें कहेंगे) बोले १ कि हेभगवन् इस शब्दकाअर्थ यहहै कि हेभग (सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य, वीर्य्य, यश, लक्ष्मी, ज्ञान, वैराग्य इन छः को भग कहते हैं) वाले सम्पूर्ण वर्णों के अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रोंके और उनके अन्तरप्रभव अर्थात् अनुलोमज (ऊंचे वर्ण के पुरुष से नीचेवर्ण की कन्या में जो पैदाहो) और प्रतिलोम जो (नीचेवर्णके पुरुषसे जो ऊंचे वर्णकी कन्यामें पैदाहोके) अर्थात् अम्बष्ठ क्षतृकर्ण आदिकों के येविजातीय मैथुनसे पैदाहुये हैं इससे घोड़े और गधीके सम्बन्ध से पैदाहुई खच्चर के समान अन्यही जाति हैं इसहेतु वर्णों में न आने से ऋषियोंने इनका पृथक् नाम लेकर इनके धर्मको पृथक् पूंछा इसीसे यहशास्त्र सबका उपकारकहै यथायोग्य धर्म्मोंको हमारेप्रति क्रमसे (जातकर्म्म नामकर्म्म आदि) आप कहनेको योग्यहो अथवा जिसमे तुम कहनेयोग्य हो इससे हमारे प्रति कहो-और इस ग्रन्थमें जो ब्रह्महत्यादि रूप अधर्मका वर्णन है वह भी प्रायश्चित्तके विधान (करने) रूप धर्मके विषय होने से किया है स्वतन्त्रतासे नहीं किया ॥

तात्पर्य्यार्थ । यहां श्लोक की आदि में जो मनुका निर्देशहै सो मंगलके लियेहै क्योंकि साक्षात् परमात्माही संसार की पालना के लिये सर्व्वज्ञता और ऐश्वर्य्यसे युक्त होकर मनुरूप से प्रकटभये हैं ऐसे ईश्वर का नाम लेना अतीव मंगल है क्योंकि आगे कहेंगे भी कि कोई ऋषि इस मनु को अग्नि कहते हैं और कोई प्रजापति---सम्पूर्ण वेद के अर्थ के मनन (विचार)से मनु कहते हैं १ ॥

भगवन्सर्ववर्णानां यथावदनुपूर्वशः । अन्तरप्रभवाणां च धर्मान्नोवक्तुमर्हसि २

भगवन् सर्ववर्णानाम् यथावत् अनुपूर्वशः अन्तरप्रभवाणाम् च धर्मान् नः वक्तुं अर्हसि ॥

यो० । हे भगवन् सर्व्ववर्णानां पुनः अन्तरप्रभवाणां च अनुपूर्वशः यथावत् धर्मान् नः(अस्मभ्यं)वक्तुं त्वं अर्हसि ॥

भा० । हे भगवन् सम्पूर्ण वर्णों और अन्तरप्रभव (अनुलोम और प्रतिलोमों के) क्रमसे यथोचित धर्मोंको हमारे लिये आप कहने योग्य हो ॥

ता० । अब सम्पूर्ण धर्म्मोंके कहने की मनुजी की योग्यतामें कारण कहतेहैं कि हेप्रभो जिससे तुम एकही जोवेद स्वयम्भुव (किसी पुरुषका कहानहीं) है और जो अचिंत्य(इतना है यहजिसकी अवधि न हो)है और जो अप्रमेय(मीमांसादि शास्त्रोंका निरपेक्ष होनेसे जिसका विषय प्रमाणमें न आवे)है ऐसेइस प्रत्यक्षतासे सुनो सम्पूर्ण विधान(जिससे अग्निहोत्रादि कर्म्मोंकी विधिहो ऐसेवेद)के कार्य्य अग्निष्टोम आदियज्ञ) और तत्त्व (सत्यंज्ञानमनन्तं ब्रह्म इत्यादि वेदांतों से जाननेयोग्य ब्रह्म) रूप जो अर्थ (वर्णन करनेयोग्य) उसके जाननेवालेहो--इससे हमारेलिये सम्पूर्ण धर्म्म कहने योग्यहो-- इस श्लोकमें धर्म्म अधर्म्मकी व्यवस्थामें समर्थ होनेसे ऋषियोंने मनुजीको हेप्रभो यह सम्बोधन दिया--इस श्लोकके कार्य्यतत्त्वार्थवित् इस पदका अर्थ मेधातिथिने यह कियाहै कि कार्य(अग्निहोत्रादि) जो तत्त्व उसके जाननेवाले तुमहो--यह अर्थ ठीक नहींहै क्योंकि वेदोंको ब्रह्ममें भी प्रमाण होनेसे कार्य्य रूपही तत्त्व अर्थ वेदोंका नहीं होसक्ता इससे पूर्व्वोक्त अर्थही श्रेष्ठहै २ ॥

त्वमेकोह्यस्यसर्वस्यविधानस्यस्वयंभुवः । अचिन्त्यस्याप्रमेयस्यकार्यतत्त्वार्थवित्प्रभो ३

त्वं एकः हि अस्य सर्वस्य विधानस्य स्वयम्भुवः अचिन्त्यस्य अप्रमेयस्य कार्य्यतत्त्वार्थवित् प्रभो

यो० । हे प्रभो हि (यतः) स्वयंभुवः अचिन्त्यस्य अप्रमेयस्य अस्य सर्वस्य विधानस्य कार्यतत्त्वार्थवित् त्वं असि (अतो नः वक्तुं अर्हसि) इति पूर्व्वेणसहान्वयः ॥

भा० । हे प्रभो जिससे जो वेद किसी पुरुषका कहाहुआ नहीं और जिसकी संख्यानहीं और जिसका अभिप्राय प्रमाणमें नहीं आता-- ऐसे इस सम्पूर्ण वेदके जो यज्ञ और ब्रह्मरूप अर्थ उनके जाननेवाले तुमहो (इससे हमारेलिये धर्म्मोंको भी कहनेयोग्य हो) ॥

ता० । उन महानुभाव महर्षियोंने तिसपूर्व्वोक्त प्रणामभक्ति श्रद्धाकी अधिकतासे पूंछाहै जिनको और अपरिमितहै ज्ञानतत्त्वके कहनेमें सामर्थ्य जिनका ऐसे वे मनुजी उन सम्पूर्ण महर्षियोंका पूजन करके सुनो यह प्रत्युत्तर बोले--इस श्लोकमें अपरिमिति सामर्थ्य कहनेसे महर्षियोंका प्रश्न करना उचित जानागया और पूजन करके इस कहनेसे धर्म्मका कहना पूजनकिये पीछेही होता है यह जानागया-इस श्लोकमें यह शंका कोई करतेहैं कि मनुजीके कहेहुये शास्त्रमें मनुजी उनके प्रति सुनो यह बोले यह कहना असंगतहै किन्तु मुझे महर्षियोंने पूंछा और मैं उनके प्रति बोला यह कहना उचितथा यदि यह शास्त्र किसी अन्यकारचाहै तो इसको मनुकी संहिता न कहना चाहिये-- यह उनकी शंका अनुचितहै क्योंकि प्रायःसे आचार्य्योंकी यह शैली होती है कि अपने अभिप्रायको भी पराये उपदेशके समान वर्णन करते हैं इसीसे कर्म्माण्यपि जैमिनिः फलार्थत्वात्-इस अपनेही रचे सूत्रमें जैमिनिने कर्म्मोंकोभी सफलकहा यहलिखा है और--तदुपर्य्यपि बादरायणसम्भवात्--इस सूत्रमें व्यासजीने अपनेकोही बादरायण नामसेलिखा--अथवा मनुजीके उपदेशकिये अर्थ मनुजीके शिष्य भृगुजीने संग्रह किये हैं इससे मनुजीही आगे लिखेंगे कि इस सम्पूर्ण शास्त्रको यह भृगु तुम को सुनावेगा-- और मनुजी के कहे धर्म्म इसमें हैं इससे इसे मनुकी संहिता कहते हैं इससे वे मनु उन महर्षियोंके प्रति सुनो यह बोले यह कहना ठीक है ३ ॥

सतैःपृष्टस्तथासम्यगमितौजामहात्मभिः । प्रत्युवाचार्च्यतान्सर्वान्महर्षीञ्छ्रूयतामिति ४

सः तैः पृष्टः तथा सम्यक् अमितौजाः महात्मभिः प्रति उवाच आर्च्य तान् सर्व्वान् महर्षीन् श्रूयताम् इति ॥

मू० । तैः (महर्षिभिः) महात्मभिः तथापृष्टः अमितौजाः स(मनुः)तान् सर्वान् महर्षीन् आचर्य श्रूयताम् इति प्रत्युवाच॥

भा० । उन महात्मा महर्षियों ने तिसप्रकार नम्रता आदिसे पूंछे और अपरिमित है सामर्थ्य जिनका ऐसे वे मनु उन महर्षियों को पूजकर सुनो यह उत्तर बोले ॥

भा० । इस पांचवें श्लोक आदि में मनुजीने मुनियोंके प्रति सुनो यह कहकर सृष्टिको निरूपणका प्रारम्भकिया इसमें यह शंका उत्पन्न होती है कि धर्म्मके प्रश्न में सृष्टिका वर्णन करना अप्रस्तुत है यद्यपि इसमें मेधातिथि और गोविन्दराजने यह समाधान दियाहै कि इस शास्त्रके बड़ेबड़े प्रयोजनहैं यहबात इस वर्णनसे कहीहै क्योंकि ब्रह्मासेलेकर स्थावरपर्य्यन्त जितनी संसारकीगती हैं वे सबधर्म्म अधर्म्मसे होतीहैं यह धर्म्मकाफल इस वर्णनसे मनुजीने कहा क्योंकि मनुजी आगे यहकहेंगे कि सब जीव अनेकरूप और कर्म्मसे उत्पन्न अज्ञानसे लिपटेहुये हैं और इस जीवकी ये गती अपने मनसे धर्म्म औरअधर्म्मसे उत्पन्न देखकर सदैवधर्म्ममें मनकोरक्खे तथापि यहसमाधान श्रेष्ठनहींहै क्योंकि धर्म्मके प्रश्नमें धर्म्मके फलका वर्णन भी अप्रस्तुतहै क्योंकि धर्म्मकेवर्णनसेही कामचलसक्ताथा और कर्म्मोंके फलकी सिद्धि महर्षियोंने बारहवें अध्यायमें पूंछी है और मनुजीने कही है उसीका आदिमें कहना अयोग्य है--इससे उक्त शंकाका यह उत्तरहै कि धर्म्म के प्रश्नमें जगतके कारण ब्रह्मका वर्णन भी धर्म्महीं है क्योंकि मनुजीनेही आत्माकेज्ञानको धर्म्मरूपता वर्णनकी है कि धैर्य्य,क्षमा,दम,चोरीकात्याग, शौच, इन्द्रियोंका विषयोंसे रोकना, बुद्धि, विद्या, सत्य, क्रोधकात्याग, ये दशधर्म्मके लक्षण (स्वरूप) हैं, इन दशोंमें विद्यानाम आत्मज्ञान धर्म्मका स्वरूपहै और महाभारतमें भी आत्मज्ञान और तितिक्षा (सहना) को साधारण धर्म्म कहाहै और याज्ञवल्क्यजीने तो यज्ञ,आचार,दम,अहिंसा, दान, स्वाध्याय कर्म्म ये धर्म्म हैं और योगमार्गसे आत्माका जो दर्शनहै वह परमधर्म्म कहाहै और ब्रह्मका लक्षण जगत्कारणता रूपहै इसीसे अब ब्रह्मकी जाननेकीइच्छा वर्णन करतेहैं (अथातोब्रह्मजिज्ञासा, इस सूत्रके अनन्तर (जन्माद्यस्ययतः) जिससे इस जगत्की उत्पत्ति पालन और नाश होतेहैं वही ब्रह्महै यहसूत्र व्यासजीने रचाहै और (यतोवाइमानिभूतानिजायन्तेयेनजातानिजीवन्ति यत्प्रयंत्यभिसंविशन्तितद्विजिज्ञासस्वतद्ब्रह्म) इस श्रुतिमेंभी ब्रह्मको जगतकी उत्पत्ति, पालन, और लयका निमित्तोपादान कारणकहाहै--निदान मनुजीने परमधर्म्मरूप ब्रह्मज्ञानकेलिये प्रथम अध्याय को रचा और द्वितीय आदि ग्यारह अध्यायोंमें उसके अंगधर्म्म वर्णनकिये इससे प्रश्नोत्तरमें परस्पर कुछ विरोधनहींहै-- और प्रश्नोत्तर वाक्योंसेभी यही प्रतीतहोताहै सोई दिखाते हैं कि धर्म्मके प्रश्नमें जगतके कारण ब्रह्मको कहतेहुये मनुने यह स्पष्टकहदिया कि हे ऋषियो आत्मज्ञान को तुम परम धर्म्मजानो और प्रधानतासे पहिले अध्यायमें उसब्रह्मकाही भलीप्रकार कीर्तनकिया और उसका अंगरूप अन्यधर्म्म उसके अनन्तरही कहनेको उचितथा--इदं इसपदसे प्रत्यक्ष दृश्यमान जगत्का ग्रहणहै और तमःपदसे गौणतावृत्तिकेद्वारा प्रकृतिका ग्रहणहै क्योंकि अन्धकारमें रक्खाहुआ पदार्थ प्रत्यक्षतासे नहीं दीखता इसीप्रकार प्रकृतिमें लीनहुये जीवभी नहीं जानेजाते अर्थात् यह जगत् प्रलयकालमें प्रकृतिमें लीनरहा और इस श्रुति तमआसीत्तमसागूढमग्रे--में यही लिखाहै और प्रकृतिभी ब्रह्मरूपसे अप्रकटही रही और अप्रज्ञात (अप्रत्यक्ष) रहा सम्पूर्ण प्रमाणोंमें श्रेष्ठ प्रत्यक्षके विषयको प्रज्ञात कहते हैं-- और अलक्षण (अनुमानके अयोग्य) रहा जिससे जानाजाय (जैसे धूमसे अग्नि) उसेलक्षण कहते हैं और तर्कणा करनेकोभी अशक्यरहा-- और उससमय कोई वाचक शब्द नहीं था इससे अविज्ञेय (जाननेके अयोग्य) रहा निदान बारहवें अध्यायमें जो प्रत्यक्ष अनुमान और

शब्द तीन प्रमाण मनुजीने माने हैं उनतीनों और अर्थापत्ति आदि प्रमाणोंकाभी अविषय यहजगत् प्रलयकालमें रहा-- कदाचित् कोई यह कहै कि उस समय सर्व्वथा नहींरहा--यह ठीकनहीं क्योंकि उस समयमेंभी श्रुतिसे जगत् की सिद्धि होती है कि--तद्देदमग्रेआसीत्-सदेवसौम्येदमग्रआसीत्-यह जगत् प्रलयकाल में ब्रह्मरूपहीरहा और सम्पूर्ण प्रसुप्त (सोयेहुये)के समान अर्थात् अपने कार्य्यक-रनेमें असमर्थ रहा ४॥

आसीदिदंतमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् । अप्रतर्क्यमविज्ञेयंप्रसुप्तमिवसर्वतः ५

आसीत् इदम् तमोभूतम् अप्रज्ञातम् अलक्षणम् अप्रतर्क्यम् अविज्ञेयम् प्रसुप्तम् इव सर्वतः

यो० । इदं सर्वतः (सर्वं) (जगत्) तमोभूतं अप्रज्ञातं अलक्षणं अप्रतर्क्यं अविज्ञेयं प्रसुप्तं इव आसीत् ॥

भा० । यह सम्पूर्ण जगत् प्रलयके समय मायामेंलीन (छिपाहुआ) और प्रत्यक्ष के अयोग्य और अनुमानतर्क और शब्दकेभी अयोग्य और अपने कार्य्यकरने में असमर्थ प्रसुप्तके समान रहा ५॥

ततःस्वयंभूर्भगवानव्यक्तोव्यञ्जयन्निदम् । महाभूतादिवृत्तौजाःप्रादुरासीत्तमोनुदः ६

ततः स्वयंभूः भगवान् अव्यक्तः व्यंजयन् इदं महाभूतादि वृत्तौजाः प्रादुः आसीत् तमोनुदः

यो० । ततः अव्यक्तः वृत्तौजाः तमोनुदः स्वयंभूर्भगवान् इदं महाभूतादि व्यंजयन् (सन्) प्रादुरासीत् ॥

भा० । प्रलयके पीछे स्वयम्भू--भगवान् और बाह्यइन्द्रियों (नेत्रआदि) के अविषय और सृष्टिके रचने में समर्थ और मायाके प्रेरक और प्रलयके नाशक परमात्मा (ईश्वर) अप्रकट आकाशादिकों को प्रकाश करतेहुये प्रकटहुये ॥

ता० । प्रलयके अनन्तर स्वयम्भू (जो अपनी इच्छासे शरीरको धारै और जिसका देह जवीं के समान कर्म्मोंके आधीन नहो) क्योंकि श्रुति(सएकधाभवति द्विधाभवति)में लिखाहै कि वह एक(ब्रह्म रूप) प्रकारका होता है और दो प्रकारका (प्रकृतिपुरुष) होता है परमात्मा भगवान् (ऐश्वर्यआदि छः गुणोंसे सम्पन्न) अव्यक्त (बाह्यइंद्रियों का अविषय अर्थात् योगाभ्याससे जाननेयोग्य) वृत्तौजाः(जि-सकी सृष्टिकी सामर्थ्य नष्ट न होसके) तमोनुदः (प्रकृति का प्रेरक वा प्रलयका नाशकर्त्ता) क्योंकि गीतामेंभी लिखाहै (मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्) मेरीहीप्रेरणासे चर औरअचरको प्रकृति पैदा करती है इस सूक्ष्मरूप से अव्यक्त महाभूतादि (आकाशादि) को स्थूलरूप से प्रकाश करतेहुये प्रादुरासीत् (प्रकाशित हुये) ६ ॥

योऽसावतीन्द्रियग्राह्यःसूक्ष्मोऽव्यक्तःसनातनः।सर्वभूतमयोऽचिन्त्यःसएवस्वयमुद्बभौ७

यः असौ अतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मः अव्यक्तः सनातनः सर्वभूतमयः अचित्यः सः एव स्वयं उत् बभौ

यो० । यः असौ अतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मः अव्यक्तः सनातनः सर्वभूतमयः अचिन्त्यः अस्ति सएव स्वयं उद्बभौ ॥

भा० । जो यह लोक और वेदमें प्रसिद्ध और मनही से जानने योग्य-- और बाह्य इन्द्रियों का अविषय (जानने अयोग्य) और निरवयव और नित्य-- और सम्पूर्ण भूतोंकी आत्मा और प्रमाण करनेको अशक्य-- परमात्मा है वही महदादि कार्य्य रूप होकर प्रकटहुआ ॥

ता० । यः असौ (इनदो सर्वनाम पदों के देनेसे सर्वलोक वेद पुराण आदि में प्रसिद्ध परमात्मा

जानागया) जो यह अतींद्रियग्राह्यः (इन्द्रियोंको अतिक्रमण करकेवर्ते जो मन तिससे जाननेयोग्य क्योंकि व्यासजीने लिखाहै कि यहपरमात्मा नेत्र और अन्यइन्द्रियों से जाननेयोग्य नहीं है किन्तु सूक्ष्मदर्शीपुरुष परमात्माको प्रसन्नमनसे देखते हैं) सूक्ष्मः (वाह्य नेत्रआदि) इंद्रियोंका अविषय) अव्यक्त (अवयवोंसेरहित) सनातन (नित्य) सर्वभूतमय (सम्पूर्णभूतोंकी आत्मा) अचिन्त्य (इतनाहै यह जाननेकोअशक्य) प्रसिद्धपरमात्माहै वहीमहदादि कार्यरूपहोकर प्रकट हुये-उद्भौ इसप्रयोगमें उत्पूर्वक भादीसौ धातुका प्रकटहोना अर्थहै क्योंकि धातुओंकेअर्थ अनेकहोते हैं ७ ॥

सोऽभिध्यायशरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाःप्रजाः।अपएवससर्जादौतासुबीजमवासृजत्८

पद । सः अभिध्याय शरीरात् स्वात् सिसृक्षुः विविधाः प्रजाः अपः एव ससर्ज आदौ तासु बीजम् अव असृजत् ॥

यो० । विविधाः प्रजाः सिसृक्षुः सः (परमात्मा) अभिध्याय आदौ अपएव ससर्ज तासु (अप्सु) बीजं अवासृजत् ॥

भा० । अनेकप्रकारकी प्रजा रचनेकीहैइच्छाजिसको ऐसा वह ब्रह्म प्रथम अपनेप्रकृतिरूप पूर्वोक्त अव्याकृत शरीरसे जलोंको रचताभया और उन जलोंमें अपनी शक्तिका स्थापन करताभया ॥

ता० । वहपरमात्मा नानाप्रकारकी प्रजाओं के रचनेकी है इच्छा जिसको ऐसा जलोंकी उत्पत्ति हो यह ध्यानकरके अपने अव्याकृत रूप शरीरसे प्रथम जलोंकोही रचताभया यहां ध्यानपूर्वक सृष्टिको कहतेहुये मनुजीको यह सांख्योंका पक्ष सम्मतनहीं है कि अचेतन और पराधीन प्रकृति ही महदादिरूपसे परिणामको प्राप्तहोतीहै किंतु यह वेदांतका पक्षही सम्मतहै कि ब्रह्मही अव्याकृत शक्तिरूप से जगत् का कारणहै क्योंकि छांदोग्योपनिषत् की इस-तदैक्षतबहुस्यां प्रजायेय-श्रुति में यह कहाहैकि उसब्रह्मने यह देखाकि एक में बहुतप्रकार का प्रकटहूं इसीसेशारीरकके इस ईक्षतेर्नाशब्दम् सूत्रमें व्यासजीने यह कहाहै कि उक्तश्रुतिमें ईक्षणके सुननेसे और प्रधान (प्रकृति) श्रुतिसिद्ध न होनेसे जगत्का कारण नहींहै यहां अव्याकृत शब्दसे पंचभूत ज्ञानेंद्रिय कर्मेंद्रिय प्राण मन कर्म अविद्या वासना रूप प्रकृतिलेते हैं ये सब सूक्ष्मरूप और शक्तिरूपसे आत्मामें स्थित रहतेहैं और इनके संग ब्रह्मकाभेद और अभेदवेदांतियोंने मानाहै अर्थात् अद्वैतरूप ब्रह्मही पूर्वोक्त शक्तिरूपसे जगत् रूप परिणाम को प्राप्त होताहै इससे संसार दशामेंभेद और ब्रह्मदशामें अभेद ये दोनों सिद्धहोते हैं आदौ (पहिले) अर्थात् अपना कार्य जो भूमि की रचना उससे प्रथम और-यह जलोंकी रचना महदादि क्रमसे समझनी क्योंकि महदादिके क्रमसेही पूर्वसृष्टि का वर्णन किया और आगेभी करेंगे और तासु (उनजलोंमें) बीज (अपनीशक्ति) का स्थापन करताभया ८ ॥

तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् । तस्मिञ्जज्ञेस्वयंब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ९ ॥

पद । तत् अंडं अभवत् हैमं सहस्रांशुसमप्रभम् तस्मिन् जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥

यो० । तत् (बीजं) हैमं सहस्रांशुसमप्रभं अंडं अभवत् तस्मिन् (अंडे) सर्वलोक पितामहः ब्रह्मा स्वयं जज्ञे (जातः)-

भा० । वहबीजनिर्मल और सूर्यकेसमान कांतिवाला अंडा होगया और उसअंडेमें सबलोकोंका पैदाकरनेवाला ब्रह्मास्वयं (विना किसीकेपैदाकिये) पैदाहुआ ॥

ता० । वह बीज परमेश्वरकीइच्छासे हैम (सुवर्ण) के समान निर्म्मल और सहस्रांशु (सूर्य्य) के

समान है कान्ति जिसकी ऐसा अण्ड (गोलाकार) होगया और उस अण्डमें सब लोकोंका पैदा करनेवाला ब्रह्मा स्वयमेव उत्पन्नहुआ इसश्लोकमें हैम पदसे निर्मललेतेहैं क्योंकि लक्षणासे सोने का बोधकभी हैमपद निर्मलका बोधक होसकताहै यदि हैमपदसे सोनाही लेते तो उसीअंडेसे भूमि की उत्पत्ति जो आगेकहेंगे वहसिद्ध न होती क्योंकिभूमिसोनारूप नहींहोसकती-और उसअंडेमें वह हिरण्यगर्भ भगवान् पैदाहुये जिन्होंने पूर्वजन्ममें-हिरण्यगर्भोऽहमस्मि-(मैंहिरण्यगर्भहीहूं)यहभेद और अभेदकी भावनासे परमेश्वरकी उपासना(सेवा)कीथी और उसकी उपासनासे प्रसन्नहुये परमेश्वर उस(ब्रह्मा)के लिंगशरीरमें वर्तमान जीवमें प्रविष्टहोकर आपही हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा)के रूपसे प्रकटहुये इसीसे उसका सर्वलोकपितामहः (सबलोकोंकापैदाकरनेवाला) नामहुआ ९ ॥

आपोनाराइतिप्रोक्ताआपोवैनरसूनवः । तायदस्यायनंपूर्वं तेननारायणःस्मृतः १० ॥

पद । आपः नाराः इति प्रोक्ताः आपः वै नरसूनवः ताः यत् अस्य अयनं पूर्वं तेन नारायणःस्मृतः॥

यो० । वै (यतः) अतः आपः नरसूनवः (संति) आपः (जलानि) नारा इतिप्रोक्ताः यत् (यतः) ताः (आपः)अस्य (परमेश्वरस्य) पूर्वं अयनं (आश्रयः) तेन (हेतुना) = असौपरमेश्वरः नारायण (इतिनाम्ना) स्मृतः (कथितः) ॥

भा० । जिससेजलोंको परमेश्वर के पैदाकिये होनेसे नाराकहेजातेहैं इससे नरके पुत्रहैं-और वे जल जिससे परमेश्वरके पूर्व आश्रयहैं तिससे परमेश्वरको नारायणकहतेहैं ॥

ता० । इसश्लोक से वेदमें प्रसिद्ध नारायण शब्दके अर्थको कहकर पूर्वोक्त परमात्मासेही जगत्की उत्पत्तिको दृढ़करते हैं जलनाराशब्द से कहेजाते हैं क्योंकि वे (जल) नर (ईश्वर) के अपत्य (पैदाकिये) होनेसे नरके सूनु (पुत्र)हैं यद्यपि यहां नारा इसपदमें तस्येदं इससूत्रसे अण् प्रत्यय करनेसे टिड्ढाणञित्यादिसूत्रसेङीप्प्रत्यय होनेसे नारी ऐसाप्रयोग पाताहै तथापि वेदमें(छंदसिसर्वेविधयःविकल्प्यंते)सबसूत्र विकल्प करके होते हैं इससेपक्षमें ङीप्प्रत्ययनहीं हुआ किंतु अजाद्यतष्टाप् इससूत्रसेटाप्प्रत्यय करनेसे नारा शब्द बनगया क्योंकि स्मृतियोंमें भी वेदका व्यवहारहोताहै-और गोविंदराजनेतो आपोनरा ऐसा पाठपढ़ाहै और नृ शब्दसे अण्प्रत्ययकियाहै यद्यपि इसपाठमें नरहैं अयन (आश्रय) जिसके वहनरायण ऐसापद पाताहै तोभी (अन्येषामपिदृश्यते) इससूत्रसे दीर्घकरनेसे नारायण शब्दभी बनसक्ताहै-और जिससे वे जलपहिले उसपरमेश्वरकेअयन (आश्रय) है तिससे उसपरमात्माको नारायणकहतेहैं क्योंकि नारहैं अयन जिसके सोनारायण१०॥

यत्तत्कारणमव्यक्तंनित्यंसदसदात्मकम् । तद्विसृष्टःसपुरुषोलोकेब्रह्मेतिकीर्त्यते ११ ॥

पद । यत् तत् कारणं अव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकं तद्विसृष्टः सः पुरुषः लोके ब्रह्मा इति कीर्त्यते ॥

यो० । यत् तत् (ब्रह्म) कारणं अव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकं (अस्ति) तेन विसृष्टः सपुरुषः लोके ब्रह्मा इतिकीर्त्यते (कथ्यते) जनैरितिशेषः ॥

भा० । जो वह परमात्मा सबका कारण-और वाह्यइन्द्रियोंका अविषय--और अविनाशी और जो सत्यरूप होनेपरभी प्रत्यक्ष न होनेसे असत्य के समान प्रतीतहोता है उस परमात्मा का पैदा किया हुआ वह पुरुष जगत् में ब्रह्मा कहाताहै ॥

ता० । इसश्लोकमें यत्तत् इनदो सर्व नामपदोंसे लोक और वेदआदिमें प्रसिद्धपरमात्माका ग्रहण

मनुको अभीष्टहै--जो वह परमात्मा सब उत्पत्तिवालोंका कारण (अव्यक्त बाह्य इन्द्रियोंका अवि-षय) नित्य (वेदांतसे सिद्धहोनेसेउत्पत्ति और विनाशसे रहित) है सत् (सत्यरूप) असत् प्रत्यक्ष नहोनेसे असत्यकेसमान) ये दोनों जिसकी आत्मा हैं--अथवा सत् (भावपदार्थ) असत् (अभाव पदार्थ) इन दोनोंकी आत्माहै क्योंकि इस-ऐतदात्म्यमिदंसर्वं--श्रुतिसे यह सिद्धहोताहै कि यह संपूर्ण जगत् परमात्मरूपहीहै--उसी परमात्माका रचाहुआ वह पुरुषलोकमें ब्रह्मा कहाताहै ११ ॥

तस्मिन्नण्डेसभगवानुषित्वापरिवत्सरम् । स्वयमेवात्मनोध्यानात्तदण्डमकरोद्द्विधा १२ ॥

पद। तस्मिन् अंडे सः भगवान् उषित्वा परिवत्सरं स्वयं एव आत्मनः ध्यानात् तत् अंडं अकरोत् द्विधा

यो० । स भगवान् (ब्रह्मा) तस्मिन् अंडे परिवत्सरं उषित्वा आत्मनः ध्यानात् स्वयमेव तत् अंडं द्विधा अकरोत् ॥

भा० । वह भगवान् एकवर्ष उस अंडेमें बसकर अपनीइच्छाके अनुसार अपने ध्यानसे उसअंडे के दो खंड (टुकड़े) करताभया ॥

ता० । उस अंडेमें वह भगवान् ब्रह्मा की अवस्थाका प्रमाण जो आगेकरेंगे उसीमानसे एकवर्ष बसकरऔर आपो आप यह अंड दोप्रकारका हो इस प्रकारके अपने ध्यानसे उसअंडेको दोप्रकारका करताभया अर्थात् उनकी इच्छासेही उसअंडके दोखंड होगये १२ ॥

ताभ्यांसशकलाभ्यांचदिवंभूमिंचनिर्ममे। मध्येव्योमदिशश्चाष्टावपांस्थानंचशाश्वतम् १३

पद । ताभ्यां सः शकलाभ्यां च दिवं भूमिं च निर् ममे मध्ये व्योम दिशः च अष्टौ अपां स्थानं च शाश्वतं ॥

यो० । स (ब्रह्मा) ताभ्यां शकलाभ्यां दिवं-भूमिं (स्वर्गभूम्योर्मध्ये) व्योम अष्टौदिशः शाश्वतं अपांस्थानं च निर्ममे ॥

भा० । उसब्रह्माने उनदोनों खंडोंसे स्वर्ग और पृथिवीरची और स्वर्ग और पृथिवीके बीचमें आकाश--आठों दिशा-और जलोंका दृढ़ स्थान (समुद्र) रचा ॥

ता० । वह ब्रह्मा उनशकलों (खंडों) से स्वर्ग और भूमिको रचताभया अर्थात् ऊपरके खंड से स्वर्ग और नीचे केसे पृथिवीरची--और स्वर्ग और भूमिके मध्य (बीच) में आकाश और आठोंदिशा और शाश्वत (स्थिर)जलोंका स्थान (समुद्र) रचा १३ ॥

उद्ववर्हात्मनश्चैवमनःसदसदात्मकम् । मनसश्चाप्यहंकारमभिमन्तारमीश्वरम् १४ ॥

पद । उत् बवर्ह आत्मनः च एव मनः सदसदात्मकम् मनसः च अपि अहंकारं-अभिमंतारं ईश्वरम् ॥

यो० । ब्रह्मा आत्मनः (परमात्मनः सकाशात्)सदसदात्मकं मनः उद्ववर्ह मनसश्चपूर्वं अभिमंतारं ईश्वरं अहंकारं उद्ववर्ह (उद्धृतवान्) ॥

भा० । ब्रह्मा परमात्माके सकाशसे मनको और मनसे पहिले मैं हूं इस अभिमानके जनक और अपने कामकरने में समर्थ अहंकार को पैदाकरताभया ॥

ता० । अब महदादि क्रमसेही जगत्की रचना दिखानेकेलिये सृष्टिका वर्णन करते हैं ब्रह्मा परमात्माकेही सकाशसे ब्रह्मरूप मनको प्रकट करतेभये क्योंकि वेदान्तमें इसश्रुति (एतस्मा-

ज्जायतेप्राणो मनःसर्वेन्द्रियाणिच । खंवायुर्ज्योतिरापश्च पृथ्वीविश्वस्यधारिणी–प्राण–मन–सम्पूर्णइन्द्रिय–आकाश--वायु--तेज--जल और विश्वकेधारनेवाली पृथिवी इसपरमात्मासेहीपैदा होतीहै) के अनुसार परमात्मासेही मनकीरचना कही है और मनके पहिलेमैंहूं इस अभिमान कार्य सहित और अपने कार्योंके करनेमें समर्थ अहंकारको पैदाकिया क्योंकि श्रुतिकेबलसे एक समयही प्रेमज्ञानानुत्पत्तिर्मनसोलिंगम्--ज्ञानोंकी उत्पत्तिके अभावसे मन-असत् झूठा) है १४ ॥

महान्तमेवचात्मानंसर्वाणित्रिगुणानिच । विषयाणांग्रहीतॄणिशनैःपञ्चेन्द्रियाणिच १५

प०। महांतं एव च आत्मानं सर्वाणि त्रिगुणानि च विषयाणां ग्रहीतॄणि शनैः-पंच कर्मेन्द्रियाणि च॥

यो०। ब्रह्मा परमात्मनः सकाशात् महांतं आत्मानं सर्वाणि त्रिगुणानि विषयाणां ग्रहीतॄणि पंचकर्मेन्द्रियाणि च शनैः ॥

भा० । अहंकारसे पहिले ब्रह्माने आत्मस्वरूप महत्तत्त्वको और उत्पन्नहुये और पैदाहोनेवाले सबत्रिगुणकार्यों को और अपने२ विषयोंको जाननेवाली पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेंद्रिय क्रमसे पैदाकी ॥

ता० । अहंकारसे पूर्व अव्याकृत शक्तिरूप जो प्रकृति तिससहित परमात्मासे ब्रह्माने महत्तत्त्वकोरचा और जिस महत्तत्त्वको आत्मासे उत्पन्नहोने व आत्माका उपकारक होनेसे आत्मा कहते हैं--और पूर्वोक्त और जो आगे कहेंगे सत्त्वगुण रजोगुण तमोगुण सहित वे सब और विषयों (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) के ग्रहणकरने (जानने) वाली पांचज्ञानेन्द्रिय श्रवण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, घ्राण और चकार पढ़नेसे पांचकर्मेन्द्रिय (वाक्, हस्त, पाद, गुदा, लिंग)और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, रूप पांचोमात्रा (सूक्ष्मभूत) पैदाकिये इस मनुके कथन में यह पूर्वापर विरोधकी शंकाकरतेहैं कि पहिले तो मनुजीनेही ध्यानसे सृष्टि वर्णनकी और अब महदादि क्रमसे वर्णन करतेहैं इससे पूर्वोक्त यहसंगत नहींहोगा कि वेदान्तका सिद्धान्तही मनुजीको अभिमतहै क्योंकि वेदान्तशास्त्र में इस तैत्तिरीय श्रुतिसे (तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः आकाशाद्वायुः वायोरग्निः अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी-तिस इस आत्मासे आकाश पैदाहुआ और आकाशसे वायु और वायुसे अग्नि और अग्निसे जल और जलोंसे पृथिवी पैदाहुई) परमात्मासेही आकाश आदिक्रमसे सृष्टिकहीहै इसशंकाका समाधान यहहै कि भगवान् भास्कराचार्यजीनेभी अपने शास्त्रमें प्रकृतिकेद्वाराही महदादि क्रमसे सृष्टिकहीहै यह बात भास्कराचार्य के सिद्धान्तों के ज्ञाता पण्डितजन कहतेहैं और अव्याकृत परमात्माकोही प्रकृति मानाहै उस प्रकृति का जो सृष्टिके आदिकाल में संबंधरूप सृष्टिके उन्मुखहोना है वही महत्तत्त्व है और उसीप्रकृतिरूप अव्याकृतका जो (एकोहंबहुस्यां-एकमैं बहुतप्रकारकाहूं) इसअभिमानरूप ईक्षण (ज्ञान) काल में योग उसकोही अहंकारतत्त्व कहतेहैं उसी अहंकारतत्त्वसे आकाशादि पांचोभूत सूक्ष्म (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) और फिर आकाश आदि स्थूलभूत उत्पन्नहुये इसप्रकार सूक्ष्म स्थूल क्रमसेही कार्योंकी उत्पत्ति देखीहै इससे पूर्वापर विरोध नहीं है--यद्यपि सत्त्वगुण रजोगुण तमोगुण ये अव्याकृत के गुणहैं तोभी तीनोंगुणों का कार्यहोनेसे सब त्रिगुण कहेजातेहैं अथवा रहो तीनोंगुणोंकी साम्य अवस्थाही प्रकृति और महत्तत्त्व अहंकारआदिभी पृथक्ही तत्त्वरहो परन्तु मनुजीका यह अभिप्रायहै कि प्रकृति ब्रह्मसे पृथक् नहीं है-इसीसे मनु

जी आगेयह (१) कहेंगे कि सब भूतोंमें आत्माको आत्मामें सबभूतोंको जो देखे वह ज्ञानीहै-- इस प्रकार सबभूतों में परमात्माको जो पुरुष ब्रह्मभाव से देखताहै वह सबकी समताको प्राप्त होकर परमपदरूप ब्रह्मको प्राप्तहोता है १५ ॥

तेषांत्ववयवान्सूक्ष्मान्षण्णामप्यमितौजसाम्।सन्निवेश्यात्ममात्रासुसर्वभूतानिनिर्ममे१६

प० । तेषां तु अवयवान् सूक्ष्मान् षण्णाम् अपि अमितौजसाम् सन्निवेश्य आत्ममात्रासु सर्वभूतानि निर्ममे ॥

यो० । अमितौजसां तेषां षण्णां सूक्ष्मान् अवयवान् आत्ममात्रासु संनिवेश्य--ब्रह्मा--सर्वभूतानि निर्ममे रचितवान्) ॥

भा० । अपने२ कार्यके रचनेमें समर्थ तिन पूर्वोक्त अहंकार शब्द स्पर्श रूप रस गंध छःओंके सूक्ष्म२ (थोड़े२) अवयवोंको उन२के विकारोंमें मिलाकर परमात्माने सब भूतोंको रचा ॥

ता० । अमितहै बल जिनका ऐसे तिन पूर्वोक्त छःओं अहंकार और पांचों सूक्ष्म भूतों (शब्द--स्पर्श--रूप--रस--गन्धों) के सूक्ष्म२ अवयवों को उन्हींके विकारोंमें मिलाकर--मनुष्य--तिर्यक् (सर्पादि) स्थावर (वृक्षादि) सब भूतोंको परमात्माने रचा--तन्मात्राओंके विकार आकाशादि पांच महाभूतहैं और अहंकार का विकार इंद्रिय हैं--अर्थात् पृथिवी आदि भूत जब शरीर रूप परिणामको प्राप्तहुये तब उनमें तन्मात्रा और अहंकार को मिलाकर सब कार्योंको ब्रह्मने रचा--क्योंकि वे छःओं अपने२ कार्यके बनानेमें अतीव बलवान्थे १६ ॥

यन्मूर्त्यवयवाःसूक्ष्मास्तस्येमान्याश्रयन्तिषट्तस्माच्छरीरमित्याहुस्तस्यमूर्त्तिमनीषिणः

प० । यत् मूर्त्यवयवाः सूक्ष्माः तस्य इमानि आश्रयंति षट् तस्मात् शरीरं इति आहुः तस्य मूर्तिं मनीषिणः ॥

यो० । यत् (यस्मात्) षट् सूक्ष्माः मूर्त्यवयवाः तस्य इमानि (भूत५ इंद्रिय१०) आश्रयंति तस्मात् मनीषिणः तस्य (ब्रह्मणः) मूर्तिं शरीरं इति आहुः ॥

भा० । जिससे शरीरके संपादक सूक्ष्म (मात्रा अहंकार) छःओं अवयव तिस ब्रह्मको अभीष्ट इन पांचभूत और इंद्रियोंको रचतेहैं तिससे तिस ब्रह्मके स्वभाव का (जो इंद्रिय आदि रूप हुआहै) कोही बुद्धिमान् मनुष्य शरीर कहतेहैं ॥

ता० । जिससे मूर्ति (शरीर) के पैदाकरनेवाले जो सूक्ष्म (मात्रा५अहंकार१) छःओं अवयव--तिस प्रकृति सहित ब्रह्मके रचे इन पांच महाभूत और इंद्रियोंको कार्य रूपसे आश्रयकरते हैं अर्थात् पांच महाभूत और इंद्रियोंको रचतेहैं--क्योंकि सांख्य शास्त्रकी इसकारिका (प्रकृतेर्महांस्ततोहंकारस्तस्माद्गणश्चषोडशकः तस्मादपिषोडशकात् पंचभ्यः पंचभूतानि) के अनुसार भी यही सृष्टिका क्रम प्रतीतहोताहै कि प्रकृतिसे महत्तत्त्व--महत्तत्त्वसे अहंकार अहंकारसे पांच मात्रा दश इंद्रिय और एकमन और इन सोलहों पांचों मात्राओंसे पांच महाभूत पैदाहोतेहैं--तिससे तिस ब्रह्मके इंद्रियादि रूप परिणामको प्राप्तहुये स्वभावको बुद्धिमान् मनुष्य शरीरकहते हैं--इस श्लोकसे पूर्वोक्त जो रचनेका क्रम वहीदृढ़किया १७ ॥

(१)सर्वभूतेषुचात्मानं सर्वभूतानिचात्मनि-एवंयःसर्वभूतेषु पश्यन्त्यात्मानमात्मना समर्वसमतामेत्यब्रह्माभ्येतिपरंपदम्॥

तदाविशन्तिभूतानिमहान्तिसहकर्मभिः । मनश्चावयवैःसूक्ष्मैःसर्वभूतकृदव्ययम् १८ ॥

प० । तत् आविशंति भूतानि महांति सह कर्मभिः मनः च अवयवैः सूक्ष्मैः सर्वभूतकृत् अव्ययम् ॥

यो० । कर्मभिः सह महांति भूतानि तत् (ब्रह्म) आविशंति— सूक्ष्मैः अवयवैः सह सर्वभूतकृत् अव्ययं मनश्च तत् (ब्रह्म) आविशति ॥

भा० । पांचों मात्रा रूप उस ब्रह्मसे अपने२ कार्यों सहित पांचों महाभूत—और अहंकार रूप उस ब्रह्मसेही सबका रचनेवाला और अविनाशि और देखने अयोग्य जो अपने कार्य तिनसहित मन भी पैदाहुआ ॥

ता० । इसश्लोकमें तत् शब्दसे ब्रह्म लियाहै क्योंकि पिछले श्लोकमें ब्रह्म का कथनहै—पांच मात्रा रूपसे स्थित उस ब्रह्मसे अपने२ कार्यों सहित पांचों आकाशादि महाभूत उत्पन्नहोतेहैं जैसे आकाश का कार्य अवकाशदेना—वायुका कार्य अवयवों का विन्यास (आकार विशेष) तेज का कार्य पाक—जलोंका कार्य पिंडाकार करना—पृथिवीका कार्य धारण करना—और अहंकाररूप से स्थित उस ब्रह्मसे देखने के अयोग्य अपने कार्यों सहित अविनाशी मन उत्पन्न होताहै— और मनके कार्य येहैं कि शुभाशुभ संकल्प—सुख दुःख—और वह मन सब भूतोंका जनकहै क्योंकि मनसे पैदाहुये शुभ अशुभ कर्मसेही जगत् पैदाहोताहै १८ ॥

तेषामिदंतुसप्तानांपुरुषाणांमहौजसाम् । सूक्ष्माभ्योमूर्तिमात्राभ्यःसंभवत्यव्ययाद्व्ययम्

प० । तेषां इदं सप्तानां पुरुषाणां महौजसाम् सूक्ष्माभ्यः मूर्तिमात्राभ्यः संभवति अव्ययात् व्ययम् ॥

यो० । अव्ययात् (अविनाशिनः सकाशात्) तेषां महौजसां सप्तानां पुरुषाणां सूक्ष्माभ्यः मूर्तिमात्राभ्यः इदं व्ययं (विनाशि) संभवति ॥

भा० । अविनाशी परमेश्वरके सकाशसेवीर्यवाले और पुरुषरूप उनसातोंप्रकृतियों (महत्तत्त्व अहंकार ५ मात्रा)की जो छोटी २ मूर्तिमात्रा (शरीर बनानेके भाग) उनके द्वारा यह विनाशि जगत् पैदाहोताहै ॥

ता० । पूर्वकही हुई जो वे महत् अहंकार शब्द स्पर्श रूप रस गन्धरूप सात७ प्रकृति (जिनको पुरुष (ईश्वर) से उत्पन्न होने अथवा पुरुषकी वृत्ति से जाननेयोग्य होनेसे पुरुष कहतेहैं) और जिन प्रकृतियों का महान् (बड़ा) ओजबल है अर्थात् जो अपने २ कार्यके रचने में समर्थ हैं उनप्रकृतियों के जो सूक्ष्म मूर्तिमात्रा अर्थात् शरीरके रचने के भाग उनभागोंसे यहव्यय (नाशमान जगत्) पैदाहोता है अर्थात् जो कार्य है वह विनाशि है क्योंकि अपने कारण में लीन (नष्ट) होजाताहै और कारण कार्यकी अपेक्षा स्थिर (चिरकालतक जो रहै) है और जो परमकारण अर्थात् पूर्वोक्त प्रकृतिआदि का भी कर्त्ता है वह परब्रह्महीं उपासना करनेयोग्य है यहीबात दिखाने के लिये यहकहेहुये का कथन इसश्लोक से कहाहै १९ ॥

आद्याद्यस्यगुणंत्वेषामवाप्नोतिपरःपरः । योयोयावतिथश्चैषांससतावद्गुणःस्मृतः २० ॥

प० । आद्याद्यस्य गुणं तु एषां अवाप्नोति परःपरः यः यः यावतिथः च एषां स स तावद्गुणः स्मृतः ॥

अ० । एषां (मध्ये) आद्याद्यस्यगुणं परःपर अवाप्नोति एषां (मध्ये) यः यः यावतिथो (भवति) सस तावद्गुणः (मुनिभिः) स्मृतः ॥

भा० । इनपांचों भूतोंमें पहिले २ भूतके गुणको परला २ भूत प्राप्तहोता है—और इनपांचों भूतों में जिसभूतकी जितनी संख्या (गिनती) है उसभूत में उतनेहीगुण मनुआदिऋषियों ने कहे हैं ॥

ता० । यहां एतत्शब्दसे १८श्लोकमें कहेहुये पांचोंभूतलेतेहैं और उनभूतोंकी आकाशआदि क्रमसे उत्पत्ति और शब्दआदि उनके गुण आगेकहेंगे तिनमें पहिले२आकाशआदिके गुणको पर पर वायुआदि प्राप्तहोते हैं यहीबात आधेश्लोक से प्रकट करते हैं कि इनपांचोंभूतों में जो भूत जितनी संख्यावालाहै वह २ उतनेही गुणोंवालाभी है अर्थात् पहिले आकाशमें एकशब्दहीगुण है दूसरेवायुमें शब्द और स्पर्श दोगुणहैं और तीसरे तेजमें शब्द स्पर्श रूप तीनगुणहैं और चौथे जलमें शब्द स्पर्श रूप रस चारगुण हैं और पांचवीं पृथिवी में शब्द स्पर्श रूप रस गंध पांचगुण हैं क्योंकि आकाश वायु तेज जल पृथिवी इनपांचोंभूतों के क्रमसे शब्द स्पर्श रूप रस गंध ये पांच गुणहोतेहैं और येही।पांचोंगुण सूक्ष्मभूतकहातेहैं—इसश्लोकमें यद्यपि आद्यपदको—नित्यवीप्सयोः इससूत्र से द्विवचनकिये पीछे आद्यस्यआद्यस्य यहपद होनेचाहतेथे तथापि स्मृतियों को वेद के समान होनेसे—सुपांसुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्यायाजालः—इससूत्रसे पहिले आद्यस्य के सुप्का लुक्होने से आद्याद्यस्य यहपदभी साधुहै २० ॥

सर्वेषांतुसनामानिकर्माणिचपृथक्पृथक् ।वेदशब्देभ्यएवादौपृथक्संस्थाश्चनिर्ममे २१॥

पद० । सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक् वेदशब्देभ्यः एव आदौ पृथक्संस्थाः निर्ममे ॥

यो० । स सर्वेषां नामानि चपुनः कर्माणि चपुनः पृथक्संस्थाः आदौ (प्रथमं) वेदशब्देभ्य एव पृथक् २ निर्ममे (रचयामास) ॥

भा० । उस ब्रह्माने वेदके शब्दोंसेही जानकर सबके नाम—और कर्म और जीविका सृष्टिकी आदिमें पृथक्२ रचे—निदान प्रलयसे पहिले जिसके२ जो२ नाम आदिथे वेही सृष्टिके समय ब्रह्माने रचे ॥

ता० । हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) रूपसे टिकेहुये उस परमात्माने सृष्टिकी आदिमें सबके नाम (जैसे गो जातिका गौ और अश्वजातिका अश्व) और सबके कर्म (जैसे ब्राह्मण के अध्ययन आदि और क्षत्रियके प्रजाकी रक्षा आदि) और सबकी पृथक् संस्था (जीविका) जैसे कुलाल (कुम्हार) का घट बनाना और कुविंद (कुली) का कपड़ा बुनना आदि वेदके शब्दोंसेही जानकरि पृथक्२ रचे—भगवान् व्यासजीने भी वेदपूर्वकही जगत्की सृष्टिवेद मीमांसामें कही है सोई इस+शब्द इतिचेन्नातः प्रभावात् प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्+शारीरक सूत्रमें कहा है कि जो देवताओंको भी शरीरवाले मानोगे तो वेदकेदेव आदि शब्दोंसे भी देहवाले देवताओं का बोध होगा इससे वेदकी भी आदि समझी जायगी और वह वेद अनादीहै यह कोई विरोध दे तो यह विरोधनहींहै क्योंकि इस शब्दसेही जगत्की उत्पत्तिहै-और प्रलयकेसमय भी परमात्मामें सूक्ष्म

रूपसे वेदकी राशिरहती है वही वेदकी राशि ब्रह्मारूप शरीरधारी परमात्माके मनमें इसप्रकार प्रकटहोजातीहै जैसे सोकर जगेहुये मनुष्यके मनमें ज्ञानदीपक के समान उसी वेदसे ब्रह्मा जानकर सर्व मनुष्य तिर्यग् आदि विभागसे जगत्को रचताहै यहबात प्रत्यक्ष (श्रुति) और अनुमान (स्मृति) से प्रतीतहोतीहै और श्रुतिको प्रत्यक्षकहतेहैं क्योंकि वह किसीकी अपेक्षा नहींरखती—और स्मृति को अनुमानकहतेहैं क्योंकि स्मृति श्रुतिके अनुसारसे वर्णन करतीहै—और बात इस श्रुति+एत इति वै प्रजापतिर्देवान्सृजतासृजदग्रे इति मनुष्यानिंदव इति पितॄन् तिरः पवित्रमिति ग्रहा नावसव इति स्तोत्रं विश्वानीति शस्त्रमिति सौभगेत्यन्याः प्रजाः+से प्रतीतहोताहै कि राते इस ऋचासे प्रजापतिने देवतारचे और अग्ने इस ऋचासे मनुष्य—और इंदव इस ऋचासे पितर और तिरः पवित्रं इस ऋचासे ग्रह—और आवसव इस ऋचासे स्तोत्र—और विश्वानि इस ऋचासे शस्त्र और सौभग इस ऋचासे अन्य प्रजा ब्रह्माने रची—और स्मृतिसे मनु आदिकी रचीहुई स्मृतियां समझनी—इससे कुछभी विरोधनहींहै २१ ॥

कर्मात्मनांचदेवानांसोऽसृजत्प्राणिनांप्रभुः। साध्यानांचगणंसूक्ष्मंयज्ञंचैवसनातनम् २२

प० । कर्मात्मनां चँ देवानां सः असृजत् प्राणिनां प्रभुः साध्यानां चँ गणं सूक्ष्मं यज्ञं चँ एवँ सनातनम् ॥

यो० । सः प्रभुः (ब्रह्मा देवानांगणं- कर्मात्मनांगणं- प्राणिनांगणं- साध्यानांच सूक्ष्मंगणं- सनातनं यज्ञंच असृजत् ॥

भा० । उस समर्थ ब्रह्माने देवता—प्राणी और अप्राणी और ग्रावादि देवविशेषोंके समूह को और साध्योंके सूक्ष्मसमूहको और नित्य यज्ञको—रचा ॥

ता० । वह ब्रह्मा प्रभु,देवताओं का गण और प्राणी इंद्रादिकों का गण और कर्महीहै आत्मा (स्वभाव) जिनका ऐसे अप्राणी ग्रावादि देवता विशेषों का गण और सूक्ष्म साध्यों का गण (समूह) और सानातनिक (नित्य) यज्ञ (ज्योतिष्टोम आदि) का रचताभया—इस श्लोकमें साध्यों का जो कर्मात्मनां इससे पृथक्कथनहै वह सूक्ष्मता जनाने के लियेहै २२ ॥

अग्निवायुरविभ्यस्तुत्रयंब्रह्मसनातनम् । दुदोहयज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुःसामलक्षणम् २३

प० । अग्निवायुरविभ्यः तुँ त्रयं ब्रह्म सनातनम् दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थं ऋग्यजुःसामलक्षणम् ॥

यो० । ब्रह्मा अग्निवायुरविभ्यः यज्ञसिद्ध्यर्थं ऋग्यजुः सामलक्षणं सनातनं दुदोह ॥

भा० । ऋग्वेद—यजुर्वेद—सामवेदहै नाम जिनका ऐसे नित्य तीनों वेदोंको क्रमसे अग्नि वायु और सूर्य से यज्ञकी सिद्धिके लिये ब्रह्माने दुहा अर्थात् प्रकटकिया ॥

ता० । ऋग्वेद—यजुर्वेद—सामवेदोंको ब्रह्माने अग्नि—वायु—और सूर्यइनसे रचा और जो वेद सनातन (नित्य) हैं यह कहनेसे मनुजीने यह सूचितकिया कि वेदकिसी पुरुषके रचेहुये नहींहैं किंतु पहिले कल्प में जो वेद थे वेही परमात्माकी मूर्त्ति जो ब्रह्मा तिसकी स्मृति में आगये और उन्हीं को अग्नि वायु सूर्य से ब्रह्मा ने उद्धार किया—यहबात इस+अग्नेर्ऋग्वेदो—वायोर्यजुर्वेदो—आदित्यात्सामवेदः+ श्रुतिमें कहीहै इससे शंकाके योग्य नहीं है—और यज्ञसिद्ध्यर्थं इससे यह

सूचन कियाहै कि पूर्वोक्त तीनों वेदोंसेही यज्ञकी जातीहैं—और दुहनाहै अर्थ जिसका ऐसी दुह धातुके दुदोह इस प्रयोगके देनेसे मनुजीने यह सूचन कियाहै कि जैसे गौके थनमें भराहुआही दूध दुहाजाताहै इसीप्रकार विद्यमानही वेदोंको ब्रह्माने प्रकटाकियाहै २३ ॥

कालंकालविभक्तीश्चनक्षत्राणिग्रहांस्तथा।सरितःसागराञ्छैलान्समानिविषमाणिच २४

प० । कालं कालविभक्तीः च नक्षत्राणि ग्रहान् तथा सरितः सागरान् शैलान् समानि विषमाणि च ॥

यो० । कालं (समयं) कालविभक्तीः-नक्षत्राणि-तथा ग्रहान् सरितः सागरान्-शैलान् समानि-चपुनः विषमाणि-ब्रह्मा ससर्ज ॥

भा० । समय और समय के भेद—और नक्षत्र और ग्रह—नदी—और पर्वत और समुद्र और सम और विषमस्थान ब्रह्माने रचे ॥

ता० । इस श्लोक में रचना है अर्थ जिसका ऐसी ससर्ज यह क्रिया मिलाकर अर्थ होता है ब्रह्माने सूर्यकी क्रियाओंका समूह रूपकाल और मास—ऋतु—अयन रूप कालके विभाग (अंश) और कृत्तिकाआदि २७नक्षत्र—और सूर्यआदि ग्रह—औरगंगाआदि नदी—और समुद्र और पर्वत और सम (एकसे) स्थान और विषम (ऊंचेनीचे) स्थान—रचे २४ ॥

तपोवाचंरतिंचैवकामंचक्रोधमेवच । सृष्टिंससर्जचैवेमांस्रष्टुमिच्छन्निमाःप्रजाः २५ ॥

प० । तपः वाचं रतिं च एव कामं च क्रोधं एव च सृष्टिं ससर्ज च एव इमां स्रष्टुं इच्छन् इमाः प्रजाः ॥

यो० । इमाःप्रजाः स्रष्टुं इच्छन् सन् ब्रह्मा तपः वाचं--रतिं--कामं -क्रोधं--इमां (एतच्छ्लोकोक्तां) सृष्टिं(चपुनः पूर्वश्लोकोक्तांसृष्टिं) सृष्टिं ससर्ज ॥

भा० । इनप्रजाओंके रचनेकीहै इच्छा जिसको ऐसे ब्रह्माने तप—वाणी—संतोष-इच्छा—और क्रोधरूप सृष्टि को और पिछले श्लोकमें कहीहुई सृष्टिको—रचा ॥

ता० । इन (जो देवता आदि आगे कहेंगे) प्रजाओंके रचनेकी इच्छा करताहुआ ब्रह्मा तप (प्राजापत्यआदिप्रायश्चित्त) वाणी चित्तका संतोष—और इच्छा—और क्रोध—रसरूप इसश्लोकमें कहीहुई और पिछले श्लोक में कहीहुई सृष्टि को—रचताभया २५ ॥

कर्मणांचविवेकार्थंधर्माधर्मौव्यवेचयत् । द्वन्द्वैरयोजयच्चेमाःसुखदुःखादिभिःप्रजाः२६ ॥

प० । कर्मणां च विवेकार्थं धर्माधर्मौ व्यवेचयत् द्वंद्वैः अयोजयत् च इमाः सुखदुःखादिभिः प्रजाः २ ॥

यो० । ब्रह्मा—कर्मणांविवेकार्थं धर्माधर्मौ व्यवेचयत्—चपुनः इमाः प्रजाः सुखदुःखादिभिर्द्वंद्वैरयोजयत् ॥

भा० । कर्मोंकी विवेचनाके लिये धर्म और अधर्म ब्रह्माने पृथक् २ वर्णनकिये और सुखदुःख आदि द्वंद्वों से इन प्रजाओं को ब्रह्मा ने युक्त किया ॥

ता० । कर्मों के विवेक के लिये अर्थात् धर्म करने योग्य है और अधर्म न करने योग्य है इस निमित्त ब्रह्मा ने धर्म और अधर्म पृथक् २ कहे—और धर्म का फल सुख है और अधर्म का फल

दुःख है इससे धर्म और अधर्म के फल रूप परस्पर विरुद्ध सुख दुःख—काम क्रोध—शोक मोह आदि द्वंद्वों (जोड़े) से इन प्रजाओं को ब्रह्मा युक्त करता भया २६ ॥

अण्व्योमात्राविनाशिन्योदशार्धानांतुयाःस्मृताः । ताभिःसार्द्धमिदंसर्वंसंभवत्यनुपूर्वशः

प० । अणव्यः मात्राः विनाशिन्यः दशार्द्धानां तु याः स्मृताः ताभिः सार्द्धं इदं सर्वं संभवति अनुपूर्वशः ॥

यो० । दशार्द्धानां (पंचभूतानां) अण्व्यः विनाशिन्यः याः मात्राः स्मृताः ताभिः सार्द्धं इदं सर्वं अनुपूर्वशः संभवति ॥

भा० । पांच महाभूतोंकी जो सूक्ष्म और परिणामवाली जो मात्रा कही है उन्हीं की सहायतासे यह संपूर्ण जगत् क्रमसे उत्पन्न होताहै ॥

ता० । दशसे आधे अर्थात् पांच महाभूतों की जो सूक्ष्म मात्रा (शब्द स्पर्श रूप रस गंध) कही हैं और पंचभूत रूपसे परिणामको प्राप्तहोती हैं उन मात्राओं के संग यह संपूर्ण पूर्वोक्त और वक्ष्यमाण जगत् क्रम से उत्पन्न होताहै अर्थात् सूक्ष्मसे स्थूल और स्थूल से अत्यंत स्थूल होताहै—इस श्लोक से दुबारा सृष्टिके वर्णन से मनुजी ने यह सूचित किया (जताया) है कि ब्रह्मा की मनोमयी सृष्टि भी तत्त्वोंके ही द्वारा होतीहै २७ ॥

यंतुकर्मणियस्मिन्सन्ययुङ्क्तप्रथमंप्रभुः । स तदेवस्वयंभेजेसृज्यमानःपुनःपुनः २८ ॥

प० । यं तु कर्मणि यस्मिन् सः न्ययुंक्त प्रथमं प्रभुः सः तत् एव स्वयं भेजे सृज्यमानः पुनः पुनः ॥

यो० । सः प्रभुः यस्मिन् कर्मणि यं प्रथमं न्ययुंक्त—पुनः पुनः सृज्यमानः सः तदेव (कर्म) स्वयं भेजे ॥

भा० । रचने में समर्थ ब्रह्मा ने सृष्टिकी आदि में जिस जातिको जिस कर्म में नियुक्त किया—बारंबार रचीहुई भी वह जाति अपने आप उसी कर्म को करती भई ॥

ता० । वह रचने में समर्थ ब्रह्मा जिस जाति (सिंहादि) को जिस कर्म (मृगका मारना) में सृष्टिकी आदि में नियुक्त करता भया—बारंबार रचीहुई वही जाति अपने प्रारब्ध कर्मके वश से वही काम करतीभई—इस श्लोक से मनुजी ने यह सूचनकिया है कि प्रजापतिका जो उत्तम अधम सृष्टिका रचना है वह प्राणियों के कर्म से ही है और रागद्वेष से नहीं है अतएव मनुजी आगे इस श्लोक (यथाकर्मतपोयोगात्सृष्टंस्थावरजंगमं) में यह कहेंगे कि ब्रह्माने अपने तपोबल से प्राणियों के कर्मानुसार स्थावर और जंगम रचे २८ ॥

हिंस्राहिंस्रेमृदुक्रूरेधर्माधर्मावृतानृते । यद्यस्यसोऽदधात्सर्गेतत्तस्यस्वयमाविशत् २९ ॥

प० । हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मौ ऋतानृते यत् यस्य सः अदधात् सर्गे तत् तस्य स्वयं आविशत् ॥

यो० । स (ब्रह्मा) यस्य यत् हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे—धर्माधर्मौ—ऋतानृते—सर्गे अदधात् रचनानंतरमपि तस्य तत् (कर्म) स्वयं आविशत् ॥

भा० । हिंसा और अहिंसा—कोमल और कठोर—धर्म और अधर्म—सत्य और झूंठ—इनमें जो

कर्म जिसजाति के लिये सृष्टिकेसमय ब्रह्माने नियत करदिया—सृष्टिके अनन्तर भी वहजाति उसी कर्म को करतीभई ॥

भा० । हिंसककर्म जैसे सिंहका कर्म हस्तिकामारना—अहिंसककर्म जैसे मृगका—कोमल जैसा दयायुक्त कर्म ब्राह्मणका—क्रूर (कठोर) कर्म जैसे क्षत्रियका—धर्म जैसे ब्रह्मचारी का धर्म गुरुकी सेवाआदि—और अधर्म जैसे उसीका अधर्म मांस मैथुनआदि—सत्य यहप्रायः देवताओंमेंहोता है—असत्य यहप्रायः मनुष्यों में होता है इसमें यह श्रुति (सत्यवाचोदेवा असत्यवाचोमनुष्याः) प्रमाण है कि देवताओंकी सत्यवाणी और मनुष्यों की झूंठीवाणी होतीहै—इनपूर्वोक्तों के मध्य में जो कर्म जिसका सृष्टिकी आदिमें ब्रह्मा ने नियत करदिया सृष्टिके अनन्तर भी स्वयमेव वह कर्म उसजाति में प्रवेशकरताभया अर्थात् वहजाति उसीकर्म को करतीभई २९ ॥

यथर्तुलिङ्गान्यृतवःस्वयमेवर्तुपर्यये । स्वानिस्वान्यभिपद्यन्तेतथाकर्माणिदेहिनः ३० ॥

प० । यथा ऋतुलिंगानि ऋतवः स्वयं एव ऋतुपर्यये स्वानि स्वानि अभिपद्यंते तथा कर्माणि देहिनः ॥

यो० । ऋतवः ऋतुपर्यये यथा स्वानिस्वानि ऋतुलिंगानि स्वयमेव अभिपद्यंते तथा देहिनः स्वानि२ कर्माणि अभिपद्यंते ॥

भा० । जैसे वसंत आदि ऋतु अपने २ अवसर पर अपने २ चिह्नों को स्वतः ही प्राप्तहो जातीहैं इसी प्रकार देहधारी भी अपने २ कर्मों को प्राप्त हो जातेहैं ॥

ता० । इसीमें दृष्टान्तदेतेहैं कि जैसे ऋतुके पर्यय (अपने २ समय) में ऋतु (वसंतआदि) ऋतुके चिह्न (जैसे वसंतमें आमके फूल) को स्वयं एव प्राप्त होजातीहैं—तिसी प्रकार देहधारी भी हिंसक आदि अपने २ कर्मों को स्वयमेव प्राप्त हो जातेहैं ३० ॥

लोकानांतुविवृद्ध्यर्थंमुखबाहूरुपादतः । ब्राह्मणंक्षत्रियंवैश्यंशूद्रंचनिरवर्तयत् ३१ ॥

प० । लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयत् ॥

यो० । लोकानांविवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः ब्राह्मणं-क्षत्रियं-वैश्यं-चपुनः शूद्रं (ब्रह्मा क्रमेण) निरवर्तयत् (निर्मितवान्) ॥

भा० । ब्रह्माने ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्य—और शूद्रोंको मुख बाहु जंघा—और चरणों से क्रम से रचा ॥

ता० । ब्रह्माने भूआदि लोकों की भलीप्रकार वृद्धि के लिये मुख—भुजा—जंघा—औरचरणों से ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्य और शूद्र क्रमसे रचे क्योंकि ब्राह्मण आदि सायंकाल और प्रातःकाल के समय अग्निमें जो आहुतिदेतेहैं वह सूर्यको मिलतीहै और सूर्यसे वर्षाहोतीहै और वर्षासे अन्नहोताहै और अन्नसे प्रजाकी उत्पत्ति वा-पालन—होताहै—और इस श्रुति (ब्राह्मणोस्यमुखमासीद्बाहूराजन्यःकृतःऊरूतद्वैश्यःपद्भ्यांशूद्रो अजायत) का भी यही आशयहै जो इस श्लोक में मनुजीने कहाहै—इससे दैवी शक्तिसे ब्राह्मण आदिके रचनेकी शंका नहींकरनी ३१ ॥

द्विधाकृत्वात्मनोदेहमर्द्धेनपुरुषोऽभवत् । अर्द्धेननारीतस्यांसविराजमसृजत्प्रभुः ३२ ॥

प० । द्विधा कृत्वा आत्मनः देहं अर्द्धेन पुरुषः अभवत् अर्द्धेन नारी तस्यां सः विराजं असृजत् प्रभुः ॥

टी० । स (ब्रह्मा) आत्मनः देहं-द्विधा कृत्वा अर्द्धेन (देहेन) पुरुषः अभवत् अर्द्धेन नारी अभवत् तस्यां (भार्यायां) प्रभुः (ब्रह्मा) विराजं असृजत ॥

भा०। ब्रह्मा अपनेदेहके दोटुकड़ेकरके आधेसेपुरुष और आधेसे स्त्रीहुये और उसस्त्रीमें ब्रह्मा ने विराट्है नाम जिसका ऐसे पुरुषको पैदाकिया ॥

ता० ।वह ब्रह्मा अपनेदेहको दोप्रकारका करके आधेदेहसे पुरुषहुये और आधेसे स्त्री होतेभये और उस स्त्रीके बिषे मैथुनधर्म से ब्रह्माने विराट् है नाम जिसका ऐसे पुरुषको रचा क्योंकि इसश्रुति (ततो विराडजायत) में भी लिखाहै कि तिससे विराट् उत्पन्नहुआ ३२ ॥

तपस्तप्त्वासृजद्यंतुसस्वयंपुरुषोविराट् । तंमांवित्तास्यसर्वस्यस्रष्टारंद्विजसत्तमाः ३३ ॥

प० । तपः तप्त्वा असृजत् यं तु सः स्वयं पुरुषः विराट् तं मां वित्त अस्य स्रष्टारं द्विजसत्तमाः ॥

टी० । सः विराट् पुरुषः यं तपः तप्त्वा स्वयं असृजत्--हेद्विजसत्तमाः अस्यसर्वस्य स्रष्टारं तं मां यूयं वित्त (जानीत) ॥

भा० । उसविराट् पुरुष ने तपकरके जिसको स्वयं रचा इससबजगत्के रचनेवाले मुझकोही हे द्विजोंमें श्रेष्ठो उसे तुम जानो ॥

ता० । विराट् है नाम जिसका ऐसा वह पुरुष तपको करके जिसको रचताभया--हे द्विजोंमें उत्तमो--इस सबजगत्के रचनेवाले मुझ (मनु) को वही तुमजानो--इससे मनुजीने अपनेजन्म की बड़ाई और सामर्थ्य की अधिकता वर्णन इसलिये की है कि लोकोंको प्रतीति होजाय ३३ ॥

अहंप्रजाःसिसृक्षुस्तुतपस्तप्त्वासुदुश्चरम्।पतीन्प्रजानामसृजंमहर्षीनादितोदश ३४ ॥

प० । अहं प्रजाः सिसृक्षुः तु तपः तप्त्वा सुदुश्चरम् पतीन् प्रजानां असृजं महर्षीन् आदितः दश ॥

टी० । प्रजाः सिसृक्षुः अहं सुदुश्चरं तपस्तप्त्वा प्रजानांपतीन् दशमहर्षीन् आदितः असृजम् ॥

भा० । प्रजारचने की है इच्छा जिसकी ऐसे मैंने बड़ेभारी तपको करके पहिले प्रजाके पति दशमहर्षि रचे ॥

ता० । प्रजाओंके रचनेकी है इच्छा जिसकी ऐसा मैं बड़ाभारी तपकरके प्रथम प्रजाकेपति दशमहर्षियों को रचताभया--अर्थात् मैंने वे दशरचे और उन्होंने और यक्षआदिरचे--इसीसे उनकोभी प्रजा के पति कहते हैं ३४ ॥

मरीचिमत्र्यङ्गिरसौपुलस्त्यंपुलहंक्रतुम् । प्रचेतसंवसिष्ठंचभृगुंनारदमेवच ३५ ॥

प० । मरीचिं अत्र्यंगिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुं प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं नारदं एव च ॥

टी० । अहं--मरीचिं--अत्र्यंगिरसौ--पुलस्त्यं--पुलहं--क्रतुं--प्रचेतसं--वशिष्ठं--भृगुं--चपुनः नारदं--असृजम् ॥

भा० । मरीचिआदि दशमहर्षि मैंने पहिले रचे ॥

ता० । पिछले श्लोक में जो दशमहर्षि कहेहैं वेही दशोंनाम ले२कर इसश्लोकमें गिनादिये हैं अर्थात् मरीचिः १ अत्रि २ अंगिराः ३ पुलस्त्य ४ पुलह ५ क्रतु ६ प्रचेताः ७ वशिष्ठ ८ भृगु ९ नारद १० ये दशमहर्षि मैंने प्रथमरचे ३५ ॥

एतेमनूंस्तुसप्तान्यानसृजन्भूरितेजसः । देवान्देवनिकायांश्चमहर्षींश्चामितौजसः ३६ ॥

प० । एते मनून् तु सप्त अन्यान् असृजन् भूरितेजसः देवान् देवनिकायान् च महर्षीन् च अमितौजसः ॥

अ० । एते मनून् तुपुनः भूरितेजसः अन्यान् सप्त देवान् देवनिकायान् चपुनः अमितौजसः महर्षीन् असृजन् ॥

भा० । ये दशों महर्षि, मनु और इन्द्रआदि बड़े तेजवाले सातों—और देवता—और देवताओं के स्थान—और बड़े तेजवाले महर्षियों को रचतेभये ॥

ता० । ये दशों महर्षि मनुओं को और बड़े तेजवाले अन्य सातों और देवों—और देवताओं के स्थानों—और महर्षियोंको रचतेभये—इस श्लोकमें मनुशब्द अधिकारका वाचीहै अर्थात् चौदहमन्वंतरों में जिसको जहां अधिकार होता है वही इसमन्वंतर में स्वायंभुव—स्वारोचिष—आदि नाम से मनु कहा जाता है ३६ ॥

यक्षरक्षःपिशाचांश्चगन्धर्वाप्सरसोऽसुरान् । नागान्सर्पान्सुपर्णांश्चपितॄणांचपृथग्गणान्

प० । यक्षरक्षःपिशाचान् च गन्धर्वाप्सरसः असुरान् नागान् सर्पान् सुपर्णान् च पितॄणां च पृथग् गणान् ॥

अ० । एतेमरीच्यादयएव यक्षरक्षःपिशाचान् चपुनः गन्धर्वाप्सरसः असुरान् नागान् सर्पान् सुपर्णान् पितॄणां च पृथग्गणान् असृजन् ॥

भा० । इन्हीं मरीचि आदि दशोंने—कुबेर—रावणआदि—और पिशाच चित्ररथआदि गंधर्व—उर्वशी आदि अप्सरा—और विरोचनआदि असुर—वासुकिआदिनाग और सर्प—और गरुड़आदि और पितरों के पृथक् २ समूह—को रचा ॥

ता० । इस श्लोकमें और अगले दोनों श्लोकोंमें भी (एते असृजन) ये दोनोंही पिछले श्लोक केही कर्ता और क्रियासम्बन्ध करलेने--यक्ष (कुबेर) और उसके अनुचर राक्षस (रावणआदि) और पिशाच जो रावणादिकोंसे निकृष्टहैं और अशुद्ध मरुदेशमें रहतेहैं—गंधर्व (चित्ररथआदि) अप्सरा (उर्वशीआदि) असुर(विरोचनआदि) नाग (वासुकिआदि)सर्प (जो वासुकिआदि से निकृष्ट हैं और जिनकोअलगर्द आदि कहते हैं) सुपर्ण (गरुड़आदि) और आज्यपआदि पितरों के गण (समूह) और इनका जो इतिहास आदि में प्रसिद्ध भेदहै कुछ प्रत्यक्ष नहींहै—इन सबको भी ये मरीचिआदि दशों ऋषिही रचतेभये ३७ ॥

विद्युतोऽशनिमेघांश्चरोहितेन्द्रधनूंषिच । उल्काश्निर्घातकेतूंश्चज्योतींष्युच्चावचानिच३८

प० । विद्युतः अशनिमेघान् रोहितेन्द्रधनूंषि च उल्कानिर्घातकेतून् च ज्योतींषि उच्चावचानि च ॥

अ० । विद्युतः अशनिमेघान् चपुनः रोहितेन्द्रधनूंषि चपुनः उल्कानिर्घातकेतून् चपुनः उच्चावचानि ज्योतींषि एते एव दश मरीचि आदयः असृजन् ॥

भा० । बिजली—वज्र—मेघ—रोहित—इन्द्रकाधनुष—उल्का—निर्घात—केतु (पूंछवालातारा) और जो छोटे बड़े तारेहैं--इनको भी मरीचिआदि दशमहर्षियोंनेही रचा ॥

ता०।विद्युत् (मेघोंमें जो लम्बीज्योति दीखतीहै) अशनि (मेघोंमेंसेही निकसकर जो ज्योति वृक्ष आदि को नष्ट कर देती है) मेघ (बादल) रोहित (दण्ड के समान) जो अनेक रंग का आकाशमें दीखे) उसे इन्द्रधनु कहतेहैं—उल्का (रेखाके समान जो आकाशसे ज्योतिगिरतीहै) निर्घात (जो भूमि वा अन्तरिक्ष में उत्पातका शब्दहो) केतु (शिखावाले और उत्पातरूप जो तारागण) और अन्य जो छोटे बड़े ध्रुव अगस्त्य आदि नानाप्रकारके हैं इनको भी उक्त महर्षि मरीचि आदिकोंनेही रचा ३८ ॥

किन्नरान्वानरान्मत्स्यान्विविधांश्चविहङ्गमान्पशून्मृगान्मनुष्यांश्चव्यालांश्चोभयतोदतः

प० । किन्नरान् वानरान् मत्स्यान् विविधान् च विहंगमान् पशून् मृगान् मनुष्यान् च व्यालान् च उभयतोदतः ॥

यो० । किन्नरान्--वानरान्-मत्स्यान्--चपुनः विविधान्-विहंगमान्--पशून् मृगान्-चपुनः मनुष्यान्-व्यालान्-चपुनः उभयतोदतः एते मरीचि आदयो दशपत्र असृजन् ॥

भा० । किन्नर—वानर—मत्स्य—पक्षी--गोआदि पशु—मृग—सिंहआदिव्याल और दोनों ओर दांतोंवाले जीव भी मरीचिआदि दशोंनेही रचे ॥

ता० । किन्नर वे होतेहैं जो देवयोनि में हों परन्तु देह मनुष्य के समानहो (अश्वमुख आदि वानर मत्स्य रोहित आदि विहंगम (पक्षी) पशु (गोआदि) मृग—व्याल (सिंहआदि) और उभयतोदत (जिनकेनीचे और ऊपर दोनोंओर दांतहों इनकोभी मरीचिआदि दशऋषियोंनेही रचा३९ ॥

कृमिकीटपतङ्गांश्चयूकामक्षिकमत्कुणम् । सर्वंचदंशमशकंस्थावरंचपृथग्विधम् ४० ॥

प० । कृमिकीटपतंगान् च यूकामक्षिकमत्कुणं सर्वं च दंशमशकं स्थावरं च पृथग्विधम् ॥

यो० । कृमिकीटपतंगान् चपुनः यूकामक्षिकमत्कुणं चपुनः सर्वं दंशमशकं चपुनः पृथग्विधं स्थावरजंगमं एते मरीच्यादयएव असृजन् ॥

भा० । कीड़े और कृमि और पतंग (शलभ) जूंएं—मक्खी--मच्छर—और सबडांस और मशक (बड़े २मच्छर) और भिन्न२ वृक्ष और लता आदि भेद से) स्थावर इनको भी मरीचि आदि दशमहर्षियोंनेही रचा ॥

ता० । कृमि—कीट (जो कृमियोंसे कुछ मोटेहोते हैं) पतंग (शलभ) यूका (जूंएं) मक्षिक (मक्खी) मत्कुण (छोटे२मच्छड़) और सम्पूर्णडांस और मच्छर और पृथक्२ भेद से स्थावर (वृक्षलतादि) इनको भी मरीचिआदि दशोंनेही रचा ४० ॥

एवमेतैरिदंसर्वंमन्नियोगान्महात्मभिः । यथाकर्मतपोयोगात्सृष्टंस्थावरजङ्गमम् ४१ ॥

प० । एवं एतैः इदं सर्वं मत् नियोगात् महात्मभिः यथाकर्मतपोयोगात् सृष्टं स्थावरजंगमं ॥

यो० । एवं एतैर्महात्मभिः मन्नियोगात् इदं सर्वं स्थावरजंगमं यथाकर्म तपोयोगात् सृष्टम् ॥

भा० । इसीप्रकार मेरीआज्ञा और अपने तपके बल से प्राणियों के कर्मों के अनुसारसम्पूर्ण स्थावर जंगमको इनमहात्माओं ने रचा ॥

भा० । इसउक्त प्रकार से इन मरीचिआदि ऋषियों ने मेरीआज्ञा से और अपने तपके बलसे यथाकर्म (कर्म के अनुसार) रचा अर्थात् जिसजंतु को जैसाकर्म था उसके अनुसारही उसको देवता तिरछीयोनि आदि में उत्पन्नकिया इस श्लोकमें तपोयोगात् इससे यह सूचनकिया कि सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य तपकेही आधीन है ४१ ॥

येषांतुयादृशंकर्मभूतानामिहकीर्तितम्। तत्तथावोऽभिधास्यामिक्रमयोगंचजन्मनि ४२

प० । येषां तु यादृशं कर्म भूतानां इह कीर्तितं तत् तथा वः अभिधास्यामि क्रमयोगं च जन्मनि ॥

यो० । तुपुनः इह तेषां भूतानां यादृशं कर्म कीर्तितम् तत् चपुनः जन्मनि क्रमयोगं तथा वः युष्माकं अभिधास्यामि॥

भा० । इस संसारमें जिन भूतों को जैसाकर्म पहिले आचार्योंने कहाहै उसीप्रकार उसकर्म को और जन्मके क्रमको मैं तुमको कहताहूं ॥

ता० । और जिन भूतों का जैसाकर्म इस संसार में पहिले आचार्यों ने कहाहै उसकर्म को और जन्म आदि के क्रमको मैं तुमको उसीप्रकार कहूंगा (जैसे औषधि उन्हेंकहतेहैं जो फलके पकनेतकरहें और जिनके फलफूल बहुतआवें)औरब्राह्मण.आदिकोंकेकर्म अध्ययनआदि ४२ ॥

पशवश्चमृगाश्चैवव्यालाश्चोभयतोदतः। रक्षांसिचपिशाचाश्चमनुष्याश्चजरायुजाः४३॥

प० । पशवः च मृगाः च एव व्यालाः च उभयतोदतः रक्षांसि च पिशाचाः च मनुष्याः च जरायुजाः

यो० । पशवः मृगाः व्यालाः उभयतोदतः – रक्षांसि – पिशाचाः चपुनः मनुष्याः एते जरायुजाः सन्तीतिशेषः ॥

भा० । पशुमृग–व्याल दोनों ओर दांतवाले–राक्षस–पिशाच और जेरसे पैदाहोने वाले मनुष्य ये जरायुज कहाते हैं ॥

ता० । पशु–मृग–व्याल–दोनोंओर दांतवाले–राक्षस–पिशाच और मनुष्य येजरायुजकहाते हैं। जरायु उस चर्मको कहतेहैं जिसमें गर्भलिपटा रहताहै और जिसमेंसेही पशु मनुष्यआदि प्रकटहोकर पैदाहोते हैं–पूर्व कहाहुआ भी इनके जन्मका क्रम इस प्रकार प्रकट किया है और इस श्लोक में दत्शब्द दन्तका बोधकहै ४३ ॥

अण्डजाःपक्षिणःसर्पानक्रामत्स्याश्चकच्छपाः। यानिचैवंप्रकाराणिस्थलजान्यौदकानिच

प० । अण्डजाः पक्षिणः सर्पाः नक्राः मत्स्याः च कच्छपाः यानि च एवंप्रकाराणि स्थलजानि औदकानि च ॥

यो० । पक्षिणः सर्पाः नक्राः कच्छपाश्च एवंप्रकाराणि यानि स्थलजानि औदकानिच अंडजाः संति (अंडादुत्पद्यन्त इतिभावः) ॥

भा० । अंडेसे उत्पन्न जो पक्षि सांप–नाके–मत्स्य और कछुवे–और करकेटा औरशंखआदि भी उन्हीं महात्माओंसे पैदाहुये ॥

ता० । पक्षि–सर्प–नक्र (नाका) मत्स्य और कछुवे और जो इसप्रकारके स्थल में पैदाहो-

तेहैं (करकेंटा) और जलमें पैदाहोतेहैं (शंख आदि) ये अंडजहैं जो पहिले अंडेमें पैदाहोकर उत्पन्नहोतेहैं ४४ ॥

स्वेदजंदंशमशकंयूकामक्षिकमत्कुणम्।उष्मणश्चोपजायन्तेयच्चान्यत्किंचिदीदृशम्॥४५॥

प० । स्वेदजं दंशमशकं यूकामक्षिकमत्कुणम् उष्मणः च उपजायंते यत् च अन्यत् किंचित् ईदृशं ॥

यो० । दंशमशकं यूकामक्षिकमत्कुणं यच्च अन्यत् ईदृशं किंचित् ईदृशं उष्मणः सकाशात् उपजायंते तत् स्वेदजम् ॥

भा० । दंश और मशक—यूका (जूं) मक्षिका—मत्कुण और जो अन्य इनके समान उष्मासे पैदा होताहै वह सब स्वेदज है ॥

ता० । पृथिवीसे पैदाहुये द्रव्योंमें जो तापसे क्लेदहै उसे स्वेदकहतेहैं तिससे दंश (डांस) और मशक (मच्छर) यूका—मक्खी—मत्कुण (भुनगे)—आदि पैदाहोतेहैं और जो अन्य दंश आदिके सदृश पुत्तिका—पिपीलिका (चेंटी) आदिहैं वेभी उष्मा (गरमी) से उत्पन्नहोतेहैं क्यों-कि उष्मा भी स्वेदकी उत्पत्तिका कारणहै सिद्धान्त यहहै कि सजीव पदार्थोंमें और इतरोंमें ताप से उत्पन्नहुये स्वेदसेउक्तजीव पैदाहोतेहैं क्योंकि स्वेदकीउत्पत्ति जड़ और चेतनदोनोंमेंहोतीहै ४५॥

उद्भिज्जाःस्थावराःसर्वेबीजकाण्डप्ररोहिणः।ओषध्यःफलपाकान्ताबहुपुष्पफलोपगाः४६

प० । उद्भिज्जाः स्थावराः सर्वे बीजकांडप्ररोहिणः ओषध्यः फलपाकांताः बहुपुष्पफलोपगाः॥

यो० । बीजकांडप्ररोहिणः सर्वेस्थावराः फलपाकान्ताः बहुपुष्पफलोपगाः ओषध्यश्च उद्भिज्जाः भवंतीतिशेषः ॥

भा० । बीज और भूमिको फोड़कर—बीजसे और शाखासे जो सब स्थावर पैदाहोतेहैं वे और फलके पकनेतकही रहनेवाली और बहुतपुष्प और फल जिनमेंहों ऐसी ओषधी उद्भिज्जकहातीहै ॥

ता० । ऊपर को अपने बीज और भूमिको जो भेदन (फोड़) कर पैदाहों उन्हें उद्भिज्जकह-तेहैं और वे वृक्ष दोप्रकार के होतेहैं कोई बीजसे पैदाहोतेहैं जैसे आम आदि—दूसरे शाखा के लगानेसेही वृक्षहोजातेहैं जैसे गुलाब आदि—और फल के पकने पर जिनका नाशहो ऐसीधान और जो आदि ओषधी कहाती है और ये ओषधी बहुतफूल और फलोंसे संयुक्त होतीहैं ४६ ॥

अपुष्पाःफलवन्तोयेतेवनस्पतयःस्मृताः।पुष्पिणःफलिनश्चैववृक्षास्तूभयतःस्मृताः४७

प० । अपुष्पाः फलवन्तः ये ते वनस्पतयः स्मृताः पुष्पिणः फलिनः च एव वृक्षाः तु उभ-यतः स्मृताः ॥

यो० । ते अपुष्पाः फलवन्तः ये वनस्पतयः स्मृताः अन्ये पुष्पिणः फलिनश्च स्मृताः इमे उभयतः (उभये) वृक्षाः स्मृताः (कथिताः) ॥

भा० । जो वनस्पति हैं वे पुष्प के बिना फलवाली होतीहैं और इतर पुष्पआनेपर फल देती हैं ये दोप्रकारके वृक्ष कहे हैं ॥

ता० । इस श्लोक से वृक्षोंकी संज्ञा नहीं जताई क्योंकि संज्ञाका प्रकरण नहीं है किंतु (क्रम योगंचजन्मनि) इससे क्रम वर्णन किया है—जो वनस्पति हैं उनमें फूल के बिनाही फल की

उत्पत्ति होतीहै जैसे गूलर पिलखन आदि—और इतर स्थावर प्रथम पुष्प आने पर फलवाले होतेहैं जैसे आम—जामन आदि ये दोनोंप्रकार के वृक्ष कहेहैं ४७ ॥

गुच्छगुल्मंतुविविधंतथैवतृणजातयः। बीजकाण्डरुहाण्येवप्रतानावल्ल्यएवच ४८ ॥

प० । गुच्छगुल्मं तु विविधं तथा एव तृणजातयः बीजकांडरुहाणि एव प्रतानाः वल्ल्यः एव च ॥

यो० । तुपुनः विविधं गुच्छगुल्मं तथैव तृणजातयः प्रतानाः चपुनः वल्ल्यः बीजकांडरुहाणि एव भवंतीतिशेषः ॥

भा० । अनेकप्रकार के गुच्छे और गुल्म और तृणोंकीजाति और प्रतान और वल्ली ये सब बीज और अपनी शाखा के लगानेसे पैदाहोतेहैं ॥

ता० । जिनमें जड़सेही लताओं का समूह हो और शाखा न हों वे गुच्छकहातेहैं जैसे चमेली आदि और जिनमें एकही जड़ से बहुत से समूह शाखाओं के हों वे गुल्म कहातेहैं जैसे शरकंडे और ईखआदि—और उलप आदि तृणोंकी जाति—और प्रतान वे कहातेहैं जिनमें तंतुओंकेसमूहहों और उनतंतुओंसे किसी न किसी वृक्ष आदि पर लिपटकर फैलतेहैं जैसे तोंबा और तोरी आदि—और जो भूमि में पैदाहोकर वृक्ष पर चढ़जायँ वे वल्ली कहाती हैं जैसे गिलोहआदि—ये सब बीज और कांड (शाखा) से पैदाहोनेवाले हैं ४८ ॥

तमसावहुरूपेणवेष्टिताःकर्महेतुना । अन्तःसंज्ञाभवन्त्येतेसुखदुःखसमन्विताः ४९ ॥

प० । तमसा बहुरूपेण वेष्टिताः कर्महेतुना अन्तःसंज्ञाः भवन्ति एते सुखदुःखसमन्विताः ॥

यो० । कर्महेतुना बहुरूपेण तमसा वेष्टिताः सुखदुःखसमन्विताः एते अन्तःसंज्ञा भवन्ति ॥

भा० । पूर्वजन्म में किये अधर्म से पैदाहुये अनेक प्रकार के तमोगुणसे और सुख वा दुःखसे संयुक्त ये वृक्षादिक अन्तःसंज्ञा (भीतरी ज्ञानवाले) होतेहैं ॥

ता० । ये पूर्वोक्त वृक्षादिक विचित्र दुःख है फलजिसका ऐसे पूर्वजन्म के अधर्म से पैदाहुये अनेकप्रकारके तमोगुण से व्याप्त और सुख और दुःखसे संयुक्तहोकर अन्तरात्मामेंही चेतनहोतेहैं यद्यपि सबही अन्तरात्मा में चेतनहोतेहैं तथापि इतर मनुष्यादि वहिःभी व्यापारवालेहोते हैं और ये नहींहोते इससे इनको अन्तश्चैतन्य कहाहै और यद्यपि सब संसार सत्त्व—रजः तमः इनतीनों गुणों से उत्पन्न है तथापि इनमें तमोगुणकी अधिकता से तमोगुणसे व्याप्तकहते हैं और इसीसे ये सुख और दुःख दोनोंसे संयुक्तहोते हैं क्योंकि मेघकेजल के संबंध से सत्त्वगुण के फलसुखकाभी अनुभव इनको कदाचित् होता है ४९ ॥

एतदन्तास्तुगतयोब्रह्माद्याःसमुदाहृताः। घोरेऽस्मिन्भूतसंसारेनित्यंसततयायिनि ५० ॥

प० । एतदन्ताः तु गतयः ब्रह्माद्याः समुदाहृताः घोरे अस्मिन् भूतसंसारे नित्यं सततयायिनि ॥

यो० । नित्यं सततयायिनि घोरे अस्मिन् भूतसंसारे ब्रह्माद्याः एतदंताः गतयः समुदाहृताः (मनुनेतिशेषः) ॥

भा० । सदैव नाशवाले और भयानक इसप्राणियों के संसार में ब्रह्मासे स्थावर पर्यन्तकी यह उत्पत्ति मनुजीने कही ॥

ता० । ब्रह्मासे आदि लेकर स्थावरपर्यन्त ये गति (उत्पत्ति) भूतों के जन्म और मरण

देनेवाले और दुःखदेनेसे भयानक और सदैव विनश्वर (नाशमान) इससंसारमें मनुजीने कही हैं—यद्यपि संसार में सांसारिकसुखभीहै तथापि वह सुखभी दुःखसेसाध्य (उत्पन्न) होनेसे दुःखरूपहीहै इससे इसजगत्को घोर कहतेहैं ५० ॥

एवंसर्वंसस्रृष्ट्वेदंमांचाचिन्त्यपराक्रमः । आत्मन्यन्तर्दधेभूयःकालंकालेनपीडयन् ५१ ॥

प० । एवं सर्वं सः सृष्ट्वा इदं मां च अचिंत्यपराक्रमः आत्मनि अन्तः दधे भूयः कालं कालेन पीडयन् ॥

यो० । अचिंत्यपराक्रमः सः (ब्रह्मा) इदंसर्वं (स्थावरजंगमं) चपुनः मां सृष्ट्वा कालेन कालं पीडयन् सन् भूयः आत्मनि अन्तर्दधे ॥

भा० । चिंताकरने के अयोग्य है पराक्रम जिसका ऐसा और सृष्टिके समयको प्रलयके समय से नष्टकरताहुआ वह ब्रह्मा फिर आत्मा के विषे अन्तर्द्धान होताभया ॥

ता० । इसउक्तप्रकार से इससम्पूर्ण स्थावर जंगम जगत्को रचकर नहींचिंतनकरनेयोग्य है शक्ति जिसकी ऐसा वहप्रजापति सृष्टि के समयको प्रलयके समय से नाशकरताहुआ अर्थात् प्राणियों के कर्मोंके आधीनहोकर सृष्टि के समय का अभाव और प्रलयके समय का प्रादुर्भाव करताहुआ आत्मा (चैतन्यपरब्रह्म) में अंतर्द्धान (अपने शरीरका त्याग) करताभया निदान सब ब्रह्मांडकोरचकर अपने देहको कारण ब्रह्ममें लीनकरताभया क्योंकि कार्योंका कारणमें जो लीन होजाना उसीको नाशकहते हैं ५१ ॥

यदासदेवोजागर्तितदेदंचेष्टतेजगत् । यदास्वपितिशान्तात्मातदासर्वंनिमीलति ५२ ॥

प० । यदा सः देवः जागर्ति तदा इदं चेष्टते जगत् यदा स्वपिति शांतात्मा तदा सर्वं निमीलति ॥

यो० । स देवः (ब्रह्मा) यदा जागर्ति तदा इदं जगत् चेष्टते—शांतात्मा स यदा स्वपिति तदा सर्वं निमीलति ॥

भा० । वह ब्रह्मा जब जागताहै तब यहजगत् चेष्टाकरताहै और जब शांतरूपहोकर वहसोता है तब यहजगत भी प्रलय को प्राप्तहोताहै ॥

ता० । वह प्रजाओं का पति ब्रह्मा जब जागताहै अर्थात् जगत्कीसृष्टि और पालनाकीइच्छा करताहै तब यह जगत् भी चेष्टाको प्राप्तहोताहै अर्थात् श्वास—भोजन—गमनआदि व्यापारोंको करता है और शांत संहारवाला है मन जिसका ऐसा वह ब्रह्मा जब सोताहै अर्थात् रचने और पालने की इच्छाका परित्याग करताहै तब सम्पूर्णजगत् प्रलयको प्राप्तहोजाताहै—तात्पर्य यह है कि ब्रह्माका व्यापारही जगत्की चेष्टा का कारण है ५२ ॥

तस्मिन्स्वपतिसुस्थेतुकर्मात्मानःशरीरिणः । स्वकर्मभ्योनिवर्तन्तेमनश्चग्लानिमृच्छति

प० - तस्मिन् स्वपति तु सुस्थे कर्मात्मानः शरीरिणः स्वकर्मभ्यः निवर्तते मनः च ग्लानिं ऋच्छति ॥

यो० । तस्मिन् सुस्थे स्वपति सति कर्मात्मानः शरीरिणः स्वकर्मभ्यः निवर्तन्ते चपुनः मनः ग्लानिं ऋच्छति ॥

भा० । उस प्रजापतिके देह-मनके व्यापार छोड़ने और इच्छाके त्यागनेपर कर्मोंकेअनुसार मिलेहैं देह जिनको ऐसे जीवभी अपने २ कर्मों से निवृत्त होजातेहैं और मनभी संकल्प विकल्प रूप वृत्तिसे रहित होजाता है ॥

भा० । त्यागदिया है देह और मनका व्यापार जिसने ऐसे उस प्रजापति को छोड़दीहै इच्छा जिसने ऐसा होतसन्ते कर्मों के अनुसार प्राप्तहुयेहैं देहजिनको ऐसे देहधारी जीवभी अपनेकर्मों (देहधारनाआदि) से निवृत्त होजाते हैं और सम्पूर्ण इंद्रियों सहित मनभी ग्लानिको प्राप्तहोता है अर्थात् अपनी संकल्प विकल्प रूप वृत्तिसे रहित होजाताहै ५३ ॥

युगपत्तुप्रलीयन्तेयदातस्मिन्महात्मनि । तदायंसर्वभूतात्मासुखंस्वपितिनिर्वृतः ५४ ॥

प० । युगपत् तु प्रलीयंते यदा तस्मिन् महात्मनि तदा अयं सर्वभूतात्मा सुखं स्वपिति निर्वृतः ॥

टी० । यदा तस्मिन् महात्मनि युगपत् (सर्वभूतानि) प्रलीयन्ते तदासर्वभूतात्मा अयं (ब्रह्मा) निर्वृतः सन् सुखं यथास्यात्तथा स्वपिति ॥

भा० । उस महात्मा परमेश्वर में जब एकहीबार सबभूत प्रलयको प्राप्तहोते हैं तब यह सब भूतोंकी आत्मा यह परमात्मा प्रसन्नतासे सुखपूर्वक सोताहै ॥

भा० । अब महाप्रलय का वर्णन करतेहैं-एकहीकाल में जब उसमहात्मा परमात्मा में संपूर्ण भूत प्रलयको प्राप्तहोते हैं तब सबभूतों का आत्मा यह परमात्मा जाग्रत् और स्वप्नके व्यापारको छोड़कर सुखसे सोने के समान होताहै यद्यपि नित्यज्ञान आनन्दरूप उस परमात्मामें प्रसन्नहोकर सुखसेसोनेका असंभवहै तथापि यहजीवकाधर्म (सोना) परमात्मामें मानकरकहाहै ५४ ॥

तमोऽयंतुसमाश्रित्यचिरंतिष्ठतिसेन्द्रियः । नचस्वंकुरुतेकर्मतदोत्क्रामतिमूर्तितः ५५ ॥

प० । तमः अयम् तु समाश्रित्य चिरं तिष्ठति सेंद्रियः न च स्वं कुरुते कर्म तदा उत्क्रामति मूर्तितः ॥

टी० । अयं (जीवः) तमः समाश्रित्य चिरंसेन्द्रियः तिष्ठति स्वंकर्म नच कुरुते तदा मूर्तितः उत्क्रामति ॥

भा० । यह जीव ज्ञानके नाश से बहुत काल तक इंद्रियों से युक्त रहता है परन्तु अपनेश्वास लेना आदि कर्मोंको नहीं करता तब इस देहसे अन्यत्र जाता है ॥

भा० । अब प्रलय के प्रसंगसे दो श्लोकोंसे जीव का उत्क्रमण (मरण) वर्णन करतेहैं कि यह जीव जब तम (ज्ञानकी निवृत्ति) को प्राप्तहोकर बहुत काल तक इंद्रियादि सहित रहता है और अपने कर्मों (श्वास प्रश्वास आदि) को नहीं करता तब मूर्ति (पूर्व देह) से अन्य देहमें जाताहै-लिंग शरीर विशिष्ट जीव के अन्य देहमें जानेसे जीव का भी अन्यत्रगमन कहनाठीक है सोई इस वृहदारण्यककी श्रुति+तमुत्क्रामंतंप्राणोनूत्क्रामति प्राणमनूत्क्रामंतंसर्वे प्राणाअनूत्क्रामंति+में कहाहै कि उस जीवात्मा के अन्य देहमें जाने पर प्राण जाताहै और प्राणके जाने पर सब इंद्रिय अन्यत्र जातीहैं अर्थात् सब इंद्रिय अपने २ विषयों को ग्रहण नहीं करती ५५ ॥

यदाणुमात्रिकोभूत्वाबीजंस्थास्नुचरिष्णुच।समाविशतिसंसृष्टस्तदामूर्तिंविमुञ्चति ५६॥

प०। यदा अणुमात्रिकः भूत्वा बीजं स्थास्नु चरिष्णु च समाविशति सं सृष्टः तदा मूर्त्तिं विमुंचति॥

यो०। यदा – जीव – अणुमात्रिको भूत्वा स्थास्नु चरिष्णुच बीजं समाविशति तदा संसृष्टः सन् मूर्तिं विमुंचति॥

भा०। जब जीवात्मा पुर्यष्टकसे युक्तहोकर स्थावर और जंगमके बीजमें प्रविष्टहोताहै तब पूर्वोक्त आठ पुर्यष्टक युक्तहुआ अपने कर्मानुसार देहांतरको धारताहै॥

ता०। कब अन्यदेहको ग्रहणकरताहै यह वर्णनकरतेहैं कि जब अणुहैं मात्रा पुर्यष्टक रूप जिसकी ऐसाहोकर स्थास्नु (वृक्ष आदि) और चरिष्णु (मनुष्य आदि) के हेतुरूप बीजमें प्रविष्टहोताहै तब पुर्यष्टक सहित यहजीवात्मा अपने कर्मोंके अनुसार अन्य स्थूलदेहको ग्रहणकरताहै–इस श्लोकमें अणुमात्रा शब्दसे पुर्यष्टकलेतेहैं और वे पुर्यष्टक सनंदन मुनिने ये कही हैं कि भूत–इंद्रिय–मन–बुद्धि–वासना–कर्म–प्राण–और अविद्या ये आठ ऋषियों ने * पुर्यष्टककहींहैं–और+ब्रह्म पुराणमें भी कहाहै कि प्राण आदि पुर्यष्टक रूप प्राण आदि लिंगदेहसे वह जीवात्मा युक्तहोताहै जो जीवात्मा उस लिंग शरीरमें बद्धहै उसे बंधनहै और जो उससे मुक्तहै उसे मोक्षहै ५६॥

एवंसजाग्रत्स्वप्नाभ्यामिदंसर्वंचराचरम्। संजीवयतिचाजस्रंप्रमापयतिचाव्ययः ५७॥

प०। एवं सः जाग्रत्स्वप्नाभ्यां इदं सर्वं चराचरं सं जीवयति च अजस्रं प्रमापयति च अव्ययः॥

यो०। एवं अव्ययः सब्रह्मा जाग्रत्स्वप्नाभ्यां इदं सर्वं चराचरं अजस्रं (निरंतरं) संजीवयति चपुनः प्रमापयति॥

भा०। वह ब्रह्मा इसप्रकार जाग्रत् और स्वप्नावस्थासे इस चराचर जगत्को निरंतर पैदाकरताहै और मारताहै॥

ता०। प्रसंगसे वर्णनकियेहुये जीवके मरणको कहकर प्रस्तुतको समाप्तकरतेहैं कि वह अविनाशी ब्रह्मा इसप्रकार अपनी जाग्रत् और स्वप्न अवस्थाओंसे इस स्थावर और जंगम रूप जगत् को निरंतर भलीप्रकार जीवाताहै और मारताहै सिद्धांत यहहै कि ब्रह्माकी जाग्रत् अवस्था में जगत्की उत्पत्ति और स्वप्न अवस्थामें जगत्का मरणहोताहै ५७॥

इदंशास्त्रंतुकृत्वासौमामेवस्वयमादितः।विधिवद्ग्राहयामासमरीच्यादींस्त्वहंमुनीन् ५८

प०। इदं शास्त्रं तु कृत्वा असौ मां एव स्वयं आदितः विधिवत् ग्राहयामास मरीच्यादीन् तु अहं मुनीन्॥

यो०। तुपुनः असौ ब्रह्मा इदं शास्त्रंकृत्वा आदितः मां एव स्वयं विधिवत् ग्राहयामास अहं तु मरीच्यादीन् मुनीन (ग्राहयामास)॥

* भूतेंद्रियमनोबुद्धिवासनाकर्मवायवः अविद्याचाष्टकंप्रोक्तं पुर्यष्टमृषिसत्तमैः १॥

+ पुर्यष्टकेनलिंगेन प्राणाद्येनसयुज्यते तेनबद्धस्यवैबंधो मोक्षोमुक्तस्यतेनतु २॥

भा० । उन ब्रह्माने स्वयं इस शास्त्रको रचकर प्रथम विधिसे मुझेपढ़ाया और मैंने मरीचि आदि मुनियों को पढ़ाया ॥

ता० । वह ब्रह्मा इस शास्त्रको रचकर सृष्टिकी आदिमें मुझेही विधिपूर्वक (प्रथमव्याकरण आदि छः अंगों के पढ़ाने के अनंतर) पढ़ाताभया और मैंने मरीचि आदि मुनियों को पढ़ाया इसमें यहशंका होती है कि यदि ब्रह्माने इस शास्त्रको रचा तो मनु इसका नाम कैसे हुआ—इसका समाधान मेधातिथिने यह दियाहै कि शास्त्रपद से विधि निषेध रूप शास्त्रका प्रयोजनलेते हैं उसको ब्रह्माने मनुकोपढ़ाया और मनुने उसका जनानेवाला शास्त्ररचा—और कोई यहसमाधान देतेहैं कि मनुनेही सबसे पहिले स्वरूप और अर्थ से मरीचिआदिकों को पढ़ाया है इससे इसको मनु कहतेहैं—हम (उल्लूकभट्ट) तो यह कहते हैं कि—ब्रह्मा ने एकलक्ष इसशास्त्र को रचकरि मनुको पढ़ाया और मनुजी ने अपने कथन से संक्षेप करके अपने मरीचि आदि शिष्यों के प्रति कहा इससे कोई भी विरोध नहीं है इसी से नारदमुनि ने कहा है * सौ सहस्र का यह ग्रन्थ है ऐसा कहतेहैं—सिद्धान्त यहहै कि यह छोटासा ग्रन्थ एकलक्ष मेंसे मनुजी ने संग्रहकिया है इससे मनु कहतेहैं ५८ ॥

एतद्वोऽयंभृगुःशास्त्रंश्रावयिष्यत्यशेषतः । एतद्धिमत्तोऽधिजगेसर्वमेषोऽखिलंमुनिः ५९॥

प० । एतत् वः अयं भृगुः शास्त्रं श्रावयिष्यति अशेषतः एतत् हि मत्तः अधिजगे सर्वं एषः अखिलम् मुनिः ॥

यो० । अयं भृगुः एतत् शास्त्रं वः (युष्माकं) अशेषतः श्रावयिष्यति हि (यतः) एषः मुनिः एतत् सर्वं अखिलं मत्तः मत्सकाशात् अधिजगे (अधीतवान्) ॥

भा० । जिससे इस सम्पूर्ण शास्त्रको भृगुने मेरे सकाश से इस भृगुमुनि ने पढ़ा है इससे यह भृगु इस सम्पूर्णशास्त्रको तुमको सुनावेगा ॥

ता० । यह भृगु इस सम्पूर्ण शास्त्रको तुमको सुनावेगा क्योंकि यह मुनि इस संपूर्ण शास्त्रको मुझसे यथावत् पढ़ाहै इस श्लोक में—सर्व अखिल—दो पद सम्पूर्ण के वाचक नहीं समझने किन्तु सर्व शब्द से सम्पूर्ण और अखिलशब्द से न्यूनतारहित समझलेना—इस से अर्थ और शब्द की न्यूनतारहित इस सम्पूर्ण शास्त्रको भृगु ने मुझसे पढ़ा है ५९ ॥

ततस्तथासतेनोक्तोमहर्षिर्मनुनाभृगुः । तानब्रवीदृषीन्सर्वान्प्रीतात्माश्रूयतामिति ६० ॥

प० । ततः तथा सः तेन उक्तः महर्षिः मनुना भृगुः तान् अब्रवीत् ऋषीन् सर्वान् प्रीतात्मा श्रूयताम् इति ॥

यो० । ततः सः महर्षिः भृगुः तेन मनुना तथा उक्तः प्रीतात्मा सन् तान्सर्वान् ऋषीन् श्रूयताम् इति अब्रवीत् ॥

भा० । तिसप्रकार उस मनुने कहाहै जिसको ऐसा वह महर्षि भृगु प्रसन्नचित्त होकर उन सम्पूर्ण ऋषियों के प्रति सुनो यह बोले ॥

* नारदःशतसाहस्रोयं ग्रंथइतिस्मरंतिस्म ॥

ता० । उस मनुने महर्षि भृगुको जब यह कहा कि इस भृगुने मुझसे सबपढ़ा है इससे तुम को यह सम्पूर्ण सुनावेगा तिसके अनन्तर इस कारण प्रसन्नचित्त होकर—कि अनेक मुनियों की संनिधि में गुरुजी ने मेरी प्रशंसा की—उन सम्पूर्ण ऋषियों के प्रति सुनो यह वचन बोले ६० ॥

स्वायंभुवस्यास्यमनोःषड्वंश्यामनवोऽपरे । सृष्टवन्तःप्रजाःस्वाःस्वामहात्मानोमहौजसः

प० । स्वायंभुवस्य अस्य मनोः षट् वंश्याः मनवः अपरे सृष्टवन्तः प्रजाः स्वाः स्वाः महात्मानः महौजसः ॥

यो० । अस्य स्वायंभुवस्य मनोः वंश्याः महात्मानः महौजसः अपरे षट्मनवः स्वाःस्वाः प्रजाः सृष्टवन्तः—

भा० । ब्रह्माकेपुत्र इसमनुकेवंशमें होनेवाले महात्मा और तेजवाले अन्य छः मनुभी अपनी२ प्रजाओंको पैदाकरतेभये ॥

ता० । स्वायंभुव स्वयंभू (ब्रह्मा) के पुत्र इस मनुके वंशमें होनेवाले और महात्मा और बड़े तेजवाले अन्य जो छःमनु वे भी अपने २ समयमें सृष्टि और पालनामें अधिकारको प्राप्तहोकर अपनी२ प्रजाओंको पैदाकरतेभये—इससे मनुजीका यह प्रताप सूचितकिया कि जिनकी संतान भी प्रजाके पालने में समर्थ हुई ६१ ॥

स्वारोचिषश्चोत्तमश्चतामसोरैवतस्तथा । चाक्षुषश्चमहातेजाविवस्वत्सुतएवच ६२ ॥

प० । स्वारोचिषः च उत्तमः च तामसः रैवतः तथा चाक्षुषः च महातेजाः विवस्वत्सुतः एव च ॥

यो० । स्वारोचिषः १ चपुनः उत्तमः २ तामसः ३ तथा रैवतः ४ चपुनः चाक्षुषः ५ चपुनः महातेजाः विवस्वत्सुतः ६ - (एते षट् स्वाः स्वाः प्रजाः सृष्टवन्तः इत्यर्थः) ॥

भा० । ता० । स्वारोचिष—उत्तम—तामस—रैवत—चाक्षुष और बड़े तेजवाले विवस्वत् (सूर्य) के पुत्र (वैवस्वत्) ये छःमनु अपनी २ प्रजाओंको रचतेभये ६२ ॥

स्वायंभुवाद्याःसप्तैतेमनवोभूरितेजसः । स्वेस्वेऽन्तरेसर्वमिदमुत्पाद्यापुश्चराचरम् ६३ ॥

प० । स्वायंभुवाद्याः सप्त एते मनवः भूरितेजसः स्वे स्वे अन्तरे सर्वं इदं उत्पाद्य आपुः चराचरं ॥

यो० । स्वायंभुवाद्याः भूरितेजसः एते सप्त मनवः स्वे स्वेअन्तरे इदं चराचरं उत्पाद्य आपुः ॥

भा० । स्वायंभुव आदि महातेजस्वी ये सात मनु अपने २ समयमें इस स्थावर और जंगम जगत्को उत्पन्नकरके रक्षाकरतेभये ॥

ता० । स्वायंभुवहै प्रथम जिनमें ऐसे और बड़े तेजस्वी ये सातमनु अपने २ मन्वन्तरमें इस चराचर (स्थावर जंगम) जगत्को उत्पन्नकरके पालतेभये—सिद्धान्त यहहै कि जगत्की उत्पत्ति और पालना अपने २ समय में करतेभये ६३ ॥

निमेषादशचाष्टौचकाष्ठात्रिंशत्तुताःकला । त्रिंशत्कलामुहूर्तःस्यादहोरात्रंतुतावतः ६४॥

प० । निमेषाः दश च अष्टौ च काष्ठा त्रिंशत् तु ताः कला त्रिंशत् कलाः मुहूर्त्तः स्यात् अहोरात्रं तु तावतः ॥

यो० । दशअष्टौच १८ निमेषाः काष्ठा — ताः (काष्ठाः) त्रिंशत् ३० कला — त्रिंशत्कला मुहूर्त्तः स्यात् तावतः (त्रिंशत् मुहूर्त्तान्) अहोरात्रं — विद्यात् इतिशेषः ॥

भा० । अठारह निमेषों की एक काष्ठा—तीस काष्ठाओं की एक कला—तीस कलाओं का एक मुहूर्त्त होताहै और तीस मुहूर्त्तोंका एक रातदिन जानना ॥

ता० । अब पूर्वोक्त मन्वन्तर—सृष्टि—प्रलय आदि काल का परिमाण कहतेहैं कि नेत्रोंकी पलकों का जो स्वाभाविक उन्मेष उसके सहकारी को निमेष कहते हैं (जितनी देरमें पलक झपे उतना काल निमेष होता है) अठारह निमेषों की एक काष्ठा और तीस काष्ठाओं की एक कला और तीस कलाओं का एक मुहूर्त्त नाम काल (२ घटी) होता है और तीस मुहूर्त्त के समय को अहोरात्र (रातदिन) जानना ६४ ॥

अहोरात्रेविभजतेसूर्योमानुषदैविके । रात्रिःस्वप्नायभूतानांचेष्टायैकर्मणामहः ६५ ॥

प० । अहोरात्रे विभजते सूर्यः मानुषदैविके रात्रिः स्वप्नाय भूतानां चेष्टायै कर्मणां अहः ॥

यो० । सूर्यः मानुषदैविके अहोरात्रेविभजते भूतानां स्वप्नाय रात्रिः कर्मणां चेष्टायै अहः भवतीतिशेषः ॥

भा० । मनुष्य और देवताओं के रात्रिदिन सूर्यने पृथक्२ किये उनमें प्राणियोंके सोनेकेलिये रात्रि और कर्मों के करनेकेलिये दिन होताहै ॥

ता० । मनुष्यों के और देवताओंके अहोरात्र (दिनरात्रि) रूप दोसमयों को इसप्रकार पृथक् २ करताहै कि उनदोनोंमें प्राणियोंके सोनेकेलिये रात्रि और कर्मोंकेकरनेकेलिये दिन होता है—सिद्धान्त यहहै कि सूर्यनारायण के उदय और अस्त से एकहीकाल प्राणियों के उक्त दोनों कार्यों का सम्पादकहोता है ६५ ॥

पित्र्येरात्र्यहनीमासःप्रविभागस्तुपक्षयोः।कर्मचेष्टास्वहःकृष्णःशुक्लःस्वप्नायशर्वरी६६॥

प० । पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागः तु पक्षयोः कर्मचेष्टासु अहः कृष्णः शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी ॥

यो० । (मनुष्याणां) मासः पित्र्ये रात्र्यहनी भवतः प्रविभागस्तुपक्षयोः (ज्ञेयः) कर्मचेष्टासु (निमित्तसप्तमी) कृष्णः (पक्षः अहः स्वप्नाय शुक्लः पक्षः शर्वरी (रात्रिः) भवतीतिशेषः — अमांतचांद्रमासमताभिप्रायेणेदम् ॥

भा० । दोनों पक्षोंसे है विभाग जिनका ऐसे पितरों रातदिन हमारे एकमास के होतेहैं कर्मों के करने के लिये जो कृष्णपक्ष वहदिन और सोने के लिये जो शुक्लपक्ष वहरात्रि होतीहै ॥

ता० । मनुष्यों का मास पितरों का अहोरात्र होताहै उसका विभाग दोपक्षोंसेहोता है तिन दोनों पक्षोंमें कर्मों के करने के लिये जो कृष्णपक्ष वह दिन और सोने के लिये जो शुक्लपक्ष वह शर्वरी (रात्रि) होतीहै यहविभाग अमावस्यातक जो चांद्रमास उसकेअनुसार कहाहै—क्योंकि

उसमें जो हमारा कृष्णपक्ष है वह शुक्ल और जो शुक्लपक्षहै वह कृष्णपक्ष होताहै सिद्धांत यहहै कि हमारा एकमास पितरों का अहोरात्र होताहै ६६ ॥

दैवेरात्र्यहनीवर्षंप्रविभागस्तयोःपुनः । अहस्तत्रोदगयनंरात्रिःस्याद्दक्षिणायनम् ६७॥

प० । दैवे राव्यहनी वर्षं प्रविभागः तयोः पुनः अहः तत्र उदगयनं रात्रिः स्यात् दक्षिणा-यनम् ॥

यो० । मनुष्याणां वर्षं दैवे राव्यहनी भवतः (तयोः) पुनर्विभागः अयंज्ञेयः तत्र (तस्मिन वर्षे) यत् उदगयनं तत्अहः यद्दक्षिणायनं रात्रिः (ज्ञेया) ॥

भा० । हमारा वर्ष देवताओं के रातदिन होते हैं उनका विभाग यहहै कि वर्षका उत्तरायण दिन और दक्षिणायन रात्रि होतीहै ॥

ता० । मनुष्यों का एकवर्ष देवताओं के रात्रिदिन होते हैं और उनका विभागयहहै कि वर्ष का उत्तरायण दिन और दक्षिणायन रात्रिहोतीहै—और उत्तरायण दिनइससेहोताहै कि उसीमें देवसम्बन्धी कर्म कियेजातेहैं ६७ ॥

ब्राह्मस्यतुक्षपाहस्ययत्प्रमाणंसमासतः । एकैकशोयुगानांतुक्रमशस्तन्निबोधत ६८ ॥

प० । ब्राह्मस्य तु क्षपाहस्य यत् प्रमाणं समासतः एकैकशः युगानां तु क्रमशः तत् निबोधत॥

यो० । ब्राह्मस्य क्षपाहस्य तुपुनः एकैकशः युगानां यत्प्रमाणं -अस्ति तत् समासतः क्रमेण (यूयं) निबोधत (शृणुत) ॥

भा० । ब्रह्माके दिनका और प्रत्येक युगोंका जो प्रमाणहै उसको संक्षेप और क्रमसे तुमसुनो॥

ता० । ब्रह्माके रात्रि दिनका और प्रत्येक कृतआदि युगोंकाजो प्रमाण है उसको संक्षेप और क्रमसे तुम सुनो—कालके विभागही यद्यपि प्रकरणथा इस श्लोकमें जो पृथक् ब्रह्माके दिन वर्णन करनेकी प्रतिज्ञाकी है वह ब्रह्माके दिनका ज्ञान पुण्यका पैदाकरनेवाला है यह जतानेके लिये कीहै—इसीसे आगे मनुजी ही कहेंगे कि—ब्राह्मंपुण्यमहर्विदुः—उस ब्रह्माके दिनके जानने से पुण्यहोताहै ६८ ॥

चत्वार्याहुःसहस्राणिवर्षाणांतुकृतंयुगम्।तस्यतावच्छतीसंध्यासंध्यांशश्चतथाविधः६९

प० । चत्वारि आहुःसहस्राणि वर्षाणां तु कृतं युगं तस्य तावच्छती संध्या संध्यांशः च तथा-विधः ॥

यो० । वर्षाणां चत्वारि सहस्राणि कृतं युगं आहुः तस्य (कृतयुगस्य) तावच्छती संध्या चपुनः तथाविधः (तावच्छतसंख्यः) संध्यांशश्च (ज्ञेयः) ॥

भा० । चारहजार वर्षका कृतयुग और चारसौ वर्षकी कृतयुगकी संध्या और चारसौ वर्ष का संध्यांश मनु आदिने कहाहै ॥

ता० । चारहजार वर्षका प्रमाण जिसका उसे कृतयुग कहाहै और चारसौ वर्षकी संध्या (युगकी आदि) और चारसौ वर्षका संध्यांश (युगका अन्त) कहाहै क्योंकि*विष्णुपुराण में

* तत्प्रमाणैः शतैः संध्यापूर्वातत्राभिधीयते । संध्यांशकश्चतत्तुल्यो युगस्यानंतरोहियः १ ॥
संध्यासंध्यांशयोरन्तर्यःकालोमुनिसत्तम । युगाख्यःसतुविज्ञेयः कृतत्रेतादिसंज्ञकः २ ॥

यह लिखाहै कि जितने हजार वर्षका युगहो उतनेही सौवर्षकी युगकी आदिमें संध्या और उसकेही तुल्य युगके अंतमें संध्यांशहोताहै औ संध्या और संध्यांशके मध्यका जो काल उसे हे मुनिसत्तम युग जानना और कृत—त्रेता—द्वापर—कलि—ये चार उसके नामहैं—और यह वर्षोंकी संख्या देवताओंके वर्षसे जाननी क्योंकि उसीका प्रकरणहै—और*विष्णुपुराणमें भी यही लिखाहै कि देवताओंके बारह हजार वर्षके कृत—त्रेता द्वापर कलि—चारयुग होतेहैं उनका विभाग मेरेसे सुनो ६९ ॥

इतरेषुससंध्येषुससंध्यांशेषुचत्रिषु । एकापायेनवर्तन्तेसहस्राणिशतानिच ७० ॥

प० । इतरेषु ससंध्येषु ससंध्यांशेषु च त्रिषु एकापायेन वर्तन्ते सहस्राणि शतानि च ॥

यो० । ससंध्येषु ससंध्यांशेषु च इतरेषु त्रिषु (त्रेतादि युगेषु) सहस्राणि च पुनः शतानि एकापायेन वर्तन्ते ॥

भा० । संध्या और संध्यांशों सहित इतर (त्रेता आदि) तीनों युगों में सहस्र और शत क्रम से एक २ कम होतेहैं ॥

ता० । अन्य त्रेता द्वापर कलियुग रूप जो संध्या और संध्यांश सहित युग उनमें हजार और शत (सौ) एक २ कम क्रमसे होतेहैं अर्थात् त्रेतामें तीन हजार युग और तीनसौ संध्या और तीन सौ संध्यांश होताहै—द्वापर में दो सहस्र युग और दोसौ संध्या और दोसौ संध्यांश होताहै—कलियुग में एक सहस्र युग एक सौ संध्या और एक सौ संध्यांश होताहै—सिद्धांत यह है कि संध्या और संध्यांशोंसहित चारोंयुग बारह हजार वर्षके देवताओंके मानसे होतेहैं ७० ॥

यदेतत्परिसंख्यानमादावेवचतुर्युगम् । एतद्द्वादशसाहस्रंदेवानांयुगमुच्यते ७१ ॥

प० । यत् एतत् परिसंख्यातं आदौ एव चतुर्युगं एतत् द्वादशसाहस्रं देवानां युगं उच्यते ॥

यो० । यत् एतत् आदौ एव चतुर्युगं परिसंख्यातं द्वादशसाहस्रं एतत् देवानां युगं उच्यते—मनुनेतिशेषः ॥

भा० । जो यह प्रथम चारयुग गिनेहैं इनके बारह २ हजार का देवताओं का युग कहाहै ॥

ता० । इस श्लोकके प्रथम जो मनुष्योंके चारयुग गिनेहैं संध्या और संध्यांशसहित ये चारों युगोंके प्रत्येक बारह २ सहस्र का (अर्थात् ४८ हजार) देवताओं का युग कहा है यहां यह भ्रम मेधातिथिको नहीं करना कि चारोंयुगों का एक युग देवताओं का होताहै क्योंकि आगे मनुजीने देवताओं के हजार युगका ब्रह्माका एकदिन कहाहै और विष्णुपुराण १ में भी यह कहाहै एक हजार चारोंयुगों का ब्रह्माका एकदिन होताहै इससे मनुष्योंके चारयुगोंसे देवताओं के युग का ज्ञान होताहै सिद्धांत यह है कि मनुष्योंके अड़तालीस सहस्र चारोंयुगों का देवताओं का एक युग और एक हजार की संध्या और एक हजार का संध्यांश होताहै और ब्रह्मा का एक दिन इसीप्रकार के देवताओं के हजार युगों का होताहै ७१ ॥

दैविकानांयुगानांतुसहस्रंपरिसंख्यया । ब्राह्ममेकमहर्ज्ञेयंतावतींरात्रिमेवच ७२ ॥

प० । दैविकानां युगानां तु सहस्रं परिसंख्यया ब्राह्मं एकं अहः ज्ञेयं तावतीं रात्रिं एव च ॥

---

* दिव्यैर्वर्षसहस्रैस्तुकृतत्रेतादिसंज्ञितम् । चतुर्युगंद्वादशभिस्तद्विभागं निबोधमे १ ॥

यो० । दैविकानां युगानां परिसंख्यया सहस्रं एकं ब्राह्मं अहः ज्ञेयम् चपुनः तावतीं एव रात्रिं — जानीथेतिशेषः ॥

भा० । देवताओं की गिनतीसे एकसहस्र युगोंका ब्रह्माका एकदिन और एकसहस्र युगोंकी एकरात्रि होती है ॥

ता० । देवताओं के युगोंका एकसहस्र गिनती से ब्रह्माकादिन और एकसहस्र युगोंकी ब्रह्मा की रात्रि होतीहै—इसश्लोकमें सहस्रपदसेही हजारको बोधहोसक्ताथा—गिनतीसे—है अर्थजिसका ऐसा परिसंख्ययापद श्लोक के पादकी पूर्णता के लिये है अर्थात् व्यर्थहै ७२ ॥

तद्वैयुगसहस्रान्तंब्राह्मंपुण्यमहर्विदुः । रात्रिंचतावतीमेवतेऽहोरात्रविदोजनाः ७३ ॥

प० । तत् वै युगसहस्रान्तं ब्राह्मं पुण्यं अहः विदुः रात्रिं च तावतीं एव ते अहोरात्रविदः जनाः ॥

यो० । युगसहस्रान्तं ब्राह्मं पुण्यं अहः तावतीं रात्रिंच (ये) विदुः ते जनाः अहोरात्रविदः — ज्ञेया इतिशेषः ॥

भा० । हजारयुगका है प्रमाण जिसका ऐसे पुण्य ब्रह्माके दिनको और उतनीहीरात्रिको जो जन जानतेहैं वेही रातदिनके जाननेवालेहैं ॥

ता० । युगोंके सहस्र है समाप्ति जिसकी ऐसे पवित्र ब्रह्माकेदिन और उतनीही रात्रिको जो जानतेहैं वेही जन अहोरात्र (दिनरात) के जाननेवाले हैं—यह ब्रह्मा के दिनकी स्तुतिहै और इसस्तुति से मनुजी ने यह जताया कि पुण्यरूप ब्रह्माकादिन जाननेयोग्यहै इसीपुण्यका उत्पादक होनेसे पुण्य यह विशेषण दियाहै ७३ ॥

तस्यसोऽहर्निशस्यान्तेप्रसुप्तःप्रतिबुध्यते । प्रतिबुद्धश्चसृजतिमनःसदसदात्मकम् ७४ ॥

प० । तस्य सः अहर्निशस्य अंते प्रसुप्तः प्रतिबुध्यते प्रतिबुद्धः च सृजति मनः सदसदात्मकम् ॥

यो० । प्रसुप्तः सः (ब्रह्मा) तस्य अहर्निशस्य अन्ते प्रतिबुध्यते चपुनः प्रतिबुद्धः (सः) सदसदात्मकं मनः सृजति ॥

भा० । सोकर उस अहोरात्रके अंतमें वह ब्रह्मा जगताहै और जगकर कार्य कारणरूप मन (महत्तत्त्व) को रचताहै ॥

ता० । वहब्रह्मा सोकर उस पूर्वोक्त अपने अहोरात्र के पीछे जगता है और जगकर भू आदि तीनोंलोकोंकी सृष्टि के लिये कार्य कारणरूप मनको नियुक्त करता है यहां—सृजति—इसपद का अर्थ यद्यपि रचताहै यह उचितथा तथापि धातुओंके अनेक अर्थ होनेसे नियुक्तकरना अर्थलेना रचनानहीं—क्योंकि मनकी उत्पत्ति महाप्रलयके अनन्तरहोतीहै और अवान्तर प्रलय (नैमित्तिक ब्रह्मा के प्रलय) में भूआदि तीनलोकोंकाही नाशहोताहै इससे सृष्टिके लिये मनका जो नियोग वही मनकी सृष्टि है—यहीपुराणोंमें भी सुनाजाताहै कि फिर ब्रह्मा अपनेमनको रचनेकी इच्छा संयुक्तकरतेभये*अथवा मन शब्दसे यहां महत्तत्त्वलेतेहैं—यद्यपि वह महत्तत्त्व भी महाप्रलयके पीछेही उत्पन्नहुआहै—और महान्तमेवचात्मानं इसश्लोकमें उसकी रचनाभी कहीहै तथापि प्रथम भूतोंकी उत्पत्तिका क्रम और भूतोंके गुण कहने के लिये महाप्रलयके अनंतरही महदा-

* मनः सिसृक्षयायुक्तं सर्गाय निदधेपुनः ॥

दिकी सृष्टि और भूतोंकी सृष्टिका और परमार्थरूप ब्रह्माको उस सृष्टि कर्तापन का यह अनुवाद (कहेको कहाना) है इससे यह स्पष्टकहागया कि ब्रह्माही महाप्रलयके अनंतर सृष्टिकी आदिमें परमात्मरूपहोकर महदादि तत्त्वोंको जगत्की सृष्टिकेलिये रचताहै इसीलिये आगे मनुजी कहेंगे कि यह आदिसे सृष्टिकही–जो अवांतर प्रलयके अनंतर मन आदिकी सृष्टिहोती तो कहनेके क्रमसेही प्राथम्यकी प्राप्तिहोनेसे आदिसे कही यह अनुवाद निष्प्रयोजनहोजाता क्योंकि सबकी आदि महत्तत्त्वहै मन नहीं ७४ ॥

मनःसृष्टिंविकुरुतेचोद्यमानंसिसृक्षया। आकाशंजायतेतस्मात्तस्यशब्दंगुणंविदुः ७५ ॥

प० । मनः सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानं सिसृक्षया आकाशं जायते तस्मात् तस्य शब्दं गुणं विदुः॥

यो० । (परमात्मनः) सिसृक्षया चोद्यमानं मनः (महान्) सृष्टिं विकुरुते तस्मात् आकाशंजायते तस्यगुणं शब्दं विदुः (ऋषयइतिशेषः) ॥

भा० । रचनेकी इच्छासे ब्रह्माने प्रेरा महत्तत्त्व सृष्टिको करताहै–और उससे आकाशहोताहै और आकाश का गुण शब्दहै ॥

ता० । ब्रह्माकी रचनेकी इच्छासे प्रेराहुआ मन (महत्तत्त्व) सृष्टिको करताहै और उस महत्तत्त्वसे आकाश उत्पन्नहोताहै अर्थात् महत्तत्त्वसे अहंकार और अहंकारसे सूक्ष्मभूत रूप शब्द और शब्द से महाभूत रूप आकाश उत्पन्नहोताहै इसीप्रकार पांचोभूतोंमें सूक्ष्मभूतों की उत्पत्ति जाननी और उस आकाशका गुण मनु आदिकोंने शब्दहीजानाहै ७५ ॥

आकाशात्तुविकुर्वाणात्सर्वगन्धवहःशुचिः। बलवान्जायतेवायुःसवैस्पर्शगुणोमतः ७६ ॥

प० । आकाशात् तु विकुर्वाणात् सर्वगंधवहः शुचिः बलवान् जायते वायुः सः वै स्पर्शगुणः मतः ॥

यो० । विकुर्वाणात् आकाशात् सर्वगंधवहः – शुचिः बलवान् वायुः जायते – स – वै स्पर्शगुणः मतः – मन्वादिभिरिति शेषः ॥

भा० । विकारोंके पैदाकरनेवाले आकाशसे संपूर्ण गंधोंका पहुंचानेवाला–पवित्र–और बलवान् वायु उत्पन्नहोताहै और उसका गुणस्पर्श मानाहै ॥

ता० । विकारोंको पैदाकरनेवाले आकाशसे–सुरभि (अच्छी) और असुरभि (बुरी) गंधके वहनेवाला (एकस्थानसे दूसरे स्थानमें पहुंचानेवाला) और पवित्र और बलवाला अर्थात् वृक्षादिके उखाड़नेमें समर्थ वायु उत्पन्नहोताहै और वह वायु मनु आदिकोंने स्पर्शहै नाम जिसका ऐसेगुणवाला मानाहै अर्थात् वायुकागुण शब्दहै ७६ ॥

वायोरपिविकुर्वाणाद्विरोचिष्णुतमोनुदम् । ज्योतिरुत्पद्यतेभास्वत्तद्रूपगुणमुच्यते ७७ ॥

प० । वायोः अपि विकुर्वाणात् विरोचिष्णु तमोनुदम् ज्योतिः उत्पद्यते भास्वत् तत् रूपगुणं उच्यते ॥

यो० । विकुर्वाणात् वायोः अपि सकाशात् विरोचिष्णु—तमोनुदम्—ज्योतिः (तेजः) उत्पद्यते तत् (तेजः) रूपगुणं उच्यते मन्वादिभिरितिशेषः ॥

भा० । विकारों के जनक वायुसे प्रकाशक और अन्धकार का नाशक और प्रकाशरूप तेज उत्पन्नहोताहै और उसका गुणरूप कहाहै ॥

ता० । विकारके पैदाकरनेवाले वायुके सकाशसे इतरोंके प्रकाश करनेवाला और अन्धकार का नाशक—और प्रकाश का जनक तेज उत्पन्नहोताहै और वह तेज मनु आदिकोंने रूप गुण वाला कहाहै अर्थात् तेजका गुणरूपहै ७७ ॥

ज्योतिषश्चविकुर्वाणादापोरसगुणाःस्मृताः । अद्भ्योगन्धगुणाभूमिरित्येषासृष्टिरादितः

प० । ज्योतिषः च विकुर्वाणात् आपः रसगुणाः स्मृताः अद्भ्यः गन्धगुणा भूमिः इति एषा सृष्टिः आदितः ॥

यो० । विकुर्वाणात् ज्योतिषः (सकाशात्) आपः (उत्पद्यंते) (ताश्च) रसगुणाः स्मृताः (मन्वादिभिरितिशेषः) अद्भ्यः भूमिः (उत्पद्यते साच) गंधगुणा स्मृता इतिशेषः आदितः एषा सृष्टिः इति समाहृः इत्यर्थः ॥

भा० । विकारोंके जनक तेजसे रसगुणवाले जल पैदाहोतेहैं और उक्त जलोंसे गंधगुणवाली भूमि उत्पन्नहोतीहै यह आदिसे सृष्टि समाप्तभई ॥

ता० । तेजके सकाशसे आप (जल) उत्पन्नहोतेहैं और वे जल रसगुणवाले कहेहैं अर्थात् जलोंका गुण रसहै और जलोंसे पृथिवी उत्पन्नहोतीहै और वह गंधगुणवाली है अर्थात् भूमिका गुण गंधहै—यह महाप्रलयके अनन्तर आदिसे भूतोंकी सृष्टि समाप्तभई और इन्हींभूतोंसे अवांतर प्रलयके अनन्तर भू—भुव—स्वः इन तीनों लोकोंकी रचना जाननी ७८ ॥

यत्प्राग्द्वादशसाहस्रमुदितंदैविकंयुगम् । तदेकसप्ततिगुणंमन्वन्तरमिहोच्यते ७९ ॥

प० । यत् प्राक् द्वादशसाहस्रं उदितं दैविकं युगं तत् एकसप्ततिगुणं मन्वन्तरं इह उच्यते ॥

यो० । यत् द्वादशसाहस्रं दैविकं युगं प्राक् उदितम् एकसप्तति गुणं तत् इह मन्वन्तर उच्यते — मन्वादिभिरितिशेषः ॥

भा० । मनुष्योंके बारह सहस्र चारोंयुगों का जो देवताओंका एकयुग पूर्व कहआयेहैं एकत्तर गुणा वह युग इसग्रंथमें मन्वन्तर कहाहै ॥

ता० । जो पहिले बारह हजारहै परिमाण जिसका ऐसा संध्या और संध्यांश सहित मनुष्यों का चतुर्युग और वही देवताओंका एकयुग कहाहै एकत्तर ७१ गुणावह एकयुग मन्वन्तर(एक२ मनुके राज्यकासमय) इसशास्त्रमें कहाहै और उस मन्वन्तरमें एकमनुके रचने आदिका अधिकार रहताहै ७९ ॥

मन्वन्तराण्यसंख्यानिसर्गःसंहारएवच । क्रीडन्निवैतत्कुरुतेपरमेष्ठीपुनःपुनः ८० ॥

प० । मन्वन्तराणि असंख्यानि सर्गः संहारः एव च क्रीडन् इव एतत् कुरुते परमेष्ठी पुनःपुनः ॥

यो० । मन्वन्तराणि असंख्यानि भवंति सर्गः चपुनः संहारोपि असंख्यः एतत् (सर्व) क्रीडन् इव परमेष्ठी पुनःपुनः कुरुते एवशब्दोऽप्यर्थे ज्ञेयः ॥

भा० । मन्वन्तर—सृष्टि—और प्रलय—ये तीनों असंख्य (अनगिन) हैं और इन असंख्य सृष्टि आदिकों को ब्रह्माक्रीडा करनेवाले के समान बारम्बार करता है ॥

ता० । मन्वन्तर और सर्ग (रचना) और संहार (प्रलय) ये असंख्य (अनेक हैं—यद्यपि पुराणोंमें चौदह मन्वन्तर गिनती से कहेहैं तथापि सृष्टि और प्रलयके अनन्त होनेसे अनन्तकहे हैं—इस सम्पूर्ण जगत् को परमेष्ठी (ब्रह्मा) इस प्रकार बारम्बार करताहै कि मानो क्रीडाकरता है—सुखके लिये जो प्रवृत्ति उसे क्रीडाकहते हैं—यद्यपि ब्रह्मा को सब कामनाओं से रहितहोनेसे सुखकी इच्छा का होना असंभव है तथापि क्रीडनइव—इस इवशब्द के प्रयोग से क्रीडा करने वालेके समान ब्रह्मा रचनेमें प्रवृत्तहोताहै वस्तुतः ब्रह्माको पूर्णकाम होनेसे क्रीडानहीं होसक्ती—और अज्ञान आदिसे नहीं ढकेहुये परम (ब्रह्मरूप) स्थानमें जो टिके उसे परमेष्ठी कहतेहैं यहअर्थ जिसका ऐसे परमेष्ठी पदसे भी यही प्रतीत होताहै कदाचित् कोई यह शंकाकरे कि प्रयोजनके विना परमात्माकी सृष्टि आदिमें प्रवृत्ति क्यों हुई—उसका उत्तर यहहै लीलाहीसे क्योंकि स्वभाव को भी इस प्रकार होनेसे जैसे किसी ग्रन्थका वर्णन करनेवाला मनुष्य अपने हाथपर तालदेने में प्रवृत्त होताहै यह इस व्यासजी के कहे हुये शारीरिक सूत्र * में लिखा है कि लोकों की जो अनेक प्रकारकी परमात्मा की लीला वही कैवल्य (मुक्तिरूप)है -सिद्धान्त यहहै कि निष्काम स्वभावही ब्रह्मा सब जगत्को पुनः२ रचताहै ८० ॥

चतुष्पात्सकलोधर्मःसत्यंचैवकृतेयुगे । नाधर्मेणागमःकश्चिन्मनुष्यान्प्रतिवर्तते ८१ ॥

प० । चतुष्पात् सकलः धर्मः सत्यं च एव कृते युगे न अधर्मेण आगमः कश्चित् मनुष्यान् प्रति वर्तते ॥

यो० । कृतेयुगे चतुष्पात् सकलः धर्मः चपुनः सत्यं आसीत् अधर्मेण कश्चित् आगमः (धनविद्या आदेः उत्पत्ति) मनुष्यान्प्रति नवर्त्तते ॥

भा० । सतयुगमें संपूर्ण धर्म और सत्य सांगोपांगरहा और मनुष्योंको धन विद्या आदिकी उत्पत्ति भी अधर्मसे नहींहोतीथी ॥

ता० । सतयुग में सम्पूर्ण धर्म चतुष्पात् (सब अंगों से पूर्ण) रहा—यद्यपि धर्म में मुख्य पादों का होना असंभव है तथापि इस (वृषोहिभगवान्धर्म—आगम में वृष (बैल) रूप से धर्मका वर्णनकिया है और वह वृष चारपादोंसे सम्पूर्णहोताहै इसीप्रकार धर्मको भी सतयुगमें सम्पूर्ण अंगोंसे पूर्णतारही सिद्धान्त यहहै कि यहां चतुष्पाद् शब्दका सम्पूर्ण अर्थहै—अथवा(तपः परं)इस श्लोकमें मनुजीने ही तप—ज्ञान—यज्ञ—दान—ये चारपाद धर्मके कहेहैं और वह धर्म उक्त चारों पादों से सम्पूर्ण होता है इससे कृतयुग में धर्म के उक्त चारों पादरहे और सत्य भी कृतयुग में रहा—सम्पूर्ण धर्मों में श्रेष्ठ होनेसे सत्यको पृथक् कहा है—और तिसीप्रकार शास्त्रके अन्लंघन से धन और विद्या आदिका आगम (उत्पत्ति भी मनुष्योंको नहीं होती थी—सिद्धान्त यह है कि सतयुगमें सांगोपांग धर्म था और शास्त्रके अनुकूल धनआदिकी प्राप्ति होतीथी ८१ ॥

* लोकवत्तुलीला कैवल्यम्—

इतरेष्वागमाद्धर्मःपादशस्त्ववरोपितः । चौरिकानृतमायाभिर्धर्मश्चापैतिपादशः ८२॥

प० । इतरेषु आगमात् धर्मः पादशः तु अवरोपितः चौरिकानृतमायाभिः धर्मः च अपैति पादशः ॥

यो० । इतरेषु (त्रेतादियुगेषु) आगमात् (अधर्मेण धन विद्यादेरर्जनात्) धर्मः पादशः अवरोपितः (हीनःकृतः) धर्मश्च (धर्मोपचोऽप्यर्थे) चौरिकानृतमायाभिः पादशः (प्रतियुगं) अपैति (नश्यति) ॥

भा० । इतरत्रेता आदि युगोंमें अधर्मसे धन और विद्या आदिके संचयकरनेसे यज्ञ आदि धर्म एक२ पादन्यूनहोताहै और वह संचित भी धर्म और झूठ और छलसे एक२ पादसे नष्ट होजाताहै ॥

ता० । सत्ययुगसे इतर त्रेता आदि तीनों युगोंमें अधर्मसे धन और विद्या आदिके संचयसे यज्ञ आदि धर्म क्रमसे एक२ पादहीनकरदिया—यहां पिछले श्लोकके संबंधसे आगमात् का अर्थ अधर्म से उत्पत्तिहोनेसे—यहीहोताहै क्योंकि अधर्मसे सतयुगमें धन आदिका संचय न होने से सांगोपांग धर्मरहा इससे यह अर्थात् सिद्धभया कि उसधर्म की न्यूनता का हेतु अधर्मही है—और गोविंदराज और मेधातिथि यह अर्थकरतेहैं कि आगमसे पैदाहुआ यज्ञ आदि धर्म अधर्मसे इतरयुगोंमें एक २ पादमें कमहोजाताहै—और धन और विद्यामें संचितकियाभी वहधर्म चोरी—झूठ—छल—इनसे त्रेतादि प्रतियुगों में एक २ पादसे नष्टहोजाताहै—यहां चोरी—झूठ छल इनका संबंध तीनोंयुगोंमें क्रमसे नहींकरना क्योंकि ये तीनों सबजगे होतेहैं ८२ ॥

अरोगाःसर्वसिद्धार्थाश्चतुर्वर्षशतायुषः । कृतत्रेतादिषुह्येषामायुर्ह्रसतिपादशः ८३ ॥

प० । अरोगाः सर्वसिद्धार्थाः चतुर्वर्षशतायुषः कृते त्रेतादिषु हि एषां आयुः ह्रसति पादशः॥

यो० । कृते (सत्ययुगे) मनुष्याः अरोगाः सर्वसिद्धार्थाः चतुर्वर्षशतायुषः भवंतीत्यध्याहारः — त्रेतादिषु एषांमायुः पादशः हि (निश्चयेन) ह्रसति ॥

भा० । सतयुगमें मनुष्य रोगहीन—सफलहैं मनोरथ जिनके ऐसे—और चारसौवर्षकीअवस्था वाले होते थे और त्रेताआदि में एक २ पाद इनकी अवस्था न्यून होजाती है ॥

ता० । सतयुग में रोग के जनक अधर्म के अभाव से सम्पूर्ण मनुष्य रोगरहित—और सम्पूर्ण सिद्ध हैं कामनाके विषय कर्मोंके फल जिनके ऐसे और चारसौवर्ष ४०० की अवस्थावाले होते थे—और यदि अधिक पुण्यका उदयहोताथा तो अधिकभी अवस्था होतीथी इसीसे दशसहस्र वर्षतक रामचन्द्र ने राज्यकिया इसके संग विरोध नहींआता और (शतायुर्वैपुरुषः) इसश्रुति में शतशब्द अनेक का बोधक है और त्रेताआदि में इन मनुष्यों की अवस्था एक २ पाद न्यून होजाती है अर्थात् त्रेतामें तीनसौवर्ष० द्वापर में दोसौवर्ष० कलियुग में एकसौवर्ष की अवस्था होजाती है ८३ ॥

वेदोक्तमायुर्मर्त्यानामाशिषश्चैवकर्मणाम् ।फलंत्यनुयुगंलोकेप्रभावश्चशरीरिणाम् ८४॥

प० । वेदोक्तं आयुः मर्त्यानां आशिषः च एव कर्मणां फलंति अनुयुगं लोके प्रभावः च शरीरिणाम् ॥

यो० । मर्त्यानां वेदोक्तं आयुः चपुनः कर्मणां आशिषः चपुनः शरीरिणां लोके प्रभावः अनुयुगं (युगानुसारेण) फलंति ॥

भा० । वेदमें कही मनुष्योंकी अवस्था और कर्मोंके फल और देहधारियोंका प्रताप ये युगों के अनुसारही होतेहैं ॥

ता० । वेद में कही हुई सौ वर्ष की पुरुषकी अवस्था और कामना से कियेहुये कर्मों के विषय और देहधारी जीवों का प्रभाव जैसे कि ब्राह्मण आदिकों की शापदेने और अनुग्रह करनेमें योग्यता ये सबबात युग के अनुसार होतीहैं अर्थात् जैसा युग वैसीही होतीहैं ८४ ॥

अन्येकृतयुगेधर्मास्त्रेतायांद्वापरेऽपरे । अन्येकलियुगेनृणांयुगह्रासानुरूपतः ८५ ॥

प० । अन्ये कृतयुगे धर्माः त्रेतायां द्वापरे अपरे अन्ये कलियुगे नृणां युगह्रासानुरूपतः ॥

यो० । युगह्रासानुरूपतः नृणां धर्माः कृतयुगे अन्ये — त्रेतायां अन्ये — द्वापरे अपरे — कलियुगे अन्ये — भवंतीतिशेषः ॥

भा० । ता० । युगोंके ह्रासके अनुसार मनुष्योंके धर्म सतयुग में अन्य और त्रेतामें अन्य और द्वापरमें भिन्न और कलियुगमें अन्य होतेहैं—सिद्धान्त यहहै कि जैसा२युग वैसे२ही मनुष्यों के धर्महोतेहैं ८५ ॥

तपःपरंकृतयुगेत्रेतायांज्ञानमुच्यते । द्वापरेयज्ञमेवाहुर्दानमेकंकलौयुगे ८६ ॥

प० । तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानं उच्यते द्वापरे यज्ञं एव आहुः दानं एकं कलौ युगे ॥

यो० । कृतयुगे तपःपरं — त्रेतायां ज्ञानं (परं) उच्यते — मनुनेतिशेषः द्वापरे यज्ञं—कलौयुगे एकं दानं परं आहुः मन्वादय इतिशेषः ॥

भा० । सतयुगमें तप और त्रेता में ज्ञान और द्वापर में यज्ञ—और कलियुग में एक दान ही प्रधान कहा है ॥

ता० । सतयुगमें मनुआदिकों ने तपही प्रधान कहाहै और त्रेता में ज्ञानप्रधान—और द्वापर में यज्ञहीप्रधान—और कलियुगमें एक दानही प्रधान मनुआदिकोंने वर्णनकियाहै—यद्यपि ये तप आदि सम्पूर्ण सबयुगों में करनेयोग्यहैं तथापि सतयुग में तप—त्रेतामें आत्मा का ज्ञान—द्वापरमें यज्ञ—और कलियुग में दान—श्रेष्ठफलका जनक होताहै ८६ ॥

सर्वस्यास्यतुसर्गस्यगुप्त्यर्थंसमहाद्युतिः । मुखबाहूरुपज्जानांपृथक्कर्माण्यकल्पयत् ८७ ॥

प० । सर्वस्य अस्य तु सर्गस्य गुप्त्यर्थं सः महाद्युतिः मुखबाहूरुपज्जानां पृथक् कर्माणि अकल्पयत् ॥

यो० । समहाद्युतिः ब्रह्मा अस्य सर्वस्य सर्गस्य गुप्त्यर्थं मुखबाहूरुपज्जानां कर्माणि पृथक् अकल्पयत् ॥

भा० । महातेजवाले उस ब्रह्माने इससम्पूर्णसृष्टिकी रक्षाकेलिये चारोंवर्णोंके पृथक् २ कर्मरचे ॥

ता० । महातेजवाला वह ब्रह्मा इस सम्पूर्ण सृष्टि की रक्षाके लिये मुख—भुजा—जंघा—पाद—इनसे क्रमसेपैदाहुये जो ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य—शूद्रहैं उनके पृथक् २ कर्मोंको रचताभया अर्थात् अपने २कर्मोंको करनेसे चारोंवर्ण मेरीसृष्टिकी रक्षाकरैं इसप्रकार सबके कर्म रच—जैसे ब्राह्मण की अग्नि * में भलीप्रकारदीहुई आहुति सूर्यको पहुंचती है उससे प्रसन्नहोकर सूर्य वर्षाकरतेहैं

* अग्नौप्रास्ताहुतिःसम्यगादित्यमुपतिष्ठते । आदित्याज्जायतेवृष्टिः वृष्टेरन्नंततःप्रजा १ ॥

वर्षासे अन्नहोताहै और अन्नसे प्रजाका पोषण होताहै—इसीप्रकार चारोंवर्णों के कर्मों का फल सृष्टि की रक्षा है ८७ ॥

अध्यापनमध्ययनंयजनंयाजनंतथा । दानंप्रतिग्रहंचैवब्राह्मणानामकल्पयत् ८८ ॥

प० । अध्यापनं अध्ययनं यजनं याजनं तथा दानं प्रतिग्रहं च एव ब्राह्मणानाम् । अकल्पयत् ॥

यो० । ब्राह्मणानां अध्यापनं — अध्ययनं — यजनं — तथा याजनं — दानं — चपुनः प्रतिग्रहं एव (निश्चयेन) (ब्रह्मा) अकल्पयत् ॥

भा० । पढ़ाना पढ़ना—यज्ञकरना और कराना—दानदेना और दानलेना ये ब्राह्मणों के छः कर्म ब्रह्मा ने रचे ॥

ता० । पढ़ाना और पढ़ना—यज्ञकरना और यज्ञकराना—दानदेना और प्रतिग्रह (दानलेना) ये छः कर्म ब्राह्मणों के ब्रह्माने रचे—इससृष्टि के प्रकरणमें पढ़ानाआदि कर्मोंका वर्णन इसलिये किया है कि यहभी एकप्रकारकी सृष्टिहीहै ८८ ॥

प्रजानांरक्षणंदानमिज्याध्ययनमेवच । विषयेष्वप्रसक्तिश्चक्षत्रियस्यसमासतः ८९ ॥

प० । प्रजानां रक्षणं दानं इज्या अध्ययनं एव च विषयेषु अप्रसक्तिः च क्षत्रियस्य समासतः ॥

यो० । क्षत्रियस्य समासतः प्रजानांरक्षणं—दानं—इज्या—चपुनः अध्ययनं — चपुनः विषयेषुअप्रसक्तिः (इमानि कर्माणि ब्रह्मा अकल्पयत्) ॥

भा० । प्रजाकी रक्षा—दान—यज्ञ—पढ़ना विषयोंमें आसक्त न होना ये क्षत्रियके कर्म संक्षेप से ब्रह्माने रचे ॥

ता० । प्रजाओंकी रक्षा—दानदेना—यज्ञकरना—पढ़ना—और विषयोंमें आसक्त न होना अर्थात् गीत—बाजा—नृत्य और वनिता (वेश्यादि) आदि विषयोंमें आसक्त न होना किन्तु सर्वथा अपने शास्त्रोक्त कर्मोंमेंही लीनरहना—क्षत्रियके संक्षेपसे ये कर्म ब्रह्माने रचेहैं ८९ ॥

पशूनांरक्षणंदानमिज्याध्ययनमेवच । वणिक्पथंकुसीदंचवैश्यस्यकृषिमेवच ९० ॥

प० । पशूनां रक्षणं दानं इज्याध्ययनं एव च वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिं एव च ॥

यो० । वैश्यस्य पशूनांरक्षणं — दानं — चपुनः इज्याध्ययनं वणिक्पथं चपुनः कुसीदं कृषिंचैव (ब्रह्माअकल्पयत्) ॥

भा० । पशुओंकी रक्षा—दान—यज्ञ—पढ़ना—व्यापार—और वृद्धि (व्याज) और खेती ये कर्म वैश्यके ब्रह्माने रचे ॥

ता० । पशुओंकी रक्षा—दानदेना—यज्ञकरना—पढ़ना और जल और स्थल में व्यापार करना अर्थात् जलके वा स्थलके द्वारा वृद्धिकेलिये अन्यत्र अन्नआदि माल पहुँचाना इसकोही वणिक्पथ कहतेहैं—और कुसीद वृद्धि (व्याज) के लिये धनदेना—और खेतीको करना ये कर्म ब्रह्माने वैश्य के रचेहैं ९० ॥

एकमेवतुशूद्रस्यप्रभुःकर्मसमादिशत् । एतेषामेववर्णानांशुश्रूषामनसूयया ९१ ॥

प० । एकं एव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत् एतेषां एव वर्णानां शुश्रूषां अनसूयया ॥

यो० । प्रभुः शूद्रस्यतु एतेषां एव वर्णानां अनसूयया शुश्रूषां एकं एव कर्म समादिशत् (विहितवान्) ॥

भा० । ब्रह्माने शूद्रका मुख्यकर्म तीनों वर्णोंकी निष्कपट होकर सेवाकरना कहाहै ॥

ता० । प्रभु (ब्रह्मा) ने शूद्रका एकही कर्म रचाहै कि इनतीनों वर्णोंकी निंदा के त्यागपूर्वक सेवाकरनी इसश्लोकमें एकशब्द प्रधानका बोधकहै और केवल बोधक नहींहै अन्यथा शूद्रदान देनेसे पतित होजाता—और दानदेने का अधिकार शूद्रको भी है—सिद्धान्त यहहै कि ब्राह्मण—क्षत्रिय—और वैश्य इनकी सेवाकरना तो प्रधानकर्महै और दानआदि इतर कर्म अप्रधानहैं ९१ ॥

ऊर्ध्वंनाभेर्मेध्यतरःपुरुषःपरिकीर्तितः । तस्मान्मेध्यतमंत्वस्यमुखमुक्तंस्वयंभुवा ९२ ॥

प० । ऊर्ध्वं नाभेः मेध्यतरः पुरुषः परिकीर्तितः तस्मात् मेध्यतमं तु अस्य मुखं उक्तं स्वयंभुवा॥

यो० । पुरुषः नाभेः ऊर्ध्वं मेध्यतरः स्वयंभुवा परिकीर्तितः तस्मात् स्वयंभुवा अस्यमुखं मेध्यतमं उक्तम् ॥

भा० । ब्रह्मा ने नाभिसे ऊपर पुरुषको अतिपवित्र और तिससे भी पुरुषका मुख अत्यन्तही पवित्र कहा है ॥

ता० । अब ब्राह्मणकी प्रशंसा इसलिये वर्णन करतेहैं कि सृष्टि की रक्षाकेलिये ब्राह्मणही प्रधान है और इसशास्त्र में भी सबसे प्रथम ब्राह्मणकेही धर्म वर्णन किये हैं—सबजीवों में मेध्य (उत्तम) पुरुष है और नाभि से ऊपर का भाग पुरुषका मेध्यतर (अतिश्रेष्ठ) है और तिसमें भी इसका मुख मेध्यतम (अत्यन्तही पवित्र) है यहबात ब्रह्माने कहीहै ९२ ॥

उत्तमांगोद्भवाज्ज्यैष्ठ्याद्ब्रह्मणश्चैवधारणात् । सर्वस्यैवास्यसर्गस्यधर्मतोब्राह्मणःप्रभुः ९३

प० । उत्तमांगोद्भवात् ज्यैष्ठ्यात् ब्रह्मणः च एव धारणात् सर्वस्य एव अस्य सर्गस्य धर्मतः ब्राह्मणः प्रभुः ॥

यो० । उत्तमांगोद्भवात् ज्यैष्ठ्यात् चपुनः ब्राह्मणः (वेदस्य) धारणात् अस्य सर्वस्य सर्गस्य धर्मतः प्रभुः ब्राह्मणः अस्तीतिशेषः॥

भा० । उत्तम अंगसे और सबवर्णोंसे प्रथम पैदाहोने और वेदकीरक्षाकरने और संस्कारोंकी अधिकता और सबके धर्मों के उपदेश करनेसे इस सम्पूर्ण सृष्टि का प्रभु ब्राह्मणहीहै ॥

ता० । देहमें सबसे उत्तम मुखरूप अंगसे उत्पन्नहोने और क्षत्रियआदिकों से पहिले उत्पन्न होने—और पढ़ने पढ़ानेके द्वारा वेदकीधारणासे और संस्कारोंकी विशेषतासे इस सम्पूर्णसृष्टिका धर्मसे (धर्मोंका उपदेशदेनेसे) प्रभुः ब्राह्मण इससेहै कि सबके धर्मोंकी शिक्षाकादाता ब्राह्मण ही है सिद्धान्त यहहै कि सबके धर्मोंका उपदेश और वेदकीरक्षा—और उत्तमअंगसे उत्पत्ति और सबसे प्रथम जन्म ब्राह्मणकाहीहै ९३ ॥

तंहिस्वयंभूःस्वादास्यात्तपस्तप्त्वादितोऽसृजत् । हव्यकव्याभिवाह्यायसर्वस्यास्यचगुप्तये

प० । तं हि स्वयंभूः स्वात् आस्यात् तपः तप्त्वा आदितः असृजत् हव्यकव्याभिवाह्याय सर्गस्य अस्य च गुप्तये ॥

यो० । स्वयंभूः तपः तप्त्वा स्वात् आस्यात् हव्यकव्याभिवाह्याय चपुनः अस्य सर्गस्य गुप्तये तं (ब्राह्मणं) आदितः (आदौ) असृजत् ॥

भा० । ब्रह्माने तप करके हव्य और कव्य के पहुंचाने के लिये और इस संपूर्ण सृष्टिकीरक्षा के लिये सबसे प्रथम उस ब्राह्मण कोही अपनेमुखसे रचा ॥

ता० । अब इस शंका की निवृत्ति के लिये कहतेहैं कि यह ब्राह्मण किसके अंगसे उत्पन्नहुआ है—उस ब्राह्मणको, अपने मुखसे और तपको करके और देवताओंकी हवि (साकल्य) और पितरों का कव्य (अन्न वा पिंड) के अभिवाह्य (पहुंचाने) के लिये और इससम्पूर्ण सृष्टिकीरक्षा के लिये सबकी आदि में—ब्रह्माने क्षत्रिय आदिकोंसे प्रथम रचा—जो द्रव्य हविःआदि देवताओं को दियाजाय उसे हव्य और जो अन्न वा हविः आदि पितरोंको दियाजाय उसेकव्य कहतेहैं ९४॥

यस्यास्येनसदाश्नन्तिहव्यानित्रिदिवौकसः।कव्यानिचैवपितरःकिंभूतमधिकंततः ९५॥

प० । यस्य आस्येन सदा अश्नंति हव्यानि त्रिदिवौकसः कव्यानि च एव पितरः किं भूतं अधिकं ततः ॥

यो० । यस्य आस्येन त्रिदिवौकसः हव्यानि चपुनः पितरः कव्यानि सदा अश्नंति (भुंजते) ततः (ब्राह्मणात्) अधिकं भूतं किम् — अस्तीतिशेषः ॥

भा० । जिसब्राह्मणके मुखमें बैठकर देवता हव्य और पितरकव्य सदैव खातेहैं उससे अधिक और प्राणी कौनहै ॥

ता० । अब पूर्वोक्त हव्य कव्य के पहुंचानेको स्पष्ट करतेहैं कि श्राद्धआदिक में जिस ब्राह्मणके मुखसे देवता हव्यों को और पितर कव्यों को सदैव खाते हैं अर्थात् जिस ब्राह्मणके मुखद्वारा देवताओं को हव्य और पितरोंको कव्य पहुंचताहै उसब्राह्मणसे उत्तम और भूत (प्राणी) इतर कौनहोगा अर्थात् कोई नहीं है ९५ ॥

भूतानांप्राणिनःश्रेष्ठाःप्राणिनांबुद्धिजीविनः।बुद्धिमत्सुनराःश्रेष्ठाःनरेषुब्राह्मणाःस्मृताः ९६

प० । भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठाः नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ॥

यो० । भूतानां (मध्ये) प्राणिनः — प्राणिनां (मध्ये) बुद्धिजीविनः बुद्धिमत्सु नराः नरेषु ब्राह्मणाः श्रेष्ठाः स्मृताः (मन्वादिभिरिति शेषः) ॥

भा० । स्थावर जंगमोंमें प्राणवाले—और प्राणवालोंमें बुद्धिवाले—और बुद्धिवालोंमें मनुष्य—और मनुष्यों में ब्राह्मण—श्रेष्ठहै ॥

ता० । पांचोंभूतों से उत्पन्न हुये जो स्थावर और जंगम पदार्थ उनके मध्य में (प्राणी कीट आदि) श्रेष्ठहैं क्योंकि कभी २ उनको भी सुखकालेश होताहै—और प्राणियोंमें भी बुद्धिसे जीनेवालेपशु आदि श्रेष्ठ हैं क्योंकि स्वार्थ के साधक देशकी ओरजातेहैं और निरर्थक देशसे हटतेहैं—और बुद्धिमानों में भी मनुष्य श्रेष्ठहैं क्योंकि इनको उत्तमज्ञान है—और मनुष्यों में ब्राह्मण इस कारण उत्तमहैं कि सबके पूज्य और मोक्ष के अधिकारकी इनको योग्यता हैं—यद्यपि मोक्ष के अधिकारी इतरवर्ण भी हैं तथापि वे सबके पूज्य नहीं हैं ९६ ॥

ब्राह्मणेषुचविद्वांसोविद्वत्सुकृतबुद्धयः । कृतबुद्धिषुकर्तारःकर्तृषुब्रह्मवेदिनः ९७ ॥

प० । ब्राह्मणेषु च विद्वांसः विद्वत्सु कृतबुद्धयः कृतबुद्धिषु कर्त्तारः कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः ॥

यो० । चपुनः ब्राह्मणेषु विद्वांसः विद्वत्सु कृतबुद्धयः कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवादिनः — श्रेष्ठा इतिपदं अत्रापि योज्यम् ॥

भा० । ब्राह्मणों में पंडित और पंडितोंमें कृतबुद्धि—और कृतबुद्धियों में कर्मों के करनेवाले—और करनेवालोंमें ब्रह्मकेज्ञाता—श्रेष्ठहोतेहैं ॥

ता० । ब्राह्मणोंके मध्यमें विद्वान् (पण्डित) इसकारण श्रेष्ठहै कि महान् फलके जनक ज्योतिष्टोम आदि यज्ञोंके वेही अधिकारीहैं—और विद्वानों में भी कृतबुद्धि इसहेतु श्रेष्ठ हैं कि शास्त्रोक्त कर्मोंके करनेमें उनकी यहबुद्धि होतीहै कि अमुक कर्म हमें करनेयोग्यहैं—और कृतबुद्धियोंमें भी उक्त कर्मोंके करनेवाले इसलिये श्रेष्ठ हैं कि हितकी प्राप्ति और अहितका परित्याग उनकोही होताहै—और करनेवालोंमें भी ब्रह्मके जाननेवाले इसकारण श्रेष्ठ हैं कि मोक्षकी प्राप्ति उनको ही होतीहै ९७ ॥

उत्पत्तिरेवविप्रस्यमूर्त्तिर्धर्मस्यशाश्वती । सहिधर्मार्थमुत्पन्नोब्रह्मभूयायकल्पते ९८ ॥

प० । उत्पत्तिः एव विप्रस्य मूर्त्तिः धर्मस्य शाश्वती सः हि धर्मार्थं उत्पन्नः ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

यो० । हि (यतः) सः (ब्राह्मणः) धर्मार्थं उत्पन्नः सन् ब्रह्मभूयायकल्पते (अतः) विप्रस्य उत्पत्तिः एव धर्मस्य शाश्वती मूर्त्तिः भवतीतिशेषः ॥

भा० । ब्राह्मण का जन्मही धर्म का अविनाशी शरीर इसलियेहै कि वह ब्राह्मण धर्मकेलिये उत्पन्नहोता है और धर्मसे पैदाहुये आत्मज्ञानसे मुक्तहोजाताहै ॥

ता० । जन्महोतेही ब्राह्मण का देह धर्मका अविनाशि शरीर इसलियेहै कि यह ब्राह्मण धर्म के लियेही उत्पन्नहोताहै और धर्म के अनुग्रह से प्राप्तहुये आत्मज्ञानसे मोक्षकाभागी होता है—सिद्धांत यह है कि सम्पूर्ण वर्णों के धर्मका उपदेश ब्राह्मणद्वाराही होताहै इससे ब्राह्मण धर्मका शरीररूप है ९८ ॥

ब्राह्मणोजायमानोहिपृथिव्यामधिजायते । ईश्वरःसर्वभूतानांधर्मकोशस्यगुप्तये ९९ ॥

प० । ब्राह्मणः जायमानः हि पृथिव्यां अधिजायते ईश्वरः सर्वभूतानां धर्मकोशस्य गुप्तये ॥

यो० । हि (यतः) जायमानः ब्राह्मणः पृथिव्यां अधि (उपरि) जायते (अतः) सर्वभूतानां धर्मकोशस्य गुप्तये ईश्वरः (प्रभुः) भवतीति शेषः ॥

भा० । जिससे उत्पन्न होताही ब्राह्मण पृथिवी में सबसे ऊपरहै इससे सबभूतों के धर्मसमूह की रक्षा के लिये समर्थ है ॥

ता० । जिससे ब्राह्मण जन्मताही पृथिवीभरमें सबसे ऊपर होता है इसीसे सम्पूर्ण भूतों के धर्मके कोश (समूह) की रक्षा के लिये समर्थहै क्योंकि सम्पूर्ण धर्मों का उपदेश ब्राह्मणसेही होता है ९९ ॥

सर्वस्वंब्राह्मणस्येदंयत्किंचिज्जगतीगतम्।श्रैष्ठ्येनाभिजनेनेदंसर्ववैब्राह्मणोऽर्हति १००

प०। सर्वं स्वं ब्राह्मणस्य इदं यत् किंचित् जगतीगतम् श्रैष्ठ्येन अभिजनेन इदं सर्वं वै ब्राह्मणः अर्हति॥

यो०। यत् किंचित् जगतीगतं स्वं (धनं) अस्ति तत्) इदंसर्वं ब्राह्मणस्य स्वं—भवति श्रैष्ठ्येन अभिजनेन इदं सर्वं ब्राह्मणः वै (एव) अर्हति—वै एवार्थे॥

भा०। जो कुछ जगत्के बिषे धन है वह सबधन ब्राह्मण के अपनेही धनकी तुल्यहै क्योंकि ब्रह्मा के मुखसे उत्पन्न होने के कारण इस सबधनको ब्राह्मण ही ग्रहणकरने योग्यहै॥

ता०। जो कुछ जगत् के बिषे वर्तमान धन है वह सबधन ब्राह्मणकाही स्वं (धन) है यह कथन ब्राह्मणकी प्रशंसा का बोधकहै वस्तुतः वह सबधन ब्राह्मणकानहींहै क्योंकि यदि सबधन ब्राह्मणकाही होता तो ब्राह्मणको पराये धनकी चोरीकादण्ड मनुजी क्यों वर्णनकरते इससे स्वं का अर्थ यहहै कि अपने के समानहै तिससे ब्रह्मा के मुखसे उत्पन्नहोनेसे श्रेष्ठ ब्राह्मणहीहै अत एव सबधनके ग्रहणयोग्य है इसश्लोक में वै पदका अवधारण (निश्चय) अर्थहै १००॥

स्वमेवब्राह्मणोभुंक्तेस्वंवस्तेस्वंददातिच।आनृशंस्याद्ब्राह्मणस्यभुञ्जतेहीतरेजनाः१०१॥

प०। स्वं एव ब्राह्मणः भुंक्ते स्वं वस्ते स्वं ददाति च आनृशंस्यात् ब्राह्मणस्य भुंजते हि इतरे जनाः॥

यो०। ब्राह्मणः स्वं एव भुंक्ते—स्वं वस्ते चपुनः स्वं ददाति—ब्राह्मणस्य आनृशंस्यात्इतरेजनाः(क्षत्रियादयः) भुंजते॥

भा०। ब्राह्मण जो खाता है वा पहनता है—वा देता है वह सबधन ब्राह्मण काहीहै और ब्राह्मणकी दयासेही इतरजन (मनुष्य) भोजन आदि करते हैं॥

ता०। ब्राह्मण जिसपराये अन्नको खाताहै—वा पराये वस्त्रको धारण करताहै—वा पराये द्रव्य को ग्रहणकरके दूसरेको देताहै वहभी सब ब्राह्मणकाही स्वं (धन)है इसीसे ब्राह्मणकी दयासेही क्षत्रियआदि भोजनादिक को करतेहैं १०१॥

तस्यकर्मविवेकार्थंशेषाणामनुपूर्वशः। स्वायंभुवोमनुर्धीमानिदंशास्त्रमकल्पयत् १०२॥

प०। तस्य कर्मविवेकार्थं शेषाणां अनुपूर्वशः स्वायंभुवः मनुः धीमान् इदं शास्त्रं अकल्पयत्॥

यो०। धीमान् स्वायंभुवोमनुः तस्य (चपुनः) शेषाणां (क्षत्रियादीनां) अनुपूर्वशः कर्मविवेकार्थं इदं शास्त्रं अकल्पयत्॥

भा०। बुद्धिमान् स्वायंभुव मनुने ब्राह्मणोंके कर्मोंकी विवेचना और क्रमसे इतरजातियों के कर्मोंकी विवेचना के लिये इसशास्त्रको रचा॥

ता०। उसब्राह्मणके और इतर क्षत्रियादि तीनोंवर्णोंके कर्मोंके विवेक के लिये बुद्धिमान् (सबविषयोंकाज्ञाता) स्वायंभुव (ब्रह्माकेपुत्र) मनुने इसशास्त्रको रचा—इसश्लोकसे सबसेउत्तम जो ब्राह्मण उसके कर्मोंका बोधकहोनेसे इसशास्त्रकी प्रशंसा (बड़ाई) वर्णनकी—सिद्धान्त यहहै कि मनुजीने इसशास्त्रको ब्राह्मणकेही कर्मोंके बोधनके लिये रचा— इतरोंके धर्मोंका जो वर्णन वह प्रासंगिक (प्रसंगसे) है १०२॥

विदुषाब्राह्मणेनेदमध्येतव्यंप्रयत्नतः।शिष्येभ्यश्चप्रवक्तव्यंसम्यक्नान्येनकेनचित् १०३

प० । विदुषा ब्राह्मणेन इदं अध्येतव्यं प्रयत्नतः शिष्येभ्यः च प्रवक्तव्यं सम्यक् न अन्येन कर्हिचित् ॥

यो० । विदुषा (बुद्धिमता) ब्राह्मणेन इदं प्रयत्नेन अध्येतव्यं चपुनः शिष्येभ्यः सम्यक् यथास्यात्तथा प्रवक्तव्यं अन्येन केनचिदपि न अध्येतव्यं प्रवक्तव्यंच ॥

भा० । बुद्धिमान् ब्राह्मण इसशास्त्रको बड़े यत्नसे पढ़े और शास्त्रोक्त रीतिके अनुसार अपने शिष्योंको पढ़ावे और वर्णनकरे—और अन्य कोई वर्ण इसशास्त्रको न पढ़े और न पढ़ावे ॥

ता० । इसशास्त्रके पढ़ने के फलका जाननेवाला बुद्धिमान् ब्राह्मण इसशास्त्रको बड़े यत्नसे पढ़े और भलीप्रकार शिष्योंको पढ़ावे और समझावे और अन्य (क्षत्रियआदि) वर्ण कोई भी इस शास्त्रको न पढ़े और न पढ़ावे—यद्यपि पढ़ाने और व्याख्यानको छोड़कर पढ़ना क्षत्रिय और वैश्यकोभी (निषेकादिश्मशानांतैः) इत्यादिग्रंथसे आगे वर्णनकरेंगे—तथापि पठनमात्रही क्षत्रिय और वैश्यको है पढ़ाना और व्याख्यान नहींहै—यहांपर जो मेधातिथिने कहाहै कि यहवर्णन अनुवादमात्रहै—सो ठीक नहींहै क्योंकि इससे यह प्रतीत नहींहोसक्ता कि तीनोंद्विज पढ़ें और ब्राह्मण पढ़ावे और व्याख्यान करे—और जो आगे वर्णनकरेंगे कि तीनोंवर्ण पढ़ें—वह कथन वेद विषयकहै—यहबात मनुजी स्वयं कहेंगे—और ब्राह्मणही पढ़ावे इसविधिके संभवमें अनुवादकहनेमें मेधातिथिका आग्रह वृथाहै १०३ ॥

इदंशास्त्रमधीयानोब्राह्मणःशंसितव्रतः । मनोवाग्देहजैर्नित्यंकर्मदोषैर्नलिप्यते १०४॥

प० । इदं शास्त्रं अधीयानः ब्राह्मणः शंसितव्रतः मनोवाग्देहजैः नित्यं कर्मदोषैः न लिप्यते॥

यो० । शंसितव्रतः इदंशास्त्रं नित्यं अधीयानः ब्राह्मणः मनोवाग्देहजैः कर्मदोषैः नलिप्यते — (मनोवाक्कायसंभवपापभाग्नभवति) ॥

भा० । कियेहैं व्रत जिसने ऐसा इसशास्त्रको नित्य पढ़ताहुआ ब्राह्मण मन वाणी—देहसे पैदा हुये कर्मोंके दोषोंसे लिप्त नहींहोता ॥

ता० । कियेहैं पढ़ने और पढ़ानेके व्रत(शौचआदि)जिसने ऐसा इसशास्त्रको प्रतिदिन पढ़ता हुआ ब्राह्मण मन—वाणी और देहसे पैदाहुये जो कर्मों के दोष (पाप) उनसे लिप्त नहींहोता अर्थात् इसके नित्य पढ़नेवाले के उक्तपाप नष्टहोजातेहैं १०४ ॥

पुनातिपंक्तिंवंश्यांश्चसप्तसप्तपरावरान्।पृथिवीमपिचैवेमांकृत्स्नामेकोऽपिसोऽर्हति १०५

प० । पुनाति पंक्तिं वंश्यान् च सप्त सप्त परावरान् पृथिवीं अपि च एव इमां कृत्स्नां एकः अपि सः अर्हति ॥

यो० । (इदं शास्त्रं नित्यं अधीयानः ब्राह्मणः) पंक्तिं चपुनः परावरान् सप्त सप्त वंश्यान् पुनाति—चपुनः इमां कृत्स्नां अपि पृथिवीं स एव एकः अर्हति ॥

भा० । इसशास्त्रको नित्य पढ़नेवाला ब्राह्मण—पंक्तिको और अपने वंशके अगले और पिछले सात २ मनुष्यों को पवित्र करताहै और इस सम्पूर्ण पृथिवीके ग्रहणकरनेको भी वही एक योग्यहै अर्थात् पृथिवीके प्रतिग्रहको लेकर पापका भागी नहींहोता ॥

ता० । इसश्लोकमें पिछले श्लोकसे इसशास्त्रको नित्य पढ़ताहुआ इसअर्थ के बोधक इस (इदंशास्त्रंनित्यंअधीयानः) पदका सम्बन्धकरना—इसशास्त्रको प्रतिदिन पढ़ताहुआ ब्राह्मण अपांक्त्य (पंक्तिमें बैठनेके अयोग्य—पतित) से भ्रष्टहुई पंक्ति (भोजन के समय एकत्रबैठेहुयेजन समूह) को और अपने वंशके अगले और पिछले सात सात पुरुषोंको पवित्रकरताहै—और इस सम्पूर्ण पृथिवीके भी ग्रहणकरने को वही एक योग्य इसलिये है कि उससे अधिक पात्र कोई नहीं है १०५ ॥

इदंस्वस्त्ययनंश्रेष्ठमिदंबुद्धिविवर्धनम् । इदंयशस्यमायुष्यमिदंनिःश्रेयसंपरम् १०६ ॥

प० । इदं स्वस्त्ययनं श्रेष्ठं इदं बुद्धिविवर्द्धनम् इदं यशस्यम् आयुष्यम् इदं निःश्रेयसम् परम् ॥

यो० । इदं (एतच्छास्त्रपठनं) स्वस्त्ययनं — इदं श्रेष्ठं — इदं बुद्धिविवर्द्धनम् — इदं यशस्य — इदं आयुष्यं — इदंपरं निःश्रेयसम् — भवतीति शेषः ॥

भा० । स्वस्तिका देनेवाला—श्रेष्ठ—बुद्धिका बढ़ानेवाला—यशका दाता—आयुः का देनेवाला—और सर्वोत्तम मोक्षकादाता—इसी शास्त्रका पठन है ॥

ता० । वांछित अर्थका जो नाश न होना उसे स्वस्ति कहते हैं उस स्वस्तिकी प्राप्ति कराने वाला इसशास्त्रका पढ़नाहै—और जपहोमआदि का बोधक होने से श्रेष्ठ—इतर स्वस्ति के देने वालों की अपेक्षा उत्तम—और इसशास्त्र के पढ़ने से सम्पूर्ण विधि निषेधों का ज्ञानहोताहै इससे बुद्धिका बढ़ाने वाला—और विद्वान् होनेसे ख्यातिके लाभ द्वारा यशका हितकारी—और अवस्था का बढ़ानेवाला और मोक्ष के उपायोंका बोधक होने से उत्तम मोक्षरूप—इस शास्त्रका अध्ययन है सिद्धान्त यह है इसशास्त्रका पठन सर्वोत्तम है १०६ ॥

अस्मिन्धर्मोऽखिलेनोक्तोगुणदोषौचकर्मणाम् । चतुर्णामपिवर्णानामाचारश्चैवशाश्वतः

प० । अस्मिन् धर्मः अखिलेन उक्तः गुणदोषौ च कर्मणाम् चतुर्णाम् अपि वर्णानां आचारः च एव शाश्वतः ॥

यो० । अस्मिन् (ग्रन्थे) अखिलेन धर्मः चपुनः चतुर्णाम् अपि वर्णानां शाश्वतः आचारः उक्तः चपुनः कर्मणां गुण दोषौ (उक्तौ)मनुनेतिशेषः ॥

भा० । सम्पूर्ण धर्म—और कर्मोंके गुण और दोष—और चारों वर्णों का परंपरा से चलाआया आचार—इस शास्त्रमें मनुजी ने कहाहै ॥

ता० । इस शास्त्र में सम्पूर्ण धर्म और शास्त्र विहित और निषिद्ध कर्मों के क्रमसे गुण और दोष और चारों वर्णों का परंपरासे चलाआया आचार—मनुजीने वर्णन कियाहै—यद्यपि आचार भी धर्महीहै तथापि आचारकी प्रधानता जतानेके लिये आचारको पृथक् पढ़ा है १०७ ॥

आचारःपरमोधर्मःश्रुत्युक्तःस्मार्तएवच । तस्मादस्मिन्सदायुक्तोनित्यंस्यादात्मवान्द्विजः

प० । आचारः परमः धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त्तः एवं च तस्मात् अस्मिन् सदा युक्तः नित्यं स्यात् आत्मवान् द्विजः ॥

यो० । (यस्मात्) श्रुत्युक्तः चपुनः स्मार्तोपि आचारः परमः धर्मः (अस्ति) तस्मात् आत्मवान् द्विजः अस्मिन् सदा नित्यं युक्तः स्यात् — एवाप्यर्थे ॥

भा० । श्रुति—स्मृति में कहा आचारही परमधर्म है इससे आत्मा के हितका अभिलाषी इस आचारमेंही यत्नकरे अर्थात् आचरणसे शुद्धरहे ॥

ता० । आचारकी मुख्यता को प्रकट करतेहैं—श्रुति और स्मृति में कहाहुआ आचार परमधर्महै इससे आत्मा सर्वत्र है इसबुद्धि से आत्मा हितका अभिलाषी और आत्माके ज्ञानवाला द्विज इस आचारमेंही सदायुक्त (यत्नवाला) रहै सिद्धान्त यह है कि आत्माके हित की प्राप्ति के साधन आचारमें सदैव यत्नकरे १०८ ॥

आचाराद्विच्युतोविप्रोनवेदफलमश्नुते।आचारेणतुसंयुक्तःसंपूर्णफलभाग्भवेत्१०९ ॥

प० । आचारात् विच्युतः विप्रः न वेदफलं अश्नुते आचारेण तु संयुक्तः सम्पूर्णफलभाक् भवेत् ॥

यो० । आचाराद्विच्युतः विप्रः वेदफलं न अश्नुते — तुपुनः आचारेण संयुक्तः (विप्रः) सम्पूर्णफलभाक् — भवेत् ॥

भा० । ता० । आचारहीन ब्राह्मण वेदके फलका भागी नहींहोता और आचार से संयुक्त ब्राह्मण सम्पूर्ण फलका भागी होताहै—सिद्धान्त सम्पूर्ण फल देने वाले आचारको न छोड़े१०९॥

एवमाचारतोदृष्ट्वाधर्मस्यमुनयोगतिम् । सर्वस्यतपसोमूलमाचारंजगृहुःपरम् ११० ॥

प० । एवं आचारतः दृष्ट्वा धर्मस्य मुनयः गतिं सर्वस्य तपसः मूलं आचारं जगृहुः परं ॥

यो० । मुनयः आचारतः एवं धर्मस्यगतिं दृष्ट्वा सर्वस्य तपसः परं मूलं आचारं जगृहुः ॥

भा० । इसप्रकारआचार से धर्म की प्राप्ति को जानकर सम्पूर्ण तपका उत्तम और मूलकारण आचारकोही मुनियोंने किया ॥

ता० । इस उक्त प्रकार आचारसे धर्मकी प्राप्ति को जानकर कृच्छ्र—चान्द्रायण आदि सम्पूर्ण तप का उत्तम कारण जो आचार उसको ही मुनियोंने ग्रहण किया अर्थात् आचारमेंही तत्पर हुये—आगे वर्णन कियेहुये आचार की यहांपर प्रशंसा इस शास्त्र की स्तुति के लियेहै ११० ॥

जगतश्चसमुत्पत्तिंसंस्कारविधिमेवच । व्रतचर्योपचारंचस्नानस्यचपरंविधिम् १११ ॥

प० । जगतः च समुत्पत्तिं संस्कारविधिं एव च व्रतचर्योपचारं च स्नानस्य च परं विधिम् ॥

यो० । (अस्मिन्शास्त्रेमनुः इमान् उक्तवान् इति अष्टमश्लोकेनान्वयः) जगतः समुत्पत्तिं चपुनः संस्कारविधिं चपुनः व्रतचर्योपचारं — चपुनः स्नानस्य परंविधिम् ॥

भा० । जगत्की उत्पत्ति यह पहिले अध्यायमें कही है—संस्कारोंका करना—व्रतोंका आचरण गुरुआदि की उपासना यह दूसरेअध्यायमें कहाहै और स्नानकी उत्कृष्टविधि—इसग्रंथमें मनुजी ने वर्णनकी ॥

ता० । अब शिष्योंको सुखपूर्वक ज्ञानकेलिये इसग्रन्थ में जो२धर्म वर्णनकरेंगे उनका क्रम से वर्णन करतेहैं—जगत्की उत्पत्ति—और पूर्ववर्णनकी ब्राह्मण की स्तुति और ब्राह्मण के शास्त्र की स्तुति आदिका जो वर्णनकियाहै वहभी उत्पत्तिकेही अन्तर्गतहै—और जातकर्मादिक संस्कारों का विधान (करना) और ब्रह्मचारिके व्रतोंकाआचरण और उपासन (गुरुआदिको नमस्कार और उपासना) स्नान (गुरुके यहांसे पढ़कर आये ब्रह्मचारी का एक संस्कार) की उत्तमविधि—

+ये इसशास्त्र में मनुने कहे हैं+इसपदको अगले सातश्लोक में भी सम्बन्धकरलेना १११ ॥

दाराधिगमनंचैवविवाहानांचलक्षणम्।महायज्ञविधानंचश्राद्धकल्पश्चशाश्वतः ११२॥

प० । दाराधिगमनं च एव विवाहानां च लक्षणं महायज्ञविधानं च श्राद्धकल्पः च शाश्वतः॥

यो० । चपुनः दाराधिगमनं — विवाहानांलक्षणं — चपुनः महायज्ञविधानं — चपुनः शाश्वतः श्राद्धकल्पः (अत्रमनुना उक्तः) ॥

भा० । विवाह—विवाहों के भेद—महायज्ञों की विधि और नित्यरूप श्राद्धोंकीविधि—इसग्रन्थ में मनुजीने कही ॥

ता० । विवाह और विवाहों का लक्षण—वैश्वदेवआदि पांचयज्ञों का विधान (विधि) और नित्य जो श्राद्धोंकीविधि—प्रत्येक सृष्टि में यहविधि इसीरीति से होतीहै इससे नित्य (सानातनिक) है—ये भी इसमें मनुजीने कहेहैं यह तीसरेअध्याय में कहाहै ११२ ॥

वृत्तीनांलक्षणंचैवस्नातकस्यव्रतानिच।भक्ष्याभक्ष्यंचशौचंचद्रव्याणांशुद्धिमेवच ११३॥

प० । वृत्तीनां लक्षणं च एवं स्नातकस्य व्रतानि च भक्ष्याभक्ष्यं च शौचं च द्रव्याणां शुद्धिं एव च ॥

यो० । चपुनः वृत्तीनां लक्षणं—चपुनः स्नातकस्यव्रतानि २ चपुनः भक्ष्याभक्ष्यं चपुनः शौचं चपुनः द्रव्याणांशुद्धिं॥

भा० । जीवनके उपाय—गृहस्थ के नियम—भक्ष्य और अभक्ष्य—शौच और द्रव्योंकीशुद्धि—इसग्रन्थ में मनुजीने कहीहैं ॥

ता० । जीविकाओं के उपाय अर्थात् ऋतुकृपिआदि जीवनके उपायों के भेद—और गृहस्थके नियम यह चौथेअध्यायमेंकहेहैं भक्ष्य (दधिआदि) अभक्ष्य (लशुनआदि) और शौच जैसे सूतक आदि में ब्राह्मणकी शुद्धि दशदिनमें और जलआदि से द्रव्योंकी शुद्धि—इसशास्त्र में मनुजी ने वर्णनकी हैं ११३ ॥

स्त्रीधर्मयोगंतापस्यंमोक्षंसंन्यासमेवच।राज्ञश्चधर्ममखिलंकार्याणांचविनिर्णयम्११४॥

प०।स्त्रीधर्मयोगं तापस्यं मोक्षं संन्यासं एव च राज्ञः च धर्मं अखिलं कार्याणां च विनिर्णयम्॥

यो० । स्त्रीधर्मयोगं तापस्यं — मोक्षं चपुनः संन्यासं — चपुनः राज्ञः अखिलं धर्मं चपुनः कार्याणांविनिर्णयम् ॥

भा० । स्त्रियों के धर्मोंके उपाय—वानप्रस्थ के धर्म—मोक्ष और संन्यास और राजाका सम्पूर्ण धर्म—राजाके करने योग्य कार्योंका निर्णय—इसग्रन्थमें मनुजीने कहाहै ॥

ता० । स्त्रियों के धर्मोंका उपाय—यह पांचवेंअध्याय में कहेहैं—वानप्रस्थ(जो पुत्रादिको त्याग कर स्त्री सहित वनमेंवसे) के हितकारीधर्म—और मोक्षके देनेवाला यतियों (संन्यासियों) का धर्म—और संन्यास यद्यपि संन्यास भी यतियोंका धर्म है तथापि यतियोंकेधर्मोंमें संन्यास प्रधान है इससे संन्यासको पृथक्लिखा—ये छठे ६ अध्यायमेंकहेहैं—और दृष्ट और अदृष्टका पैदाकरने वाला राजा का सम्पूर्णधर्म—यह ७ सातवें अध्याय में है—अर्थि प्रत्यर्थियों (मुदई मुदाल्हों) के कार्यों का विचारसे निर्णय—इसशास्त्र में मनुजीने कहे हैं ११४ ॥

साक्षिप्रश्नविधानंचधर्मंस्त्रीपुंसयोरपि। विभागधर्मंद्यूतंचकण्टकानांचशोधनम् ११५ ॥

प० । साक्षिप्रश्नविधानं चं धर्मं स्त्रीपुंसयोः अपि विभागधर्मं द्यूतं चं कंटकानां चं शोधनम् ॥

यो० । चपुनः साक्षिप्रश्नविधानं — स्त्रीपुंसयोः अपि धर्मं — विभागधर्मं — चपुनः द्यूतं — चपुनः कंटकानां शोधनम् ॥

भा० । साक्षियोंसे पूछनेकीविधि—भार्या और पतिकेधर्म—विभागकाधर्म— द्यूत (जुआ) की विधि और चोरआदिका शोधन (ताडना वा निकासना) ॥

ता० । साक्षिके पूछनेमें राजाके करनेयोग्य यह आठवें अध्यायमें हैं—और स्त्री पुरुषोंका धर्म-और पुत्र स्त्री आदिके विभागकाधर्म अर्थात् परस्परकी सन्निधि और असन्निधिमें क्या २ स्त्री पुरुषोंको करनायोग्यहै और द्यूतकाविधान—यह द्यूतशब्द से द्यूतकी विधि लेतेहैं—और कंटकों (चोरआदिकों) का शोधन (निकासना)—यद्यपि साक्षियों से पूछनाभी व्यवहारकाही एकअंग है तथापि प्रधानहोनेसे पृथक् लिखाहै—और यद्यपि विभागकाधर्मभी कार्योंके निर्णयमें आजाता तथापि अध्यायके भेदसे पृथक् लिखाहै ११५ ॥

वैश्यशूद्रोपचारंचसंकीर्णानांचसंभवम्। आपद्धर्मंचवर्णानांप्रायश्चित्तविधिंतथा ११६॥

प० । वैश्यशूद्रोपचारं चं संकीर्णानां चं संभवम् आपद्धर्मं चं वर्णानां प्रायश्चित्तविधिं तथा ॥

यो० । चपुनः वैश्यशूद्रोपचारं चपुनः संकीर्णानां सभवम् — चपुनः वर्णानां आपद्धर्मं — तथा प्रायश्चित्तविधिं ॥

भा० । वैश्य और शूद्रोंको कर्त्तव्यधर्म—और संकीर्णजातियोंकी उत्पत्ति—चारोंवर्णोंके विपत्ति समयके धर्म—और प्रायश्चित्तकी विधि ॥

ता० । वैश्य और शूद्रोंको अपने २ धर्मोंका करना यह नवमेंअध्यायमेंहै और संकीर्णजातियों (अनुलोमज प्रतिलोमजों) की उत्पत्ति—और आपत्कालमें जीविका का उपदेश—यह दशमें अध्यायमें हैं—और प्रायश्चित्तों*की विधि प्रायश्चित्त पद का अर्थ यहहै कि निश्चयसे तप करना-यह ग्यारहवें अध्याय में है ११६ ॥

संसारगमनंचैवत्रिविधंकर्मसंभवम् । निःश्रेयसंकर्मणांचगुणदोषपरीक्षणम् ११७ ॥

प० । संसारगमनं चं एवं त्रिविधं कर्मसंभवं निःश्रेयसं कर्मणां चं गुणदोषपरीक्षणम् ॥

यो० । चपुनः कर्मसंभवं संसारगमनं त्रिविधं निःश्रेयसं — चपुनः कर्मणां गुणदोषपरीक्षणम् ॥

भा० । कर्मों से उत्पन्न तीनप्रकारकी संसारकीगति—आत्मज्ञान—औरके गुण और दोषों की परीक्षा ॥

ता० । उत्तम मध्यम और अधम भेदसे तीनप्रकारका कर्मोंसेउत्पन्न संसारका गमन अर्थात् एकदेहको त्यागकर दूसरेदेहमें जाना—और निःश्रेयस (आत्माकाज्ञान) क्योंकि वही सबसेउत्तम मोक्षरूप श्रेयकाहेतु आत्मज्ञानहीहै और विहित और निषिद्धकर्मोंके गुण और दोषोंकी क्रम से परीक्षा (सत् असत्का विचार)—इसशास्त्रमें मनुजीने कहेहैं ११७ ॥

---

* प्रायोनामतपःप्रोक्तं चित्तंनिश्चयउच्यते तपोनिश्चयसंयुक्तं प्रायश्चित्तंविधीयते ॥

देशधर्माञ्जातिधर्मान्कुलधर्मांश्चशाश्वतान् । पाषण्डगणधर्मांश्चशास्त्रेऽस्मिन्नुक्तवान्मनुः ॥

प० । देशधर्मान् जातिधर्मान् कुलधर्मान् चँ शाश्वतान् पाषंडगणधर्मान् चँ शास्त्रे अस्मिन् उक्तवान् मनुः ॥

यो० । देशधर्मान् — जातिधर्मान् चपुनः शाश्वतान् कुलधर्मान् — चपुनः पाषंडगणधर्मान् — मनुः अस्मिन् शास्त्रे उक्तवान् ॥

भा० । देश — जाति — कुल — पाषण्ड और गण इनके धर्म इसशास्त्र में मनुजीने कहे हैं ॥

ता० । देशोंके धर्म अर्थात् प्रत्येक नियतदेशोंमें करनेयोग्य धर्म — और ब्राह्मण आदि जातियोंमें नियत धर्म — और कुलविशेषों में नियत धर्म — पाषंडोंके धर्म अर्थात् वेदसे भिन्न आगम में कहेहुये धर्मको माननेवालों के धर्म और वैश्यआदि जोगण उनके धर्म — इसशास्त्र में मनुजी ने वर्णनकिये हैं ११८ ॥

यथेदमुक्तवाञ्शास्त्रंपुरापृष्टोमनुर्मया । तथेदंयूयमप्यद्यमत्सकाशान्निबोधत ११९ ॥

इतिमानवेधर्मशास्त्रेभृगुप्रोक्तायांसंहितायांप्रथमोऽध्यायः १ ॥

प० । यथा इदं उक्तवान् शास्त्रं पुरा पृष्टः मनुः मया तथा इदं यूयं अपि अद्य मत् सकाशात् निबोधत ॥

यो० मया पुरा पृष्टः मनुः यथा इदं शास्त्रं उक्तवान् — यूयमपि अद्य मत्सकाशात् तथा निबोधत ॥

भा० । मेरे पूछनेसे मनु जैसे इस शास्त्रको पहिले कहते भये तैसे ही मेरे सकाश से अब तुम भी सुनो ॥

ता० । मेरा पूछाहुआ मनु पहिले इस शास्त्रको जैसे कहताभया तैसेही अर्थात् न्यून और अधिक रहित मेरे सकाश से अब तुमसुनो — यद्यपि यह पहिले भी कहचुके हैं तथापि ऋषियों की श्रद्धा बढ़ाने के लिये पुनः कहाहै ११९ ॥

इति मन्वर्थभास्करे प्रथमोऽध्यायः १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

विद्वद्भिःसेवितःसद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः । हृदयेनाभ्यनुज्ञातोयोधर्मस्तंनिबोधत १ ॥

प० । विद्वद्भिः सेवितः सद्भिः नित्यं अद्वेषरागिभिः हृदयेन अभ्यनुज्ञातः यः धर्मः तं निबोधत ॥

यो० । अद्वेषरागिभिः विद्वद्भिः नित्यं सेवितः — हृदयेन अभ्यनुज्ञातः यः धर्मः (अस्ति) तं यूयं निबोधत शृणुत ॥

भा० । राग और द्वेष से रहित — सत्पुरुष और पण्डित (वेदके ज्ञाता) जनों ने किया और हृदय से जाना जो धर्म उसको तुम सुनो ॥

ता० सर्वोत्तम परमात्मा के ज्ञानरूप जो धर्म ज्ञानके लिये जगत्के कारण ब्रह्मका वर्णन करके अब ब्रह्मज्ञान का अंग जो संस्कार आदि धर्म उसके वर्णन करने की इच्छा जिनकी ऐसे मनुजी पहिले सामान्यधर्म का लक्षण कहते हैं वेदके जाननेवाले और धर्म के रसिक और राग और द्वेषसे रहित—सज्जनों (ऋषियों) ने किया और हृदयसे मुख्यजाना जो धर्म उसको तुम सुनो—इस श्लोक में उक्त ऋषियों ने जाना और हृदय से मुख्यजाना यह कहने से यह सूचित किया कि यह धर्म ही कल्याणका हेतु है क्योंकि उसी में रसके ज्ञान से मन अभिमुख होताहै और वेदके जाननेवालोंने जाना इस कहनेसे यह सूचित कियाहै कि वेदका जाननाही कल्याण का कारण है क्योंकि कोई यह कहे कि खड्गधारी ने मारा तो धाराहुआ खड्ग ही मारने में समर्थ है अर्थात् यह सिद्धभया कि वेद है प्रमाण जिसमें ऐसा धर्म ही कल्याण (मोक्ष) का कारण है--सिद्धान्त यह है कि (१) वेदविद्भिर्ज्ञात—इस विशेषण से मनुजीने यहसूचित किया कि वेदसेही धर्म जाना जाताहै—और हृदयेनाभ्यनुज्ञात यह कहने से कल्याणका हेतु धर्म्म है—और ऐसे धर्मको मन दुहताहै इससे पूर्वोक्तही धर्मका लक्षण मुनियोंने रचा—इसीसे हारीतऋषि ने यह कहाहै (२) इसके अनन्तर धर्म का वर्णन करते हैं कि वेदहै प्रमाण जिसमें वही धर्म है और श्रुति के दो भेद हैं एक वेद की दूसरी तंत्रकी (३) भविष्यपुराण में भी यह लिखा है कि धर्म ही कल्याण रूप कहा है और अभ्युदय (प्रतापकी वृद्धिको श्रेय (कल्याण कहतेहैं हेगरुड वह अभ्युदय पांचप्रकार का कहाहै और वेद जिसमें प्रमाणहो और जो नित्य हो ऐसे धर्म्म को भली प्रकार करने से स्वर्ग और मोक्ष होताहै— और इस लोकमें अतुल सुख—ऐश्वर्य—होता है अर्थात् इनकल्याणों का साधन धर्महै—और(४)जैमिनि ने भीकहाहै कि यह भी धर्मका लक्षण उत्पन्नहोता है कि चोदना है लक्षण जिसका ऐसा जो पदार्थ उसेधर्म कहतेहैं अर्थात् दो प्रकार की जो तर्क (हित अहित)से जो जानाजाय वही धर्म है कल्याण का हेतु जो ज्योतिष्टोम आदि यज्ञ—और प्रत्यवाय (पाप) का हेतु जो श्येनआदि यज्ञ वह अनर्थहै उन दोनों में वेद जिस में प्रमाणहै ऐसा ज्योतिष्टोम आदिही धर्महै—और आगे हम (मनु) दिखावेंगे कि स्मृतिआदि भी वेद मूल होनेसे ही धर्म में प्रमाण हैं—और गोविन्दराजने (हृदयेनाभ्यनुज्ञातः) इसकायह अर्थ कहा है कि अन्तःकरण में सन्देहरहित जो हो वही धर्म है ऐसा अर्थ करने में धर्म का यह लक्षण होगा कि वेद के जाननेवालों ने नहीं किया और संदेहरहित जो हो वही धर्म है—इस लक्षण में पंडितजन इससे श्रद्धा नहीं करते कि ग्राम में जाना आदि जो प्रत्यक्ष देखा लौकिक धर्म उसमें भी यह लक्षण घटसक्ता है—और मेधातिथि तो यह अर्थ करते हैं कि जिसमें चित्त

---

(१) वेदविद्भिर्ज्ञातइतिमयंजानोविशेषणं वेदादेवपरिज्ञातोधर्मइत्युक्तवान्मनुः १
हृदयेनाभिमुख्येन ज्ञातइत्यपिनिर्दिशन् श्रेयःसाधनमित्याह तदुज्ञातमुखंमनः २
वेदप्रमाणकंश्रेयः साधनधर्मइत्यतः मनूक्तमेवमुनयः प्राणिन्युर्धर्मलक्षणम् ३

(२) अथातोधर्मं व्याख्यास्यामः श्रुतिप्रमाणकोधर्मः श्रुतिश्चद्वैधावैदिकीतांत्रिकीच ॥

(३) धर्मःश्रेयःसमुद्दिष्टंश्रेयोभ्युदयलक्षणं सतुपंचविधःप्रोक्तोवेदमूलःसनातनः १
अस्यसम्यगनुष्ठानात्स्वर्गोमोक्षश्चजायते इहलोकेसुखैश्वर्यमतुलंचखगाधिप २ ॥

(४) इदमपिधर्मलक्षणमसूत्रयत् चोदनालक्षणोधर्म इति ॥

प्रवृत्तहो वा हृदय नाम वेद वेदही भावना (विचार) से पढ़ाहुआ हृत् कहाताहै उसमें जिसकी स्थितिहो वही धर्म अर्थात् वेदसे जाना हुआ ही धर्म होताहै १ ॥

कामात्मतानप्रशस्तानचैवेहास्त्यकामता।काम्योहिवेदाधिगमःकर्मयोगश्चवैदिकः २॥

प०।कामात्मता न प्रशस्ता न च एव इह अस्ति अकामता काम्यः हि वेदाधिगमः कर्मयोगः च वैदिकः ॥

यो० । कामात्मता प्रशस्ता न (भवति) हि (यतः) वेदाधिगमः चपुनः वैदिककर्मयोगः काम्यः (अस्तिअतः) इह अकामतानचैवास्ति ॥

भा० । स्वर्गआदिफलकी इच्छाप्रशस्त (अच्छी) नहींहै और जिससे वेदकास्वीकार वेदोक्त कर्मों का सम्बन्ध इच्छाविषयहै इससे अकामता (इच्छाकात्याग) भी इसजगत्मेंनहींहै अर्थात् फलकी इच्छा का त्याग है और वेदोक्तकर्मों का त्याग नहींहै ॥

ता० । पुरुषको फलकी अभिलाषा प्रशस्तनहीं है क्योंकि वह बन्धन का हेतु है—और स्वर्ग आदि अभिलाषासे कियेहुये कर्म पुनर्जन्मकेलिये कारण होतेहैं—और नित्य (संध्यावन्दनादि) और नैमित्तिक (जातकर्मादि) जो कर्महैं वह आत्मामें सहकारीहोकर मोक्षकेलिये समर्थहैं—इस श्लोक से इच्छामात्र का निषेध नहींसमझना किंतु फल की इच्छाका निषेध समझना—इसी श्लोक में यह वर्णनकिया कि जिससे वेदकास्वीकार वेदोक्त सम्पूर्णधर्मों का सम्बन्ध इच्छा को विषयहैं—अर्थात् जो नित्य नैमित्तिककर्म हैं वे इच्छाके विना नहींहोसक्ते—इससे इसजगत्में अकामता (इच्छाकापरित्याग) नहीं हैं किंतु फलकी इच्छाके परित्यागही मोक्ष के जनक हैं सिद्धान्त यहहै कि फलकी इच्छासे कर्म नहींकरना २ ॥

संकल्पमूलःकामोवैयज्ञाःसंकल्पसंभवाः।व्रतानियमधर्माश्चसर्वेसंकल्पजाःस्मृताः३॥

प०।संकल्पमूलः कामः वै यज्ञाः संकल्पसंभवाः व्रतानि यमधर्माः च सर्वे संकल्पजाः स्मृताः॥

यो०।कामः संकल्पमूलो (भवति) यज्ञाः संकल्प संभवाः व्रतानि चपुनः यमधर्माः संकल्पजाः स्मृता मनुनेतिशेषः॥

भा० । इच्छा का मूल संकल्प हैं—यज्ञोंकी और व्रतोंकी संपूर्ण यमधर्मोंकी मनुजीने उत्पत्तिः संकल्प से कही हैं ॥

ता० । पिछिले श्लोक में कहेहुये में कारण वर्णन करते हैं कि इच्छा का मूल संकल्प हैं और इस कर्म से इस इष्टफलको मैं सिद्धकरताहूं इस बुद्धिको संकल्प कहतेहैं—उस संकल्प पीछे जब यह निश्चय होजाते हैं कि यह कर्म मेरे इस इष्टका जनक है तभी उस कर्म के करनेमें इच्छा होतीहै और मनुष्य उस कर्म के लिये यत्न भी जभी करता है—इसरीति से इच्छाकामूल संकल्प है—और यज्ञ—व्रत—यम—धर्म—(चौथे अध्यायमें कहेहुये) ये संपूर्ण धर्म और इतर भी शास्त्रके विषय संकल्पसे होतेहैं—अर्थात् इच्छा के बिना इनमेंसे कोई भी उत्पन्न नहीं होता—इस श्लोक में गोविंदराजने तो व्रतानि पदसे कर्तव्यकर्म और यम धर्मपदसे निषिद्धकर्म लिये हैं—सिद्धांत यह है कि फलेच्छात्याज्य है और निष्कामइच्छा ग्राह्य है ३ ॥

अकामस्यक्रियाकाचिद्दृश्यतेनेहकर्हिचित्।यद्यद्धिकुरुतेकिंचित्तत्तत्कामस्यचेष्टितम्४॥

प० । अकामस्य क्रिया काचित् दृश्यते न इह कर्हिचित् यत् यत् हि कुरुते किंचित् तत् तत् कामस्य चेष्टितं ॥

यो० । इह काचिदपिक्रिया अकामस्य कर्हिचित्नदृश्यतेहि(यत्)यत्किंचित्कुरुते तत्तत्कामस्यचेष्टितं (भवतीतिशेषः) ॥

भा० । जिससे इच्छारहित पुरुष का कोई भी कर्म इस जगत् में नहीं दीखता इससे जो जो कर्म मनुष्य करता है वह वह कर्म इच्छाकाही कार्य है ॥

ता० । सब धर्म कामनासे होतेहैं इसमें लौकिक नियम दिखातेहैं–इस जगत् में जो कोई भोजन– गमन–आदि–क्रिया दीखतीहैं व सब इच्छा के विना नहीं दीखती इससे लौकिक अथवा वेदोक्त जो जो कर्म पुरुषकरता है वह वह संपूर्ण इच्छाकाही काम है–सिद्धांत यह है कि संपूर्ण कर्मों का कारण इच्छा है ४ ॥

तेषुसम्यग्वर्तमानोगच्छत्यमरलोकताम्।यथासंकल्पितांश्चेहसर्वान्कामान्समश्नुते ५॥

प० । तेषु सम्यक् वर्तमानः गच्छति अमरलोकतां यथासंकल्पितां च इह सर्वान् कामान् समश्नुते

यो० । तेषु सम्यक् वर्तमानः (पुरुषः) अमरलोकतां गच्छति चपुनः इह यथा संकल्पितान् सर्वान् कामानश्नुते ॥

भा० । उनशास्त्रोक्त कर्मोंमें भलीप्रकार वर्त्तताहुआ पुरुष मोक्ष वा ब्रह्मभावको प्राप्तहोताहै और इसलोकमें भी अपने संकल्प के अनुसार सम्पूर्ण कामनाओं को भोगताहै ॥

ता० । अब पूर्वोक्त फलकी इच्छाके निषेधकी समाप्तिकरतेहैं कि उन शास्त्रोक्त कर्मोंके विषय भलीप्रकार प्रवृत्तिवाला पुरुष अमरलोकता (ब्रह्मभाव वा मोक्ष) को प्राप्तहोताहै–यहां मनुजी ने शास्त्रोक्त कर्मोंकी इच्छा का निषेध नहीं किया किंतु उनके विषे भलीप्रकार प्रवृत्ति वर्णनकरी हैं–और भलीप्रकार प्रवृत्ति इसकानाम है कि बंधनकेहेतु फलकी इच्छाकेविना शास्त्रोक्तकर्मोंको करना–और मोक्षको प्राप्तहुआ पुरुष सब का ईश्वर होनेसे इस लोक में भी संपूर्ण आकांक्षित भोगोंको अपनी इच्छा के अनुसार प्राप्त होताहै–क्योंकि छांदोग्य उपनिषद् में*यह लिखाहै कि जब उसब्रह्मज्ञानीको पितृलोककी कामना हो–इसके संकल्पसे तभी पितरसमीप आजातेहैं ५ ॥

वेदोऽखिलोधर्ममूलंस्मृतिशीलेचतद्विदाम्।आचारश्चैवसाधूनामात्मनस्तुष्टिरेवच ६ ॥

प० । वेदः अखिलः धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदां आचारः च एव साधूनां आत्मनः तुष्टिः एव च ॥

यो० । अखिलोवेदः धर्ममूलं – तद्विदां स्मृतिशीले (धर्ममूले) चपुनः साधूनां आचारः चपुनः आत्मनः तुष्टिः धर्ममूलं –अस्तीतिशेषः ॥

भा० । सम्पूर्णवेद–और वेदके ज्ञाताओंकी स्मृति और शील और साधुओंकाआचरण और अपनी प्रसन्नता–धर्ममें प्रमाणहैं अर्थात् धर्मके कारणहैं ॥

---

* सयदा पितृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्तीत्यादि ॥

ता० । अब धर्ममें प्रमाण कहतेहैं—ऋक्—यजुः साम—अथर्व रूप जो सम्पूर्ण वेदहै वहभी धर्म में प्रमाणहै अर्थात् चारोंवेदमें वर्णनकरनेसे धर्म सबको कर्त्तव्यहै किसी कर्म आदिकी विधिके अबोधक जो अर्थवादरूप वेदकेवाक्यहैं वे भी विधिवाक्योंके संग मिलकर अर्थके बोधकहोनेसे वा स्तुतिके बोधकहोनेसे धर्ममें प्रमाणहैं क्योंकि जैमिनिने कहाहै(१)कि विधिवाक्योंके संग एक वाक्यताहोने और विधियोंकी स्तुतिके लिये होनेसे मंत्र और अर्थवाद भी धर्म में प्रमाण हैं अर्थात् अर्थवाद भी विधिवाक्योंके संग एकवाक्यताको प्राप्तहोकर अथवा कर्मोंकेकरनेकेसमय करनेयोग्य कर्मोंके स्मरणकरनेमें उपयोगीहोनेसे अर्थवाद वाक्य भी धर्ममें प्रमाण हैं और वेद जो धर्म में प्रमाणहै यहबात अनुभव और न्यायसे सिद्धहै इससे स्मृति आदिकोंको भी वेदमूलकहोने से धर्म में प्रमाणता हैं अतएव वेद के ज्ञाता मनुआदि की स्मृति भी धर्म में प्रमाण है और वेदज्ञाता यह कहने से मनुजी कोभी यही अभीष्ट है कि वेदमूलकहोनेसही स्मृति आदि को प्रमाणताहै—और शील भी धर्म में प्रमाण है और वह शील तेरह प्रकारका हारीतऋषि ने कहाहै(२)ब्रह्मण्यहोना—देव और पिताकी भक्ति—सौम्यस्वभाव—इतरको दुःख न देना—अन्यके गुणों में दोषोंको न देखना—कोमलता—अकठोरता—मित्रता—प्रियवचनता—कृतज्ञता—शरणागत की रक्षा—दया—शान्ति—यहशील भी धर्म में प्रमाण है—और गोविन्दराज ने तो राग और द्वेष का त्यागही शील कहा है—और कम्बल वक्कल आदिका धारणरूप साधु (धार्मिक) ओंका आचरण भी धर्ममें प्रमाणहै और अपनीतुष्टि (प्रसन्नता) भी धर्ममें प्रमाणहै इसमें यहशंका नहींकरनी कि यदि किसीको निषिद्ध कर्म से संतोष होय तो वह भी प्रमाण है—क्योंकि यह प्रसन्नता उस कर्म में प्रमाण है जहां विकल्प है जैसा कि (३) एकवाक्य यह है कि सूर्योदयहोने पर हवनकरै और एक यहहै कि सूर्योदय के पहिले हवनकरै—उन दोनों में जिसमें अपनी प्रसन्नताहो वही कर्म धर्ममें प्रमाण है अर्थात् धर्मका जनक है क्योंकि(४)गर्गमुनि ने भी यही लिखा है कि वैकल्पिक में अपनी प्रसन्नता भी धर्म में प्रमाण है ६ ॥

यःकश्चित्कस्यचिद्धर्मोमनुनापरिकीर्तितः । ससर्वोऽभिहितोवेदेसर्वज्ञानमयोहिसः ७ ॥

प० । यः[1] कश्चित्[2] कस्यचित्[3] धर्मः मनुना[4] परिकीर्त्तितः सः सर्वः अभिहितः वेदे[7] सर्वज्ञानमयः हि[11] सः ॥

यो० । हि (यतः) सः (मनुः) सर्वज्ञानमयः (अतः तेन) मनुना कस्यचित (ब्राह्मणादेः) यो धर्मः परिकीर्त्तितः सः सर्वोपिधर्मः वेदे अभिहितः (उक्तः) ॥

भा० । जिससे वह मनु सर्वज्ञ है इससे उस मनु ने जो ब्राह्मणआदि के धर्म वर्णनकिये हैं वे सब धर्म वेदमें कहे हैं ॥

ता० । यद्यपि वेदसे अन्य स्मृतिआदिको वेदमूलक होनेसे प्रमाणता पहिले कही है तथापि

---

(१) विधिनात्वेकवाक्यत्वात्स्तुत्यर्थेन विधीनांस्युः--

(२) ब्रह्मण्यता--देवपितृभक्तता-सौम्यता-अपरोपतापिता-मृदुता-अपारुष्यत्वं मैत्रता--प्रियवादित्वं--कृतज्ञता-कारुण्यं--प्रशांतिश्चेति त्रयोदशविधं शीलं--

(३) उदितेजुहोति- अनुदितेजुहोति--

(४) वैकल्पिके आत्मतुष्टिः प्रमाणम्--

मनुस्मृति को सबसे श्रेष्ठ जनानेकेलिये विशेषकर वेदमूलक वर्णनकरते हैं—जो कुछधर्म ब्राह्मण आदि का मनुने कहाहै वहसब धर्म वेदमें वर्णनकियाहै क्योंकि यह मनु सर्वज्ञ हैं—और इसीसे पठन पाठन में प्रचलित सांगोपांग वेदको इस अपनेग्रन्थमें मनुजीने संग्रहकियाहै—गोविंदराज ने तो (सर्वज्ञानमयः) यह विशेष वेदकाही कहाहै कि वह वेद सर्वज्ञका रचाहुआहै इससे मनु के कहेहुये सम्पूर्ण धर्म वेदमेंकहे हैं ७ ॥

सर्वंतुसमवेक्ष्येदंनिखिलंज्ञानचक्षुषा । श्रुतिप्रामाण्यतोविद्वान्स्वधर्मेनिविशेतवै ८ ॥

प० । सर्वं तु समवेक्ष्य इदं निखिलं ज्ञानचक्षुषा श्रुतिप्रामाण्यतः विद्वान् स्वधर्मे निविशेत वै ॥

यो० । विद्वान् (पंडितः पुरुषः) इदंनिखिलं ज्ञानचक्षुषा समवेक्ष्य श्रुतिप्रामाण्यतः स्वधर्मे वै (निश्चयेन) निविशेत-- स्वधर्मे अवतिष्ठेत ॥

भा० । विद्वान् पुरुष इस सम्पूर्ण वेदको शास्त्रज्ञानरूपी नेत्रोंसे देखकर वेदविहित अपनेधर्म में प्रविष्टहोजाय ॥

ता० । वेदके अर्थ के ज्ञानके लिये उचित इस सम्पूर्णवेदको मीमांसा और व्याकरण आदि नेत्रों से भलीप्रकार जानकर अर्थात् मीमांसा व्याकरणआदि के बलसे वेदकोपढ़ और वेद की प्रमाणता से अपने कर्तव्यकर्म को जानकर विद्वानपुरुष अपने धर्म में प्रविष्टहोजाय ८ ॥

श्रुतिस्मृत्युदितंधर्ममनुतिष्ठन्हिमानवः । इहकीर्तिमवाप्नोतिप्रेत्यचानुत्तमंसुखम् ९ ॥

प० । श्रुतिस्मृत्युदितं धर्मं अनुतिष्ठन् हि मानवः इह कीर्तिं अवाप्नोति प्रेत्य च अनुत्तमां गतिम् ॥

यो० । मानवः श्रुतिस्मृत्युदितं धर्मं अनुतिष्ठन्सन इह कीर्तिं चपुनः प्रेत्य अनुत्तमांगतिं हि (निश्चयेन) अवाप्नोति ॥

भा० । वेद और धर्मशास्त्र में कहेहुये धर्मोंको करताहुआ मनुष्य इसलोकमें कीर्तिको और परलोक में सबसे उत्तम (मोक्ष) गतिको प्राप्तहोताहै ॥

ता० । श्रुति (वेद) और स्मृति (धर्मशास्त्र)में कहेहुये धर्मकोकरताहुआ मनुष्य इसलोक में तो इसलिये कीर्तिको प्राप्तहोता है कि वहीपुरुष धार्मिक है और परलोकमें धर्मका सर्वोत्तम फल स्वर्ग वा मोक्षको प्राप्तहोताहै इसश्लोकसे मनुजीने यहकहा कि वस्तुतःप्रसिद्धहैं गुणजिसके ऐसे धर्मको मनुष्य सदैवकरै ९ ॥

श्रुतिस्तुवेदोविज्ञेयोधर्मशास्त्रंतुवैस्मृतिः।तेसर्वार्थेष्वमीमांस्येताभ्यांधर्मोहिनिर्बभौ १०॥

प० । श्रुतिः तु वेदः विज्ञेयः धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः ते सर्वार्थेषु अमीमांस्ये ताभ्यां धर्मः हि निर्बभौ ॥

यो० । वेदस्तु (वेदएव) श्रुतिः विज्ञेयः धर्मशास्त्रंतु स्मृतिः विज्ञेया ते सर्वार्थेषु (अतः) अमीमांस्ये हि (यतः) ताभ्यांधर्मः निर्बभौ ॥

भा० । वेदको श्रुति और धर्मशास्त्रको स्मृति कहतेहैं वे दोनों सबविषयोंमें शंकाकरनेकेअयोग्य इससेहैं उनदोनोंसेही धर्मका प्रकाश हुआहै ॥

ता० । यद्यपि यहबात जगत्में प्रसिद्ध है कि श्रुतिपद का अर्थ वेदहै और स्मृतिपदका अर्थ

धर्मशास्त्र है तथापि इसश्लोक से मनुजीने लोक प्रसिद्धकाही अनुवाद इसलियेकियाहै कि प्रति-कूल तर्कसे वे दोनों विचारने (खंडनकरने) के अयोग्य हैं और स्मृति भी श्रुतिकेतुल्य होनेसे आचारआदि से बलवान् है–तिससे स्मृतिसे विरुद्ध जो आचरण वह त्यागनेयोग्य है सिद्धान्त यह पूर्वोक्तही इस अनुवादका फलहै श्रुतिको वेद और धर्मशास्त्रकोस्मृतिकहतेहैं वे दोनोंसम्पूर्ण विषयोंमें विचारने के अयोग्यहैं अर्थात् उनदोनों में कहाहुआ धर्म आदि शंकाकरनेयोग्य नहींहै क्योंकि इनदोनोंसेही धर्मका प्रकाशहुआ है १० ॥

योऽवमन्येततेमूलेहेतुशास्त्राश्रयाद्द्विजः।ससाधुभिर्बहिष्कार्योनास्तिकोवेदनिन्दकः ११॥

प० । यः अवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयात् द्विजः सः साधुभिः बहिष्कार्यः नास्तिकः वेदनिंदकः ॥

यो० । यः द्विजः हेतुशास्त्राश्रयात् ते मूले अवमन्येत नास्तिकः वेदनिंदकः सः साधुभिः बहिष्कार्यः ॥

भा० । जो द्विज धर्मकेमूल उनदोनों (श्रुति–स्मृति) का अपमानकरताहै नास्तिक और वेद के निंदक उसको साधुजन अध्ययन आदि कर्मोंसे बाहिर (पतित) करदें ॥

ता० । जो द्विज हेतुशास्त्र (तर्कशास्त्र) के आश्रयसे धर्मकेमूल उनदोनों श्रुतिस्मृतियोंका ति-रस्कारकरै अर्थात्–वेदकावाक्य अप्रमाणहै वाक्यहोनेसे विप्रलम्भकवाक्यवत्–इत्यादि प्रतिकू-ल तर्कके बलसे दोनोंका अपमान करताहै–चार्वाक आदि नास्तिकोंके तुल्य वह वेदका निंदक पुरुष–साधुजनोंको द्विजोंके करनेयोग्य कर्मोंसे निःसार्य (बाहिर करनेयोग्य)है अर्थात् वह वेदके अध्ययनादि कर्मका अधिकारी नहींहै ११ ॥

वेदःस्मृतिःसदाचारःस्वस्यचप्रियमात्मनः।एतच्चतुर्विधंप्राहुःसाक्षाद्धर्मस्यलक्षणम् १२॥

प० । वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियं आत्मनः एतत् चतुर्विधं प्राहुः साक्षात् धर्मस्य लक्षणम् ॥

यो० । वेदः स्मृतिः सदाचारः चपुनः स्वस्य आत्मनः प्रियं चतुर्विधं एतत् धर्मस्य साक्षात् लक्षणं (बुधाः) प्राहुः ॥

भा० । वेद–स्मृति–शिष्टोंकाआचार–और अपनेको प्रिय– यह चारप्रकारका धर्मका स्वरूप ऋषियोंने कहाहै ॥

ता० । संप्रति (अब) शील आचारमेंही आजायगा और धर्ममें वेदमूलहोनाहीप्रमाणहै और स्मृति और शीलादिनहीं यह दिखानेके लिये धर्ममें चारप्रकारका प्रमाण कहतेहैं कि वेदधर्ममें प्रमाण है और वह वेद कहीं तो प्रत्यक्षहै और कहीं स्मृतिआदिसे अनुमित है–इस तात्पर्यसे प्रमाणहै कुछ गिनतीमें नहीं इसीसे पहिले श्रुति और स्मृति दोहीकहेहैं–और शिष्टोंका आचरण और अपने आत्माकी प्रसन्नता अर्थात् जहां कर्मोंका विकल्पहो वहां जिसमें अपनी रुचिहो वही कर्म धर्मका जनकहै यह चारप्रकारका धर्मका लक्षण (स्वरूप) ऋषियोंने कहाहै १२ ॥

अर्थकामेष्वसक्तानांधर्मज्ञानंविधीयते । धर्मजिज्ञासमानानांप्रमाणंपरमंश्रुतिः १३ ॥

प० । अर्थकामेषु असक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ॥

यो० । अर्थकामेषु असक्तानां (पुरुषाणां) धर्मज्ञानं विधीयते – धर्म जिज्ञासमानानां परमं प्रमाणं श्रुतिः – अस्तीतिशेषः ॥

भा० । धन और विषयों की इच्छा रहित मनुष्य धर्म को जानें और धर्म के जानने की जो इच्छा करें उनको धर्म ज्ञानके लिये वेदही उत्कृष्ट प्रमाणहै अर्थात् वे वेदसेही धर्म को जानें ॥

ता० । धन और विषयोंकी आकांक्षारहित मनुष्योंके लिये यह धर्मकाउपदेशहै और जो अर्थ (धन) और कामकी चेष्टासे जगत्में जताने के लिये कर्मोंको करतेहैं उनको कर्मका फल नहीं होता—और धर्मके जाननेकीहै इच्छाजिनकी उनको उत्तमप्रमाण श्रुतिहीहै- श्रुतिकोही मनुजी ने उत्तमता कहीहै इससे जहां श्रुति और स्मृतिका विरोधहो वहां स्मृतिमें उक्तधर्म का आदर नहींकरना—इसीसे(१)जाबाल ऋषिने कहाहै कि श्रुति और स्मृतिके विरोधमें श्रुति श्रेष्ठहै और जहां विरोध नहींहै वहां स्मृतिमें कहे कर्मकाभी सत्पुरुष वेदोक्त कर्मके समानहीकरें—और भविष्यपुराण(२)में भीकहाहै कि श्रुतिकेसंग विरोधमें विषयके बिनास्मृति बाधीजाती है-और जैमिनि(३)ने भी कहाहै कि विरोधमें स्मृति का वाक्य अप्रमाण है और अविरोध में स्मृति के मूल वेदका अनुमानहोता है १३ ॥

श्रुतिद्वैधंतुयत्रस्यात्तत्रधर्मावुभौस्मृतौ । उभावपिहितौधर्मौसम्यगुक्तौमनीषिभिः १४ ॥

प० । श्रुतिद्वैधं तु यत्र स्यात् तत्र धर्मौ उभौ स्मृतौ उभौ अपि हि धर्मौ सम्यक् उक्तौ मनीषिभिः ॥

यो० । यत्रतु श्रुतिद्वैधंस्यात् तत्र उभौ धर्मौ (मनुना) स्मृतौ—हि (यतः) तौ उभौ धर्मौ मनीषिभिः सम्यक् उक्तौ ॥

भा० । जहां दो श्रुतिहों वहां दोनों भी धर्म मनुने कहेहैं क्योंकि बुद्धिमान् पिछले ऋषियोंने भी वे दोनों श्रेष्ठ कहेहैं ॥

ता० । जहां श्रुतियों का द्वैध हो अर्थात् परस्पर विरुद्ध अर्थ का कथन हो वहां वे दोनों धर्म मनु ने माने हैं क्योंकि उनका विरोध इससे नहींहै कि वे दोनों श्रुतितुल्य बलहैं और भिन्न २ कर्मों को कर्तव्य कहती हैं—जिससे वे दोनों धर्म मनुआदि से पिछले भी बुद्धिमान् ऋषियों ने समीचीन (अच्छे) कहेहैं और इसी प्रकार तुल्य न्यायसे जहां दो स्मृतियों का विरोध है वहां भी दोनों कर्मोंका विकल्प होता है—क्योंकि वे दोनोंभी तुल्य बलहैं—इसीसे (४) गौतमऋषिने कहाहै कि तुल्य बलवालों का जहां विरोधहो वहां विकल्प होता है १४ ॥

उदितेऽनुदितेचैवसमयाध्युषितेतथा । सर्वथावर्ततेयज्ञइतीयंवैदिकीश्रुतिः १५ ॥

प० । उदिते अनुदिते च एव समयाध्युषिते तथा सर्वथा वर्तते यज्ञः इति इयं वैदिकी श्रुतिः ॥

यो० । उदिते चपुनः अनुदिते तथा समयाध्युषिते (काले) यज्ञः सर्वथा वर्तते इति इयं वैदिकीश्रुतिः अस्तीतिशेषः ॥

भा० । यह वेदकी श्रुतिहै कि सूर्योदय के अनन्तर वा पहिले अथवा सूर्य और नक्षत्र ये दोनों जिसकालमें न हों तब—सर्वथा अर्थात् भिन्न २ समयोंमें यज्ञहोताहै ॥

ता० । पूर्वोक्त में दृष्टान्त कहते हैं कि सूर्योदय होनेपर अथवा सूर्योदयसे पूर्वसमयमें अथवा समयाध्युषितकाल (जब सूर्यहो न नक्षत्र हो)में जिससमय अरुण किरणहों—जब कोई२नक्षत्र

(१) श्रुतिस्मृतिविरोधेतुश्रुतिरेवगरीयसी । अविरोधेसदाकार्यं स्मार्तंवैदिकवत्सता ॥

(२) श्रुत्यासहविरोधेतु बाध्यतेविषयंविना ॥

(३) विरोधेत्वनपेक्षंस्यात् असतिह्यनुमानकम् ॥

(४) तुल्यबलविरोधे विकल्पः ॥

हो उसकालको अनुदित कहते हैं सदैव यज्ञ (होम) की प्रवृति होती अर्थात् देवता के लिये हविः आदि द्रव्य दियाजाताहै इस श्लोकमें यज्ञ पदसे होम आदिका बोध गौणवृत्ति (लक्षणा) से है और इसमें परस्पर विरुद्ध कर्मोंकी बोधक ये श्रुतिहैं १५ ॥

निषेकादिश्मशानान्तोमन्त्रैर्यस्योदितोविधिः ।
तस्यशास्त्रेऽधिकारोऽस्मिन्ज्ञेयोनान्यस्यकस्यचित १६ ॥

प० । निषेकादिश्मशानांतः मंत्रैः यस्य उदितः विधिः तस्य शास्त्रे अधिकारः अस्मिन् ज्ञेयः न अन्यस्य कस्यचित् ॥

यो० । यस्य (वर्णस्य) निषेकादिश्मशानांतः विधिः मंत्रैः उदितः तस्य अस्मिन् शास्त्रे अधिकारः (अस्ति) अन्यस्य कस्यचित् न ॥

भा० । गर्भाधानसे लेकरि अंत्येष्टिपर्यंतकर्म जिसके वेद के मंत्रोंसेकरने कहे हैं उसीका इस शास्त्र में अधिकार जानना—और अन्य किसीका नहीं ॥

ता० । गर्भाधानसे लेकर अंत्येष्टिपर्यंत कर्म जिसवर्णके मंत्रोंसे कहेहैं उसी वर्ण का अर्थात् तीनों द्विजातियोंका इसशास्त्र (मनु) के पढ़ने और सुननेमें अधिकारहै और अन्यशूद्र आदिका नहीं और इसका पठनपाठन तो अपने २ अधिकारके अनुसार तीनोंद्विजाति(ब्राह्मणक्षत्रियवैश्य) को कर्तव्यहै—और पढ़ाना और व्याख्यानरूप वर्णनमें तो ब्राह्मणकाही अधिकार है यहबात विदुषा ब्राह्मणेन इसश्लोक में वर्णनकरचुकेहैं १६ ॥

सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् । तंदेवनिर्मितंदेशंब्रह्मावर्तंप्रचक्षते १७ ॥

प० । सरस्वतीदृषद्वत्योः देवनद्योः यत् अंतरं तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ॥

यो० । देवनद्योः सरस्वती दृषद्वत्योर्यत्अन्तरं (मध्यं) देवनिर्मितं देशं (मुनयः) ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ॥

भा० । सरस्वती और दृषद्वती देवताओं की नदियों के मध्यका जो देवताओं का रचाहुआ देश उसको मुनियोंने ब्रह्मावर्त कहाहै ॥

ता० । अब धर्मका स्वरूप और धर्ममें प्रमाण और धर्मकेभेद इनको वर्णनकरके धर्मकेकरने योग्य देशोंको कहतेहैं—सरस्वती—और दृषद्वती जो देवताओंकी नदी उनके मध्यका जो देवताओंका रचाहुआ देश उसको मुनि ब्रह्मावर्त कहतेहैं—इस श्लोक में नदी और देशके देव और देवनिर्मित क्रमसे विशेषण दियेहैं उनसे यह सूचनहोताहै कि उक्त नदी और देश अत्यन्तश्रेष्ठ हैं—और उनके मध्यका देश भी इसीसे कर्मकरने के लिये अतीव श्रेष्ठ है १७ ॥

तस्मिन्देशेयआचारःपारंपर्यक्रमागतः । वर्णानांसान्तरालानांससदाचारउच्यते १८ ॥

प० । तस्मिन् देशे यः आचारः पारंपर्यक्रमागतः वर्णानां सांतरालानां सः सदाचारः उच्यते ॥

यो० । तस्मिन् देशे सांतरालानां वर्णानां पारंपर्यक्रमागतः यः आचारः सः आचारः (मनुना) सदाचारः उच्यते ॥

भा० । उस देशके चारोवर्ण और शंकर जातियोंके आचरणहैं वेही मनुजी ने सत्पुरुषों के आचरण कहेहैं ॥

ता० । उस देशमें प्रायः शिष्टहीरहतेहैं इससे उस देशके निवासी ब्राह्मण आदि वर्ण और संकीर्णजातियों (अनुलोमज प्रतिलोमज) का जो परंपरा से–चलाआया आचार उसीको मनुजी ने सदाचार (सत्पुरुषों का आचरण) कहा है–सिद्धांत यह कि सत्पुरुष ब्रह्मावर्तनिवासियों के समानही आचरण करें १८ ॥

कुरुक्षेत्रंचमत्स्याश्चपञ्चालाःशूरसेनकाः । एषब्रह्मर्षिदेशोवैब्रह्मावर्तादनन्तरः १९ ॥

प० । कुरुक्षेत्रं चँ मत्स्याः चँ पंचालाः शूरसेनकाः एषः ब्रह्मर्षिदेशः वै ब्रह्मावर्तात् अनंतरः॥

यो० । कुरुक्षेत्रं चपुनः मत्स्याः चपुनः पंचालाः शूरसेनकाः एषः ब्रह्मर्षिदेशः ब्रह्मावर्तात् अनंतरः भवतीतिशेषः ॥

भा० । कुरुक्षेत्र मत्स्य पंचाल शूरसेन ब्रह्मर्षियोंके रहनेकेयोग्य येदेश ब्रह्मावर्तसे कुछकमहैं ॥

ता० । कुरुक्षेत्र मत्स्य पंचाल (पंजाब) और शूरसेन (मथुराके प्रान्तकाभाग) यहब्रह्मर्षियोंके निवासकरनेका देश ब्रह्मावर्तसे कुछन्यून है–अर्थात् इसमें निवास करनेवालोंका आचरण भी सदाचार कहाता है १९ ॥

एतद्देशप्रसूतस्यसकाशादग्रजन्मनः । स्वंस्वंचरित्रंशिक्षेरन्पृथिव्यांसर्वमानवाः २० ॥

प० । एतद्देशप्रसूतस्य सकाशात् अग्रजन्मनः स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

यो० । एतद्देशप्रसूतस्य अग्रजन्मनः सकाशात् सर्वमानवाः पृथिव्यां स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् ॥

भा० । ता० । कुरुक्षेत्र आदि देशमें पैदाहुये ब्राह्मणके सकाश से पृथिवीके संपूर्ण मनुष्य अपने अपने आचरण को सीखें २० ॥

हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यंयत्प्राग्विनशनादपि । प्रत्यगेवप्रयागाच्चमध्यदेशःप्रकीर्तितः २१ ॥

प० । हिमवद्विंध्ययोः मध्यं यत् प्राक् विनशनात् अपि प्रत्यक् इव प्रयागात् चँ मध्यदेशः प्रकीर्तितः ॥

यो० । हिमवत्विंध्ययोः मध्यं – विनशनात्प्राक् – चपुनः प्रयागात् प्रत्यक् – (योदेशः सः) मध्यदेशः प्रकीर्तितः मनुनेतिशेषः ॥

भा० । हिमाचल और विन्ध्याचलके मध्यको और कुरुक्षेत्रसे पूर्व और प्रयाग से पश्चिम के देश को (मनुजीने) मध्यदेश कहाहै ॥

ता० । उत्तरादिशामें स्थित हिमाचल और दक्षिणादिशामें स्थित जो विन्ध्याचलपर्वत उनका जो मध्यभागहै और विनशन (कुरुक्षेत्र जहां सरस्वती छिपीहैं) से पूर्व–और प्रयागसे पश्चिम का जो देशहै उसको (मनुजीने) मध्यदेश कहाहै २१ ॥

आसमुद्रात्तुवैपूर्वादासमुद्रात्तुपश्चिमात् । तयोरेवान्तरंगिर्योरार्यावर्तंविदुर्बुधाः २२ ॥

प० । आसमुद्रात् तुँ वै पूर्वात् आसमुद्रात् तुँ पश्चिमात् तयोः एँव अंतरं गिर्योः आर्यावर्तं विदुः बुधाः ॥

यो० । आपूर्वात् समुद्रात् आपश्चिमात् समुद्रात् तयोः (हिमवद्विंध्ययोः) एवगिर्योः अंतरं (मध्यं) बुधाः आर्यावर्तं विदुः ॥

भा० । पूर्वके समुद्रसे पश्चिमके समुद्रतक और हिमाचल और विन्ध्याचल का मध्यभाग—इसदेशको पंडितजन आर्यावर्त्त कहतेहैं ॥

ता० । पूर्वके समुद्रसे पश्चिम और पश्चिमके समुद्रसे पूर्वका और हिमाचल और विन्ध्याचल के मध्यका जो देशहै पंडितजन उसदेशको आर्यावर्त्त कहतेहैं आर्यावर्त्त उसेकहतेहैं जिसमें आर्य (सज्जन)वारम्बार जन्मलें—और आसमुद्रात् इनदोनों पदोंमें आङ्(आ)का अर्थ मर्यादाहै अभिविधिनहीं—जहां जिसपदके संग आङ् हो उसके अर्थका भी बोधहो वहां अभिविधि कहातीहै—और जहां उस दूसरे पदके अर्थका बोध न हो वहां मर्यादा कहातीहै इस पूर्व और पश्चिम समुद्रोंके मध्यमें निवासियोंको छोड़कर मध्यके निवासियों कीही आर्यावर्त्त संज्ञाहै २२ ॥

कृष्णसारस्तुचरतिमृगोयत्रस्वभावतः।सज्ञेयोयज्ञियोदेशोम्लेच्छदेशस्त्वतःपरः २३ ॥

प० । कृष्णसारः तु चरति मृगः यत्र स्वभावतः सः ज्ञेयः यज्ञियः देशः म्लेच्छदेशः तु अतः परः ॥

यो० । यत्रस्वभावतः कृष्णसारः मृगःचरति सःदेशः याज्ञियः ज्ञेयः अतःपरः (अन्यःदेशः) म्लेच्छदेशः — ज्ञेयः ॥

भा० । ता० । कृष्णसार (काला) मृग जिसदेशमें स्वभावसे विचरे अर्थात् अन्यदेशसे बलपूर्वक लानेसे न विचरे वही देश यज्ञकरनेके योग्यहै और अन्य—म्लेच्छदेश है २३ ॥

एतान्द्विजातयोदेशान्संश्रयेरन्प्रयत्नतः।शूद्रस्तुयस्मिन्कस्मिन्वानिवसेद्वृत्तिकर्शितः२४

प० । एतान् द्विजातयः देशान् संश्रयेरन् प्रयत्नतः शूद्रः तु यस्मिन् कस्मिन् वा निवसेत् वृत्तिकर्शितः ॥

यो० । द्विजातयः एतान् देशान् प्रयत्नतः संश्रयेरन् —वृत्तिकर्शितः शूद्रस्तु यस्मिन् कस्मिन्वा निवसेत् ॥

भा० । तीनों द्विजाति इन्हीं देशोंमें बड़े यत्नसे बसे और आजीविकासे दुःखी शूद्र तो चाहै जहांभी बासको करै ॥

ता० । अन्यदेशोंमें पैदाहुये भी ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्य इनदेशोंमेंही बड़े यत्नसे इसलिये बसे कि ये पूर्वोक्तदेश यज्ञ और अदृष्ट के लिये योग्यहैं और आजीविकासे दुःखको प्राप्तहुआ शूद्र तो जिस किसी देशमें भी बसे—सिद्धान्त यहहै किसी लोभ आदि के वशसे तीनों द्विजाति अन्य देशोंमें न बसें २४ ॥

एषाधर्मस्यवोयोनिःसमासेनप्रकीर्तिता। संभवश्चास्यसर्वस्यवर्णधर्मान्निबोधत २५ ॥

प० । एषा धर्मस्य वः योनिः समासेन प्रकीर्तिता संभवः च अस्य सर्वस्य वर्णधर्मान् निबोधत ॥

यो० । वः (युष्माकं) धर्मस्य योनिः समासेन (मया) प्रकीर्तिता — चपुनः अस्य सर्वस्य (जगतः) संभवः (प्रकीर्तितः) —(इदानीं) वर्णधर्मान् निबोधत (शृणुत) ॥

भा० । यह धर्म के ज्ञानका कारण और इस सबजगत्की उत्पत्ति संक्षेपसे तुमको कही—अब वर्णोंके धर्मोंको सुनो ॥

ता० । यह तुम्हारे धर्मके ज्ञान का कारण और इस सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति संक्षेपसे कही अब वर्णोंके धर्मोंको सुनो—यहां योनि शब्दसे ज्ञानका कारण लेतेहैं और वह—वेदोऽखिलोधर्ममूलं—इत्यादि श्लोकोंमें कहाहै— यह गोविन्दराजने तो धर्मशब्दसे अपूर्वरूप (जो कर्मकरने से

सुखका जनक अदृष्ट आत्मामें पैदाहोताहै) अदृष्टलिया है—इसश्लोकमें वर्णधर्मशब्दसे वर्णधर्म—आश्रमधर्म—वर्णाश्रमधर्म—गुणधर्म—नैमित्तिकधर्म—लेतेहैं—और वे पांचों भविष्यपुराण*में इस प्रकार कहेहैं कि वर्ण १ धर्म २ आश्रमधर्म और ३ वर्णाश्रमधर्म—और तीसरे वर्णाश्रमधर्म के दोभेदहैं १ गौण और २ नैमित्तिक—वर्णके आश्रयसे जो धर्म प्रवृत्तहो उसको वर्णधर्म कहतेहैं—हेराजन् जैसे यज्ञोपवीत—और जो धर्म आश्रम के आश्रयसे प्रचलितहो वह आश्रमधर्महै जैसा भिक्षाकामांगना और दण्डआदि—और जो धर्मवर्ण और आश्रम दोनोंके आश्रयसे मानाजाय वह वर्णाश्रम धर्म कहाहै जैसी ब्राह्मणको मूंजकीमेखला (कौंदनी) क्षत्रियको मुर्वाकी और वैश्यको शणकी- लिखीहै—और जिसधर्मकी गुणसे प्रवृत्तिहो वह गुणधर्मकहाताहै जैसे मूर्द्धाभिषिक्त (चक्रवर्त्तीराजा) का धर्म प्रजाकीरक्षा—और जो एक किसी निमित्त के आश्रय से किया जाय वह धर्म नैमित्तिक जानना जैसे प्रायश्चित्तका करना २५ ॥

वैदिकैःकर्मभिःपुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम् । कार्यःशरीरसंस्कारःपावनःप्रेत्यचेहच २६॥

प० । वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैः निषेकादिः द्विजन्मनां कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य च इह च ॥

यो० । द्विजन्मनां—प्रेत्य चपुनः इह पावनः—निषेकादिः—शरीरसंस्कारः—वैदिकैः पुण्यैः कर्मभिः कार्यः ॥

भा० । द्विजातियोंके—परलोक और इसलोक में पवित्रकरनेवाले गर्भाधानआदि शरीरके संस्कार—वेदोक्त अतएव पवित्र मंत्रोंसेकरने ॥

ता० । वेदमेंकहेहुये पुण्य (श्रेष्ठ) मंत्र औरप्रयोग (विधि) आदिसे द्विजातियोंके परलोक और इसलोक में पवित्रकरनेवाले अर्थात् पापका नाशक गर्भाधानआदि शरीरके संस्कार—करने अर्थात् वेदोक्तमंत्रविधि इनतीनों द्विजोंकोही कर्तव्यहै—और वे कर्म परलोक में इसलिये पवित्र करतेहैं पूर्वोक्त संस्कारवालाही यज्ञकेफलका भागीहोताहै और इसलोकमें इसलियेहै कि संस्कृत मनुष्यकोही वेदके पढ़ने का अधिकार है २६ ॥

गार्भैर्होमैर्जातकर्मचौडमौञ्जीनिबंधनैः । बैजिकंगार्भिकंचैनोद्विजानामपमृज्यते २७॥

प० । गार्भैः होमैः जातकर्मचौडमौञ्जीनिबंधनैः बैजिकं गार्भिकं च एनः द्विजानां अपमृज्यते

यो० । द्विजानां बैजिकं चपुनः गार्भिकं एनः (पापं) गार्भैः जातकर्मचौडमौञ्जीनिबन्धनैः होमैः अपमृज्यते (दूरीक्रियते) ॥

भा० । पिताके बीजके और गर्भके दोषसे जो द्विजातियोंका पापहै वह गर्भाधान—जातकर्म—मुंडन और जनेऊ के होमसे दूरहोता है ॥

---

* वर्णधर्मःस्मृतस्त्वेकः आश्रमाणामतःपरं ॥ वर्णाश्रमस्तृतीयस्तु गौणोनैमित्तिकस्तथा १ वर्णत्वमेकमाश्रित्ययोधर्मः संप्रवर्तते ॥ वर्णधर्मःसउक्तस्तु यथोपनयनंनृप २ यस्त्वाश्रमंसमाश्रित्य अधिकारःप्रवर्तते ॥ सखल्वाश्रमधर्मस्तु भिक्षादण्डादिकोयथा ३ वर्णत्वमाश्रमत्वंच योधिकृत्यप्रवर्तते ॥ सवर्णाश्रमधर्मस्तु मौञ्जीयामेखलायथा ४ योगुणेनप्रवर्तेत गुणधर्मःस उच्यते ॥ यथामूर्द्धाभिषिक्तस्य प्रजानांपरिपालनं ५ निमित्तमेकमाश्रित्य योधर्मःसंप्रवर्तते ॥ नैमित्तिकःसविज्ञेयः प्रायश्चित्तविधिर्यथा ६ ॥

ता० । जिसपाप के नाशक वेदोक्तकर्म हैं उसपापका संभव द्विजातियों को कहतेहैं कि गर्भ की शुद्धिकेलिये कर्तव्यहोमोंसे और उत्पन्नहोतेको जो मंत्रसे घी चटायाजाता है उसजातकर्म के और मुंडन और यज्ञोपवीनके होमोंसे द्विजातियोंके वैजिक और गार्भिक पाप अर्थात् निषिद्ध मैथुन के संकल्प से पिता के वीर्यमें दोषसे जो पाप और अशुद्ध माताकेगर्भमें वसनेसे जो पाप है वह दूरकियाजाता है २७ ॥

स्वाध्यायेनव्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्ययासुतैः । महायज्ञैश्चयज्ञैश्चब्राह्मीयंक्रियतेतनुः २८

प० । स्वाध्यायेन व्रतैः होमैः त्रैविद्येन इज्यया सुतैः महायज्ञैः च यज्ञैः च ब्राह्मी इयं क्रियते तनुः ॥

यो० । इयंब्राह्मी (ब्रह्मप्राप्तियोग्या) तनुः स्वाध्यायेन- व्रतैः होमैः त्रैविद्येन- इज्यया- सुतैः चपुनः महायज्ञैः चपुनः यज्ञैः क्रियते ॥

भा० । वेदका अध्ययन—व्रत—होम—त्रैविद्यनामकव्रत—तर्पण पुत्रमहायज्ञ और यज्ञों से यह देह ब्रह्मकी प्राप्तिके योग्य होताहै ॥

ता० । वेदकेपढ़ने—और मधु मांस आदि के त्यागरूपव्रत—और गायत्री से चरु (साकल्य) के और सायंकाल और प्रातःकाल के होम और त्रैविद्य है नामाजिसका ऐसेव्रत—यहसब व्रतोंमें अप्रधानहै इसलिये पृथक् लिखाहै—और ब्रह्मचर्य अवस्थामें देवता ऋषि पितरोंके तर्पण—और गृहस्थअवस्था में पुत्रकी उत्पत्ति और महायज्ञ (ब्रह्मयज्ञ आदि पांचयज्ञ) और ज्योतिष्टोम आदि यज्ञ—से यह ब्राह्मी (ब्रह्मकी प्राप्ति के योग्य तनु (देह) अर्थात् देहकेविषे वर्त्तमानआत्मा कियाजाताहै क्योंकि कर्मसहित ब्रह्मज्ञानसे ही मोक्ष की प्राप्ति होतीहै सिद्धांत यह है कि पूर्वोक्त कर्मों के करने से ब्रह्मज्ञान द्वारा मोक्ष होताहै २८ ॥

प्राङ्नाभिवर्द्धनात्पुंसोजातकर्मविधीयते । मन्त्रवत्प्राशनंचास्यहिरण्यमधुसर्पिषाम् २९

प० । प्राक् नाभिवर्धनात् पुंसः जातकर्म विधीयते मंत्रवत् प्राशनं च अस्य हिरण्यमधु-सर्पिषाम् ॥

यो० । नाभिवर्द्धनात्प्राक् पुंसः जातकर्मविधीयते (तदा) अस्य (बालस्य) हिरण्यमधुसर्पिषां मंत्रवत्प्राशनंच विधीयते ॥

भा० । ता० । नाभिछेदन (नालकाटने) से पहिले पुरुषका जातकर्म करनाकहाहै—और उसी समय अपने गृह्यमें कहेहुये मंत्रों को पढ़कर इस बालकको सहत—सोना—घी का भक्षणकरना कहा है २९ ॥

नामधेयंदशम्यांतुद्वादश्यांवास्यकारयेत् । पुण्येतिथौमुहूर्त्तेवानक्षत्रेवागुणान्विते ३०

प० । नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वा अस्य कारयेत् पुण्ये तिथौ मुहूर्त्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते ॥

यो० । अस्य नामधेयंतु दशम्यां वा द्वादश्यां- पुण्ये तिथौ वा (पुण्ये) मुहूर्त्ते वा गुणान्विते नक्षत्रे कारयेत् ॥

भा० । दशवें बारवेंदिन—वा पवित्र तिथि अथवा पवित्र मुहूर्त्त वा ज्योतिष से निश्चयकिये गुणवाले नक्षत्र में—इस बालकका नामधेयकरै (नामरक्खे) ॥

ता० । इस बालकका नामधेय (नामरखना) दशमी तिथि को—यहां दशमी तिथि से बाल

के जन्मसे ही दशमी तिथि लेनी क्योंकि पिछले श्लोकमें जातकर्म–इस पदसे जन्मकाही प्रकरण है–वा बारवीं तिथिको–वा पुण्य (पवित्र) तिथिको–वा पवित्र मुहूर्तमें वा ज्योतिःशास्त्र से निश्चय किये गुणवाले नक्षत्रमें–अथवा(१)अशौचकी निवृत्ति हुयेपर नामकर्म करे–इस शंखके बचनानुसार बारवें दिन ही–नामकर्म करे– स्वयं न करसकेतो ब्राह्मणद्वारा करावे ३० ॥

मंगल्यंब्राह्मणस्यस्यात्क्षत्रियस्यबलान्वितम् । वैश्यस्यधनसंयुक्तंशूद्रस्यतुजुगुप्सितम् ।

प० । मंगल्यं ब्राह्मणस्य स्यात् क्षत्रियस्य बलान्वितं वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितं ॥

यो० । ब्राह्मणस्य मंगल्यं- क्षत्रियस्य बलान्वितं -वैश्यस्य धनसंयुक्तं -शूद्रस्यतुजुगुप्सितं (नामधेयं) स्यात् ॥

भा० । ब्राह्मणका नाम मंगलदायक–क्षत्रियका बलसहित–वैश्यका धनसहित और शूद्रका निन्दित नाम होनाहै ॥

ता० । ब्राह्मणका नाम मंगल्य जिसके उच्चारणमें मंगल प्रतीतहो जैसा शुभदेव–क्षत्रियका नाम बलान्वित जिसके उच्चारणसे बल प्रतीतहो जैसा बलदेव–वैश्यका नाम धनसे संयुक्त जैसा राम वसु (वा धन) शूद्रकानाम जुगुप्सित(निन्दित)जिससे निन्दा प्रतीतहो जैसा दीनदास–होता है ३१ ॥

शर्मवद्ब्राह्मणस्यस्याद्राज्ञोरक्षासमन्वितम्।वैश्यस्यपुष्टिसंयुक्तंशूद्रस्यप्रेष्यसंयुतम्३२

प० । शर्मवत् ब्राह्मणस्य स्यात् राज्ञः रक्षासमन्वितं वैश्यस्य पुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतं ॥

यो० । ब्राह्मणस्य शर्मवत् -राज्ञः रक्षासमन्वितं – वैश्यस्य पुष्टि संयुक्तं – शूद्रस्य प्रेष्य संयुतं – (नामधेयं) स्यात् ॥

भा० । ब्राह्मणका शर्मसहित क्षत्रियका रक्षासहित वैश्यका पुष्टिसहित शूद्रका प्रेष्यसहित नाम रखनाचाहिये ॥

ता० । अब इन चारों वर्णोंके नामोंके समीप जो जो पद लगाने चाहिये उनका नियमकहतेहैं कि ब्राह्मणका नाम शर्मपदवाला जैसा कि शुभदेवशर्मा क्षत्रियका नाम रक्षासहित जैसा कि बलदेववर्मा वैश्यका नाम पुष्टिसे संयुक्त जैसा कि वसुदेवभूति शूद्रका नाम प्रेष्यसहित जैसा कि दीनदासनाम होनाहै क्योंकि यमराजने (२) यहकहाहै कि ब्राह्मणकानाम शर्मदेव क्षत्रियका वर्मत्राता वैश्यका भूतिदत्त और शूद्रका दासकरावे और विष्णुपुराणमें (३) भी कहाहै कि ब्राह्मणका नाम शर्मयुक्त क्षत्रियका वर्मयुक्त वैश्यका गुप्तयुक्त शूद्रका दासयुक्त नाम रखना३२॥

स्त्रीणांसुखोद्यमक्रूरंविस्पष्टार्थंमनोहरम् । मंगल्यंदीर्घवर्णान्तमाशीर्वादाभिधानवत् ३३

प० । स्त्रीणाम् सुखोद्यं अक्रूरम् विस्पष्टार्थम् मनोहरम् मंगल्यं दीर्घवर्णान्तं आशीर्वादाभिधानवत् ॥

यो० । स्त्रीणां (नामधेयं) सुखोद्यं अक्रूरं विस्पष्टार्थं मनोहरं मंगल्यं दीर्घवर्णान्तं आशीर्वादाभिधानवत् (स्यात्) इति पूर्वश्लोकात्संबध्यते ॥

---

(१) अशौचेतुव्यतिक्रान्ते जातकर्मविधीयते–

(२) शर्मदेवश्चविप्रस्यवर्मत्राताचभूभुजः भूतिदत्तश्चवैश्यस्यदासःशूद्रस्यकारयेत् १ ॥

(३) शर्मवद्ब्राह्मणस्योक्तंवर्मेतिक्षत्रसंयुतम् गुप्तदासात्मकंनामप्रशस्तंवैश्यशूद्रयोः २ ॥

भा० । सुखसे बोलनेयोग्य सुगम अर्थका वाची–प्रकट जिसका अर्थहो जो मनको अच्छा प्रतीतहो जो मंगलका वाचीहो–दीर्घ स्वर जिसके अंतमें हो और जिसमें आशीर्वादका वाचक शब्दहो–ऐसा नाम स्त्रियोंका रखना ॥

ता० । स्त्रियोंका नाम सुखसे उच्चारण करनेयोग्य–सुगम अर्थ का वाचि–और जिसका अर्थ प्रकटहो और जिससे मनकी प्रसन्नताहो और जिसके उच्चारण से मंगल प्रतीतहो और जिसके अंतमें दीर्घ स्वरहो और जो आशीर्वाद के बोधक शब्द से युक्तहो–स्त्रियोंका नाम ऐसा होताहै जैसा यशोदा वा देवी इत्यादि ३३ ॥

चतुर्थेमासिकर्त्तव्यंशिशोर्निष्क्रमणंगृहात् । षष्ठेऽन्नप्राशनंमासियद्वेष्टंमंगलंकुले ३४

प० । चतुर्थे मासि कर्त्तव्यं शिशोः निष्क्रमणं गृहात् षष्ठे अन्नप्राशनम् मासि यत् वा इष्टं मंगलं कुले ॥

यो० । चतुर्थे मासि गृहात् शिशोः निष्क्रमणं षष्ठे मासि अन्नप्राशनं वा यन्मंगलं कुले इष्टं तत्कर्त्तव्यम् ॥

भा० । चौथे मासमें जन्मके घरसे बालकको सूर्यके दर्शन के लिये घरसे बाहर निकासे छटे महीनेमें अन्नका प्राशनकरावे अथवा अपने कुलानुसार पूर्वोक्त कर्मोंको करे ॥

ता० । चौथे महीने में जन्मके घरसे सूर्यके दर्शनके लिये बालकको बाहर निकासे और छटे महीने में बालकको अन्नका प्राशन (भोजन) करावे अथवा जो अपने कुलाचार धर्मके अनुसार जब अच्छा प्रतीतहो तब करे इससे पूर्वोक्त कालसे अन्यकालमें भी बालक घरसे निकासना आदि पायाजाताहै इसीसे यमराजने (१) तीसरे महीनेमें बालकको सूर्यका दर्शनकराना लिखा है और यह कुलाचारके अनुसार इनदोनोंकर्मोंके कहनेका कथन सबकर्मोंमें समझलेना तिस्से नामोंके आगे शर्मपद आदिका मेलभी कुलरीतिके अनुसार करना ३४ ॥

चूडाकर्मद्विजातीनांसर्वेषामेवधर्मतः । प्रथमेऽब्देतृतीयेवाकर्त्तव्यंश्रुतिचोदनात् ३५

प० । चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषाम् एव धर्मतःप्रथमे तृतीये वा कर्त्तव्यं श्रुतिचोदनात् ॥

यो० । सर्वेषां एव द्विजातीनां चूडाकर्म प्रथमे तृतीये वा अब्दे श्रुतिचोदनात् धर्मतः कर्त्तव्यं ॥

भा० । ता० । सब द्विजातियों का चूडाकर्म धर्मकेलिये वेदकी आज्ञाके अनुसार पहिलेवर्षमें अथवा तीसरे वर्षमें करे–यह विकल्प कुलधर्म के अनुसार समझना क्योंकि जिससमय लड़के के केश छिलते हैं उससमय बालकभी बाणोंकेसमान होताहै अर्थात् निर्भयहोजाना है (२) इसमंत्र से चूडाकर्म का कोई काल नहीं कहा और आश्वलायन गृह्यसूत्रमें भी (३) यह लिखाहै कि तीसरे वर्षमें अथवा कुलधर्म के अनुसार मुंडन करना ३५ ॥

गर्भाष्टमेऽब्देकुर्वीतब्राह्मणस्योपनायनम् । गर्भादेकादशेराज्ञोगर्भात्तुद्वादशेविशः ३६

प० । गर्भाऽष्टमे अब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्य उपनायनं गर्भात् एकादशे राज्ञः गर्भात् तु द्वादशे विशः

(१) ततस्तृतीयेकर्त्तव्यंमासिसूर्यस्यदर्शनं ॥

(२) यत्रबाणाःसंपतंतिकुमाराविशिखाइव ॥

(३) तृतीयेवर्षेचौलं यथा कुलधर्मंवा ॥

यो० । ब्राह्मणस्य गर्भात् अष्टमे अब्दे राज्ञः गर्भात् एकादशे तुपुनः विशः गर्भात् द्वादशे अब्दे उपनायनं (यज्ञोपवीतं) कुर्वीत ॥

भा० । गर्भसे आठमेवर्ष ब्राह्मणका—गर्भसे ग्यारहवेंवर्ष क्षत्रियका—और गर्भ से बारहवेंवर्ष वैश्यका—यज्ञोपवीतकरै ॥

ता० । गर्भसे आठमेवर्ष ब्राह्मणका गर्भसे ग्यारहवेंवर्ष क्षत्रियका और गर्भसे बारहवें वैश्यका यज्ञोपवीतकरै और इस योगीश्वर याज्ञवल्क्य (१) के वचनानुसार जन्मसे भी अष्टम आदि वर्षोंमें भी ब्राह्मणआदिकोंका यज्ञोपवीनकरना पायाजाता है ३६ ॥

ब्रह्मवर्चसकामस्यकार्योविप्रस्यपञ्चमे । राज्ञोबलार्थिनःषष्ठेवैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे ३७ ॥

प० । ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पंचमे राज्ञः बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्य ईहार्थिनः अष्टमे ॥

यो० । ब्रह्मवर्चसकामस्य विप्रस्य पञ्चमे—बलार्थिनः राज्ञः षष्ठे—ईहार्थिनः वैश्यस्य अष्टमेवर्षे (उपनयनं) कार्यम् ॥

भा० । ब्रह्मतेज की इच्छा करनेवाले ब्राह्मणका पांचवें—बलकी कामनावाले क्षत्रियका छठे—और चेष्टाकी कामनावाले वैश्यका आठवें—वर्षमें यज्ञोपवीत करना ॥

ता० । वेद का पढ़ना और वेदके अर्थों के ज्ञानसे पैदाहुआ जो तेज उसे ब्रह्मवर्चस कहते हैं उसब्रह्मतेज की है कामना जिसको ऐसे ब्राह्मण का पांचवें वर्ष में और हाथी घोड़े आदि जो राजाकेबल उनकी कामनावाले क्षत्रियका छठे वर्ष में—कृषि आदि की अधिक चेष्टा करने वाले वैश्यका आठवेंवर्ष में यज्ञोपवीत करै और वर्षोंकीगिनतीभी गर्भसेहीकरनी क्योंकि पीछे उसी का प्रकरणहै—और इसश्लोक में ब्रह्मतेजआदि की इच्छा बालककी नहींहोसक्ती तथापि बालके पिताकीइच्छा समझनी—और यज्ञोपवीतसे भिन्न गर्भाधानआदि सब संस्कार स्त्रियोंके मंत्रोंके विनाही करने इस (२) याज्ञवल्क्य के वचनमें प्रतीतहोते हैं परन्तु विवाह वेदोक्त मंत्रोंसेही करना लिखाहै—क्योंकि वह संस्कार स्त्री और पुरुष के साहित्यमें (एकसंग) ही होताहै ३७ ॥

आषोडशाद्ब्राह्मणस्यसावित्रीनातिवर्तते । आद्वाविंशात्क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः ३८

प० । आषोडशात् ब्राह्मणस्य सावित्री न अतिवर्तते आद्वाविंशात् क्षत्रबंधोः आचतुर्विंशतेः विशः ॥

यो० । ब्राह्मणस्य सावित्री आषोडशात्—क्षत्रबन्धोः आद्वाविंशात्—विशः आचतुर्विंशतेः न अतिवर्तते (अतिक्रांत कालानभवति) ॥

भा० । सोलहवर्षतक ब्राह्मणकी—बाईसवर्षतक क्षत्री की—चौबीसवर्षतक वैश्यकी गायत्री अतिवर्तन (अवलंघन) को प्राप्तनहींहोती अर्थात् यहांतक गौणकाल रहता है ॥

ता० । सोलहवर्ष की समाप्तितक ब्राह्मणकी—और बाईसवर्ष की समाप्ति पर्यंत क्षत्रियकी—और चौवीसवर्ष की समाप्तितक वैश्यकी गायत्रीके समयका अवलंघन नहींहोता अर्थात् पूर्वोक्त मुख्यकालसे दूनेकालतक गौणकाल रहता है आषोडशात् इत्यादि तीनोंपदों में आङ् का अर्थ अभिविधि है इसीसे सोलहवर्षकी समाप्तितक गौणकाल रहताहै यह अर्थ प्रतीत होता है और

(१) गर्भाष्टमेऽष्टमेवाब्दे ब्राह्मणस्योपनायनम् । आचाराध्याय १४ श्लो० ॥
(२) एवमेनःशमंयाति बीजगर्भसमुद्भवम् । तूष्णीमेताःक्रियाःस्त्रीणां विवाहस्तुसमंत्रकः १३ ॥

कोई यह कहतेहैं कि पूर्वोक्त आङ्का अर्थ मर्यादाकहते हैं इससे सोलहवर्षसे पहिलेही १५ वर्ष तक गौणकाल रहताहै क्योंकि यमराज का यहकथन है कि (१) जिस विशेषकर ब्राह्मणकी और क्षत्रिय वैश्यकी गायत्री पन्द्रहवर्षतक पतितहोजाय (नहो) तो उसको कहनेवालोंमें श्रेष्ठ सूर्यके पुत्र और श्रीमान् धर्मअर्थके तत्त्व के ज्ञाता यमराज ने यह प्रायश्चित्त करना कहाहै कि शिखासमेत मुंडनकराकर सावधानी से व्रतकरै और हविष्य (समाआदि) अन्न सात अथवा पांच ब्राह्मणोंको जिमावे ३८ ॥

अतऊर्ध्वंत्रयोऽप्येतेयथाकालमसंस्कृताः । सावित्रीपतितावृात्याभवन्त्यार्यविगर्हिताः॥

प० । अतः ऊर्ध्वं पतंति एते यथाकालं असंस्कृताः सावित्रीपतिताः वृात्याः भवन्ति आर्यविगर्हिताः ॥

यो० । यथाकालं असंस्कृताः एते त्रयोपि अतःऊर्ध्वं — सावित्रीपतिताः आर्यविगर्हिताः व्रात्याः भवंति ॥

भा० । इस गौणकालके अनन्तर प्रायश्चित्त कियेबिना समयपर नहींभयाहै संस्कार जिनका ऐसे ये सज्जनों में निंदित वृात्य होजातेहैं ॥

ता० । विधिसे प्रायश्चित्त के करनेसे नहींपवित्रहुये इनवृात्यों के संग आपत्ति के समय में भी ब्राह्मसम्बन्ध (पठनपाठन) और यौनसम्बन्ध (विवाहआदि) ब्राह्मण न करै—और इनका प्रायश्चित्त याज्ञवल्क्य ऋषिने (२) वृात्यस्तोम यज्ञकरना कहाहै सिद्धान्त यहहै कि बिनाप्रायश्चित्त गौणकालसे उपरान्त इनको गायत्री के उपदेश का अधिकार नहींरहता ३९ ॥

नैतैरपूतैर्विधिवदापद्यपिहिकर्हिचित् । ब्राह्मान्यौनांश्चसम्बन्धान्नाचरेद्ब्राह्मणःसह ४० ॥

प० । न एतैः अपूतैः विधिवत् आपदि अपि हि कर्हिचित् ब्राह्मान् यौनान् च सम्बन्धान् न आचरेत् ब्राह्मणः सह ॥

यो० । विधिवत् अपूतैः एतैः सह आपदि अपि कर्हिचित् ब्राह्मान् यौनान् सम्बन्धान् ब्राह्मणः न आचरेत् ॥

भा० । अपवित्र इन वृात्योंके संग आपत्कालमें भी पठन पाठन और विवाह आदि ब्राह्मण कदाचित् न करै ॥

ता० । विधिसे नहींकियाहै पूर्वोक्त प्रायश्चित्त जिन्होंने ऐसे इन अपवित्रों (वृात्यों) के संग आपत्कालमें भी ब्राह्मसम्बन्ध (वेदका पढ़ना पढ़ाना) और यौनसम्बन्ध (विवाह आदि) ब्राह्मण कदाचित् न करै अर्थात् प्रायश्चित्तसे शुद्धहुये इनके संगपूर्वोक्त सम्बन्धकरनेमें दोषनहींहै ४० ॥

कार्ष्णरौरवबास्तानिचर्माणिब्रह्मचारिणः । वसीरन्नानुपूर्व्येणशाणक्षौमादिकानिच ४१ ॥

प० । कार्ष्णरौरवबास्तानि चर्माणि ब्रह्मचारिणः वसीरन् आनुपूर्व्येण शाणक्षौमादिकानि च ॥

---

(१) पतितायस्यसावित्री दशवर्षाणिपंचच । ब्राह्मणस्यविशेषेण तथाराजन्यवैश्ययोः १
प्रायश्चित्तंभवेदेषां प्रोवाचवदतांवरः । विवस्वतःसुतःश्रीमान् यमोधर्मार्थतत्त्ववित् २
सशिखंवपनंकृत्वा व्रतंकुर्यात्समाहितः । हविष्यंभोजयेदन्नं ब्राह्मणान्सप्तपंचवा ३ ॥
(२) अतऊर्ध्वपतंत्येते सर्वधर्मबहिष्कृताः । सावित्रीपतिताव्रात्या व्रात्यस्तोमादृतेक्रतोः ३८
१ अध्याय — श्लो० ३८ ॥

यो० । (द्विजातीनां) ब्रह्मचारिणः कार्ष्णरौरवबास्तानि चर्माणि (उत्तरीयाणि) चपुनः शाणक्षौमादिकानि (अधोवस्त्राणि) आनुपूर्व्येण वसीरन् ॥

भा० । द्विजातियों के ब्रह्मचारी—कालामृग—रुरुमृग— छाग इनके चर्म्मको डुपट्टे की जगह और शण—रेशम—ऊनके वस्त्रोंको धोतीके स्थानमें यज्ञोपवीतके समय क्रमसे धारणकरें ॥

ता० । कालेमृग—और रुरुमृग—और छागके चर्मों तीनों द्विजातियोंके ब्रह्मचारी यज्ञोपवीत के समय क्रमसे उत्तरीय (डुपट्टे) के स्थानमें धारें क्योंकि+चर्माणि उत्तरीयाणि इस गृह्यसूत्रसे चर्माणिपद का उभय अर्थ होताहै—और शण—रेशम—ऊनके अधोवस्त्रोंको क्रम से धारणकरें—यद्यपि श्लोकमें कार्ष्णपदहीकेवल पढ़ाहै इससे कालेमृगका चर्म यह अर्थ नहींहोसक्ता तथापि रुरुमृगके समीप पढ़नेसे कालामृगही समझलेना ४१ ॥

मौञ्जीत्रिवृत्समाश्लक्ष्णाकार्याविप्रस्यमेखला।क्षत्रियस्यतुमौर्वीज्यावैश्यस्यशणतान्तवी

प० । मौंजी त्रिवृत् समा श्लक्ष्णा कार्या विप्रस्य मेखला क्षत्रियस्य तु मौर्वी ज्या वैश्यस्य शणतान्तवी ॥

यो० । विप्रस्य मेखला त्रिवृत्समाश्लक्ष्णा — क्षत्रियस्य मौर्वीज्या (मेखला) वैश्यस्य शणतांतवी कार्या ॥

भा० । ब्राह्मणकी तिगुनी औरसम और चिकनी और क्षत्रियकी मौर्वी (प्रत्यंचा) की और वैश्य की भी तिगुनी—सम—चिकनी—मेखला बनानी ॥

ता० । ब्राह्मणकीमेखला (कोंदनी) यज्ञोपवीतके समय सम (तुल्य) तीनगुणों (तागे) की बनाई और मुंजकी और चिकनी—बनानी और क्षत्रियकी मेखला मुर्वातृण की (जिसकी धनुषकीप्रत्यंचा बनतीहै) और वैश्यकी शणके तंतुओंकीमेखलाबनी और गोविंदराज मेधातिथि यहकहतेहैं कि क्षत्रिय की मेखला तिगुनी नहींहोती क्योंकि ज्यारूप मेखला क्षत्रियकी कहीहै और तिगुनीकरनेसे वह ज्यारूप नहींहोसक्ती और वैश्यकी भी मेखला त्रिवृत्(तिगुनी)होती है क्यों प्राचेतसऋषिने यहकहाहै कि (१) तिगुनीऔर प्रदक्षिण क्रमसे गुर्थी मेखलाहोतीहै ४२ ॥

मुञ्जालाभेतुकर्तव्याःकुशाश्मन्तकबल्वजैः।त्रिवृताग्रन्थिनैकेनत्रिभिःपञ्चभिरेववा४३॥

प० । मुंजालाभे तु कर्तव्याः कुशाश्मंतकबल्वजैः त्रिवृता ग्रंथिना एकेन त्रिभिः पंचभिः एव वा ॥

यो० । मुंजालाभे तु कुशाश्मंतकबल्वजैः त्रिवृता एकेनग्रंथिना — त्रिभिः पंचभिःवा ग्रंथिभिः (मेखला) कर्तव्याः ॥

भा० । मुंजाआदिके न मिलनेपर कुशाश्मंतक बल्वज क्रमसे इन तीनोंकी और तिगुनी और एक अथवा तीन अथवा पांच ग्रंथिकी मेखला तीनों द्विजाति बनावें ॥

ता० । इस श्लोकमें कर्तव्याः इस बहुवचनके दिखानेसे और तीनों द्विजाति ब्रह्मचारियोंके प्रकरणसे और मुख्य वस्तुके न मिलनेपर गौणकी अपेक्षाको तीनोंको समहोनेसे और कुशा आदि तीनोंके विधानको कहनेसे—मुंजालाभे—इस पदका मुंजाआदिके अलाभमें यह अर्थकरना—और भिन्न२जातिके सम्बन्धसे (कर्तव्याः) यह बहुवचन भी ठीक लगताहै इस कहनेवाले गोविंदराजको भी बहुवचन का पाठही संमतहै—मुंजाआदि पूर्वोक्तोंके न मिलनेपर कुशाश्मंत-

(१) त्रिगुणाः प्रदक्षिणाः मेखलाः ॥

क–और बल्वजरूपी तीनों तृणोंसे मेखला क्रमसे बनानी और वे मेखला तिगुनी एक–वा तीन–वा पांच ग्रंथियोंसे बनानी और वा शब्दके पढ़नेसे ब्राह्मण आदि तीनों द्विजातियों की क्रम से एक–तीन–पांच ग्रंथि जिसमें हों ऐसीकोंदनी बनानी यह अर्थ ठीक नहींहै किंतु कुलरीति के अनुसार यह विकल्पहै और यह ग्रंथियोंका भेद मुख्यकी अपेक्षाके असंभवमें समझनी ४३ ॥

कार्पासमुपवीतंस्याद्विप्रस्योर्ध्ववृतंत्रिवृत्।शणसूत्रमयंराज्ञोवैश्यस्याविकसौत्रिकम्४४॥

प० । कार्पासं उपवीतं स्यात् विप्रस्य ऊर्ध्ववृतं त्रिवृत् शणसूत्रमयं राज्ञः वैश्यस्य आविकसौत्रिकम् ॥

यो० । विप्रस्य उपवीतं ऊर्ध्ववृतं त्रिवृत् कार्पासं — राज्ञः शणसूत्रमयं — वैश्यस्य आविकसौत्रिकं — स्यात् ॥

भा० । तिगुनाकरके ऊपरको वटाहुआ और कपास के सूतका ब्राह्मण का शणके सूतका क्षत्रियका–भेड़की ऊन के सूतका वैश्यका यज्ञोपवीत होताहै ॥

ता० । जिसकी यज्ञोपवीत संज्ञाकहैंगे वह ब्राह्मणका कपास के सूतका और क्षत्रियका शण के सूतका और वैश्यका भेड़की ऊनके सूतका होनाचाहिये–और वह तिगुनाकरके ऊपरको बंटकर फिर तिगुनाकरके दक्षिणावर्तित अर्थात् दूसरीप्रकार बंटना–यद्यपि मनु ने तीनतागेही बंटने कहेहैं तथापि तिगुनाकरके फिरतिगुनाकरै क्योंकि छन्दोगपरिशिष्टग्रन्थमें (१) यहलिखा है कि तीनतागों को ऊर्ध्वमुखबंटकर अधो (नीचे) मुख तिगुनाकरै और उसकी एकगांठदेनी कही है और देवल (२) ऋषिनेभी कहा है कि नौ ६ तागोंका यज्ञोपवीतकरै–सिद्धान्तयह है कि एकसूत को ६६ छानबेबार अंगुलियों के मूलपरगिने और फिर तिगुनाकरके बंटदे–फिर उसे भी तिगुनाकरके ब्रह्मग्रंथिदेदें ४४ ॥

ब्राह्मणोबैल्वपालाशौक्षत्रियोवाटखादिरौ।पैलवौदुम्बरौवैश्योदण्डानर्हन्तिधर्मतः४५॥

प० । ब्राह्मणः बैल्वपालाशौ क्षत्रियः वाटखादिरौ पैलवौदुंबरौ वैश्यः दंडान् अर्हति धर्मतः ॥

यो० । ब्राह्मणः बैल्वपालाशौ — क्षत्रियः वाटखादिरौ — वैश्यः पैलवौदुंबरौ (दंडौ अर्हति) (एते ब्राह्मणादयः क्रमेण इमान्) दंडान् धर्मतः अर्हंति ॥

भा० । ब्राह्मणआदि वर्ण धर्मसे इनदंडोंको धारणकरैं कि बेल अथवा ढाककादण्ड ब्राह्मण बड़ अथवा खैर का क्षत्रिय–पील (जाल) अथवा गूलर का वैश्य ॥

ता० । बेल वा ढाक के दंड ब्राह्मण–बड़ अथवा खैरके दंड क्षत्रिय और पीलु अथवा गूलर के दंड वैश्य क्रमसे और धर्मसे इनदंडोंका तीनोंद्विजाति धारणकरनेयोग्य हैं–यद्यपि इसश्लोक में (बैल्वपालाशौ) इत्यादि द्वंद्वसमास के निर्देश से दोनोंदंडोंकाही धारण एकवारकरना प्रतीत होताहै तथापि अग्रिम श्लोक में–केशांतिकः–और चौथे अग्रिमश्लोक में प्रतिगृह्येप्सितंदण्डं–एक के बोधक एकवचन के निर्देशसे एक २ दंडकाही धारणकरना प्रतीत होताहै और बेल का अथवा ढाक का दंडहो (३) इसवशिष्ठ की स्मृतिमें भी विकल्पक दीखनेसे एकही दंडको

(१) ऊर्ध्वंतुत्रिवृतंकार्यं तन्तुत्रयमधोवृतं । त्रिवृतंचोपवीतंस्यात्तस्यैकोग्रन्थिरिष्यते १ ॥
(२) यज्ञोपवीतंकुर्वीत सूत्राणिनवतंतवः ॥
(३) बैल्वः पालाशोवादण्डः ॥

धारणकरैं और विकल्पसेही दोनों दंडोंके सम्बन्ध से विकल्पवाले दंडों के समुच्चयकाही इन्द्वसे अनुवाद होताहै—सिद्धान्त यहहै कि ब्राह्मणआदि वर्ण यज्ञोपवीतमें दो दो दंडोंकेयोग्यहैं अर्थात् दोनोंमेंसे कोई से दंड के योग्यहैं ४५ ॥

केशान्तिकोब्राह्मणस्यदण्डःकार्यःप्रमाणतः।ललाटसंमितोराज्ञःस्यात्तुनासान्तिकोविशः

प० । केशांतिकः ब्राह्मणस्य दण्डः कार्यः प्रमाणतः ललाटसंमितः राज्ञः स्यात् तु नासांतिकः विशः ॥

यो० । ब्राह्मणस्यदण्डः प्रमाणतः केशांतिकः राज्ञः ललाटसंमितः कार्यः तुपुनः विशः नासांतिकः स्यात् ॥

भा० । ता० । ब्राह्मणकादंड प्रमाणसे केशोंतक—क्षत्रिय का मस्तकपर्यंत करना और वैश्य का नासिका पर्यंत होताहै ४६ ॥

ऋजवस्तेतुसर्वेस्युरव्रणाःसौम्यदर्शनाः। अनुद्वेगकरानृणांसत्वचोनाग्निदूषिताः ४७ ॥

प०। ऋजवः ते तु सर्वे स्युः अव्रणाः सौम्यदर्शनाः अनुद्वेगकराः नृणां सत्वचः नाग्निदूषिताः ॥

यो० । ते सर्वे (दण्डाः) ऋजवः अव्रणाः — सौम्यदर्शनाः — नृणां अनुद्वेगकराः — सत्वचः नाग्निदूषिताः स्युः ॥

भा० । ता० । वे द्विजातियोंके पूर्वोक्त सबदण्ड ऐसे हों कि कोमल व्रण (घाव)हीन—देखनेमें सौम्य—और जिनके देखने से मनुष्यों को उद्वेग न हो और जो त्वचा (वक्कल) सहित हों और अग्नि से जले न हों—अर्थात् पूर्वोक्त इन दोषोंसे रहित हों ४७ ॥

प्रतिगृह्येप्सितंदण्डमुपस्थायचभास्करम। प्रदक्षिणंपरीत्याग्निंचरेद्भैक्षंयथाविधि ४८ ॥

प० । प्रतिगृह्य ईप्सितं दण्डं उपस्थाय च भास्करं प्रदक्षिणं परीत्य अग्निं चरेत् भैक्षं यथाविधि ॥

यो० । ईप्सितं दण्डं प्रतिगृह्य चपुनः भास्करं उपस्थाय — अग्निंप्रदक्षिणं (यथास्यात्तथा परीत्य — यथाविधि भैक्षं चरेत् ॥

भा० । इष्टदण्डको ले—और सूर्यके सन्मुख स्थितहो—और अग्निकी परिक्रमा करके विधि से भिक्षाटन करे ॥

ता० । प्राप्तहोने को वाञ्छित दण्डको ग्रहण करके और सूर्यके सन्मुख स्थित होकर—और दाहिनी ओर से अग्निकी परिक्रमा करके—विधिपूर्वक भिक्षामांगने को जाय अर्थात् किसी प्राणी को उद्वेग करनेवाले वेषधारण न करै और ब्रह्मचारी के धारने योग्य दण्डकमण्डलु आदि कोही धारण करे ४८ ॥

भवत्पूर्वंचरेद्भैक्षमुपनीतोद्विजोत्तमः । भवन्मध्यंतुराजन्योवैश्यस्तुभवदुत्तरम् ४९ ॥

प० । भवत्पूर्वं चरेत् भैक्षं उपनीतः द्विजोत्तमः भवन्मध्यं तु राजन्यः वैश्यः तु भवदुत्तरम् ॥

यो० । उपनीतः द्विजोत्तमः (ब्राह्मणः) भवत्पूर्वं — राजन्यः भवन्मध्यं — वैश्यस्तु भवदुत्तरम् — भैक्षं चरेत् ॥

भा० । भवतिभिक्षांदेहि—भिक्षांभवतिदेहि—भिक्षांदेहि भवति—इनतीनों वाक्यों को कहकर ब्राह्मण आदि तीनों द्विजाति यज्ञोपवीत के समय भिक्षाको मांगे ॥

ता० । यज्ञोपवीत संस्कार हुआहै जिसका ऐसा ब्राह्मण—भवति भिक्षांदेहि—यहवाक्य और

क्षत्रिय—भिक्षांभवतिदेहि—यहवाक्य—और वैश्य—भिक्षांदेहि भवति—यह वाक्य कहकर भिक्षा को मांगे—इस श्लोक में—भवत्पूर्वं—भवन्मध्यं—भवदुत्तरं—ये तीनों क्रियाके विशेषण हैं इससे भवत्शब्द है पूर्व जिसमें ऐसे वाक्योंको कहकर ब्राह्मण आदि वर्ण भिक्षाटनकरें यह धर्म्म ब्रह्मचारी का है ४९ ॥

मातरंवास्वसारंवामातुर्वाभगिनींनिजाम् । भिक्षेतभिक्षांप्रथमंयाचैनंनावमानयेत् ५० ॥

प० । मातरं वा स्वसारं वा मातुः वा भगिनीं निजाम् भिक्षेत भिक्षां प्रथमं या च एनं न अवमानयेत् ॥

यो० । (ब्रह्मचारी) प्रथमं मातरं — वा स्वसारं वा मातुः निजां भगिनीं — चपुनः या एनं न अवमानयेत् तां — भिक्षां भिक्षेत ॥

भा० । माता अथवा अपनी बहिन अथवा माताकी सहोदर बहिन से अथवा जो मांगने पर नाहीं न करै उससे यज्ञोपवीत के समय ब्रह्मचारी भिक्षाको प्रथममांगे ॥

ता० । ब्रह्मचारी प्रथम अपनीमाता से अथवा बहिन से—अथवा माताकी सहोदर भगिनी से अथवा जो इस ब्रह्मचारी का अपमान न करै उससे भिक्षाको मांगे—यह भिक्षा यज्ञोपवीत के समय कीहै और यदि पहिली २ भिक्षा देनेवाली न मिले तो पिछली२ से भिक्षा को मांगे ५० ॥

समाहृत्यतुतद्भैक्षंयावदर्थममायया । निवेद्यगुरवेऽश्नीयादाचम्यप्राङ्मुखःशुचिः ५१ ॥

प० । समाहृत्य तु तत् भैक्षं यावदर्थं अमायया निवेद्य गुरवे अश्नीयात् आचम्य प्राङ्मुखः शुचिः ॥

यो० । तद्भैक्षं समाहृत्य यावदर्थं अमायया गुरवे निवेद्य प्राङ्मुखः शुचिः (सन् ब्रह्मचारी) आचम्य अश्नीयात् (भुंज्यात्) ॥

भा० । उसभिक्षाको इकट्ठीकरके और गुरुके भोजन योग्य अन्नको निष्कपटतासे गुरुको देकर पूर्वको मुखकर और शुद्धहोकर—ब्रह्मचारी आचमनकरके भोजनकरै ॥

ता० । बहुतों से उस भिक्षाको लाकर कपट को त्यागकर गुरुके भोजन योग्य भिक्षा गुरुको निवेदन करके पूर्वाभिमुख और शुद्ध होकर आचमन के अनन्तर प्रतिदिन भोजन करै—अर्थात् बुरे अन्नसे अच्छे अन्नको इस अभिप्रायसे ढककर गुरुको न दे कि अच्छा २ अन्न गुरुलेलेंगे इस मायाको छोड़कर गुरुकोनिवेदनकरदे और उनकीआज्ञासे स्वयं पूर्वोक्तप्रकारसे भोजनकरै ५१ ॥

आयुष्यंप्राङ्मुखोभुंक्तेयशस्यंदक्षिणामुखः ।
श्रियंप्रत्यङ्मुखोभुंक्तेऋतंभुंक्तेह्युदङ्मुखः ५२ ॥

प० । आयुष्यं प्राङ्मुखः भुंक्ते यशस्यं दक्षिणामुखः श्रियं प्रत्यङ्मुखः भुंक्ते ऋतं भुंक्ते हि उदङ्मुखः ॥

यो० । प्राङ्मुखः आयुष्यं दक्षिणामुखः यशस्यं भुंक्ते प्रत्यङ्मुखः श्रियंभुंक्ते—उदङ्मुखः ऋतं भुंक्ते ॥

भा० । पूर्वाभिमुख भोजन अवस्थाके लिये और दक्षिणाभिमुख भोजन यशकेलिये हितहैं—और पश्चिमाभिमुख भोजन लक्ष्मीको और उत्तराभिमुख भोजन सत्यके फल (स्वर्गादि) को देताहै ॥

ता० । पूर्वाभिमुख होकर जो भोजन कियाजाताहै वह भोजन आयुः के लिये हित—और दक्षिणाभिमुख बैठकर जिसभोजनको करताहै वह भोजन यशकेलिये हित—है—और पश्चिमको मुखकरके जो भोजन कियाजाताहै वह लक्ष्मीको और उत्तरको मुखकरके जो भोजनकियाजाताहै सत्यके फलको—देताहै—अर्थात् पूर्वोक्त फलोंकी कामना करनेवाला पुरुष पूर्वोक्त दिशाओं के संमुख बैठकर भोजनकरै ५२ ॥

उपस्पृश्यद्विजोनित्यमन्नमद्यात्समाहितः।भुक्त्वाचोपस्पृशेत्सम्यगद्भिःखानिचसंस्पृशेत्

प० । उपस्पृश्य द्विजः नित्यं अन्नं अद्यात् समाहितः भुक्त्वा च उपस्पृशेत् सम्यक् अद्भिः खानि च संस्पृशेत् ॥

यो० । समाहितः द्विजः नित्यं उपस्पृश्य अन्नं अद्यात् चपुनः भुक्त्वा सम्यक् उपस्पृशेत् चपुनः अद्भिः खानि संस्पृशेत् ॥

भा० । द्विज प्रतिदिन आचमनकरके और सावधानहोकर अन्नका भोजनकरै और भोजन करके आचमन और शिरके छिद्रोंका जलसे स्पर्शकरै ॥

ता० । यद्यपि निवेद्यगुरवेऽश्नीयादाचम्य ५१ इसश्लोक में भोजन के पूर्वही आचमन करना कहाहै तथापि जलोंसे छिद्रोंका स्पर्शकरै यह विधानभी गुणके लियेहै—और नित्य इसकहने से यह प्रतीतहोताहै कि ब्रह्मचर्य के अनन्तरभी द्विज आचमनकरकेही भोजनकरै—द्विज सावधान मनसे शास्त्रके अनुसार आचमनकरके अर्थात् इस दक्षके कथनके अनुसार कि (१) हाथ पैर धोकर देखकर तीनबार जलकोपीवै और जलसेशिरके छःओंछिद्रोंका (नासिका नेत्र श्रवण) स्पर्श करै क्योंकि गौतमऋषिने शिरकेही छिद्र कहेहैं— और आचमनकरके छिद्रोंका स्पर्श पृथक्करना कहाहै—तीनबार जलका भक्षण आचमनहै और छिद्रोंका स्पर्श उसका अंगहै ५३ ॥

पूजयेदशनंनित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन् । दृष्ट्वाहृष्येत्प्रसीदेच्चप्रतिनन्देच्चसर्वशः ५४ ॥

प० । पूजयेत् अशनं नित्यं अद्यात् च एतत् अकुत्सयन् दृष्ट्वा हृष्येत् प्रसीदेत् च प्रतिनंदेत् च सर्वशः ॥

यो० । (द्विजः) नित्यं अशनं पूजयेत्—चपुनः एतत् अन्नं अकुत्सयन (सन्) अद्यात्—सर्वशः (सर्वं) अन्नं दृष्ट्वा हृष्येत् प्रसीदेत् चपुनः प्रतिनंदेत् ॥

भा० । कीहै प्रतिदिन पूजा जिसकी एसेअन्नकी निन्दाको त्यागकर भोजनकरै और देखकर प्रसन्नहो—सन्तोषकरै और यहकहै कि यहअन्न हमको सदैव मिलै ॥

ता० । प्राणोंके अर्थहोनेसे अन्नका सदैव पूजन (ध्यान व प्रशंसा) करै क्योंकि आदिपुराण में (२) यह लिखाहै कि अन्न के लिये विष्णुने ऐसा कहाहै प्राणोंके लिये सदैव जो मेराध्यान करताहै वह मेरा (विष्णु) पूजन सदैवकरताहै और निन्दाको त्यागकर इसकाभोजनकरै और प्रसन्नरहै—अर्थात् अन्नके दर्शनसे खेदकोभी त्यागदे—और प्रतिदिन अन्नकीइसप्रकार प्रशंसाकरै प्रतिदिन हमको यह अन्नमिले—क्योंकि आदिपुराण (३) में लिखाहै कि अन्नको देखकर प्रथम

(१) प्रक्षाल्यहस्तौपादौचत्रिःपिबेदंबुवीक्षितं ॥
(२) प्राणार्थमांसदाध्यायेत् समांसंपूजयेत्सदा — आनिंदश्चैतदद्यात्तुदृष्ट्वाहृष्येत्प्रसीदेच ॥
(३) अन्नंदृष्ट्वाप्रणम्यादौप्रांजलिःकथयेत्ततः अस्माकंनित्यमस्त्वेतदितिभक्त्यास्तुवन्नमेत् ॥

प्रणाम और हाथजोड़कर यहकहै कि यह अन्न हमारे नित्यहो अर्थात् मिले—सिद्धान्त यह है कि भोजन क्रोधको त्यागकर प्रसन्नतासे करै ५४ ॥

पूजितंह्यशनंनित्यंबलमूर्जंचयच्छति । अपूजितंतुतद्भुक्तमुभयंनाशयेदिदम् ५५ ॥

प० । पूजितं हि अशनं नित्यं बलं ऊर्जं च यच्छति अपूजितं तु तत् भुक्तं उभयं नाशयेत् इदं-

यो० । नित्यं पूजितं अन्नं, बलं चपुनः ऊर्जं यच्छति अपूजितं तु भुक्तं तत् (अन्नं) इदं उभयं नाशयेत् ॥

भा० । जिससे सत्कार कियाहुआ अन्न प्रतिदिन सामर्थ्य और वीर्यको देताहै और नहीं सत्कारकियाहुआ अन्न सामर्थ्य औरवीर्य इनदोनोंको नष्टकरताहै इससे सदैव अन्नका सत्कारकरै ॥

ता० । जिससे की है पूजा प्रतिदिन जिसकी ऐसा अन्न सामर्थ्य और वीर्य को देताहै—और नहीं की है पूजा जिसकी ऐसा अन्न बल और वीर्य इनदोनोंको नष्टकरताहै तिससे सदा अन्न की पूजाकरै जैसे संध्यावन्दन आदि नित्यकर्मों में पापोंका क्षय है इसइच्छा का विषय होने से यहभी फलका श्रवण है और मेधातिथि औ गोविंदराज तो यहकहते हैं कि यह फलका श्रवण स्तुति के लिये है ५५ ॥

नोच्छिष्टंकस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैवतथान्तरा।नचैवात्यशनंकुर्यान्नचोच्छिष्टःक्वचिद्व्रजेत् ५६

प० । न उच्छिष्टं कस्यचित् दद्यात् न अद्यात् च एव तथा अंतरा न च एव अत्यशनं कुर्यात् न च उच्छिष्टः क्वचित् व्रजेत् ॥

यो० । द्विजः कस्यचित् उच्छिष्टं न दद्यात्—चपुनः उच्छिष्टं तथा अंतरा न अद्यात् चपुनः अत्यशनं नैव कुर्यात्—चपुनः उच्छिष्टः क्वचित् न व्रजेत् ॥

भा० । किसीको अपना उच्छिष्ट न दे और न आप किसीका उच्छिष्ट भोजनकरै और सन्ध्या और दिनके भोजनोंके मध्यमें तीसरीबार भोजन न करै और अत्यन्त भोजनभी न करै और उच्छिष्ट हुआ कहीं गमन न करै ॥

ता० । भोजनका उच्छिष्ट किसीको न दे—यहां दानपात्रमें चतुर्थी पाईथी सम्बन्धकी विवक्षामें इस (१) वार्त्तिकसे षष्ठी विभक्ति जाननी—इसी सामान्य निषेधसे शूद्रको भी उच्छिष्ट देनेका निषेध सिद्ध था आगे ४ अध्याय में जो यह निषेध है कि शूद्रको उच्छिष्ट और हविःका निषेधहै वह स्नातकके व्रतके अर्थहै—और दिन और सायंकालकेमध्यमें भोजन न करै और इन दोनों समयमें भी अत्यन्त भोजन न करै आगे ४अध्यायमें जो यह निषेधहै कि अत्यन्तभोजन न करै वह भी स्नातकके व्रतके लियेहै--और उच्छिष्ट होकर कहीं न जाय ५६ ॥

अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यंचातिभोजनम्।अपुण्यंलोकविद्विष्टंतस्मात्तत्परिवर्जयेत् ५७

प० । अनारोग्यं अनायुष्यं अस्वर्ग्यं च अतिभोजनं अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात् तत् परिवर्जयेत् ॥

यो० । (यस्मात्) अतिभोजनं अनारोग्यं—अनायुष्यं—अस्वर्ग्यं अपुण्यं—लोकविद्विष्टं (भवति) तस्मात् तत् (अतिभोजनं) परिवर्जयेत् ॥

भा० । जिससे अत्यंत भोजन–आरोग्य–अवस्था–स्वर्ग–पुण्य–इनको अहित (विरोधि) है और जगत्में निंदाका हेतुहै तिससे अत्यन्त भोजन का परित्यागकरै ॥

ता० । अब अति भोजन के दोषोंको कहतेहैं कि जिससे अत्यंत भोजन अनारोग्य (रोगका हेतु) और अनायुष्य (अवस्था के लिये अहित) क्योंकि अजीर्ण को पैदाकरके रोग और मरणका जनक है–और अस्वर्ग्य (यज्ञादिक का विरोधि होने से स्वर्ग आदि की प्राप्ति का प्रतिबंधक) और इतर पवित्र कर्मोंका प्रतिबंधक होनेसे अपुण्य–और बहुतभोजन से जगत् में निंदा का कारण होनेसे जगत् में निंदाका हेतु है–तिससे मनुष्य अत्यंत भोजन को त्यागदे–सिद्धांत यह है कि अत्यंत भोजन स्वस्थताका विरोधि है ५७ ॥

ब्राह्मेणविप्रस्तीर्थेननित्यकालमुपस्पृशेत् ।कायत्रैदशिकाभ्यांवानपित्र्येणकदाचन५८॥

प० । ब्राह्मेण[३] विप्रः[१] तीर्थेन[३] नित्यकालं[२] उपस्पृशेत्[२] कायत्रैदशिकाभ्यां वा[२] न[३] पित्र्येण[३] कदाचन[३]

यो० । विप्रः ब्राह्मेण तीर्थेन – वा कायत्रैदशिकाभ्यां (तीर्थाभ्यां) नित्यं उपस्पृशेत् – पित्र्येण (तीर्थेन) कदाचन न (उपस्पृशेत्) ॥

भा० । ब्राह्मणआदि वर्ण सदैव ब्राह्म–प्रजापति–दैवतीर्थोंसे आचमन करैं और पित्र्यतीर्थ से कदाचित् न करैं ॥

ता० । ब्रह्मा है देवता जिसका उस तीर्थको ब्राह्मकहतेहैं यद्यपि अयज्ञरूप होनेसे इसतीर्थका ब्रह्मादेवता नहींहोसक्ता तथापि ब्राह्मआदि तीर्थों के नाम लोक में व्यवहार के स्तुति के लिये है और तीर्थशब्दभी जैसे तीर्थ पवित्रकरताहै इसीप्रकार येभी पवित्रकरतेहैं इसगुणके सम्बन्ध सेहै–ब्राह्मणआदिवर्ण ब्राह्म–वा प्रजापति–दैवतीर्थसे नित्यकाल आचमनकरै–और पित्र्यतीर्थ से कदाचित् न करै ५८ ॥

अंगुष्ठमूलस्यतलेब्राह्मंतीर्थंप्रचक्षते । कायमंगुलिमूलेऽग्रेदैवंपित्र्यंतयोरधः ५९ ॥

प० । अंगुष्ठमूलस्य तले ब्राह्मं तीर्थं प्रचक्षते कायं अंगुलिमूले अग्रे दैवं पित्र्यं तयोः अधः ॥

यो० । (मन्वादयः) अंगुष्ठमूलस्यतले ब्राह्मं – अंगुलिमूले कायं – (अंगुलीनां) अग्रे दैवं – तयोः (अंगुष्ठप्रदेशिन्योः) अधः पित्र्यं तीर्थं प्रचक्षते ॥

भा० । अंगूठे के मूलमें ब्राह्म–कनिष्ठाअंगुलि के मूलमें प्रजापति–अंगुलियोंके अग्रभाग में दैव–अंगूठे और देशिनीके मध्य में पित्र्य–तीर्थ मनुआदि ने कहा है ॥

ता० । ब्राह्मआदि तीर्थों को कहते हैं कि अंगुष्ठके मूल में ब्राह्मतीर्थ–और कनिष्ठा (कन्नो) अंगुलि के मूलमें काय (प्रजापति) तीर्थ–और अंगुलियों के अग्रभाग में दैवतीर्थ–और अंगुष्ठ और प्रदेशिनी के मध्य में पित्र्यतीर्थ मनुआदि ने कहा है–यद्यपि अंगुलियों का मूल और तिन के (काय-दैव) नीचे इससे सब अंगुलियों का बोध पाताहै तथापि अन्यस्मृतियों के अनुरोध से पूर्वोक्तही अर्थहोताहै–क्योंकि (१) याज्ञवल्क्यऋषिने ये तीर्थ इसप्रकारकहेहैं कि कनिष्ठा–देशिनी–अंगुष्ठ–इनकामूल और हाथकाअग्रभाग ये ४ क्रमसे प्रजापति–पितर–ब्रह्मा–देव इनके तीर्थ कहे हैं ५९ ॥

---

(१) कनिष्ठादेशिन्यंगुष्ठमूलान्यग्रं करस्यच । प्रजापतिपितृब्रह्म देवतीर्थान्यनुक्रमात् ॥

त्रिराचामेदपःपूर्वंद्विःप्रमृज्यात्ततोमुखम् । खानिचैवस्पृशेदद्भिरात्मानंशिरएवच ६० ॥

प० । त्रिः आचामेत् अपः पूर्वं द्विः प्रमृज्यात् ततः मुखं खानि च एव स्पृशेत् अद्भिः आत्मानं शिरः एव च ॥

यो० । पूर्वं अपः त्रिः आचामेत् – ततः मुखं द्विः प्रमृज्यात् – चपुनः अद्भिः खानि – आत्मानं चपुनः शिरः स्पृशेत्॥

भा० । पहिले तीनवार जलका आचमनकरै फिर दोबार मुखको पोंछे और शिरके छिद्र और हृदय और शिरकोभी जल से स्पर्शकरै ॥

ता० । अब सामान्य से कहेहुये आचमन का प्रकार कहतेहैं–पहिले पूर्वोक्त ब्राह्मआदि तीर्थ से तीनबार जलका गंडूपपीवै फिर होठों को मिलाकर दोबार अंगूठे के मूलसे मुखका मार्जन करै (पोंछे) क्योंकि (१) दक्षऋषि ने अंगूठे के मूलसेही मुखकामार्जन कहा है और मुख के छिद्रोंकोभी जलसे स्पर्शकरै क्योंकि (२) गौतमऋषि ने शिरकेही छिद्रोंका स्पर्श कहा है–और (३) उपनिषदोंमें आत्माका देश हृदयकहा है इससे हृदय और शिरकोभी जलसे स्पर्शकरै–जब २ आचमन करै तब २ इसीप्रकारसे करै ६० ॥

अनुष्णाभिरफेनाभिरद्भिस्तीर्थेनधर्मवित् । शौचेप्सुःसर्वदाचामेदेकान्तेप्रागुदङ्मुखः ६१

प० । अनुष्णाभिः अफेनाभिः अद्भिः तीर्थेन धर्मवित् शौचेप्सुः सर्वदा आचामेत् एकान्ते प्रागुदङ्मुखः ॥

यो० । धर्मवित् शौचेप्सुः प्रागुदङ्मुखः (पुरुषः) अनुष्णाभिः अफेनाभिः अद्भिः तीर्थेन एकांते सर्वदा आचामेत् ॥

भा० । शौचकी इच्छावाला और धर्मकाज्ञाता मनुष्य–जो तप्तनहों और जिनमें फेन न हों उनजलों और ब्राह्मआदितीर्थसे एकांतमें पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुखहोकर आचमनकरै ॥

ता० । शौचकीहै इच्छाजिसको ऐसा धर्मका जाननेवाला मनुष्य एकांत (जहां मनुष्यआदि नहो ऐसे शुद्धदेश)में पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख होकर सदैव आचमनकरै उनजलोंसे जो उष्णनहों और जिनमेंफेन (झाग) नहो और वहभी ब्राह्मआदि तीर्थोंसेहीकरै–यदि कोईरोग आदिका कारण होय तो तप्तजलसे भी आचमनकरना दूषितनहीं है क्योंकि (४) आपस्तंब ऋषि ने यहकहाहै कि किसीकारणसे तप्तजलसेभी आचमनकरै और ब्राह्मतीर्थोंसेही आचमन करै इसकथनसे यह सूचितकिया कि उक्ततीर्थोंके विना आचमनकरनेपर भी शुद्धि नहींहोती–सिद्धांतयहहै कि व्याधि के विना उष्णजलसे आचमन न करै ६१ ॥

हृद्गाभिःपूयतेविप्रःकण्ठगाभिस्तुभूमिपः ।
वैश्योऽद्भिःप्राशिताभिस्तुशूद्रःस्पृष्टाभिरन्ततः ६२ ॥

प० । हृद्गाभिः पूयते विप्रः कण्ठगाभिः तु भूमिपः वैश्यः अद्भिः प्राशिताभिः तु शूद्रः स्पृष्टाभिः अन्ततः ॥

---

(१) संहृत्यांगुष्ठमूलेन द्विःप्रमृज्यात्ततोमुखम् ॥
(२) खानिचैवोपस्पृशेच्छीर्षण्यानि ॥
(३) हृद्यंतज्ज्योतिःपुरुषः ॥
(४) तप्ताभिश्च कारणात् ॥

यो० । विप्रः हृदगाभिः भूमिपः कण्ठगाभिः —वैश्यः प्राशिताभिः — शूद्रः अन्ततःस्पृष्टाभिः — आद्भिः पूयते ॥

भा० । ब्राह्मण हृदयगत—क्षत्रिय कंठगत—वैश्य मुखगत—और शूद्र ओष्ठ में जिनका स्पर्श हो उन—जलों से पवित्र होताहै ॥

ता० । अब आचमन के जलका परिमाणकहतेहैं ब्राह्मण उनजलों से आचमनकरके पवित्र होताहै जो जल हृदय में प्राप्तहोजांय—और क्षत्रिय उनसे जो कंठतक पहुँचे—वैश्य उनसे जो मुखके भीतरतक जांय और कंठतक न पहुंचे और शूद्र उनसे जो जिह्वा और ओष्ठोंकाही स्पर्श करें और मुखमें न जांय ६२ ॥

उद्धृतेदक्षिणेपाणावुपवीत्युच्यतेद्विजः । सव्येप्राचीनआवीतीनिवीतीकण्ठसज्जने ६३॥

प० । उद्धृते दक्षिणे पाणौ उपवीती उच्यते द्विजः सव्ये प्राचीनआवीती निवीती कंठसज्जने

यो० । द्विजः दक्षिणेपाणौ उद्धृतेसति उपवीती — सव्ये (पाणौउद्धृतेसति) प्राचीनावीती — कण्ठसज्जने (यज्ञसूत्रस्य विशेषः) सति निवीती — उच्यते — मन्वादिभिरित्यध्याहार्यम् ॥

भा० । दाहने हाथको उठाकर जब यज्ञोपवीत बामस्कन्धपर रक्खाजाय तब उपवीती—और बामहाथकोउठाकर जब यज्ञोपवीत दक्षिणस्कंधपर रक्खाजाय तब प्राचीनावीती और जब कंठ में यज्ञोपवीत वा वस्त्र पहिनाजाय तब द्विज निवीती कहाताहै ॥

ता० । अब यज्ञोपवीत भी आचमन का अंगहै यह दिखानेके लिये आचमनके समय यज्ञोपवीतका लक्षण और सव्य—अपसव्यका लक्षणकहतेहैं—जब यज्ञोपवीत वा वस्त्र दक्षिणहाथको उठाकर वामस्कंधपर रक्खाजाय तब द्विज उपवीती (सव्य) कहाता है—और जब यज्ञोपवीत वा वस्त्र वामहाथको उठाकर दक्षिणस्कन्धपर रक्खाजाय तब द्विज प्राचीनावीती (अपसव्य) कहाताहै और जब दक्षिण और वाम दोनोंहाथों को विनाउठाये कंठ में पहिनलियाजाय तब द्विज निवीती कहाताहै—क्योंकि (१) गोभिलऋषिने कहाहै कि दक्षिणभुजाको उठाकर और शिरपर रखकर जब सव्य (वाम) अंग (कन्धा) पर यज्ञोपवीतको रखताहै और दक्षिणकुक्षिका अवलम्बहो तब यज्ञोपवीती (सव्य) होता है और सव्य (वाम) भुजाको उठाकर और शिर पर रखकर दक्षिणस्कन्धपर जब यज्ञोपवीत को रखता है और वामकुक्षि में अवलम्बन होता है तो प्राचीनावीती (अपसव्य) होताहै ६३ ॥

मेखलामजिनंदण्डमुपवीतंकमण्डलुम् । अप्सुप्रास्यविनष्टानिगृह्णीतान्यानिमन्त्रवत् ६४

प० । मेखलां अजिनं दंडं उपवीतं कमंडलुम् अप्सु प्रास्य विनष्टानि गृह्णीत अन्यानि मंत्रवत् ॥

यो० । विनष्टानि — मेखलां अजिनं — दंडं उपवीतं कमंडलुं अप्सु प्रास्य अन्यानि मंत्रवत् (द्विजः) गृह्णीत ॥

भा० । नष्टहुये मेखला मृगचर्म—दंड—यज्ञोपवीत—और कमंडलुओंको जलोंमें फेंककर मंत्रोंसे फिर अन्योंको ग्रहणकरै ॥

ता० । नष्टहुये इनको कि मेखला—मृगछाला—दंड—यज्ञोपवीत—कमंडलु—जलोंमें फेंककर अपने२ गृह्यके मंत्रोंसे फिर अन्योंको ग्रहणकरले—अर्थात् छिन्नभिन्न मेखला आदिको न रक्खै ६४॥

(१) दक्षिणंबाहुमुद्धृत्य शिरोऽवधाय सव्येंऽसे प्रतिष्ठापयति दक्षिणस्कंधमवलंबनंभवति एवंयज्ञोपवीतीभवति - सव्यंबाहुमुद्धृत्यशिरोऽवधायदक्षिणेंऽसे प्रतिष्ठापयति सव्यंकक्षमवलंबनंभवति एवंप्राचीनावीतीभवति ॥

केशान्तःषोडशेवर्षेब्राह्मणस्यविधीयते।राजन्यबन्धोर्द्वाविंशेवैश्यस्यद्व्यधिकेततः ६५॥

प० । केशांतः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते राजन्यबंधोः द्वाविंशे वैश्यस्य द्व्यधिके ततः ॥

यो० । ब्राह्मणस्य केशांतः षोडशे वर्षे – राजन्यबंधोः द्वाविंशे – वैश्यस्य ततः द्व्यधिके (चतुर्विंशे) विधीयते ॥

भा० । सोलमें वर्ष ब्राह्मणका–बाईसमेंवर्ष क्षत्रियका–और चौबीसमेंवर्ष वैश्यका केशांतकर्म करना कहाहै ॥

ता० । केशांतहै नाम जिसका ऐसा संस्कार (जिसमें काकपक्ष आदिका मुंडनहोताहै) ब्राह्मणका सोलमें वर्षमें और क्षत्रियका बाईसवें वर्षमें–और वैश्यका उससे दो अधिक वर्षमें अर्थात् चौबीसवें वर्षसे–मनु आदिने करना कहाहै–और (१) बौधायन ऋषिकी आज्ञाके अनुसार वर्षोंकी संख्या गर्भसे समझनी ६५ ॥

अमन्त्रिकातुकार्येयंस्त्रीणामावृदशेषतः । संस्कारार्थंशरीरस्ययथाकालंयथाक्रमम्६६॥

प० । अमंत्रिका तु कार्या इयं स्त्रीणां आवृत् अशेषतः संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकालं यथाक्रमं ॥

यो० । स्त्रीणां अशेषतः इयं आवृत् शरीरस्य संस्कारार्थं यथाकालं यथाक्रमं अमंत्रिका कार्या ॥

भा० । स्त्रियोंके ये पूर्वोक्त संपूर्ण कर्म शरीरकी शुद्धिके लिये पूर्वोक्त समयोंमें और पूर्वोक्त क्रमसे मंत्रोंके विनाहीकरने ॥

ता० । स्त्रियोंका यह जातकर्म आदि कर्मोंका समूह–शरीरके संस्कार (शुद्धि) के लिये पूर्वोक्त क्रम और कालके अनुसार अमंत्रक (मंत्रोंके विना) करना अर्थात् वेदोक्तमंत्रोंके उच्चारणकिये विनाही स्त्रियोंके पूर्वोक्तकर्मकरने ६६ ॥

वैवाहिकोविधिःस्त्रीणांसंस्कारोवैदिकःस्मृतः । पतिसेवागुरौवासोगृहार्थोऽग्निपरिक्रिया

प० । वैवाहिकः विधिः स्त्रीणां संस्कारः वैदिकः स्मृतः पतिसेवा गुरौ वासः गृहार्थः अग्निपरिक्रिया ॥

यो० । स्त्रीणां वैवाहिकः विधिः वैदिकः संस्कारः स्मृतः पतिसेवा गुरौवासः – गृहार्थः अग्निपरिक्रिया – स्मृतेत्यध्याहारः ॥

भा० । विवाहका विधानही स्त्रियोंका उपनयन कहाहै–पतिकीसेवाही गुरुके यहां बसना–और घरका कृत्यही अग्निकी सेवा कहाहै ॥

ता० । अब यज्ञोपवीतकी भी स्त्रियोंको विधिपाई इससे उसके निषेधकेलिये कहतेहैं–स्त्रियोंको विवाहकी विधिही वैदिक (वेदोक्तयज्ञोपवीत) संस्कार कहाहै–और पतिकी सेवाही वेदके पढ़नेकेलिये गुरुके यहां वासहै और घरका कार्य करनाही सायंकाल और प्रातःकालके समय अग्निकीसेवाहै–तिससे विवाहआदिही यज्ञोपवीतके स्थानमें स्त्रियोंका कहाहै इससे यज्ञोपवीत संस्कारकी स्त्रियोंको निवृत्ति समझनी ६७ ॥

---

(१) गर्भादिसंख्यावर्षाणाम् ॥

एषप्रोक्तोद्विजातीनामौपनायनिकोविधिः । उत्पत्तिव्यञ्जकःपुण्यःकर्मयोगंनिबोधत ६८

प० । एषः प्रोक्तः द्विजातीनां औपनायनिकः विधिः उत्पत्तिव्यंजकः पुण्यः कर्मयोगं निबोधत ॥

यो० । द्विजातीनां एषऔपनायनिकः उत्पत्तिव्यंजकः पुण्यः विधिः (मया) प्रोक्तः कर्मयोगं (यूयं) निबोधत ॥

भा० । ता० । द्विजातियों का यज्ञोपवीत सम्बन्धी और दूसरे जन्मका जतानेवाला और पवित्र यह विधि मैंने कही अब तुम कर्मयोगको सुनो अर्थात् यज्ञोपवीतके अनन्तर कर्त्तव्य कर्मों को सुनो ६८ ॥

उपनीयगुरुःशिष्यंशिक्षयेच्छौचमादितः।आचारमग्निकार्यंचसंध्योपासनमेवच ६९ ॥

प० । उपनीय गुरुः शिष्यम् शिक्षयेत् शौचं आदितः आचारं अग्निकार्यं च सन्ध्योपासनं एव च ॥

यो० । गुरुः शिष्यं उपनीय आदितः शौचं — चपुनः अग्निकार्यं — चपुनः सन्ध्योपासनं शिक्षयेत् ॥

भा० । गुरु शिष्यको यज्ञोपवीतदेकर पहिले शौच—आचार अग्निकाकार्य और सन्ध्याकरना-सिखावे ॥

ता० । अब यज्ञोपवीत के पीछे जो कर्मकरै वह सुनो कि गुरु शिष्यको यज्ञोपवीत कराकर प्रथम शौच (एकबार मट्टी लिंगमें तीनबार गुदामें लगावे इत्यादि) और स्नान आचमन आदि आचार और प्रातःकाल और सन्ध्याकाल होमकरना और मन्त्रोंसहित सन्ध्याकरने की विधि—की शिक्षादे अर्थात् शौच आदि कर्मोंके करनेको बतावे ६९ ॥

अध्येष्यमाणस्त्वाचान्तोयथाशास्त्रमुदङ्मुखः ।
ब्रह्माञ्जलिकृतोऽध्याप्योलघुवासाजितेन्द्रियः ७० ॥

प० । अध्येष्यमाणः तु आचांतः यथाशास्त्रं उदङ्मुखः ब्रह्मांजलिकृतः अध्याप्यः लघुवासाः जितेन्द्रियः ॥

यो० । अध्येष्यमाणः (शिष्यः) यथाशास्त्रं आचांतः उदङ्मुखः ब्रह्मांजलिकृतः लघुवासाः जितेन्द्रियः अध्याप्यः (गुरुणेतिशेषः) ॥

भा० । शास्त्रके अनुसार कियाहै आचमन जिसने—उत्तरकोहै मुखजिसका—जोड़ेहैं हाथजिसने—पवित्रहैं वस्त्र जिसके—और जीतीहैं इन्द्रिय जिसने पढ़नेवाले ऐसे शिष्यको गुरु पढ़ावे ॥

ता० । अध्ययन करनेवाले ऐसे शिष्यको अध्ययन करावे कि जिसने शास्त्रोक्त रीति से आचमन कियाहो और जो उत्तराभिमुख बैठाहो और जिसने ब्रह्मांजलि कीहो और जिसके लघु (पवित्र) वस्त्रहों और जो जितेन्द्रियहो—अर्थात् पवित्रहोकर हाथजोड़े जो बैठाहो ७० ॥

ब्रह्मारम्भेऽवसानेचपादौग्राह्यौगुरोःसदा।संहत्यहस्तावध्येयंसहिब्रह्माञ्जलिःस्मृतः ७१

प० । ब्रह्मारंभे अवसाने च पादौ ग्राह्यौ गुरोः सदा संहत्य हस्तौ अध्येयं सः हि ब्रह्मांजलिः स्मृतः ॥

यो० । ब्रह्मारम्भे चपुनः अवसाने गुरोः पादौ सदा (शिष्येण) ग्राह्यौ—हस्तौ संहत्य अध्येयं साहि एव ब्रह्मांजलिः स्मृतः — मनुनेतिशेषः ॥

भा० । वेदपढ़ने की आदि और अन्तमें शिष्य गुरुके चरणोंका स्पर्शकरै और हाथजोड़कर पढ़नेकोही ब्रह्मांजलि कहतेहैं ॥

ता० । वेदके पढ़ने के प्रारम्भमें और समाप्तिके समय शिष्य सदा (प्रतिदिन) गुरुके चरणों का ग्रहण (स्पर्श) करै—और दोनोंहाथ जोड़कर जो पढ़ना उसेही ब्रह्मांजलि कहाहै—यह पूर्व के श्लोकमें कहे ब्रह्मांजलि शब्दका अर्थ कहा ७१ ॥

व्यत्यस्तपाणिनाकार्यमुपसंग्रहणंगुरोः । सव्येनसव्यःस्प्रष्टव्योदक्षिणेनचदक्षिणः ७२ ॥

प० । व्यत्यस्तपाणिना कार्यं उपसंग्रहणं गुरोः सव्येन सव्यः स्प्रष्टव्यः दक्षिणेन च दक्षिणः ॥

यो० । व्यत्यस्तपाणिना (शिष्येण) गुरोः उपसंग्रहणं कार्यं — सव्येन सव्यः दक्षिणेन दक्षिणः स्प्रष्टव्यः ॥

भा० । व्यत्यस्त हैं हाथ जिसके ऐसा शिष्य गुरुके चरणोंका स्पर्शकरै और अपने वामहाथ से गुरुके वाम चरणका और दाहिने हाथसे दाहिने चरणका स्पर्शकरै ॥

ता० । अब यह कहतेहैं कि पहिले श्लोक में जो गुरुके चरणोंका उपसंग्रहण (स्पर्श) कहा वह व्यत्यस्त (उलटे पलटे) हैं हाथ जिसके ऐसे शिष्य को करना और वह व्यत्यास इस प्रकार करना कि सव्य (वाम) हाथ से सव्य चरणका और दक्षिणहाथ से दक्षिण चरण का स्पर्श करना—और यह गुरुके चरणों का स्पर्श उत्तान (सीधे) हाथों से करना क्योंकि पैठीनसीऋषि ने यह कहा है कि (१) उत्तानहाथों से अर्थात् दाहिनेसे दाहिने चरणको और वाम हाथसे वामको नमस्कार करै अथवा शिष्टों के आचरणसे दाहिने हाथको वामहाथ के ऊपर करनेसे यह व्यत्यास समझना ७२ ॥

अध्येष्यमाणंतुगुरुर्नित्यकालमतन्द्रितः । अधीष्वभोइतिब्रूयाद्विरामोऽस्त्वितिचारमेत्

प० । अध्येष्यमाणं तु गुरुः नित्यकालं अतंद्रितः अधीष्व भो इति ब्रूयात् विरामः अस्तु इति च आरमेत् ॥

यो० । नित्यकालं अतंद्रितः गुरुः अध्येष्यमाणं (शिष्यं) भो अधीष्व इति (प्रथमं)ब्रूयात् विरामःअस्तु इति (उक्त्वा अन्ते)आरमेत् ॥

भा० । ता० । अध्ययन करतेहुये शिष्यको सदैव आलस्य से रहित गुरु प्रथम यह कहै कि भो शिष्य पढ़ और अन्त में समाप्तिहो यह कहकर समाप्ति करदे—अर्थात् जितनी अपनीइच्छा हो उतनाही पढ़ावे ७३ ॥

ब्रह्मणःप्रणवंकुर्यादादावन्तेचसर्वदा । स्रवत्यनोंकृतंपूर्वंपुरस्ताच्चविशीर्यति ७४ ॥

प० । ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यात् आदौ अन्ते च सर्वदा स्रवति अनोंकृतं पूर्वं परस्तात् च विशीर्यति ॥

यो० । ब्रह्मणः (वेदस्य) आदौ चपुनः अन्ते सर्वदा प्रणवं कुर्यात् — पूर्वं अनोंकृतं (अध्ययनं) स्रवति — चपुनः परस्तात् अनोंकृतं विशीर्यति ॥

(१) उत्तानाभ्यांहस्ताभ्यां दक्षिणेनदक्षिणं सव्यंसव्येन पादावभिवादयेत्-

भा० । वेदकी आदि और अन्त में ओंकारको कहै क्योंकि जिसके पहिले ओं न कहाहो वह शनैः२ और जिसके पीछे न कहाहो वह उसीसमय नष्टहोजाता है ॥

ता० । वेदपढ़ने के आरम्भ में और अन्तमें सदैव ओंकार का उच्चारण करै क्योंकि जिसवेद के पढ़ने से प्रथम ओंकारका उच्चारण नहींकिया वह शनैः २ नष्टहोता है और जिसकी समाप्ति में ओंकारका उच्चारण नहीं किया वह उसीसमय नष्टहोजाता है अर्थात् हृदय में प्रविष्टही नहीं होता ७४ ॥

प्राक्कूलान्पर्युपासीनःपवित्रैश्चैवपावितः । प्राणायामैस्त्रिभिःपूतस्ततओंकारमर्हति ७५ ॥

प० । प्राक्कूलान् पर्युपासीनः पवित्रैः च एव पावितः प्राणायामैः त्रिभिः पूतः ततः ओंकारं अर्हति ॥

यो० । प्राक्कूलान् (कुशान) पर्युपासीनः चपुनः पवित्रैः (कुशैः) पावितः त्रिभिः प्राणायामैः(पूर्वं) पूतः (द्विजः) ततः ओंकारं अर्हति ॥

भा० । पूर्वको अग्रभागजिनका ऐसीकुशाओंपरबैठा और दोनोंहाथोंकी पवित्रियों और तीन प्राणयामों से पवित्र मनुष्य ओंकारपढ़ने के योग्यहोताहै ॥

ता० । पूर्वको है अग्रभागजिनका ऐसी कुशाओंपर बैठा—और दोनोंहाथों में स्थित पवित्री रूप कुशाओं और तीन प्राणायामों से पवित्र किया द्विज फिर ओंकारके पढ़ने योग्य होता है—और प्राणायामकासमय उतनागौतम (१) ऋषिनेकहाहै जितने समयमें १५ पंचदश मात्राओं का उच्चारण हो और मात्राका समय वहहै जो अकारआदि ह्रस्व अक्षरोंके बोलनेकाहै ७५ ॥

अकारंचाप्युकारंचमकारंचप्रजापतिः । वेदत्रयान्निरदुहद्भूर्भुवःस्वरितीतिच ७६ ॥

प० । अकारं च अपि उकारं च मकारं च प्रजापतिः वेदत्रयात् निरदुहत् भूः भुवः स्वः इति इति च ॥

यो० । प्रजापतिः वेदत्रयात् अकारं — चपुनः उकारं — चपुनः मकारं — चपुनः भूः भुवः स्वः इति(क्रमेण)निरदुहत् ॥

भा० । ब्रह्मा ने ऋक्—यजुः—साम—इनतीनों वेदों से अकार उकार और मकार को और भूः भुवः स्वः इनतीनों व्याहृतियों को क्रमसे रचा ॥

ता० । ओंकारके अवयव अकार और उकार और मकारको औरभूः (भूलोक) भुवः(अंतरिक्ष लोक) और स्वः (स्वर्गलोक) को क्रमसे प्रजापति (ब्रह्मा) तीनोंवेदों से अर्थात् ऋग्वेद यजुर्वेद—सामवेदसे—दुहतभये—सिद्धांतयहहै कि ऋग्वेदके सारभूत अकार और भूः व्याहृतिको—और यजुर्वेद के सारभूत उकार और भुवः व्याहृतिको—और सामवेद के सारभूत मकार और स्वः व्याहृतिको ब्रह्मा ने रचा अर्थात् ओंकार और तीनों व्याहृतियों के उच्चारण से तीनोंवेदों की पारायण का पुण्य होता है ७६ ॥

त्रिभ्यएवतुवेदेभ्यःपादंपादमदूदुहत्। तदित्यृचोऽस्याःसावित्र्याःपरमेष्ठीप्रजापतिः७७॥

प० । त्रिभ्यः एव तु वेदेभ्यः पादं पादं अदूदुहत् तत् इति ऋचः अस्याः सावित्र्याः परमेष्ठी प्रजापतिः ॥

---

(१) प्राणामास्त्रयः पंचदशमात्राः ॥

यो० । परमेष्ठी प्रजापतिः त्रिभ्यः एव वेदेभ्यः तत्इति अस्याः सावित्र्याः ऋचः पादं पादं (क्रमेण) अदूदुहत् ॥

भा० । परमेष्ठी ब्रह्मा ने तत् इत्यादि गायत्री ऋचा का एक २ पाद पूर्वोक्त तीनोंवेदोंसेही दुहा (रचा) ॥

ता० । उत्तमस्थान में स्थित ब्रह्मा ने तत्सवितुर्वरेण्यं-इत्यादि सावित्री (गायत्री) ऋचाके एक २ पादको पूर्वोक्त तीनोंवेदोंसे दुहा अर्थात् रचा-सिद्धांतयहहै कि यहगायत्रीभी तीनोंवेदों का सारांशहीहै इससे गायत्री के जपसे भी तीनोंवेदों के पाठकरने का फल मिलताहै ७७ ॥

एतदक्षरमेतांचजपन्व्याहृतिपूर्विकाम् । संध्ययोर्वेदविद्विप्रोवेदपुण्येनयुज्यते ७८ ॥

प० । एतत् अक्षरं एतां च जपन् व्याहृतिपूर्विकाम् संध्ययोः वेदवित् विप्रः वेदपुण्येन युज्यते

यो० । एतत् (ओं) अक्षरं चपुनः व्याहृतिपूर्विकां एतां (गायत्रीं) संध्ययोः जपन् वेदवित् विप्रः वेदपुण्येनयुज्यते ॥

भा० । ओंकार और व्याहृतियों सहित गायत्री को दोनोंसंध्याओं में जपताहुआ वेदकाज्ञाता ब्राह्मण वेदपाठ के पुण्यको प्राप्तहोताहै ॥

ता० । इस ओंकार अक्षर को और तीनों व्याहृति हैं पूर्व जिसके ऐसी इस गायत्रीरूप ऋचाको संध्याओं के समय जपताहुआ वेद के जाननेवाला ब्राह्मण तीनोंवेदोंके पढ़नेसे पैदाहुये पुण्यसे युक्त होताहै इससे मनुजीने यह विधानकिया कि संध्याके समय ओंकार और तीनों व्याहृतियों सहित गायत्री को जपै ७८ ॥

सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्यबहिरेतत्त्रिकंद्विजः।महतोऽप्येनसोमासात्त्वचेवाहिर्विमुच्यते ७९॥

प० । सहस्रकृत्वः तु अभ्यस्य बहिः एतत् त्रिकं द्विजः महतः अपि एनसः मासात् त्वचा इव अहिः विमुच्यते ॥

यो० । द्विजः एतत्त्रिकं बहिः (नदीतीरादौ) सहस्रकृत्वः अभ्यस्य महतः अपि एनसः (पापात्) त्वचा अहिः (सर्पः) इव मासात् विमुच्यते ॥

भा० । सहस्रबार ग्राम से बाहर इनतीनों को जपकर द्विज महान् भी पापसे इसप्रकार छुटताहै जैसे कांचलीसे सांप ॥

ता० । संध्यासे इतर समय में भी इस पूर्वोक्त-ओंकार व्याहृतिसहित गायत्री-तीनों ग्राम से बाहिर नदी के तीरआदि पर सहस्रबार जपकर एकमास में महान् भी (बड़े) पाप से इस प्रकार छुटता है जैसे त्वचा (कंचुकसे) सर्प छुटताहै-तिससे पापों के क्षयके लिये इसको जपना चाहिये ७९ ॥

एतयर्चाविसंयुक्तःकालेचक्रिययास्वया । ब्रह्मक्षत्रियविट्योनिर्गर्हणांयातिसाधुषु ८० ॥

प० । एतया ऋचा विसंयुक्तः काले च क्रियया स्वया ब्रह्मक्षत्रियविट्योनिः गर्हणां याति साधुषु ॥

यो० । एतयाऋचा चपुनः काले स्वया क्रियया विसंयुक्तः ब्रह्मक्षत्रियविट्योनिः साधुषु गर्हणांयाति ॥

भा० । इस गायत्री ऋचासे और समय पर अपने पूर्वोक्त कर्मोंसे हीन द्विजाति सज्जनों में निंदाको प्राप्त होतेहैं ॥

ता० । संध्या के समय वा अन्यसमय में इसप्रचासे वा समयपर सायंकाल और प्रातःकाल अपने होम दान आदि अपनी क्रियासे विसंयुक्त (हीन) ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य सज्जनों में निंदाको प्राप्तहोताहै-तिससे अपने २ समय पर गायत्रीका जप और होम दान आदि अपनी क्रियाको न त्यागे ८० ॥

ओंकारपूर्विकास्तिस्रोमहाव्याहृतयोऽव्ययाःत्रिपदाचैवसावित्रीविज्ञेयंब्रह्मणोमुखम्८१

प० । ओंकारपूर्विकाः तिस्रः महाव्याहृतयः अव्ययाः त्रिपदा च एव गायत्री विज्ञेयं ब्रह्म-णः मुखं ॥

यो० । ओंकारपूर्विकाः तिस्रः अव्ययाः महाव्याहृतयः चपुनः त्रिपदा सावित्री ब्रह्मणः (वेदस्य वा ईश्वरस्य)मुखं विज्ञेयम् ॥

भा० । ओंकारसहित और अव्यय तीनों महाव्याहृति और त्रिपदा गायत्री ब्रह्मका मुख (आदि वा द्वार) जानना ॥

ता० । ओंकार है पूर्व जिनके ऐसी अव्यय (नाशरहित) तीनों महाव्याहृति और तीन हैं पाद जिसमें ऐसी सावित्री (गायत्री) यह ब्रह्म वेदको वा ब्रह्मको आदि समझना (१) क्योंकि इस ओंकार और महाव्याहृति सहित गायत्री के उपदेश विना वेदके पढ़ने का आरंभही नहीं होता अथवा परमात्मा ब्रह्मकी प्राप्ति का भी यही द्वारहै क्योंकि इसके ही अध्ययन वा जप से पापहीन पुरुष को प्रकृष्ट (उत्तम) ब्रह्मज्ञान से मोक्षकी प्राप्ति होतीहै-ओंकार सहित तीनोंव्या-हृतियोंको अव्यय इससे कहतेहैं कि इनसेही अविनाशि ब्रह्मकी प्राप्तिहोतीहै ८१ ॥

योऽधीतेऽहन्यहन्येतांस्त्रीणिवर्षाण्यतन्द्रितः।सब्रह्मपरमभ्येतिवायुभूतःखमूर्तिमान्८२

प० । यः अधीते अहँनि अहँनि एतां त्रीणि वर्षाणि अतंद्रितः सः ब्रह्म परं अभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमान् ॥

यो० । यः अतंद्रितः (द्विजः अहनि २ प्रतिदिनं) एतां त्रीणि वर्षाणि अधीते वायुभूतः खमूर्तिमान् स परंब्रह्म अभ्येति (संपद्यते) ॥

भा० । जो द्विज तीनवर्ष पर्यन्त आलस्य को त्यागकर इस गायत्री को पढ़ता (जपता) है वायु और आकाशरूप होकर वह द्विज परंब्रह्म के सन्मुखजाताहै अर्थात् परब्रह्मरूप होताहै ॥

ता० । जो द्विज आलस्य को त्यागकर प्रतिदिन ओंकार महाव्याहृति सहित इस गायत्री को तीनवर्षपर्यंत पढ़ताहै वह परब्रह्मके सन्मुखजाताहै और पवन के समान कामचारी (चाहै जिसलोकका गामी) होताहै-और ख (ब्रह्म) हीहै मूर्ति (स्वरूप) जिसका ऐसा होजाता है अर्थात् स्थूल और सूक्ष्म शरीरके नाश से ब्रह्मरूप होजाता है-सिद्धांत यह है कि इसी का जप ब्रह्मप्राप्तिका कारण है ८२ ॥

एकाक्षरंपरंब्रह्मप्राणायामाःपरंतपः । सावित्र्यास्तुपरंनास्तिमौनात्सत्यंविशिष्यते ८३

प० । एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामाः परं तपः सावित्र्याः तु परं न अस्ति मौनात् सत्यं विशिष्यते

---

(१) ओंभूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यंभर्गोदेवस्यधीमहिधियोयोनः प्रचोदयात् ओम् ॥

यो० । एकाक्षरं (ओं) परं तपः (अस्ति) प्राणायामाः परं तपः (संति) सावित्र्याः (अन्यत्) परं (उत्कृष्टं) नास्ति — मौनात् सत्यं विशिष्यते ॥

भा० । एक अक्षर (ओं) ही परंब्रह्म और प्राणायाम ही परमतप है और गायत्री से श्रेष्ठ इतर नहीं है और मौनसे सत्य वाणी अधिक है ८३ ॥

ता० । ब्रह्म की प्राप्तिका कारण होनेसे एक अक्षर (ओं) ही परंब्रह्म है क्योंकि ओंकारके जप और ओंकार के अर्थ परब्रह्म के विचारसे ही ब्रह्मकी प्राप्ति होतीहै और प्राणायाम (१) ओंकार सातव्याहृति–शिरस्कमंत्र–और गायत्री–इनके तीनवार जपसे किये) ही चांद्रायण आदि से श्रेष्ठ तप हैं–और प्राणायामाः इस बहुवचन के दिखाने से यह कहा कि तीनों प्राणायाम अवश्यकरने–और गायत्री से उत्तम इतर मंत्रोंका समूह नहीं है–और मौन रहनेसे सत्यवाणी श्रेष्ठ है इनचारों (ओं–प्राणायाम–गायत्री–सत्यवाणी) की स्तुति से यह सिद्धहुआ कि ये चारों अवश्य करने–यहां धरणीधरने यह पाठ लिखा है कि–एकाक्षरपरंब्रह्मप्राणायामपरंतपः–एक अक्षरहीहै पर (उत्कृष्ट) जिसमें ऐसा ब्रह्म और प्राणायामही है पर जिसमें ऐसा तप है–परन्तु मेधातिथि आदि वृद्धोंने यह पाठ नहीं लिखा इससे धरणीधर स्वतंत्र है अर्थात् उसका लेख ठीक नहीं है ८३ ॥

क्षरन्तिसर्वावैदिक्योजुहोतियजतिक्रियाः । अक्षरंदुष्करंज्ञेयंब्रह्मचैवप्रजापतिः ८४ ॥

प० । क्षरंति सर्वाः वैदिक्यः जुहोतियजतिक्रियाः अक्षरं दुष्करं ज्ञेयं ब्रह्म च एव प्रजापतिः ॥

यो० । वैदिक्यः सर्वाः जुहोतियजतिक्रियाः क्षरंति अक्षरं (ओं) दुष्करं (अक्षयं) चपुनः प्रजापतिर्यद्ब्रह्म (तदपि) अक्षरं ज्ञेयम् ॥

भा० । वेदके होम और यज्ञादि सब कर्म नष्टहोजातेहैं और प्रजाओंका अधिपति ब्रह्मरूप होनेसे ओंकार अक्षर और दुष्कर (अविनाशीहै) ॥

ता० । वेदमें विहित होम और यज्ञ आदिक संपूर्ण कर्मोंका कुशास्थापन आदिस्वरूप और स्वर्ग आदिक फल नष्टहोजाताहै–और ओंकाररूप अक्षर अक्षयहै क्योंकिइसीसे अक्षय ब्रह्मकी प्राप्तिहोतीहै और इसओंकारके जपकाफल ब्रह्मअक्षयहै इससे इसकोभी अक्षयकहतेहैं–और यह ओंकार ब्रह्मकी प्राप्तिका कारण इसप्रकारहै कि जिससे प्रजाओंका अधिपति जो ब्रह्महै वहीयह ओंकारहै अर्थात् स्वरूपसे भी यह ब्रह्मका प्रतिपादकहै इसीसे ब्रह्मरूपहै–सिद्धांत यहहै कि स्वरूप और अर्थ दोनोंप्रकारसे यह ब्रह्मरूप ओंकार जपकालसे मोक्षकाहेतुहै ८४ ॥

विधियज्ञाज्जपयज्ञोविशिष्टोदशभिर्गुणैः । उपांशुःस्याच्छतगुणःसाहस्रोमानसःस्मृतः ॥

प० । विधियज्ञात् जपयज्ञः विशिष्टः दशभिः गुणैः उपांशुः स्यात् शतगुणः साहस्रः मानसः स्मृतः ॥

यो० । विधि यज्ञात् जपयज्ञः दशभिः गुणैः विशिष्टः — उपांशुः शतगुणः स्यात् मानसः साहस्रः स्मृतः ॥

---

(१) ओंभूः ओंभुवः ओंस्वः ओंमहः ओंजनः ओंतपः ओंसत्यं ओंतत्सवितुर्वरेण्यंभर्गोदेवस्य धीमहि धियोयोनः प्रचोदयात् ओं आपोज्योतिः रसोमृतं ब्रह्मभूर्भुवः स्वः ओम् ॥

भा० । विधियज्ञसे जपयज्ञ दशगुना–उपांशुजप सौगुनाहै और मानसजप सहस्रगुना–अधिकहै ॥

ता० । वेदोक्त विधिसे किये विधियज्ञ (दर्श पौर्णमासादि) से प्रणव (ओं) आदिजपयज्ञ दशगुना अधिकहै–यदि वह जप इसप्रकार कियाजाय कि समीप बैठा मनुष्य भी न सुनसके (जिसको उपांशुकहतेहैं) तो सौ गुना अधिकहै और यदि वह जपमानस (जिसमें जिह्वा ओष्ठचलायमाननहों) कियाजाय तो सहस्रगुणा अधिकहै–अर्थात् मानसजप सर्वोत्तमहै ८५ ॥

येपाकयज्ञाश्चत्वारोविधियज्ञसमन्विताः । सर्वेतेजपयज्ञस्यकलांनार्हन्तिषोडशीम् ८६

प० । ये पाकयज्ञाः चत्वारः विधियज्ञसमन्विताः सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां न अर्हन्ति षोडशीम् ॥

यो० । विधियज्ञसमन्विताः येचत्वारः पाकयज्ञाः (संति) ते सर्वे जपयज्ञस्य षोडशीं कलां न अर्हंति ॥

भा० । विधियज्ञों सहित जो चार पाकयज्ञहैं वे सब जपयज्ञकी सोलहवींकला (भाग) के योग्यनहींहैं ॥

ता० । वेदाध्ययनरूप ब्रह्मयज्ञसे अन्य जो पांच महायज्ञोंके अंतर्गत चार पाकयज्ञ (वैश्वदेव–होमबलिकर्म–नित्यश्राद्ध–अतिथिभोजन–) हैं–विधियज्ञों (दर्शपौर्णमास) सहित वे सब जपयज्ञकी सोलहवीं १६ कलाको प्राप्तनहींहोते अर्थात् जपयज्ञके सोलमें अंशके समान भी फल को नहीं देसकतेहैं ८६ ॥

जप्येनैवतुसंसिध्येद्ब्राह्मणोनात्रसंशयः । कुर्यादन्यन्नवाकुर्यान्मैत्रोब्राह्मणउच्यते ८७ ॥

प० । जप्येन एव तु संसिध्येत् ब्राह्मणः न अत्र संशयः कुर्यात् अन्यत् न वा कुर्यात् मैत्रः ब्राह्मणः उच्यते ॥

यो० । ब्राह्मणः जप्येनैव संसिध्येत् अत्रसंशयः न (अस्ति) अन्यत् (यज्ञादिकं) कुर्यात् वा न कुर्यात् (स) ब्राह्मणः मैत्रः उच्यते ॥

भा० । जपसेही ब्राह्मण मोक्ष प्राप्तिरूप सिद्धिको प्राप्तहोताहै इसमें संशयनहीं और वह यज्ञ करै वा न करै तथापि ब्रह्ममें लीन और मैत्र (सबमित्र) कहाताहै ॥

ता० । वेदोक्त अन्य यज्ञादिक कर्मों को करो वा न करो केवल जपसे ही ब्राह्मण मोक्षरूप सिद्धिको प्राप्तहोना है इसमें संदेह नहीं है–और वही सबकामैत्र (मित्र) और ब्राह्मण (जो ब्रह्ममें लीनहो)–अर्थात् यज्ञआदि कर्मों में पशु और बीज आदि के वधसे सम्पूर्ण प्राणियों का प्यारनहीं होता इससे जो ओंकार आदिके जपमें तत्पर है वह उससे उत्तम है इससे यज्ञादिकों कोभी वेदोक्त होनेसे त्यागने योग्य न समझना चाहिये ८७ ॥

इन्द्रियाणांविचरतांविषयेष्वपहारिषु । संयमेयत्नमातिष्ठेद्विद्वान्यन्तेववाजिनाम् ८८ ॥

प० । इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु अपहारिषु संयमे यत्नं आतिष्ठेत् विद्वान् यंता इव वाजिनाम् ॥

यो० । विद्वान् अपहारिषु विषयेषु विचरतां इंद्रियाणां संयमे वाजिनां यंताइव यत्नं आतिष्ठेत् ॥

भा० । नाशमान विषयोंमें वर्तमान इन्द्रियोंके संयममें विद्वान् पुरुष इसप्रकार यत्नकरै जैसे सारथी अश्वोंके संयम में करताहै ॥

ता० । अब सम्पूर्ण वर्णोंके करने योग्य और धर्म अर्थ काम मोक्षरूप चारों पुरुषार्थोंका उपयोगी इन्द्रियों का संयम (वशीकरण)कहतेहैं नष्टहोना रूप विषयों के नष्ट करनेवाले विषयोंमें वर्त्तमान दोष को जानता हुआ विद्वान्पुरुष इन्द्रियोंके संयम (अपने आधीनकरना) में इस प्रकार यत्नकरै जैसे रथमें नियुक्त वाजियों (घोड़ों) के वश करने में सारथी करता है अर्थात् इन्द्रियों के विषयों में आसक्त न हो ८८ ॥

एकादशेन्द्रियाण्याहुर्यानिपूर्वेमनीषिणः । तानिसम्यक्प्रवक्ष्यामियथावदनुपूर्वशः ८९ ॥

प० । एकादश इन्द्रियाणि आहुः यानि पूर्वे मनीषिणः तानि सम्यक् प्रवक्ष्यामि यथावत् अनुपूर्वशः ॥

यो० । पूर्वे मनीषिणः यानि एकादशइंद्रियाणि आहुः तानि अनुपूर्वशः यथावत् सम्यक् प्रवक्ष्यामि ॥

भा० । ता० । पहिले पण्डितों ने जो एकादश इन्द्रिय कही हैं उन सबको आधुनिक मनुष्यों की शिक्षा के लिये नाम और कर्म से भलीप्रकार क्रमपूर्वक वर्णनकरताहूं ८९ ॥

श्रोत्रंत्वक्चक्षुषीजिह्वानासिकाचैवपञ्चमी । पायूपस्थंहस्तपादंवाक्चैवदशमीस्मृता ९० ॥

प० । श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा नासिका च एव पंचमी पायूपस्थं हस्तपादं वाक् च एव दशमी स्मृता ॥

यो० । श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा — चपुनः पंचमी नासिका — पायूपस्थं हस्तपादं चपुनः दशमी वाक् (मन्वादिभिः) स्मृता ॥

भा० । ता० । तिन एकादश इंद्रियोंमें श्रोत्र (कर्ण) त्वचा चक्षु (नेत्र) जिह्वा और पांचमी नासिका—और पायु (गुदा) उपस्थ (लिंगइंद्रिय) हस्त—और पाद (चरण) और दशमी वाक् (वाणी) मनुआदि ने मानी हैं ९० ॥

बुद्धीन्द्रियाणिपञ्चैषांश्रोत्रादीन्यनुपूर्वशः । कर्मेन्द्रियाणिपञ्चैषांपाय्वादीनिप्रचक्षते ९१ ॥

प० । बुद्धींद्रियाणि पंच एषां श्रोत्रादीनि अनुपूर्वशः कर्मेंद्रियाणि पंच एषां पाय्वादीनि प्रचक्षते विद्वांसइति शेषः ॥

यो० । एषां (पूर्वोक्त दशानां) मध्ये श्रोत्रादीनिपंच अनुपूर्वशः बुद्धींद्रियाणि — एषां मध्ये पाय्वादीनि पंच कर्मेंद्रियाणि पंडिताः प्रचक्षते (कथयंति) ॥

भा० । इन दशोंके मध्यमें क्रमसे पूर्वोक्त श्रोत्र आदि पांचज्ञानेंद्रिय और पायुआदि पांच कर्मेंद्रिय—पंडितजन कहते हैं ॥

ता० । इनदशोंके मध्यमें—श्रोत्र—त्वचा—नेत्र—जिह्वा—घ्राण—क्रमसे उक्त ये पांच बुद्धि (ज्ञान) की इंद्रियहैं क्योंकि इनकेद्वारा जीवात्माको क्रमसे शब्द—स्पर्श—रूप—रस—गंधकाज्ञानहोताहै और इनदशोंके मध्यमें—पायु-उपस्थ—हाथ-पाद—वाणी ये पांचकर्म इंद्रियहैं क्योंकि इनके द्वारा

जीवात्मा—मलकात्याग—स्त्रीके संगरतिका आनंद—ग्रहण—गमन—भाषण—कर्मोंको क्रमसे करताहै—यहबात इंद्रियोंके स्वरूपके ज्ञाता पंडितजनकहतेहैं ६१ ॥

एकादशंमनोज्ञेयंस्वगुणेनोभयात्मकम् । यस्मिञ्जितेजितावेतौभवतःपञ्चकौगणौ ६२ ॥

प० । एकादशं मनः ज्ञेयं स्वगुणेन उभयात्मकं यस्मिन् जिते जितौ एतौ भवतः पंचकौ गणौ ॥

यो० । यस्मिन्जिते (सति) एतौ पंचकौ गणौ जितौ भवतः स्वगुणेनोभयात्मकं (तत्) मनः एकादशं (इंद्रियं) ज्ञेयम् ॥

भा० । अपने संकल्प विकल्पसे दोनों इंद्रियोंका प्रेरकमन ग्यारहवीं अंतर इंद्रियजानना और जिसमनके जीते पर ये दोनों पांच२के संघजीतेजातेहैं ॥

ता० । अपने संकल्प विकल्परूपसे दोनों प्रकारकी इंद्रियोंका प्रवर्तक मन एकादश (ग्यारवीं) अन्तर इंद्रिय जाननी क्योंकि जिसमनकेजीते (वशकिये) पीछे ये पूर्वोक्त दोनों पांच२ के गण (समूह) जितहोजातेहैं अर्थात् वशमें होजातेहैं—यहां पंचकौ इस पदका यह अर्थहै कि पांच संख्यासे परिमित संघ ६२ ॥

इन्द्रियाणांप्रसंगेनदोषमृच्छत्यसंशयम् । संनियम्यतुतान्येवततःसिद्धिंनियच्छति ९३ ॥

प० । इंद्रियाणां प्रसंगेन दोषं ऋच्छति असंशयं संनियम्य तु तानि एव ततः सिद्धिं नियच्छति ॥

यो० । पुरुषः इंद्रियाणांप्रसंगेन असंशयं दोषं ऋच्छति—तानिएव नियम्य तु ततः सिद्धिं नियच्छति ॥

भा० । इंद्रियों की विषयोंमें प्रवृत्ति दोष—और इंद्रियोंकेही संयमसे सिद्धिको मनुष्य अवश्य प्राप्तहोता है ॥

ता० । इंद्रियों की प्रवृत्ति का मूल मनका धर्मरूप संकल्प है तो इंद्रियोंका निग्रह क्योंकरना इसशंका की निवृत्ति के लिये कहतेहैं कि इंद्रियों की विषयों में प्रवृत्तिमें दृष्ट और अदृष्टदोष को मनुष्य अवश्य प्राप्तहोताहै और उन्हीं इंद्रियोंको वशमेंकरके मोक्षआदिरूप पुरुषार्थकी योग्यता रूप सिद्धिको प्राप्तहोताहै इससे इंद्रियों का संयम अवश्य करनेयोग्य है ९३ ॥

नजातुकामःकामानामुपभोगेनशाम्यति । हविषाकृष्णवर्त्मेवभूयएवाभिवर्धते ९४ ॥

प० । न जातु कामः कामानां उपभोगेन शाम्यति हविषा कृष्णवर्त्मा इव भूयः एव अभिवर्द्धते ॥

यो० । कामानां उपभोगेन जातु (कदाचित्) न शाम्यति हविषा कृष्णवर्त्मा इव भूयः अभिवर्द्धते एव ॥

भा० । विषयों के उपभोग से इच्छा कभी भी शांतनहींहोती किंतु इसप्रकार अधिक बढ़ती है जैसे घीसे अग्नि ॥

ता० । विषयभोगों के लाभ से काम (इच्छा) आपही निवृत्तहोजायगी इंद्रियों का संयम निष्फल है यह नहींकहना क्योंकि विषयों की इच्छा विषयों के भोग से कदाचित् भी शांतनहीं होती किंतु जिसप्रकार घृतसे अग्नि दूनी २ प्रज्वलितहोतीहै इसीप्रकार विषयोंके भोगसे इच्छा भी बढ़ती है क्योंकि भोगीपुरुष को प्रतिदिन अधिक २ भोगोंकी इच्छा देखतेहैं—इसीसे विष्णु

पुराणमें (१) ययाति राजाका वाक्यहै कि जो कुछ पृथिवीभरमें धान जौ—सोना—पशु—स्त्री—हैं वे सब एककी भी तृष्णा पूरीकरनेको समर्थनहींहैं इससे अत्यन्त तृष्णाको त्यागदे—और विषयोंमें चित्तलगाये मुझे एकसहस्रवर्ष पूर्णहोगये तोभी विषयोंमें प्रतिदिन श्रद्धाहीहोतीहै ६४॥

यश्चैतान्प्राप्नुयात्सर्वान्यश्चैतान्केवलांस्त्यजेत्प्रापणात्सर्वकामानांपरित्यागोविशिष्यते

प० । यः च एतान् प्राप्नुयात् सर्वान् यः च एतान् केवलान् त्यजेत् प्रापणात् सर्वकामानां परित्यागः विशिष्यते ॥

यो० । यः (पुरुषः) एतान् सर्वान् प्राप्नुयात् चपुनः यः एतान् केवलान् त्यजेत् (तयोर्मध्ये) सर्वकामानां प्रापणात् परित्यागः विशिष्यते (अधिकोस्ति) ॥

भा० । जिसको सम्पूर्ण विषय प्राप्तहोजायँ और जो सम्पूर्ण विषयों को त्यागदे उनदोनों में सब विषयोंका त्याग सब विषयोंकी प्राप्तिसे श्रेष्ठहै ॥

ता० । जो पुरुष इनसंपूर्ण विषयों को प्राप्तहोजाय अर्थात् सबको भोगे—और जो इन केवल विषयोंकोही त्यागदे उनदोनोंमें सबकामनाओं की प्राप्तिसे त्यागना श्रेष्ठहै और अतएव त्यागी मनुष्य भी श्रेष्ठसे क्योंकि विषयों में लोलुपमनुष्यको विषयों के साधन और उत्पत्तिमें और विपत्ति में क्लेशहोता है और विषयोंसे विरस (त्यागी) को यह क्लेश नहींहोते ६५ ॥

नतथैतानिशक्यन्तेसंनियन्तुमसेवया । विषयेषुप्रजुष्टानियथाज्ञानेननित्यशः ९६ ॥

प० । न तथा एतानि शक्यंते संनियंतुं असेवया विषयेषु प्रजुष्टानि यथा ज्ञानेन नित्यशः ॥

यो० । विषयेषु प्रजुष्टानि एतानि (इंद्रियाणि) असेवया तथा संनियन्तुं न शक्यंते यथा नित्यशः ज्ञानेन संनियंतुं शक्यंते ॥

भा० । ता० । अब इंद्रियोंके संयमका उपाय कहतेहैं कि विषयोंमें लगीहुई ये इंद्रिय विषयोंकी नहीं सेवासे उसप्रकार संयम (वशमें) करनेको शक्यनहींहै जैसे प्रतिदिन इसप्रकार के ज्ञानसे कि विषय सब विनाशी हैं देह अस्थियों का समूह है—तिससे विषयोंमें दोषदृष्टिसेही दर्शोबाह्य इंद्रिय और मनको वशमें करने में यत्नकरै ९६ ॥

वेदास्त्यागश्चयज्ञाश्चनियमाश्चतपांसिच।नविप्रदुष्टभावस्यसिद्धिंगच्छन्तिकर्हिचित्९७

प० । वेदाः त्यागः च यज्ञाः च नियमाः च तपांसि च न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छंति कर्हिचित् ॥

यो० । विप्रदुष्टभावस्य (पुरुषस्य) वेदाः त्यागः—चपुनः यज्ञाः—नियमाः — चपुनः तपांसि कर्हिचित् सिद्धिं न गच्छन्ति ॥

भा० । विषयोंमें आसक्तचित्त मनुष्यके वेद—त्याग—यज्ञ—नियम और तप ये कभीभी सफल नहींहोते—अर्थात् वृथा जातेहैं ॥

ता० । अब यह कहतेहैं कि वशमें नहीं किया मन विकारका कारण है—वेद का अध्ययन—

---

(१) यत्पृथिव्यांव्रीहियवं हिरण्यंपशवःस्त्रियः । एकस्यापिनपर्याप्तं—तादित्यातितृष्णांत्यजेत् १ ॥
तथा पूर्णवर्षसहस्रंमे विषयासक्तचेतसः । तथाप्यनुदिनंतृष्णा यत्तेष्वेवहिजायते २ ॥

दान—यज्ञ—नियम—तप—ये सब विषयोंके संकल्प विकल्पमें स्वभाव जिसका ऐसे मनुष्यकीसिद्धि को प्राप्तकभी नहींहोते अर्थात् निष्फलहोतेहैं ९७ ॥

श्रुत्वास्पृष्ट्वाचदृष्ट्वाचभुक्त्वाघ्रात्वाचयोनरः।नहृष्यतिग्लायतिवासविज्ञेयोजितेन्द्रियः ९८

प० । श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यः नरः न हृष्यति ग्लायति वा सः विज्ञेयः जितेन्द्रियः ॥

यो० । यश्नरः श्रुत्वा—स्पृष्ट्वा चपुनः दृष्ट्वा — चपुनः भुक्त्वा घ्रात्वा नहृष्यति वा न ग्लायति सः जितेन्द्रियः विज्ञेयः॥

भा० । जो मनुष्य सुनकर—स्पर्शकरके—देखकर—खाकर—सूंघकर—प्रसन्न वा अप्रसन्न नहीं होता वही जितेंद्रिय जानना ॥

ता० । स्तुति और निन्दाके वाक्यको सुनकर—और जिसके स्पर्शमें सुखहो ऐसे दुपट्टे आदि का और जिसके स्पर्शमें दुःखहो ऐसे कम्बल आदिका स्पर्शकरके—और सुन्दररूप और कुरूप को देखकर—और स्वादु और अस्वादु खाकर—और सुगन्ध और दुर्गंधको सूंघकर जो मनुष्य नतो प्रसन्न होताहै और न अप्रसन्नहोताहै वही जितेन्द्रिय जानना ९८ ॥

इन्द्रियाणांतुसर्वेषांयद्येकंक्षरतीन्द्रियम् । तेनास्यक्षरतिप्रज्ञादृतेःपादादिवोदकम् ९९॥

प० । इन्द्रियाणां तु सर्वेषां यदि एकं क्षरति इन्द्रियं तेन अस्य क्षरति प्रज्ञा दृतेः पात्रात् इव उदकं ॥

यो० । यदि सर्वेषां इंद्रियाणां (मध्ये) एकं इंद्रियं क्षरति तेन अस्य प्रज्ञा दृतेः पात्रात् उदकं इव क्षरति ॥

भा० । सब इंद्रियोंके मध्यमें यदि एकभी इंद्रिय विषयों में लगजाय तो उसीसे इसकी बुद्धि स्थिर नहींहोती जैसे चामकी मसकमेंसे जल निकसजाताहै ॥

ता० । एक इंद्रिय का असंयमभी अच्छा नहींहै सब इंद्रियोंके मध्यमें यदि एकभी इंद्रियविषयोंमें प्रवण (प्रवृत्त) होजाय—तो उसीसे इस विषयासक्त मनुष्यका तत्त्वज्ञान इतर इंद्रियोंसे भी इसप्रकार नहीं टिकता जैसे चर्मके बनाये पात्र(मसक) से जल—अर्थात् जैसे उसके एकहीछिद्र मेंसे सबजल निकसजाताहै इसीप्रकार एकभी इन्द्रियके द्वारा प्रज्ञा (बुद्धि) नष्ट होजातीहै ९९ ॥

वशेकृत्वेन्द्रियग्रामंसंयम्यचमनस्तथा।सर्वान्संसाधयेदर्थानाक्षिण्वन्योगतस्तनुम् १००॥

प० । वशे कृत्वा इंद्रियग्रामं संयम्य च मनः तथा सर्वान् संसाधयेत् अर्थान् अक्षिण्वन् योगतः तनुम् ॥

यो० । इन्द्रियग्रामं वशे कृत्वा तथा मनः संयम्य योगतः तनुं आक्षिण्वन् सन सर्वान् अर्थान् संसाधयेत् ॥

भा० । बाह्य इन्द्रिय और मनको वशमें करके और शनैः २ उपायों से देहको पीड़ा नहीं देता हुआ मनुष्य सब पुरुषार्थोंको सिद्धकरे ॥

ता० । अब इंद्रियोंके संयमकोही सब पुरुषार्थोंका हेतु कहतेहैं कि सम्पूर्ण बाह्य इंद्रियों को अपनेआधीनकरके और मनकोभी वशमेंकरके उपायसे अपने देहकोपीड़ा नहीं देताहुआ मनुष्य सम्पूर्ण पुरुषार्थों (धर्म अर्थ काम और मोक्ष) को सिद्धकरे सिद्धान्त यहहै कि जो स्वभा-

विक सुखीहै और संस्कृत(भलीप्रकार बनाये)अन्नको खाताहै वह क्रम२से उससुखको त्यागदे–एकहीबार छोड़नेसे देहको पीडाहोगी इससे क्रम२ त्यागही उत्तमहै १०० ॥

पूर्वांसंध्यांजपंस्तिष्ठेत्सावित्रीमार्कदर्शनात् । पश्चिमांतुसमासीनःसम्यगृक्षविभावनात्

प० । पूर्वां सन्ध्यां जपन् तिष्ठेत् सावित्रीं आर्कदर्शनात् पश्चिमां तु समासीनः सम्यक् ऋक्ष-विभावनात् ॥

यो० । पूर्वां सन्ध्यां आर्कदर्शनात् (गायत्रीं) जपन् सन् तिष्ठेत्–पश्चिमांतु सम्यक् ऋक्षविभावनात् समासीनः (स्यात्) ॥

भा० । गायत्रीका जप करताहुआ (द्विज) प्रथम संध्या के समय सूर्यदर्शन पर्यन्त खड़ा रहै और संध्याकाल के समय भलीप्रकार नक्षत्रों के दर्शन पर्यन्त बैठारहै ॥

ता० । पूर्व (प्रातःकालकी) सन्ध्याके समय सूर्यदर्शनपर्यंत गायत्रीको जपताहुआ स्थित (खड़ा) रहै और पश्चिम (सायंकालकी सन्ध्याके समय गायत्रीको जपताहुआ बैठारहै–यहां सफलहोने से जप प्रधानहै और स्थान और आसन अर्थात्खड़ाहोना और बैठनाअंग (अप्रधान) है क्योंकि यह न्यायहै कि जहां फलवान् की समीपताहोतीहै वहांअंग निष्फल होताहै–पहिले गायत्री के जपका फल वर्णन करचुके हैं–और मेधातिथिने तो स्थान और आसनकोही प्रधान कहाहै–और संध्याका समय योगीश्वर याज्ञवल्क्यने (१) मुहूर्त्तमात्र कहाहै कि दिनों की क्रम से हानी और वृद्धि होती रहती हैं पर हानि औरवृद्धिमें संध्या मुहूर्त्तमात्रही है १०१ ॥

पूर्वांसंध्यांजपंस्तिष्ठन्नैशमेनोव्यपोहति।पश्चिमांतुसमासीनोमलंहन्तिदिवाकृतम्१०२॥

प० । पूर्वां संध्यां जपन् तिष्ठन् नैशं एनः व्यपोहति पश्चिमां तु समासीनः मलं हंति दिवाकृतं ॥

यो० । यः गायत्रीं जपन् पूर्वां संध्यां तिष्ठन् (भवति) सः नैशं एनः व्यपोहति–पश्चिमांतु जपन् समासीनः (पुरुषः) दिवाकृतं मलं हंति ॥

भा० । प्रातःकाल की संध्याके समय खड़ा होकर गायत्री के जपको करते हुये मनुष्यरात्रि में किया पाप और सायंकालकी संध्या के समय बैठकर गायत्री जपते हुये मनुष्यका दिन में किया पाप–नष्टहोता है ॥

ता० । प्रातःकालकी संध्याके समय खड़ाहोकर गायत्रीका जप करताहुआ द्विज रात्रि के संचितपापको नष्ट करताहै और पश्चिम संध्याके समयजपकरताहुआ द्विजदिन के संचितपाप को नष्टकरता है और इसगायत्री के जपसेवही पापनष्टहोता है जो अज्ञानसे कियाहो क्योंकि याज्ञवल्क्यने (२) यह कहाहै किदिनअथवारात्रिमें जो अज्ञानसे कियाहुआ पापहो वह सम्पूर्ण त्रिकाल संध्या के करने से नष्ट होजाता है १०२ ॥

(१) ह्रासवृद्धीनुसततंदिवसानांयथाक्रमं संध्यामुहूर्त्तमात्रंतु ह्रासेवृद्धौचमास्मृता १ ॥
(२) दिवावायदिवारात्रौ यदज्ञानकृतंभवेत्–त्रिकालसंध्याकरणात्तत्सर्वंविप्रणश्यति २ ॥

नतिष्ठतितुयःपूर्वांनोपास्तेयश्चपश्चिमाम्।सशूद्रवद्बहिष्कार्यःसर्वस्माद्द्विजकर्मणः१०३

प० । न तिष्ठति तु यः पूर्वां न उपास्ते यः च पश्चिमां सः शूद्रवत् बहिष्कार्यः सर्वस्मात् द्विजकर्मणः ॥

यो० । यः (द्विजः) पूर्वां न अनुतिष्ठति चपुनः यः पश्चिमां न उपास्ते सः सर्वस्माद्द्विजकर्मणःसकाशात् शूद्रवत् बहिष्कार्यः ॥

भा० । ता० । जो द्विज प्रातःकाल की संध्याको नहीं करता और जो सायंकालकी संध्याकी उपासना नहीं करता अर्थात् शास्त्रोक्त गायत्री के जपको नहीं करता वह अतिथि के सत्कार आदि सम्पूर्ण द्विजों के कर्मोंसे बाह्य इस प्रकार करने योग्यहै जैसा शूद्र—इसी प्रत्यवायसे संध्या आदि कर्म नित्य कहेहैं और नित्यहोने पर भी सर्वदा उपस्थित (त्यागने योग्य) पापोंका नाश इनका फल होने में कोई विरोध नहीं है १०३ ॥

अपांसमीपेनियतोनैत्यकंविधिमास्थितः।सावित्रीमप्यधीयीतगत्वारण्यंसमाहितः१०४

प० । अपां समीपे नियतः नैत्यकं विधिं आस्थितः सावित्रीं अपि अधीयीत गत्वा अरण्यं समाहितः ॥

यो० । नियतः नैत्यकं विधिं आस्थितः समाहितः सन् अरण्यं गत्वा अपांसमीपे गायत्रीं अपि अधीयीत ॥

भा० । वेदाध्ययन के फल को चाहता हुआ और निश्चलहै मन जिसका—और वनमें जाकर सावधान होकर गायत्रीको ही जपै ॥

ता० । वनआदि निर्जन देशमें जाकर नदी आदिके जलके समीप नियत (वशीभूत) की हैं इंद्रिय जिसने और सावधानीसे नित्यकरने योग्य (वेदाध्ययन) विधिके करनेकी इच्छा जिसकी ऐसा द्विज ओंकार और तीन व्याहृतियों सहित गायत्रीकोही पढ़े—सिद्धान्त यह है कि बहुत वेदके अध्ययनकी शक्ति न होयतो गायत्रीके जपसेही ब्रह्मयज्ञ होसक्ता है १०४ ॥

वेदोपकरणेचैवस्वाध्यायेचैवनैत्यके । नानुरोधोऽस्त्यनध्यायेहोममन्त्रेषुचैवहि १०५ ॥

प० । वेदोपकरणे च एव स्वाध्याये च एव नैत्यके न अनुरोधः अस्ति अनध्याये होममंत्रेषु च एव हि ॥

यो० । वेदोपकरणे —चपुनः नैत्यके स्वाध्याये —चपुनः होममन्त्रेषु अनध्याये अनुरोधो न अस्ति ॥

भा० । ता० । वेदके उपकारक (शिक्षाआदि वेदांग) में नित्यकर्तव्य स्वाध्यायमें—और होम के मंत्रोंमें अनध्यायका अनुरोध (आदर) नहींहै—अर्थात् इनको अनध्यायमें भी करे१०५॥

नैत्यकेनास्त्यनध्यायोब्रह्मसत्रंहितत्स्मृतम्।ब्रह्माहुतिहुतंपुण्यमनध्यायवषट्कृतम्१०६

प० । नैत्यके न अस्ति अनध्यायः ब्रह्मसत्रं हि तत् स्मृतं ब्रह्माहुतिहुतं पुण्यं अनध्यायवषट्कृतं ॥

यो० । हि (यतः) तत् ब्रह्मसत्रं स्मृतं(अतः)नैत्यके अनध्यायो नास्ति ब्रह्माहुतिहुतं अनध्यायवषट्कृतं पुण्यं(भवति)॥

भा० । नित्यका जपको ब्रह्मसत्र मनुआदिने कहाहै इससे नित्यजपमें अनध्याय नहीं है वेद की आहुतिसे होम और अनध्यायमें किया वषट् (हविः का देना)कृत भी पुण्यरूपहै ॥

ता० । यह श्लोक भी पूर्वोक्त नैत्यक स्वाध्यायकाही अनुवाद (कहेकाकथन) है—नित्यकेजप

यज्ञमें अनध्याय नहीं है क्योंकि वह निरंतर कियाजाताहै और मनु आदिने उसको ब्रह्मसत्र (ब्रह्मयज्ञ) कहाहै और ब्रह्म (वेद) रूप आहुति से किया होम और अनध्यायमें किया वषट्कृत (इंद्रायवषट् इत्यादि) भी पुण्यरूप है अर्थात् नित्यके जप और होम आदि में अनध्याय के विषय भी कर्तव्य हैं १०६ ॥

यःस्वाध्यायमधीतेऽब्दंविधिनानियतःशुचिः।तस्यनित्यंक्षरत्येषपयोदधिघृतंमधु१०७

प० । यः स्वाध्यायं अधीते अब्दं विधिना नियतः शुचिः तस्य नित्यं क्षरति एषः पयः दधि घृतं मधु ॥

यो० । नियतः शुचिः यः (द्विजः) विधिना अब्दं स्वाध्यायं अधीते तस्य एषः (स्वाध्यायः) नित्यं पयः दधि घृतं--मधु क्षरति--(ददाति) ॥

भा० । जो द्विज नित्य वर्षभरतक विधिसे स्वाध्याय (वेदका जप वा पाठ) करताहै उसको स्वाध्यायही प्रतिदिन दूध दही घृत मधु देदेताहै ॥

ता० । जो मनुष्य एकवर्ष भी प्रतिदिन शास्त्रोक्त विधिसे नियतेंद्रिय(इंद्रियहैं वशमें जिसके) और शुद्धहोकर स्वाध्यायको पढ़ता है अर्थात् जपताहै उसको स्वाध्यायही दूध दधि घृत और मधु देताहै अर्थात् वह दूध आदि से पितरोंको तृप्तकरताहै और वे प्रसन्नहुये जपयज्ञके करने वालेको सब कामनाओंसे तृप्तकरतेहैं—क्योंकि याज्ञवल्क्य(१)ने कहाहै कि जो प्रतिदिन ऋचा-ओंको पढ़ताहै वह मधु और दूधसे देवताओंको और मधु और घीसे पितरोंको तृप्तकरता है और तृप्तहुये वे देव और पितर जपकरनेवाले को शुभ सब कामोंसे तृप्तकरतेहैं १०७ ॥

अग्नीन्धनंभैक्षचर्यामधःशय्यांगुरोर्हितम्।आसमावर्तनात्कुर्यात्कृतोपनयनोद्विजः१०८

प० । अग्नींधनं भैक्षचर्यां अधःशय्यां गुरोः हितं आसमावर्तनात् कुर्यात् कृतोपनयनः द्विजः ॥

यो० । कृतोपनयनः द्विजः आसमावर्तनात् अग्नींधनं—भैक्षचर्यां—गुरोः हितं कुर्यात् ॥

भा० । कियाहै यज्ञोपवीत जिसने ऐसा द्विज समावर्तन तक प्रतिदिन इनको करे कि दोनों समय होम—नीचेसोना—भिक्षामांगना—गुरुकाहित ॥

ता० । कियाहै उपनयन जिसने ऐसा ब्रह्मचारी द्विज समावर्तन (गृहस्थाश्रममें प्रवेश)पर्यंत सायंकाल और प्रातःकाल के समय समिधोंका होम और भिक्षाओंका याचन—और नीचे शयन—और गुरुका हित (जल के घट आदि को लाना) इनको प्रतिदिन करे—अर्थात् ये सब ब्रह्मचारी को नित्य करने १०८ ॥

आचार्यपुत्रःशुश्रूषुर्ज्ञानदोधार्मिकःशुचिः।आप्तःशक्तोर्थदःसाधुःस्वोऽध्याप्यादशधर्मतः

प० । आचार्यपुत्रः शुश्रूषुः ज्ञानदः धार्मिकः शुचिः आप्तः शक्तः अर्थदः साधुः स्वः अध्याप्याः दश धर्मतः ॥

यो० । आचार्यपुत्रआदयः दश धर्मतः अध्याप्याः ॥

---

(१) मधुनापयसाचैवसदेवांस्तर्पयेद्द्विजः।पितॄन्मधुघृताभ्यांचऋचोधीतेतुयोन्वहं-तेतृप्ताःतर्पयंत्येनंसर्वकामैःफलैःशुभैः ॥

भा० । आचार्य का पुत्र–सेवक–ज्ञान का दाता–धार्मिक–शुद्ध–आप्त– (सज्जन) बुद्धिसेस-मर्थ—धनका दाता–साधु–और अपनी जाति–ये दशधर्म से पढ़ाने ॥

ता० । ऐसे शिष्यको वेद आदि पढ़ाना–कि अपने आचार्य का पुत्र और शुश्रूषा(सेवा)करने वाला–और इतर ज्ञानका दाता–और धर्म का ज्ञाता–और मट्टी और जल से शुद्ध और आप्त (अपना बंधु) और शक्त (पढ़ेहुये को समझने और धारणकरनेमें समर्थ) और द्रव्यका दाता–साधु और अपनीज्ञाति इन दश शिष्योंको धर्म से पढ़ावे १०९ ॥

नापृष्टःकस्यचिद्ब्रूयान्नचान्यायेनपृच्छतः।जानन्नपिहिमेधावीजडवल्लोकआचरेत् ११०

प० । नँ अपृष्टः कस्यचित्ँ ब्रूयात् नँ चँ अन्यायेन पृच्छतः जानन् अँपि हि मेधावी जडवँत् लोँके आँचरेत् ॥

यो० । अपृष्टः (गुरुः) कस्यचित् चपुनः अन्यायेन पृच्छतः न ब्रूयात्–हि (निश्चयेन) मेधावी जानन् अपि लोके जडवत् आचरेत् ॥

भा० । विना पूछे और अन्यायसे पूछते हुये को नकहे (न पढ़ावे) और ज्ञानी होकर भी बुद्धिमान् मनुष्य जगत्में जडके समान विचरै ॥

ता० । जिसने एक दो अक्षर और स्वरहीन पढ़ाहो अर्थात् विना पूछेही किसी अन्य को पढ़ातेहुये गुरुसे सुनकर कंठकियाहो उसको तत्त्व न बतावे और अपने शिष्यको तो विना पूछे भी बतादे–और भक्ति और श्रद्धासे रहित होकर जो अन्याय से पूछे उसको भी न बतावे–और बुद्धिमान मनुष्य जानताहुआ भी जगत् में जड (मूक) के समान व्यवहारकरै अर्थात् अपने गुणोंको विदित न करे ११० ॥

अधर्मेणचयःप्राहयश्चाधर्मेणपृच्छति । तयोरन्यतरःप्रैतिविद्वेषंवाधिगच्छति १११ ॥

प० । अधर्मेण चँ यः प्राहँ यः चँ अधर्मेण पृच्छँति तयोः अन्यतरः प्रैतिँ विद्वेषँ वाँ अधिगँच्छति ॥

यो० । यः अधर्मेण प्राह–चपुनः यः अधर्मेण पृच्छति तयोः (मध्ये) अन्यतरः प्रैति वा विद्वेषं अधिगच्छति ॥

भा० । जो अन्यायसे कहै वा पूछे उनदोमेंसे एक मरताहै वा वैरीहोजाताहै ॥

ता० । पूर्व श्लोकमें कहेहुये दोनों निषेधोंके न माननेमें यह दोषहै कि जो अन्यायसे कहै अथवा जो अन्यायसे पूछे उनदोनोंमेंसे एक मृत्युको प्राप्तहोताहै अथवा उसके संग विद्वेष (वैर) को प्राप्तहोताहै अर्थात् अन्यायसे कहना और पूछना दोनों निषिद्धहैं १११ ॥

धर्मार्थौयत्रनस्यातांशुश्रूषावापितद्विधा । तत्रविद्यानवक्तव्याशुभंबीजमिवोषरे ११२ ॥

प० । धर्मार्थौ यत्रँ नँ स्याताँ शुश्रूषा वाँ अँपि तद्विधा तत्रँ विद्या नँ वक्तव्या शुभं बीजं इवँ उषँरे ॥

यो० । यत्र धर्मार्थौ न स्यातां वा तद्विधा शुश्रूषा अपि (न स्यात्) तत्र शुभं बीजं उषरे इव विद्या न वक्तव्या ॥

भा० । जिस शिष्यमें धर्मार्थनहो वा शास्त्रोक्त सेवा भी नहो शुभबीजको उषरके विषे जैसे नहीं बोते इसीप्रकार उसको विद्या न कहनी ॥

ता० । जिस शिष्यमें धर्म अथवा अर्थ (धन) नहीं अर्थात् जो धार्मिकनहो अथवा जिससे धन न मिले अथवा अध्ययनके समयहोने योग्य जो सेवा भी न करे उसको विद्याका उपदेश इसप्रकार न करै जैसे अच्छाबीज उषर भूमिमें—धनलेकर पढ़ानेमें भृतकाध्यापनपनेके दोषकी शंका नहीं करनी क्योंकि उसमें यह नियमनहींहै कि यदि मुझे इतना धनदोगे तो इतना पढ़ाऊंगा—यदि यह नियम होय तो उक्तदोषहै ११२ ॥

विद्ययैवसमंकामंमर्तव्यंब्रह्मवादिना । आपद्यपिहिघोरायांनत्वेनामिरिणेवपेत् ११३ ॥

प० । विद्यया एवं समं कामं मर्तव्यम् ब्रह्मवादिना आपदि अपि घोरायां न तु एनां इरिणे वपेत् ॥

यो० । ब्रह्मवादिना विद्ययासमं एव कामं मर्तव्यं—घोरायां अपि आपदि एनां इरिणे न वपेत् ॥

भा० । वेदका ज्ञाता विद्याके संगही चाहे मरजाय परन्तु घोर आपदमें भी विद्याको उषरमें न बोवे ॥

ता० । वेदका अध्यापक विद्याके संगही यथेच्छमरजाय परन्तु घोर (भयानक) आपत्तिमें भी इस विद्याको उषरमें न बोवे—अर्थात् पढ़ानेके योग्य शिष्यके अभावमें कुपात्र शिष्यको न पढ़ावे क्योंकि छांदोग्य ब्राह्मण (१) में यह लिखाहै कि विद्याके संग मरजाय परन्तु उषर में न बोवे—अर्थात् विद्या चाहे अपने संगकी संगही चलीजाय परन्तु कुपात्रको कदाचित् न बतावे ११३ ॥

विद्याब्राह्मणमेत्याहशेवधिस्तेऽस्मिरक्षमाम्।असूयकायमांमादास्तथास्यांवीर्यवत्तमा११४

प० । विद्या ब्राह्मणं एत्य आह शेवधिः ते अस्मि रक्ष मां असूयकाय मां मा अदाः तथा स्यां वीर्यवत्तमा ॥

यो० । ब्राह्मणं एत्य विद्या आह (अहं) ते शेवधिः अस्मि (त्वं) मां रक्ष—मां असूयकाय मा अदाः तथा अहं वीर्यवत्तमास्यां ॥

भा० । विद्याने किसी ब्राह्मणसे आनकर कहा कि मैंतेरा शेवधि (खजाना) हूं तू मेरी रक्षा कर और निंदकको मतदे ऐसेहीमें बलवाली होंगी ॥

ता० । विद्या के स्वामी देवताने किसी ब्राह्मणके समीप आकर यह कहा कि मैं तेरी शेवधि (कोश) हूं तू मेरी रक्षाकर और असूयक (निंदक) को मुझे मतकहे यदि ऐसाकरेगा तो मैं बड़े वीर्यवालीहोजाउँगी—और छांदोग्य ब्राह्मणमें भी (२) यह कहाहै कि विद्या ब्राह्मणके समीपआई और कहा कि मैंतेरीहूं तू मेरी पालनाकर और जो तेरी सेवा नकरे उसे मुझे मतदे—मेरीरक्षाकर ऐसाकरनेसे मैं कल्याणवाली होंगी ११४ ॥

यमेवतुशुचिंविद्यान्नियतब्रह्मचारिणम् । तस्मैमांब्रूहिविप्रायनिधिपायाप्रमादिने ११५॥

प० । यं एवं तु शुचिं विद्यात् नियतब्रह्मचारिणं तस्मै मां ब्रूहि विप्राय निधिपाय अप्रमादिने ॥

(१) विद्ययासार्द्धं म्रियेत न विद्यामूषरेवपेत् ॥

(२) विद्याहवै ब्राह्मणमाजगाम तवाहमस्मित्वंमां पालय अनर्हते मानिने चैवमादा गोपाय मां श्रेयसी तथाहमस्मीति ॥

यो० । तुपनः यं एव नियतब्रह्मचारिणं शुचिं विद्यात् निधिपाय अप्रमादिने तस्मै विप्राय मां ब्रूहि ॥

भा० । ता० । जिसको नियमसे जितेंद्रियब्रह्मचारी और शुद्धजाने निधिकेरक्षक और प्रमाद से रहित उसको ही मुझे (विद्याको) कह ११५ ॥

ब्रह्मयस्त्वननुज्ञातमधीयानादवाप्नुयात् । सब्रह्मस्तेयसंयुक्तोनरकंप्रतिपद्यते ११६ ॥

प० । ब्रह्म यः तु अननुज्ञातः अधीयानात् अवाप्नुयात् सः ब्रह्मस्तेयसंयुक्तः नरकं प्रतिपद्यते॥

यो० । तुपनः अननुज्ञातः यः (द्विजः) अधीयानात् (पठतः) अवाप्नुयात् — ब्रह्मस्तेयसंयुक्तः सः नरकं प्रतिपद्यते (गच्छति) ॥

भा० । ता० । अभ्यास के लिये पढ़ते अथवा पढ़ाते के सकाश से उसकी आज्ञाके विना जो द्विज वेदको प्राप्तहो (ग्रहणकरै) वेदकी चोरीसहित वह द्विज नरक में जाता है तिससे ऐसा न करै ११६ ॥

लौकिकंवैदिकंवापितथाध्यात्मिकमेवच । आददीतयतोज्ञानंतंपूर्वमभिवादयेत् ११७॥

प० । लौकिकं वैदिकं वा अपि तथा आध्यात्मिकं एवं च आददीत यतः ज्ञानं तं पूर्वं अभिवादयेत् ॥

यो० । लौकिकं वा वैदिकं तथा आध्यात्मिकं ज्ञानं यतः आददीत तं पूर्वं अभिवादयेत् ॥

भा० । लौकिक–वैदिक और आध्यात्मक ज्ञान जिससे ले सबसे पहिले उसको नमस्कार करै ॥

ता० । लौकिक (अर्थ शास्त्रकाज्ञान) और वैदिक(वेदके अर्थोंकाज्ञान) और आध्यात्मिक (ब्रह्म ज्ञान) जिससे ग्रहणकरै यदि अनेक माननेयोग्योंके मध्यमें वह बैठाहोय तो सबसे पहिले उसको नमस्कार करै और यदि लौकिक–वैदिक–आध्यात्मिक ज्ञानकेदाता तीनों एकजगह बैठेहोयं तो उत्तरोत्तर माननेयोग्यहैं–अर्थात् लौकिकज्ञानके दाता से वैदिकज्ञानका दाता और इनदोनों से ब्रह्मज्ञान का दाता श्रेष्ठ है ११७ ॥

सावित्रीमात्रसारोऽपिवरंविप्रःसुयन्त्रितः।नायन्त्रितस्त्रिवेदोऽपिसर्वाशीसर्वविक्रयी ११८

प० । सावित्रीमात्रसारः अपि वरं विप्रः सुयंत्रितः न अयंत्रितः त्रिवेदः अपि सर्वाशी सर्व–विक्रयी ॥

यो० । सुयंत्रितः सावित्रीमात्रसारः अपि विप्रः वरं (भवति) त्रिवेदः अपि सर्वाशी सर्वविक्रयी अयंत्रितः चेत् वरं न भवति ॥

भा० । केवल गायत्रीभी जाननेवाला शास्त्रोक्तविधि निषेध का माननेवाला ब्राह्मण श्रेष्ठ है और तीनोंवेदों का ज्ञाता भी यदि शास्त्रोक्तविधि निषेधको न माने और जहांतहां भोजनकरले और सर्ववस्तुओं को बेचे तो वह श्रेष्ठ नहींहै ॥

ता० । गायत्री मात्रका जाननेवाला भी सुयंत्रित (शास्त्रोक्त नियमों में आरूढ़) ब्राह्मण माननेयोग्य है और तीनों वेदों का ज्ञाताभी ब्राह्मण निषिद्ध भोजनआदि में आसक्त और निषिद्धवस्तुओं के बेचने में शीलहोने से श्रेष्ठनहीं है–यह दिखानेमात्रकहा है तात्पर्ययह है कि

शास्त्रोक्तविधि निषेध को कर्ता श्रेष्ठ है और विधि निषेधके न मानने वाला श्रेष्ठ नहीं है ११८ ॥

शय्यासनेऽध्याचरितेश्रेयसानसमाविशेत् । शय्यासनस्थश्चैवैनंप्रत्युत्थायाभिवादयेत्॥

प० । शय्यासने अध्याचरिते श्रेयसा न समाविशेत् शय्यासनस्थः च एव एनं प्रत्युत्थाय अभिवादयेत् ॥

यो० । श्रेयसा अध्याचरिते शय्यासने न समाविशेत् चपुनः शय्यासनस्थः द्विजः एनं (श्रेयांसं) प्रत्युत्थाय अभिवादयेत् ॥

भा० । श्रेष्ठगुरु आदि के स्वीकार किये शय्या और आसन पर न बैठे और यदि आपशय्या और आसन पर बैठाहोय और गुरु आजायं तो उठकर नमस्कार करै ॥

ता० । विद्याआदि से बडे गुरु आदिने स्वीकार किये शय्या अथवा आसनपर स्वयं (आप) न बैठे अर्थात् नीचे बैठे—और यदि स्वयं शय्या और आसन पर बैठाहोय और गुरु पिताआदि आजायं तो उठकर नमस्कार करै अर्थात् एवंविध शिष्टाचार करने से गुरुआदि को प्रसन्न रक्खे ११६ ॥

ऊर्ध्वंप्राणाउत्क्रामन्तियूनःस्थविरआयति । प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यांपुनस्तान्प्रतिपद्यते॥

प० । ऊर्ध्वं प्राणाः उत्क्रामंति यूनः स्थविरे आयति प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनः तान् प्रतिपद्यते ॥

यो० । स्थविरे आयति सति यूनः प्राणाः ऊर्ध्वं उत्क्रामंति— प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनः तान् (प्राणान्) प्रतिपद्यते—(प्राप्नोति) ॥

भा० । बड़के आनेपर छोटे मनुष्यके प्राण देहमे बाहरमानो निकसाचाहतेहैं—उठकर नमस्कार करनेसे फिर उन प्राणोंको प्राप्तहोता है अर्थात् सावधान करताहै ॥

ता० । स्थविर (वड़े) के आनेपर युवा (छोटे) के प्राण देहमे बाहर निकसनेकी इच्छाकरते हैं वह छोटा पुरुष उठने और नमस्कार करनेसे फिर अपने प्राणोंको सुस्थकरताहै अर्थात् प्राप्त होताहै तिससे वृद्धको उठकर प्रणाम करै १२० ॥

अभिवादनशीलस्यनित्यंवृद्धोपसेविनः।चत्वारितस्यवर्धन्तेआयुर्विद्यायशोबलम् १२१

प० । अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः चत्वारि तस्य वर्द्धंते आयुः विद्या यशः बलं ॥

यो० । अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः तस्य आयुः—विद्या—यशः बलं—(इमानि) चत्वारि वर्द्धंते ॥

भा० । वृद्धों को प्रणाम और नित्य सेवा करनेवाले उस मनुष्य के अवस्था विद्या यश—बल ये चारों बढ़ते हैं ॥

ता० । अब वृद्धके नमस्कार का फल कहतेहैं कि वृद्धोंको सदा उठकर नमस्कार करने का है स्वभाव जिसका और वृद्धों की नित्य सेवा करनेवाले उस मनुष्य के ये चार बढ़ते हैं कि आयुः (अवस्था) विद्या—यश और बल—अर्थात् वृद्धोंका आदर कभी भी निष्फल नहीं होता १२१ ॥

अभिवादात्परंविप्रोज्यायांसमभिवादयन् । असौनामाहमस्मीतिस्वंनामपरिकीर्त्तयेत् १२२

प० । अभिवादात् परं विप्रः ज्यायांसं अभिवादयन् असौ नामा अहं अस्मि इति स्वं नाम परिकीर्त्तयेत् ॥

यो० । ज्यायांसं अभिवादयन् विप्रः अभिवादात्परं असौ नामा अहं अस्मि इति स्वं नाम परिकीर्त्तयेत् ॥

भा० । वृद्धको नमस्कार करताहुआ विप्र अभिवाद(नमस्कार)के शब्दोच्चारणके पीछे इस नामवाला मैं नमस्कार करताहूं ऐसे अपने नाम को कहे ॥

ता० । अब नमस्कार करनेकी विधि कहतेहैं कि वृद्धको नमस्कार करताहुआ ब्राह्मण आदि वर्ण–अभिवादये–नमस्कार करताहूं–इस शब्द के उच्चारण के पीछे अमुक नामवाला मैं हूं–इस प्रकार अपने नामका भी उच्चारण करे अर्थात् नमस्कार करताहूं मैं शुभशर्मा–यह वाक्य कहकर वृद्धको नमस्कार करे–इससे नामशब्द विशेष नामों (शुभकर्म आदि)का बोधक होने से विशेष नामके उच्चारणके अनन्तर नमस्कारके वाक्य में नाम शब्दको भी छोड़ना (यथा अभिवादयेहं शुभशर्मनामा) चाहिये यह गोविन्दराजका कथन अप्रमाणहै क्योंकि गौतम और सांख्यायन ऋषियोंने यहकहाहै कि अपनेनामकोकहकर मैंनमस्कारकरताहूं यहकहे अथवा यह मैं नमस्कारकरताहूं ऐसे अपनेनामको कहे–यदि नामशब्दके सुननेसेही नामइस शब्दका भी प्रयोग नमस्कार वाक्य में होय तो इस नमस्कार करनेवाले को जब वृद्ध आशीर्वाद दे तब इसकेनामके अन्तमें अकारका उच्चारणकरना इस(प्रत्यभिवाद वाक्यमें भी नाम शब्दका उच्चारण होगा और किसीको भी सम्मत नहींहै–सिद्धान्त यहहै कि–अभिवादयेऽहं देवदत्तः आयुष्माने-धि देवदत्त– नमस्कारकरताहूं मैं देवदत्त–आयुष्मान्हो हेदेवदत्त–ये दोनोंही क्रम से नमस्कार और आशीर्वाद के वचन हैं १२२ ॥

नामधेयस्ययेकेचिदभिवादंनजानते। तान्प्राज्ञोऽहमितिब्रूयात्स्त्रियःसर्वास्तथैवच १२३॥

प० । नामधेयस्य ये केचित् अभिवादं न जानते तान् प्राज्ञः अहं इति ब्रूयात् स्त्रियः सर्वाः तथा एव च ॥

यो० । ये केचित् (वृद्धाः) नामधेयस्य अभिवादं न जानते प्राज्ञः तान् च पुनः तथैव सर्वाः स्त्रियः अहं इति ब्रूयात् (अहं अभिवादये) ॥

भा० । जो कोई अभिवादके अर्थ को न जाने उनको और सम्पूर्ण स्त्रियों को अभिवादयेऽहं (मैं नमस्कार करताहूं) ऐसा ही वाक्य कहे ॥

ता० । जो कोई अभिवाद्य (जिनको प्रणामकरे) उच्चारण कियेहुये नाम के अभिवादन (प्रणामका वाक्य) के अर्थ को नहीं जानते अर्थात् संस्कृत में उच्चारण किये अभिवादन के अर्थको नहीं समझते उनको और सम्पूर्ण स्त्रियोंको अभिवाद्यकी शक्तिको जाननेवाला विद्वान् अभिवादयेहं (मैं नमस्कार करताहूं) ऐसे ही कहे १२३ ॥

---

१ स्वनाम प्रोच्याहमभिवादये इत्यभिवदेत् ॥
२ असावहं इत्यात्मनो नाम दिशेत् ॥

भोःशब्दंकीर्त्तयेदंतेस्वस्यनाम्नोऽभिवादने नाम्नांस्वरूपभावोहिभोभावऋषिभिःस्मृतः

प० । भोः शब्दं कीर्त्तयेत् अन्ते स्वस्य नाम्नः अभिवादने नाम्नां स्वरूपभावः हि भोभावः ऋषिभिः स्मृतः ॥

यो० । हि (यतः) भो भावः नाम्नां स्वरूपभावः ऋषिभिः स्मृतः (अतः) अभिवादने स्वस्यनाम्नः अंते भोः शब्दंकीर्तयेत् —(अभिवादये शुभशर्माहमस्मिभोः इत्यादि) ॥

भा० । नमस्कारके वाक्यमें जो नाम कहे उसके अंतमें भोःशब्द कहे क्योंकि ऋषियोंने भोः शब्दका अर्थही नामोंका स्वरूपकहाहै ॥

ता० । नमस्कारकरनेके योग्यों (गुरुआदि) के संबोधनके लिये अभिवादनमें जो अपना नाम कहे उसके अंतमें भोःशब्दका उच्चारणकरै क्योंकि ऋषियोंने भोभाव (भो इस शब्दकी सत्ता वा तात्पर्य) कोही अभिवाद्यों (नमस्कार करनेयोग्यों) के नामोंका स्वरूपकहाहै तिससे नमस्कारके वाक्यमें मैं शुभशर्मा नमस्कारकरताहूं भो यहकहे १२४ ॥

आयुष्मान्भवसौम्येतिवाच्योविप्रोऽभिवादने ।
अकारश्चास्यनाम्नोऽन्तेवाच्यःपूर्वाक्षरःप्लुतः १२५ ॥

प० । आयुष्मान् भव सौम्य इति वाच्यः विप्रः अभिवादने अकारः च अस्य नाम्नः अन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरः प्लुतः ॥

यो० । अभिवादने (कृतेसति) विप्रः आयुष्मान्भव सौम्य इतिवाच्यः चपुनः अस्य नाम्नः अंते पूर्वाक्षरः प्लुतः वाच्यः ॥

भा० । नमस्कारकरनेके अनंतर ब्राह्मणको आयुष्मानभव सौम्य अर्थात् आयुःवाला हो हे सौम्य—कहे और इसके नामकी आदि और अंतमें जो स्वरहो वह प्लुतकरना ॥

ता० । प्रत्यभिवाद (आशीर्वाद) देनेवाला पुरुष अभिवादन (नमस्कार) करने के अनंतर नमस्कारकरनेवालेको—आयुष्मानभव सौम्य—यह वाक्य कहे और नमस्कार करनेवालेकेनामके अंतमें जो अकार आदिस्वरहै क्योंकि नामोंका अकारांतहोनेका नियमहै उसस्वरको प्लुतकरै—और यहवात स्वरापेक्ष समझनी अर्थात् व्यंजन जिसके अंतमेंहो उस नाममें भी जो स्वरों में पिछलाहो वही प्लुतकरना—क्योंकि पाणिनि ने टि को प्लुत कहाहै और अंत्यके अचसे आदि समुदायको टि कहतेहैं—और पूर्वका अक्षर (व्यंजन) जिस स्वरमें मिलाहो वह भी प्लुतकरना—अर्थात् पहिले इकारहो और उसके पीछे अकार होय तो उस इकारको छोड़कर अकार को प्लुत न करै अर्थात् आदि और अंतके स्वरोंको प्लुतकरै—तिससे आशीर्वादका वाक्य ऐसा क्रमसेकहै कि ब्राह्मणको आयुष्मानभव सौम्यशुभशर्मन—क्षत्रियको आयुष्मानभव सौम्य बलवर्मन—वैश्यको आयुष्मानभव सौम्य वसुभूत—और क्षत्रिय और वैश्यके नाममें अंतकास्वर विकल्पकरके प्लुतकरना क्योंकि कात्यायन ऋषिकी यह वचन विकल्प (कहींहो कहीं न हो)

---

१ वाक्यस्यटेः प्लुतउदात्तः ॥
२ राजन्यविशांवा ॥

कोहीकहताहै—और अशूद्रे इस पाणिनि के वचनसे शूद्रके नाममें प्लुतको न करै—और इस कात्यायनके वचनसे स्त्रीके नाममें भी प्लुत न करै—इस श्लोकमें गोविंदराजने यह कहाहै कि ब्राह्मणकेनाममें सदैव शर्म उपपदहोताहै फिर उदाहरण यहादिया कि आयुष्मानभव सौम्य भद्र—इससे यह प्रतीतहोताहै कि उपपदसहित और उपपदरहित उदाहरण का ज्ञान गोविंदराजको न था—और आयुष्मान्भव सौम्य इस सम्बुद्धि विभक्ति जिसके अंतमें ऐसे मनु वचनको देखकर भी धरणीधरन अमुकशर्मा यह उदाहरणदिया इससे धरणीधर भी विद्वानों को त्यागने योग्यहै १२५ ॥

योनवेत्त्यभिवादस्यविप्रःप्रत्यभिवादनम् । नाभिवाद्यःसविदुषायथाशूद्रस्तथैवसः १२६

प० । यः न वेत्ति अभिवादस्य विप्रः प्रत्यभिवादनं न अभिवाद्यः सः विदुषा यथा शूद्रः तथा एव सः ॥

यो० । यः विप्रः अभिवादस्य प्रत्यभिवादनं नवेत्ति सः विदुषा न अभिवाद्यः—यथाशूद्रः सः तथैव—भवतीतिशेषः ॥

भा० । जो ब्राह्मण नमस्कारके पीछे देने योग्य आशीर्वादके वचनको जानताहो शूद्रके तुल्य उसको विद्वान् मनुष्य नमस्कार न करै ॥

ता० । जो ब्राह्मण अभिवाद (नमस्कार) के अनुरूप (योग्य) प्रत्यभिवाद (आशीर्वाद) के वाक्यको न जानताहो उसको विद्वान मनुष्य अभिवादन न करै क्योंकि जैसा शूद्र वैसाही वह है—नमस्कारतो उसेकरै परन्तु उसके चरणोंका स्पर्श न करै १२६ ॥

ब्राह्मणंकुशलंपृच्छेत्क्षत्रबन्धुमनामयम् । वैश्यंक्षेमंसमागम्यशूद्रमारोग्यमेवच १२७॥

प० । ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत् क्षत्रबंधुं अनामयं वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रं आरोग्यं एव च ॥

यो० । ब्राह्मणः ब्राह्मणं समागम्य कुशलं — क्षत्रबन्धुं अनामय — वैश्यं क्षेम — चपुनः शूद्रं आरोग्यमेव पृच्छेत् ॥

भा० । समागम होनेपर ब्राह्मण—ब्राह्मणको कुशल—क्षत्रियको अनामय और वैश्यको क्षेम-और शूद्रको आरोग्यपूछे ॥

ता० । जब अपनेसे छोटे नमस्कारकरनेवाले ब्राह्मणका समागम (मेल) होय तो ब्राह्मण को ब्राह्मण कुशलपूछे और क्षत्रियको अनामय (रोगका अभाव) और वैश्यको क्षेम—और शूद्रको आरोग्य (स्वस्थपना) पूछे—और अपनी अवस्थाके समान जिसकी अवस्थाहो उसको तो नमस्कार न करनेपर भी कुशल आदि पूछे—क्योंकि आपस्तंबऋषिने यह कहा है कि छोटी वा बड़ी अवस्थावाले विप्रको कुशल पूछे क्षत्रियको अनामय—वैश्यकोक्षेम—और शूद्रको आरोग्य—इसवाक्य से आपस्तंब ने यहप्रकटकिया कि छोटेको नमस्कारकरने पर और समान अवस्थावालेको नमस्कार न करनेपरभी कुशलआदि पूछे—क्योंकि मनु और आपस्तंबऋषिके वचनों में नमस्कार करनेवाले को कुशलआदि पूछे यह नहींकहा है—और गोविंद-

१ प्रत्यभिवादेऽशूद्रे ॥

२ स्त्रियामपिनिषेधः ॥

३ कुशलमवरवयसं समानवयसं वा विप्रंपृच्छेत् अनामयंक्षत्रियं क्षेमंवैश्यं आरोग्यं शूद्रं अवरवयसमनभिवादकं समानवयसमनभिवादकमपि ॥

राज ने तो यहकहा है कि नमस्कार के प्रकरणसे आशीर्वाददेनेवालाही कुशलआदि पूछे इतर नहीं—सो ठीकनहीं—क्योंकि नमस्कार करनेवालेका समागम तो अवश्यहोताहीहै तो समागम्य (मिलनेपर) कहना वृथाहोता—इससे इसमें—कुशल—क्षेम—और अनामय आरोग्य—इनपदोंका अर्थ एकभीहै तोभी शब्दों का भेदही मनुको अभीष्ट है १२७ ॥

अवाच्योदीक्षितोनाम्नायवीयानपियोभवेत् । भोभवत्पूर्वकंत्वेनमभिभाषेतधर्मवित् १२८

प० । अवाच्यः दीक्षितः नाम्ना यवीयान् अपि यः भवेत् भोभवत्पूर्वकं तु एनं अभिभाषेत धर्मवित् ॥

यो० । यः दीक्षितः यवीयान् अपि भवेत् सः नाम्ना अवाच्यः तुपुनः धर्मवित् एनं भो भवत्पूर्वकं (यथास्यात्तथा) अभिभाषेत ॥

भा० । अपनेसे छोटे भी दीक्षित के संग उसका नामलेकर न बोले किंतु धर्मका ज्ञाता उसके संग भो वा भवत् शब्द उसके दीक्षितशब्दसे पहिले मिलाकर बोले ॥

ता० । आशीर्वाददेने के अथवा अन्य समय में—छोटेभी दीक्षित (जिसने यज्ञकीदीक्षालीहो) का आरम्भ से यज्ञांतस्नानपर्य्यन्त—नाम न ले किंतु धर्मका जाननेवाला भो वा भवत् शब्द है पूर्व जिनके ऐसे दीक्षितआदि शब्दोंसेही उसके संगबोले अर्थात् भोदीक्षित यहकरो—भवान् (आप) यजमानको यहकरना चाहिये १२८ ॥

परपत्नीतुयास्त्रीस्याद‌संबन्धाचयोनितः । तांब्रूयाद्भवतीत्येवंसुभगेभगिनीतिच १२९ ॥

प० । परपत्नी तु या स्त्री स्यात् असंबंधा च योनितः तां ब्रूयात् भवति इति एवं सुभगे भगिनि इति च ॥

यो० । तुपुनः परपत्नी योनितः असंबन्धाच या स्त्री स्यात् तां हे भवति हेसुभगे हेभगिनि इत्येवंब्रूयात् ॥

भा० । जो दूसरे की पत्नीहो अथवा योनिसे अपने सम्बन्धमें नहो उसको हेभवति हेसुभगे हेभगिनि इन शब्दों से कहे ॥

ता० । जो स्त्री अन्यपुरुषकी पत्नीहो अथवा योनिसम्बन्ध से भिन्नहो अर्थात् बहिनआदि न हो उसको विना प्रयोजन सम्भाषण के समय हे भवति—हेसुभगे—हेभगिनि—ऐसे सम्बोधन से कहे—परपत्नी कहनेसे कन्या में यह विधि नहींहै क्योंकि बहिन और कन्याआदि के संग तो हे आयुष्मति कहकर बोलना कहाहै १२९ ॥

मातुलांश्चपितृव्यांश्चश्वशुरानृत्विजोगुरून् । असावहमितिब्रूयात्प्रत्युत्थाययवीयसः १३०

प० । मातुलान् च पितृव्यान् च श्वशुरान् ऋत्विजः गुरून् असौ अहं इति ब्रूयात् प्रत्युत्थाय यवीयसः ॥

यो० । यवीयसः मातुलान्—पितृव्यान्—श्वशुरान्—ऋत्विजः गुरून् प्रत्युत्थाय असौ (शुभशर्मादिः) अहं इतिब्रूयात्

---

१ भोदीक्षितइदंकुरु—भवता यजमानेन इदं क्रियताम् ॥

भा० । अपनेसे छोटे—मामा—चाचा—श्वशुर—ऋत्विज—गुरुओंको उठकर—यह मैंहूं यहकहै और नमस्कार न करै ॥

ता० । जहां आप बैठाहो वहां आयेहुये अपनेसे छोटे मामा—चाचा—श्वशुर—ऋत्विज और गुरुको उठकर यहकहै कि यह (शुभशर्माआदि) मैं हूं और नमस्कार न करै—बहुत गुरुहोतेहैं यह कहकर ज्ञानसे और तपसे बड़ोंकोभी हारीतने गुरुकहाहै और ऐसेगुरु अपनेसे छोटे भी होसक्तेहैं—ऐसाही गुरु इसश्लोक में लेना औ अपना जो विद्यागुरु है उसको तो नमस्कार करनाही उचितहै १३० ॥

मातृष्वसामातुलानीश्वश्रूरथपितृष्वसा।संपूज्यागुरुपत्नीवत्समास्तागुरुभार्यया १३१॥

प० । मातृष्वसा मातुलानी श्वश्रूः अथ पितृष्वसा संपूज्याः गुरुपत्नी इव समाः ताः गुरुभार्यया ॥

यो० । (यतः) ताः गुरुभार्यया समाः (अतः) मातृष्वसा मातुलानी श्वश्रूः अथ पितृष्वसा गुरुपत्नी इव पूज्याः—भवंतीति शेषः ॥

भा० । माताकी भगिनी—मामाकी स्त्री—सास—पिताकीबहिन (फूफी) ये सब गुरुकी स्त्री के समान पूजनेयोग्यहैं क्योंकि ये सब गुरुकी पत्नी के तुल्यहैं ॥

ता० । माता की बहिन—मामाकी स्त्री—सास—पिता की बहिन ये सबगुरु की स्त्रीके समान—उठकर प्रणाम और आसनका देना आदिसे पूजनेयोग्यहैं क्योंकि ये सब गुरुकी स्त्री के समानहैं यद्यपि नमस्कारके प्रकरणसे इनकापूजनभी नमस्कारसेही करनेयोग्यहै तथापि इनको—समास्ता गुरुभार्यया—इसपदसे गुरुकी स्त्रीके समान कहाहै इससे प्रत्युत्थान (देखकर उठना) आदिभी करने १३१ ॥

भ्रातुर्भार्योपसंग्राह्यासवर्णाहन्यहन्यपि।विप्रोष्यतूपसंग्राह्याज्ञातिसंबन्धियोषितः १३२

प०। भ्रातुः भार्या उपसंग्राह्या सवर्णा अहनि अहनि अपि विप्रोष्य तु उपसंग्राह्याः ज्ञातिसंबन्धियोषितः ॥

यो० । सवर्णा — भ्रातुः भार्या अहनि अहनि अपि उपसंग्राह्या — विप्रोष्य तु ज्ञातिसम्बन्धियोषितः उपसंग्राह्याः ॥

भा० । अपनी जातिकी भाईकी स्त्री को प्रतिदिन चरणोंका स्पर्शकरके नमस्कार करके और जाति और सम्बन्धियों की जो स्त्रीहैं उनकोभी चरणोंका स्पर्शकरके नमस्कारकरै जब परदेश से आवे ॥

ता० । अपने वर्णकी (सजातीय) भाईकी पत्नी प्रतिदिन चरणोंमें नमस्कार करनेयोग्यहै औ ज्ञाति (चाचाआदि) सम्बन्धि (मामा और श्वशुरआदि) की स्त्रियोंकोतो परदेशसे जबआवे तभी चरणोंका स्पर्शकरके नमस्कारकरै अर्थात् इनको प्रतिदिन नमस्कार करनेका नियम नहींहै १३२ ॥

---

१ भूयिष्ठाःखलुगुरवः ॥

पितुर्भगिन्यांमातुश्चज्यायस्यांचस्वसर्यपि।मातृवद्वृत्तिमातिष्ठेन्मातातांभ्योगरीयसी १३३

प० । पितुः भगिन्यां मातुः च ज्यायस्यां च स्वसरि अपि मातृवत् वृत्तिं आतिष्ठेत् माता ताभ्यः गरीयसी ॥

यो० । पितुः चपुनः मातुः भगिन्यां — चपुनः ज्यायस्यां स्वसरि अपि मातृवद्वृत्तिं आतिष्ठेत् — ताभ्यः माता गरीयसी-भवतीतिशेषः ॥

भा० । पिता और माताकी बहिन और बड़ी अपनी बहिन इनमें माताके समान वर्तावकरै परंतु माता इनसे गुरुतम (अधिकपूज्य) है ॥

ता० । पिता और माताकी बहिन और जेठी अपनी बहिनमें माताकेसमान वृत्ति (वर्ताव) करै अर्थात् इनमें भी माताके समान प्रीति रक्खै यद्यपि पहिलेभी—मातृष्वसा मातुलानी—इस श्लोकमें इनकी पूजा कहआयेहैं तथापि माता इनसे अधिक पूजनेयोग्यहै यह कहनेको यह फिर कहाहै—अथवा पहिले माताके समान इनका पूजन कहा इसश्लोकसे माताकेसमान स्नेहपूर्वक आचरण करै—इसमें पुनरुक्ति नहींहै १३३ ॥

दशाब्दाख्यंपौरसख्यंपञ्चाब्दाख्यंकलाभृताम् ॥
त्र्यब्दपूर्वंश्रोत्रियाणांस्वल्पेनापिस्वयोनिषु १३४ ॥

प० । दशाब्दाख्यं पौरसख्यं पंचाब्दाख्यं कलाभृतां त्र्यब्दपूर्वं श्रोत्रियाणां स्वल्पेन अपि स्वयोनिषु ॥

यो० । पौरसख्यं दशाब्दाख्यं — कलाभृतां पंचाब्दाख्यं — (भवति) श्रोत्रियाणां त्र्यब्दपूर्वं — स्वयोनिषु स्वल्पेनापि — सख्यंभवतीतिशेषः ॥

भा० । नगर वा ग्रामनिवासियों में दश वर्षकी—गानेवाले आदिकों में पांच वर्षकी—वेदपाठियोंमें तीनवर्षकी और अपने सपिंडोंमें अल्पही कालकी ऊंच नीचमें मित्रता रहतीहै—अधिक अवस्था होनेपर ज्येष्ठ मानेजातेहैं ॥

ता० । पुर (नगर) और ग्रामवासियोंका सख्य (मित्रता) दश वर्षतक होताहै अर्थात् विद्या आदि गुणोंसे जो हीनहैं उनमें यदि एक मनुष्य दशवर्ष बड़ाहो और एक दशवर्ष छोटा होय तो उनदोनोंकी मित्रताहीहै अर्थात् जेठेपनका पूजा आदि व्यवहार न करै तो कुछदोष नहीं है और गीत आदि कलाओंके ज्ञाताओंमें पंचवर्षकी ऊंच नीचमें और वेदपाठियों की तीनवर्ष की ऊंच नीचमें और अपने बन्धुओं (सपिंडों) में थोड़ीही ऊंच नीचमें सख्य (मित्रता) होताहै और अधिक अवस्था होय तो जेठपनेका व्यवहार होताहै १३४ ॥

ब्राह्मणंदशवर्षन्तुशतवर्षन्तुभूमिपम्।पितापुत्रौविजानीयाद्ब्राह्मणस्तुतयोःपिता१३५॥

प० । ब्राह्मणं दशवर्षं तु शतवर्षं तु भूमिपं पितापुत्रौ विजानीयात् ब्राह्मणः तु तयोः पिता ॥

यो० । दशवर्षं ब्राह्मणं — तुपुनः शतवर्षं भूमिपं पितापुत्रौ विजानीयात् तयोः (मध्ये) ब्राह्मणः पिता — भवतीतिशेषः ॥

भा० । ता० । दशवर्षका ब्राह्मण और सौवर्षका क्षत्रिय हो इनको पितापुत्र जाने उनदोनों

के बीच ब्राह्मण पिता होताहै अर्थात् सौ वर्षका क्षत्रिय दशवर्षके ब्राह्मणको अपने पिता के समान पूजे १३५ ॥

वित्तंबन्धुर्वयःकर्मविद्याभवतिपञ्चमी।एतानिमान्यस्थानानिगरीयोयद्यदुत्तरम् १३६॥

प० । वित्तं बंधुः वयः कर्म विद्या भवति पंचमी एतानि मान्यस्थानानि गरीयः यत् यत् उत्तरम् ॥

यो० । वित्तं-बंधुः वयः-कर्म-पंचमी विद्याभवति एतानि (पंच) मान्यस्थानानि (भवंति एषां मध्ये) यत् यत् उत्तरं (पश्चिमं) तत् तत् गरीयः (श्रेष्ठं) भवतीतिशेषः ॥

भा० । धन—बंधु—अवस्था—कर्म—और विद्या ये पांच मान्यके स्थानहैं इनमें उत्तर २ श्रेष्ठहै ॥

ता० । धन जो न्यायसे संचितहो—बंधु (पितृव्य आदि) अधिक अवस्था—और वेदोक्त अथवा धर्मशास्त्रोक्त कर्म—और विद्या (वेदके अर्थ का ज्ञान) ये पांच मान्य (बड़ाई) के स्थानहैं इन पांचों के मध्य में जो २ उत्तर (पीछे)है वही २ श्रेष्ठ है अर्थात् इन सबके अथवा दो चारके समागममें जो श्रेष्ठ हो उसको ही प्रथम नमस्कार आदि करै १३६ ॥

पञ्चानांत्रिषुवर्णेषुभूयांसिगुणवन्तिच।यत्रस्युःसोऽत्रमानार्हःशूद्रोऽपिदशमींगतः १३७

प० । पंचानां त्रिषु वर्णेषु भूयांसि गुणवंति यत्र स्युः सः अत्र मानार्हः शूद्रः अपि दशमीं गतः॥

यो० । त्रिषुवर्णेषु—पंचानां (मध्ये) यत्र गुणवंति भूयांसि स्युः सः अत्र मानार्हः (भवति) दशमीं गतः शूद्रोपि मानार्हो ज्ञेयः ॥

भा० । तीनों वर्णोंमें इन पांचोंके विषय पहिलेभी बहुतसे अच्छे जिसमेंहों वही इस संसार में मानने योग्य है और नव्वे वर्ष से अधिक अवस्थावाला शूद्र भी माननीय होताहै ॥

ता० । पूर्वोक्त धन आदि पांचोंके मध्यमें तीनों वर्णोंके विषय जिसमनुष्यमें पूर्वोक्त धनआदि गिनती से अधिक हों और पिछले एक में कमहोंय तो जिसमें अधिकहों वही मानने योग्य है अर्थात् धन और बन्धुवाला अधिक अवस्थावाले से—और धनआदि तीनवाला कर्मवाले से—धनआदि चारवाला विद्यावाले से पहिले मानने योग्य है और यदि दोनों विद्याआदि गुणवाले होंय तो जिसमें उत्तम विद्याहो वही मान्यहै—और दशमी अवस्था(९०से अधिक) को पहुंचा शूद्र भी द्विजातियों के मानने योग्य है १३७ ॥

चक्रिणोदशमीस्थस्यरोगिणोभारिणःस्त्रियाः।स्नातकस्यचराज्ञश्चपन्थादेयोवरस्यच १३८

प० । चक्रिणः दशमीस्थस्य रोगिणः भारिणः स्त्रियाः स्नातकस्य च राज्ञः च पंथाः देयः वरस्य च ॥

यो० । चक्रिणः दशमीस्थस्य — रोगिणः भारिणः स्त्रियाः चपुनः स्नातकस्य — चपुनः राज्ञः चपुनः वरस्य पंथा देयः (सत्कर्त्तव्यः) ॥

भा० । रथवान्—नव्वे से अधिक अवस्था वाला—रोगी—भारवाला—स्त्री—स्नातक—राजा—और वर—इनको मार्ग छोड़नाचाहिये ॥

ता० । प्रसंग से यह भी एक पूजाका प्रकार कहते हैं कि रथआदि यान (सवारी) पर चढ़ा—नव्वे से अधिक अवस्था वाला—रोगी—भारवाला—स्त्री—स्नातक—(जिसका समावर्त्तन कुछ काल

पहिले होचुका हो) देशका अधिपति राजा—वर (जो विवाहके लियेजाता हो) इनको मार्गदेना (छोड़दे) अर्थात् सन्मुख आतेहुये इनको देखकर आप दाहिने वा बायें को हटजाय १३८ ॥

तेषांतुसमवेतानांमान्यौस्नातकपार्थिवौ।राजस्नातकयोश्चैवस्नातकोनृपमानभाक्१३९

प० । तेषां तु समवेतानां मान्यौ स्नातकपार्थिवौ राजस्नातकयोः—च एव स्नातकः नृपमानभाक् ॥

यो० । समवेतानां तु तेषां मध्ये स्नातकपार्थिवौ मान्यौ — चपुनः राजस्नातकयोः मध्ये — स्नातकः नृपमानभाक — भवतीति शेषः ॥

भा० । यदि ये पूर्वोक्त एकत्र मिलें तो स्नातक और राजा मान्यहैं और राजा और स्नातक ये दोनों एकत्र मिलें तो स्नातक राजाको मानने योग्य है ॥

ता० । यदि रथवान् आदि सम्पूर्ण एकजगह मिलजांय तो राजा और स्नातक माननेयोग्य हैं और राजा और स्नातक ये दोनों एकत्रमिलें तो राजाके माननेयोग्य स्नातकहै अर्थात् राजाही स्नातकको मार्ग छोड़दे स्नातक राजाको मार्ग न छोड़े १३९ ॥

उपनीयतुयःशिष्यंवेदमध्यापयेद्द्विजः।सकल्पंसरहस्यंचतमाचार्यंप्रचक्षते १४० ॥

प० । उपनीय तु यः शिष्यं वेदं अध्यापयेत् द्विजः सकल्पं सरहस्यं च तं आचार्यं प्रचक्षते ॥

यो० । यः द्विजः शिष्यं उपनीय सकल्पं सरहस्यं वेदं अध्यापयेत् तं आचार्यं प्रचक्षते — बुधाइतिशेषः ॥

भा० । जो ब्राह्मण शिष्यको यज्ञोपवीत कराकर यज्ञकीविधि और उपनिषदसहित वेदको पढ़ावे उसे मुनि आचार्य कहतेहैं ॥

ता० । अब आचार्य आदि शब्दोंका अर्थ कहतेहैं क्योंकि इस(मनु)शास्त्रमें आचार्य आदि शब्दोंसे व्यवहार होताहै—जो ब्राह्मण शिष्यको यज्ञोपवीत देकर कल्पसूत्र (यज्ञविद्या) और रहस्य (उपनिषद) संहिता सहित वेदको पढ़ाताहै उसको पहिले मुनि आचार्य कहतेहैं यद्यपि उपनिषद भी वेदहीहै तथापि प्रधान होनेसे उपनिषदोंको पृथक् लिखाहै १४० ॥

एकदेशन्तुवेदस्यवेदाङ्गान्यपिवापुनः।योऽध्यापयतिवृत्त्यर्थमुपाध्यायःसउच्यते१४१॥

प० । एकदेशं तु वेदस्य वेदांगानि वा पुनः यः अध्यापयति वृत्त्यर्थं उपाध्यायः सः उच्यते ॥

यो० । यः (ब्राह्मणः) वेदस्य एकदेशं वा पुनः वेदांगानि वृत्त्यर्थं अध्यापयति स उपाध्यायति सः (मुनिभिः) उपाध्यायः उच्यते ॥

भा० । ता० । जो ब्राह्मण वेदके एकभागको अथवा व्याकरण आदि वेदांगोंको वृत्ति (जीविका) के लिये पढ़ावे उसे मुनि उपाध्याय कहतेहैं १४१ ॥

निषेकादीनिकर्माणियःकरोतियथाविधि।संभावयतिचान्नेनसविप्रोगुरुरुच्यते १४२॥

प० । निषेकादीनि कर्माणि यः करोति यथाविधि संभावयति च अन्नेन सः विप्रः गुरुः उच्यते ॥

यो० । यः (विप्रः) निषेकादीनि कर्माणि यथाविधिकरोति चपुनः अन्नेन संभावयति सविप्रः (मुनिभिः) गुरुः उच्यते ॥

भा० । जो ब्राह्मण गर्भाधान आदि कर्मोंको करै और अन्नसे पालनाकरै उस ब्राह्मणको गुरु कहतेहैं ॥

ता० । जो ब्राह्मण (पिता) निषेक (गर्भाधान) आदि कर्मोंको शास्त्रके अनुसारकरै और अन्नसे बढ़ावै अर्थात् पालन पोषणकरै उस ब्राह्मणको मुनि गुरुकहतेहैं यहां गुरुपदसे पिताले-तेहैं क्योंकि गर्भाधान और पालनकरनेका उसकाही धर्महै १४२ ॥

अग्न्याधेयंपाकयज्ञानग्निष्टोमादिकान्मखान् ।
यःकरोतिवृतोयस्यसतस्यर्त्विगिहोच्यते १४३ ॥

प० । अग्न्याधेयं पाकयज्ञान् अग्निष्टोमादिकान् मखान् यः करोति वृतः यस्य सः तस्य ऋ-त्विक् इह उच्यते ॥

यो० । यः (ब्राह्मणः) वृतः सन् यस्य अग्न्याधेयं — पाकयज्ञान — अग्निष्टोमादिकान् मखान् करोति सः तस्य (मुनिभिः) ऋत्विक् इह उच्यते ॥

भा० । अग्निके पैदाकरनेका कर्म—अष्टका और अग्निष्टोम आदि यज्ञोंको जो वरण करनेपर जिसके यहां करावै वह उसका ऋत्विज संसारमें कहाहै ॥

ता० । जो ब्राह्मण वरणकरने पर जिसके यहाँ आहवनीय आदि अग्निका पैदाकरनेवाला कर्म—और अष्टका आदि पाकयज्ञ—और अग्निष्टोम आदि यज्ञोंको जो करै वह उसपुरुषका ऋ-त्विक् इससंसारमें मुनियोंने कहाहै—यद्यपि इसब्रह्मचारी प्रकरण में ऋत्विक् का कुछ उपयोग नहीं था तथापि आचार्य के समान ऋत्विक्भी पूज्य है यह दिखानेको ऋत्विक् का लक्षण कहाहै १४३ ॥

यआवृणोत्यवितथंब्राह्मणःश्रवणावुभौ । समातासपिताज्ञेयस्तंनद्रुह्येत्कदाचन १४४ ॥

प० । यः आवृणोति अवितथं ब्राह्मणः श्रवणौ उभौ सः माता सः पिता ज्ञेयः तं न द्रुह्येत् कदाचन ॥

यो० । यः ब्राह्मणः अवितथं यथा स्यात् तथा उभौ श्रवणौ आवृणोति स माता स पिता ज्ञेयः तं कदाचन न द्रुह्येत् ॥

भा० । जो ब्राह्मण सत्यरूप वेदसे दोनों कानोंको पूर्णकरै उसकोही माता और पिता जाने और उसका द्रोह कभी न करै ॥

ता० । जो ब्राह्मण—वर्ण और स्वरसहित वेदसे दोनों कानोंको पूर्णकरै अर्थात् यथार्थ वेदको पढ़ावै उसकोही माता और पिता जानना क्योंकि महान् उपकार का कर्ता वहीहै और यह अध्यापकभी उसके नामको करै और वेदके पढ़ने के अनन्तर उसका द्रोह कभी न करै १४४ ॥

उपाध्यायान्दशाचार्यआचार्याणांशतंपिता।सहस्रंतुपितॄन्मातागौरवेणातिरिच्यते १४५

प० । उपाध्यायान् दश आचार्यः आचार्याणां शतं पिता सहस्रं तु पितॄन् माता गौरवेण अतिरिच्यते ॥

यो० । दश उपाध्यायान् अपेक्ष्य आचार्यः--आचार्याणां शतं अपेक्ष्य पिता--सहस्रं पितॄन् अपेक्ष्य माता--गौरवेण अतिरिच्यते (अधिकाभवति) ॥

भा० । दश उपाध्यायों के समान आचार्य का, और सौ आचार्यों के समान पिता का, और सहस्र पिताओं के समान माताका, गौरव होताहै ॥

ता० । दश उपाध्यायोंकी अपेक्षा आचार्य और सौ आचार्यों की अपेक्षा पिता—और सहस्र पिताओंकी अपेक्षा माता गौरवमें अधिकहोतीहै अर्थात् उपाध्यायों से दशगुना आचार्य का, और आचार्य से सौगुना पिताका, और पितासे सहस्रगुना माता का, गौरव होताहै इस श्लोक में वही आचार्य लेना जो यज्ञोपवीत देकर केवल गायत्री का उपदेश करै उससे पिताका गौरव है और संपूर्ण वेद पढ़ानेवाले पूर्वोक्त आचार्य का तो पितासे भी अधिक गौरव अग्रिमश्लोक में कहेंगे—इससे कुछ विरोध नहीं है १४५ ॥

उत्पादकब्रह्मदात्रोर्गरीयान्ब्रह्मदःपिता॥ब्रह्मजन्महिविप्रस्यप्रेत्यचेहचशाश्वतम् १४६॥

प० । उत्पादकब्रह्मदात्रोः गरीयान् ब्रह्मदः पिता ब्रह्मजन्म हि विप्रस्य प्रेत्य च इह च शाश्वतं ॥

यो० । हि (यतः) विप्रस्य ब्रह्मजन्म प्रेत्य चपुनः इह शाश्वतं (भवति) अतः उत्पादकब्रह्मदात्रोः (पित्रोःमध्ये) ब्रह्मदःपिता गरीयान् (गुरुतरः भवति) ॥

भा० । जन्मदेनेवाले और ब्रह्मदेनेवाले पिताओंमें ब्रह्मदेनेवालापिता अतीवउत्तमहै क्योंकि ब्राह्मणका ब्रह्मजन्मही इसलोक और परलोक में नित्य है ॥

ता० । उत्पादक (पैदाकरनेवाला) पिता और ब्रह्मदाता (गायत्रीका उपदेशकरनेवाला) पिता इनदोनोंमें ब्रह्मकादाता पिताही अत्यंतगुरुहै क्योंकि ब्राह्मणका जो वेदके पढ़ने के लिये यज्ञोपवीत संस्काररूप ब्रह्मजन्म है वही इह लोक और परलोक में नित्यहै क्योंकि उसके द्वाराही ब्रह्मकी प्राप्तिरूप फल होताहै १४६ ॥

कामान्मातापिताचैनंयदुत्पादयतोमिथः॥संभूतिंतस्यतांविद्याद्यद्योनावभिजायते१४७॥

प० । कामात् माता पिता च एनं यत् उत्पादयतः मिथः संभूतिं तस्य तां विद्यात् यत् योनौ अभिजायते ॥

यो० । माता चपुनः पिता यत् एनं कामात् मिथः उत्पादयतः यत् (यस्मात्) योनौ अभिजायते (तस्मात्) तस्य तां संभूतिं विद्यात् ॥

भा० । माता और पिता जो इसको कामदेवसे परस्पर पैदाकरते हैं वह इसका केवल जन्ममात्रही जानना क्योंकि यह माता के गर्भसे पशुआदि के समानही पैदाहोताहै ॥

ता० । अब दोश्लोकों से पूर्वश्लोकों में कहेहुयेकोही प्रकटकरते हैं कि माता और पिता जो इस बालकको कामदेवके वशहोकर परस्पर पैदाकरतेहैं वह पशु आदि के साधारण उसका जन्ममात्रही जाने क्योंकि जिससे योनि (माताकी कुक्षि) में यह पैदाहोताहै अर्थात् अंग और प्रत्यंगों (अंगोंके अंग) को प्राप्तहोताहै १४७ ॥

आचार्यस्त्वस्ययांजातिंविधिवद्वेदपारगः । उत्पादयतिसावित्र्यासासत्यासाऽजरामरा १४८

प० । आचार्यः तु अस्य यां जातिं विधिवत् वेदपारगः उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या सा अजरा सा अमरा ॥

यो० । वेदपारगः आचार्यः अस्य यां जातिं विधिवत् सावित्र्या उत्पादयति सा सत्या सा अजरा अमरा-(भवति) ॥

भा० । वेदका पारगामी आचार्य विधिपूर्वक गायत्रीके उपदेशसे इसबालककी जिसजातिको पैदाकरताहै वही जाति (जन्म) सत्य—अजर—और अमर—है ॥

ता० । और वेदका पारजाननेवाला आचार्य इस बालककी जिस जातिको गायत्रीके उपदेशद्वारा शास्त्रोक्तविधि से अर्थात् अंगोंसहित यज्ञोपवीतपूर्वक गायत्रीके देनेसे—पैदा करताहै वही जाति (जन्म) सत्य और अजर (जो कभी जीर्ण न हो) और अमर है क्योंकि यज्ञोपवीत के अनंतर वेदके पढ़ने और अर्थ के जानने और वेदोक्तकर्मोंके निष्काम करनेसेही मोक्षकालाभ होताहै इससे पहिले जन्म से यही जन्म श्रेष्ठ है १४८ ॥

अल्पंवाबहुवायस्यश्रुतस्योपकरोतियः । तमपीहगुरुंविद्याच्छ्रुतोपक्रिययातया १४९॥

प० । अल्पं वा बहु वा यस्य श्रुतस्य उपकरोति यः तं अपि इह गुरुं विद्यात् श्रुतोपक्रियया ॥ तया ॥

यो० । यः यस्य श्रुतस्य अल्पं वा बहु वा उपकरोति—तं अपि इह तया श्रुतोपक्रियया गुरुं विद्यात् ॥

भा० । ता० । जो उपाध्याय जिसका श्रुत (वेद) मे अल्प वा अधिक उपकारकरताहै उसको भी इस शास्त्र वा संसारमें उस बालकका उसी वेदके उपकार करनेसे गुरु जाने १४९ ॥

ब्राह्मस्यजन्मनःकर्तास्वधर्मस्यचशासिता।बालोऽपिविप्रोवृद्धस्यपिताभवतिधर्मतः १५०

प० । ब्राह्मस्य जन्मनः कर्ता स्वधर्मस्य च शासिता बालः अपि विप्रः वृद्धस्य पिता भवति धर्मतः ॥

यो० । ब्राह्मस्य जन्मनः कर्ता चपुनः स्वधर्मस्य शासिता बालः अपि विप्रः वृद्धस्य (विप्रस्य) धर्मतः पिता भवति ॥

भा० । उपनयन (जनेउ) का देनेवाला और अपने धर्मका शिक्षक बालक भी ब्राह्मण—वृद्धका धर्म से पिता होताहै ॥

ता० । ब्रह्म (वेद) के सुनने वा पढ़ने के लिये जो जन्म उसे ब्राह्म कहतेहैं अर्थात् यज्ञोपवीतका करानेवाला और वेदके अर्थ बताने के द्वारा अपने धर्म के उपदेशकरनेवाला बालकभी ब्राह्मण वृद्ध (बड़े) का धर्म से पिताहोताहै अर्थात् पिताके धर्म (सत्कार आदि) संपूर्ण उसमें करने १५० ॥

अध्यापयामासपितृन्शिशुराङ्गिरसःकविः।पुत्रकाइतिहोवाचज्ञानेनपरिगृह्यतान् १५१

प० । अध्यापयामास पितृन् शिशुः आंगिरसः कविः पुत्रकाः इति ह उवाच ज्ञानेन परिगृह्य तान् ॥

यो० । शिशुः कविः आंगिरसः पितृन् अध्यापयामास तान् ज्ञानेन परिगृह्य हेपुत्रकाः इति उवाच—ह—इति अतीतेकाले ॥

भा० । बालक और पंडित बृहस्पतिने पितरोंको पढ़ाया और उनको ज्ञानदेकर शिष्यबनाकर हे पुत्रो ऐसे उनके प्रति बोले ॥

ता० । पूर्वोक्त में प्रमाण देतेहैं कि विद्वान् और बालक अंगिराऋषिके पुत्र (बृहस्पति) जीने पितर और पितरोंके बड़े और पुत्र आदिक अधिक अवस्थावालोंको पढ़ाया और ज्ञानदे-

कर उनको अपने शिष्यकरके हे पुत्रो ऐसे उनको कहतेभये यह बहुत पुराणा वृत्तान्तहै १५१ ॥

तेतमर्थमपृच्छन्तदेवानागतमन्यवः।देवाश्चतान्समेत्योचुर्न्याय्यंवःशिशुरुक्तवान् १५२

प० । ते तं अर्थं अपृच्छंत देवान् आगतमन्यवः देवाः च तान् समेत्य ऊचुः न्याय्यं वः शिशुः उक्तवान् ॥

यो० । आगतमन्यवः ते (पितरः) तं अर्थं देवान् अपृच्छन्त — देवाश्च तान् समेत्य शिशुः वः (युष्मान् यत्) उक्तवान् (तत्) न्याय्यं (उचितम् इति) ऊचुः ॥

भा० । आयाहै क्रोध जिनको ऐसे पितरोंने उसबातको देवताओंसे पूछा और देवता इकट्ठे होकर पितरोंके प्रति यह बोले कि शिशु (बालक) ने जो तुम्हें पुत्र कहा सो उचित है ॥

ता० । वे पितर क्रोधहोकर कि (पिताके समान हमको पुत्रका यह कहा) उस पुत्र शब्दके अर्थको देवताओंको पूछतेभये और देवता इकट्ठेहोकर उनपितरोंके प्रति यह बोले कि बालक बृहस्पति ने जो तुमको पुत्र कहा वह उचितहै अर्थात् ठीकहै १५२ ॥

अज्ञोभवतिवैबालःपिताभवतिमन्त्रदः।अज्ञंहिबालमित्याहुःपितेत्येवतुमन्त्रदम् १५३॥

प० । अज्ञः भवति वै बालः पिता भवति मंत्रदः अज्ञं हि बालं इति आहुः पिता इति एव तु मंत्रदं ॥

यो० । अज्ञः वै (एव) बालोभवति — मंत्रदः पिता भवति — हि (यतः) अज्ञं बालं मंत्रदं पिता इति मुनयः आहुः (उक्तवन्तः) ॥

भा० । ता० । अज्ञ (मूर्ख) बालक और मंत्र (वेद) का देनेवाला पिता होताहै क्योंकि ऋषियोंने मूर्ख को बालक और मंत्र (वेद) के पढ़ानेवाले को पिता कहाहै १५३ ॥

नहायनैर्नपलितैर्नवित्तेननबन्धुभिः । ऋषयश्चक्रिरेधर्मंयोऽनूचानःसनोमहान् १५४॥

प० । न हायनैः न पलितैः न वित्तेन न बंधुभिः ऋषयः चक्रिरे धर्मं यः अनूचानः सः नः महान् ॥

यो० । (नः अस्माकं मध्ये) हायनैः पलितैः वित्तेन बंधुभिः महान् न (भवति) किंतु यः नः (अस्माकंमध्ये) अनूचानः (सांगवेदपाठी) स एव महान् अस्तीतिशेषः ॥

भा० । वर्ष—शुक्लकेश—धन—और बंधु— इनसे बड़ा नहीं होता किंतु ऋषियोंने यह धर्मकिया कि हममें जो सांगवेद का पाठी वही बड़ाहै ॥

ता० । इसमें हेतु कहतेहैं कि जिससे पहिले ऋषियोंने मूर्खको बालक और मंत्रदेनेवाले को पिता कहाहै सोई इसश्लोकमें कहतेहैं कि अधिक वर्ष—और शुक्लकेश— श्मश्रु (डाढ़ी) और लोम—और बहुतधन—और पितृव्य (चाचा) आदि भाई बंधु—इनसब इकट्ठोंसे बड़ाई नहीं होती किंतु ऋषियोंने यह धर्म कियाहै कि हममें जो सांग (अंगोंसहित) वेद का पढ़ाहो वही महान् (बड़ा) है १५४ ॥

विप्राणांज्ञानतोज्यैष्ठ्यंक्षत्रियाणांतुवीर्यतः।वैश्यानांधान्यधनतश्शूद्राणामेवजन्मतः१५५

प० । विप्राणां ज्ञानतः ज्यैष्ठ्यं क्षत्रियाणां तु वीर्यतः वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणां एव जन्मतः ॥

यो० । विप्राणां ज्यैष्ठ्यं ज्ञानतः—क्षत्रियाणां तु वीर्यतः—वैश्यानां धान्यधनतः—शूद्राणां एव जन्मतः ज्यैष्ठ्यं सर्वत्र भवतीति शेषः ॥

भा० । ता० । ब्राह्मणोंका ज्यैष्ठ्य (श्रेष्ठता) ज्ञान (विद्या) से—क्षत्रियों का वीर्य पराक्रम से—वैश्योंका अन्न और धनसे और शूद्रोंकाही जन्मसे अर्थात् अवस्थासे श्रेष्ठय(बड़ाई)होताहै १५५॥

नतेनवृद्धोभवतियेनास्यपलितंशिरः। योवैयुवाप्यधीयानस्तंदेवाःस्थविरंविदुः१५६॥

प० । न तेन वृद्धः भवति येन अस्य पलितं शिरः यः वै युवा अपि अधीयानः तं देवाः स्थविरं विदुः ॥

यो० । येन अस्य शिरः पलितं तेन वृद्धो न भवति—यः युवा अपि अधीयानः(अस्ति)तं देवाः स्थविरं विदुः ॥

भा० । ता० । उससे वृद्ध नहीं होता जिससे इसके शिरके केश शुक्कहोजांय किंतु युवा(जवान) भी जो विद्वान्हो उसकोही देवता वृद्ध जानतेहैं १५६ ॥

यथाकाष्ठमयोहस्तीयथाचर्ममयोमृगः।यश्चविप्रोऽनधीयानस्त्रयस्तेनामबिभ्रति१५७॥

प० । यथा काष्ठमयः हस्ती यथा चर्ममयः मृगः यः च विप्रः अनधीयानः त्रयः ते नाम बिभ्रति ॥

यो० । यथा काष्ठमयः हस्ती—यथाचर्ममयः मृगः चपुनः अनधीयानः यः विप्रः (अस्ति) तेत्रयः नाम बिभ्रति ॥

भा० । जैसे काठकाहाथी और चामकामृग हैं ऐसेही विनापढ़ा ब्राह्मण है ये तीनों नामकोही धारतेहैं ॥

ता० । जैसे काठसे बनाया हाथी और चामसे बनाया मृग और विना पढ़ा ब्राह्मण ये तीनों नाममात्र को धारतेहैं अर्थात् नामकेलियेहैं क्योंकि उक्तहाथी और मृग जैसे हाथीआदिके काम को नहींकरसक्ते तैसेही उक्त ब्राह्मणभी शत्रुबधआदिके कामको नहीं करसक्ता—निदान उक्त ब्राह्मणका होना न होना समान है १५७ ॥

यथाषण्ढोऽफलःस्त्रीषुयथागौर्गविचाफला।
यथाचाज्ञेऽफलंदानंतथाविप्रोऽनृचोऽफलः १५८ ॥

प० । यथा षण्ढः अफलः स्त्रीषु यथा गौः गवि च अफला यथा च अज्ञे अफलं दानं तथा विप्रः अनृचः अफलः ॥

यो० । स्त्रीषु यथा षण्ढः अफलः गावि गौः यथा अफला--चपुनः अज्ञे यथा दानं अफलं (भवति) तथा अनृचः विप्रः अफलः भवतीति शेषः ॥

भा० । जैसे नपुंसक स्त्रियों में—और गौ गौमें—और मूर्खकोदानदेना—निष्फल हैं इसीप्रकार विनापढ़ा ब्राह्मणभी निष्फलहै ॥

ता० । जैसे नपुंसक मनुष्य स्त्रियोंमें निष्फलहै अर्थात् पुत्रको पैदानहीं करसक्ता—और जैसे गौ गौमें निष्फल है अर्थात् सन्तान के पैदाकरनेमें असमर्थ है—और जैसे मूर्खको दानदेना निष्फल है—तिसीप्रकार विनापढ़ा ब्राह्मण भी निष्फल है अर्थात् वेद और धर्मशास्त्र में उक्तकर्मों के फलकाभागी नहींहोता १५८ ॥

अहिंसयैवभूतानांकार्यंश्रेयोऽनुशासनम् । वाक्चैवमधुराश्लक्ष्णाप्रयोज्याधर्ममिच्छता

प० । अहिंसया एव भूतानां कार्यं श्रेयोनुशासनं वाक् च एव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्मं इच्छता ॥

यो० । धर्मं इच्छता (पुरुषेण) भूतानां अहिंसया एव श्रेयोनुशासनंकार्यं चपुनः मधुरा श्लक्ष्णाएव वाक् प्रयोज्या

भा० । धर्मकी इच्छाकरनेवाला गुरु शिष्योंकी अहिंसा से कल्याण के लिये शिक्षादे और मीठी और कोमलवाणी का उच्चारणकरै ॥

ता० । भूतों(शिष्यों)की अहिंसासेही श्रेय(कल्याण)के लिये शिक्षाकरनी क्योंकि रज्जु वा बांसके दलसे शिष्योंकी ताड़नाकरै—और मधुर (जिसको सुनकर शिष्यप्रसन्नहो) और श्लक्ष्ण (धीरे स्वभाव से जो कहीजाय) वाणीको धर्मकी इच्छाकरनेवाला गुरु कहै १५९ ॥

यस्यवाङ्मनसीशुद्धेसम्यग्गुप्तेचसर्वदा।सवैसर्वमवाप्नोतिवेदान्तोपगतंफलम् १६०॥

प० । यस्य वाङ्मनसी शुद्धे सम्यग्गुप्ते च सर्वदा सः वै सर्वं अवाप्नोति वेदांतोपगतं फलम् ॥

यो० । यस्य सर्वदा वाङ्मनसी शुद्धे—सम्यग्गुप्तेच (भवतः) स वै (एव) सर्वं वेदांतोपगत फलं अवाप्नोति ॥

भा० । जिसके वाणी और मन सदैव शुद्ध और सुरक्षितहों वहीवेदांतसे जाननेयोग्य फल (मोक्ष) को प्राप्त होताहै ॥

ता० । अब सब पुरुषोंको वाणी और मनके संयमका फल कहतेहैं केवल अध्यापककेही नहीं कि जिसमनुष्य के वाणी और मन ये दोनों शुद्धहों अर्थात् झूठमें तो वाणी दुष्टनहो और राग द्वेषसे मन—और निषिद्ध विषयकी प्राप्तिके समय जिस मनुष्य के ये दोनों सुरक्षित (वशीभूत) हों वही पुरुष वेदांत से जाननेयोग्य सर्वका ईश्वर और सर्वज्ञ बनानेवाले मोक्षरूप फलको प्राप्त होता है १६० ॥

नारुंतुदःस्यादार्तोऽपिनपरद्रोहकर्मधीः।ययास्योद्विजतेवाचानालोक्यांतामुदीरयेत् १६१

प० । न अरुंतुदः स्यात् आर्तः अपि न परद्रोहकर्मधीः यया अस्य उद्विजते वाचा न अलोक्यां तां उदीरयेत् ॥

यो० । आर्तः अपि अरुंतुदः परद्रोहकर्मधीः नस्यात् अस्य ययावाचा (लोकः) व्यथते अलोक्यां तां न उदीरयेत् (न कथयेत्) ॥

भा० । पीड़ाके समय भी किसीके मर्मको न बींधे—और परायेद्रोहकेलिये कर्म और बुद्धि को न करै--इसकी जिसवाणीसे लोकडरे स्वर्ग आदिकी विरोधिनी उसवाणीको न कहै ॥

ता० । यह भी सम्पूर्ण पुरुषोंका धर्म है केवल अध्यापकोंकाही नहीं कि पीड़ित भी मनुष्य अरुंतुदनहो दूसरे के मर्म दुखानेवाले यथार्थदूषणोंको भी न कहै और परके तिरस्कार करनेवाले

कर्म और बुद्धि इनदोनों को न करै—इसमनुष्यकी जिसवाणी से अन्य पुरुष दुःखीहो अर्थात् अन्यके मर्मको जो वाणी बींधे स्वर्ग आदि लोककी विरोधी उस वाणी को न कहै अर्थात् सबके संग कोमलवाणीसेही वार्तालापकरै १६१ ॥

संमानाद्ब्राह्मणोनित्यमुद्विजेतविषादिव । अमृतस्येवचाकांक्षेदवमानस्यसर्वदा १६२ ॥

प० । संमानात् ब्राह्मणः नित्यं उद्विजेत विषात् इव अमृतस्य इव च आकांक्षेत् अवमानस्य सर्वदा ॥

यो० । ब्राह्मणः संमानात् विषादिव नित्यं उद्विजेत — अमृतस्य इव अवमानस्य सर्वदा आकांक्षेत् ॥

भा० । ब्राह्मण संमानसे विषके समान प्रतिदिनडरै और अवमानकी अमृतके समानसदैव आकांक्षाकरै ॥

ता० । ब्राह्मण प्रतिदिन संमानसे ऐसाडरै जैसा विषसे अर्थात् संमान (सत्कारमें प्रीति न करै) और सदैव काल अपमानकी अमृतकेसमान आकांक्षाकरै अर्थात् तिरस्कारहोनेपर खेदनकरै सिद्धांत यहहै कि मान अवमानरूप द्वंद्वकोसहले १६२ ॥

सुखंह्यवमतःशेतेसुखञ्चप्रतिबुद्ध्यते । सुखंचरतिलोकेऽस्मिन्नवमन्ताविनश्यति १६३ ॥

प० । सुखं हि अवमतः शेते सुखं च प्रतिबुद्ध्यते सुखं चरति लोके अस्मिन् अवमंता विनश्यति ॥

यो० । अवमतः (पुरुषः) हि (यतः) सुखं शेते — पुनः सुखं प्रतिबुद्ध्यते — अस्मिन्लोके सुखं चरति — अवमंता (पुरुषः) विनश्यति ॥

भा० । अपमानको सहकर सुखसे सोताहै और सुखसे जगताहै और सुखसेही इस लोकमें विचरताहै—और अपमान करनेवाला नष्टहोजाताहै ॥

ता० । अब अपमानके सहनेकाफल कहतेहैं दूसरेके अपमानकरनेपर जो खेदनहींकरता वह सुखसे सोताहै और सुखसे जगताहै यदि अपमानके दुःखसे दग्धहोता तो सुखसे निद्रा और जगना कदाचित् भी न होते—और जगकर सुखसे इस लोकमें विचरताहै—और अपमान का करनेवाला उस पापसे नष्टहोजाताहै—सिद्धांत यहहै अपमान करनेसे दुःख न माने १६३ ॥

अनेनक्रमयोगेनसंस्कृतात्माद्विजःशनैः । गुरौवसन्संचिनुयाद्ब्रह्माधिगमिकंतपः १६४ ॥

प० । अनेन क्रमयोगेन संस्कृतात्मा द्विजः शनैः गुरौ वसन् संचिनुयात् ब्रह्माधिगमिकं तपः ॥

यो० । अनेन क्रमयोगेन संस्कृतात्मा द्विजः गुरौ वसन (सन्) शनैः ब्रह्माधिगमिकं तपः संचिनुयात् ॥

भा० । इसक्रमसे संस्कृतहै आत्मा जिसका ऐसाद्विज गुरुके यहां वसताहुआ वेदके ज्ञानके लिये तपकरै ॥

ता० । इस पूर्वोक्त क्रमसे कहेहुये जातकर्म आदि उपनयन पर्यन्त कर्मके समूहसे संस्कृत (निर्मल) है आत्मा (देह) जिसका ऐसाद्विज गुरुके यहां वसताहुआ ब्रह्म (वेद) के अधिगम (ज्ञान) के लिये शनैः२तपका संचयकरै अर्थात् प्रथम कहे औरआगे जो कहैंगे उस नियम के समूहको करै यद्यपि यह तपका विधान अन्यत्रभी कहाहै तथापि तपको पढ़नेका अंगजताने के लिये यह कथन भी अर्थवाद (कहेका फिर कहना) रूपहै १६४ ॥

तपोविशेषैर्विविधैर्व्रतैश्चविधिचोदितैः।वेदःकृत्स्नोऽधिगन्तव्यःसरहस्योद्विजन्मना १६५

प० । तपोविशेषैः विविधैः व्रतैः च विधिचोदितैः वेदः कृत्स्नः अधिगंतव्यः सरहस्यः द्विजन्मना ॥

यो० । तपोविशेषैः चपुनः विविधैः विधिचोदितैः व्रतैः सरहस्यः कृत्स्नः वेदः द्विजन्मना अधिगंतव्यः (ज्ञेयः) ॥

भा० । विशेषतप और विधिसेकहे विविधव्रतों से उपनिषदसहित संपूर्ण वेदको द्विजन्मा (द्विजाति) पढ़े ॥

ता० । अब तपको अध्ययनका अंग प्रकटकरते हैं कि तपके विशेषों (नियम के समूहों) से और अनेक प्रकारके पहिले कहे (आचमनकरके पढ़ इत्यादि) और आगे जो कहेंगे (इननियमोंको करे इत्यादि) जो अपने गृहस्थकी विधिमेंकहेहों इन संपूर्ण व्रतोंसे—रहस्य (उपनिषद महानाम्निका आदि) सहित मंत्र और ब्राह्मणरूप संपूर्ण वेदको द्विजपढ़े—यहां उपनिषदकी प्रधानताजतानेके लिये पृथक् लिखाहै १६५ ॥

वेदमेवसदाभ्यस्येत्तपस्तप्स्यन्द्विजोत्तमः।वेदाभ्यासोहिविप्रस्यतपःपरमिहोच्यते १६६

प० । वेदं एव सदा अभ्यस्येत् तपः तप्स्यन् द्विजोत्तमः वेदाभ्यासः हि विप्रस्य तपः परम् इह उच्यते ॥

यो० । द्विजोत्तमः तपः तप्स्यन सन सदा वेदं एव अभ्यस्येत् —हि (यतः) विप्रस्य वेदाभ्यासः इह परं तपः उच्यते —मुनिभिरितिशेषः ॥

भा० । तपकरताहुआ ब्राह्मण सदैव वेदका अभ्यासकरे क्योंकि वेदका अभ्यासही इसलोकमें ब्राह्मण का परमतप कहाहै ॥

ता० । जहां व्रतआदि नियमोंको अंगत्वहै वह सम्पूर्ण वेदके अध्ययन कहतेहैं कि तप की इच्छाकरनेवाला द्विजोंमें उत्तम (ब्राह्मण) वेदकाही वारंवार अभ्यासकरे क्योंकि वेदका अभ्यासही ब्राह्मणका इसलोकमें परमतप मुनियोंने कहाहै १६६ ॥

आहैवसनखाग्रेभ्यःपरमंतप्यतेतपः ॥
यःस्रग्व्यपिद्विजोऽधीतेस्वाध्यायंशक्तितोऽन्वहम् १६७ ॥

प० । आ ह एव सः नखाग्रेभ्यः परमं तप्यते तपः यः स्रग्वी अपि द्विजः अधीते स्वाध्यायं शक्तितः अन्वहं ॥

यो० । सः द्विजः आनखाग्रेभ्यः परमं ह तपः तप्यते यः स्रग्वी अपि द्विजः शक्तितः स्वाध्यायं अन्वहं अधीते ॥

भा० । वह द्विज चरणके नखोंतक परमतप करताहै जो माला धारकर भी यथाशक्ति वेद को प्रतिदिन पढ़ताहै ॥

ता० । वेदके पढ़नेकी यह स्तुतिहै और इसमें ह शब्द परमशब्दसे बोधितभी प्रकर्षका बोध कहै—वह द्विज चरणों के नखपर्यंत सम्पूर्ण देहसे अत्यन्त तपकरताहै जो द्विज फूलोंकी माला को धारणकरके भी प्रतिदिन यथाशक्ति वेदको पढ़ता है—मालाको धारकरभी यह कहने से यह दिखाया कि ब्रह्मचारीको मालाकाधारण यद्यपि निषिद्धहै तथापि ब्रह्मचारीके नियम त्यागकर भी वेदकाअभ्यास अतीवश्रेष्ठहै और नियमसे वेदकाअभ्यासतो सफलक्यों नहींहोगा १६७ ॥

योऽनधीत्यद्विजोवेदमन्यत्रकुरुतेश्रमम्।सजीवन्नेवशूद्रत्वमाशुगच्छतिसान्वयः१६८॥

प० । यः अनधीत्य द्विजः वेदं अन्यत्र कुरुते श्रमं सः जीवन् एव शूद्रत्वं आशु गच्छति सान्वयः ॥

यो० । यः द्विजः वेदं अनधीत्य अन्यत्र श्रमं कुरुते — सः जीवन एव सान्वयः आशु शूद्रत्वं गच्छति ॥

भा० । जो द्विज वेदको न पढ़कर अन्य विद्याओं में परिश्रम करताहै वह जीवताहुआही अन्वयसहित शूद्र होताहै ॥

ता० । जो द्विज वेदको न पढ़ अन्य (अर्थशास्त्र आदि) शास्त्रोंमें श्रमकरताहै वह जीवताहुआही पुत्र पौत्र आदि समेत शीघ्रही शूद्रत्वको प्राप्तहोताहै अर्थात् शूद्रहोजाताहै—यदि वेदको न पढ़कर स्मृति अथवा वेदांग पढ़े तो कुछ दोष नहीं है क्योंकि शंख और लिखित ने यह कहा है कि वेदको न पढ़कर वेदांग और स्मृतिसे भिन्न विद्याको न पढ़े अर्थात् वेदांग और स्मृतियों को अवश्यमेव पढ़े १६८ ॥

मातुरग्रेऽधिजननंद्वितीयंमौञ्जिबन्धने।तृतीयंयज्ञदीक्षायांद्विजस्यश्रुतिचोदनात्१६९॥

प० । मातुः अग्रे अधिजननं द्वितीयं मौंजिबंधने तृतीयं यज्ञदीक्षायां द्विजस्य श्रुतिचोदनात् ॥

यो० । (पुरुषस्य) मातुः सकाशात् अग्रे (प्रथमं) अधिजननं — द्वितीयं मौंजिबंधने — तृतीयं यज्ञदीक्षायां श्रुतिचोदनात् अधिजननं — भवतीतिशेषः ॥

भा० । प्रथम जन्म माताके सकाशसे और दूसराजन्म मौंजिबंधनमें और श्रुतिकी आज्ञा के अनुसार तीसराजन्म यज्ञकी दीक्षामें—होताहै ॥

ता० । जहां तहां द्विजोंको अधिकार सुनाजाताहै इससे द्विज पदका निरूपण करतेहैं कि माताके सकाशसे पुरुषका प्रथमजन्म होताहै—और दूसराजन्म मौंजिबंधन (यज्ञोपवीत) में और तीसराजन्म श्रुतिकी आज्ञाके अनुसार ज्योतिष्टोम आदि यज्ञकी दीक्षामें होताहै क्योंकि इस श्रुति में यह कहा है कि जो ऋत्विज इसद्विज को यज्ञ करनेयोग्य करते हैं और दीक्षा (मन्त्रोपदेश) यज्ञके समय देतेहैं वही तीसराजन्महै—यह तीनोंजन्मों का कथन दूसरे जन्म की स्तुति के लियेहै क्योंकि द्विजकाही यज्ञकरनेमें अधिकारहै १६९ ॥

तत्रयद्ब्रह्मजन्मास्यमौञ्जीबन्धनचिह्नितम्।तत्रास्यमातासावित्रीपितात्वाचार्यउच्यते१७०

प० । तत्र यत् ब्रह्मजन्म अस्य मौंजीबंधनचिह्नितं तत्र अस्य माता सावित्री पिता तु आचार्यः उच्यते ॥

यो० । तत्र (तेषु त्रिषुजन्मसु) मध्ये अस्य (बालस्य) मौंजीबन्धनचिह्नितं यत् जन्म — तत्र (जन्मनि) अस्य बालस्य सावित्री (गायत्री) माता आचार्यस्तु पिता उच्यते — मुनिभिरितिशेषः ॥

भा० । तिन तीनों जन्मोंमें मौंजीबन्धनके चिह्नवाला जो (यज्ञोपवीत) जन्महै उस जन्म में इसकी माता गायत्री और पिता आचार्य कहाहै ॥

---

१ नवेद मनधीत्यान्यां विद्यामधीतान्यत्र वेदांगस्मृतिभ्यः ॥
२ पुनर्वा यदृत्विजो यज्ञियं कुर्वंति यद्दीक्षयंतीति ॥

ता० । तिन तीनोंजन्मोंके मध्यमें वेदके ग्रहण (पढ़ने) के लिये जो मौंजी के बांधने से चिह्न-वाला जो यज्ञोपवीत संस्काररूप जन्महै उस जन्ममें इसबालककी सावित्री (गायत्री) माता और आचार्यपिता ऋषियोंनेकहाहै क्योंकि माता और पितादोनोंकेमेलसेही जन्महोताहै १७०॥

वेदप्रदानादाचार्यंपितरंपरिचक्षते।नह्यस्मिन्युज्यतेकर्मकिञ्चिदामौञ्जिबन्धनात् १७१॥

प० । वेदप्रदानात् आचार्यं पितरं परिचक्षते न हि अस्मिन् युज्यते कर्म किंचित् आमौंजि-बंधनात् ॥

यो० । (मुनयः) आचार्यं वेदप्रदानात् पितरं परिचक्षते — अस्मिन् (माणवके) आमौंजिबन्धनात् किंचित्कर्म न युज्यते ॥

भा० । वेदपढ़ानेसे आचार्यको भी पिताकहतेहैं क्योंकि यज्ञोपवीतसे पहिले इस माणवक (बालक) को किसीकर्म करनेका अधिकारनहीं होता ॥

ता० । वेदके पढ़ानेसे आचार्यको मनु आदिक पिता कहतेहैं क्योंकि आचार्यभी पिता के समान महान् उपकार का कर्त्ताहै इससे इसमें भी गौण पितृत्वहै वही महान् उपकार दिखाते हैं कि जिससे इसमाणवक में यज्ञोपवीत से पहिले कोईभी श्रुति वा स्मृतिके कर्म का योग नहीं है—अर्थात् आचार्यकी कृपाके विना यह बालक किसीभी कर्मका अधिकारी नहींहोता १७१ ॥

नाभिव्याहारयेद्ब्रह्मस्वधानिनयनादृते । शूद्रेणहिसमस्तावद्यावद्वेदेनजायते १७२ ॥

प० । न अभिव्याहारयेत् ब्रह्म स्वधानिनयनात् ऋते न शूद्रेण हि समः तावत् यावत् वेदे न जायते ॥

यो० । हि (यतः यावत्) वेदेनजायते तावत् शूद्रेणसमः (भवति अतः) स्वधानिनयनात् ऋते (आमौंजिबंधनात्) ब्रह्म (वेदं) न अभिव्याहारयेत् ॥

भा० । यज्ञोपवीतसे पहिले श्राद्धके मंत्रोंसे इतरवेदको उच्चारणनकरे क्योंकि जबतक यह वेद में नहींजन्मता तबतक शूद्रके समान होताहै ॥

ता० । यज्ञोपवीतसे पहिले वेदका उच्चारण न करे परन्तु स्वधानिनयन को छोड़कर अर्थात् जिन मंत्रोंसे पितरोंका श्राद्धहो उनमंत्रों के उच्चारणकरे—जिससे जबतक यह वेदमें नहींजन्मता अर्थात् इसका यज्ञोपवीत नहींहोता तबतक शूद्रकी तुल्यहोताहै १७२ ॥

कृतोपनयनस्यास्यव्रतादेशनमिष्यते । ब्रह्मणोग्रहणंचैवक्रमेणविधिपूर्वकम् १७३ ॥

प० । कृतोपनयनस्य अस्य व्रतादेशनं इष्यते ब्रह्मणः ग्रहणं च एव क्रमेण विधिपूर्वकं ॥

यो० । (यतः) कृतोपनयनस्य अस्य व्रतादेशनं चपुनः ब्रह्मणः (वेदस्य) ग्रहणं विधिपूर्वकं यथास्यात्तथा क्रमेण इष्यते — अतउपनयनात् पूर्वं वेदं नोच्चारयेत् ॥

भा० । यज्ञोपवीतके अनन्तरही व्रतोंका उपदेश और वेदका पढ़ना, जिससे इस माणवकको क्रमसे विधिपूर्वक मनु आदिने कहेहैं तिससे जनेउसे पहिले वेदका उच्चारण न करे ॥

ता० । जिससे इस माणवकको इन व्रतोंका उपदेश (समिधलाइये—दिनमें मतसोइयो) और क्रमसे विधिपूर्वक वेदका अध्ययन अर्थात् मंत्र और ब्राह्मणके क्रमसे वेदका पढ़ना ये सब विधिसे यज्ञोपवीतके अनंतरहीकहेहैं तिससे यज्ञोपवीतसे पहिले वेदका उच्चारण न करे १७३ ॥

यद्यस्यविहितंचर्मयत्सूत्रंयाचमेखला । योदण्डोयच्चवसनंतत्तदस्यव्रतेष्वपि १७४॥

प० । यत् यस्य विहितं चर्म यत् सूत्रं या च मेखला यः दण्डः यत् च वसनं तत् तत् अस्य व्रतेषु अपि ॥

यो० । यस्य (ब्रह्मचारिणः) यतचर्म यत्सूत्रं विहितं -याच मेखला (विहिता) यः दण्डः (विहितः) यत् च वसनं (वस्त्रं) विहितं अस्यव्रतेषु अपि तत् तत् (भवति) ॥

भा० । ता० । जिस द्विजाति ब्रह्मचारीका जो२चर्म-सूत्र-मेखला-दंड-और वस्त्र-यज्ञोपवीतमें कहेहैं वे२ही इस ब्रह्मचारीके व्रतों (गोदानादि) में भी करने १७४ ॥

सेवेतेमांस्तुनियमान्ब्रह्मचारीगुरौवसन्।सन्नियम्येन्द्रियग्रामंतपोवृद्ध्यर्थमात्मनः१७५

प० । सेवेत इमान् तु नियमान् ब्रह्मचारी गुरौ वसन् सन्नियम्य इंद्रियग्रामं तपोवृद्ध्यर्थं आत्मनः ॥

यो० । गुरौवसन् ब्रह्मचारी - इंद्रियग्रामं सन्नियम्य आत्मनः तपोवृद्ध्यर्थं इमान् (वक्ष्यमाणान्) नियमान् सेवेत ॥

भा० । ता० । गुरुके समीप वसताहुआ ब्रह्मचारी इंद्रियोंके समूहको रोककर अपने तपकी वृद्धिके लिये इन नियमोंको सेवे अर्थात् करै १७५ ॥

नित्यंस्नात्वाशुचिःकुर्याद्देवर्षिपितृतर्पणम् । देवताभ्यर्चनंचैवसमिदाधानमेवच १७६॥

प० । नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्यात् देवर्षिपितृतर्पणम् देवताभ्यर्चनं च एव समिदाधानं एव च ॥

यो० । स्नात्वा शुचिः सन् देवर्षि पितृतर्पणं चपुनः देवताभ्यर्चनं - चपुनः समिदाधानं - नित्यं एव कुर्यात् ॥

भा० । प्रतिदिन स्नानकर और शुद्धतासे देवता और ऋषियोंकातर्पण-देवताओंका पूजन और दोनोंसमय अग्निहोत्रकरै ॥

ता० । प्रतिदिन स्नानकर शुद्धहोकर देवताऋषि-पितरोंको जलदान और प्रतिमाआदि में शिव और विष्णुआदिकोंका पूजन-और सायंकाल और प्रातःकाल होम-इनको नित्यकरै-और गौतमऋषिने जो ब्रह्मचारीको स्नानका निषेध लिखाहै वह सुख से स्नानका निषेध है क्योंकि इसवचन से[1] बौधायनऋषि ने यहकहा है कि जलों में प्रसन्नहोकर स्नान न करै-और विष्णुने दोनोंकाल स्नान अग्निहोत्र और दण्डकेसमान जलोंमें मज्जन (स्नान) कहाहै१७६॥

वर्जयेन्मधुमांसंचगन्धंमाल्यंरसान्स्त्रियः।शुक्तानियानिसर्वाणिप्राणिनांचैवहिंसनम् १७७

प० । वर्जयेत् मधु मांसं च गंधं माल्यं रसान् स्त्रियः शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां च एव हिंसनम् ॥

यो० । मधु - मांसं - गंधं - माल्यं - रसान - स्त्रियः यानि सर्वाणि शुक्तानि - चपुनः प्राणिनांहिंसनं - (ब्रह्मचारी) वर्जयेत् ॥

भा० । मधु-मांस-गंध-रस-स्त्री-सम्पूर्णशुक्त-और प्राणियों की हिंसा इनको ब्रह्मचारी वर्जदे ॥

---

१ नाप्सुश्लाघमानः स्नायात् ॥

२ कालद्वयमभिषेकाग्निकरणं अप्सुदण्डवन्मज्जनम् ॥

ता० । मधु (सहत) मांस—गंध अर्थात् कपूर चन्दन कस्तूरीआदि की सुगंधोंकालेपन और भक्षण और माल्यफूल रस (गुड़आदि) और स्त्री और सम्पूर्णशुक्र (जो स्वभाव से मीठाहो और कालवशसे खट्टाहोजाय) और प्राणियोंकीहिंसा इनसबको ब्रह्मचारीवर्जदे अर्थात् इनको अपने काम में न लावे १७७ ॥

अभ्यङ्गमञ्जनंचाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम्।कामंक्रोधंचलोभंचनर्त्तनंगीतवादनम् १७८

प० । अभ्यंगं अंजनं च अक्ष्णोः उपानच्छत्रधारणं कामं क्रोधं च लोभं च नर्त्तनं गीतवादनम् ॥

यो० । अभ्यंगं--चपुनः अक्ष्णोः अंजनं--उपानच्छत्रधारणं — कामं--चपुनः क्रोधं — चपुनः लोभं -नर्त्तनं — गीतवादनं ब्रह्मचारी वर्जयेत् ॥

भा० । उबटनासे स्नान—नेत्रोंमें अंजन—उपानह और छत्रीकाधारण—कामना—क्रोध—लोभ-नांचना—गाना और बाजोंका बजाना—इनसबको ब्रह्मचारी वर्जदे ॥

ता० । ब्रह्मचारी इनकोभी वर्जदे कि अभ्यंग (तैलआदि) मलकर शिरसहित स्नानकरना कज्जलआदि से नेत्रोंमें अंजनलगाना—और उपानह (जूता) और छत्रीको धारणकरना—और काम अर्थात् मैथुन से अतिरिक्त विषयोंका परित्याग—क्योंकि मैथुनकानिषेध स्त्रियों के निषेधसे ही सिद्धहै—और क्रोध—और लोभ—और नर्त्तन (नांचना) और गीत (गाना) और वादित्र (बजाना)—अर्थात् इनसबमें चित्त न फँसावे १७८ ॥

द्यूतंचजनवादंचपरिवादंतथानृतम् । स्त्रीणांचप्रेक्षणालम्भमुपघातंपरस्यच १७९ ॥

प० । द्यूतं च जनवादं च परिवादं तथा अनृतं स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भं उपघातं परस्य च ॥

यो० । द्यूतं-- चपुनः जनवादं — परिवादं — तथा अनृतं--चपुनः स्त्रीणांप्रेक्षणालम्भं चपुनः परस्य उपघातं — (ब्रह्मचारी वर्जयेत्) ॥

भा० । ता० । अक्षों (फांसों) से खेलना रूपद्यूत—(जुआ) जनोंके संग कलहपर के दोषों को वृथाकहना—और झूठबोलना—और स्त्रियोंकोदेखना और स्पर्शकरना—और दूसरे का तिरस्कार करना—इनकोभी ब्रह्मचारी सदैव वर्जदे १७९ ॥

एकःशयीतसर्वत्रनरेतःस्कन्दयेत्क्वचित्।कामाद्धिस्कन्दयन्रेतोहिनस्तिव्रतमात्मनः१८०॥

प० । एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कंदयेत् क्वचित् कामात् हि स्कंदयन् रेतः हिनस्ति व्रतं आत्मनः ॥

यो० । (ब्रह्मचारी) सर्वत्र एकः शयीत क्वचित् रेतः न स्कंदयेत्- हि (यतः) कामात् रेतः स्कंदयन् सन् आत्मनः व्रतं हिनस्ति (नाशयति) ॥

भा० । ब्रह्मचारी सबजगे अकेला सोवे—कहींभी वीर्य्यको न गिरावे क्योंकि इच्छासे वीर्य्यको गिराताहुआ अपनेव्रतको नष्टकरताहै ॥

ता० । नीचा आसन और शय्याआदि में सबजगे एक (अकेला) सोवै और अपने वीर्य्यको न गिरावे क्योंकि कामनासे अपनेवीर्य्यको गिराताहुआब्रह्मचारी अपनेव्रतको नष्टकरताहै—यदि दैववशसे वीर्य्यगिरजाय तो अवकीर्णीका प्रायश्चित्तकरै १८० ॥

स्वप्नेसिक्त्वाब्रह्मचारीद्विजःशुक्रमकामतः । स्नात्वार्कमर्चयित्वात्रिःपुनर्मामित्यृचंपठेत्॥

प० । स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रं अकामतः स्नात्वा अर्कं अर्चयित्वा त्रिः पुनः मां इति ऋचं पठेत् ॥

यो० । ब्रह्मचारी द्विजः स्वप्ने अकामतः रेतः सिक्त्वा स्नात्वा अर्कं अर्चयित्वा पुनर्मां इतिऋचं त्रिः पठेत् ॥

भा० । ता० । ब्रह्मचारी द्विज अकाम (विनाजाने) से स्वप्नेके विषय अपनेवीर्य्यको सींचकर—स्नानकरनेके अनंतर चंदन धूपदीप आदिसे सूर्यका पूजनकरके—पुनर्मामैत्विन्द्रियम्—इसऋचा को तीनबारपढ़े—यही इसमें प्रायश्चित्तहै १८१ ॥

उदकुम्भंसुमनसोगोशकृन्मृत्तिकाकुशान् । आहरेद्यावदर्थानिभैक्षंचाहरहश्चरेत् १८२॥

प० । उदकुंभं सुमनसः गोशकृत्मृत्तिकाकुशान् आहरेत् यावदर्थानि भैक्षं च अहःअहः चरेत्॥

यो० । उदकुंभं—सुमनसः गोशकृतमृत्तिकाकुशान्—यावदर्थानि ब्रह्मचारी आहरेत् चपुनः अहरहः भैक्षंचरेत् ॥

भा० । ब्रह्मचारी आचार्यकेलिये जलका घट—फूल—गोबर—मट्टी—कुशा—इनको जितनेचाहें उतनेलावे और प्रतिदिन भिक्षामांगे ॥

ता० । ब्रह्मचारी—आचार्यकेलिये जलकाघट—पुष्प—गोबर—मट्टी—कुशा—इनको जितनों से प्रयोजनहो उतनेलावे इसीसे उदकुंभ इसपदमें एक वचन भी अविवक्षितहै यदि दशजलकेघट चाहिये तो दशहीलावे और यह श्लोकभी एक प्रदर्शनमात्रहै यदि आचार्यके उपयोगी और भी कोई पदार्थहो उसे भी लावे और प्रतिदिन भिक्षाभी मांगे १८२ ॥

वेदयज्ञैरहीनानांप्रशस्तानांस्वकर्मसु । ब्रह्मचार्याहरेद्भैक्षंगृहेभ्यःप्रयतोऽन्वहम् १८३ ॥

प० । वेदयज्ञैःअहीनानां प्रशस्तानां स्वकर्मसु ब्रह्मचारी आहरेत् भैक्षं गृहेभ्यःप्रयतःअन्वहं ॥

यो० । वेदयज्ञैः अहीनानां—स्वकर्मसु प्रशस्तानां गृहेभ्यः प्रयतः ब्रह्मचारी अन्वहं भैक्षं आहरेत् ॥

भा० । ता० । ब्रह्मचारी—वेद और यज्ञोंके करनेवालों और अपनेकर्मोंमें श्रेष्ठोंकेघरोंसे प्रतिदिन जितेंद्रियहोकर सिद्धान्न (बनीःबनाई) की भिक्षालेआवे १८३ ॥

गुरोःकुलेनभिक्षेतनज्ञातिकुलबन्धुषु । अलाभेत्वन्यगेहानांपूर्वंपूर्वंविवर्ज्जयेत् १८४ ॥

प० । गुरोः कुले न भिक्षेत न ज्ञातिकुलबंधुषु अलाभे तु अन्यगेहानां पूर्वं पूर्वं विवर्ज्जयेत् ॥

यो० । ब्रह्मचारी गुरोः कुले—ज्ञातिकुलबंधुषु न भिक्षेत अन्यगेहानां अलाभेतु पूर्वं पूर्वं विवर्ज्जयेत् ॥

भा० । गुरुका कुल—जाति और कुलबंधुओंमें ब्रह्मचारी भिक्षा न मांगे और अन्यघरोंके न मिलनेपर इनमेंसेभी पहिले२को वर्जदे ॥

ता० । ब्रह्मचारी गुरुके कुल और आचार्यके सपिंड और मातुल आदि बंधुओंमें भिक्षा न मांगे और इनघरोंसे अन्य भिक्षाके योग्य घर न मिले तो इनमेंसे पहिले२को वर्जदे अर्थात् प्रथम बंधुओं में भिक्षामांगे—वहां न मिले ज्ञातिमें—और ज्ञातिमें भी न मिले तो गुरुके कुलमें भी भिक्षामांगे १८४ ॥

सर्वंवापिचरेद्ग्रामंपूर्वोक्तानामसंभवे । नियम्यप्रयतोवाचमभिशस्तांस्तुवर्ज्जयेत् १८५

प० । सर्वं वा अपि चरेत् ग्रामं पूर्वोक्तानां असंभवे नियम्य प्रयतः वाचं अभिशस्तान् तु वर्जयेत् ॥

यो० । पूर्वोक्तानां असंभवे प्रयतः (ब्रह्मचारी) वाचं नियम्य सर्वं वा ग्रामं (भैक्षं) चरेत् अभिशस्तान् तुवर्जयेत् ॥

भा० । ता० । पूर्वोक्तवेदपाठी आदिकोंके असंभव (न मिलने) में ब्रह्मचारी सावधान और वाणीको रोककर संपूर्ण ग्राममें भिक्षामांगे परन्तु महापातकियोंको वर्जदे १८५ ॥

दूरादाहृत्यसमिधःसंनिदध्याद्विहायसि । सायंप्रातश्चजुहुयात्ताभिरग्निमतन्द्रितः १८६

प० । दूरात् आहृत्य समिधः संनिदध्यात् विहायसि सायं प्रातः च जुहुयात् ताभिः अग्निं अतंद्रितः ॥

यो० । ब्रह्मचारी दूरात्समिधः आहृत्य विहायसि (आकाशे) संनिदध्यात् — चपुनः अतंद्रितः सन् ताभिः अग्निं सायं प्रातः जुहुयात् ॥

भा० । ता० । दूरदिशाओंसे वृक्षोंकी समिधलाकर आकाशमें अर्थात् पट्टे आदि पर रखदे और उन समिधोंसे सायंकाल और प्रातःकालके समय अग्निमें होमकरै १८६ ॥

अकृत्वाभैक्षचरणमसमिध्यचपावकम् । अनातुरःसप्तरात्रमवकीर्णिव्रतंचरेत् १८७ ॥

प० । अकृत्वा भैक्षचरणं असमिध्य च पावकम् अनातुरः सप्तरात्रं अवकीर्णिव्रतं चरेत् ॥

यो० । अनातुरः (ब्रह्मचारी) भैक्षचरणं अकृत्वा चपुनः पावकं (अग्निं) सप्तरात्रं असमिध्य अवकीर्णिव्रतं चरेत् ॥

भा० । ता० । नीरोग ब्रह्मचारी सातदिनतक भिक्षाटन और अग्निहोत्रको निरंतर न करके व्रतकालोपकरनेवाला होताहै इसीसे अवकीर्णी (लुप्तव्रत) का प्रायश्चित्तकरै १८७ ॥

भैक्षेणवर्तयेन्नित्यंनैकान्नादीभवेद्व्रती । भैक्षेणव्रतिनोवृत्तिरुपवाससमास्मृता १८८ ॥

प० । भैक्षेण वर्तयेत् नित्यं न एकान्नादी भवेत् व्रती भैक्षेण व्रतिनः वृत्तिः उपवाससमा स्मृता ॥

यो० । व्रती नित्यं भैक्षेणवर्तयेत् एकान्नादी न भवेत् — (यतः) व्रतिनः भैक्षेणवृत्तिः उपवाससमा (मुनिभिः) स्मृता ॥

भा० । ता० । व्रतवाला नित्य भिक्षासे जीवे और एकके अन्नका खानेवाला नहो क्योंकि व्रतवाले (ब्रह्मचारी) की भिक्षामें जो वृत्तिहै वह उपवासके समान मुनियोंने कहीहै १८८ ॥

व्रतवद्देवदैवत्येपित्र्येकर्मण्यथर्षिवत् । काममभ्यर्थितोऽश्नीयाद्व्रतमस्यनलुप्यते १८९ ॥

प० । व्रतवत् देवदैवत्ये पित्र्ये कर्मणि अथ ऋषिवत् कामं अभ्यर्थितः अश्नीयात् व्रतं अस्य न लुप्यते ॥

यो० । देवदैवत्ये — अथ च पित्र्ये कर्मणि अभ्यर्थितः (निमंत्रितः) (ब्रह्मचारी) क्रमेण व्रतवत् ऋषिवत् कामं अश्नीयात् — अस्य व्रतं न लुप्यते ॥

भा० । देवता के लिये कर्ममें व्रतकेसमान और पितरोंकेलिये कर्ममें ऋषिकेसमान—निमंत्रित ब्रह्मचारी यथेच्छ भोजनकर भी ले तो इसका व्रत नष्ट नहीं होता ॥

ता० । पहिले निषेधकिये एकके अन्नका यह निषेधहै कि देवता के उद्देशसे कियेहुये कर्म में निमंत्रित (नोताहुआ) ब्रह्मचारी व्रतके समान अर्थात् मधुमांस आदि वर्जित एकके अन्नको भी

यथेच्छ भक्षणकरले—इसीप्रकार पितरोंके उद्देशसे कियेकर्ममें निमंत्रित भी ऋषि अर्थात् सम्यक् ज्ञानी संन्यासी के समान मधु मांस आदि को वर्जकर एक के अन्नको भी यथेच्छ भक्षणकरले तो इसका भिक्षावृत्तिरूप नियम नष्ट नहीं होता—क्योंकि याज्ञवल्क्य ऋषिने भी श्राद्ध के निमंत्रणमें एक का अन्न भक्षण करने योग्य लिखा है कि ब्रह्मचर्य में टिकाहुआ द्विज आपत्ति के विना एक के अन्नको न खाय—और श्राद्ध में अपने व्रतको नष्ट नहीं करता हुआ यथेच्छभोजनकरै—विश्वरूपने तो—व्रतमस्यनलुप्यते इस पद के अनुसार मधु मांस का भक्षण भी कहा है—सो ठीक नहींहै—क्योंकि पहिलेकहेहुये एकान्नके निषेधका यह श्राद्धमें विधानही कहाहै १८९॥

ब्राह्मणस्यैवकर्मैतदुपदिष्टंमनीषिभिः । राजन्यवैश्ययोस्त्वेवंनैतत्कर्मविधीयते १९० ॥

प० । ब्राह्मणस्य एव कर्म एतत् उपदिष्टं मनीषिभिः राजन्यवैश्ययोः तु एवं न एतत् कर्म विधीयते ॥

यो० । मनीषिभिः एतत्कर्म (श्राद्धभोजनं) ब्राह्मणस्यैव उपदिष्टम् राजन्यवैश्ययोस्तु एतत्कर्म एवं न विधीयते ॥

भा० । यह कर्म बुद्धिमानोंने ब्राह्मणोंकाही कहा है और क्षत्रिय और वैश्य का यह कर्म इस रीति से नहीं कहा है ॥

ता० । तीनों द्विजातियोंके ब्रह्मचारियों को भिक्षाटन की विधिके समान श्राद्ध में एकान्न भोजन भी तीनोंको पाया इस श्लोकसे क्षत्रिय वैश्यको निषेध कहतेहैं कि यह एकान्न भोजन रूप कर्म ब्राह्मणकाही बुद्धिमान् ऋषियोंने कहा है और क्षत्रिय और वैश्य का यह कर्म इस रीति से नहीं कहा है १९० ॥

चोदितोगुरुणानित्यमप्रचोदितएववा । कुर्यादध्ययनेयत्नमाचार्य्यस्यहितेषुच १९१ ॥

प० । चोदितः गुरुणा नित्यं अप्रचोदितः एव वा कुर्यात् अध्ययने यत्नम् आचार्यस्य हितेषु च

यो० । गुरुणा चोदितः वा अप्रचोदितएव अध्ययने चपुनः आचार्यस्यहितेषु नित्यं यत्न कुर्यात् ॥

भा० । ता० । गुरुकी प्रेरणा से अथवा नहीं प्रेरणामें अध्ययन और आचार्य के हितों में प्रतिदिन यत्न (उद्योग)—करै १९१ ॥

शरीरंचैववाचंचबुद्धीन्द्रियमनांसिच । नियम्यप्राञ्जलिस्तिष्ठेद्वीक्षमाणोगुरोर्मुखम् १९२

प० । शरीरं च एव वाचं च बुद्धीन्द्रियमनांसि च नियम्य प्रांजलिः तिष्ठेत् वीक्षमाणः गुरोः मुखं ॥

यो० । शरीरं चपुनः वाचं चपुनः बुद्धीन्द्रियमनांसि नियम्य—गुरोः मुखं वीक्षमाणः प्रांजलिः तिष्ठेत् ॥

भा० । ता० । देह— वाणी ज्ञानेंद्रिय और मन इनको रोककर हाथ जोड़े और गुरु के मुख को देखताहुआ खड़ारहै बैठै नहीं १९२ ॥

नित्यमुद्धृतपाणिःस्यात्साध्वाचारःसुसंयतः ॥
आस्यतामितिचोक्तःसन्नासीताभिमुखंगुरोः १९३ ॥

प० । नित्यं उद्धृतपाणिः स्यात् साध्वाचारः सुसंयतः आस्यताम् इति च उक्तः सन् आसीत अभिमुखं गुरोः ॥

यो० । उद्धृतपाणिः साध्वाचारः सुसंयतः नित्यंस्यात् चपुनः (गुरुणा) आस्यताम् इति उक्तः सन् गुरोरभिमुखं (यथास्याचथा) आसीत ॥

भा० । ता० । नित्य निकासा है वस्त्रसे बाहिर पाणि (हाथ) जिसका और साधुआचारणका करनेवाला—और वस्त्रोंसे ढका है देह जिसका ऐसा मनुष्य जब गुरु बैठजाओ ऐसे कहैं तब गुरुके संमुख बैठे—अन्यथा खड़ारहै १९३ ॥

हीनान्नवस्त्रवेषःस्यात्सर्वदागुरुसन्निधौ । उत्तिष्ठेत्प्रथमंचास्यचरमंचैवसंविशेत् १९४ ॥

प० । हीनान्नवस्त्रवेषः स्यात् सर्वदा गुरुसन्निधौ उत्तिष्ठेत् प्रथमं च अस्य चरमं च एव संविशेत् ॥

यो० । गुरुसान्निधौ सर्वदा हीनान्नवस्त्रवेषः स्यात् चपुनः अस्य (गुरोः) प्रथमं उत्तिष्ठेत् चपुनः चरमं संविशेत् ॥

भा० । ता० । सदैव गुरुके समीप हीनहैं अन्न—वस्त्र—वेष—जिसके ऐसा रहै और रात्रिकेशेष में गुरुसे पहिले उठै और प्रदोषकेसमय गुरुके सोनेके पीछे सोवै १९४ ॥

प्रतिश्रवणसंभाषेनशयानःसमाचरेत् । नासीनोनचभुञ्जानोनातिष्ठन्नपराङ्मुखः १९५ ॥

प० । प्रतिश्रवणसंभाषे न शयानः समाचरेत् न आसीनः न च भुंजानः न तिष्ठन् न पराङ्मुखः कुर्यात् ॥

यो० । शयानः-आसीनः चपुनः भुंजानः तिष्ठन्-पराङ्मुखः-ब्रह्मचारी (गुरोः) प्रतिश्रवणसंभाषे न कुर्यात्-एतद्विपरीतएव कुर्यादितिभावः ॥

भा० । ता० । गुरुकी आज्ञाका स्वीकार और गुरुके संग भाषण (वार्तालाप) शय्यामें सोता—आसनपर बैठा—भोजनकरता—और खड़ाहुआ न करै १९५ ॥

आसीनस्यस्थितःकुर्यादभिगच्छंस्तुतिष्ठतः ॥
प्रत्युद्गम्यत्वाव्रजतःपश्चाद्धावंस्तुधावतः १९६ ॥

प० । आसीनस्य स्थितः कुर्यात् अभिगच्छन् तु तिष्ठतः प्रत्युद्गम्य तु आव्रजतः पश्चात् धावन् तु धावतः ॥

यो० । आसीनस्य (गुरोः) स्थितः—तिष्ठतः अभिगच्छन्—आव्रजतः प्रत्युद्गम्य—धावतः पश्चात् धावन् सन् (ब्रह्मचारी प्रतिश्रवणसंभाषे) कुर्यात् ॥

भा० । बैठेहुये गुरुको खड़ाहोकर—खड़ेहुये गुरुके संमुख जाकर—आतेहुये के संमुख होकर—और दौड़ते हुयेके पीछे दौड़कर—आज्ञा का ग्रहण और वार्त्तालाप करै ॥

ता० । जिसप्रकार गुरुके संग प्रति श्रवण और संभाषण करै वह प्रकार कहतेहैं कि यदि गुरु आसनपर बैठेहुये आज्ञादें तो आप आसनसे उठकर—और यदि खड़ेहुये आज्ञादें तो उनके सन्मुख दो चार पैर चलकर—और कहीं से आतेहुये गुरु आज्ञादें तो गुरुके संमुख जाकर—और यदि धावन (दौड़ना) करतेहुये आज्ञादें तो गुरुके पीछे दौड़कर प्रतिश्रवण और संभाषणकरै अर्थात् गुरुकी आज्ञा का पालन और वार्त्तालाप करै १९६ ॥

पराङ्मुखस्याभिमुखोदूरस्थस्यैत्यचान्तिकम् । प्रणम्यतुशयानस्यनिदेशेचैवतिष्ठतः १९७

प० । पराङ्मुखस्य अभिमुखः दूरस्थस्य एत्य च अंतिकम् प्रणम्य तु शयानस्य निदेशे च एव तिष्ठतः ॥

यो० । पराङ्मुखस्य (गुरोः) अभिमुखः सन् — दूरस्थस्य अंतिकं एत्य — तुपुनः शयानस्य प्रणम्य — चपुनः तिष्ठतः निदेशे — (प्रतिश्रवणसंभाषे कुर्यात्) ॥

भा० । पराङ्मुखगुरुके सन्मुख जाकर—दूरदेशमें बैठे गुरुके समीप जाकर—और सोते और समीप बैठे हुये गुरुको नमस्कारकरके आज्ञाका स्वीकार और संभाषण करे ॥

ता० । पराङ्मुख गुरुके संमुखजाकर—दूरटिकेहुये गुरुके समीप जाकर—सोतेहुये गुरुको और अपने निकटबैठेहुये गुरुकोनम्रतासे नमस्कारकरके—आज्ञाका अंगीकार और संभाषणकरे १९७॥

नीचंशय्यासनंचास्यसर्वदागुरुसन्निधौ । गुरोस्तुचक्षुर्विषयेनयथेष्टासनोभवेत् १९८॥

प० । नीचं शय्यासनं च अस्य सर्वदा गुरुसंनिधौ गुरोः तु चक्षुर्विषये न यथेष्टासनः भवेत् ॥

यो० । अस्य (ब्रह्मचारिणः) गुरुसंनिधौ सर्वदा शय्यासनं नीचं भवेत्—तुपुनः (असौ ब्रह्मचारी) गुरोः चक्षुर्विषये यथेष्टासनः नभवेत् ॥

भा० ता० । इसब्रह्मचारीकाशय्या और आसन गुरुके समीप सदैव नीचेहोनेचाहिये—और यह ब्रह्मचारी गुरुके नेत्रोंके आगे यथेष्ट आसन न हो अर्थात् अपने पैर आदि को फैलाकर न बैठे १९८ ॥

नोदाहरेदस्यनामपरोक्षमपिकेवलम् । नचैवास्यानुकुर्वीतगतिभाषितचेष्टितम् १९९॥

प० । न उदाहरेत् अस्य नाम परोक्षं अपि केवलं न च एवं अस्य अनुकुर्वीत गतिभाषितचेष्टितम् ॥

यो० । अस्य (गुरोः) परोक्षं अपि केवलं नाम न उदाहरेत् — चपुनः अस्य गतिभाषितचेष्टितं नैव अनुकुर्वीत ॥

भा० । पीछे भी गुरुका खाली नाम न ले—और गुरुके गमन—भाषण चेष्टा—इनका हँसी के लिये अनुकरण न करे अर्थात् गुरुके गमन आदिके समान गमन आदि न करे ॥

ता० । इस गुरुका नाम—गुरुके पीछे भी केवल अर्थात् उपाध्याय आचार्य आदि पूजा के बोधक शब्दों से शून्य न ले—और गुरुकेगमन—भाषण और चेष्टाओंका अनुकरण न करे अर्थात् हँसी की बुद्धिसे न करे १९९ ॥

गुरोर्यत्रपरीवादोनिन्दावापिप्रवर्तते । कर्णौतत्रपिधातव्यौगन्तव्यंवाततोऽन्यतः २००

प० । गुरोः यत्र परीवादः निंदा वा अपि प्रवर्त्तते कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गंतव्यं वा ततः अन्यतः ॥

यो० । यत्र गुरोः परीवादः वा निंदा अपि प्रवर्त्तते तत्र कर्णौ पिधातव्यौ — वा ततः अन्यतः गंतव्यम् ॥

भा० । जहां गुरुका परीवाद वा निंदा हो वहां कानों को ढकले अथवा वहां से अन्यत्र चलाजाय ॥

ता० । जिसजगे गुरुका परीवाद (विद्यमानदोषों का कथन)हो अथवा निंदा (अविद्यमान दोषोंका कथन) हो—उस देश में बैठाहुआ शिष्य अपने हाथोंसे अपने कानों कोढकले—अथवा उस देश से दूसरे देशमें चलाजाय अर्थात् गुरुके परीवाद और निन्दा न सुने २०० ॥

परीवादात्खरोभवतिश्वावैभवतिनिन्दकः।परिभोक्ताकृमिर्भवतिकीटोभवतिमत्सरी२०१

प० । परीवादात् खरः भवति श्वा वै भवति निंदकः परिभोक्ता कृमिः भवति कीटः भवति मत्सरी ॥

यो० । (शिष्यः गुरोः) परीवादात् खरोभवति – निन्दकः श्वाभवति – परिभोक्ता कृमिःभवति मत्सरीकीटोभवति ॥

भा० । गुरुके परीवाद से गधा–निन्दा से कुत्ता–गुरु के अनुचित धन खाने से कृमि–और मत्सरतासे कीट होता है ॥

ता० । अब शिष्यकेकियेहुये जो गुरुके परीवादआदिका फलकहतेहैं कि गुरुके परीवादकरनेसे शिष्यमरकर खर–और निन्दाकरनेवाला शिष्य श्वा(कुत्ता)-और परिभोक्ता (जो गुरुकेअनुचित धन को भोगे) शिष्य कृमि–और मत्सरी (जो गुरुकी बड़ाईको न सहे) कीट अर्थात् कृमि से बड़ाकीड़ा–होताहै इससे स्वयं भी शिष्य गुरुके परीवाद आदि को न करे २०१ ॥

दूरस्थोनार्चयेदेनंनक्रुद्धोनान्तिकेस्त्रियाः । यानासनस्थश्चैवैनमवरुह्याभिवादयेत् २०२

प० । दूरस्थः न अर्चयेत् एनं न क्रुद्धः न अंतिके स्त्रियाः यानासनस्थः च एव एनं अवरुह्य अभिवादयेत् ॥

यो० । दूरस्थः – क्रुद्धः – स्त्रियाः अंतिके एनं (गुरुं शिष्यः) न अर्चयेत् चपुनः यानासनस्थः (शिष्यः) एनं (गुरुं) अवरुह्य अभिवादयेत् –(नमस्कुर्यात्) ॥

भा० । दूरमेंस्थित और क्रोधहोकर–शिष्य,गुरुको न पूजे स्त्रीकेसमीप बैठेहुये गुरुको–न पूजे–और यान और आसनपर बैठाहुआ शिष्य उतरकर गुरुको नमस्कारकरे ॥

ता० । दूरदेश में टिकाहुआ शिष्य–किसीदूसरे मनुष्यके द्वारा गुरुकीपूजा न करे यदि आप चलनेमें असमर्थहोय तो कुछदोषनहीं है और क्रोधहोकर न पूजे और स्त्रीकेसमीप बैठेहुये गुरु कोभी न पूजे और स्वयं यान (सवारी) और आसनपरबैठाहुआ शिष्य नीचे उतरकर गुरुको नमस्कारकरे–पहियान और आसनपर बैठेहुयेको उठकर नमस्कारकहा–और इसमें यानऔर आसनकात्याग कहाहै–इससे पुनरुक्ति दोषनहींहै २०२ ॥

प्रतिवातेऽनुवातेचनासीतगुरुणासह । असंश्रवेचैवगुरोर्नकिंचिदपिकीर्त्तयेत् २०३ ॥

प० । प्रतिवाते अनुवाते च न आसीत गुरुणा सह असंश्रवे च एव गुरोः न किंचित् अपि कीर्त्तयेत् ॥

यो० । प्रतिवाते चपुनः अनुवाते – गुरुणा सह न नासीत चपुनः गुरोः असंश्रवे किंचित् अपि न कीर्त्तयेत् ॥

भा० । प्रतिवात और अनुवातमें गुरुकेसंग न बैठे और जहां गुरु न सुनतेहों वहांकुछनकहे ॥

ता० । प्रतिवात (गुरुके बैठनेके देश से शिष्यकेदेशको पवनके आतेसमय) में और अनुवात (जो शिष्य के देशसे गुरुकेदेशको आताहो) में गुरुके संग न बैठे और जहांगुरु न सुनते हों वहां गुरु अथवा अन्यकी बात न कहे २०३ ॥

गोऽश्वोष्ट्रयानप्रासादस्रस्तरेषुकटेषुच । आसीतगुरुणासार्द्धंशिलाफलकनौषुच २०४ ॥

प० । गोऽश्वोष्ट्रयानप्रासादस्रस्तरेषु कटेषु च आसीत गुरुणा सार्द्धं शिलाफलकनौषु च ॥

यो० । गोऽश्वोष्ट्रयानप्रासादप्रस्तरेषु — चपुनः कटेषु — चपुनः शिलाफलकनौषु गुरुणा सार्द्धं आसीत (तिष्ठेत्) ॥

भा० । ता० । बैल—घोड़ा—ऊंट ये जिसयान में जुतेहों उनमें और प्रासाद (मकान) के ऊपर बिछीचटाई पर—और शिला—और काठकापट्टा और नाव—में गुरुकेसंग बैठजाय २०४ ॥

गुरोर्गुरौसन्निहितेगुरुवद्वृत्तिमाचरेत्। नचातिसृष्टोगुरुणास्वान्गुरूनभिवादयेत् २०५॥

प० । गुरोः गुरौ संन्निहिते गुरुवत् वृत्तिं आचरेत् नं चं अतिसृष्टः गुरुणा स्वान् गुरून् अभिवादयेत् ॥

यो० । गुरोः गुरौ सन्निहिते सति गुरुवद्वृत्तिं आचरेत् — चपुनः गुरुणा अतिसृष्टः (अनियुक्तः) स्वान् गुरून् (मातृपित्रादीन्) न अभिवादयेत् ॥

भा० । आचार्य के आचार्य समीपहोंय तो उनमें भी आचार्यके समान वर्तावकरै—और गुरु के यहां बसताहुआ गुरुकेकहेविना अपने माता पिता चाचा—गुरुओंको प्रणाम न करै ॥

ता० । गुरुके गुरु संनिहित (समीप में) होंय तो उनमें गुरुके समान वर्तावकरै अर्थात् नमस्कारआदि करै—और गुरुकेघर बसताहुआ ब्रह्मचारी गुरुकी आज्ञा के विना अपने माता और पिता चाचाआदि गुरुओंको नमस्कार न करै किन्तु गुरुकीआज्ञासे करै २०५ ॥

विद्यागुरुष्वेतदेवनित्यावृत्तिःस्वयोनिषु।प्रतिषेधत्सुचाधर्मान्धर्मंचोपदिशत्स्वपि२०६॥

प० । विद्यागुरुषु एतत् एवं नित्या वृत्तिः स्वयोनिषु प्रतिषेधत्सु चं अधर्मान् धर्मं चं उपदिशत्सु अपि ॥

यो० । विद्यागुरुषु एतत् एव (वर्तनं विधेयं) स्वयोनिषु अधर्मान् प्रतिषेधत्सु — चपुनः धर्मं उपदिशत्सु अपि (एषा) वृत्तिः नित्या (ब्रह्मचारिणाविधेया) ॥

भा० । विद्याके पढ़ानेवाले और अपने चाचाआदि—और अधर्म से मनेकरनेवाले और धर्म का उपदेशकरनेवाले इनमें गुरुके समान वृत्तिरक्खनी ॥

ता० । आचार्यसे अन्य जो पढ़ानेवाले विद्यागुरु—और अपनीयोनि पितृव्य (चाचा) आदि-अधर्मसे निषेधकरनेवाले और धर्मको उपदेशकरनेवाले जो हैं इनसबमें गुरुके समान वर्ताव करना—अर्थात् नमस्कारआदि करने २०६ ॥

श्रेयस्सुगुरुवद्वृत्तिंनित्यमेवसमाचरेत्। गुरुपुत्रेषुचार्येषुगुरोश्चैवस्वबन्धुषु २०७॥

प० । श्रेयस्सु गुरुवत् वृत्तिं नित्यं एवं समाचरेत् गुरुपुत्रेषु चं आर्येषु गुरोः चं एवं स्वबंधुषु ॥

यो० । श्रेयस्सु — चपुनः आर्येषु गुरुपुत्रेषु — चपुनः गुरोः स्वबंधुषु नित्यंएव गुरुवद्वृत्तिं समाचरेत् ॥

भा० । विद्याआदिसेबड़े और सज्जनगुरुकेपुत्र—और गुरुकेबंधु—इनमें गुरुकेसमानवृत्ति—करै ॥

ता० । विद्या और तप में जो बड़ेहों—उनमें और आर्यगुरुकेपुत्रों—और गुरुकेबंधु (पितृव्य-आदि) ओं—में गुरु के समान नमस्कारआदि व्यवहारकरै—और शिष्य से बड़ा जो गुरुकापुत्र वही इसश्लोक में समझना क्योंकि शिष्य, बालक समान अवस्थावाला इनके पीछे शिष्य को आगे कहेंगे २०७ ॥

बालःसमानजन्मावाशिष्योवायज्ञकर्मणि। अध्यापयन्गुरुसुतोगुरुवन्मानमर्हति २०८॥

प०। बालः समानजन्मा वा शिष्यः वा यज्ञकर्मणि अध्यापयन् गुरुसुतः गुरुवत् मानं अर्हति॥

यो० । बालः समानजन्मा वा शिष्यःयज्ञकर्मणि--अध्यापयन् गुरुसुतः गुरुवतमानं अर्हति--पूजनयोग्योभवतीत्यर्थः ॥

भा० । छोटा--वा बराबर--शिष्य अथवा गुरुका पुत्र जो पढ़ाताहो वह भी गुरुके समान पूजाके योग्यहै ॥

ता० । बालक (छोटा) अथवा समान अवस्थावाला--शिष्य--वेदके पढ़ानेमें समर्थ गुरुका पुत्र यज्ञकेकर्ममें आयाहुआ ऋत्विजहो वा नहो तो भी गुरुके समान पूजाकेयोग्यहोताहै तात्पर्यहहै--गुरुके समानही उससे वर्तावकरै--२०८ ॥

उत्सादनंचगात्राणांस्नापनोच्छिष्टभोजने।नकुर्याद्गुरुपुत्रस्यपादयोश्चावनेजनम् २०९

प० । उत्सादनं च गात्राणां स्नापनोच्छिष्टभोजने न कुर्यात् गुरुपुत्रस्य पादयोः च अवनेजनम् ॥

यो० । गुरुपुत्रस्य गात्राणां उत्सादनं -- स्नापनोच्छिष्टभोजने -- चपुनः पादयोः अवनेजनं -- न कुर्यात ॥

भा० । ता० । सब पूजापाई इससे गुरुपुत्रकी पूजामें ये नकरै कि गात्रोंका उबटना--स्नान कराना--उच्छिष्टभोजन--और चरणोंका धोना--इतनेकाम गुरुपुत्रके न करै २०९ ॥

गुरुवत्प्रतिपूज्याःस्युःसवर्णागुरुयोषितः। असवर्णास्तुसंपूज्याःप्रत्युत्थानाभिवादनैः२१०

प०। गुरुवत् प्रतिपूज्याः स्युः सवर्णाः गुरुयोषितः असवर्णाः तु संपूज्याः प्रत्युत्थानाभिवादनैः॥

यो० । सवर्णाः गुरुयोषितः गुरुवत प्रतिपूज्याः स्युः असवर्णास्तु प्रत्युत्थानाभिवादनैः संपूज्याः स्युः ॥

भा० । ता० । सवर्ण (सजातीय) गुरुकी पत्नी गुरुके समानही पूजनीचाहिये और असवर्ण (भिन्नजातिकी) गुरुकी पत्नी प्रत्युत्थान (देखकरउठना) और नमस्कारसे पूजाके योग्य होतीहै २१० ॥

अभ्यञ्जनंस्नापनंचगात्रोत्सादनमेवच। गुरुपत्न्यानकार्याणिकेशानांचप्रसाधनम् २११॥

प० । अभ्यंजनं स्नापनं च गात्रोत्सादनं एव च गुरुपत्न्याः न कार्याणि केशानां च प्रसाधनम् ॥

यो० । अभ्यंजनं -- चपुनः स्नापन -- चपुनः गात्रोत्सादनं -चपुनः केशानां प्रसाधनं (इमानि) गुरुपत्न्याः न कार्याणि -- कर्तुमयोग्यानीत्यर्थः ॥

भा० । देहका अभ्यंग--नहलाना--गात्रपर उबटना केशों और देहमें सुगंधलगाना ये काम गुरुकी पत्नीके न करै ॥

ता० । तैल आदिसे देहका अभ्यंग--स्नानकराना--गात्रोंका उद्वर्त्तन (उबटना) केशों का प्रसाधन (माला आदि पहिनाना) इतने काम और देहपर चंदन आदिका लेप गुरुकी पत्नीके शिष्य न करै २११ ॥

गुरुपत्नीतुयुवतिर्नाभिवाद्येहपादयोः । पूर्णविंशतिवर्षेणगुणदोषौविजानता २१२ ॥

प० । गुरुपत्नी तु युवतिः न अभिवाद्या इह पादयोः पूर्णविंशतिवर्षेण गुणदोषौ विजानता ॥

यो० । पूर्णविंशतिवर्षेण गुणदोषौ विजानता शिष्येण युवतिः गुरुपत्नी पादयोः इह (जगति) न अभिवाद्या--चरणं प्रगृह्य न नमस्कार्येत्यर्थः ॥

भा० । पूरे बीसवर्षका और गुण दोषजाननेवाला शिष्य जवान, गुरुकी स्त्रीको चरणों का स्पर्शकरके नमस्कार न करै ॥

ता० । युवति (जवान) गुरुकी पत्नीको पूरे बीसवर्षका और गुण दोषोंको जाननेवाला शिष्यको चरणोंमें स्पर्शकरके नमस्कार न करै अर्थात् दूरसेही प्रणाम आदिकरै पूर्णविंश वर्ष का कहना यौवन अवस्था दिखानेकेलियेहै—क्योंकि बालकको चरणोंका स्पर्शकरके नमस्कारका निषेधनहींहै—और युवाको भूमिमें पड़कर नमस्कारकरना आगे कहेंगे २१२ ॥

स्वभावएषनारीणांनराणामिहदूषणम्।अतोऽर्थान्नप्रमाद्यन्तिप्रमदासुविपश्चितः२१३॥

प० । स्वभावः एषः नारीणां नराणांइहँ दूषणं अतः अर्थात् नँ प्रमाद्यंति प्रमदासु विपश्चितः॥

यो० । यत् इह पुरुषाणां दूषणं एष नारीणां स्वभावः (भवति) अतः अर्थात् (अस्माद्धेतोः) विपश्चितः प्रमदासु न प्रमाद्यंति (प्रमत्ता न भवंति) ॥

भा० । ता० । इस जगत्में स्त्रियोंका यह स्वभावहोताहै कि अपनी शृंगार आदिकी चेष्टासे पुरुषोंको मोहितकरके दूषितकरना—इससे पण्डितजन स्त्रियोंके विषय उन्मत्त नहींहोतेहैं अर्थात् सावधानरहतेहैं २१३ ॥

अविद्वांसमलंलोकेविद्वांसमपिवापुनः । प्रमदाउत्पथंनेतुंकामक्रोधवशानुगम् २१४ ॥

प० । अविद्वांसं अलं लोके विद्वांसं अपि वा पुनः प्रमदाः उत्पथं नेतुं कामक्रोधवशानुगं ॥

यो० । प्रमदाः (स्त्रियः) अविद्वांसं वा पुनः विद्वांसं अपि कामक्रोधवशानुगं पुरुषं उत्पथंनेतुं लोके अलं — समर्थाः इत्यर्थः ॥

भा० । इसजगत में मूर्खको अथवा काम क्रोध के वशीभूत पंडितको स्त्री कुमार्ग में लेजाने को समर्थहैं—इससे जितेन्द्रिय की बुद्धिसे स्त्रियों के समीप न बैठे ॥

ता० । अविद्वान् (मूर्ख) को अथवा काम और क्रोधके वशीभूत विद्वान (पंडित)को—इस लोकमें प्रमदा (स्त्री) उत्पथ (कुमार्ग) में लेजानेको समर्थहै—इससे मैं विद्वान् वा जितेंद्रिय हूं इस बुद्धिसे स्त्रियोंकी संनिधि न करै २१४ ॥

मात्रास्वस्रादुहित्रावानविविक्तासनोभवेत्।बलवानिन्द्रियग्रामोविद्वांसमपिकर्षति२१५॥

प० । मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनः भवेत् बलवान् इन्द्रियग्रामः विद्वांसं अपि कर्षति ॥

यो० । (यतः) बलवान इन्द्रियग्रामः विद्वांसं अपि कर्षति (परवशंकरोति) अतः (पुरुषः) मात्रा—स्वस्रा—वा दुहित्रा — सह विविक्तासनः (एकांतः स्थितः) न भवेत ॥

भा० । ता० । माता—वहिन—लड़की इनके संगभी एकान्तमें न बैठे क्योंकि प्रबल इन्द्रियों का समूह विद्वान्को वशमें करलेताहै २१५ ॥

कामंतुगुरुपत्नीनांयुवतीनांयुवाभुवि । विधिवद्वन्दनंकुर्यादसावहमितिब्रुवन् २१६ ॥

प० । कामं तु गुरुपत्नीनां युवतीनां युवा भुवि विधिवत् वंदनं कुर्यात् असौ अहं इति ब्रुवन् ॥

यो० । युवा शिष्यः युवतीनां गुरुपत्नीनां असौ अहं इतिब्रुवन् सन् कामं विधिवद्वंदनं भुवि कुर्यात् ॥

भा० । ता० । जवान शिष्य युवति (जवान) गुरुकी पत्नियों को यह मैंहूं ऐसे कहताहुआ पृथिवीमें पड़कर विधिसे नमस्कार करै २१६ ॥

विप्रोष्यपादग्रहणमन्वहंचाभिवादनम् । गुरुदारेषुकुर्वीतसतांधर्ममनुस्मरन् २१७ ॥

प० । विप्रोष्य पादग्रहणं अन्वहं च अभिवादनं गुरुदारेषु कुर्वीत सतां धर्मं अनुस्मरन् ॥

यो० । (शिष्यः) सतां धर्मं अनुस्मरन् सन् गुरुदारेषु विप्रोष्य पादग्रहणं चपुनः अन्वहं अभिवादनं कुर्वीत ॥

भा० । सत्पुरुषोंके धर्मको स्मरण करताहुआ शिष्य परदेशसे आकर तो गुरुपत्नियोंका पाद-ग्रहण और प्रतिदिन नमस्कार करै ॥

ता० । प्रवास (परदेश) से आकर पूर्वोक्तविधि से अर्थात् दाहिने हाथसे दाहिने चरण और वाम हाथसे वामचरण का स्पर्श—और प्रतिदिन भूमिमें नमस्कार करै—यह शिष्टों का आचरण है हे मुनियो तुम यह जानो २१७॥

यथाखनन्खनित्रेणनरोवार्य्यधिगच्छति । तथागुरुगतांविद्यांशुश्रूषुरधिगच्छति २१८ ॥

प० । यथा खनन् खनित्रेण नरः वारि अधिगच्छति तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुः अधिगच्छति ॥

यो० । यथा नरः खनित्रेण खनन् सन वारि अधिगच्छति—तथा शुश्रूषुः (शिष्यः) गुरुगतां विद्यां अधिगच्छति (प्राप्नोति) ॥

भा० । ता० । गुरुकी सेवाका यहफलहै कि जैसे मनुष्य खनित्र (फावला) से खोदताहुआ जल को प्राप्तहोताहै तिसीप्रकार गुरुकी सेवा करताहुआ मनुष्य गुरुकी विद्याको प्राप्तहोताहै २१८॥

मुण्डोवाजटिलोवास्यादथवास्याच्छिखाजटः ॥
नैनंग्रामेऽभिनिम्लोचेत्सूर्योनाभ्युदियात्क्वचित् २१९ ॥

प० । मुण्डः वा जटिलः वा स्यात् अथ वा स्यात् शिखाजटः न एनं ग्रामे अभिनिम्लोचेत् सूर्यः न अभ्युदियात् क्वचित् ॥

यो० । (ब्रह्मचारी) मुण्डः वा जटिलः अथवा शिखाजटः स्यात्—एनं ग्रामे क्वचित् सूर्यः न अभिनिम्लोचेत्—न अस्तं इयात्- शयानं इतिशेषः ॥

भा० । मुण्ड—वा जटिल— वा शिखाही जिसकी जटाहो ऐसा ब्रह्मचारी रहै और इस ब्रह्म-चारीको कभी भी ग्राममें सूर्य न छिपै और न निकले ॥

ता० । ब्रह्मचारी के तीन भेद कहतेहैं कि ब्रह्मचारी सब माथेको मुंडारक्खै अथवा सब म-स्तकपर जटारक्खै—अथवा शिखाही को जटारक्खै अर्थात् शिरके केशोंको शिखाको छोड़कर मुंडालियाकरै—और सोतेहुये ब्रह्मचारीको कभी भी ग्राममें सूर्य न छिपै और न उदयहो—अर्थात् सूर्य के अस्तोदय के समय में न सोवै २१९ ॥

तंचेदभ्युदियात्सूर्यःशयानंकामचारतः । निम्लोचेद्वाप्यविज्ञानाज्जपन्नुपवसेद्दिनम् २२०

प० । तं चेत् अभ्युदियात् सूर्यः शयानं कामचारतः निम्लोचेत् वा अपि अविज्ञानात् जपन् उपवसेत् दिनम् ॥

यो० । चेत् (यदि) कामचारतः शयानं सूर्यः अभ्युदियात् वा अविज्ञानात् निम्लोचेत अपि (तर्हिगायत्रीं) जपन् सन् दिनं उपवसेत ॥

भा० । यदि यथेच्छ सोते हुये ब्रह्मचारी को सूर्योदय होजाय वा अस्त होजाय तो गायत्री को जपताहुआ एकदिन उपवासकरै और रात्रिमेंही भोजन करै ॥

ता० । पूर्व श्लोकमें कहेहुये दोषका प्रायश्चित्त कहतेहैं कि अपनी इच्छासे सोतेहुये उस ब्रह्मचारी यदि कभी सूर्य उदयहोजाय अथवा अस्तहोजाय तो गायत्री का जपताहुआ एकदिन उपवासकरै अर्थात् रात्रिमें भोजनकरै इसमें यह गौतमऋषि का वचनभी प्रमाण है कि यदि ब्रह्मचारी सूर्योदयपर सोतारहै तो दिनभर भोजन न करै और अस्तके समय सोतारहै तो रात्रि को गायत्री का जप करतारहै—यद्यपि इस पूर्वोक्त गौतमके वचनसे सूर्योदयपर सोतेहुये ब्रह्मचारी दिनमें और अस्त के समय सोतेहुये को रात्रि में भोजन का त्याग और जपकरने कहेहैं इससे अन्यमुनियों को मनुके प्रकट अर्थको अन्यथा नहींकरसक्तेहैं इसीसे गौतमऋषिके वचन की सम्मतिमें गायत्री का जप तो लेतेहैं और मनुके कहेहुये दिनका उपवास और जपको दूर नहीं करते हैं तिससे अस्तके समय सोतेहुए को मनुके मतसे दिनमें उपवास और जप और गौतम के मतसे रात्रिमें जप और उपवास कहे हैं इस प्रायश्चित्तका विकल्प समझना—अर्थात् कोईसा प्रायश्चित्तकरै २२० ॥

सूर्येणह्यभिनिर्मुक्तःशयानोऽभ्युदितश्चयः । प्रायश्चित्तमकुर्वाणोयुक्तःस्यान्महतैनसा २२१

प० । सूर्येण हि अभिनिर्मुक्तः शयानः अभ्युदितः च यः प्रायश्चित्तं अकुर्वाणः युक्तः स्यात् महता एनसा ॥

यो० । यः (ब्रह्मचारी) शयानः सूर्येण अभिनिर्मुक्तः पुनः अभ्युदितः—प्रायश्चित्तं अकुर्वाणः सः महता एनसा युक्तः स्यात् ॥

भा० । सूर्य के अस्त अथवा उदय पर जो सोताहुआ ब्रह्मचारी प्रायश्चित्त को नहींकरता वह महान् पापसे युक्त होता है और अतएव नरकमें जाता है ॥

ता० । जो ब्रह्मचारी सूर्य के अस्त अथवा उदय के समय सोता रहता है—प्रायश्चित्त को नहीं करता हुआ वह ब्रह्मचारी महान् पापसेयुक्त होताहै और नरकमें जाताहै तिससे श्लोक्त प्रायश्चित्त करै क्योंकि वे दोनों समय संध्या के हैं और संध्या के अवलंघन में महान् पाप होताहै २२१ ॥

आचम्यप्रयतोनित्यमुभेसंध्येसमाहितः । शुचौदेशेजपञ्जप्यमुपासीतयथाविधि २२२॥

प० । आचम्य प्रयतः नित्यं उभे संध्ये समाहितः शुचौ देशे जपन् जप्यं उपासीत यथाविधि ॥

---

१ सूर्याभ्युदितो ब्रह्मचारीतिष्ठेत् अहरभुञ्जानोऽभ्यस्तमितश्चरात्रिंजपन्सावित्रीम् ॥

यो० । प्रयतः समाहितः (ब्रह्मचारी) आचम्य शुचौ देशे जप्यं (गायत्रीं) यथा विधि जपन् सन् उभे संध्ये उपासीत ॥

भा० । ता० । पवित्र और सावधान हुआ ब्रह्मचारी आचमन करके शास्त्रोक्त विधिसे गायत्री को जपता हुआ दोनों संध्याओं की उपासनाकरे २२२ ॥

यदिस्त्रीयद्यवरजःश्रेयःकिंचित्समाचरेत् । तत्सर्वमाचरेद्युक्तोयत्रवास्यरमेन्मनः २२३ ॥

प० । यदि स्त्री यदि अवरजः श्रेयः किंचित् समाचरेत् तत् सर्वं आचरेत् युक्तः यत्र वा अस्य रमेत् मनः ॥

यो० । यदि स्त्री — यदि अवरजः (शूद्रः) किंचित् श्रेयः समाचरेत् तत्सर्वं युक्तः वा यत्र अस्य मनः रमेत तत् युक्तः सन् समाचरेत् ॥

भा० । ता० । स्त्री अथवा शूद्र जिसश्रेय (कल्याण)को करतेहैं उस सबको अथवा जिसमें इस का मनरमे शास्त्रविहित उसकर्म को भी युक्त (सावधान) होकर करे २२३ ॥

धर्मार्थावुच्यतेश्रेयःकामार्थौधर्मएवच । अर्थएवेहवाश्रेयस्त्रिवर्गइतितुस्थितिः २२४ ॥

प० । धर्मार्थौ उच्यते श्रेयः कामार्थौ धर्मः एव च अर्थः एव इह वा श्रेयः त्रिवर्गः इति तु स्थितिः ॥

यो० । धर्मार्थौ श्रेयः उच्यते — कामार्थौ — चएव धर्मः एव — वा इह अर्थ एव — श्रेयः (इति केचन आचार्याः मन्यंते) त्रिवर्गः (धर्म अर्थ कामाः) श्रेयः इति तु स्थितिः (सिद्धांतः) ॥

भा० । कोई आचार्य धर्म अर्थ को—कोई कामअर्थ को—कोई धर्महीको—और कोई अर्थही को श्रेय कहते हैं और स्थिति (सिद्धान्त) यह है कि त्रिवर्ग (धर्म अर्थ काम) ही श्रेयहै ॥

ता० । कोई आचार्य यह मानते हैं कि कामना के कारण होने से धर्म और अर्थ को ही श्रेय (कल्याण) कहते हैं—कोई यह मानते हैं कि सुख के कारण होने से अर्थ और काम को ही श्रेय कहतेहैं—और कोई यह मानते हैं कि अर्थ और कामका भी उपाय होने से धर्म को ही कारण कहते हैं—और कोई यह मानते हैं कि धर्म और कामका हेतु होने से अर्थ (धन) को ही श्रेय कहते हैं—और हमारी (मनका) तो यह स्थिति (मत) है कि परस्पर अविरुद्ध त्रिवर्ग (धर्म अर्थ काम) ही को श्रेय कहतेहैं—यह उपदेश बुभुक्षुओं के प्रतिहीहै अर्थात् भोग की इच्छावालोंको है और मुमुक्षुओं के प्रति नहीं है २२४ ॥

आचार्योब्रह्मणोमूर्त्तिःपितामूर्त्तिःप्रजापतेः ॥
मातापृथिव्यामूर्त्तिस्तुभ्रातास्वोमूर्त्तिरात्मनः २२५ ॥

प० । आचार्यः ब्रह्मणः मूर्त्तिः पिता मूर्त्तिः प्रजापतेः माता पृथिव्याः मूर्त्तिः तु भ्राता स्वः मूर्त्तिः आत्मनः ॥

यो० । आचार्यः ब्रह्मणः मूर्त्तिः (अस्ति) पिता प्रजापतेः मूर्त्तिः — माता पृथिव्याः मूर्त्तिः — स्वः भ्राता आत्मनः मूर्त्तिः — अस्तीति सर्वत्रयोज्यं ॥

भा० । ता० । आचार्य वेदान्तमें कहेहुये ब्रह्मकी मूर्त्ति (शरीर) है—पिता प्रजापतिकी मूर्त्ति—माता पृथिवी की मूर्त्ति—अपनाभाई आत्मा (जीव)की मूर्त्ति है—इससे देवतारूप इनका कभी भी अपमान न करना चाहिये २२५ ॥

आचार्यश्चपिताचैवमाताभ्राताचपूर्वजः।नार्त्तेनाप्यवमन्तव्याब्राह्मणेनविशेषतः२२६॥

प० । आचार्यः च पिता च एव माता भ्राता च पूर्वजः न आर्त्तेन अपि अवमंतव्याः ब्राह्मणेन विशेषतः ॥

यो० । आचार्यः चपुनः पिता — माता — चपुनः पूर्वजः भ्राता एते आर्त्तेन अपि विशेषतः ब्राह्मणेन न अवमंतव्याः ॥

भा० । ता० । आचार्य पिता माता—और जेठाभाई—इनका पीड़ित मनुष्यभी और विशेष कर ब्राह्मण भी अपमान न करै २२६ ॥

यंमातापितरौक्लेशंसहेतेसंभवेनृणाम् । नतस्यनिष्कृतिःशक्याकर्त्तुंवर्षशतैरपि २२७॥

प० । यं मातापितरौ क्लेशं सहेते संभवे नृणाम् न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैः अपि ॥

यो० । नृणांसंभवे मातापितरौ यं क्लेशं सहेते तस्य निष्कृतिः वर्षशतैः अपि कर्तुं न शक्या ॥

भा० । मनुष्योंकी उत्पत्ति में जो क्लेश माता पिता सहतेहैं उसका बदला सौवर्षमें भी करनेको अशक्य है—अर्थात् नहीं दियाजाता है ॥

ता० । मनुष्यों (सन्तान) के सम्भव (उत्पत्ति) में जिसक्लेशको माता वा पिता सहते हैं अर्थात् कुक्षिमें धारना और प्रसूतिकी अधिक वेदना (पीडा) पालनाको माता और रक्षा भली प्रकार वृद्धि—और यज्ञोपवीतके अनन्तर वेदवेदांगके पढ़ानेआदि में जो क्लेश माता पिता सहते हैं उसकी निष्कृति (बदला) सौवर्ष अथवा अनेकजन्मों में भी करनेको शक्यनहींहै—तिससे माता पिताके संग यहवर्त्तावकरै कि २२७ ॥

तयोर्नित्यंप्रियंकुर्यादाचार्यस्यचसर्वदा । तेष्वेवत्रिषुतुष्टेषुतपःसर्वंसमाप्यते २२८ ॥

प० । तयोः नित्यं प्रियं कुर्यात् आचार्यस्य च सर्वदा तेषु एव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते ॥

यो० । तयोः (मातापित्रोः) नित्यं चपुनः आचार्यस्य सर्वदा प्रियं कुर्यात् तेषु एव त्रिषु तुष्टेषु सत्सु सर्वं तपः समाप्यते फलतः पूर्णतांयाति ॥

भा० । माता पिता का नित्य और आचार्य का सदैव प्यारकरै क्योंकि इनतीनोंकी प्रसन्नता से ही तपका फल मिलता है ॥

ता० । तिन माता पिता दोनों की नित्य और आचार्य की सदैव प्रीति को पैदाकरै क्योंकि इनतीनों की प्रसन्नता होने परही सम्पूर्ण चान्द्रायण आदि तपका फल भलीप्रकार प्राप्तहोता है अर्थात् माताआदि तीनों की प्रसन्नता से ही तपका फल प्राप्तहोता है २२८ ॥

तेषांत्रयाणांशुश्रूषापरमंतपउच्यते । नतैरभ्यननुज्ञातोधर्ममन्यंसमाचरेत् २२९ ॥

प० । तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परमं तपः उच्यते न तैः अभ्यननुज्ञातः धर्मं अन्यम् समाचरेत् ॥

यो० । तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परमं तपः उच्यते — तैः अभ्यननुज्ञातः (शिष्यः) अन्यं धर्मं न समाचरेत् ॥

भा० । ता० । तिन तीनों (माता पिता आचार्य) की शुश्रूषा कोही परमतप कहतेहैं और उनतीनों की आज्ञा के विना अन्यभी धर्म को न करै २२९ ॥

तएवहित्रयोलोकास्तएवत्रयआश्रमाः।तएवहित्रयोवेदास्तएवोक्तास्त्रयोऽग्नयः२३०॥

प० । ते एव हि त्रयः लोकाः ते एव त्रयः आश्रमाः ते एव हि त्रयः वेदाः ते एव उक्ताः त्रयः अग्नयः ॥

यो० । हि (निश्चयं वायतः) ते एव त्रयो लोकाः ते एव त्रयः आश्रमाः—तएव त्रयो वेदाः ते एव त्रयः अग्नयः उक्ताः मुनिभिरितिशेषः ॥

भा० । जिससे मातापिता आचार्य—ये तीनोंही तीनोंलोक—तीनों आश्रम—तीनोंवेद—तीनों अग्नि—रूप हैं—इससे अपमान करने योग्य नहीं हैं ॥

ता० । जिससे वेही माता पिता आचार्य तीनों लोक हैं अर्थात् तीनों लोकों की प्राप्ति कारण हैं यहबात कार्य (लोकों) का धर्म कारण (माता आदि तीनों) में मानकर कहीहै—वे ही तीनों आश्रम हैं अर्थात् तीनों आश्रमों के दाताहैं—वेही तीनों वेद हैं अर्थात् तीनों वेदोंके जपके फल के दाताहैं—वेही तीनोंअग्नि कहीहैं अर्थात् तीनोंवेदोंसे होनेवाले यज्ञ आदिफलके दाताहैं२३० ॥

पितावैगार्हपत्योऽग्निर्माताग्निर्दक्षिणःस्मृतः।गुरुराहवनीयस्तुसाग्नित्रेतागरीयसी२३१

प० । पिता वै गार्हपत्यः अग्निः माता अग्निः दक्षिणः स्मृतः गुरुः आहवनीयः तु सा अग्नित्रेता गरीयसी ॥

यो० । पिता गार्हपत्यः अग्निः-माता दक्षिणः अग्निः गुरुः आहवनीयः अग्निःस्मृतः सा अग्नित्रेता गरीयसी (अस्ति)॥

भा० । ता० । पिताही गार्हपत्य अग्नि—और माता दक्षिणाग्नि और आचार्य आहवनीय अग्नि—है ये तीनों अग्नियों का समूह अत्यन्त श्रेष्ठ है—यह वचन स्तुति के लियेहै इससे वस्तुतः विरोध नहीं समझना २३१ ॥

त्रिष्वप्रमाद्यन्नेतेषुत्रींल्लोकान्विजयेद्गृही।दीप्यमानःस्ववपुषादेववद्दिविमोदते२३२॥

प० । त्रिषु अप्रमाद्यन् एतेषु त्रीन् लोकान् विजयेत् गृही दीप्यमानः स्ववपुषा देववत् दिवि मोदते ॥

यो० । एतेषु त्रिषु अप्रमाद्यन् गृही त्रीन् लोकान् विजयेत् — स्ववपुषा दीप्यमानः दिवि देववत् मोदते ॥

भा० । इनतीनों में प्रमादको नहीं करता हुआ गृहस्थी तीनों लोकों को जीतताहै और अपने देहसे दिपताहुआ स्वर्ग में देवताओं की तुल्य आनन्द भोगता है ॥

ता० । इनतीनों (माता पिता आचार्य)में प्रमाद को नहीं करताहुआ गृहस्थी तीनों लोकों को जीतता है अर्थात् स्वामीहोकर तीनों लोकों के भोगोंको भोगता है और अपनेदेहसे दिपता हुआ स्वर्ग में देवताओं के समान आनन्द को भोगता है—इसश्लोकमें विजयेत् पदकी जगह इसे पाणिनि के सूत्र से विजयेत यहपद पाता है तथापि आत्मनेपद रूप संज्ञापूर्वक विधि होने से उक्तविधि अनित्य है इससे परस्मैपदभी ठीक है २३२ ॥

---

१ विपराभ्यांजेः ॥

२ संज्ञापूर्वको विधिरनित्यः ॥

इमंलोकंमातृभक्त्यापितृभक्त्यातुमध्यमम्।गुरुशुश्रूषयात्वेवंब्रह्मलोकंसमश्नुते२३३॥

प० । इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्या तु मध्यमम् गुरुशुश्रूषया तु एवं ब्रह्मलोकं समश्नुते ॥

यो० । मातृभक्त्या इमंलोकं — तुपुनः पितृभक्त्या मध्यमं लोकं — गुरुशुश्रूषया तु एवं ब्रह्मलोकं समश्नुते ॥

भा० । ता० । माता की भक्ति (सेवा) से इस लोकको—पिताकी भक्तिसे मध्यम (अंतरिक्ष) लोक को—और आचार्यकी भक्तिसे ब्रह्माके लोकको प्राप्तहोता है २३३ ॥

सर्वेतस्यादृताधर्मायस्यैतेत्रयआदृताः।अनादृतास्तुयस्यैतेसर्वास्तस्याफलाःक्रियाः२३४

प० । सर्वे तस्य आदृताः धर्माः यस्य एते त्रयः आदृताः अनादृताः तु यस्य एते सर्वाः तस्य अफलाः क्रियाः ॥

यो० । यस्य एतेत्रयः (पिता माता आचार्य) आदृताः (संति) तस्य सर्वे धर्माः आदृताः भवंति — यस्य एतेत्रयः अनादृताः तस्य सर्वाःक्रियाः (कर्माणि) अफलाः निष्फलाः संतीत्यर्थः ॥

भा० । ता० । जिसपुरुषने इन तीनोंका सत्कारकिया है उसके सब कर्म फलदेनेवाले होते हैं और जिस पुरुषने इन तीनोंका सत्कार नहीं किया उसके संपूर्ण श्रुति और स्मृतियोंमें कहेहुये सबकर्म निष्फलहैं २३४ ॥

यावत्त्रयस्तेजीवेयुस्तावन्नान्यंसमाचरेत्।तेष्वेवनित्यंशुश्रूषांकुर्यात्प्रियहितेरतः२३५

प० । यावत् त्रयः ते जीवेयुः तावत् न अन्यं समाचरेत् तेषु एव नित्यं शुश्रूषां कुर्यात् प्रियहिते रतः ॥

यो० । यावत्तेत्रयः जीवेयुः तावत् अन्यं न समाचरेत् — प्रियहितेरतः सन् तेषु एवनित्यं शुश्रूषांकुर्यात् ॥

भा० । जबतक वे तीनोंजीवें तबतक अन्य धर्मको न करै—किंतु उनकी प्रीति और हितमें तत्परहुआ उनकीहीसेवा करै ॥

ता० । जबतक वे पिता आदि तीनों जीवें तबतक स्वतंत्रहोकर अन्य धर्मको न करै—क्योंकि उनकी आज्ञासे धर्मका करना तो कहाहीहै—उनकेही प्रिय और हितमें तत्परहुआ उन तीनों कीही सेवाकरै—उनकेलिये प्रीतिको जो करना उसे प्रियकहतेहैं और औषधिके पानके समान परिणाममें जो सुखदायी हो उसे हितकहतेहैं २३५॥

तेषामनुपरोधेनपारत्र्यंयद्यदाचरेत् । तत्तन्निवेदयेत्तेभ्योमनोवचनकर्मभिः २३६ ॥

प० । तेषाम् अनुपरोधेन पारत्र्यं यत् यत् आचरेत् तत् तत् निवेदयेत् तेभ्यः मनोवचनकर्मभिः॥

यो० । तेषां अनुपरोधेन मनोवचनकर्मभिःयत्२ पारत्र्यं (परलोकहितं कर्म) आचरेत् तत्२तेभ्यो निवेदयेत् ॥

भा० । ता० । उनके अविरोधसे (अनुकूलतासे) जो२परलोकमें फलका दाता कर्मकरै वह उनतीनोंको इसप्रकार निवेदनकरै कि मैं यहकाम कियाहै २३६ ॥

त्रिष्वेतेष्वितिकृत्यंहिपुरुषस्यसमाप्यते।एषधर्मःपरःसाक्षादुपधर्मोऽन्यउच्यते२३७॥

प० । त्रिषु एतेषु इतिकृत्यं हि पुरुषस्य समाप्यते एषः धर्मः परः साक्षात् उपधर्मः अन्यः उच्यते ॥

यो० । एतेषु त्रिषु (शुश्रूषितेषु) पुरुषस्य इतिकृत्यं समाप्यते — एषः साक्षात् परः धर्मः अन्यःउपधर्मः उच्यते मुनिभिरितिशेषः ॥

भा० । इनतीनोंकी शुश्रूषासे पुरुषका संपूर्णकर्म सफलहोताहै इससे यही साक्षात् परमधर्म है और इससे अन्य उपधर्म (निषिद्ध)है ॥

ता० । इनतीनोंकी शुश्रूषाहोनेपर पुरुषका किया श्रुति अथवा स्मृतिमें कहा संपूर्ण कर्म समाप्त (सफल) होताहै यही इनतीनोंकी सेवारूप धर्म सब पुरुषार्थों(धर्म अर्थ काम मोक्ष) का साधनहै—और नियमसे स्वर्ग आदिका दाता जो इससे अन्य अग्निहोत्र आदिधर्महै वह निकृष्टहै—इस श्लोकसे तीनोंकी सेवाकी यह प्रशंसाकहीहै २३७ ॥

श्रद्दधानःशुभांविद्यामाददीतावरादपि।अन्त्यादपिपरंधर्मंस्त्रीरत्नंदुष्कुलादपि २३८॥

प० । श्रद्दधानः शुभां विद्यां आददीत अवरात् अपि अंत्यात् अपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलात् अपि ॥

यो० । अवरात् अपि श्रद्दधानः सन शुभां विद्यां — अंत्यात् अपि परं धर्मं — दुष्कुलात् अपि स्त्रीरत्नं आददीत (गृह्णीयात्) ॥

भा० । शूद्रसेभी शुभविद्याको—चांडालसे भी परमधर्मको—बुरेभीकुलसे उत्तम स्त्रीको ग्रहण करले ॥

ता० । श्रद्धावाला पुरुष शुभविद्याको अर्थात् देखीहै शक्ति जिसकी ऐसी गारुड आदि विद्याको शूद्रसे भी ग्रहणकरले—और अंत्य (चांडाल) से परमधर्म (मोक्षकाउपाय)को अर्थात् जो अपने किये योगकी महिमासे मोक्षके उपायोंको जानताहो परन्तु किसी शेष पापसे चांडाल होगयाहो—उससे मोक्षधर्मको ग्रहणकरे क्योंकि अज्ञानकी अवस्थामें मनुष्य मोक्षधर्ममें ज्ञानको प्राप्तहोकर ब्राह्मण क्षत्रिय—वैश्य—शूद्र और नीचमेंभी श्रद्धाकरे क्योंकि श्रद्धाकरने में जन्म वा मृत्युकी विशेषतानहींहै कि उत्तमकुलीनसेही धर्मका ग्रहणकरे—और मेधातिथिने तो यह अर्थ किया है कि परधर्म से लौकिक व्यवस्थालेने हैं अर्थात् यदि चांडाल भी यहकहे कि इसदेश में मतरहै वा इसजल में मत स्नानकरो तो उसके कहेकोकरे—इस में हमको यह वक्तव्य है कि—अपनी प्रगल्भता (ढिठाई) से लौकिकवस्तु को परधर्म बताताहुआ भी मेधातिथि सबजगे बड़ाई सत्पुरुषों के बीचमेंपाता है यह चित्र (आश्चर्य) है—और खोटेकुल से भी उत्तमस्त्रीको ग्रहणकरले २३८ ॥

विषादप्यमृतंग्राह्यंबालादपिसुभाषितम्।अमित्रादपिसद्वृत्तममेध्यादपिकाञ्चनम् २३९

प० । विषात् अपि अमृतं ग्राह्यं बालात् अपि सुभाषितम् अमित्रात् अपि सद्वृत्तम् अमेध्यात् अपि कांचनम् ॥

यो० । विषात् अपि अमृतं — बालात् अपि सुभाषितम् — अमित्रात (शत्रोः) अपि सद्वृत्तम् —अमेध्यात् अपि कांचनम् — ग्राह्यम् — पुरुषेणेतिशेषः ॥

भा० । ता० । विषमें यदि अमृत मिलाहोय तो विषको दूरकरके अमृतको—और बालक से भी अच्छेवचनको—और शत्रुसेभी सज्जनोंके वृत्तांतको—और अशुद्धजगहसेभी सुवर्णआदि को ग्रहणकरले २३९ ॥

स्त्रियोरत्नान्यथोविद्याधर्मःशौचंसुभाषितम् ॥
विविधानिचाशिल्पानिसमादेयानिसर्वतः २४० ॥

प० । स्त्रियः रत्नानि अथो विद्या धर्मः शौचं सुभाषितम् विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः ॥

यो० । स्त्रियः रत्नानि — अथविद्या — धर्मः शौचं — सुभाषितम् -- चपुनः विविधानि शिल्पानि सर्वतः समादेयानि (ग्राह्याणि) एषांग्रहणे उच्चनीचविचारो नादरणीय इतिभावः ॥

भा० । ता० । स्त्री—रत्न—और विद्या—धर्म—शौच—श्रेष्ठवचन—और अनेकप्रकारके शिल्प(कारीगरी) ये सब सबजातियोंसे ले लेने—यह एक दृष्टान्तमात्रहै कि जैसे स्त्री आदिको निकृष्टकुल से ग्रहण करै इसीप्रकार अन्यभी (चित्र निकासना आदि) शिल्प सबसे ग्रहणकरै २४० ॥

अब्राह्मणादध्ययनमापत्कालेविधीयते । अनुव्रज्याचशुश्रूषायावदध्ययनंगुरोः २४१ ॥

प० । अब्राह्मणात् अध्ययनं आपत्काले विधीयते अनुव्रज्या च शुश्रूषा यावत् अध्ययनं गुरोः ॥

यो० । आपत्काले अब्राह्मणात् अध्ययनं विधीयते — चपुनः अनुव्रज्या -- शुश्रूषा गुरोः सकाशात् यावत् अध्ययनं तावत्कार्या इत्यर्थः ॥

भा० । ब्रह्मचारी को आपत्ति के समय में ब्राह्मण से भिन्न (क्षत्रिय आदि) से भी पढ़ना कहाहै और अनुगमन और सेवा गुरुकी तभीतक कहीहै जबतक ब्रह्मचारी पढ़े ॥

ता० । ब्राह्मण से अन्य जो क्षत्रिय आदिहैं उनसे ब्रह्मचारीको आपत्ति के समय अध्ययन (पढ़ना) तभी कहाहै जब ब्राह्मण अध्यापक न मिले अनुव्रज्या (पीछेचलना वा आज्ञापालन) तभीतक ब्रह्मचारी करै जबतक उक्त गुरुसे पढ़े—और गुरुके चरणोंको धोना—उच्छिष्ट भोजन आदिको ब्रह्मचारी न करै और गुरुभी वह क्षत्रिय आदि पढ़ने तकहीहै—क्योंकि व्यासने यह लिखाहै कि वेदके पढ़ानेवाला क्षत्रिय सेवा और अनुगमनसे पढ़ानेके समयही गुरु कहाहै और विद्यापढ़ने के अनन्तर तो ब्राह्मणही क्षत्रिय का गुरु कहाहै—और नैष्ठिक ब्रह्मचारी तो क्षत्रिय आदिसे कभी भी अध्ययन न करै २४१ ॥

नाब्राह्मणेगुरौशिष्योवासमात्यन्तिकंवसेत् ॥
ब्राह्मणेचाननूचानेकांक्षन्गतिमनुत्तमाम् २४२ ॥

प० । न अब्राह्मणे गुरौ शिष्यः वासं आत्यंतिकं वसेत् ब्राह्मणे च अननूचाने कांक्षन् गतिम् अनुत्तमाम् ॥

यो० । अनुत्तमांगतिं कांक्षन् सन् शिष्यः अब्राह्मणे चपुनः अननूचानेगुरौ आत्यन्तिकं वासं (नैष्ठिकब्रह्मचर्यं) नवसेत् ॥

भा० । ता० । ब्राह्मणसे भिन्न क्षत्रिय आदि गुरुके और सांगवेदकेन पढ़ेहुये ब्राह्मणभी गुरुके यहां—सबसे उत्तमगतिको चाहताहुआ शिष्य अत्यन्तवास (नैष्ठिकब्रह्मचर्य)कलिये न वसे २४२ ॥

---

१ मंत्रदः क्षात्रयोविप्रैः शुश्रूषानुगमादिना प्राप्तविद्योब्राह्मणस्तु पुनस्तस्यगुरुःस्मृतः ॥

यदित्वात्यन्तिकंवासंरोचयेतगुरोःकुले । युक्तःपरिचरेदेनमाशरीरविमोक्षणात् २४३ ॥

प० । यदि तु आत्यंतिकं वासं रोचयेत् गुरोः कुले युक्तः परिचरेत् एनं आशरीरविमोक्षणात् ॥

यो० । यदि गुरोः कुले आत्यंतिकं वासं रोचयेत (तर्हि) युक्तः सन् आशरीरविमोक्षणात् एनं परिचरेत् (सेवेत) ॥

भा० । ता० । यदि कुरुके कुलमें नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के अपने जीनेतक वासको चाहै तो जब तक जीवे तबतक सावधानी से गुरुकी सेवाकरै २४३ ॥

आसमाप्तेःशरीरस्ययस्तुशुश्रूषतेगुरुम्।सगच्छत्यञ्जसाविप्रोब्रह्मणःसद्मशाश्वतम् २४४

प० । आसमाप्तेः शरीरस्य यः तु शुश्रूषते गुरुम् सः गच्छति अंजसा विप्रः ब्रह्मणः—सद्म शाश्वतम् ॥

यो० । यःशिष्यः शरीरस्य आसमाप्तेः गुरुं शुश्रूषते सविप्रः ब्रह्मणः शाश्वतं सद्म (रूपं) अंजसा गच्छति (ब्रह्मणिलीनोभवतीत्यर्थः ॥

भा० । ता० । जो ब्रह्मचारी ब्राह्मण अपने शरीरकी समाप्ति पर्यंत गुरुकी सेवाकरता है वह ब्राह्मण ब्रह्मके शाश्वत (नित्य) सद्म (रूप) को अनायाससे प्राप्तहोताहै अर्थात् ब्रह्ममें लीनहोताहै २४४ ॥

नपूर्वंगुरवेकिञ्चिदुपकुर्वीतधर्मवित् । स्नास्यंस्तुगुरुणाज्ञप्तःशक्त्यागुर्वर्थमाहरेत् २४५॥

प० । न पूर्वं गुरवे किंचित् उपकुर्वीत धर्मवित् स्नास्यन् तु गुरुणा आज्ञप्तः शक्त्या गुर्वर्थं आहरेत् ॥

यो० । धर्मवित् (स्नानात्) पूर्वं गुरवे किंचित् न उपकुर्वीत्—तुपुनः गुरुणा आज्ञप्तः स्नास्यन् (ब्रह्मचारी) गुर्वर्थं शक्त्या आहरेत् ॥

भा० । धर्मका ज्ञाता ब्रह्मचारी स्नानसे पहिले कुछभी गुरुका उपकार न करै—स्नानकरता हुआ तो गुरुकी आज्ञासे यथाशक्ति गुरुको लाकर अर्पणकरै ॥

ता० । धर्मके जाननेवाला ब्रह्मचारी स्नानसे पहिले गुरुको वस्त्र गो आदि आवश्यकता से कुछभी न दे अर्थात् उद्योग करके न दे यदि अकस्मात् मिलजांय तो गुरुको अवश्यमेव दे क्योंकि स्नान (जो गृहस्थ में आनेके लिये गुरुके यहां होता है) से पहिले भी आपस्तंब ऋषि ने दान कहाहै कि जो कुछ अन्य द्रव्य भी प्रारब्धके अनुसार मिलजाय तो वह भी गुरुकी दक्षिणाहीहै और वही ब्रह्मचारीका यज्ञ और नित्यका व्रतहै—और स्नानकी जब इच्छाहोय तब तो गुरुकी आज्ञाको लेकर अपनी शक्तिके अनुसार किसी धनीसे याचनाकरके प्रतिग्रहलेकर भी द्रव्यको लाकर गुरुको अवश्यदे—यह दक्षिणा उपकुर्वाण ब्रह्मचारीको देनेयोग्यहै नैष्ठिकको नहीं क्योंकि नैष्ठिकको स्नानकाही असंभवहै २४५ ॥

---

१ यदन्यानिद्रव्याणि यथालाभमुपहरेत् दक्षिणाएवताः सएष ब्रह्मचारिणो यज्ञो नित्यव्रतोमति ॥
२ दोप्रकारके ब्रह्मचारीहोतेहैं १ उपकुर्वाण २ नैष्ठिक—इनदोनोंमें १ वेदपढ़कर गृहस्थमें आताहै—२ जीनेतक गुरुके यहांहीरहताहै ॥

क्षेत्रंहिरण्यंगामश्वंछत्रोपानहमासनम्। धान्यंशाकंचवासांसिगुरवेप्रीतिमावहेत् २४६॥

प० । क्षेत्रं हिरण्यं गां अश्वं छत्रोपानहम् आसनम् धान्यं शाकं च वासांसि गुरवे प्रीतिं आवहेत् ॥

यो० । क्षेत्रं – हिरण्यं – गां – अश्वं – छत्रोपानहं – आसनं – धान्यं – शाकं – वासांसि – गुरवे (दत्वा) प्रीतिं आवहेत् – गुरुप्रीतिं अर्जयेदित्यर्थः ॥

भा० । भूमि–धन–गौ–घोड़ा–छत्री–उपानह–आसन–अन्न–शाक–औरवस्त्र–इनको गुरु को देकर प्रसन्नकरै ॥

ता० । क्षेत्र (भूमि) द्रव्य–गौ–घोड़ा–छत्री–उपानह (जूता) आसन–अन्न–शाक–और वस्त्र–इन सबको वा जितने मिलें उतनोंको गुरुके अर्पणकरके गुरुको प्रसन्नकरै यदि सब न मिलें तो छत्री और उपानह तो अवश्यमेव दे–इन सबका दान प्रशंसाके लिये है यदि अधिक द्रव्य मिले तो वह भी गुरुको देदे–क्योंकि लघुहारीत ने यह लिखाहै कि जो गुरु शिष्यको एक अक्षर भी देताहै–पृथिवीभरमें वह द्रव्य नहींहै जिसको देकर गुरुका अनृणीहो अर्थात् बदला देसके–यदि कुछभी न मिले तो शाकही देदे २४६ ॥

आचार्येतुखलुप्रेतेगुरुपुत्रेगुणान्विते। गुरुदारेसपिण्डेवागुरुवद्वृत्तिमाचरेत् २४७॥

प० । आचार्ये तु खलु प्रेते गुरुपुत्रे गुणान्विते गुरुदारे सपिंडे वा गुरुवत् वृत्तिं आचरेत् ॥

यो० । आचार्ये खलु (निश्चयेन) प्रेतेसति (नैष्ठिकः) गुणान्विते गुरुपुत्रे – गुरुदारे – वा गुरुसपिंडे गुरुवत् वृत्तिं आचरेत् (कुर्यात्) ॥

भा० । ता० । जो आचार्य मरजाय तो नैष्ठिक ब्रह्मचारी गुणी गुरुके पुत्रमें वा गुरुकी स्त्रीमें वा गुरुके सपिंडमें गुरुके समान आचरणको करै अर्थात् जन्मभर इनकीही सेवाकरै २४७ ॥

एतेष्वविद्यमानेषुस्नानासनविहारवान्। प्रयुञ्जानोऽग्निशुश्रूषांसाधयेद्देहमात्मनः २४८

प० । एतेषु अविद्यमानेषु स्नानासनविहारवान् प्रयुंजानः अग्निशुश्रूषां साधयेत् देहं आत्मनः ॥

यो० । एतेषु अविद्यमानेषुसत्सु स्नानासनविहारवान् अग्निशुश्रूषां प्रयुंजानः (नैष्ठिकः) आत्मनः देहंसाधयेत् ॥

भा० । ता० । यदि ये तीनों अविद्यमानहोंय तो आचार्यकी अग्निके समीपही स्नान आसन विहारको और सायंकाल प्रातःकालके समय होमकरके अग्निकी सेवा, करताहुआ नैष्ठिक ब्रह्मचारी अपने देहमें स्थित जीवको ब्रह्मकी प्राप्तिके योग्य करै २४८ ॥

एवंचरतियोविप्रोब्रह्मचर्यमविप्लुतः। सगच्छत्युत्तमंस्थानंनचेहाजायतेपुनः २४९॥

इतिमानवेधर्मशास्त्रेभृगुप्रोक्तायांसंहितायांद्वितीयोऽध्यायः २ ॥

प० । एवं चरति यः विप्रः ब्रह्मचर्यं अविप्लुतः सः गच्छति उत्तमं स्थानं न च इह आजायते पुनः ॥

---

१ एकमप्यक्षरं यस्तु गुरुः शिष्ये निवेदयेत् पृथिव्यांनास्तितद्द्रव्यं यद्दत्वाह्यनृणीभवेत् ॥

यो० । अविप्लुतः यः विप्रः एवं ब्रह्मचर्यं चरति सः उत्तमंस्थानं गच्छति – चपुनः इह पुनः न आजायते – (न उत्पद्यते) ॥

भा० । अपने व्रत को रखता हुआ जो नैष्ठिक ब्रह्मचारी इस प्रकार गुरुपुत्र आदि की सेवा करता हुआ ब्रह्मचर्य को करता है वह उत्तम स्थान को जाता है और फिर इस संसार में जन्म नहीं लेता ॥

ता० । आसमाप्तेः शरीरस्य–इस श्लोकसे जीवन पर्यंत अग्निकी सेवाका फल मोक्ष कहा अब आचार्यके मरनेपर गुरुके पुत्रसे अग्नि पर्यंतोंकी सेवा करताहुआ और नहीं खंडितहुआ है व्रत जिसका ऐसा जो नैष्ठिक ब्रह्मचारी इसप्रकार ब्रह्मचर्यको करताहै वह उत्तम स्थान (ब्रह्म) को जाताहै और इस संसारमें कर्मवशहोकर फिरजन्मको प्राप्त नहींहोता २४६ ॥

इतिमन्वर्थभास्करे द्वितीयोऽध्यायः २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

षट्त्रिंशदाब्दिकंचर्यंगुरौत्रैवेदिकंव्रतम् । तदर्धिकंपादिकंवाग्रहणान्तिकमेववा १ ॥

प० । षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ त्रैवेदिकं व्रतम् तदर्धिकं पादिकं वा ग्रहणांतिकं एवं वा ॥

यो० । गुरौ त्रैवेदिकंव्रतं षट्त्रिंशदाब्दिकं – तदर्धिकं – वा पादिकं – वा ग्रहणांतिकं एव (ब्रह्मचारिणा)चर्यम् ॥

भा० । तीनों वेदों के पढ़ने के लिये छत्तीस–अठारह–अथवा नौ वर्षतक अथवा जबतक पढ़ सके तबतक ब्रह्मचर्य को करे ॥

ता० । पहिले शरीर की समाप्ति पर्यंत नैष्ठिक ब्रह्मचर्य कहा उस में कोई अवधि नहीं कही–और समावर्त्तन पर्य्यन्त उपकुर्वाणको जो ब्रह्मचर्य कहा वह सावधिक है अर्थात् समावर्त्तनतक ही होता है और उपकुर्वाण ब्रह्मचारी कोही गृहस्थ का अधिकार है–अब यह वर्णन करते हैं कि कितने दिन ब्रह्मचर्य करके गृहस्थी हो–ऋक्–यजु–साम–इनतीनों वेदों के अध्ययन के लिये छत्तीस वर्ष पर्य्यन्त अपने गृह्य[1] में कहीहुई विधि से व्रतको गुरुके यहां ब्रह्मचारी करै–यह व्रत प्रति वेद के पढ़ने में बारह२ वर्षपर्यंत करना क्योंकि जहां कुछ समयका नियम नहो वहां इसे न्यायसे[2] समताही होती है अथवा उससे आधा (१८ वर्ष)–ब्रह्मचर्यकरै इस पक्षमें प्रत्येक वेदके पढ़ने में छः२ वर्ष–अथवा नौवर्षतक–इस पक्ष में प्रत्येक वेदके पढ़ने में तीन२ वर्ष व्रत करै–अथवा जितने समय (न्यून अथवा अधिक)में वेदोंको पढ़सके उतनेही समयतक व्रतको करै–यद्यपि ये तीनों पक्ष विषमतासे कहेहैं अर्थात् एक समयका नियम नहीं कहा तथापि एक

१ जो अपनी शाखाके अनुसार गृहस्थीके धर्मों का बोधकहो ॥
२ समंस्यादश्रुतत्वात् ॥

देनी तीन देनी जो देनी—इसके समान नियमके फलमें न्यूनताकी अपेक्षासे विकल्पहै क्योंकि श्रुति में यह कहा है कि नियम से पढ़ाहुआ अत्यन्त वीर्य्यवाला (सफल) होता है और अथवा जबतक वेद आवे तबतक ब्रह्मचर्य करे यह पक्ष भी कहा है इससे पूर्वोक्त तीनों पक्षों के अनन्तर भी व्रत का करना पायाजाता है—यद्यपि अथर्ववेद ऋग्वेद काही एक भाग है तथापि इसे छांदोग्य उपनिषद की श्रुति में अथर्ववेद को चौथा वेद कहा है और इन विष्णु-पुराण आदि वाक्यों में भी चौथा वेद कहा है परन्तु अभिचार (मारण) आदि में उपयुक्त होने से यज्ञ विद्यामें उपयोग नहीं है इससे यहां अथर्व वेदको नहीं दिखाया—इसी हेतु इस श्रुति से यह ज्ञात होताहै कि ऋग्वेद से होताको यजुर्वेद से अध्वर्यु को—और सामवेदसे उद्गाता का कर्म करते हुयेको जो यह वेदत्रयी से शुक्र (बल) होता है उसी से ब्रह्मत्व है निदान वेदत्रयी सेही यज्ञ होती है अथर्व से नहीं—और यह मनुका कहा तीनों वेदों के लिये व्रत का विधान अथर्व वेद के अध्ययन में व्रत करने का निषेध नहीं करताहै क्योंकि वाक्य का भेद आजायगा अर्थात् विधि और निषेध दोनों इसी एक श्लोक से प्रतीत होंगे—और इतर श्रुतियों में भी सब वेदों में व्रतका आचरण कहा है और योगि याज्ञवल्क्य ने भी यह कहाहै कि प्रत्येक वेदके पढ़ने में बारह २ अथवा पांच २ वर्ष ब्रह्मचर्य करे १ ॥

वेदानधीत्यवेदौवावेदंवापियथाक्रमम् । अविप्लुतब्रह्मचर्योगृहस्थाश्रममावसेत् २ ॥

प० । वेदान् अधीत्य वेदौ वा वेदं वा अपि यथाक्रमम् अविप्लुतब्रह्मचर्यः गृहस्थाश्रमं आवसेत् ॥

यो० । अविप्लुतब्रह्मचर्यः (ब्रह्मचारी) वेदान् — वा वेदौ — वा वेदं — यथाक्रमं अधीत्य गृहस्थाश्रमं आवसेत् ॥

भा० । तीनवेद—वा दोवेद—वा एकवेदको यथाक्रमसे पढ़कर नहींनष्टहुआहै ब्रह्मचर्य जिसका ऐसा ब्रह्मचारी गृहस्थाश्रम में वसे अर्थात् विवाहकरे ॥

ता० । इसश्लोक में वेद शब्द से भिन्न २ वेदकी शाखा लेनेहैं—अपनी शाखाके अध्ययन-पूर्वक वेद की तीन—दो—एक शाखा को मंत्र और ब्राह्मण आदि क्रम से पढ़कर नहीं नष्टहुआ है ब्रह्मचर्य जिसका ऐसा ब्रह्मचारी गृहस्थाश्रम (गृहस्थी को कहे कर्मों के समूह)को करे और गृहस्थ उसे कहतेहैं जिसने दारा (स्त्री) का ग्रहण कियाहो क्योंकि गृह शब्द भी दाराका वाची है—अविप्लुत ब्रह्मचर्य इससे यह सूचितकिया कि पहिले जो ब्रह्मचारीके धर्म—(स्त्री का संयोग मधु मांस के भक्षण का त्याग आदि) जिसके नष्ट न हुये हों—ये भी अध्ययन के उत्तम अंग हैं—और एक दो तीन शाखा के अध्ययन का विकल्प भी पुरुष की शक्ति के अनुसार कहा है—यद्यपि नित्य कर्म के समान व्रत और वेदके अध्ययन को उपदेश करतेहुये मनुने दो स्नातकही (व्रती—वेदपाठी—)मानेहैं तथापि अन्य स्मृतियों से इतर भी स्नातकजानने क्योंकि हारीत ने

---

१ नियमेनाधीतं वीर्यवत्तरंभवतीति ॥
२ ऋग्वेदं यजुर्वेदं — सामवेदं — अथर्वाणं चतुर्थमिति ॥
३ अंगानि वेदाश्चत्वारः ॥
४ ऋग्वेदेनैव हौत्रं कुर्वन — यजुर्वेदेनाध्वर्यवं — सामवेदेनोद्गात्रं यदेनत्त्रय्यै विद्यायै शुक्रंतेन ब्रह्मत्वमिति ॥
५ प्रतिवेदं ब्रह्मचर्यं द्वादशाब्दानि पंच वा ॥
६ त्रयः स्नातकाभवंति विद्यास्नातकः व्रतस्नातकः विद्याव्रतस्नातकश्चेति॥

ये तीनस्नातक कहे हैं कि विद्यास्नातक–व्रतस्नातक–विद्याव्रतस्नातक–जो वेदकोपूर्णकरे और व्रतोंको समाप्त न करके गृहस्थहो वह विद्यास्नातक है–जो व्रतोंको समाप्तकरे और वेदको समाप्त न करके गृहस्थीहो वह व्रतस्नातक है–और जो दोनोंको समाप्त करके गृहस्थी हो वह विद्याव्रतस्नातकहै–और याज्ञवल्क्य ने भी कहाहै कि वेदको–वा व्रतोंको–वा दोनों को समाप्त करके गृहस्थीहो २ ॥

तंप्रतीतंस्वधर्मेणब्रह्मदायहरंपितुः । स्रग्विणंतल्पआसीनमर्हयेत्प्रथमंगवा ३ ॥

प० । तं[2] प्रतीतं स्वधर्मेण[1] ब्रह्मदायहरं पितुः स्रग्विणं तल्पे आसीनं अर्हयेत्[1] प्रथमं गवा[3] ॥

यो० । स्वधर्मेणप्रतीतं – पितुः (सकाशात्) ब्रह्मदायहरं – स्रग्विणं – तल्पे आसीनं – तं (ब्रह्मचारिणं) प्रथमं (आचार्यः) वा अर्हयेत् – गोसाधनमधुपर्केण पूजयेदित्यर्थः ॥

भा० । अपनेधर्मसे प्रसिद्ध–और पितासे पढ़ाहै वेदजिसने–और मालाकीहै धारण जिसने–और उत्तम शय्यापर बैठेहुये उस ब्रह्मचारीको–पहिले आचार्य गौके दूधआदिसे बनाये मधुपर्क से पूजे ॥

ता० । अपनेधर्मके करनेसे प्रसिद्ध और पिताकेही सकाशसे ग्रहणकियाहै वेदजिसने क्योंकि पिताके सकाशसे वेदका अध्ययन मुख्यकहाहै और पिताके अभावमें आचार्यसेही पढ़ा है वेद जिसने–और मालासे कियाहै अलंकार (शोभा) जिसका–और तल्प (उत्तमशय्या) पर बैठे हुये–उसस्नातक ब्रह्मचारी को प्रथम आचार्य गौके दूध दही घीसे बनायेहुये मधुपर्कसपूजे ३ ॥

गुरुणानुमतःस्नात्वासमावृत्तोयथाविधि । उद्वहेतद्विजोभार्यांसवर्णांलक्षणान्विताम् ४ ॥

प० । गुरुणा[3] अनुमतः[1] स्नात्वा[4] समावृत्तः[1] यथाविधि[3] उद्वहेत[1] द्विजः[1] भार्यां[2] सवर्णां[2] लक्षणा-न्विताम्[2] ॥

यो० । गुरुणाअनुमतः यथाविधिस्नात्वा समावृत्तः द्विजः सवर्णां लक्षणान्वितां भार्यां उद्वहेत ॥

भा० । ता० । गुरुने दीहै आज्ञाजिसको–और शास्त्रोक्तरीतिसे कियेहैं स्नान और समावर्तन कर्म जिसने ऐसा द्विज अपनेवर्णकी और उत्तम लक्षणवाली भार्या (स्त्री) को विवाहे ४ ॥

असपिण्डाचयामातुरसगोत्राचयापितुः । साप्रशस्ताद्विजातीनांदारकर्मणिमैथुने ५ ॥

प० । असपिंडा च या मातुः असगोत्रा च या पितुः सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥

यो० । या मातुः असपिंडा––चपुनः यापितुः असगोत्रा –(भवति) सा द्विजातीनां दारकर्मणि – मैथुने प्रशस्ता ज्ञेया ॥

भा० । जो माताकी सपिंडनहो और पिताके गोत्र और सपिंडकीनहो वही स्त्री द्विजातियों के विवाह और मैथुनमें स्त्री होतीहै ॥

ता० । जो माताकी सपिंडा न हो अर्थात् सातपीढ़ी के मध्य में नहो क्योंकि इस[2] वचन से सातपीढ़ीतकही सपिंडताकही है–तिससे मातामहआदि के वंशमें पैदाहुयी जायानहींहोसक्ती और चकार से माताके गोत्रकीभी माताके वंशकी जन्मपरंपरा और नामों के ज्ञानहोनेपर नहीं

---

१ वेदं व्रतानि वा पारंनीत्वा ह्युभयमेव वा ॥
२ सपिण्डतातु पुरुषे सप्तमे विनिवर्त्तते ॥

विवाहनी उससे अन्य तो विवाहलेनी चाहे माता के गोत्रकीभी हो—क्योंकि व्यासजीने कहा है कि कोईआचार्य माताके गोत्रकी स्त्रीके संगभी विवाहको चाहतेहैं और जन्म और नाम इन दोनोंकी प्रतीतिनहोय तो निःसंदेह विवाहले—और जो मेधातिथि ने वशिष्ठ के नामका वचन लिखाहै कि माता के गोत्रकी स्त्रीको न विवाहै वहभी माता के वंशकी जन्मपरंपरा और नाम प्रतीतनहो तभी समझना—और जो पिताके गोत्रकी और पिताके सपिंडकीनहो वही स्त्री द्विजातियोंके विवाह में और मैथुनमें स्त्री होतीहै—और दारा (स्त्री) बनानेका जो कर्म उसे दारकर्म और मिथुन (स्त्री पुरुषका जोड़ा) से होनेवाले अग्न्याधान और पुत्रका उत्पादन उसे मैथुन कहतेहैं ५ ॥

महान्त्यपिसमृद्धानिगोजाविधनधान्यतः । स्त्रीसंबन्धेदशैतानिकुलानिपरिवर्जयेत ६ ॥

प० । महांति अपि समृद्धानि गोजाविधनधान्यतः स्त्रीसम्बंधे दश एतानि कुलानि परिवर्जयेत ॥

यो० । गोजाविधनधान्यतः समृद्धानि महांति अपि एतानि दशकुलानि स्त्रीसंबंधे परिवर्जयेत् (परित्यजेत्) ॥

भा० । ता० । गौ—बकरी—भेड़—धन और अन्नसे बढ़ेहुये और बड़े भी इनदशकुलों को स्त्रीसंबंध (विवाह) में वर्जदे—अर्थात् इनकुलों में उत्पन्न स्त्रियों के संग विवाह न करै ६ ॥

हीनक्रियंनिष्पुरुषंनिश्छन्दोरोमशार्शसम् । क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्वित्रिकुष्ठिकुलानिच ७

प० । हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छंदः रोमशार्शसम् क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्वित्रिकुष्ठिकुलानि च ॥

यो० । हीनक्रियं — निष्पुरुषं — निश्छन्दः रोमशं — अर्शसम् — क्षयि आमयावि — अपस्मारि — श्वित्रि कुष्ठिकुलानि — इमानि दशेत्यर्थः ॥

भा० । क्रिया से और लड़कों और वेदसे हीन—जिस कुल के मनुष्यों के देहमें बहुत रोमहों वा अर्शका रोगहो—क्षयी—मंदाग्नि अपस्मार (मिरगी) सफेददाद—और कुष्ठ रोगहों इन दश कुलों की कन्या को न विवाहै ॥

ता० । वे दश कुल ये हैं कि—जातकर्म आदि क्रियाओंसे हीन—और निष्पुरुष जिसमें कन्या ही कन्या जन्मतीहों—और निश्छंद जिसमें वेदका पठन पाठन नहो—रोमश जिस कुल के मनुष्यों के देहपर बहुत वा लंबे २ रोमहों—और अर्शस जिस कुलमें अर्श(बवासीर)की बीमारी हो—क्षयी जिस कुलमें राजयक्ष्मा रोगहो—आमयावि जिस कुलके मनुष्यों की अग्नि मंदहो—अपस्मारि जिस कुलमें मिरगी रोगहो—श्वित्रि जिस कुलमें सफेद दादहो—और कुष्ठि जिस कुलमें कुष्ठका रोगहो—इन दश कुलोंको विवाह में वर्जदे—इस निषेधमें प्रमाण यहहै कि—उत्पन्नहुये लड़के अपने मातुलके समान रोगी वा नीरोग होतेहैं तिससे हीन कुलसे विवाही स्त्रीकी संतान भी वैसीही होगी—क्योंकि वैद्य कहतेहैं कि और प्रवाहिकाको छोड़कर सब व्याधिसंचारि होतेहैं अर्थात् पीढ़ीदरपीढ़ी चली जातीहैं—वेद मूलक न होने पर भी प्रत्यक्ष होनेसे प्रमाण है

१ सगोत्रांमातुरप्येकेनेच्छन्त्युद्वाहकर्मणि—जन्मनाम्नोरविज्ञाने उद्वहेदविशंकितः ॥
२ परिणीयसगोत्रांतु समानप्रवरांतथा तस्यांकृत्वासमुत्सर्गं द्विजश्चांद्रायणंचरेत् मातुलस्यसुतांचैव मातृगोत्रांतथैवच ॥
३ सर्वसंचारिणोरोगावर्जयित्वाप्रवाहिकाम् ॥

क्योंकि भविष्यपुराण में यह लिखा है मीमांसासे भिन्न ये सब वेद मूलहैं और दृष्टार्थ(प्रत्यक्ष) हैं और भाष्यकारने भी स्मृत्यधिकरण में कहा है कि जो दृष्टार्थ हैं वे स्वयं(प्रत्यक्षतासे)प्रमाण हैं और जो अदृष्टार्थ (यज्ञ आदि) हैं वे वैदिक शब्दानुमानसे प्रमाण हैं ७ ॥

नोद्वहेत्कपिलांकन्यांनाधिकांगींनरोगिणीम् ॥
नालोमिकांनातिलोमांनवाचाटींनपिङ्गलाम् ८ ॥

प० । न उद्वहेत् कपिलां कन्यां न अधिकांगीं न रोगिणीं न अलोमिकां न अतिलोमां न वाचाटीं न पिंगलां ॥

यो० । कपिलां – अधिकांगीं – रोगिणीं – अलोमिकां – अतिलोमां – वाचाटीं – पिंगलां – कन्यां न उद्वहेत् – एवंविधकन्यानविवाहेत्यर्थः ॥

भा० । ता० । कुल के निषेधको कहकर कन्याका निषेध कहते हैं कि जिसके पीलेकेशहों– जिसका अधिकअंगहो–नित्यरोगवाली–जिसके देहपर सर्वथा रोमनहों–अथवा अधिकरोमहों– जो अत्यन्त कटुवचन बोलतीहो–और जिसके पिंगल (कंजे) नेत्रहों–ऐसी कन्या को न विवाहे ८ ॥

नर्क्षवृक्षनदीनाम्नींनान्त्यपर्वतनामिकाम् । नपक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नींनचभीषणनामिकाम् ९

प० । न ऋक्षवृक्षनदीनाम्नीं न अन्त्यपर्वतनामिकाम् न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम् ॥

यो० । ऋक्षवृक्षनदीनाम्नीं – अंत्यपर्वतनामिकां पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं – चपुनः भीषणनामिकांकन्यां अपि न (उद्वहेत्) ॥

भा० । ता० । नक्षत्र हैं नाम जिसका जैसा आर्द्रा–रेवती आदि–और वृक्ष–नदी–म्लेच्छ– पर्वत–पक्षि–सर्प–दास–ये जिसके नामहों और जिसका भयानकनामहो–ऐसी कन्या को न विवाहे ९ ॥

अव्यङ्गांगींसौम्यनाम्नींहंसवारणगामिनीम् ॥
तनुलोमकेशदशनांमृद्वङ्गीमुद्वहेत्स्त्रियम् १० ॥

प० । अव्यंगांगीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम् तनुलोमकेशदशनाम् मृद्वंगीम् उद्वहेत् स्त्रियम् ॥

यो० । अव्यङ्गाङ्गीम् (अविकलांगीं) सौम्यनाम्नीं—हंसवारणगामिनीम्—तनुलोमकेशदशनाम् मृद्वङ्गीम् (कोमलांगीं) स्त्रियम्–उद्वहेत् ॥

भा० । ता० । जिसके अंग विकलनहों–जिसकानाम सौम्य (मधुर) हो–और जो हंस वा हाथीके समान गमनकरतीहो–जिसके छोटे २ रोम केश और दांतहों और जिसका अंग कोमलहो–ऐसी स्त्रीको विवाहे १० ॥

---

१ सर्वाण्येतावेदमूला दृष्टार्थाः परिहृत्यतुमीमांसाम् ॥
२ ये दृष्टार्थाः तेतत्प्रामाण्यं येत्वदृष्टार्था स्ते वैदिकाः शब्दानुमानामिति ॥

यस्यास्तुनभवेद्भातानविज्ञायेतवापिता । नोपयच्छेततांप्राज्ञःपुत्रिकाधर्मशङ्कया ११ ॥

प० । यस्याः तु न भवेत् भ्राता न विज्ञायेत वा पिता न उपयच्छेत तां प्राज्ञः पुत्रिकाधर्मशंकया ॥

यो० । यस्याः भ्राता न भवेत् वा पिता न विज्ञायेत पुत्रिकाधर्मशंकया तां प्राज्ञः न उपयच्छेत ॥

भा० । जिसकन्या का भाईनहो उसको पुत्रिका की शंका से और जिसके पिताका निश्चय नहो उसको अधर्म की शंकासे बुद्धिमान् मनुष्य न विवाहे ॥

ता० । अब यह दिखाने के लिये कहते हैं कि विधि और निषेध के कहने से अनिषिद्ध और शास्त्रोक्त कन्याका विवाहना अभ्युदय (प्रतिष्ठा) के लियेहै—जिसकन्याका भाई न हो उसको पुत्रिकाधर्मकी शंकासे न विवाहे क्योंकि इस गौतमऋषि के वचन से जो मनुष्य अपने मन में यह संकल्पकरके कन्याका विवाहकरै कि इसकन्याका जो पुत्रहोगा वही मेरापुत्रहोगा इसीको पुत्रिकाधर्म कहतेहैं—और जिसके पिताका निश्चयनहो कि इससे यह पैदाहुई है उसकोभी न विवाहे—कोई यहकहतेहैं कि इसमें पुत्रिकाधर्म की शंकासे यह नहींमिलाना—और गोविंदराज तो यहकहतेहैं कि जिनकेपिता भिन्न २ हों और माता एकहो वेभी बहिन भाई होते हैं—इससे वहकन्या भाईवालीभीहै तोभी पुत्रिकाधर्मकी शंकासे न विवाहै क्योंकि पहिलापुत्र दूसरेपुरुषसे पैदाहुआथा—और मेधातिथिने यह एकहीपक्षकहाहै कि जिसकन्याका भाईनहो उसको पुत्रिका धर्मकी शंकासे न विवाहे और पिता जिसका परदेशमेंहो या मरगयाहो उसको भी न विवाहै और यदि पिता विद्यमानहोय तो पिताके वचनसे पुत्रिकाधर्मके अभावका निश्चयकरके बिना भाईवालीकोभी विवाहले—और हमको (उल्लूकभट्ट) को तो विकल्पकी स्वरसता (बल) से यहप्रतीत होताहै कि—जिसके पिता का विशेषकर निश्चयनहो उसको अधर्म की शंकासे न विवाहे और इसपक्ष में पुत्रिकाधर्मशंकया इसपदका यह अर्थकरना कि पुत्रिका और अधर्म इन दोनोंकी शंकासे अर्थात् जिसका भाई न हो वहां पुत्रिकाकी शंका और जिसके पिताकानिश्चय नहो वहां अधर्मकी शंका से कन्याको न विवाहै—और इसीप्रकरणमें यहभी लिखाहै कि यदि अज्ञानसे अपनेगोत्रकी विवाहले तो माताके समान उसकी पालनाकरै और सगोत्रा के विवाह में प्रायश्चित्त भी कहेंगे इससे पिताके अनिश्चय में और सगोत्रा के विवाहमें विवाहहोनेपर भी वह भार्याही नहींहोती—क्योंकि भार्याशब्द आहवनीयपद के समान संस्कार का बोधकहै—और जिनका निषेध कहाहै (जैसा क्रियाहीनकुल) उसके विवाहनेमें भार्याहोनेका अभावनहीं होता—इसीसे मनुने—महान्त्यपिसमृद्धानि—यहपृथक्पढाहै—और नक्षत्रआदि नामवाली कन्याके विवाहने का जो निषेधहै वहभी भार्याका निषेधकनहींहै किंतु शास्त्रके न माननेपर प्रायश्चित्त मात्रकाही सूचकहै ११ ॥

---

१ अभिसंधिमात्रात्पुत्रिकेत्येके ॥
२ सगोत्रांचेदमत्योपयच्छेत् मातृवदेनांबिभृयात् ॥
३ परिणीयसगोत्रांच इत्यादि ॥

सवर्णाग्रेद्विजातीनांप्रशस्तादारकर्मणि।कामतस्तुप्रवृत्तानामिमाःस्युःक्रमशोवराः१२॥

प० । सवर्णा अग्रे द्विजातीनां प्रशस्ता दारकर्मणि कामतः तु प्रवृत्तानां इमाः स्युः क्रमशः वराः ॥

यो० । द्विजातीनां अग्रे दारकर्मणि सवर्णा प्रशस्ता (भवन्ति) कामतः (पुनर्विवाहे) प्रवृत्तानां (द्विजातीनां) क्रमशः इमाः (भार्याः) वराः (श्रेष्ठाः) स्युः ॥

भा० । ता० । प्रथम (पहिले) विवाहमें–द्विजातियोंको अपने वर्णकीही भार्या प्रशस्त (उत्तम) है–और कामदेव वा इच्छासे दूसरे विवाहमें प्रवृत्तहुये द्विजातियोंको क्रमसे ये भार्या श्रेष्ठहोतीहैं १२ ॥

शूद्रैवभार्य्याशूद्रस्यसाचस्वाचविशःस्मृते।तेचस्वाचैवराज्ञश्चताश्चस्वाचाग्रजन्मनः१३

प० । शूद्रा एव भार्या शूद्रस्य सा च स्वा च विशः स्मृते ते च स्वा च एव राज्ञः च ताः च स्वा च अग्रजन्मनः ॥

यो० । शूद्रस्यभार्या शूद्राएव –सा (शूद्रा) चपुनः स्वा (वैश्या) विशः स्मृते – ते (शूद्रावैश्ये) चपुनः स्वा (क्षत्रिया) राज्ञः – ताः (क्षत्रिया वैश्या शूद्रा) अग्रजन्मनः (ब्राह्मणस्य) स्मृताः ॥

भा० । शूद्रकी एकशूद्रा–और वैश्यकी शूद्रा और वैश्या दो–और क्षत्रियकी शूद्रा वैश्या क्षत्रिया तीन–और ब्राह्मणकी शूद्रा वैश्या क्षत्रिया ब्राह्मणी चार–भार्या मनु आदिने कहीहैं ॥

ता० । शूद्रकी एक शूद्राही स्त्री होतीहै और वैश्या आदि तीन अपनेसे उत्तम नहींहोती–और वैश्यकी शूद्रा और वैश्या दो स्त्री होतीहैं–और क्षत्रियकी शूद्रा और वैश्या और क्षत्रिया तीन भार्या होतीहैं–और ब्राह्मणकी शूद्रा वैश्या–क्षत्रिया और ब्राह्मणी ये चार भार्या मनु आदिने कहीहैं–क्योंकि वशिष्ठ जीने भी यह कहकर कि मंत्रोंके विना कोई ऋषि द्विजातियोंको शूद्राकीभी इच्छाकरतेहैं–शूद्राकोभी विवाहना द्विजातियोंको लिखाहै १३ ॥

नब्राह्मणक्षत्रिययोरापद्यपिहितिष्ठतोः।कस्मिंश्चिदपिवृत्तान्तेशूद्राभार्योपदिश्यते१४॥

प० । न ब्राह्मणक्षत्रिययोः आपदि अपि हि तिष्ठतोः कस्मिंश्चित् अपि वृत्तांते शूद्रा भार्या उपदिश्यते ॥

यो० । आपदि अपि तिष्ठतोः ब्राह्मणक्षत्रिययोः कस्मिंश्चित् अपि वृत्तांते शूद्रा भार्या न उपदिश्यते (कथ्यते) ॥

भा० । आपत्कालमें टिकतेहुये भी ब्राह्मण–क्षत्रिय–को किसी वृत्तांतमें भी शूद्रा भार्या नहीं कहीहै ॥

ता० । गृहस्थको चाहतेहुये और आपत्कालमें टिकतेहुये भी ब्राह्मण और क्षत्रियको किसी भी वृत्तांत (इतिहासपुराण) में शूद्रा भार्या नहीं कहीहै पहिले सवर्णके क्रमसे अनुलोम विवाह की आज्ञा मनुजी देचुकेहैं इससे यह निषेध प्रतिलोम विवाहका है–और यह ब्राह्मण क्षत्रिय का ग्रहण इनको अधिक दोषके लिये कहाहै क्योंकि इससे आगे सब द्विजाति पढ़ेहैं और वैश्य को भी निषेधकहेंगे कि प्रतिलोम स्त्री (उत्तमवर्णकी) न विवाहे १४ ॥

१. शूद्रामप्येकेमंत्रवर्जम् ॥

हीनजातिस्त्रियंमोहादुद्वहन्तोद्विजातयः।कुलान्येवनयन्त्याशुससंतानानिशूद्रताम् १५॥

प० । हीनजातिस्त्रियं मोहात् उद्वहंतः द्विजातयः कुलानि एव नयंति आशु ससंतानानि शूद्रताम् ॥

यो० । मोहात् हीनजातिस्त्रियं उद्वहंतः द्विजातयः ससंतानानि कुलानिएव आशु शूद्रतां नयंति ॥

भा० । अज्ञानसे शूद्राको विवाहतेहुये ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य संतानसहित अपने कुलों को शूद्रकरते हैं ॥

ता० । अपने समान वर्णकी स्त्रीके विवाहने पर भी हीन जाती (शूद्रा) स्त्रीको अज्ञान से विवाहतेहुये ब्राह्मण और क्षत्रिय और वैश्य संतानसहित अपने कुलोंकोही उस शूद्रामें उत्पन्न पुत्र पौत्र आदिक्रमसे शूद्रता को पहुंचाते हैं इस श्लोकमें द्विजातय इसपदसे तीनों द्विजाति लियेहैं इससे वैश्यको भी शूद्रा विवाहनेका निषेध समझना—और इससे पहिले श्लोक में जो ब्राह्मण क्षत्रियको शूद्राका निषेधहै वह निंदाकेही लियेहै १५ ॥

शूद्रावेदीपतत्यत्रेरुतथ्यतनयस्यच । शौनकस्यसुतोत्पत्त्यातदपत्यतयाभृगोः १६ ॥

प० । शूद्रावेदी पतति अत्रेः उतथ्यतनयस्य च शौनकस्य सुतोत्पत्त्या तदपत्यतया भृगोः ॥

यो० । शूद्रावेदी पतति इति अत्रेः उतथ्यतनयस्य (गौतमस्य) च मतं — सुतोत्पत्त्या पतति इति शौनकस्यमतं — तदपत्यतया (सुतसुतोत्पत्त्या) पतति इति भृगोर्मतं — मतं अस्तीति सर्वत्रशेषः ॥

भा० । जो शूद्रा को विवाहै वही पतित होता है यहमत अत्रि और गौतमऋषि का—और शूद्रा में पुत्रकी उत्पत्ति से पतितहोताहै यहमत शौनकका—और पुत्रकेपुत्र होनेपर पतित होता है यहमत भृगुका है ॥

ता० । अत्रि और गौतम इन दोनों ऋषियोंका यह मतहै कि शूद्राके विवाहतेही ब्राह्मण पतितहोताहै—और शौनक ऋषिका यहमतहै कि शूद्रामें लड़का उत्पन्नहोतेही क्षत्रिय पतित होताहै पहिले नहीं—और भृगुका यहमतहै कि लड़केका लड़का होनेपर वैश्य पतितहोता है पहिले नहीं—ये तीन महर्षियोंके मतोंकी व्यवस्थाके असंभवमें भिन्न२ विकल्पका अयोगहोनेसे मेधातिथि और गोविंदराजका तो यहमतहै कि शूद्राको जो विवाहै वह पतितहोताहै यह पूर्वोक्त शूद्रा विवाहका निषेधहै—और पुत्रकी उत्पत्तिसे पतितहोताहै यह दैवसे हुये शूद्रा के विवाहके पीछे ऋतुकालमें गमनसे सुतकी उत्पत्तिसे पतित होताहै यह शौनकका मतहै—और तदपत्यतयापतति इसका यह अभिप्राय है कि जिसके शूद्रा केही अपत्य हों इतर न हों वह पतित होताहै इससे यह सिद्ध हुआ कि ऋतुकाल में ही गमन करै और अन्य वर्ण की स्त्रियों में यदि संतान होय तो शूद्रा में गमन न करै १६ ॥

शूद्रांशयनमारोप्यब्राह्मणोयात्यधोगतिम्।जनयित्वासुतंतस्यांब्राह्मण्यादेवहीयते १७॥

प० । शूद्रां शयनं आरोप्य ब्राह्मणः याति अधोगतिम् जनयित्वा सुतं तस्यां ब्राह्मण्यात् एव हीयते ॥

यो० । ब्राह्मणः शूद्रां शयनं आरोप्य अधोगतिं (नरकं) याति — तस्यां सुतं जनयित्वा ब्राह्मण्यात् एव हीयते ॥

भा० ता० । अपने वर्ण की स्त्री के न विवाहनेपर जो शूद्रा कोही विवाहै वह ब्राह्मण यदि शूद्राको अपनी शय्यापर सुलावे तो नरकको जाताहै और उसमें सुत (पुत्र) को पैदाकरके तो ब्राह्मणत्व सेही रहित होजाता है १७ ॥

दैवपित्र्यातिथेयानितत्प्रधानानियस्यतु।नाश्नन्तिपितृदेवास्तन्नचस्वर्गंसगच्छति १८॥

प० । दैवपित्र्यातिथेयानि तत्प्रधानानि यस्य तु न अश्नंति पितृदेवाः तत् न च स्वर्गं सः गच्छति ॥

यो० यस्य दैवपित्र्यातिथेयानि—तत्प्रधानानि (भवंति) तत् (हव्य आदिकं) पितृदेवाः न अश्नंति—चपुनः सः स्वर्गं न गच्छति ॥

भा० । जिस मनुष्यके देवता पितर अतिथि इनतीनोंके निमित्त कियेकर्म शूद्रा की प्रधानता से होते हैं उन कर्मों के हव्य कव्यको पितर और देवता नहीं खाते और वह भी स्वर्ग को नहीं जाता है ॥

ता० । जो मनुष्य किसी प्रकार सवर्णा के क्रम से शूद्राको भी विवाहले तब उसके भार्या होनेपर कियेहुये—दैव (होमादि) पित्र्य (श्राद्धआदि) और अतिथि भोजन आदि जो शूद्रा के संग से कियेहुये कर्म हैं उन कर्मों के हव्य और कव्यको पितर और देवता नहीं खाते और उस अतिथि के सत्कार आदि से वह ब्राह्मण स्वर्ग कोभी नहीं जाता—और जो मनुष्य अज्ञान से सजातीय स्त्रीके समीप होने विजातीय से श्राद्ध आदिके अन्नको सिद्धकरावे वहपतित होता है[१] वह निषेध समीप होनेपर है और यह निषेध असमीप होनेपर है १८ ॥

वृषलीफेनपीतस्यनिःश्वासोपहतस्यच । तस्यांचैवप्रसूतस्यनिष्कृतिर्नविधीयते १९ ॥

प० । वृषलीफेनपीतस्य निःश्वासोपहतस्य च तस्यां च एव प्रसूतस्य निष्कृतिः न विधीयते ॥

यो० । वृषलीफेनपीतस्य चपुनः (वृषल्याः) निःश्वासोपहतस्य—चपुनः तस्यांप्रसूतस्य निष्कृतिः (शुद्धिः) (शास्त्रेण) न विधीयते—शास्त्रे एतेषां प्रायश्चित्तं नास्तीत्यर्थः ॥

भा० । ता० । शूद्रा के ओष्ठ का पिया है रस जिसने—और एक शय्यापर सोते समय जिसके देहपर शूद्रा केश्वासकी पवन पड़ीहो—और शूद्रामें पैदाहुये अपत्यकी शास्त्रमें निष्कृति (शुद्धि) नहीं कही है अर्थात् शूद्रा के अधरपान—शूद्रा के संग शय्या पर शयन—और ऋतुकाल में शूद्रा के संग गमन—न करै १९ ॥

चतुर्णामपिवर्णानांप्रेत्यचेहहिताहितान्।अष्टाविमान्समासेनस्त्रीविवाहान्निबोधत २० ॥

प० । चतुर्णां अपि वर्णानां प्रेत्य च इह हिताहितान् अष्टौ इमान् समासेन स्त्रीविवाहान् निबोधत ॥

यो० । चतुर्णां अपि वर्णानां प्रेत्य चपुनः इह हिताहितान् इमान् अष्टौ स्त्रीविवाहान् समासेन निबोधत (यूयं शृणुत) ॥

भा० । ता० । ब्राह्मण आदि चारों वर्णों के इस लोक और लोक में हितकारी और अहित-कारी स्त्री की प्राप्तिके कारण इन आठ विवाहों को संक्षेपसे तुम सुनो २० ॥

---

१. यस्तुसंस्कारयेन्मोहात्समजात्यास्थितयान्यया ॥

ब्राह्मोदैवस्तथैवार्षःप्राजापत्यस्तथासुरः।गान्धर्वोराक्षसश्चैवपैशाचश्चाष्टमोऽधमः २१॥

प० । ब्राह्मः दैवः तथा एव आर्षः प्राजापत्यः तथा आसुरः गांधर्वः राक्षसः च एव पैशाचः च अष्टमः अधमः ॥

यो० । ब्राह्मः १ — दैवः २ तथैव आर्षः ३ प्राजापत्यः ४ तथा आसुरः ५ गांधर्वः ६ चपुनः राक्षसः ७ चपुनः अधमः अष्टमः पैशाचः ८ एते अष्टौ नामभिः कथिताः ॥

भा० । ता० । ये गांधर्व आदि नामों से दिखाये आठ विवाह हैं और ये इनके नाम शास्त्र में व्यवहार के और स्तुति वा निंदा के लिये लिखेहैं ब्रह्म के समान ब्राह्म—राक्षस के समान राक्षस इसप्रकार इनका अर्थ है और इत्यादि अर्थ नहींहै कि ब्रह्मा जिसका देवताहो सो ब्राह्म क्योंकि विवाहोंके देवता ब्रह्माआदि असंभव हैं २१ ॥

योयस्यधर्म्योवर्णस्यगुणदोषौचयस्ययौ।तद्वःसर्वंप्रवक्ष्यामिप्रसवेचगुणागुणान् २२॥

प० । यः यस्य धर्म्यः वर्णस्य गुणदोषौ च यस्य यौ तत् वः सर्वं प्रवक्ष्यामि प्रसवे च गुणागुणान् ॥

यो० । यस्य वर्णस्य यः (विवाहः) धर्म्यः — यस्य (विवाहस्य) यौ गुणदोषौ तत्सर्वं चपुनः प्रसवे गुणागुणान् वः (युष्मभ्यं) प्रवक्ष्यामि ॥

भा० । ता० । जिस वर्णका जो विवाह धर्म्य (धर्मसे किया) से कियाहै और जिस विवाहके जो गुण और दोष हैं—और जिस विवाहसे पैदाहुई संतान में जो गुण और अवगुण हैं वह सब तुमको कहताहूं—यह कथन शिष्योंके सुखके लियेहै २२ ॥

षडानुपूर्व्याविप्रस्यक्षत्रस्यचतुरोऽवरान्।विट्शूद्रयोस्तुतानेवविद्याद्धर्म्यान्नराक्षसान्२३॥

प० । षट् आनुपूर्व्या विप्रस्य क्षत्रस्य चतुरः अवरान् विट्शूद्रयोः तु तान् एव विद्यात् धर्म्यान् न राक्षसान् ॥

यो० । विप्रस्य (ब्राह्मणस्य) आनुपूर्व्या षट् — क्षत्रस्य अवरान् चतुरः — तुपुनः विट्शूद्रयोः तान् एव — धर्म्यान् विद्यात् राक्षसान् न ॥

भा० । ता० । ब्राह्मणको क्रमसे कहेहुये पहिले छः और क्षत्रियको पीछे कहे चार—और वैश्य और शूद्रको भी राक्षसको छोड़कर वेहीचार—धर्मके विवाह जानने २३ ॥

चतुरोब्राह्मणस्याद्यान्प्रशस्तान्कवयोविदुः।राक्षसंक्षत्रियस्यैकमासुरंवैश्यशूद्रयोः २४॥

प० । चतुरः ब्राह्मणस्य आद्यान् प्रशस्तान् कवयः विदुः राक्षसं क्षत्रियस्य एकं आसुरं वैश्यशूद्रयोः ॥

यो० । ब्राह्मणस्य आद्यान्चतुरः प्रशस्तान् — क्षत्रियस्य एकं राक्षसं — (प्रशस्तं) वैश्यशूद्रयोः आसुरं (प्रशस्तं) कवयः विदुः (जानंति) ॥

भा० । ब्राह्मणको पहिले चार—क्षत्रियको एक राक्षस—वैश्य और शूद्रको—एक आसुर विद्वानोंने श्रेष्ठ कहेहैं ॥

ता० । ब्राह्मणको पहिले पढ़ेहुये चार—और क्षत्रियको एक राक्षस—और वैश्य और शूद्रको एक आसुर—कवियोंने प्रशस्तजानेहैं—यहां पहिले कहे भी आसुर आदि विवाहोंको फिर कहना

निंदित जनानेकेलियेहै तिससे श्रेष्ठ विवाहके न होनेपर निकृष्ट विवाहोंको भी करले—इसीप्रकार आगे भी निषिद्धका त्याग समझना २४ ॥

पञ्चानांतुत्रयोधर्म्याद्वावधर्म्यौस्मृताविह । पैशाचश्चासुरश्चैवनकर्त्तव्यौकदाचन २५ ॥

प० । पंचानां तु त्रयः धर्म्याः द्वौ अधर्म्यौ स्मृतौ इह पैशाचः च आसुरः च एव न कर्त्तव्यौ कदाचन ॥

यो० । पंचानांत्रयः धर्म्याः—द्वौ अधर्म्यौ इह स्मृतौ—पैशाचः चपुनः आसुरः कदाचन न कर्त्तव्यौ ॥

भा० । पिछले पांचोंमें तीन विवाह(प्राजापत्य गांधर्व राक्षस)धर्मसेहैं—और शेष दो अधर्म से कहेहैं पैशाच और आसुर ये दो विवाह कदाचित् भी न करने ॥

ता० । यहां पैशाचका निषेधहै इससे पिछले प्राजापत्य आदि पांचलेने उन पिछले पांचोंमें प्राजापत्य—गांधर्व—राक्षस—ये तीन धर्मके अनुकूलहैं तिन तीनोंमें प्राजापत्य क्षत्रिय आदिको अप्राप्तथा यहांपर विधानाकिया—और ब्राह्मणको पहिले कहेहुये का अनुवादकियाहै और गांधर्व चारों वर्णोंको प्राप्तहै इससे उसका वर्णन भी अनुवादके लियेहै—और वैश्य और शूद्रके लिये राक्षस विवाहका विधानहै—क्षत्रियकी वृत्तिमें टिकेहुये भी ब्राह्मणको आसुर और पैशाचनहीं करने इस हेतु सामान्यतासे चारों वर्णोंको निषिद्ध हैं—और जिसवर्णको जिस विवाह के विधि निषेधहैं उसको उस विवाहमें विकल्पहै परन्तु विहित विवाह न होय तो निषिद्धकोकरै २५ ॥

पृथक्पृथग्वामिश्रौवाविवाहौपूर्वचोदितौ।गान्धर्वोराक्षसश्चैवधर्म्यौक्षत्रस्यतौस्मृतौ २६

प० । पृथक् पृथक् वा मिश्रौ वा विवाहौ पूर्वचोदितौ गांधर्वः राक्षसः च एव धर्म्यौ क्षत्रस्य तौ स्मृतौ ॥

यो० । गांधर्वः चपुनः राक्षसः (इमौ) पूर्वचोदितौ यौ विवाहौ (स्तः) तौ पृथक् पृथक् वा मिश्रौ क्षत्रस्य धर्म्यौ स्मृतौ—मन्वादिभिरितिशेषः ॥

भा० । ता० । गांधर्व और राक्षस ये जो दो पूर्वकहेहुये विवाहहैं वे दोनों पृथक् पृथक् वा मिलेहुये क्षत्रियको धर्मविवाह कहेहैं—क्योंकि जब स्त्री पुरुषका परस्पर संवादहोनेपर विवाहकरने वाला युद्धमें जीतकर उसको विवाहले वहां गांधर्व और राक्षस दोनोंका मेलहोजाताहै २६ ॥

आच्छाद्यचार्चयित्वाचश्रुतिशीलवतेस्वयम् ।
आहूयदानंकन्यायाब्राह्मोधर्मःप्रकीर्त्तितः २७ ॥

प० । आच्छाद्य च अर्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयं आहूय दानं कन्यायाः ब्राह्मः धर्मः प्रकीर्त्तितः ॥

यो० । (कन्यावरौ वस्त्रालंकारादिना) आच्छाद्य चपुनः अर्चयित्वा स्वयं आहूय श्रुतिशीलवते कन्यायाः दानं ब्राह्मः धर्मः (मन्वादिभिः) प्रकीर्त्तितः ॥

भा० । ता० । कन्या और वरको उत्तम वस्त्र पहनाय और भूषणोंसे भूषितकरके और विद्या और आचरणवाले वरको स्वयं बुलाकर जो कन्याका दान वह धर्म ब्राह्म विवाहका मनु आदिने कहाहै २७ ॥

यज्ञेतुवितते सम्यगृत्विजेकर्मकुर्वते । अलंकृत्यसुतादानंदैवंधर्मंप्रचक्षते २८ ॥

प० । यज्ञे तु वितते सम्यक् ऋत्विजे कर्म कुर्वते अलंकृत्य सुतादानं दैवं धर्मं प्रचक्षते ॥

यो० । वितते यज्ञे सम्यक् कर्म कुर्वते ऋत्विजे अलंकृत्य यत् सुतादानं (अस्ति तं मुनयः) दैवं धर्मं प्रचक्षते ॥

भा० । ता० । प्रारंभ कियेहुये यज्ञमें भलीप्रकार शास्त्रोक्तकर्मकरतेहुये ऋत्विजको—वस्त्र और भूषणसे शोभितकरके जो कन्याकादान उसे मुनी दैवधर्म कहतेहैं २८ ॥

एकंगोमिथुनंद्वेवावरादादायधर्मतः । कन्याप्रदानंविधिवदार्षोधर्मःसउच्यते २९ ॥

प० । एकं गोमिथुनं द्वे वा वरात् आदाय धर्मतः कन्याप्रदानं विधिवत् आर्षः धर्मः सः उच्यते ॥

यो० । वरात् एकं गोमिथुनं वा द्वे (गोमिथुने) धर्मतः आदाय (यत्) विधिवत् कन्याप्रदानं—सः आर्षः धर्मः उच्यते मुनिभिरितिशेषः ॥

भा० । ता० । एक गौका मिथुन (एक गौ १ बैल) को वा दो गोमिथुन यज्ञ आदिरूप विवाहके धर्मके लिये वरसे लेकर जो विधिसे कन्याकादान उसे आर्ष धर्म कहतेहैं—अर्थात् शुल्क रूपसे गो मिथुनको लेकर न दे २९ ॥

सहनौचरतांधर्ममितिवाचानुभाष्यच।कन्याप्रदानमभ्यर्च्यप्राजापत्योविधिःस्मृतः ३०

प० । सह नौ चरतां धर्मं इति वाचा अनुभाष्य च कन्याप्रदानं अभ्यर्च्य प्राजापत्यः विधिः स्मृतः ॥

यो० । नौ (युवां) सहधर्मंचरतां इतिवाचा अनुभाष्य-चपुनः अभ्यर्च्य यत् कन्याप्रदानं सः विधिः प्राजापत्यः (मन्वादिभिः) स्मृतः ॥

भा० । ता० । तुमदोनों मिलकर धर्मकरो ऐसे वाणी से कहकर और कन्या और वरकी वस्त्र आदि से पूजाकरके जो कन्याका दानहै वह विधि मनुआदिने प्राजापत्य विवाहकीकहीहै ३० ॥

ज्ञातिभ्योद्रविणंदत्वाकन्यायैचैवशक्तितः।कन्याप्रदानंस्वाच्छन्द्यादासुरोधर्मउच्यते३१

प० । ज्ञातिभ्यः द्रविणं दत्वा कन्यायै च एव शक्तितः कन्याप्रदानं स्वाच्छन्द्यात् आसुरः धर्मः उच्यते ॥

यो० । ज्ञातिभ्यः चपुनः कन्यायै शक्तितः द्रविणंदत्वा स्वाच्छन्द्यात् यत् कन्याप्रदानं सः आसुरः धर्मः मुनिभिः उच्यते ॥

भा० । ता० । कन्याकीजातिके मनुष्यों और कन्याकोशक्ति के अनुसार धनदेकर जो अपनी इच्छासे कन्याका आप्रदान (स्वीकार) उसे आसुरधर्मकहतेहैं—इसमें जो धनदियाजाताहै वह आर्षविवाह के समान परिमित नहींहै ३१ ॥

इच्छयान्योन्यसंयोगःकन्यायाश्चवरस्यच।गान्धर्वःसतुविज्ञेयोमैथुन्यःकामसंभवः३२॥

प० । इच्छया अन्योन्यसंयोगः कन्यायाः च वरस्य च गांधर्वः सः तु विज्ञेयः मैथुन्यः कामसम्भवः ॥

यो० । कन्यायाः चपुनः वरस्य इच्छया यः अन्योन्यसंयोगः मैथुन्यः कामसंभवः सः गांधर्वः विज्ञेयः ॥

भा० । ता० । कन्या और वरके परस्पर अनुरागसे जो परस्पर संयोगहै मैथुन के लिये हित-कारी और कामना से हुये उसविवाहको गांधर्व जानना-यद्यपि सबविवाह मैथुनकेही लिये हैं तथापि मैथुन होनेके पश्चात्भी इसविवाहके होनेमें यह विवाह विरुद्धनहीं यह दिखानेको इस विवाह को मैथुन्यकहाहै ३२ ॥

हत्वाछित्त्वाचभित्त्वाचक्रोशन्तींरुदतींगृहात्।प्रसह्यकन्याहरणंराक्षसोविधिरुच्यते३३॥

प० । हत्वा छित्त्वा च भित्त्वा च क्रोशंतीं रुदतीं गृहात् प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसः विधिः उच्यते ॥

यो० । हत्वा — छित्त्वा — चपुनः भित्त्वा क्रोशंतीं रुदतीं (कन्यांसतीं) गृहात् प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसः विधिः उच्यते ॥

भा० । कन्या के पक्षियोंकोमार-छेदन-भेदनकरके बलात्कारसे जो घरमेंसे कन्याको हरना उसे राक्षस विवाह की विधि कहतेहैं ॥

ता० । बलात्कार से जो कन्याका हरना उसे राक्षसविवाह कहतेहैं इतनाही राक्षसविवाहका स्वरूपहै और जब कन्या के हरनेवाले की प्रबलता देखकर कन्या के पिताआदि उपेक्षाकरैं अ-र्थात् चुपचाप बैठेरहैं तब हनन (मारना) आदि आवश्यक नहींहै और यदि कन्या के पक्ष के मनुष्य प्रतिपक्षी (लड़ाकाहैं) होजांय तब तो हननआदि भी करने-कन्या के पक्षियों को मार कर और उनके अंगोंको छेदकर-और परकोटाआदि को तोड़कर-हाभाई-हानाथ-यहहरताहै ऐसे कहती और रोतीहुई कन्याको जो घरसेहरै वह राक्षस विवाह है-इसविवाह में कन्याकी इच्छानहीं होती और गांधर्व में होतीहै ३३ ॥

सुप्तांमत्तांप्रमत्तांवारहोयत्रोपगच्छति।सपापिष्ठोविवाहानांपैशाचश्चाष्टमोऽधमः ३४॥

प० । सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहः यत्र उपगच्छति सः पापिष्ठः विवाहानां पैशाचः च अष्टमः अधमः ॥

यो० । यत्र सुप्तां — मत्तां — प्रमत्तां वा — रहः (एकांते) उपगच्छति — सः पापिष्ठः विवाहानां (मध्ये) अधमः पैशाचः अष्टमः ज्ञेयः ॥

भा० । ता० । सोती-मदिरा के मदसे विह्वल-और प्रमत्त (शीलस्वभावहीन) कन्याकेसंग एकांत में जो मैथुन से प्रवृत्तहो वह आठ विवाहों के मध्यमें पापी और अधम आठवां पैशाच कहाहै ३४ ॥

अद्भिरेवद्विजाग्र्याणांकन्यादानंविशिष्यते।इतरेषांतुवर्णानामितरेतरकाम्यया३५॥

प० । अद्भिः एव द्विजाग्र्याणां कन्यादानं विशिष्यते इतरेषां तु वर्णानां इतरेतरकाम्यया ॥

यो० । द्विजाग्र्याणां (विप्राणां) अद्भिः एव तुपुनः इतरेषां (क्षत्रियादीनां) इतरेतरकाम्यया कन्यादानं विशिष्यते

भा० । ता० । ब्राह्मणों को कन्याकादान जलसे संकल्पपूर्वकही श्रेष्ठकहाहै-और क्षत्रियआदि तीनोंवर्णों को तो कन्याकादान परस्पर की इच्छासे वाणीसेभी श्रेष्ठकहाहै अर्थात् जलसेहो वा वाणीसेहो इसमें कोई नियमनहींहै ३५ ॥

योयस्यैषांविवाहानांमनुनाकीर्त्तितोगुणः । सर्वंशृणुततंविप्राःसर्वंकीर्त्तयतोमम ३६ ॥

प० । यः यस्य एषां विवाहानां मनुना कीर्त्तितः गुणः सर्वं शृणुत तं विप्राः सर्वं कीर्त्तयतः मम ॥

यो० । हेविप्राः एषां विवाहानां (मध्ये) यस्य विवाहस्य यः गुणः मनुना कीर्त्तितः तं सर्वं — सर्वंकीर्त्तयतः मम शृणुत — पूर्णमितिशेषः ॥

भा० । इन आठों विवाहों में जिस विवाह का जो गुण मनुने कहा है उस सबको कहते हुये मुझ से हे ब्राह्मणो तुम सुनो ॥

ता० । यद्यपि पहिलेभी विवाहोंके गुण दोषोंकी प्रतिज्ञाकरचुकेहैं तथापि बहुतसीबातें कहनी हैं इससे विशेषजनाने के लिये फिर प्रतिज्ञाकी है इनविवाहों में जिसविवाह का जो गुण मनुने कहाहै उस सबको सम्पूर्ण कहतेहुये मेरे सकाशसे हे ब्राह्मणो तुम सुनो ३६ ॥

दशपूर्वान्परान्वंश्यानात्मानंचैकविंशकम् । ब्राह्मीपुत्रःसुकृतकृन्मोचयेदेनसःपितॄन् ३७ ॥

प० । दश पूर्वान् परान् वंश्यान् आत्मानं च एकविंशकं ब्राह्मीपुत्रः सुकृतकृत् मोचयेत् एनसः पितॄन् ॥

यो० । सुकृतकृत् ब्राह्मीपुत्रः दशपूर्वान् दशपरान् वंश्यान् पितॄन् चपुनः एकविंशकं आत्मानं एनसः (पापात्) मोचयेत् ॥

भा० । ता० । पुण्यका करनेवाला ब्राह्म विवाह से विवाही हुई स्त्री का पुत्र दश पिछले अपने वंश के पिता आदि को और दश अगले अपने पुत्र आदि को और इक्कीसवें अपने आत्मा को पाप से छुटाता है अर्थात् उसके कुल में ऐसे पुण्यात्मा होते हैं जिन के पापका सम्बन्ध ही नहीं होता ३७ ॥

दैवोढाजःसुतश्चैवसप्तसप्तपरावरान् । आर्षोढाजःसुतस्त्रींस्त्रीन्षट्षट्कायोढजःसुतः ३८

प० । दैवोढाजः सुतः च एव सप्त सप्त परावरान् आर्षोढाजः सुतः त्रीन् त्रीन् षट् षट् कायोढजः सुतः ॥

यो० । चपुनः दैवोढाजः सुतः परावरान् सप्तसप्त — आर्षोढाजः सुतः त्रीन् त्रीन् — कायोढजः षट् षट् (वंश्यान् एनसः मोचयेत्)॥

भा० । दैव विवाहसे विवाही स्त्री का पुत्र पिछले और अगले सात २ को और आर्षविवाह से विवाहीहुई स्त्री का पुत्र तीन २ को — और प्राजापत्य से विवाहीहुई स्त्री का पुत्र छः २ को और अपने आत्मा को नरक से छुटाताहै ॥

ता० । दैव विवाह से विवाहीहुई स्त्री का पुत्र सात पिता आदि और सातपुत्र आदिको — और आर्ष विवाहसे विवाही हुई स्त्री का पुत्र तीनपिता आदि और तीन पुत्र आदि को — और प्राजापत्य विवाह से विवाही हुई स्त्री का पुत्र छः पिता आदि और छः पुत्र आदिको और अपने आत्माको पाप से छुटाता है — ब्राह्मआदि आठ विवाहों के क्रमके अनुसार न्यूनफलवाले आर्ष विवाहको अधिक फलवाले प्राजापत्य से पहिले इस श्लोक में कहा है — कदाचित् कोई कहे कि उस पिछले २० वें श्लोकमें प्राजापत्यसे पहिले आर्ष विवाहको इसलिये कहाहै कि २५ श्लोकमें

पिछले पांच विवाहों में तीन जो धर्म विवाह कहेहैं उनतीनों में प्राजापत्यको भी ग्रहणहो—नहीं तो आर्ष विवाहका ही ग्रहणहोता ३८ ॥

ब्राह्मादिषुविवाहेषुचतुर्ष्वेवानुपूर्वशः। ब्रह्मवर्चस्विनःपुत्राजायन्तेशिष्टसंमताः ३९ ॥

प०। ब्राह्मादिषु विवाहेषु चतुर्षु एव अनुपूर्वशः ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्राः जायंते शिष्टसंमताः ॥

यो०। ब्राह्मादिषु चतुर्षु एव विवाहेषु अनुपूर्वशः शिष्टसंमताः ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्राः जायंते ॥

भा०। ता०। उत्पत्ति में गुण और अवगुण जो कहेथे वे कहते हैं—ब्राह्म आदि चारविवाहों में वेद का अध्ययन—संपत्ति और तेज से युक्त और शिष्टों के प्यारे पुत्र होते हैं ३९ ॥

रूपसत्त्वगुणोपेताधनवन्तोयशस्विनः। पर्याप्तभोगाधर्मिष्ठाजीवन्तिचशतंसमाः ४० ॥

प०। रूपसत्त्वगुणोपेताः धनवंतः यशस्विनः पर्याप्तभोगाः धर्मिष्ठाः जीवंति च शतं समाः ॥

यो०। रूपसत्त्वगुणोपेताः धनवंतः यशस्विनः पर्याप्तभोगाः धर्मिष्ठाः (पुत्राः जायंते) चपुनः शतंसमाः जीवंति ॥

भा०। ता०। मनोहररूप—सत्त्वगुण (वेदका अभ्यास तपआदि) इनसे युक्त—धन और यश वाले और यथेच्छ वस्त्र माला गन्ध आदि भोगों के भोक्ता—धार्मिक पुत्र पूर्वोक्त विवाहों से होते हैं और सौ वर्ष पर्यंत जीवते हैं ४० ॥

इतरेषुतुशिष्टेषुनृशंसानृतवादिनः। जायन्तेदुर्विवाहेषुब्रह्मधर्मद्विषःसुताः ४१ ॥

प०। इतरेषु तु शिष्टेषु नृशंसानृतवादिनः जायंते दुर्विवाहेषु ब्रह्मधर्मद्विषः सुताः ॥

यो०। तुपुनः इतरेषु शिष्टेषु दुर्विवाहेषु नृशंसानृतवादिनः ब्रह्मधर्मद्विषः सुताः जायंते ॥

भा०। ता०। ब्राह्मआदि चारविवाहों से इतर आसुर आदि विवाहोंमें क्रूरकर्मी झूंठे वेद और धर्म के द्वेष करनेवाले पुत्र होतेहैं ४१ ॥

अनिन्दितैःस्त्रीविवाहैरनिन्द्याभवतिप्रजा ॥
निन्दितैर्निन्दितानॄणांतस्मान्निन्द्यान्विवर्जयेत् ४२ ॥

प०। अनिंदितैः स्त्रीविवाहैः अनिंद्या भवति प्रजा निन्दितैः निंदिता नॄणां तस्मात् निंद्यान् विवर्जयेत् ॥

यो०। नॄणां अनिंदितैः स्त्रीविवाहैः अनिंद्या प्रजा—निंदितैः स्त्रीविवाहैः निंदिता प्रजा भवति तस्मात् निंद्यान् विवाहान् विवर्जयेत् ॥

भा०। ता०। सामान्य से सब विवाहों का फल कहतेहैं—कि अनिषिद्ध (उत्तम) विवाहों से उत्तम और निंदित विवाहों से निंदित प्रजा मनुष्यों की होती है तिससे निंदित विवाहों को वर्जदे ४२ ॥

पाणिग्रहणसंस्कारःसवर्णासूपदिश्यते। असवर्णास्वयंज्ञेयोविधिरुद्वाहकर्मणि ४३ ॥

प०। पाणिग्रहणसंस्कारः सवर्णासु उपदिश्यते असवर्णासु अयं ज्ञेयः विधिः उद्वाहकर्मणि ॥

यो०। सवर्णासु (स्त्रीषु) पाणिग्रहणसंस्कारः (विवाहः शास्त्रेण) उपदिश्यते—असवर्णासु स्त्रीषु उद्वाहकर्मणि अयं विधिः ज्ञेयः विद्वद्भिरिति शेषः ॥

भा० । ता० । सजातीय स्त्री के विवाह करने में पाणिग्रहण (हाथपकड़कर) संस्कार शास्त्र में कहा है और विजातीय स्त्रियों के विवाह के करने में यहविधि पण्डितों को जाननी ४३ ॥

शरःक्षत्रियया ग्राह्यःप्रतोदोवैश्यकन्यया । वसनस्यदशाग्राह्याशूद्रयोत्कृष्टवेदने ४४ ॥

प० । शरः क्षत्रियया ग्राह्यः प्रतोदः वैश्यकन्यया वसनस्य दशा ग्राह्या शूद्रया उत्कृष्टवेदने ॥

यो० । उत्कृष्टवेदने क्षत्रियया शरः—वैश्यकन्यया प्रतोदः ग्राह्यः—शूद्रकन्यया वसनस्य दशा ग्राह्या ॥

भा० । ता० । अपने से उत्तम (ब्राह्मण) के विवाहमें क्षत्रियकी कन्या वर के हाथमें पकड़े हुये शर (बाण) को—और वैश्यकी कन्या ब्राह्मण और क्षत्रियके विवाह में वर के हाथमें पकड़े हुये प्रतोद (कोरड़ा) को—और शूद्रा तीनों द्विजातियों के विवाह में वर के पहनेहुये वस्त्र की दशा (दशावड़) का ग्रहणकरे ४४ ॥

ऋतुकालाभिगामीस्यात्स्वदारनिरतःसदा । पर्ववर्जंव्रजेच्चैनांतद्व्रतोरतिकाम्यया ४५ ॥

प० । ऋतुकालाभिगामी स्यात् स्वदारनिरतः सदा पर्ववर्जं व्रजेत् च एनां तद्व्रतः रतिकाम्यया ॥

यो० । स्वदारनिरतः (पुमान्) सदा ऋतुकालाभिगामी स्यात्—अपरः तद्व्रतः सन् रतिकाम्यया एनां पर्ववर्जम् व्रजेत् ॥

भा० । अपनीही स्त्री में रत (आसक्त) मनुष्य ऋतुकाल में गमनकरे और स्त्री सेंही है व्रत जिसका ऐसा मनुष्य रतिकी कामनासे पर्वोंको ऋतु वा अनृतुमें छोड़कर स्त्रीकेसंग गमनकरै ॥

ता० । जिसमें स्त्रियोंकी योनि में शोणित (रुधिर) दीखे ऐसे गर्भ धारण के योग्य कालको ऋतु कहतेहैं—मनुष्य उस ऋतुकालही में गमनकरै यह नियमविधिहै और परिसंख्याविधि नहीं है-क्योंकि अपने अर्थ का त्याग१-अन्य अर्थकी कल्पना२-और प्राप्त अर्थ का बाध३ ये तीनदोष परिसंख्या में होतेहैं—ऋतुकाल में भी राग से एक पक्षमें गमनप्राप्तहै इससे जिस पक्ष में प्राप्तहै उसमें विधिहोगी जैसे—समेयजेत—समस्थान में यज्ञकरे इसीसे ऋतुकाल में गमन के न करनेमें पराशर ने यह दोष कहाहै कि ऋतुकाल में स्नान की भार्या के समीप जो मनुष्य नहीं जाता वह घोरभ्रूणहत्या में पड़ताहै इसमें संशय नहींहै—और यह नियम उसके लिये है जिसके पुत्र पैदा न हुआहो—और पैदाहोताहीहै ब्राह्मण तीन ऋणवाला होताहै—यज्ञसे देवताओं के—प्रजा से पितरों के—वेदके पढ़नेसे ऋषियों के ऋणसे छूटताहै यह श्रुतिही इसमें प्रमाणहै इससे अन्य प्रमाणकी कल्पना नहीं करनी—और इसमें भी यही श्रुति इसमें प्रमाणहै कि मनुजी यह आगे वर्णन करेंगे कि पुत्रको जिसे चाहताहो वह युग्म (सम) रात्रियों में स्त्री का संगकरे—और पुत्र की उत्पत्ति का जो शास्त्रहै वह एक पुत्रके पैदाहोने परभी चरितार्थ होसक्ताहै और अधिकपुत्रों को मनुजीने कामनासे—कामजानितरान्विदुः—उत्पन्न कहाहै—और इस स्त्री में दश पुत्रों को पैदाकर यह मन्त्र तो अनेक पुत्रोंकी प्रशंसा का बोधकहै—और जातपुत्र (जिसके पुत्र पैदाहो-

१ ऋतुस्नातां तु यो भार्यां सन्निधौ नोपगच्छति घोरायां भ्रूणहत्यायां पच्यते नात्र संशयः ॥
२ यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः स्वाध्यायेन ऋषिभ्यः ॥
३ दशास्यां पुत्रानाधेहि ॥

लियाहो) कोभी ऋतुकालके गमन का नियम दशपुत्रतकहीनहीं है—और—स्वदारनिरतःसदा—यह पहिले कहआये हैं कि अपनी स्त्री में सदा रत रहै अन्य भार्य्या में गमन न करै—इसविधि से यह परिसंख्याही है—क्योंकि उक्त वाक्य अनर्थक नहोगा और अपनी स्त्री में गमन प्रशस्त है—और ऋतु के गमन न करने में दोषभी शास्त्र में है इससे यह नियमविधिभी नहींहै—और—पर्ववर्जंव्रजेच्चैनां—पर्वों—(अमावस्या आदि) को वर्जकर—और स्त्री की प्रीतिहै व्रत (संकल्प) जिसका ऐसा मनुष्य रतिकी कामनासे अर्थात् पुत्रकी उत्पत्तिकेलिये जो शास्त्रकी आज्ञा उससे नहीं—स्त्री के संग गमन (मैथुन) करै—सिद्धान्त यहहै कि केवल—अपूर्वविधि नियमविधि परिसंख्याविधि—ही यह नहीं है किंतु तीनों विधिही हैं—कि ऋतुमें गमन अवश्यमेव करै—अन्य की भार्या के संग गमन न करै—और ऋतुसे भिन्नकालमें भी स्त्री की प्रीति के लिये गमन करै—ये तीनों विधि क्रमसे हैं—और इससे गौतम ऋषिने कहाहै कि ऋतुमें और पर्वोंको छोड़कर अनृतु में गमन करै और याज्ञवल्क्य ऋषि ने भी कहा है कि अथवा स्त्रियों के वर को स्मरण करता और पर्वोंको वर्जता हुआ मनुष्य यथेच्छ गमन वाला हो ४५ ॥

ऋतुःस्वाभाविकःस्त्रीणांरात्रयःषोडशस्मृताः।चतुर्भिरितरैःसार्द्धमहोभिःसद्विगर्हितैः॥४६॥

प० । ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः चतुर्भिः इतरैः सार्द्धं अहोभिः सद्विगर्हितैः ॥

यो० । सद्विगर्हितैः इतरैः चतुर्भिः अहोभिः सार्द्धं स्त्रीणां स्वाभाविकः ऋतुः षोडश रात्रयः स्मृताः ॥

भा० । ता० । रुधिरके दीखने से आदि शिष्टों से निंदित जो चारदिन उन सहित सोलह १६ अहोरात्र स्त्रियोंका स्वाभाविक ऋतु (जो मास २ में होताहै) कहा है—और व्याधि आदि से तो न्यून वा अधिकभी होजाताहै—इसश्लोकमें रात्रि और अहः(दिन)शब्दसे अहोरात्रलेतेहैं ४६ ॥

तासामाद्याश्चतस्रस्तुनिन्दितैकादशीचया।त्रयोदशीचशेषास्तुप्रशस्तादशरात्रयः४७

प० । तासां आद्याः चतस्रः तु निंदिता एकादशी च या त्रयोदशी च शेषाः तु प्रशस्ताः दश रात्रयः ॥

यो० । तासां(षोडशानांमध्ये) आद्याः चतस्रः(निंदिताः भवंति)चपुनः या एकादशी रात्रिः चपुनः त्रयोदशी निंदिता (भवति) तुपुनः शेषाः दशरात्रयः प्रशस्ताः (भवंति) ॥

भा० । ता० । उन सोलह रात्रियों के मध्यमें रुधिरके दीखनेसे आदि जो ४ चार रात्रिहैं वे और ग्यारवीं और तेरवीं रात्रि निंदित हैं और शेष दशरात्रि श्रेष्ठ कही हैं ४७ ॥

युग्मासुपुत्राजायन्तेस्त्रियोऽयुग्मासुरात्रिषु ॥
तस्माद्युग्मासुपुत्रार्थीसंविशेदार्त्तवेस्त्रियम्४८ ।

प० । युग्मासु पुत्राः जायंते स्त्रियः अयुग्मासु रात्रिषु तस्मात् युग्मासु पुत्रार्थी संविशेत् आर्त्तवे स्त्रियम् ॥

---

१ ऋतौउपेयात् अनृतौचपर्ववर्जम् ॥
२ यथाकामीभवेद्वापि स्त्रीणांवरमनुस्मरन् ॥

यो० । युग्मासुरात्रिषु पुत्राः अयुग्मासु स्त्रियः (कन्याः) जायंते तस्मात् पुत्रार्थी आर्त्तवे स्त्रियं युग्मासु संविशेत् (गच्छेत्) ॥

भा० । ता० । पूर्वोक्त दश रात्रियोंमें युग्म (छठी आठवीं आदि) रात्रियोंमें पुत्र और अयुग्म (पांचवीं सातवीं आदि) रात्रियोंमें कन्या पैदाहोती हैं इससे पुत्रकी जिसे इच्छा हो वह मनुष्य युग्मरात्रियोंमेंही ऋतुकेसमय स्त्रीका संगकरै ४८ ॥

पुमान्पुंसोऽधिकेशुक्रेस्त्रीभवत्यधिकेस्त्रियाःसमेपुमान्पुंस्त्रियौवाक्षीणेऽल्पेचविपर्ययः ४९

प० । पुमान् पुंसः अधिके शुक्रे स्त्री भवति अधिके स्त्रियाः समे अपुमान् पुंस्त्रियौ वा क्षीणे अल्पे च विपर्ययः ॥

यो० । पुंसः शुक्रे (बीजे) अधिकेसति पुमान्—स्त्रियाः शुक्रे अधिकेसति स्त्री (कन्या) भवति—(उभयोःशुक्रे) समेसति अपुमान् (नपुंसकं) भवति वा पुंस्त्रियौभवतः—उभयोः क्षीणे वा अल्पे शुक्रे सति विपर्ययः भवति ॥

भा० । ता० । पुरुषका बीर्य अधिकहोय तो अयुग्म रात्रियोंमेंभी पुत्र उत्पन्नहोताहै और स्त्रीका बीर्य अधिकहोय तो युग्म रात्रियोंमें भी कन्या पैदाहोतीहै इससे यह दिखाया कि अधिक और उत्तम भोजनसे अपने बीजकी अधिकता और अल्प और लघु भोजनसे स्त्रीके बीजकी अल्पता को जानकर अयुग्म रात्रियोंमें भी पुत्रका अर्थी मनुष्य गमनकरै—और स्त्री और पुरुषका बीजसमहोय तो नपुंसक पैदाहोता है वा जोड़िया लड़का लड़की पैदाहोतेहैं और यदि दोनोंका वीर्य क्षीण (निस्सार) अथवा अल्पहोय तो विपर्यय (गर्भका असंभव) होताहै ४९ ॥

निन्द्यास्वष्टासुचान्यासुस्त्रियोरात्रिषुवर्जयन् । ब्रह्मचार्येवभवतियत्रतत्राश्रमेवसन् ५०

प० । निंद्यासु अष्टासु च अन्यासु स्त्रियः रात्रिषु वर्जयन् ब्रह्मचारी एव भवति यत्र तत्र आश्रमे वसन् ॥

यो० । निंद्यासु (षट्सु) चपुनः अष्टासु अन्यासु रात्रिषु स्त्रियः वर्जयन्—यत्र तत्र आश्रमे वसन् सन् पुरुषः ब्रह्मचारी एव भवति ॥

भा० । पूर्वोक्त निंदित छः रात्रि और निंदित इतर आठ रात्रियोंको छोड़कर जिस तिस आश्रममें वसताहुआ मनुष्य ब्रह्मचारीही होताहै ॥

ता० । निषिद्ध जो पूर्वोक्त छः रात्रि और अन्य आठ जिन किन रात्रियोंमें स्त्रियोंको वर्जता और अर्थात् शेष पर्व भिन्न दो रात्रियोंमें गमनकरना और जिस किसी आश्रममें वसताहुआ मनुष्य ब्रह्मचारीहीहोताहै और जिस किसी आश्रममें वसताहुआ यह कथन वानप्रस्थकी अपेक्षासे है क्योंकि उसको भार्या सहित वनमें वासकहाहै और इसीसे ऋतुमें गमन भी करने का संभवहै—कदाचित् कोई कहे कि उसकी स्त्रीको ऋतुही नहींहोता—यह ठीक नहींहै क्योंकि पचासवर्षको मनुष्य वनमेंजाय और वर्षोंसे तीनगुणा मनुष्य एकगुनी अर्थात् तीसवर्षका पुरुष१०दशवर्षकी कन्याको विवाहै इस शास्त्रके देखनेसे ऋतुका संभवहोसक्ता है—और मेधातिथि तो यहकहते हैं कि जिसतिस आश्रममें वसताहुआ यह कथन इस अभिप्रायसेहै कि अनुवादमात्र गृहस्थ

१ वनं पंचाशतो व्रजेत् ॥
२ वर्षैरेकगुणांभार्यामुद्वहे त्त्रिगुणःपुमान् ॥

से इतर आश्रमोंमें जितेंद्रिय रहना कहाहै इससे दो रात्रियोंमें भी गमनकी अनुमति नहींहोस-
की—गोविंदराजने तो यहांपर यहकहा है कि जिसका पुत्र नष्टहोगयाहो और वह इतर आश्रममें
भी क्योंनहो उसको पुत्रकेलिये दो रात्रियोंमें गमनकरनेपर दोषाभावके लिये यहकथनहै—क्योंकि
जिसनिस आश्रम में वसताहुआ इस वचनसे और पुत्रार्थी स्त्रीका संगकरै इसप्रकरणसे पुत्रको
महान् उपकारी कहाहै—खेदकीबातहै कि विशेषव्याख्यानको न करतेहुये गोविंदराजने अपनी
स्त्रीमें रमणकरना संन्यासीको भी प्रकटतासे अंगीकारकिया ५० ॥

नकन्यायाःपिताविद्वान्गृह्णीयाच्छुल्कमण्वपि ।
गृह्णञ्छुल्कंहिलोभेनस्यान्नरोऽपत्यविक्रयी ५१ ॥

प० । न कन्यायाः पिता विद्वान् गृह्णीयात् शुल्कं अणु अपि गृह्णन् शुल्कं हि लोभेन स्यात् नरः अपत्यविक्रयी ॥

यो० । विद्वान् कन्यायाः पिता अणु अपि शुल्कं न गृह्णीयात्—हि (यतः) लोभेन शुल्कं गृह्णन् सन् नरः अपत्य विक्रयी स्यात् ॥

भा० । ता० । विद्वान् (पंडित वा बुद्धिवाला) अर्थात् उसधन के ग्रहण में दोषका ज्ञाता कन्याका पिता अणु अपि किंचित् भी शुल्क (कन्याका मोल) ग्रहण न करै क्योंकि शुल्कको ग्रहणकरताहुआ मनुष्य अपत्य (संतानके वेचनेवालाहोताहै) ५१ ॥

स्त्रीधनानितुयेमोहादुपजीवन्तिबान्धवाः।नारीयानानिवस्त्रंवातेपापायान्त्यधोगतिम्५२

प० । स्त्रीधनानि तु ये मोहात् उपजीवंति बान्धवाः नारीयानानि वस्त्रं वा ते पापाः यांति अधोगतिम् ॥

यो० । ये बान्धवाः मोहात् स्त्रीधनानि—नारीयानानि वा वस्त्रं उपजीवंति ते पापाः अधोगतिं (नरकं) यांति ॥

भा० । ता० । जो बंधुमोहसे स्त्रीधनोंको और स्त्रियोंके यानोंको—वा वस्त्रोंको ग्रहणकरतेहैं वे पापी नरकको जातेहैं—और यह दिखानेमात्रहै अर्थात् स्त्रीके सबप्रकारके धन ग्रहण करनेवालों को नरकहोताहै और यह स्त्रीधन वह लेना जो नवमः९ अध्यायमें६प्रकारका कहेंगे ५२ ॥

आर्षेगोमिथुनंशुल्कंकेचिदाहुर्मृषैवतत्।अल्पोऽप्येवंमहान्वापिविक्रयस्तावदेवसः५३॥

प० । आर्षे गोमिथुनं शुल्कं केचित् आहुः मृषा एव तत् अल्पः अपि एवं महान् वा अपि विक्रयः तावत् एव सः ॥

यो० । केचित् (आचार्याः) आर्षे (विवाहे) गोमिथुनं शुल्कं आहुः तत् मृषा एव (भवति) अल्पः अपि एवं महान् वा अपि सः शुल्कः तावत् विक्रय एव (भवति) ॥

भा० । आर्षविवाह में जो गोमिथुनरूप शुल्ककिन्हीं आचार्योंने कहाहै वह मिथ्या है क्योंकि अल्पहो वा महानहो वह उतना भी विक्रय (वेचना) ही है ॥

ता० । कोई आचार्य यहकहतेहैं कि आर्ष विवाहमें वरसे गोमिथुन शुल्क ग्रहणकरना वह असत्य है क्योंकि अल्प मूल्य से अल्पहो अथवा अधिक मूल्य से महानहो तो भी वह विक्रय

१. हंतगोविंदराजेनविशेषम् विवृण्वताव्यक्तमंगीकृतमृतौस्वदारस्मरणंयतेः ॥

(बेचना) ही है-और जो एक गोमिथुन को वरसे लेना पहिलेकहा है वह अन्य ऋषियों का मत है यह गोविंदराज कहते हैं-सोठीकनहीं क्योंकि मनुकेमत में आर्षविवाहका लक्षणही न होगा मनुने वरसे गोमिथुनलेकर कन्याके दानकोही आर्षविवाहका लक्षणकहाहै-कदाचित् मनुके मतसे आर्षविवाह का लक्षण अन्यहीहै और एक गोमिथुनलेकर कन्याकोदेना यहआर्ष का लक्षण किसी परकामतहै-एक वा दोगोमिथुनलेकर कन्याका देना जो यह परकामतहोय तो मनुके मतसे आर्ष का लक्षण क्याहै सो कहो और आठविवाह और आर्षविवाहके सन्तान के गुणोंको कहतेहुये मनुजी क्या अपनेमतमें आर्षविवाहके लक्षणकहने को असमर्थ थे और मेधातिथिने तो पूर्वापर विरोधको दूरही नहींकिया-जिससे हम यहव्याख्यान करतेहैं कि आर्ष विवाहमें कोई आचार्य गोमिथुनशुल्क उत्कोच (कोट-रिसपत) लेनाकहतेहैं यह मनुकामत नहींहै क्योंकि शास्त्रमें नियमित संख्या के द्रव्य का लेना शुल्कनहीं है क्योंकि शुल्कहोता तो मूल्यकी अल्पता और अधिकतासे विक्रयही होजायगा-किंतु आर्षविवाहकी सम्पत्ति (सिद्धि) के लिये अवश्यकरनेयोग्य यज्ञआदिके वा कन्याको देनेकेलिये शास्त्रोक्तहीद्रव्य धर्मके अर्थ लिया जाता है इसीलिये आर्ष विवाह के लक्षणमें-वरादादायधर्मतः-इसपदसे धर्मकेअर्थ वरसे एक गोमिथुनलेकर यहकहाहै-और भोगके लाभार्थ धनकाग्रहणकरना तो शास्त्रोक्त न होनेसे शुल्क रूपहीहै-इसीसे गृह्णन्हि शुल्कंलोभेन-इससे यह निंदाकहीहै कि लोभसे शुल्कको लेताहुआ मनुष्य सन्तान के बेचनेवाला होताहै-जिससे पूर्वापरके देखनेसे धर्मकेलिये गोमिथुनलेने भोग केलिये नहीं-यह मनुजीने अपना मत वर्णनकिया ५३ ॥

यासांनाददतेशुल्कंज्ञातयोनसविक्रयः । अर्हणंतत्कुमारीणामानृशंस्यंचकेवलम् ५४ ॥

प० । यासां न आददते शुल्कं ज्ञातयः न सः विक्रयः अर्हणं तत् कुमारीणां आनृशंस्यं च केवलम् ॥

यो० । यासां (कन्यानां) शुल्कं ज्ञातयः न आददते सः विक्रयः नभवति चपुनः तत् कुमारीणां अर्हणं (पूजनं) केवलं आनृशंस्यं (हिंसाहीनं) भवति ॥

भा० । ता० । आर्षविवाह में गो मिथुनरूप शुल्ककहा-अब यह कहतेहैं कि कन्याकेलिये धनका देना शुल्कनहीं है-प्रीति से वरने कन्याकोदिये जिसधनको पिताआदि ग्रहणनहींकरते किन्तु कन्याकोही देदेतेहैं वह विक्रयनहींहै किंतु वह केवल हिंसारहित कुमारि (कन्या) योंका पूजन रूपहै ५४ ॥

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताःपतिभिर्देवरैस्तथा ।
पूज्याभूषयितव्याश्चबहुकल्याणमीप्सुभिः ५५ ॥

प० । पितृभिः भ्रातृभिः च एताः पतिभिः देवरैः तथा पूज्याः भूषयितव्याः च बहुकल्याणं ईप्सुभिः ॥

यो० । बहुकल्याणं ईप्सुभिः पितृभिः चपुनः भ्रातृभिः तथादेवरैः एताः (स्त्रियः) पूज्याः चपुनः भूषयितव्याः ॥

१ एकंगोमिथुनंद्वेवेत्यं तत्परमतंयदि तदामनुमतेनार्षलक्षणंकितदुच्यताम् १ अष्टौविवाहान्कथयन् आर्षोढासंततेर्गुणान् मनुः किंस्वमतेनार्षलक्षणंवक्तुमक्षमः २ ॥

भा० । ता० । केवल वरकादिया धनही अधिक कल्याणकोचाहते पिताआदि विवाहकेसमयही कन्याको न दें किंतु विवाहके अनन्तरभी इनस्त्रियोंको भोजनआदिसेपूजें और वस्त्र भूषणआदि से भूषितकरें ५५ ॥

यत्रनार्यस्तुपूज्यन्तेरमन्तेतत्रदेवताः। यत्रैतास्तुनपूज्यन्तेसर्वास्तत्राफलाःक्रियाः ५६ ॥

प० । यत्र नार्यः तु पूज्यंते रमंते तत्र देवताः यत्र एताः तु न पूज्यंते सर्वाः तत्र अफलाः क्रियाः ॥

यो० । यत्र नार्यः पूज्यन्ते तत्र देवताः रमते — तुपुनः यत्र एताः न पूज्यंते तत्र सर्वाः क्रियाः अफलाः (भवंति) ॥

भा० । ता० । जिसकुलमें पिताआदि स्त्रियोंको पूजतेहैं वहां देवता प्रसन्नरहतेहैं और जहां इनकी पूजा नहींहोती वहां देवताओंकी अप्रसन्नतासे यज्ञआदि सबकर्म निष्फलहोते हैं ५६ ॥

शोचन्तिजामयोयत्रविनश्यत्याशुतत्कुलम्। नशोचन्तितुयत्रैतावर्द्धतेतद्धिसर्वदा ५७ ॥

प० । शोचंति जामयः यत्र विनश्यति आशु तत् कुलम् न शोचंति तु यत्र एताः वर्द्धते तत् हि सर्वदा ॥

यो० । यत्र जामयः शोचंति तत्कुलं आशु विनश्यति — यत्र एताः न शोचंति तत् हि (निश्चयेन) सर्वदा वर्द्धते ॥

भा० । ता० । जिसकुलमें जामि (बहिनकुलकीस्त्री) शोचतीहैं अर्थात् घरकेस्वामीके पालने योग्य सम्बन्धकी सपिंडकी स्त्री पत्नी—कन्या—पुत्रवधूआदि दुखीरहतीहैं वह कुल दैव वा राजासे पीडाकोप्राप्तहोताहै और जहां ये शोचनहींकरतीं वहकुल धनआदिसे बढ़ताहै—और मेधातिथि और गोविंदराज ने तो नहीं विवाही कन्या और पुत्रकीबहूको जामिकहाहै ५७ ॥

जामयोयानिगेहानिशपन्त्यप्रतिपूजिताः। तानिकृत्याहतानीवविनश्यन्तिसमन्ततः ५८

प० । जामयः यानि गेहानि शपंति अप्रतिपूजिताः तानि कृत्या हतानि इव विनश्यंति समन्ततः ॥

यो० । अप्रतिपूजिताः जामयः यानि गेहानि शपंति — कृत्या हतानि इव तानि समन्तः विनश्यंति ॥

भा० । ता० । तिरस्कारको प्राप्तहुई जामि (पत्नी—कन्या—पुत्रकीबहू) जिनकुलों को शाप देतीहैं अर्थात् इनका यह अनिष्टहो ऐसे कहतीहैं वे ऐसे चारोंओर से नष्टहोतेहैं जैसे अभिचार (मारनेकाप्रयोग) से हतेहुये नष्टहोतेहैं ५८ ॥

तस्मादेताःसदापूज्याभूषणाच्छादनाशनैः। भूतिकामैर्नरैर्नित्यंसत्कारेषूत्सवेषुच ५९ ॥

प० । तस्मात् एताः सदा पूज्याः भूषणाच्छादनाशनैः भूतिकामैः नरैः नित्यं सत्कारेषु उत्सवेषु च ॥

यो० । तस्मात् भूतिकामैः नरैः सत्कारेषु चपुनः उत्सवेषु — एताः भूषणाच्छादनाशनैः नित्यं पूज्याः ॥

भा० । ता० । जिससे अपनी वृद्धिकी कामना चाहनेवाले मनुष्य सत्कार (दीवालीआदि) में और उत्सव यज्ञोपवीत आदिमें भूषण वस्त्रआदिसे इनस्त्रियों को सदापूजें—(सत्कारकरैं) ५९ ॥

संतुष्टोभार्ययाभर्त्ताभर्त्राभार्यातथैवच । यस्मिन्नेवकुलेनित्यंकल्याणंतत्रवैध्रुवम् ६० ॥

प०। संतुष्टः भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्या तथा एव च यस्मिन् एव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥

यो० । यस्मिन् एव कुले भार्यया भर्त्ता—नित्यं संतुष्टः चपुनः तथैव भर्त्रा भार्या नित्यं संतुष्टा वर्त्तते तत्र वै (निश्चयेन) ध्रुवं कल्याणं (भवति)

भा० । ता० । जिस कुल स्त्री से पति प्रसन्न रहताहै अर्थात् अन्य स्त्री के संग रत नहीं होता और पति से स्त्री प्रसन्न रहतीहै उसकुल में चिरकालतक कल्याण रहताहै—अर्थात् केवल स्त्री पुरुष में ही प्रसन्नता नहीं रहती किंतु पुत्र पौत्र आदि सन्तानभी श्रेय की भागी होतीहै ६० ॥

यदिहिस्त्रीनरोचेतपुमांसंनप्रमोदयेत् । अप्रमोदात्पुनःपुंसःप्रजननंप्रवर्त्तते ६१ ॥

प० । यदि हि स्त्री न रोचेत् पुमांसं न प्रमोदयेत् अप्रमोदात् पुनः पुंसः प्रजननं न प्रवर्त्तते ॥

यो० । यदि स्त्री न रोचेत् (तर्हि) पुमांसं न प्रमोदयेत्—पुंसः पुनः अप्रमोदात् प्रजननं न प्रवर्त्तते ॥

भा० । ता० । यदि स्त्री वस्त्र और भूषण दीप्ति(शोभा)को प्राप्त न होय तो पुरुषकोभी प्रसन्न नहीं करसक्ती—फिर पुरुष की अप्रसन्नता से गर्भ का धारणभी नहींहोता ६१ ॥

स्त्रियांतुरोचमानायांसर्वंतद्रोचतेकुलम् । तस्यांत्वरोचमानायांसर्वमेवनरोचते ६२ ॥

प० । स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तत् रोचते कुलम् तस्यां तु अरोचमानायां सर्वं एव न रोचते॥

यो० । स्त्रियां तु रोचमानायां सत्यां सर्वं तत्कुलं रोचते—तस्यां स्त्रियां अरोचमानायां सत्यां सर्वं एव कुलं न रोचते॥

भा० । ता० । जब स्त्री मंडन वस्त्र आदिसे कांतिवाली होतीहै अर्थात् पतिमें प्रीति और पर-पुरुषके संपर्कके त्यागसे तो वह सबकुल दीपताहै और पतिके द्वेषसे यदि स्त्री अरोचमान (उदासीन) होय तो परपुरुष के संपर्क से सबकुल मलीन होजाताहै ६२ ॥

कुविवाहैःक्रियालोपैर्वेदानध्ययनेनच । कुलान्यकुलतांयान्तिब्राह्मणातिक्रमेणच ६३ ॥

प० । कुविवाहैः क्रियालोपैः वेदानध्ययनेन च कुलानि अकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च॥

यो० । कुविवाहैः क्रियालोपैः चपुनः वेदानध्ययनेन—कुलानि अकुलतां यान्ति—(नीचाभवन्तीत्यर्थः) ॥

भा० । ता० । आसुर आदि निंदित विवाह—जातकर्म आदि कर्म के त्याग—वेद के अध्ययन का अभाव और ब्राह्मणोंका अभोजन वा अवलंघनसे विख्यात कुलभी नीचकुल होजातेहैं ६३॥

शिल्पेनव्यवहारेणशूद्रापत्यैश्चकेवलैः । गोभिरश्वैश्चयानैश्चकृष्याराजोपसेवया ६४॥

प० । शिल्पेन व्यवहारेण शूद्रापत्यैः च केवलैः गोभिः अश्वैः च यानैः च कृष्या राजोपसेवया ॥

यो० । शिल्पेन—व्यवहारेण—केवलैः शूद्रापत्यैः गोभिः चपुनः अश्वैः चपुनः यानैः कृष्या—राजोपसेवया—(कुलानिविनश्यंति)—अग्रिमश्लोकेन अन्वयः ॥

भा० । ता० । चित्रकर्म आदि शिल्प से और व्याजपर रुपया देना आदि व्यवहार से—और केवल शूद्राकी सन्तानसे—गौ—घोड़े—यान (सवारी) खेती—और राजाकी सेवासे—अच्छे कुलभी शीघ्र नष्ट होजातेहैं ६४ ॥

अयाज्ययाजनैश्चैवनास्तिक्येनचकर्मणाम् ।
कुलान्याशुविनश्यन्तियानिहीनानिमन्त्रतः ६५ ॥

प० । अयाज्ययाजनैः च एवं नास्तिक्येन च कर्मणां कुलानि आशु विनश्यंति यानि हीनानि मंत्रतः ॥

यो० । चपुनः अयाज्ययाजनैः चपुनः कर्मणां नास्तिक्येन — यानि मंत्रतः हीनानि तानि कुलानि आशु विनश्यंति ॥

भा० । अयाज्य को यज्ञकराने—कर्मों की नास्तिकता—और वेदकी हीनता से कुल शीघ्र नष्ट होजातेहैं ॥

ता० । अयाज्यों (जिनको यज्ञ कराने का अधिकार नहीं है जैसे कि व्रात्य आदि) को यज्ञ कराने—अर्थात् श्रुति वा स्मृति में उक्तकर्मों के करने से और कर्मोंके फलके अभाव का निश्चय रूप नास्तिकतासे—और वेद अध्ययनकी हीनतासे उत्तम कुलभी शीघ्रही नष्ट होजातेहैं अर्थात् नीचकुल होजातेहैं—यहांपर विवाह के प्रकरण में क्रियाके लोप आदि की भी निंदाकीहै और निंदासे यह सूचितकिया कि ये सब निषिद्धकर्म नहीं करने ६५ ॥

मन्त्रतस्तुसमृद्धानिकुलान्यल्पधनान्यपि।कुलसंख्यांचगच्छन्तिकर्षन्तिचमहद्यशः६६॥

प० । मंत्रतः तु समृद्धानि कुलानि अल्पधनानि अपि कुलसंख्यां च गच्छंति कर्षंति च महत् यशः ॥

यो० । मंत्रतः समृद्धानि अल्पधनानि अपि कुलानि कुलसंख्यां गच्छंति चपुनः महत् यशः कर्षंति ॥

भा० । ता० । अब कुलोंकी निंदा के प्रसंग से कुलों की प्रशंसा के लिये कहतेहैं कि यद्यपि जगत् में यह प्रसिद्धहै कि धनसे कुल प्रसिद्धहोताहै तथापि अल्पधनवाले भी वेदाध्ययन आदिसे बढ़े (वेदके अर्थ का ज्ञान और कर्मों का करना आदि) हुई कुल उत्तम कुलों की गणनामें गिने जातेहैं और बड़ीख्याति (प्रसिद्धता) को प्राप्तहोतेहैं ६६ ॥

वैवाहिकेऽग्नौकुर्वीतगृह्यंकर्मयथाविधि । पंचयज्ञविधानंचपंक्तिंचान्वाहिकींगृही ६७ ॥

प० । वैवाहिके अग्नौ कुर्वीत गृह्यं कर्म यथाविधि पंचयज्ञविधानं च पंक्तिं च अन्वाहिकीं गृही ॥

यो० । गृही — गृह्यं कर्म — चपुनः पंचयज्ञविधानं — चपुनः अन्वाहिकीं पंक्तिं — वैवाहिके अग्नौ यथाविधि कुर्वीत ॥

भा० । यथाविधि शास्त्र के अनुसार गृहस्थी के कर्म—पांच यज्ञों की विधि और प्रतिदिन कर्तव्य पाक विवाहकी अग्नि में गृहस्थी करै ॥

ता० । विवाह का प्रकरण समाप्त हुआ—अब विवाह की अग्नि में करने योग्य महायज्ञ विधिकी जो प्रतिज्ञा कीथी उस महायज्ञ आदि के अनुष्ठान (करनेकी विधि) को कहते हैं—कि वैवाहिक अग्नि (जिसअग्निमें होमहोकर विवाह होताहै) अपने गृह्यसूत्रमें कहेहुये कर्म अर्थात् सायंकाल और प्रातःकाल होम और अष्टका आदिकर्म—और शास्त्रोक्त विधिके अनुसार अग्नि में करने योग्य पंचयज्ञांतर्गत बलि वैश्वदेवका अनुष्ठान और प्रतिदिन करने योग्य पाक गृहस्थी करै—६७ ॥

पञ्चसूनागृहस्थस्य चुल्लीपेषण्युपस्करः । कण्डनीचोदकुम्भश्चबध्यतेयास्तुवाहयन् ६८

प० । पंच सूनाः गृहस्थस्य चुल्ली पेषणी उपस्करः कण्डनी च उदकुम्भः च बध्यते याः तु वाहयन् ॥

यो० । गृहस्थस्य चुल्ली पेषणी (चक्की) उपस्करः (मार्जनी) कंडनी (मुसल ऊखल) उदकुम्भः (जलपात्र) एताः पंचसूनाः (हत्याः) भवंति याः वाहयन् गृहस्थी बध्यते ॥

भा० । ता० । जैसे पशुओं के मारने के स्थान को सूना कहतेहैं इसीप्रकार जीवों के बधका स्थान होनेसे गृहस्थी की ये पांच सूना होतीहैं कि चुल्ली–चक्की उपस्कर (मार्जनी) कण्डनी (मुसल और ऊखल) और जलका पात्र–इनपांचों को अपने गृहस्थके काम में लाताहुआ गृहस्थी बन्धन को प्राप्तहोता है ६८ ॥

तासांक्रमेणसर्वासांनिष्कृत्यर्थंमहर्षिभिः । पञ्चक्लृप्तामहायज्ञाःप्रत्यहंगृहमेधिनाम् ६९ ॥

प० तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः पंच क्लृप्ताः महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम् ॥

यो० । तासां सर्वासां (सूनानां) क्रमेण निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः गृहमेधिनां प्रत्यहं पंच महायज्ञाः क्लृप्ताः (रचिताः वा स्मृताः) ॥

भा० । उनपांच हत्याओंकी निवृत्तिके लिये महर्षियोंने गृहस्थियोंको प्रतिदिन पांच महायज्ञ करने कहे हैं ॥

ता० । क्रमसे उन चुल्ली आदि स्थानों में पैदाहुये पापके नाशके लिये गृहस्थियों को पांच महायज्ञ करने मनुआदि ने कहे हैं–मनुने इनपांचोंको हिंसा कहा और इनका प्रायश्चित्त कहा और पंचयज्ञ करनेवाले का इनकी हिंसा से दोष का अभाव कहेंगे अतएव ये पांचसूना पाप के कारण हैं और पांच महायज्ञ पापके नाशकहैं और प्रतिदिन यह कहने से यह सूचितकिया कि इनके पाप का नाश आवश्यक है इससे पांच महायज्ञ भी संध्या वन्दन के समान नित्य कर्म हैं ६९ ॥

अध्यापनंब्रह्मयज्ञःपितृयज्ञस्तुतर्पणम् । होमोदैवोबलिर्भौतोनृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ७० ॥

प० । अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञः तु तर्पणम् होमः दैवः बलिः भौतः नृयज्ञः अतिथिपूजनम् ॥

यो० । अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः–तर्पणं पितृयज्ञः होमः दैवः (देवयज्ञः) बलिःभौतः (भूतयज्ञः) अतिथिपूजनं नृयज्ञः (मनुष्ययज्ञः मनुआदिभिः उक्तः ॥

भा० । ता० । पढाना और पढना ब्रह्मयज्ञ–और अन्न व जलसे पितरोंका तर्पण (तृप्ति) पितृयज्ञ–और होम देवयज्ञ–और बलिवैश्वदेव भूतयज्ञ–और अतिथि का पूजन मनुष्ययज्ञ–मनुआदिने कहा है–यहां अध्यापन आदिमें यज्ञशब्द और महाशब्द स्तुतिके लिये गौणहैं मुख्य नहीं ७० ॥

पञ्चैतान्योमहायज्ञान्नहापयतिशक्तितः । सगृहेऽपिवसन्नित्यंसूनादोषैर्नलिप्यते ७१ ॥

प० । पंच एतान् यः महायज्ञान् न हापयति शक्तितः सः गृहे अपि वसन् नित्यं सूनादोषैः न लिप्यते ॥

यो० । यः (द्विजः) एतान् पंच महायज्ञान् शक्तितः न हापयति – गृहे वसन् सः नित्यं सूनादोषैः न लिप्यते ॥

भा० । ता० । जो द्विज अपनी शक्तिके अनुसार इनपांच महायज्ञों को नहीं त्यागताहै घरमें बसता हुआभी वह द्विज सूना (हत्या) के दोषोंसे लिप्त नहींहोता अर्थात् उस द्विजको हत्या नहीं लगती ७१ ॥

देवतातिथिभृत्यानांपितॄणामात्मनश्चयः । ननिर्वपतिपञ्चानामुच्छ्वसन्नसजीवति ७२ ॥

प० । देवतातिथिभृत्यानां पितॄणां आत्मनः च यः न निर्वपति पंचानां उच्छ्वसन् न सः जीवति ॥

यो० । यः द्विजः पंचानां – देवतातिथिभृत्यानां – पितॄणां चपुनः आत्मनः न निर्वपति सः उच्छ्वसन् अपि न जीवति ॥

भा० । देवता–भूत–अतिथि–पितर–और आत्मा इनको जो द्विजनहीं देता वह श्वासलेता हुआ भी नहीं जीवता है ॥

ता० । देवता शब्द से भूतों कोभी लेना क्योंकि बलि के ग्रहण में वेभी देवता रूपही हैं–अर्थात् देवता और भूत और भृत्य (पालनेयोग्य पिता आदि) और पितर और अपनीआत्मा क्योंकि इस श्रुतिमें आत्माकी भी सबसे रक्षाकही है–इससे आत्मा कोभी रक्षाकरनी–देवता आदि पांचों को जो अन्न नहीं देता वहश्वास लेताहुआ भी अपने जीनेके कार्य के न करने से नहीं जीता है–इस निंदा से इनको देना भी अवश्य करने योग्य है ७२ ॥

अहुतंचहुतंचैवतथाप्रहुतमेवच । ब्राह्म्यंहुतंप्राशितंचपञ्चयज्ञान्प्रचक्षते ७३ ॥

प० । अहुतं च हुतं च एव तथा प्रहुतं एव च ब्राह्म्यं हुतं प्राशितं च पंचयज्ञान् प्रचक्षते ॥

यो० । अहुतं – चपुनः हुतं – तथैव प्रहुतं – ब्राह्म्यंहुतं – चपुनः प्राशितं – (एतान्) पंचयज्ञान् (मुनयः) प्रचक्षते ॥

भा० । ता० । नाम भेदसे वाक्यका भेदहोताहै यह दिखानेके लिये इतर मुनियोंने रची पांच यज्ञोंकी इतरभी संज्ञा कहते हैं–अहुत १– हुत २–और प्रहुत ३–और ब्राह्म्यहुत ४–और प्राशित ५–इनको मुनि पंचयज्ञ कहतेहैं ७३ ॥

जपोऽहुतोहुतोहोमःप्रहुतोभौतिकोबलिः।ब्राह्म्यंहुतंद्विजाग्र्यार्चाप्राशितंपितृतर्पणम् ७४

प० । जपः अहुतः हुतः होमः प्रहुतः भौतिकः बलिः–ब्राह्म्यं हुतं द्विजाग्र्यार्चा–प्राशितं पितृतर्पणम् ॥

यो० । जपः अहुतः – होमः हुतः – भौतिकः बलिः प्रहुतः – द्विजाग्र्यार्चा ब्राह्म्यं हुतं – पितृतर्पणं प्राशितं भवतीतियोज्यम् सर्वत्र ॥

भा० । ता० । जप (ब्रह्मयज्ञ) को अहुत–और होम (देवयज्ञ) को हुत–और भूतों की बलि (भूतयज्ञ) को प्रहुत–और ब्राह्मणों में श्रेष्ठ की पूजा (मनुष्य यज्ञ) को ब्राह्म्यहुत–और पितरों के तर्पण (पितृयज्ञ)को प्राशित–मुनिकहतेहैं ७४ ॥

---

१ सर्वतएवात्मानं गोपायेत् ॥

स्वाध्यायेनित्ययुक्तःस्याद्दैवेचैवेहकर्मणि । दैवकर्मणियुक्तोहिबिभर्तीदंचराचरम् ७५ ॥

प० । स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्यात् दैवे चै एव इह कर्मणि दैवकर्मणि युक्तः हि बिभर्ति इदं चराचरम् ॥

यो० । द्विजः स्वाध्याये चपुनः दैवे कर्मणि इह (जगति) नित्ययुक्तः स्यात् – हि (यतः) दैवकर्मणि युक्तः (द्विजः) इदं चराचरं बिभर्ति ॥

भा० । ता० । यदि दारिद्य आदि दोषसे अतिथि के भोजन आदि कराने को असमर्थ हो तो स्वाध्याय (ब्रह्मयज्ञ) और दैवकर्म (होम) में नित्ययुक्त रहे क्योंकि दैवकर्म में युक्त (तत्पर) मनुष्य इस चराचर (स्थावरजंगम) जगत् की पालनाकरताहै ७५ ॥

अग्नौप्रास्ताहुतिःसम्यगादित्यमुपतिष्ठते । आदित्याज्जायतेवृष्टिर्वृष्टेरन्नंततःप्रजाः ७६

प० । अग्नौ प्रास्ता आहुतिः सम्यक् आदित्यं उपतिष्ठते–आदित्यात् जायते–वृष्टिः वृष्टेः अन्नं ततः प्रजाः ॥

यो० । अग्नौ सम्यक् प्रास्ता (दत्ता) आहुतिः आदित्यं उपतिष्ठते – आदित्यात् वृष्टिः वृष्टेः अन्नं – जायते ततः (अन्नात्) प्रजाः जायंते ॥

भा० । ता० । अग्निमें भलीप्रकार दीहुई आहुति सूर्यको प्राप्तहोतीहै क्योंकि सूर्य संपूर्णरसों को खींचताहै–और वह आहुतिकारस सूर्यकेद्वारा वृष्टिरूपहोजाता है और वृष्टि से अन्न होताहै और अन्न के उपभोगसे प्रजा उत्पन्नहोतीहै ७६ ॥

यथावायुंसमाश्रित्यवर्त्तन्तेसर्वजन्तवः । तथागृहस्थमाश्रित्यवर्त्तन्तेसर्वआश्रमाः ७७ ॥

प० । यथा वायुं समाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्वजन्तवः तथा गृहस्थं आश्रित्य वर्त्तन्ते सर्वे आश्रमाः ॥

यो० । यथा वायुं समाश्रित्य सर्वजन्तवः वर्त्तन्ते तथा गृहस्थं आश्रित्य सर्वे आश्रमाः वर्त्तन्ते ॥

भा० । ता० । जैसे प्राणरूप वायु के आश्रयसे संपूर्ण प्राणी जीवतेहैं ऐसेही गृहस्थकेआश्रयसे संपूर्ण आश्रम वर्त्तते (निर्वाहकरते) हैं ७७ ॥

यस्मात्त्रयोऽप्याश्रमिणोज्ञानेनान्नेनचान्वहम् ।
गृहस्थेनैवधार्यन्तेतस्माज्ज्येष्ठाश्रमोगृही ७८ ॥

प० । यस्मात् त्रयः अपि आश्रमिणः ज्ञानेन अन्नेन च अन्वहम् गृहस्थेन एव धार्यते तस्मात् ज्येष्ठाश्रमः गृही ॥

यो० । यस्मात् त्रयः अपि आश्रमिणः ज्ञानेन चपुनः अन्नेन अन्वहं गृहस्थेन एव धार्यते तस्मात् गृही (गृहस्थी) ज्येष्ठाश्रमः (भवति) ॥

भा० । ता० । गृहस्थी को सब आश्रमियों का प्राण तुल्य वर्णन करतेहैं कि जिससे गृहस्थ से भिन्न तीनों आश्रमी-वेदके अर्थका व्याख्यान और अन्न दानके द्वारा गृहस्थसेही धारणकिये जातेहैं तिससे गृहस्थीही सबसे ज्येष्ठ बड़े आश्रमवाला है ७८ ॥

सस्संधार्यःप्रयत्नेनस्वर्गमक्षयमिच्छता । सुखंचेहेच्छतानित्यंयोऽधार्योदुर्बलेन्द्रियैः७६॥

प० । सः संधार्यः प्रयत्नेन स्वर्गं अक्षयं इच्छता सुखं च इह इच्छता नित्यं यः अधार्यः दुर्ब-लेन्द्रियैः ॥

यो० । अक्षयं स्वर्गं इच्छता- चपुनः इह सुखं इच्छता पुरुषेण प्रयत्नेन सः (गृहस्थः) नित्यं संधार्यः — यः दुर्बलें-द्रियैः अधार्यः (भवति) ॥

भा० । ता० । अक्षय स्वर्गकी और इसलोकमें स्त्रीसंभोग स्वादिष्ट अन्न भोजनआदि सुख की निरंतर इच्छाकरनेवाले गृहस्थीको उस ज्येष्ठ (उत्तम) गृहस्थाश्रमकी बड़े यत्नसे रक्षाकरनी क्योंकि जिसगृहस्थकी धारणा वे नहीं करसक्ते जिनकी इंद्रिय वशमें नहीं है ७६ ॥

ऋषयःपितरोदेवाभूतान्यतिथयस्तथा ।
आशासतेकुटुम्बिभ्यस्तेभ्यःकार्यंविजानता ८० ॥

प० । ऋषयः पितरः देवाः भूतानि अतिथयः तथा आशासते कुटुम्बिभ्यः तेभ्यः कार्यं विजानता ॥

यो० । ऋषयः पितरः देवाः भूतानि तथा अतिथयः तेभ्यः कुटुम्बिभ्यः आशासते — अतः विजानता गृहस्थेन कार्यम्॥

भा० । ता० । ऋषि पितर देवता भूत और अतिथि ये सब उन कुटुम्बियोंसेही अन्न जल-आदिकी प्रार्थनाकरतेहैं—इससे बुद्धिमान् गृहस्थी यह करै कि ८० ॥

स्वाध्यायेनार्चयेदृषीन्होमैर्देवान्यथाविधि । पितॄन्श्राद्धैश्चनॄनन्नैर्भूतानिबलिकर्मणा ८१

प० । स्वाध्यायेन—अर्चयेत् ऋषीन् होमैः देवान् यथाविधि पितॄन् श्राद्धैः च नॄन् अन्नैः भूतानि बलिकर्मणा ॥

यो० । कर्त्तव्यमेवाह — स्वाध्यायेन ऋषीन्—होमैः देवान्—श्राद्धैः पितॄन्—अन्नैः नॄन बलिकर्मणा भूतानि यथाविधि अर्चयेत् गृहस्थ इतिशेषः ॥

भा० । ता० । वेदके पठनपाठनसे ऋषियों का—होमोंसे देवताओं का—श्राद्धोंसे पितरोंका—अन्नोंसे मनुष्यों का—बलिवैश्वदेव से भूतोंका—यथाविधि (शास्त्रोक्तरीतिसे) पूजनकरै ८१ ॥

कुर्यादहरहःश्राद्धमन्नाद्येनोदकेनवा । पयोमूलफलैर्वापिपितृभ्यःप्रीतिमावहन् ८२ ॥

प० । कुर्यात् अहः अहः श्राद्धं अन्नाद्येन उदकेन वा पयोमूलफलैः वा अपि पितृभ्यः प्रीतिं आवहन् ॥

यो० । अन्नाद्येन—वा उदकेन—वा पयोमूलफलैः पितृभ्यः प्रीतिं आवहन गृहस्थः अहः अहः श्राद्धं कुर्यात् ॥

भा० । ता० । पितरोंकी प्रसन्नता चाहताहुआ गृहस्थी अन्न आदि—वा जल—वा दूध—मूल—और फलोंसे प्रतिदिन पार्वणश्राद्धकरै—यह श्राद्ध शब्द पार्वण श्राद्ध का बोधकहै ८२ ॥

एकमप्याशयेद्विप्रंपित्रर्थेपाञ्चयज्ञिके । नचैवात्राशयेत्किंचिद्वैश्वदेवंप्रतिद्विजम् ८३ ॥

प० । एकं अपि आशयेत् विप्रं पित्रर्थे पाञ्चयज्ञिके न च एव अत्र आशयेत् किंचित् वैश्वदेवं प्रति द्विजम् ॥

यो० । पित्रर्थे पांचयज्ञिके एकं अपि विप्रं आशयेत् —अत्र वैश्वदेवंप्रति किंचित् अपि द्विजं नैव आशयेत् ॥

भा० । ता० । पितरोंके निमित्त किया जो पंचयज्ञोंका कर्म उसमें चाहे एक भी ब्राह्मणको जिमावे अर्थात् सामर्थ्यहोय तो बहुत भी ब्राह्मण जिमावे—और वैश्वदेवके लिये किसी एक ब्राह्मणको भी न जिमावे ८३ ॥

वैश्वदेवस्यसिद्धस्यगृह्येऽग्नौविधिपूर्वकम् ॥
आभ्यःकुर्याद्देवताभ्योब्राह्मणोहोममन्वहम् ८४ ॥

प० । वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृह्ये अग्नौ विधिपूर्वकं आभ्यः कुर्यात् देवताभ्यः ब्राह्मणः होमं अन्वहम् ॥

यो० । ब्राह्मणः गृह्ये अग्नौ सिद्धस्य वैश्वदेवस्य (अन्नस्य) विधिपूर्वकं होमं आभ्यः देवताभ्यः अन्वहं कुर्यात् ॥

भा० । सब देवताओंके अर्थ बनाये अन्नका होम—ब्राह्मण प्रतिदिन गृह्य अग्निमेंही इनदेवताओंके निमित्त प्रतिदिनकरै ॥

ता० । संपूर्ण देवताओंके अर्थ सिद्ध (बनाया) किये हुये अन्नका इन देवताओं (जो आगे कहेंगे) केनिमित्त प्रतिदिन विधिपूर्वक (अर्थात् पर्युक्षण आदिकरके) ब्राह्मण गृह्य(घरकी) अग्निमें होमकरै—यहां ब्राह्मणसे तीनों द्विजातिलेने क्योंकि तीनों काही प्रकरण है—और वैश्वदेव पदका यह अर्थ है कि विश्वे (संपूर्ण) जो देव उनके लिये बनाया जाय—अर्थात् अपने भोजनके लिये पाक न करे किन्तु देवताओं को देकर जो शेष बचे उसको ही आप भोजन करै ८४ ॥

अग्नेःसोमस्यचैवादौतयोश्चैवसमस्तयोः । विश्वेभ्यश्चैवदेवेभ्योधन्वन्तरयएवच ८५ ॥

प० । अग्नेः सोमस्य च एव आदौ तयोः च एव समस्तयोः विश्वेभ्यः च एव देवेभ्यः धन्वन्तरये एव च ॥

यो० । आदौ (प्रथमं) अग्नेः (अग्नये) चपुनः सोमस्य एव सोमाय चपुनः तयोः समस्तयोः—अग्निसोमाभ्यां चपुनः विश्वेभ्यः देवेभ्यः — चपुनः धन्वन्तरये — स्वाहेति सर्वत्र शेषः ॥

भा० । पहिले अग्नि—सोम—के और फिर अग्नि सोमके—फिर विश्वेदेवाओं के—फिर धन्वन्तरिके निमित्त प्रतिदिन द्विज होम करै ॥

ता० । बलिवैश्वदेवके होमका प्रकार लिखते हैं कि पहिले अग्नयेस्वाहा—सोमायस्वाहा देवताकी अपेक्षारहित (पृथक्) येदो होम करके फिर अग्निसोमाभ्यांस्वाहा यह समस्त (दोनों मिले) विश्वेदेवाओं के निमित्त—और फिर धन्वन्तरयेस्वाहा—धन्वन्तरिके निमित्तहोम करै—यहां इस कात्यायनऋषिके वचनसे कि स्वाहा कहकर अग्निमें आहुतिदे—सब देवताओं के आगे स्वाहा पद लगालेना अर्थात्—अग्नयेस्वाहा १—सोमायस्वाहा २—अग्निसोमाभ्यांस्वाहा ३—विश्वेभ्यः देवेभ्यःस्वाहा४—धन्वन्तरये स्वाहा ५—ये आहुति दे ८५ ॥

कुह्वैचैवानुमत्यैचप्रजापतयएवच । सहद्यावापृथिव्योश्चतथास्विष्टकृतेऽन्ततः ८६ ॥

प० । कुह्वै च एव अनुमत्यै च प्रजापतये एव च सह द्यावापृथिव्योः च तथा स्विष्टकृते अन्ततः ॥

---

१ स्वाहाकारप्रदानं होमः ॥

यो० । कुह्वै चपुनः अनुमत्यै चपुनः प्रजापतये–चपुनः सहद्यावापृथिव्योः तथा अन्ततः स्विष्टकृते–स्वाहा एवंहोमं कुर्यात् सर्वत्रस्वाहेति योज्यम् ॥

भा० । कुह्वै स्वाहा और अनुमत्यैस्वाहा और धन्वंतरयेस्वाहा–सहद्यावापृथिवीभ्यांस्वाहा और अंतमें स्विष्टकृते स्वाहा–इसप्रकार होमकरै ॥

ता० । कुह्वै स्वाहा ६–अनुमत्यैस्वाहा ७–प्रजापतयेस्वाहा ८–सहद्यावापृथिवीभ्यांस्वाहा ९–अंतमें स्विष्टकृतेस्वाहा १० इसप्रकार होमकरै यद्यपि अन्य श्रुतियोंमें अग्निसहित (अग्नये-स्विष्टकृते स्वाहा) स्विष्टकृत स्वाहा लिखा है तथापि केवल स्विष्टकृत का प्रयोग भी अग्निकाही विशेषणही का बोधक है–और यद्यपि पढ़ने के क्रमसेही अंतमें स्विष्टकृत स्वाहाहोजाता तथापि यहां पर अंततः (अंतमें) कहना यह सूचित करता है कि अन्यस्मृतियों के होम में भी स्विष्टकृत स्वाहा अंतमें ही होताहै ८६ ॥

एवंसम्यग्घविर्हुत्वासर्वादिक्षुप्रदक्षिणम्।इन्द्रान्तकाप्पतीन्दुभ्यःसानुगेभ्योबलिंहरेत्८७

प० । एवं सम्यक् हविः हुत्वा सर्वदिक्षु प्रदक्षिणं इन्द्रान्तकाप्पतीन्दुभ्यः सानुगेभ्यः बलिं हरेत् ॥

यो० । एवं सम्यक् हविः हुत्वा सानुगेभ्यः इन्द्रान्तकाप्पतीन्दुभ्यः सर्वदिक्षु प्रदक्षिणं (यथास्यात्तथा) बलिं हरेत् ॥

भा० । इसप्रकार सावधानी से होमोंको करके पूर्वआदि चारों दिशाओंमें अनुगोंसहित इन्द्र–यम–वरुण–चन्द्र इनको प्रदक्षिण क्रम (पूर्व–दक्षिण–पश्चिम–उत्तर दिशा) से बलिदे ॥

ता० । इस प्रकार से भलीप्रकार (निश्चल मनसे देवताओंके ध्यानपूर्वक) होमकरके पूर्व आदि चारों दिशाओं में सानुग (अनुयायियोंसहित) इन्द्र–यम–वरुण–चन्द्र–इनचारों देवताओं को प्रदक्षिण क्रम से बलिदे अर्थात् सानुगाय इन्द्रायनमः प्राच्यांदिशि–सानुगाययमाय नमः दक्षिणस्यांदिशि–सानुगायवरुणायनमः पश्चिमायांदिशि–सानुगायसोमायनमः उत्तरस्यां दिशि–यद्यपि देवता तो शब्दसे भी प्रतीत होसके थे इससे अन्तक–अप्पति–इंदु शब्दही होम दिखाने थे तथापि बहृचके इस गृह्यसूत्रमें यम यमके पुरुष–वरुण वरुणके पुरुष–सोम सोमके पुरुषोंको प्रति दिशामें बलिदेना लिखाहै इससे पूर्वोक्त प्रयोग भी ठीक हैं ८७ ॥

मरुद्भ्यइतितुद्वारिक्षिपेदप्स्वद्भ्यइत्यपि । वनस्पतिभ्यइत्येवंमुशलोलूखलेहरेत् ८८

प० । मरुद्भ्यः इति तु द्वारि क्षिपेत् अप्सु अद्भ्यः इति अपि वनस्पतिभ्यः इति एवं मुशलोलूखले हरेत् ॥

यो० । मरुद्भ्योनमः इत्युच्चार्य द्वारि–अद्भ्योनमः इत्युच्चार्य अप्सु–वनस्पतिभ्योनमःइत्युच्चार्यमुशलोलूखले बलिंहरेत् सर्वत्र नम इतिशेषः ॥

भा० । मरुद्भ्योनमः इससे द्वारपर–अद्भ्योनमः इससे जलोंमें–वनस्पतिभ्योनमः इससे मुशल और ऊखलमें बलिदे ॥

ता० । मरुद्भ्योनमः इसमंत्रसे द्वारपर–अद्भ्योनमः इसमंत्र से जलोंमें–वनस्पतिभ्योनमः इसमंत्रसे मुशल और ऊखलमें बलिदे अर्थात् जहां मुशल और ऊखलका स्थानहो वहांदे यहां मुशल और ऊखलद्वन्द्वसे पढ़ेहैं इससे दोनों जहां रक्खेरहतेहों वहां कोईसेकीजगह एकबलिदे

अर्थात् पृथक् २ बलि नदे क्योंकि गौणउद्देश्य के अनुरोध से प्रधान बलिकर्मकी आवृत्ति का अ-योगहै ८८ ॥

उच्छीर्षकेश्रियैकुर्याद्भद्रकाल्यैचपादतः।ब्रह्मवास्तोष्पतिभ्यांतुवास्तुमध्येबलिंहरेत्८९॥

प० । उच्छीर्षके श्रियै कुर्यात् भद्रकाल्यै च पादतः ब्रह्मवास्तोष्पतिभ्यां तु वास्तुमध्ये बलिं हरेत् ॥

यो० । उच्छीर्षके श्रियै भद्रकाल्यै पादतः (वास्तुपादे) तुपुनः ब्रह्मवास्तोष्पतिभ्यां वास्तुमध्ये बलिं हरेत् (दद्यात्)

भा० । श्रियैनमः इसमंत्र से वास्तु (घर) पुरुष के शिरकीजगह—भद्रकाल्यैनमः इसमंत्र से पादोंमें—और ब्रह्मणेनमः और वास्तोष्पतयेनमः इनदोमंत्रों से वास्तुके मध्यमें बलिदे ॥

ता० । वास्तुपुरुषके शिरके प्रदेश (ऐशानदिशा) में श्रियैनमः इसमंत्रसे श्री (लक्ष्मी) को और पाददेश (नैर्ऋत) दिशा में भद्रकाल्यैनमः इसमंत्र से भद्रकाली को और कोई ऋषि तो यहकहतेहैं कि उच्छीर्षकपदसे गृहस्थकी शय्याका जो शिरकाभूभाग और पादशब्दसे उसका चरणकाभाग लेते हैं—और ब्रह्मणेनमः वास्तोष्पतयेनमः इसमंत्र से घर के मध्य में ब्रह्मा और वास्तोष्पति को—बलिदे यद्यपि ब्रह्मा और वास्तोष्पति द्वंद्वनिर्देशसे पढ़े हैं तथापि पृथक् २ ही देवताहैं क्योंकि जहां द्वंद्वमें मिलेही देवताहोतेहैं वहां सहआदि शब्दोंका पढ़तेहैं जैसे सहद्यावा पृथिव्योश्च—यह लिखाहै ८९ ॥

विश्वेभ्यश्चैवदेवेभ्योबलिमाकाशउत्क्षिपेत्।दिवाचरेभ्योभूतेभ्योनक्तंचारिभ्यएवच९०॥

प० । विश्वेभ्यः च एव देवेभ्यः बलिं आकाशे उत्क्षिपेत् दिवाचरेभ्यः भूतेभ्यः नक्तंचारिभ्यः एव च ॥

यो० । चपुनः विश्वेभ्यः देवेभ्यः — दिवाचरेभ्यः भूतेभ्यः — नक्तंचारिभ्यः भूतेभ्यः आकाशे बलिं उत्क्षिपेत् (ऊर्ध्वं कृत्वा बलिंदद्यात्) ९० ॥

भा० । आकाश में विश्वेदेवा और दिवाचर और रात्रिञ्चर भूतोंको बलि दे ॥

ता० । विश्वेभ्यो देवेभ्योनमः यह मन्त्र पढ़कर विश्वेदेवाओं को और दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः नक्तंचारिभ्यो भूतेभ्योनमः यह मन्त्र पढ़कर दिवाचारीभूतों को और नक्तंचारी भूतों को गृहके आकाशमें बलि दे अर्थात् दिनमें बलि वैश्वदेव करने में दिवाचारी भूतोंको और रात्रिमें बलिवैश्व करने में नक्तंचारी भूतोंको बलि दे ९० ॥

पृष्ठवास्तुनिकुर्वीतबलिंसर्वात्मभूतये।पितृभ्योबलिशेषंतुसर्वंदक्षिणतोहरेत् ९१ ॥

प० । पृष्ठवास्तुनि कुर्वीत बलिं सर्वात्मभूतये पितृभ्यः बलिशेषं तु सर्वं दक्षिणतः हरेत् ॥

यो० । सर्वात्मभूतये पृष्ठवास्तुनि बलिं कुर्वीत — तुपुनः सर्वं बलिशेषं पितृभ्यः दक्षिणतः (दक्षिणादिशि) हरेत् ॥

भा० । वास्तु के पीठभाग में सर्वात्मभूतयेनमः इसमंत्रसे बलिदे और पूर्वोक्त बलियोंसे बचे हुये अन्नको पितृभ्योनमः दक्षिणदिशामें दे ॥

ता० । घरके ऊपर जो घर (अट्टा) उसे पृष्ठवास्तु कहते हैं—अथवा बलिदेनेवालेकी पीठकी भूमिको—वहां सर्वात्मभूतयेनमः इसमंत्र से बलिदे—और उक्त बलिदेनेसे शेष (बचे) सम्पूर्ण

अन्नको दक्षिणदिशामें दक्षिणको मुखकर स्वधापितृभ्योनमः इसमंत्र से बलिदे और यह बलि अपसव्यहोकरदे—क्योंकि इसगृह्य सूत्रसे यही प्रतीत होताहै ६१ ॥

शुनांचपतितानांचश्वपचांपापरोगिणाम् । वायसानांकृमीणांचशनकैर्निर्वपेद्भुवि ९२ ॥

प० । शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणां वायसानां कृमीणां च शनकैः निर्वपेत् भुवि ॥

यो० । शुनां चपुनः पतितानां—श्वपचां—पापरोगिणां—वायसानां—चपुनः कृमीणां शनकैः भुवि (बलिं) निर्वपेत् ॥

भा० । ता० । अन्य सम्पूर्ण अन्नको निकासकर श्वभ्योनमः पतितेभ्योनमः श्वपग्भ्योनमः पापरोगिभ्योनमः वायसेभ्योनमः कृमिभ्योनमः इनछःमंत्रोंसेभूमिपर शनैः२(जैसेधूलमें न मिले) बलिदे ९२ ॥

एवंयःसर्वभूतानिब्राह्मणोनित्यमर्चति । सगच्छतिपरंस्थानंतेजोमूर्त्तिपथर्जुना ९३ ॥

प० । एवं यः सर्वभूतानि ब्राह्मणः नित्यं अर्चति सः गच्छति परं स्थानं तेजोमूर्त्तिपथा ऋजुना ॥

यो० । यः ब्राह्मणः एवं सर्वभूतानि नित्यं अर्चति सः ऋजुना तेजोमूर्त्तिपथा परं स्थानं गच्छति ॥

भा० । इसप्रकार जो ब्राह्मण सबभूतोंको नित्य पूजताहै वह प्रकाशमान कोमलमार्ग होकर परमस्थानको प्राप्तहोता है ॥

ता० । इस उक्तप्रकार से जो ब्राह्मण अन्नदानआदि से सम्पूर्णभूतों को नित्यपूजता है वह तेजोमूर्त्ति (प्रकाशमान) सीधमार्ग (अर्चिरादि) मार्ग से परमस्थान (ब्रह्म) को प्राप्तहोता है अर्थात् ब्रह्ममें लीनहोताहै क्योंकि ज्ञान और कर्मसेही मोक्षप्राप्ति होतीहै—और जहां तेजोमूर्त्तिः-यह विसर्गसहित पाठहै वहां ब्राह्मण का विशेषण है अर्थात् प्रकृष्ट ब्रह्मज्ञान स्वभाव होकर वह ब्राह्मण ब्रह्ममें लीनहोताहै ९३ ॥

कृत्वैतद्बलिकर्मैवमतिथिंपूर्वमाशयेत् । भिक्षांचभिक्षवेदद्याद्विधिवद्ब्रह्मचारिणे ९४ ॥

प० । कृत्वा एतत् बलिकर्म एवं अतिथिं पूर्वं आशयेत् भिक्षां च भिक्षवे दद्यात् विधिवत् ब्रह्म-चारिणे ॥

यो० । एवं एतद्बलिकर्म कृत्वा पूर्वं अतिथिं आशयेत् चपुनः ब्रह्मचारिणे भिक्षवे विधिवत् भिक्षां दद्यात् ॥

भा० । इस बलि वैश्वदेव कर्मको करके सब भोक्ताओंसे पहिले अतिथिको जिमावे और ब्रह्मचारी भिक्षुकको विधिसे भिक्षादे ॥

ता० । इसपूर्वोक्त प्रकार बलि वैश्वदेवकर्म को करके घरके मनुष्योंसे पहिले अतिथिको भो-जन करावे और ब्रह्मचारी—संन्यासी—वा गृहस्था—भिक्षुक (भिखारी) को विधिसे (स्वस्तिआ-दि कहकर) भिक्षादे क्योंकि इस गौतमऋषि स्वस्तिकहकर पीछेही भिक्षादेनाकहा है—और भिक्षाभी इस शातातपऋषि के वचनसे एकग्रास प्रमाणकी होती है यदि शक्तिहोय तो अधिक भी देय ९४ ॥

---

१ स्वधापितृभ्यइतिप्राचीनावीतीशेषंदक्षिणानिनयेत् ॥

२ स्वस्तिवाच्यभिक्षादानमप्पूर्वम् ॥

३ ग्रासमात्राभवेद्भिक्षा ॥

यत्पुण्यफलमाप्नोतिगांदत्वाविधिवद्गुरोः।तत्पुण्यफलमाप्नोतिभिक्षांदत्वाद्विजोगृही९५

प० । यत् पुण्यफलं आप्नोति गां दत्वा विधिवत् गुरोः तत् पुण्यफलं आप्नोति भिक्षां दत्वा द्विजः गृही ॥

यो० । गृही द्विजः गुरोः विधिवत् गां दत्वा यत् पुण्यफलं आप्नोति तत् पुण्यफलं भिक्षां दत्वा आप्नोति ॥

भा० । ता० । गृहस्थी द्विज विधि (सोनेकेसींग आदि) से गुरुको गौ देकर जिस पुण्यफलको प्राप्तहोताहै उसी पुण्यफलको भिक्षाके दानसे प्राप्तहोताहै ९५ ॥

भिक्षामप्युदपात्रंवासत्कृत्याविधिपूर्वकम् । वेदतत्त्वार्थविदुषेब्राह्मणायोपपादयेत ९६ ॥

प० । भिक्षां अपि उदपात्रं वा सत्कृत्य विधिपूर्वकं वेदतत्त्वार्थविदुषे ब्राह्मणाय उपपादयेत् ॥

यो० । भिक्षां अपि —वा उदपात्रं विधिपूर्वकं सत्कृत्य वेदतत्त्वार्थविदुषे ब्राह्मणाय गृहस्थी उपपादयेत् ॥

भा० । ता० । अधिक अन्नके अभावमें व्यंजन आदिसे सत्कारकरके ग्रासभर भिक्षा और उसके भी अभाव में जलकाभरा पात्र फल और फूल आदिसे सत्कारकरके वेदके यथार्थ अर्थके ज्ञाता ब्राह्मण विधिपूर्वक (स्वस्तिकहो यह कहाकर) दे ९६ ॥

नश्यन्तिहव्यकव्यानिनराणामविजानताम्।भस्मीभूतेषुविप्रेषुमोहाद्दत्तानिदातृभिः९७

प० । नश्यन्ति हव्यकव्यानि नराणां अविजानताम् भस्मीभूतेषु विप्रेषु मोहात् दत्तानि दातृभिः ॥

यो० । भस्मीभूतेषु विप्रेषु मोहात् दातृभिः दत्तानि हव्यकव्यानि अविजानतां नराणां नश्यन्ति ॥

भा० । ता० । वेदका अध्ययन और वेदके अर्थोंकाज्ञान और वेदोक्त कर्मोंका करना इनसे शून्य भस्मरूप ब्राह्मणोंको मोहसे दिये अज्ञानी मनुष्योंके हव्य और कव्य नष्टहोजातेहैं—अर्थात् निष्फल होतेहैं ९७ ॥

विद्यातपःसमृद्धेषुहुतंविप्रमुखाग्निषु । निस्तारयतिदुर्गाच्चमहतश्चैवकिल्बिषात् ९८ ॥

प० । विद्यातपःसमृद्धेषु हुतं विप्रमुखाग्निषु निस्तारयति दुर्गात् च महतः च एव किल्बिषात् ॥

यो० । विद्यातपः समृद्धेषु विप्रमुखाग्निषु हुतं दुर्गात् चपुनः महतः किल्बिषात् निस्तारयति ॥

भा० । ता० । विद्या और तप और तेजसे युक्त ब्राह्मणोंके मुखरूप अग्नियोंमें होमकिया पदार्थ इसलोकमें दुस्तर व्याधि शत्रु राजाकी पीडा आदि दुःखसे और परलोकमें पाप (नरक) से तारताहै ९८ ॥

संप्राप्तायत्वातिथयेप्रदद्यादासनोदके । अन्नंचैवयथाशक्तिसत्कृत्यविधिपूर्वकम् ९९ ॥

प० । संप्राप्ताय तु अतिथये प्रदद्यात् आसनोदके अन्नं च एव यथाशक्ति सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ॥

यो० । गृही संप्राप्ताय अतिथये आसनोदके चपुनः यथाशक्ति अन्नं सत्कृत्य विधिपूर्वकं प्रदद्यात् ॥

भा० । ता० । स्वयंप्राप्त (आये) हुये अतिथिको आसन जल और यथाशक्ति अन्न विधिपूर्वक सत्कारकरके दे अर्थात् स्वस्तिवाचन कहाकर अन्न आदिको अर्पणकरे ९९ ॥

शिलानप्युञ्छतोनित्यंपञ्चाग्नीनपिजुह्वतः।सर्वंसुकृतमादत्तेब्राह्मणोऽनर्चितोवसन् १००

प० । शिलान् अपि उञ्छतः नित्यं पंचाग्नीन् अपि जुह्वतः सर्वं सुकृतं आदत्ते ब्राह्मणः अन-र्चितः वसन् ॥

यो० । अनर्चितः वसन् सन् ब्राह्मणः शिलान् अपि उञ्छतः पंचाग्नीन् अपि नित्यं जुह्वतः (गृहस्थस्य) सर्वं सुकृतं आदत्ते (गृहणाति) ॥

भा० । शिलोञ्छहै वृत्ति जिसकी और पंचाग्नियोंमें होमकरतेहुये भी गृहस्थीके संपूर्ण पुण्य को अपूजित वसताहुआ ब्राह्मण ग्रहणकरलेताहै ॥

ता० । कटेहुये खेतमें शेष (बचे) हुये अन्नोंको शिलकहतेहैं उनको भी उञ्छतेहुये अर्थात् अपनी वृत्तिके संयममें युक्त और आहवनीय–गार्हपत्य–दक्षिणाग्नि–आवसथ्य और सभ्य (शीतके दूरकरनेको जो प्रज्वलितकीजातीहै) इन पांचों अग्नियोंमें प्रतिदिन करतेहुये गृहस्थी के घरमें अपूजित अर्थात् असत्कारको प्राप्तहुआ ब्राह्मण (अतिथि) संपूर्ण सुकृत (पुण्य) को ग्रहणकरताहै अर्थात् वृत्तिके संकोचसे पंचाग्निके होमका फल उस गृहस्थीको नहींमिलता जि-सने अतिथि की पूजा न कीहो–इससे अतिथिका सत्कार अवश्यमेवकरै १०० ॥

तृणानिभूमिरुदकंवाक्चतुर्थीचसूनृता । एतान्यपिसतांगेहेनोच्छिद्यन्तेकदाचन १०१ ॥

प० । तृणानि भूमिः उदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता एतानि अपि सतां गेहे न उच्छिद्यन्ते कदाचन ॥

यो० । तृणानि भूमिः उदकं—चपुनः चतुर्थी सूनृतावाक् एतानि अपि सतांगेहे कदाचन न उच्छिद्यन्ते ॥

भा० । ता० । तृण (आसन वा शय्या) भूमि–जल अर्थात् पादप्रक्षालन वा स्नानकेलिये जलको देना–और चौथी सत्यवाणी ये सत्पुरुषोंके घरमें कभी भी नष्ट नहींहोतीं अर्थात् अतिथि के सत्कारके लिये सदैव विद्यमान रहती हैं अर्थात् अन्न आदि देने का सामर्थ्य न होय तो इन को तो अवश्यमेव दे १०१ ॥

एकरात्रंतुनिवसन्नतिथिर्ब्राह्मणःस्मृतः ॥
अनित्यंहिस्थितोयस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते १०२ ॥

प० । एकरात्रं तु निवसन् अतिथिः ब्राह्मणः स्मृतः अनित्यं हि स्थितः यस्मात् तस्मात् अ-तिथिः उच्यते ॥

यो० । एकरात्रं निवसन् ब्राह्मणः स्मृतः हि (यतः) यस्मात् अनित्यं स्थितः तस्मात् अतिथिः (मन्वादिभिः) उच्यते ॥

भा० । ता० । अप्रसिद्ध अतिथि शब्द का लक्षण कहतेहैं–कि एकही रात्रि जो पराये घर में वसे उसे अतिथि कहतेहैं जिससे जिसकी स्थिति अनित्यहो अर्थात् दूसरी तिथि न हो उसे अतिथि कहतेहैं १०२ ॥

नैकग्रामीणमातिथिंविप्रंसाङ्गतिकंतथा। उपस्थितंगृहेविद्याद्भार्यायत्राग्नयोऽपिवा १०३॥

प०। न एकग्रामीणं अतिथिं विप्रं साङ्गतिकं तथा उपस्थितं गृहे विद्यात् भार्या यत्र अग्नयः अपि वा॥

यो०। यत्र गृहे भार्या (स्त्री) अग्नयः अपि संति तस्मिन् गृहे उपस्थितं एकग्रामीणं तथा साङ्गतिकं अतिथिं न विद्यात्॥

भा०। ता०। जो एकही ग्रामका निवासीहो और जो परिहास विचित्रकथा आदिरूप संगति से वृत्ति (जीविका) चाहताहो—भार्या और अग्निवाले घरमें प्राप्तहुये भी ऐसे अतिथिको चाहे वह वैश्वदेव कालके समयमें भी आवे तोभी अतिथि न जाने अर्थात् उसका अतिथि के समान सत्कार न करै १०३॥

उपासतेयेगृहस्थाःपरपाकमबुद्धयः। तेनतेप्रेत्यपशुतांव्रजन्त्यन्नादिदायिनाम् १०४॥

प०। उपासते ये गृहस्थाः परपाकं अबुद्धयः तेन ते प्रेत्य पशुतां व्रजंति अन्नादिदायिनां॥

यो०। अबुद्धयः ये गृहस्थाः परपाकं उपासते (भुंजते) (तेनपरान्नभोजनेन) ते प्रेत्य अन्नादिदायिनां पशुतां व्रजंति॥

भा०। ता०। आतिथ्य के लोभसे जो गृहस्थी अन्य ग्रामों में जाकर पराये अन्नको खाते हैं वे मरनेके पीछे अन्नआदि देनेवालोंके पशुहोतेहैं—तिससे गृहस्थी परपाकका भोजन न करै १०४॥

अप्रणोद्योऽतिथिःसायंसूर्योढोगृहमेधिना॥
कालेप्राप्तस्त्वकालेवानास्यानश्नन्गृहेवसेत् १०५॥

प०। अप्रणोद्यः अतिथिः सायं सूर्योढः गृहमेधिना काले प्राप्तः तु अकाले वा न अस्य अनश्नन् गृहे वसेत्॥

यो०। गृहमेधिना सूर्योढः अतिथिः सायं अप्रणोद्यः काले प्राप्तः वा अकाले प्राप्तः अतिथिः अस्य (गृहमेधिनः) गृहे अनश्नन (अभुंजन) सन न वसेत्॥

भा०। सूर्य के छिपनेपर सायंकालको आये अतिथिको गृहस्थी नाहीं न करै और भोजन के समय वा असमयपर आया अतिथि गृहस्थीकेघरमें भोजनको न करताहुआ न वसै अर्थात् गृहस्थी अतिथि को अवश्यमेव भोजन दे॥

ता०। सूर्यने ऊढ (प्राप्तकिया) अर्थात् दूसरे बलिवैश्वदेव के समय रात्रिको अपनेघरआये अतिथिको गृहस्थी प्रत्याख्यान (विडारना) न करै क्योंकि वह अतिथि रात्रिको दूसरी जगह नहीं जासक्ता—और चाहे वह असमय (भोजन के पीछे) और चाहे समय (भोजन के समय) में प्राप्तहो परन्तु इस गृहस्थी के घरमें भोजनको न करताहुआ न वसे अर्थात् गृहस्थी अतिथि को अवश्यमेव भोजनदे क्योंकि इसविष्णुपुराण से उसके प्रत्याख्यानमें अधिक प्रायश्चित्त है कि दिनके अतिथि के विमुखकरनेमें जो पापहोता है उससे आठगुणा पाप सूर्य के छिपने के समय अतिथि के विमुख होनेपर होताहै—गोविंदराजने तो इसका यह अभिप्रायकहाहै कि निषिद्ध अतिथि भी संध्या के समय आवे तो प्रत्याख्यान करने योग्य नहीं है १०५॥

१ दिवातिथौ तु विमुखे गते यत्पातकं नृप तदेवाष्टगुणं प्रोक्तं सूर्योढे विमुखेगते॥

नवैस्वयंतदश्नीयादतिथिंयन्नभोजयेत्। धन्यंयशस्यमायुष्यंस्वर्ग्यंवातिथिपूजनम् १०६

प० । न वै स्वयं तत् अश्नीयात् अतिथिं यत् न भोजयेत् धन्यं यशस्यं आयुष्यं स्वर्ग्यं वा अतिथिपूजनम् ॥

यो० । यत् (वस्तु) अतिथिं न भोजयेत् तत् स्वयं वै अपि न अश्नीयात् — वा (यतः) अतिथिपूजनं धन्यं यशस्यं आयुष्यं स्वर्ग्यं (भवति) ॥

भा० । ता० । जो दधि घृत आदि उत्कृष्टपदार्थ अतिथिको न जिमावे उसको स्वयंभी भोजन न करे यदि किसी पदार्थको अतिथि नाहीं करदे तो भोजन करले क्योंकि अतिथि का पूजन धन—यश—अवस्था और स्वर्ग इनका हितहै अथवा कारणहै १०६ ॥

आसनावसथौशय्यामनुव्रज्यामुपासनाम्। उत्तमेषूत्तमंकुर्याद्धीनेहीनंसमेसमम् १०७॥

प० । आसनावसथौ शय्यां अनुव्रज्यां उपासनाम् उत्तमेषु उत्तमं कुर्यात् हीने हीनं समे समम् ॥

यो० । आसनावसथौ — शय्यां अनुव्रज्यां — उपासनां उत्तमेषु उत्तमं — हीने हीनं समे समं कुर्यात् ॥

भा० । ता० । आसन (पीठ वा चर्म) आवसथ (विश्राम का स्थान) शय्या (खाट) अनुव्रज्या (पीछेचलना) उपासना (सेवा) इन सबको यदि बहुत अतिथिहोयँ तो उत्तम अतिथि में उत्तम और मध्यममें मध्यम—हीन(छोटा)में हीनकरे अर्थात् सबका समान न करे१०७॥

वैश्वदेवेतुनिर्वृत्तेयद्यन्योऽतिथिराव्रजेत्। तस्याप्यन्नंयथाशक्तिप्रदद्यान्नबलिंहरेत् १०८

प० । वैश्वदेवे तु निर्वृत्ते यदि अन्यः अतिथिः आव्रजेत् तस्य अपि अन्नं यथाशक्ति प्रदद्यात् न बलिं हरेत् ॥

यो० । वैश्वदेवे निर्वृत्तेसति यदि अन्यः अतिथिः आव्रजेत् — तस्य अपि यथाशक्ति अन्नं प्रदद्यात् — बलिं न हरेत् पुनः पाकेपि बलिवैश्वदेवं न कुर्यादित्यर्थः ॥

भा० । बलि वैश्वदेव करने के अनन्तर यदि अन्य अतिथि आजाय तो उसकोभी यथाशक्ति फिर पाककरके अन्न दे परंतु फिर बलिवैश्वदेव न करे ॥

ता० । एक अतिथिके भोजनपर्य्यन्त बलिवैश्वदेव किये पीछे यदि दूसरा अतिथि आजाय तो फिर पाकबनाकर उसकोभी अपनी शक्ति के अनुसार अन्न दे और उस अन्नमें से फिर बलि वैश्वदेव न करे—यहां पर बलिवैश्वदेवके निषेध से यह जानागया कि बलिवैश्वदेव कुछ अन्न का संस्कार कर्त्ता नहींहै क्योंकि जो वैश्वदेव अन्न का संस्कारक होता तो अतिथिको असंस्कृत अन्नको कैसे जिमावे १०८ ॥

नभोजनार्थंस्वेविप्रःकुलगोत्रेनिवेदयेत्। भोजनार्थंहितेशंसन्वान्ताशीत्युच्यतेबुधैः १०९

प० । न भोजनार्थं स्वे विप्रः कुलगोत्रे निवेदयेत् भोजनार्थं हि ते शंसन् वान्ताशी इति उच्यते बुधैः ॥

यो० । विप्रः भोजनार्थं स्वे कुलगोत्रे न निवेदयेत् — हि (यतः) भोजनार्थं ते (कुलगोत्रे) शसंन् विप्रः बुधैः वांताशी इति उच्यते ॥

भा० । ता० । ब्राह्मण भोजनलिये अपने कुल और गोत्र का न कहै क्योंकि भोजन के लिये कुल और गोत्रको कहतेहुये ब्राह्मणको पण्डितजन वांताशी कहते हैं अर्थात् वमनकिये पदार्थ को भक्षणकरनेवाला कहतेहैं १०६ ॥

नब्राह्मणस्यत्वतिथिर्गृहेराजन्यउच्यते । वैश्यशूद्रौसखाचैवज्ञातयोगुरुरेवच ११० ॥

प० । न ब्राह्मणस्य तु अतिथिः गृहे राजन्यः उच्यते वैश्यशूद्रौ सखा च एव ज्ञातयः गुरुः एव च ॥

यो० । ब्राह्मणस्यगृहे राजन्यः(क्षत्रियः)अतिथिः(बुधैः) न उच्यते — वैश्यशूद्रौ — चपुनः सखा — ज्ञातयः चपुनः गुरुः एतेपि ब्राह्मणस्यगृहे अतिथयो न उच्यंते ॥

भा० । ब्राह्मण के घरमें क्षत्रिय वैश्य शूद्र—मित्र—ज्ञाति—और गुरु ये अतिथिनहीं होतेहैं ॥

ता० । ब्राह्मण के घरमें क्षत्रिय वैश्य और शूद्रको पंडितजनोंने अतिथि नहीं कहा क्योंकि ये ब्राह्मणसे नीचेवर्ण हैं—और इसीप्रकार क्षत्रिय के घरमें वैश्य और शूद्र और वैश्य के घरमें शूद्र अतिथि नहीं होते और अपने सम्बन्धिहोने से मित्र और ज्ञाति अतिथि नहीं होतेहैं और अपना स्वामी होनेसे गुरुभी अतिथिनहीं होता अर्थात् ब्राह्मणकाअतिथि ब्राह्मण और इतरोंके अतिथि अपनेसे उत्कृष्ट जाति और समानजाति के होतेहैं ११० ॥

यदित्वतिथिधर्मेणक्षत्रियोगृहमाव्रजेत् । भुक्तवत्सुचविप्रेषुकामंतमपिभोजयेत् १११ ॥

प० । यदि तु अतिथिधर्मेण क्षत्रियः गृहं आव्रजेत् भुक्तवत्सु उक्तविप्रेषु कामं तं अपि भोजयेत् ॥

यो० । यदि ब्राह्मणस्यगृहे अतिथिधर्मेण क्षत्रियः आव्रजेत् (तर्हि) उक्तविप्रेषु भुक्तवत्सु सत्सु तं (क्षत्रियं) अपि कामं भोजयेत् ॥

भा० । ता० । यदि ब्राह्मण के घरमें अतिथि के धर्म से अर्थात् ग्रामांतर से अथवा अतिथि आने के समयपर क्षत्रियभी आजाय तो ब्राह्मण के घरमें प्रथम आये ब्राह्मणों के भोजनकरनेके पीछे उस क्षत्रियको भी यथेच्छ भोजनकरावे १११ ॥

वैश्यशूद्रावपिप्राप्तौकुटुम्बेऽतिथिधर्मिणौ ॥
भोजयेत्सहभृत्यैस्तावानृशंस्यंप्रयोजयन् ११२ ॥

प० । वैश्यशूद्रौ अपि प्राप्तौ कुटुम्बे अतिथिधर्मिणौ भोजयेत् सह भृत्यैः तौ आनृशंस्यं प्रयोजयन् ॥

यो० । ब्राह्मणस्य कुटुम्बे अतिथिधर्मिणौ प्राप्तौ यौ वैश्यशूद्रौ (भवेतां) तौ अपि भृत्यैस्सह आनृशंस्यं प्रयोजयन् सन् ब्राह्मणः भोजयेत् ॥

भा० । ता० । यदि वैश्य और शूद्रभी अतिथि के धर्मसे ब्राह्मण के कुटुम्ब में आवें तो उन दोनोंकोभी दयाभाव से सेवकों के संग भोजनकरादे अर्थात् क्षत्रिय के भोजन से पीछे और दंपती (स्त्री पुरुष) के भोजन से पहिले उनको जिमावे ११२ ॥

इतरानपिसख्यादीन्संप्रीत्यागृहमागतान् ॥
सत्कृत्यान्नंयथाशक्तिभोजयेत्सहभार्यया ११३ ॥

प० । इतरान् अपि सख्यादीन् संप्रीत्या गृहं आगतान् सत्कृत्य अन्नं यथाशक्ति भोजयेत् सह भार्यया ॥

यो० । संप्रीत्या गृहं आगतान् इतरान् सख्यादीन् अपि सत्कृत्य यथाशक्ति भार्यया सह अन्नं भोजयेत् ॥

भा० । अत्यंत प्रेमसे अपने घरपर आयेहुये अन्य मित्र आदिकोंको भी सत्कारकरके अपनी स्त्रीके भोजनकरने के समय यथाशक्ति जिमावे ॥

ता० । उक्त भोजन के समय अत्यन्त प्रीति से अपने घरपर आयेहुये मित्रआदिकों को भी (अर्थात् अतिथि धर्म से जो न आयेहों) अपनी शक्तिके अनुसार उत्तम अन्न बनवाकर स्त्री के भोजनकरनेके समय भोजनकरादे—यद्यपि—अवशिष्टंतुदम्पती—इसवचनमें अपने भी भोजनका वही समय है इससे अपने संग जिमावे यह कहनाथा स्त्रीके संग जिमावे यहकहना आचार्य के वचनकी विचित्रताहै अर्थात् एकही दोनोंकाभाव है—और गुरुके भोजनका समय इससे नहीं कहा कि वे बड़ेहैं चाहे जब भोजनकरें ११३ ॥

सुवासिनीःकुमारीश्चरोगिणोगर्भिणीःस्त्रियः ॥
अतिथिभ्योऽग्रएवैतान्भोजयेदविचारयन् ११४ ॥

प० । सुवासिनीः कुमारीः च रोगिणः गर्भिणीः स्त्रियः अतिथिभ्यः अग्रे एव एतान् भोजयेत् अविचारयन् ॥

यो० । सुवासिनीः कुमारीः चपुनः रोगिणः गर्भिणीः स्त्रियः एतान् सर्वान् अतिथिभ्यः अग्रे (प्रथमं) एव अविचारयन् सन् भोजयेत् ॥

भा० । नवीनविवाही स्त्री—कन्या—रोगी—गर्भवाली स्त्री—इनको विनाविचारे अभ्यागतों से पहिलेही भोजनकरावे ॥

ता० । सुवासिनी (नईविवाही स्त्री) कुमारी (कन्या) रोगी—और गर्भवती स्त्री इनसबको विना विचारे अभ्यागतोंसे पहिलेही भोजनकरादे—अर्थात् यह न विचारे कि अतिथियोंसे पहिले इनको कैसे जिमाऊं—और मेधातिथि तो—अतिथिभ्योनुएवैतान—ऐसापाठपढ़कर यहअर्थ करते हैं कि अतिथि के संगही इनको जिमावे—और अन्यआपि अग्रेयहपढ़तेहैं—इनदोनोंमें मेधातिथि का अर्थ ठीकहै क्योंकि अतिथि का सम्मान इसीअर्थ में होसक्ताहै ११४ ॥

अदत्वातुयएतेभ्यःपूर्वंभुंक्तेविचक्षणः।सभुञ्जानोनजानातिश्वगृध्रैर्जग्धिमात्मनः ११५ ॥

प० । अदत्वा तु यः एतेभ्यः पूर्वं भुंक्ते विचक्षणः सः भुंजानः न जानीति श्वगृध्रैः जग्धि आत्मनः ॥

यो० । यः विचक्षणः एतेभ्यः अदत्वा पूर्वं भुंक्ते—भुंजानः सः आत्मनः श्वगृध्रैः जाग्धिं न जानाति मृतं तं श्वगृध्राः खादंतीत्यर्थः ॥

भा० । ता० । जो पण्डित अर्थात् भोजनके व्यतिक्रमके दोषोंकाज्ञाता इनअतिथिआदि भृत्य

पर्य्यन्तोंको विनादिये पहिले खाताहै—वह मरणेके पीछे कुत्ते और गीधोंसे अपने देहके भक्षणको नहीं जानता—अर्थात् उसको कुत्ते और गीधखातेहैं ११५ ॥

भुक्तवत्स्वथविप्रेषुस्वेषुभृत्येषुचैवहि । भुञ्जीयातांततःपश्चादवशिष्टंतुदम्पती ११६ ॥

प० । भुक्तवत्सुँ अथँ विप्रेषुँ स्वेषुँ भृत्येषुँ चँ एवँ हिँ भुंजीयातीं ततः पश्चात् अवशिष्टं तुँ दम्पती ॥

यो० । अथ विप्रेषु—चपुनः स्वेषु भृत्येषु भुक्तवत्सु (सत्सु) ततः पश्चात् अवशिष्टं अन्नं दंपती भुंजीयातां ॥

भा० । ता० । ब्राह्मण अतिथि और अपने भृत्य (सेवक) जब भोजनकरचुकें तिसके पीछे शेष अन्नको दंपती (स्त्री पुरुष) भोजनकरें ११६ ॥

देवानृषीन्मनुष्यांश्चपितॄन्गृह्याश्चदेवताः ॥
पूजयित्वाततःपश्चाद्गृहस्थःशेषभुग्भवेत् ११७ ॥

प० । देवान् ऋषीन् मनुष्यान् चँ पितॄन् गृह्याः चँ देवताः पूजयित्वाँ ततः पश्चात् गृहस्थः शेषभुक् भवेत् ॥

यो० । गृहस्थः देवान् ऋषीन् चपुनः मनुष्यान् चपुनः गृह्याः देवताः पूजयित्वा ततः पश्चात् शेषभुक् भवेत् ॥

भा० । देवता ऋषि—मनुष्य और घरके देवता इन सबका अन्नदानसे पूजनकरके शेष अन्न का गृहस्थी भोजनकरे ॥

ता० । देवता—ऋषि—और मनुष्य और गृह्य (बलिवैश्वदेवमेंकहे) देवता इन सबका पूजन करके गृहस्थी शेष अन्नके भोजन करनेवालाहै—इसमें गृह्यदेवताओंके पूजनसे भूत यज्ञ कहा अर्थात् पंचयज्ञों का कर्ताहुआ गृहस्थी शेष अन्नका भोजन करे—यद्यपि—अवशिष्टंतुदंपती—इससे शेष अन्नका भोजन कहआयेथे तथापि जो आगे दोष कहेंगे उसका यह अनुवादहै—अथवा देवान् इसमेंही भूत यज्ञका संग्रहकरना और गृह्या देवता इससे उनका पूजन कहा जो वासुदेव आदिकी प्रतिमा (मूर्त्ति) अपने घरमेंहो ११७ ॥

अघंसकेवलंभुंक्तेयःपचत्यात्मकारणात् । यज्ञशिष्टाशनंह्येतत्सतामन्नंविधीयते ११८॥

प० । अघं सः केवलं भुंक्ते यः पचति आत्मकारणात् यज्ञशिष्टाशनं हिँ एतत् सतां अन्नं विधीयते ॥

यो० । यःपुरुषः आत्मकारणात् पचति सःकेवलं अघं भुंक्ते—हि (यतः) एतत् यज्ञशिष्टाशनं सतां अन्नं विधीयते ॥

भा० । जो मनुष्य केवल अपनेही अर्थ पाक करताहै वह पापको खाताहै क्योंकि यज्ञसे शेष का भोजनही सत्पुरुषोंका अन्न कहाहै ॥

ता० । जो पुरुष केवल अपने लियेही पाक करताहै वह पापको भोगताहै क्योंकि यह जो यज्ञ से शेष अन्नका भक्षणहै सोई सत्पुरुषों का अन्नकहाहै क्योंकि इस[१] श्रुतिमें यह लिखा है कि

---

१ केवलाघो भवति केवलादी यस्माद्यदेव पाकयज्ञावशिष्टमशनमश्नमश्यते इति ॥

जिससे जो अकेला आपही खाता है वह केवल पाप रूपहै और जो पाक यज्ञसे अवशिष्ट अन्न खाया जाताहै वही अशन (भोजन) है ११८ ॥

राजर्त्विक्स्नातकगुरून्प्रियश्वशुरमातुलान् । अर्हयेन्मधुपर्केणपरिसंवत्सरात्पुनः ११९

प० । राजर्त्विक्स्नातकगुरून् प्रियश्वशुरमातुलान् अर्हयेत् मधुपर्केण परिसंवत्सरात् पुनः ॥

यो० । राजर्त्विक्स्नातकगुरून्—प्रियश्वशुरमातुलान परिसंवत्सरान् पुनः मधुपर्केण पूजयेत्—संवत्सरात् ऊर्ध्वं समागतान् पुनः पूजयेत् वर्षमध्येतु न पूजयेदितिभावः ॥

भा० । राजा—ऋत्विक्—स्नातक—गुरु—जामाता—श्वशुर—मातुल—एकवर्षके मध्यमें एकवार अपने घर पर आयेहुये इनका प्रतिवर्ष पूजनकरै ॥

ता० । अतिथिकी पूजाके प्रसंगसे अपने घरपर आये राजा आदिकी पूजाकी विशेषता कहते हैं कि—राजा—ऋत्विक्—यज्ञ आदि जो करावे स्नातक (विद्या और व्रतसंयुक्त) गुरु प्रिय (जामाता)श्वशुर—और मातुल अपने घरपर आये इन सातोंका मधुपर्कसे पूजनकरै—परन्तु संवत्सर को वर्जदे अर्थात् यदि वर्ष दिनके पीछे ये आवें तो मधुपर्कसे पूजे—मध्यमें आवें तो नहीं—क्योंकि परिसंवत्सरात् यहां परि इस उपसर्गका अर्थ वर्जनाहै और—पंचम्यपाङ् परिभिः—इस सूत्र से परिके योगमें—संवत्सरात्—यह पंचमीहै—मेधातिथि तो यह कहतेहैं कि—परिसंवत्सरान्—यहपाठ है और उसका अर्थ यहहै कि परिगत निकसगयाहै संवत्सर जिनको ऐसे राजा आदिको मधुपर्कसे पूजे मध्यमें नहीं ११९ ॥

राजाचश्रोत्रियश्चैवयज्ञकर्मण्युपस्थितौ । मधुपर्केणसंपूज्यौनत्वयज्ञइतिस्थितिः १२०॥

प० । राजा च श्रोत्रियः च एव यज्ञकर्मणि उपस्थितौ मधुपर्केण संपूज्यौ न तु अयज्ञे इति स्थितिः ॥

यो० । राजा—चपुनः श्रोत्रियः—यज्ञकर्मणि उपस्थितौ एतौ द्वौ मधुपर्केण संपूज्यौ—अयज्ञेतु न संपूज्यौ—इतिस्थितिः शास्त्रमर्यादेत्यर्थः ॥

भा० । राजा—वेदपाठी—यज्ञकर्ममें आयेहुयेही इनका मधुपर्कसे पूजनकरै अयज्ञ (यज्ञकेविना) में न करै यह शास्त्रकी मर्यादाहै ॥

ता० । राजा और स्नातक की पूजामें संकोचकहते हैं कि वर्ष दिनके अनंतर भी यज्ञकर्ममें ही आयेहुये राजा और स्नातक का मधुपर्कसे पूजनकरै और जामाता (जमाई) आदि तो यज्ञके विना भी वर्ष दिनके अनंतर आये मधुपर्कके योग्यहोतेहैं और वर्ष दिनके मध्यमें तो सबको यज्ञ और विवाह में ही मधुपर्क देना इसी वचन में गौतमऋषि ने कहाहै ऋत्विक् आचार्य श्वशुर—पितृव्य (चाचा) मामा—इनके आने पर मधुपर्कदे और वर्ष के मध्यमें तो यज्ञ और विवाहमेंही राजा और श्रोत्रिय (वेदपाठी) कोहीदे १२० ॥

सायंत्वन्नस्यसिद्धस्यपत्न्यमन्त्रंबलिंहरेत् । वैश्वदेवंहिनामैतत्सायंप्रातर्विधीयते १२१ ॥

प० । सायं तु अन्नस्य सिद्धस्य पत्नी अमंत्रं बलिं हरेत् वैश्वदेवं हि नाम एतत् सायं प्रातः विधीयते ॥

१. ऋत्विगाचार्यश्वशुरपितृव्यमातुलानामुपस्थानेमधुपर्कः संवत्सरे पुनर्यज्ञविवाहयोरर्वाक् राज्ञः श्रोत्रियस्यच ॥

यो० । सायंसिद्धस्य अन्नस्य पत्नी अमंत्रं बलिं हरेत् हि (यतः) एतत् वैश्वदेवं नामकर्म सायं प्रातः विधीयते ॥

भा० । ता० । संध्याको बनाये हुये अन्नमें से पत्नीही बिना मंत्रोंके पढ़े बलिदे अर्थात् मनमें देवताओं के स्मरण को करके दे—क्योंकि यह वैश्वदेवनामक कर्म—(होम—बलिदेना—अतिथि भोजन) गृहस्थी को सायंकाल और प्रातःकाल करना कहाहै १२१ ॥

पितृयज्ञंतुनिर्वर्त्यविप्रश्चेन्दुक्षयेऽग्निमान् ॥
पिण्डान्वाहार्यकंश्राद्धंकुर्यान्मासानुमासिकम् १२२ ॥

प० । पितृयज्ञं तु निर्वर्त्य विप्रः च इंदुक्षये अग्निमान् पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं कुर्यात् मासानुमासिकम् ॥

यो० । अग्निमान विप्रः पितृयज्ञं निर्वर्त्य इन्दुक्षये (अमावास्यायां) पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं मासानुमासिकं कुर्यात् ॥

भा० । पिण्ड और पितृ यज्ञ को निवृत्त करके अमावस्याके दिन अग्निहोत्री ब्राह्मण पिण्डा न्वाहार्यक श्राद्धको प्रतिमास में करै ॥

ता० । अब सनातन श्राद्धकल्प सुनो यह अनुक्रमणिका में जो पहिले प्रतिज्ञा की है उसके अनुसार श्राद्ध प्रकरणका प्रारम्भ करते हैं कि अग्निहोत्रवाला ब्राह्मण अमावस्या में पितृयज्ञ पिण्डदानादि करके—पिण्डान्वाहार्यक (पितृयज्ञ और पिण्ड इन दोनोंके अनु (पीछे) जो किया जाय उसे पिण्डान्वाहार्यक श्राद्ध कहतेहैं) श्राद्ध मासानुमासिक (प्रतिमास में) करै—इस श्लोक से इसश्राद्ध को अमावस्याके दिन नित्य कर्त्तव्य कहा है और विप्रका ग्रहण भी तीनों द्विजातियों का बोधक है क्योंकि तीनोंकाही प्रकरण है १२२ ॥

पितृणांमासिकंश्राद्धमन्वाहार्यंविदुर्बुधाः । तच्चामिषेणकर्त्तव्यंप्रशस्तेनसमंततः १२३ ॥

प० । पितृणां मासिकं श्राद्धं अन्वाहार्यं विदुः बुधाः तत् च आमिषेण कर्त्तव्यम् प्रशस्तेन समंततः ॥

यो० । बुधाः पितृणां मासिकं श्राद्धं अन्वाहार्यं विदुः (जानंति । तत् (अन्वाहार्यं श्राद्धं) समंततः प्रशस्तेन आमिषेण (मांसेन) कर्त्तव्यम् ॥

भा० । पितरों के मासिक श्राद्ध को पण्डितजन अन्वाहार्य जानते हैं अर्थात् कहतेहैं और उस श्राद्ध को सब प्रकार से श्रेष्ठ मांस से करना ॥

ता० । अब अन्वाहार्य पदके अर्थ को कहकर पितृयज्ञ से अनन्तर करने को दृढ़करते हैं कि यह प्रतिमासमें होनेवाला श्राद्ध जिसमें पितृयज्ञ और पिण्डोंके पीछे किया जाताहै तिससे इस पितरों के मासिक श्राद्धको पण्डितजन पिण्डान्वाहार्यक जानतेहैं इससे इसको पितृयज्ञके पीछे ही करना उचित है—और उस पिण्डान्वाहार्यक श्राद्धको प्रशस्त (जिस में दुर्गंध नहो और जो मनोहर हो) मांस से करै—अथवा यहांपर—पिण्डानांमासिकंश्राद्धं—ऐसा भी पाठ है—उसका यह अर्थ है कि पितृयज्ञके पिण्डोंके श्राद्ध को पण्डितजन अन्वाहार्य कहते हैं १२३ ॥

तत्रयेभोजनीयाःस्युर्येचवर्ज्याद्विजोत्तमाः ॥
यावन्तश्चैवयैश्चान्नैस्तान्प्रवक्ष्याम्यशेषतः १२४ ॥

प० । तत्र ये भोजनीयाः स्युः ये च वर्ज्याः द्विजोत्तमाः यावंतः च एव यैः च अन्नैः तान् प्रवक्ष्यामि अशेषतः ॥

यो० । तत्र (श्राद्धे) ये द्विजोत्तमाः भोजनीयाः चपुनः ये वर्ज्याः यैः अन्नैः भोजनीयाः यावंतः भोजनीयाः तान् अशेषतः प्रवक्ष्यामि ॥

भा० । ता० । श्राद्धमें जैसे—ब्राह्मण जिमाने और जैसे न जिमाने और जितने जिमाने और जिन अन्नोंसे जिमाने—उन सम्पूर्णों को कहताहूं १२४ ॥

द्वौदैवेपितृकार्येत्रीनेकैकमुभयत्रवा । भोजयेत्सुसमृद्धोऽपिनप्रसज्जेतविस्तरे १२५ ॥

प० । द्वौ दैवे पितृकार्ये त्रीन् एकैकं उभयत्र वा भोजयेत् सुसमृद्धः अपि न प्रसज्जेत विस्तरे ॥

यो० । दैवे (श्राद्धे) द्वौ- पितृकार्ये त्रीन्--वा उभयत्र एकैकं ब्राह्मणं सुसमृद्धः अपि भोजयेत् विस्तरे न प्रसज्जेत ॥

भा० । विश्वेदेवाओंके कार्य में दो और पितरों के कार्यमें तीन २ अथवा दोनों जगह एक २ ब्राह्मण जिमावे और सामर्थ्य होनेपर भी विस्तारमें आसक्त न हो ॥

ता० । यद्यपि जैसे ब्राह्मणजिमावे यह प्रतिज्ञाके अनुसार ब्राह्मणोंका लक्षणही प्रथमकहना था तथापि ब्राह्मणोंकी संख्या में वक्तव्य अल्प है इससे प्रथम ब्राह्मणों की संख्याकोही कहते हैं कि देवता (विश्वेदेवा) ओंके श्राद्ध में दो ब्राह्मण और पितरों (पिता पितामह प्रपितामह) के श्राद्धमें तीन ब्राह्मण—जिमावे—अथवा दोनों जगह एक २ अर्थात् एक दैवश्राद्धमें और एकपितृ श्राद्ध में जिमावे और अधिक भोजन में समर्थ भी विस्तार में आसक्त न हो—मेधातिथिने तो यह कहा है कि पितृकार्यमें तीन अर्थात् तीन पिताके तीनपितामह के तीनप्रपितामहके निमित्त ब्राह्मण जिमावे और अथवा दोनों जगह एकएक अर्थात् एकदैवश्राद्धमें एकपिताके एकपितामह के एकप्रपितामहके निमित्त जिमावे और पिताआदि तीनों के निमित्त एकही ब्राह्मण को न जिमावे क्योंकि इसे आश्वलायन गृह्यसूत्र का विरोधहोगा—कि जैसे पिताआदि तीनों को एक पिण्ड नहीं दिया जाता तिसी प्रकार तीनों के निमित्त एक ब्राह्मण भी नहीं जिमाना—तिस से पिता आदि तीनोंको एकही ब्राह्मण न जिमाना—यह मेधातिथिका कथन असंगतहै क्योंकि उसी गृह्यके कर्त्ता ने यह कहा है कि आद्य (सपिण्डी) से अन्य श्राद्धों में अपनी कामना से पिता आदि तीनों के निमित्त एकही ब्राह्मणको जिमावे अथवा अनाद्य (खानेके योग्य द्रव्य के अभाव) में एक ब्राह्मणको भी जिमावे—उभयत्रापि इसके व्याख्यान में पार्वण आदि श्राद्ध में पिता आदि तीनों को एकही ब्राह्मण जिमावे—और वशिष्ठजीने इस वचनसे सबके निमित्त एक

१. नन्वेवैकं सर्वेषां पिंडैर्व्याख्यातम् ॥

२ काममनाद्ये ॥

३ यद्येकंभोजयेच्छ्राद्धे दैवतन्त्रंकथंभवेत् अन्नंपात्रे समुद्धृत्य सर्वस्य प्रकृतस्यच देवतायतने कृत्वा यथाविधि प्रवर्त्तयेत्-- प्रास्येदन्नं तदग्नौवा — दद्याद्वा ब्रह्मचारिणे ॥

ही ब्राह्मण जिमाना कहाहै कि यदि एकही ब्राह्मणको श्राद्धमें जिमावे तो दैवतंत्र (देवताओंका श्राद्ध) कैसे होगा—जितना अन्न बनायाहो उस सबको एकपात्र में निकासकर देवताओं के स्थान में रखकर यथाविधि (विधिके अनुसार)परसे—अथवा देवताओं के निमित्त जो अन्नहो उसे अग्नि में होमदे—अथवा ब्रह्मचारीको देदे—सिद्धान्त यहहै कि जो अर्थ हमने कहा वह ठीक है मेधातिथिका अर्थ ठीक नहीं है—यद्यपि—प्रथने वाव शब्दः—इस पाणिनिके सूत्र से विस्तारः यह प्रयोग वृद्धिकी महिमा से पाता है तथापि स्मृतियों को भी वेदकी तुल्यता है और सर्वे विधयश्छंदसिविकल्प्यंते—इसवचनसे सबविधि वेदमें विकल्पकरके होती हैं इससे विस्तरे यह प्रयोग भी ठीकहै १२५ ॥

सत्क्रियांदेशकालौचशौचंब्राह्मणसंपदः ।
पश्चैतान्विस्तरोहन्तितस्मान्नेहेतविस्तरम् १२६ ॥

प० । सत्क्रियां देशकालौ च शौचं ब्राह्मणसम्पदः पंच एतान् विस्तरः हंति तस्मात् न ईहेत विस्तरम् ॥

यो० । सत्क्रियां चपुनः देशकालौ—शौचं—ब्राह्मणसम्पदः एतान पंच विस्तरः हंति तस्मात् विस्तरं न ईहेत (नकुर्यात्) ॥

भा० । सज्जन ब्राह्मणों की पूजा—देश—काल—शौच—सुपात्र ब्राह्मण का लाभ—इनपांचोंको विस्तार नष्टकरता है तिससे श्राद्धमें विस्तारको न करे ॥

ता० । सत्क्रिया (ब्राह्मणकी पूजा१)—और दक्षिणकोप्रवण (नीचा) देश२—काल (अपराह्न आदि ३)—शौच अर्थात् श्राद्ध करनेवाले—और भोजनकर्ता और सेवकआदि की शुद्धता ४—और ब्राह्मण सम्पत्ति अर्थात् गुणवाले ब्राह्मणोंकीप्राप्ति५—इनपांचोंको विस्तार नष्टकरताहै तिससे ब्राह्मणों का विस्तार न करे इससे सत्कार आदि के विरोधीहोनेसे विस्तारका निषेधकिया है यदि ब्राह्मण सत्कारआदि पांचों होसकें तो पिताआदि प्रत्येक तीनोंकेनिमित्त तीन२ ब्राह्मण के जिमानेकी भी आज्ञाहै—क्योंकि गौतमऋषि ने यहकहा है कि अवर (अल्प) ब्राह्मणों को अथवा अयुग्म ब्राह्मणोंको न जिमावे—और अपने उत्साहके अनुसार गृह्यकारने भी यहलिखा है कि पार्वणश्राद्धमें और काम्य (जो फलकी आकांक्षासे कियाजाय) श्राद्धमें—और आभ्युदयिक (नांदीमुख) श्राद्धमें—और एकोद्दिष्ट श्राद्ध में ब्राह्मणोंको जिमावे यह प्रारम्भकरके फिर यहकहाहै कि एकएक निमित्त एक२ वा दोदो वा तीन२ जिमावे औरवृद्धि (नांदीमुख) श्राद्ध में फलकी अधिकताहै इससे दो२ जिमावे यह आभ्युदयिकश्राद्ध विषयक के (लिये) है और आभ्युदयिककाही यहां प्रकरणहै १२६ ॥

प्रथिताप्रेतकृत्यैषापित्र्यंनामविधुक्षये । तस्मिन्युक्तस्यैतिनित्यंप्रेतकृत्यैवलौकिकी १२७

प० । प्रथिता प्रेतकृत्या एषा पित्र्यं नाम विधुक्षये तस्मिन् युक्तस्य एति नित्यं प्रेतकृत्या एव लौकिकी ॥

---

१ नचावरानभोजयेदयुजो वा यथोत्साहम् ॥

२ अथातः पार्वणश्राद्धे काम्ये आभ्युदयिक एकोद्दिष्टे ब्राह्मणानित्युपक्रम्य एकैकमेकैकस्य द्वौ द्वौ त्रीन् त्रीन् वा वृद्धौ फलभूयस्त्वम् ॥

यो० । यत् विधुक्षये पितृणांनाम (श्राद्धं) एषा प्रेतकृत्या प्रथिता — तस्मिन् (पितृकार्ये) नित्यं युक्तस्य लौकिकी प्रेतकृत्या भवतीति शेषः ॥

भा० । अमावस्या के दिन जो यह पितरोंका कर्महै यही प्रेतकृत्या प्रसिद्ध है और तिसपितरों के कर्म में जो नित्ययुक्त है उसकी लौकिक (जगत्में कर्त्तव्य) प्रेतकृत्याका फल प्राप्तहोताहै ॥

ता० । जो यह पितरोंके अर्थ श्राद्धरूप है यही पितरों के उपकारकी क्रिया (कर्म) प्रसिद्धहै— और यहां प्रेतशब्दसे—प्रकर्षेणइतःप्रेतः—इस व्युत्पत्तिसे पितृलोकमें स्थितकहाहै और विधुक्षय (अमावस्या) के दिन जो पितृकर्म में युक्त है उस मनुष्य का लौकिक सम्पूर्ण प्रेतकी क्रिया अर्थात् पितरोंके उपकारार्थ कर्म पुत्र पौत्रआदि के प्रबन्धरूप से करनेवाले को प्राप्तहोतीहै तिससे इसश्राद्धको करै—गोविंदराज ने तो—विधिःक्षये—यहपाठ पढ़ाहै और उसका अर्थ यहकिया है कि जो यह विधि कही है वह क्षय (चन्द्रमा के क्षय अमावस्या वा ग्रहण) में करना—यह सम्प्रदायसे नहींहै क्योंकि गोविंदराजसे भी वृद्ध मेधातिथि आदिकोंने स्वीकार नहीं किया और क्षये इसपद के सम्बन्धमें भी क्लेश है १२७ ॥

श्रोत्रियायैवदेयानिहव्यकव्यानिदातृभिः । अर्हत्तमायविप्रायतस्मैदत्तंमहाफलम् १२८

प० । श्रोत्रियाय एवं देयानि हव्यकव्यानि दातृभिः अर्हत्तमाय विप्राय तस्मै दत्तं महाफलम् ॥

यो० । दातृभिः हव्यकव्यानि श्रोत्रियाय अर्हत्तमाय विप्राय एवदेयानि (यतः) तस्मैदत्तं महाफलं (भवति) ॥

भा० । ता० । दाताओंको हव्य और कव्य वेदपाठी और आचारआदि पूजनेयोग्य ब्राह्मण को ही देने क्योंकि उसको जो दियाजाताहै अत्यन्त फलको देताहै १२८ ॥

एकैकमपिविद्वांसंदैवेपित्र्येचभोजयेत् । पुष्कलंफलमाप्नोतिनामन्त्रज्ञान्बहूनपि १२९ ॥

प० । एकैकं अपि विद्वांसं दैवे पित्र्ये च भोजयेत् पुष्कलं फलं आप्नोति न अमंत्रज्ञान् बहून् अपि ॥

यो० । दैवे चपुनः पित्र्ये (कर्मणि) एकैकं अपि विद्वांसं यः भोजयेत् सः पुष्कलं फलं आप्नोति यः अमंत्रज्ञान् बहून् अपि भोजयेत् सः पुष्कलंफलं न आप्नोति ॥

भा० । देवता और पितरोंको श्राद्धमें एक २ ही विद्वान ब्राह्मणको जो जिमावै वह पुष्कल (बहुतसे) फलको प्राप्तहोताहै और वेदके न जाननेवाले बहुतसों को जो जिमावै वह अधिक फलको प्राप्त नहीं होता ॥

ता० । देवता और पितरोंके श्राद्धमें वेदके ज्ञाता एक २ ब्राह्मणको भी जो जिमाता है वह उत्तम फलको प्राप्तहोताहै और बहुत से भी अज्ञानियोंको जो जिमाताहै वह उत्तम फलको प्राप्त नहीं होता—इससे ब्राह्मणोंको भोजन प्रधान है और पिंडदान आदिक तो अंग हैं यह गोविंद-राजकहतेहैं—हम तो यह कहतेहैं कि पिताके निमित्त ब्राह्मणके स्वीकार पर्यंत जो द्रव्यका त्याग वह श्राद्ध शब्द का अर्थ है और वही इस (पिंडान्वाहार्यकंश्राद्धं) से मनुने कहाहै और आप-स्तंबने तो मनुकेही अर्थ का व्याख्यान कहाहै कि जिसीप्रकार मनुने कल्याण के लिये यह

१ तथैतन्मनुश्राद्धशब्दं कर्मप्रोवाचप्रजापति· अयमार्थं तत्र पितरो देवताब्राह्मणस्त्वाहवनीयार्थे मासिमासिपरक्षयस्मा-परादृणः श्रेयान् ॥

श्राद्ध शब्द कर्मको कहताहै तिसमें पितर देवताहैं और ब्राह्मण आहवनीयके समान महीने२ में कृष्णपक्षका—अपराह्नश्रेष्ठहै—और श्राद्धशब्द है वाचक जिसका ऐसे कर्म को श्राद्ध कहतेहैं और आहवनीयार्थे इसका अर्थ आहवनीय के समान यह अर्थ है और दियेहुये द्रव्य की प्राप्ति का स्थान होनेसे पितर देवताहैं और देवताओंके श्राद्धमें तो श्राद्ध शब्द का प्रयोग गौणहै—जैसे कौण्डपायियोंके अयनमें अग्नि शब्द का प्रयोग होताहै पुष्कल (बहुत) फलको प्राप्तहोता है इससे यह सूचितकिया कि अधिक फलकी इच्छा वालेकी गौण फलका विधान है—यद्यपि वह श्राद्धकी विधि भोजनका अंगहै तथापि उसका आश्रयहोने से विरुद्ध नहीं है—इस पूर्वोक्तका आशय यहहै कि मनुके अर्थको कहतेहुये आपस्तम्बने इस पितर और देवताओंके श्राद्धकर्मको कहाहै—तिससे केवल ब्राह्मण भोजनमात्रही श्राद्ध नहीं कहाता १२९ ॥

दूरादेवपरीक्षेतब्राह्मणंवेदपारगम् । तीर्थंतद्धव्यकव्यानांप्रदानेसोऽतिथिःस्मृतः १३० ॥

प० । दूरात् एव परीक्षेत ब्राह्मणं वेदपारगम् तीर्थं तत् हव्यकव्यानां प्रदाने सः अतिथिः स्मृतः ॥

यो० । वेदपारगं ब्राह्मणं दूरात् एव परीक्षेत—तस्मात् तत् (तथाविधः) सः ब्राह्मणः हव्यकव्यानां प्रदाने तीर्थं अतिथिस्स्मृतः मनुनेतिशेषः ॥

भा० । ता० । वेदके पारको जो जाननेवाला ब्राह्मण अर्थात् जो वेदकी संपूर्ण शाखाओंको जानताहो उसकी दूरसेही परीक्षाकरै—तिससे वह ब्राह्मण हव्य और कव्योंका तीर्थरूप और हव्य कव्योंके देनेमें अतिथि कहाहै १३० ॥

सहस्रंहिसहस्राणामनृचांयत्रभुञ्जते । एकस्तान्मन्त्रवित्प्रीतःसर्वानर्हतिधर्मतः १३१ ॥

प० । सहस्रं हि सहस्राणां अनृचां यत्र भुंजते एकः तान् मंत्रवित् प्रीतः सर्वान् अर्हति धर्मतः ॥

यो० । यत्र अनृचां सहस्राणां सहस्राणि भुंजते तत्र प्रीतः मंत्रवित् एकः तान् सर्वान् धर्मतः अर्हति दशलक्ष भोजनेन यत्फलं तदेकवेदपाठिभोजनेन भवतीत्यर्थः ॥

भा० । ता० । जिस श्राद्धमें वेदको न जाननेवाले दशलक्ष ब्राह्मण भोजन करते हैं वहां भोजनसे संतोषको प्राप्तहुआ एकही मंत्र (वेद) का ज्ञाता उन सबके फलदेनेको योग्यहै अर्थात् एकही दशलक्षके फलको देसक्ताहै १३१ ॥

ज्ञानोत्कृष्टायदेयानिकव्यानिचहवींषिच । नहिहस्तावसृग्दिग्धौरुधिरेणैवशुद्ध्यतः १३२

प० । ज्ञानोत्कृष्टाय देयानि कव्यानि च हवींषि च न हि हस्तौ असृग्दिग्धौ रुधिरेण एव शुद्ध्यतः ॥

यो० । कव्यानि चपुनः हवींषि ज्ञानोत्कृष्टाय देयानि—हि (यतः) असृग्दिग्धौ हस्तौ रुधिरेण एव न शुद्ध्यतः ॥

भा० । ता० । विद्यासे जो उत्कृष्ट (बड़ा) उसकोही कव्य और हविः देने क्योंकि रुधिरसे लिये हुये हाथ रुधिरसेही शुद्ध नहीं होते—अर्थात् मूर्खोंके भोजनसे पैदाहुये दोष को मूर्खका भोजनही दूरनहीं करसक्ता—किंतु उस दोषको विद्वान्‌ही दूरकरसक्ताहै १३२ ॥

---

१. आपस्तम्बोऽभ्यधाच्छ्राद्धंकर्म्मैतत्पितृदैवतम् – मन्वर्थंकथयंस्तस्मान्नेदम्ब्राह्मणभोजनम् ॥

यावतोग्रसतेग्रासान्हव्यकव्येष्वमन्त्रवित् ॥
तावतोग्रसतेप्रेत्यदीप्तशूलष्टर्ष्ययोगुडान् १३३ ॥

प०। यावतः ग्रसते ग्रासान् हव्यकव्येषु अमंत्रवित् तावतः ग्रसते प्रेत्य दीप्तशूलष्टर्ष्ययोगुडान् ॥

यो०। अमंत्रवित् हव्यकव्येषु यावतः ग्रासान ग्रसते — (श्राद्धकर्त्ता) प्रेत्य तावतः दीप्तशूलष्टर्ष्ययोगुडान ग्रसते ॥

भा०। ता०। अज्ञानी निंदासे ज्ञानीकीही वक्रोक्तिसे स्तुतिकरते हैं कि वेदके न जाननेवाला पुरुष हव्य और कव्योंमें जितने ग्रासोंको खाताहै—उस श्राद्धके करनेवाला पुरुष मरनेपर यमराजके लोकमें उतनेही जलतेहुये शूल ऋष्टि लोहेके पिंडखाताहै—अज्ञानी पुरुषके जिमाने से यह अनिष्टफल श्राद्धके कर्त्ताकोही होताहै—क्योंकि व्यासने भी कहाहै कि जिसके जितने पिंडोंको श्राद्धमें वेदको न जाननेवाला खाताहै उतनेही शूलोंको यमलोकमें जाकर श्राद्धकरनेवाला खाताहै १३३ ॥

ज्ञाननिष्ठाद्विजाःकेचित्तपोनिष्ठास्तथापरे ॥
तपःस्वाध्यायनिष्ठाश्चकर्मनिष्ठास्तथापरे १३४ ॥

प०। ज्ञाननिष्ठाः द्विजाः केचित् तपोनिष्ठाः तथा अपरे तपःस्वाध्यायनिष्ठाः च कर्मनिष्ठाः तथा अपरे ॥

यो०। केचित् द्विजाः ज्ञाननिष्ठाः — तथा अपरे तपोनिष्ठाः — चपुनः — तपः स्वाध्यायनिष्ठाः — अपरे कर्मनिष्ठाः — भवंति ॥

भा०। ता०। कोई ब्राह्मण ज्ञानहीमें तत्परहैं और कोई प्राजापत्य आदि तपमेंही तत्पर हैं और कोई तप और अध्ययनमेंही तत्परहैं और कोई याग आदि कर्ममेंही तत्परहैं १३४ ॥

ज्ञाननिष्ठेषुकव्यानिप्रतिष्ठाप्यानियत्नतः। हव्यानितुयथान्यायंसर्वेष्वेवचतुर्ष्वपि १३५

प०। ज्ञाननिष्ठेषु कव्यानि प्रतिष्ठाप्यानि यत्नतः हव्यानि तु यथान्यायं सर्वेषु एव चतुर्षु अपि ॥

यो०। कव्यानि यत्नतः ज्ञाननिष्ठेषु प्रतिष्ठाप्यानि — हव्यानितु सर्वेषु चतुर्षु एव यथान्यायं प्रतिष्ठाप्यानि ॥

भा०। ता०। पितरोंके लिये जो अन्नहैं वे ज्ञानही जिनके प्रधानहो उनको देने और देवताओंके लिये जो अन्नहैं वे यथायोग्य संपूर्ण चारों को ही देने १३५ ॥

अश्रोत्रियःपितायस्यपुत्रःस्याद्वेदपारगः ।
अश्रोत्रियोवापुत्रःस्यात्पितास्याद्वेदपारगः १३६ ॥

प०। अश्रोत्रियः पिता यस्य पुत्रः स्यात् वेदपारगः अश्रोत्रियः वा पुत्रः स्यात् पिता स्यात् वेदपारगः ॥

यो०। यस्य पिता अश्रोत्रियः पुत्रः वेदपारगः स्यात्—वा पुत्रः अश्रोत्रियः पिता वेदपारगः स्यात् ॥

भा०। ता०। जिसका पिता वेदपाठी नहो और पुत्र वेदके पारको जानताहो—और जिसका पुत्र वेदपाठी न हो और पिता वेदके पारको जानताहो १३६ ॥

---

१ ग्रसते यावतः पिण्डान् यस्यवैहविषोनृचः ग्रसतेतावतःशूलान् गत्वा वैवस्वतक्षयम् ॥

ज्यायांसमनयोर्विद्याद्यस्यस्याच्छ्रोत्रियःपिता।मन्त्रसंपूजनार्थंतुसत्कारमितरोऽर्हति १३७

प० । ज्यायांसं अनयोः विद्यात् यस्य स्यात् श्रोत्रियः पिता मंत्रसंपूजनार्थं तु सत्कारं इतरः अर्हति ॥

यो० । यस्य पिता श्रोत्रियःतं अनयोः ज्यायांसं विद्यात् तुपुनः इतरः मंत्रसंपूजनार्थं सत्कारं अर्हति तत्पठित वेदस्य पूजनेनैव सपूज्यो भवति ॥

भा० । इनदोनों में वही श्रेष्ठ जानना जिसका पिता वेदपाठी हो और जो स्वयं वेदपाठीहो और मूर्खका पुत्रहो वह मंत्र (विद्या) के पूजनसेही सत्कार के योग्य है ॥

ता० । अब उन दोनोंमें जो श्रेष्ठहै उसे दिखातेहैं—कि इनदोनों में वही श्रेष्ठ जो वेदपाठीका पुत्रहो--और चाहै स्वयं वेदपाठी न हो—अर्थात् पिताकी विद्यासे वह भी आदरके योग्य है क्योंकि शुद्ध वीर्यसे उत्पन्नहै—और जो अवेदपाठीका पुत्रहो और स्वयं वेदपाठीही वह अपने पढ़हुये वेदकी पूजासेही सत्कारके योग्यहै और वेदकी पूजाहै कुछ उसकी नहीं है यह पुत्रकी विद्याके आदरको इसनेकहा अर्थात् जो वेदपाठीकाही पुत्रहो और स्वयंभी वेदपाठी हो वही श्राद्धमें जिमाना-- यद्यपि इसवचनसे उसीकी अनुमति पाईजातीहै जो श्रोत्रियका पुत्रहो और स्वयं अश्रोत्रियहो और पीछे यह कहआयेहैं कि श्रोत्रियकोही हव्यकव्य देने इसपूर्वोक्त वचनके विरोधसे यह असंगतहै तथापि दूरसेही ब्राह्मणकी परीक्षाकरै यह वचन विद्यासे भिन्न आचरण आदिकी परीक्षा काही बोधक है १३७ ॥

नश्राद्धेभोजयेन्मित्रंधनैःकार्योऽस्यसंग्रहः ॥
नारिंनमित्रंयंविद्यात्तंश्राद्धेभोजयेद्द्विजम् ॥१३८

प० । न श्राद्धे भोजयेत् मित्रं धनैः कार्यः अस्य संग्रहः न अरिं न मित्रं यं विद्यात् तं श्राद्धे भोजयेत् द्विजम् ॥

यो० । श्राद्धे मित्रं न भोजयेत् अस्य (मित्रस्य) धनैः संग्रहः कार्यः — यं द्विजं अरिं मित्रं न विद्यात् तं द्विजं श्राद्धे भोजयेत् ॥

भा० । ता० । श्राद्ध में मित्रको न जिमावे किन्तु धनदेकर इसका संग्रह (अर्थात् मित्रता करनी) करनी और जिसको न शत्रु और न मित्र जाने उस ब्राह्मणको श्राद्धमें जिमावे १३८ ॥

यस्यमित्रप्रधानानिश्राद्धानिचहवींपिच।तस्यप्रेत्यफलंनास्तिश्राद्धेषुचहविःषुच १३९॥

प० । यस्य मित्रप्रधानानि श्राद्धानि च हवींपि च तस्य प्रेत्य फलं न अस्ति श्राद्धेषु च हविःषु च ॥

यो० । यस्य (पुरुषस्य) श्राद्धानि चपुनः हवींषि मित्रप्रधानानि भवंति तस्यश्राद्धेषु चपुनः हविःषु प्रेत्य (परलोके) फलं नास्ति (नभवति) ॥

भा० । ता० । जिस मनुष्य के श्राद्ध और होममें मित्रताही प्रधान होती है अर्थात् मित्रही भोजन आदिमें होते हैं उस मनुष्य को परलोक में श्राद्ध और होमका फल नहीं होताहै—इस श्लोक में प्रेत्य यह परलोक वाचक अव्यय है कृदंतक्त्वा प्रत्ययांत क्रिया नहीं है क्योंकि प्रेत्य

और अस्तिका एककर्ता नहीं होनेसे इससूत्रसे क्त्वा प्रत्यय न होगा और मित्रशब्द भावप्रधानहै इस से उसका मित्रता अर्थहै १३९ ॥

यःसंगतानिकुरुतेमोहाच्छ्राद्धेनमानवः।सस्वर्ग्गाच्च्यवतेलोकाच्छ्राद्धमित्रोद्विजाधमः॥

प० । यः संगतानि कुरुते मोहात् श्राद्धेन मानवः सः स्वर्ग्गात् च्यवते लोकात् श्राद्धमित्रः द्विजाधमः ॥

यो० । यः मानवः मोहात् श्राद्धेन संगतानि कुरुते श्राद्धमित्रः सः द्विजाधमः स्वर्ग्गात् लोकात् च्यवते (पतति) ॥

भा० । जो मनुष्य अज्ञानता से श्राद्ध के अर्थ ही मित्रता करता है–श्राद्धही मित्र जिसका ऐसा वह द्विजोंमें नीच स्वर्ग से पतित होताहै अर्थात् उसे स्वर्ग्ग नहीं मिलता ॥

ता० । अब श्राद्ध का फल स्वर्ग है यह दिखाने के लिये पूर्वोक्त फलके अभावकोही विशेषता से कहते हैं कि जो मनुष्य मोहसे (शास्त्रको न जानकर) श्राद्ध से संगतों (मित्रता) को करता है–श्राद्धही है मित्र जिसका ऐसा वह द्विजों में नीच मनुष्य स्वर्ग्ग लोक से गिरता है– अर्थात् उसको स्वर्ग्ग नहीं मिलता–क्योंकि याज्ञवल्क्य[2] ने भी श्राद्धका फल स्वर्ग्ग कहा है कि प्रसन्नहुये मनुष्यों के पितर–अवस्था–प्रजा–धन–विद्या–स्वर्ग–मोक्ष–सुख और राज्य इन को देते हैं १४० ॥

संभोजनीसाभिहितापैशाचीदक्षिणाद्विजैः।इहैवास्तेतुसालोकेगौरन्धेवैकवेश्मनि १४१॥

प० । संभोजनी सा अभिहिता पैशाची दक्षिणा द्विजैः इह एव आस्ते तु सा लोके गौः अंधा एव एकवेश्मनि ॥

यो०।सा पैशाची दक्षिणा द्विजैः संभोजनी अभिहिता—सा दक्षिणा इह एवलोके अंधा गौः एकवेश्मनि इव आस्ते परलोकफलदा न भवतीत्यर्थः ॥

भा० । द्विजोंने वह दक्षिणा(क्रिया)संभोजनी (गोठ) और पिशाचों की कही है इससे वह इसीलोक में इस प्रकार रहती है जैसे अंधी गौ एक घरमें ॥

ता० । वह दक्षिणा (दानकी क्रिया) संभोजनी (जिस में संग बैठकर भोजनकरें) गोठ द्विजोंने कहीहै और वह क्रिया पैशाची (पिशाचोंके करने योग्य)मनुआदिकोंने कहीहै और मित्रताके लियेही होनेसे वह इसप्रकार इसीलोकमें रहतीहै जैसे अंधी गौ एकही घरमें रहतीहै–इस से संभोजनी कर्म के तात्पर्य्य से कभी भी कर्म में न लगे १४१ ॥

यथेरिणेबीजमुप्त्वानवप्तालभतेफलम्।तथाऽनृचेहविर्दत्वानदातालभतेफलम्१४२॥

प० । यथा इरिणे बीजं उप्त्वा न वप्ता लभते फलम् तथा अनृचे हविः दत्वा न दाता लभते फलम् ॥

यो० । ईरिणे बीजं उप्त्वा यथा वप्ता फलं न लभते – तथा अनृचे हविः दत्वा दाता (अपि) फलं न लभते ॥

---

१ समानकर्तृकयोः पूर्वे कालेक्त्वा ॥

२ आयुः प्रजां धनं वित्तं स्वर्गं मोक्षं सुखानिच प्रयच्छंति तथाराज्यं प्रीतानृणां पितामहाः ॥

भा० ता० । जैसे ऊपरमें बीजबोकर बोनेवाला पुरुष कुछ फलको प्राप्त नहीं होता इसीप्रकार विना वेदपाठी मनुष्य को दानदेकर दाता भी फलको प्राप्तनहीं होता १४२ ॥

दातॄन्प्रतिग्रहीतॄंश्चकुरुतेफलभागिनः । विदुषेदक्षिणांदत्वाविधिवत्प्रेत्यचेहच १४३॥

प० । दातॄन् प्रतिग्रहीतॄन् च कुरुते फलभागिनः विदुषे दक्षिणां दत्वा विधिवत् प्रेत्य च इह च ॥

यो० । दाता विदुषे विधिवत् दक्षिणांदत्वा दातॄन् चपुनः प्रतिग्रहीतॄन् प्रेत्य चपुनः इह फलभागिनः कुरुते ॥

भा० । विधिपूर्वक विद्वानको दक्षिणा देकर मनुष्य दाताको और प्रतिग्रहीताको इसलोक और परलोक में फलके भागी करताहै ॥

ता० । वेदके तत्त्वके ज्ञाताओंको शास्त्रकेअनुसार दियाहुआ दान इसलोकके फलको अर्थात् जगत्में प्रसिद्धताको देताहै यह मेधातिथि और गोविंदराजकहतेहैं और हमतो यह कहतेहैं कि आयुः प्रजाधनआदिको देताहै क्योंकि याज्ञवल्क्यने सुपात्रको दिये और शास्त्रके अनुसार किये श्राद्धआदिकों का फल यही कहाहै– और प्रतिग्रह लेनेवाले हैं उनको भी श्राद्धआदि में लब्ध हुये धनसे यज्ञआदि करने के द्वारा परलोक में स्वर्गआदि फलदेने से सुफल करता है क्योंकि अन्यायसे संचित धनसे जो यज्ञआदि किया जाताहै वह निष्फलहोताहै और इसलोकमें न्याय से संचितधनसे किये कृष्यादिकों में भी श्रेष्ठफल होताहै १४३ ॥

कामंश्राद्धेऽर्चयेन्मित्रंनाभिरूपमपित्वरिम् ।
द्विषताहिहविर्भुक्तंभवतिप्रेत्यनिष्फलम् १४४॥

प० । कामं श्राद्धे अर्चयेत् मित्रं न अभिरूपं अपि तु अरिं द्विषता हि हविः भुक्तं भवति प्रेत्य निष्फलं ॥

यो० । श्राद्धे मित्रं कामं भोजयेत् अभिरूपं अपि अरिं न भोजयेत् – हि (यतः) द्विषता भुक्तं हविः प्रेत्य निष्फलं भवति ॥

भा० । ता० । विद्वान् ब्राह्मणके अभावमें मित्रको यथेच्छ जिमावे परन्तु अभिरूप (विद्वान्) भी विद्वान् को न जिमावे क्योंकि शत्रुने जो खाया श्राद्ध वह परलोकमें निष्फलहोताहै १४४ ॥

यत्नेनभोजयेच्छ्राद्धेबहृचंवेदपारगम्।शाखान्तगमथाध्वर्युंछन्दोगंतुसमाप्तिकम् १४५

प० । यत्नेन भोजयेत् श्राद्धे बहृचं वेदपारगम् शाखांतगं अथ अध्वर्युं छन्दोगं तु समाप्तिकम् ॥

यो० । बहृचं – वेदपारगं – शाखांतगं – अथ अध्वर्युं – छन्दोगं – समाप्तिकम् – श्राद्धे यत्नेन भोजयेत् ॥

भा० । जिसने बहुत ऋचा पढ़ीहों अथवा जिसने वेदके पारको देखाहो वा शाखाको सम्पूर्ण पढ़ाहो अथवा जो अध्वर्यु (ऋत्विज) हो अथवा जिसने वेदको समाप्त कियाहो ऐसा ब्राह्मण को बड़े यत्नसे श्राद्ध में जिमावे ॥

ता० । पहिले यहकहा कि श्रोत्रिय (वेदपढ़ेहुये) को दानदेना अब यह कहते कि अधिकफल का अभिलाषी मंत्र और ब्राह्मणरूप सब शाखाओंको जिसने पढ़ाहो उसीको दान दे–ऋग्वेद

जिसने मंत्र ब्राह्मणरूप सब पढ़ाहो अथवा यजुर्वेद पढ़ाहो अथवा जो वेदका पारगामीहो अथवा जिसने अपनेवेदकी शाखाका अन्तकियाहो अर्थात् सब पढ़ीहो अथवा सम्पूर्ण वेदकोही जिसने समाप्त कियाहो अर्थात् जिसने मंत्र ब्राह्मणरूप सब शाखा पढ़ीहों ऐसे ब्राह्मणको बड़े यत्न से श्राद्धमें जिमावे १४५ ॥

एषामन्यतमोयस्यभुञ्जीतश्राद्धमर्चितः ।
पितॄणांतस्यतृप्तिःस्याच्छाश्वतीसाप्तपौरुषी १४६ ॥

प० । एषां अन्यतमः यस्य भुंजीत श्राद्धं अर्चितः पितॄणां तस्य तृप्तिः स्यात् शाश्वती साप्तपौरुषी ॥

यो० । यस्य एषां अन्यतमः अर्चितः श्राद्धं भुंजीत तस्य पितॄणां साप्तपौरुषी शाश्वती तृप्तिः स्यात्--साप्तपौरुषी अत्र अनुशातिकादेराकृतिगणत्वादुभयपदवृद्धिः ॥

भा० । ता० । इनपूर्वोक्त ब्राह्मणोंमें से कोईसा पूजित ब्राह्मण श्राद्धको भोजनकरता है उस के पुरुषों की सातपुरुषांतक शाश्वती (बहुतकालतक) तृप्ति होतीहै १४६ ॥

एषवैप्रथमःकल्पःप्रदानेहव्यकव्ययोः । अनुकल्पस्त्वयंज्ञेयःसदासद्भिरनुष्ठितः १४७ ॥

प० । एषः वै प्रथमः कल्पः प्रदाने हव्यकव्ययोः अनुकल्पः तु अयं ज्ञेयः सदा सद्भिः अनुष्ठितः

यो० । हव्यकव्ययोः प्रदाने एषः प्रथमः (मुख्यः) कल्पः (उक्तः) सद्भिः सदा अनुष्ठितः (कृतः) एषः तु अनुकल्पः (गौणः) ज्ञेयः ॥

भा० । ता० । हव्य और कव्य के देनेमें यह (विनासम्बंधी वेदपाठीआदिकोदेना) मुख्य कल्प (विधि) कहा और सत्पुरुषोंने सदासे कियाहुआ यह (जो आगेकहेंगे) अनुकल्प (गौण विधि) कहाहै अर्थात् मुख्य के अभाव में गौणको करे १४७ ॥

मातामहंमातुलंचस्वस्त्रीयंश्वशुरंगुरुम् ।
दौहित्रंविट्पतिंबन्धुमृत्विग्याज्यौचभोजयेत् १४८ ॥

प० । मातामहं मातुलं च स्वस्त्रीयं श्वशुरं गुरुं दौहित्रं विट्पतिं बंधुं ऋत्विग्याज्यौ च भोजयेत् ॥

यो० । मातामहं चपुनः मातुलं स्वस्त्रीयं — श्वशुरं गुरुं — दौहित्रं — विट्पतिं (जामातरं) चपुनः ऋत्विग्याज्यौ भोजयेत् (श्राद्धादौ इतिशेषः) ॥

भा० । ता० । नाना—मामा—भानजा—श्वशुर—गुरु (आचार्यआदि) जमाई—बन्धु (माता की भगिनी के पुत्रआदि) इनमातामह आदि दशोंकोभी मुख्य जो श्रोत्रियआदिकों के अभाव में जिमावे यही गौणकल्प है १४८ ॥

नब्राह्मणंपरीक्षेतदैवेकर्मणिधर्मवित् । पित्र्येकर्मणितुप्राप्तेपरीक्षेतप्रयत्नतः १४९ ॥

प० । न ब्राह्मणं परीक्षेत दैवे कर्मणि धर्मवित् पित्र्ये कर्मणि तु प्राप्ते परीक्षेत प्रयत्नतः ॥

यो० । धर्मवित् दैवेकर्मणि ब्राह्मणं न परीक्षेत — तुपुनः पित्र्ये कर्मणि प्राप्ते प्रयत्नतः परीक्षेत ॥

भा० । ता० । धर्मके जाननेवाला पुरुष दैवश्राद्ध भोजनार्थ ब्राह्मणं न परीक्षेत अर्थात् लोक

में प्रसिद्धिमात्र से भी भलीप्रकार ब्राह्मणको जिमावे और पितरोंके लिये जब श्राद्धआदि कर्म करै तब तो बड़ेही यत्नसे परीक्षाकरै १४६ ॥

येस्तेनपतितक्लीबायेचनास्तिकवृत्तयः। तान्हव्यकव्ययोर्विप्राननर्हान्मनुरब्रवीत् १५० ॥

प० । ये स्तेनपतितक्लीबाः ये च नास्तिकवृत्तयः तान् हव्यकव्ययोः विप्रान् अनर्हान् मनुः अब्रवीत् ॥

यो० । ये ब्राह्मणाः स्तेनपतितक्लीबाः चपुनः ये नास्तिक वृत्तयः संति तान् ब्राह्मणान् हव्यकव्ययोः अनर्हान् मनुः अब्रवीत् ॥

भा० । ता० । जो ब्राह्मण चोर—महापातकी—नपुंसक—और नास्तिक (अर्थात् परलोक को न मानताहो) हों उन ब्राह्मणोंको मनुने हव्य और कव्यमें अर्थात् देवता और पितरोंके कर्ममें अयोग्य कहाहै यहां चोरसे वह चोरलेना जो सुवर्ण से अन्यकी चोरी करताहो क्योंकि सुवर्णका चोर तो पतितशब्दसेही आजायगा और मनुका ग्रहण आदर के अर्थहै क्योंकि सब धर्म मनुनेही कहेहैं १५० ॥

जटिलंचानधीयानंदुर्बलंकितवंतथा। याजयन्तिचयेपूगांस्तांश्चश्राद्धेनभोजयेत् १५१ ॥

प० । जटिलं च अनधीयानं दुर्बलं कितवं तथा याजयंति च ये पूगान् तान् च श्राद्धे न भोजयेत् ॥

यो० । जटिलं — चपुनः अनधीयानं — दुर्बलं तथा कितवं चपुनः ये पूगान् गणान् याजयंति तान् च (अपि) श्राद्धे न भोजयेत् ॥

भा० । ब्रह्मचारी—विनापढ़ा—जिसकी चर्म बिगड़ीहो—जो जूआरीहो—और अनेकोंको यज्ञ करावें—इन ब्राह्मणोंको श्राद्धमें न जिमावे ॥

ता० । जटिल (ब्रह्मचारी) वेदके अध्ययनसे रहित अर्थात् जिसने यज्ञोपवीतके अनंतर वेदको न पढ़ाहो—तिससे जिस ब्रह्मचारीने वेदका अंगीकार न कियाहो और वेदके अध्ययनको करताहो उसकी अनुमतिके लिये यह निषेधहै इससे श्रोत्रियकोही हव्य कव्यदेने यह ब्रह्मचारी से भिन्न विषयकहै—और दुर्बल (जिसके देहका चर्म बिगड़ाहो) मेधातिथिनेतो दुर्बलकाअर्थ यह कहाहै कि खंजा वा जिसके लालकेशहों—कितव जो जूआरीहो—पूगों (अनेकों) को जो यज्ञ करातेहों इतने ब्राह्मणोंको श्राद्धमें न जिमावे इसीसे वशिष्ठजीने यह कहाहै कि जो बहुतोंको यज्ञकरावे वा यज्ञोपवीतदे—उसको देव श्राद्धमें न जिमावे अथवा दोनोंमें न जिमावे १५१ ॥

चिकित्सकान्देवलकान्मांसविक्रयिणस्तथा।
विपणेनचजीवन्तोवर्ज्याःस्युर्हव्यकव्ययोः १५२ ॥

प० । चिकित्सकान् देवलकान् मांसविक्रयिणः तथा विपणेन च जीवंतः वर्ज्याः स्युः हव्यकव्ययोः ॥

---

१ यश्चापिबहुयाज्यः स्याद्यश्चोपनयतेबहून् ॥

यो० । चिकित्सकान् – देवलकान् तथा मांसविक्रयिणः (श्राद्धे न भोजयेत्) चपुनः ये विपणेनजीवंतः संति ते हव्यकव्ययोः वर्ज्याः स्युः ॥

भा० । वैद्य–देवताओंके पूजारी–और मांसके बेचनेवाले–और जो व्यापारसे जीविका करते हों इतने ब्राह्मण हव्य और कव्यमें वर्जितहैं ॥

ता० । चिकित्सक (वैद्य) देवलक (प्रतिमा का पूजक) अर्थात् जो जीविका के लिये देवताकी पूजाकरै उसका यह निषेधहै और धर्मके लिये करै उसका नहीं क्योंकि देवलऋषिने यह कहा है कि जो देवता के कोशको भोगे वह देवलक कहाता है[1]–और जो एकबार भी मांसको बेचे वह क्योंकि मांसके बेचनेसे उसी समय पतितहोताहै–और जो व्यापार करनेसे जीतेहों–इतने ब्राह्मण हव्य और कव्यमें वर्जितहैं १५२ ॥

प्रेष्योग्रामस्यराज्ञश्चकुनखीश्यावदन्तकः ।
प्रतिरोद्धागुरोश्चैवत्यक्ताग्निर्वार्द्धुपिस्तथा १५३ ॥

प० । प्रेष्यः ग्रामस्य राज्ञः च कुनखी श्यावदंतकः प्रतिरोद्धा गुरोः च एव त्यक्ताग्निः वार्द्धुषिः तथा ॥

यो० । ग्रामस्य चपुनः राज्ञः प्रेष्यः – कुनखी – श्यावदंतकः चपुनः गुरोः प्रतिरोद्धा त्यक्ताग्निः तथा वार्द्धुपिः – एतेपि हव्यकव्ययोः वर्ज्याः स्युः ॥

भा० । ता० । जो भृति (नोकरी) लेकर गांव वा राजाकी आज्ञाको करै–जिसके नख बिगड़ेहों और जिसके काले दांतहों–और जो गुरुके विरुद्ध आचरणकरै–और जिसने श्रुति वा स्मृति की अग्निस्त्यागदीहो–और जो कला (व्याज) से जीताहो–ये ब्राह्मण भी हव्य कव्यमें वर्जितहैं १५३ ॥

यक्ष्मीचपशुपालश्चपरिवेत्तानिराकृतिः । ब्रह्मद्विट्परिवित्तिश्चगणाभ्यन्तरएवच १५४॥

प० । यक्ष्मी च पशुपालः च परिवेत्ता निराकृतिः ब्रह्मद्विट् परिवित्तिः च गणाभ्यंतरः एव च ॥

यो० । चपुनः यक्ष्मी चपुनः पशुपालः परिवेत्ता निराकृतिः ब्रह्मद्विट् चपुनः परिवित्तिः चपुनः गणाभ्यंतरः एतेपि हव्यकव्ययोः वर्ज्याः स्युः ॥

भा० । क्षयीरोगी–पशुओं का पालक (ग्वालिया) पंचयज्ञों से रहित–ब्राह्मणों का वैरी–और अनेकोंके उपकारार्थ दिये धनको जो भोगे–येभी हव्य और कव्य में वर्जित हैं ॥

ता० । क्षयरोगवाला–जो आजीविकाकेलिये पशुओंको पाले–परिवेत्ता और परिवित्ति–इन दोनोंको आगे कहेंगे और निराकृति जिसने पांच यज्ञकरने छोड़दिये क्योंकि छांदोगपरिशिष्ट में यहकहाहै जो देवताओंका तिरस्कारकरै उसको निराकृति कहते हैं[2]–और जो ब्राह्मणोंका द्वेषकहो–गणाभ्यन्तर जोगणोंकेलियेदिये धनसे जीवे–इनकोभी हव्य कव्यमें वर्जितसमझे१५४॥

---

१ देवकोशोपभोगीच नाम्नादेवलकोभवेत् ॥
२ निराकर्त्तामरादीनां सविज्ञेयोनिराकृतिः ॥

कुशीलवोऽवकीर्णीचवृषलीपतिरेवच । पौनर्भवश्चकाणश्चयस्यचोपपतिर्गृहे १५५॥

प० । कुशीलवः अवकीर्णी च वृषलीपतिः एव च पौनर्भवः च काणः च यस्य च उपपतिः गृहे॥

यो० । कुशीलवः चपुनः अवकीर्णी -चपुनः वृषलीपतिः चपुनः पौनर्भवः चपुनः काणः चपुनः यस्यगृहे उपपतिः (वर्तते सः) एतेपि हव्यकव्ययोः वर्ज्याः स्युः ॥

भा० । ता० । नाचनेवाला—जिसका स्त्रीके सम्बन्धसे ब्रह्मचर्यनष्टहोगयाहो अथवा पहिलेही आश्रममें जो संन्यासीहो—और अपनी सजातीय स्त्रीके विवाहे विना जिसने शूद्रा विवाहलीहो पुनर्भू स्त्रीकापुत्र और जिसके घरमें उपपति (जार) हो इन ब्राह्मणोंको भी हव्य और कव्य में वर्जदे १५५ ॥

भृतकाध्यापकोयश्चभृतकाध्यापितस्तथा ।
शूद्रशिष्योगुरुश्चैववाग्दुष्टःकुण्डगोलकौ १५६ ॥

प० । भृतकाध्यापकः यः च भृतकाध्यापितः तथा शूद्रशिष्यः गुरुः च एव वाग्दुष्टः कुण्ड-गोलकौ ॥

यो० । यः भृतकाध्यापकः — तथाभृतकाध्यापितः शूद्रशिष्यः चपुनः शूद्रस्यगुरुः वाग्दुष्टः कुण्डगोलकौ — एतेपि हव्य कव्ययोः वर्ज्याः ॥

भा० । ता० । वेतनलेकर जो पढ़ावे और वेतनलेकर जिसे पढ़ावे—और शूद्रका शिष्य और शूद्रकागुरु—कठोर जिसकीवाणीहो अथवा जिसे शापलगाहो और कुण्डपति जीवते जो जारसे पैदाहो—और गोलक जो पतिके मरेपर जारसे पैदाहो इनकोभी हव्य और कव्यमेंवर्जदे १५६॥

अकारणपरित्यक्तामातापित्रोर्गुरोस्तथा।ब्राह्मैर्यौनैश्चसम्बन्धैःसंयोगंपतितैर्गतः १५७॥

प० । अकारणपरित्यक्ता मातापित्रोः गुरोः तथा ब्राह्मैः यौनैः च सम्बन्धैः संयोगं पतितैः गतः॥

यो० । मातापित्रोः तथागुरोः अकारणपरित्यक्ता — चपुनः ब्राह्मैः (पठनपाठनादिभिः) यौनैः (विवाहादिभिः) सम्बन्धैः यः पतितैः सह संयोगगतः — एतौ द्वौ हव्यकव्ययोः वर्ज्यौ ॥

भा० । ता० । जो विना कारण माता पिता गुरु इनको त्यागदे अर्थात् सेवा आदि न करे अध्ययन और कन्यादान आदि सम्बन्धोंसे जो पतितों के संग सम्बन्धको प्राप्तहुआ हो कदाचित् कोई कहै कि पतितसे इसका निषेध सिद्धहै सो ठीक नहीं क्योंकि वर्षदिनमें पतितके सम्बन्धसे पतित होताहै और वर्षदिनसे पहिले इसको समझना ये दोनोंभी हव्यकव्यमें वर्जितहैं १५७ ॥

अगारदाहीगरदःकुण्डाशीसोमविक्रयी । समुद्रयायीवन्दीचतैलिकःकूटकारकः १५८॥

प० । अगारदाही गरदः कुण्डाशी सोमविक्रयी समुद्रयायी वंदी च तैलिकः कूटकारकः ॥

यो० । अगारदाही — गरदः — कुंडाशी — सोमविक्रयी — समुद्रयायी — चपुनः वंदी — तैलिकः — कूटकारकः एतेपि हव्यकव्ययोः वर्ज्याः ॥

भा० । जो घर में अग्नि लगावे—विषदेनेवाला—कुंड और गोलक के अन्नको भोजन करे—सोमलताको जो बेचे—जो समुद्रमें होकरअन्य द्वीपोंमें जाय—भाट—तेली—झूठी साक्षी देनेवाला-इनको भी हव्यकव्य में वर्जदे ॥

ता० । अगारदाही जो किसीकेघरमें अग्निलगादे गरद और जो विषकोदेदे—कुंडाशी और जो कुंड और कुंड गोलकके अन्नको खाले यहां कुंडशब्दसे इसे देवलके वचनानुसार गोलकभी लेतेहैं—जोसोमलताको बेचे—जो समुद्र में वहित्र (मलाह) होकर जाता हो—बन्दी जो स्तुति को पढ़ताहो (भाट)तैलिक(तेली) और साक्षिमें झूठबोले—इनको भी हव्यकव्यमें वर्जदे १५८॥

पित्राविवदमानश्चकितवोमद्यपस्तथा । पापरोग्यभिशस्तश्चदाम्भिकोरसविक्रयी १५९

प० । पित्रा विवदमानः च कितवः मद्यपः तथा पापरोगी अभिशस्तः च दाम्भिकः रसविक्रयी ॥

यो० । यः पित्रा सह विवदमानः — कितवः तथा मद्यपः — पापरोगी चपुनः अभिशस्तः — दाम्भिकः रसविक्रयी ॥

भा० ।पिताकेसंग जो विवादकरै—कितव—मदिरापीनेवाला—कुष्ठी—जिसको महापातकआदि से अभिशापलगाहो—दम्भी—रसोंको जो बेचे येभी हव्य कव्यमें वर्जित हैं ॥

ता० । पिता के शास्त्रार्थ में अथवा लौकिक व्यवहार में जो निरर्थक विवादकरै—कितव (जो स्वयंद्यूत न खेल जानता हो द्रव्य के लोभ से अन्यपुरुषों को द्यूतखिलावे—और कितव पद से सभीक नहींलेना क्योंकि उसको द्यूतवृत्ति पदसे आगेकहेंगे—और यदिकेकर यह पाठहोयतो उससे तिरछी दृष्टिवाला (कांयरा) लेना—सुरासे भिन्न मदिरा को जो पीवे—पापरोगी (कुष्ठी) महापातक आदि में निर्णय के विना जिसे अभिशाप (जगत्में निन्दा) लगाहो—जो बहाने से धर्मकरै—और जो रसोंको बेचे—येभी हव्य और कव्यमें वर्जित हैं १५९ ॥

धनुःशराणांकर्त्ताचयश्चाग्रेदिधिषूपतिः।मित्रध्रुग्द्यूतवृत्तिश्चपुत्राचार्य्यस्तथैवच १६०॥

प० । धनुःशराणां कर्त्ता च यः च अग्रेदिधिषूपतिः मित्रध्रुक् द्यूतवृत्तिः च पुत्राचार्य्यः तथा एव च ॥

यो० । चपुनः धनुःशराणांकर्त्ता — चपुनः यः अग्रेदिधिषूपतिः — मित्रध्रुक चपुनः द्यूतवृत्तिः तथैव पुत्राचार्य्यः — एतान् हव्य कव्ययोः वर्जयेत् ॥

भा० । धनुष और बाणों का बनानेवाला—और अग्रेदिधिषूका पति—मित्रका द्रोही—द्यूतवृत्ति (जुआरी) और जो पुत्रसे पढ़ाहो—इन ब्राह्मणों को हव्यकव्यमें न जिमावे ॥

ता० । धनुष और बाणों का कर्त्ता और जो अग्रेदिधिषूका पतिहो अर्थात् जेठी बहिन के विवाह से पहिले जो छोटी बहिन विवाहीजाय उसे अग्रेदिधिषू कहते हैं उसका पति—क्योंकि लौगाक्षिने उक्त छोटी बहिन को अग्रेदिधिषू और बड़ी को दिधिषू कहाहै—और गोविन्दराजने तो उसको दिधिषूपति कहाहै कि मरेहुये भाई की भार्या में जो सन्तान पैदाकरै वही अग्रेदिधिषूपति कहाता है और वृत्ति (समास) के वश अग्रेपद के लोप से उसेही दिधिषूपति कहते हैं—वही यहां पर ग्रहण कियाजाता है मित्रका द्रोही—द्यूतही जिसकी वृत्तिहो—जिसको पुत्रने पढ़ायाहो १६० ॥

---

१ अमृतेजारजःकुण्डो मृतेभर्त्तरिगोलकः — यस्तयोरन्नमश्नाति सकुण्डाशीतिकथ्यते ॥
२ ज्येष्ठायां यद्यनूढायां कन्यायामुह्यतेनुजा--साचाग्रेदिधिषूर्ज्ञेया पूर्वातुदिधिषूस्मृता ॥

भ्रामरीगण्डमालीचश्वित्र्यथोपिशुनस्तथा ।
उन्मत्तोऽन्धश्चवर्ज्याःस्युर्वेदनिन्दकएवच १६१ ॥

प० । भ्रामरी गंडमाली चँ श्वित्री अथो पिशुनः तथा उन्मत्तः अंधः चँ वर्ज्याः स्युः वेदनिंदकः एवँ चँ ॥

यो० । भ्रामरी – चपुनः गंडमाली श्वित्री – तथा पिशुनः – उन्मत्तः चपुनः अंधः चपुनः वेदनिंदकः एते वर्ज्याः स्युः ॥

भा० । ता० । अपस्मारी जिसको अपस्मार (मिरगी) का रोगहो–जिसको गंडमाला का रोगहो–और जो श्वेत कुष्ठरोगीहो–और जो पिशुन (सूचक वा चुगल) उन्मादी–अंधा और वेदका निंदक–ये भी हव्य कव्यमें वर्जने योग्य हैं १६१ ॥

हस्तिगोश्वोष्ट्रदमकोनक्षत्रैर्यश्चजीवति । पक्षिणांपोषकोयश्चयुद्धाचार्य्यस्तथैवच १६२ ॥

प० । हस्तिगोश्वोष्ट्रदमकः नक्षत्रैः यः चँ जीवँति पक्षिणां पोषकः यः चँ युद्धाचार्य्यः तथा एवँ चँ ॥

यो० । हस्तिगोश्वोष्ट्रदमकः चपुनः यः नक्षत्रैः जीवति चपुनः यः पक्षिणां पोषकः चपुनः तथा एव युद्धाचार्य्यः एते अपि ब्राह्मणाः वर्ज्याः स्युः ॥

भा० । ता० । हाथी–बैल–घोड़े–ऊंट इनको जो दमनकरै (शिक्षादे) और जो नक्षत्रों (ज्योतिःशास्त्र) से जीविका करै जो खेलके लिये पिंजरेमें पक्षियोंको पाले–और जो युद्ध का आचार्य (आयुध विद्याका उपदेश करनेवाला) इनको भी श्राद्धमें वर्जदे १६२ ॥

स्रोतसांभेदकोयश्चतेषांचावरणेरतः । गृहसंवेशकोदूतोवृक्षारोपकएवच १६३ ॥

प० । स्रोतसां भेदकः यः चँ तेषां चँ आवरणे रतः गृहसंवेशकः दूतः वृक्षारोपकः एवँ चँ ॥

यो० । चपुनः यः स्रोतसांभेदकः चपुनः यः तेषां आवरणेरतः–गृहसंवेशकः दूतः – चपुनः वृक्षारोपकः– एतेपि वर्ज्याः स्युः ॥

भा० । जलके प्रवाहों को तोड़ने और रोकनेवाला–और वास्तुविद्यासे जो जीवे–दूत–वृक्षों को लगानेवाला (माली) इनको भी हव्य कव्यमें न जिमावे ॥

ता० । बहते हुये जलोंके प्रवाहको जो देशांतरको लेजाय–और जलोंकी स्वाभाविक गतिको जो भेदनकरै–ये दोनों क्रमसे जलोंके भेदक और आवरणकर्त्ता होतेहैं–और जो घरके संवेशक (बनावने की रीति) का उपदेशकरै अर्थात् वास्तुविद्यासे जीविका करै–और दूत जो पूर्वोक्त राजा और ग्रामके दूतसे भिन्न दूतहो–और जो वेतन लेकर वृक्षोंको लगावे और धर्मके लिये लगावे तो कुछ चिंता नहीं है प्रत्युत पुण्यहै क्योंकि यह शास्त्र की विधिहै कि पांच आमके वृक्ष[१] जो लगावे वह नरकमें नहीं जाता–इनको भी हव्य कव्यमें वर्जने योग्यजाने १६३ ॥

श्वक्रीडीश्येनजीवीचकन्यादूपकएवच । हिंस्रोवृषलवृत्तिश्चगणानांचैवयाजकः १६४ ॥

प० । श्वक्रीडी श्येनजीवी चँ कन्यादूषकः एवँ चँ हिंस्रः वृषलवृत्तिः चँ गणानां चँ एवँ याजकः ॥

---

१ पंचाम्ररोपीनरकंनयाति ॥

यो० । श्वक्रीडी — चपुनः श्येनजीवी — चपुनः कन्यादूषकः — हिंस्रः चपुनः वृषलवृत्तिः — चपुनः गणानां याजकः — एतान् अपि श्राद्धे न भोजयेत् ॥

भा० । ता० । क्रीडाके लिये जो कुत्तोंको पाले—श्येनों(शिखरे) के लेन देन से जो जीवै—और कन्याके संग जो गमन करै—हिंसामें तत्पर—शूद्रसे जिसकी वृत्तिका बन्धानहो और विनायक आदिगणोंकी जो यज्ञकरावे—इनको भी श्राद्धमें न जिमावे १६४ ॥

आचारहीनःक्लीबश्चनित्यंयाचनकस्तथा।कृषिजीवीश्लीपदीचसद्भिर्निन्दितएवच १६५

प० । आचारहीनः क्लीवः च नित्यं याचनकः तथा कृषिजीवी श्लीपदी च सद्भिः निंदितः एव च ॥

यो० । आचारहीनः चपुनः क्लीवः तथा नित्यं याचनकः — कृषिजीवी — चपुनः श्लीपदी — चपुनः सद्भिः निंदितः ॥

भा० । ता० । गुरु अतिथि आदिको प्रत्युत्थान देने आदि आचारणसे हीन—क्लीव अर्थात् धर्मके कार्यमें उत्साह रहित क्योंकि नपुंसक पीछेकह आयेहैं—नित्य याञ्चासे दूसरोंका उद्वेजक—जो स्वयंकी हुई अथवा अन्यथा निर्वाह होनेपर भी खेतीसे जीवे—और जो श्लीपदी व्याधिसे जिसके चरण स्थूलहों—और जो किसी कारणसे साधुओंकी निंदाकरै १६५ ॥

औरभ्रिकोमाहिषिकःपरपूर्वापतिस्तथा । प्रेतनिर्यातकश्चैववर्जनीयाःप्रयत्नतः १६६ ॥

प० । औरभ्रिकः माहिषिकः परपूर्वापतिः तथा प्रेतनिर्यातकः च एव वर्जनीयाः प्रयत्नतः ॥

यो० । औरभ्रिकः माहिषिकः तथा परपूर्वापतिः चपुनः प्रेतनिर्यातकः एते प्रयत्नतः वर्जनीयाः श्राद्धेइतिशेषः ॥

भा० । ता० । मेष (मीढ़े) और महिष (भैंसे) इनसे जो जीवे और परपूर्वा (पुनर्भू) का पति—और धनलेकर जो प्रेतोंकोलेजाय—अर्थात् धर्मार्थनहीं—क्योंकि इस श्रुतिसे[1] वनमें प्रेतका लेजाना परमतपकहाहै—इतने ब्राह्मणोंको बड़ेयत्नसे वर्जदे १६६ ॥

एतान्विगर्हिताचारानपांक्तेयान्द्विजाधमान् ।
द्विजातिप्रवरोविद्वानुभयत्रविवर्जयेत् १६७ ॥

प० । एतान् विगर्हिताचारान् अपांक्तेयान् द्विजाधमान् द्विजातिप्रवरः विद्वान् उभयत्र विवर्जयेत् ॥

यो० । द्विजातिप्रवरः विद्वान् विगर्हिताचारान् अपांक्तेयान् एतान् द्विजाधमान् उभयत्र (दैवे पित्र्ये) विवर्जयेत् ॥

भा० । ता० । निंदित है आचरण जिनका और सज्जनों के संग एकपंक्ति में भोजनकरने के अयोग्य इननीच ब्राह्मणों (पूर्वोक्त काणआदि) को—शास्त्र का ज्ञाता द्विजातियों में श्रेष्ठ (ब्राह्मण) दैव और पितरोंके कर्ममें वर्जदे—अर्थात् पूर्वजन्ममें संचित पापसे प्राप्तहुआहै काण आदि स्वरूप जिनको ऐसे ये देवता और पितरों के कर्मके अयोग्यहैं १६७ ॥

ब्राह्मणस्त्वनधीयानस्तृणाग्निरिवशाम्यति । तस्मैहव्यंनदातव्यंनहिभस्मनिहूयते १६८

प० । ब्राह्मणः तु अनधीयानः तृणाग्निः इव शाम्यति तस्मै हव्यं न दातव्यं न हि भस्मनि हूयते ॥

---

[1] एतद्वैपरमं तपोयत्प्रेतमरण्यंहरंति ॥

यो० । अनधीयानस्तु ब्राह्मणः तृणाग्निः इव शाम्यति – हि (यतः) भस्मनि न हूयते अतः तस्मै हव्यं न दातव्यम् ॥

भा० । विनापढ़ा ब्राह्मण तृणकी अग्नि के समान शान्त (बुझ) होजाती है इससे उसको दान न दे क्योंकि भस्ममें होम नहीं कियाजाताहै ॥

ता० । विनापढ़ा ब्राह्मण तृणकी अग्निके समान शांतहोजाता है अर्थात् जैसे तृणकी अग्नि होमकिये हवि के भस्मकरने में समर्थ नहीं होती इसीप्रकार वेदरूप अग्नि से शून्य ब्राह्मण को दियादान भी पुण्यकाजनक न होता इससे तृणकी अग्निकेसमान उसब्राह्मणको दान न देना– अर्थात् वेदपाठी को दानदेना (श्रोत्रियायैवदद्यानि) इससेही विनापढ़े का भी निषेध सिद्धथा इसको भी स्तेनआदि के समान पंक्तिदूषक जनाने के लिये दुबाराकहा है कोई आचार्य तो यह कहतेहैं कि देवश्राद्धमें तो वही वर्जितहै जो पढ़ानहो और पढ़ाहुआ तो चाहै काणाआदि शरीर के दोषोंसे युक्तभीहो तोभी ग्राह्यहै इसके लिये दुबारा कथन है इसीसे वशिष्ठजीने यहकहाहै कि मंत्र के जाननेवाला चाहै पंक्तिके भ्रष्टकरनेवाले शरीर के काणआदि दूषणवालाभीहो उस को यमऋषिने दूषित नहीं कहाहै अर्थात् प्रारब्ध वश प्राप्तहुये दूषणवाले का निषेध नहीं है और स्वयंकिये चोरीआदि जो कर वह महानिषिद्धहै १६८ ॥

अपांक्तदानेयोदातुर्भवत्यूर्ध्वंफलोदयः । दैवेहविषिपित्र्येवातम्प्रवक्ष्याम्यशेषतः १६९॥

प० । अपांक्तदाने यः दातुः भवति ऊर्ध्वं फलोदयः दैवे हविषि पित्र्ये वा तम् प्रवक्ष्यामि अशेषतः ॥

यो० । अपांक्तदाने यः फलोदयः दैवे वा पित्र्ये हविषि दातुः (दानात्) ऊर्ध्वंभवति तं अशेषतः प्रवक्ष्यामि ॥

भा० । ता० । पंक्तिभोजन के अयोग्य ब्राह्मणको देवता और पितरोंकी हवि देनेवाले को दानसे पीछे जो फलकाउदय होताहै उस सम्पूर्ण को कहताहूं १६९ ॥

अव्रतैर्यद्द्विजैर्भुक्तंपरिवेत्रादिभिस्तथा । अपांक्तेयैर्यदन्यैश्चतद्वैरक्षांसिभुञ्जते १७० ॥

प० । अव्रतैः यत् द्विजैः भुक्तं परिवेत्रादिभिः तथा अपांक्तेयैः यत् अन्यैः च तत् वै रक्षांसि भुंजते ॥

यो० । अव्रतैः तथा परिवेत्रादिभिः यत् हविः भुक्तं चपुनः यत् अन्यैः अपांक्तेयैः भुक्तं तत् हविः वै (निश्चयेन) रक्षांसि भुंजते ॥

भा० । ता० । वेदके पढ़ने के लिये जो व्रत उनसेहीन–और परिवेत्ता आदि अन्य अपांक्तेय (पंक्तिबाह्य) ब्राह्मणोंने जो हवि (श्राद्ध) भोजनकियाहो उस हवि को राक्षस खाते हैं अर्थात् वह श्राद्ध निष्फलहोता है १७० ॥

दाराग्निहोत्रसंयोगंकुरुतेयोऽग्रजेस्थिते । परिवेत्तासविज्ञेयःपरिवित्तिस्तुपूर्वजः १७१ ॥

प० । दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते यः अग्रजे स्थिते परिवेत्ता सः विज्ञेयः परिवित्तिः तु पूर्वजः ॥

यो० । यः अग्रजेस्थिते दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते सः परिवेत्ता पूर्वजः (ज्येष्ठः) तु परिवित्तिः विज्ञेयः ॥

भा० । ता० । अप्रसिद्ध होनेसे परिवेत्ताआदि का लक्षण कहतेहैं–कि विना विवाहे जेठेभाई

---

१ अथचेन्मन्त्रविद्युक्तःशारीरैःपंक्तिदूषणैः अदुष्यंतंयमःप्राह पंक्तिपावनएवमः ॥

के विद्यमान होते जो विवाह और अग्निहोत्र ग्रहणकरै उस छोटेभाई को परिवेत्ता और बड़ेको परिवित्ति कहते हैं–अर्थात् बड़ेभाई के विवाहआदि होनेपरही छोटाभाई अग्न्याधान और विवाहकरै १७१ ॥

परिवित्तिःपरिवेत्तायययाचपरिविद्यते। सर्वेतेनरकंयान्तिदातृयाजकपञ्चमाः १७२ ॥

प० । परिवित्तिः परिवेत्ता यया च परिविद्यते सर्वे ते नरकं यान्ति दातृयाजकपञ्चमाः ॥

यो० । परिवित्तिः परिवेत्ता चपुनः ययापरिविद्यते दातृयाजकपञ्चमाः तेसर्वे नरकंयान्ति ॥

भा० । ता० । प्रसंगसे परिवेदनके सम्बन्धियोंको जो अनिष्टफलहोता है उसको कहतेहैं कि परिवित्ति–परिवेत्ता–और जिसकन्या से परिवेदनहुआहो और कन्या का दाता और याजक (विवाह का होमकरनेवाला पंडित) ये पांचों नरक में जातेहैं १७२ ॥

भ्रातुर्मृतस्यभार्यायांयोऽनुरज्येतकामतः। धर्मेणापिनियुक्तायांसज्ञेयोदिधिषूपतिः १७३

प० । भ्रातुः मृतस्य भार्यायां यः अनुरज्येत कामतः धर्मेण अपि नियुक्तायां सः ज्ञेयः दिधिषूपतिः ॥

यो० । धर्मेण नियुक्तायां अपि मृतस्य भ्रातुः भार्यायां यः कामतः अनुरज्येत सदिधिषूपतिः ज्ञेयः विद्वद्भिरितिशेषः

भा० । धर्म से गुरु आदिने नियुक्त की भी मरेहुये भाई की स्त्रीमें जो मनुष्य कामनासे अनुरक्त होताहै वह दिधिषूपति जानना ॥

ता० । जो मनुष्य आगे नियोग का धर्म यह कहेंगे(कि नियुक्त भी मरेहुये भाई की स्त्री का संग ऋतु२ में एक२ बार करै) उस धर्म को छोड़कर अपनी कामना से अनुराग (स्पर्श और चुम्बनआदि)को करै अथवा बारम्बार संगकरै वह दिधिषूपति जानना–इससे श्राद्धमें निषिद्ध ब्राह्मणों में इसके भी पाठसे इसको भी हव्य और कव्यों में निषिद्ध समझना १७३ ॥

परदारेषुजायेतेद्वौसुतौकुण्डगोलकौ। पत्यौजीवतिकुण्डःस्यान्मृतेभर्त्तरिगोलकः १७४

प० । परदारेषु जायेते द्वौ सुतौ कुण्डगोलकौ पत्यौ जीवति कुण्डः स्यात् मृते भर्त्तरि गोलकः ॥

यो० । कुण्ड – गोलकौ द्वौ सुतौ जायेते पत्यौ जीवति सति कुण्डः भर्त्तरिमृतेसति गोलकः स्यात् ॥

भा० । ता० । पराई स्त्री में दो पुत्र कुण्ड और गोलक पैदाहोते हैं पतिके जीवते हुये जो पैदाहो वह कुण्ड और पतिके मरे पीछे जो पैदाहो वह गोलक होताहै–ये दोनों भी निंदित होने से श्राद्धआदि में अभोज्य हैं १७४ ॥

तौतुजातौपरक्षेत्रेप्राणिनौप्रेत्यचेहच। दत्तानिहव्यकव्यानिनाशयेतेप्रदायिनाम् १७५

प०। तौ तु जातौ परक्षेत्रे प्राणिनौ प्रेत्य च इह च दत्तानि हव्यकव्यानि नाशयेते प्रदायिनाम् ॥

यो० । परक्षेत्रे जातौ तौ प्राणिनौ (कुण्डगोलकौ) प्रदायिनां दत्तानि हव्यकव्यानि प्रेत्य (परलोके) चपुनः इह नाशयेते ॥

भा० । परलोकमें पैदाहुये वे दोनों प्राणी दाताओं के दिये हव्य और कव्यों को इस लोक और परलोक में नष्टकरते हैं ॥

ता० । पराई भार्या में पैदाहुये उन कुण्ड आदिकों को इसलिये प्राणिकहा है कि कोई दृष्ट (जो जगत् में देखाजाय) कार्य उनसे नहीं होता और ब्राह्मण होनेपर भी ब्राह्मणका कार्य नहीं देसके—और परलोक में और प्रसंग से इसलोक में कीर्त्ति आदि फल के अभावसे दिये हुये दाताओंके हव्य और कव्य ये दोनों प्राणी कुण्डगोलक नष्टकरतेहैं अर्थात् दाताओं के दियेहुये हव्य और कव्य निष्फलहोते हैं १७५ ॥

अपांक्त्योयावतःपांक्त्यान्भुञ्जानाननुपश्यति ।
तावतांनफलंप्रेत्यदाताप्राप्नोतिबालिशः १७६ ॥

प० । अपांक्त्यः यावतः पांक्त्यान् भुंजानान् अनुपश्यति तावतां न फलम् प्रेत्य दाता प्राप्नोति बालिशः ॥

यो० । अपांक्त्यः (विप्रः) यावतः भुंजानान् अनुपश्यति तावतां (ब्राह्मणानां) फलं बालिशः दाता न प्राप्नोति ॥

भा० । ता० । अपांक्त्य (सत्पुरुषों के संग एक पंक्तिमें भोजन करनेके अयोग्य) द्विज (चोर आदि) जितने भोजन करते हुये ब्राह्मणों को देखे उतने ब्राह्मणों के भोजन करानेके श्राद्धके फलको मूर्ख दाता प्राप्तनहीं होता—इससे ऐसेस्थान में भोजन करावे जहां स्तेनआदि न देखसकें १७६ ॥

वीक्ष्यान्धोनवतेःकाणःषष्टेःश्वित्रीशतस्यतु। पापरोगीसहस्रस्यदातुर्नाशयतेफलम् १७७॥

प० । वीक्ष्य अंधः नवतेः काणः षष्टेः श्वित्री शतस्य तु पापरोगी सहस्रस्य दातुः नाशयते फलं ॥

यो० । अंधः वीक्ष्य नवतेः—काणः षष्टेः—श्वित्री शतस्य—पापरोगी सहस्रस्य फलं दातुः नाशयते ॥

भा० । अंधादेखकर नव्वे के—और काणा साठके—और श्वेतकुष्ठी सौ के—और पापरोगी सहस्र ब्राह्मणों के दाता के फलको नष्ट करता है ॥

ता० । अंधा यदि देखताहो अर्थात् अंधे को देखने का तो असंभव है किन्तु देखने के योग्य देशमें बैठा हुआ होय तो नव्वे ९० ब्राह्मणों के फलको—और काणा साठ ६० ब्राह्मणों के—और श्वेत कुष्ठ वाला सौ १०० ब्राह्मणों के—और पापरोगी एक सहस्र १००० ब्राह्मणों के दाताके फलको नष्ट करता है यह वचन इसलिये है कि अंध आदिकोंको समीपमें न रहने दे—और छोटी व बड़ी संख्याको कथन है सो इसलिये है कि अधिक संख्या में दोष भी अधिक है और उसका प्रायश्चित्त भी अधिक है १७७ ॥

यावतःसंस्पृशेदङ्गैर्ब्राह्मणाञ्छूद्रयाजकः ।
तावतांनभवेद्दातुःफलंदानस्यपौर्त्तिकम् १७८ ॥

प० । यावतः संस्पृशेत् अंगैः ब्राह्मणान् शूद्रयाजकः तावतां न भवेत् दातुः फलम् दानस्य पौर्त्तिकम् ॥

यो० । शूद्रयाजकः यावतः ब्राह्मणान् अंगैः संस्पृशेत् तावतां (ब्राह्मणानां) दानस्य पौर्त्तिकं फलं दातुः न भवेत् ॥

भा० । शूद्रको यज्ञकरानेवाला अपने अंगोंसे जितने ब्राह्मणोंका स्पर्शकरे दाताको उतने ब्राह्मणोंके श्राद्धका फल नहींहोता ॥

ता० । शूद्रकी यज्ञ आदिमें जो ऋत्विज्है वह जितने ब्राह्मणोंको अपने अंगोंसे स्पर्शकरे यद्यपि पृथक्२ आसनोंपर ब्राह्मणोंका बैठना इस[1] वचनमें कहाहै तथापि उनकी पंक्तिमें बैठना भी वर्जितहै–उतने ब्राह्मणोंके जिमानेका जो फलहै वह दाताको नहींहोता–और मेधातिथि और गोविंदराज तो यह कहतेहैं कि वेदीसे बाहर जो दान दियाजाताहै उसका फल नहीं होता–इसी निंदासे निषिद्ध ब्राह्मणोंमें पढ़े भी शूद्र याजकके भोजनके भी निषेधकी कल्पना करनी १७८ ॥

वेदविद्चापिविप्रोऽस्यलोभात्कृत्वाप्रतिग्रहम् ।
विनाशंव्रजतिक्षिप्रमामपात्रमिवाम्भसि १७९ ॥

प० । वेदवित् च अपि विप्रः अस्य लोभात् कृत्वा प्रतिग्रहम् विनाशं व्रजति क्षिप्रं आमपात्रं इव अंभसि ॥

यो० । चपुनः वेदवित् अपि विप्रः अस्य (शूद्रयाजकस्य) लोभात्प्रतिग्रहंकृत्वा आमपात्रं अंभसि (जले) इव क्षिप्रं विनाशं व्रजति ॥

भा० । वेदका पाठी भी ब्राह्मण लोभसे शूद्र याजक के प्रतिग्रहको ग्रहणकरके शीघ्रही इस प्रकार नष्टहोताहै जैसे कच्चा मिट्टीका पात्र जल में ॥

ता० । प्रसंगसे शूद्र याजक के प्रतिग्रह का भी निषेध लाघव के लिये कहतेहैं क्योंकि यदि अन्य प्रकरणमें निषेधकहते तो शूद्रयाजक शब्द वहां भी फिर पढ़ना पड़ता–वेदके जाननेवाला भी ब्राह्मण लोभसे शूद्रयाजक के प्रतिग्रहको लेकर शीघ्रही इसप्रकार नष्ट होताहै जैसे कच्चा मिट्टी का पात्र जल में और मूर्ख तो अवश्यही नष्टहोताहै १७९ ॥

सोमविक्रयिणेविष्ठाभिषजेपूयशोणितम् । नष्टंदेवलकेदत्तमप्रतिष्ठंतुवार्द्धुषौ १८० ॥

प० । सोमविक्रयिणे विष्ठा भिषजे पूयशोणितम् नष्टं देवलके दत्तं अप्रतिष्ठं तु वार्द्धुषौ ॥

यो० । सोमविक्रयिणे दत्तं विष्ठा–भिषजेदत्तं पूयशोणितं–देवलकेदत्तंनष्टं–वार्द्धुषौदत्तं तु अप्रतिष्ठं (निष्फलं) भवति॥

भा० । ता० । सोमलताके बेचनेवालेको दिया दान दाताके भोजन के लिये विष्ठाहोताहै अर्थात् देनेवाला विष्ठाखानेवालों (शूकर आदि) में पैदाहोताहै–और वैद्यको दियाहुआदान पूय (राध) और शोणित (रुधिर) होताहै और देवलक (पुजारी) को दियादान नष्ट(निष्फल)होताहै और वार्द्धुषि (व्याजलेनेवाला) को दियादान अप्रतिष्ठ (जिसका कोई आश्रय नहो अर्थात् निष्फल) होताहै १८० ॥

यत्तुवाणिजकेदत्तंनेहनामुत्रतद्भवेत् । भस्मनीवहुतंहव्यंतथापौनर्भवेद्विजे १८१ ॥

प० । यत् तु वाणिजके दत्तं न इह न अमुत्र तत् भवेत्–भस्मनि इव हुतं हव्यं तथा पौनर्भवे द्विजे ॥

---

[1] आसनेषूपक्लृप्तेषु ॥

यो० । वाणिजके यत्दत्तं तत् इह अमुत्र तथापौनर्भवोद्विजे यत्दत्तं तत् भस्मनि हुतं हव्यं इव भवेत् (ऐहिकस्यपारलौकिकस्य वा फलस्य जनकं न भवतीत्यर्थः) ॥

भा० । ता० । वणज (लेनदेन) करनेवाले ब्राह्मणको दियाहुआ दान इसलोक और परलोक के लिये नहीं होता और पुनर्भू स्त्रीके पुत्रको जो दिया दान है वह भस्म (राख) में होम किये हविके समान होताहै अर्थात् निष्फल होताहै १८१ ॥

इतरेषुत्वपांक्त्येषुयथोद्दिष्टेष्वसाधुषु।मेदोसृङ्मांसमज्जास्थिवदन्त्यन्नंमनीषिणः १८२॥

प० । इतरेषु तु अपांक्त्येषु यथोद्दिष्टेषु असाधुषु मेदोसृङ्मांसमज्जास्थि वदंति अन्नं मनीषिणः ॥

यो० । अपांक्त्येषु--यथोद्दिष्टेषु--असाधुषु इतरेषु तु (यद्दत्तं) अन्नं तत् मनीषिणः मेदोसृङ्मांसमज्जास्थिरूपं वदंति ॥

भा० । ता० । पंक्ति भोजनमें अयोग्य और यथाक्रमसे कहेहुये इतर असाधुओं को दियेहुये अन्नको बुद्धिमान् मनुष्य मेदा--रुधिर मांस मज्जा--और अस्थिरूप कहतेहैं--अर्थात् इनको देने वाले मेदा आदि के भोजन करनेवालोंकी योनिमें पैदाहोतेहैं १८२ ॥

अपांक्त्योपहतापंक्तिःपाव्यतेयैर्द्विजोत्तमैः ।
तान्निबोधतकात्स्र्न्येनद्विजाग्र्यान्पंक्तिपावनान् १८३॥

प० । अपांक्त्योपहता पंक्तिः पाव्यते यैः द्विजोत्तमैः तान् निबोधत कात्स्न्र्येन द्विजाग्र्यान् पंक्तिपावनान् ॥

यो० । यैः द्विजोत्तमैः अपांक्त्योपहतापंक्तिः पाव्यते पंक्तिपावनान् तान् द्विजाग्र्यान् कात्स्न्र्येन (यूयं) निबोधत ॥

भा० । ता० । एक पंक्ति में बैठेहुये अपांक्त्यों (स्तेन आदि) से दूषित पंक्ति जिन द्विजोंमें उत्तमों से पवित्र की जाती है--पंक्ति को पवित्र करनेवाले उन संपूर्ण द्विजोंमें मुख्यों को तुम सुनो--यद्यपि स्तेन आदि का एक पंक्तिमें भोजन निषिद्ध है तथापि स्तेन आदि यदि रहस्य से वा अज्ञान से पंक्तिमें बैठजाय तो उस पंक्तिको भी ये द्विज पवित्र करतेहैं १८३ ॥

अग्र्याःसर्वेषुवेदेषुसर्वप्रवचनेषुच । श्रोत्रियान्वयजाश्चैवविज्ञेयाःपंक्तिपावनाः १८४॥

प० । अग्र्याः सर्वेषु वेदेषु सर्वप्रवचनेषु च श्रोत्रियान्वयजाः च एव विज्ञेयाः पंक्तिपावनाः ॥

यो० । सर्वेषु वेदेषु चपुनः सर्वप्रवचनेषु अग्र्याः चपुनः श्रोत्रियान्वयजाः--ब्राह्मणाः पंक्तिपावनाः विज्ञेयाः विद्वद्भिरितिशेषः ॥

भा० । संपूर्ण वेद और छओं अंगोंमें जो मुख्यहों और वेदपाठियोंके वंशमें जो उत्पन्नहों ये तीनोंप्रकार के ब्राह्मण पंक्तिपावन कहेहैं ॥

ता० । जो संपूर्ण वेदोंमें अर्थात् चारोंमें अग्र्य (श्रेष्ठ) हैं वे पंक्तिके पवित्रकरनेवाले हैं इसी से यमने पंक्तिके पवित्र करनेवालोंकी गिनतीमें चारवेदोंके ज्ञाताकी भी गणना की है और जिनसे वेदका अर्थ भलीप्रकार जानाजाय उन (अंगों) में भी जो मुख्यहों वे भी पंक्तिपावन

---

१ चतुर्वेदविदश्चैव ॥

हैं—क्योंकि यमने न्याय और छओं अंगोंके वेत्ताओंको पंक्तिपावन पृथक् कहाहै और श्रोत्रियों के वंशमें जो उत्पन्नहों अर्थात् इस उशना (भृगु) के वचनसे दश पीढ़ियोंसे जिसमें वेदपाठी चले आतेहों उस वंशमें उत्पन्न जो हों वे भी पंक्तिपावन कहेहैं १८४ ॥

त्रिणाचिकेतःपंचाग्निस्त्रिसुपर्णःपडङ्गवित् । ब्रह्मदेयात्मसन्तानोज्येष्ठसामगएवच १८५

प० । त्रिणाचिकेतः पंचाग्निः त्रिसुपर्णः षडंगवित् ब्रह्मदेयात्मसंतानः ज्येष्ठसामगः एवं चं ॥

यो० । त्रिणाचिकेतः — पंचाग्निः — त्रिसुपर्णः — षडंगवित् — ब्रह्मदेयात्मसंतानः चपुनः ज्येष्ठसामगः (एते पंक्तिपावनाः ब्राह्मणाः संति) ॥

भा० । त्रिणाचिकेत—पंचाग्नि—त्रिसुपर्ण छः अंगोंकावक्ता—ब्राह्मविवाहसे विवाहीस्त्रीका पुत्र और ज्येष्ठसामों का गानेवाला ये छः पंक्तिके पवित्रकरनेवाले हैं ॥

ता० । अध्वर्यु वेदके एकभागको और उस भागके पढ़नेमें जो व्रतकरना पड़ताहै उस व्रतको और उस भागके पढ़नेवाले पुरुषको भी त्रिणाचिकेत कहतेहैं—और पंचाग्नि (अग्निहोत्री) अर्थात् इस हारीत वचन के अनुसार पवन—पावन—गार्हपत्य आहवनीय दक्षिणाग्नि—ये पांच अग्नि सायंकाल और प्रातःकाल को जलतीहों आवसथ्यको पवन और सभ्य अग्निको पावन कहतेहैं क्योंकि शीतके दूरकरने के लिये यह बहुत जगह जलाई जातीहै—बहवृचोंके एक वेद भागको और उसके पठनमें जो व्रतहोता है उसको और पढ़ने वालेको त्रिसुपर्ण कहते हैं—और शिक्षा आदि छः अंगोंकी जो व्याख्याकरे क्योंकि सर्वप्रवचनसे छः अंगों के पढ़नेवाले को पहिले कहआये हैं—और ब्राह्मविवाह से विवाही स्त्रीमें जो अपने आत्मा से पैदाहो—और आरण्यकमें जोकहे हैं उनज्येष्ठसामों का गानेवाला—ये छः ६ ब्राह्मण पंक्तिपावन हैं १८५ ॥

वेदार्थवित्प्रवक्ताचब्रह्मचारीसहस्रदः । शतायुश्चैवविज्ञेयाब्राह्मणाःपंक्तिपावनाः१८६ ॥

प० । वेदार्थवित् प्रवक्ता चं ब्रह्मचारी सहस्रदः शतायुः चं एवं विज्ञेयाः ब्राह्मणाः पंक्तिपावनाः॥

यो० । वेदार्थवित् चपुनः (वेदार्थस्य) प्रवक्ता — ब्रह्मचारी — सहस्रदः चपुनः शतायुः एते ब्राह्मणाः पंक्तिपावनाः विज्ञेयाः विद्वद्भिरितिशेषः ॥

भा० । वेदके अर्थकाज्ञाता और वर्णनकरनेवाला—ब्रह्मचारी—सहस्रगौओं का दाता—सौवर्ष की अवस्थावाला ये ब्राह्मण पंक्तिपावन कहेहैं ॥

ता० । जो वेदको न पढ़करभी वेदके अर्थको गुरुके उपदेश से जानताहो—और जो वेद के अर्थ का कहनेवालाहो—और ब्रह्मचारी और सहस्रकादाता अर्थात् जिसने सहस्रगौदीहों यद्यपि यहां किस सहस्रवस्तु के देनेवाला यह विशेष का उपादान नहींहै तथापि गौही यज्ञकी माता हैं इस विशेषता से प्रवृत्त श्रुति के देखने से सहस्रगौओं के देनेवालाही लेना—और शतायुः

---

१ न्यायविच्चषडंगवित् ॥
२ छंदसांशुद्धदशपुरुषः ॥
३ पवनः पावनस्त्रेता यस्यपंचाग्नयोगृहे — सायंप्रातःप्रदीप्यंते सविप्रः पंक्तिपावनः ॥
४ मातांवैयज्ञस्य मातरः ॥

(जिसकी अवस्था १०० वर्षकीहो)—श्रोत्रिय (वेदपाठी) कोही दानदेने यह विशेषकर नियम है इससे श्रोत्रिय होने से पूर्वोक्त गुणवालाभी पंक्तिकी पवित्रता करनेवाला है ये ब्राह्मण पंक्तिपावन हैं १८६ ॥

पूर्वेद्युरपरेद्युर्वाश्राद्धकर्मण्युपस्थिते ।
निमन्त्रयेतत्र्यवरान्सम्यग्विप्रान्यथोदितान् १८७॥

प० । पूर्वेद्युः अपरेद्युः वा श्राद्धकर्मणि उपस्थिते निमंत्रयेत त्र्यवरान् सम्यक् विप्रान् यथोदितान् ॥

यो० । श्राद्धकर्मणि उपस्थिते सति त्र्यवरान् यथोदितान् विप्रान् पूर्वेद्युः वा अपरेद्युः सम्यक् निमंत्रयेत ॥

भा० । ता० । श्राद्धकर्मके उपस्थित (आने) पर कमसेकम तीन पूर्वोक्त ब्राह्मणोंको श्राद्ध के दिनसे पहिलेदिन अथवा श्राद्धकेही दिन बड़े सत्कारसे निमंत्रणदे—और यहां तीन हैं अवर (न्यून) जिनमें उनको त्र्यवरकहते हैं क्योंकि एक २ ब्राह्मण के भोजन करने को भी शास्त्र में देखतेहैं १८७ ॥

निमन्त्रितोद्विजःपित्र्येनियतात्माभवेत्सदा ।
नचछन्दांस्यधीयीतयस्यश्राद्धंचतद्भवेत् १८८ ॥

प० । निमंत्रितः द्विजः पित्र्ये नियतात्मा भवेत् सदा न च छन्दांसि अधीयीत यस्य श्राद्धं च तत् भवेत् ॥

यो० । पित्र्ये (श्राद्धे) निमंत्रितः द्विजः चपुनः यस्य तत् श्राद्धं भवेत् सः सदा नियतात्मा भवेत् चपुनः छन्दांसि (वेदान्) न अधीयीत—नपठेत् ॥

भा० । ता० । श्राद्ध में निमंत्रित (नोताहुआ) ब्राह्मण और जिसके वह श्राद्धहो वह यजमान निमंत्रण से लेकर श्राद्धके रातादिनमें सदैव संयम नियमसेरहै अर्थात् स्त्रीका संग न करे और आवश्यक जपसे अधिक वेदकोभी न पढ़े १८८ ॥

निमन्त्रितान्हिपितरउपतिष्ठन्तितान्द्विजान्।वायुवच्चानुगच्छन्तितथासीनानुपासते१८९

प० । निमंत्रितान् हि पितरः उपतिष्ठन्ति तान् द्विजान् वायुवत् च अनुगच्छंति तथा आसीनान् उपासते ॥

यो० । हि(यतः) निमंत्रितान् तान् द्विजान् पितरः उपतिष्ठंति चपुनः वायुवत् अनुगच्छंति तथा आसीनान् उपासते॥

भा० । ता० । जिससे नोतेहुये उन ब्राह्मणों के समीप पितर प्राप्तहोते हैं और प्राणवायु के समान गमनकरने उनब्राह्मणों के पीछे गमनकरतेहैं और बैठेहुये ब्राह्मणों के समीप बैठते हैं—तिससे ब्राह्मण संयम नियम से रहैं १८९ ॥

---

१ श्रोत्रियायैवदेयानि ॥

केतितस्तुयथान्यायंहव्यकव्येद्विजोत्तमः।कथंचिदप्यतिक्रामन्पापःसूकरतांव्रजेत् १६०

प० । केतितः तु यथान्यायं हव्यकव्ये द्विजोत्तमः कथंचित् अपि अतिक्रामन् पापः सूकरतां व्रजेत् ॥

यो० । हव्यकव्ये यथान्यायं केतितः (निमंत्रितः) द्विजोत्तमः कथंचित् अपि अतिक्रामन्सन् पापः सूकरतां व्रजेत् ॥

भा० । ता० । हव्य और कव्य में शास्त्रके अनुसार नोताहुआ ब्राह्मण यदि किसी प्रकार से भोजन न करे तो वहपापी सूकरयोनिको प्राप्त होताहै १६० ॥

आमन्त्रितस्तुयःश्राद्धेवृषल्यासहमोदते।दातुर्यद्दुष्कृतंकिंचित्तत्सर्वंप्रतिपद्यते १६१ ॥

प० । आमंत्रितः तु यः श्राद्धे वृषल्या सह मोदते दातुः यत् दुष्कृतं किंचित् तत् सर्वं प्रतिपद्यते ॥

यो० । श्राद्धे आमंत्रितः यः ब्राह्मणः वृषल्यासह मोदते सः दातुः यत् किंचित् दुष्कृतं अस्ति तत्सर्वं प्रतिपद्यते (प्राप्नोति) ॥

भा० । श्राद्ध में नोताहुआ जो ब्राह्मण शूद्राकेसंग भोग आदि करताहै वहदाताका जो कुछ पाप है उस सबको प्राप्तहोता है—दातापापसे हीन होयतो स्वयं पापका भागी होता है ॥

ता० । संयम नियम से रहै (नियतात्मा भवेत्सदा) इससे यद्यपि मैथुन करने का निषेध कह आये हैं तथापि शूद्राके संग गमनमें अधिक दोषजतानेके लिये कहते हैं कि—श्राद्धमें नोता हुआ जो ब्राह्मण शूद्रा स्त्रीका संग करताहै वह ब्राह्मण दाताका जो कुछ पापहै उसको प्राप्तहोता है—यहांपर उसको शूद्रा के गमन में पाप होनाही इष्ट है क्योंकि दाता यदि पापरहित न होगा वहां शूद्राका गमन करनेवाले को कुछ भी पाप न होगा—यह वचन कुछ दाताके प्रायश्चित्त का बोधक नहीं है जिससे यह ब्राह्मण पापसे निवृत्त होजाय—मेधातिथि और गोविन्दराज तो यह कहते हैं कि सामान्य से ब्रह्मचर्य का विधान (करनाकहाहै) जो स्त्री पति का संग किया चाहती है वह पतिको भी चपल करती है इस व्युत्पत्तिके अनुसार श्राद्ध के भोजन करनेवाले ब्राह्मणकी विवाही हुई स्त्री भी वृषली (शूद्रा) मानी जाती है १६१ ॥

अक्रोधनाःशौचपराःसततंब्रह्मचारिणः।न्यस्तशस्त्रामहाभागाःपितरःपूर्वदेवताः १६२

प० । अक्रोधनाः शौचपराः सततं ब्रह्मचारिणः न्यस्तशस्त्राः महाभागाः पितरः पूर्व- देवताः ॥

यो० । पितरः अक्रोधनाः शौचपराः सततं ब्रह्मचारिणः—न्यस्तशस्त्राः महाभागाः पूर्वदेवताः—संति तस्मात्श्राद्ध- भोक्त्राकर्त्राच क्रोधशून्येन भवितव्यम् ॥

भा० । ता० । पितर क्रोधरहित और मिट्टी और जलसे करने योग्य वहिः (देहका) शौच और राग द्वेष आदिका त्यागरूप अन्तः (मन) करणका शौच इन दोनों शौचोंमें तत्पर हैं और निरन्तर ब्रह्मचारी हैं अर्थात् स्त्री संयोग आदिके त्यागीहैं—और युद्धके त्यागीहैं और महाभाग (दया आदि आठगुणों से युक्त) हैं और अनादि देवतारूप हैं—तिससे श्राद्धका भोजन करने वाला और श्राद्धका कर्त्ता ये दोनों भी क्रोध आदि से रहितरहैं १६२ ॥

यस्मादुत्पत्तिरेतेषांसर्वेषामप्यशेषतः । येचयैरुपचर्याःस्युर्नियमैस्तान्निबोधत १६३ ॥

प० । यस्मात् उत्पत्तिः एतेषां सर्वेषां अपि अशेषतः ये च यैः उपचर्याः स्युः नियमैः तान् निबोधत ॥

यो० । एतेषां सर्वेषां यस्मात् उत्पत्तिः अस्ति — चपुनः ये पितरः संति — यैः ब्राह्मणादिभिः यैः नियमैः उपचर्याः स्युः तान् अशेषतः निबोधत — यूयमितिशेषः ॥

भा० । ता० । इनसब पितरों की जिससे उत्पत्तिहै और जो पितरहैं—और जिन ब्राह्मणों के और जिन शास्त्रोक्त उपायों से पूजने योग्य पितर होतेहैं—उन सबको तुम सुनो १६३ ॥

मनोर्हैरण्यगर्भस्ययेमरीच्यादयःसुताः।तेषामृषीणांसर्वेषांपुत्राःपितृगणाःस्मृताः १६४

प० । मनोः हैरण्यगर्भस्य ये मरीच्यादयः सुताः तेषां ऋषीणां सर्वेषां पुत्राः पितृगणाः स्मृताः ॥

यो० । हैरण्यगर्भस्य (ब्रह्मपुत्रस्य) मनोः ये मरीच्यादयः सुताः संति तेषां सर्वेषां ऋषीणां पुत्राः पितृगणाः (मन्वादिभिः) स्मृताः ॥

भा० । ता० । ब्रह्मा के पुत्र स्वायंभुवमनु के जो मरीचि आदि पुत्रहैं उन सब ऋषियोंके पुत्र मनु आदिने पितरों के गण कहे हैं १६४ ॥

विराट्सुताःसोमसदःसाध्यानांपितरःस्मृताः ।
अग्निष्वात्ताश्चदेवानांमारीचालोकविश्रुताः १६५ ॥

प० । विराट्सुताः सोमसदः साध्यानां पितरः स्मृताः अग्निष्वात्ताः च देवानां मारीचाः लोकविश्रुताः ॥

यो० । विराट्सुताः सोमसदः साध्यानां पितरः लोकविश्रुताः मारीचाः अग्निष्वात्ताः देवानां पितरः स्मृताः मन्वादिभिरिति शेषः ॥

भा० । ता० । विराट् के पुत्र सोमसद—साध्यों के—और जगत्में विख्यात और मरीचिकेपुत्र अग्निष्वात्त देवताओं के—पितर मनुआदि ने कहे हैं १६५ ॥

दैत्यदानवयक्षाणांगन्धर्वोरगरक्षसाम् । सुपर्णकिन्नराणांचस्मृताबर्हिषदोऽत्रिजाः १६६

प० । दैत्यदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् सुपर्णकिन्नराणां च स्मृताः बर्हिषदः अत्रिजाः ॥

यो० । अत्रिजाः बर्हिषदः दैत्यदानवयक्षाणां — गन्धर्वोरगरक्षसां — चपुनः सुपर्णकिन्नराणां पितरः (मन्वादिभिः) स्मृताः ॥

भा० । ता० । दैत्य—दानव—यक्ष—गन्धर्व—उरग—राक्षस—सुपर्ण—और किन्नर इनके पितर अत्रि के पुत्र बर्हिषद—मनु आदि ने कहेहैं १६६ ॥

सोमपानामविप्राणांक्षत्रियाणांहविर्भुजः ।
वैश्यानामाज्यपानामशूद्राणांतुसुकालिनः १६७॥

प० । सोमपाः नाम विप्राणां क्षत्रियाणां हविर्भुजः वैश्यानां आज्यपाः नाम शूद्राणां तु सुकालिनः ॥

यो० । विप्राणां सोमपा नाम — क्षत्रियाणां हविर्भुजः — वैश्यानां आज्यपा नाम — तुपुनः शूद्राणां सुकालिनः -(पितरः मन्वादिभिः स्मृताः) ॥

भा० । ता० । ब्राह्मणोंके पितर सोमपा—क्षत्रियोंके हविर्भुज—वैश्योंके आज्यप—और शूद्रोंके सुकालि पितर मनुआदिने कहेहैं १९७ ॥

सोमपास्तुकवेःपुत्राहविष्मन्तोऽङ्गिरःसुताः ।
पुलस्त्यस्याज्यपाःपुत्रावसिष्ठस्यसुकालिनः १९८ ॥

प० । सोमपाः तु कवेः पुत्राः हविष्मन्तः अंगिरःसुताः पुलस्त्यस्य आज्यपाः पुत्राः वसिष्ठस्य सुकालिनः ॥

यो० । तुपुनः सोमपाः कवेः पुत्राः — अंगिरःसुताः हविष्मन्तः — पुलस्त्यस्य पुत्राः आज्यपाः वसिष्ठस्य पुत्राः सुकालिनः — संतीति सर्वत्राध्याहार्यम् ॥

भा० । ता० । सोमप भृगुके पुत्र—हविर्भुज अंगिरा के पुत्र—आज्यप पुलस्त्यकेपुत्र—और सुकाली वसिष्ठके पुत्र—हैं १९८ ॥

अनग्निदग्धानग्निदग्धान्काव्यान्बर्हिषदस्तथा ।
अग्निष्वात्तांश्चसौम्यांश्चविप्राणामेवनिर्दिशेत् १९९ ॥

प० । अनग्निदग्धान् अग्निदग्धान् काव्यान् बर्हिषदः तथा अग्निष्वात्तान् च सौम्यान् च विप्राणां एव निर्दिशेत् ॥

यो० । अनग्निदग्धानग्निदग्धान् — काव्यान् — तथा बर्हिषदः चपुनः अग्निष्वात्तान् चपुनः सौम्यान् — विप्राणां एव पितॄन् — निर्दिशेत् ॥

भा० । ता० । अग्निदग्ध और अनग्निदग्ध—और काव्य—और तथा बर्हिषद—और अग्निष्वात्त—और सौम्य—इनको ब्राह्मणोंकेही पितरजाने १९९ ॥

यएतेतुगणामुख्याःपितॄणांपरिकीर्त्तिताः । तेषामपीहविज्ञेयंपुत्रपौत्रमनन्तकम् २०० ॥

प० । ये एते तु गणाः मुख्याः पितॄणां परिकीर्त्तिताः तेषां अपि इह विज्ञेयं पुत्रपौत्रं अनन्तकम् ॥

यो० । पितॄणां मुख्याः ये एते गणाः परिकीर्तिताः तेषां अपि अनंतकं पुत्रपौत्रं इह (जगति) विज्ञेयम् — विद्वद्भिरितिशेषः ॥

भा० । ता० । जो ये प्रधान २ पितरों के गण कहेहैं उनके भी अनन्त पुत्र और पौत्र इस जगत् में जानने—और इसी श्लोकसे सूचित किये (जताये) अन्य भी मार्कण्डेयपुराणआदि में कहे वर वरेण्य आदि पितरों के गण सुने जातेहैं २०० ॥

ऋषिभ्यःपितरोजाताःपितृभ्योदेवमानवाः।देवेभ्यस्तुजगत्सर्वंचरंस्थाण्वनुपूर्वशः२०१

प० । ऋषिभ्यः पितरः जाताः पितृभ्यः देवमानवाः देवेभ्यः तु जगत् सर्वं चरं स्थाणु अनुपूर्वशः ॥

यो० । पितरः ऋषिभ्यः जाताः पितृभ्यः देवमानवाः जाताः तुपुनः देवेभ्यः चरंस्थाणु सर्वं जगत् अनुपूर्वशः जातम् ॥

भा० । ऋषियों से पितर–पितरों से देवता और मनुष्य पैदाहुये–और देवताओं से स्थावर जंगम रूप सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ ॥

ता० । मरीचि आदि ऋषियों से पितर और पितरों से देवता और मनुष्य उत्पन्नहुये और देवता से स्थावर और जंगमरूप सम्पूर्ण जगत् क्रम से पैदाहुआ–तिससे अपने पिता पितामह आदि सोमपा आदिकों से उत्पन्नहुये इससे इनके श्राद्ध में पूजेहुये सोमपा आदि भी श्राद्धफल के देनेवाले होतेहैं–यह सोमपा आदि पितरों का कथन पितरों के श्राद्धकी स्तुतिके लिये है–अथवा इसका यह अभिप्रायहै कि आवाहन (बुलाना) के समय ब्राह्मण आदि वर्ण अपने पितरोंका सोमपा आदि रूपसे ध्यान करें–इससे व्यवस्था का ज्ञान और श्राद्ध के अनुष्ठान (करना)में तत्परता भी होजायगी २०१ ॥

राजतैर्भाजनैरेषामथोवाराजतान्वितैः । वार्यपिश्रद्धयादत्तमक्षयायोपकल्पते २०२ ॥

प० । राजतैः भाजनैः एषां अथो वा राजतान्वितैः वारि अपि श्रद्धया दत्तं अक्षयाय उपकल्पते ॥

यो० । एषां (पितॄणां) राजतैः अथोराजतान्वितैः भाजनैः श्रद्धया दत्तं वारि अक्षयाय उपकल्पते अक्षयं भवतीत्यर्थः ॥

भा० । ता० । चांदीके पात्रोंसे अथवा चांदी जिनमें लगीहो ऐसे पात्रों से श्रद्धासे इन पितरोंको दियाजल भी अक्षय सुख का हेतु होता है और उत्तम पायस आदि तो अक्षय फल का देनेवाला क्यों नहीं होगा अर्थात् अवश्यमेव होगा २०२ ॥

दैवकार्याद्द्विजातीनांपितृकार्यंविशिष्यते । दैवंहिपितृकार्यस्यपूर्वमाप्यायनंस्मृतम् २०३

प० । दैवकार्यात् द्विजातीनां पितृकार्यं विशिष्यते दैवं हि पितृकार्यस्य पूर्वं आप्यायनं स्मृतम् ॥

यो० । द्विजातीनां दैवकार्यात् पितृकार्यं विशिष्यते – हि (यतः) दैवं पितृकार्यस्य पूर्वं आप्यायनं (पूरकं) स्मृतम् मनुनेतिशेषः ॥

भा० । ता० । देवताओं के लिये कर्त्तव्य कर्म से पितरों के निमित्त जो कर्म्म है वही विशेष कर कर्त्तव्य द्विजातियोंको कहाहै इससे यह जानागया कि पितृकार्य प्रधानहै और दैव पितृकर्म के अंग हैं–क्योंकि दैवकर्म पितृकर्म के पूर्व होने से पितृकर्म का पूर्ण करनेवाला मनु आदि ने कहा है २०३ ॥

तेषामारक्षभूतंतुपूर्वंदैवंनियोजयेत् । रक्षांसिहिविलुम्पन्तिश्राद्धमारक्षवर्जितम् २०४ ॥

प० । तेषां आरक्षभूतं तु पूर्वं दैवं नियोजयेत् रक्षांसि हि विलुम्पन्ति श्राद्धं आरक्षवर्जितम् ॥

यो० । पूर्वं तेषां आरक्षभूतं दैवं श्राद्धं नियोजयेत् – हि (यतः) आरक्षवर्जितं श्राद्धं रक्षांसि विलुम्पन्ति ॥

भा० । ता० । तिन पितरों की रक्षाभूत (रक्षाके लिये) पहिले दैवश्राद्ध (विश्वेदेवा) के ब्राह्मण को निमंत्रणदे क्योंकि आरक्षसे वर्जित श्राद्ध को राक्षसे नष्टकरदेते हैं २०४ ॥

दैवाद्यन्तंतदीहेतपित्राद्यन्तंनतद्भवेत्। पित्राद्यन्तंत्वीहमानःक्षिप्रंनश्यतिसान्वयः२०५

प० । दैवाद्यन्तं तत् ईहेत पित्राद्यन्तं न तत् भवेत् पित्राद्यन्तं तु ईहमानः क्षिप्रं नश्यति सान्वयः ॥

यो० । तत् (श्राद्धं) दैवाद्यंतं ईहेत—तत् पित्राद्यंतं नभवेत्—तुपुनः पित्राद्यंतं ईहमानः पुरुषः सान्वयः नश्यति ॥

भा० । पितरों के श्राद्धमेंभी आदि अन्तमें विश्वेदेवाओं का निमंत्रण आदि करै और आदि अंतमें पितरों का पूजन करके न करै यदि करै तो सन्तान सहित उसी समय नष्टहोजाताहै ॥

ता० । उस श्राद्धको दैवाद्यंत (जिसके आदि अन्त में देवताओंके लिये निमंत्रण आदिहों) करै और वहश्राद्ध पित्राद्यंत नहींहोता क्योंकि देवलॠषिने यह कहाहै कि जो श्राद्धमें पितरों के निमित्त कर्म कियाजाय वह सब विश्वेदेवाओं के निमित्त पहिले निमंत्रण आदि करके करै और उस श्राद्धको पितरोंके निमित्त निमंत्रण है आदि अन्त में जिसमें ऐसा न करै और यदि करै तो संतानसहित शीघ्रही नष्टहोता है २०५ ॥

शुचिंदेशंविविक्तंचगोमयेनोपलेपयेत् । दक्षिणाप्रवणंचैवप्रयत्नेनोपपादयेत् २०६ ॥

प० । शुचिं देशं विविक्तं च गोमयेन उपलेपयेत् दक्षिणाप्रवणं च एव प्रयत्नेन उपपादयेत् ॥

यो० । शुचिं चपुनः विविक्तं देशं गोमयेन उपलेपयेत् चपुनः प्रयत्नेन दक्षिणाप्रवणं उपपादयेत् ॥

भा० । ता० । शुद्ध और एकांत देशको गोवरसे लिपावे और उसका दक्षिणाप्रवण (दक्षिण को नीचा) बड़े यत्न से करै २०६ ॥

अवकाशेषुचोक्षेषुनदीतीरेषुचैवहि । विविक्तेषुचतुष्यन्तिदत्तेनपितरःसदा २०७ ॥

प । अवकाशेषु चोक्षेषु नदीतीरेषु च एव हि विविक्तेषु च तुष्यंति दत्तेन पितरः सदा ॥

यो० । चोक्षेषु अवकाशेषु चपुनः नदीतीरेषु चपुनः विविक्तेषु दत्तेन पितरः सदा तुष्यंति ॥

भा० । ता० । चोक्षस्थानों (स्वभाव से शुद्धवन आदि) में—वा नदी के तीरों में—वा निर्जन देशोंमें दियेहुये श्राद्ध आदि से पितर सदैव प्रसन्न होतेहैं २०७ ॥

आसनेषूपक्लृप्तेषुबर्हिष्मत्सुपृथक्पृथक्।उपस्पृष्टोदकान्सम्यग्विप्रांस्तानुपवेशयेत्२०८

प० । आसनेषु उपक्लृप्तेषु बर्हिष्मत्सु पृथक् पृथक् उपस्पृष्टोदकान् सम्यक् विप्रान् तान् उपवेशयेत् ॥

यो० । पृथक् २ उपक्लृप्तेषु—बर्हिष्मत्सु आसनेषु उपस्पृष्टोदकान् तान् विप्रान् सम्यक् उपवेशयेत् ॥

भा० । पृथक् २ रक्खेहुये और कुशाओंसहित आसनों पर नोते हुये और किया है स्नान आचमन जिन्होंने ऐसे ब्राह्मणोंको बैठावे ॥

ता० । उस पूर्वोक्त देश में पृथक् २ रक्खेहुये और कुशाओं सहित आसनोंपर—पहिले नोते और कियाहै स्नान आचमन जिन्होंने ऐसे उन ब्राह्मणोंको बैठावे—और विश्वेदेवाओंके ब्राह्मण

---

१ यदत्र क्रियतेकर्म्म पैत्रिके ब्राह्मणान्प्रति — तत्सर्वंतत्रकर्त्तव्यं वैश्वदेविकपूर्वकम् ॥

के आसनपर दो कुशा और पितृब्राह्मणोंके आसनपर दक्षिणकोहै अग्रभाग जिसका ऐसी एक२ रक्खे—क्योंकि देवलऋषिने यहकहाहै कि श्राद्धमें जो पहिले नोतेहुये विश्वेदेवाओंके ब्राह्मण हैं उनके आसन प्राङ्मुख (पूर्वको मुख जिनकाहो) और दो २ कुशाओं से युक्त होते हैं—और पितरों के ब्राह्मणों के आसन—दक्षिणको है मुख जिनका ऐसे होतेहैं और उनपर दक्षिणको है अग्रभाग जिनका ऐसी कुशाहों और वे तिल और जलसे छिड़केहोतेहैं २०८ ॥

उपवेश्यतुतान्विप्रानासनेष्वजुगुप्सितान् । गन्धैर्माल्यैःसुरभिभिरर्चयेद्देवपूर्वकम् २०९

प० । उपवेश्य तु तान् विप्रान् आसनेषु अजुगुप्सितान् गंधैः माल्यैः सुरभिभिः अर्चयेत्—देवपूर्वकम् ॥

यो० । अजुगुप्सितान् तान् विप्रान् आसनेषु उपवेश्य गंधैः—माल्यैः—सुरभिभिः देवपूर्वकं अर्चयेत् ॥

भा० । ता० । नोते हुये और अनिंदित उन ब्राह्मणों को आसनोंपर बैठाकर गंध—पुष्प धूप आदि से देवताओं के ब्राह्मणों का प्रथम पूजकर पूजन करै २०९ ॥

तेषामुदकमानीयसपवित्रांस्तिलानपि । अग्नौकुर्यादनुज्ञातोब्राह्मणोब्राह्मणैःसह २१०॥

प० । तेषां उदकं आनीय सपवित्रान् तिलान् अपि अग्नौ कुर्यात् अनुज्ञातः ब्राह्मणः ब्राह्मणैः सह ॥

यो० । तेषां (ब्राह्मणानां) उदकं—सपवित्रान् तिलान् अपि आनीय ब्राह्मणैःसह अनुज्ञातः ब्राह्मणः अग्नौ (होमं) कुर्यात् ॥

भा० । ता० । उन ब्राह्मणों के लिये अर्घका जल और पवित्रियों सहित तिल इनको लाकर ब्राह्मणों की आज्ञासे ब्राह्मण अग्नि के बिषे इनमंत्रों से होमकरै—कि २१० ॥

अग्नेःसोमयमाभ्यांचकृत्वाप्यायनमादितः।हविर्दानेनविधिवत्पश्चात्संतर्पयेत्पितॄन् २११

प० । अग्नेः सोमयमाभ्यां च कृत्वा आप्यायनं आदितः हविर्दानेन विधिवत् पश्चात् संतर्पयेत् पितॄन् ॥

यो० । अग्नेः चपुनः सोमयमाभ्यां आदितः प्रोक्षणादि विधिवत् आप्यायनं (तृप्तिं) कृत्वा—पश्चात् हविः (अन्न) दानेन विधिवत् पितॄन् संतर्पयेत् ॥

भा० । अग्नि सोम यम इनकी पहिले विधिपूर्वक तृप्ति करके पीछे से अन्न आदि के देने से पितरों की तृप्ति करै २११ ॥

ता० । अग्नि—सोम और यम इनकी पाहिले पर्युक्षण आदि विधि से हविः के देने से प्रसन्नता करके पीछेसे अन्न आदि देनेसे पितरोंको भलीप्रकार तृप्तकरै—यद्यपि सोम और यम द्वंद्वनिर्देशसे पढ़ेहैं तथापि पृथक् २ ही देवताहैं क्योंकि सह आदि शब्द का प्रयोग नहीं है जहां साहित्य (इकट्ठे दोदेवता)विवक्षित होताहै वहां सह आदि शब्दको करतेहैं यह पीछे कहआयेहैं २११ ॥

---

१ येचात्र विश्वेदेवानां विप्राः पूर्वनिमंत्रिताः प्राङ्मुखान्यासनान्येषां द्विदर्भोपहतानिच दक्षिणामुखयुक्तानि पितृणामासनानिच दक्षिणाग्रैकदर्भाणि प्रोक्षितानि तिलोदकैः ॥

अग्न्यभावेतुविप्रस्यपाणावेवोपपादयेत्।योह्यग्निःसद्विजोविप्रैर्मन्त्रदर्शिभिरुच्यते२१२

प० । अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणौ एव उपपादयेत् यः हि अग्निः सः द्विजः विप्रैः मंत्रदर्शिभिः उच्यते ॥

यो० । अग्न्यभावे विप्रस्य पाणौ एव उपपादयेत्–हि (यतः) यः अग्निः सः मंत्रदर्शिभिः विप्रैः द्विजः उच्यते ॥

भा० । ता० । यदि अग्निका अभावहोय तो ब्राह्मण के हाथ में ही उक्त तीनों आहुति देदे–क्योंकि जो अग्नि है वही ब्राह्मणहै यह वेदकेजाननेवाले ब्राह्मणोंने कहा है और अग्निकाअभाव यज्ञोपवीत से पहिले अर्थात् समावर्तन होनेपर भी विवाह से पहिलेहोता है अथवा जिसकी स्त्री मरगई हो २१२ ॥

अक्रोधनान्सुप्रसादान्वदन्त्येतान्पुरातनान् ।
लोकस्याप्यायनेयुक्ताञ्छ्राद्धदेवान्द्विजोत्तमान् २१३ ॥

प० । अक्रोधनान् सुप्रसादान् वदंति एतान् पुरातनान् लोकस्य आप्यायने युक्तान् श्राद्धदेवान् द्विजोत्तमान् ॥

यो० । पंडिताः एतान् अक्रोधनान् सुप्रसादान् पुरातनान् लोकस्य आप्यायने युक्तान् द्विजोत्तमान् श्राद्धदेवान् वदंति ॥

भा० । क्रोधसेहीन–प्रसन्न–और पुराने–और जगत् की तृप्तिकरनेमें युक्त इन द्विजोंमें उत्तमों को श्राद्धके देवताकहाहै ॥

ता० । क्रोधसे रहित–और प्रसन्नमुख–और पुरातन–और जगत् की तृप्तिकरनेमें युक्त(अर्थात् अग्नि में दीहुई आहुति सूर्यको मिलतीहै और सूर्यसे वर्षाहोतीहै और वर्षासे अन्नहोता है और अन्नसे प्रजावृद्धिका प्राप्त होतीहैं) इन द्विजोंमें उत्तम ब्राह्मणोंको वेदके देखनेवालोंने श्राद्ध के देवताकहाहै–इससे अग्निके अभावमें ब्राह्मणके हाथमेंही उक्त आहुति देदे २१३ ॥

अपसव्यमग्नौकृत्वासर्वमावृत्यविक्रमम् । अपसव्येनहस्तेननिर्वपेदुदकंभुवि २१४॥

प० । अपसव्यं अग्नौ कृत्वा सर्वं आवृत्य विक्रमं अपसव्येन हस्तेन निर्वपेत् उदकं भुवि ॥

यो० । अग्नौ अपसव्यं कृत्वा सर्वं विक्रमं आवृत्य अपसव्येन हस्तेन भुवि उदकंनिर्वपेत् ॥

भा० । ता० । अग्निमें जो पर्युक्षण आदि अंगकहाहै अर्थात् अग्नौकरण होमका अनुष्ठान आदि क्रम दक्षिण दिशामें स्थितकरके फिर अपसव्य दक्षिणहाथसे पिंडदेनेकी भूमिपर जलको दे अर्थात् छिड़के २१४ ॥

त्रींस्तुतस्माद्धविःशेषात्पिण्डान्कृत्वासमाहितः ।
औदकेनैवविधिनानिर्वपेद्दक्षिणामुखः २१५ ॥

प० । त्रीन् तु तस्मात् हविःशेषात् पिंडान् कृत्वा समाहितः औदकेन एव विधिना निर्वपेत् दक्षिणामुखः ॥

१ अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते आदित्याज्जायतेवृष्टिः वृष्टेरन्नंततः प्रजाः ॥

यो० । समाहितःसन् तस्मात् हविःशेषात् त्रीन् पिंडान् कृत्वा दक्षिणामुखः यजमानः औदकेन एव विधिना त्रीन् पिंडान् निर्वपेत् ॥

भा० । ता० । उस अग्निके होममेंसे शेष(बचेहुये)अन्नमेंसे तीन पिंडबनाकर जलदेनेके क्रम से दक्षिणमुख होकर और सावधानीसे उन कुशाओंके ऊपर तीन पिंडदे अर्थात् जहां २ जल दियाथा वहां २ कुशा रखकर पिंडदे २१५ ॥

न्युप्यपिण्डांस्ततस्तांस्तुप्रयतोविधिपूर्वकम्।तेषुदर्भेषुतंहस्तंनिमृज्याल्लेपभागिनाम् २१६

प० । न्युप्य पिंडान् ततः तान् तु प्रयतः विधिपूर्वकं तेषु दर्भेषु तं हस्तं निमृज्यात् लेपभागिनाम् ॥

यो० । ततः प्रयतःसन् तेषु दर्भेषु तान् पिंडान् विधिपूर्वकं न्युप्य(दत्त्वा)तेषु दर्भेषु तं हस्तं लेपभागिनां निमृज्यात् ॥

भा० । तिसके पीछे सावधानहोकर स्वगृह्यमें कही विधिसे उन कुशाओंके ऊपर पिंडों को देकर उन कुशाओंकीही जड़के ऊपर लेपभाग भोक्ताओं के लिये अपने हाथोंका मार्जनकरै ॥

ता० । तिसके अनंतर सावधानहोकर स्वगृह्यमें उक्त विधिसे उन कुशाओंपर पिंडोंको देकर इस विष्णु के वचनानुसार उन्हीं कुशाओंकी जड़पर लेपके भागियों के लिये अपने हाथका मार्जनकरै-अर्थात् प्रपितामहसे पहिले जो तीन वृद्धप्रपितामह आदि हैं उनको इस-लेपभागभुजस्तृप्यंतु-मंत्रसे हाथोंसे लगेहुये अन्नको दे २१६ ॥

आचम्योदक्परावृत्यत्रिरायम्यशनैरसून्।षडृतूंश्चनमस्कुर्यात्पितॄनेवचमन्त्रवित् २१७

प० । आचम्य उदक् परावृत्य त्रिः आयम्य शनैः असून् षट् ऋतून् च नमः कुर्यात् पितॄन् एव च मंत्रवित् ॥

यो० । मंत्रवित् आचम्य उदक्परावृत्य (उदङ्मुखोभूत्वा) शनैः असून् त्रिः आयम्य षट्ऋतून् चपुनः पितॄन् च(अपि) नमःकुर्यात् (नमेत्) ॥

भा० । मंत्रोंके जाननेवाला पुरुष आचमन और उत्तरदिशाको मुखकरके शनैः २ तीनवार प्राणायामोंको करके छःऋतु और पितरोंको नमस्कारकरै ॥

ता० । तिसके अनंतर आचमन और उत्तरको मुखकरके यथाशक्ति शनैः २ तीन प्राणायाम करके वसंत आदि छः ऋतुओंको और (नमोवःपितरोरसाय) इत्यादि मंत्रोंसे पितरोंको मंत्रोंका ज्ञाता नमस्कारकरै-इस गृह्यसूत्रसे दक्षिणदिशा के सन्मुखहोकर नमस्कार करै २१७ ॥

उदकंनिनयेच्छेषंशनैःपिण्डान्तिकेपुनः।अवजिघ्रेच्चतान्पिण्डान्यथान्युप्तान्समाहितः २१८

प० । उदकं निनयेत् शेषं शनैः पिंडांतिके पुनः अवजिघ्रेत् च तान् पिंडान् यथा न्युप्तान् समाहितः ॥

यो० । शेषं उदकं पिंडांतिके पुनः शनैः निनयेत्-चपुनः समाहितःसन् यथान्युप्तान् तान् पिंडान् अवजिघ्रेत् ॥

भा० । ता० । फिर पिंडदेनेसे पहिले पिंडके स्थानमें दियेहुये जलसे शेष जो जलके पात्रका

१ दर्भमूलेषुकरावघर्षणम् ॥
२ आङ्भिः परावृत्य ॥

जल उसको प्रत्येक पिंडके समीप शनैः २ दे—और उन पिंडोंके देनेके क्रमसे सावधान होकर सूंघे २१८ ॥

पिण्डेभ्यस्त्वल्पिकांमात्रांसमादायानुपूर्वशः।तेनैवविप्रानासीनान्विधिवत्पूर्वमाशयेत्२१९

प० । पिंडेभ्यः तु अल्पिकां मात्रां समादाय अनुपूर्वशः तान् एव विप्रान् आसीनान् विधिवत् पूर्वं आशयेत् ॥

यो० । पिंडेभ्यः अल्पिकांमात्रां अनुपूर्वशः समादाय तान् एव आसीनान विप्रान् पूर्वं विधिवत् आशयेत् (भोजयेत्) ॥

भा० । पिंडोंमेंसे थोड़ा२ भाग क्रमसे लेकर उन्हीं पिता आदि के बैठेहुये ब्राह्मणों को विधिपूर्वक भोजन से पहिले भक्षण करादे ॥

ता० । उन पिंडोंमें से अल्प २ मात्रा (भाग) क्रमसे लेकर पिता पितामह प्रपितामह के ब्राह्मणों को भोजन के समय भोजन से पहिले विधिसे भक्षण करावे अर्थात् पिताके पिंडकेभाग को पितृब्राह्मण को पितामह के पिंडभाग को पितामह ब्राह्मण को और प्रपितामह के पिंडभाग को प्रपितामह ब्राह्मण को भक्षण करावे २१९ ॥

ध्रियमाणेतुपितरिपूर्वेषामेवनिर्वपेत् । विप्रवद्वापितंश्राद्धेस्वकंपितरमाशयेत् २२० ॥

पद० । ध्रियमाणे तु पितरि पूर्वेषां एव निर्वपेत् विप्रवत् वा अपि तं श्राद्धे स्वकं पितरं आशयेत् ॥

यो० । तुपुनः पितरि ध्रियमाणे सति पूर्वेषां (पितामहादीनां) निर्वपेत्—वा तं स्वकं पितरं अपि श्राद्धे विप्रवत् आशयेत् (भोजयेत्) ॥

भा० । ता० । यदि पिता जीवता होय तो पितामह आदि दो के निमित्तही पिंडदे अथवा पितृब्राह्मण के स्थान में उस अपने पिताकोही भोजन करावे और पितामह और प्रपितामह केही लिये श्राद्धकरे २२० ॥

पितायस्यनिवृत्तःस्याज्जीवेच्चापिपितामहः।पितुःसनामसंकीर्त्यकीर्तयेत्प्रपितामहम् २२१

प० । पिता यस्य निवृत्तः स्यात् जीवेत् च अपि पितामहः पितुः सः नाम संकीर्त्य कीर्तयेत् प्रपितामहं ॥

यो० । यस्य पिता निवृत्तः स्यात् चपुनः पितामहः जीवेत् सः पितुः नाम संकीर्त्य प्रपितामहं कीर्तयेत् ॥

भा० । जिसका पिता मरगयाहो और पितामह जीवताहोय तो वह पिताको पिण्डदेकर प्रपितामहको पिण्डदे ॥

ता० । जिसमनुष्य का पिता मरगया हो और पितामह जीताहोय तो वह पिता के नामको लेकर अर्थात् पिताके नामसे पिण्डआदि देकर प्रपितामह के नामको लेकर श्राद्धकरै—गोविन्दराजने तो यह व्याख्याकीहै कि जिसके पिता और प्रपितामह दोनों मरगये हों वह पिता और प्रपितामह इनदोनों कोही इस विष्णुवचन के अनुसार पिण्ड दे २२१ ॥

---

१ पितामहात्परंद्वाभ्याम् ॥

पितामहोवातच्छ्राद्धंभुञ्जीतेत्यब्रवीन्मनुः।कामंवासमनुज्ञातःस्वयमेवसमाचरेत्२२२॥

प०। पितामहः वा तत् श्राद्धं भुंजीत इति अब्रवीत् मनुः कामं वा समनुज्ञातः स्वयं एव समाचरेत् ॥

यो०। वा पितामहः तत् श्राद्धं भुंजीत इति मनुः अब्रवीत् वा कामं समनुज्ञातः स्वयंएव समाचरेत् ॥

भा०। अथवा पितामहही उस श्राद्धको भोजनकरै यह मनुने कहाहै अथवा पितामह की आज्ञालेकर पोता अपनी इच्छा के अनुसार श्राद्धको करै अर्थात् पितामहकोही जिमावे ॥

ता०। यह मनुनेकहाहै कि जैसे जीवते पिताको जिमातेहैं इसीप्रकार पितामहको भी पितामहके ब्राह्मणके स्थानमें जिमावे और पिता और प्रपितामह के लिये श्राद्ध और पिंडदान करै अथवा जीवते पितामहकी इस आज्ञासे कि तूही यथारुचि श्राद्धकर—अपनी रुचिसे आपहीपितामहको जिमावे क्योंकि इस विष्णु वचनसे पिता और प्रपितामह के निमित्त दो श्राद्ध करै अथवा पिता प्रपितामह वृद्धप्रपितामह इनके निमित्त तीन श्राद्ध करै २२२ ॥

तेषांदत्वातुहस्तेषुसपवित्रंतिलोदकम्।तत्पिण्डाग्रंप्रयच्छेतस्वधैषामस्त्वितिब्रुवन्२२३

प०। तेषां दत्वा तु हस्तेषु सपवित्रं तिलोदकं तत् पिण्डाग्रं प्रयच्छेत् स्वधा एषां अस्तु इति ब्रुवन् ॥

यो०। तेषां (ब्राह्मणानां) हस्तेषु सपवित्रं तिलोदकं दत्वा एषां स्वधा अस्तु इति ब्रुवन् तत् पिण्डाग्रं प्रयच्छेत् ॥

भा०। ता०। जो पीछे पिण्डका भागदेना कहाहै उसका समय कहते हैं कि उन ब्राह्मणोंके हाथों में पवित्रियों सहित तिलजल देकर इन (पिता आदि) को स्वधाहो यह कहता हुआ उस पिण्ड के अग्रभागको क्रम से पिता आदि के ब्राह्मणों को दे २२३ ॥

पाणिभ्यांतूपसंगृह्यस्वयमन्नस्यवर्द्धितम्।विप्रान्तिकेपितॄन्ध्यायन्शनकैरुपनिक्षिपेत्२२४

प०। पाणिभ्यां तु उपसंगृह्य स्वयं अन्नस्य वर्द्धितम् विप्रांतिके पितॄन् ध्यायन् शनकैः उपनिक्षिपेत् ॥

यो०। अन्नस्य (अन्नेन) वर्द्धितं (पूर्णं) पात्रं पाणिभ्यां उपसंगृह्य (गृहीत्वा) पितॄन् ध्यायन्सन् विप्रांतिके शनकैः उपनिक्षिपेत् ॥

भा०। ता०। अन्नसे भरेहुये पात्रको हाथों से ग्रहण करके पितरों का ध्यान करता हुआ पुरुष शनैः २ परसने के लिये ब्राह्मणोंके समीप रक्खै—अर्थात् घरमेंसे लाकर ब्राह्मणोंके भोजन करने के स्थान में रखदे २२४ ॥

उभयोर्हस्तयोर्मुक्तंयदन्नमुपनीयते । तद्विप्रलुम्पन्त्यसुराःसहसादुष्टचेतसः२२५ ॥

प०। उभयोः हस्तयोः मुक्तं यत् अन्नं उपनीयते तत् विप्रलुंपंति असुराः सहसा दुष्टचेतसः ॥

यो०। उभयोः हस्तयोः मुक्तं (हस्तद्वयस्पर्शहीनं) यत् अन्नं उपनीयते (ब्राह्मणसमीपे आनीयते) तत् अन्नं दुष्टचेतसः असुराः विप्रलुंपंति (आच्छिंदन्ति) तस्मादेकहस्तेन परिवेषणं न कुर्यात् ॥

---

१ पितृप्रपितामहयोर्वाश्राद्धद्वयंकुर्यात् ॥

भा० । ता० । दोनों हाथों से मुक्त जो अन्न ब्राह्मणों के समीप लाया जाता है उस अन्नको दुष्ट चित्तवाले राक्षस छीन लेते हैं तिससे एक हाथसे अन्नको कभी भी न परसे २२५ ॥

गुणांश्चसूपशाकाद्यान्पयोदधिघृतंमधु । विन्यसेत्प्रयतःपूर्वंभूमावेवसमाहितः २२६ ॥

प० । गुणान् च सूपशाकाद्यान् पयः दधि घृतं मधु विन्यसेत् प्रयतः पूर्वं भूमौ एव समाहितः ॥

यो० । चपुनः सूपशाकाद्यान गुणान्–पयः दधि घृतं मधु पूर्वं प्रयतः (शुद्ध) समाहितःसन् भूमौ एव पूर्वं विन्यसेत् ॥

भा० । ता० । सूप (दाल) शाक आदि गुणवालोंको और दूध–दही मीठा आदि को पहिले सावधानी से भलीप्रकार भूमिपर रखदे २२६ ॥

भक्ष्यंभोज्यंचविविधंमूलानिचफलानिच।हृद्यानिचैवमांसानिपानानिसुरभीणिच२२७॥

प० । भक्ष्यं भोज्यं च विविधं मूलानि च फलानि च हृद्यानि च एव मांसानि पानानि सुरभीणि च ॥

यो० । भक्ष्यं चपुनः विविधं भोज्यं चपुनः मूलानि फलानि चपुनः हृद्यानि मांसानि चपुनः सुरभीणि पानानि भूमौ विन्यसेत् ॥

भा० । ता० । मोदक आदि नाना प्रकारके भक्ष्यपदार्थ और पायस आदि नाना प्रकारके भोज्यपदार्थ और अनेक प्रकारके जिमीकंद आदि मूल और आम्र आदि फल हृदयको प्रिय मांस और सुगंधित केवड़ा आदि जल इन सबको शुद्ध भूमिमें ही रखदे २२७ ॥

उपनीयतुतत्सर्वंशनकैःसुसमाहितः । परिवेषयेतप्रयतोगुणान्सर्वान्प्रचोदयन् २२८ ॥

प० उपनीय तु तत् सर्वं शनकैः सुसमाहितः परिवेषयेत प्रयतः गुणान् सर्वान् प्रचोदयन् ॥

यो० । सुसमाहितः शनकैः तत्सर्वं उपनीय–सर्वान् गुणान प्रचोदयनसन प्रयतः पुरुषः परिवेषयेत ॥

भा० । ता० । उससंपूर्ण अन्नको शनैः २ ब्राह्मणों के समीप लाकर और यहमीठाहै यहखट्टा है इसप्रकार सब अन्न गुणोंको कहता हुआ सावधानी से परसे २२८ ॥

नास्रमापतयेज्जातुनकुप्येन्नानृतंवदेत् । नपादेनस्पृशेदन्नंनचैतदवधूनयेत् २२९ ॥

प० । न अस्रं आपतयेत् जातु न कुप्येत् न अनृतं वदेत् न पादेन स्पृशेत् अन्नं न च एतत् अवधूनयेत् ॥

यो० । जातु अस्रं न आपतयेत्–न कुप्येत् नअनृतं वदेत पादेन अन्नं न स्पृशेत_चपुनः एतत अन्नं न अवधूनयेत ॥

भा० । ता० । ब्राह्मणोंके भोजन के समय न रोवे–और न क्रोध करे–और न झूंठबोले–और पैरों से अन्नका स्पर्श न करे और उपर २ को फेंकर के पात्रोंमें अन्नको न दे यद्यपि मनुष्यको क्रोध झूठ निषिद्ध हैं तथापि क्रोध और मिथ्याभाषण का त्यागना भी श्राद्धका अंग है यह जताने के लिये यह निषेध है २२९ ॥

अस्त्रंगमयतिप्रेतान्कोपोऽरीननृतंशुनः । पादस्पर्शस्तुरक्षांसिदुष्कृतीनवधूननम् २३०

प० । अस्त्रं गमयति प्रेतान् कोपः अरीन् अनृतं शुनः पादस्पर्शः तु रक्षांसि दुष्कृतीन् अवधूननम् ॥

यो० । अस्रं अश्रं प्रेतान् — कोपः अरीन् — अनृतंशुनः — पादस्पर्शः रक्षांसि — अवधूननं दुष्कृतीन् अश्रं गमयति ॥

भा० । ता० । आंसू प्रेतों को—कोप शत्रुओंको—झूठ कुत्तों को—पैरकास्पर्श राक्षसोंको—और अवधूनन (कम्पाना) पापकर्मियों को—अन्नको पहुंचते हैं २३० ॥

यद्यद्रोचेतविप्रेभ्यस्तत्तद्दद्यादमत्सरः।ब्रह्मोद्याश्चकथाःकुर्यात्पितॄणामेतदीप्सितम् २३१

प० । यत् यत् रोचेत विप्रेभ्यः तत् तत् दद्यात् अमत्सरः ब्रह्मोद्याः च कथाः कुर्यात् पितॄणां एतत् ईप्सितम् ॥

यो० । विप्रेभ्यः यत् यत् रोचेत अमत्सरःसन् तत् तत् दद्यात् — चपुनः ब्रह्मोद्याः कथाः कुर्यात् पितॄणां एतत् ईप्सितम् — अस्तीति शेषः ॥

भा० । ता० । ब्राह्मणोंको जो२ पदार्थ रुचे वही२ क्रोध को छोड़करदे और जिनमें परमात्मा का निरूपण हो ऐसी कथाकरे क्योंकि पितरों को यही अभीष्ट (प्रिय) है २३१ ॥

स्वाध्यायंश्रावयेत्पित्र्येधर्मशास्त्राणिचैवहि ।
आख्यानानीतिहासांश्चपुराणानिखिलानिच २३२ ॥

प० । स्वाध्यायं श्रावयेत् पित्र्ये धर्मशास्त्राणि च एव हि आख्यानानि इतिहासान् च पुराणानि खिलानि च ॥

यो० । पित्र्ये (श्राद्धे) स्वाध्यायं (वेदं) श्रावयेत् चपुनः धर्मशास्त्राणि — आख्यानानि — इतिहासान् — पुराणानि (ब्रह्मआदीनि) खिलानि (शिवसंकल्पादीनि) श्राद्धे श्रावयेत् ॥

भा० । ता० । पितरों के श्राद्ध में वेद—धर्मशास्त्र—आख्यान (सौपर्ण मैत्रावरुणआदि) इतिहास (महाभारत आदि) पुराण (ब्रह्मपुराण आदि) और खिल (श्रीसूक्त शिवसंकल्प आदि) को सुनावे २३२ ॥

हर्षयेद्ब्राह्मणांस्तुष्टोभोजयेच्चशनैःशनैः । अन्नाद्येनासकृच्चैतान्गुणैश्चपरिचोदयेत् २३३

प० । हर्षयेत् ब्राह्मणान् तुष्टः भोजयेत् च शनैः शनैः अन्नाद्येन असकृत् च एतान् गुणैः च परिचोदयेत् ॥

यो० । तुष्टः सन् ब्राह्मणान् हर्षयेत् — शनैः शनैः भोजयेत् — चपुनः एतान् अन्नाद्येन असकृत् गुणैः परिचोदयेत् ॥

भा० । ता० । प्रसन्न होकर ब्राह्मणोंको प्रसन्नकरे और शनैः २ भोजन करावे और अन्न पायस (खीर) आदि से इस प्रकार प्रेरणा करे कि यह पायस स्वादु है यह रोचक है लीजिये इत्यादि गुणों को कह२कर अन्न परसे २३३ ॥

व्रतस्थमपिदौहित्रंश्राद्धेयत्नेनभोजयेत् । कुतपंचासनेदद्यात्तिलैश्चविकिरेन्महीम् २३४

प० । व्रतस्थं अपि दौहित्रं श्राद्धे यत्नेन भोजयेत् कुतपं च आसने दद्यात् तिलैः च विकिरेत् महीम् ॥

यो० । व्रतस्थं अपि दौहित्रं यत्नेन श्राद्धे भोजयेत् — चपुनः आसने कुतपं (नेपालकाकम्बल) दद्यात् चपुनः तिलैः महीं विकिरेत् ॥

भा० । ता० । दौहित्र (पुत्रीका पुत्र) चाहे व्रतस्थ (ब्रह्मचारी) भी हो तो भी श्राद्ध में यत्नसे जिमावे और नहपाल के कम्बलका आसनदे और भूमिपर तिलोंको बखेरे २३४ ॥

त्रीणिश्राद्धेपवित्राणिदौहित्रःकुतपस्तिलाः ।
त्रीणिचात्रप्रशंसन्तिशौचमक्रोधमत्वराम् २३५ ॥

प० । त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः कुतपः तिलाः त्रीणि च अत्र प्रशंसंति शौचं अक्रोधं अत्वराम् ॥

यो० । दौहित्रं–कुतपः तिलाः इमानि त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि संति – बुधाः शौचं – अक्रोधं अत्वरां इमानि त्रीणि अत्र (श्राद्धे) प्रशंसंति ॥

भा० । ता० । दौहित्र कुतुप तिल ये तीन श्राद्ध में पवित्र होतेहैं–और मनुआदि ऋषि शौच क्रोधकात्याग–शीघ्रताका त्याग इनतीनों की प्रशंसा करते हैं २३५ ॥

अत्युष्णंसर्वमन्नंस्याद्भुंजीरंस्तेचवाग्यताः । नचद्विजातयोब्रूयुर्दात्रापृष्टाहविर्गुणान् २३६

प० । अत्युष्णं सर्वं अन्नं स्यात् भुंजीरन् ते च वाग्यताः न च द्विजातयः ब्रूयुः दात्रा पृष्टाः हविर्गुणान् ॥

यो० । सर्वं अन्नं अत्युष्णं स्यात् चपुनः ते (ब्राह्मणाः) वाग्यताः (मौनाः) सन्तः–भुंजीरन् चपुनः दात्रा पृष्टाः अपि हविर्गुणान् न ब्रूयुः (नकथयेयुः)॥

भा० । सब अन्न उष्णहो और ब्राह्मणभी मौनहोकर भोजनकरें और दाता (यजमान) के पूछनेपरभी हविः (अन्न) के गुणोंको ब्राह्मण न कहें ॥

ता० । सम्पूर्ण अन्न उष्णहो–और फलआदि उष्णनहो क्योंकि शंखऋषि ने इस वचन[1] से यहकहाहै कि ब्राह्मणोंको उष्णअन्न श्रद्धासेदे–और फलमूल और पीनेकीवस्तु उष्ण नदे–और ब्राह्मणभी मौनहोकर भोजनकरें–और दाताके स्वादु २ इसप्रकार पूछनेपरभी अन्न के गुण न कहें क्योंकि श्राद्धमें मौनका विधानहै २३६ ॥

यावदुष्णंभवत्यन्नंयावदश्नन्तिवाग्यताः । पितरस्तावदश्नन्तियावन्नोक्ताहविर्गुणाः २३७

प० । यावत् उष्णं भवति अन्नं यावत् अश्नंति वाग्यताः पितरः तावत् अश्नंति यावत् न उक्ताः हविर्गुणाः ॥

यो० । यावत् अन्नं उष्णं भवति – यावत् वाग्यताः ब्राह्मणाः अश्नंति – यावत् हविर्गुणाः न उक्ताः तावत् पितरः अश्नंति ॥

भा० । ता० । इतने अन्न उष्णहो और इतने ब्राह्मण मौनहोकर भोजनकरें और इतने ब्राह्मण अन्न के गुणोंको न कहें तबतकही पितर भोजनकरतेहैं २३७ ॥

---

१ उष्णमन्नं द्विजातिभ्यः श्रद्धयाविनिवेदयेत् अन्यत्रफलमूलेभ्यः पानकेभ्यश्चपंडितः ॥

यद्वेष्टितशिरा भुंक्ते यद्भुंक्ते दक्षिणामुखः । सोपानत्कश्च यद्भुंक्ते तद्वै रक्षांसि भुञ्जते २३८ ॥

प० । यत् वेष्टितशिराः भुंक्ते यत् भुंक्ते दक्षिणामुखः सोपानत्कः च यत् भुंक्ते तत् वै रक्षांसि भुंजते ॥

यो० । वेष्टितशिराः यत् भुंक्ते – दक्षिणामुखः यत् भुंक्ते – चपुनः सोपानत्कः यत् भुंक्ते तत् (अन्नं) रक्षांसि भुंजते ॥

भा० । ता० । शिरपर वस्त्रको लपेटकर–और दक्षिणको मुखकर और उपानह पहिनकर जो अन्न खायाजाताहै उस अन्नको राक्षसखातेहैं–तिससे इसप्रकार भोजन न करै २३८ ॥

चाण्डालश्च वराहश्च कुक्कुटः श्वा तथैव च । रजस्वला च पण्ढश्च नेक्षेरन्नश्नतो द्विजान् २३९ ॥

प० । चांडालः च वराहः च कुक्कुटः श्वा तथा एव च रजस्वला च पंढः च न ईक्षेरन् अश्नतः द्विजान् ॥

यो० । चांडालः चपुनः वराहः – कुक्कुटः – चपुनः तथैव श्वा – रजस्वला – चपुनः पंढः (नपुंसकः) एते अश्नतः द्विजान न ईक्षेरन ॥

भा० । ता० । चांडाल–ग्रामकासूकर–कुक्कुट (मुरगा) कुत्ता–रजस्वला और नपुंसक–ये भोजनकरतेहुये ब्राह्मणों को न देखें–तिससे ऐसे स्थान में श्राद्ध के ब्राह्मण न जिमावे जहां ये देखतेहों २३९ ॥

होमे प्रदाने भोज्ये च यदेभिरभिवीक्ष्यते । दैवे कर्मणि पित्र्ये वा तद्गच्छत्ययथातथम् २४० ॥

प० । होमे प्रदाने भोज्ये च यत् एभिः अभिवीक्ष्यते दैवे कर्मणि पित्र्ये वा तत् गच्छति अयथातथम् ॥

यो० । होमे – प्रदाने – चपुनः भोज्ये दैवेकर्मणि वा पित्र्ये यत् (वस्तु) एभिः अभिवीक्ष्यते तत् अयथातथं (अयथार्थ) गच्छति यद्र्थीक्रियते तत्फलदं न भवतीत्यर्थः ॥

भा० । ता० । होमकरने–और गौ सुवर्णआदि के दान–और अपनी वृद्धिके अर्थ ब्राह्मणोंके भोजन–और दर्श और पौर्णमासआदि देवकर्म–और श्राद्धआदि पितृकर्म–में जिसवस्तुको ये चांडालआदि देखतेहैं वह कर्म अयथातथ (निष्फल) होताहै २४० ॥

घ्राणेन सूकरो हन्ति पक्षवातेन कुक्कुटः । श्वा तु दृष्टिनिपातेन स्पर्शेनावरवर्णजः २४१ ॥

प० । घ्राणेन सूकरः हंति पक्षवातेन कुक्कुटः श्वा तु दृष्टिनिपातेन स्पर्शेन अवरवर्णजः ॥

यो० । सूकरः घ्राणेन – कुक्कुटः पक्षवातेन – श्वा दृष्टिनिपातेन – अवरवर्णजः (शूद्रः) अन्नस्पर्शेन श्राद्धं हंति निष्फलंकरोतीत्यर्थः ॥

भा० । अन्नकी सुगन्धी के लेने से सूकर–पंखों की पवनसे मुरगा–देखने से कुत्ता–औरअन्न के स्पर्शकरनेसे शूद्र–श्राद्धकोनष्ट (निष्फल) करताहै ॥

ता० । अन्नआदि की गन्धिको सूंघकर सूकर श्राद्धको नष्टकरताहै इससे सूंघने के योग्य देश से बाहरकरदेने योग्यहै–और पंखोंकी पवन से मुरगा–इससे पंखोंकी पवनयोग्य देश से दूरकर देना–और कुत्ता देखनेसे इससे देखनेयोग्य देशसे दूरकरदेना–और यद्यपि कुत्तेको अन्नआदिका देखना निषिद्धहै तथापि अधिकदोष जनानेकेलिये दुबारा कहाहै–अथवा श्राद्धभोजन करनेवाले

ब्राह्मणों की कुत्तेपर दृष्टि पड़नेसे श्राद्ध नष्टहोताहै—और शूद्र अन्नके स्पर्श से श्राद्धका—नष्टकरते हैं इससे ऐसेस्थान में श्राद्धकरै जैसे ये नष्ट न करसकें २४१ ॥

खंजोवायदिवाकाणोदातुःप्रेष्योऽपिवाभवेत्।हीनातिरिक्तगात्रोवातमप्यपनयेत्पुनः२४२॥

प० । खंजः वा यदि वा काणः दातुः प्रेष्यः अपि वा भवेत् हीनातिरिक्तगात्रः वा तं अपि अपनयेत् पुनः ॥

यो० । यः ब्राह्मणः खंजः—यदि वा काणः—वा दातुः प्रेष्यः—वा हीनातिरिक्तगात्रः भवेत् तं अपि ततः (श्राद्धस्थानात्) अपनयेत् (अपसारयेत्) ॥

भा० । ता० । लंगड़ा—काणा—दाताकासेवक—वा शूद्र—और न्यून वा अधिक जिसकेगात्रहों ऐसा जो ब्राह्मणहो उसकोभी श्राद्धके स्थानमे निकासदे २४२ ॥

ब्राह्मणंभिक्षुकंवापिभोजनार्थमुपस्थितम् । ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञातःशक्तितःप्रतिपूजयेत् २४३ ॥

प० । ब्राह्मणं भिक्षुकं वा अपि भोजनार्थं उपस्थितम् ब्राह्मणैः अभ्यनुज्ञातः शक्तितः प्रतिपूजयेत् ॥

यो० । भोजनार्थं उपस्थितं ब्राह्मणं वा भिक्षुकं ब्राह्मणैः अभ्यनुज्ञातः सन् शक्तितःसन् प्रतिपूजयेत् ॥

भा० । ता० । भोजन के आयेहुये ब्राह्मण वा भिक्षुकको भी श्राद्ध के सुपात्र ब्राह्मणों की आज्ञालेकर यथाशक्ति भोजनकादान वा भिक्षादेकर पूजे २४३ ॥

सार्ववर्णिकमन्नाद्यंसन्नीयाप्लाव्यवारिणा । समुत्सृजेद्भुक्तवतामग्रतोविकिरन्भुवि २४४ ॥

प० । सार्ववर्णिकं अन्नाद्यं सन्नीय आप्लाव्य वारिणा समुत्सृजेत् भुक्तवतां अग्रतः विकिरन् भुवि ॥

यो० । सार्ववर्णिकं अन्नाद्यं सन्नीय वारिणा आप्लाव्य भुक्तवतां अग्रतः भुवि विकिरन्सन् समुत्सृजेत् ॥

भा० । ता० । सबप्रकारके अन्नको इकट्ठा करके और जलमें भिगोकर कियाहै भोजन जिन्होंने ऐसे ब्राह्मणों के आगे भूमिमें कुशाओंपर गेरै इसको विकिरकहतेहैं २४४ ॥

असंस्कृतप्रमीतानांत्यागिनांकुलयोषिताम् । उच्छिष्टंभागधेयंस्याद्दर्भेषुविकिरश्चयः २४५

प० । असंस्कृतप्रमीतानां त्यागिनां कुलयोषिताम् उच्छिष्टं भागधेयं स्यात् दर्भेषु विकिरः च यः ॥

यो० । यः दर्भेषु विकिरः तत् उच्छिष्टं असंस्कृतप्रमीतानां—कुलयोषितां त्यागिनां भागधेयंस्यात् ॥

भा० । बिना अग्निके संस्कार मरेहुये बालक और कुलवती स्त्रियोंको त्यागनेवालोंकाही वह उच्छिष्टभाग होताहै जो कुशाओंपर विकिर दियाजाताहै ॥

ता० । अग्निके संस्कार बिना जो मरेहों ऐसे बालक और कुलकी स्त्रियों को जो बिना दोष त्यागदें—उनके निमित्त दर्भों (कुशाओं) पर उच्छिष्ट विकिरदियाजाताहै—कोई तो यह कहतेहैं कि गुरु आदिकेत्यागी और कुलयोषिता जो बिना विवाही और स्वतंत्र कुलकी कन्याहों—उनके

निमित्त विकिर होता है—और गोविंदराज तो यह कहते हैं कि सामान्यके प्रकरणमें यह विशेष कथनहै कि तिससे अपने कुलको त्यागकर जो कुलकी स्त्री चलीगईहों २४५ ॥

उच्छेषणंभूमिगतमजिह्मस्याशठस्यच । दासवर्गस्यतत्पित्र्येभागधेयंप्रचक्षते २४६ ॥

प० । उच्छेषणं भूमिगतं अजिह्मस्य अशठस्य च दासवर्गस्य तत् पित्र्ये भागधेयं प्रचक्षते ॥

यो० । भूमिगतं उच्छेषणं अजिह्मस्य अशठस्य च दासवर्गस्य भागधेयं पित्र्ये (श्राद्धे) प्रचक्षते मन्वादयः इतिशेषः ॥

भा० । ता० । जो भूमिपर दिया उच्छिष्टहै वह—अजिह्म (सौम्य) और अकुटिल जो दासों का समूह उन भाग पितरोंके श्राद्धमें मनु आदिने कहाहै २४६ ॥

आसपिण्डक्रियाकर्मद्विजातेःसंस्थितस्यतु।अदैवंभोजयेच्छ्राद्धंपिण्डमेकंतुनिर्वपेत् २४७

प० । आसपिंडक्रियाकर्म द्विजातेः संस्थितस्य तु अदैवं भोजयेत् श्राद्धं पिंडं एकं तु निर्वपेत् ॥

यो० । संस्थितस्य द्विजातेः आसपिंडक्रियाकर्म—अदैवं श्राद्धं भोजयेत् पिंडं तु एकं निर्वपेत् (दद्यात्) ॥

भा० । सपिंडीतक मरेहुये द्विजातिका श्राद्ध विश्वेदेवाओंके ब्राह्मणसे रहितकरै और एकही पिंडदे ॥

ता० । सपिंडीकर श्राद्धपर्यंत मरेहुये द्विजातिका श्राद्ध अदैव (विश्वेदेवा रहित) श्राद्ध जिमावे और एक पिंडदे—अर्थात् विश्वेदेवाओंके ब्राह्मणके विना ब्राह्मणको जिमावे—और इसके श्राद्ध को इस याज्ञवल्क्यके वचनानुसारकरै कि देव श्राद्धसे हीन एकोद्दिष्ट और एक अर्घ एक पवित्री—और आवाहन (पितरोंका बुलाना) और अग्नौकरणसे रहित—और अपसव्य से श्राद्धकरै २४७ ॥

सहपिण्डक्रियायांतुकृतायामस्यधर्मतः । अनयैवावृताकार्यंपिण्डनिर्वपणंसुतैः २४८ ॥

प० । सहपिंडक्रियायां तु कृतायां अस्य धर्मतः अनया एव आवृता कार्यं पिंडनिर्वपणं सुतैः ॥

यो० । अस्यधर्मतः सहपिंडक्रियायां कृतायां सत्यां—सुतैः अनया एव आवृता पिंडनिर्वपणं कार्यम् ॥

भा० । धर्मसे इसकी सपिंडी किये पीछे तो इसी पार्वणकी रीतिसे पुत्र पिंडदानकरें ॥

ता० । इसका जब अपने गृह्य में कहीहुई विधिसे सपिंडीकरण होजाय इसी आवृत (श्राद्ध करनेकी रीति) से पुत्रपिंडका दानकरें अर्थात् पार्वणश्राद्धकी रीतिसे करें—कदाचित् कोई यह कहै कि प्रकरण पढ़ेहुये एकोद्दिष्टकीही विधि क्यों नहीं लेते और पार्वणकी विधि क्यों लेतेहो—इसका यह उत्तरहै कि सपिंडीकरणसे पहिले एकोद्दिष्टकरै और सपिंडीके पीछे इसी रीतिसेकरै यह भेदसे कहना तभी ठीकहोसक्ताहै जब पार्वणकी रीतिका ग्रहण कियाजाय—इसीसे अमावस्याकी रीतिही प्रतीतहोतीहै २४८ ॥

श्राद्धंभुक्त्वायउच्छिष्टंवृषलायप्रयच्छति । समूढोनरकंयातिकालसूत्रमवाक्शिराः २४९

प० । श्राद्धं भुक्त्वा यः उच्छिष्टं वृषलाय प्रयच्छति सः मूढः नरकं याति कालसूत्रं अवाक्-शिराः ॥

१ एकोद्दिष्टं दैवहीनमेकार्घैकपवित्रकं आवाहनाग्नौकरण रहितंह्यपसव्यवत् ॥

यो० । यः श्राद्धं भुक्त्वा वृषलाय उच्छिष्टं प्रयच्छति सः मूढः अवाक्शिराः सन् कालसूत्रं नरकं याति ॥

भा० । ता० । जो मनुष्य श्राद्धका भोजन करके शूद्रको उच्छिष्टदेताहै वह मूढ़ अधोमुख होकर कालसूत्र नाम नरकको जाताहै २४९ ॥

श्राद्धभुग्वृषलीतल्पंतदहर्योऽधिगच्छति । तस्याःपुरीषेतन्मासेपितरस्तस्यशेरते२५०

प० । श्राद्धभुक् वृषलीतल्पं तत् अहः यः अधिगच्छति तस्याः पुरीषे तन्मासे पितरः तस्य शेरते ॥

यो० । यः श्राद्धभुक् तदहः (तस्मिन्दिने) वृषलीतल्पं अधिगच्छति तस्याः (वृषल्याः) पुरीषे — तन्मासे — तस्य (पुरुषस्य) पितरः शेरते ॥

भा० । ता० । श्राद्धका भोजनकरनेवाला जो ब्राह्मण श्राद्धके दिन वृषली (शूद्राकी) शय्या पर गमन करताहै उस शूद्राके विष्टा और मांसमें उसके पितर सोतेहैं—यहां वृषली शब्द स्त्रीमात्रका बोधकहै क्योंकि निरुक्तमें यह लिखा है कि गर्भको धारण करनेकी इच्छावाली स्त्री पति को भी चपल करदेतीहै इससे ब्राह्मणी भी स्त्री वृषली होतीहै २५० ॥

पृष्ट्वास्वदितमित्येवंतृप्तानाचामयेत्ततः ।
आचान्तांश्चानुजानीयादभितोरम्यतामिति २५१ ॥

प० । पृष्ट्वा स्वदितं इति एवं तृप्तान् आचामयेत् ततः आचांतान् च अनुजानीयात् अभितः रम्यतां इति ॥

यो० । स्वदितं इत्येवं पृष्ट्वा ततः तृप्तान् आचामयेत् चपुनः आचांतान् अभितः रम्यतां इति अनुजानीयात् ॥

भा० । ता० । भलीप्रकार भोजनकिया यह पूछकर और तृप्तजानकर आचमन करावे और कियाहै आचमन जिन्होंने ऐसे ब्राह्मणोंको अभितः रमणकीजिये यह आज्ञादे अर्थात् यहां रहिये चाहे अपने घरजाइये २५१ ॥

स्वधास्त्वित्येवतंब्रूयुर्ब्राह्मणास्तदनन्तरम् । स्वधाकारःपराह्याशीःसर्वेषुपितृकर्मसु २५२

प० । स्वधा अस्तु इति एव तं ब्रूयुः ब्राह्मणाः तदनंतरं स्वधाकारः परा हि आशीः सर्वेषु पितृकर्मसु ॥

यो० । तदनंतरं ब्राह्मणाः तं स्वधा अस्तु इत्येव ब्रूयुः — हि (यतः) सर्वेषु पितृकर्मसु स्वधाकारः परा आशीः (भवति) ॥

भा० । ता० । आज्ञाके अनंतर ब्राह्मण उस यजमानको स्वधाहो अर्थात् पितरों को श्राद्ध प्राप्तहो—ऐसेकहें क्योंकि सम्पूर्ण श्राद्ध और तर्पण आदि पितरोंके कर्म में स्वधा शब्द का कहना ही परम आशीर्वाद है २५२ ॥

ततोभुक्तवतांतेषामन्नशेषंनिवेदयेत् । यथाब्रूयुस्तथाकुर्यादनुज्ञातस्ततोद्विजैः २५३ ॥

प० । ततः भुक्तवतां तेषां अन्नशेषं निवेदयेत् यथा ब्रूयुः तथा कुर्यात् अनुज्ञातः ततः द्विजैः ॥

यो० । ततः भुक्तवतां तेषां अन्नशेषं निवेदयेत् — ततः तैः द्विजैः अनुज्ञातः (यजमानः) ते ब्राह्मणाः यथा ब्रूयुः तथा कुर्यात् ॥

१. वृषस्यति चपलयति भर्तारं ॥

भा० । ता० । स्वधा शब्द के अनन्तर किया है भोजन जिन्होंने ऐसे ब्राह्मणों को अवशिष्ट अन्नको निवेदन करदे–फिर उन ब्राह्मणों की आज्ञा लेकर जैसी वे आज्ञादें कि इस अन्न से यह करो वैसेही उस शेष अन्नको लगादे २५३ ॥

पित्र्येस्वदितमित्येववाच्यंगोष्ठेतुसुश्रुतम्।सम्पन्नमित्यभ्युदयेदैवेरुचितमित्यपि २५४॥

प० । पित्र्ये स्वदितं इति एव वाच्यं गोष्ठे तु सुश्रुतम् सम्पन्नं इति अभ्युदये दैवे रुचितं इति अपि ॥

यो० । पित्र्ये (एकोद्दिष्टश्राद्धे) स्वदितं इत्येव -- तुपुनः गोष्ठे (श्राद्धे) सुश्रुतं -- अभ्युदये (वृद्धिश्राद्धे) सम्पन्नं इति -- दैवे (देवताश्राद्धे) रुचितं इत्यपि -- वाच्यं ॥

भा० । माता पिता के एकोद्दिष्ट श्राद्ध में स्वदित–गोष्ठीश्राद्ध में सुश्रुत–अभ्युदय श्राद्ध में सम्पन्न और दैवश्राद्ध में रुचित–शब्दका उच्चारण करे ॥

ता० । अब प्रसंग अन्न श्राद्धों में विधिको कहते हैं कि पिता और माताके निमित्त जो किया जाय ऐसे एकोद्दिष्ट श्राद्ध में ब्राह्मणों की तृप्तिकेलिये स्वदितं (भली प्रकार भोजनकिया) ऐसे यजमान कहे–क्योंकि गोभिल और सांख्यायन ने यही कहा है और मेधातिथि और गोविन्द-राजने यह कहते हैं कि श्राद्धके समय आयाहुआ अन्य पुरुष भी स्वदितं यह वचन कहे–परन्तु पण्डितजन इसका अनुरोध नहीं करते इसमें हमभी (उल्लूकभट्ट) श्रद्धा नहीं करते (मानते) और गोष्ठ(गोष्ठीश्राद्ध) में सुश्रुत ऐसेकहे गोष्ठीमें शुद्धि के लिये आठवांश्राद्धहोता है इस वचनसे बारहप्रकार के श्राद्धोंमें गोष्ठीश्राद्ध भी मनुने पढ़ाहै–और वृद्धिश्राद्ध (नांदीमुख) में संपन्न ऐसे कहे और देवता निमित्तकिये श्राद्धमें रुचित ऐसे कहे क्योंकि भविष्यपुराण में यही कहाहै कि देवताओंके उद्देशसे जो कियाजाय उसे दैविक कहतेहैं और वह श्राद्ध सप्तमी आदितिथिमें उत्तम अन्नसे करना २५४ ॥

अपराह्णस्तथादर्भावास्तुसंपादनंतिलाः । सृष्टिर्मृष्टिर्द्विजाश्चाग्र्याःश्राद्धकर्मसुसंपदः २५५

प० । अपराह्णः तथा दर्भाः वास्तुसंपादनं तिलाः सृष्टिः मृष्टिः द्विजाः च अग्र्याः श्राद्धकर्मसु संपदः ॥

यो० । अपराह्णः तथादर्भाः -- वास्तुसंपादनं -- तिलाः -- सृष्टिः मृष्टिः -- चपुनः अग्र्याः द्विजाः (एताः) श्राद्धकर्मसु संपदः भवन्ति ॥

भा० । मध्याह्न के पीछे का समय–कुशा–वास्तु (घर) की स्वच्छता–तिल–उदार मनसे अन्नको देना–मृष्टि (स्वच्छता) से अन्न बनाना और सुपात्र ब्राह्मण ये श्राद्धके संपादकहैं अर्थात् इनसे श्राद्ध पूराहोताहै ॥

ता० । अपराह्ण (मध्याह्न के पीछे) अमावस्या के श्राद्धका प्रकरणहै इससे उसीमें अप-

१ स्वदितमिति पितृतृप्तिप्रश्नः ॥
२ श्राद्धेस्वदितमित्येतद्वाच्यमन्येनकेनचित् नानुरुद्धमिदं विद्वद्वृन्देनश्रद्दधीमहि ॥
३ गोष्ठ्यां शुद्ध्यर्थमष्टमं ॥
४ देवानुद्दिश्य यच्छ्राद्धं तद्दैविकमुच्यते हविष्येण विशिष्टेन सप्तम्यादिषुयत्नतः ॥

राह्ण काललेना–क्योंकि इस (प्रातर्वृद्धिनिमित्तकं) स्मृतिसे वृद्धिश्राद्ध प्रातःकाल करना कहाहै–और विष्टर (आसन) आदिके लिये कुशा–और गोमय आदिसे वास्तु (श्राद्धकास्थान) की शुद्धि–और विकिर आदिके लिये तिल–और सृष्टि (उदारतासे अन्नको परोसना) मृष्टि उत्तमतासे अन्नको बनाना–और अग्र्य पंक्तिको पवित्रकरनेवाले ब्राह्मण–ये श्राद्धकी सम्पत्ति हैं अर्थात् इतर श्राद्धकी सामग्रियोंसे ये मुख्यहैं २५५ ॥

दर्भाःपवित्रंपूर्वाह्णोहविष्याणिचसर्वशः। पवित्रंयच्चपूर्वोक्तंविज्ञेयाहव्यसंपदः २५६॥

प० । दर्भाः पवित्रं पूर्वाह्णः हविष्याणि च सर्वशः पवित्रं यत् च पूर्वोक्तं विज्ञेयाः हव्यसंपदः ॥

यो० । दर्भाः – पवित्रं (मंत्राः) पूर्वाह्णः चपुनः सर्वशः हविष्याणि – चपुनः यत् पूर्वोक्तं पवित्रं तत् एताः हव्यसंपदः विज्ञेयाःविद्वद्भिरितिशेषः ॥

भा० । ता० । कुशा–मंत्र–पूर्वाह्णकाल–और संपूर्ण हविष्य–और जो पहिले पवित्र कह आयेहैं वह ये हव्य (दैवकर्म) की संपदाहैं २५६ ॥

मुन्यन्नानिपयःसोमोमांसंयच्चानुपस्कृतम्। अक्षारलवणंचैवप्रकृत्याहविरुच्यते २५७॥

प० । मुन्यन्नानि पयः सोमः मांसं यत् च अनुपस्कृतम् अक्षारलवणं च एवं प्रकृत्या हविः उच्यते ॥

यो० । मुन्यन्नानि (नीवारादीनि) पयः (दुग्धं) – सोमः (सोमलतारसः) चपुनः यत् अनुपस्कृतं (अविकृतं) मांसं अर्थात् दुर्गंधरहितं – अक्षारलवणं (अकृत्रिमलवणंसैंधवादि) एतत्सर्वं प्रकृत्या हविः उच्यते ॥

भा० । ता० । मुनियोंके नीवार आदि अन्न–दूध–सोमलताका रस–जो विकारको प्राप्त न हुआ हो वह मांस–अक्षारलवण (खारसे भिन्न लवण) ये मनु आदिने स्वभावसे हवि कहीहैं २५७ ॥

विसृज्यब्राह्मणांस्तांस्तुनियतोवाग्यतःशुचिः।
दक्षिणांदिशमाकांक्षन्याचेतेमान्वरान्पितॄन् २५८॥

प० । विसृज्य ब्राह्मणान् तान् तु नियतः वाग्यतः शुचिः दक्षिणां दिशं आकांक्षन् याचेत इमान् वरान् पितॄन् ॥

यो० । तान् ब्राह्मणान् विसृज्य नियतः वाग्यतः शुचिः दक्षिणां दिशं आकांक्षन्सन् पितॄन् (पितृभ्यः) इमान् वरान् याचेत ॥

भा० । ता० । उन ब्राह्मणोंको विसर्जन (विदा) करके मनको एकाग्र और मौन धारणकरके शुद्धहोकर दक्षिण दिशाको देखता हुआ पितरोंसे इन वरोंकी याचनाकरे २५८ ॥

दातारोनोऽभिवर्द्धन्तांवेदाःसंततिरेवच।श्रद्धाचनोमाव्यगमद्बहुदेयंचनोऽस्त्विति २५९

प० । दातारः नः अभिवर्द्धन्तां वेदाः संततिः एव च श्रद्धा च नः मा व्यगमत् बहुदेयं च नः अस्तु इति ॥

यो० । नः (अस्माकं) कुले दातारः वेदाः अभिवर्द्धन्तां चपुनः संततिः एव अभिवर्द्धन्ताम् चपुनः नः श्रद्धा माव्यगमत् चपुनः नः बहुदेयंअस्तु – इति (इमान्) वरान् पितृभ्यः याचेत ॥

भा० । ता० । हमारे कुलमें दाताओंकी और पठनपाठनसे वेद और सन्तानकी वृद्धिहो–हमारी श्रद्धा कभी न जाय और बहुतदेनेको हमें मिले इनवरोंको पितरों से मांगे २५६ ॥

एवंनिर्वपणंकृत्वापिण्डांस्तांस्तदनन्तरम् । गांविप्रमजमग्निंवाप्राशयेदप्सुवाक्षिपेत् २६० ॥

प० । एवं निर्वपणं कृत्वा पिंडान् तान् तदनन्तरम् गां विप्रं अजं अग्निं वा प्राशयेत् अप्सु वा क्षिपेत् ॥

यो० । एवं पिंडानां निर्वपणं कृत्वा तदनन्तरं तान पिंडान् गां- विप्रं – अजं वा अग्निं प्राशयेत् वा अप्सु क्षिपेत ॥

भा० । ता० । इस उक्तरीति से पिंडदानकरने के अनन्तर उनपिंडों को गौ–ब्राह्मण–अज–अग्नि–इनको खवादे अथवा जलमें फेंकदे २६० ॥

पिण्डनिर्वपणंकेचित्पुरस्तादेवकुर्वते । वयोभिःखादयन्त्यन्येप्रक्षिपन्त्यनलेऽप्सुवा २६१

प० । पिंडनिर्वपणं केचित् पुरस्तात् एव कुर्वते वयोभिः खादयन्ति अन्ये प्रक्षिपन्ति अनले अप्सु वा ॥

यो० । केचित् (पंडिताः) पिंडनिर्वपणं (पिंडदानं) पुरस्तात् (ब्राह्मणभोजनानन्तरं) कुर्वते – अन्ये वयोभिः खाद यन्ति अनले (अग्नौ) अप्सु प्रक्षिपन्ति ॥

भा० । ता० । कोई आचार्य ब्राह्मणों के भोजन के अनन्तर पिंडकादान करते हैं और अन्य आचार्य पक्षियोंको खिलातेहैं अथवा अग्नि वा जलमें गेरदेते हैं इनपिंडों का पक्षियों को भोजनकराने और अग्नि वा जलमें गेरनेमें अपनी इच्छाकेअनुसार विकल्प समझना २६१ ॥

पतिव्रताधर्मपत्नीपितृपूजनतत्परा । मध्यमंतुततःपिण्डमद्यात्सम्यक्सुतार्थिनी २६२॥

प० । पतिव्रता धर्मपत्नी पितृपूजनतत्परा मध्यमं तु ततः पिंडं अद्यात् सम्यक् सुतार्थिनी ॥

यो० । पतिव्रता – पितृपूजनतत्परा सम्यक्सुतार्थिनी धर्मपत्नी ततः (तेषांमध्ये) मध्यमं पिंडं अद्यात् ॥

भा० । पतिवृता और पितरोंके पूजनमेंतत्पर और पुत्रकी जिसे इच्छाहो ऐसीधर्मपत्नी उनमें से मध्यम पिंडका भलीप्रकार (प्रसन्नहोकर) भक्षणकरे ॥

ता० । धर्म अर्थ–कामों में पतिही मुझे सेवा करनेयोग्य है यह जिसकाव्रतहो उसे पतिव्रता कहतेहैं और श्राद्ध के कर्मोंमें श्रद्धावाली अपने वर्णकी जोहो उसे धर्मपत्नीकहतेहैं और पुत्रकी जिसे इच्छाहो–उनपिंडों के मध्यमेंसे मध्यम पिंडको भलीप्रकार भक्षणकरे और उससमय यह मंत्र (सम्यगाधत्तपितरोगर्भम्) पढ़े २६२ ॥

आयुष्मंतंसुतंसूतेयशोमेधासमन्वितम् । धनवंतंप्रजावंतंसात्विकंधार्मिकंतथा २६३॥

प० । आयुष्मन्तं सुतं सूते यशोमेधासमन्वितं धनवंतं प्रजावंतं सात्विकं धार्मिकं तथा ॥

यो० । सा पतिव्रता आयुष्मंतं यशोमेधासमन्वितं – धनवंतं – प्रजावंतं – सात्विकं – तथा धार्मिकं सुतं सूते (जनयति)

भा० । ता० । अवस्था–यश–बुद्धि–धन–प्रजा–इनवाले और सत्वगुणी और धर्मशीलपुत्र को वह पतिवृता स्त्री उस पिंडके भक्षणसे पैदाकरतीहै २६३ ॥

प्रक्षाल्यहस्तावाचम्यज्ञातिप्रायंप्रकल्पयेत् ।
ज्ञातिभ्यःसत्कृतंदत्वाबान्धवानपिभोजयेत् २६४ ॥

प० । प्रक्षाल्य हस्तौ आचम्य ज्ञातिप्रायं प्रकल्पयेत् ज्ञातिभ्यः सत्कृतं दत्वा बांधवान् अपि भोजयेत् ॥

यो० । हस्तौ प्रक्षाल्य आचम्य ज्ञातिप्रायं (अन्नं) प्रकल्पयेत्—सत्कृतं अन्नं ज्ञातिभ्यः दत्वा बांधवान् अपि भोजयेत् ॥

भा० । ता० । फिर हाथ धोकर और आचमनकरके अन्नको ज्ञाति के आधीन करदे अर्थात् ज्ञातियों के मनुष्य जिमावे—और सत्कारसे ज्ञातियोंको अन्नदेकर माता के पक्षके बंधुओंको भी जिमावे २६४ ॥

उच्छेषणंतुतत्तिष्ठेद्यावद्विप्राविसर्जिताः । ततोगृहबलिंकुर्यादितिधर्मोव्यवस्थितः२६५

प० । उच्छेषणं तु तत् तिष्ठेत् यावत् विप्राः विसर्जिताः ततः गृहबलिं कुर्यात् इति धर्मः व्यवस्थितः ॥

यो० । यावत् विप्राः विसर्जिताः तावत् तत् उच्छेषणं तिष्ठेत् ततः गृहबलिं (बलिवैश्वदेवं) कुर्यात् इति धर्मः व्यवस्थितः ॥

भा० । इनने उच्छिष्ट का मार्जन न करे जबतक ब्राह्मणोंका विसर्जन न करे फिर बलिवैश्वदेवआदिकरे—यहधर्म की व्यवस्थाहै ॥

ता० । वह ब्राह्मणों को उच्छिष्ट तबतक टिकारहै जबतक ब्राह्मणोंका विसर्जन न करै और ब्राह्मणों के जानेपर मार्जन (स्वच्छ) करे—फिर श्राद्धकर्मकी समाप्तिहोनेपर बलिवैश्वदेव होम कर्म—नित्यश्राद्ध अतिथिभोजन—इनकोकरे—यही धर्म की व्यवस्था है इसमें बलिशब्द दिखाने मात्रहै क्योंकि मत्स्यपुराणमें यहलिखा है कि श्राद्धकोनिवृत्तकरके और मंत्रोंकावेत्ता (ज्ञाता) अग्निका पर्युक्षणकरके बलिवैश्वदेव और नित्यकी विधिकरे २६५ ॥

हविर्यच्चिररात्राययच्चानन्त्यायकल्प्यते।पितृभ्योविधिवद्दत्तंतत्प्रवक्ष्याम्यशेषतः२६६॥

प० । हविः यत् चिररात्राय यत् च आनंत्याय कल्प्यते पितृभ्यः विधिवत् दत्तं तत् प्रवक्ष्यामि अशेषतः ॥

यो० । पितृभ्यः विधिवद्दत्तं यत् हविः चिररात्राय चपुनः यत् आनंत्याय कल्प्यते (सम्पद्यते) तत् (अहं) अशेषतः प्रवक्ष्यामि ॥

भा० । विधिसे पितरों को दीहुई जो हवि चिरकाल और पितरों की अनंत तृप्तिके लिये होतीहै उस सबको कहताहूं ॥

ता० । जिन अन्नोंसे पितर तृप्तहों यह पहिले कह भी आये हैं तथा सुखसे अपने शिष्यों के ज्ञानकेलिये फिर कहतेहैं चिररात्राय यह अव्यय चिरकाल वाचिहै विधिसे पितरोंको दीहुईहवि चिरकालतक और अनंत तृप्तिके अर्थ होतीहै उस संपूर्ण हविको कहताहूं २६६ ॥

---

१ निवृत्यप्रांतपत्त्यर्थं पर्युक्ष्याग्निंचमंत्रवित् वैश्वदेवंप्रकुर्वीत नित्यकंविधिमेवच ॥
२ चिरायचिररात्राय चिरस्याद्याश्चिरार्थकाः ॥

तिलैर्व्रीहियवैर्माषैरद्भिर्मूलफलेनवा । दत्तेनमासंतृप्यन्तिविधिवत्पितरोनृणाम् २६७॥

प० । तिलैः व्रीहियवैः माषैः अद्भिः मूलफलेन वा दत्तेन मासं तृप्यंति विधिवत् पितरः नृणाम् ॥

यो० । तिलैः व्रीहियवैः माषैः अद्भिः दत्तैः वा विधिवद्दत्तेन मूलफलेन नृणां पितरः मासं तृप्यंति ॥

भा० । ता० । तिल–चावल–जौ–काले उड़द–जल–मूल–वा फल–इनमें से कोई सेके विधिपूर्वक श्रद्धा से दिये से मनुष्यों के पितर एक महीनाभर तृप्तहोते हैं–और यहां उड़द काले लेने क्योंकि वायुपुराणमें कालेउड़द–तिल–जौ और चावल इनको श्राद्ध में श्रेष्ठ कहा है २६७ ॥

द्वौमासौमत्स्यमांसेनत्रीन्मासान्हारिणेनतु । औरभ्रेणाथचतुरःशाकुनेनाथपञ्चवै२६८॥

प० । द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन त्रीन् मासान् हारिणेन तु औरभ्रेण अथ चतुरः शाकुनेन अथ पंच वै ॥

यो० । मत्स्यमांसेन द्वौ मासौ – तुपुनः हारिणेनमांसेन त्रीन् मासान् – अथ औरभ्रेणमांसेन चतुरः मासान् – शाकुनेन मांसेन पंचमासान् (पितरः तृप्यंति) ॥

भा० । ता० । पाठीन आदि मत्स्यों के मांससे दो महीने–हिरणके मांससे तीन–और मेष (मींढ़ा) के मांस से चार और द्विजातियों के भक्षण योग्य पक्षियोंके पांच–महीने तक मनुष्यों के पितर तृप्तरहते हैं २६८ ॥

षण्मासांश्छागमांसेनपार्षतेनचसप्तवै । अष्टावेणस्यमांसेनरौरवेणनवैवतु २६९ ॥

प० । षण्मासान् छागमांसेन पार्षतेन च सप्त वै अष्टौ एणस्य मांसेन रौरवेण नव एव तु ॥

यो० । छागमांसेन षण्मासान् तुपुनः पार्षतेन मांसेन सप्तमासान् – एणस्य मांसेन – अष्टौमासान् – रौरवेण मांसेन नवमासान् – पितरः तृप्यंति ॥

भा० । ता० । छाग (बकरी) के मांस से छः महीने–और पृषत (चितेरा) मृग के मांस से सात–और एण के मांससे आठमहीने और रुरुके मांससे नौ महीने तक पितर तृप्त रहते हैं एण रुरु हारिण ये तीनों मृगके ही भेद हैं २६९ ॥

दशमासांस्तुतृप्यन्तिवराहमहिषामिषैः । शशकूर्मयोस्तुमांसेनमासानेकादशैवतु २७०

प० । दश मासान् तु तृप्यंति वराहमहिषामिषैः शशकूर्मयोः तु मांसेन मासान् एकादश एव तु ॥

यो० । तुपुनः वराहमहिषामिषैः दशमासान् – तुपुनः शशकूर्मयोः मांसेन एकादशमासान् एव – पितरः तृप्यंति ॥

भा० । ता० । वनकासूकर महिष (भैंसा) इनके मांससे दश महीने तक–और शश (खरा वा खरगोस) कछुआ इनके मांस से ग्यारह महीनेतक–पितर तृप्तहोते हैं २७० ॥

---

१ कृष्णामाषास्तिलाश्चैव श्रेष्ठास्युर्यवशालयः ॥

संवत्सरंतुगव्येनपयसापायसेनच । वार्ध्रीणसस्यमांसेनतृप्तिर्द्वादशवार्षिकी २७१ ॥

प० । संवत्सरं तु गव्येन पयसा पायसेन च वार्ध्रीणसस्य मांसेन तृप्तिः द्वादशवार्षिकी ॥

यो० । गव्येन पयसा तुपुनः पायसेन संवत्सरं तृप्यन्ति वार्ध्रीणसस्य मांसेन द्वादशवार्षिकी तृप्तिः भवति ॥

भा० । गौके दूध और गौके दूध की खीर से एक वर्षतक और वार्ध्रीणस के मांस से बारह वर्षतक तृप्ति होतीहै ॥

ता० । गौके दूध—और गौके दूधकी खीरसे एक वर्षतक तृप्ति होतीहै और वार्ध्रीणसके मांस से बारह वर्षतक तृप्तिहोती है और निगममें (वेद) में वार्ध्रीणस उसे कहा है कि यज्ञकरनेवाले पितरों के कर्म्म में वार्ध्रीणस उसे कहतेहैं जिसके जलपीने के समय दोनों कान और जिह्वा ये तीनों जल का स्पर्श करतेहों और इन्द्रिय जिसकी निर्बलहों और शुक्ल जिसका रंग हो—वृद्ध प्रजापति (अनेक सन्तानवाला हो) २७१ ॥

कालशाकंमहाशल्काःखड्गलोहामिषंमधु।आनन्त्यायैवकल्प्यन्तेमुन्यन्नानिचसर्वशः २७२

प० । कालशाकं महाशल्काः खड्गलोहामिषं मधु आनन्त्याय एव कल्प्यन्ते मुन्यन्नानि च सर्वशः ॥

यो० । कालशाकं महाशल्काः खड्गलोहामिषं — मधु — सर्वशः (सर्वाणि) मुन्यन्नानि एते आनंत्याय एव कल्प्यन्ते — (सम्पद्यन्ते) ॥

भा० । कालशाक—महाशल्क—गैंडा और लालछाग का मांस—सहत—और सम्पूर्ण नीवार आदि मुनियों के अन्न ये अनंत तृप्ति करतेहैं ॥

ता० । कालशाकहै नाम जिसका ऐसा शाक और महाशल्क (मत्स्य) क्योंकि इसवचनसे महाशल्क मत्स्यको कहतेहैं खड्ग (गैंडा) और लोहित (लाल) वर्णका छाग (बकरा) इस पैठीनसि के वचनसे लालछागकोही लोहित कहतेहैं मधु (सहत) और नीवार आदि सम्पूर्ण मुनियों के अन्न ये सम्पूर्ण अनंत तृप्ति करतेहैं २७२ ॥

यत्किंचिन्मधुनामिश्रंप्रदद्यात्तुत्रयोदशीम् । तदप्यक्षयमेवस्याद्वर्षासुचमघासुच २७३

प० । यत् किंचित् मधुना मिश्रं प्रदद्यात् तु त्रयोदशीं तत् अपि अक्षयं एव स्यात् वर्षासु च मघासु च ॥

यो० । यः मधुना मिश्रं यत् किंचित् त्रयोदशीं (त्रयोदश्यां) वर्षासु चपुनः मघासु प्रदद्यात तत् अपि अक्षयं एव स्यात ॥

भा० । ता० । जो पुरुष—सहत जिसमें मिलाहो ऐसा अन्न त्रयोदशीको वर्षा के समयमें और मघाकी त्रयोदशी में—देताहै वह अक्षयहोताहै २७३ ॥

---

१ त्रिपिबंत्विन्द्रियक्षीणं श्वेतंवृद्धमजापतिं वार्ध्रीणसंतुतंप्राहुः याज्ञिकाःपितृकर्म्मणि ॥
२ महाशल्किनो मत्स्याः ॥
३ सर्वलोहेनानंत्यं ॥

अपिनःसकुलेजायाद्योनोदद्यात्त्रयोदशीम् । पायसंमधुसर्पिर्भ्यांप्राक्छायेकुञ्जरस्यच २७४

प० । अपि नः सः कुले जायात् यः नः दद्यात् त्रयोदशीं पायसं मधुसर्पिर्भ्यां प्राक्छाये कुंजरस्य च ॥

यो० । नः कुले अपि सःजायात यः नः (अस्माकं) त्रयोदशीं (त्रयोदश्यां) चपुनः कुंजरस्य प्राक्छाये मधुसर्पिर्भ्यांसह पायसं दद्यात ॥

भा० । हमारे कुलमें भी वह मनुष्य पैदाहो जो मघाकी त्रयोदशी और गजच्छायाके दिन मधु और घी सहित पायसदे ॥

ता० । हमारेभी कुलमें ऐसा मनुष्य पैदाहो जो हमको मघायुक्त भाद्रपद की त्रयोदशी के दिन और अन्यदिनमें भी हस्तकी छाया जब पूर्व दिशाको गई हो (गजच्छाया) उसदिन मधु और घीसहित पायस (खीर) दे—जो वर्षाकालमें मघायुक्त त्रयोदशी पहिले कहआये हैं वही यहांपर लेनी और वर्षाकालमें भी भाद्रपदके कृष्णपक्षकी त्रयोदशीही लेनी क्योंकि शंखऋषिने यह कहाहै कि भाद्रपद पूर्णिमा जब बीतजाय और मघा युक्त त्रयोदशी आवै उस दिन मधु और पायससे श्राद्धकरै—और त्रयोदशी और गजच्छाया एक बार नहींहोते क्योंकि विष्णुने इस वचनसे दोनों पृथक् २ लियेहैं कि हमारे कुल में ऐसा उत्तम मनुष्य पैदाहो जो वर्षाकाल में कृष्णपक्षकी त्रयोदशी (आश्विनवदी १३) को वा संपूर्ण कातिकमें वा गजच्छायामें मधुसे मिले पायससे श्राद्धकरै २७४ ॥

यद्यद्ददातिविधिवत्सम्यक्श्रद्धासमन्वितः।तत्तत्पितॄणांभवतिपरत्रानन्तमक्षयम् २७५

प० । यत् यत् ददाति विधिवत् सम्यक्श्रद्धासमन्वितः तत् तत् पितॄणां भवति परत्र अनंतं अक्षयम् ॥

यो० । सम्यक्श्रद्धासमन्वितः पुरुषः यत् यत् विधिवद्ददाति तत् तत् पितॄणां परत्र (परलोके) अनंतं अक्षयं भवति ॥

भा० । ता० । भलीप्रकार श्रद्धावाला मनुष्य जो २ पदार्थ पितरों को देताहै वह २ पदार्थ परलोक में अनंत—और अक्षय (अविनाशि) पितरों की तृप्तिकेलिये होताहै इससे उक्त फलका अभिलाषी मनुष्य श्रद्धासे ही दे २७५ ॥

कृष्णपक्षेदशम्यादौवर्जयित्वाचतुर्दशीम्।श्राद्धेप्रशस्तास्तिथयोयथैतानतथेतराः२७६

प० । कृष्णपक्षे दशम्यादौ वर्जयित्वा चतुर्दशीं श्राद्धे प्रशस्ताः तिथयः यथा एताः न तथा इतराः ॥

यो० । कृष्णपक्षे दशम्यादौ चतुर्दशीं वर्जयित्वा यथा एताः तिथयः श्राद्धे प्रशस्ताः भवंति तथा इतराः (प्रतिपदादयः) न (भवंति) ॥

---

१ प्रौष्ठपद्यामतीतायां मघायुक्तांत्रयोदशीं प्राप्यश्राद्धंहिकर्त्तव्यं मधुनापायसेनच ॥

२ अपिजायेतसोस्माकं कुलेकश्चिन्नरोत्तमः—प्रावृट्कालेसितेपक्षे त्रयोदश्यांसमाहितः मधुप्लुतेनयःश्राद्धं पायसेन समाचरेत् कार्त्तिकंसकलंवापि प्राक्छाये कुंजरस्यच ॥

भा । ता० । कृष्णपक्ष में चतुर्दशी को छोड़कर ये दशमी आदि ५ तिथि जैसी श्रेष्ठ हैं ऐसी इतर (प्रतिपदा आदि) नहीं हैं २७६ ॥

युक्षुकुर्वन्दिनर्क्षेषुसर्वान्कामान्समश्नुते । अयुक्षुतुपितॄन्सर्वान्प्रजांप्राप्नोतिपुष्कलाम् २७७

प० । युक्षु कुर्वन् दिनर्क्षेषु सर्वान् कामान् समश्नुते अयुक्षु तु पितॄन् सर्वान् प्रजां प्राप्नोति पुष्कलाम् ॥

यो० । युक्षु दिनर्क्षेषु (श्राद्धं) कुर्वन् सर्वान् कामान् समश्नुते — तुपुनः अयुक्षु (दिनर्क्षेषु) सर्वान् पितॄन् (श्राद्धादिना पूजयन्) पुष्कलां प्रजां प्राप्नोति ॥

भा० । ता० । द्वितीया चतुर्थी आदि युग्म तिथियोंमें और भरणी रोहिणी आदि युग्म नक्षत्रोंमें श्राद्धको जो करताहै वह संपूर्ण कामनाओंको प्राप्तहोताहै और प्रतिपदा तृतीया आदि अयुग्म तिथियों और अश्विनी कृत्तिका आदि अयुग्म नक्षत्रोंमें जो संपूर्ण पितरोंको पूजताहै वह धन और विद्यावाली संतानको प्राप्तहोताहै २७७ ॥

यथाचैवापरःपक्षःपूर्वपक्षाद्विशिष्यते । तथाश्राद्धस्यपूर्वाह्णादपराह्णोविशिष्यते २७८ ॥

प० । यथा च एव अपरः पक्षः पूर्वपक्षात् विशिष्यते तथा श्राद्धस्य पूर्वाह्णात् अपराह्णः विशिष्यते ॥

यो० । पूर्व (शुक्ल) पक्षात् अपरः (कृष्णः) पक्षः (श्राद्धे) विशिष्यते तथा पूर्वाह्णात् अपराह्णः श्राद्धस्य विशिष्यते — श्राद्धसम्बन्धिविशिष्टफलदोभवतीत्यर्थः ॥

भा० । जैसे शुक्लपक्ष से कृष्णपक्ष श्राद्धमें श्रेष्ठ है इसीप्रकार पूर्वाह्ण से अपराह्ण काल भी श्राद्धके अधिकफल देनेवालाहोताहै ॥

ता० । जैसे कृष्णपक्ष शुक्लपक्षसे श्राद्धमें अधिक फलदेने वाला होताहै इसीप्रकार पहिले आधे दिनसे पिछला आधा दिनभी श्राद्धके अधिक फलका दाताहोताहै—यह अपरपक्षसे कृष्णपक्ष और पूर्वपक्षसे शुक्लपक्ष इसे ज्योतिःशास्त्रसे लेतेहैं कि चैत्रके शुक्लपक्षसे मासहोते हैं[1]—अर्थात् पूर्वाह्ण में भी श्राद्धका फल थोड़ा बहुतहोता है—यद्यपि शुक्लपक्षसे कृष्णपक्षकी अधिकता नहीं कही इससे दृष्टांत नहींहोसक्ता तथापि दशमी आदि कृष्णपक्षकी तिथियोंमें श्राद्धकी उत्तमता कहनेसे कृष्णपक्षकी श्रेष्ठता कहीहै इससे दृष्टांत होसक्ताहै २७८ ॥

प्राचीनावीतिनासम्यगपसव्यमतन्द्रिणा।पित्र्यमानिधनात्कार्यंविधिवद्दर्भपाणिना २७९

प० । प्राचीनावीतिना सम्यक् अपसव्यं अतन्द्रिणा पित्र्यं आनिधनात् कार्यं विधिवत् दर्भपाणिना ॥

यो० । प्राचीनावीतिना (दक्षिणस्कंधस्थितयज्ञोपवीतेन) अतन्द्रिणा दर्भपाणिना पुरुषेण पित्र्यं कार्यं आनिधनात् अपसव्यं (यथास्यात्तथा) विधिवत् सम्यक् कार्यम् ॥

भा० । ता० । दाहिने कंधेपर यज्ञोपवीत रखकर और कुशाको हाथमें लेकर अपसव्य होकर पितृतीर्थसे शास्त्रोक्त रीतिसे जीवन पर्यंत पितरोंका कर्मकरना २७९ ॥

---

१ चैत्रसिताद्यामासाः ॥

रात्रौश्राद्धंनकुर्वीतराक्षसीकीर्तिताहिसा । संध्ययोरुभयोश्चैवसूर्येचैवाचिरोदिते २८० ॥

प० । रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत राक्षसी कीर्तिता हि सा संध्ययोः उभयोः च एव सूर्ये च एव अचिरोदिते ॥

यो० । हि (यतः) सा राक्षसी कीर्तिता अतः रात्रौ—चपुनः उभयोः संध्ययोः चपुनः अचिरोदिते सूर्ये श्राद्धं न कुर्वीत ॥

भा० । रात्रीमें श्राद्ध न करै क्योंकि वहराक्षसीकहीहै और दोनोंसंध्याओंमें और जब अचि-रोदितसूर्यहो (प्रभात ६ घटीदिनचढ़ेतक) तब भी श्राद्ध न करै ॥

ता० । रात्रिमें श्राद्धको न करै क्योंकि वह राक्षसी इससे कहीहै कि जैसे राक्षस श्राद्धको नष्टकरतेहैं इसीप्रकार उसमेंभी किया श्राद्धनष्टहोजाताहै और दोनों संध्याओंमें भी न करै और अचिरोदित सूर्यके समय भी न करै अर्थात् तीन मुहूर्त्ततक प्रातःकालही यह समय लियाहै क्योंकि विष्णुपुराणमें यह लिखाहै कि उदय रेखासे जब तीन मुहूर्त सूर्य जा चुके वह दिनका पांचवांभाग प्रातःकाल कहाहै—इसमें कोई यह शंका करतेहैं कि श्राद्धका समय तो अपराह्ण है प्रातःकाल नहीं है इससे प्रातःकाल पायाहीनहींथा फिर निषेध क्योंकिया—यह निषेधनहीं है किंतु पर्युदास हैं अर्थात् अनुयाजसे इतरजातियों में येयजामहे इस मंत्र के समान रात्रिआदि निषिद्धकाल से इतरकालमें श्राद्धकरै क्योंकि निषेधरागसे प्राप्तकाअथवा विधिसे प्राप्तकाहोता है और यहां राग से प्राप्तनहीं है—राग से नित्यदर्श (३० का) श्राद्धहीप्राप्त है और विधि से प्राप्तका निषेधहोता तो षोडशी के ग्रहण और न ग्रहणके समान विकल्पहोता अर्थात् जैसे वहां किसीकामतयहहै कि अतिरात्रमें षोडशीको ग्रहणकरै और किसी का मत यहहै कि अतिरात्रमें षोडशीको ग्रहण न करै तैसेही यहांपरभी विकल्पहोता—और अपराह्णमें श्राद्धकी विधि प्रशंसा के लिये है इसीसे पहिले कहआये हैं कि श्राद्ध में पूर्वाह्ण से अपराह्ण श्रेष्ठहै २८० ॥

अनेनविधिनाश्राद्धंत्रिरब्दस्येहनिर्वपेत् । हेमन्तग्रीष्मवर्षासुपांचयज्ञिकमन्वहम् २८१ ॥

प० । अनेन विधिना श्राद्धं त्रिः अब्दस्य इह निर्वपेत् हेमंतग्रीष्मवर्षासु पांचयज्ञिकं अन्वहं ॥

यो० । अनेन विधिना अब्दस्य त्रिः (त्रिवारं) हेमंतग्रीष्मवर्षासु श्राद्धं निर्वपेत् पांचयज्ञिकं अन्वहं निर्वपेत् ॥

भा० । ता० । पहिले प्रतिमास में श्राद्ध का विधान कहआये हैं वह न होसके इसविधि से एकवर्ष में तीनबार हेमन्त ग्रीष्म और वर्षामें जब कुम्भ वृष कन्यापर सूर्य आवे तब श्राद्धकरै और पंचयज्ञोंके अन्तर्गत कर्मको तो प्रतिदिनकरै और चारमहीने की एकऋतुहोती है और उक्त तीनऋतुओं के समूह वर्षकोभी एकऋतु कहतेहैं इस पक्षको मानकर यहकहा है २८१ ॥

१ रेखाप्रभृत्यथादित्ये त्रिमुहूर्तंगतेरवौ प्रातस्ततःस्मृतःकालो भागःसोऽह्नस्तुपंचमः ॥
२ अतिरात्रेषोडशिनंगृह्णाति नातिरात्रेषोडशिनंगृह्णाति ॥
३ यथाश्राद्धस्यपूर्वाह्णादपराह्णोविशिष्यते ॥
४ चतुर्भिर्मासैः ऋतुरेकः एकस्तुऋतुः संवत्सरः ॥

नपैतृयज्ञियोहोमोलौकिकेऽग्नौविधीयते । नदर्शेनविनाश्राद्धमाहिताग्नेर्द्विजन्मनः २८२

प० । न पैतृयज्ञियः होमः लौकिके अग्नौ विधीयते न दर्शेन विना श्राद्धं आहिताग्नेः द्विजन्मनः ॥

यो० । आहिताग्नेः द्विजन्मनः पैतृयज्ञियः होमः दर्शेन विनाश्राद्धं लौकिके (श्रौतस्मार्तभिन्ने) अग्नौ न विधीयते (शास्त्रेणेतिशेषः) ॥

भा० । लौकिक अग्निमें पितरोंके निमित्त यज्ञकाहोम नहींकरना और अग्निहोत्र करनेवाले द्विजातियों को अमावस से अन्यदिन में श्राद्ध भी नहींकरना ॥

ता० । पितरोंकी यज्ञका अंग जो होम (अग्नि—सोम—यम—इनको स्वाहादेना) वह श्रुति और स्मृति में कहींसे भिन्न लौकिकअग्निमें शास्त्र ने करना नहींकहाहै जिससे लौकिकअग्निमें उक्त होम न करै और जो अग्निहोत्रीनहो वह ब्राह्मणकेहाथमेंही आहुतिदेदे—और अग्निहोत्री द्विजाति तो अमावस्या से भिन्न दशमीआदि तिथियों में श्राद्ध न करै—और मृतक के दिन का श्राद्ध तो कृष्णपक्षकी इतर तिथियोंमें भी निषिद्ध नहीं है २८२ ॥

यदेवतर्पयत्यद्भिःपितॄन्स्नात्वाद्विजोत्तमः । तेनैवकृत्स्नमाप्नोतिपितृयज्ञक्रियाफलम् २८३

प० । यत् एव तर्पयति अद्भिः पितॄन् स्नात्वा द्विजोत्तमः तेन एव कृत्स्नं आप्नोति पितृयज्ञक्रियाफलम् ॥

यो० । द्विजोत्तमः स्नात्वा यत् अद्भिः पितॄन तर्पयति — तेन एव (तर्पणेनैव) कृत्स्नं पितृयज्ञक्रियाफलं आप्नोति (लभते) ॥

भा० । ता० । स्नानकरके जो द्विजोंमें उत्तम (ब्राह्मणआदि तीनोंवर्ण) जलोंसे जो पितरों को तृप्तकरताहै उस तर्पणसेही पितृयज्ञकर्म के सम्पूर्ण फलको प्राप्तहोताहै २८३ ॥

वसून्वदन्तितुपितॄन्रुद्रांश्चैवपितामहान् ।
प्रपितामहांस्तथादित्याञ्छ्रुतिरेषासनातनी २८४ ॥

प० । वसून् वदंति तु पितॄन् रुद्रान् च एव पितामहान् प्रपितामहान् तथा आदित्यान् श्रुतिः एषा सनातनी ॥

यो० । तुपुनः पितॄन — वसून् — चपुनः पितामहान रुद्रान् तथा पितामहान आदित्यान (मन्वादयः) वदंति एषा श्रुतिः सनातनी अस्तीतिशेषः ॥

भा० । पितरों (पिता) का वसुदेवतारूप—और पितामहोंको रुद्रदेवतारूप और प्रपितामहों को आदित्य देवतारूप मनुआदि कहतेहैं यह सनातनी (सदैवकी) श्रुति है ॥

ता० । पितरोंकोवसुदेवतारूप और पितामहोंको रुद्रदेवतारूप और प्रपितामहोंको आदित्य देवतारूप मनुआदि कहतेहैं अर्थात् श्राद्ध में पिताआदि का वसुआदि रूपसे ध्यानकरै यह विधान किया है क्योंकि यदि पिताआदिरूपहैं ही तो फिर उनको वसुआदि बनाने का क्या प्रयोजन होता—इसीसे पैठीनसि ने[1] कहाहै कि जो इसप्रकार पितरोंको पूजता है उसपर वसु रुद्र

---

१ यः एवंविद्वान्पितॄन् यजते वसवोरुद्राआदित्याश्चास्यप्रीताभवंति ॥

आदित्य प्रसन्न होतेहैं—मेधातिथि और गोविंदराज तो यहकहतेहैं कि पितरोंके द्वेष से अथवा नास्तिकता से जो पितरों के कर्म में प्रवृत्त नहींहोता उसके प्रति पितरों की देवतारूप से यह स्तुति का वचनहै २८४ ॥

विघसाशीभवेन्नित्यंनित्यंवामृतभोजनः । विघसोभुक्तशेषंतुयज्ञशेषंतथामृतम् २८५ ॥

प० । विघसाशी भवेत् नित्यं नित्यं वा अमृतभोजनः विघसः भुक्तशेषं तु यज्ञशेषं तथा अमृतम् ॥

यो० । पुरुषः नित्यं विघसाशी—वा नित्यं अमृतभोजनः भवेत् (ब्राह्मणानां) भुक्तशेषं विघसः तथा यज्ञशेषं अमृतं उच्यते ॥

भा० । मनुष्य सदैव विघस (श्राद्धमें जिमाये हुये ब्राह्मणोंके भोजनसे शेष) के और अमृत (दर्श आदि यज्ञके शेष) के भोजनकरनेवाला रहै—क्योंकि ब्राह्मणोंके भोजनसे शेषको विघस और दर्श आदि यज्ञके शेषको अमृत मनु आदि कहतेहैं ॥

ता० । सदैवकाल पुरुष विघसका अथवा अमृत का भोक्ताहै और ब्राह्मण अतिथिआदि के भोजनका जो शेष उसे विघस और दर्शआदि यज्ञका जो शेष उसे अमृत कहतेहैं—यद्यपि यह सामान्यसे ब्राह्मणोंके भोजनका शेष कहाहै तथापि श्राद्धमें भोक्ता ब्राह्मणोंके भोजनका शेष समझना क्योंकि अन्य स्मृतियोंमें यह लिखाहै कि अतिथियोंसमेत जो पितरों ने भोजनकिया है उसके शेषको भोजनकरै—और अतिथि आदिके शेष भोजनके करनेको तो (अवशिष्टंतुदंपती) इस वचनसे कहआयेहैं—और उसकोही यज्ञ शेषकी तुल्यता कहकर यह स्तुतिके लिये दुबारा कथनहै यह गोविंदराजका व्याख्यान तो करनेके अयोग्यहै और प्रकरण विरुद्धभी है क्योंकि यह प्रकरण श्राद्धकाहै २८५ ॥

एतद्वोऽभिहितंसर्वंविधानंपाञ्चयज्ञिकम्।द्विजातिमुख्यवृत्तीनांविधानंश्रूयतामिति २८६

इतिमानवेधर्मशास्त्रेभृगुप्रोक्तायांसंहितायांतृतीयोऽध्यायः ३ ॥

प० । एतत् वः अभिहितं सर्वं विधानं पांचयज्ञिकम् द्विजातिमुख्यवृत्तीनाम् विधानं श्रूयताम् इति ॥

यो० । एतत् पांचयज्ञिकं सर्वं विधानं वः(युष्माकं) अभिहितम्—द्विजातिमुख्यवृत्तीनां विधानं इति (चतुर्थाध्यायोक्तं) श्रूयताम्—भवद्भिरितिशेषः ॥

भा० । यह पंचयज्ञकी संपूर्ण विधि तुमको कही अब ब्राह्मणोंकी वृत्तियोंकी विधिसुनो ॥

ता० । यह पांचयज्ञोंकी संपूर्ण विधि तुमको कही—पार्वणसे पहिले कहीहुई भी पांचयज्ञोंका जो समाप्तिमें कथनहै वह पांचयज्ञोंकी श्रेष्ठता जनानेके लियेहै—और मेधातिथि और गोविंदराज तो यह कहतेहैं कि अंतमें पांचयज्ञोंका कथन मंगलके लियेहै—अब द्विजातियोंमें मुख्य जो ब्राह्मण उनकीवृत्ति (जीविका) यों की विधिसुनो यह चौथे अध्यायमें वक्तव्यकी भूमिकाहै २८६ ॥

इतिमन्वर्थभास्करेतृतीयोऽध्यायः ३ ॥

अथचतुर्थोऽध्यायः

चतुर्थमायुषोभागमुषित्वाद्यंगुरौद्विजः । द्वितीयमायुषोभागंकृतदारोगृहेवसेत् १ ॥

प० । चतुर्थं आयुषः भागं उषित्वा आद्यं गुरौ द्विजः द्वितीयं आयुषः भागं कृतदारः गृहे वसेत् ॥

यो० । द्विजः आयुषः आद्यं चतुर्थं भागं गुरौ उषित्वा आयुषः द्वितीयं भागं कृतदारः (सन्) गृहे वसेत् ॥

भा० । अवस्थाके पहिले चौथे भागमें गुरुके यहां द्विज निवासकरके अवस्थाके दूसरे भाग में स्त्रीको विवाहकर घरमें बसें ॥

ता० । अब श्राद्धप्रकरणके अनंतर वृत्तीनांरक्षणंचैव इसग्रंथसे वृत्तियोंकी प्रतिज्ञा प्रकटतासे की और गृहस्थाश्रम वृत्तियोंके आधीनहैं और वे वृत्ति (आजीविका) मनुजी आगे वर्णनकरेंगे इससे प्रथम ब्रह्मचर्य और फिर गृहस्थ उसकी वृत्ति यह दिखानेके लिये ब्रह्मचर्य और गृहस्थके समय का प्रमाण यहां पर कहतेहैं कि अवस्थाके पहिले चौथे भागमें द्विज गुरुके यहां बसकर अर्थात् ब्रह्मचर्य कालकी अवधि तक ब्रह्मचारि रहिकर क्योंकि अवस्थाके प्रमाणका नियम नहीं होनेसे अवस्थाके चौथेभाग का ज्ञान दुर्घटहै इससे यहां चौथेभागसे ब्रह्मचर्य का समय लेना– कदाचित् कोई कहैं कि इस[1] श्रुतिसे पुरुषकी अवस्था सौवर्षकी होतीहै इससे पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचारी होकर गृहस्थीहो–यह ठीक नहीं है क्योंकि मनुजीने पहिले छत्तीस[2] वर्षतक ब्रह्मचर्य कहाहै इससे चारो आश्रमों का समूह उनमें ब्राह्मणों का जन्म से पहिला काल ब्रह्मचर्य का है उस समयमें यथाशक्ति गुरुकुलमें टिककर अवस्था दूसरे चौथेभागमें स्त्रीको विवाह गृहस्थाश्रममें बसे अर्थात् जबतक अपनेदेहमें सामर्थ्यरहै और शुक्ल केश न होयँ उतने समय तक गृहस्थके भोगभोगे यहां पर भी द्वितीय भाग पूर्वोक्त न्यायसे गृहस्थके कालका बोधकही है १ ॥

अद्रोहेणैवभूतानामल्पद्रोहेणवापुनः । यावृत्तिस्तांसमास्थायविप्रोजीवेदनापदि २ ॥

प० । अद्रोहेण एव भूतानां अल्पद्रोहेण वा पुनः या वृत्तिः तां समास्थाय विप्रः जीवेत् अनापदि ॥

यो० । भूतानां अद्रोहेणैव वा अल्पद्रोहेण या वृत्तिः (भवति) तां समास्थाय अनापदि विप्रः जीवेत् ॥

भा० । प्राणियोंके अद्रोहसे अथवा अल्पद्रोहसे जो शिलोञ्छ अयाचित आदि वृत्तीहै उसको करता हुआ ब्राह्मण अनापत्कालमें जीवे ॥

ता० । भूतोंकेअद्रोह(परस्य अपीडा शिलोञ्छयाचितादि)से अथवा अल्पद्रोहसे अर्थात् अद्रोहके असंभवहोनेपर अल्पद्रोहकेद्वारा जो वृत्तिः(जीनेकाउपाय)से भार्या–भृत्य–पंचयज्ञोंकाकरना इनसे युक्त ब्राह्मण अनापत् (स्वस्थता) में जीवे क्योंकि आपत्कालकी विधि दशममेंहोगी और यह

१ शतायुर्वैपुरुषः ॥
२ षट्त्रिंशदाब्दिकंचर्यं गुरौत्रैवेदिकंव्रतं ॥

सामान्य वृत्तीकाउपदेश यज्ञकराना–पढ़ाना–और विशुद्धपुरुषसे प्रतिग्रहलेना इनके भी संग्रहके लियेहै और यदि जो ऋतआदि ब्राह्मणकी वृत्ति चौथेश्लोकमेंकहेंगे वेहीवृत्तिः इसश्लोकसेलेंगे तो संकुचितहोनेसे यथार्थ तात्पर्यकी हानि याजनादि वृत्तियोंको अनधिकारार्थहोना और वृत्तियोंके प्रकरणमें नहीं आना इतनेदोष होजायँगे इसश्लोकमें वृत्तिपदयाजन आदिका भी बोधकहै २ ॥

यात्रामात्रप्रसिद्ध्यर्थंस्वैःकर्मभिरगर्हितैः । अक्लेशेनशरीरस्यकुर्वीतधनसंचयम् ३ ॥

प० । यात्रामात्रप्रसिद्ध्यर्थं स्वैः कर्मभिः अगर्हितैः अक्लेशेन शरीरस्य कुर्वीत धनसंचयं ॥

यो० । (विप्र) अगर्हितैः स्वैः कर्मभिः यात्रामात्रप्रसिद्ध्यर्थं शरीरस्य अक्लेशेन धनसंचयं कुर्वीत ॥

भा० । ता० । ब्राह्मण शास्त्रोक्त अपनीजातीके अनिंदित कर्मोंसे और देहके क्लेशको त्याग कर यात्रामात्रकी प्रसिद्धीकेलिये अर्थात् कुटुंबका पालन नित्य कर्मका करना केवल प्राणोंकीही स्थितिकेलिये धनका संचयकरे ३ ॥

ऋतामृताभ्यांजीवेत्तुमृतेनप्रमृतेनवा । सत्यानृताभ्यामपिवानश्ववृत्त्याकदाचन ४ ॥

प० । ऋतामृताभ्यां जीवेत् तु मृतेन प्रमृतेन वा सत्यानृताभ्यां अपि वा न श्ववृत्त्या कदाचन ॥

यो० । विप्र ऋतामृताभ्यां मृतेन — वा प्रमृतेन वा सत्यानृताभ्यां अपि (अनापदि) जीवेत् श्ववृत्त्या कदाचन न जीवेत् ॥

भा० । ता० । अब जिनसे जीवे उन कर्मोंको दिखातेहैं ब्राह्मण अपनी स्वस्थतामें ऋत–अमृत–और मृत प्रमृत सत्यानृत इनमेंभी अनापत्कालमेंजीवे और श्ववृत्तिसे कभी न जीवे ४ ॥

ऋतमुञ्छशिलंज्ञेयममृतंस्यादयाचितम् । मृतंतुयाचितंभैक्ष्यंप्रमृतंकर्षणंस्मृतम् ५ ॥

प० । ऋतं उञ्छशिलं ज्ञेयं अमृतं स्यात् अयाचितं मृतं तु याचितं भैक्ष्यं प्रमृतं कर्षणं स्मृतम् ॥

यो० । उञ्छशिलं ऋतंज्ञेयं अयाचितं अमृतंस्यात् तत्पुनः याचितं भैक्ष्यं मृतं कर्षणं प्रमृतं स्मृतम् (मनुनेतिशेषः) ॥

भा० । उञ्छशिल को ऋत अयाचितको अमृत याचनाकीहुई भिक्षाके समूहको मृत खेती को प्रमृत मनु आदि ऋषियोंने कहाहै ॥

ता० । अब ऋत आदि शब्द जगत्में अप्रसिद्धहैं इससे उनका अर्थ लिखतेहैं एक २ अन्न आदिके दानेका जो संचयरूप उञ्छ और मञ्जरी (बालि) रूप जो अनेकदानोंका संचय उसे शिलकहते हैं इन दोनोंको ऋत जानना–क्योंकि सत्यबोलनेसे जो फलहोता है वही फल इन दोनों से जीविका करनेसे होता है इसीसे इनदोनोंको ऋत कहते हैं–क्योंकि जहां जहां पीडारहित स्थान मार्ग–खेत–निश्शंक अवकाश इनमें ओषधि होय वहां वहां एक एक कणके को हूंढकरि ब्राह्मणजीने यह बौधायन ऋषिने कहाहै सिद्धान्त यहहै कि इस वृत्तीसे किसीको दुःख नहीं होता इससे यह वृत्ति शास्त्रमें ऋतकहीहै–और अयाचित (विनामांगे) जो मिले उसे अमृतकहतेहैं क्योंकि वह भी अमृतकेसमान सुखका हेतुहै और याचना करनेसे जो भिक्षा

१ अबाधिस्थानेषु पथिवाक्षेत्रेषु वा प्रतिहतावकाशेषु यत्रयत्रौषधयस्तिष्ठन्ते तत्रतत्रांगुलिभ्यां एकैकं कणं समुच्चिन्वीत ॥

का समूहहै उसे मृतकहतेहैं क्योंकि वह दूसरेकी शरणजानेमें पीडाका जनकहै और यह वृत्ती(भिक्षा)भी उस गृहस्थीको जो अग्निहोत्र करता हो कच्चे अन्नकी लिखीहै सिद्धान्नकी नहीं— क्योंकि दूसरेकी अग्नीसे पकेहुये अन्नसे अपनी अग्निमें होमका निषेधहै—और कर्षण (खेती करना)—प्रमृत (प्रकृष्ट मरना) कहाहै—क्योंकि भूमिमें अनेक प्राणियोंके मरणका निमित्त होनेसे इसका फल अनेक दुःखहै ५ ॥

सत्यानृतंतुवाणिज्यंतेनचैवापिजीव्यते। सेवाश्ववृत्तिराख्यातातस्मात्तांपरिवर्जयेत् ६॥

प० । सत्यानृतं तु वाणिज्यं तेन च एव अपि जीव्यते सेवा श्ववृत्तिः आख्याता तस्मात् ताम् परिवर्जयेत् ॥

यो० । तुपुनः सत्यानृतं वाणिज्यं ज्ञेयं चानकर्मादि तेनापि जनैः जीव्यते सेवा श्ववृत्तिः आख्याता तस्मात् (ब्राह्मणः) तां (सेवां) परिवर्जयेत् ॥

भा० । वाणिज्यसे भी मनुष्यजीताहै इससे वाणिज्यको सत्यानृत कहतेहैं सेवा शास्त्रमें श्ववृत्तिकहीहै तिससे ब्राह्मण श्ववृत्तिको त्यागदे ॥

ता० । वाणिज्य (व्यवहार)+और कुसीदको (व्याजलेना) सत्यानृत कहतेहैं क्योंकि यह सत्यअनृतदोनों से होताहै—और पिछले श्लोकमें कही हुई खेती वाणिज्य और कुसीद ये वेही सत्यानृत कहेहैं जो भृत्य आदिसे कराये होयँ क्योंकि इस गौतम ऋषिके वचनसे यही प्रतीत होताहै यद्यपि इस श्लोकमें शास्त्रकेद्वारा सत्यानृतकी अनुमति वाणिज्यहीमें पाईजातीहै तथापि—तेनचैवापि—इस चशब्दसे कुसीदको भी लेतेहैं और सेवाको शास्त्रमें श्ववृत्तिःकहाहै क्योंकि जो मनुष्य सेवाकरता उसको दीनदृष्टीसे देखना स्वामी झिड़कनेको सहना आदि नीचकर्म करने पड़तेहैं इससे इसको श्वा (कुत्ता) वृत्तिकहतेहैं तिस कारण ब्राह्मण इसको सर्वथा त्यागदे ६ ॥

कुशूलधान्यकोवास्यात्कुम्भीधान्यकएववा। त्र्यैहिकोवापिभवेदश्वस्तनिकएववा ७॥

प० । कुशूलधान्यकः वा स्यात् कुंभीधान्यकः एव वा त्र्यैहिकः वा अपि भवेत् अश्वस्तनिकः एव वा ॥

यो० । (गृहस्थः) कुशूलधान्यकः वा कुंभीधान्यकः एव स्यात् वा त्र्यैहिकः वा अश्वस्तनिकः एव भवेत् ॥

भा० । तीनवर्ष वा अधिक जिससे निर्वाह होय ऐसे धन वाला वा एकवर्ष जिससे निर्वाह होय ऐसे धनवाला वा तीन दिन जिससे निर्वाह होय ऐसे धनवाला अथवा कलकेलिये जिसके शेष अन्न न रहै ऐसागृहस्थीहोनाचाहिये ॥

ता० । कुशूल ईंटोंसे चिनोये व्रीहीके घरको कहतेहैं—कुशूलमें भराहुवा अन्न जिसके भराहुवा होय उसे कुशूलधान्यकहतेहैं अर्थात् खाममें भराहुवा और इसमें काल विशेषकी अपेक्षा में वहीकाल लेना जो इसे श्लोकमें मनूने कहाहै कि तीनवर्षके खानेके लिये और भृत्यआदिके

१ कृषिवाणिज्येस्वयंचाकृते कुसीदंच ॥
२ यस्यत्रैवार्षिकंभक्तं पर्याप्तंभृत्यवृत्तये अधिकंवापिविद्येत ससोमंपातुमर्हति ॥

वृत्तिके लिये अन्नपूर्णहोय अथवा अधिक अन्नहोय वही सोमपीनेके योग्यहै—अर्थात् नित्य और नैमित्तिकधर्म के कार्य और सेवक और पालनकरनेयोग्य पुत्र आदि वाले गृहस्थीका जितने अन्नसे तीनवर्षतक वा अधिक निर्वाह होसके उतने अन्नवालेको कुशूल धान्यक कहतेहैं—जिस गृहस्थीके एकवर्ष निर्वाहके योग्य अन्न उसे कुंभीधान्यक कहतेहैं उस गृहस्थी इस याज्ञवल्क्य के वचनानुसार सोम यज्ञसे पहिले करने योग्य कर्मोंका अधिकारहै और अतएव गृहस्थीको एक वर्षके लिये शास्त्रकी अनुमतिहै—और आगे मनुजी भी वानप्रस्थको एकवर्षके अन्नका संचय कहेंगे—उसकी अपेक्षासे बहुत पुत्र आदिवाले गृहस्थीको भी वर्षके अन्नका संचय भी उचितहै—मेधातिथिने यह व्याख्याकीहै कि जितने धनसे अनेक भृत्य और स्त्रीवाले गृहस्थीका तीनवर्ष तक निर्वाहहोय उतने धनवाले गृहस्थीको कुशूलधान्य कहतेहैं यह कहकारि कुंभी (उष्ट्रिका) पाण्मासिक अन्नका जिसके संचयहोय उसे कुंभीधान्यक कहतेहैं—अर्थात् ऊंटनी जितना अन्न लेचले उतना अन्न छः महीनेकेलिये जिसके कुटुंबकी पालना करसके उसे कुंभीधान्यक कहते हैं—गोविंदराज ने तो यह व्याख्याकीहै कि जिसकेएक कोठा अन्नका संचयहोय वह कुशूल धान्यका अर्थात् बारह दिनके लिये जिसके अन्नहोय जितने अन्नको ऊँटनीले चले उतना अन्न जिसके छःदिनके लिये पूर्णहोय उसे कुंभीधान्यक कहतेहैं—बारह दिनके लिये कुशूलसे और छः दिनकेलिये कुंभीसे जिसके कुटुंबकी पालना होय उसे क्रमसे कुशीलधान्यक और कुंभी धान्यक कहतेहैं इसगोविंदराजके कथनके हम अनुकूल नहींहैं और शरीरकी चेष्टा से पैदा किये हुये अन्नसे जिसके तीनदिनका निर्वाह उसे त्र्यहैहिककहतेहैं और जिसके श्व (अगलादिन) केलिये अन्न कुटुंबके खानेसे शेषनरहै उसे अश्वस्तनिक कहतेहैं सिद्धांतयह है कि गृहस्थीकुशूल धान्यक वा कुंभीधान्यक वा त्र्यहैहिक वा अश्वस्तनिकरहै ७ ॥

चतुर्णामपिचैतेषांद्विजानांगृहमेधिनाम् । ज्यायान्परःपरोज्ञेयोधर्मतोलोकजित्तमः ८ ॥

प० । चतुर्णाम् अपि च एतेषां द्विजानां गृहमेधिनाम् ज्यायान् परः परः ज्ञेयः धर्मतः लोकजित्तमः ॥

यो० । एतेषां चतुर्णाम् अपि गृहमेधिनाम् द्विजानां (मध्ये) परःपरः ज्यायान् ज्ञेयः (स) धर्मतः लोकजित्तमो भवति ॥

भा० । ता० । इनचारों भी गृहस्थी द्विजोंकेमध्यमें अगला अगला गृहस्थी श्रेष्ठजानना वही धर्म से स्वर्गआदि लोक के जीतनेवालों में अत्यन्त श्रेष्ठहोताहै ८ ॥

षट्कर्मैकोभवत्येषांत्रिभिरन्यःप्रवर्तते । द्वाभ्यामेकश्चतुर्थस्तुब्रह्मसत्रेणजीवति ९ ॥

प० । षट्कर्मा एकः भवति एषां त्रिभिः अन्यः प्रवर्तते द्वाभ्यां एकः चतुर्थः तु ब्रह्मसत्रेण जीवति ॥

यो० । एषां (गृहस्थानांमध्ये) एकः षट्कर्माभवति अन्यः त्रिभिः प्रवर्तते एकःद्वाभ्यांतु चतुर्थः ब्रह्मसत्रेणजीवति ॥

१ प्राक्सौमिकीःक्रियाः कुर्याद्यस्यान्नंवार्षिकंभवेत् ॥

२ द्वादशाहंकुशूलेन श्वःकुम्भ्यादिनानिषट्इमममनूनांगोविन्दराजोक्तिनानुरुन्ध्महे ॥

भा०। इनचारों में पहिला गृहस्थी छःकर्म से दूसरा तीनसे तीसरादोसे अपने कुटुम्ब का निर्वाहकरे और चौथागृहस्थी तो शिलोञ्छवृत्तिसेही जीवे॥

ता०। इनगृहस्थियों के मध्य में कोई गृहस्थी छः कर्मवाला होताहै अर्थात् जिसके बहुत कुटुम्ब भृत्यआदिहोयँ वह ऋत—अयाचितभैक्ष्यः—कृषिः—वाणिज्य—कुशीद इनछःकर्मोंसेजीता है और उससे अल्पकुटुम्बवाला गृहस्थी यज्ञकराना और पढ़ाना और प्रतिग्रहलेना इनतीनोंसे वर्त्तताहै और कोई गृहस्थी प्रतिग्रहको दूषितहोनेसे त्यागकर यज्ञकराने और पढ़ानेसेही निर्वाह करताहै—और चौथागृहस्थी ब्रह्मसत्र (वेदकापढ़ाना) से जीताहै मेधातिथिने तो इसश्लोक का यहअर्थकियाहै कि इनकुशूल धान्यकआदि चारोंगृहस्थियोंके मध्यमें पहिला कुशूलधान्यक छः कर्मवाला होता है अर्थात् उञ्छः (शिल—याचित—अयाचित—कृषि—वाणिज्य इनसे अपने कुटुम्ब का निर्वाह करताहै और अन्य (दूसरा) कुम्भीधान्यकः कृषि—और वाणिज्यको निंदित होनेसे त्यागकर उञ्छः—शिल—याचित—अयाचित—इनमें से अपनी इच्छाके अनुसार कोई से तीनकर्मोंसे वर्तता है—और एक (तीसरा) त्र्यहैहिकः याचित (मांगना) के लाभको छोड़करि उञ्छः शिल अयाचित इनतीनोंमेंसे अपनी इच्छाके अनुसार कोईसे दोकर्मोंसे वर्तताहै—और चौथा अश्वस्तनिकगृहस्थी ब्रह्मसत्र से जीताहै अर्थात् शिल और उञ्छः इनदोनोंमें से कोई से कर्म से जीताहै और इसीको ब्रह्मसत्र इसलिये कहतेहैं कि यह ब्राह्मणको निरंतर होताहै इन दोनों व्याख्याओंमें मेधातिथि की व्याख्यान प्रकरण के अनुकूलहै ९॥

वर्तयंश्वशिलोञ्छाभ्यामग्निहोत्रपरायणः। इष्टीःपार्वायनान्तीयाःकेवलानिर्वपेत्सदा१०

प०। वर्तयन् च शिलोञ्छाभ्यां अग्निहोत्रपरायणः इष्टीः पार्वायनांतीयाः केवलाः निर्वपेत् सदा॥

यो०। शिलोञ्छाभ्यां वर्तयन् द्विजः अग्निहोत्रपरायणः (स्यात्) पार्वायनांतीयाः केवलाः इष्टीः सदा निर्वपेत्॥

भा०। ता०। शिलोञ्छ से जीताहुआ द्विज धन से साध्य इतर कर्मकरने के असामर्थ्य से अग्निहोत्रमेंही तत्पररहै और पर्व और अयन के मध्यमें होनेवाली (दर्श पौर्णमास आग्रयण) यज्ञोंकोही करे १०॥

नलोकवृत्तंवर्तेतवृत्तिहेतोःकथञ्चन। अजिह्मामशठांशुद्धांजीवेद्ब्राह्मणजीविकाम् ११॥

प०। न लोकवृत्तं वर्तेत वृत्तिहेतोः कथंचन अजिह्मां अशठां शुद्धां जीवेत् ब्राह्मणजीविकां॥

यो०। (ब्राह्मणः) वृत्तिहेतोः लोकवृत्तं कथंचन न वर्तेत अजिह्मां अशठां शुद्धां ब्राह्मणजीविकां जीवेत्—कुर्यात्॥

भा०। ता०। अपनी जीविका के लिये असत् (झूठा) और प्रिय (प्यारा) कथनरूप लोक के व्यवहार को अर्थात् विचित्र परिहास कथाआदि से जीविका न करै किंतु जिसमें झूठेगुणों का कथन न हो और दम्भआदि का जिसमें व्याजनहो और जो शुद्धहो ऐसी जो ब्राह्मणोंकीजीविका उसको करै यहां धातुओं के अनेक अर्थहोनेसे जीवेत् का करना अर्थहै ११॥

संतोषंपरमास्थायसुखार्थीसंयतोभवेत्। संतोषमूलंहिसुखंदुःखमूलंविपर्ययः १२॥

प०। संतोषं परं आस्थाय सुखार्थी संयतः भवेत् संतोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः॥

यो० । सुखार्थी पुरुषः परं सन्तोषं आस्थाय संयतः भवेत् — हि (यतः) सुखं सन्तोषमूलं — विपर्ययः (असंतोषः) दुःखमूलं — भवति ॥

भा० । सुखकी इच्छाकरनेवाला मनुष्य,परमसन्तोष को करके संयमको करै क्योंकि सुखका मूल सन्तोष है और दुःखकामूल असंतोष है ॥

ता० । यथासम्भव (जैसे होसके) भृतिआदि से प्राणों का धारण और पंचयज्ञोंके करने आदि के योग्यधनसे अधिककी इच्छाको न करना इसे असंतोष कहते हैं—उस सन्तोषको सुख का अभिलाषी मनुष्य निरन्तरकरके धनसंचय से संयमकरै—क्योंकि सुखका मूल (कारण) संतोषहै संतोषसेही परलोकमें भी सुखहोताहै और इसके विपर्यय (उलटा) (असंतोष) को दुःखका मूलकहतेहैं क्योंकि बहुत धनके संचयमें परिश्रम और अधिक दुःख और संपत्ति (दरिद्रता) में क्लेशहोताहै १२ ॥

अतोऽन्यतमयावृत्त्याजीवंस्तुस्नातकोद्विजः।
स्वर्गायुष्ययशस्यानिव्रतानीमानिधारयेत् १३॥

प० । अतः अन्यतमया वृत्त्या जीवन् तु स्नातकः द्विजः स्वर्गायुष्ययशस्यानि व्रतानि इमानि धारयेत् ॥

यो० । अतः) आसांवृत्तीनांमध्ये) अन्यतमया वृत्त्याजीवन सन स्नातकः द्विजः स्वर्गायुष्ययशस्यानि इमानि व्रतानि धारयेत् (कुर्यात्) ॥

भा० । इन पूर्वोक्त वृत्तियोंमेंसे कोईसी वृत्तिसे जीवताहुआ स्नातक ब्राह्मण—स्वर्ग अवस्था यश इनके हितकारी इनव्रतोंकी धारणाकरै ॥

ता० । जिसके बहुत भृत्य आदि न हों वह एकही वृत्तिसे संभवहोनेपर इन पूर्वोक्त वृत्तियों से कोईसी वृत्तिसे जीविका करताहुआ—और जिसके बहुत भृत्यहों उसको अन्नके असंभवमें छः कर्मकरना (षट्कर्मकोभवत्येषां) इससे विधानकर आयेहैं—अथवा यह श्लोक एक वाक्यता से व्रतका विधानकरताहै इससे वृत्त्या इसपदमें एकत्वकी विवक्षानहींहै—उक्त वृत्तियोंमें कोईसी वृत्तिसे जीवताहुआ स्नातक द्विज (ब्राह्मण) स्वर्ग—अवस्था—यश—इनके हितकारी इन (जो आगेकहेंगे) व्रतों को करै यह मुझे कर्त्तव्यहै और यह अकर्त्तव्यहै इस प्रकारके संकल्प विशेषसे व्रतहोताहै १३ ॥

वेदोदितंस्वकंकर्मनित्यंकुर्यादतन्द्रितः । तद्धिकुर्वन्यथाशक्तिप्राप्नोतिपरमांगतिम् १४ ॥

प० । वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यात् अतंद्रितः तत् हि कुर्वन् यथाशक्ति प्राप्नोति परमां गतिम् ॥

यो० । वेदोदितं स्वकं कर्म अतंद्रितः सन् नित्यं कुर्यात् हि (यतः) तत् (कर्म) यथाशक्ति कुर्वन्सन् परमांगतिं प्राप्नोति ॥

भा० । वेदमें उक्त अपने कर्मको आलस्य छोड़कर कर क्योंकि यथाशक्ति उस कर्मको करता हुआ मनुष्य मोक्ष को प्राप्त होताहै ॥

ता० । वेदमें कहे हुये और वेदहै मूल जिसमें ऐसे स्मृतिमें कहेहुये अपने आश्रमके कर्मको नित्य (इतने जीवे) आलस्य को छोड़कर करै क्योंकि अपनी सामर्थ्य के अनुसार उस कर्म को करता हुआ मनुष्य परमगति (मोक्ष) को प्राप्त होताहै अर्थात् नित्य कर्म के करने से पाप कानाश होनेपर निष्पाप (पापहीन) अंतःकरण से ब्रह्म के साक्षात्कार होने से मोक्ष की प्राप्ति होतीहै क्योंकि मोक्ष धर्म में यह कहाहै कि पाप कर्मके क्षयसे पुरुषों को ज्ञान पैदाहोता है और उस ज्ञानके होनेसे दर्पण तलके समान अंतःकरणमें आत्मा (ब्रह्म) को देखताहै १४ ॥

नेहेतार्थान्प्रसंगेननविरुद्धेनकर्मणा । नविद्यमानेष्वर्थेषुनार्त्यामपियतस्ततः १५ ॥

प०। न इहेत अर्थान् प्रसंगेन न विरुद्धेन कर्मणा न विद्यमानेषु अर्थेषु न आर्त्यां अपि यतः ततः ॥

यो० । प्रसंगेन अर्थान न ईहेत — विरुद्धेन कर्मणा न ईहेत — अर्थेषु विद्यमानेषु न ईहेत — आर्त्यां अपि यतः ततः अर्थान् न ईहेत ॥

भा० । ता० । प्रसंग (गीत बाजाआदि) से और शास्त्रमें निषिद्धकर्म (अयाज्यको यज्ञकरानाआदि) से और धनके विद्यमान होनेपर और विपत्तिके समय भी जहांतहां (पतितआदि) से धनकी प्राप्तिकी चेष्टा न करै १५ ॥

इन्द्रियार्थेषुसर्वेषुनप्रसज्येतकामतः । अतिप्रसक्तिंचैतेषांमनसासन्निवर्तयेत् १६ ॥

प० । इंद्रियार्थेषु सर्वेषु न प्रसज्येत कामतः अतिप्रसक्तिं च एतेषां मनसा सन्निवर्तयेत् ॥

यो० । सर्वेषु इंद्रियार्थेषु (विषयेषु) कामतः न प्रसज्येत — चपुनः मनसा अपि एतेषां अतिप्रसक्तिं सन्निवर्तयेत् ॥

भा० । ता० । सम्पूर्ण इंद्रियों के जो अर्थ (विषय) रूप रस गंध स्पर्श शब्द आदिहैं उन निषिद्धोंमें अपनी कामनासे आसक्त न हो अर्थात् अपनी स्त्रीके भी सुरतआदिमें अत्यन्त प्रसंग (अतिसेवा) को उपभोग के लिये न करै और इनकी अत्यन्त प्रसक्तिको मनसा भलीप्रकार निवृत्त करदे अर्थात् इनविषयों को अनित्य और स्वर्ग और मोक्ष के विरोधि जानकर इनमें मनको न लगावे १६ ॥

सर्वान्परित्यजेदर्थान्स्वाध्यायस्यविरोधिनः । यथातथाध्यापयंस्तुसाह्यस्यकृतकृत्यता १७

प० । सर्वान् परित्यजेत् अर्थान् स्वाध्यायस्यविरोधिनः यथा तथा अध्यापयन् तु सा हि अस्य कृतकृत्यता ॥

यो० । यथा तथा (केनापिउपायेन) अध्यापयन् सन् (भृत्यान्मात्मानंजीवयन) स्वाध्यायस्यविरोधिनः सर्वान् अर्थान (स्नातकः) परित्यज्येत् हि (यतः) सा (स्वाध्यायतत्परता) अस्य (स्नातकस्य) कृतकृत्यता (साफल्यं) अस्तीत्यर्थः ॥

भा० । ता० । और जिस किसीउपाय (वेदपढ़ने के अविरोधी) से अपने आत्मा और भृत्यों की पालना करता हुआ स्नातक (ब्रह्मचारी) वेदार्थ के विरोधि सम्पूर्णअर्थों (अत्यन्तईश्वरकीपूजा कृषि लोकयात्राआदि) को सर्वथा त्यागदे क्योंकि नित्य जो वेदपढ़ने में तत्पर रहना वही इसस्नातक की कृतकृत्यता (सफलता) है १७ ॥

---

२ ज्ञानमुत्पद्यतेपुंसांक्षयात्पापस्यकर्मणः यत्रादर्शतलप्रख्येपश्यत्यात्मानमात्मनि ॥

वयसःकर्मणोऽर्थस्यश्रुतस्याभिजनस्यच। वेषवाग्बुद्धिसारूप्यमाचरन्विचरेदिह १८॥

प० । वयसः कर्मणः अर्थस्य श्रुतस्य अभिजनस्य च वेषवाग्बुद्धिसारूप्यं आचरन् विचरेत् इह ॥

यो० । वयसः कर्मणः अर्थस्य श्रुतस्य चपुनः अभिजनस्य वेषवाग्बुद्धिसारूप्यं आचरन्सन् इह (संसारे) विचरेत् ॥

भा० । ता० । अवस्था—कर्म—धन—वेद—कुल इनकेअनुरूपही वेष वाणी बुद्धिको रखताहुआ लोकमें वर्ते जैसे यौवनमें माला गंध लेपको धारणा—आदि १८ ॥

बुद्धिवृद्धिकराण्याशुधान्यानिचहितानिच। नित्यंशास्त्राण्यवेक्षेतनिगमांश्चैववैदिकान् १९

प० । बुद्धिवृद्धिकराणि आशु धान्यानि च हितानि च नित्यं शास्त्राणि अवेक्षेत निगमान् च एव वैदिकान् ॥

यो० । आशु (शीघ्रं) बुद्धिवृद्धिकराणि — धान्यानि चपुनः हितानि शास्त्राणि — चपुनः वैदिकान् निगमान् नित्यं अवेक्षेत (पश्येत्) ॥

भा० । ता० । वेदसे अविरुद्ध और शीघ्रबुद्धिकी वृद्धिकरनेवाले (व्याकरण मीमांसा स्मृति पुराण न्याय आदि) शास्त्र और धनकेहित (सम्पादक) अर्थशास्त्र (बार्हस्पत्य औशनसआदि) आहित शास्त्र अर्थात् जिनसे साक्षात् उपकारहो ऐसेवैद्यक ज्योतिषआदि शास्त्र और वेदकेअर्थ जनानेवाले निरुक्तआदि ग्रन्थ—नित्य देखे १९ ॥

यथायथाहिपुरुषःशास्त्रंसमधिगच्छति। तथातथाविजानातिविज्ञानंचास्यरोचते २० ॥

प० । यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति तथा तथा विजानाति विज्ञानं च अस्य रोचते ॥

यो० । पुरुषः यथा यथा शास्त्रं समधिगच्छति तथा तथा विजानाति चपुनः अस्य पुरुषस्य विज्ञानं रोचते ॥

भा० । ता० । क्योंकि जैसे जैसे पुरुष शास्त्रका भलीप्रकार अभ्यासकरता है वैसाही वैसा विशेष जानताहै और अन्यशास्त्रके ज्ञानकाभी इसको बल होताहै २० ॥

ऋषियज्ञंदेवयज्ञंभूतयज्ञंचसर्वदा। नृयज्ञंपितृयज्ञंचयथाशक्तिनहापयेत् २१ ॥

प० । ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत् ॥

यो० । ऋषियज्ञं — देवयज्ञं — चपुनः सर्वदा भूतयज्ञं — नृयज्ञं — चपुनः पितृयज्ञं — यथाशक्ति न हापयेत् (नत्यजेत्) ॥

भा० । ता० । मनुष्य—ऋषियज्ञ—देवयज्ञ—भूतयज्ञ—मनुष्ययज्ञ—और पितृयज्ञ—इनपांचयज्ञों को अपनीशक्ति के अनुसार सदैव न त्यागे—तीसरे अध्यायमें कहेभी पांचयज्ञोंका यहांपर फिर कथन आगे विशेष विधानके लिये है और स्नातकके भी यज्ञव्रतहैं इसके बोधनकेलियेहै २१ ॥

एतानेकेमहायज्ञान्यज्ञशास्त्रविदोजनाः। अनीहमानाःसततमिन्द्रियेष्वेवजुह्वति २२ ॥

प० । एतान् एके महायज्ञान् यज्ञशास्त्रविदः जनाः अनीहमानाः सततं इंद्रियेषु एव जुह्वति ॥

यो० । यज्ञशास्त्रविदः एकेजनाः एतान् महायज्ञान् अनीहमानाः संतः इंद्रियेषु एव सततं जुह्वति (सम्पादयन्ति)॥

भा० । ता० । कोई बाह्य और अन्तर यज्ञके अनुष्ठान जाननेवाले गृहस्थी इनपांचयज्ञों को ब्रह्मज्ञान के प्रकर्षसे नहींकरतेहुये भी पांचज्ञान इन्द्रियोंके विषयही होमतेहैं अर्थात् पांचोंज्ञान

इन्द्रियोंके जो (रूप रस गंध स्पर्श शब्द) विषयहैं उनकाही संयमकरतेहैं अर्थात् आसक्त नहीं होतेहैं सिद्धान्त उनकेलिये येही पांचयज्ञहैं २२ ॥

वाच्येकेजुह्वतिप्राणंप्राणेवाचंचसर्वदा । वाचिप्राणेचपश्यन्तोयज्ञनिर्वृत्तिमक्षयाम् २३॥

प० । वाचि एके जुह्वति प्राणं प्राणे वाचं च सर्वदा वाचि प्राणे च पश्यंतः यज्ञनिर्वृत्तिं अक्षयाम् ॥

यो० । वाचि चपुनः प्राणे अक्षयां यज्ञनिर्वृत्तिं पश्यंतः एके (गृहस्थाः) वाचिप्राणं चपुनः प्राणे वाचं सर्वदा जुह्वति ॥

भा० । वाणी और प्राणमेंही यज्ञकी संपत्ति (होना) को देखतेहुये कोई एक गृहस्थी वाणी में प्राणको और प्राणमें वाणीको होमतेहैं–अर्थात् वाणी और प्राणका संयमकरते हैं ॥

ता० । ब्रह्मके वेत्ता कोई गृहस्थी वाणी और प्राणमेंही अक्षयफल देनेवाली यज्ञकी संपत्ति को जानतेहुये वाणीमें प्राणको और प्राणमें वाणीको होमतेहैं अर्थात् बोलनेसे वाणीमें प्राणको और न बोलनेसे प्राणमें वाणीको होमतेहैं–ऐसेही कौषीनकी ब्राह्मणमें कहाहै कि[2] इतने पुरुष बोलताहै तबतक प्राणायाम नहीं करसक्ता उस समय वाणीमें प्राणको होमताहै और इतने प्राणायाम करताहै तबतक बोल नहींसक्ता उस समय वाणीको प्राणमें होमताहै ये अनंत अमृत और सत्यरूप आहुति जागताहुआ भी निरंतर होमताहै अथवा अन्य आहुति जो पूर्वकहीहैं वे कर्मरूपहैं और पहिले विद्वान् तो इसीप्रकार अग्निहोत्रको करतेभये २३ ॥

ज्ञानेनैवापरेविप्रायजन्त्येतैर्मखैःसदा । ज्ञानमूलांक्रियामेषांपश्यन्तोज्ञानचक्षुषा २४॥

प० । ज्ञानेन एव अपरे विप्राः यजंति एतैः मखैः सदा ज्ञानमूलां क्रियां एषां पश्यंतः ज्ञानचक्षुषा ॥

यो० । ज्ञानचक्षुषा एषां क्रियाज्ञानमूलां पश्यंतः अपरे विप्राः एतैः मखैः ज्ञानेनएव यजंति ॥

भा० । ज्ञानरूपी नेत्रसे ज्ञानहैमूल जिसका ऐसी इनपांचयज्ञों की क्रियाको देखतेहुये अन्य ब्राह्मण ज्ञानसेही इनयज्ञों से सदैव यजन (पूजन) करतेहैं ॥

ता० । ज्ञानहै मूलजिसका ऐसी इनयज्ञोंकी क्रिया (उत्पत्ति) को ज्ञानरूप नेत्रसे देखतेहुये अपर (अन्य) ब्राह्मण ज्ञानके द्वाराही इनयज्ञों से सदा यजन (पूजन) करते हैं अर्थात् जब सम्पूर्ण यहजगत्[3] ब्रह्मरूप है–यहज्ञानहोता है उससमय ब्रह्मज्ञानके जनक इनपांचों यज्ञोंकोभी ब्रह्मरूपही ध्यानकरतेहुये इनपांचोंयज्ञोंको भी करतेहैं अर्थात् पंचयज्ञ करनेके फलको प्राप्तहोते हैं–इन तीनश्लोकों से ब्रह्मनिष्ठ वेदके संन्यासियोंकी भी ये विधि कहीहैं २४ ॥

अग्निहोत्रंचजुहुयादाद्यन्तेद्युनिशोःसदा । दर्शेनचार्द्धमासान्तेपौर्णमासेनचैवहि २५ ॥

प० । अग्निहोत्रं च जुहुयात् आद्यंते द्युनिशोः सदा दर्शेन च अर्द्धमासांते पौर्णमासेन च एव हि ॥

---

१ भाषमाणेनचवाचिप्राणंजुहोतीति अभाषमाणेनचोच्छ्वसताप्राणेवाचंजुहोतीति ॥

२ यावद्वैपुरुषो भाषते नतावत्प्राणितुंशक्नोति प्राणंतदावाचिजुहोति -यावद्धिपुरुषः प्राणिति न तावद्भाषितुंशक्नोति वाचं तदाप्राणेजुहोति--एतेऽनंतेऽमृतेमृते आहुतीजाग्रच्चमततंजुहोति अथवा अन्या आहुतयः अनन्तरन्यस्ताः कर्ममय्योहिभवंत्येयंहितस्यैतत्पूर्वेविद्वांसो अग्निहोत्रं जुहवांचकुरिति ॥

३ सर्वं खल्विदं ब्रह्मनेहनानास्ति किंचन--सत्यंज्ञानमनंतंब्रह्म ॥

यो० । द्युनिशोः आद्यंते चपुनः अर्द्धमासांते दर्शेन चपुनः पौर्णमासेन सदा अग्निहोत्रं जुहुयात् ॥

भा० । दिन और रात्रि के आदि अन्तमें सदा अग्निहोत्रकरै और आधेमासके अन्तमें दर्श और पौर्णमास यज्ञ करै ॥

ता० । जब यहपक्षहै कि सूर्योदयहोनेपर होमकरै तब दिनकी और रात्रिके आदिमें अथवा दिनकीआदिमें और दिनके अन्तमें—और जब यहपक्षहै कि सूर्योदयसे पहिले होमकरै तब दिन और रात्रिके अन्तमें अथवा रात्रिकीआदि में और रात्रि के अन्तमें सदैव अग्निहोत्रकरै और अर्द्धमास के अन्तमें दर्शयज्ञ और पौर्णमासयज्ञ से पूजनकरै अर्थात् कृष्णपक्ष रूप आधेमास के अन्तमें दर्श और शुक्लपक्षरूप आधेमास के अन्तमें पौर्णमासरूप यज्ञकरै २५ ॥

सस्यान्तेनवसस्येष्ट्यातथर्त्वन्तेद्विजोऽध्वरैः ।
पशुनात्वयनस्यादौसमान्तेसौमिकैर्मखैः २६ ॥

प० । सस्यांते नवसस्येष्ट्या तथा ऋत्वन्ते द्विजः अध्वरैः पशुना तु अयनस्य आदौ समान्ते सौमिकैः मखैः ॥

यो० । द्विजः सस्यांते नवसस्येष्ट्या—तथा ऋत्वन्ते अध्वरैः—तथाः अयनस्यादौ पशुना—समान्ते सौमिकैः मखैः यजेत् ॥

भा० । पुराने अन्नकी समाप्ति होनेपर—आग्रयणयज्ञ—और ऋतुओंके अन्तमें चातुर्मास्ययज्ञ दोनों अयनों की आदिमें पशुयज्ञ—और वर्षके अन्तमें अग्निष्टोमआदियज्ञ—द्विजकरै ॥

ता० । पहिले संचित अन्नकी समाप्ति होनेपर अर्थात् शरदऋतु में इस सूत्रकार के वचन के अनुसार चाहैं पिछला[1] सस्य समाप्त न भीहो तोभी नवसस्य (आग्रयण) यज्ञसे द्विजपूजन करै क्योंकि पहिले संचित अन्नकी समाप्तिका कोई नियतसमय नहीं है और धनियों के यहां इतना अन्नहोसक्ताहै कि जिससे बहुत वर्षोंका निर्वाहहोसके—और मनुजीका भी सस्यकाअन्त कहनेसे नवीन सस्यकी उत्पत्तिही अभीष्ट है क्योंकि वह प्रतिवर्ष होसक्तीहै+चार २ महीनेकी एक २ ऋतुहोतीहै उसके अन्तमें चातुर्मास्य यज्ञसे पूजन करै—और उत्तरायण और दक्षिणायनकी आदिमें पशुयज्ञकरै—और वर्षके अन्तमें अर्थात् शिशिरऋतुमें क्योंकि चैत्रशुदि १ प्रतिपदासे ज्योतिःशास्त्रके अनुसार वर्षका आरम्भहोता है इससे शिशिरऋतुमेंही वर्षकी समाप्ति होगी—तब सोमलता के रससे सिद्धहोनेवाले अग्निष्टोम आदि यज्ञोंसे पूजनकरै अर्थात् अग्निष्टोम आदि यज्ञकरै २६ ॥

नानिष्ट्वानवसस्येष्ट्यापशुनाचाग्निमान्द्विजः।नवान्नमद्यान्मांसंवादीर्घमायुर्जिजीविषुः २७

प० । न अनिष्ट्वा नवसस्येष्ट्या पशुना च अग्निमान् द्विजः नवान्नं अद्यात् मांसं वा दीर्घं-आयुः जिजीविषुः ॥

यो० । दीर्घआयुः जिजीविषुः अग्निमान् द्विजः नवसस्येष्ट्या चपुनः पशुना अनिष्ट्वा (यज्ञं अकृत्वा) नवान्नं वा मांसं न अद्यात् ॥

---

१ शारदिनवानाम् ॥

भा० । ता० । दीर्घ आयुः पर्यंत जीवनकी इच्छावाला अग्निहोत्री द्विज आग्रयणयज्ञ किये विना नवीनअन्नका और पशुयज्ञकियेविना मांस का भक्षण न करे २७ ॥

नवेनानर्चिताह्यस्यपशुहव्येनचाग्नयः । प्राणानेवात्तुमिच्छन्तिनवान्नामिषगर्द्धिनः २८॥

प० । नवेन अनर्चिताः हि अस्य पशुहव्येन च अग्नयः प्राणान् एव अत्तुं इच्छन्ति नवान्नामिषगर्द्धिनः ॥

यो० । हि (यतः) नवेन (हव्येन) चपुनः पशुहव्येन अनर्चिताः (अपूजिताः) नवान्नामिषगर्द्धिनः अग्नयः अस्य अग्निहोत्रिणः (द्विजस्य) प्राणान् एव अत्तुं (भक्षयितुं) इच्छंति ॥

भा० । ता० । क्योंकि नये अन्नके और पशुके हव्य से नहीं पूजे और नवीन अन्न और मांस की अभिलाषावाले अग्नि इस अग्निहोत्री के प्राणोंका ही भक्षण चाहते हैं २८ ॥

आसनाशनशय्याभिरद्भिर्मूलफलेनवा।नास्यकश्चिद्वसेद्गेहेशक्तितोऽनर्चितोऽतिथिः २९

प० । आसनाशनशय्याभिः अद्भिः मूलफलेन वा न अस्य कश्चित् वसेत् गेहे शक्तितः अनर्चितः अतिथिः ॥

यो० । अस्य (गृहस्थस्य) गेहे आसनाशनशय्याभिः अद्भिः वा मूलफलेन शक्तितः अनर्चितः अतिथिः न वसेत् — शक्तितोऽतिथिंपूजयेत् इतिभावः ॥

भा० । ता० । इस गृहस्थी के घरमें कोई भी अतिथि आसन—भोजन—शय्या—जल—मूल और फलोंसे पूजाको नहीं प्राप्तहुआ न वसे—अर्थात् गृहस्थी शक्तिके अनुसार अतिथिकोपूजे २९ ॥

पापण्डिनोविकर्मस्थान्वैडालव्रतिकाञ्छठान् ।
हैतुकान्बकवृत्तींश्चवाङ्मात्रेणापिनार्चयेत् ३० ॥

प० । पाषंडिनः विकर्मस्थान् वैडालव्रतिकान् शठान् हैतुकान् बकवृत्तीन् च वाङ्मात्रेण अपि न अर्चयेत् ॥

यो० । पाषंडिनः वि कर्मस्थान — वैडालव्रतिकान — शठान् — हैतुकान — चपुनः बकवृत्तीन् (अतिथिसमये आगतान) वाङ्मात्रेण अपि न अर्चयेत् ॥

भा० । पाषंडी—निषिद्धकर्मी—वैडालव्रतिक—शठ—हैतुक और बकवृत्तिक इनको वाणी से भी न पूजे ॥

ता० । पाषंडी (जो वेद बाह्यव्रत और चिह्नों को धारें शाक्य भिक्षुक गणक आदि) और विकर्मस्थ जो निषिद्ध कर्मसे आजीविकाकरें—और वैडालव्रतिक और शठ (जो वेदमें श्रद्धाहीनहों) और हैतुक (जो वेद विरोधितर्क से व्यवहार करतेहों) और बकवृत्तियों—समयपरभी आये इनकोवाणी से भी न पूजे—इन सब में वैडालव्रतिक और बकवृत्ति इन दोनों का लक्षण आगे कहेंगे ३० ॥

वेदविद्याव्रतस्नाताञ्श्रोत्रियान्गृहमेधिनः । पूजयेद्धव्यकव्येनविपरीतांश्चवर्जयेत् ३१॥

प० । वेदविद्याव्रतस्नातान् श्रोत्रियान् गृहमेधिनः पूजयेत् हव्यकव्येन विपरीतान् च वर्जयेत् ॥

यो० । गृहस्थः वेदविद्याव्रतस्नातान् – श्रोत्रियान् – गृहमेधिनः हव्यकव्येन पूजयेत् चपुनः विपरीतान् वर्जयेत् ॥

भा० । विद्यास्नातक–व्रतस्नातक–विद्याव्रतस्नातक और श्रोत्रिय जो गृहस्थिहैं इनको हव्य और कव्यों से पूजे और इनसे जो विपरीत हों उनको वर्जदे ॥

ता० । वेदविद्याव्रतस्नातक–अर्थात् वेदविद्यास्नातक–और व्रतस्नातक और वेदविद्या और व्रत उभयस्नातक ये तीन स्नातक–क्योंकि हारीतने ये[1] तीन स्नातक इसप्रकार कहे हैं कि जो वेदोंको तो समाप्तकरके और व्रतोंको समाप्तनहींकरके गुरुके यहांसे गृहस्थमें आवे उसे विद्या स्नातक कहतेहैं–और जो व्रतोंको तो समाप्तकरके और वेदको समाप्तनहीं करके गृहस्थमें आवे उसे व्रतस्नातक कहतेहैं–और जो वेद और व्रत दोनोंको समाप्तकरके गृहस्थ में आवे उसे विद्याव्रतस्नातक कहते हैं–यद्यपि स्नातकमात्रके कहनेसे भी तीनों स्नातक आजाते तथा श्रोत्रिय (वेदपाठी) मात्रही यहांपर विवक्षितहैं–इन तीनों स्नातक और वेदपाठी गृहस्थियोंको हव्य और कव्यसे पूजे–और इनसे जो विपरीतहों उनको वर्जदे ३१ ॥

शक्तितोऽपचमानेभ्योदातव्यंगृहमेधिना । संविभागश्चभूतेभ्यःकर्तव्योऽनुपरोधतः ३२

प० । शक्तितः अपचमानेभ्यः दातव्यं गृहमेधिना संविभागः च भूतेभ्यः कर्तव्यः अनुपरोधतः ॥

यो० । गृहमेधिना अपचमानेभ्यः (ब्रह्मचारिसंन्यासिभिः पाखंडपातिभ्यः) शक्तितः दातव्य चपुनः अनुपरोधतः भूतेभ्यः संविभागः कर्तव्यः ॥

भा० । ब्रह्मचारी संन्यासी पाषंडी इनको गृहस्थी यथाशक्ति अन्नदे और अपने कुटुंबके अनुरोध से (अर्थात् जैसे कुटुंबके पालनमें बाधा न आवे) सब वृक्ष आदि भूतोंको भी जल आदि से विभागदे ॥

ता० । अपचमानों (ब्रह्मचारी संन्यासी और पाषंडी) इनको गृहस्थी शक्तिसे अन्नदे–और अपने कुटुंबके अनुरोधसे संपूर्ण प्राणियों (वृक्षपर्यंत) को भी अन्न जल आदिसे विभागदे–यद्यपि ब्रह्मचारी और संन्यासियोंको दान कहआयेहैं तथापि पचमान (जोअन्नकापाककरसकें) की अपेक्षा उत्तमता जतानेके लिये और स्नातकके व्रतके लिये फिर कहाहै–और मेधातिथि और गोविंदराज तो यह कहतेहैं कि भिक्षुक और ब्रह्मचारी को विधिसे भिक्षादे[2] यह पहिले कहआयेहैं इससे यहांपर अपचमानशब्दस्य पाषंडी–आदिही लेने ३२ ॥

राजतोधनमन्विच्छेत्संसीदन्स्नातकःक्षुधा ।
याज्यान्तेवासिनोर्वापिनत्वन्यतइतिस्थितिः ३३ ॥

प० । राजतः धनं अन्विच्छेत् संसीदन् स्नातकः क्षुधा याज्यांतेवासिनोः वा अपि न तु अन्यतः इति स्थितिः ॥

यो० । क्षुधा संसीदन् स्नातकः राजतः वा याज्यांतेवासिनोः (ताभ्यां) सकाशात् धनं अन्विच्छेत् अन्यतः नतु अन्विच्छेत् इति स्थितिः (शास्त्रमर्यादा) अस्तीतिशेषः ॥

---

१ यः समाप्यवेदान् असमाप्यव्रतानि समावर्तते सविद्यास्नातकः यः समाप्यव्रतानि वेदान् समावर्त्तते सव्रतस्नातकः उभयं समाप्य यः समावर्त्ततेस विद्याव्रतस्नातकः ॥

२ भिक्षांचभिक्षवेदद्याद्विधिवद्ब्रह्मचारिणे ॥

भा० । क्षुधा से दुखीहुआ स्नातक राजासे और यजमान और अपने शिष्यों सेही धनलेने की इच्छा करे अन्य से न करे यह शास्त्र की स्थिति (मर्यादा) है ॥

ता० । जो राजाक्षत्रियसे भिन्नसेउत्पन्नहै उस से प्रतिग्रह न ले इस निषेधसे यहां राजशब्द क्षत्रियका बोधकहै–क्षुधासेदुखीहुआ स्नातक–द्विजातिके प्रतिग्रह न मिलनेपर शास्त्रोक्तविधिसे रहतेहुये राजसे अथवा याज्य (यजमान) और शिष्योंसे प्रथम धनकी अभिलाषाकरे–क्योंकि राजाको महाधर्मी और यजमान और शिष्यका उपकार पहिले कियाहै इससे वेभी प्रत्युपकार करेंगे–यदि येतीनों न मिलें तो अन्य द्विजसेभी धन ग्रहणकरे–यदि वहभी न मिले तो धर्म के अनुसार सबसे धनग्रहणकरे निदान विना आपत्काल में पहिले क्षत्रियराजा–यजमान–शिष्य इनसेही प्रतिग्रहले यहनियमकेलिये यहवचन है इसीसेकहा है कि अन्यसे न ले–यहशास्त्र की मर्यादाहै कदाचित् कोईकहे कि क्षुधासेदुखीहुआ इसवचनसे आपत्तिकालमेंहीइनसे प्रतिग्रहले इसकेलिये यहवचनहै यह ठीक नहीं क्योंकि व्यभिचार का अभाव होने से अर्थात् जो याचक होगा वह अवश्य क्षुधासे दुखीहोगा–और आपत्ति का प्रकरण भी नहींहै और यहां दुखी वह लिया है जिसके पास संचित धन न हो और धनका अभाव आपत् नहीं होसक्ता किन्तु धनके अभाव में विहित उपाय नहीं बनसके अन्यथा जो उसदिनका उसीदिन अपने भोजन का उपाय करताहै वह सद्यः प्रक्षालकभी आपत् वृत्तिवाला होजायगा–और यदि यह वचन आपत्तिकालके विषयमेंही होगा तो अन्यसे प्रतिग्रहन ले (नत्वन्यतः) इस वचनके संग–सबसे प्रतिग्रहले (सर्वतःप्रतिगृह्णीयात्) यह वचन विरुद्ध होजायगा–और जो आपत्ति के प्रकरणमें यह कहाहै कि जो दुखीहोकर धनकी इच्छा करे वे राजा पर धन मांगे वहां शूद्र राजा लियाहै सोभी उक्त राजा आदि तीनोंके न मिलने परही समझना ३३ ॥

नसीदेत्स्नातकोविप्रःक्षुधाशक्तःकथंचन । नजीर्णमलवद्वासाभवेच्चविभवेसति ३४ ॥

प० । न सीदेत् स्नातकः विप्रः क्षुधा शक्तः कथंचन न जीर्णमलवद्वासाः भवेत् च विभवे सति ॥

यो० । शक्तः स्नातकः विप्रः क्षुधा कथंचन न सीदेत – विभवे सति जीर्णमलवद्वासा न भवेत् ॥

भा० । ता० । विद्याके योगसे प्रतिग्रह लेनेमें समर्थ ब्राह्मण उक्त राजा आदिके प्रतिग्रह मिलने पर क्षुधा से दुखी न रहे और धन के होने पर जीर्ण और मलीन वस्त्रोंको धारण न करे ३४॥

क्लृप्तकेशनखश्मश्रुर्दान्तःशुक्लाम्बरःशुचिः ।
स्वाध्यायेचैवयुक्तःस्यान्नित्यमात्महितेषुच ३५ ॥

प० । क्लृप्तकेशनखश्मश्रुः दांतः शुक्लाम्बरः शुचिः स्वाध्याये च एव युक्तः स्यात् नित्यं आत्महितेषु च ॥

यो० । (स्नातकः) क्लृप्तकेशनखश्मश्रुः – दांतः – शुक्लाम्बरः – शुचिः – चपुनः स्वाध्याये चपुनः आत्महितेषु नित्यं युक्तःस्यात् ॥

भा० । ता० । छेदनहुयेहैं केश–नख–श्मश्रु (डाढ़ी) जिसकी और दांत (क्लेशसहनेवाला)

२ नराज्ञः प्रतिगृह्णीयादराजन्यप्रसूततः ॥

१ सीदद्भिः कुप्यमिच्छद्भिः धन वा पृथिवीपतिः याच्यः स्यात् ॥

और शुक्ल वस्त्रधारे—और वाह्य और आभ्यंतर शौचमें तत्पर—और वेदके अभ्यासमें और औषध आदिके करनेसे अपनेहितमें स्नातक तत्पररहै ३५ ॥

वैणवींधारयेद्यष्टिंसोदकंचकमंडलुम् । यज्ञोपवीतंवेदंचशुभेरौक्मेचकुण्डले ३६ ॥

प० । वैणवीं धारयेत् यष्टिं सोदकं च कमंडलुं यज्ञोपवीतं वेदं च शुभे रौक्मे च कुंडले ॥

यो० । स्नातकः वैणवीं यष्टिं चपुनः सोदकं कमंडलुं — यज्ञोपवीतं — चपुनः वेदं — चपुनः शुभे रौक्मे कुंडले — धारयेत् ॥

भा० । ता० । बांसकीदंड—जलसहित कमंडलु—यज्ञोपवीत—वेद और शुद्ध सुवर्णके कुंडल इनको धारणकरै ३६ ॥

नेक्षेतोद्यन्तमादित्यंनास्तंयान्तंकदाचन । नोपसृष्टंनवारिस्थंनमध्यनभसोगतम् ३७ ॥

प० । न ईक्षेत उद्यंतं आदित्यं न अस्तं यांतं कदाचन न उपसृष्टं न वारिस्थं न मध्यनभसः गतं ॥

यो० । उद्यंतं आदित्यं कदाचन न ईक्षेत — न अस्तं यांतं — न उपसृष्टं — न वारिस्थं — न मध्यनभसः गतं ईक्षेत ॥

भा० । ता० । उदयहोते—और अस्तहोते—उपसृष्ट (ग्रहसे युक्त) और जलमें प्रतिबिम्बित और आकाशके मध्यमें प्राप्त सूर्यको कभी भी न देखे ३७ ॥

नलङ्घयेद्वत्सतन्त्रींनप्रधावेच्चवर्षति । नचोदकेनिरीक्षेतस्वंरूपमितिधारणा ३८ ॥

प० । न लंघयेत् वत्सतंत्रीं न प्रधावेत् च वर्षति न च उदके निरीक्षेत स्वं रूपं इति धारणा ॥

यो० । स्नातकः वत्सतंत्रीं न लंघयेत् — चपुनः वर्षतिसति न प्रधावेत् — चपुनः उदके स्वंरूपं न निरीक्षेत इतिधारणा (शास्त्र निश्चयः) अस्तीतिशेषः ॥

भा० । ता० । बछड़ेके बांधने की रज्जुका लंघन न करै—और मेघ वर्षतेहुये न दौड़े—और अपने स्वरूपको जलमें न देखे—यह शास्त्रका निश्चयहै ३८ ॥

मृदंगांदैवतंविप्रंघृतंमधुचतुष्पथम् । प्रदक्षिणानिकुर्वीतप्रज्ञातांश्चवनस्पतीन् ३९ ॥

प० । मृदं गां दैवतं विप्रं घृतं मधु चतुष्पथम् प्रदक्षिणानि कुर्वीत प्रज्ञातान् च वनस्पतीन् ॥

यो० । मृदं — गां — दैवतं — विप्रं — घृतं — मधु — चतुष्पथम् चपुनः प्रज्ञातान् वनस्पतीन् प्रदक्षिणानि कुर्वीत ॥

भा० । ता० । खुदीहुई मट्टी—गौ—और देवताकीमूर्ति- ब्राह्मण—घृत मधु (सहत) चतुष्पथ और प्रसिद्ध (पीपल आदि) वृक्ष—अपने संमुख आयेहुये इनको अपने दक्षिण दिशामें करै अर्थात् आप वाम भागमें होजाय ३९ ॥

नोपगच्छेत्प्रमत्तोऽपिस्त्रियमार्तवदर्शने । समानशयनेचैवनशयीततयासह ४० ॥

प० । न उपगच्छेत् प्रमत्तः अपि स्त्रियं आर्तवदर्शने समानशयने च एव न शयीत तया सह ॥

यो० । प्रमत्तः अपि स्नातकः आर्तवदर्शने न उपगच्छेत् — चपुनः तया (ऋतुमत्या) सह समानशयने न शयीत ॥

भा० । ता० । प्रमत्त (कामदेव से दुःखीभी ऋतुके दर्शन समय तीनदिनतक स्त्रीकासंग न करै—यद्यपि स्पर्श के निषेधसेभी भोगका निषेधसिद्धथा क्योंकि ऋतुकी पहिली चाररात्रियोंको निंदित कहआये हैं—तथापि प्रायश्चित्तकीअधिकता और स्नातकके व्रतकेलिये फिर आरम्भ किया है और एकशय्यापर भी उसके संग न सोवे ४० ॥

रजसाभिप्लुतांनारींनरस्यह्युपगच्छतः । प्रज्ञातेजोबलंचक्षुरायुश्चैवप्रहीयते ४१ ॥

प० । रजसा अभिप्लुतां नारीं नरस्य हि उपगच्छतः प्रज्ञा तेजः बलं चक्षुः आयुः च एव प्रहीयते ॥

यो० । हि (यतः) रजसा अभिप्लुतां (युक्तां) नारीं उपगच्छतः नरस्य प्रज्ञा तेजः बलं चक्षुः (नेत्रं) चपुनः आयुः प्रहीयते (नश्यति) ॥

भा० । ता० । ऋतुवाली स्त्रीका संगकरतेहुये मनुष्य के बुद्धि तेज बल नेत्र और अवस्था ये सब नष्टहोजातेहैं तिससे ऋतुमती का संग न करे ४१ ॥

तांविवर्जयतस्तस्यरजसासमभिप्लुताम् । प्रज्ञातेजोबलंचक्षुरायुश्चैवप्रवर्द्धते ४२ ॥

प० । तां विवर्जयतः तस्य रजसा समभिप्लुतां प्रज्ञा तेजः बलं चक्षुः आयुः च एव प्रवर्द्धते ॥

यो० । रजसा समभिप्लुतां (युक्तां) तां (ऋतुमतीं) विवर्जयतः तस्य पुरुषस्य प्रज्ञा तेजः बलं — चक्षुः चपुनः आयुः प्रवर्द्धते ॥

भा० । ता० । रज (ऋतु) से युक्त उसस्त्रीको त्यागतेहुये पुरुषकीबुद्धि—तेज—बल—नेत्र—और अवस्था वृद्धिको प्राप्तहोतेहैं ४२ ॥

नाश्नीयाद्भार्ययासार्द्धंनैनामीक्षेतचाश्नतीम् ।
क्षुवतींजृम्भमाणांवानचासीनांयथासुखम् ४३ ॥

प० । न अश्नीयात् भार्यया सार्द्धं न एनां ईक्षेत च अश्नतीं क्षुवतीं जृम्भमाणां वा न च आसीनां यथासुखम् ॥

यो० । भार्यया सार्द्धं न अश्नीयात् — चपुनः एनां (भार्यां) अश्नतीं (भक्षयन्तीं) क्षुवतीं — वा जृम्भमाणां — चपुनः यथासुखं आसीनां न ईक्षेत ॥

भा० । ता० । स्त्री के संग भोजन न करे और भोजनकरतीहुई इसस्त्रीको न देखे और छिं-कती और जंभाईलेतीहुई और सुखपूर्वक एकांत में आनन्दसे बैठीहुईकोभी न देखे ४३ ॥

नाञ्जयन्तींस्वकेनेत्रेनचाभ्यक्तामनावृताम् ।
नपश्येत्प्रसवन्तींचतेजस्कामोद्विजोत्तमः ४४ ॥

प० । न अञ्जयन्तीं स्वके नेत्रे न च अभ्यक्तां अनावृतां न पश्येत् प्रसवन्तीं च तेजस्कामः द्विजोत्तमः ॥

यो० । तेजस्कामः द्विजोत्तमः स्वकेनेत्रे अञ्जयन्तीं चपुनः अभ्यक्तां (तैलाभ्यंगं कुर्वाणां) अनावृतां (नग्नां) चपुनः अपत्यं प्रसवन्तीं न ईक्षेत ॥

भा० । ता० । तेजकी कामनावाला द्विजोंमें उत्तम अपनेनेत्रोंको आँजतीहुई और तैलआदि से उबटनाकरतीहुई और नंगी—और पुत्रआदिको जनतीहुई स्त्रीको न देखे ४४ ॥

नान्नमद्यादेकवासाननग्नःस्नानमाचरेत् । नमूत्रंपथिकुर्वीतनभस्मनिनगोव्रजे ४५ ॥

प० । न अन्नं अद्यात् एकवासाः न नग्नः स्नानं आचरेत् न मूत्रं पथि कुर्वीत न भस्मनि न गोव्रजे ॥

यो० । एकवासा अन्नं न अद्यात् —नग्नः स्नानं न आचरेत् —पथि भस्मनि गोव्रजे मूत्रं न कुर्वीत ॥

भा० । ता० । एकवस्त्र धारणकिये अन्नको न खावे—और नग्नहोकर स्नान न करे—और मूत्र और मलका त्याग मार्ग—भस्म—और गोशालामें न करे—यह मूत्रकाग्रहण अधः कायाके मल काभी उपलक्षण (जतानेवाला) है ४५ ॥

नफालकृष्टेनजलेनचित्यांनचपर्वते । नजीर्णदेवायतनेनवल्मीकेकदाचन ४६ ॥

प० । नं फालकृष्टे नं जले नं चित्यां नं चं पर्वते नं जीर्णदेवायतने नं वल्मीके कदाचनं ॥

यो० । फालकृष्टे — जले — चित्यां — चपुनः पर्वते — जीर्णदेवायतने—वल्मीके (विण्मूत्रोत्सर्गं) कदाचन न कुर्यात्—प्रत्येकं निषेधः आवश्यकनिषेधार्थम् ॥

भा० । ता० । हलसे जुतेखेतमें—जलमें—और चिति (अग्नि के लिये ईंटोंकासमूह) में और पर्वतपर और पुराने देवमंदिरमें—बामीमें कभी भी मलमूत्र का त्याग न करे ४६ ॥

नससत्वेषुगर्तेषुनगच्छन्नापिचास्थितः । ननदीतीरमासाद्यनचपर्वतमस्तके ४७ ॥

प० । नं ससत्वेषु गर्तेषु नं गच्छन् नं अपि चं स्थितः नं नदीतीरं आसाद्य नं चं पर्वतमस्तके ॥

यो० । ससत्वेषु गर्तेषु — नगच्छनमन् — चपुनः न स्थितस्सन् अपि — नदीतीरं आसाद्य — चपुनः पर्वतमस्तके—मलमूत्रोत्सर्गं कुर्यात् ॥

भा० । जीववाले बिलोंमें—गमनकरता और खड़ाहुआ—और नदीके तटपर और पर्वत की शिखरपर मलमूत्र न करे ॥

ता० । जिनमें कोई जीवहो ऐसेबिलों में और गमनकरताहुआ और खड़ाहोकर और नदीके तटपर और पर्वतकी शिखरपर—मलमूत्रका त्याग न करे—यद्यपि पर्वत के निषेधसेही शिखरका निषेधभी सिद्धहोजाता फिर शिखरका निषेध इसलिये है कि शिखर भिन्न पर्वतपर विकल्प के लियेहै और वहांभी इच्छानुसार विकल्प तो अन्यथा भी प्राप्तथा सामान्यपर्वतपर निषेध व्यर्थ होजाता इससे यहां विकल्प व्यवस्थासेहै और अत्यन्तरोगीको पर्वतपर दोषनहीं है ४७ ॥

वाय्वग्निविप्रमादित्यमपःपश्यंस्तथैवगाः । नकदाचनकुर्वीतविण्मूत्रस्यविसर्जनम् ४८ ॥

प० । वाय्वग्निविप्रं आदित्यं अपः पश्यन् तथा एवं गाः नं कदाचनं कुर्वीत विण्मूत्रस्य विसर्जनम् ॥

यो० । वाय्वग्निविप्रं — आदित्यं — अपः तथैव गाः पश्यनसन् विण्मूत्रस्य विसर्जनम् कदाचन न कुर्वीत ॥

भा० । ता० । वायु अग्नि ब्राह्मण सूर्य—जल—और गौ इनको देखताहुआ विष्टा और मूत्र का त्याग कभी भी न करे—यद्यपि वायुका कोई रूपनहीं इससे दीखना असंभवहै तो भी वायु के प्रेरे हुये तृण और काष्ठआदि का यह निषेध है ४८ ॥

तिरस्कृत्योच्चरेत्काष्ठलोष्ठपत्रतृणादिना । नियम्यप्रयतोवाचंसंवीताङ्गोऽवगुण्ठितः ४९ ॥

प० । तिरस्कृत्य उच्चरेत् काष्ठलोष्ठपत्रतृणादिना नियम्य प्रयतः वाचं संवीताङ्गः अवगुण्ठितः ॥

यो० । काष्ठलोष्ठपत्रतृणादिना भूमिं तिरस्कृत्य (अन्तर्धाय) – प्रयतः संवीताङ्गः अवगुंठितः वाचं नियम्य उच्चरेत् ॥

भा० । काठ ढेला पत्ते तृण आदि से पृथिवी और देह और शिर को ढककर विष्टा और मूत्र का विसर्जन करे ॥

ता० । काठ ढेला पत्ते तृण आदि से पृथिवी को ढककर और मौन होकर और अंग को ढक कर और शिर का आच्छादन करके विष्टा और मूत्र का विसर्जन करै और काष्ठ पत्ते तृण शुष्क लेने क्योंकि वायुपुराणमें यह लिखा है कि शुष्क तृण काठ पत्ते–बांसकेदल–मिट्टी के पात्र इन से पृथ्वी को ढांपकर मलमूत्र का त्याग करै ४६ ॥

मूत्रोच्चारसमुत्सर्गंदिवाकुर्यादुदङ्मुखः । दक्षिणाभिमुखोरात्रौसंध्ययोश्चयथादिवा ५० ॥

प० । मूत्रोच्चारसमुत्सर्गं दिवा कुर्यात् उदङ्मुखः दक्षिणाभिमुखः रात्रौ संध्ययोः च यथा दिवा ॥

यो० । दिवा उदङ्मुखः मूत्रोच्चारसमुत्सर्गं कुर्यात् – रात्रौ दक्षिणाभिमुखः चपुनः संध्ययोः यथा दिवा तथा कुर्यात् ॥

भा० । दिन–दोनों संध्या–ओंमें उत्तर को और रात्रि में दक्षिणको मुखकरके मल मूत्र का त्यागकरै ॥

ता० । दिनमें और दोनों संध्याओंमें मलमूत्रका त्याग उत्तर को मुखकरके करै और रात्रिमें दक्षिणाभिमुख होकर–करै–धरणीधरने तो इस श्लोक में चौथापाद यह पढ़ा है–स्वस्थानाशाय चेतसः–बुद्धिके अनाशके लिये यह व्याख्या कीहै–सो पाठवृथाहै क्योंकि सब विद्वानोंने स्वीकार किये परंपरा के आम्नाय को छोड़कर अन्यपाठ को रचताहुआ धरणीधर मृषाहै ५० ॥

छायायामन्धकारेवारात्रावहनिवाद्विजः । यथासुखमुखःकुर्यात्प्राणबाधाभयेषुच ५१ ॥

प० । छायायां अंधकारे वा रात्रौ अहनि वा द्विजः यथासुखमुखः कुर्यात् प्राणबाधाभयेषु च ॥

यो० । छायायां वा अन्धकारे – रात्रौ – वा अहनि – चपुनः प्राणबाधाभयेषु – द्विजः यथासुखमुखःसन् मूत्रोच्चारसमुत्सर्गं कुर्यात् ॥

भा० । ता० । छाया में अन्धकार में और रात्रि में अर्थात् दिशाका ज्ञान जब न हो और चौर व्याघ्र आदि से जब प्राणोंका भयहो तब यथासुख मुख (चाहे जिधरको मुख करके) मलमूत्र का त्याग करै ५१ ॥

प्रत्यग्निंप्रतिसूर्यंचप्रतिसोमोदकद्विजान् । प्रतिगांप्रतिवातंचप्रज्ञानश्यतिमेहतः ५२ ॥

प० । प्रत्यग्निं प्रतिसूर्यं च प्रतिसोमोदकद्विजान् प्रतिगां प्रतिवातं च प्रज्ञा नश्यति मेहतः ॥

यो० । प्रत्यग्निं चपुनः प्रतिसूर्यं – प्रतिसोमोदकद्विजान् – प्रतिगां – चपुनः प्रतिवातं – मेहतः पुरुषस्य प्रज्ञा नश्यति ॥

भा० । ता० । अग्नि–सूर्य–चन्द्रमा–जल–और द्विज–गौ और पवन इनके संमुख होकर मलमूत्र का त्यागकरते हुये पुरुष की बुद्धि नष्टहोजातीहै तिससे इनके संमुखहोकर मलमूत्र का त्याग न करै–वाय्वग्नि इस श्लोक से दर्शन मने कर आयेहैं और यहांपर संमुख होकर न करै यहकहाहै और कोई आचार्य प्रतिवात पदके स्थान में प्रतिसंध्यं यह पढ़ते हैं अर्थात् संध्याके समय न करै ५२ ॥

नाग्निंमुखेनोपधमेन्नग्नांनेक्षेतचस्त्रियम् । नामेध्यंप्रक्षिपेदग्नौनचपादौप्रतापयेत् ५३ ॥

प० । न अग्निं मुखेन उपधमेत् नग्नां न ईक्षेत च स्त्रियम् न अमेध्यं प्रक्षिपेत् अग्नौ न च पादौ प्रतापयेत् ॥

यो० । मुखेन अग्निं न उपधमेत् — नग्नां स्त्रियं न ईक्षेत — अग्नौ अमेध्यं न प्रक्षिपेत चपुनः पादौ न प्रतापयेत् ॥

भा० । ता० । मुखसे अग्निको न धमे और मैथुनसे अन्यत्र नग्नस्त्रीको न देखे क्योंकि सांख्यायनऋषि ने यहीकहा है—और अपवित्र (मूत्रविष्ठाआदि) को अग्निमें न फेंके और अग्नि में पैर न तपावे—प्रतापयेत् इसप्रशब्द से साक्षात् पैर न तपावे और वस्त्रको अग्नि में तपाकर उस वस्त्रसे पैर तपानेमें कुछ दोषनहीं है ५३ ॥

अधस्तान्नोपदध्याच्चनचैनमभिलंघयेत् । नचैनंपादतःकुर्यान्नप्राणाबाधमाचरेत् ५४ ॥

प० । अधस्तात् न उपदध्यात् च न च एनं अभिलंघयेत् न च एनं पादतः कुर्यात् न प्राणाबाधं आचरेत् ॥

यो० । अधस्तात् अग्निं न उपदध्यात् — चपुनः एनं न अभिलंघयेत् — चपुनः एनं पादतः न कुर्यात् — प्राणाबाधं न आचरेत् ॥

भा० । खट्वाआदि के नीचे अग्निके अंगार व अंगीठी को न रक्खे - और अग्निका अवलंघन न करै और सोनेके समय पांवोंकीजगह अग्निको न रक्खे और जिसमें प्राणोंको पीडाहो ऐसा कर्म भी न करै ५४ ॥

नाश्नीयात्संधिवेलायांनगच्छेन्नापिसंविशेत् । नचैवप्रलिखेद्भूमिंनात्मनोपहरेत्स्रजम् ५५

प० । न अश्नीयात् संधिवेलायां न गच्छेत् न अपि संविशेत् न च एव प्रलिखेत् भूमिं न आत्मना उपहरेत् स्रजम् ॥

यो० । संधिवेलायां न अश्नीयात् न गच्छेत् न संविशेत् चपुनः भूमिं न प्रलिखेत् आत्मना स्वयं स्रजं न उपहरेत ॥

भा० । ता० । संध्याकेसमय भोजन—अन्यगांवमें जाना—और सोना—न करै और तृणआदिसे भूमिको न खोदे—और धारणकीहुई मालाको स्वयं न उतारे अर्थात् अन्यपुरुष परउतरादे ५५ ॥

नाप्सुमूत्रंपुरीषंवाष्ठीवनंवासमुत्सृजेत् । अमेध्यलिप्तमन्यद्वालोहितंवाविषाणिवा ५६ ॥

प० । न अप्सु मूत्रं पुरीषं वा ष्ठीवनं वा समुत्सृजेत् अमेध्यलिप्तं अन्यत् वा लोहितं वा विषाणि वा ॥

यो० । अप्सु (जलेषु) मूत्रं — वा पुरीषं — वा ष्ठीवनं वा अमेध्यलिप्तं अन्यत् — वा लोहितं वा विषाणि—न समुत्सृजेत् ॥

भा० । ता० । जलमें—मूत्र—विष्ठा—थूक—अपवित्र वस्तु जिसमें लगरही हो ऐसा अन्य वस्त्र आदि—और रुधिर और विष—इन सबको न फेंके ५६ ॥

नैकःस्वपेच्छून्यगेहेशयानंनप्रबोधयेत् । नोदक्ययाभिभाषेतयज्ञंगच्छेन्नचावृतः ५७ ॥

प० । न एकः स्वपेत् शून्यगेहे शयानं न प्रबोधयेत् न उदक्यया अभिभाषेत यज्ञं गच्छेत् न च आवृतः ॥

यो० । शून्यगेहे एकः न स्वपेत् शयानं न प्रबोधयेत् — उदक्ययासह न अभिभाषेत् — चपुनः य आहूतो न भवति स यज्ञं न गच्छेत् ॥

भा० । ता० । शून्य घरमें (जहां कोई मनुष्य न वसे) अकेला न सोवे और विद्या आदिसे अधिक सोतेहुये पुरुषको न जगावे—और रजस्वला स्त्रीके संग संभाषण न करे (न बोले) और अनावृत जिसका वरण न कियाहो (ऋत्विक्से अन्य) यज्ञमें न जाय—और देखनेके लिये तो इसे गौतमके वचनके अनुसार यथेच्छचलाजाय ५७ ॥

अग्न्यगारेगवांगोष्ठेब्राह्मणानांचसन्निधौ।स्वाध्यायेभोजनेचैवदक्षिणंपाणिमुद्धरेत् ५८

प० । अग्न्यगारे गवां गोष्ठे ब्राह्मणानां च सन्निधौ स्वाध्याये भोजने च एवं दक्षिणं पाणिं उद्धरेत् ॥

यो० । अग्न्यगारे — गवांगोष्ठे — चपुनः ब्राह्मणानांसन्निधौ — स्वाध्याये चपुनः भोजने — दक्षिणंपाणिं उद्धरेत् बहिष्कुर्यात् ॥

भा० । ता० । अग्निहोत्रके घरमें—गौवोंके गोष्ठ (स्थान) में—ब्राह्मण और गौवोंके समीप—स्वाध्याय (वेदका पाठ) और भोजनके समयमें दक्षिण हाथको उद्धार करै अर्थात् बाहर करै ५८ ॥

नावारयेद्गांधयन्तींनचाचक्षीतकस्यचित्।नदिवीन्द्रायुधंदृष्ट्वाकस्यचिद्दर्शयेद्बुधः ५९॥

प० । न आवारयेत् गां धयंतीं न च आचक्षीत कस्यचित् न दिवि इंद्रायुधं दृष्ट्वा कस्यचित् दर्शयेत् बुधः ॥

यो० । धयंतीं गां न आवारयेत् — चपुनः कस्यचित् न आचक्षीत — दिवि इंद्रायुधं दृष्ट्वा कस्यचित् बुधः न दर्शयेत् ॥

भा० । ता० । जल अथवा अन्यके दूधको पीतीहुई गौ को निवारण न करै और न किसी को कहै—और आकाशमें इंद्रके धनुषको देखकर किसी अन्यको पंडितजन न दिखावै ५९ ॥

नाधार्मिकेवसेद्ग्रामेनव्याधिबहुलेभृशम्।नैकःप्रपद्येताध्वानंनचिरंपर्वतेवसेत् ६० ॥

प० । न अधार्मिके वसेत् ग्रामे न व्याधिबहुले भृशम् न एकः प्रपद्येत अध्वानं न चिरं पर्वते वसेत् ॥

यो० । अधार्मिके ग्रामे न वसेत् — व्याधिबहुले ग्रामे भृशं न वसेत — एकः अध्वानं न प्रपद्येत् — पर्वते चिरं न वसेत् ॥

भा० । ता० । जिस ग्राममें अधार्मिक वसतेहों उसमें और जिसमें निंदित और चिकित्साके अयोग्य व्याधि अधिकहो वा उस ग्राममें बहुधा—न वसे—और अकेला मार्गमें न चले और चिरकालतक पर्वतमें न वसै ६० ॥

नशूद्रराज्येनिवसेन्नाधार्मिकजनावृते।नपाषण्डिगणाक्रान्तेनोपसृष्टेऽन्त्यजैर्नृभिः ६१ ॥

प० । न शूद्रराज्ये निवसेत् न अधार्मिकजनावृते न पाषंडिगणाक्रांते न उपसृष्टे अंत्यजैः नृभिः ॥

१ दर्शनार्थं कामं ॥

यो० । शूद्रराज्ये — अधार्मिकजनावृते — पार्षंडिगणाक्रांते — अंत्यजैः नृभिः उपसृष्टे (उपद्रुते) न निवसेत् ॥

भा० । ता० । जिसदेशमें शूद्र राजाहो वहां—और अधार्मिकजनों से आवृत (जहां चारों ओर अधर्मी बसतेहों) ग्राम आदिमें और जो पाषंडियों (वेदसे विरुद्धकर्मके कर्त्ता) से आक्रांत (वशीकृत) ग्राम आदिमें और जहां अंत्यज (चांडाल) मनुष्य चारों ओर रहतेहों वहां—मनुष्य न वसै—क्योंकि ये सब उपद्रव के स्थान होतेहैं ६१ ॥

नभुंजीतोद्धृतस्नेहंनातिसौहित्यमाचरेत् । नातिप्रगेनातिसायंनसायंप्रातराशितः ६२॥

प० । न भुंजीत उद्धृतस्नेहं न अतिसौहित्यं आचरेत् न अतिप्रगे न अतिसायं न सायं प्रातः आशितः ॥

यो० । उद्धृतस्नेहं (पिण्याकादि) न भुंजीत — अतिसौहित्यं न आचरेत् — न अतिप्रगे न अतिसायं — भुंजीत — प्रातः आशितः (भुक्तः) पुरुषः सायं न भुंजीत ॥

भा० । जिस तिलआदि द्रव्यमेंसे स्नेह निकासलियाहो उसको न खाय—और अत्यंत तृप्तिसे भोजन न करै—और अति प्रभात और अति सायंकालको भोजन न करै—और प्रातःकाल अत्यंत भोजनकरलिया होय तो सायंकालको फिर भोजन न करै ॥

ता० । जिसमेंसे स्नेह निकासलियाहो उसे (खल आदि) न भक्षणकरै—और अत्यंत तृप्ति से भोजन न करै क्योंकि विष्णुपुराणमें यह लिखाहै कि आधे उदरको अन्नसे और चौथाई उदर को जलसे पूर्णकरै (भरै) और चौथाईको प्राण वायुके चलनेकेलिये शेषरहनेदे—और सूर्योदय और सूर्यास्तके समय भोजन न करै—और यदि प्रातःकाल अत्यंत तृप्तिहोगई होय तो सायंकाल को भोजन न करै ६२ ॥

नकुर्वीतवृथाचेष्टांनवार्यञ्जलिनापिवेत् । नोत्सङ्गेभक्षयेद्भक्ष्यान्नजातुस्यात्कुतूहली६३॥

प० । न कुर्वीत वृथाचेष्टां न वारि अंजलिना पिबेत् न उत्संगे भक्षयेत् भक्ष्यान् न जातु स्यात् कुतूहली ॥

यो० । वृथाचेष्टां न कुर्वीत — अंजलिना वारि न पिबेत् — उत्संगे भक्ष्यान न भक्षयेत् — जातु (कदाचित् अपि) कुतूहली (प्रयोजनमंतराजिज्ञासुः) न स्यात् ॥

भा० । ता० । वृथाचेष्टा (जिससे इसलोक वा परलोक का प्रयोजन न हो) को न करै—और अंजलियोंसे जलको न पीवे—और उत्संग (जंघाओंपर) में रखकर मोदक (लड्डू) आदिको न खाय—और कभी भी कुतूहल न करै अर्थात् विना प्रयोजन यह क्याहै यह जाननेकी इच्छा न करै ६३ ॥

ननृत्येदथवागायेन्नवादित्राणिवादयेत् । नास्फोटयेन्नचक्ष्वेडेन्नचरक्तोविरावयेत् ६४ ॥

प० । न नृत्येत् अथवा गायेत् न वादित्राणि वादयेत् न आस्फोटयेत् न च क्ष्वेडेत् न च रक्तः विरावयेत् ॥

---

१ जठरंपूरयेदर्द्धमन्नैर्भागंजलेनच वायोःसंचारणार्थंतु चतुर्थमवशेषयेत् ॥

यो० । न नृत्येत् अथवा न गायेत्--वादित्राणि न वादयेत्--न आस्फोटयेत्--चपुनः न क्ष्वेडेत् चपुनः रक्तःसन् न विरावयेत् ॥

भा० । ता० । शास्त्रसे विरुद्ध नृत्य गीत और वादित्र (बाजा बजाना) न करै और आस्फोटन (हाथोंसे छातीको ताडना) न करै और क्ष्वेडन (अप्रकट दांतोंका शब्द) न करै और अनुरागसे रासभके संमुख शब्द न करै ६४ ॥

नपादौधावयेत्कांस्येकदाचिदपिभाजने । नभिन्नभाण्डेभुञ्जीतनभावप्रतिदूषिते ६५ ॥

प० । न पादौ धावयेत् कांस्ये कदाचित् अपि भाजने न भिन्नभांडे भुंजीत् न भावप्रतिदूषिते ॥

यो० । कांस्ये भाजने कदाचित् अपि पादौ न धावेत् भिन्नभांडे भावप्रतिदूषिते भांडे न भुंजीत ॥

भा० । ता० । कांसी के पात्र में कभी भी पैर न धोवे—और फूटे पात्रमें और भावसे दूषित हो अर्थात् जिसमें किसीप्रकार की मनको शंकाहो उस पात्रमें भोजन न करे—यदि तांबा चांदी सोने का पात्र फूटाहोय तो उसमें भोजन का दोष इसे पैठीनसी के वचनसे नहीं है[1] ६५ ॥

उपानहौचवासश्चधृतमन्यैर्नधारयेत् । उपवीतमलंकारंस्रजंकरकमेवच ६६ ॥

प० । उपानहौ च वासः च धृतं अन्यैः न धारयेत् उपवीतं अलंकारं स्रजं करकं एव च ॥

यो० । उपानहौ चपुनः वासः उपवीतं अलंकारं स्रजं चपुनः करकं अन्यैः धृतं न धारयेत ॥

भा० । ता० । अन्यके धारणकिये उपानह (जूते) वस्त्र—यज्ञोपवीत—भूषण—पुष्पमाला—और कमंडलु—इनको धारण न करै ६६ ॥

नाविनीतैर्व्रजेद्धुर्यैर्नचक्षुद्व्याधिपीडितैः । नभिन्नशृङ्गाक्षिखुरैर्नबालधिविरूपितैः ६७ ॥

प० । न अविनीतैः व्रजेत् धुर्य्यैः न च क्षुद्व्याधिपीडितैः न भिन्नशृंगाक्षिखुरैः न बालधिविरूपितैः ॥

यो० । अविनीतैः क्षुद्व्याधिपीडितैः–भिन्नशृंगाक्षिखुरैः बालधिविरूपितैः धुर्य्यैः न व्रजेत् ॥

भा० । ता० । जिनको शिक्षा न दीहो—और जो क्षुधा व्याधिसे पीडितहों और जिनके शृंग नेत्र खुर नष्टहोगयेहों और जिनके बालधि (कंधेके बाल) विरूपहों—ऐसे धुर्य्यों (घोड़े) पर चढ़कर गमन न करै ६७ ॥

विनीतैस्तुव्रजेन्नित्यमाशुगैर्लक्षणान्वितैः । वर्णरूपोपसंपन्नैःप्रतोदेनातुदन्भृशम् ६८ ॥

प० । विनीतैः तु व्रजेत् नित्यं आशुगैः लक्षणान्वितैः वर्णरूपोपसंपन्नैः प्रतोदेन अतुदन भृशं ॥

यो० । तुपुनः विनीतैः आशुगैः लक्षणान्वितैः वर्णरूपोपसंपन्नैः धुर्य्यैः प्रतोदेन भृशं अतुदनसन् नित्यं व्रजेत् ॥

भा० । ता० । और दमन कियेहुये—शीघ्र चलनेवाले—और शुभसूचक लक्षणों से संयुक्त—और जिनका वर्ण और रूप श्रेष्ठहो ऐसे धुर्य्योंसे प्रतोदसे अत्यंत पीडाको न देताहुआ पुरुष नित्य गमन करै ६८ ॥

---

१ ताम्ररजतसुवर्णानां भिन्नं अभिन्नं वा ॥

बालातपःप्रेतधूमोवर्ज्यंभिन्नंतथासनम् । नछिन्द्यान्नखलोमानिदन्तैर्नोत्पाटयेन्नखान् ६९

प० । बालातपः प्रेतधूमः वर्ज्यं भिन्नं तथा आसनं न छिन्द्यात् नखलोमानि दंतैः न उत्पाटयेत् नखान् ॥

यो० । बालातपः प्रेतधूमः तथाभिन्नं आसनं वर्ज्यं--नखलोमानि न छिन्द्यात् दंतैः नखान न उत्पाटयेत् ॥

भा० । ता० । बालातप (तीनमुहूर्त दिनचढ़े तक सूर्यकी धूप) क्योंकि मेधातिथिने यही कहाहै प्रेतधूम (फुकतेहुये प्रेतका धूम) फटाहुआ आसन--इनको वर्जदे और नख और रोम इनका छेदन न करे और दंतोंसे नखोंका न उखाड़े ६९ ॥

नमृल्लोष्ठंचमृद्नीयान्नच्छिन्द्यात्करजैस्तृणम् । नकर्मनिष्फलंकुर्यान्नायत्यामसुखोदयम् ७०

प० । न मृल्लोष्ठं च मृद्नीयात् न छिन्द्यात् करजैः तृणं न कर्म निष्फलं कुर्यात् न आयत्यां असुखोदयम् ॥

यो० । मृल्लोष्ठं न मृद्नीयात् -- करजैः (नखैः) तृणं न छिन्द्यात् -- निष्फलं आयत्याम् असुखोदयं कर्म न कुर्यात् ॥

भा० । मट्टीके ढेलेको न मले--नखों से तृणोंका छेदन न करे--और निष्फल और जिससे आगे को दुःखनिकले ऐसा कर्म न करे ॥

ता० । विना प्रयोजन मट्टीकेढेलाको हाथोंसे न मले और नखोंसे तृणोंकोछेदन न करे क्योंकि आपस्तम्बने इस[2] वचन से निषिद्धकिये हैं--यद्यपि (नकुर्वीत वृथाचेष्टां) इससेही इसका भी निषेधसिद्धथा तथापि अधिक प्रायश्चित्त और दोषदिखाने के लिये फिर कहाहै इसीसे आगे भी लिखेंगे कि लोष्टका मलनेवाला निषिद्धहै--और जिस कर्ममें दृष्ट अथवा अदृष्टफलनहो ऐसा कर्म भी न करे--यद्यपि यहभी न कुर्वीत वृथाचेष्टां अर्थात् वृथाचेष्टा न करे इससेही इसकाभी निषेध होजाता तथापि उससे देहकी वृथा चेष्टा निषिद्ध है और यहांपर मनका वृथा संकल्प निषिद्धहै इससे पुनः उक्तिदोषनहींहै--और जो कर्म आगामिकाल (भविष्य)में सुखदायी नहो जैसे अजीर्णपर भोजन उसकोभी न करे ७० ॥

लोष्ठमर्दीतृणच्छेदीनखखादीचयोनरः । सविनाशंव्रजत्याशुसूचकोऽशुचिरेवच ७१॥

प० । लोष्ठमर्दी तृणच्छेदी नखखादी च यः नरः सः विनाशं व्रजति आशु सूचकः अशुचिः एव च ॥

यो० । यः नरः लोष्ठमर्दी तृणच्छेदी--चपुनः नखखादी सूचकः चपुनः अशुचिः (भवति) स आशु विनाशं व्रजति--शीघ्रंम्रियते इत्यर्थः ॥

भा० । ता० । ढेलेको मलनेवाला--तृणोंको छेदन (तोड़ना) करनेवाला--और दांतोंसेनखोंके खानेवाला--और सूचक (चुगल) और जो अशुद्धरहै--ऐसा जो मनुष्य है वह शीघ्रही नष्टहोता है--अर्थात् ये सब कुलक्षण नाशकरनेवाले होतेहैं--इनको न करे ७१ ॥

---

१ सत्रमुहूर्त्तत्रयम् ॥

२ नाकारणंमृल्लोष्ठंमृद्नीयात् तृणानिच नाछिन्द्यात् ॥

नविगर्ह्यकथांकुर्याद्बहिर्माल्यंनधारयेत्। गवांचयानंपृष्ठेनसर्वथैवविगर्हितम् ७२ ॥

प०। न विगर्ह्य कथां कुर्यात् बहिः माल्यं न धारयेत् गवां च यानं पृष्ठेन सर्वथा एव विगर्हितम् ॥

यो०। विगर्ह्य कथां न कुर्यात्—माल्यं बहिः न धारयेत्—चपुनः पृष्ठेन गवांयानं-सर्वथा विगर्हितं भवति--अतस्तदपि न कुर्यात् ॥

भा०। ता०। वाद विवादके अभिनिवेश (आग्रहसे) शास्त्र वा लौकिक अर्थोंकी कथा न करै-और केशों के समूह से बाहिरमालाको न धारै-और गौओं (बैल) की पीठपर चढ़कर चलना सर्वथा निंदित है अर्थात् कपड़ाआदिको पीठपर रखकर भी चलना निषिद्ध है और गौ जिनको लेचलें ऐसे रथ-गाड़ीपर चढ़कर चलनेमें कुछ दोषनहींहै ७२ ॥

अद्वारेणचनातीयाद्ग्रामंवावेश्मवावृतम्। रात्रौचवृक्षमूलानिदूरतःपरिवर्जयेत् ७३॥

प०। अद्वारेण च न अतीयात् ग्रामं वा वेश्म वा आवृतं रात्रौ च वृक्षमूलानि दूरतः परिवर्जयेत् ॥

यो०। आवृतं ग्रामं वा वेश्म (गृहं) अद्वारेण न अतीयात् (नविशेत्) चपुनः रात्रौ वृक्षमूलानिदूरतः परिवर्जयेत् ॥

भा०। ता०। प्राकार (परकोटाआदि) से ढकेहुये ग्राम वा घरमें प्राकारआदिका अवलंघन करके न घुसे और रात्रिकेसमय वृक्षों के नीचे टिकनेको दूरसे त्यागदे ७३ ॥

नाक्षैःक्रीडेत्कदाचित्तुस्वयंनोपानहौहरेत्। शयनस्थोऽपिभुञ्जीतनपाणिस्थंनचासने ७४

प०। न अक्षैः क्रीडेत् कदाचित् तु स्वयं न उपानहौ हरेत् शयनस्थः अपि भुंजीत न पाणिस्थं न च आसने ॥

यो०। कदाचित् तु (अपि) अक्षैः न क्रीडेत्—स्वयं उपानहौ आत्महस्तादिना न हरेत्—शयनस्थः—मनुष्यः न भुंजीत—पाणिस्थं अन्नं चपुनः आसने भोजनपात्रं धृत्वा न भुंजीत ॥

भा०। ता०। कभी हँसीसेभी अक्षों (फांसे) से न खेले और अपनेउपानह हाथसे न लेचले शय्यापर बैठकर भोजन न करै और हाथपर भोजनको रखकर और भोजन के पात्रको आसन पर रखकर भोजन न करै ७४ ॥

सर्वंचतिलसंबद्धंनाद्यादस्तमितेरवौ। नचनग्नःशयीतेहनचोच्छिष्टःक्वचिद्व्रजेत् ७५ ॥

प०। सर्वं च तिलसंबद्धं न अद्यात् अस्तमिते रवौ न च नग्नः शयीत इह न च उच्छिष्टः क्वचित् व्रजेत् ॥

यो०। रवौ अस्तं इते (प्राप्ते) सति यत् तिलसंबद्धं (कृसरआदि) तत्सर्वं न अद्यात् नग्नः (शाटिकारहितः) इह (जगति) न शयीत—उच्छिष्टः सन् क्वचित् न व्रजेत् ॥

भा०। ता०। जो कुछ तिलसे मिला पदार्थ है उस सबको सूर्य के छिपने पर न खाय-और नग्न हुआ अर्थात् धोतीके धारणकिये विना यहां (शय्या आदिपर) न सोवे-और उच्छिष्ट हुआ दूसरी जगह न जाय ७५ ॥

आर्द्रपादस्तुभुञ्जीतनार्द्रपादस्तुसंविशेत् । आर्द्रपादस्तुभुञ्जानोदीर्घमायुरवाप्नुयात् ७६

प० । आर्द्रपादः तु भुंजीत न आर्द्रपादः तु संविशेत् आर्द्रपादः तु भुंजानः दीर्घं आयुः अवाप्नुयात् ॥

यो० । तुपुनः आर्द्रपादः भुंजीत आर्द्रपादः पुरुषः न संविशेत् — यतः आर्द्रपादः सन् भुंजानः पुरुषः दीर्घं आयुः अवाप्नुयात् — (लभते) ॥

भा० । ता० । जलसे आर्द्र (भीजे) हैं पाद जिसके ऐसा पुरुष भोजनकरै और पादहैं भीगे जिसके ऐसा पुरुष शयन (सोना) न करै—क्योंकि जो पाद धोकर भोजन करता है वह दीर्घ (अधिक) अवस्था को प्राप्तहोताहै ७६ ॥

अचक्षुर्विषयंदुर्गंनप्रमाद्येतकर्हिचित् । नविण्मूत्रंनिरीक्षेतनबाहुभ्यांनदींतरेत् ७७ ॥

प० । अचक्षुर्विषयं दुर्गं न प्रमाद्येत कर्हिचित् न विण्मूत्रं निरीक्षेत न बाहुभ्यां नदीं तरेत् ॥

यो० । अचक्षुर्विषयं दुर्गं कर्हिचित् न प्रमाद्येत (न आक्रमेत) विण्मूत्रं न निरीक्षेत — बाहुभ्यां नदीं न तरेत ॥

भा० । ता० । वृक्षलता आदिसे गहन (जिसकी भूमि न दीखै) वनमें न जाय क्योंकि उसमें छिपेहुये सर्पआदिकी संभावना होसक्ती है और विष्ठा और मूत्रकोभी न देखे—और अपनी भुजाओं से नदीको न तरै ७७ ॥

अधितिष्ठेन्नकेशांस्तुनभस्मास्थिकपालिकाः ।
नकार्पासास्थिनतुषान्दीर्घमायुर्जिजीविषुः ७८ ॥

प० । अधितिष्ठेत् न केशान् तु न भस्मास्थिकपालिकाः न कार्पासास्थि न तुषान् दीर्घं आयुः जिजीविषुः ॥

यो० । दीर्घं आयुः जिजीविषुः पुरुषः केशान् — भस्मास्थिकपालिकाः न अधितिष्ठेत् कार्पासास्थि — तुषान् न अधितिष्ठेत् ॥

भा० । ता० । दीर्घ (अधिक) अवस्थातक जीवन की इच्छाकरनेवाला पुरुष केश—भस्म—अस्थि (हाड़) कपालिका (फूटेहुये मट्टीकेपात्रके टुकड़े) कपास के अस्थि (लकड़ी) और तुष इनपर न बैठे—अर्थात् ये सब बैठनेसे अवस्थाको नष्टकरतेहैं ७८ ॥

नसंवसेच्चपतितैर्नचाण्डालैर्नपुल्कसैः । नमूर्खैर्नावलिप्तैश्चनान्त्यैर्नान्त्यावसायिभिः ७९

प० । न संवसेत् च पतितैः न चाण्डालैः न पुल्कसैः न मूर्खैः न अवलिप्तैः च न अन्त्यैः न अन्त्यावसायिभिः ॥

यो० । पतितैः चाण्डालैः पुल्कसैः चपुनः अवलिप्तैः अन्त्यैः अन्त्यावसायिभिःसह न संविशेत् (नकुर्यात्) ॥

भा० । पतित—चांडाल—पुल्कस—मूर्ख—धन आदिसे अभिमानी—अन्त्य और अन्त्यावसायी—इनके संग एक स्थानमें न बैठे ॥

ता० । अन्यग्रामका वासी भी इनका संग न वसे अर्थात् एक वृक्षकी छाया आदि में इनके समीप न बैठे यही अधार्मिक ग्राममें न वसे—इनपूर्वोक्तसे भेदहै कि पतित—चांडाल पुल्कस

(जो निषादसे शूद्रा में पैदाहो) यही इस वचनसे आगे मनु कहेंगे—मूर्ख—अवलिप्त (जिनको धनका अभिमानहो) और अन्त्यज (रजकआदि) अन्त्यावसायी (जो निषादकी स्त्रीमें चांडालसे पैदाहों) क्योंकि इस वचनसे मनु आगे यहीकहेंगे ७९ ॥

नशूद्रायमतिंदद्यान्नोच्छिष्टंनहविष्कृतम् । नचास्योपदिशेद्धर्मंनचास्यव्रतमादिशेत् ८०

प० । न शूद्राय मतिं दद्यात् न उच्छिष्टं न हविष्कृतम् न च अस्य उपदिशेत् धर्मं न च अस्य व्रतं आदिशेत् ॥

यो० । शूद्राय मतिं उच्छिष्टं—हविष्कृतं न दद्यात चपुनः अस्य (शूद्रस्य) धर्मं न उपदिशेत्—चपुनः अस्य व्रतं अपि न आदिशेत (उपदिशेत) ॥

भा० । शूद्रको मति—उच्छिष्ट—और हविःका शेष न दे—और धर्मका उपदेश और प्रायश्चित्त उपदेश भी शूद्रको न दे ॥

ता० । शूद्रको मति न दे अर्थात् लौकिक अच्छा उपदेश न करै क्योंकि धर्मके उपदेशका पृथक् निषेधहै—और दाससे अन्य शूद्रको उच्छिष्ट न दे क्योंकि दासको उच्छिष्ट देना आगे मनुजी कहेंगे—यद्यपि द्विजके उच्छिष्ट भोजनहै यहतो शास्त्रसे विधिहै और दाताको शूद्र आदिको उच्छिष्टदेनेका निषेध है तथापि यथासंभव इनका विषय विभाग देखना चाहिये—और हविः (साकल्य) का शेष भी शूद्रको न दे—और शूद्रको धर्मका उपदेश भी न करै और प्रायश्चित्त रूप व्रतका उपदेश भी इसको साक्षात् न करै किंतु ब्राह्मणको बीचमें करके प्रायश्चित्त बतादे—क्योंकि अंगिरोऋषि ने यह कहाहै कि धर्म्मपूर्वक शूद्रको मिलकर मध्य में ब्राह्मणको बैठाकर प्रायश्चित्तका उपदेशकरै अर्थात् संपूर्ण शूद्रके कर्तव्य धर्मको बतावे क्योंकि प्रायश्चित्त पद धर्ममात्रका उपलक्षणहै ८० ॥

योह्यस्यधर्ममाचष्टेयश्चैवादिशतिव्रतम् । सोऽसंवृतंनामतमःसहतेनैवगच्छति ८१ ॥

प० । यः हि अस्य धर्मं आचष्टे यः च आदिशति वै व्रतम् सः असंवृतं नाम तमः सह तेन एव गच्छति ॥

यो० । यः (ब्राह्मणः) अस्य (शूद्रस्य) धर्मं आचष्टे चपुनः यः व्रतं आदिशति सः असंवृतं नाम तमः (नरकं) तेन (शूद्रेण) सह एव गच्छति ॥

भा० । ता० । जो ब्राह्मण शूद्रको धर्म कहताहै और जो शूद्रको प्रायश्चित्तका उपदेश देताहै वे दोनों ब्राह्मण—उस शूद्रकेही साथ असंवृत नाम गहन नरकमें जातेहैं—पिछले पांचोंमें दोकाही कथन प्रायश्चित्तकी अधिकताके लियेहै ८१ ॥

नसंहताभ्यांपाणिभ्यांकण्डूयेदात्मनःशिरः । नस्पृशेच्चैतदुच्छिष्टोनचस्नायाद्विनाततः ८२

प० । न संहताभ्यां पाणिभ्यां कंडूयेत् आत्मनः शिरः न स्पृशेत् च एतत् उच्छिष्टः न च स्नायात् विना ततः ॥

---

१ जातोनिषादाच्छूद्रायां जात्याभवतिपुल्कसः ॥
२ निषादस्त्रीतुचांडालात्पुत्रमंत्यावसायिनम् ॥
३ समगोत्वरतयाउच्छिष्टं अस्मंदातव्यम् ॥
४ तथाशूद्रं समासाद्य सदाधर्मपुरस्सरं अंतरा ब्राह्मणंकृत्वा प्रायश्चित्तं समादिशेत् ॥

यो० । संहताभ्यां पाणिभ्यां आत्मनः शिरः न कंडूयेत् — उच्छिष्टःसन् एतत् शिरः न स्पृशेत् — चपुनः ततः (शिरः) विना न स्नायात् ॥

भा० । मिलेहुये हाथोंसे अपने शिरको न खुजावे—और उच्छिष्टहुआ अपने शिरका स्पर्श भी न करे—और विनाशिर भिगोये स्नान भी न करै ॥

ता० । संहत (मिले) अपने दोनों हाथोंसे शिरको न खुजावे—और उच्छिष्टहुआ अपने शिरका स्पर्श भी न करे—और शिरके विना भिगोये स्नान भी न करै अर्थात् नित्य और नैमित्तिक स्नान न करै—किसी दृष्ट अर्थके लिये स्नानमें गात्रका प्रक्षालन करनेमें शिरको न भिगोवे तो कुछ दोष नहींहै—और यह स्नान भी उसीकोहै जो स्नान करनेमें समर्थहो—और अशक्तको तो जाबालि ऋषिने विना शिरकेही कर्म करनेके लिये कहाहै ८२ ॥

केशग्रहान्प्रहारांश्चशिरस्येतान्विवर्जयेत्।शिरःस्नातश्चतैलेननाङ्गंकिंचिदपिस्पृशेत् ८३

प० । केशग्रहान् प्रहारान् च शिरसि एतान् विवर्जयेत् शिरःस्नातः च तैलेन न अंगं किंचित् अपि स्पृशेत् ॥

यो० । केशग्रहान् चपुनः प्रहारान् एतान् शिरसि विवर्जयेत् चपुनः शिरःस्नातः पुरुषः तैलेन किंचित् अपि अंगं न स्पृशेत् — अथवा तैलेनशिरस्नातः तैलेन किंचित् अपि अंगं न स्पृशेत् अत्रतैलेनेतिपदं देहलीदीपकन्यायेन उभयत्र संबध्यते ॥

भा० । क्रोधसे केशोंकाग्रहण और केशोंपरप्रहार इनदोनोंको वर्जदे—और शिरसहित स्नान करके किसीअंगका भी तैलसे स्पर्श न करै ॥

ता० । क्रोध से केशोंका ग्रहण और केशोंपर प्रहार इनको वर्जदे अर्थात् प्रीतिपूर्वक रति के समय कामिनीके केशोंका ग्रहण निषिद्धनहीं है और शिरसहित स्नानकरके अथवा तैलसे शिर सहित स्नानकरके किसी अंगकाभी तैलसे स्पर्श न करै इस दूसरे अर्थ में तैलपद दोनों ओर लगालेना—इसीसे जो शिरगात्रि में विनातैल शिरसहित स्नानकरते हैं उनको तैलसे पादों का अभ्यंग दूषितनहींहै ८३ ॥

नराज्ञःप्रतिगृह्णीयादराजन्यप्रसूतितः । सूनाचक्रध्वजवतांवेषेणैवचजीवताम् ८४ ॥

प० । न राज्ञः प्रतिगृह्णीयात् अराजन्यप्रसूतितः सूनाचक्रध्वजवतां वेषेण एव च जीवताम् ॥

यो० । अराजन्यप्रसूतितः राज्ञः सकाशात् न प्रतिगृह्णीयात् सूनाचक्रध्वजवतां चपुनः वेषेण एव जीवतां — न प्रतिगृह्णीयात् ॥

भा० । जो राजा क्षत्रियसे पैदा न हो उस राजा का—और सौनिक (कसाई) तेली—करार और वेश बनाकर जीविका करनेवाले (नर्तक आदि) इन का प्रतिग्रह न ले ॥

ता० । क्षत्रियसे अन्य से पैदा हुये राजासे प्रतिग्रह न ले—और प्राणियों के वध (हिंसा) करने वाले अर्थात् जो पशुओं को मारकर मांस बेचकर जीविका करतेहैं चक्रवाले (तेली) ध्वज वाले (मदिरा बेचकर जीने वाले करारजिसे कहतेहैं) और वेश से जीविका करतेहैं अर्थात् जो पुरुष वा स्त्री किसी नर्तक आदि का वेश (रूप) बनाकर जीतेहैं—इनका भी प्रतिग्रह न ले ८४ ॥

१ आशिरस्कंभवेत्स्नानं स्नानाशक्तावकर्मणाम् ॥

दशसूनासमंचक्रंदशचक्रसमोध्वजः । दशध्वजसमोवेशोदशवेशसमोनृपः ८५ ॥

प० । दशसूनासमं चक्रं दशचक्रसमः ध्वजः दशध्वजसमः वेशः दशवेशसमः नृपः ॥

यो० । चक्रं दशसूनासमं — ध्वजः दशचक्रसमः — वेशः दशध्वजसमः — नृपः दशवेशसमः — भवतीति सर्वत्र योज्यम् ॥

भा० । दशहिंसकों के समान एकचक्र—और दश चक्रोंके समान एकध्वज—और दशध्वजों के समान एक वेश—और दश वेशोंके समान एक राजा होताहै ॥

ता० । इस श्लोकमें सूना आदि शब्दोंसे सूना आदिके करनेवाले लेतेहैं—दशसूना करने वालोंके प्रतिग्रह लेनेमें जितना दोषहै उतनाही एक चक्रके प्रतिग्रह में है—और दश चक्रोंके प्रतिग्रहमें जो दोषहै उतनाही एकध्वजके प्रतिग्रहमेंहै—और जितना दशध्वजोंके प्रतिग्रहमें दोष है उतनाही एक वेशके प्रतिग्रहमेंहै—और जितना दश वेशोंके प्रतिग्रह में दोषहै उतनाही एक राजाके प्रतिग्रहमेंहै—यहांगोविंराजतो—दशवेश्यासमोनृपः—यह पाठ पढ़तेहैं अर्थात् दश वेश्याओंके तुल्य राजाके प्रतिग्रह में दोषहै—और मेधातिथि आदि तो पूर्वोक्तही पाठपढ़तेहैं ८५ ॥

दशसूनासहस्राणियोवाहयतिसौनिकः । तेनतुल्यःस्मृतोराजाघोरस्तस्यप्रतिग्रहः ८६

प० । दश सूनासहस्राणि यः वाहयति सौनिकः तेन तुल्यः स्मृतः राजा घोरः तस्य प्रतिग्रहः ॥

यो० । यः सौनिकः दशसूनासहस्राणि वाहयति (यतः) राजा तेन तुल्यः (मन्वादिभिः) स्मृतः (अतः) तस्य प्रतिग्रहः घोरः भवतीतिशेषः ॥

भा० । ता० । जो सौनिक इसप्रकार संकलना (जोड़) से दशसहस्र सूना (हत्या) अपनेनिमित्त प्रतिदिन करताहै उसके तुल्य राजा मनु आदिने कहाहै इससे उसका प्रतिग्रह घोर (भयानक) है ८६ ॥

योराज्ञःप्रतिगृह्णातिलुब्धस्योच्छास्त्रवर्तिनः । सपर्यायेणयातीमान्नरकानेकविंशतिम् ८७

प० । यः राज्ञः प्रतिगृह्णाति लुब्धस्य उच्छास्त्रवर्तिनः सः पर्यायेण याति इमान् नरकान् एकविंशतिम् ॥

यो० । यः लुब्धस्य उच्छास्त्रवर्तिनः राज्ञः सकाशात् प्रतिगृह्णाति सः पर्यायेण (क्रमशः) इमान् एकविंशतिं नरकान् याति (गच्छति) ॥

भा० । ता० । जो मनुष्य लोभी और शास्त्र के अवलंघनसे वर्तते हुये राजा का प्रतिग्रहलेता है वह क्रमसे इन इक्कीस नरकों में जाताहै ८७ ॥

तामिस्रमन्धतामिस्रंमहारौरवरौरवौ । नरकंकालसूत्रंचमहानरकमेवच ८८ ॥
संजीवनंमहावीचिंतपनंसंप्रतापनम् । संहातंचसकाकोलंकुड्मलंप्रतिमूर्तिकम् ८९ ॥
लोहशंकुमृजीषंचपन्थानंशाल्मलींनदीम् । असिपत्रवनंचैवलोहदारकमेवच ९० ॥

प० । तामिस्रं अन्धतामिस्रं महारौरवरौरवौ नरकं कालसूत्रं च महानरकं एव च ॥

प० । संजीवनं महावीचिं तपनं संप्रतापनं संहातं च सकाकोलं कुड्मलं प्रतिमूर्तिकम् ॥

प० । लोहशंकुं ऋजीषं च पंथानं शाल्मलीम् नदीम् असिपत्रवनं च एव लोहदारकं एव च ॥

यो० । तामिस्रं — अन्धतामिस्रं — महारौरवरौरवौ — नरकं कालसूत्रं — चपुनः महानरकं + संजीवनं — महावीचिं —

तपनं--संप्रतापनं — सकाकोलं — संहातं--कुड्मलं--प्रतिमूर्तिकम्--लोहशंकुं--चपुनःऋजीषं पंथानं--शाल्मलीं नदीं--चपुनः असिपत्रवनं — चपुनः लोहदारकं — क्रमेण इमान् नरकान् यातीत्यर्थः ॥

भा० । ता० । पिछले श्लोकमें जो इक्कीस नरक सामान्यसे कहे हैं उनके नाम तीनश्लोकों से दिखातेहैं और इनकास्वरूप पुराणों में विस्तारसे कहाहै इससे यहांपर नहीं कहते हैं–जो उक्त राजाका प्रतिग्रह लेताहै वह इनइक्कीसनरकोंमें जाताहै–कि तामिस्र १ अन्धतामिस्र २ महारौरव ३ रौरव ४ नरक ५ कालसूत्र ६ महानरक ७ संजीवन ८ महावीचि ९ तपन १० संप्रतापन ११ संहात १२ काकोल १३ कुड्मल १४ प्रतिमूर्त्तिक १५ लोहशंकु १६ ऋजीष-पंथा १७ शाल्मली १८ वैतरणीनदी १९ असिपत्रवन २० और लोहदारक२१+८८।८९।९०

एतद्विदन्तोविद्वांसोब्राह्मणाब्रह्मवादिनः ।
नराज्ञःप्रतिगृह्णन्तिप्रेत्यश्रेयोऽभिकांक्षिणः ९१ ॥

प० । एतत् विदंतः विद्वांसः ब्राह्मणाः ब्रह्मवादिनः न राज्ञः प्रतिगृह्णंति प्रेत्य श्रेयोभिकांक्षिणः ॥

यो० । प्रेत्य श्रेयोभिकांक्षिणः एतद्विदंतः विद्वांसः ब्रह्मवादिनः ब्राह्मणाः राज्ञः न प्रतिगृह्णंति ॥

भा० । यहीजानते–विद्वान्–ब्रह्मवादी–परलोकमें कल्याण के अभिलाषी ब्राह्मण राजाका प्रतिग्रह नहींलेतेहैं ॥

ता० । राजाका प्रतिग्रह अनेक नरकों का हेतु है यहजानतेहुये और धर्मशास्त्र और पुराण आदि के ज्ञाता और जन्मांतर में कल्याण के अभिलाषी–और वेद के ज्ञाता ब्राह्मण राजा का प्रतिग्रह नहीं लेतेहैं–और आगे यहकहेंगे कि मूर्खप्रतिग्रहसे डरै इसमें विद्वानको प्रतिग्रहलेने में अत्यन्त दोषनहीं है–परन्तु राजाका प्रतिग्रह विद्वानोंको भी निषिद्ध है और अधिक पाप काहेतुहै इसीसे इसश्लोकमें विद्वान् और ब्रह्मवादिदोनोंको राजाकाप्रतिग्रह निषिद्धकहाहै ९१ ॥

ब्राह्मेमुहूर्तेबुध्येतधर्मार्थौचानुचिन्तयेत् । कायक्लेशांश्चतन्मूलान्वेदतत्त्वार्थमेवच ९२ ॥

प० । ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत् धर्मार्थौ च अनुचिंतयेत् कायक्लेशान् च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थं एव च ॥

यो० । ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत — चपुनः धर्मार्थौ चपुनः तन्मूलान् (धर्मार्थहेतून्) कायक्लेशान् — चपुनः वेदतत्त्वार्थं अनुचिंतयेत् ॥

भा० । ब्राह्म मुहूर्तमें जगे और धर्म और अर्थकी चिंताकरै और धर्म अर्थ के कारण देहके क्लेश और वेदके तत्त्वार्थ (ब्रह्म) का चिंतनभी ब्राह्म मुहूर्त्तमेंहीकरै ॥

ता० । रात्रि के पिछले पहरको मुहूर्त कहतेहैं क्योंकि यहां मुहूर्तशब्द समयका बोधक है और उसमुहूर्त को ब्राह्म इससे कहतेहैं कि उसमें ब्राह्मी (बुद्धि) का ज्ञान अधिक होताहै उस ब्राह्म मुहूर्त्तमें सोनेसे जगे क्योंकि दक्ष ऋषिने भी यह कहकर प्रभात में जगनाकहाहै कि–पीछले दोपहर प्रदोषहोतेहैं उन दोनोंको वेदके अभ्यासस बितावे क्योंकि दोपहरही जो सोताहै वह ब्रह्मभावको प्राप्तहोताहै और गोविंदराजने तो यह कहाहै कि रात्रिके पिछले मुहूर्त्तमें जगे–और परस्परके अविरोधसे धर्म अर्थका निश्चयभी उसीसमय करले और धर्म और अर्थके संपा-

१ प्रदोषपश्चिमौयामौ वेदाभ्यासेन तौ नयेत् प्रहरद्वयं शयानोहिब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

दक कायाके क्लेश आदिका भी निर्णय करले अर्थात् जिसकाममें कायाको क्लेश अधिकहो और धर्म और अर्थ अल्पहोंय तो उसकर्मको न करै–और वेदके तत्त्व अर्थ (कर्मस्वरूप ब्रह्म) का निश्चयकरे क्योंकि बुद्धिका प्रकाश उसीसमय होताहै ९२ ॥

उत्थायावश्यकंकृत्वाकृतशौचःसमाहितः । पूर्वांसंध्यांजपंस्तिष्ठेत्स्वकालेचापरांचिरम् ९३

प० । उत्थाय आवश्यकं कृत्वा कृतशौचः समाहितः पूर्वां संध्यां जपन् तिष्ठेत् स्वकाले च अपरां चिरम् ॥

यो० । शय्यायाः उत्थाय आवश्यकं (मलोत्सर्गादि) कृत्वा कृतशौचः समाहितः (द्विजः) पूर्वां संध्यां--चपुनः अपरां संध्यां स्वकाले चिरं गायत्रीजपन् सन् तिष्ठेत् ॥

भा० । ता० । प्रभातकेसमय शय्यासे उठकर और आवश्यक मलमूत्रको त्यागकर सावधान द्विज प्रातःकालकी और सायंकालकी संध्याके शास्त्रोक्त समयमें चिरकालतक गायत्रीका जपकरताहुआ द्विज बैठारहै ९३ ॥

ऋषयोदीर्घसंध्यत्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुयुः । प्रज्ञांयशश्चकीर्तिंचब्रह्मवर्चसमेवच ९४ ॥

प० । ऋषयः दीर्घसंध्यत्वात् दीर्घं आयुः अवाप्नुयुः प्रज्ञां यशः च कीर्तिं च ब्रह्मवर्चसं एव च ॥

यो० । यतः दीर्घसंध्यत्वात् ऋषयः दीर्घं आयुः प्रज्ञां — चपुनः यशः चपुनः कीर्तिं — चपुनः ब्रह्मवर्चसं अवाप्नुयुः तस्मात् चिरंसंध्यां उपासीत — संध्या शब्दोत्रसंध्यानुष्ठेयजपादिबोधकः ॥

भा० । ता० । जिससे ऋषि चिरकालतक संध्याकेसमय गायत्रीके जप आदिकरनेसे अधिक अवस्था–प्रजा–और जीवते समय यश और अचल कीर्ति और अध्ययन आदिसे ब्रह्मतेजको प्राप्तहुये–तिससे संध्याके समय चिरकालतक गायत्रीका जपकरै ९४ ॥

श्रावण्यांप्रौष्ठपद्यांवाप्युपाकृत्ययथाविधि ।
युक्तश्छन्दांस्यधीयीतमासान्विप्रोऽर्द्धपञ्चमान् ९५ ॥

प० । श्रावण्यां प्रौष्ठपद्यां वा अपि उपाकृत्य यथाविधि युक्तः छंदांसि अधीयीत मासान् विप्रः अर्द्धपंचमान् ॥

यो० । श्रावण्यां वा प्रौष्ठपद्यां यथाविधि उपाकृत्य (उपाकर्म कृत्वा) विप्रः युक्तः सन् अर्द्धपंचमान् मासान् छंदांसि अधीयीत---(पठेत्) ॥

भा० । ता० । श्रावण अथवा भाद्रपद की पूर्णिमाको यथाविधि (शास्त्रोक्तरीति) से उपाकर्म (जो सलूनोंको वेदपाठी करतेहैं) करके सावधानी से साढ़ेचारमहीनेतक वेदोंकोपढ़े ९५ ॥

पुष्येतुछन्दसांकुर्याद्बहिरुत्सर्जनंद्विजः । माघशुक्लस्यवाप्राप्तेपूर्वाह्णेप्रथमेऽहनि ९६ ॥

प० । पुष्ये तु छंदसां कुर्यात् बहिः उत्सर्जनं द्विजः माघशुक्लस्य वा प्राप्ते पूर्वाह्णे प्रथमे अहनि ॥

यो० । द्विजः पुष्ये वा माघशुक्लस्य प्रथमे अहनि पूर्वाह्णे प्राप्ते सति छंदसां बहिः उत्सर्जनं कुर्यात् ॥

भा० । ता० । साढ़ेचारमहीने बीतेपर जो पुष्य नक्षत्रआवे उसदिन ग्रामसे बाहर जाकर अपने गृह्यसूत्रके अनुसार उत्सर्ग नाम कर्मको द्विजकरै अथवा माघशुदि प्रतिपदाको पूर्वाह्ण

के समय करै—और माघ शुक्लमें वही मनुष्यकरै जिसने भाद्रपदकी पूर्णिमाको उपाकर्म न कियाहो ९६ ॥

यथाशास्त्रंतुकृत्वैवमुत्सर्गंछन्दसांवहिः । विरमेत्पक्षिणींरात्रिंतदेवैकमहर्निशम् ९७॥

प० । यथाशास्त्रं तु कृत्वा एवं उत्सर्गं छंदसां वहिः विरमेत् पक्षिणीं रात्रिं तत् एव एकं अहर्निशम् ॥

यो० । एवं यथाशास्त्रं वहिः छंदसां उत्सर्गं कृत्वा पक्षिणीं रात्रिं अथवा तत् एव एकं अहर्निशं विरमेत् — अध्ययनं न कुर्यादितिभावः ॥

भा० । ता० । इसप्रकार शास्त्रके अनुसार ग्रामसे वाहर वेदोंका उत्सर्ग रूप कर्म करके पक्षिणी रात्रि अर्थात् उत्सर्ग के दिन और अगलेदिन और बीचकी रात्रिभर अध्ययन न करै अथवा उसी उत्सर्ग के दिनरातमें अध्ययन न करै ९७ ॥

अतऊर्ध्वंतुछन्दांसिशुक्लेषुनियतःपठेत् । वेदाङ्गानिचसर्वाणिकृष्णपक्षेषुसंपठेत् ९८ ॥

प० । अतः ऊर्ध्वं तु छंदांसि शुक्लेषु नियतः पठेत् वेदांगानि च सर्वाणि कृष्णपक्षेषु संपठेत् ॥

यो० । अतः ऊर्ध्वं शुक्लेषु छंदांसि नियतः सन् पठेत — चपुनः सर्वाणि वेदांगानि कृष्णपक्षेषु संपठेत ॥

भा० । ता० । उत्सर्ग के अनध्यायके अनन्तर शुक्लपक्ष में मंत्र ब्राह्मणात्मक वेदोंको और कृष्णपक्ष में सम्पूर्ण वेदांगों (व्याकरण आदि) को नियतहोकर (नियमसे) पढ़ै ९८ ॥

नाविस्पष्टमधीयीतनशूद्रजनसन्निधौ । ननिशान्तेपरिश्रान्तोब्रह्माधीत्यपुनःस्वपेत् ९९

प० । न अविस्पष्टं अधीयीत न शूद्रजनसन्निधौ न निशान्ते परिश्रान्तः ब्रह्म अधीत्य पुनः स्वपेत् ॥

यो० । अविस्पष्टं शूद्रजनसन्निधौ न अधीयीत निशान्ते ब्रह्म अधीत्य परिश्रान्तः सन् पुनः न स्वपेत ॥

भा० । ता० । जिसमें वर्ण और स्वर स्पष्टनहीं ऐसा न पढ़ै और शूद्रकेसमीपभी न पढ़ै और रात्रि के पिछलेपहर में वेदको पढ़कर श्रान्त (थका) हुआ मनुष्य फिर न सोवै ९९ ॥

यथोदितेनविधिनानित्यंछन्दस्कृतंपठेत् । ब्रह्मछन्दस्कृतंचैवद्विजोयुक्तोह्यनापदि १००॥

प० । यथोदितेन विधिना नित्यं छन्दस्कृतं पठेत् ब्रह्म छंदस्कृतं च एव द्विजः युक्तः हि अनापदि ॥

यो० । युक्तः द्विजः यथोदितेन विधिना छन्दस्कृतं (गायत्र्यादिछन्दोयुक्तमंत्रमात्रं) नित्यं पठेत्- अनापदि (सम्यक्करणादौसति) ब्रह्म (ब्राह्मणं) चपुनः छन्दस्कृतं (मंत्रजातं) पठेत ॥

भा० । ता० । शास्त्रोक्त विधिसे द्विज सावधान होकर गायत्रीआदि छन्दसहित सबमंत्रों को प्रतिदिन पढ़ै और आपत्ति का अभाव (स्वस्थता) होय तो ब्रह्म (ब्राह्मण) और उक्त छंदोंसहित सब मंत्रोंको पढ़ै १०० ॥

इमान्नित्यमनध्यायानधीयानोविवर्जयेत् । अध्यापनंचकुर्वाणःशिष्याणांविधिपूर्वकम् १०१

प० । इमान् नित्यं अनध्यायान् अधीयानः विवर्जयेत् अध्यापनं च कुर्वाणः शिष्याणां विधिपूर्वकं ॥

यो० । अधीयानः (शिष्यः) चपुनः शिष्याणां विधिपूर्वकं अध्यापनं कुर्वाणः (गुरुः) इमान् अनध्यायान् नित्यं विवर्जयेत् ॥

भा० । ता० । वेदोंको पढ़ताहुआ शिष्य और शिष्योंको विधिपूर्वक वेदपढ़ाताहुआ गुरु इन अनध्यायोंको नित्य (सदा) वर्जदे १०१ ॥

कर्णश्रवेऽनिलेरात्रौदिवापांसुसमूहने । एतौवर्षास्वनध्यायावध्यायज्ञाःप्रचक्षते १०२॥

प० । कर्णश्रवे अनिले रात्रौ दिवा पांसुसमूहने एतौ वर्षासु अनध्यायौ अध्यायज्ञाः प्रचक्षते ॥

यो० । रात्रौ कर्णश्रवे--दिवा पांसुसमूहने अनिलेसति--अध्यायज्ञाः वर्षासु एतौ अनध्यायौ प्रचक्षते (कथयंति) ॥

भा० । ता० । यदि रात्रिमें ऐसा पवन चले जिसका शब्द कानोंमें सुने और दिनमें ऐसा चले जो पृथिवीकी धूलको भी उड़ासके--तो इन दो अनध्यायों को पढ़ानेकी विधिके जानने वाले मुनि कहतेहैं--गोविंदराज तो यह कहतेहैं कि सुना कानोंसेही जाता है इससे कर्णश्रव--पदसे अत्यंत पवन चलना लेतेहैं १०२ ॥

विद्युत्स्तनितवर्षेषुमहोल्कानांचसंप्लवे । आकालिकमनध्यायमेतेषुमनुरब्रवीत् १०३ ॥

प० । विद्युत्स्तनितवर्षेषु महोल्कानां च संप्लवे आकालिकं अनध्यायं एतेषु मनुः अब्रवीत् ॥

यो० । विद्युत्स्तनितवर्षेषु--चपुनः महोल्कानांसंप्लवे सति एतेषु आकालिकं अनध्यायं मनुः अब्रवीत् ॥

भा० । ता० । बिजली और गर्जकर वर्षा--और बड़ी उल्काओं के जहां तहां पड़ने से--इन अनध्यायोंको मनुने आकालिक (अर्थात् अगलेदिन उसीसमय तक) कहाहै १०३ ॥

एतांस्त्वभ्युदितान्विद्याद्यदाप्रादुष्कृताग्निषु।तदाविद्यादनध्यायमनृतौचाभ्रदर्शने १०४

प० । एतान् तु अभ्युदितान् विद्यात् यदा प्रादुष्कृताग्निषु तदा विद्यात् अनध्यायं अनृतौ च अभ्रदर्शने ॥

यो० । प्रादुष्कृताग्निषु सत्सु एतान् (विद्युतादीन) अभ्युदितान (युगपदुत्पन्नान) यदा विद्यात् जानीयात् तदा वर्षासु अनध्यायं कुर्यात् न सर्वदा चपुनः अनृतौ अभ्रदर्शने सति अनध्यायं कुर्यात् (न वर्षासु) ॥

भा० । ता० । जब होमकेलिये अग्नि प्रज्वलितकरलीहो और ये विद्युत् आदि उत्पन्नहुयेजाने तो वर्षाकाल में अनध्याय माने--और जो वर्षाऋतु न होय तो मेघके दर्शनसेही अनध्यायमाने और वर्षाके समय में मेघके दर्शन से अनध्याय न माने १०४ ॥

निर्घातेभूमिचलनेज्योतिषांचोपसर्जने।एतानाकालिकान्विद्यादनध्यायानृतावपि १०५

प० । निर्घाते भूमिचलने ज्योतिषां च उपसर्जने एतान् आकालिकान् विद्यात् अनध्यायान् ऋतौ अपि ॥

यो० । निर्घाते- भूमिचलने--चपुनः ज्योतिषां उपसर्जने सति -- एतान् अनध्यायान् ऋतौ अपि आकालिकान् विद्यात् (जानीयात्) ॥

भा० । ता० । आकाश में उत्पात का शब्दहो--भूकंप--और सूर्य चंद्र तारागण आदि का उपसर्ग (युद्ध)होय तो इन अनध्यायोंको ऋतु (वर्षा) में भी आकालिक जाने ऋतुमें भी यह

कहनेसे यह सूचितकिया कि जो यह कहतेहैं कि वर्षामें भूकंप आदि का दोष नहीं है सो ठीक नहीं है १०५ ॥

प्रादुष्कृतेष्वग्निषुतुविद्युत्स्तनितनिःस्वने।सज्योतिःस्यादनध्यायःशेषेरात्रौयथादिवा १०६

प० । प्रादुष्कृतेषु अग्निषु तु विद्युत्स्तनितनिःस्वने सज्योतिः स्यात् अनध्यायः शेषे रात्रौ यथा दिवा ॥

यो० । अग्निषु प्रादुष्कृतेषु विद्युत्स्तनितनिःस्वनेसति सज्योतिः अनध्यायः स्यात् — रात्रौ शेषे (पूर्वोक्त त्रितयेजाते सति यथा दिवा तथारात्रौ अपि अहोरात्र एव अनध्यायइत्यर्थः ॥

भा० । ता० । होमकेलिये अग्नि प्रज्वलितकर रक्खीहो और प्रातःकाल की संध्या के समय बिजली– गर्जन–और वर्षा तीनोंहोजायँ तो सज्योति (सूर्यास्तपर्यंत) अनध्याय होताहै और यदि रात्रिके समय पूर्वोक्त विद्युत् आदि तीनों होयँ तो जैसे दिनमें तैसेही रात्रिमें भी सज्योति अनध्याय होताहै अर्थात् इतने तारागणोंको ज्योतिरहै तबतक होताहै १०६ ॥

नित्यानध्यायएवस्याद्ग्रामेषुनगरेषुच । धर्मनैपुण्यकामानांपूतिगंधेचसर्वदा १०७ ॥

प० । नित्यानध्यायः एव स्यात् ग्रामेषु नगरेषु च धर्मनैपुण्यकामानां पूतिगंधे च सर्वदा ॥

यो० । धर्मनैपुण्यकामानां (पुरुषाणां) ग्रामेषु चपुनः नगरेषु पूतिगंधेसति सर्वदा नित्यानध्यायः एव स्यात् ॥

भा० । ता० । जो धर्म में निपुणहोनेकीहै कामनाजिनको ऐसे मनुष्योंको–कुत्सित (बुरी) गंधआनेपर ग्राम अथवा नगरोंमें नित्य और सब ऋतुओंमें अनध्यायहोताहै और जिन्हें विद्या में निपुणताकी इच्छाहै उनको नहींहोता–जो शिष्य वेदपढ़कर अदृष्टकोचाहतेहैं वे धर्मनिपुण और प्रथम पढ़कर विद्यावृद्धि के निमित्त वेदका अभ्यास करतेहैं वे विद्यानिपुण होतेहैं १०७ ॥

अन्तर्गतशवेग्रामेवृषलस्यचसन्निधौ । अनध्यायोरुद्यमानेसमवायेजनस्यच १०८ ॥

प० । अन्तर्गतशवे ग्रामे वृषलस्य च सन्निधौ अनध्यायः रुद्यमाने समवाये जनस्य च ॥

यो० । अंतर्गतशवे ग्रामे–चपुनः वृषलस्यसन्निधौ – रुद्यमाने चपुनः जनस्य समवायेसति अनध्यायः भवति ॥

भा० । ता० । जिस ग्राममें शवपड़ाहो वहां और वृषल (अधार्मिक) के समीप और रोनेका शब्द सुननेपर–और बहुतजनोंके समूह होनेपर–अनध्यायहोताहै–और यहां वृषलपदसे अधर्मी लेना क्योंकि शूद्रके समीप पढ़नेको निषेध (न शूद्रजनसन्निधौ) इससे करआयेहैं १०८ ॥

उदकेमध्यरात्रेचविण्मूत्रस्यविसर्जने । उच्छिष्टःश्राद्धभुक्चैवमनसापिनचिन्तयेत् १०९

प० । उदके मध्यरात्रे च विण्मूत्रस्य विसर्जने उच्छिष्टः श्राद्धभुक् च एव मनसा अपि न चिंतयेत् ॥

यो० । उदके – चपुनः मध्यरात्रे – विण्मूत्रस्य विसर्जने सति – उच्छिष्टः चपुनः श्राद्धभुक मनुष्यः मनसा अपि वेदं न चिंतयेत् किंपुनः कंठतः ॥

भा० । जलमें–और रात्रि के मध्यमें और विष्टा और मूत्रके त्यागके समय–और उच्छिष्ट होकर और श्राद्धका भोजनकरनेवाला–मनसे भी वेदका चिंतन न करे ॥

ता० । जलके मध्यमें और मध्यरात्र (चारमुहूर्त्त रात्रिके मध्य) में क्योंकि इस[1] वचनसे गौतम ऋषिने चारमुहूर्त्तही कहेहैं—और गोविंदराजने तो रात्रिके मध्यके दोप्रहर कहेहैं—और विष्टा और मूत्रके त्यागके समय—और जिससमय भोजन आदिसे उच्छिष्टहो—और श्राद्धका भोक्ता अर्थात् निमंत्रणसे लेकर श्राद्धके भोजनकरानेदिनमें मनसे भी वेदका चिंतन (स्मरण व पठन) न करै अर्थात् कंठसे तो कदाचित् भी न करै १०९ ॥

प्रतिगृह्यद्विजोविद्वानेकोद्दिष्टस्यकेतनम् । त्र्यहंनकीर्तयेद्ब्रह्मराज्ञोराहोश्चसूतके ११० ॥

प० । प्रतिगृह्य द्विजः विद्वान् एकोद्दिष्टस्य केतनं त्र्यहं न कीर्तयेत् ब्रह्म राज्ञः राहोः च सूतके ॥

यो० । विद्वान् द्विजः एकोद्दिष्टस्यकेतनं (निमंत्रणं) प्रतिगृह्य राज्ञः चपुनः राहोः सूतके त्र्यहं ब्रह्म (वेदं) न कीर्तयेत् (न पठेत्) ॥

भा० । ता० । विद्वान ब्राह्मण एकोद्दिष्टके निमंत्रणको ग्रहण (मान) करके—और राजाके पुत्र जन्म आदिके और राहुके सूतकमें अर्थात् चंद्रमा और सूर्यके ग्रहणमें तीनदिनतक वेदको न पढ़े ११० ॥

यावदेकानुदिष्टस्यगन्धोलेपश्चतिष्ठति । विप्रस्यविदुषोदेहेतावद्ब्रह्मनकीर्तयेत् १११ ॥

प० । यावत् एकानुदिष्टस्य गंधः लेपः च तिष्ठति विप्रस्य विदुषः देहे तावत् ब्रह्म न कीर्तयेत् ॥

यो० । एकानुदिष्टस्य गंधः चपुनः लेपः यावत् विदुषः विप्रस्य देहे तिष्ठति तावत् ब्रह्म न कीर्तयेत् ॥

भा० । ता० । इतने एक भी उच्छिष्ट कुंकुम आदिकी गंध अथवा लेप विद्वान् ब्राह्मणके देह पर लगीरहै तबतक श्राद्धके पीछे भी वेदको न पढ़े १११ ॥

शयानःप्रौढपादश्चकृत्वाचैवावसक्थिकाम् ।नाधीयीतामिषंजग्ध्वासूतकान्नाद्यमेवच ११२

प० । शयानः प्रौढपादः च कृत्वा च एव अवसक्थिकाम् न अधीयीत आमिषं जग्ध्वा सूतकान्नाद्यं एव च ॥

यो० । शयानः चपुनः प्रौढपादः चपुनः अवसक्थिकां कृत्वा — आमिषं चपुनः सूतकान्नाद्यं जग्ध्वा वेदं न अधीयीत ॥

भा० । ता० । शय्यापर सोताहुआ—आसनपर चरण फैलाये—और गोड़े खड़े किये और मांस और जन्म मरण सूतकके अन्नको भक्षणकरके वेदको न पढ़े ११२ ॥

नीहारेबाणशब्देचसंध्ययोरेवचोभयोः । अमावस्याचतुर्दश्योःपौर्णमास्यष्टकासुच ११३

प० । नीहारे बाणशब्दे च संध्ययोः एव च उभयोः अमावस्याचतुर्दश्योः पौर्णमास्यष्टकासु च ॥

यो० । नीहारे चपुनः बाणशब्दे — चपुनः उभयोः संध्ययोः — अमावस्याचतुर्दश्योः चपुनः पौर्णमास्यष्टकासु — वेदं न अधीयीत ॥

भा० । ता० । बहुत धूलीके समय—और बाणके शब्दहोनेपर और प्रातःकाल और संध्याकालकी दोनों संध्याओं में—मावस और चौदसको और पूर्णिमा और अष्टमीको—वेद न पढ़े—कोई यहांपर बाण शब्दसे वीणा और अष्टका शब्दसे अष्टमी लेतेहैं ११३ ॥

---

१ निशायांच चतुर्मुहूर्तम् ॥

अमावस्यागुरुंहन्तिशिष्यंहन्तिचतुर्दशी ।
ब्रह्माष्टकापौर्णमास्यौतस्मात्ताःपरिवर्जयेत् ११४ ॥

प० । अमावस्या गुरुं हंति शिष्यं हंति चतुर्दशी ब्रह्म अष्टकापौर्णमास्यौ तस्मात् ताः परिवर्जयेत् ॥

यो० । अमावस्यागुरुं – चतुर्दशी शिष्यं हंति – अष्टकापौर्णमास्यौ ब्रह्म (वेदं) हतः तस्मात् ताः परिवर्जयेत् ॥

भा० । ता० । अमावस्या गुरुको और चतुर्दशी शिष्यको और अष्टका और पूर्णमासी वेदको नष्टकरती हैं तिससे उन सबको वेदके पढ़ने पढ़ानेमें वर्जदे ११४ ॥

पांशुवर्षेदिशांदाहेगोमायुविरुतेतथा । श्वखरोष्ट्रेचरुवतिपंक्तौचनपठेद्द्विजः ११५ ॥

प० । पांशुवर्षे दिशां दाहे गोमायुविरुते तथा श्वखरोष्ट्रे च रुवति पंक्तौ च न पठेत् द्विजः ॥

यो० । पांशुवर्षे – दिशांदाहे – तथा गोमायुविरुते – चपुनः श्वखरोष्ट्रे रुवति (सति) चपुनः पंक्तौ द्विजः न पठेत् - वेदमितिशेषः ॥

भा० । ता० । धूलीकी वर्षामें–दिशाओंके दाहमें और सृगाल (गीदड़) के और कुत्ता–खर ऊंट इनके रोनेके समय–और इनकी पंक्तिमें द्विज वेदको न पढ़े ११५ ॥

नाधीयीतश्मशानान्तेग्रामान्तेगोव्रजेऽपिवा।वसित्वामैथुनंवासःश्राद्धिकंप्रतिगृह्यच ११६

प० । न अधीयीत श्मशानान्ते ग्रामान्ते गोव्रजे अपि वा वसित्वा मैथुनं वासः श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च ॥

यो० । श्मशानान्ते – ग्रामान्ते – वा गोव्रजे अपि – मैथुनं वासः वसित्वा चपुनः श्राद्धिकं प्रतिगृह्य वेदं न अधीयीत ॥

भा० । ता० । श्मशान और ग्रामके समीप और गोशालामें–और मैथुनके समय धारण किये वस्त्रको धारणकरके और श्राद्धका प्रतिग्रह लेकर–वेदको न पढ़े ११६ ॥

प्राणिवायदिवाऽप्राणियत्किंचिच्छ्राद्धिकंभवेत् ।
तदालभ्याप्यनध्यायःपाण्यास्योहिद्विजःस्मृतः ११७ ॥

प० । प्राणि वा यदि वा अप्राणि यत् किंचित् श्राद्धिकं भवेत् तत् आलभ्य अपि अनध्यायः पाण्यास्यः हि द्विजः स्मृतः ॥

यो० । प्राणि वा अप्राणि यत् किंचित् श्राद्धिकं भवेत् तत् आलभ्य (गृहीत्वा) अपि अनध्यायः भवति – हि (यतः) द्विजः पाण्यास्यः मन्वादिभिः स्मृतः ॥

भा० । ता० । श्राद्धके अन्न आदिको खाकर अनध्यायहोताहै यह पहिले कहाहै–श्राद्धकीवस्तु प्राणीहो अथवा प्राणी नहो उस सबको लेकर अनध्याय होताहै क्योंकि ब्राह्मणका हाथही मुख मनु आदिने कहाहै ११७ ॥

चौरैरुपप्लुतेग्रामेसंभ्रमेचाग्निकारिते । आकालिकमनध्यायंविद्यात्सर्वाद्भुतेषुच ११८॥

प० । चौरैः उपप्लुते ग्रामे संभ्रमे च अग्निकारिते आकालिकं अनध्यायं विद्यात् सर्वाद्भुतेषु च ॥

यो० । चौरैः उपप्लुते ग्रामे चपुनः अग्निकारिते संभ्रमे चपुनः सर्वाद्भुतेषु आकालिकं अनध्यायं विद्यात् ॥

भा० । ता० । चोरोंसे उपप्लुत (युक्त) ग्राममें और अग्नि के दाहसे भयके समय—और आकाश अथवा भूमिके संपूर्ण अद्भुत उत्पातोंके समय भी आकालिक अनध्याय जानना ११८ ॥

उपाकर्मणिचोत्सर्गेत्रिरात्रंक्षेपणंस्मृतम् । अष्टकासुत्वहोरात्रमृत्वन्तासुचरात्रिषु ११९॥

प० । उपाकर्मणि चँ उत्सँर्गे त्रिरात्रं क्षेपणं स्मृतम् अष्टकासु तु अहोरात्रं ऋत्वन्तासु चँ रात्रिषु॥

यो० । उपाकर्मणि चपुनः उत्सर्गे त्रिरात्रं क्षेपणं (त्याग) स्मृतम् — तुपुनः अष्टकासु चपुनः ऋत्वन्तासु रात्रिषु अहोरात्रं क्षेपणं स्मृतम् — मन्वादिभिरितिशेषः ॥

भा० । उपाकर्म और उत्सर्ग में तीनरात्र और अष्टका और ऋतुओंके अंतकी रात्रियोंमें एक अहोरात्र अध्ययनको त्यागदे ॥

ता० । उपाकर्म और उत्सर्ग—इन दोनों कर्मों के तीनरात्र और अष्टका श्राद्ध—और ऋतुओंके अंत की रात्रियों—में एक अहोरात्र वेद के अध्ययन का त्याग मनु आदि ने कहा है—यद्यपि उत्सर्ग में पक्षिणीमात्रही अनध्याय कहा है तथापि जो धर्म में निपुणता चाहैं उनके प्रति यह उपदेशहै और आग्रहायणी (अगहन शुदि १५) से आगे जो कृष्णपक्षकी अष्टमीहैं वे चार अष्टका होतीहैं ११९ ॥

नाधीयीताश्वमारूढोनवृक्षंनचहस्तिनम् । ननावंनखरंनोष्ट्रंनेरिणस्थोनयानगः १२०॥

प० । नँ अधीयीतँ अश्वं आरूढः नँ वृक्षं नँ चँ हस्तिनम् नँ नावं नँ खरं नँ उष्ट्रं नँ ईरिणस्थः नँ यानगः ॥

यो० । अश्वं — वृक्षं — चपुनः हस्तिनं — नावं — खरं — उष्ट्रं आरूढः, ईरिणस्थः, यानगः पुरुषः (वेदं) न अधीयीत ॥

भा० । ता० । घोड़ा—वृक्ष—हाथी—नाव—खर—ऊंट इनपर चढ़ा—और उषर भूमिमें बैठा और यान (सवारी) से गमनकरताहुआ मनुष्य वेदको न पढ़े १२० ॥

नविवादेनकलहेनसेनायांनसंगरे । नभुक्तमात्रेनाजीर्णेनवमित्वानसूतके १२१ ॥

प० । नँ विवादे नँ कलहे नँ सेनायां नँ संगरे नँ भुक्तमात्रे नँ अजीर्णे नँ वमित्वा नँ सूतके ॥

यो० । विवादे — कलहे — सेनायां — संगरे — भुक्तमात्रे — अजीर्णे — वमित्वा — सूतके (वेदं) न अधीयीत — न अधीयीतेति सर्वत्रयोज्यम् ॥

भा० । ता० । वाणीके कलह—और दंडदेने धन देने के कलह—युद्धके लिये इकट्ठीहुई सेना—युद्ध—भोजन के अनंतर—अर्थात् इसमें वसिष्ठजी के वचन से इतने हाथ और पैर आर्द्र रहैं—और अजीर्ण—और वमनकिये पीछे और सूतक—इनमें वेदको न पढ़े १२१ ॥

अतिथिंचाननुज्ञाप्यमारुतेवातिवाभृशम् । रुधिरेचस्रुतेगात्राच्छस्त्रेणचपरिक्षते १२२॥

प० । अतिथिं चँ अननुज्ञाप्यँ मारुते वाँति वाँ भृशम् रुधिरे चँ स्रुते गात्रात् शस्त्रेण चँ परिक्षते ॥

यो० । अतिथिं अननुज्ञाप्य — वा मारुते भृशं वातिसति — चपुनः गात्रात् रुधिरे स्रुतेसति — चपुनः शस्त्रेण परिक्षते सति- वेदं न अधीयीत ॥

१ यावदार्द्रहस्तौयावदार्द्रपाणिः ॥

भा० । ता० । अतिथिसे आज्ञालिये विना—और अत्यंत पवनके चलतेहुये—और देहमेंसे रुधिरके निकसतेहुये और शस्त्रसे घावहोनेपर—वेदको न पढ़ै १२२ ॥

सामध्वनावृग्यजुषीनाधीयीतकदाचन। वेदस्याधीत्यवाप्यन्तमारण्यकमधीत्यच १२३

प० । सामध्वनौ ऋग्यजुषी न अधीयीत कदाचन वेदस्य अधीत्य वा अपि अन्तं आरण्यकं अधीत्य च ॥

यो० । सामध्वनौ सति ऋग्यजुषी कदाचन न अधीयीत—वा वेदस्य अन्तं अधीत्य—चपुनः आरण्यकं अधीत्य (वेदान्तरं) न अधीयीत ॥

भा० । ता० । साम वेदके शब्द सुननेपर ऋग्वेद और यजुर्वेदको और एक वेदके अंतको करके और आरण्यक के एक अंशको पढ़कर अन्य वेदको कभी भी न पढ़ै १२३ ॥

ऋग्वेदोदेवदैवत्योयजुर्वेदस्तुमानुषः।सामवेदःस्मृतःपित्र्यस्तस्मात्तस्याशुचिर्ध्वनिः१२४

प० । ऋग्वेदः देवदैवत्यः यजुर्वेदः तु मानुषः सामवेदः स्मृतः पित्र्यः तस्मात् तस्य अशुचिः ध्वनिः ॥

यो० । ऋग्वेदः देवदैवत्यः तुपुनः यजुर्वेदः मानुषः सामवेदः पित्र्यः मन्वादिभिः स्मृतः तस्मात् तस्य (सामवेदस्य) ध्वनिः अशुचिः (ज्ञेयः) ॥

भा० । ता० । ऋग्वेदके देवता देवहैं और यजुर्वेदके देवता मनुष्यहैं क्योंकि यजुर्वेदमें मनुष्योंकेही कर्म कहेहैं—और सामवेदके देवता पितरहैं और पितृकर्मको करके जलका आचमन शुद्धि के लिये कहाहै तिससे सामवेदका शब्द अशुद्धके समानहै इससे सामवेदके शब्द होते अन्य वेदको न पढ़ै—यह पहिले श्लोकमें जो सामवेदका ध्वनिहोते ऋग्वेद और यजुर्वेदको न पढ़ना कहाहै उसीका अनुवादहै १२४ ॥

एतद्विदन्तोविद्वांसस्त्रयीनिष्कर्षमन्वहम्। क्रमतःपूर्वमभ्यस्यपश्चाद्वेदमधीयते १२५॥

प० । एतत् विदन्तः विद्वांसः त्रयीनिष्कर्षं अन्वहं क्रमतः पूर्वं अभ्यस्य पश्चात् वेदं अधीयते॥

यो० । एतद्विदन्तः विद्वांसः अन्वहं त्रयीनिष्कर्षं क्रमतः पूर्वं अभ्यस्य पश्चात् वेदं अधीयते ॥

भा० । यही जानकर शास्त्र के ज्ञाता पंडित पहिले क्रमसे तीनोंवेदों के सारका प्रतिदिन अभ्यासकरके पीछे वेदको पढ़तेहैं ॥

ता० । यह जानतेहुये विद्वान कि ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद के क्रमसे देवता मनुष्य पितर देवता हैं—पहिले तीनों वेदों के सार (ओंकार व्याहृति गायत्री) को क्रमसे अभ्यास करके पश्चात् वेदों का अध्ययन करतेहैं—दूसरे अध्यायमें कहे का भी फेर अनध्यायके प्रकरण में कहना इसलियेहै कि जैसे ये कहेहुये अनध्यायहैं इसीप्रकार ओंकार व्याहृति गायत्री के पढ़नेमें भी अनध्यायहोताहै और शिष्यको इसप्रकार पढ़ावे और इसप्रकार स्नातक को व्रतकरना चाहिये १२५

पशुमण्डूकमार्जारश्वसर्पनकुलाखुभिः। अन्तरागमनेविद्यादनध्यायमहर्निशम् १२६॥

प० । पशुमंडूकमार्जारश्वसर्पनकुलाखुभिः अन्तरा गमने विद्यात् अनध्यायं अहर्निशम् ॥

यो० । पशुमंडूकमार्जारश्वसर्पनकुलाखुभिः अन्तरागमने सति अहर्निशं अनध्यायं विद्यात ॥

भा० । ता० । यदि शिष्य और गुरुके मध्यको पढ़ाने के समय—पशु—मेडक—बिलाव—कुत्ता-सर्प—नोला—मूसा ये निकसजांय तो एक अहोरात्र अनध्याय जाने १२६ ॥

द्वावेववर्जयेन्नित्यमनध्यायौप्रयत्नतः।स्वाध्यायभूमिंचाशुद्धामात्मानंचाशुचिंद्विजः १२७

प० । द्वौ एव वर्जयेत् नित्यं अनध्यायौ प्रयत्नतः स्वाध्यायभूमिं च अशुद्धां आत्मानं च अशुचिं द्विजः ॥

यो० । द्विजः अशुद्धां स्वाध्यायभूमिं चपुनः अशुचिं आत्मानं इमौ द्वौ एव अनध्यायौ प्रयत्नतः नित्यं वर्जयेत् ॥

भा० । ता० । अब जो विद्यामें निपुणहुआ चाहै उसको पूर्वोक्त अनध्यायों का विकल्प है (माने चाहै न माने) अशुद्ध (जो उच्छिष्टहो अथवा जिसमें अपवित्रवस्तु पड़ीहो) पढ़ने की भूमि और बाह्य और अभ्यन्तर शौचरहित अपनादेह—इन दो अनध्यायोंकोही द्विज प्रयत्नसे नित्य त्यागदे और पूर्वोक्त अनध्यायों को न वर्जे—और उन अनध्यायोंमें भी उनको छोड़ जिनमें नित्यत्यागकहाहै अथवा जहां अनुवाद (दुबाराकथन) है और इतर अनध्यायों को माने चाहै न माने १२७ ॥

अमावस्यामष्टमींचपौर्णमासींचतुर्दशीम् ।
ब्रह्मचारीभवेन्नित्यमप्यृतौस्नातकोद्विजः १२८ ॥

प० । अमावस्यां अष्टमीं च पौर्णमासीं चतुर्दशीं ब्रह्मचारी भवेत् नित्यम् अपि ऋतौ स्नातकः द्विजः ॥

यो० । अमावस्यां चपुनः अष्टमीं—पौर्णमासीं—चतुर्दशीं स्नातकः द्विजः ऋतौ अपि नित्यं ब्रह्मचारी भवेत् ॥

भा० । ता० । स्नातक द्विज अमावस्या अष्टमी पूर्णिमा और चतुर्दशी को ऋतु के समय में भी सदैव ब्रह्मचारी रहै अर्थात् स्त्रीका संगम न करे—यद्यपि—पर्ववर्जंव्रजेत्तां—इससेही निषेध इनतिथियोंमें भी सिद्धथा तथापि स्नातक के व्रत लोपहोने से प्रायश्चित्त के लिये फिर कथन कियाहै १२८ ॥

नस्नानमाचरेद्भुक्त्वानातुरोनमहानिशि।नवासोभिःसहाजस्रंनाविज्ञातेजलाशये१२९॥

प० । न स्नानं आचरेत् भुक्त्वा न आतुरः न महानिशि न वासोभिः सह अजस्रं न अविज्ञाते जलाशये ॥

यो० । भुक्त्वा—आतुरः—महानिशि—अजस्रं वासोभिःसह—अविज्ञाते जलाशये स्नानं न आचरेत् ॥

भा० । भोजन कियेपीछे—रोगी—अर्द्धरात्रि—और बहुधा वस्त्रोंसहित और विनाजाने जलाशय में स्नान न करे ॥

ता० । नित्यस्नान की विधि तो भोजन के अनन्तर होई नहींसक्ती किन्तु भोजन से पूर्वही होनीहै और चांडालआदि के स्पर्शसे जो स्नानकरना लिखाहै उसका निषेध इससे अयोग्य है कि आपस्तंबने यहकहाहै कि शक्तिभर एकमुहूर्तभी असावधान न हो इससे भोजनके अनन्तर

१ मुहूर्तमपिशक्तिविषयेनाप्रयतःस्यात् ॥

यदृच्छास्नान (इच्छानुसार जो कियाजाताहै) न करै और आतुर नैमित्तिक स्नानभी न करै किंतु सामर्थ्य के अनुसार इस जावालऋषि के वचनानुसारकरै कि कर्मवाले मनुष्य स्नानकी अशक्ति में विनाशिरके भिगोये स्नानकरें अथवा आर्द्र (गीले) वस्त्र से देहका मार्जन करलें—और महानिशा (अर्द्धरात्रि) में भी स्नान न करै और वह महानिशा इस देवलै ऋषि के वचनानुसार रात्रिके बीचके दोपहरहोते हैं उससमय काम्य और नैमित्तिकस्नानको छोड़कर अन्य स्नान न करै—और वस्त्रोंसहित नित्य (प्रतिदिन) स्नान न करै अर्थात् चांडालआदि का स्पर्श होनेपर तो अवश्यकरै—और विनाजाने जलाशयमें भी इससे स्नान न करै कि कदाचित् कोई ग्राहआदि उसमें न रहताहो १२९ ॥

देवतानांगुरोराज्ञःस्नातकाचार्ययोस्तथा ।
नाक्रामेत्कामतश्छायांबभ्रुणोदीक्षितस्यच १३० ॥

प० । देवतानां गुरोः राज्ञः स्नातकाचार्ययोः तथा न आक्रामेत् कामतः छायां बभ्रुणः दीक्षितस्य च ॥

यो० । देवतानां — गुरोः राज्ञः तथा स्नातकाचार्ययोः बभ्रुणः (कपिलस्य) चपुनः दीक्षितस्य — छायां कामतः न आक्रामेत् ॥

भा० । ता० । देवताओं की प्रतिमा—गुरु—राजा—स्नातक और आचार्य—बभ्रु (कपिल) और यज्ञमें दीक्षित—इनकीछाया को जानकर अवलंघन न करै अर्थात् अज्ञानसे अवलंघन करने में दोष नहींहै १३० ॥

मध्यंदिनेऽर्द्धरात्रेचश्राद्धंभुक्त्वाचसामिषम् । संध्ययोरुभयोश्चैवनसेवेतचतुष्पथम् १३१

प० । मध्यंदिने अर्द्धरात्रे च श्राद्धं भुक्त्वा च सामिषं संध्ययोः उभयोः च एव न सेवेत चतुष्पथम् ॥

यो० । मध्यंदिने चपुनः अर्द्धरात्रे चपुनः सामिषंश्राद्धं भुक्त्वा चपुनः उभयोः संध्ययोः चतुष्पथं न सेवेत ॥

भा० । ता० । मध्याह्न—अर्द्धरात्रिमें—और जिसमें मांस बनाहो ऐसे श्राद्धको खाकर और दोनों संध्याओं में—चतुष्पथ (चौराहा) में न बैठे १३१ ॥

उद्वर्तनमपस्नानंविण्मूत्रेरक्तमेवच । श्लेष्मनिष्ठ्यूतवान्तानिनाधितिष्ठेत्तुकामतः १३२॥

प० । उद्वर्तनं अपस्नानं विण्मूत्रे रक्तं एव च श्लेष्मनिष्ठ्यूतवान्तानि न अधितिष्ठेत् तु कामतः ॥

यो० । उद्वर्तनं — अपस्नानं — विण्मूत्रे चपुनः रक्तं — श्लेष्मनिष्ठ्यूतवान्तानि कामतः न अधितिष्ठेत् ॥

भा० । ता० । अभ्यंगका मल (पिष्टकाआदि) स्नान का जल—मूत्र—पुरीष (विष्टा) रुधिर कफ—निष्ठ्यूत (थूक वा तांबूल आदिकी पीक) और वमन—इनके समीप जानकर न बैठे १३२ ॥

---

१ अशिरस्कंभवेत्स्नानं स्नानाशक्तौतुकर्मिणां — आर्द्रेणवाससावास्यान्मार्जनंदैहिकंविदुः ॥
२ महानिशात्वविज्ञेया मध्यस्थंप्रहरद्वयम् तस्मिन्स्नानंनकुर्वीत काम्यनैमित्तिकादृते ॥

वैरिणंनोपसेवेतसहायंचैववैरिणः । अधार्मिकंतस्करंचपरस्यैवचयोषितम् १३३ ॥

प० । वैरिणं नं उपसेवेतं सहायं चं एवं वैरिणः अधार्मिकं तस्करं चं परस्य एवं चं योषितम् ॥

यो० । वैरिणं चपुनः वैरिणः सहायं — अधार्मिकं चपुनः तस्करं — चपुनः परस्य योषितं न उपसेवेत ॥

भा० । ता० । शत्रु और शत्रु का मित्र—और अधर्मी और चोर और अन्यकी स्त्री इनको न सेवे अर्थात् इनके संग मेल न रक्खे १३३ ॥

नहीदृशमनायुष्यंलोकेकिंचनविद्यते । यादृशंपुरुषस्येहपरदारोपसेवनम् १३४ ॥

प० । नं हि ईदृशं अनायुष्यं लोके किंचन विद्यते यादृशं पुरुषस्य इह परदारोपसेवनम् ॥

यो० । पुरुषस्य इह लोके ईदृशं अनायुष्यं किंचन न विद्यते यादृशं अनायुष्यं परदारोपसेवनं अस्ति ॥

भा० । ता० । क्योंकि पुरुषकी अवस्था नष्ट करने वाला ऐसा अन्य कर्म नहीं है जैसा पराई स्त्री का गमनहै—तिससे यही कभी भी न करे १३४ ॥

क्षत्रियंचैवसर्पंचब्राह्मणंचबहुश्रुतम् । नावमन्येतवैभूष्णुःकृशानपिकदाचन १३५ ॥

प० । क्षत्रियं चं एवं सर्पं चं ब्राह्मणं चं बहुश्रुतम् नं अवमन्येतं वै भूष्णुः कृशानं अपि कदाचनं ॥

यो० । क्षत्रियं — चपुनः सर्पं चपुनः बहुश्रुतं ब्राह्मणं कृशान् एतान् भूष्णुः कदाचन न अवमन्येत — एतेषां अपमानं न कुर्यात् इतिभावः ॥

भा० । ता० । अपने प्रताप का अभिलाषी पुरुष—क्षत्रियका और सर्प और विद्यावान् ब्राह्मण और दीन मनुष्य—इनका कभी भी अपमान न करे १३५ ॥

एतत्त्रयंहिपुरुषंनिर्दहेदवमानितम् । तस्मादेतत्त्रयंनित्यंनावमन्येतबुद्धिमान् १३६ ॥

प० । एतत् त्रयं हि पुरुषं निर्दहेत् अवमानितम् तस्मात् एतत् त्रयं नित्यं नं अवमन्येतं बुद्धिमानं ॥

यो० । हि (यतः) अवमानितं एतत्त्रयं पुरुषं निर्दहेत् — तस्मात् बुद्धिमान् एतत्त्रयं नित्यं न अवमन्येत ॥

भा० । ता० । जिससे अपमान किये ये तीनों पुरुषको नष्ट करदेते हैं तिससे बुद्धिमान् पुरुष इनतीनों का अपमान न करे—और इनमें क्षत्रिय और सर्पकानष्ट करदेना प्रसिद्धहै और ब्राह्मण क्रोध में आकर अभिचार (मारणप्रयोग) से नष्ट करसक्ता है १३६ ॥

नात्मानमवमन्येतपूर्वाभिरसमृद्धिभिः । आमृत्योःश्रियमन्विच्छेन्नैनांमन्येतदुर्लभाम् १३७

प० । नं आत्मानं अवमन्येतं पूर्वाभिः असमृद्धिभिः आमृत्योः श्रियं अन्विच्छेत् नं एनां मन्येतं दुर्लभाम् ॥

यो० । पूर्वाभिः असमृद्धिभिः आत्मानं न अवमन्येत श्रियं आमृत्योः अन्विच्छेत एनां (श्रियं) दुर्लभां न मन्येत ॥

भा० । ता० । प्रथम धनके लिये उद्यम करने पर यदि संपत्ति न होय तो उन असमृद्धियों से अपने आत्माका अपमान न करै कि मैं मन्दभागीहूं—और इस लक्ष्मी को दुर्लभ भी न माने अर्थात् मेरे उद्यमसे मुझे प्राप्त न होगी यह संतोष न करै किन्तु मरण पर्यन्त उद्यमकरै १३७ ॥

सत्यंब्रूयात्प्रियंब्रूयान्नब्रूयात्सत्यमप्रियम् । प्रियंचनानृतंब्रूयादेषधर्मःसनातनः १३८॥

प० । सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यं अप्रियम् प्रियं च न अनृतं ब्रूयात् एषः धर्मः सनातनः ॥

यो० । सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् — अप्रियं सत्यं न ब्रूयात् चपुनः प्रियं अनृतं न ब्रूयात् एषः धर्मः सनातनः अस्ति इति शेषः ॥

भा० । ता० । सत्य और प्रिय वचन को कहै जैसे तेरे पुत्र उत्पन्न हुआ—और जो प्रिय न हो ऐसे सत्य को भी न कहै जैसे तेरापुत्र मरगया—यह धर्म सनातन है और वेदोक्तहै १३८ ॥

भद्रंभद्रमितिब्रूयाद्भद्रमित्येववावदेत् । शुष्कवैरंविवादंचनकुर्यात्केनचित्सह १३९ ॥

प० । भद्रं भद्रं इति ब्रूयात् भद्रं इति एवं वा वदेत् शुष्कवैरं विवादं च न कुर्यात् केनचित् सह ॥

यो० । भद्रं (अभद्रं) भद्रं इतिब्रूयात् — वा भद्रं इत्येववदेत् — शुष्कवैरं चपुनः विवादं केनचित् सह न कुर्यात् ॥

भा० । किसीके बुरेकामको देखकर भी भला प्रशस्त अथवा भद्रही कहै, और किसीके संग सूका वैर और विवाद न करै ॥

ता० । इसश्लोक में पहिलाभद्रपद अकल्याण का बोधक है और दूसरा भद्रपद कल्याण के पर्यायों का वाचकहै अर्थात् अभद्रको भी कुशल प्रशस्तआदि शब्दोंसे कहै अर्थात् किसीके बुरे कामको भी प्रशस्त बतावै—क्योंकि आपस्तम्बऋषि ने यहकहाहै कि अभद्रको अभद्र न कहै किन्तु प्रशस्त और पुण्य शब्दों से कहै अथवा भद्र ऐसेहीकहै और शुष्क वैर और विवाद किसी के संग न करै—अर्थात् सबके संग मित्रता से रहै १३९ ॥

नातिकल्यंनातिसायंनातिमध्यंदिनेस्थिते । नाज्ञातेनसमंगच्छेन्नैकोनवृषलैःसह१४०॥

प० । न अतिकल्यं न अतिसायं न अतिमध्यंदिने स्थिते न अज्ञातेन समं गच्छेत् न एकः न वृषलैः सह ॥

यो० । अतिकल्यं अतिसायं — अतिमध्यं दिने स्थितेसति — अज्ञातेन पुरुषेण समं — एकः — वृषलैः सह न गच्छेत् ॥

भा० । ता० । अत्यन्त प्रभात और अत्यन्त सायंकालके समय और अति मध्याह्नके समय और अज्ञात पुरुष के और शूद्र के संग गमन न करै—यद्यपि—नैकःप्रपद्येताध्वानं—इस से अकेले का गमन निषेध कर आयेहैं तथापि स्नातक के व्रतलोप के प्रायश्चित्तकी अधिकताके लिये पुनः निषेध कहाहै १४० ॥

हीनांगानतिरिक्तांगान्विद्याहीनान्वयोधिकान् ।
रूपद्रव्यविहीनांश्चजातिहीनांश्चनाक्षिपेत् १४१ ॥

प० । हीनांगान् अतिरिक्तांगान् विद्याहीनान् वयोधिकान् रूपद्रव्यविहीनान् च जातिहीनान् च न आक्षिपेत् ॥

यो० । हीनांगान् — अतिरिक्तांगान् — विद्याहीनान् — वयोधिकान् — चपुनः रूपद्रव्यविहीनान् — चपुनः जातिहीनान् — पुरुषान् न आक्षिपेत् ॥

१ नाभद्रमभद्रं ब्रूयात् पुण्यंप्रशस्तमितिब्रूयात् ॥

भा० । ता० । जिनका अंग हीनहो वा अधिक हो—मूर्ख—अपनेसे वृद्ध—कुरूप और दरिद्री और जातिसे हीन (पतितआदि) इनकी निन्दा न करै अर्थात् काण आदि शब्दसे न बोले १४१ ॥

नस्पृशेत्पाणिनोच्छिष्टोविप्रोगोब्राह्मणानलान् ।
नचापिपश्येदशुचिःसुस्थोज्योतिर्गणान्दिवि १४२ ॥

प० । न स्पृशेत् पाणिना उच्छिष्टः विप्रः गोब्राह्मणानलान् न च अपि पश्येत् अशुचिः सुस्थः ज्योतिर्गणान् दिवि ॥

यो० । उच्छिष्टः अशुचिः—विप्रः पाणिना गोब्राह्मणानलान् न स्पृशेत् — चपुनः अशुचिः अपि विप्रः सुस्थः सन् दिविज्योतिर्गणान् न पश्येत् ॥

भा० । ता० । उच्छिष्ट और अशुद्ध ब्राह्मण गौ ब्राह्मण अग्नि इनका स्पर्श न करै और अशुद्ध हुआ तो स्वस्थ अवस्था में आकाशके विषे सूर्य चन्द्रआदि ग्रहों को न देखै १४२ ॥

स्पृष्ट्वैतानशुचिर्नित्यमद्भिःप्राणानुपस्पृशेत्
गात्राणिचैवसर्वाणिनाभिंपाणितलेनतु १४३ ॥

प० । स्पृष्ट्वा एतान् अशुचिः नित्यं अद्भिः प्राणान् उपस्पृशेत् गात्राणि च एव सर्वाणि नाभिं पाणितलेन तु ॥

यो० । अशुचिः सन् एतान् स्पृष्ट्वा नित्यं अद्भिः प्राणान् उपस्पृशेत् चपुनः सर्वाणि गात्राणि तुपुनः नाभिं पाणितले न गृहीताभिः अद्भिः स्पृशेत् ॥

भा० । ता० । अशुद्धब्राह्मण इन गौ आदि का स्पर्श करके प्राणायाम के अनन्तर प्राणों (चक्षुः) आदि इन्द्रियका नित्य स्पर्श करै और सम्पूर्णगात्र और नाभिका स्पर्श अपने हाथसे जल लेकर करै—यह श्लोक भिन्न प्रकरण में प्रायश्चित्तकी लघुताके लिये कहा है क्योंकि उसी प्रकरण में लिखते तो गौआदि भी पढ़ने पड़ते १४३ ॥

अनातुरःस्वानिखानिनस्पृशेदनिमित्ततः।रोमाणिचरहस्यानिसर्वाण्येवविवर्जयेत्१४४

प० । अनातुरः स्वानि खानि न स्पृशेत् अनिमित्ततः रोमाणि च रहस्यानि सर्वाणि एव विवर्जयेत् ॥

यो० । अनातुरः अनिमित्ततः स्वानि खानि (इन्द्रियाणि) न स्पृशेत् चपुनः रहस्यानि (गोप्यानि) सर्वाणि रोमाणि विवर्जयेत् (न स्पृशेत्)

भा० । ता० । आरोग्य के समय अपनी इन्द्रिय और गुप्तसम्पूर्ण रोम (लिंग और कुक्षि के) इनका विना प्रयोजन स्पर्श न करै १४४ ॥

मंगलाचारयुक्तःस्यात्प्रयतात्माजितेन्द्रियः।जपेच्चजुहुयाच्चैवनित्यमग्निमतन्द्रितः १४५

प० । मंगलाचारयुक्तः स्यात् प्रयतात्मा जितेन्द्रियः जपेत् च जुहुयात् च एव नित्यं अग्निं अतन्द्रितः ॥

यो० । प्रयतात्मा जितेन्द्रियः पुरुषः मंगलाचारयुक्तः स्यात् अतन्द्रितः सन् गायत्रीं जपेत् चपुनः अग्निं जुहुयात् ॥

भा० । ता० । अपने वांछित अर्थ की सिद्धिरूप मंगल और गुरुसेवा आदि आचार इनमें

नित्य उद्योगी रहै और वाह्य और अभ्यन्तर शौचयुक्तहोकर जितेन्द्रियरहै और आलस्यकोछोड़ कर प्रतिदिन गायत्रीका जपकरै और अग्नि में होमकरै इस श्लोकमें आचारादि युक्तोंकी भी सावधानी के लिये फिर यह कहाहै कि आलस्य को त्याग कर जप होमकरै १४५ ॥

मंगलाचारयुक्तानांनित्यंचप्रयतात्मनाम् । जपतांजुह्वतांचैवविनिपातोनविद्यते १४६॥

प० । मंगलाचारयुक्तानां नित्यं च प्रयतात्मनां जपतां जुह्वतां च एव विनिपातः न विद्यते ॥

यो० । मंगलाचारयुक्तानां — चपुनः नित्यं प्रयतात्मनां — चपुनः जपतां — जुह्वतां — पुरुषाणां विनिपातः न विद्यते ॥

भा० । ता० । जो मंगल और आचारयुक्त हैं और नित्य शुद्धहैं और जप और होममें जो तत्परहैं—उनको दैव वा मानुष उपद्रव नहींहोताहै १४६ ॥

वेदमेवाभ्यसेन्नित्यंयथाकालमतन्द्रितः । तंह्यस्याहुःपरंधर्ममुपधर्मोऽन्यउच्यते १४७॥

प० । वेदं एव अभ्यसेत् नित्यं यथाकालं अतन्द्रितः तं हि अस्य आहुः परं धर्मं उपधर्मः अन्यः उच्यते ॥

यो० । अतन्द्रितः सन् यथाकालं वेदंएव अभ्यसेत हि (यतः) तं (वेदाभ्यासं) अस्यपरं धर्म मन्वादयः आहुः अन्यः उपधर्मः उच्यते ॥

भा० । ता० । अपने नित्यकृत्यके समय आलस्यको छोड़कर ओंकार गायत्री आदि वेदकाही सदा अभ्यासकरै क्योंकि मनु आदिने वेदका अभ्यासही ब्राह्मणका परमधर्म कहाहै और वेदाभ्याससे अन्य उपधर्म (निकृष्टधर्म) मुनियोंने कहाहै यहांपर वेदाभ्यासका पुनःकथन इसलिये है कि पूर्वजातिके स्मरण द्वारा वेदाभ्यासही मोक्षकाहेतुहै १४७ ॥

वेदाभ्यासेनसततंशौचेनतपसैवच । अद्रोहेणचभूतानांजातिंस्मरतिपौर्विकीम् १४८॥

प० । वेदाभ्यासेन सततं शौचेन तपसा एव च अद्रोहेण च भूतानां जातिं स्मरति पौर्विकीम् ॥

यो० । सततं वेदाभ्यासेन — शौचेन — चपुनः तपसा — चपुनः भूतानां अद्रोहेण — पुरुषः पौर्विकीं जातिं स्मरति ॥

भा० । ता० । निरंतर वेदके अभ्यास—शौच—और तप—और भूतोंके अद्रोहसे पूर्वजन्म की जातिको मनुष्य स्मरण करताहै १४८ ॥

पौर्विकींसंस्मरञ्जातिंब्रह्मैवाभ्यसतेपुनः । ब्रह्माभ्यासेनचाजस्रमनन्तंसुखमश्नुते १४९॥

प० पौर्विकीं संस्मरन् जातिं ब्रह्म एव अभ्यसते पुनः ब्रह्माभ्यासेन च अजस्रं अनन्तं सुखं अश्नुते ॥

यो० । पौर्विकीं जातिं संस्मरन् सन् पुनः ब्रह्म (वेदं) एव अभ्यसते — चपुनः अजस्रं ब्रह्माभ्यासेन अनन्तं सुखं अश्नुते ॥

भा० । पूर्वजन्मकी जातिका स्मरणकरताहुआ फिर भी ब्रह्मकाही अभ्यासकरताहै और निरंतर ब्रह्मके अभ्याससे अनंत सुख (मोक्ष) को भोगताहै ॥

ता० । पिछले जन्मकी जाति (अनेक जन्म) को स्मरण करताहुआ ब्राह्मण फिरभी वेदकाही अभ्यासकरता है अर्थात् अनेक जन्म और उन जन्मों में गर्भ जन्म जरा मरण आदि दुःखोंका स्मरणकरताहुआ फिर भी निरंतर ब्रह्मकाही अभ्यासकरताहै अर्थात् श्रवण मनन और

ध्यान से ब्रह्मकोही साक्षात् देखता है और ब्रह्म साक्षात्कार से परमानन्द रूप मोक्षको प्राप्त होताहै १४६ ॥

सावित्राञ्छान्तिहोमांश्चकुर्यात्पर्वसुनित्यशः। पितृंश्चैवाष्टकास्वर्चेन्नित्यमन्वष्टकासुच १५०

प० । सावित्रान् शांतिहोमान् च कुर्यात् पर्वसु नित्यशः पितॄन् च एवं अष्टकासु अर्चेत् नित्यं अन्वष्टकासु च ॥

यो० । सावित्रान् चपुनः शांतिहोमान पर्वसु नित्यशः कुर्यात् चपुनः अष्टकासु चपुनः मन्वष्टकासु पितॄन् अर्चेत् — (पूजयेत्) ॥

भा० । ता० । जिनका गायत्री देवताहै ऐसे होम और अनिष्टकी शांतिकेलिये शान्ति होमोंको पर्वमें (पूर्णिमा अमावस्याको) सदैवकरे और अगहनकी पूर्णिमाके आगे कृष्णपक्षकी अष्टमी (अष्टका) और उससे अग्रिमतिथि (नवमी अन्वष्टका) ओंमें पितरोंका पूजनकरे १५० ॥

दूरादावसथान्मूत्रंदूरात्पादावसेचनम् । उच्छिष्टान्ननिषेकंचदूरादेवसमाचरेत् १५१ ॥

प० । दूरात् आवसथात् मूत्रं दूरात् पादावसेचनम् उच्छिष्टान्ननिषेकं च दूरात् एवं समाचरेत् ॥

यो० । आवसथात् (गृहात) दूरात् मूत्रं दूरात् पादावसेचनम् — चपुनः दूरात उच्छिष्टान्ननिषेकं समाचरेत — (कुर्यात) ॥

भा० । ता० । नैर्ऋतदिशामें जितनीदूर वाण जासके उससे अधिक भूमिमें जाकर—विष्णुपुराणके वचनानुसार मूत्र पुरीषका त्याग पैरोंका प्रक्षालन और उच्छिष्ट अन्नका त्याग और वीर्य इनका त्याग उतनी दूरपर करै १५१ ॥

मैत्रंप्रसाधनंस्नानंदन्तधावनमंजनम् । पूर्वाह्णएवकुर्वीतदेवतानांचपूजनम् १५२ ॥

प० । मैत्रं प्रसाधनं स्नानं दन्तधावनं अंजनं पूर्वाह्णे एव कुर्वीत देवतानां च पूजनम् ॥

यो० । मैत्रं — प्रसाधनं — स्नानं — दंतधावनं — अंजनं — चपुनः देवताना पूजनं पूर्वाह्णे एव कुर्वीत — नपराह्णे ॥

भा० । ता० । मैत्र (मलकात्याग) देहका वस्त्र आदिसे प्रसाधन—स्नान—दंतधावन—अंजन और देवताओंका पूजन ये सब पूर्वाह्णमेंही करै यहां पूर्वाह्ण शब्दसे रात्रिका शेष और दिन का पूर्वभाग लेतेहैं और इस श्लोकमें अर्थ क्रमहै और पाठ क्रम नहींहै क्योंकि स्नानके पीछे दंतधावन नहींहोसक्ता १५२ ॥

दैवतान्यभिगच्छेत्तुधार्मिकांश्चद्विजोत्तमान् । ईश्वरंचैवरक्षार्थंगुरूनेवचपर्वसु १५३ ॥

प० । दैवतानि अभिगच्छेत् तु धार्मिकान् च द्विजोत्तमान् ईश्वरं च एवं रक्षार्थं गुरून् एवं च पर्वसु ॥

यो० । तुपुनः दैवतानि चपुनः धार्मिकान् द्विजोत्तमान् चपुनः रक्षार्थं ईश्वरं (राजानं) चपुनः पर्वसु गुरून — अभिगच्छेत् ॥

---

१ नैर्ऋत्यामिषुविक्षेपमात्रमतीत्याभ्यधिकंभुवः ॥

भा० । ता० । देवताओंकी मूर्ति—और धार्मिक ब्राह्मण—और रक्षाके लिये राजा—और पर्व के दिनोंमें गुरु—इनके दर्शनके लिये सन्मुखजाय १५३ ॥

अभिवादयेद्वृद्धांश्च दद्याच्चैवासनंस्वकम् ।
कृतांजलिरुपासीतगच्छतःपृष्ठतोऽन्वियात्१५४॥

प० । अभिवादयेत् वृद्धान् च दद्यात् च एव आसनं स्वकं कृतांजलिः उपासीत गच्छतः पृष्ठतः अन्वियात् ॥

यो० । वृद्धान् अभिवादयेत् चपुनः स्वकं आसनं दद्यात्—कृतांजलिः सन् वृद्धान् उपासीत—गच्छतः (वृद्धान्) पृष्ठतः अन्वियात् ॥

भा० । ता० । वृद्धोंको नमस्कारकरे और अपना आसन बैठनेकेलिये दे और गुरुओं के समीप हाथजोड़कर बैठे और जातेहुये गुरुओं के पीछे गमनकरे—कहाहुआ भी यह आचार फल कहने के लिये पुनः कहाहै १५४ ॥

श्रुतिस्मृत्युदितंसम्यङ्निबद्धंस्वेषुकर्मसु । धर्ममूलंनिषेवेतसदाचारमतन्द्रितः १५५ ॥

प० । श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यक् निबद्धं स्वेषु कर्मसु धर्ममूलं निषेवेत सदाचारं अतन्द्रितः ॥

यो० । ब्राह्मणः अतन्द्रितः सन् सम्यक् यथास्यात्तथा श्रुतिस्मृत्युदितं—स्वेषुकर्मसु निबद्धं—धर्ममूलं—सदाचारं निषेवेत—कुर्यात् ॥

भा० । ता० । श्रुति और स्मृति में भलीप्रकार कहा और अपने अध्ययन आदि कर्मों का सम्बन्धी (अंग) और धर्म का हेतु जो साधुओंका आचरण उसको करे १५५ ॥

आचाराल्लभतेह्यायुराचारादीप्सिताःप्रजाः ।
आचाराद्धनमक्षय्यमाचारोहन्त्यलक्षणम् १५६ ॥

प० । आचारात् लभते हि आयुः आचारात् ईप्सिताः प्रजाः आचारात् धनं अक्षय्यं आचारः हंति अलक्षणम् ॥

यो० । आचारात् पुरुषः आयुः आचारात् ईप्सिताः प्रजाः आचारात् अक्षय्यंधनं लभते—आचारः अलक्षणं हंति ॥

भा० । ता० । मनुष्य आचारसे पूर्णअवस्था और वांछित प्रजा—और बहुतसा धन इनको प्राप्तहोताहै और आचार अलक्षण (अशुभफलका दाता देहकाचिह्न) को नष्ट करताहै क्योंकि आचाररूप धर्म से अलक्षणसे सूचित अरिष्टका नाशहोताहै १५६ ॥

दुराचारोहिपुरुषोलोकेभवतिनिन्दितः । दुःखभागीचसततंव्याधितोऽल्पायुरेवच १५७

प० । दुराचारः हि पुरुषः लोके भवति निन्दितः दुःखभागी च सततं व्याधितः अल्पायुः एव च ॥

यो० । हि (यतः) दुराचारः पुरुषः लोके निंदितः चपुनः सततं दुःखभागी—व्याधितः चपुनः अल्पायुः एव (निश्चयेन) भवति—तस्मादाचारयुक्तः स्यात् ॥

भा० । ता० । जिससे दुराचारी पुरुष लोक (जगत्) में निंदितहोताहै—और निरन्तर दुःख

का भागी–और रोगी और अल्पायुः होता है–तिससे सदैव आचार से युक्तरहै १५७ ॥

सर्वलक्षणहीनोऽपियःसदाचारवान्नरः । श्रद्दधानोऽनसूयश्चशतंवर्षाणिजीवति १५८ ॥

प० । सर्वलक्षणहीनः अपि यः सदाचारवान् नरः श्रद्दधानः अनसूयः च शतं वर्षाणि जीवति ॥

यो० । सर्वलक्षणहीनः अपि यः नरः सदाचारवान् श्रद्दधानः चपुनः अनसूयः भवति सः शतं वर्षाणि जीवति ॥

भा० । ता० । शुभसूचक सम्पूर्ण लक्षणों से हीन भी जो मनुष्य सदाचारी और श्रद्धावान् और पराये दोषोंको न कहनेवाला होताहै वह सौ वर्षतक जीवताहै १५८ ॥

यद्यत्परवशंकर्मतत्तद्यत्नेनवर्जयेत् । यद्यदात्मवशंतुस्यात्तत्तत्सेवेतयत्नतः १५९ ॥

प० । यत् यत् परवशं कर्म तत् तत् यत्नेन वर्जयेत् यत् यत् आत्मवशं तु स्यात् तत् तत् सेवेत यत्नतः ॥

यो० । यत् यत् कर्म परवशं भवेत् तत् तत् यत्नेन वर्जयेत् – तुपुनः यत् यत् कर्म आत्मवशं स्यात् तत् तत् यत्नेन सेवेत ॥

भा० । ता० । जो २ कर्म पराधीन हैं उस २ को यत्नसे त्यागदे–और जो२ कर्म अपने आधीनहै उस २ को यत्नसे करै–अर्थात् स्वाधीन कर्म में ही तत्पररहै १५९ ॥

सर्वंपरवशंदुःखंसर्वमात्मवशंसुखम् । एतद्विद्यात्समासेनलक्षणंसुखदुःखयोः १६० ॥

प० । सर्वं परवशं दुःखं सर्वं आत्मवशं सुखं एतत् विद्यात् समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ॥

यो० । परवशं सर्वं दुःखं – आत्मवशं सर्वं सुखं – भवति एतत्समासेन सुखदुःखयोः लक्षणं (स्वरूपं) विद्यात् (जानीयात्) ॥

भा० । ता० । पराधीनहोकर किया सम्पूर्ण कर्म दुःखदायी और अपनी स्वाधीनतासे किया सम्पूर्ण कर्म सुखदायी होताहै यही संक्षेप से सुख और दुःखका लक्षण जानना १६० ॥

यत्कर्मकुर्वतोऽस्यस्यात्परितोषोऽन्तरात्मनः। तत्प्रयत्नेनकुर्वीतविपरीतंतुवर्जयेत् १६१॥

प० । यत् कर्म कुर्वतः अस्य स्यात् परितोषः अन्तरात्मनः तत् प्रयत्नेन कुर्वीत विपरीतं तु वर्जयेत् ॥

यो० । यत्कर्म कुर्वतः अस्य अन्तरात्मनः परितोषः स्यात् तत् (कर्म) प्रयत्नेन कुर्वीत – विपरीतं तु कर्म वर्जयेत् ॥

भा० । ता० । जिस कर्म के करनेसे इसके अन्तरात्मा को संतोष हो उस कर्मको बड़े यत्न से करै और विपरीत (जिससे संतोष न हो) कर्म को तो वर्जदे १६१ ॥

आचार्य्यंचप्रवक्तारंपितरंमातरंगुरुम् । नहिंस्याद्ब्राह्मणान्गाश्चसर्वांश्चैवतपस्विनः१६२

प० । आचार्य्यं च प्रवक्तारं पितरं मातरं गुरुं न हिंस्यात् ब्राह्मणान् गाः च सर्वान् च एव तपस्विनः ॥

यो० । आचार्य्यं प्रवक्तारं – पितरं – मातरं – गुरुं – ब्राह्मणान् – चपुनः गाः चपुनः सर्वान् तपस्विनः न हिंस्यात् ॥

भा० । ता० । आचार्य (जो यज्ञोपवीतकराकर वेदपढ़ावे) प्रवक्ता (जो वेदकीव्याख्याकरै) गुरु–ब्राह्मण–गौ–और सम्पूर्ण तपस्वी इनकी हिंसा न करै अर्थात् इनके प्रतिकूल आचरण न

करै यहां प्रतिकूल आचरणरूप हिंसाली है और गोविंदराज तो यहकहते हैं सामान्य से हिंसा कहीहै इससे आततायी भी चाहे ये हों परन्तु इनकी हिंसा न करै सो ठीकनहीं है–गुरु और बालक वृद्ध ये चाहे आततायी भी हों तोभी न मारे इससे संग विरोध होजायगा १६२ ॥

नास्तिक्यंवेदनिन्दांचदेवतानांचकुत्सनम्।द्वेषंदम्भंचमानंचक्रोधंतैक्ष्ण्यंचवर्जयेत् १६३

प० । नास्तिक्यं वेदनिन्दां चं देवतानां चं कुत्सनम् द्वेषं दम्भं चं मानं चं क्रोधं तैक्ष्ण्यं चं वर्जयेत् ॥

यो० । नास्तिक्यं – चपुनः वेदनिन्दां – चपुनः देवतानां कुत्सनम् – द्वेषं – दम्भं – चपुनः मानं क्रोधं चपुनः तैक्ष्ण्यं वर्जयेत् ॥

भा० । ता० । नास्तिकता–वेदकी और देवताओंकी निंदा–द्वेष–दम्भ (धर्म में अनुत्साह–अभिमान–क्रोध–क्रूरता)–इनका त्यागदे १६३ ॥

परस्यदण्डंनोद्यच्छेत्क्रुद्धोनैवनिपातयेत्।अन्यत्रपुत्राच्छिष्याद्वाशिष्ट्यर्थंताडयेत्तुतौ १६४

प० । परस्य दण्डं न उद्यच्छेत् क्रुद्धः न एव निपातयेत् अन्यत्र पुत्रात् शिष्यात् वा शिष्ट्यर्थं ताडयेत् तु तौ ॥

यो० । पुत्रात् वा शिष्यात् अन्यत्र परस्य दण्डं न उद्यच्छेत – क्रुद्धः मन् दण्डं न निपातयेत तौ तु (पुत्रशिष्यौ) शिष्ट्यर्थं ताडयेत् ॥

भा० । ता० । पुत्र और शिष्यसे अन्य परके मारने के लिये दण्डको न फेंके और न क्रोध होकर अन्य के गात में दण्डको मारे–और शिक्षा के लिये पुत्र और शिष्यको तो अवश्य ताडना करै १६४ ॥

ब्राह्मणायावगुर्यैवद्विजातिर्वधकाम्यया। शतंवर्षाणितामिस्रेनरकेपरिवर्तते १६५ ॥

प० । ब्राह्मणाय अवगुर्य एव द्विजातिः वधकाम्यया शतं वर्षाणि तामिस्रे नरके परिवर्तते ॥

यो० । द्विजातिः वधकाम्यया ब्राह्मणाय अवगुर्य एव तामिस्रे नरके शतं वर्षाणि परिवर्तते – (परिभ्रमति) ॥

भा० । ता० । द्विजाति ब्राह्मणके मारने के लिये दण्डआदि को उठाकरके ही सौ वर्षतक तामिस्र नरकमें भ्रमता है १६५ ॥

ताडयित्वातृणेनापिसंरम्भान्मतिपूर्वकम्।एकविंशतिमाजातीःपापयोनिषुजायते १६६

प० । ताडयित्वा तृणेन अपि संरम्भात् मतिपूर्वकं एकविंशतिम् आः जातीः पापयोनिषु जायते ॥

यो० । संरम्भात् मतिपूर्वकं तृणेन अपि ब्राह्मणं ताडयित्वा पापयोनिषु (श्वादिषु) एकविंशतिमाः जातीः जायते ॥

भा० । ता० । क्रोध से जानबूझकर तृण से भी ब्राह्मणकी ताडना करके इक्कीस जन्मतक पापयोनि (कुत्ता आदि) योंमें जन्मता है १६६ ॥

अयुध्यमानस्योत्पाद्यब्राह्मणस्यासृगंगतः । दुःखंसुमहदाप्नोतिप्रेत्याप्राज्ञतयानरः १६७

प० । अयुध्यमानस्य उत्पाद्य ब्राह्मणस्य असृक् अंगतः दुःखं सुमहत् आप्नोति प्रेत्य अप्राज्ञतया नरः ॥

यो० । अयुध्यमानस्य ब्राह्मणस्य अंगतः असृक् (रुधिरं) उत्पाद्य—नरः प्रेत्य अप्राज्ञतया सुमहत् दुःखं आप्नोति ॥

भा० । ता० । युद्ध नहीं करतेहुये ब्राह्मणके अंग मेंसे रुधिरको निकासकर मनुष्य परलोक में शास्त्रके न जानने (मूर्खता) से अत्यंत दुःखको प्राप्तहोताहै १६७ ॥

शोणितंयावतःपांसून्संगृह्णातिमहीतलात् ।
तावतोऽब्दानमुत्रान्यैःशोणितोत्पादकोऽद्यते १६८ ॥

प० । शोणितं यावतः पांसून् संगृह्णाति महीतलात् तावतः अब्दान् अमुत्र अन्यैः शोणितोत्पादकः अद्यते ॥

यो० । शोणितं महीतलात् यावतः पांसून् संगृह्णाति—तावतः (पांसुपरिमितान्) अब्दान् अमुत्र (परलोके) अन्यैः (श्वाआदिभिः) शोणितोत्पादकः अद्यते ॥

भा० । ता० । रुधिर पृथ्वीके तलपरसे जितनी धूलके परमाणुओंको भिगोता है उतनेही वर्ष तक परलोकमें शोणित (रुधिर) के पैदाकरनेवालेको अन्य (कुत्ता गीदड़ आदि) भक्षणकरते हैं—इससे ब्राह्मणके ऊपर प्रहार न करै १६८ ॥

नकदाचिद्द्विजेतस्माद्विद्वानवगुरेदपि । नताडयेत्तृणेनापिनगात्रात्स्रावयेदसृक् १६९ ॥

प० । न कदाचित् द्विजे तस्मात् विद्वान् अवगुरेत् अपि न ताडयेत् तृणेन अपि न गात्रात् स्रावयेत् असृक् ॥

यो० । तस्मात्—विद्वान् पुरुषः कदाचित् अपि द्विजे न अवगुरेत्—तृणेन अपि न ताडयेत्—गात्रात् असृक (रुधिरं) न स्रावयेत् ॥

भा० । ता० । जिससे विद्वान् पुरुष कदाचित् भी ब्राह्मणके ऊपर शस्त्र न उठावे और तृणसे भी ताडना न दे—और ब्राह्मणके देहमेंसे रुधिर भी न गिरावे—अर्थात् ये तीनों काम न करै १६९ ॥

अधार्मिकोनरोयोहियस्यचाप्यनृतंधनम् । हिंसारतश्चयोनित्यंनेहासौसुखमेधते १७०

प० । अधार्मिकः नरः यः हि यस्य च अपि अनृतं धनम् हिंसारतः च यः नित्यं न इह असौ सुखं एधते ॥

यो० । यः नरः अधार्मिकः अस्ति—यस्य अपि अनृतं धनं अस्ति—चपुनः यः नित्यं हिंसारतः अस्ति—असौ पुरुषः इहजगति सुखं न एधते—सुखयुक्तो न भवतीत्यर्थः ॥

भा० । ता० । जो मनुष्य अधार्मिकहै अर्थात् शास्त्र निषिद्ध अगम्यागमन आदिकर्मोंको करताहै—और जिसका साक्षी वा व्यवहार निर्णय आदिमें असत्यहीधनहै अर्थात् झूठबोलकर अपना पेट भरताहै और जो हिंसामें तत्परहै ऐसा मनुष्य इसलोक में सुखको नहीं भोगता—तिससे ये बात न करनी चाहिये १७० ॥

नसीदन्नपिधर्मेणमनोधर्मेनिवेशयेत् । अधार्मिकाणांपापानामाशुपश्यन्विपर्ययम् १७१॥

प० । न सीदन् अपि धर्मेण मनः अधर्मे निवेशयेत् अधार्मिकाणां पापानां आशु पश्यन् विपर्ययम् ॥

यो० । अधार्मिकाणां पापानां आशु विपर्ययं पश्यन् सन् धर्मेण सीदन् अपि पुरुषः अधर्मे मनः न निवेशयेत् — न प्रवेशयेत् ॥

भा० । ता० । शास्त्रोक्तकर्मों के करनेसे दुःखितभी अधर्म करनेवालोंका शीघ्र विपर्यय (धन का नाश आदि) देखताहुआ मनुष्य अधर्म में मनको न लगावे अर्थात् अधर्मपूर्वक व्यवहार धन सम्पदा सुखकी प्राप्तिभी होतीहै तथापि चोरी अधर्मियोंकी वहसम्पदा शीघ्रही नष्टहोजाती है इससे अधर्ममें कदाचित् भी मनको न लगावे १७१ ॥

नाधर्मश्चरितोलोकेसद्यःफलतिगौरिव । शनैरावर्तमानस्तुकर्तुर्मूलानिकृन्तति १७२ ॥

प० । न अधर्मः चरितः लोके सद्यः फलति गौः इव शनैः आवर्तमानः तु कर्तुः मूलानि कृन्तति ॥

यो० । चरितः अधर्मः लोके गौः इव सद्यः न फलति — शनैः आवर्तमानः तु अधर्मः कर्तुः मूलानि कृन्तति (छिंदति) ॥

भा० । जैसे भूमिबोने पर शीघ्र फल नहींदेती तिसीप्रकार कियाहुआ अधर्म शीघ्रही फलदायी नहींहोता किंतु कियाहुआ अधर्म क्रम २ से करनेवाले को जड़मूलसे नष्टकरदेताहै ॥

ता० । शुभ और अशुभ कर्मोंका परिपाक शास्त्रसे नियतसमयपर होताहै इससे कियाहुआ अधर्म का फल भूमि के समान तत्कालही नहींहोता—जैसे गो (भूमि) बीजके बोतेही बहुतसे पकेहुये अन्नसे पूर्ण नहींहोती किंतु पाकके समयमेंही अन्नसे पूर्ण होतीहै—अथवा यह दृष्टान्त विधर्मसे है कि जैसे गौ (बैल वा गौ) वाहन और दोहनमें शीघ्रफलते हैं वैसे अधर्मनहींफलता किंतु क्रम २ से वर्तताहुआ अधर्म फलके संमुखहोताहुआ करनेवाले की जड़को नष्टकरदेता है अर्थात् धनआदि से संयुक्तहोकर भी शीघ्र नष्टहोजाता है १७२ ॥

यदिनात्मनिपुत्रेषुनचेत्पुत्रेषुनप्तृषु । नत्वेवतुकृतोऽधर्मःकर्तुर्भवतिनिष्फलः १७३ ॥

प० । यदि न आत्मनि पुत्रेषु न चेत् पुत्रेषु नप्तृषु न तु एव तु कृतः अधर्मः कर्तुः भवति निष्फलः ॥

यो० । यदि आत्मनि अधर्मः न (फलति) तर्हि पुत्रेषु (फलति) पुत्रेषु नचेत् फलति तर्हि नप्तृषु फलति — तुपुनः कृतः अधर्मः कर्तुः निष्फलः न भवति ॥

भा० । ता० । जो करने के धनआदिके नाशको अधर्म नहींकरता है तो उसके पुत्रों के धन आदिको नष्टकरताहै और यदि पुत्रोंमें नहीं फलताहै तो उसकेपौत्रोंमें फलताहै—अर्थात् पुत्रादि के धननाशसेही पिताको क्लेश कियाहुआ अधर्म देता है और यहबात शास्त्रोक्त होनेसे विश्वास करने योग्य है १७३ ॥

अधर्मेणैधतेतावत्ततोभद्राणिपश्यति । ततःसपत्नाञ्जयतिसमूलस्तुविनश्यति १७४ ॥

प० । अधर्मेण एधते तावत् ततः भद्राणि पश्यति ततः सपत्नान् जयति समूलः तु विनश्यति ॥

यो० । (अधर्मी मनुष्यः) तावत् अधर्मेण एधते — ततः भद्राणि पश्यति — ततः सपत्नान् जयति — तुपुनः समूलः विनश्यति ॥

भा० । ता० । अधर्मी मनुष्य पहिले अधर्मसे बढ़ताहै अर्थात् ग्राम धनआदिसे सम्पन्नहोता है और फिर अच्छी २ वस्तुओं को प्राप्तहोता है और फिर शत्रुओं को जीतताहै फिर कुछकाल में अधर्म के परिपाक से समूल (धनपुत्रादिसहित) नष्टहोजाताहै १७४ ॥

सत्यधर्मार्यवृत्तेषुशौचेचैवारमेत्सदा । शिष्यांश्चशिष्याद्धर्मेणवाग्बाहूदरसंयतः १७५ ॥

प० । सत्यधर्मार्यवृत्तेषु शौचे च एव आरमेत् सदा शिष्यान् च शिष्यात् धर्मेण वाग्बाहूदर-संयतः ॥

यो० । सत्यधर्मार्यवृत्तेषु चपुनः शौचे सदा आरमेत् चपुनः शिष्यान् धर्मेण सदा शिष्यात् (शिक्षांकुर्यात) वाग्बाहूदरसंयतः स्यात् ॥

भा० । ता० । सत्य—धर्म—सदाचार—और शौच इनमें सदैव प्रीतिरक्खे और शिष्य (शिक्षा देनेयोग्य पुत्र भृत्य शिष्यआदि) को धर्मकीशिक्षादे और वाणी भुजा उदर इनका संयमरक्खे अर्थात् वाणी से सत्यभाषण—और भुजा से किसीको पीडा न देना—और उदरकासंयम अर्थात् अल्पभोजन करे १७५ ॥

परित्यजेदर्थकामौयौस्यातांधर्मवर्जितौ । धर्मंचाप्यसुखोदर्कंलोकविक्रुष्टमेवच १७६ ॥

प० । परित्यजेत् अर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ धर्मं च अपि असुखोदर्कं लोकविक्रुष्टं एव च ॥

यो० । यौ धर्मवर्जितौ स्यातां तौ अर्थकामौ परित्यजेत् चपुनः असुखोदर्कं चपुनः लोकविक्रुष्टं कर्म — परित्यजेत् — न कुर्यात् ॥

भा० । ता० । जो धन और काम धर्म से वर्जितहो (जैसे चोरी से धनसंचय और दीक्षा के दिन पत्नीकासंगम) उनको—और जो धर्म भविष्यकालमें दुःखदायीहो उस धर्मको (जैसे अपने पुत्रआदि को सर्वस्वका दान—और जो कर्म जगत् में निंदितहो (जैसे अष्टकाआदि श्राद्धमें गौ का वध) उसको त्यागदे १७६ ॥

नपाणिपादचपलोननेत्रचपलोऽनृजुः । नस्याद्वाक्चपलश्चैवनपरद्रोहकर्मधीः १७७ ॥

प० । न पाणिपादचपलः न नेत्रचपलः अनृजुः न स्यात् वाक्चपलः च एव न परद्रोह-कर्मधीः ॥

यो० । पाणिपादचपलः — नेत्रचपलः — अनृजुः — चपुनः वाक्चपलः परद्रोहकर्मधीः — न स्यात् ॥

भा० । ता० । हाथ और पादोंसे चपलता न करे अर्थात् निष्प्रयोजन किसीवस्तु का ग्रहण हाथोंसे न करे और निरर्थक भ्रमण न करे—और नेत्रोंकी भी चपलता न करे जैसे अन्यकी स्त्री को देखना और कुटिलता न करे और कठोर और निंदितवाणी न कहे और अन्यकी जिस में हिंसा (दुःख) हो ऐसे कर्ममें बुद्धिको न रक्खे १७७ ॥

येनास्यपितरोयातायेनयाताःपितामहाः । तेनयायात्सतांमार्गंतेनगच्छन्नरिष्यते १७८ ॥

प० । येन अस्य पितरः याताः येन याताः पितामहाः तेन यायात् सतां मार्गं तेन गच्छन् न रिष्यते ॥

यो० । येन मार्गेण अस्य पितरः याताः येन पितामहाः याताः तेन सतां मार्गं यायात् — तेनगच्छन् सन् न रिष्यते (अधर्मेण न हिंस्यते) ॥

भा० । ता० । यदि शास्त्रोक्तमार्ग बहुत समझै तो जिसमार्गको इसके पिता—पितामह चले आयेहैं उसी सत्पुरुषोंके मार्गको यहभी चले (अर्थात् वहीकर्मकरै जो पिता आदिने किया हो) और मार्गको चलतेहुये की अधर्म भी हिंसानहींकरता अर्थात् अधर्मसे दुःखी नहींहोता १७८ ॥

ऋत्विक्पुरोहिताचार्यैर्मातुलातिथिसंश्रितैः।बालवृद्धातुरैर्वैद्यैर्ज्ञातिसंबन्धिबान्धवैः१७९

मातापितृभ्यांयामीभिर्भ्रात्रापुत्रेणभार्यया । दुहित्रादासवर्गेणविवादंनसमाचरेत् १८० ॥

प० । ऋत्विक्पुरोहिताचार्यैः मातुलातिथिसंश्रितैः बालवृद्धातुरैः वैद्यैः ज्ञातिसंबंधिबान्धवैः ॥

प० । मातापितृभ्यां यामीभिः भ्रात्रा पुत्रेण भार्यया दुहित्रा दासवर्गेण विवादं न समाचरेत् ॥

यो० । ऋत्विक्पुरोहिताचार्यैः मातुलातिथिसंश्रितैः बालवृद्धातुरैः वैद्यैः ज्ञातिसंबंधिबांधवैः — मातापितृभ्यां — यामीभिः भ्रात्रा — पुत्रेण — भार्यया — दुहित्रा — दासवर्गेण सह — विवादं न समाचरेत् (न कुर्यात) ॥

भा० । ता० । ऋत्विक्—पुरोहित—आचार्य—मातुल—अतिथि—संश्रित (जो अपने आश्रयहो) बालक—वृद्ध—रोगी—वैद्य—ज्ञाति—सम्बन्धी (शालादि) बंधु (माताके पक्षी)+माता पिता—यामी (भगिनी और पुत्रवधु आदि) भ्राता—पुत्र—स्त्री—लड़की—दासों (सेवक) का समूह—इन ऋत्विक् आदिके संग विवाद न करै १७९ । १८० ॥

एतैर्विवादान्संत्यज्यसर्वपापैःप्रमुच्यते । एभिर्जितैश्चजयतिसर्वाँल्लोकानिमान्गृही १८१

प० । एतैः विवादान् संत्यज्य सर्वपापैः प्रमुच्यते एभिः जितैः च जयति सर्वान् लोकान् इमान् गृही ॥

यो० । गृही एतैः सह विवादान् संत्यज्य सर्वपापैः प्रमुच्यते — चपुनः एभिः जितैः इमान् सर्वान् लोकान् जयति ॥

भा० । ता० । इनके संग विवादोंको त्यागकर गृहस्थी संपूर्ण पापोंसे छुटताहै और इनको जीतकर अर्थात् इनके संग विवादकी उपेक्षाकरके इन संपूर्ण लोकों (जो आगे कहेंगे) को जीतताहै १८१ ॥

आचार्योब्रह्मलोकेशःप्राजापत्येपिताप्रभुः ।
अतिथिस्त्विन्द्रलोकेशोदेवलोकस्यचार्त्विजः १८२ ॥

प० । आचार्यः ब्रह्मलोकेशः प्राजापत्ये पिता प्रभुः अतिथिः तु इन्द्रलोकेशः देवलोकस्य च ऋत्विजः ॥

यो० । आचार्यः ब्रह्मलोकेशः — पिता प्राजापत्ये प्रभुः तुपुनः अतिथिः इन्द्रलोकेशः — अस्ति — चपुनः ऋत्विजः देवलोकस्य (ईशाः सन्ति) एतैः विवादत्यागेन तत् तल्लोकप्राप्तिर्भवतीत्यर्थः ॥

भा० । ता० । ब्रह्मलोक का स्वामी आचार्य—प्राजापत्य लोकका प्रभु पिता—इन्द्रलोक का स्वामी अभ्यागत—है और देवलोक के स्वामी ऋत्विजहोतेहैं अर्थात् जो जिसलोक का स्वामी है उसीलोक की प्राप्ति उसके संग विवाद त्यागनेसे होतीहै १८२ ॥

यामयोऽप्सरसांलोकेवैश्वदेवस्यबान्धवाः ।
संबन्धिनअपांलोकेपृथिव्यांमातृमातुलौ १८३ ॥

प० । यामयः अप्सरसां लोके वैश्वदेवस्य बान्धवाः सम्बन्धिनः अपां लोके पृथिव्यां मातृमातुलौ ॥

यो० । अप्सरसां लोके यामयः—बांधवाः वैश्वदेवस्य—अपां लोके सम्बन्धिनः (ईशाः संति) पृथिव्यां मातृमातुलौ (ईशौस्तः) ॥

भा० । ता० । यामी (बहिन पुत्रवधुआदि) अप्सराओं के लोककी—बन्धु विश्वेदेवाओं के लोकके—और सम्बन्धी वरुणलोक के ईश्वरहैं और माता और मातुल (मामा) ये दोनों भूलोक के स्वामी हैं १८३ ॥

आकाशेशास्तुविज्ञेयाबालवृद्धकृशातुराः ।
भ्राताज्येष्ठःसमःपित्राभार्यापुत्रःस्वकातनुः १८४ ॥

प० । आकाशेशाः तु विज्ञेयाः बालवृद्धकृशातुराः भ्राता ज्येष्ठः समः पित्रा भार्या पुत्रः स्वका तनुः ॥

यो० । बालवृद्धकृशातुराः आकाशेशाः विज्ञेयाः ज्येष्ठः भ्राता पितासमः ज्ञेयः भार्या—पुत्रः स्वका तनुः (शरीरं) ज्ञेयः ॥

भा० । ता० । बालक वृद्ध—कृश—(अल्पधनी) और रोगी ये सब आकाशलोक के स्वामी जानने—और जेठाभाई पिताके समान और स्त्री और पुत्र ये दोनों अपनादेहही जानने इससे अपनी आत्मा के संग कैसे विवाद होसक्ताहै १८४ ॥

छायास्वोदासवर्गश्चदुहिताकृपणंपरम् । तस्मादेतैरधिक्षिप्तःसहेतासंज्वरःसदा १८५ ॥

प० । छाया स्वः दासवर्गः च दुहिता कृपणं परं तस्मात् एतैः अधिक्षिप्तः सहेत असंज्वरः सदा ॥

यो० । स्वः दासवर्गः छाया—दुहिता परं कृपणं—तस्मात् एतैः अधिक्षिप्तः पुरुषः असंज्वरः सन सदा सहेत—एतेषां निंदादि सहेत दुःखवतश्च न भवेदित्यर्थः ॥

भा० । ता० । अपने दासोंका समूह अपनीही छाया है अर्थात् जैसे अपनीछाया वहांकोही चलती है जहां आपजाता है इसीप्रकार अपने दास भी अपने अनुयायी होते हैं—और अपनी कन्या परमकृपा का पात्रहै—तिससे इनसे निंदाआदिको प्राप्तहुआ भी मनुष्य दुःखको न मान कर सदा सहतारहै—अर्थात् इनकी निंदाको भी सहै और क्रोध न करै १८५ ॥

प्रतिग्रहसमर्थोऽपिप्रसंगंतत्रवर्जयेत् । प्रतिग्रहेणह्यस्याशुब्राह्मंतेजःप्रशाम्यति १८६ ॥

प० । प्रतिग्रहसमर्थः अपि प्रसंगं तत्र वर्जयेत् प्रतिग्रहेण हि अस्य आशु ब्राह्मं तेजः प्रशाम्यति ॥

यो० । प्रतिग्रहसमर्थः अपि द्विजः तत्र (प्रतिग्रहे) प्रसंगं वर्जयेत् हि (यतः) प्रतिग्रहेण अस्य (ब्राह्मणस्य) ब्राह्मं तेजः प्रशाम्यति (नश्यति) ॥

भा० । ता० । प्रतिग्रहलेनेमें समर्थ (विद्या तप सदाचारसे युक्त) भी ब्राह्मण प्रतिग्रहमें बारंबार प्रवृत्ति को त्यागदे—क्योंकि प्रतिग्रह से इस ब्राह्मण ब्राह्म (वेदाध्ययन आदि का प्रभाव) तेज नष्टहोजाता है—यद्यपि शरीरके निर्वाहमात्र प्रतिग्रहलेना कहाहै तो भी सामान्यसे अर्जन में दोष नहीं है और विशेषकर प्रतिग्रहलेनेसे ब्राह्मणका प्रभाव नष्टहोताहै यह दिखानेकेलिये यह वचन है १८६ ॥

नद्रव्याणामविज्ञायविधिंधर्म्यंप्रतिग्रहे । प्राज्ञःप्रतिग्रहंकुर्यादवसीदन्नपिक्षुधा १८७ ॥

प० । नं द्रव्याणां अविज्ञाय विधिं धर्म्यं प्रतिग्रहे प्राज्ञः प्रतिग्रहं कुर्यात् अवसीदन् अपि क्षुधा ॥

यो० । प्राज्ञः द्रव्याणां प्रतिग्रहे धर्म्यंविधिं अविज्ञाय क्षुधा अवसीदन् अपि प्रतिग्रहं न कुर्यात् ॥

भा० । ता० । बुद्धिमान् मनुष्य द्रव्योंके प्रतिग्रह में धर्मके अनुकूल विधि (ग्रहण योग्य वस्तु देवता मंत्र आदि) के विनाजाने क्षुधासे दुःखीहोनेपर भी प्रतिग्रह न ले अर्थात् स्वस्थतामें तो कदाचित् भी नहीं लेसक्ता १८७ ॥

हिरण्यभूमिमश्वंगामन्नंवासस्तिलान्घृतम्।प्रतिगृह्णन्नविद्वांस्तुभस्मीभवतिदारुवत्१८८॥

प० । हिरण्यं भूमिं अश्वं गां अन्नं वासः तिलान् घृतं प्रतिगृह्णन् अविद्वान् तु भस्मीभवति दारुवत् ॥

यो० । तुपुनः अविद्वान् ब्राह्मणः हिरण्य—भूमिं—अश्वं—गां—अन्नं—वासः—तिलान्—घृतं—प्रतिगृह्णन् सन् दारुवत् भस्मीभवति ॥

भा० । ता० । मूर्ख ब्राह्मण अर्थात्(वेदाध्ययन शून्य)सोना—भूमि—घोड़ा—गौ—अन्न—वस्त्र—तिल—घी—इनका प्रतिग्रह लेनेसे इसप्रकार भस्महोताहै जैसे अग्निसे काठ १८८ ॥

हिरण्यमायुरन्नंचभूर्गौश्चाप्योषतस्तनुम् ।
अश्वश्चक्षुस्त्वचंवासोघृतंतेजस्तिलाःप्रजाः १८९ ॥

प० । हिरण्यं आयुः अन्नं च भूः गौः च अपि ओषतः तनुं अश्वः चक्षुः त्वचं वासः घृतं तेजः तिलाः प्रजाः ॥

यो० । हिरण्यं चपुनः अन्नं आयुः ओषतः (दहतः) भूः चपुनः गौः तनुं (देहं) ओषतः अश्वः चक्षुः—वासः त्वचं—घृतं तेजः (ओषति) तिलाः प्रजाः (ओषन्ति) ॥

भा० । ता० । सोने और अन्नका प्रतिग्रह अवस्थाको और भूमि और गौ देहको दग्धकरते हैं—अश्व नेत्रोंको वस्त्र त्वचाको—घृत तेजको तिल प्रजा (संतान) को दग्धकरतेहैं अर्थात् जो अवस्था आदि की अभिलाषा करै वह सुवर्ण आदि का प्रतिग्रह न ले १८९ ॥

अतपास्त्वनधीयानःप्रतिग्रहरुचिर्द्विजः । अंभस्यश्मप्लवेनेवसहतेनैवमज्जति १९० ॥

प० । अतपाः तु अनधीयानः प्रतिग्रहरुचिः द्विजः अंभसि अश्मप्लवेन एव सह तेन एव मज्जति ॥

यो० । यः द्विजः अतपाः अनधीयानः प्रतिग्रहरुचिः भवति सः अश्मप्लवेन अंभसि (जले) इव तेन (दात्रा) सह एव निमज्जति नरके इतिशेषः ॥

भा० । ता० । तप और विद्यासे हीन जो ब्राह्मण प्रतिग्रह लेनेकी इच्छाकरताहै वह ब्राह्मण उस देनेवाले सहित इसप्रकार नरक में डूबताहै—जैसे जलमें पत्थरकी नावसे तरताहुआ पत्थर की नावसहित डूबताहै १९० ॥

तस्मादविद्वान्विभियाद्यस्मात्तस्मात्प्रतिग्रहात् ।
स्वल्पकेनाप्यविद्वान्हिपंकेगौरिवसीदति १९१ ॥

प० । तस्मात् अविद्वान् विभियात् यस्मात् तस्मात् प्रतिग्रहात् स्वल्पकेन अपि अविद्वान् हि पंके गौः इव सीदति ॥

यो० । तस्मात् अविद्वान् यस्मात् तस्मात् प्रतिग्रहात् विभियात् — हि (यतः) अविद्वान् स्वल्पकेनआपि (प्रतिग्रहेण) गौः पङ्के इव सीदति ॥

भा० । ता० । तिससे अविद्वान (मूर्ख) ब्राह्मण जिसतिस (यद्वा तद्वा) प्रतिग्रह से डरै— क्योंकि अविद्वान् ब्राह्मण अल्पप्रतिग्रह से इसप्रकार नरक में दुःखी होता है जैसे पंक (कीच) में गौ—तिससे सीसेआदि अल्पप्रतिग्रह भी द्विज ग्रहण न करै १९१ ॥

नवार्यपिप्रयच्छेत्तुबैडालव्रतिकेद्विजे । नबकव्रतिकेविप्रेनावेदविदिधर्मवित् १९२ ॥

प० । न वारि अपि प्रयच्छेत् तु बैडालव्रतिके द्विजे न बकव्रतिके विप्रे न अवेदविदि धर्मवित् ॥

यो० । धर्मवित् बैडालव्रतिकेद्विजे — बकव्रतिकेविप्रे अवेदविदिविप्रे — वारि (जलं) अपि न प्रयच्छेत् (न दद्यात्)

भा० । धर्मकाज्ञाता पुरुष बैडालव्रतिक और बकव्रतिक और जो वेदको न जाने इनतीनों को जलभी न दे अर्थात् ये तीनों दानके अधिकारी नहींहैं ॥

ता० । अब प्रतिग्रह लेनेवालेके धर्मको कहकर देनेवालेके धर्मको कहतेहैं कि जो द्रव्य काक आदिको भी दियाजाता है वहभी धर्मज्ञपुरुष बैडालव्रतिक आदिकोंको न दे इस अधिककथन से द्रव्यांतर का दानभी निषिद्ध है केवल जलदानकाही निषेधनहीं—और पहिले—पाषंडिनोवि-कर्मस्थान्—इसमें अतिथि मानकर सत्कारपूर्वक बैडालव्रतिक को दानका निषेध कहा है—और यहांपर धनके दानका निषेधकहा है—इसीसे आगे कहेंगे कि विधि से संचितधनभी न दे—और बकव्रतिक और जो वेदको न जानताहो (अर्थात् जहांतक वेदपाठी मिले) इनसबको धर्म का ज्ञाता पुरुष जलभी नदे धनआदि तो कैसे देसक्ताहै १९२ ॥

त्रिष्वप्येतेषुदत्तंहिविधिनाप्यर्जितंधनम् । दातुर्भवत्यनर्थायपरत्रादातुरेवच १९३ ॥

प० । त्रिषु अपि एतेषु दत्तं हि विधिना अपि अर्जितं धनम् दातुः भवति अनर्थाय परत्र अदातुः एवं च ॥

यो० । एतेषु त्रिषु दत्तं विधिना अर्जितं अपि धनं दातुः चपुनः अदातुः प्रतिग्रहीतुः परत्र अनर्थाय भवति ॥

भा० । ता० । विधिसे संचित किया भी धन इनतीनों को विधिपूर्वक देनेसे भी दाता और प्रतिग्रह लेनेवाला इनदोनों के अनर्थ के लिये (नरक के लिये) होताहै १९३ ॥

यथाप्लवेनौपलेननिमज्जत्युदकेतरन्। तथानिमज्जतोऽधस्तादज्ञौदातृप्रतीच्छकौ१९४॥

प० । यथा प्लवेन औपलेन निमज्जति उदके तरन् तथा निमज्जतः अधस्तात् अज्ञौ दातृप्रतीच्छकौ ॥

यो० । यथा औपलेनप्लवेन उदकेतरन् मन् निमज्जति तथा अज्ञौदातृप्रतीच्छकौ अधस्तात् निमज्जतः (नरकंगच्छतः) ॥

भा० । ता० । जैसे पाषाणकी नावसे जलमें तरताहुआ मनुष्य डूबताहै इसीप्रकार दान और प्रतिग्रहके शास्त्रको न जाननेवाले दाता और प्रतीच्छक (दानलेनेवाला) नीचे (नरकमें) डूबतेहैं—(अतपास्त्वनधीयानः) इसमें लेनेवालेकी प्रधानतासे और दाताकी प्रधानतासे निंदा कहीहै इससे पुनः उक्ति दोष नहींहै १९४ ॥

धर्मध्वजीसदालुब्धश्छाद्मिकोलोकदम्भकः।वैडालव्रतिकोज्ञेयोहिंस्रःसर्वाभिसंधकः१९५

प० । धर्मध्वजी सदा लुब्धः छाद्मिकः लोकदंभकः वैडालव्रतिकः ज्ञेयः हिंस्रः सर्वाभिसंधकः ॥

यो० । धर्मध्वजी- सदालुब्धः छाद्मिकः लोकदंभकः — हिंस्रः सर्वाभिसंधकः — द्विजः वैडालव्रतिकः ज्ञेयः विद्वद्भिरितिशेषः ॥

भा० । जो ब्राह्मण धर्मध्वजी—सदालोभी—छाद्मिक—लोकदंभक—हिंसक—और सबका निंदकहै—उसे वैडालव्रतिक कहतेहैं ॥

ता० । जो मनुष्य धर्मध्वजीहो अर्थात् बहुतजनोंके आगे तो धर्मकरै और स्वयं और अन्यों के द्वारा विख्यातकरै और परोक्षमें धर्मको न करै उस मनुष्यका धर्मध्वजा (चिह्न) के समान है—और जो सदैव लोभी है—और जो छद्म (व्याज) से चलै और जो पराईधरोहरके हरने आदिसे जगत्का वंचकहो—और जो हिंसामें तत्परहो—और सर्वाभिसंधक (परायेगुणोंके न सहने से सबकी निंदाकरै—उसको वैडालव्रतिक जानना—अर्थात् जैसे विडाल मूषकोंके भक्षणार्थ ध्यानी सा प्रतीतहोताहै तैसाही वह ब्राह्मण भीहै १९५ ॥

अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकःस्वार्थसाधनतत्परः। शठोमिथ्याविनीतश्चबकव्रतचरोद्विजः१९६॥

प० । अधोदृष्टिः नैष्कृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः शठः मिथ्याविनीतः च बकव्रतचरः द्विजः ॥

यो० । यः द्विजः अधोदृष्टिः नैष्कृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः शठः चपुनः मिथ्याविनीतः अस्ति सः बकव्रतचरः ज्ञेयः ॥

भा० । जो द्विज नीचेको दृष्टिरक्खे और निठुर और स्वार्थकी सिद्धिमें तत्परहो—और शठ और मिथ्या नम्रहो वह बकव्रतचर होताहै ॥

ता० । जो द्विज अपने विनयकी प्रसिद्धिके लिये नीचेकोही दृष्टिरक्खे और जो नैष्कृतिक (निठुरतासे रहै) हो और जो अपने प्रयोजनकी सिद्धिमें तत्परहो—और जो शठ (टेढ़ा) और जो मिथ्या विनीत (कपटसे विनयशील) हो वह बकव्रतचर होताहै अर्थात् जैसे बक मच्छियोंके पकड़नेके निमित्त अधोदृष्टि आदि रूपको बनाताहै ऐसेही वह भी होताहै १९६ ॥

येबकव्रतिनोविप्रायेचमार्जारलिङ्गिनः । तेपतन्त्यन्धतामिस्रेतेनपापेनकर्मणा १९७ ॥

प० । ये बकव्रतिनः विप्राः ये च मार्जारलिंगिनः ते पतंति अंधतामिस्रे तेन पापेन कर्मणा ॥

यो० । ये विप्राः बकव्रतिनः चपुनः ये मार्जारलिंगिनः (वैडाल व्रतिकाः) (संति) ते तेनपापेन कर्मणा अंधतामिस्रे नरके पतंति ॥

भा० । ता० । जो ब्राह्मण बगला और मार्जारके वृतका आचरण करतेहैं वे उसपाप (निंदित) कर्मसे अंधतामिस्र नरकमें पड़तेहैं १९७ ॥

नधर्मस्यापदेशेनपापंकृत्वाव्रतंचरेत् । व्रतेनपापंप्रच्छाद्यकुर्वन्स्त्रीशूद्रदम्भनम् १९८॥

प० । न धर्मस्य अपदेशेन पापं कृत्वा व्रतं चरेत् व्रतेन पापं प्रच्छाद्य कुर्वन् स्त्रीशूद्रदंभनं ॥

यो० । पापं व्रतेन प्रच्छाद्य स्त्रीशूद्रदंभनं कुर्वन् सन् धर्मस्य अपदेशेन पापंकृत्वा व्रतं न चरेत् ॥

भा० । ता० । प्रायश्चित्त रूप प्राजापत्य आदि वृतसे पाप दूरहोसक्ताहै इस बुद्धिसे स्त्री और शूद्रों और मूर्खजनोंको मोहताहुआ पुरुष धर्मके मिषसे पापकरके वृत न करे १९८ ॥

प्रेत्येहचेदृशाविप्रागर्ह्यन्तेब्रह्मवादिभिः । छद्मनाचरितंयच्चव्रतंरक्षांसिगच्छति १९९ ॥

प० । प्रेत्य च इह च ईदृशाः विप्राः गर्ह्यंते ब्रह्मवादिभिः छद्मना चरितं यत् च व्रतं रक्षांसि गच्छति ॥

यो० । प्रेत्य चपुनः इह ईदृशाः विप्राः ब्रह्मवादिभिः गर्ह्यंते — यत् व्रतं छद्मना आचरितं तत् व्रतं रक्षांसि गच्छति ॥

भा० । ता० । परलोक और इसलोक में ऐसे ब्राह्मणों की ब्रह्मवादी निंदाकरते हैं और जो वृत छद्मसे कियाहो वह राक्षसों को पहुंचताहै अर्थात् निष्फलहोताहै १९९ ॥

अलिङ्गीलिङ्गिवेषेणयोवृत्तिमुपजीवति । सलिङ्गिनांहरत्येनस्तिर्यग्योनौचजायते२००॥

प० । अलिंगी लिंगिवेषेण यः वृत्तिं उपजीवति सः लिंगिनां हरति एनः तिर्यग्योनौ च जायते ॥

यो० । यः अलिंगी लिंगिवेषेण वृत्तिं उपजीवति सलिंगिनां एनः (पापं) हरति चपुनः तिर्यग्योनौ जायते — तस्मात् एतत् न कर्तव्यम् ॥

भा० । ता० । जो पुरुष ब्रह्मचारी वस्तुतः नहो और ब्रह्मचारीके वेष (मेखला मृगचर्म दंड) से भिक्षाआदि से जीविकाकरै वह ब्रह्मचारियों के पापकाभागी होता है और तिर्यक्योनि (सर्प आदि) में पैदाहोताहै—तिससे यह न करना चाहिये २०० ॥

परकीयनिपानेषुनस्नायाच्चकदाचन । निपानकर्तुःस्नात्वातुदुष्कृतांशेनलिप्यते २०१ ॥

प० । परकीयनिपानेषु न स्नायात् च कदाचन निपानकर्तुः स्नात्वा तु दुष्कृतांशेन लिप्यते ॥

यो० । परकीयनिपानेषु (पुष्करिण्यादिषु) कदाचन नस्नायात् स्नात्वातु निपानकर्तुः दुष्कृतांशेन (चतुर्थभागेन) लिप्यते (युक्तोभवति) ॥

भा० । पराये निपानों में कभी भी स्नान न करै यदि करै तो निपान बनानेवाले के चौथाई पाप का भागी होता है ॥

ता० । अन्य के बनाये निपानों (पुष्करिणी आदि) में कदाचित् भी स्नान न करै क्योंकि

उसमें स्नान करके निपान करने वालेके चौथाई पाप से लिपायमान होता है अर्थात् भोगता है और यदि किसीने जो बनाये नहीं ऐसे नदीआदि स्नानार्थ न मिलें तो अन्य के बनाये निपानों में इस याज्ञवल्क्य की कहीहुई विधि से स्नान आदि करै कि अन्यके जलोंमें विना पांच पिण्ड निकासे स्नान न करै किन्तु चार मिट्टी के पिण्ड (ढेले) निकासकर स्नानकरै और स्नानकरके देवता और पितरों के निमित्त तर्पण करै २०१ ॥

यानशय्यासनान्यस्यकूपोद्यानगृहाणिच।अदत्तान्युपभुञ्जानएनसःस्यात्तुरीयभाक् २०२

प० । यानशय्यासनानि अस्य कूपोद्यानगृहाणि च अदत्तानि उपभुंजानः एनसः स्यात् तुरीयभाक् ॥

यो० । अस्य (परस्य) अदत्तानि यानशय्यासनानि चपुनः कूपोद्यानगृहाणि उपभुंजानः पुरुषः एनसः (पापस्य) तुरीयभाक् स्यात् ॥

भा०।ता०। अन्य के विनादिये हुये—अर्थात् अनुमतिके विना यान शय्या आसन कूप उद्यान और गृह इनको भोगता (वर्त्तता)हुआ मनुष्य पापके चतुर्थांश का भागी होताहै—तिससे सबके उपकारार्थ बनाकर छोड़े हुये मठ कूप आदि के भोगने और स्नान आदि में कुछ दोष नहींहै २०२ ॥

नदीषुदेवखातेषुतडागेषुसरःसुच । स्नानंसमाचरेन्नित्यंगर्तप्रस्रवणेषुच २०३ ॥

प० । नदीषु देवखातेषु तडागेषु सरस्सु च स्नानं समाचरेत् नित्यं गर्तप्रस्रवणेषु च ॥

यो० । नदीषु देवखातेषु—तडागेषु चपुनः सरस्सु चपुनः गर्तप्रस्रवणेषु नित्यं स्नानं समाचरेत् ॥

भा० । नदी और देवताओं के खोदे तडाग—सर (छोटे तालाव) और गर्त और प्रस्रवण इनमें नित्यस्नान करै ॥

ता० । नदीऔर देवताओंके खोदेहुये तालाव और सर और गर्त और प्रस्रवण इनमें नित्य स्नान करै और गर्त वे होतेहैं जिनका वहाव आठहजार धनुषसे कमहो और चारहाथ का एक धनुषहोताहै क्योंकि छन्दोग परिशिष्टमें यह कहाहै कि आठहजार धनुषतक जिनकी गतिनहींहै वे नदीनहीं हैं किन्तु वे गर्त कहाते हैं—यद्यपि इसीसे परके निपानका भी निषेध सिद्धथा तथापि अपने निमित्त छोड़े हुये तडागोंमें स्नान आदि की अनुमति के लियेहै और वह अनुमति भी नदी आदिके असम्भव के समय ही है २०३ ॥

यमान्सेवेतसततंननित्यंनियमान्बुधः ।
यमान्पतत्यकुर्वाणोनियमान्केवलान्भजन् २०४ ॥

प० । यमान् सेवेत सततं न नित्यं नियमान् बुधः यमान् पतति अकुर्वाणः नियमान् केवलान् भजन् ॥

---

१ पंच पिण्डाननुद्धृत्य न स्नायात्परवारिषु उद्धृत्यचतुरःपिण्डान् पारक्येस्नानमाचरेत् स्नात्वा च तर्पयेद्देवान्—पितृंश्चैवाविशेषतः ॥

२ धनुः सहस्राण्यष्टौच गतिर्यासांनविद्यते नतानदीशब्दवहागर्तास्ताःपरिकीर्तिताः ॥

यो० । बुधः यमान् सततं सेवेत – नियमान् नित्यं न सेवेत – यमान् अकुर्वाणः – केवलान् नियमान् भजन् सन् पुरुषः पतति ॥

भा० । विद्वान् पुरुष यमों को नित्यकरै और नियमों को नित्य न करे क्योंकि केवल नियमों को करता हुआ और यमोंको न करता हुआ मनुष्य पतित होताहै ॥

ता० । नियमोंकी अपेक्षा यमोंकी अधिक(श्रेष्ठ)ता दिखानेकेलिये यह श्लोकहै कुछ नियमोंके निषेधार्थ नहींहै क्योंकि दोनोंशास्त्रोंकहैं–और याज्ञवल्क्यने येयम और नियमकेहेहैं कि ब्रह्मचर्य दया–क्षमा–ध्यान–सत्य–अकठोरता–अहिंसा–चोरीकात्याग–मधुरस्वभाव और इन्द्रियोंकाद- मन येदश यमकहेहैं–और स्नान–मौन–उपवास–यज्ञ–स्वाध्याय–लिंग इन्द्रियकारोकना–गुरु- कीसेवा–शौच–अक्रोध–और अप्रमाद येदशनियमकहेहैंइन यम नियमोंके स्वरूपकाज्ञाता पुरुष सम्पूर्ण स्नान आदि नियमोंके त्यागने पर भी अहिंसा आदि यमों को करे और नियमों को करता हुआ और यमों को न करनेवाला पुरुष पतित होता है इस प्रकार यमोंकी स्तुति के लिये यह वचन है मेधातिथि गोविन्दराज तो यह कहते हैं कि हिंसाका त्याग आदि यमहैं और वेद का जप आदि नियमहैं अहिंसा–सत्यवचन–ब्रह्मचर्य–अदम्भ–और अस्तेय (चोरी का त्याग) ये पांच यम कहेहैं–और क्रोधका त्याग–गुरुकी सेवा–शौच–लघुभोजन–और अप्रमाद ये पांच नियम कहेहैं २०४ ॥

नाश्रोत्रियतेयज्ञेग्रामयाजिकृतेतथा । स्त्रियाक्लीवेनचहुतेभुञ्जीतब्राह्मणःक्वचित २०५॥

प० । न अश्रोत्रियतते यज्ञे ग्रामयाजिकृते तथा स्त्रिया क्लीवेन च हुते भुञ्जीत ब्राह्मणः क्वचित् ॥

यो० । अश्रोत्रियतते–तथा ग्रामयाजिकृते यज्ञे – स्त्रिया च क्लीवचिन्तेन हुतेयज्ञे ब्राह्मणः क्वचित् न भुञ्जीत ॥

भा० । ता० । जिसने वेद न पढ़ाहो उसके प्रारम्भकिये यज्ञमें अग्नीषोमीय कर्म के पीछे भी ब्राह्मण कदाचित्भी भोजन न करे और ग्राम (अनेकों) का यज्ञकरानेवालेके यज्ञमें और जिस यज्ञ में स्त्री और नपुंसकआहुतिदें वहां–ब्राह्मण कदाचित् भी भोजन न करे २०५ ॥

अश्लीकमेतत्साधूनांयत्रजुह्वत्यमीहविः । प्रतीपमेतद्देवानांतस्मात्तत्परिवर्जयेत् २०६॥

प० । अश्लीकं एतत् साधूनां यत्र जुह्वति अमी हविः प्रतीपं एतत् देवानां तस्मात् तत् परि- वर्जयेत् ॥

यो० । यत्र अमी (अश्रोत्रियादयः) हविः जुह्वति एतत् साधूनां अश्लीकं (श्रीनाशकं) एतत् देवानां प्रतीपं (प्रतिकूलं) तस्मात् तत् परिवर्जयेत – अश्लीकमितिपदेरेफस्यलः पश्रीकं – श्रीघ्नमित्यर्थः ॥

भा० । ता० । जिसयज्ञ में ये पूर्वोक्त होम करते हैं वहकर्म साधुओंकी लक्ष्मीका नाशक है और देवताओं के भी प्रतिकूलहै तिससे इसका त्यागदे २०६ ॥

---

१ ब्रह्मचर्यं दयाक्षान्तिर्ध्यानं सत्यमकल्कता अहिंसास्तेयमाधुर्ये दमश्चेतियमाःस्मृताः स्नानंमौनोपवासेज्यास्वाध्यायोपस्थनिग्रहः नियमोगुरुशुश्रूषा शौचाक्रोधाप्रमादता ॥

२ अहिंसासत्यवचनं ब्रह्मचर्यमकल्कता–अस्तेयमितिपंचैतेयमाश्चपरिकीर्तिताः अक्रोधोगुरुशुश्रूषाचशौचमाहारलाघवम् अप्रमादश्चसततं पंचैतेनियमाःस्मृताः ॥

मत्तक्रुद्धातुराणांचनभुञ्जीतकदाचन । केशकीटावपन्नंचपदास्पृष्टंचकामतः २०७ ॥

प० । मत्तक्रुद्धातुराणां च न भुंजीत कदाचन केशकीटावपन्नं च पदा स्पृष्टं च कामतः ॥

यो० । मत्तक्रुद्धातुराणां चपुनः केशकीटावपन्नं चपुनः कामतः पदास्पृष्टं अन्नं कदाचन न भुंजीत ॥

भा० । ता० । उन्मत्त क्रोधी–रोगी इनके अन्नको और जिसमें केश और कीट पड़ेहों उस अन्नको और जिसको जानकर पैरसे स्पर्शकियाहो उसअन्नको कदाचित् भी भोजन नकरै २०७॥

भ्रूणघ्नावेक्षितंचैवसंस्पृष्टंचाप्युदक्यया । पतत्रिणावलीढंचशुनासंस्पृष्टमेवच २०८ ॥

प० । भ्रूणघ्नावेक्षितं च एव संस्पृष्टं च अपि उदक्यया पतत्रिणावलीढं च शुना संस्पृष्टं एवं च ॥

यो० । भ्रूणघ्नावेक्षितं – चपुनः उदक्ययासंस्पृष्टं – पतत्रिणावलीढं – चपुनः शुना संस्पृष्टं अन्नं – कदाचन न भुंजीत ॥

भा० । ता० । भ्रूणघ्न (गो आदिकाहननकरनेवाला) के देखे और रजस्वलाके स्पर्शकिये– और पक्षीके जूंठे और कुत्तेके स्पर्श किये अन्नको कभी भी न खाय २०८ ॥

गवाचान्नमुपघ्रातंघुष्टान्नंचविशेषतः । गणान्नंगणिकान्नंचविदुषांचजुगुप्सितम् २०९ ॥

प० । गवा च अन्नं उपघ्रातं घुष्टान्नं च विशेषतः गणान्नं गणिकान्नं च विदुषां च जुगुप्सितम् ॥

यो० । गवा उपघ्रातं अन्नं – चपुनः विशेषतः घुष्टान्नं -गणान्नं चपुनः गणिकान्नं चपुनः विदुषां जुगुप्सितं अन्नं न भुंजीत ॥

भा० । ता० । गौका सूंघाहुआअन्न और विशेष कर घुष्टान्न अर्थात् है कोई भोजन करने वाला इस वाणीको कहकर जो दियाजाय–शठ ब्राह्मणोंके समूहका अन्न–और वेश्याका अन्न और जिसकी बुद्धिमान् पुरुष निन्दाकरैं वह अन्न कदाचित् भी खाने योग्य नहीं है २०९ ॥

स्तेनगायनयोश्चान्नंतक्ष्णोवार्द्धुषिकस्यच । दीक्षितस्यकदर्यस्यबद्धस्यनिगडस्यच २१०

प० । स्तेनगायनयोः च अन्नं तक्ष्णः वार्द्धुषिकस्य च दीक्षितस्य कदर्यस्य बद्धस्य निगडस्य च ॥

यो० । स्तेनगायनयोः – तक्ष्णः चपुनः वार्द्धुषिकस्य – दीक्षितस्य – कदर्यस्य – बद्धस्य – चपुनः निगडस्य – अन्नं कदाचन न भुंजीत ॥

भा० । चोर–गानेवाला–बढ़ई–व्याजलेनेवाला–यज्ञ में दीक्षित–कृपण–और बद्ध(कैदी) इनके अन्नको भक्षण न करै ॥

ता० । चोर और गानेवाला–बढ़ई वार्द्धुषिक (व्याजलेनेवाला) और यज्ञमें जिसने दीक्षा लीहो–कृपण–और निगड (बेड़ी) से जो बँधाहो इनके अन्नको भी भक्षण न करै गोविंदराज तो यह कहतेहैं कि बद्ध वह जो लोहेसे अन्य (काष्ठ आदि) की बेड़ीसे बँधाहो और निगडित वह होताहै जो लोहेकी बेड़ियोंसे बँधाहो २१० ॥

अभिशस्तस्यषंढस्यपुंश्चल्यादाम्भिकस्यच। शुक्तंपर्युषितंचैवशूद्रस्योच्छिष्टमेवच २११

प० । अभिशस्तस्य षंढस्य पुंश्चल्याः दाम्भिकस्य च शुक्तं पर्युषितं च एव शूद्रस्य उच्छिष्टं एव च ॥

यो० । अभिशस्तस्य (महापातकित्वेन जातनिंदस्य) नपुंसकस्य — पुंश्चल्याः (व्यभिचारिण्याः)दाम्भिकस्य अन्नं — शुक्तं चपुनः पर्युषितं — चपुनः शूद्रस्य उच्छिष्टं न भुंजीत ॥

भा० । ता० । महापातक आदि करनेसे जिसकी लोकमें निंदाहुईहो उसका और नपुंसक का और व्यभिचारिणी स्त्रीका चाहे वह वेश्यासे भिन्न भी हो—दाम्भिक (डिंभधारी) का अन्न और शुक्त (जो स्वभावसे मधुरहो परन्तु किसी प्रकार खट्टाहोजाय) वासी और शूद्रका उच्छिष्ट अन्न (जो खायकर बनानेके पात्रमें शेषरहाहो) न खाय और गुरुका उच्छिष्ट तो भोज्यहै इससे उसके खानेमें कुछ दोष नहीं है २११ ॥

चिकित्सकस्यमृगयोःक्रूरस्योच्छिष्टभोजिनः।उग्रान्नंसूतिकान्नंचपर्याचान्तमनिर्दशम् २१२

प०। चिकित्सकस्य मृगयोः क्रूरस्य उच्छिष्टभोजिनः उग्रान्नं सूतिकान्नं च पर्याचान्तं अनिर्दशं ॥

यो० । चिकित्सकस्य — मृगयोः — क्रूरस्य — उच्छिष्टभोजिनः अन्नं — उग्रान्नं — पर्याचान्तं अन्नं चपुनः अनिर्दशं सूतिकान्नं — न भुंजीत ॥

भा० । वैद्य—व्याध—कठोरस्वभाव—निषिद्धके उच्छिष्टकाभोक्ता—दारुण (गोहत्याआदि) कर्मकाकर्ता—दशदिनके भीतरकी सूतिका इनका अन्न और पर्याचान्तके अन्नको भक्षण न करै ॥

ता० । वैद्य—मृगयु (जो मांसवेचनेके हेतु मृगोंको मारै) कठोरस्वभाव—निषिद्धका उच्छिष्ट खानेवाला—उग्र (दारुण कर्मका कर्ता) और दशदिनसे पहिले सूतिका का अन्न अर्थात् दसूठनका—और पर्याचांत अन्न पर्याचांत उसे कहतेहैं जहां एक पंक्तिमें बैठेहुये सब भोजनकरते हों और एक आचमनकरले वह सबके भोजनका अन्न पर्याचांत कहाताहै इतने अन्नोंका भोजन करना वर्जितहै—इस श्लोकमें गोविंदराजने—मंजरीग्रंथमें उग्रराजाको कहाहै और मनुवृत्तिमें क्षत्रियसे शूद्रामें उत्पन्नको कहाहै यह ठीक नहीं है क्योंकि कहीं कुछ और कहीं कुछ और याज्ञवल्क्यने उग्र राजा कहाहै यह एक आश्चर्यरूप गोविंदराजके हृदयकी शोभाहै २१२ ॥

अनर्चितंवृथामांसमवीरायाश्चयोषितः । द्विषदन्नंनगर्यन्नंपतितान्नमवक्षुतम् २१३ ॥

प० । अनर्चितं वृथामांसं अवीरायाः च योषितः द्विषदन्नं नगर्यन्नं पतितान्नं अवक्षुतम् ॥

यो० । अनर्चितं अन्नं — वृथामांसं — चपुनः अवीरायाः योषितः अन्नं — द्विषदन्नं — नगर्यन्नं — पतितान्नं — अवक्षुतं अन्नं — न भुंजीत ॥

भा० । ता० । पूजाके योग्यको जो अनादरसे दियाजाय वह अन्न—और देवताको अर्पणके निमित्त जो न बनायाजाय वह मांस—और पतित और पुत्रहीन स्त्रीका अन्न—और शत्रु—नगर पतित इनकाअन्न—और जिसके ऊपर छींकदियाहो वह अन्न—भक्षण नहीं करना २१३ ॥

---

१ गोविंदराजो मंजर्यामुग्रंराजानमुक्तवान् मनुवृत्तौच शूद्रायां क्षत्रियोत्पन्नमभ्यधात् भेदोक्तेर्याज्ञवल्कीयेनोग्रोराजेतिवावदन् आश्चर्यमिदमेतस्यस्वकीयहृद्भूषणम् ॥

पिशुनानृतिनोश्चान्नंक्रतुविक्रयिणस्तथा । शैलूषतुन्नवायान्नंकृतघ्नस्यान्नमेवच २१४ ॥

प० । पिशुनानृतिनोः च अन्नं क्रतुविक्रयिणः तथा शैलूषतुन्नवायान्नं कृतघ्नस्य अन्नं एवं च ॥

यो० । चपुनः पिशुनानृतिनोः अन्नं — तथाक्रतुविक्रयिणः अन्नं — शैलूषतुन्नवायान्नं — चपुनः कृतघ्नस्य अन्नं — न भुंजीत ॥

भा० । ता० । पिशुन (जो परोक्षमेंपरकी निंदाकरै) और मिथ्यावादी— और यज्ञका बेचनेवाला अर्थात् जो इसरीतिपर धनग्रहणकरैकि मेरी यज्ञकाफल तुझेहो— और नट— और तुन्नवाय (दरजी) और कृतघ्न (जो पराये उपकारको न माने)—इनके अन्नका भक्षण न करै २१४ ॥

कर्मारस्यनिषादस्यरंगावतारकस्यच । सुवर्णकर्तुर्वेणस्यशस्त्रविक्रयिणस्तथा २१५ ॥

प० । कर्मारस्य निषादस्य रंगावतारकस्य च सुवर्णकर्तुः वेणस्य शस्त्रविक्रयिणः तथा ॥

यो० । कर्मारस्य — निषादस्य — चपुनः रंगावतारकस्य — सुवर्णकर्तुः — वेणस्य — तथा शस्त्रविक्रयिणः — अन्नं न भुंजीत ॥

भा० । ता० । लुहार—निषाद—रंगावतारक—(जो नट और गानेवालेसे भिन्न नाटक की आजीविकाकरैं) सुनार—बांसके बींधनेसे जो जीविकाकरै— और लोहेको जो बेचैं—इनके अन्नको भी भोजन न करै २१५ ॥

श्ववतांशौण्डिकानांचचैलनिर्णेजकस्यच । रंजकस्यनृशंसस्ययस्यचोपपतिर्गृहे २१६ ॥

प० । श्ववतां शौण्डिकानां च चैलनिर्णेजकस्य च रंजकस्य नृशंसस्य यस्य च उपपतिः गृहे ॥

यो० । श्ववतां — चपुनः शौण्डिकानां चपुनः चैलनिर्णेजकस्य — रंजकस्य — नृशंसस्य — अन्नं — चपुनः यस्य गृहे उपपतिः (जारः) अस्ति तस्य अन्नं न भुंजीत ॥

भा० । ता० । जो मृगयाके लिये कुत्तोंको पाले—और मदिराके बेचनेवाले—और धोबी—और रंजक (रंगरेज) और निर्दयी—और जिसके घरमें जार पुरुष बसताहो—इनके अन्नका भोजन न करै २१६ ॥

मृष्यंतियेचोपपतिंस्त्रीजितानांचसर्वशः । अनिर्दशंचप्रेतान्नमतुष्टिकरमेवच २१७ ॥

प० । मृष्यंति ये च उपपतिं स्त्रीजितानां च सर्वशः अनिर्दशं च प्रेतान्नं अतुष्टिकरं एवं च ॥

यो० । ये पुरुषाःउपपतिं (जारं) मृष्यंति (सहंते) तेषां — चपुनः सर्वशः स्त्रीजितानां — अन्नं — चपुनः अनिर्दशं प्रेतान्नं — चपुनः अतुष्टिकरं अन्नं — न भुंजीत ॥

भा० । ता० । जो मनुष्य घरमें रहतेहुये अपनी स्त्रीके जारको सहतेहैं और जो सब कामों में स्त्रीके वशीभूतहैं—उनका अन्न—और दशदिनके भीतर प्रेतका अन्न—और जिस अन्नसे मनकी प्रसन्नता न हो वह अन्न—भोजन न करना २१७ ॥

राजान्नंतेजआदत्तेशूद्रान्नंब्रह्मवर्चसम् । आयुःसुवर्णकारान्नंयशश्चर्मावकर्तिनः २१८ ॥

प० । राजान्नं तेजः आदत्ते शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसं आयुः सुवर्णकारान्नं यशः चर्मावकर्तिनः ॥

यो० । राजान्नं तेजः — शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसं — सुवर्णकारान्नं आयुः — चर्मावकर्तिनःअन्नंयशः — आदत्ते (नाशयति) ॥

भा० । ता० । राजाका अन्न तेजको—और शूद्रका अन्न वेदके अध्ययन आदिसे पैदाहुये तेज

को—और सुनारका अन्न अवस्थाको—और चमारका अन्न यशको—नष्टकरता है—अर्थात् इन दोषोंसे इनके अन्नको भक्षण न करै २१८ ॥

कारुकान्नंप्रजांहन्तिबलंनिर्णेजकस्यच । गणान्नंगणिकान्नंचलोकेभ्यःपरिकृन्तति २१९

प० । कारुकान्नं प्रजां हंति बलं निर्णेजकस्य च गणान्नं गणिकान्नं च लोकेभ्यः परिकृन्तति ॥

यो० । कारुकान्नं प्रजां—निर्णेजकस्य अन्नं बलं—हंति—गणान्नं चपुनः गणिकान्नं लोकेभ्यः परिकृन्तति ॥

भा० । ता० । कारुक (कारीगर रसोइया आदि) प्रजाको—धोबीका अन्न बलको—गण (अनेक मनुष्य) और वेश्याका अन्न लोकों (स्वर्ग आदि) से नष्टकरता है २१९ ॥

पूयंचिकित्सकस्यान्नंपुंश्चल्यास्त्वन्नमिन्द्रियम् ।
विष्ठावार्द्धुषिकस्यान्नंशस्त्रविक्रयिणोमलम् २२० ॥

प० । पूयं चिकित्सकस्य अन्नं पुंश्चल्याः तु अन्नं इन्द्रियं विष्ठा वार्द्धुषिकस्य अन्नं शस्त्रविक्रयिणः मलम् ॥

यो० । चिकित्सकस्य अन्नं पूयं—पुंश्चल्याः अन्नं इन्द्रियं (वीर्यं) वार्द्धुषिकस्य अन्नं विष्ठा—शस्त्रविक्रयिणः अन्नं मलं भवति ॥

भा० । ता० । वैद्यका अन्न पूय (राध) के—और व्यभिचारिणीका अन्न वीर्यके—व्याजलेने वालेका अन्न विष्टाके—और लोहेके वेचनेवालेका अन्न मल (कफ आदि) के—तुल्यहोताहै २२० ॥

यएतेऽन्येत्वभोज्यान्नाःक्रमशःपरिकीर्तिताःतेषांत्वगस्थिरोमाणिवदन्त्यन्नंमनीषिणः२२१

प० । ये एते अन्ये तु अभोज्यान्नाः क्रमशः परिकीर्तिताः तेषां त्वगस्थिरोमाणि वदन्ति अन्नं मनीषिणः ॥

यो० । ये एते क्रमशः अन्ये अभोज्यान्नाः परिकीर्तिताः तेषां अन्नंमनीषिणः त्वगस्थिरोमाणि वदंति ॥

भा० । ता० । जो ये अभोज्यान्न (जिनका भोजन न करना) क्रमसे कहे हैं उनके अन्नको बुद्धिमान् मनुष्य, त्वचा, अस्थि—रूपकहा है—अर्थात् त्वचाआदि के भोजनका जो दोषहै वही दोष उनके अन्नका भी है २२१ ॥

भुक्त्वातोऽन्यतमस्यान्नममत्याक्षपणंत्र्यहम्।मत्याभुक्त्वाचरेत्कृच्छ्रंरेतोविण्मूत्रमेवच २२२

प० । भुक्त्वा अतः अन्यतमस्य अन्नं अमत्या क्षपणं त्र्यहम् मत्या भुक्त्वा चरेत् कृच्छ्रं रेतः विण्मूत्रं एव च ॥

यो० । अतः (अस्माद्धेतोः) अन्यतमस्य अन्नं अमत्या भुक्त्वा त्र्यहं क्षपणं (उपवासः) कर्तव्यं—मत्या (बुद्धिपूर्वं) भुक्त्वा चपुनः रेतः विट्—मूत्रं भुक्त्वा—कृच्छ्रं चरेत् ॥

भा० । इसहेतु—पूर्वोक्तोंमेंसे किसीके अन्नको खाकर और वीर्य—विष्टा—मुत्र इनको विनाजाने खाकर तीनदिन उपवासकरै और जानकर खाय तो कृच्छ्रकरै ॥

ता० । इससे इनपूर्वोक्तोंमें अन्यतम (कोईसे) के अन्नको विनाजानेखाकर तीनदिन उपवास और जानकर जो भक्षणकरै तो कृच्छ्रव्रतकरै इसीप्रकार वीर्य—विष्टा मूत्रके भक्षणकरने में भी जानकर तीनदिन उपवास और जानकर कृच्छ्रकरै—और यह उन्मत्तआदि के सम्बन्धसे जो

दुष्टअन्न उसका प्रायश्चित्तहै और जिसमें केशकीटपड़ेहों अथवा जो अन्न बासी वा घुष्टहो उस का नहींहै क्योंकि अन्यतमस्य यह सम्बन्ध में षष्ठीकही है—और स्नातक के व्रतके निमित्त ये एकप्रकरण में पढ़ेहैं—और इसका प्रायश्चित्त ग्यारहमें अध्याय में कहेंगे—यदि पूर्वोक्त सबमें प्रायश्चित्तहोता तो यह कहते कि (भुक्त्वातोन्यतमस्यान्नंदुष्टं) और अन्यतमस्यतुअन्नं—यह न कहते—तिससे जो मेधातिथि ने कहाहै एकप्रकरणहोनेसे शुक्तआदि अन्नके भक्षण में भी यही प्रायश्चित्त है सो ठीकनहीं है और अप्रकरण में जो प्रायश्चित्त कहा है वह लाघव के लिये है क्योंकि प्रकरण में कहते तो मत्तआदि वहांपर भी पढ़नेपड़ते २२२ ॥

नाद्याच्छूद्रस्यपक्वान्नंविद्वानश्राद्धिनोद्विजः।आददीताममेवास्मादवृत्तावेकरात्रिकम्॥२२३॥

प० । न अद्यात् शूद्रस्य पक्वान्नं विद्वान् अश्राद्धिनः द्विजः आददीत आमं एव अस्मात् अवृत्तौ एकरात्रिकं ॥

यो० । विद्वान्द्विजः अश्राद्धिनः शूद्रस्य पक्वान्नं न अद्यात् किंतु अस्मात् (शूद्रात्) अवृत्तौ एकरात्रिकं आमं एव आददीत (गृह्णीत) ॥

भा० । ता० । विद्वानद्विज (ब्राह्मण) श्राद्ध के अनधिकारी शूद्र के पक्वान्नको भी भक्षण न करे किंतु अन्यका अन्न न मिले तो शूद्रसे एकरात्रि के निर्वाहार्थ आम (कच्चा) ही अन्नको ग्रहण करले २२३ ॥

श्रोत्रियस्यकदर्यस्यवदान्यस्यचवार्द्धुषेः।मीमांसित्वोभयंदेवाःसममन्नमकल्पयन् २२४॥

प० । श्रोत्रियस्य कदर्यस्य वदान्यस्य च वार्द्धुषेः मीमांसित्वा उभयं देवाः समं अन्नं अकल्पयन् ॥

यो० । कदर्यस्य श्रोत्रियस्य अन्नं—चपुनः वार्द्धुषेः वदान्यस्य अन्नं—एतत् उभयं अन्नं देवाःमीमांसित्वा समं अकल्प यन् अकुर्वन ॥

भा० । ता० । जो वेदपाठीहोकर कृपणहो और जो दाताहोकर व्याजलेनेवालाहो—इनदोनों के अन्नको विचारकर देवताओंने तुल्यकियाहै—क्योंकि दोनों के गुण और दोष तुल्यहैं २२४ ॥

तान्प्रजापतिराहैत्यमाकृध्वंविषमंसमम् । श्रद्धापूतंवदान्यस्यहतमश्रद्धयेतरत् २२५ ॥

प० । तान् प्रजापतिः आह एत्य मा कृध्वं विषमं समम् श्रद्धापूतं वदान्यस्य हतं अश्रद्धया इतरत् ॥

यो० । प्रजापतिः तान् (देवान्) एत्य आह—यूयं—विषमं समं माकृध्वं (मा कुरुत) वदान्यस्य अन्नं श्रद्धापूतं भवति—इतरत् (कृपणस्यान्नं) अश्रद्धया हतम् (दूषितम्) ॥

भा० । ता० । उनदेवताओं के समीप आनकर ब्रह्मा बोले कि विषम अन्नको सम मतकरो किंतु श्रद्धा से दियाहुआ दाताका अन्न पवित्रहोताहै और अश्रद्धासे दियाहुआ कृपण वेदपाठी का अन्न दूषित होताहै—यद्यपि दोनों का अन्न निषिद्ध कहआये हैं तथापि श्रद्धा से दिया दोनों का अन्नशुद्ध है यह जनाने के लिये यह वचन पुनः कहाहै २२५ ॥

श्रद्धयेष्टंचपूर्तंचनित्यंकुर्यादतन्द्रितः । श्रद्धाकृतेह्यक्षयेतेभवतःस्वागतैर्धनैः २२६ ॥

प० । श्रद्धया इष्टं च पूर्तं च नित्यं कुर्यात् अतन्द्रितः श्रद्धाकृते हि अक्षये ते भवतः स्वागतैः धनैः ॥

यो० । अतन्द्रितः सन् इष्टं च पुनः पूर्तं श्रद्धया नित्यं कुर्यात् – हि (यतः) स्वागतैः धनैः श्रद्धाकृते ते अक्षये भवतः ॥

भा० । ता० । आलस्यकोछोड़कर श्रद्धासे इष्ट (यज्ञआदि) और पूर्त (कूप आरामआदि) को नित्यकरे क्योंकि श्रद्धासे न्यायसे संचितधनसेकियेहुये इष्ट और पूर्त अक्षय स्वर्गआदि फल के देनेवाले होतेहैं २२६ ॥

दानधर्मंनिषेवेतनित्यमैष्टिकपौर्तिकम् । परितुष्टेनभावेनपात्रमासाद्यशक्तितः २२७ ॥

प० । दानधर्मं निषेवेत नित्यं ऐष्टिकपौर्तिकं परितुष्टेन भावेन पात्रं आसाद्य शक्तितः ॥

यो० । ऐष्टिकपौर्तिकं दानधर्मं पात्रं – आसाद्य शक्तितः परितुष्टेन भावेन नित्यं निषेवेत ॥

भा० । ता० । दानदेनेयोग्य सुपात्रब्राह्मणको प्राप्तहोकर प्रसन्न अन्तःकरणसे इष्ट और पूर्त सम्बन्धी दानधर्म को नित्यकरे अर्थात् यज्ञ और पूर्तमें सुपात्रको प्रसन्नहोकर दानदे २२७ ॥

यत्किंचिदपिदातव्यंयाचितेनानसूयया । उत्पत्स्यतेहितत्पात्रंयत्तारयतिसर्वतः २२८ ॥

प० । यत् किंचित् अपि दातव्यं याचितेन अनसूयया उत्पत्स्यते हि तत् पात्रं यत् तारयति सर्वतः ॥

यो० । याचितेन पुरुषेण अनसूयया यत् किंचित् अपि दातव्यं – यत् (यतः) सर्वदा दातुः) तत्पात्रं उत्पत्स्यते यः सर्वतः नरकात् तारयति – (मोचयति) ॥

भा० । ता० । मांगने से मनुष्य ईर्षा को त्यागकर यत्किंचित् भीदे क्योंकि सदैव देनेवाले को कोई न कोई ऐसापात्र मिलजाताहै जो सब नरकों से रक्षाकरलेता है २२८ ॥

वारिदस्तृप्तिमाप्नोतिसुखमक्षय्यमन्नदः । तिलप्रदःप्रजामिष्टांदीपदश्चक्षुरुत्तमम् २२९

प० । वारिदः तृप्तिं आप्नोति सुखं अक्षय्यं अन्नदः तिलप्रदः प्रजां इष्टां दीपदः चक्षुः उत्तमं ॥

यो० । वारिदः तृप्तिं – अन्नदः अक्षय्यं सुखं – तिलप्रदः इष्टांप्रजां – दीपदः उत्तमं चक्षुः – आप्नोति ॥

भा० । ता० । जलका दाता तृप्तिको–अन्नका दाता अक्षय सुखको–तिलका दाता वांछित प्रजाको–और दीपकका दाता उत्तम नेत्रों को प्राप्तहोताहै २२९ ॥

भूमिदोभूमिमाप्नोतिदीर्घमायुर्हिरण्यदः ।
गृहदोऽग्र्याणिवेश्मानिरूप्यदोरूपमुत्तमम् २३० ॥

प० । भूमिदः भूमिं आप्नोति दीर्घं आयुः हिरण्यदः गृहदः अग्र्याणि वेश्मानि रूप्यदः रूपं उत्तमं ॥

यो० । भूमिदः भूमिं – हिरण्यदः दीर्घं आयुः – गृहदः अग्र्याणि वेश्मानि – रूप्यदः उत्तमं रूपं आप्नोति ॥

भा० । ता० । भूमिकादाता भूमिको—और सुवर्ण का दाता अधिक अवस्थाको—घरकादाता उत्तम २ घरोंको—और चांदीका दाता उत्तम रूपको प्राप्तहोता है २३० ॥

वासोदश्चन्द्रसालोक्यमश्विसालोक्यमश्वदः ।
अनडुहःश्रियंपुष्टांगोदोब्रध्नस्यविष्टपम् २३१ ॥

प० । वासोदः चन्द्रसालोक्यं अश्विसालोक्यं अश्वदः अनडुहः श्रियं पुष्टां गोदः ब्रध्नस्य विष्टपं ॥

यो० । वासोदः चन्द्रसालोक्यं—अश्वदः आश्विसालोक्यं—अनडुहः पुष्टां श्रियं—गोदः ब्रध्नस्य विष्टपं—आप्नोति ॥

भा० । ता० । वस्त्रों का दाता चन्द्रसमानलोक को प्राप्तहोता है अर्थात् चन्द्रमा के समान विभूति को पाकर चन्द्रलोकमें वसताहै और इसीप्रकार घोड़ेकादाता अश्विनीकुमारोंके लोक में वसता है और बैलका दाता अत्यन्त लक्ष्मी को और गौका दाता सूर्य लोकको प्राप्त होता है २३१ ॥

यानशय्याप्रदोभार्यामैश्वर्यमभयप्रदः ।
धान्यदःशाश्वतंसौख्यंब्रह्मदोब्रह्मसार्ष्टिताम् २३२ ॥

प० । यानशय्याप्रदः भार्यां ऐश्वर्यं अभयप्रदः धान्यदः शाश्वतं सौख्यं ब्रह्मदः ब्रह्मसार्ष्टिताम् ॥

यो० । यानशय्याप्रदः भार्यां—अभयप्रदः ऐश्वर्यं—धान्यदः शाश्वतं सौख्यं—ब्रह्मदः ब्रह्मसार्ष्टिताम्—आप्नोति ॥

भा० । ता० । यान (सवारी) और शय्या का दाता भार्या को—और अभय का दाता ऐश्वर्य को—और अन्नका दाता निरन्तर सुखको—और ब्रह्म (वेद) का दाता ब्रह्मा के समान ऐश्वर्य को प्राप्तहोता है २३२ ॥

सर्वेषामेवदानानांब्रह्मदानंविशिष्यते । वार्यन्नगोमहीवासस्तिलकांचनसर्पिषाम् २३३ ॥

प० । सर्वेषां एव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते वार्यन्नगोमहीवासस्तिलकांचनसर्पिषाम् ॥

यो० । वार्यन्नगोमहीवासस्तिलकांचनसर्पिषां सर्वेषां एव दानानां मध्ये ब्रह्मदानं विशिष्यते—सकृष्टफलदं भवति ॥

भा० । ता० । जल—अन्न—गौ—भूमि—वस्त्र—तिल—सुवर्ण—घी—इन सम्पूर्ण दानों से वेद का दान अधिक फलका देनेवालाहोता है २३३ ॥

येनयेनतुभावेनयद्यद्दानंप्रयच्छति । तत्तत्तेनैवभावेनप्राप्नोतिप्रतिपूजितः २३४ ॥

प० । येन येन तु भावेन यत् यत् दानं प्रयच्छति तत् तत् तेन एव भावेन प्राप्नोति प्रतिपूजितः ॥

यो० । पुरुषः येन येन भावेन यत् यत् दानं प्रयच्छति तत् तत् तेन एव भावेन प्रतिपूजितः प्राप्नोति ॥

भा० । ता० । जिस२ अभिप्राय से अर्थात् जिस २ फलकी आकांक्षासे कि स्वर्ग मुझे मिले

इत्यादि अभिप्राय से मनुष्य जिस २ दानको देताहै उसी २ अभिप्राय से फलके द्वारा पूजाको प्राप्तहुआ मनुष्य उसी २ फलको प्राप्तहोता है अर्थात् प्रतिष्ठाके देनेवाले उसी २ फल को प्राप्त होता है २३४ ॥

योऽर्चितंप्रतिगृह्णातिददात्यर्चितमेवच । तावुभौगच्छतःस्वर्गंनरकंतुविपर्यये २३५ ॥

प० । यः अर्चितं प्रतिगृह्णाति ददाति अर्चितं एव च तौ उभौ गच्छतः स्वर्गं नरकं तु विपर्यये ॥

यो० । यः अर्चितं प्रतिगृह्णाति — चपुनः अर्चितं एव ददाति — तौ उभौ स्वर्गं गच्छतः — तुपुनः विपर्यये नरकं गच्छतः ॥

भा० । ता० । जो देनेवाला पुरुष सत्कारपूर्वक देता है और सत्कारपूर्वक दियेहुये द्रव्य को जो लेताहै वे दोनों स्वर्ग में जातेहैं और विपर्यय में अर्थात् निरादरसे देने और लेने वाले नरक में जातेहैं २३५ ॥

नविस्मयेततपसावदेदिष्ट्वाचनानृतम् । नार्तोऽप्यपवदेद्विप्रान्नदत्वापरिकीर्तयेत् २३६ ॥

प० । न विस्मयेत् तपसा वदेत् इष्ट्वा च न अनृतं न आर्तः अपि अपवदेत् विप्रान् न दत्वा परिकीर्तयेत् ॥

यो० । तपसा न विस्मयेत — चपुनः इष्ट्वा अनृतं न वदेत् — आर्तः अपि विप्रान न अपवदेत् — दत्वा न परिकीर्तयेत ॥

भा० । ता० । चान्द्रायण आदि तपकोकरके विस्मय न करै कि यह तप मैंने कैसे किया और यज्ञको करके झूठ न बोले—और ब्राह्मणों से पीडितहुआ भी मनुष्य ब्राह्मणोंकी निंदा न करै और गौ आदिको देकर किसीको न कहे २३६ ॥

यज्ञोऽनृतेनक्षरतितपःक्षरतिविस्मयात् । आयुर्विप्रापवादेनदानंचपरिकीर्तनात् २३७ ॥

प० । यज्ञः अनृतेन क्षरति तपः क्षरति विस्मयात् आयुः विप्रापवादेन दानं च परिकीर्तनात् ॥

यो० । अनृतेन यज्ञं — विस्मयात तपः — विप्रापवादेन आयुः चपुनः दानं परिकीर्तनात् क्षरति (निष्फलंभवति) ॥

भा० । ता० । झूठसे यज्ञनष्ट होताहै अर्थात् सत्यसे सफलहोता है और विस्मय (गर्व) से तप ब्राह्मणों की निंदा से अवस्था और जहांतहां कीर्तन करनेसे दान नष्टहोता है २३७ ॥

धर्मंशनैःसंचिनुयाद्वल्मीकमिवपुत्तिकाः । परलोकसहायार्थंसर्वभूतान्यपीडयन् २३८ ॥

प० । धर्मं शनैः संचिनुयात् वल्मीकं इव पुत्तिकाः परलोकसहायार्थं सर्वभूतानि अपीडयन् ॥

यो० । सर्वभूतानि अपीडयन् सन् पुत्तिकाः वल्मीकं इव परलोकसहायार्थं सदाधर्मंशनैः संचिनुयात् ॥

भा० । ता० । सबभूतोंको पीडित नहीं करताहुआ मनुष्य परलोकमें सहायता के लिये धर्म का संचय इसप्रकार शनैः शनैः करै जैसे पुत्तिका (दीम) वामीको संचय करतीहै अर्थात् अल्प अल्प भी धर्म बहुत फलदायी होजाता है २३८ ॥

नामुत्रहिसहायार्थंपितामाताचतिष्ठतः । नपुत्रदारानज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठतिकेवलः २३९ ॥

प० । न अमुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः न पुत्रदाराः न ज्ञातिः धर्मः तिष्ठति केवलः ॥

यो० । हि (यतः) अमुत्रसहायार्थं पिता चपुनः माता न तिष्ठतः पुत्रदाराः न तिष्ठंति—ज्ञातिः न तिष्ठति किन्तु केवलः धर्मः तिष्ठति ॥

भा० । ता० । परलोकमें सहायता के लिये पिता—माता—पुत्र—दारा (स्त्री , और जाति ये नहीं टिकते किंतु केवल धर्मही टिकता है—इससे पुत्रआदि से भी अधिक उपकारी धर्मको कभी न छोड़े २३९ ॥

एकःप्रजायतेजन्तुरेकएवप्रलीयते । एकोऽनुभुंक्तेसुकृतमेकएवचदुष्कृतम् २४० ॥

प० । एकः प्रजायते जंतुः एकः एव प्रलीयते एकः अनुभुंक्ते सुकृतं एकः एव च दुष्कृतम् ॥

यो० । जंतुः एकः एव प्रजायते — एकःएव प्रलीयते — एकः सुकृतं अनुभुंक्ते चपुनः एकःएव दुष्कृतं अनुभुंक्ते ॥

भा० । ता० । प्राणी एकही पैदाहोता है बान्धवों सहित नहीं और एकही प्राणी मरता है और एकही पुण्य और पापके फलको भोगताहै माताआदि के सहित नहीं तिससे माताआदि की अपेक्षा भी धर्म त्यागने योग्य नहीं है २४० ॥

मृतंशरीरमुत्सृज्यकाष्ठलोष्ठसमंक्षितौ । विमुखाबान्धवायांतिधर्मस्तमनुगच्छति २४१ ॥

प० । मृतं शरीरं उत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमं क्षितौ विमुखाः बान्धवाः यांति धर्मः तं अनुगच्छति ॥

यो० । काष्ठलोष्ठसमं मृतं शरीरं क्षितौ उत्सृज्य बान्धवाः विमुखाः यांति धर्मः तं अनुगच्छति ॥

भा० । ता० । काठ और लोष्ठके समान (अचेतन) मरेहुये शरीरको भूमिपर त्यागकर—बान्धव विमुख होजातेहैं अर्थात् मृतक जीवके पीछे नहींजाते और धर्मही जीवके संग जाता है—इससे संगजानेवाले धर्मको अवश्य संचितकरै २४१ ॥

तस्माद्धर्मसहायार्थंनित्यंसंचिनुयाच्छनैः । धर्मेणहिसहायेनतमस्तरतिदुस्तरम् २४२॥

प० । तस्मात् धर्मं सहायार्थं नित्यं संचिनुयात् शनैः धर्मेण हि सहायेन तमः तरति दुस्तरम् ॥

यो० । हि (यतः) सहायेन धर्मेण दुस्तरं तमः तरति तस्मात् सहायार्थं नित्यं शनैः संचिनुयात् ॥

भा० । ता० । जिससे धर्मरूप सहायके बलसे दुस्तर तम (नरकादि) को तरता है तिससे सहायताके लिये प्रतिदिन शनैः शनैः धर्मका संचयकरै २४२ ॥

धर्मप्रधानंपुरुषंतपसाहतकिल्बिषम् । परलोकंनयत्याशुभास्वंतंखशरीरिणम् २४३ ॥

प० । धर्मप्रधानं पुरुषं तपसा हतकिल्बिषम् परलोकं नयति आशु भास्वंतं खशरीरिणम् ॥

यो० । तपसाहतकिल्बिषं धर्मप्रधानं —भास्वंतं खशरीरिणं पुरुषं (धर्मः) आशु परलोकं नयति ॥

भा० । धर्ममें तत्पर तपसा नष्टहुआ है पाप जिसका—और देदीप्यमान—और ब्रह्मरूप पुरुषको धर्मही परलोक (स्वर्गादि) में लेजाता है ॥

ता० । धर्ममें तत्पर और दैवसे पाप के होनेपर भी प्राजापत्य आदि तपसे हताहै पाप जिसका—और प्रकाशमान और ब्रह्महै शरीर जिसका ऐसे पुरुषको धर्मही परलोकमें लेजाता है अर्थात् धार्मिक पुरुष ब्रह्मरूप होकर परलोकमें जाताहै क्योंकि खंब्रह्म—इत्यादि उपनिषदमें ख शब्द से ब्रह्महीलिया है—यद्यपि लिंगशरीर संयुक्त जीवही परलोकमें जाता है तथापि जीवभी ब्रह्मका अंशहोनेसे धर्मके प्रतापसे ब्रह्मरूप होजाता है इससे धर्मको अवश्यकरै—क्योंकि (१) भली प्रकार अध्ययनाकिये वेद और अनेकशास्त्र वहां संगनहीं जाते जहां इस मनुष्यका कियाहुआ एकधर्म जाताहै २४३ ॥

उत्तमैरुत्तमैर्नित्यंसम्बन्धानाचरेत्सह । निनीषुःकुलमुत्कर्षमधमानधमांस्त्यजेत् २४४॥

प० । उत्तमैः उत्तमैः नित्यं सम्बन्धान् आचरेत् सह निनीषुः कुलं उत्कर्षं अधमान् अधमान् त्यजेत् ॥

यो० । कुलं उत्कर्षं निनीषुः पुरुषः नित्यं उत्तमैः उत्तमैः सहसम्बन्धान् आचरेत् अधमान् अधमान् (सम्बन्धे) त्यजेत् ॥

भा० । ता० । अपने कुलकी बड़ाई चाहताहुआ मनुष्य उत्तम २ मनुष्योंके संगही प्रतिदिन सम्बन्धों को करै और अधम (नीच) अधमों के संग सम्बन्धों को त्यागदे अर्थात् विद्या आचार आदि से कुलकी वृद्धि चाहताहुआ मनुष्य सत्संगही करै और कुसंगको सर्वथा त्यागदे—यद्यपि उत्तमों के संग की विधिसेही अधमों का त्याग सिद्ध होजाता तथापि उत्तमों के न मिलने पर अपने समानोंका संगकरै इसकेलिये अधमोंका त्याग कहाहै २४४ ॥

उत्तमानुत्तमान्गच्छन्हीनान्हीनांश्चवर्जयन्।ब्राह्मणःश्रेष्ठतामेतिप्रत्यवायेनशूद्रताम्२४५

प० । उत्तमान् उत्तमान् गच्छन् हीनान् हीनान् च वर्जयन् ब्राह्मणः श्रेष्ठतां एति प्रत्यवायेन शूद्रताम् ॥

यो० । उत्तमान् उत्तमान् गच्छन् -चपुनः हीनान् हीनान् वर्जयन् सन् ब्राह्मणः श्रेष्ठतां एति--प्रत्यवायेन (विपरीताचरणेन) शूद्रतां--एति ॥

भा० । ता० । उत्तम २ पुरुषों के संग सम्बन्ध करताहुआ और अधम अधमोंको त्यागता हुआ ब्राह्मण श्रेष्ठताको प्राप्तहोताहै और विपरीत आचरण से शूद्रताको प्राप्तहोता है अर्थात् निन्दित आचरण से शूद्रहोताहै २४५ ॥

दृढकारीमृदुर्दान्तःक्रूराचारैरसंवसन् । अहिंस्रोदमदानाभ्यांजयेत्स्वर्गंतथाव्रतः२४६॥

प०। दृढकारी मृदुः दान्तः क्रूराचारैः असंवसन् अहिंस्रः दमदानाभ्यां जयेत् स्वर्गं तथाव्रतः॥

यो० । दृढकारी--मृदुः--दान्तः क्रूराचारैः असंवसन्--अहिंस्रः तथाव्रतः- ब्राह्मणः -दमदानाभ्यां स्वर्गं जयेत् ॥

भा० । ता० । दृढकारी—मृदु (कोमलस्वभाव) दांत अर्थात् शीत आतप आदि द्वंद्वोंको सहने

(१) नहिवेदास्त्वधीतास्तु शास्त्राणिविविधानिच नत्रगच्छंतियत्रास्यधर्मएकोनुगच्छति ॥

वाला—और क्रूर आचरण करनेवाले पुरुषों के संगका त्यागी—परकी हिंसारहित—और तथावृत अर्थात् नियम संयम और दानसे ब्राह्मण स्वर्गको प्राप्तहोताहै २४६ ॥

एधोदकंमूलफलमन्नमभ्युदितंचयत् । सर्वतःप्रतिगृह्णीयान्मध्वथाभयदक्षिणाम् २४७॥

प०। एधोदकं मूलफलं अन्नं अभ्युदितं च यत् सर्वतः प्रतिगृह्णीयात् मधु अथ अभयदक्षिणाम् ॥

यो० । एधोदकं — मूलफलं — चपुनः यत् अभ्युदितं (अयाचितं) अन्नं — मधु — अथ अभय दक्षिणाम् सर्वतः (सर्वस्मात्)प्रतिगृह्णीयात् ॥

भा० । ता० । काष्ठ— जल— मूल— फल—और अयाचित अन्न—मधु—और अभयदान— इनको सबसे ग्रहणकरै परन्तु इस याज्ञवल्क्य के वचन से कुलटा नपुंसक — पतितों को वर्जदे २४७ ॥

आहृताभ्युद्यतांभिक्षांपुरस्तादप्रचोदिताम् ।मेनेप्रजापतिर्ग्राह्यामपिदुष्कृतकर्मणः २४८

प० । आहृताभ्युद्यतां भिक्षां पुरस्तात् अप्रचोदिताम् मेने प्रजापतिः ग्राह्यां अपि दुष्कृत- कर्मणः ॥

यो० । आहृताभ्युद्यतां -पुरस्तात्अप्रचोदिताम् —दुष्कृतकर्मणः अपि भिक्षां प्रजापतिः ग्राह्यांमेने (अमन्यत) ॥

भा० । ता० । जो भिक्षा भिक्षुकके समीप स्वतःही आईहो और आगेरक्खीहुईहो और जो अप्रचोदित अर्थात् लेनेवालेने स्वयं वा अन्यकेद्वारा मांगी न हो और न दाताने जिस भिक्षाकी यह प्रतिज्ञा कीहो कि तुझेयहदूंगा—ऐसीभिक्षा चाहे पापकर्मीकीभी क्यों न हो तोभी ब्रह्माने ग्रहण करने योग्य मानीहै—परन्तु वहसुवर्णआदि द्रव्यरूपहो और पतितकी न हो यदि सिद्धान्न रूप होयतो पापी की पूर्वोक्त भिक्षा अग्राह्यहीहै २४८ ॥

नाश्नंतिपितरस्तस्यदशवर्षाणिपञ्चच । नचहव्यंवहत्यग्निर्यस्तामभ्यवमन्यते २४९ ॥

प०। न अश्नंति पितरः तस्य दश वर्षाणि पंच च न च हव्यं वहति अग्निः यः तां अभ्यवमन्यते॥

यो० । यः तां (भिक्षां) न अभ्यवमन्यते (नस्वीकरोति) पितरः तस्य दशपंचवर्षाणि कव्यं न अश्नंति चपुनः अग्निः हव्यं न वहति — देवान्नप्रापयति ॥

भा० । ता० । जो ब्राह्मण उसपूर्वोक्त भिक्षाको स्वीकार नहींकरता उसकेघरमें पन्द्रहवर्षतक पितरकव्यको नहींखाते —और अग्निभी हव्यको देवताओंके समीप नहींपहुंचाती—इससे उक्त भिक्षाको नाहीं न करै २४९ ॥

शय्यांगृहान्कुशान्गन्धानपःपुष्पंमणीन्दधि ।
धानामत्स्यान्पयोमांसंशाकंचैवननिर्नुदेत् २५० ॥

प० । शय्यां गृहान् कुशान् गंधान् अपः पुष्पं मणीन् दधि धानाः मत्स्यान् पयः मांसं शाकं च एव न निर्नुदेत् ॥

यो० । शय्यां — गृहान् — कुशान — गंधान् — अपः पुष्पं — मणीन् — दधि — धानाः — मत्स्यान् — पयः — मांसं — चपुनः शाकं — न निर्नुदेत् (नप्रत्याचक्षीत) ॥

---

१ अन्यत्रकुलटापंढपतितेभ्यस्तथाद्विषः ॥

भा० । ता० । शय्या–घर–कुशा–गंध (कपूरआदि) जल–पुष्प–मणि–दधि–धान (भुने चावल) मत्स्य–दूध–मांस–और शाक–अनायास से प्राप्तहुये इनका प्रत्याख्यान (नाहीं) न करे–पहिले लाने के उपायके आग्रहसे गौआदि का अप्रत्याख्यान (ग्रहण) कहा और शय्या आदि तो अयाचित (विनामांगे) और अकस्मात् प्राप्तहों अथवा दाताने अपनेघरमें रखदिये हों तो इनको स्वीकारकरले २५० ॥

गुरून्भृत्यांश्चोज्जिहीर्षन्नर्चिष्यन्देवतातिथीन् ।सर्वतःप्रतिगृह्णीयान्नतुतृप्येत्स्वयंततः २५१

प० । गुरून् भृत्यान् च उज्जिहीर्षन् अर्चिष्यन् देवतातिथीन सर्वतः प्रतिगृह्णीयात् न तु तृप्येत् स्वयं ततः ॥

यो० । गुरून चपुनः भृत्यान उज्जिहीर्षन – देवतातिथीन अर्चिष्यन सन पुरुषः सर्वतः प्रतिगृहणीयात् ततः (भिक्षाधनेन) स्वयं तु न तृप्येत् (स्वभोगे तं धनं न युंजीत) ॥

भा० । ता० । गुरू (माता पिता आदि) और भृत्यभार्यादि जो क्षुधाआदि से दुःखितहें उनके उद्धार को चाहताहुआ और देवता अतिथियों को पूजताहुआ ब्राह्मण, पतित आदिको छोड़कर सबसे प्रतिग्रहले–और उस धनसे आप न वर्त्ते २५१ ॥

गुरुषुत्वभ्यतीतेषुविनावातैर्गृहेवसन् ।आत्मनोवृत्तिमन्विच्छन्गृह्णीयात्साधुतःसदा २५२॥

प० । गुरुषु तु अभ्यतीतेषु विना वा तैः गृहे वसन् आत्मनः वृत्तिं अन्विच्छन् गृह्णीयात् साधुतः सदा ॥

यो० । गुरुषु अभ्यतीतेषु (मृतेषु) सत्सु – वा तैः (गुरुभिः) विना गृहे वसन – आत्मनः वृत्तिं अन्विच्छन सन् ब्राह्मणः सदा साधुतः प्रति गृहणीयात् ॥

भा० । ता० । माता पिताके मरेपीछे अथवा उनके विना अन्य गृहमें (जुदा) बसता हुआ और अपना निर्वाह चाहताहुआ ब्राह्मण सदैव–साधुओंसे प्रतिग्रह ले ले २५२ ॥

आर्द्धिकःकुलमित्रंचगोपालोदासनापितौ । एतेशूद्रेषुभोज्यान्नायश्चात्मानंनिवेदयेत् २५३

प० । आर्द्धिकः कुलमित्रं च गोपालः दासनापितौ एते शूद्रेषु भोज्यान्नाः यः च आत्मानं निवेदयेत् ॥

यो० । आर्द्धिकः चपुनः कुलमित्रं – गोपालः – दासनापितौ चपुनः यः आत्मानं निवेदयेत् एतेशूद्रेषु भोज्यान्नाः – भवन्तीतिशेषः ॥

भा० । ता० । किसान–कुलकामित्र–गोपाल–दास–नापित–और जो अपने आत्मा को इस प्रकार निवेदन करे कि मैं दुर्गतिहूं आपकी सेवा करूंगा और आपके समीप रहूंगा–इतने शूद्र भोज्यान्नहैं अर्थात् इनके अन्नखाने में दोषनहीं है –और किसान आदि शूद्र जिसकी कृषि आदि करतेहों उसकोही इनकाअन्न भोज्यहै इतरको नहीं २५३ ॥

यादृशोऽस्यभवेदात्मायादृशंचचिकीर्षितम् । यथाचोपचरेदेनंतथात्मानंनिवेदयेत् २५४

प० । यादृशः अस्य भवेत् आत्मा यादृशं च चिकीर्षितं यथा च उपचरेत् एनं तथा आत्मानं निवेदयेत् ॥

यो० । अस्य (शूद्रस्य) यादृशः आत्मा चपुनः यादृशं चिकीर्षितं भवेत् चपुनः यथा एनं (ब्राह्मणं) उपचरेत् तथा आत्मानं निवेदयेत् ॥

भा० । ता० । इस शूद्रकाकुल शील आदिसे जैसी अवस्थाहो और जो कियाचाहताहो और जिसप्रकार इसब्राह्मण की सेवाको करसकेगा इनसब बातोंसे अपने आत्माको निवेदन करे अर्थात् प्रथम ये सब बातें कहदे २५४ ॥

योऽन्यथासन्तमात्मानमन्यथासत्सुभाषते।सपापकृत्तमोलोकेस्तेनआत्मापहारकः२५५

प० । यः अन्यथा सन्तं आत्मानं अन्यथा सत्सु भाषते सः पापकृत्तमः लोके स्तेनः आत्मापहारकः ॥

यो० । यः अन्यथा सन्तं आत्मानं सत्सु अन्यथा भाषते स्तेनः आत्मापहारकः सः लोके पापकृत्तमः (भवति) ॥

भा० । ता० । जो अन्यथा विद्यमान अपने आत्माको सत्पुरुषों में अन्यथा कहता है अर्थात् हो कुछ और बतावे कुछ–अपनी आत्मा के हरनेवाला वह चोर जगत् में अत्यन्त पापी होता है २५५ ॥

वाच्यर्थानियताःसर्वेवाङ्मूलावाग्विनिःसृताः।तांस्तुयःस्तेनयेद्वाचंससर्वस्तेयकृन्नरः२५६

प० । वाचि अर्थाः नियताः सर्वे वाङ्मूलाः वाग्विनिःसृताः तांम् तु यः स्तेनयेत् वाचं सः सर्वस्तेयकृत् नरः ॥

यो० । सर्वे अर्थाः वाचि नियताः वाङ्मूलाः वाग्विनिःसृताः (भवन्ति) तां वाचं यः नरः स्तेनयेत् सः नरः सर्वस्तेयकृत् (ज्ञेयः) ॥

भा० । ता० । सम्पूर्ण अर्थ (पदार्थ) जिस वाणीमें नियत हैं और जिस वाणीही से उनका मूल (जड़) है और जिस वाणीसेही निकसे हैं–उसवाणी की जो चोरी करताहै वह मनुष्य सब पदार्थों की चोरीका करनेवाला होताहै और ब्रह्माकी सृष्टि भी वेद मूल कहीहै २५६ ॥

महर्षिपितृदेवानांगत्वानृण्यंयथाविधि । पुत्रेसर्वंसमासज्यवसेन्माध्यस्थमाश्रितः २५७

प० । महर्षिपितृदेवानां गत्वा आनृण्यं यथाविधि पुत्रे सर्वं समासज्य वसेत् माध्यस्थं आश्रितः ॥

यो० । महर्षिपितृदेवानां आनृण्यं यथाविधि गत्वा – पुत्रे सर्वं (कुटुम्बचिन्ताभारं) आसज्य माध्यस्थं आश्रितः सन् वसेत् गृहे इति शेषः ॥

भा० । ता० । वेद पाठ से महर्षियों के और पुत्रकी उत्पत्ति से पितरों के–और यज्ञकरने से देवताओं के ऋण से दूरहोकर और कुटुम्ब की चिन्ताके भारको पुत्रके आधीन करके–मध्यस्थ हुआ ब्राह्मण अर्थात् पुत्र स्त्री धन आदिमें ममताको छोड़कर घरमेंही वसै २५७ ॥

एकाकीचिन्तयेन्नित्यंविविक्तेहितमात्मनः ।
एकाकीचिन्तयानोहिपरंश्रेयोऽधिगच्छति २५८ ॥

प० । एकाकी चिन्तयेत् नित्यं विविक्ते हितं आत्मनः एकाकी चिन्तयानः हि परं श्रेयः अधिगच्छति ॥

यो० । हि (यतः) एकाकी चिन्तयानः पुरुषः परं श्रेयः अधिगच्छति — अतः विविक्ते (एकान्ते) आत्मनः हितं नित्यं चिन्तयेत् ॥

भा० । ता० । एकाकी होकर एकान्तमें अपने हितकी अर्थात् ब्रह्मभावकी चिन्ताकरे क्योंकि एकाकी चिन्ता करताहुआ मनुष्य परमश्रेय (मोक्ष) को प्राप्तहोता है २५८ ॥

एषोदितागृहस्थस्यवृत्तिर्विप्रस्यशाश्वती । स्नातकव्रतकल्पश्चसत्त्ववृद्धिकरःशुभः २५९॥

प० । एषा उदिता गृहस्थस्य वृत्तिः विप्रस्य शाश्वती स्नातकव्रतकल्पः च सत्त्ववृद्धिकरः शुभः ॥

यो० । गृहस्थस्य विप्रस्य एषा शाश्वती वृत्तिः उदिता — च पुनः सत्त्ववृद्धिकरः — शुभः स्नातकव्रतकल्पः उक्तः ॥

भा० । ता० । यह गृहस्थी ब्राह्मणकी ऋत आदि नित्यकी वृत्ति कही और सत्त्वगुणकी वृद्धि करनेवाला और श्रेष्ठ स्नातक के व्रतका विधान कहा २५९ ॥

अनेनविप्रोवृत्तेनवर्तयन्वेदशास्त्रवित् । व्यपेतकल्मषोनित्यंब्रह्मलोकेमहीयते २६० ॥

इतिमानवेधर्मशास्त्रेभृगुप्रोक्तायांसंहितायांचतुर्थोऽध्यायः ४ ॥

प० । अनेन विप्रः वृत्तेन वर्त्तयन् वेदशास्त्रवित् व्यपेतकल्मषः नित्यं ब्रह्मलोके महीयते ॥

यो० । वेदशास्त्रवित् विप्रः अनेन वृत्तेन नित्यं वर्तयन् सन् व्यपेतकल्मषो भूत्वा ब्रह्मलोके महीयते — (ब्रह्मलीनो) भवति ॥

भा० । ता० । इस शास्त्रोक्त आचरण को नित्य करताहुआ वेदका ज्ञाता ब्राह्मण पापों से रहित होकर ब्रह्मरूप लोक में पूजा को प्राप्तहोता है अर्थात् ब्रह्म में लीन होताहै २६० ॥

इति मन्वर्थभास्करे चतुर्थोऽध्यायः ४ ॥

अथपंचमोऽध्यायः ॥

श्रुत्वैतानृषयोधर्मान्स्नातकस्ययथोदितान् । इदमूचुर्महात्मानमनलप्रभवंभृगुम् १ ॥

प० । श्रुत्वा एतान् ऋषयः धर्मान् स्नातकस्य यथोदितान् इदं ऊचुः महात्मानं अनलप्रभवं भृगुं ॥

यो० । ऋषयः स्नातकस्य यथोदितान् एतान् धर्मान् श्रुत्वा — महात्मानं अनलप्रभवं भृगुं इदं ऊचुः ॥

भा० । क्रमसे कहेहुये स्नातक के इन धर्मोंको सुनकर संपूर्ण ऋषि अग्निके पुत्र और महात्मा भृगुको यह वचन बोले कि ॥

ता० । यथा क्रमसे कहेहुये स्नातकके इन धर्मोंको सुनकर महात्मा और अग्निसे उत्पन्न भृगुको यह वचन बोले—यद्यपि प्रथम अध्यायमें दश प्रजापतियोंमें (भृगुंनारदमेवच) भृगुकी

उत्पत्ति भी मनुसेही कहीहै तथापि कल्पभेदसे अग्निसे भी भृगुकी उत्पत्तिहै क्योंकि इसमें श्रुति में यह लिखाहै कि अग्निका वीर्य जो प्रथम प्रकाशित(भ्रष्ट)हुआ उससे सूर्य—और दूसरे वीर्यके प्रकाशसे भृगु उत्पन्नहुआ—और इस भ्रष्ट तेजसे उत्पन्न होनेसे ही भृगु कहतेहैं १ ॥

एवंयथोक्तंविप्राणांस्वधर्ममनुतिष्ठताम् । कथंमृत्युःप्रभवतिवेदशास्त्रविदांप्रभो २ ॥

प० । एवं यथोक्तं विप्राणां स्वधर्मं अनुतिष्ठतां कथं मृत्युः प्रभवति वेदशास्त्रविदां प्रभो ॥

यो० । यथोक्तं स्वधर्मं एवं अनुतिष्ठतां—वेदशास्त्रविदां विप्राणां हे प्रभो मृत्युः कथं प्रभवति ॥

भा० । ता० । शास्त्रोक्त अपने धर्मको इसप्रकार करतेहुये और वेद और शास्त्रके जाननेवाले ब्राह्मणों को वेदोक्त १०० वर्षकी अवस्थासे प्रथम हे प्रभो मृत्युके से समर्थ होतीहै अर्थात् १०० वर्षसे पहिले क्यों मरजातेहैं क्योंकि अल्प अवस्थाका कारण अधर्मका तो उनमें अभावहै--यहां हे प्रभो यह संबोधन इस निमित्त दियाहै कि तुम सब संदेहोंके दूरकरने में समर्थहो २ ॥

सतानुवाचधर्मात्मामहर्षीन्मानवोभृगुः । श्रूयतांयेनदोषेणमृत्युर्विप्राञ्जिघांसति ३ ॥

प० । सः तान् उवाच धर्मात्मा महर्षीन् मानवः भृगुः श्रूयतां येन दोषेण मृत्युः विप्रान् जिघांसति ॥

यो० । सः धर्मात्मा मानवः भृगुः तान् महर्षीन उवाच—येन दोषेण मृत्युः विप्रान जिघांसति—सः दोषः भवद्भिः श्रूयताम् ॥

भा० । ता० । धर्मात्मा और मनुका पुत्र वह भृगु उनकेप्रति यहबोला कि जिसदोष (पाप) से ब्राह्मणोंको नष्टकरना चाहतीहै उस दोषको तुम सुनो ३ ॥

अनभ्यासेनवेदानामाचारस्यचवर्जनात् । आलस्यादन्नदोषाच्चमृत्युर्विप्राञ्जिघांसति ४ ॥

प० । अनभ्यासेन वेदानां आचारस्य च वर्जनात् आलस्यात् अन्नदोषात् च मृत्युः विप्रान् जिघांसति ॥

यो० । वेदानां अनभ्यासेन—चपुनः आचारस्यवर्जनात्—आलस्यात् चपुनः अन्नदोषात्—मृत्युः विप्रान् जिघांसति ॥

भा० । ता० । वेदोंके अनभ्याससे अर्थात् अपने आचारणके त्यागनेसे और आलस्यसे अर्थात् आवश्यक कर्म के करनेमें शिथिलतासे और अभक्ष्य अन्नके दोषसे--मृत्यु ब्राह्मणों को हता (मारा) चाहतीहै अर्थात् ये सब अधर्मके हेतुहैं इसीसे अवस्थाके नाशकहैं ४ ॥

लशुनंगृञ्जनंचैवपलाण्डुंकवकानिच । अभक्ष्याणिद्विजातीनाममेध्यप्रभवानिच ५ ॥

प० । लशुनं गृंजनं च एवं पलांडुं कवकानि च अभक्ष्याणि द्विजातीनां अमेध्यप्रभवाणि च ॥

यो० । लशुनं—चपुनः गृंजनं—पलांडुं—चपुनः कवकानि चपुनः अमेध्यप्रभवाणि (शाकादीनि) द्विजातीनां अभक्ष्याणि—भवंतीति शेषः ॥

भा० । ता० । लशुन—गृंजन (गाजर) पलांडु (सलजम) कवक (छत्राक) और अशुद्ध

१ तस्ययद्रेतसःप्रथममुददीप्यततदसावादित्योऽभवद्यद्द्वितीयमासीत्तद्भृगुरिति ॥

भूमि में पैदाहुये अन्नआदि ये सब द्विजातियों को अभक्ष्य होतेहैं अर्थात् इनके भक्षणसे भी अवस्था नष्टहोतीहै और द्विजातियों के अभक्ष्य कहनेसे शूद्रोंके भक्ष्यहैं ५ ॥

लोहितान्वृक्षनिर्यासान्वृश्चनप्रभवांस्तथा । शेलुंगव्यंचपेयूषंप्रयत्नेनविवर्जयेत् ६ ॥

प० । लोहितान् वृक्षनिर्यासान् वृश्चनप्रभवान् तथा शेलुं गव्यं च पेयूषं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥

यो० । लोहितान् तथा वृश्चनप्रभवान्—वृक्षनिर्यासान्—शेलुं (बहुवारकफलं) चपुनः गव्यं पेयूषं—प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥

भा० । वृक्षका लालगोंद और काटने से पैदाहुआ लाल वा सपेदगोंद—और बहुवारक का फल और गौकी पेवची—इनको बड़े यत्नसे वर्जदे ॥

ता० । लालगोंद और काटने से पैदाहुये गोंद चाहे ये सपेदभीहों—क्योंकि इसे तैत्तिरीय श्रुतिमें लिखाहै कि जो निश्चयसे लालहो वा काटनेसे निकसा चाहै जैसाहो—और शेलु (बहुवारक का फल) नईप्रसूत गौकीपेवची इनको यत्नसे वर्जदे यद्यपि दशदिनतक गौके दूधका निषेध (अनिर्दशायाःगोःक्षीरं) इसवचनसे कहआये हैं उससेही पेवचीकाभी निषेध होसक्ता था तथापि अधिकदोष और अधिक प्रायश्चित्तकेलिये यहांपर पृथक्कहाहै और इसीसे इसका त्याग बड़े यत्नसे कहाहै ६ ॥

वृथाकृसरसंयावंपायसापूपमेवच । अनुपाकृतमांसानिदेवान्नानिहवींषिच ७ ॥

प० । वृथाकृसरसंयावं पायसापूपं एव च अनुपाकृतमांसानि देवान्नानि हवींषि च ॥

यो० । वृथाकृसरसंयावं चपुनः पायसापूपं—अनुपाकृतमांसानि देवान्नानि—चपुनः हवींषि यत्नतः वर्जयेत् ॥

भा० । वृथा कृसर—मोहनभोग—खीर—पूवे—और अनुपाकृतमांस और वे देवताओं के अन्न और हवि जो देवताको निवेदन कियेहों—इनको वर्जदे ॥

ता० । वृथाकृसर अर्थात् देवताके विना उद्देश जो अपनेलियेही तिलमिलाकर चावल पकाये जाँय उसे वृथाकृसर कहतेहैं क्योंकि इसे छन्दोगपरिशिष्टमें यही लिखाहै और संयाव पकेहुये दूधमें गुड़ और गेहूंकाचून मिलाकर जो बनताहै मोहनभोग वाकरिका जिसको कहते हैं और दूध और चावलोंसे बने वहपायस—औ अपूप (पूवे) इन वृथापकोंको वर्जदे और अनुपाकृतमांस पशु यज्ञआदि में पशुका जो मंत्रोंसे स्पर्शहै उसे उपाकरणकहतेहैं वह जिसका न हुआहो उस पशुके मांसको अनुपाकृतमांस कहतेहैं—और देवताके निवेदनसे पहिले अन्न और हवि (पुरोडाशआदि) इनको यत्नसे वर्जदे—अनुपाकृतमांसानि इसविशेष निषेध के दर्शन से—अनर्चितं वृथामांसं यह सामान्यनिषेध-गोबलीवर्द न्यायके अनुसार अनुपाकृतमांससे इतर श्राद्धआदि का अनुद्देश्य जो मांस उसके भक्षणके निषेधको बोधनकरताहै ७ ॥

अनिर्दशायागोःक्षीरमौष्ट्रमैकशफंतथा । आविकंसंधिनीक्षीरंविवत्सायाश्चगोःपयः ८ ॥

प० । अनिर्दशायाः गोः क्षीरं औष्ट्रं ऐकशफं तथा आविकं संधिनीक्षीरं विवत्सायाः च गोः पयः ॥

---

१ अथोखलुयएवलोहितो योवाव्रश्चनान्निर्येषावित्तस्यनाश्यकाममन्यस्येति ॥

२ तिलतंडुलसंपक्वः कृसरः सोभिधीयते ॥

यो० । अनिर्दशायाः गोः क्षीरं — औष्ट्रं — तथा ऐकशफं — आविकं — क्षीरं — संधिनीक्षीरं — चपुनः विवत्सायाः गोः पयः — इमान् यत्नतः वर्जयेत् ॥

भा० । व्याने से दशदिन के भीतर गौ आदि का और उंटनी—घोड़ी—भेड़—इनका और सन्धिनी और जिसका वत्स (बछड़ा) न हो ऐसी गौ का दूध—यत्न से वर्जदे ॥

ता० । प्रसूत गौ बकरी भैंस का दशदिनसे भीतर का दूध क्योंकि यहां गौ पद से इस यम वचन से वे पशु लिये हैं जिनका दूधपीने योग्य है कि गौ बकरी भैंस इनका दूध व्यानेसे दश दिनके भीतर न पीवे—और उंटनीका दूध और जिनके एकशफ (खुर) है उनकादूध अर्थात् घोड़ीका दूध और भेड़का दूध और संधिनी जो ऋतुमती दूध देती हो और गर्भवती हुआ चाहती हो उसका—क्योंकि इसे वचन से हारीतने यही कहा है—और जिस गौका वत्स मरगयाहो वा पास न हो उसका दूध न पीवे—यहां पर विवत्सा कहने से ही गौ आजाती फिर भी ग्रहण किया गौ पद यह जताने के लिये है कि वत्सहीन गौ केही दूधका निषेध है बकरी और भैंस के दूध का निषेध नहीं है ८ ॥

आरण्यानांचसर्वेषांमृगाणांमाहिषंविना । स्त्रीक्षीरंचैववर्ज्यानिसर्वशुक्तानिचैवहि ९ ॥

प० । आरण्यानां च सर्वेषां मृगाणां माहिषं विना स्त्रीक्षीरं च एव वर्ज्यानि सर्वशुक्तानि च एव हि ॥

यो० । माहिषं विना सर्वेषां आरण्यानां मृगाणां (पशूनां) चपुनः स्त्रीक्षीरं इमानि चपुनः सर्वशुक्तानि — वर्ज्यानि विदुरिति शेषः ॥

भा० । भैंस को छोड़कर सम्पूर्ण वनके हाथी आदि पशुओं का—और स्त्री का दूध और सब शुक्त—ये वर्जित हैं अर्थात् भक्षणके योग्य नहीं हैं ॥

ता० । भैंस के दूधको छोड़कर वनमें रहने वाले सम्पूर्ण मृगों (हस्ति आदि पशुओं) का दूध क्योंकि महिषके निषेध से यहां मृगशब्द पशुमात्र का बोधक है—और स्त्री का दूध ये सब और सम्पूर्ण शुक्त (जो मधुर हो और किसी प्रकार खट्टा होजाय)—यद्यपि शुक्तंपर्युषितंचैव इससे शुक्तका निषेध सिद्धथा परन्तु फिर इसलिये कहाहै कि शुक्तोंमें दधिकानिषेध नहीं है ९ ॥

दधिभक्ष्यंचशुक्तेषुसर्वंचदधिसंभवम् । यानिचैवाभिषूयन्तेपुष्पमूलफलैःशुभैः १० ॥

प० । दधि भक्ष्यं च शुक्तेषु सर्वं च दधिसम्भवं यानि च एव अभिषूयन्ते पुष्पमूलफलैः शुभैः ॥

यो० । शुक्तेषु दधि चपुनः सर्वं दधिसम्भवं भक्ष्यं — चपुनः यानि शुक्तानि शुभैः पुष्पमूलफलैः अभिषूयन्ते (सन्धीयन्ते) तानि अपि भक्ष्याणि ॥

भा० । ता० । शुक्तों में दही और दही से उत्पन्न सम्पूर्ण तक्र आदि भक्ष्य है और जिनके शुभ पुष्प मूल वा फल जलसे मिलसकें वे सब भक्षणके योग्य हैं और शुभ इसपद से जो मोह

---

१ अनिर्दशाहंगोःक्षीरमाजंमाहिषमेवच ॥

२ संधिनी वृषस्यंती तस्याः पयोनपिबेत् ऋतुमती भवति ॥

आदि विकारों को पैदाकरै उनका निषेध समझना क्योंकि बृहस्पति ने यह कहा है कि उत्तम कन्द मूल फल पुष्पोंसे बनेहुये शुक्तोंको वर्जित न करै उनमें भी जो विकारी न हो वह भक्ष्य है और विकारी अभक्ष्य है १० ॥

क्रव्यादाञ्छकुनान्सर्वांस्तथाग्रामनिवासिनः ।
अनिर्दिष्टांश्चैकशफांष्टिट्टिभंचविवर्जयेत् ११ ॥

प० । क्रव्यादान् शकुनान् सर्वान् तथा ग्रामनिवासिनः अनिर्दिष्टान् च एकशफान् टिट्टिभं च विवर्जयेत् ॥

यो० । सर्वान् क्रव्यादान् तथा ग्रामनिवासिनः शकुनान् — चपुनः अनिर्दिष्टान् एकशफान चपुनः टिट्टिभं — विवर्जयेत् ॥

भा० । ता० । जो कच्चेमांस के खाने वाले (गृध्रआदि) और ग्राम में रहनेवाले (कबूतर आदि) पक्षियों को और कोई एकशफ वेद में भक्ष्य कहे हैं कि घोडी से उत्पन्न घोड़े का आलभन (बध) करै और उसके मांसका भक्षणकरै—और कोई रासभ (गधा) आदि एकशफ वर्जित कहेहैं उनको भी वर्जदे—और टिट्टिभ (टटीरी) कोभी वर्जदे ११ ॥

कलविंकंप्लवंहंसंचक्रांगंग्रामकुक्कुटम् । सारसंरज्जुवालंचदात्यूहंशुकसारिके १२ ॥

प० । कलविंकं प्लवं हंसं चक्रांगं ग्रामकुक्कुटं सारसं रज्जुवालं च दात्यूहं शुकसारिके ॥

यो० । कलविंकं — प्लवं हंसं चक्रांगं — ग्रामकुक्कुटं — सारसं — चपुनः रज्जुवालं — दात्यूहं — शुकसारिके — इमान अपि वर्जयेत् ॥

भा० । चिड़िया—प्लव— हंस—चकवा—गांवका मुरगा—सारस—रज्जुवाल—दात्यूह—तोता—और मैना—ये भी अभक्ष्यहैं ॥

ता० । कलविंक (चिड़िया) प्लव—हंस—चक्रांग (चक्रवाक) ग्राम का मुरगा—सारस—रज्जुवाल—दात्यूह—तोता—सारिका (मैना) इन पक्षियों को भी वर्जदे—आगे जालपाद का निषेधकहेंगे उसीसे हंस और चक्रवाक का भी निषेधहोजाता यहां पृथक् निषेध इसलियेहै कि हंस और चक्रवाक से भिन्न जालपाद आपत्तिके समय भक्ष्य हैं और अनापद में अभक्ष्य हैं—इसीसे ग्रामका मुरगा सर्वथा अभक्ष्यहै और वनका आपत्तिमें भक्ष्यहै और अनापदमें अभक्ष्य है इसीलिये ग्रामपद दियाहै १२ ॥

प्रतुदाञ्जालपादांश्चकोयष्टिनखविष्किरान् ।
निमज्जतश्चमत्स्यादान्शौनंवल्लूरमेवच १३ ॥

प० । प्रतुदान् जालपादान् च कोयष्टिनखविष्किरान् निमज्जतः च मत्स्यादान् शौनं वल्लूरं एव च ॥

---

१ कन्दमूलफलैःपुष्पैः शस्तैः शुक्तान्नवर्जयेत् अविकारिभवेद्भक्ष्यमभक्ष्यंतद्विकारिकृत् ॥
२ तथाचाश्वं वाडवमालभेत तस्यच मांसं अश्नीयात् ॥

यो० । प्रतुदान् — चपुनः जालपादान — कोयष्टिनखविष्किरान् — चपुनः निमज्जतः मत्स्यादान् — शौनं — चपुनः वल्लूरं — एतानि विवर्जयेत् ॥

भा० । ता० । जो प्रतुदहैं अर्थात् चोंचसे खातेहैं (दार्वाघाट खुटबढ़इया) और जिनके पादजालके समानहों (जैसा शरारि) कोयष्टि—और नखोंसे फेंक २ करखाते हैं (श्येनआदि) और जो जलमें डूबकर मत्स्योंको खाते हैं—और शुना (पशुजहांमारेजायँ) के स्थानका मांस और वल्लूर (सूकामांस) इनको भी वर्जदे १३ ॥

बकंचैवबलाकांचकाकोलंखंजरीटकम् । मत्स्यादान्विड्वराहांश्चमत्स्यानेवचसर्वशः १४॥

प० । बकं चै एवं बलाकां चै काकोलं खंजरीटकं मत्स्यादान् विड्वराहान् चै मत्स्यान् एवं चै सर्वशः ॥

यो० । बकं — चपुनः बलाकां — काकोलं (द्रोणकाकं) खंजरीटकं — मत्स्यादान चपुनः विड्वराहान चपुनः सर्वशः मत्स्यान् — वर्जयेत् ॥

भा० । ता० । बगुला—लत्तक—द्रोणकाक—खंजन—और मत्स्योंको खानेवाले नक्र आदि—और विष्ठाके खानेवाले सूकर और संपूर्ण मत्स्य इनको भी वर्जदे १४ ॥

योयस्यमांसमश्नातिसतन्मांसादउच्यते ।
मत्स्यादःसर्वमांसादस्तस्मान्मत्स्यान्विवर्जयेत् १५ ॥

प० । यः यस्य मांसं अश्नाति सः तन्मांसादः उच्यते मत्स्यादः सर्वमांसादः तस्मात् मत्स्यान् विवर्जयेत् ॥

यो० । यः यस्य मांसं अश्नाति सः तन्मांसादः उच्यते यस्मात् मत्स्यादः सर्वमांसादोभवति तस्मात् मत्स्यान् विवर्जयेत् ॥

भा० । ता० । जो जिसके मांसको खाताहै वह उसके मांस खानेवाला कहाजाताहै जैसे मूसेका बिलाव—और मत्स्योंके खानेवालोंको सब प्रकारके मांसका खानेवाला कहतेहैं तिससे मत्स्योंको वर्जदे १५ ॥

पाठीनरोहितावाद्यौनियुक्तौहव्यकव्ययोः ।
राजीवान्सिंहतुण्डांश्चसशल्कांश्चैवसर्वशः १६ ॥

प० । पाठीनरोहितौ आद्यौ नियुक्तौ हव्यकव्ययोः राजीवान् सिंहतुंडान् च सशल्कान् चै एवं सर्वशः ॥

यो० । आद्यौ हव्यकव्ययोः नियुक्तौ पाठीनरोहितौ राजीवान चपुनः सिंहतुंडान् चपुनः सर्वशः (सर्वान्) सशल्कान — भक्षयेत् ॥

भा० । हव्य और कव्यमें नियुक्त (निवेदित) पाठीन और रोहित—और राजीव—सिंहतुंड—और शल्कवाले मत्स्य—भक्षणकरने योग्यहैं—इतर नहीं ॥

ता० । अब भक्ष्य मत्स्योंको कहतेहैं—कि हव्य और कव्यमें नियुक्त जो पाठीन और रोहित

नामके मत्स्य भक्ष्यहैं–और राजीव और जिनका सिंहके समान तुंडहो और जो शल्क सहित हों वे सब–इनको भी भक्षणकरे–यहांपर मेधातिथि और गोविंदराज तो यह कहतेहैं कि हव्य कव्यमें नियुक्त (क्रियमाण) ही पाठीन रोहित भक्षणकरने अन्य नहीं–और राजीव आदि मत्स्य तो सर्वदा भक्ष्यहैं–सो ठीक नहींहै–क्योंकि श्राद्धमें नियुक्त पाठीनरोहित श्राद्धके भोक्ता कोही खाने और करनेवालेको नहींखाने–और राजीव आदि श्राद्धसे अन्य समयमें भी खाने इसमें कोई प्रमाण नहींहै और अन्य मुनियोंने पाठीन रोहित राजीव आदि सब मत्स्योंको तुल्य कहाहै क्योंकि शंख का कथन यहहैकि राजीव सिंहतुंड–सशल्क–पाठीन–रोहित ये मत्स्यों में भक्ष्यहैं–और याज्ञवल्क्य ने भी यह कहाहै कि–ये पंच नख भक्ष्य हैं श्वावित् (वसह) गोधा (गोह) कछुआ–शल्यक–सेह–शशा– और मत्स्योंमें सिंह तुंडक–रोहित–पाठीन–राजीव–और सशल्क ये द्विजातियोंको भक्ष्यहैं और हारीत का यह कथनहै कि–न्यायसे प्राप्तहुये शल्क सहित मत्स्य–भक्ष्य हैं–इससे श्राद्धमें भोक्ताकोही खाने यजमानको नहीं–और राजीव आदि ऐसे नहींहैं यह मेधातिथि गोविंदराजकी व्याख्या मुनियोंको संमत नहींहै १६ ॥

नभक्षयेदेकचरानज्ञातांश्चमृगद्विजान् । भक्ष्येष्वपिसमुद्दिष्टान्सर्वान्पञ्चनखांस्तथा १७

प० । न भक्षयेत् एकचरान् अज्ञातान् च मृगद्विजान् भक्ष्येषु अपि समुद्दिष्टान् सर्वान् पंचनखान् तथा ॥

यो० । एकचरान चपुनः भक्ष्येषु समुद्दिष्टान अपि अज्ञातान मृगद्विजान् तथा सर्वान पंचनखान –न भक्षयेत् ॥

भा० । ता० । जो प्रायः एकाकी विचरतेहैं (सर्प आदि) और जो मृग वा पक्षि ऐसेहैं जिनको नाम वा जातिका निश्चय नहींहै भक्ष्योंमें कहेहुये भी उनको भक्षण न करै और वानर आदि संपूर्ण जो पंचनख उनको भी भक्षण न करै १७ ॥

श्वाविधंशल्यकंगोधांखड्गकूर्मशशांस्तथा । भक्ष्यान्पञ्चनखेष्वाहुरनुष्ट्रांश्चैकतोदतः १८॥

प० । श्वाविधं शल्यकं गोधां खड्गकूर्मशशान् तथा भक्ष्यान् पंचनखेषु आहुः अनुष्ट्रान् च एकतोदतः ॥

यो० । श्वाविध – शल्यकं – गोधां – तथा खड्गकूर्मशशान इमान पंचनखेषु चपुनः अनुष्ट्रान (उष्ट्रभिन्नान) एकतोदतः – भक्ष्यान् मन्वादयः आहुः ॥

भा० । ता० । श्वाविध (सेह) शल्य (सेहकीतुल्यबड़ेबड़ेरोमवाला) गोधा–गेंडा–कच्छप–और शशा पंचनखोंमें ये पांच और ऊंटको छोड़कर एकओर दांतवाले जीव– भक्षण के योग्य मनुआदिने कहेहैं १८ ॥

---

१ राजीवाः सिंहतुंडाश्च सशल्काश्च तथैवच पाठीनरोहितौ चापि भक्ष्यामत्स्येषु कीर्तिताः ॥

२ भक्ष्याः पंचनखाः श्वावित् गोधा कच्छपशल्यकाः शशश्चमत्स्येष्वपितु सिंहतुंडकरोहिताः तथा पाठीनराजीवसशल्काश्च द्विजातिभिः ॥

३ सशल्कान् मत्स्यान् न्यायोपपन्नान्भक्षयेत् ॥

४ भोक्तैवाद्यौनकर्त्रापि श्राद्धे पाठीनरोहितौ—राजीवाद्यास्तथानेति व्याख्यानमुनिसंमता ॥

छत्राकंविड्वराहंचलशुनंग्रामकुक्कुटम् । पलांडुंगृञ्जनंचैवमत्याजग्ध्वापतेद्द्विजः १९॥

प०। छत्राकं विड्वराहं च लशुनं ग्रामकुक्कुटं पलांडुं गृंजनं च एव मत्या जग्ध्वा पतेत् द्विजः ॥

यो० । छत्राकं – चपुनः विड्वराहं – लशुनं – ग्रामकुक्कुटं – पलांडुं – चपुनः – गृंजनं – द्विजः मत्या (ज्ञात्वा) एतान् जग्ध्वा (भक्षयित्वा) पतेत् ॥

भा० । ता० । छत्राक–और विष्टाखानेवाला वराह–लशुन–ग्रामकामुरगा–पलांडु (सलजम) और गाजर–इनको जानकर वारम्वार खाकर द्विज पतितहोता है अर्थात् इनको खाकर पतितका प्रायश्चित्तकरै–क्योंकि निषिद्ध छत्राकआदि छओंका खाना सुरापान के तुल्यहै १९ ॥

अमत्यैतानिषट्जग्ध्वाकृच्छ्रंसांतपनंचरेत् । यतिचान्द्रायणंवापिशेषेषूपवसेदहः २० ॥

प० अमत्या एतानि षट् जग्ध्वा कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् यतिचांद्रायणं वा अपि शेषेषु उपवसेत् अहः ॥

यो० । द्विजः एतानि षट् अमत्या जग्ध्वा सांतपनं कृच्छ्रं – वा यतिचांद्रायणं चरेत् – शेषेषु (लोहितवृक्षनिर्यासादिषुभक्षितेषुसत्सु) अहः उपवसेत् एकमुपवासंकुर्यात् ॥

भा० । ता० । अज्ञानसे इन छत्राकआदि छओंको खाकर सांतपन कृच्छ्र अथवा सातदिन में करनेयोग्य सांतपनरूप यतिचांद्रायणको करै और इतर वृक्ष के लाल गोंदआदिको खाकर एकदिनका उपवासकरै–यहां छत्राकआदिका अधिक प्रायश्चित्त सर्वथा त्यागकेलिये है इसी प्रशेषोंके भक्षणकरनेसे उपवास लाघवकेलियेहै २० ॥

संवत्सरस्यैकमपिचरेत्कृच्छ्रंद्विजोत्तमः । अज्ञातभुक्तशुद्ध्यर्थंज्ञानस्यतुविशेषतः २१ ॥

प० । संवत्सरस्य एकं अपि चरेत् कृच्छ्रं द्विजोत्तमः अज्ञातभुक्तशुद्ध्यर्थं ज्ञातस्य तु विशेषतः ॥

यो० । द्विजोत्तमः (ब्राह्मणादि) अज्ञातभुक्तशुद्ध्यर्थं संवत्सरस्य एकमपि कृच्छ्रं ज्ञातस्य भुक्तस्य शुद्ध्यर्थं तु विशेषतः चरेत् – (कुर्यात्) ॥

भा० । ता० । द्विजाति–वर्षदिनमें अज्ञात भोजनकी शुद्धिके लिये प्राजापत्यआदि एक भी कृच्छ्रको करै और जानकर भोजनकी शुद्धिकेलिये तो विशेषकर वही प्रायश्चित्तकरै जो उसके भक्षणका कहाहै और जो यहवचन है कि ब्राह्मणोंकेलिये देवताओंने ये तीन पवित्रकहे हैं जिस की अशुद्धि न देखीहो–जिसपर जलकी शुद्धिहुईहो–और जो वाणी से शुद्धहो–यह उस द्रव्य की शुद्धिके विषयमेंहै जिसका प्रायश्चित्त द्रव्यशुद्धि प्रकरणमें नहींकहाहै २१ ॥

यज्ञार्थंब्राह्मणैर्वध्याःप्रशस्तामृगपक्षिणः । भृत्यानांचैववृत्त्यर्थमगस्त्योह्यचरत्पुरा २२॥

प० । यज्ञार्थं ब्राह्मणैः वध्याः प्रशस्ताः मृगपक्षिणः भृत्यानां च एव वृत्त्यर्थं अगस्त्यः हि अचरत् पुरा ॥

यो० । ब्राह्मणैः यज्ञार्थं चपुनः भृत्यानां वृत्त्यर्थं प्रशस्ताः मृगपक्षिणः वध्याः हि (यतः) अगस्त्यः पुरा अचरत् ॥

भा० । ता० । ब्राह्मणोंको यज्ञकेलिये और पालना करनेयोग्य माता पिताआदिकी पालना

---

१ गर्हितानांतथाजग्धिः सुरापानसमानिषट् ॥

२ त्रीणिदेवाःपवित्राणिब्राह्मणानामकल्पयत् – अदृष्टमद्भिर्निर्णिक्तंयच्चवाचाप्रशस्यते ॥

करनेकेलिये प्रशस्त (शास्त्रोक्त) मृग और पक्षि मारनेयोग्य हैं क्योंकि अगस्त्यमुनिने पहिले ऐसेही कियाहै २२ ॥

बभूवुर्हिपुरोडाशाभक्ष्याणांमृगपक्षिणाम् । पुराणेष्वपियज्ञेषुब्रह्मक्षत्रसवेषुच २३ ॥

प० । बभूवुः हि पुरोडाशाः भक्ष्याणां मृगपक्षिणां पुराणेषु अपि यज्ञेषु ब्रह्मक्षत्रसवेषु च ॥

यो० । पुराणेषु यज्ञेषु अपि हि (यतः) चपुनः ब्रह्मक्षत्रसवेषु भक्ष्याणां मृगपक्षिणां पुरोडाशाः बभूवुः अतः आधुनिकैः अपि वध्याः ॥

भा० । ता० । पहिले भी ऋषियोंके किये यज्ञोंमें और ब्राह्मण और क्षत्रियों के यज्ञोंमें शास्त्रोक्त मृग और पक्षियोंके जिससे पुरोडाशहुयेहैं इससे आधुनिक मनुष्य भी यज्ञकेलिये प्रशस्त मृग और पक्षियोंको मारें २३ ॥

यत्किंचित्स्नेहसंयुक्तंभक्ष्यंभोज्यमगर्हितम् । तत्पर्युषितमप्याद्यंहविःशेषंचयद्भवेत् २४

प० । यत् किंचित् स्नेहसंयुक्तं भक्ष्यं भोज्यं अगर्हितं तत् पर्युषितं अपि आद्यं हविःशेषं च यत् भवेत् ॥

यो० । यत् किंचित् भक्ष्यं – भोज्यं – स्नेहसंयुक्तं अगर्हितं भवेत् तत् – चपुनः हविःशेषं यत् भवेत् तत्पर्युषितं अपि आद्यं (भक्षणीयम्) ॥

भा० । अगर्हित बासी भी भक्ष्य और भोज्यको भोजन के समय घृतआदि स्नेह मिलाकर भोजनकरले और बासीहविके शेषको तो घृतआदिके विनामिलायेभी भोजनकरे ॥

ता० । जो भक्ष्य (चणकादि) वा भोज्य (ओदनादि) पदार्थ अगर्हित (शुद्ध) हो–वह घृत आदि मिलाकर भक्षणकरने योग्यहै और जो पहिलेसेही घृत आदि संयुक्तहो वह भक्ष्यहै यह अर्थ नहीं करना क्योंकि हविःशेषका पृथक् ग्रहण व्यर्थहोजायगा क्योंकि हविः में घृतका संयोग आवश्यकहोनेसे स्नेहसंयुक्त सेही आजाता फिर पृथक् हविःशेषका लिखना व्यर्थहोजाता–और अन्य स्मृतियोंमें भी खानेके समयमेंही घृतका मिलाना लिखाहै क्योंकि यम का यह कथनहै कि मसूर–उड़द–जिसमें मिलेहों उसका बासी होनेपर भी घी मिलाकर भक्षणकरे–और बासी हविःशेषको तो भोजनके समय घीके मिलाये विना भी भोजनकरले २४ ॥

चिरस्थितमपित्वाद्यमस्नेहाक्तंद्विजातिभिः । यवगोधूमजंसर्वंपयसश्चैवविक्रिया २५ ॥

प० । चिरस्थितं अपि तु आद्यं अस्नेहाक्तं द्विजातिभिः यवगोधूमजं सर्वं पयसः च एव विक्रिया ॥

यो० । सर्वं यवगोधूमजं अस्नेहाक्तं चिरस्थितं अपि चपुनः पयसः विक्रिया द्विजातिभिः आद्यं (भक्षणीयम्)

भा० । ता० । स्नेह (घी आदि) से रहित जौ–गेहूं और दूध के सम्पूर्णपदार्थ चिरकाल के रक्खेहुये भी द्विजातियों को भक्षणकरने योग्यहैं २५ ॥

एतदुक्तंद्विजातीनांभक्ष्याभक्ष्यमशेषतः । मांसस्यातःप्रवक्ष्यामिविधिंभक्षणवर्जने २६॥

प०। एतत् उक्तं द्विजातीनां भक्ष्याभक्ष्यं अशेषतः मांसस्य अतः प्रवक्ष्यामि विधिं भक्षणवर्जने॥

यो० । एतत् द्विजातीनां अशेषतः भक्ष्याभक्ष्यं उक्तम् – अतः मांसस्य भक्षणवर्जने विधिं प्रवक्ष्यामि ॥

---

१ मसूरमाषसंयुक्तं तथा पर्युषितंचयत – तत्तुप्रक्षाल्यितंकृत्वा भुंजीतह्यभिघारितम् ॥

भा० । ता० । यह सम्पूर्ण द्विजातियोंका भक्ष्य और अभक्ष्य मैंनेकहा–इससे आगे मांसके भक्षण और त्यागमें विधिको कहूंगा २६ ॥

प्रोक्षितंभक्षयेन्मांसंब्राह्मणानांचकाम्यया । यथाविधिनियुक्तस्तुप्राणानामेवचात्यये २७

प० । प्रोक्षितं भक्षयेत् मांसं ब्राह्मणानां च काम्यया यथाविधिनियुक्तः तु प्राणानां एवं च अत्यये ॥

यो० । प्रोक्षितंमांसं चपुनः ब्राह्मणानां काम्यया – तुपुनः यथाविधिनियुक्तः – चपुनः प्राणानां एव अत्यये – मांसं भक्षयेत् ॥

भा० । यज्ञमें मंत्रोंसे प्रोक्षित–और ब्राह्मणों की कामना से–और शास्त्रोक्तविधिके अनुसार और नियुक्त गुरुआदिकी आज्ञासे–और प्राणोंके नाशहोने की संभावनामें–मांसकोभक्षणकरै ॥

ता० । प्रोक्षित मांसको भक्षणकरै यह परिसंख्याविधि नहीं है क्योंकि परिसंख्याहोती तो प्रोक्षितसे अन्यमांस भक्षण नहींकरना यह वाक्यका अर्थहोता–और वह अप्रोक्षितका निषेध-अनुपाकृतमांसानि–इससेही सिद्धहै–जिससे मंत्रोंकेद्वारा प्रोक्षित संस्कार जिसकाकियाहो और यज्ञमें होमसे शेष जो यज्ञांगमांस उसके भक्षणका यह विधान है इसी से (असंस्कृतान् पशून्मंत्रैः) यह इसका अनुवाद कहेंगे–और ब्राह्मणों की जब कामनाहो तबभी एकहीबार मांस को भक्षणकरै क्योंकि यम ने इस वचनसे एकहीबार भक्षणकरना कहा है–और श्राद्ध और मधुपर्क में मांसको भक्षणकरै क्योंकि गृह्यसूत्रमें मधुपर्क भी मांससहित कहा है और नियुक्त भी अवश्य मांसको भक्षणकरै–और इतर आहारों से यदि प्राणोंका नष्टाहोताहो और मांससे बचें तो मांसको भक्षणकरै २७ ॥

प्राणस्यान्नमिदंसर्वंप्रजापतिरकल्पयत् । स्थावरंजङ्गमंचैवसर्वंप्राणस्यभोजनम् २८ ॥

प० । प्राणस्य अन्नं इदं सर्वं प्रजापतिः अकल्पयत् स्थावरं जंगमं च एवं सर्वं प्राणस्य भोजनम् ॥

यो० । प्रजापतिः इदं सर्वं प्राणस्य अन्नं अकल्पयत् – चपुनः सर्वं स्थावरं जंगमं प्राणस्य भोजनं भवति – अतः मांसं प्राणरक्षार्थं भक्षयेत् ॥

भा० । ता० । ब्रह्माने यह सम्पूर्ण प्राण (जीव) का अन्न रचाहै कि स्थावर व्रीहि आदि और जंगम (पशु आदि) संपूर्ण प्राणकाही भोजन है अर्थात् प्राणकी रक्षाके निमित्तही भक्षण करै सर्वदा नहीं २८ ॥

चराणामन्नमचरादंष्ट्रिणामप्यदंष्ट्रिणः । अहस्ताश्चसहस्तानांशूराणांचैवभीरवः २९ ॥

प० । चराणां अन्नं अचराः दंष्ट्रिणां अपि अदंष्ट्रिणः अहस्ताः च सहस्तानां शूराणां च एवं भीरवः ॥

यो० । चराणां (मृगादीनां) अचराः (तृणादयः) अन्नं – दंष्ट्रिणां (व्याघ्रादीनां) अदंष्ट्रिणः (हरिणादयः)

---

१ सकृद्ब्राह्मणकाम्यया ॥
२ समांसोमधुपर्कः ॥

सहस्तानां (मनुष्यादीनां) अहस्ताः (मत्स्यादयः) शूराणां (सिंहादीनां) भीरवः (हस्त्यादयः) अन्नं — भवतीति शेषः ॥

भा० । ता० । चरों (मृगादिकों) का अन्न अचर (तृणादि) है और दंष्ट्रावाले व्याघ्रादिकों का अन्न विना दंष्ट्रावाले मृगादिक हैं—और हाथवाले मनुष्यादिकों का अन्न विना हाथवाले मत्स्यादिक हैं—और शूरवीर (पराक्रमी) सिंहादिकों के अन्न भीरु हाथी आदि हैं अर्थात् एक का एक भक्ष्य है २९ ॥

नात्तादुष्यत्यदन्नाद्यान्प्राणिनोऽहन्यहन्यपि ।
धात्रैवसृष्टाह्याद्याश्चप्राणिनोऽत्तारएवच ३० ॥

प० । न अत्ता दुष्यति अदन् आद्यान् प्राणिनः अहनि अहनि अपि धात्रा एव सृष्टाः हि आद्याः च प्राणिनः अत्तारः एव च ॥

यो० । अत्ता आद्यान प्राणिनः अदन् सन न दुष्यति—हि (यतः) आद्याः चपुनः अत्तारः प्राणिनः धात्रा(ब्रह्मणा) एव सृष्टाः (रचिताः) त्रिभिः श्लोकैः प्राणात्यय मांसभक्षणस्तुतिरियम् नतु यथेच्छमांसभक्षणे आज्ञा ॥

भा० । ता० । खानेवाला मनुष्य खानेयोग्य प्राणियों को खाता हुआ दूषित नहीं होता क्योंकि खानेके योग्य और खानेवाले सब प्राणी ब्रह्माने ही रचे हैं—यह तीन श्लोकों से प्राणों के नाश की सम्भावना में मांसभक्षण की स्तुति है और सब काल आज्ञा नहीं है इससे विना यज्ञ मांसका भक्षण कभी न करै ३० ॥

यज्ञायजग्धिर्मांसस्येत्येषदैवोविधिःस्मृतः।अतोऽन्यथाप्रवृत्तिस्तुराक्षसोविधिरुच्यते३१

प० । यज्ञाय जग्धिः मांसस्य इति एषः दैवः विधिः स्मृतः अतः अन्यथाप्रवृत्तिः तु राक्षसः विधिः उच्यते ॥

यो० । यज्ञाय मांसस्य जग्धिः इति एषः विधिः दैवः स्मृतः अतः अन्यथाप्रवृत्तिस्तु राक्षसः विधिः उच्यते—मन्वादिभिरितिशेषः ॥

भा० । ता० । यज्ञकी सिद्धिकेलिये जो यज्ञके अंग रूप मांसका जो भक्षण है सो तो दैव विधि कहीहै और इससे अन्यथा जो प्रवृत्ति अर्थात् यज्ञके विना मांसका भक्षण सो विधि मनु आदिने राक्षस विधि कहीहै ३१ ॥

क्रीत्वास्वयंवाप्युत्पाद्यपरोपकृतमेववा । देवान्पितॄंश्चार्चयित्वाखादन्मांसंनदुष्यति ३२

प० । क्रीत्वा स्वयं वा अपि उत्पाद्य परोपकृतं एव वा देवान् पितॄन् च अर्चयित्वा खादन् मांसं न दुष्यति ॥

यो० । क्रीत्वा — वा स्वयं उत्पाद्य वा परोपकृतं — चपुनः देवान् पितॄन् अर्चयित्वा पुरुषः मांसं खादन् सन् न दुष्यति — दोषभाक् न भवति ॥

भा० । ता० । मांसको मोललेकर वा स्वयं पैदाकरके—अथवा किसीने आनकर दियाहो—अथवा देवता और पितर इनको पूजनकरके मांसको खाताहुआ मनुष्य दोषका भागी नहीं होता—इसीसे यह भी प्रोक्षित आदि चारप्रकार के मांस भक्षण के समान नियत नहीं है—और

वर्ष २ में अश्वमेध यज्ञकरै इत्यादि जो मांसके त्यागकीविधिहै उसका भी यही तात्पर्यहै अर्थात् मोललेकर विधिसे हीन मांसका भक्षण कभी भी न करै ३२ ॥

नाद्यादविधिनामांसंविधिज्ञोऽनापदिद्विजः।जग्ध्वाह्यविधिनामांसंप्रेत्यतैरद्यतेऽवशः३३

प० । न अद्यात् अविधिना मांसं विधिज्ञः अनापदि द्विजः जग्ध्वा हि अविधिना मांसं प्रेत्य तैः अद्यते अवशः ॥

यो० । विधिज्ञः द्विजः अविधिना मांसं न अद्यात् — हि (यतः) अविधिना मांसं जग्ध्वा प्रेत्य तैः अवशः सन् पुरुषः अद्यते (भक्ष्यते) ॥

भा० । ता० । मांस भक्षणके दोष की विधि को जानताहुआ द्विज विना आपत्ति के अविधि से मांस को भक्षण न करै क्योंकि जो विना विधि विधान से मांस को खाता है परवशहुये उस पुरुष को मरे पीछे वे ही जीव खातेहैं जो उसने खाये हैं ३३ ॥

नतादृशंभवत्येनोमृगहंतुर्धनार्थिनः। यादृशंभवतिप्रेत्यवृथामांसानिखादतः ३४॥

प० । न तादृशं भवति एनः मृगहंतुः धनार्थिनः यादृशं भवति प्रेत्य वृथा मांसानि खादतः ॥

यो० । धनार्थिनः मृगहन्तुः तादृशं एनः न भवति — यादृशं प्रेत्य वृथामांसानि खादतः पुरुषस्य भवति ॥

भा० । ता० । धनकेलिये मृगों को मारने वाले व्याधको उतना दोष नहींहोता जितना वृथा मांसके खानेवाले को मरण के अनन्तर होताहै अर्थात् देवता आदिके अर्पण किये विना मांस को कभी भी भक्षण न करै ३४ ॥

नियुक्तस्तुयथान्यायंयोमांसंनात्तिमानवः। सप्रेत्यपशुतांयातिसंभवानेकविंशतिम्३५॥

प० । नियुक्तः तु यथान्यायं यः मांसं न अत्ति मानवः सः प्रेत्य पशुतां याति सम्भवान् एकविंशतिम् ॥

यो० । यथान्यायं (श्राद्धमधुपर्केच) नियुक्तः यः पुरुषः मांसं न अत्ति — सः मानवः प्रेत्य एकविंशतिं सम्भवान् पशुतां याति ॥

भा० । ता० । श्राद्ध और मधुपर्क में नियुक्त हुआ जो मनुष्य मांस को नहीं खाता वह मरने के अनन्तर इक्कीस जन्मतक पशुहोता है—अर्थात् यथाविधि नियुक्त हुआ मांस भोजन करै इसको यह जो नहीं करै उसको यह दोषहोताहै ३५ ॥

असंस्कृतान्पशून्मन्त्रैर्नाद्याद्विप्रःकदाचन।
मन्त्रैस्तुसंस्कृतानद्याच्छाश्वतंविधिमास्थितः ३६ ॥

प० । असंस्कृतान् पशून् मंत्रैः न अद्यात् विप्रः कदाचन मंत्रैः तु संस्कृतान् अद्यात् शाश्वतं विधिं आस्थितः ॥

यो० । विप्रः मंत्रैः असंस्कृतान् पशून् कदाचन न अद्यात् — तुपुनः शाश्वतं विधिं आस्थितःसन् मंत्रैः संस्कृतान् अद्यात् ॥

भा० । ता० । वेदोक्त मंत्रों से जिनका प्रोक्षण आदि संस्कार नहीं हुआ ऐसे पशुओं को

ब्राह्मण कभी नहींखाय—और अनादि विधि (पशुयज्ञ आदि)में टिकाहुआ ब्राह्मण मंत्रों से जिनका संस्कार हुआहै ऐसे पशुओं को भक्षणकरै ३६ ॥

कुर्याद्घृतपशुंसंगेकुर्यात्पिष्टपशुंतथा । नत्वेवतुवृथाहन्तुंपशुमिच्छेत्कदाचन ३७॥

प० । कुर्यात् घृतपशुं संगे कुर्यात् पिष्टपशुं तथा न तु एव तु वृथा हंतुं पशुं इच्छेत् कदाचन ॥

यो० । संगे (आसक्तौ) घृतपशुं तथा पिष्टपशुं कुर्यात्—पशुं वृथा हंतुं तु कदाचन न तु इच्छेत् ॥

भा० । ता० । यदि आसक्ति होयतो घी की अथवा चूनकी पशु की प्रतिमा बनाकर भक्षण करै परन्तु देवताके निवेदन कियेविना पशुके मारनेकी कदाचित् भी इच्छा न करै ३७ ॥

यावंतिपशुरोमाणितावत्कृत्वोहमारणम् । वृथापशुघ्नःप्राप्नोतिप्रेत्यजन्मनिजन्मनि ३८॥

प० । यावंति पशुरोमाणि तावत्कृत्वः ह मारणं वृथापशुघ्नः प्राप्नोति प्रेत्य जन्मनि जन्मनि ॥

यो० । वृथा पशुघ्नः यावंति पशुरोमाणि तावत्कृत्वः प्रेत्य जन्मनि जन्मनि मारणं प्राप्नोति ह इति प्रसिद्धौ ॥

भा० । ता० । देवता के उद्देश के विना जो वृथेव पशुओं को मारता है वह जितने पशु के देहमें रोम हैं उतनेही जन्मों में मरने को प्राप्तहोता है अर्थात् जैसे वह मारताहै ऐसेही उसको भी इतर मारते हैं इससे यज्ञके विना कभी भी पशु की हिंसा न करै ३८ ॥

यज्ञार्थंपशवःसृष्टाःस्वयमेवस्वयंभुवा । यज्ञस्यभूत्यैसर्वस्यतस्माद्यज्ञेवधोऽवधः ३९॥

प० । यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः स्वयं एव स्वयंभुवा यज्ञस्य भूत्यै सर्वस्य तस्मात् यज्ञे वधः अवधः ॥

यो० । स्वयंभुवा यज्ञार्थं सर्वस्य यज्ञस्य भूत्यै स्वयं एव पशवः सृष्टाः तस्मात् यज्ञे वधः अवधः भवति ॥

भा० । ता० । अब यह कहते हैं कि यज्ञकेलिये पशुकीहिंसा में दोषनहीं है—ब्रह्माने स्वयंही यज्ञकेलिये और सम्पूर्ण यज्ञोंकी सिद्धिके निमित्त पशुरचे हैं तिससे यज्ञके विषे जो वध है वह वध (हिंसा) नहींहै ३९ ॥

ओषध्यःपशवोवृक्षास्तिर्यंचःपक्षिणस्तथा।यज्ञार्थंनिधनंप्राप्ताःप्राप्नुवंत्युत्सृतीःपुनः ४०

प० । ओषध्यः पशवः वृक्षाः तिर्यंचः पक्षिणः तथा यज्ञार्थं निधनं प्राप्ताः प्राप्नुवंति उत्सृतीः पुनः ॥

यो० । ओषध्यः पशवः वृक्षाः तिर्यंचः— तथापक्षिणः —यज्ञार्थं निधनंप्राप्ताः संतः पुनः उत्तमांजातिं प्राप्नुवंति— यज्ञमरणेन पशोः उत्तमजन्मभवतीत्यर्थः ॥

भा० । ता० । यज्ञकेलिये नाशकोप्राप्तहुई व्रीहिआदि औषधि—पशु—वृक्ष—कूर्मआदि तिर्यक् जीव और कपिंजलआदि पक्षी—फिर भी जन्म में उत्तमजन्मको प्राप्तहोतेहैं ४० ॥

मधुपर्केचयज्ञेचपितृदैवतकर्मणि । अत्रैवपशवोहिंस्यानान्यत्रेत्यब्रवीन्मनुः ४१ ॥

प० । मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्मणि अत्र एव पशवः हिंस्याः न अन्यत्र इति अब्रवीत् मनुः ॥

यो० । मधुपर्के चपुनः यज्ञे — चपुनः पितृदैवतकर्मणि अत्र (एषु) एव पशवः हिंस्याः अन्यत्र न हिंस्याः इति मनुः अब्रवीत् ॥

भा० । ता० । मधुपर्क—ज्योतिष्टोमआदि यज्ञ—और पितर और देवताओंके श्राद्धआदि कर्म इनमेंही पशुओंकी हिंसाकरनी अन्यत्र नहीं करनी यह मनुने कहाहै ४१ ॥

एष्वर्थेषुपशूंहिंसन्वेदतत्त्वार्थविद्द्विजः । आत्मानंचपशूंचैवगमयत्युत्तमांगतिम् ४२ ॥

प० । एषु अर्थेषु पशून् हिंसन् वेदतत्त्वार्थवित् द्विजः आत्मानं च पशून् च एव गमयति उत्तमां गतिं ॥

यो० । वेदतत्त्वार्थवित् द्विजः एषु अर्थेषु (मधुपर्कादिषु) पशूंहिंसन् सन् आत्मानं चपुनः पशूं उत्तमां गतिं गमयति ॥

भा० । वेदके तत्त्वको जानताहुआ द्विज इनमधुपर्क आदि में पशुओंकी हिंसा करताहुआ अपने आत्मा और पशुको उत्तमगतिको पहुंचाताहै ॥

ता० । इन मधुपर्कआदि कर्मों में पशुओंकी हिंसाकरताहुआ वेदके यथार्थतत्त्व को जानता हुआ द्विज अपने आत्माको और पशुको उत्तमगतिको पहुंचाता है—कदाचित् कोई यह कहै कि अन्य (मनुष्य) के किये कर्मसे पशुकी उत्तमगति कैसेहोगी—सोठीकनहीं क्योंकि शास्त्रोक्त यह बातहै कि जैसे पिताके किये जातकर्म से पुत्रको फलहोता है इसीप्रकार यजमान की करुणासे पशुकोभी अधिकफलहोताहै और अपनेको और पशुको उत्तमगतिको पहुंचाताहै यह कहतेहुये मनुने इसीश्लोकसे यहबात सूचित की है ४२ ॥

गृहेगुरावरण्येवानिवसन्नात्मवान्द्विजः । नावेदविहितांहिंसामापद्यपिसमाचरेत् ४३ ॥

प० । गृहे गुरौ अरण्ये वा निवसन् आत्मवान् द्विजः न अवेदविहितां हिंसां आपदि अपि समाचरेत् ॥

यो० । आत्मवान् द्विजः गृहे — गुरौ — वा अरण्ये — निवसन् सन् आपदि अपि — अवेदविहितां हिंसां न समाचरेत् ॥

भा० । ता । आत्मा के विचारवाला द्विज घरमें अथवा गुरुके यहां अथवा वनमें वसताहुआ शास्त्रोक्त हिंसासे भिन्नहिंसाको आपत्ति के समय में भी न करे ४३ ॥

यावेदविहिताहिंसानियतास्मिंश्चराचरे । अहिंसामेवतांविद्याद्वेदाद्धर्मोहिनिर्बभौ ४४ ॥

प० । या वेदविहिता हिंसा नियता अस्मिन् चराचरे अहिंसां एव तां विद्यात् वेदात् धर्मः हि निर्बभौ ॥

यो० । अस्मिन् चराचरे जगति या हिंसा वेदविहिता नियता (अस्ति) तां अहिंसां एव विद्यात् हि (यतः) धर्मः वेदात् निर्बभौ (प्रकाशतांगतः) ॥

भा० । जो वेदोक्त हिंसा नियत है उसको इस चराचर जगत् में अहिंसाही जाने क्योंकि धर्म्म का प्रकाश वेदसेही हुआ है ॥

ता० । तो किसप्रकार हिंसा करे—वेदोक्त यज्ञ दीक्षा में पशु की हिंसा अधर्म के लिये नहीं है—जो हिंसा वेदसे विहितहै और देशकाल से नियतहै इस स्थावर जंगमरूप संसार में उसको हिंसासे उत्पन्न अधर्मके अभावसे अहिंसाहीजाने कदाचित् कोई यह कहै कि दीक्षाके समय पशुका हनन अधर्महै प्राणिका हनन होनेसे ब्राह्मणके हनन की तुल्य—यह अनुमान भी शास्त्रसे

बाधितहोनेसे प्रवृत्तनहीं होता क्योंकि अनुमानभी वही प्रमाण होताहै जिसमें शास्त्रमूलहै और पूर्वोक्त अनुमानमें दृष्टांतदिया ब्राह्मण हनन अधर्महै इसमें भी शास्त्रही मूलहै—क्योंकि जिसमें वेदसे इतर कोई प्रमाण नहीं ऐसाधर्म वेदसेही प्रकाशहुआहै ४४ ॥

योऽहिंसकानिभूतानिहिनस्त्यात्मसुखेच्छया । सजीवंश्चमृतश्चैवनक्वचित्सुखमेधते ४५

प० । यः अहिंसकानि भूतानि हिनस्ति आत्मसुखेच्छया सः जीवन् च मृतः च एव न क्वचित् सुखं एधते ॥

यो० । यः पुरुषः आत्मसुखेच्छया अहिंसकानि भूतानि हिनस्ति सः जीवन् चपुनः मृतःसन् क्वचित् सुखं न एधते ॥

भा० । ता० । जो पुरुष अपने सुखकी इच्छासे हिंसा न करनेवाले प्राणियोंकी हिंसाकरताहै जीता और मराहुआ वह मनुष्य कभी भी सुखसे नहीं बढ़ता ४५ ॥

योबन्धनवधक्लेशान्प्राणिनांनचिकीर्षति । ससर्वस्यहितप्रेप्सुःसुखमत्यन्तमश्नुते ४६ ॥

प० । यः बंधनवधक्लेशान् प्राणिनां न चिकीर्षति सः सर्वस्य हितप्रेप्सुः सुखं अत्यंतं अश्नुते ॥

यो० । यः पुरुषः प्राणिनां बंधनवधक्लेशान् न चिकीर्षति सर्वस्य हितप्रेप्सुः सः पुरुषः अत्यंतं सुखं अश्नुते (भुंक्ते) ॥

भा० । ता० । जो प्राणियोंका बंधन—और वध इनके क्लेशोंके करनेकी इच्छा नहीं करता—सबके हितका अभिलाषी वह पुरुष अत्यंत सुखको भोगताहै ४६ ॥

यद्ध्यायतियत्कुरुतेधृतिंबध्नातियत्रच । तदवाप्नोत्ययत्नेनयोहिनस्तिनकिंचन ४७॥

प० । यत् ध्यायति यत् कुरुते धृतिं बध्नाति यत्र च तत् अवाप्नोति अयत्नेन यः हिनस्ति न किंचन ॥

यो० । यः पुरुषः किंचन न हिनस्ति—सः यत् ध्यायति—यत्कुरुते—चपुनः यत्र धृतिं बध्नाति—तत् (वस्तु) अयत्नेन अवाप्नोति ॥

भा० । ता० । जो पुरुष किसी जीवकी हिंसा नहींकरता वह जिस धर्म आदि वस्तुका ध्यान करताहै अथवा जिस धर्म आदि व उत्तम कर्मको करताहै अथवा जिस परमात्म आदि वस्तु में धीरता करताहै उसी २ वस्तुके फलको विना परिश्रम प्राप्तहोताहै ४७ ॥

नाकृत्वाप्राणिनांहिंसांमांसमुत्पद्यतेक्वचित् ।
नचप्राणिवधःस्वर्ग्यस्तस्मान्मांसंविवर्जयेत् ४८ ॥

प० । न अकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसं उत्पद्यते क्वचित् न च प्राणिवधः स्वर्ग्यः तस्मात् मांसं विवर्जयेत् ॥

यो० । प्राणिनां हिंसां अकृत्वा क्वचित् अपि मांसं न उत्पद्यते चपुनः प्राणिवधः स्वर्ग्यः न भवति—तस्मात् मांसं विवर्जयेत् ॥

भा० । ता० । मांस भक्षणके प्रसंगसे हिंसाके गुण और दोषोंको कहकर मांसके अभक्षण को कहतेहैं कि प्राणियों की हिंसा किये विना कहीं भी मांस उत्पन्न नहीं होसक्ता और प्राणी का मारना स्वर्गका हेतु भी नहींहै तिससे मांसको सर्वथा वर्जदे ४८ ॥

समुत्पत्तिंचमांसस्यवधबन्धौचदेहिनाम् । प्रसमीक्ष्यनिवर्तेतसर्वमांसस्यभक्षणात् ४९॥

प० । समुत्पत्तिं चँ मांसस्यं वधबंधौ चँ देहिनां प्रसमीक्ष्यं निवर्तेत सर्वमांसस्यं भक्षणात् ॥

यो० । मांसस्य समुत्पत्तिं चपुनः देहिनां वधबंधौ प्रसमीक्ष्य सर्वमांसस्य भक्षणात् निवर्तेत ॥

भा० । ता० । शुक्र शोणितके मेलसे घृणाकरनेवाली प्राणियोंकी उत्पत्ति और क्रूरकर्मरूपवध (मारना) और बन्धनरूप दुःख प्राणियों के देखकर सब प्रकारके मांस भक्षणसे मनुष्य निवृत्त (हट) जाय ४९ ॥

नभक्षयतियोमांसंविधिंहित्वापिशाचवत्।सलोकेप्रियतांयातिव्याधिभिश्चनपीड्यते ५०

प० । नँ भक्षयँति यः मांसं विधिं हित्वाँ पिशाचवँत् सः लोके प्रियतां याति व्याधिभिः चँ नँ पीड्यते ॥

यो० । यः विधिं हित्वा पिशाचवत् मांसं न भक्षयति सः लोके प्रियतां याति चपुनः व्याधिभिः न पीड्यते (व्याधिपीडां न भुंक्ते) ॥

भा० । ता० । जो विधिको छोड़कर पिशाचके समान मांसकोनहींखाता वह जगत्का प्यारा होताहै और रोगोंसे भी पीडित नहींहोता—तिससे जगत्की प्रीति और स्वस्थता के हेतु विधिहीन मांसको भक्षण न करै ५० ॥

अनुमन्ताविशसितानिहन्ताक्रयविक्रयी।संस्कर्ताचोपहर्ताचखादकश्चेतिघातकाः५१॥

प० । अनुमंता विशसिता निहंता क्रयविक्रयी संस्कर्ता चँ उपहर्ता चँ खादकः चँ इँति घातकाः ॥

यो० । अनुमंता — विशसिता — निहन्ता — क्रयविक्रयी — चपुनः संस्कर्ता — चपुनः उपहर्ता चपुनः खादकः इति (इमे) घातकाः (भवंति) ॥

भा० । अनुमति का दाता—अंगोंको पृथक् पृथक् करनेवाला—मोललेने और बेचनेवाला—और पाचक—और भक्षणकरनेवाला—ये घातकहोतेहैं ५१ ॥

ता० । अनुमन्ता अर्थात् जिसकी अनुमति के विना हिंसा न करसके—और जो विशसिता अर्थात् मृतपशुके अंगोंको जो कर्तरि (छुरी) आदिसे अंगोंको पृथक्२ करै—और मांसका क्रेता (जोमोलले) और विक्रेता (जोवेचे) और संस्कर्ता (पाचक) औरखादक (जो भक्षणकरै) ये घातक (हिंसाकरनेवाले) हैं—यहांपर गोविंदराज ने तो क्रय विक्रय एक वही लिया है जो मोललेकर बेचे सो ठीकनहींहै क्योंकि इस वचनसे यमऋषि ने पृथक् २ ही कहेहैं कि मारनेसे मारनेवाला—धनसे मोललेनेवाला—और धनके ग्रहणकरनेसे बेचनेवाला और उसकी प्रवृत्तिसे पाचक—घातक—होते हैं—और इनको इससे घातककहा है कि शास्त्रोक्त विधि को छोड़कर पशु धेनु आदिकी हत्याभी न करनी और इन खादक आदिकोंको हत्याका प्रायश्चित्त भी पृथक् २ हीकहा है ५१ ॥

---

१ हननेनतथाहंता धनेनैक्रयकस्तथा । विक्रयीतुधनादानात्संस्कर्तातत्प्रवर्तनात् ॥

स्वमांसंपरमांसेनयोवर्द्धयितुमिच्छति ।
अनभ्यर्च्यपितॄन्देवांस्ततोऽन्योनास्त्यपुण्यकृत् ५२॥

प० । स्वमांसं परमांसेन यः वर्द्धयितुं इच्छति अनभ्यर्च्य पितॄन् देवान् ततः अन्यः न अस्ति अपुण्यकृत् ॥

यो० । यः पुरुषः पितॄन् देवान् अनभ्यर्च्य — परमांसेन स्वमांसं वर्द्धयितुं इच्छति ततः अन्यः अपुण्यकृत् (पापकर्ता) नास्ति ॥

भा० । ता० । जो पुरुष देवता और पितरों की पूजा (श्राद्धआदि) के विना परायेमांस से अपने मांसको बढ़ाया चाहताहै उससे अन्य पापकर्मा कोई नहीं है ५२ ॥

वर्षेवर्षेऽश्वमेधेनयोयजेतशतंसमाः । मांसानिचनखादेद्यस्तयोःपुण्यफलंसमम् ५३ ॥

प० । वर्षे वर्षे अश्वमेधेन यः यजेत शतं समाः मांसानि च न खादेत् यः तयोः पुण्यफलं समं ॥

यो० । यः वर्षे वर्षे शतंसमाः अश्वमेधेन यजेत चपुनः यः मांसानि शतंसमाः न खादेत् तयोः पुण्यफलं समं भवति ॥

भा० । ता० । अब यह कहते हैं कि मांसभक्षण की निवृत्ति धर्म के अर्थहै जो मनुष्य सौवर्ष तक वर्ष २ में अश्वमेधयज्ञकरे—और जो मनुष्य सौवर्षतक मांस भक्षण न करे उनदोनों को पुण्य का फल (स्वर्गादि) तुल्य होताहै ५३ ॥

फलमूलाशनैर्मेध्यैर्मुन्यन्नानांचभोजनैः । नतत्फलमवाप्नोतियन्मांसपरिवर्जनात् ५४ ॥

प० । फलमूलाशनैः मेध्यैः मुन्यन्नानां च भोजनैः न तत् फलं अवाप्नोति यत् मांसपरिवर्जनात् ॥

यो० । यत्फलं मांसपरिवर्जनात् अवाप्नोति तत्फलं मेध्यैः फलमूलाशनैः चपुनः मुन्यन्नानां भोजनैः न अवाप्नोति ॥

भा० । ता० । जिसफलको मांस के त्यागसे प्राप्तहै उसफलको पवित्र फल और मूल के भक्षण और मुनियों के नीवारआदि अन्नोंके भोजनसे नहींहोता—इससे मांस भक्षण को सर्वथा त्यागदे ५४ ॥

मांसभक्षयितामुत्रयस्यमांसमिहाद्म्यहम् । एतन्मांसस्यमांसत्वंप्रवदन्तिमनीषिणः ५५॥

प० । मां सः भक्षयिता अमुत्र यस्य मांसं इह अद्मि अहं एतत् मांसस्य मांसत्वं प्रवदंति मनीषिणः ॥

यो० । यस्य मांसं इह अहं अद्मि सः अमुत्र मां भक्षयिता एतत् मनीषिणः मांसस्य मांसत्वं प्रवदंति ॥

भा० । ता० । इसलोक में जिसके मांसको मैं खाताहूं वह परलोक में मुझे भक्षणकरेगा यही मांस का (मांसपदका) मांसत्व (तात्पर्यार्थ) पंडितजन कहते हैं अर्थात् मांसपद का यही अर्थहै ५५ ॥

नमांसभक्षणेदोषोनमद्येनचमैथुने । प्रवृत्तिरेषाभूतानांनिवृत्तिस्तुमहाफला ५६ ॥

प० । न मांसभक्षणे दोषः न मद्ये न च मैथुने प्रवृत्तिः एषा भूतानां निवृत्तिः तु महाफला ॥

यो० । मांसभक्षणे—मद्ये—मैथुने दोषः न अस्ति यतः एषा भूतानां प्रवृत्तिः भवति निवृत्तिः तु महाफला भवति ॥

भा० । ता० । ब्राह्मण आदि वर्णोंको शास्त्रविहित और अनिषिद्ध मांसभक्षण और मद्यपान और मैथुन में दोष नहीं है क्योंकि यह भक्षण पान मैथुन आदि में प्रवृत्ति मनुष्यों के स्वभाव सेहै किन्तु मांस भक्षण मद्यपान मैथुन की निवृत्तिका तो अत्यन्त फल है सिद्धान्त यह है कि प्रथम तो मांसको सर्वथा त्यागदे यदि रागही होयतो यज्ञ और श्राद्ध आदिमेंही इसके भक्षण को करे क्योंकि यज्ञ आदि में पुण्य के समूहमें कूप खनन न्याय से वह हत्या शास्त्र ने हत्या नहीं कही ५६ ॥

प्रेतशुद्धिंप्रवक्ष्यामिद्रव्यशुद्धिंतथैवच । चतुर्णामपिवर्णानांयथावदनुपूर्वशः ५७॥

प० । प्रेतशुद्धिं प्रवक्ष्यामि द्रव्यशुद्धिं तथा एव च चतुर्णां अपि वर्णानां यथावत् अनुपूर्वशः ॥

यो० । चतुर्णां अपि वर्णानां प्रेतशुद्धिं चपुनः तथैव द्रव्यशुद्धिं अनुपूर्वशः यथावत् प्रवक्ष्यामि ॥

भा० । ता० । चारों वर्णों की क्रम से यथार्थ प्रेत की शुद्धि और द्रव्य की शुद्धि को कहताहूं अर्थात् कितने दिन में ब्राह्मण आदिवर्ण मरण सूतक में शुद्धहोते हैं और कौन तेज आदि का द्रव्य किसप्रकार शुद्धहोता है ५७ ॥

दन्तजातेऽनुजातेचकृतचूडेचसंस्थिते । अशुद्धाबान्धवाःसर्वेसूतकेचतथोच्यते ५८ ॥

प० । दन्तजाते अनुजाते च कृतचूडे च संस्थिते अशुद्धाः बान्धवाः सर्वे सूतके च तथा उच्यते ॥

यो० । दन्तजाते चपुनः अनुजाते चपुनः कृतचूडे (बाले) संस्थिते (मृते) सति चपुनः जन्मसूतके सर्वे बान्धवाः यथा अशुद्धाः भवंति तथा उच्यते ॥

भा० । ता० । जिसके दांत उत्पन्न होगये हों—और दांतों की उत्पत्ति से पीछे और चूडाकर्म से पहिले और जिसका चूडाकर्म (मुण्डन) होगयाहो—और जिसको यज्ञोपवीत होगयाहो ऐसे बालकोंकी मृत्यु होनेपर और बालकके जन्म सूतकमें सम्पूर्ण बांधव (सपिण्ड और समानोदक) जैसे अशुद्ध होतेहैं वही प्रकार हम कहते हैं ५८ ॥

दशाहंशावमाशौचंसपिण्डेषुविधीयते । अर्वाक्संचयनादस्थ्नांत्र्यहमेकाहमेवच ५९॥

प० । दशाहं शावं आशौचं सपिंडेषु विधीयते अर्वाक् संचयनात् अस्थ्नां त्र्यहं एकाहं एव च ॥

यो० । सपिंडेषु शावं आशौचं—दशाहं—अस्थ्नां संचयनात् अर्वाक् त्र्यहं—चपुनः एकाहं—विधीयते ॥

भा० । सपिंडोंकी शाव (मारने का) आशौच दशदिन अथवा अस्थिसंचयनसे पहिले तीन दिन वा एकदिन में शुद्धि होतीहै ॥

ता० । सात पीढ़ीतक सपिण्डहोते हैं मरनेके आशौच सपिंडों दश अहोरात्र ब्राह्मणको कहा है क्योंकि ब्राह्मण शुद्धि (शुद्ध्येद्विप्रोदशाहेन) दशदिनमें कहेंगे और चौथेदिन अस्थिसंचयन

से पहिले तीन दिनतक ब्राह्मणको आशौच कहाहै क्योंकि इस[1] विष्णुवचन से चौथेदिन अस्थि-संचयनहोता है अथवा तीन वा एक अहोरात्र ब्राह्मणको आशौचहोता है–यह विकल्प (भेद) अग्निहोत्र और वेद और गुणकी अपेक्षा से होता है क्योंकि दक्ष[2]ने यह कहाहै कि जो ब्राह्मण अग्निहोत्र और वेद दोनोंसे युक्तहै वह एकदिन में शुद्धहोताहै और उक्त दोनोंसे हीनहै उसको शुद्धिकी हीनताहोती है अर्थात् तीन वा चार दिनमें शुद्धि होतीहै–सिद्धान्त यह है कि जो वेदोक्त अग्निहोत्री हो और मंत्र ब्राह्मणरूप सम्पूर्ण शाखा जिसने पढ़ी हो वह एकदिन में–और जो वेदोक्त अग्निहोत्र वेदपठन इनमेंसे एकगुणहीनहै वह तीनदिनमें और दोनोंसे हीनहै और स्मार्त अग्निहोत्र करताहै वहचारदिनमें और जो सब गुणोंसे रहित है वह दशदिनमें शुद्ध-होता है क्योंकि पराशर ऋषि[3] ने निर्गुण ब्राह्मण को दशदिन का आशौच कहा है ५९ ॥

सपिण्डतातुपुरुषेसप्तमेविनिवर्तते । समानोदकभावस्तुजन्मनाम्नोरवेदने ६० ॥

प० । सपिंडता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते समानोदकभावः तु जन्मनाम्नोः अवेदने ॥

यो० । सप्तमे पुरुषे सपिंडता – तुपुनः जन्मनाम्नोः अवेदने समानोदकभावः – विनिवर्तते ॥

भा० । सातवी पीढ़ीमें सपिंडता–और जन्म और नामके अज्ञानमें समानोदकभाव निवृत्त होजाता है और मूल पुरुष के जन्म व नाम दोनोंकी जब प्रतीति न रहै तब ॥

ता० । सपिंड का लक्षण कहते हैं जिसके मरण वा जन्मसूतक का निर्णय कर्तव्यहो उसके पिता पितामहआदि छःपुरुषोंके पीछे सपिंडता (पिंडकासम्बन्ध) निवृत्तहोजातीहै–और इसी प्रकार पुत्र पौत्रआदिमें भी जाननी–और यह सपिंडता पिंडसम्बन्धसे होतीहै कि पिता–पिता-मह–प्रपितामह ये तीन पिंडके भागी हैं और प्रपितामहके पिताआदि तीन लेपभाग के भोक्ता होते हैं इन छः से पहिलेको पिंडकासम्बन्ध नहीं है इससे वह सपिंड नहींकहाता–और जिसके ये छः पुरुष हैं वहभी पिंडकेदेने से सपिंडहै इससे देनेवाले समेत ये सातसपिंड होते हैं क्योंकि मत्स्यपुराण में[4] यहकहाहै कि चौथेपुरुष आदि तीन लेपभागभुज और पिताआदि तीन पिंड के भागी–और सातवां इनके पिंडकादाता–यह सातपीढ़ीतक सापिंड्यहोताहै–और यह सपिंड-ताभी सगोत्रोंमेंहैं क्योंकि शंख और लिखितने[5] यहकहाहै कि सातपुरुषतक सपिंडता गोत्रसे (एकगोत्रमेंहे) है–इससे मातामहआदि तीनोंको एक पिंडका सम्बन्धभी है तथापि सगोत्र के अभाव से सपिंडता नहींहोती–और समानोदक भाव तो तब निवृत्तहोता है कि जब यह ज्ञान न रहै कि हमारेकुलमें अमुक समय में अमुकनाम का मनुष्यहुआ ६० ॥

यथेदंशावमाशौचंसपिण्डेषुविधीयते । जननेऽप्येवमेवस्यान्निपुणंशुद्धिमिच्छताम् ६१ ॥

प० । यथा इदं शावं आशौचं सपिंडेषु विधीयते जनने अपि एवं एव स्यात् निपुणं शुद्धिं इच्छताम् ॥

१ चतुर्थेदिवसेऽस्थिसंचयनं कुर्यात् ॥

२ एकाहाच्छुद्ध्यतेविप्रो योऽग्निवेदसमन्वितः हीनेहीनेभवेच्चैव त्र्यहश्चतुरहस्तथा ॥

३ निर्गुणो दशभिर्दिनैः ॥

४ लेपभाजश्चतुर्थाद्याः पित्राद्याः पिण्डभागिनः पिण्डदः सप्तमस्तेषां सापिंड्यं साप्तपौरुषं ॥

५ सपिण्डतातु सर्वेषां गोत्रतः साप्तपौरुषी ॥

यो० । इदं शावं आशौचं सपिंडेषु यथा विधीयते—निपुणां शुद्धिं इच्छतां पुरुषाणां एवं एव जनने अपि एवं एव स्यात् ॥

भा० । ता० । जैसा यह शाव (मरने का) आशौच दशाह आदिका सपिण्डों को कहाहै इसी प्रकार जनमें भी निपुण (पूरी २) शुद्धि इच्छा करनेवाले पुरुषों को आशौच होताहै ६१ ॥

सर्वेषांशावमाशौचंमातापित्रोस्तुसूतकम् । सूतकंमातुरेवस्यादुपस्पृश्यपिताशुचिः ६२॥

प० । सर्वेषां शावं आशौचं मातापित्रोः तु सूतकं सूतकं मातुः एव स्यात् उपस्पृश्य पिता शुचिः ॥

यो० । शावं आशौचं सर्वेषां (भवति) सूतकं तु मातापित्रोः एव भवति—तयोर्मध्ये अपि मातुः एव स्यात्—पिता उपस्पृश्य (स्नात्वा) शुचिः भवति ॥

भा० । ता० । सबको तुल्य आशौच पाया इससे विशेषता कहतेहैं कि—मरनेका आशौच सब सपिण्डों को समान होताहै और जन्म निमित्तक आशौच तो माता और पिताकोही होता है और तिन दोनोंमें भी दशदिन का सूतक माताकोही होताहै और पिता तो स्नान के अनन्तर स्पर्शके योग्य होजाता है यही प्रकार संवर्त्तऋषिने[1] प्रकट कियाहै कि पुत्रहोनेपर पिता सचैल स्नानकरै माता दशदिनमें शुद्धहोती है पिता तो स्नान करके स्पर्श करनेके योग्य होताहै ६२ ॥

निरस्यतुपुमान्शुक्रमुपस्पृश्यैवशुध्यति । बैजिकादभिसंबन्धादनुरुन्ध्यादघंत्र्यहम् ६३॥

प० । निरस्य तु पुमान् शुक्रं उपस्पृश्य एव शुध्यति बैजिकात् अभिसम्बन्धात् अनुरुन्ध्यात् अघं त्र्यहम् ॥

यो० । पुमान् शुक्रं निरस्य उपस्पृश्य एव शुध्यति—बैजिकात् अभिसम्बन्धात् त्र्यहं अघं अनुरुन्ध्यात् ॥

भा० । पुरुष स्वप्नमें वीर्य आदिको सींचकर स्नानसे—और परस्त्री में संतानको पैदाकरके तीन दिनमें—शुद्धहोताहै ॥

ता० । मैथुनके कर्ताको (स्नानंमैथुनिनःस्मृतं) इस वचनसे स्नानकहेंगे तिससे मैथुनके विना यदि स्वप्न आदिमें ज्ञानसे वीर्यका स्खलन (निकसना) होजाय तो स्नानकरनेसे मनुष्य होताहै और यदि अज्ञानसे स्वप्न आदिमें वीर्यका पात होजाय तो—वीर्यके पातमें मूत्रके समान[2] जल स्पर्श आदिसे शुद्धिहोतीहै इस आपस्तम्बके वचनानुसार गृहस्थीकी शुद्धिहोतीहै और ब्रह्मचारीका तो अकामसे भी यदि स्वप्नमें रेत (वीर्य) का पात होजाय तो स्नानसे शुद्धि (स्वप्नेसिक्त्वा ब्रह्मचारी) इस वचनसे कहीहै और पराई स्त्रीमें बैजिक (संतानकी उत्पत्तिकरने वाला) सम्बन्धहोजाय तो तीन दिनतक आशौच होताहै क्योंकि विष्णुने[3] त्रिरात्रही कहाहै यह वीर्यपातका आशौच जन्माशौचके प्रकरणमें प्रसंगसे कहाहै अर्थात् जहां वीर्यपातमें स्नान है वहां अपत्य की उत्पत्तिसे तीन रात्र आशौच उचित है ६३ ॥

---

१ जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचैलंतु विधीयते माता शुध्येद्दशाहेन स्नानात्तुस्पर्शनंपितुः ॥

२ मूत्रवद्रेतस उत्सर्गे ॥

३ परपूर्वभार्यासुत्रिरात्रम् ॥

अह्ना चैकेन रात्र्या च त्रिरात्रैरेव च त्रिभिः । शवस्पृशो विशुध्यन्ति त्र्यहादुदकदायिनः ६४॥

प० । अह्ना च एकेन रात्र्या च त्रिरात्रैः एव च त्रिभिः शवस्पृशः विशुध्यंति त्र्यहात् उदक-दायिनः ॥

यो० । एकेन अह्ना — एकया रात्र्या — (अहोरात्रेण) त्रिभिः त्रिरात्रैः (नवाहोरात्रैः) मिलित्वा दशाहेन शव-स्पृशः विशुध्यंति — उदकदायिनः त्र्यहात् विशुध्यंति ॥

भा० । शवके स्पर्श करनेवाले दशदिनमें और समानोदक तीनदिनमें शुद्धहोते हैं ॥

ता० । एकदिन और एकरात्र अर्थात् एक अहोरात्र और तीन त्रिरात्र अर्थात् नव अहोरात्र सबमिलकर दशदिन हुये अर्थात् दशदिनमें शवके स्पर्शकरनेवाले शुद्धहोतेहैं—यद्यपि यहांपर दशाहेन यहीकहना उचित था यह वाणीका विस्तार वृथा प्रतीतनहोताहै तथापि पंडितजो बड़ी अथवा छोटी वाणीसे शास्त्रको रचतेहैं उनको यह नियम नहीं कोई करासक्ता कि लघु वाणीसे ही शास्त्रको रचाकरैं तात्पर्य यहहै जो सपिंड सदाचार और स्वाध्याय गुणवाले होनेसे एकदिन के आशौचके योग्यहैं वे यदि स्नेह वशसे शव (मुर्दे) का स्पर्शकरलें तो दशदिनमें शुद्धहोतेहैं और जिनको जलदेनेका अधिकारहै वे समानोदक तीनदिनमें शुद्धहोतेहैं—गोविंदराज तो यह कहतेहैं कि जो ब्राह्मण धनके लोभसे शवका स्पर्शकरतेहैं वे दशदिनमें शुद्धहोतेहैं ६४ ॥

गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन् । प्रेतहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुध्यति ६५ ॥

प० । गुरोः प्रेतस्य शिष्यः तु पितृमेधं समाचरन् प्रेतहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुध्यति ॥

यो० । शिष्यः प्रेतस्य गुरोः पितृमेधं समाचरन्तत्र प्रेतहारैः सम दशरात्रेण शुध्यति ॥

भा० । ता० । शिष्य मरेहुये असपिंड गुरुके पितृमेध (क्रियाकर्म) को करके प्रेतके लेजाने वालोंके समान दशदिनमें शुद्धहोतेहैं ६५ ॥

रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावे विशुध्यति । रजस्युपरते साध्वी स्नानेन स्त्री रजस्वला ६६॥

प० । रात्रिभिः मासतुल्याभिः गर्भस्रावे विशुध्यति रजसि उपरते साध्वी स्नानेन स्त्री रज-स्वला ॥

यो० । गर्भस्रावे स्त्री मासतुल्याभिः रात्रिभिः — साध्वी रजस्वला स्त्री रजसिउपरते सति स्नानेन विशुध्यति ॥

भा० । गर्भके स्रावमें स्त्री उतने दिनमें शुद्धहोतीहै जितने महीनेका गर्भहो और रजस्वला स्त्री रजकी निवृत्ति होनेपर स्नान करके शुद्धहोतीहै ॥

ता० । तीसरे महीने छठे महीनेतक का यदि गर्भपात होजाय तो जितने महीनेका गर्भहो उतनेही अहोरात्रोंमें चारों वर्णोंकी स्त्री शुद्धहोती है क्योंकि आदिपुराणमें छः मासतककही क-हाहै जो छः महीनेतक गर्भस्राव होजाय तो उतनेही दिनोंमें शुद्धि होतीहै जितने दिनका गर्भहो और इससे आगे तिस २ जाति सम्बन्धी आशौच होताहै—मेधातिथि और गोविंदराज तो यह कहतेहैं कि यह वचन आदिपुराणमें नहींहै इससे सात महीनेसे पहिले यदि गर्भस्राव

१. दीर्घामिमां लघिष्ठां वा गिरं निर्माति वाग्मिनः नचावश्यन्त्वमेतेषां लघुरुक्तयैवनियम्यते ॥
२ षण्मासाभ्यंतरंयावद्गर्भस्रावोभवेद्यदि तदामाससमैस्तासांदिवसैश्शुद्धिरिष्यते अतऊर्ध्वंतुजात्युक्तमाशौचंतासुविद्यते ॥

होजाय तो जितने मासका गर्भहो उतनेही दिनोंमें शुद्धि होतीहै—प्रथम द्वितीय तृतीय मासमें यदि गर्भपात होजाय तो स्त्रियोंको तीनरात्रिका आशौचहोता है क्योंकि हारीतऋषि ने यह कहाहै कि स्त्रियोंके गर्भस्राव में तीनरात्रही बहुत हैं क्योंकि वह भी एक रजहीहै और पिता आदि सपिंडोंकी तो सद्यः शुद्धिहोतीहै क्योंकि सुमंतुऋषि का वचनहै कि गर्भके स्रावमें गर्भके मासोंके तुल्य दिनोंमें स्त्रियोंकी और सपिंडोंकी सद्यः शुद्धि होतीहै—और रजस्वला स्त्री रजकी निवृत्तिहोनेपर पांचवें दिन अदृष्टार्थ कर्म करनेयोग्य होती है और स्पर्शके योग्य तो चौथेदिन स्नान करकेही होजातीहै ६६ ॥

नृणामकृतचूडानांविशुद्धिर्नैशिकीस्मृता । निर्वृत्तचूडकानांतुत्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ६७ ॥

प० । नृणां अकृतचूडानां विशुद्धिः नैशिकी स्मृता निर्वृत्तचूडकानां तु त्रिरात्रात् शुद्धिः इष्यते ॥

यो० । अकृतचूडानां नृणां नैशिकी विशुद्धिः स्मृता — निर्वृत्तचूडकानांतु त्रिरात्रात् शुद्धिः इष्यते मन्वादिभिरिति शेषः ॥

भा० । ता० । जिन बालकोंका चूडाकर्म नहींहुआहो उनके मरनेपर अहोरात्रसे शुद्धिहोतीहै और जिनका चूडाकर्महोगयाहै उनके मरनेपर तीनरात्रमें शुद्धि होतीहै ६७ ॥

ऊनद्विवार्षिकंप्रेतंनिदध्युर्बान्धवाबहिः । अलंकृत्यशुचौभूमावस्थिसंचयनादृते ६८ ॥

प० । ऊनद्विवार्षिकं प्रेतं निदध्युः बान्धवाः बहिः अलंकृत्य शुचौ भूमौ अस्थिसंचयनात् ऋते ॥

यो० । बान्धवाः ऊनद्विवार्षिकं प्रेतं अलंकृत्य बहिः शुचौ भूमौ अस्थिसंचयनात् ऋते निदध्युः (क्षिपेयुः) ॥

भा० । ता० । नहींहुआहै चूडाकर्म जिसका ऐसे दो वर्षसे कमहै अवस्था जिसकी ऐसे बालकको बान्धव वस्त्र आदिसे शोभितकरके शुद्ध भूमिमें ग्रामसे बाहिर फेंकदें अर्थात् गाड़दें और अस्थिसंचयन न करें और विश्वरूप तो कहतेहैं कि जहां किसीका अस्थि संचयन हुआहो वहां गाड़े ६८ ॥

नास्यकार्योऽग्निसंस्कारोनचकार्योदकक्रिया । अरण्येकाष्ठवत्त्यक्त्वाक्षपेयुस्त्र्यहमेववा ६९

प० । न अस्य कार्यः अग्निसंस्कारः न च कार्या उदकक्रिया अरण्ये काष्ठवत् त्यक्त्वा क्षपेयुः त्र्यहं एव वा ॥

यो० । अस्य अग्निसंस्कारः न कार्यः — उदकक्रिया न कार्या — वपुनः अरण्ये काष्ठवत् त्यक्त्वा त्र्यहं एव क्षपेयुः ॥

भा० । इस बालकका अग्निसे दाह और जलदान न करैं किंतु वनमें काष्ठके समान त्याग कर तीनदिनका आशौचकरैं ॥

ता० । दोवर्षसे कम अवस्थाके बालक का अग्निसंस्कार और जलदान आदि सब कर्म नहीं करने किंतु वनमें काष्ठके समान त्यागकर अर्थात् जैसे वनमें काष्ठके त्यागसे शोक नहीं होता इस प्रकार शोकको त्याग कर तीन दिनका आशौचकरैं—यह दिन दिन दिनके आशौच का

---

१ गर्भस्रावेस्त्रीणां त्रिरात्रं रजोविशेषत्वात् ॥
२ गर्भमासतुल्यादिवसा गर्भसंस्रवणे सद्यःशौचं वा भवति ॥

विधान पूर्वोक्त एकदिनके आशौचके विकल्पको जनाताहै—आचारग और वेदपाठ युक्तको एक दिनका और जो मूर्खहो उसको तीनदिनका आशौच होताहै यद्यपि मनुने त्यागनाही कहाहै तथापि इसे याज्ञवल्क्यके वचनसे शुद्ध भूमिमें गाड़दे ६९ ॥

नात्रिवर्षस्यकर्तव्याबान्धवैरुदकक्रिया । जातदन्तस्यवाकुर्युर्नाम्निवापिकृतेसति ७० ॥

प० । नँ अत्रिवर्षस्यं कर्तव्या बान्धवैः उदकक्रियाँ जातदंतस्यँ वाँ कुँर्युः नाम्निँ वाँ अँपि कृँते सँति ॥

यो० । अत्रिवर्षस्य बान्धवैः उदकक्रिया न कर्तव्या—वा जातदंतस्य—वा नाम्निकृतेसति उदकक्रियां कुर्युः ॥

भा० । तीनवर्षसे कम का बालकहोय तो जलदान न करै और दांत उपजनेपर और नाम करनेपर जलदान आदि कर्मको करै ॥

ता० । तीनवर्षसे कमके बालकको जलदान न करै—यद्यपि पहिले भी जलदानका निषेध कहआयेहैं तथापि आगेके लिये यह अनुवादहै और दांतोंके जन्मेपर अथवा नाम करनेके पीछे जलदान और अग्निसंस्कार करना और प्रेतपिंड और श्राद्ध आदि भी करने—यद्यपि न करने से काम चले और दोष नहींहै तो क्योंकरै यह शंका होतीहै तथापि दोनों शास्त्रोक्तहैं इससे करनेसे प्रेतका उपकार और न करनेमें पापका अभावहै इससे करनाही उत्तमहै ७० ॥

सब्रह्मचारिण्येकाहमतीतेक्षपणंस्मृतम् । जन्मन्येकोदकानांतुत्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ७१

प० । सब्रह्मचाँरिणि एकाँहं अँतीते क्षपणं स्मृतम् जन्मँनि एकोदकानां तुँ त्रिरात्रात् शुद्धिः इष्यँते ॥

यो० । सब्रह्मचारिणि अतीतेसति एकाहं क्षपणं (मन्वादिभिः) स्मृतम्—तुपुनः जन्मनि एकोदकानां त्रिरात्रात् शुद्धिः इष्यते ॥

भा० । ता० । अपने संग जिसने पढ़ाहो वह मरजाय तो एकादिन की अशुद्धि मनु आदिने कहीहै और समानोदक के पुत्रका जन्महोय तो तीनदिनमें शुद्धि मानीहै ७१ ॥

स्त्रीणामसंस्कृतानांतुत्र्यहाच्छुद्ध्यन्तिबान्धवाः ।
यथोक्तेनैवकल्पेनशुद्ध्यंतितुसनाभयः ७२ ॥

प० । स्त्रीणां असंस्कृतानां तु त्र्यहात् शुद्धंयंति बान्धवाः यथोक्तेनं एवँ कल्पेनं शुद्धंयंति तुँ सनाभयः ॥

यो० । असंस्कृतानां स्त्रीणां बान्धवाः त्र्यहात् शुद्ध्यंति—सनाभयः (पितृपक्षाः) तु यथोक्तेन कल्पेन एव शुद्ध्यंति ॥

भा० । जिनका विवाह नहींहुआ और वाग्दान होगयाहै उन कन्याओंके मरनेमें पति और पिताके पक्षके बान्धव तीनदिनमें शुद्धहोतेहैं ॥

ता० । जिन कन्याओंका विवाह न हुआहो और वाग्दान (सगाई) होगयाहो उनके मरने में बान्धव (भर्ताआदि) तीन दिनमें शुद्धहोते हैं और सनाभि (पिता के पक्षके तो विवाह वा वाग्दान के अनन्तर कन्याके मरनेमें यथोक्त कल्पसे अर्थात् इसी श्लोकमें कहेहुये प्रकार (तीन

---

१ ऊन द्विवार्षिकं निखनेत् ॥

दिन) से शुद्धहोते हैं—क्योंकि आदिपुराण में यही कहाहै कि जन्मसे चूडाकर्म (मुण्डन) तक कन्या मरजाय तो सब वर्णों में उसीसमय शुद्धि होतीहै फिर वाग्दान पर्यंत एकदिनमें—इसके आगे तीनदिन यह वृद्धोंका निश्चय है—और वाग्दानके पीछे पितृपक्ष और पतिपक्षमें तीनदिन का आशौच जानना—और विवाहके पीछे भर्त्ता कोही अपनी जाति का आशौच होताहै पिताको नहीं मेधातिथि गोविन्दराज तो यह कहतेहैं कि यथोक्त कल्प से वही पूर्वोक्त कल्प लेते हैं जो- नृणामकृतचूडानां—इससे एकदिन की और चूडाकर्म के अनन्तर तीनदिनका आशौच कहाहै यहठीक नहीं है क्योंकि मुण्डनके अनन्तर कन्याओं के मरनेमें भी तीनदिन का आशौच होगा सो आदिपुराण आदि अनेक वचनों से विरुद्ध है ७२ ॥

अक्षारलवणान्नाःस्युर्निमज्जेयुश्चतेत्र्यहम्।मांसाशनंचनाश्नीयुःशयीरंश्चपृथक्क्षितौ७३

प० । अक्षारलवणान्नाः स्युः निमज्जेयुः च ते त्र्यहं मांसाशनं च न अश्नीयुः शयीरन् च पृथक् क्षितौ ॥

यो० । ते अक्षारलवणान्नाः स्युः—चपुनः त्र्यहं निमज्जेयुः—चपुनः मांसाशनं न कुर्युः चपुनः पृथक् क्षितौ शयीरन् ॥

भा० । ता० । वे बान्धव—खारालवण जिसमें न हो ऐसे अन्नको भक्षण करें—और नदी आदिमें तीनदिनतक स्नानकरें—और मांसका भक्षण न करें—और भूमिपर एकाकी सोवें ७३ ॥

सन्निधावेषवैकल्पःशावाशौचस्यकीर्तितः।असन्निधावयंज्ञेयोविधिःसंबन्धिबान्धवैः७४॥

प० । सन्निधौ एषः वै कल्पः शावाशौचस्य कीर्तितः असन्निधौ अयं ज्ञेयः विधिः संबन्धि- बान्धवैः ॥

यो० । शावाशौचस्य एषः कल्पः कीर्तितः असन्निधौ संबन्धिबान्धवैः अयं विधिः ज्ञेयः ॥

भा० । ता० । मरनेके आशौचकी यह विधि समीप होनेपर संबन्धी(सपिंड)और बान्धवों— (समानोदकों)की कही और समीपमें न हो अर्थात् परदेशमें होयतो इसविधिको जानना ७४ ॥

विगतंतुविदेशस्थंशृणुयाद्योह्यनिर्दशम्। यच्छेषंदशरात्रस्यतावदेवाशुचिर्भवेत् ७५ ॥

प० । विगतं तु विदेशस्थं शृणुयात् यः हि अनिर्दशं यत् शेषं दशरात्रस्य तावत् एव अ- शुचिः भवेत् ॥

यो० । यः पुरुषः विगतं विदेशस्थं अनिर्दशं शृणुयात् सः दशरात्रस्य यत् शेषं तावत् एव अशुचिः भवेत् ॥

भा० । ता० । जो पुरुष परदेशमें रहते मरेहुये को दशदिन के भीतर सुनेवह उतने ही दिनतक अशुद्ध होता है जितने दिन दशदिनमें शेषहों और जन्म में भी यही प्रकार समझना क्योंकि बृहस्पतिका वचन यहहै कि परदेशमें मरे और पुत्रके जन्मको सुनकर दशदिन के जितने दिन शेष हों उनमें ही शुद्ध होजाता है ७५ ॥

---

१ आजन्मनस्तुचूडांतं यत्रकन्याविपद्यते सद्यःशौचंभवेत्तत्र सर्ववर्णेषुनित्यशः ततोवाग्दानपर्यंतं यावदेकाहमेवहि अतःपरंप्रवृद्धानां त्रिरात्रमितिनिश्चयः वाग्दानेतुकृतेतत्र ज्ञेयंचोभयतस्त्र्यहं पितुर्वरस्यचततो दत्तानांपरमेवहि स्वजात्युक्त- मशौचंस्यान्मृतकेसूतकेपिच ॥

१ अन्यदेशमृतंज्ञातिं श्रुत्वापुत्रस्यजन्मच अनिर्गतेदशाहेतु शेषाहोभिर्विशुध्यति ॥

अतिक्रान्तेदशाहेचत्रिरात्रमशुचिर्भवेत् । संवत्सरेव्यतीतेतुस्पृष्ट्वैवापोविशुद्ध्यति ७६॥

प० । अतिक्रान्ते दशाहे च त्रिरात्रं अशुचिः भवेत् संवत्सरे व्यतीते तु स्पृष्ट्वा एव अपः विशुद्ध्यति ॥

यो० । चपुनः दशाहे अतिक्रान्ते सति त्रिरात्रं अशुचिः भवेत् — तुपुनः संवत्सरे व्यतीते सति अपः स्पृष्ट्वा एव विशुद्ध्यति ॥

भा० । ता० । अपना कोई सपिण्ड परदेशमें मरगयाहो और दशदिन बीतेपर सुने तो तीन दिन आशौच होताहै और यदि वर्षदिन बाद सुने तो जलका स्पर्श करके ही शुद्ध होजाता है—और यह विधि इस देवल वचन से मरण आशौचकी है क्योंकि दशदिन बीते पर जन्म का आशौच नहींहोता ७६ ॥

निर्दशंज्ञातिमरणंश्रुत्वापुत्रस्यजन्मच । सवासाजलमाप्लुत्यशुद्धोभवतिमानवः ७७ ॥

प० । निर्दशं ज्ञातिमरणं श्रुत्वा पुत्रस्य जन्म च सवासाः जलं आप्लुत्य शुद्धः भवति मानवः ॥

यो० । निर्दशं ज्ञातिमरणं चपुनः पुत्रस्य जन्म श्रुत्वा सवासाः जलं आप्लुत्य मानवः शुद्धो भवति ॥

भा० । ता० । दशदिन के अनन्तर कर्म करने के अयोग्य तीन दिनका आशौच कहआये हैं अब उसके अंगका स्पर्श न करने का विधायक है कि दशदिन पीछे सपिण्ड का मरण और पुत्रका जन्म सुनकर सचैल स्नान करके शुद्ध होताहै अर्थात् स्पर्श करने योग्य होताहै ७७ ॥

बालेदेशान्तरस्थेचपृथक्पिण्डेचसंस्थिते।सवासाजलमाप्लुत्यसद्यएवविशुद्ध्यति ७८ ॥

प० । बाले देशान्तरस्थे च पृथक्पिण्डे च संस्थिते सवासाः जलं आप्लुत्य सद्यः एव विशुद्ध्यति ॥

यो० । देशान्तरस्थेबाले चपुनः पृथक् पिण्डे संस्थिते (मृते) सति सवासाः जलं आप्लुत्य सद्यः एव विशुद्ध्यति

भा० । ता० । देशान्तरमें रहता हुआ अजातदन्त बालक अथवा समानोदक मृत्युको प्राप्त होजाय तो वस्त्रों सहित जल में स्नान करके तीन दिनके अनन्तर शीघ्रही शुद्धिहोती है ७८ ॥

अन्तर्दशाहेस्यातांचेत्पुनर्मरणजन्मनी । तावत्स्यादशुचिर्विप्रोयावत्तत्स्यादनिर्दशम् ७९

प० । अन्तर्दशाहे स्यातां चेत् पुनः मरणजन्मनी तावत् स्यात् अशुचिः विप्रः यावत् तत् स्यात् अनिर्दशं ॥

यो० । चेत् (यदि) अन्तर्दशाहे मरणजन्मनी स्यात् तदा-यावत् तत् (प्रथममृतकं) अनिर्दशं तावत् विप्रः अशुचिः स्यात् ॥

भा० । ता० । दशदिनके भीतर यदि फिर मरण अथवा जन्म (अर्थात् मरणमें मरण जन्म में जन्म) होजायँ तो इतनेही ब्राह्मण अशुद्ध रहताहै इतने पहिले सूतकके दशदिन नहीं बीतते ७९ ॥

---

१. नाशौचंप्रसवस्यास्ति व्यतीतेषुदिनेष्वपि ॥

त्रिरात्रमाहुराशौचमाचार्येसंस्थितेसति । तस्यपुत्रेचपत्न्यांचदिवारात्रमितिस्थितिः ८०

प० । त्रिरात्रं आहुः आशौचं आचार्ये संस्थिते सति तस्य पुत्रे च पत्न्यां च दिवारात्रं इति स्थितिः ॥

यो० । आचार्ये संस्थिते (मृते) सति त्रिरात्रं आशौचं — तस्य (आचार्यस्य) पुत्रे चपुनः पत्न्यां मृतायां सत्यां दिवारात्रं आशौचं भवति — इतिस्थितिः (शास्त्रमर्यादा) अस्ति ॥

भा० । ता० । आचार्य के मरने में शिष्यको तीन रात्रका आशौच—और आचार्य के पुत्र अथवा पत्नीके मरनेमें अहोरात्रका आशौच होताहै यही शास्त्रकी मर्यादाहै ८० ॥

श्रोत्रियेतूपसंपन्नेत्रिरात्रमशुचिर्भवेत् । मातुलेपक्षिणींरात्रिंशिष्यर्त्विग्बान्धवेषुच ८१॥

प० । श्रोत्रिये तु उपसंपन्ने त्रिरात्रं अशुचिः भवेत् मातुले पक्षिणींरात्रिं शिष्यर्त्विग्बान्धवेषु च ॥

यो० । श्रोत्रिये उपसंपन्ने (समीपस्थे मृते) सति त्रिरात्रं — मातुले मृते सति चपुनः शिष्यर्त्विग्बान्धवेषु मृतेषु पक्षिणीं-रात्रिं विप्रः अशुचिः भवेत् ॥

भा० । ता० । अपने समीप रहताहुआ वेदशास्त्र का पाठी मरजाय तो तीनरात और मातुल मरजाय और शिष्य ऋत्विक् और बान्धव मरजांय तो रात्रिपक्षिणी (दोदिन और उनके मध्य की रात्रि) आशौच होताहै ८१ ॥

प्रेतेराजनिसज्योतिर्यस्यस्याद्विषयेस्थितः । अश्रोत्रियेत्वहःकृत्स्नमनूचानेतथागुरौ ८२॥

प० । प्रेते राजनि सज्योतिः यस्य स्यात् विषये स्थितः अश्रोत्रिये तु अहः कृत्स्नं अनूचाने तथा गुरौ ॥

यो० । यस्य विषये (देशे) ब्राह्मणादिः स्थितः स्यात् तस्मिन्राजनि प्रेते (मृते) सति सज्योतिः आशौचं अश्रोत्रिये अनूचाने तथागुरौ स्वगृहेमृते कृत्स्नं अहः आशौचं स्यात् ॥

भा० । ता० । जिसराजा के राज्यमें रहता हो वह राजा मरजाय तो सज्योतिः आशौच होताहै दिनमें मरे तो इतने सूर्यकी ज्योतिरहे—और रात्रिमें मरे तो इतने तारोंकी ज्योतिरहे तबतक आशौच होताहै और जिसने वेद पढ़ाहो वह अपने घरपर मरजाय और सांगवेदका पाठी अथवा गुरु मरजाय तो सबदिन आशौच होताहै यदि रात्रिमें ये पूर्वोक्तमरें तो रात्रिभर आशौच होताहै ८२ ॥

शुद्ध्येद्विप्रोदशाहेनद्वादशाहेनभूमिपः । वैश्यःपञ्चदशाहेनशूद्रोमासेनशुद्ध्यति ८३ ॥

प० । शुद्ध्येत् विप्रः दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः वैश्यः पंचदशाहेन शूद्रः मासेन शुद्ध्यति ॥

यो० । विप्रः दशाहेन शुद्ध्येत् भूमिपः द्वादशाहेन — वैश्यः पंचदशाहेन — शूद्रः मासेन शुद्ध्यति ॥

भा० । ता० । जिसका यज्ञोपवीत संस्कार हो चुकाहो उससपिंडके मरने और किसी बालक के जन्म में सदाचार और वेदाभ्यास में तत्पर ब्राह्मण दशदिन में शुद्ध होताहै—और क्षत्रिय बारह दिनमें—वैश्य पन्द्रह दिनमें और शूद्र एकमास में शुद्धहोता है ८३ ॥

नवर्द्धयेदघाहानिप्रत्यूहेन्नाग्निषुक्रियाः । नचतत्कर्मकुर्वाणःसनाभ्योऽप्यशुचिर्भवेत्॥८४॥

प० । नं वर्द्धयेत् अघाहानि प्रत्यूहेत् न अग्निषु क्रियाः न च तत् कर्म कुर्वाणः सनाभ्यः अपि अशुचिः भवेत् ॥

यो० । अघाहानि न वर्द्धयेत – अग्निषु क्रियाः न प्रत्यूहेत् चपुनः तत्कर्म कुर्वाणः सनाभ्यः अपि अशुचिः न भवेत् ॥

भा० । आशौच के दिनों को आलस्यसे न बढ़ावे और अग्निहोत्र के कर्मको न छोड़े क्योंकि अग्निहोत्र को करताहुआ सपिंड भी अशुद्ध नहींहोता ॥

ता० । जिस सदाचारी और वेदपाठी को एक वा तीनदिन काही आशौच कहा है वह इस बुद्धि से आशौच के दिनों को न बढ़ावे कि कर्मकुछ करना नहीं है इससे सुखपूर्वक सोवेंगे– और अपने एक वा तीनदिन के आशौच में भी वेदोक्त अग्नियों में होमका परित्याग न करे– किन्तु स्वयं करे वा पुत्रादिसे करावे–क्योंकि उस अग्निहोत्र कर्मको करताहुआ पुत्रादि सपिण्ड अशुद्ध नहीं होताहै क्योंकि पारस्करे[1] का यह वचनहै कि आशौच में वेदोक्त होम को छोड़कर सम्पूर्ण संध्या आदि नित्यकर्म निवृत्त होजाते हैं और शंख और लिखित[2] का वचनहै कि अग्निहोत्र के लिये स्नान और आचमन सेही शुद्धहोता है–और जाबाल[3] ऋषिने भी कहाहै कि जन्म और मरणमें वितान (होम) कर्मका लोप नहीं होता किन्तु शालाकी अग्नि में अन्यगोत्र से उत्पन्नही होम को करे–और छन्दोगपरिशिष्ट में भी लिखा[4] है कि मरण सूतकमें संध्यादि कर्मों का त्यागहै वेदोक्त होम तो शुष्क अन्न वा फलोंसे अवश्य करना–जिससे एकदिन वा तीनदिन के आशौच में भी संध्याआदि काही परित्यागहै वेदोक्त होम का नहीं और एक वा तीनदिनके पीछे सम्पूर्ण पंचमहायज्ञादिको करे–इससे जो मेधातिथि और गोविन्दराजने जो अन्यथा कहा है कि एक वा तीनदिनका आशौच होम और स्वाध्याय के लिये है संध्योपासनाको तो वह भी दशदिनतक न करे–सो प्रमाणहीन है–और जो गौतम[5] ने राजाओं को कर्मके विरोध से और ब्राह्मणको स्वाध्याय की अनिवृत्ति के लिये सूतक नहीं है–और जो याज्ञवल्क्य ने भी ऋत्विज[6] और दीक्षितों को सद्यःशुद्धि कही है वह सब दशाह आशौचवालोंको तिस२ कर्म विषयक है और जो ये वचन (उभयत्रदशाहानि कुलस्यान्नंनभुंजीत) दोनों सूतकोंमें दश दिनतक कुल का अन्न न खाय–येभी दशदिन के आशौच मेंही समझने–तिसमें होम और स्वाध्याय केही लिये आशौच की लघुताहै और संध्योपासनके लिये नहीं यह कथन निष्प्रमाण है ८४ ॥

---

१ नित्यानि विनिवर्तंते वैतानवर्जं वैतानं श्रौतोहोमः गार्हपत्यकुण्डस्थानग्नीन् आहवनीयाग्निषु वितत्य क्रियते इति ॥

२ अग्निहोत्राद्यर्थं स्नानोपस्पर्शनाच्छुचिः ॥

३ जन्महानौवितानस्य कर्मलोपोनविद्यते शालाग्नौकेवलोहोमः कार्यएवान्यगोत्रजैः ॥

४ मृतकेकर्मणांत्यागः संध्यादीनांविधीयते होमः श्रौतेतु कर्तव्यः शुष्कान्नेनापिवाफलैः ॥

५ राज्ञांचकर्मविरोधात् ब्राह्मणस्यस्वाध्यायानिवृत्त्यर्थम् ॥

६ ऋत्विजान् दीक्षितानांच ॥

दिवाकीर्तिमुदक्यांचपतितंसूतिकांतथा।शवंतत्स्पृष्टिनंचैवस्पृष्ट्वास्नानेनशुद्ध्यति८५॥

प० । दिवाकीर्तिं उदक्यां च पतितं सूतिकां तथा शवं तत्स्पृष्टिनं च एव स्पृष्ट्वा स्नानेन शुद्ध्यति ॥

यो० । दिवाकीर्तिं--चपुनः उदक्यां--पतितं — तथा सूतिकां — शवं — चपुनः तत्स्पृष्टिनं — स्पृष्ट्वा स्नानेन ब्राह्मणादिः शुद्ध्यति ॥

भा० । चाण्डाल—रजस्वला—पतित—सूतिका—शव—और शवका स्पर्श करने वाला—इनका स्पर्श करके स्नानसे शुद्धहोता है ॥

ता० । चाण्डाल—रजस्वला—ब्रह्महा आदि पतित—सूतिका और शव और शव का स्पर्श करनेवाला—स्नान करने से शुद्धहोता है और कोई आचार्य तो यह कहते हैं (तत्स्पृष्टिनं) इस पदको चाण्डाल आदिके स्पर्श करनेवाले का स्पर्श करके स्नान से शुद्ध होताहै और गोविन्द-राजने तो याज्ञवल्क्यके वचनानुसार शवका स्पर्श करनेवाला ग्रहण कियाहै और रजस्वला आदिका स्पर्श करनेवाला नहीं उनके स्पर्श में तो याज्ञवल्क्य[1] ने आचमनसे शुद्धि कहीहै कि—रजस्वला और अशुद्ध इनके स्पर्श से स्नान और इनके स्पर्श करनेवाले के स्पर्श में आचमन करै ८५ ॥

आचम्यप्रयतोनित्यंजपेदशुचिदर्शने।सौरान्मन्त्रान्यथोत्साहंपावमानीश्चशक्तितः८६

प० । आचम्य प्रयतः नित्यं जपेत् अशुचिदर्शने सौरान् मंत्रान् यथोत्साहं पावमानीः च शक्तितः ॥

यो० । अशुचिदर्शने आचम्य प्रयतः सन् नित्यं सौरान् मंत्रान् चपुनः पावमानीः (ऋचः) शक्तितः यथोत्साहं जपेत् ॥

भा० । ता० । श्राद्ध और देवपूजा आदि शुद्धकरनेवाला मनुष्य—चांडाल आदि अशुद्धों के दीखने पर सूर्यके मंत्र (उदुत्यं जातवेदसं इत्यादि) और पावमानी (पुनंतुमा देवजना इत्यादि) ऋचाओं को शक्ति और उत्साह के अनुसार जपे ८६ ॥

नारंस्पृष्ट्वास्थिसस्नेहंस्नात्वाविप्रोविशुद्ध्यति ।
आचम्यैवतुनिःस्नेहंगामालभ्यार्कमीक्ष्यवा ८७ ॥

प० । नारं स्पृष्ट्वा अस्थि सस्नेहं स्नात्वा विप्रः विशुद्ध्यति आचम्य एव तु निःस्नेहं गां आलभ्य अर्कं ईक्ष्य वा ॥

यो० । सस्नेहं नारं अस्थि स्पृष्ट्वा विप्रः स्नात्वा — निःस्नेहं तु स्पृष्ट्वा आचम्य — वा गां आलभ्य अर्कं ईक्ष्य — विशुद्ध्यति ॥

भा० । ता० । मनुष्यके स्नेहसहित (गीले) अस्थिका स्पर्शकरके ब्राह्मण स्नान करके शुद्ध होताहै और शुष्क मनुष्यके अस्थिको स्पर्शकरके आचमनकरके अथवा गौकास्पर्श और सूर्यका दर्शन करके शुद्धहोताहै ८७ ॥

---

१ उदक्याशुचिभिःस्नायात् संस्पृष्टस्तैरुपस्पृशेत् ॥

आदिष्टीनोदकंकुर्यादाव्रतस्यसमापनात् । समाप्तेतूदककृत्वात्रिरात्रेणैवशुद्ध्यति ८८॥

प० । आदिष्टी न उदकं कुर्यात् आव्रतस्य समापनात् समाप्ते तु उदकं कृत्वा त्रिरात्रेण एव शुद्ध्यति ॥

यो० । आव्रतस्य समापनात् आदिष्टी उदकं न कुर्यात् – समाप्ते तु (व्रते) उदकं कृत्वा त्रिरात्रेण एव शुद्ध्यति ॥

भा० । ब्रह्मचारी व्रतकी समाप्तिसे पहिले मृतक को उदक दान न करै और व्रतकी समाप्ति पर जलदान देकर तीन रात्रमें शुद्धहोताहै ॥

ता० । व्रतका उपदेश जिसकोहुआ हो वह आदिष्टी व्रतकी समाप्तिके पहिले प्रेतको उदक (जल) दान न करै अर्थात् प्रेतके कर्म न करै और व्रतकी समाप्तिहोनेपर प्रेतको जलदान करके तीन रातमेंही शुद्धहोताहै यह भी माता पिता आचार्यसे भिन्नके मरनेमेंही समझना क्योंकि वशिष्ठ का यह कथनहै कि माता पिता गुरु इनको छोड़कर ब्रह्मचारी शवका कर्म न करै अर्थात् माता आदिके मरनेपर शव कर्मोंको करै ८८ ॥

वृथासंकरजातानांप्रव्रज्यासुचतिष्ठताम् । आत्मनस्त्यागिनांचैवनिवर्तेतोदकक्रिया ८९

प० । वृथासंकरजातानां प्रव्रज्यासु च तिष्ठतां आत्मनः त्यागिनां च एव निवर्तेत उदकक्रिया ॥

यो० । वृथासंकरजातानां – चपुनः प्रव्रज्यासु तिष्ठतां – चपुनः आत्मनः त्यागिनां – उदकक्रिया निवर्तेत ॥

भा० । ता० । जो मनुष्य जगत्में वृथाही पैदाहुयेहैं अर्थात् निज कर्मसे हीनहैं–और हीन वर्णसे उत्तम वर्णकी स्त्रीमें पैदाहुये जो संकरजातिहैं और जो संन्यासीहैं–और जो विष वा शस्त्र आदिसे मरजातेहैं–इन सबका जलदान निवृत्त होजाताहै ८९ ॥

पाषण्डमाश्रितानांचचरन्तीनांचकामतः । गर्भभर्तृद्रुहांचैवसुरापीनांचयोषिताम् ९०॥

प० । पाषंडं आश्रितानां च चरंतीनां च कामतः गर्भभर्तृद्रुहां च एव सुरापीनां च योषिताम् ॥

यो० । पाषंडं आश्रितानां – चपुनः कामतः चरंतीनां – चपुनः गर्भभर्तृद्रुहां – चपुनः सुरापीनां – योषितां – (उदकक्रिया निवर्तेत) ॥

भा० । ता० । जो स्त्री पाषंड मतवालीहों अर्थात् वेदबाह्य रक्तपट मुंज आदिको धारकर व्रत करना आदि पाषंड करतीहों और जो अपनी इच्छासे अनेक पुरुषोंका संगम करतीहों और गर्भपात और अपने पतिका वध करनेवाली जो हों और जो मदिरा पीतीहों इतनी स्त्रियोंको जलदान न दे ९० ॥

आचार्यंस्वमुपाध्यायंपितरंमातरंगुरुम् । निर्हृत्यतुव्रतीप्रेतान्नव्रतेनवियुज्यते ९१ ॥

प० । आचार्यं स्वं उपाध्यायं पितरं मातरं गुरुं निर्हृत्य तु व्रती प्रेतान् न व्रतेन वियुज्यते ॥

यो० । स्वं आचार्यं – उपाध्यायं – पितरं – मातरं – गुरुं–इमान् प्रेतान् निर्हृत्य – व्रती व्रतेन न वियुज्यते – व्रतफलशून्योनभवतीत्यर्थः ॥

भा० । अपना आचार्य–उपाध्याय–माता–पिता–गुरु–इन सबको श्मशानमें अपने आप लेजाकर और इनके कर्मकांडको करके ब्रह्मचारीके व्रतका भंग नहींहोता ॥

---

१ ब्रह्मचारिणः शवकर्मणा निवृत्तिरन्यत्रमातापित्रोर्गुरोर्वा ॥

ता० । अपना आचार्य (जो यज्ञोपवीत देकर संपूर्ण शाखाको पढ़ावे) उपाध्याय जो वेदका एक देश वा वेदांग पढ़ावे—माता—पिता गुरु जो वेदका एकभाग अथवा अंग इनको पढ़ावे—इन सबका निर्हरण अर्थात् दाहके लिये श्मशानमें लेजाना और कर्म क्रियाको करके ब्रह्मचारीके वृतका लोप (नाश) नहीं होता अर्थात् इतरोंके निर्हरणसे वृतका नाश होताहै—अपना आचार्य यह कहनेसे आचार्यका जो आचार्य उसके निर्हरणसे भी वृतका भंग होताहै—और स्वंका सबमें संबन्धहै तिससे गुरुके गुरुका निर्हरण करके भी वृतका भंगहोताहै ९१ ॥

दाक्षिणेनमृतंशूद्रंपुरद्वारेणनिर्हरेत् । पश्चिमोत्तरपूर्वैस्तुयथायोगंद्विजन्मनः ९२ ॥

प० । दाक्षिणेन मृतं शूद्रं पुरद्वारेण निर्हरेत् पश्चिमोत्तरपूर्वैः तु यथायोगं द्विजन्मनः ॥

यो० । मृतं शूद्रं दाक्षिणेन पुरद्वारेण निर्हरेत् — तुपुनः पश्चिमोत्तरपूर्वैः द्वारैः यथायोगं द्विजन्मनः (वैश्यक्षत्रियब्राह्मणान्) निर्हरेत् ॥

भा० । ता० । मृत शूद्रको पुरके दक्षिण द्वारको श्मशानमें लेजाय और तीनों द्विजातियोंको यथायोग अर्थात् वैश्य क्षत्रिय ब्राह्मणके क्रमसे पश्चिम उत्तर और पूर्व के द्वारोंको लेजाय—इस अमंगल कर्ममें शूद्रके क्रमसे निर्हरण जानना ९२ ॥

नराज्ञामघदोषोऽस्तिव्रतिनांनचसत्रिणाम।ऐन्द्रंस्थानमुपासीनाब्रह्मभूताहितेसदा ९३

प० । न राज्ञां अघदोषः अस्ति वृतिनां न च सत्रिणाम् ऐंद्रं स्थानं उपासीनाः ब्रह्मभूताः हि ते सदा ॥

यो० । राज्ञां — व्रतिनां — सत्रिणां अघदोषः न अस्ति—हि (यतः) ऐंद्रंस्थानं उपासीनाः ते सदा ब्रह्मभूताः (संति) ॥

भा० । राजा—व्रतवाले—और यज्ञ करनेवाले इनको सपिंड आदि मरनेका अशौच नहीं हो क्योंकि इंद्रके स्थान पर बैठे हुये ये सब ब्रह्मके समान निर्दोष होतेहैं ॥

ता० । राज्यका जिनको अभिषेकहो उन क्षत्रियोंको सपिंड मरण आदिमें अशौच का दोष नहींहै क्योंकि राजा इंद्रका जो स्थान (राजगद्दी) पर बैठेहुये सबके अधिपतिहोतेहैं और वृती (ब्रह्मचारी) और चांद्रायण आदि वृतके कर्त्ता—और सत्री (यज्ञकरनेमें प्रवृत्त) इनकोभी सपिंड मरणका अशौच नहींहै जिससे ये सदैव ब्रह्मभूत ब्रह्मके समान पापरहित होतेहैं और यह अशौचका अभाव कर्म विशेषमेंहीहै क्योंकि विष्णुने यह कहा है कि—राजाओंको व्यवहार देखना शांति होम आदि कर्ममें और वृतियों को वृतमें और यज्ञके कर्ताओंको यज्ञमें अशौच नहीं होता ९३ ॥

राज्ञोमाहात्मिकेस्थानेसद्यःशौचंविधीयते । प्रजानांपरिरक्षार्थमासनंचान्नकारणम् ९४

प० । राज्ञः माहात्मिके स्थाने सद्यः शौचं विधीयते प्रजानां परिरक्षार्थं आसनं च अन्नकारणं ॥

यो० । माहात्मिके स्थाने स्थितस्य राज्ञः सद्यः शौचं विधीयते चपुनः आसनं प्रजानां परिरक्षार्थं अन्नकारणं भवति ॥

भा० । राजगद्दीपर बैठे हुये राजाको सद्यः ही शुद्धि कहीहै क्योंकि प्रजाओं की रक्षाकोलिये राजा का आसनही अन्न का कारण है ॥

---

२ अशौचं न राज्ञां राजकर्मणि—न व्रतिनां व्रते — न सत्रिणां सत्रे ॥

ता० । माहात्मिक स्थान (राजगद्दी) पर बैठे हुये राजाको सद्यः (उसीसमय) शौच कहाहै और यहां क्षत्रियजाति नहींलिनी किंतु जोराजपदवी परहो उसी जातिको उसीसमय शुद्धिहोतीहै—जिससे राजा का आसनही न्यायकरना—दुर्भिक्षमें अन्नदेना—रोगादिके उपद्रवों में शांति होमादि से प्रजाकी रक्षाकरने के लिये—कारण है यहबात क्षत्रिय से भिन्न जातियों में भी होसकतीहै—इसीसे सोम के कार्य करने वाले चमस में सोमके धर्म और व्रीहियों का अवघात प्रकृति यज्ञमें जौ में और नीवारमें मानाजाता है—यहसब निर्णय मीमांसामें जहां तहां कियाहै ६४ ॥

डिंवाहवहतानांचविद्युतापार्थिवेनच । गोब्राह्मणस्यचैवार्थेयस्यचेच्छतिपार्थिवः ९५ ॥

प० । डिंवाहवहतानां च विद्युता पार्थिवेन च गोब्राह्मणस्य च एव अर्थे यस्य च इच्छति पार्थिवः ॥

यो० । डिंवाहवहतानां चपुनः विद्युता चपुनः पार्थिवेन हतानां—गोब्राह्मणस्य अर्थे हतानां चपुनः यस्य आशौचाभावं पार्थिवः इच्छति—एतेषां अपि सद्यः शौचं भवति ॥

भा० । ता० । डिंवाहव (राजासे इतरों का युद्ध) में जो मरे हों अथवा विजली और राजासे जो मरे हों और गौ और ब्राह्मणके लिये जो मरे हों—और जिस पुरोहित आदि की शुद्धिको राजा चाहताहो—इतने मनुष्यों की भी सद्यः शुद्धिहोती है ६५ ॥

सोमाग्न्यर्कानिलेन्द्राणांवित्ताप्पत्योर्यमस्यच । अष्टानांलोकपालानांवपुर्धारयतेनृपः ६६

प० । सोमाग्न्यर्कानिलेन्द्राणां वित्ताप्पत्योः यमस्य च अष्टानां लोकपालानां वपुः धारयते नृपः ॥

यो० । सोमाग्न्यर्कानिलेन्द्राणां वित्ताप्पत्योः चपुनः यमस्य—अष्टानां लोकपालानां वपुः नृपः धारयते ॥

भा० । ता० । चन्द्र—अग्नि—सूर्य—वायु—इन्द्र—यम—कुवेर—वरुण—इन आठों लोकपालों के देहको राजा धारण करता है ६६ ॥

लोकेशाधिष्ठितोराजानास्याशौचंविधीयते ।
शौचाशौचंहिमर्त्यानांलोकेशप्रभवाप्ययम् ९७ ॥

प० । लोकेशाधिष्ठितः राजा न अस्य अशौचं विधीयते शौचाशौचं हि मर्त्यानां लोकेशप्रभवाप्ययं ॥

यो० । राजा लोकेशाधिष्ठितः भवति अस्य अशौचं न विधीयते—हि (यतः) लोकेशप्रभवाप्ययं शौचाशौचं मर्त्यानां भवति ॥

भा० । ता० । राजा आठों लोकपालों के अंशोंसे युक्त है इससे राजा को अशौच नहीं कहाहै जिससे मनुष्यों का शौच और अशौच लोकपालों सेही होता है और नष्टहोता है—सिद्धान्त यह है कि अन्य के शौच और अशौच को पैदा करनेवाले जगत्के ईश्वर राजाको अपना अशौच कभी भी नहीं होसक्ता ९७ ॥

उद्यतैराहवेशस्त्रैःक्षत्रधर्महतस्यच । सद्यःसंतिष्ठतेयज्ञस्तथाशौचमितिस्थितिः ९८ ॥

प० । उद्यतैः आहवे शस्त्रैः क्षत्रधर्महतस्य च सद्यः संतिष्ठते यज्ञः तथा शौचं इति स्थितिः ॥

यो० । आहवे उद्यतैः शस्त्रैः क्षत्रधर्महतस्य (पुरुषस्य) सद्यः यज्ञः तथा अशौचं संतिष्ठते समाप्यते ॥

भा० । ता० । संग्राम में उठाये हुये शस्त्रों से जो क्षत्री के धर्म (पराङ्मुख न होना) से हता गयाहो उसको उसीसमय यज्ञ की और अशौच की समाप्ति होती है अर्थात् यज्ञ का फल और शुद्धि दोनों मिलती हैं ९८ ॥

विप्रःशुद्ध्यत्यपःस्पृष्ट्वाक्षत्रियोवाहनायुधम् ।
वैश्यःप्रतोदंरश्मीन्वायष्टिंशूद्रःकृतक्रियः ९९ ॥

प० । विप्रः शुद्ध्यति अपः स्पृष्ट्वा क्षत्रियः वाहनायुधं वैश्यः प्रतोदं रश्मीन् वा यष्टिं शूद्रः कृतक्रियः ॥

यो० । कृतक्रियः विप्रः अपः स्पृष्ट्वा क्षत्रियः वाहनायुधं स्पृष्ट्वा वैश्यः प्रतोदं वा रश्मीन स्पृष्ट्वा विशुद्ध्यति — शूद्रः यष्टिं स्पृष्ट्वा कृतक्रियः विशुद्ध्यति ॥

भा० । ता० । किया है श्राद्ध आदि कर्म जिसने ऐसा ब्राह्मण आशौच के अन्त में दक्षिण हाथसे जलका स्पर्श करके और क्षत्रिय वाहन और आयुध (शस्त्र) का स्पर्श—और वैश्य बैलों का प्रतोद (जिसके अग्रभागमें लोहाहो वा योक्त्र (कोडा) का स्पर्श—और शूद्र यष्टि (लाठी) का स्पर्श करके शुद्धहोताहै ९९ ॥

एतद्वोऽभिहितंशौचंसपिण्डेषुद्विजोत्तमाः। असपिण्डेषुसर्वेषुप्रेतशुद्धिंनिबोधत १०० ॥

प० । एतत् वः अभिहितं शौचं सपिंडेषु द्विजोत्तमाः असपिंडेषु सर्वेषु प्रेतशुद्धिं निबोधत ॥

यो० । भो द्विजोत्तमाः सपिंडेषु एतत्शौचं वः (युष्माकं) अभिहितं — सर्वेषु — असपिंडेषु प्रेतशुद्धिं यूयं निबोधत (शृणुत) ॥

भा० । ता० । हे द्विजोंमें उत्तमो—सपिंडोंमें शौच यह तुमको कहा और सम्पूर्ण असपिंडोंमें प्रेतकी शुद्धि को सुनो १०० ॥

असपिण्डंद्विजंप्रेतंविप्रोनिर्हृत्यबन्धुवत्।विशुद्ध्यतित्रिरात्रेणमातुराप्तांश्चबान्धवान्१०१

प० । असपिंडं द्विजं प्रेतं विप्रः निर्हृत्य बन्धुवत् विशुद्ध्यति त्रिरात्रेण मातुः आप्तान् च बान्धवान् ॥

यो० । विप्रः प्रेतं असपिंडं द्विजं बन्धुवत् निर्हृत्य चपुनः मातुः आप्तान बान्धवान् निर्हृत्य त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति ॥

भा० । ता० । ब्राह्मण असपिंड प्रेत ब्राह्मण को बंधुके समान प्रीतिसे श्मशानमें लेजाकर और माता के जो आप्त (सज्जन) बान्धव हैं उनको लेजाकर तीन रात्रिमें शुद्धहोताहै १०१ ॥

यद्यन्नमत्तितेषांतुदशाहेनैवशुद्ध्यति। अनदन्नन्नमह्नैवनचेत्तस्मिन्गृहेवसेत् १०२ ॥

प० । यदि अन्नं अत्ति तेषां तु दशाहेन एव शुद्ध्यति अनदन् अन्नं अह्ना एव न चेत् तस्मिन् गृहे वसेत् ॥

यो० । यदि तेषां (अशौचिनां) अन्नं अत्ति तदा दशाहेन एव शुद्ध्यति — अन्नं अनदन् सन् तु यदि तस्मिन् गृहे न वसेत् तर्हि अह्नाएव शुद्ध्यति ॥

भा० । ता० । यदि प्रेत के लेजानेवाला उन अशौचियों के ही अन्नको खाता होय तो दशदिन में—और अन्नको न खाता हो और उसघरमें भी न वसता होय तो एक दिन में—शुद्धहोता है अर्थात् जो उनके घर में वसै और उनके अन्नको न खाय उसे भी तीन रात का अशौच होता है १०२ ॥

अनुगम्येच्छयाप्रेतंज्ञातिमज्ञातिमेवच ।
स्नात्वासचैलःस्पृष्ट्वाग्निंघृतंप्राश्यविशुद्ध्यति १०३ ॥

प० । अनुगम्य इच्छया प्रेतं ज्ञातिं अज्ञातिं एवं च स्नात्वा सचैलः स्पृष्ट्वा अग्निं घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥

यो० । ज्ञातिं चपुनः अज्ञातिं प्रेतं इच्छया अनुगम्य — सचैलः स्नात्वा अग्निं स्पृष्ट्वा — घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥

भा० । ता० । जातिके अथवा विना जातिके प्रेत के पीछे श्मशानमें जाकर सचैलस्नान—और अग्निका स्पर्श—और घृतका भोजनकरनेसे शुद्धहोताहै १०३ ॥

नविप्रंस्वेषुतिष्ठत्सुमृतंशूद्रेणनाययेत् । अस्वर्ग्याह्याहुतिःसास्याच्छूद्रसंस्पर्शदूषिता १०४

प० । न विप्रं स्वेषु तिष्ठत्सु मृतं शूद्रेण नाययेत् अस्वर्ग्या हि आहुतिः सा स्यात् शूद्रसंस्पर्शदूषिता ॥

यो० । स्वेषु तिष्ठत्सु सत्सु मृतं विप्रं शूद्रेण न नाययेत् — हि । यतः शूद्रसंस्पर्शदूषिता सा आहुतिः अस्वर्ग्या — भवति ॥

भा० । ता० । मरेहुये ब्राह्मणको अपने सजातियोंके विद्यमानहोते शूद्रसे न लिवाजाय—क्योंकि शूद्रके स्पर्शसे दूषित वह शरीरकी आहुति (दाह) स्वर्गदेनेवाली नहींहोती अर्थात् मृतक को स्वर्गमें नहीं पहुंचाती—अपनोंके टिकनेपर यह कहनेसे यह कहा कि ब्राह्मण न होय तो क्षत्रियसे—क्षत्रिय न होय तो वैश्यसे—और वैश्य न होय तो शूद्रसे भी लिवाजाय—और अस्वर्ग्यका दोष भी ब्राह्मण आदिके मिलनेपरहै—गोविंदराज तो यह कहतेहैं कि दोष कहने से स्वेषुतिष्ठत्सु यह विवक्षित नहींहै अर्थात् अपने सजातीय हों वा न हों शूद्रका स्पर्श दूषितही है—सो ठीकनहीं क्योंकि स्वेषु—तिष्ठत्सु—इन दोपदोंकी व्यर्थता होजायगी और क्रमका बाध होजायगा—तिससे इस गोविंदराजकी राजाज्ञाका हम आदरनहीं करतेहैं १०४ ॥

ज्ञानंतपोऽग्निराहारोमृन्मनोवार्युपांजनम् । वायुःकर्मार्ककालौचशुद्धेःकर्तॄणिदेहिनाम् १०५

प० । ज्ञानं तपः अग्निः आहारः मृत् मनः वारि उपांजनं वायुः कर्म अर्ककालौ च शुद्धेः कर्तॄणि देहिनाम् ॥

यो० । ज्ञानं तपः अग्निः आहारः मृत मनः वारिउपांजनं — वायुः कर्म — अर्ककालौ इमानि देहिनां शुद्धेः कर्तॄणि भवंति ॥

भा० । ज्ञान—तप—अग्नि—आहार—मिट्टी—मन—वारि (जल)—लेपन—वायु—कर्म—सूर्य—काल—ये देहधारियों की शुद्धिके कारण हैं ॥

ता० । ज्ञान आदि शुद्धिके कारणहैं तिनमें ब्रह्मज्ञान बुद्धिरूप अंतःकरण की शुद्धिका साधनहै सोई आगे कहेंगे कि बुद्धिज्ञानसे शुद्धहोतीहै—तप जैसे तपसे वेदके ज्ञाता—अग्नि—जैसे फिर पाकसे मिट्टी का पात्र—आहार (भोजन) जैसे हविकी यवागू (लपसी)—मिट्टी और जल—मनः (जैसे मनको जो पवित्रदीखे सो करे) संकल्प विकल्परूप मनहै और निश्चयरूप बुद्धि यही मन बुद्धिका भेदहै—और उपांजन अनुलेपन मार्जनसे घर—कर्म जैसे अश्वमेधयज्ञ—अर्क सूर्य जैसे अशुद्धके देखनेसे सूर्यके दर्शनसे शुद्धि काल (समय) जैसे ब्राह्मण दशदिन में—यद्यपि वायुको शुद्धिका हेतु मनने नहीं कहा तथापि इस विष्णु के वचनानुसार मानने योग्य है कि चंद्रमा सूर्यकी किरण और पवन से मार्ग शुद्धहोतेहैं १०५ ॥

सर्वेषामेवशौचानामर्थशौचंपरंस्मृतम्।योऽर्थेशुचिर्हिसशुचिर्नमृद्वारिशुचिःशुचिः १०६

प० । सर्वेषां एवं शौचानां अर्थशौचं परं स्मृतं यः अर्थे शुचिः हि सः शुचिः न मृद्वारिशुचिः शुचिः ॥

यो० । सर्वेषां शौचानां मध्ये अर्थशौचं परं (श्रेष्ठं) स्मृतम्—हि (यतः) यः अर्थे शुचिः सः शुचिः भवति—मृद्वारिशुचिः शुचिः न भवति ॥

भा० । ता० । सब शुद्धियोंमें द्रव्य (धन)की शुद्धि उत्तम कहीहै क्योंकि जो अर्थमें शुद्धहै वही शुद्धहै और मिट्टी जलसे जो शुद्धहै वह शुद्ध नहींहै सिद्धांत यहहै कि परधनके हरने—द्रोह आदिके परित्यागसे जो धन संचयकरै वही शुद्धहै और चोरी आदिसे धन संचयकरै और मिट्टी जलसे शुद्धिकरै वह अशुद्धहीहै १०६ ॥

क्षान्त्याशुद्ध्यन्तिविद्वांसोदानेनाकार्यकारिणः।प्रच्छन्नपापाजप्येनतपसावेदवित्तमाः१०७

प० । क्षांत्या शुद्ध्यंति विद्वांसः दानेन अकार्यकारिणः प्रच्छन्नपापाः जप्येन तपसा वेदवित्तमाः ॥

यो० । विद्वांसः क्षांत्या—अकार्यकारिणः दानेन—प्रच्छन्नपापाः जप्येन—वेदवित्तमाः तपसा—शुद्ध्यंति ॥

भा० । ता० । विद्वान् पुरुष क्षमासे शुद्धहोतेहैं अर्थात् कोई अपना तिरस्कार भी करै और उसका प्रतीकार (बदला) नहीं चाहते ऐसे पुरुष शुद्धहोतेहैं—क्योंकि मनुजीही कहेंगे कि महायज्ञका करना और क्षमा ये शीघ्रही पापोंको नष्टकरतेहैं—निंदित कर्मके कर्ता दानसे अर्थात् वेदके ज्ञाता सुपात्रको दानदेनेसे शुद्धहोते हैं—और गुप्तपापके कर्ता गायत्री आदिके जपसे—और वेदके अर्थके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ मनुष्य तप (चांद्रायणादि) से शुद्धहोतेहैं १०७ ॥

मृत्तोयैःशुद्ध्यतेशोध्यंनदीवेगेनशुद्ध्यति।रजसास्त्रीमनोदुष्टासंन्यासेनद्विजोत्तमः १०८॥

प० । मृत्तोयैः शुद्ध्यते शोध्यं नदीवेगेन शुद्ध्यति रजसा स्त्री मनोदुष्टा संन्यासेन द्विजोत्तमः ॥

यो० । शोध्यं मृत्तोयैः शुद्ध्यते—नदीवेगेन शुद्ध्यति—मनोदुष्टा स्त्री रजसा—द्विजोत्तमः संन्यासेन शुद्ध्यति ॥

भा० । ता० । मलआदि जिसमें लगाहो ऐसा शोधनेयोग्य पदार्थ मट्टी और जलसे—और श्लेष्मआदि से दूषित नदी वेगसे—मन से दुष्ट स्त्री (जिसने परपुरुषका संग मनसेचाहाहो) रज (मासिकधर्म) से—और ब्राह्मण संन्यास से शुद्धहोताहै १०८ ॥

---

१ पंथानश्चविशुद्ध्यंति सोमसूर्यांशुमारुतैः ॥

अद्भिर्गात्राणिशुद्ध्यन्तिमनःसत्येनशुद्ध्यति ।
विद्यातपोभ्यांभूतात्माबुद्धिर्ज्ञानेनशुद्ध्यति १०९ ॥

प० । अद्भिः गात्राणि शुद्ध्यंति मनः सत्येन शुद्ध्यति विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिः ज्ञानेन शुद्ध्यति ॥

यो० । गात्राणि अद्भिः शुद्ध्यंति — मनः सत्येन शुद्ध्यति — भूतात्मा विद्यातपोभ्यां — बुद्धिः ज्ञानेनशुद्ध्यति ॥

भा० । ता० । स्वेद आदिसे युक्त गात्र जलोंसे शुद्धहोताहै निषिद्धचिंता से दूषित मन सत्य से—जीवात्मा विद्या और तपसे—शुद्धहोताहै और बुद्धि ज्ञानसे शुद्धहोतीहै १०९ ॥

एषशौचस्यवःप्रोक्तःशारीरस्यविनिर्णयः ।
नानाविधानांद्रव्याणांशुद्धेःशृणुतानिर्णयम् ११० ॥

प० । एषः शौचस्य वः प्रोक्तः शारीरस्य विनिर्णयः नानाविधानां द्रव्याणां शुद्धेः शृणुत निर्णयं ॥

यो० । शारीरस्य शौचस्य विनिर्णयः एषः वः (युष्माकं) प्रोक्तः — नानाविधानां द्रव्याणां शुद्धेः निर्णयं यूयं शृणुत ॥

भा० । ता० । शरीरकी शुद्धिकानिर्णय यहतुमकोकहा—अब नानाप्रकारके द्रव्यों (पदार्थों) की शुद्धिका निर्णय तुम सुनो ११० ॥

तैजसानांमणीनांचसर्वस्याश्ममयस्यच । भस्मनाद्भिर्मृदाचैवशुद्धिरुक्तामनीषिभिः १११

प० । तैजसानां मणीनां च सर्वस्य अश्ममयस्य च भस्मना अद्भिः मृदा च एव शुद्धिः उक्ता मनीषिभिः ॥

यो० । तैजसानां — चपुनः मणीनां चपुनः सर्वस्य अश्ममयस्य — भस्मना अद्भिः चपुनः मृदा शुद्धिः मनीषिभिः उक्तः (कथिता) ॥

भा० । ता० । सुवर्णआदि तेजकेपात्र और मारकतआदि मणि—और सबप्रकार के पाषाण के पात्र—उच्छिष्टआदि से लिप्त इनकी शुद्धि बुद्धिमान् मनुष्यों ने भस्म जल और मिट्टी इनसे—कहीहै और इनमेंभी कहींमट्टी और कहींभस्म और जल तो दोनों शुद्धियोंमें समझना १११ ॥

निर्लेपंकांचनंभाण्डमद्भिरेवविशुद्ध्यति । अब्जमश्ममयंचैवराजतंचानुपस्कृतम् ११२ ॥

प० । निर्लेपं कांचनं भांडं अद्भिः एव विशुद्ध्यति अब्जं अश्ममयं च एव राजतं च अनुपस्कृतम् ॥

यो० । निर्लेपं कांचनं भांडं — अब्जं चपुनः अश्ममयं — चपुनः अनुपस्कृतं राजतं भांडं अद्भिः एव विशुद्ध्यति ॥

भा० । ता० । उच्छिष्ट आदि के लेपसे रहित सोने का पात्र और अब्ज (शंख) और मोती आदि पाषाण के पात्र—और रेखा आदि जिसमें न हो ऐसा चांदी का पात्र—ये सब जल से ही शुद्ध होतेहैं ११२ ॥

अपामग्नेश्चसंयोगाद्धैमंरौप्यंचनिर्बभौ । तस्मात्तयोःस्वयोन्यैवनिर्णेकोगुणवत्तरः ११३॥

प० । अपां अग्नेः चँ संयोगात् हैमं रौप्यं चँ निर्बभौ तस्मात् तयोः स्वयोन्या एवँ निर्णेकः गुणवत्तरः ॥

यो० । अपां चपुनः अग्नेः संयोगात् हैमं चपुनः रौप्यं निर्बभौ — तस्मात् तयोः स्वयोन्या एव निर्णेकः गुणवत्तरः भवति ॥

भा० । ता० । अग्नि और जलके संयोग से सुवर्ण और चांदी उत्पन्न हुये हैं क्योंकि इन श्रुतियोंमें यह लिखा है कि अग्नि ने वरुण आदि की प्रार्थना की—और अग्नि की इंद्रिय सुवर्ण है और वरुण आदि की इंद्रिय चांदी है—जिससे सोना और चांदीकी शुद्धि अपने पैदा करने वाले जल और अग्निसेही शुद्धि श्रेष्ठ होतीहै ११३ ॥

ताम्रायःकांस्यरैत्यानांत्रपुणःसीसकस्यच।शौचंयथार्हंकर्तव्यंक्षाराम्लोदकवारिभिः ११४

प० । ताम्रायःकांस्यरैत्यानां त्रपुणः सीसकस्य चँ शौचं यथार्हं कर्तव्यं क्षाराम्लोदकवारिभिः ॥

यो० । ताम्रायःकांस्यरैत्यानां — त्रपुणः चपुनः सीसकस्य — क्षाराम्लोदकवारिभिः यथार्हं शौचं कर्तव्यम् ॥

भा० । ता० । तांबा—लोहा—पित्तल और त्रपु और सीसा इनकी शुद्धि यथायोग्य—क्षार अम्लोदक और जल इनसे कही है अर्थात् इसे बृहस्पतिके वचनसे यह विशेष जानना कि सोना चांदी लोहा इनकी जलसे—कांसीकी भस्म से—तामे और पित्तलकी अम्लसे—और मिट्टी के पात्रकी फिर पकानेमें शुद्धि जाननी ११४ ॥

द्रवाणांचैवसर्वेषांशुद्धिराप्लवनंस्मृतम् । प्रोक्षणंसंहतानांचदारवाणांचतक्षणम् ११५॥

प० । द्रवाणां चँ एवँ सर्वेषां शुद्धिः आप्लवनं स्मृतं प्रोक्षणं संहतानां चँ दारवाणां चँ तक्षणं ॥

यो० । सर्वेषां द्रवाणां शुद्धिः आप्लवनं — संहतानां प्रोक्षणं — चपुनः दारवाणां तक्षणं शुद्धिः स्मृतम् ॥

भा० । ता० । घी तेल आदि द्रव पदार्थोंको काक और कीट आदि का संबन्ध होजाय तो प्रादेशमात्र कुशामें जल छिड़कने से शुद्धि कहीहै और संहत (शय्या) आदि पदार्थों में यदि उच्छिष्ट का संबन्धहोजाय तो प्रोक्षण से—और काष्ठ के पात्रोंकी शुद्धि तक्षण (छीलना) से कही है ११५ ॥

मार्जनंयज्ञपात्राणांपाणिनायज्ञकर्मणि । चमसानांग्रहाणांचशुद्धिःप्रक्षालनेनतु ११६॥

प० । मार्जनं यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि चमसानां ग्रहाणां चँ शुद्धिः प्रक्षालनेन तुँ ॥

यो० । यज्ञकर्मणि यज्ञपात्राणां पाणिना मार्जनं शुद्धि — चमसानां चपुनः ग्रहाणां प्रक्षालनेन — शुद्धिः स्मृता ॥

भा० । ता० । यज्ञके पात्रोंकी शुद्धि यज्ञके कर्मों में हाथसे मार्जन करनेसे होती है चमस और ग्रहनामकी प्रक्षालन (जलसे धोना) से होतीहै ११६ ॥

---

१ अग्निर्वैवरुणादीन् कामयते — अग्नेः सुवर्णमिंद्रियं — वरुणादीनां रजतम् ॥
२ अंभसाहेमरौप्यायः कांस्यंशुद्धयतिभस्मना — अम्लैस्ताम्रंचरैत्यंच पुनःपाकेनमृन्मयम् ॥

चरूणांस्रुक्स्रुवाणांचशुद्धिरुष्णेनवारिणा।स्फ्यशूर्पशकटानांचमुसलोलूखलस्यच ११७

प० । चरूणां स्रुक्स्रुवाणां च शुद्धिः उष्णेन वारिणा स्फ्यशूर्पशकटानां च मुसलोलूखलस्य च ॥

यो० । स्नेहाक्तानां चरूणां चपुनः स्रुकस्रुवाणां उष्णेन वारिणा शुद्धिः भवति — स्फ्यशूर्पशकटानां चपुनः मुसलोलूखलस्य — अद्भिः प्रोक्षणेन शुद्धिः भवति ॥

भा० । ता० । स्नेह जिनमें मिलाहो ऐसे चरु स्रुक् स्रुवआदि यज्ञकेपात्रोंकीशुद्धि उष्णजल से होती है और स्फ्य शूर्प शकट और मुसल और ऊलूखल इनकी शुद्धि जलके प्रोक्षण से होतीहै ११७ ॥

अद्भिस्तुप्रोक्षणंशौचंबहूनांधान्यवाससाम्।प्रक्षालनेनत्वल्पानामद्भिःशौचंविधीयते ११८

प० । अद्भिः तु प्रोक्षणं शौचं बहूनां धान्यवाससाम् प्रक्षालनेन तु अल्पानां अद्भिः शौचं विधीयते ॥

यो० । बहूनां धान्यवाससां अद्भिः प्रोक्षणं शौचंभवति — अल्पानां तु अद्भिः प्रक्षालनेन शौचं विधीयते — मन्वादिभिरितिशेषः ॥

भा० । ता० । बहुत अन्न और वस्त्रोंकी शुद्धि जलके प्रोक्षण से होतीहै और अल्प अन्न और वस्त्रोंकी तो शुद्धि जलमें प्रक्षालन (धोना) से होतीहै—इस श्लोकमें बहुत इतने जितनों का एक भारहो ११८ ॥

चैलवच्चर्मणांशुद्धिर्वैदलानांतथैवच । शाकमूलफलानांचधान्यवच्छुद्धिरिष्यते ११९॥

प० । चैलवत् चर्मणां शुद्धिः वैदलानां तथा एव च शाकमूलफलानां च धान्यवत् शुद्धिः इष्यते ॥

यो० । चर्मणां चपुनः तथैव वैदलानां (वंशपात्राणां) शुद्धिः चैलवत् भवति — चपुनः शाकमूलफलानां शुद्धिः धान्यवत् इष्यते — मन्वादिभिरितिशेषः ॥

भा० । ता० । स्पर्शके योग्य पशुका चर्म और बांसकेदलोंसे बनाये पात्र इनकी शुद्धि वस्त्रके समान होतीहै—और शाक—मूल—फल इनकी शुद्धि अन्नके समान होतीहै ११९ ॥

कौशेयाविकयोरूषैःकुतुपानामरिष्टकैः । श्रीफलैरंशुपट्टानांक्षौमाणांगौरसर्षपैः १२० ॥

प० । कौशेयाविकयोः ऊषैः कुतुपानां अरिष्टकैः श्रीफलैः अंशुपट्टानां क्षौमाणां गौरसर्षपैः ॥

यो० । ऊषैः कौशेयाविकयोः—अरिष्टकैः कुतुपानां—श्रीफलैः (बिल्वैः) अंशुपट्टानां—गौरसर्षपैः क्षौमाणां—मन्वादिभिः शुद्धिः इष्यते ॥

भा० । ता० । कौशेय (रेशम) और आविक (ऊन) के वस्त्रोंकी शुद्धि खारी मिट्टीसे होतीहै और नहपालके कम्बलोंकी शुद्धि अरिष्टों (रीठे) से और क्षौम (वक्कलसे पैदा जो हों) के वस्त्रोंकी शुद्धि गौरसरसोंमें धोनेसे होती है १२० ॥

क्षौमवच्छङ्खशृङ्गाणामस्थिदन्तमयस्यच।शुद्धिर्विजानताकार्यागोमूत्रेणोदकेनवा १२१॥

प० । क्षौमवत् शंखशृंगाणां अस्थिदंतमयस्य च शुद्धिः विजानता कार्या गोमूत्रेण उदकेन वा ॥

यो० । शंखशृंगाणां चपुनः अस्थिदंतमयस्य (पात्रस्य) विजानता पुरुषेण क्षौमवत् गोमूत्रेण वा उदकेन श्वेतसर्षपयुक्तेन शुद्धिः कार्या ॥

भा० । ता० । शंख और सींग और अस्थि और दांतोंके जो पात्रहैं उनकी शुद्धि क्षौम वस्त्र के समान सपेदसरसोंमें गोमूत्र और जल मिलाकर धोनेसे विद्वान् मनुष्य करै १२१ ॥

प्रोक्षणात्तृणकाष्ठंचपलालंचैवशुद्ध्यति । मार्जनोपाञ्जनैर्वेश्मपुनःपाकेनमृन्मयम् १२२ ॥

प० । प्रोक्षणात् तृणकाष्ठं च पलालं च एव शुद्ध्यति मार्जनोपांजनैः वेश्म पुनः पाकेन मृन्मयं ॥

यो० । तृणकाष्ठं चपुनः पलालं प्रोक्षणात् वेश्म मार्जनोपांजनैः — मृन्मयं पुनः पाकेन — शुद्ध्यति ॥

भा० । ता० । चांडाल आदिके स्पर्शसे दूषित तृण और काष्ठ और पलाल की शुद्धि प्रोक्षण से—और वेश्म (मंदिर) की शुद्धि मार्जन और लेपनसे—और उच्छिष्ट आदिका जिससे स्पर्श होगयाहो ऐसा मिट्टीका पात्र फिर पकानेसे शुद्धहोताहै १२२ ॥

मद्यैर्मूत्रैःपुरीषैर्वाष्ठीवनैःपूयशोणितैः । संस्पृष्टंनैवशुद्ध्येतपुनःपाकेनमृन्मयम् १२३ ॥

प० । मद्यैः मूत्रैः पुरीषैः वा ष्ठीवनैः पूयशोणितैः संस्पृष्टं न एव शुद्ध्येत् पुनः पाकेन मृन्मयं ॥

यो० । मद्यैः मूत्रैः पुरीषैः वा ष्ठीवनैः पूयशोणितैः संस्पृष्टं — मृन्मयं पात्रं पुनः पाकेन नैव शुद्ध्येत ॥

भा० । ता । मदिरा—मूत्र—विष्टा—ष्ठीवन (थूक) पूय (राध) और शोणित (रुधिर) इन का जिससे स्पर्शहुआ हो ऐसा मिट्टीका पात्र फिर पकानेसे भी शुद्ध नहीं होता १२३ ॥

संमार्जनोपाञ्जनेनसेकेनोल्लेखनेनच । गवांचपरिवासेनभूमिःशुद्ध्यतिपंचभिः १२४ ॥

प० । संमार्जनोपांजनेन सेकेन उल्लेखनेन च गवां च परिवासेन भूमिः शुद्ध्यति पंचभिः ॥

यो० । संमार्जनोपांजनेन — सेकेन चपुनः उल्लेखनेन — चपुनः गवांपरिवासेन — एभिः पंचभिः भूमिः शुद्ध्यति ॥

भा० । ता० । संमार्जन (झाड़ना) गोबरसे उपांजन (लीपना) और गोमूत्रसे छिड़कना— और गौओंके निरंतर वास इन पांचोंसे उच्छिष्ट मूत्र—विष्टा—चांडाल आदिसे दूषित भूमि शुद्ध होतीहै १२४ ॥

पक्षिजग्धंगवाघ्रातमवधूतमवक्षुतम् । दूषितंकेशकीटैश्चमृत्प्रक्षेपेणशुद्ध्यति १२५ ॥

प० । पक्षिजग्धं गवा घ्रातं अवधूतं अवक्षुतं दूषितं केशकीटैः च मृत्प्रक्षेपेण शुद्ध्यति ॥

यो० । पक्षिजग्धं — गवाघ्रातं — अवधूतं — अवक्षुतं — चपुनः केशकीटाभ्यां दूषितं वस्तु मृत्प्रक्षेपेण शुद्ध्यति ॥

भा० । ता० । भक्षणके योग्य पक्षिका खाया फल—गौका सूंघापदार्थ—पैरसे फेंका—जिसके ऊपर छींक दियाहो—और केश और कीट जिसमें पड़हों—वह मिट्टीगेरनेसे शुद्धहोताहै १२५ ॥

यावन्नापैत्यमेध्याक्ताद्गन्धोलेपश्चतत्कृतः । तावन्मृद्वारिचादेयंसर्वासुद्रव्यशुद्धिषु १२६

प० । यावत् न अपैति अमेध्याक्तात् गंधः लेपः च तत्कृतः तावत् मृत् वारि च आदेयं सर्वासु द्रव्यशुद्धिषु ॥

यो० । अमेध्याक्तात् पदार्थात् तत्कृतः गंधः चपुनः न अपैति — सर्वासु द्रव्यशुद्धिषु तावत् प्रक्षिप्य मृत् वारि सिक्त्वा तत्वस्तु आदेयं (ग्राह्यम्) ॥

भा० । ता० । अपवित्र (विष्टाआदि) वस्तुका जिस में संबन्ध हुआ हो ऐसे पदार्थमेंसे इतने अशुद्ध पदार्थ की गन्ध और लेप दूर न हों सब द्रव्यों की शुद्धि में इतने मिट्टी और जल से धोए जाय और उस उतने पदार्थ को फेंककर शेषको ग्रहण करले परन्तु जहां एक से शुद्धि हो (जैसाकानका मैल) वहां केवल जल से और जहां दोनों से शुद्धि हो वहां दोनों ग्रहण करने १२६ ॥

त्रीणिदेवाःपवित्राणिब्राह्मणानामकल्पयन्।अदृष्टमद्भिर्निर्णिक्तंयच्चवाचाप्रशस्यते१२७

प० । त्रीणि देवाः पवित्राणि ब्राह्मणानां अकल्पयन् अदृष्टं अद्भिः निर्णिक्तं यत् च वाचा प्रशस्यते ॥

यो० । देवाः ब्राह्मणानां त्रीणि पवित्राणि अकल्पयन्--अदृष्टं अद्भिः निर्णिक्तं चपुनः यत् वाचा प्रशस्यते ॥

भा० । ता० । देवताओं ने ब्राह्मणों के लिये तीन पवित्र कहे हैं कि एक तो वह कि जिसकी अशुद्धि अपने नेत्रोंसे न देखीहो और दूसरा वह जिसको अशुद्ध होनेकी शंका पर जलसे छिड़का हो—क्योंकि हारीत ने यह कहा है कि जो २ विचारके योग्य हो वह२ जलके स्पर्श से शुद्धहोता है[1]—और तीसरा वह जहां अपवित्र की शंकाहो और ब्राह्मण यह कहदे कि शुद्धहै १२७ ॥

आपःशुद्धाभूमिगतावैतृष्ण्यंयासुगोर्भवेत्।अव्याप्ताश्चेदमेध्येनगन्धवर्णरसान्विताः१२८

प० । आपः शुद्धाः भूमिगताः वैतृष्ण्यं यासु गोः भवेत् अव्याप्ताः चेत् अमेध्येन गन्धवर्णरसान्विताः ॥

यो० । यासु (अप्सु) गोः वैतृष्ण्यं भवेत् चेत् (यदि) अमेध्येन अव्याप्ताः गन्धवर्णरसान्विताः भवंति ताः भूमिगताः आपः शुद्धाः भवंति ॥

भा० । ता० । जिस जलको पीकर गौ तृप्त होजाय—और जिसमें अपवित्र वस्तु न मिली हो—और जिसमें सुगन्ध—वर्ण—रस—ये विद्यमान हों ऐसा पृथिवीपर टिकाहुआ जल शुद्ध होता है अर्थात् शुद्धभूमि में टिकाजल शुद्धहोता है १२८ ॥

नित्यंशुद्धःकारुहस्तःपण्यंयच्चप्रसारितम्।ब्रह्मचारिगतंभैक्ष्यंनित्यंमेध्यमितिस्थितिः१२९

प० । नित्यं शुद्धः कारुहस्तः पण्यं यत् च प्रसारितं ब्रह्मचारिगतं भैक्ष्यं नित्यं मेध्यं इति स्थितिः ॥

यो० । कारुहस्तः नित्यं शुद्धः चपुनः यत् पण्यं प्रसारितं — ब्रह्मचारिगतं — भैक्ष्यं — नित्यं मेध्यं इति स्थितिः (शास्त्र मर्यादा) अस्ति ॥

भा० । कारीगरका हाथ—बाजार में बेचने के लिये रक्खा हुआ शुष्कअन्न और ब्रह्मचारीको मिलीहुई भिक्षा—ये सर्वदा शुद्ध होते हैं ॥

ता० । कारु (माली आदि)का हाथ अपने कार्य (माला बनाना आदि) करनेमें सदैव शुद्ध है अर्थात् जनन मरणमें भी शुद्धहै और जो बेचने की वस्तु बाजारकी गलीमें फैलाया हुआ और

---

१ यद्यन्मीमांस्यं स्यात्तदद्भिः स्पर्शाच्छुद्धिर्भवति ॥

इस शंखके वचनसे सिद्धान्नसे भिन्नहो और अनेक लेनेवालों के हाथसे छुआ भीहो तथापि शुद्धहै—और ब्रह्मचारी को मिलीभिक्षा चाहै उच्छिष्ट स्त्रीने भी दीहो तथापि सर्वदा शुद्धहोतीहै १२९॥

नित्यमास्यंशुचिःस्त्रीणांशकुनिःफलपातने।प्रस्रवेचशुचिर्वत्सःश्वामृगग्रहणेशुचिः१३०॥

प० । नित्यं आस्यं शुचिः स्त्रीणां शकुनिः फलपातने प्रस्रवे च शुचिः वत्सः श्वा मृगग्रहणे शुचिः ॥

यो० । स्त्रीणां आस्यं (मुखं) नित्यं शुचिः—फलपातने शकुनिः शुचिः—वत्सः प्रस्रवे शुचिः—मृगग्रहणे श्वा शुचिः—ज्ञेयः ॥

भा० । ता० । स्त्रियोंका मुख और फलके गिराने में पक्षी—और प्रस्रव (चोखने)में बछड़ा और मृगों के पकड़ने में कुत्ता—शुद्ध होता है १३० ॥

श्वभिर्हतस्ययन्मांसंशुचितन्मनुरब्रवीत् ।
क्रव्याद्भिश्चहतस्यान्यैश्चाण्डालाद्यैश्चदस्युभिः १३१ ॥

प० । श्वभिः हतस्य यत् मांसं शुचि तत् मनुः अब्रवीत् क्रव्याद्भिः च हतस्य अन्यैः चांडालाद्यैः च दस्युभिः ॥

यो० । श्वभिः हतस्य—चपुनः क्रव्याद्भिः अन्यैः चांडालाद्यैः दस्युभिः हतस्य यत् मांसं अस्ति तत् शुचि मनुः अब्रवीत् ॥

भा० । ता० । कुत्तोंके मारेहुये मृगका जो मांसहै और अन्य जो कच्चेमांस खानेवाले जीव (व्याघ्रश्येनआदि) हैं उनसे मरेका जो मांस है चांडाल और व्याधआदि से मारेहुये जीवोंका जो मांसहै—वहसब मनुने शुद्धि कहाहै १३१ ॥

ऊर्द्धनाभेर्यानिखानितानिमेध्यानिसर्वशः ।
यान्यधस्तान्यमेध्यानिदेहाच्चैवमलाश्च्युताः १३२ ॥

प० । ऊर्द्ध नाभेः यानि खानि तानि मेध्यानि सर्वशः यानि अधस्तानि अमेध्यानि देहात् च एव मलाः च्युताः ॥

यो० । नाभेः ऊर्ध्व यानि खानि तानि सर्वशः मेध्यानि संति—यानि नाभेः अधस्तानि अमेध्यानि संति चपुनः देहात् च्युताः मलाः अमेध्याः भवन्ति ॥

भा० । ता० । नाभिसे ऊपर के जो इंद्रियोंके छिद्रहैं वेसब शुद्ध होतेहैं इससे उनके स्पर्श से अशुद्धता नहीं होती—और जो छिद्र नाभिसे नीचेके हैं वे सब अशुद्धहैं और देहमें से गिरेहुये जो मलहैं वेभी अशुद्धहैं उनके स्पर्शमें अशुद्धता होतीहै १३२ ॥

मक्षिकाविप्रुषश्छायागौरश्वःसूर्यरश्मयः ।
रजोभूर्वायुरग्निश्चस्पर्शेमेध्यानिनिर्दिशेत् १३३ ॥

प० । मक्षिकाः विप्रुषः छाया गौः अश्वः सूर्यरश्मयः रजः भूः वायुः अग्निः च स्पर्शे मेध्यानि निर्दिशेत् ॥

१. नापरणनीय मन्नमश्नीत् ॥

यो० । मक्षिकाः – विप्रुषः (मुखनिस्सृताजलकणाः) छाया – गौः – अश्वः – सूर्यरश्मयः – रजः भूः – वायुः अग्निः – इमानि स्पर्शे मेध्यानि (पवित्राणि) निर्दिशेत् (कथयेत्) ॥

भा०। ता० । अशुद्ध का स्पर्श करनेवाली मक्खी और मुखसे निकसी विप्रुष (जलकेकणके) और चांडालआदि की छाया–गौ–अश्व–सूर्यकी किरण–रज–(धूलि) भूमि वायु और अग्नि इनको स्पर्श में पवित्र कहैं अर्थात् चांडालआदि के स्पर्शसे ये अशुद्ध नहीं होते १३३ ॥

विण्मूत्रोत्सर्गशुद्ध्यर्थंमृद्वार्यादेयमर्थवत् । दैहिकानांमलानांचशुद्धिषुद्वादशस्वपि १३४

प० । विण्मूत्रोत्सर्गशुद्ध्यर्थं मृद्वारि आदेयं अर्थवत् दैहिकानां मलानां च शुद्धिषु द्वादशसु अपि ॥

यो० । विण्मूत्रोत्सर्गशुद्ध्यर्थं चपुनः दैहिकानां मलानां द्वादशसु अपि शुद्धिषु मृद्वारि अर्थवत् आदेयम् (ग्राह्यम्) ॥

भा० । गुदा और लिंग इंद्रिय की शुद्धि के अर्थ और देहके बसा आदि बारहमलोंकी शुद्धि के अर्थ अर्थवत् मिट्टी और जलको ग्रहणकरै अर्थात् जितनेसे दुर्गंध और लेपदूरहो उतनेही ग्रहणकरै ॥

ता० । विष्टा और मूत्र का जिनसे त्यागहो उन इंद्रियों (गुदा–लिंग) की शुद्धि के लिये जितने मिट्टी और जलमें गंध और लेपकानाशहो उतनेहीग्रहणकरै और देहके बारहप्रकारके जो मलहैं उनकी शुद्धिमेंभी जितनेमें गंध और लेपदूरहो उतनेही मिट्टी और जलग्रहण करने और उनबारहोंमें भी पहिले छः में मिट्टी जल और पिछले छः में जलमात्रको ग्रहणकरै क्योंकि बौधायनने ऋषिने यही कहाहै जिससे बारहमलों की शुद्धि में जो मनुजीने मिट्टी और जलकहाहै सो विरुद्धनहींहै क्योंकि प्रत्येक ले वा दोनों–गोविंदराज तो यहकहतेहैं कि मनु और बौधायन के वचनसे पिछले छओंमें भी विकल्पहीहै वह व्यवस्थासेहै अर्थात् जब देव पितरोंके निमित्त कर्मकरै तब दोनोंको ग्रहणकरै इतरथानहीं १३४ ॥

वसाशुक्रमसृङ्मज्जामूत्रविड्घ्राणकर्णविट् ।
श्लेष्माश्रुदूषिकास्वेदोद्वादशैतेनृणांमलाः १३५ ॥

प० । वसा शुक्रं असृक् मज्जा मूत्रविट् घ्राणकर्णविट् श्लेष्म अश्रु दूषिका स्वेदः द्वादशः एते नृणां मलाः ॥

यो० । वसा – शुक्रं असृक् – मज्जा – मूत्रविड्घ्राणंकर्णविट् – श्लेष्मा – अश्रु – दूषिका स्वेदः एते द्वादश नृणां मलाः भवंति ॥

भा० । ता० । देहकी वसा (स्नेह) वीर्य–रुधिर मज्जा (शिर के मध्यमें स्नेह का पिंड) मूत्र–विष्टा–नासिका और कान का मैल–कफ–आंसू–दूषिका (नेत्रोंका मैल) स्वेद–(पसीना) ये बारह मनुष्योंके देहके मल होतेहैं १३५ ॥

एकालिङ्गेगुदेतिस्रस्तथैकत्रकरेदश । उभयोःसप्तदातव्यामृदःशुद्धिमभीप्सता १३६॥

प० । एका लिंगे गुदे तिस्रः तथा एकत्र करे दश उभयोः सप्त दातव्याः मृदः शुद्धिं अभीप्सता ॥

---

१ आददीतमृदोपश्चषट्सुपूर्वेषुशुद्धये उत्तरेषुचषट्स्वद्भिः केवलाभिर्विशुद्ध्यति ॥

यो०। शुद्धिं अभीप्सता पुरुषेण लिंगे एका—गुदे तिस्रः तथा एकत्र करे (वामे) दश—उभयोः (करयोः) सप्त—मृदः दातव्याः॥

भा०। लिंगमें एकवार—गुदामें तीनवार—वाम हाथमें दशवार—और दोनों हाथोंमें सातवार—मिट्टीको शुद्धि को चाहने वाला मनुष्य लगावे॥

ता०। मूत्र और पुरीष (विष्टा) के उत्सर्गमें प्रयोजन के अनुसार मिट्टी और जल ग्रहण करनी तिसमें लिंग की शुद्धिके लिये जलसहित मिट्टी एकवार लगावे—और गुदामें तीनवार लगावे और एक हाथमें (वाम) दशवार और शुद्धिको चाहता हुआ मनुष्य दोनों हाथों में सातवार मिट्टी और जलदे—और इस वचनमें एक करसे इसे देवलके वचनानुसार वाम हाथ लियाहै कि शुद्धि का ज्ञाता मनुष्य दक्षिण हाथको गुदा और लिंग की शुद्धि में न लगावे और तिसी प्रकार वाम हाथसे नाभिके ऊपर के भागको शुद्ध न करे इससे वाम हाथमें दशवार मिट्टी लगावे और यदि इतने भी शौच से गंध और लेप दूर न होयँ तो अधिक और इससे कममें हो जायँ तो कमलगावे और मिट्टीका प्रमाण इस दक्ष वचनके अनुसार यहहै कि लिंगमें उतनी मिट्टी लगाकर शौचकरे जिस अंगुलियोंके तीनपर्व (पुरवे) भरजाँय—और दूसरी उससे आधी और तीसरी आधी से भी आधी लेनी १३६॥

एतच्छौचंगृहस्थानांद्विगुणंब्रह्मचारिणाम्।
त्रिगुणंस्याद्वनस्थानांयतीनांतुचतुर्गुणम् १३७॥

प०। एतत् शौचं गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणां त्रिगुणं स्यात् वनस्थानां यतीनां तु चतुर्गुणम्॥

यो०। एतत् (पूर्वोक्तं) शौचं गृहस्थानां—ब्रह्मचारिणां द्विगुणं वनस्थानां त्रिगुणं—यतीनां चतुर्गुणं—स्यात्॥

भा०। ता०। यहपूर्वोक्त शौच गृहस्थियों का होताहै और इससे दूना ब्रह्मचारियों का और तिगुना वानप्रस्थों का और चौगुना संन्यासियों का होताहै १३७॥

कृत्वामूत्रंपुरीषंवाखान्याचान्तउपस्पृशेत्। वेदमध्येष्यमाणश्चअन्नमश्नंश्चसर्वदा १३८

प०। कृत्वा मूत्रं पुरीषं वा खानि आचान्तः उपस्पृशेत् वेदं अध्येष्यमाणः च अन्नं अश्नन् च सर्वदा॥

यो०। मूत्रं वा पुरीषं कृत्वा—चपुनः वेदं अध्येष्यमाणः चपुनः अन्नं अश्नन् सर्वदा आचान्तः पुरुषः खानि उपस्पृशेत्॥

भा०। ता०। मूत्र वा मलका त्यागकरके और वेदके पढ़नेकेसमय और भोजन करता हुआ पुरुष आचमनकरके शिरके इंद्रियों के छिद्रोंका स्पर्शकरे—दूसरे अध्याय में जो पढ़ने के समय आचमनकरे और गुरुको निवेदनकरके भोजनकरे—यह कहा है वह व्रतकाअंग है और यहांपर पुरुषकी शुद्धि के लियेहै इससे पुनरुक्ति दोषनहींहै १३८॥

---

१ शौचविद्दक्षिणंहस्तं नाधःशौचेनियोजयेत्—तथैववामहस्तेन नाभेरूर्ध्वंनशोधयेत्॥
२ लिंगेपिमृत्समाख्याताच्त्रिपर्वीपूर्यते यया द्वितीयाचतृतीयाचतदर्द्धार्द्धाप्रकीर्तिता॥

त्रिराचामेदपःपूर्वंद्विःप्रमृज्यात्ततोमुखम्।
शारीरंशौचमिच्छन्हिस्त्रीशूद्रस्तुसकृत्सकृत् १३९॥

प०। त्रिः आचामेत् अपः पूर्वं द्विः प्रमृज्यात् ततः मुखं शारीरं शौचं इच्छन् हि स्त्री शूद्रः तु सकृत् सकृत्॥

यो०। शारीरं शौचं इच्छन् द्विजः पूर्वं अपः त्रिः आचामेत् ततः द्विः मुखं प्रमृज्यात् स्त्री शूद्रः तु सकृत् सकृत् आचामेत्॥

भा०। ता०। अब आचमनकीविधि कहतेहैं—देहकीशुद्धि चाहताहुआ द्विज पहिले तीनवार जलका आचमनकरै फिर दोवार मुखका मार्जनकरै और स्त्री और शूद्र तो एक २ वारही आचमन करै १३९॥

शूद्राणांमासिकंकार्यंवपनंन्यायवर्तिनाम्।
वैश्यवच्छौचकल्पश्चद्विजोच्छिष्टंचभोजनम् १४०॥

प०। शूद्राणां मासिकं कार्यं वपनं न्यायवर्तिनां वैश्यवत् शौचकल्पः च द्विजोच्छिष्टं च भोजनं॥

यो०। न्यायवर्तिनां शूद्राणां वपनं मासिकं कार्यं—चपुनः शौचकल्पः वैश्यवत् ज्ञेयः चपुनः द्विजोच्छिष्टं—भोजनं भवति॥

भा०। ता०। शास्त्रके अनुसार वर्त्ततेहुये शूद्रों का मुंडन मास २ में करै और मरण और जन्मसूतक में वैश्य के समान शुद्धि होतीहै और द्विजोंके उच्छिष्ट का भोजनकरै १४०॥

नोच्छिष्टंकुर्वतेमुख्याविप्रुषोऽङ्गंपतन्तियाः।
नश्मश्रूणिगतान्यास्यन्नदन्तान्तरधिष्ठितम् १४१॥

प०। न उच्छिष्टं कुर्वते मुख्याः विप्रुषः अंगे पतंति याः न श्मश्रूणि गतानि आस्यम् न दंतांतरधिष्ठितं॥

यो०। याः मुख्याः (मुखोद्भवाः) विप्रुषः अंगे पतंति ताः उच्छिष्टं न कुर्वते—आस्यंगतानि श्मश्रूणि—दंतांतः अधिष्ठितं अन्नं—उच्छिष्टं न कुर्वते॥

भा०। मुखमेंसे जो जलकी बूंद देहपरगिरें वे और मुखमें गयेहुये डाढ़ी और मूंछ के बाल और दांतोंमें लगाअन्न—उच्छिष्ट नहींकरते अर्थात् इनसे मनुष्य उच्छिष्ट नहींहोता॥

ता०। निष्ठीवन (थूकने) के अनन्तर आचमन की विधि कही है इससे मुखमेंसे निकसेहुये छोटे २ थूकमें भी आचमन पाया उसका अपवाद कहतेहैं कि जो मुखकी बूंद अंगमें पड़ती हैं वे और मुखमें गईहुई जलकी बूंद और दांतोंकेबीच लगाहुआ अन्न उच्छिष्ट नहींकरतेहैं—और यहां गौतम स्मृति में विशेष है कि दांतोंमें लगाअन्न दांतोंके समान है परन्तु जो अन्न जिह्वा के फेरनेसे दांतों से पृथक् होजाय उसके विना—और उसमें भोजन के समान शुद्धिहोतीहै और मनुष्य उसको भक्षणकरके शुद्धहोताहै १४१॥

१ च्युतेष्वाहारवद्विद्यात् निगिरन्नेवतच्छुचिः॥

स्पृशन्तिबिन्दवःपादौयआचामयतःपरान्।भौमिकैस्तेसमाज्ञेयानतैराप्रयतोभवेत् १४२

प० । स्पृशंति बिंदवः पादौ ये आचामयतः परान् भौमिकैः ते समाः ज्ञेयाः न तैः आप्रयतः भवेत् ॥

यो० । ये बिंदवः परान् आचामयतः पादौ स्पृशंति ते भौमिकैः बिंदुभिः समाः ज्ञेयाः तैः (बिंदुभिः) आप्रयतः न भवेत् ॥

भा० । ता० । अन्य मनुष्यों को आचमन करातेहुये मनुष्य के पादोंको जो जलके बूंद स्पर्श करतेहैं वे शुद्धभूमि के जलकी तुल्यहैं उनसे मनुष्य आचमन करने के योग्य नहींहोता और न वह द्रव्य अशुद्ध होताहै १४२ ॥

उच्छिष्टेनतुसंस्पृष्टोद्रव्यहस्तःकथञ्चन।अनिधायैवतद्द्रव्यमाचान्तःशुचितामियात् १४३

प० । उच्छिष्टेन तु संस्पृष्टः द्रव्यहस्तः कथंचन अनिधाय एव तत् द्रव्यं आचांतः शुचिताम् इयात् ॥

यो० । उच्छिष्टेन कथंचन सं स्पृष्टः द्रव्यहस्तः मनुष्यः तत् द्रव्यं अनिधाय एव आचांतः शुचितां इयात् (प्राप्नुयात्) ॥

भा० । ता० । किसी पदार्थ लियेहुये मनुष्यका यदि कोई उच्छिष्ट स्पर्शकरले तो उसद्रव्यको नीचे विनारक्खेही आचमन करने से शुद्धहोता है—और इस श्लोक में द्रव्यहस्तपद से पदार्थ का सम्बन्ध लेना क्योंकि जिसके हाथमें द्रव्यहोगा वह मणिबन्धतक हाथधोकर आचमन नहीं करसक्ता १४३ ॥

वान्तोविरिक्तःस्नात्वातुघृतप्राशनमाचरेत् ।
आचामेदेवभुक्त्वान्नंस्नानंमैथुनिनःस्मृतम् १४४ ॥

प० । वांतः विरिक्तः स्नात्वा तु घृतप्राशनं आचरेत् आचामेत् एव भुक्त्वा अन्नं स्नानं मैथुनिनः स्मृतम् ॥

यो० । वांतः (कृतवमनः) विरिक्तः (जातविरेकः) स्नात्वा घृतप्राशनं आचरेत्—अन्नंभुक्त्वा यः वांतः सः आचामेत् एव मैथुनिनः (ऋतुमत्याः कृतमैथुनस्य) (मन्वादिभिः) स्नानं स्मृतम् ॥

भा० । ता० । वमन और विरेचन (मलकात्याग) करके मनुष्य स्नानकरके घृतका भक्षण करे—यहां गोविंदराजने यहकहा है कि जिसको दशवार विरेचनहुआहो—और यदि भोजन के अनन्तरही वमनकरे तव तो भोजनमात्रही करे—और ऋतुमती स्त्रीके संग मैथुनकरके स्नानमात्रही करे १४४ ॥

सुप्त्वाक्षुत्वाचभुक्त्वाचनिष्ठीव्योक्त्वानृतानिच ।
पीत्वापोऽध्येष्यमाणश्चआचामेत्प्रयतोऽपिसन् १४५ ॥

प० । सुप्त्वा क्षुत्वा च भुक्त्वा च निष्ठीव्य उक्त्वा अनृतानि च पीत्वा अपः अध्येष्यमाणः च आचामेत् प्रयतः अपि सन् ॥

यो० । सुप्त्वा चपुनः क्षुत्वा चपुनः भुक्त्वा निष्ठीव्य—चपुनः अनृतानि उक्त्वा—अपः पीत्वा चपुनः अध्येष्यमाणः पुरुषः प्रयतः अपि सन् आचामेत् ॥

भा० । ता० । सोकर–छींककर–भोजनकरके–थूककर–झूंठबोलकर–जलपीकर–और अध्ययन करने के समय सावधान होकर आचमनकरै–पहिले २ अध्याय में जो भोजनकरके और अध्ययन के समय आचमन कहाहै वह वृतके अंगहोनेसे कहाहै यहां यह आचमनका विधान पुरुषार्थ और अध्ययनका अंग होनेसे गृहस्थियोंको भी कर्त्तव्यहै १४५ ॥

एषशौचविधिःकृत्स्नोद्रव्यशुद्धिस्तथैवच।उक्तोवःसर्ववर्णानांस्त्रीणांधर्मान्निबोधत १४६

प० । एषः शौचविधिः कृत्स्नः द्रव्यशुद्धिः तथा एव च उक्तः वः सर्ववर्णानां स्त्रीणां धर्मान् निबोधत ॥

यो० । सर्ववर्णानां एषः कृत्स्नः अशौचविधिः चपुनः तथा एव द्रव्य शुद्धिः वः (युष्माकं) उक्तः – स्त्रीणां धर्मान् यूयं निबोधत (शृणुत) ॥

भा० । ता० । सबवर्णों की यह सम्पूर्ण शौचकीविधि और तैजसआदि पात्र और वस्त्र और अन्नकी शुद्धि तुमको कही अब स्त्रियों के करने योग्य धर्मोंको सुनो १४६ ॥

बालयावायुवत्यावावृद्धयावापियोषिता।नस्वातन्त्र्येणकर्त्तव्यंकिंचित्कार्यंगृहेष्वपि१४७

प० । बालया वा युवत्या वा वृद्धया वा अपि योषिता न स्वातन्त्र्येण कर्त्तव्यम् किंचित् कार्यं गृहेषु अपि ॥

यो० । बालया – वा युवत्या वा वृद्धया योषिता गृहेषु किंचित् अपि कार्यं स्वातन्त्र्येण न कर्त्तव्यम् – किन्तुभर्त्राद्याज्ञयैव करणीयम् ॥

भा० । ता० । बालक–और युवती (जवान) और वृद्ध भी स्त्री स्वतन्त्रहोकर किंचित् कर्म अपने घरमें न करै किंतु अपने पिता पति आदिकी अनुमतिसेही करै १४७ ॥

बाल्येपितुर्वशेतिष्ठेत्पाणिग्राहस्ययौवने । पुत्राणांभर्त्तरिप्रेतेनभजेत्स्त्रीस्वतन्त्रताम्१४८

प० । बाल्ये पितुः वशे तिष्ठेत् पाणिग्राहस्य यौवने पुत्राणां भर्त्तरि प्रेते न भजेत् स्त्री स्वतन्त्रताम् ॥

यो० । स्त्री बाल्ये पितुः वशे – यौवने पाणिग्राहस्यवशे – भर्त्तरिप्रेते पुत्राणांवशे तिष्ठेत् स्त्री स्वतन्त्रतां न भजेत् ॥

भा० । ता० । बालक अवस्थामें स्त्री पिताके वशमें रहै और यौवन अवस्थामें पतिके वशमें–और पतिके मरे पीछे पुत्रोंके वशमें रहै और स्त्री कभी भी स्वतंत्रताको न भजे और पुत्रोंके अभावमें इस नारदके वचनसे ज्ञाती और राजाके आधीन रहै १४८ ॥

पित्राभर्त्रासुतैर्वापिनेच्छेद्विरहमात्मनः । एषांहिविरहेणस्त्रीगर्ह्येकुर्यादुभेकुले १४९ ॥

प० । पित्रा भर्त्रा सुतैः वा अपि न इच्छेत् विरहं आत्मनः एषां हि विरहेण स्त्री गर्ह्ये कुर्यात् उभे कुले ॥

यो० । पित्रा – भर्त्रा – वा सुतैः आत्मनः विरहं न इच्छेत् – हि (यतः) एषां विरहेण स्त्री उभेकुले (पितृपतिकुले) गर्ह्ये (निंद्ये) कुर्यात् ॥

---

१ ततःपिण्डेष्वचासत्सु पितृपक्षःप्रभुःस्त्रियाः पक्षद्वयावसानेतु राजाभर्त्तास्त्रियामतः ॥

भा० । ता० । पिता–पति–पुत्र इनसे अपने विरह (पृथक् रहना) की इच्छा न करे क्योंकि स्त्री इन (पितादि) के विरहमे दोनों कुलोंको (पिताऔरपतिके) निंदित करतीहै १४९॥

सदाप्रहृष्टयाभाव्यंगृहकार्येषुदक्षया । सुसंस्कृतोपस्करयाव्ययेचामुक्तहस्तया १५०॥

प० । सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया सुसंस्कृतोपस्करया व्यये च अमुक्तहस्तया ॥

यो० । सदा प्रहृष्टया – गृहकार्येषुदक्षया – सुसंस्कृतोपस्करया – चपुनः व्यये अमुक्तहस्तया स्त्रिया भाव्यम् ॥

भा० । ता० । स्त्री सदैव (पतिके विरोधमेंभी) प्रसन्नरहै और घरके काममें चतुर रहै–और भली प्रकार संस्कृत (स्वच्छ) कियेहैं घरके उपस्कर (सामग्री) जिसने ऐसी रहै अर्थात् घरके सब पात्र आदिको स्वच्छ रक्खै–और व्यय (खर्च) को मुक्तहस्त (उदार) होकर न करै १५०॥

यस्मैदद्यात्पितात्वेनांभ्राताचानुमतेपितुः । तंशुश्रूषेतजीवन्तंसंस्थितंचनलङ्घयेत् १५१

प० । यस्मै दद्यात् पिता तु एनां भ्राता च अनुमते पितुः तं शुश्रूषेत जीवंतं संस्थितं च न लंघयेत् ॥

यो० । एनां पिता वा पितुः अनुमते भ्राता यस्मै दद्यात जीवंतं तं शुश्रूषेत – चपुनः संस्थितं न लंघयेत् ॥

भा० । ता० । पिता वा पिताकी अनुमतिसे भ्राता इस स्त्रीको जिसको दे जीतेहुये उसकी सेवा (टहल) करै और मरेहुये भी उसका अवलंघन न करै अर्थात् व्यभिचार और श्राद्ध तर्पण आदिका पतिके निमित्त त्याग– इनको न करै १५१ ॥

मङ्गलार्थंस्वस्त्ययनंयज्ञश्चासांप्रजापतेः । प्रयुज्यतेविवाहेषुप्रदानंस्वाम्यकारणम् १५२

प० । मङ्गलार्थं स्वस्त्ययनं यज्ञः च आसां प्रजापतेः प्रयुज्यते विवाहेषु प्रदानं स्वाम्यकारणम् ॥

यो० । आसां (स्त्रीणां) स्वस्त्ययनं (शांत्यनुवचनादिरूपं) चपुनः यः प्रजापतेः यज्ञः विवाहेषु प्रयुज्यते तत् मंगलार्थं (अभीष्टसंपत्त्यर्थं) यत् प्रदानं (वाग्दानरूपं) तत् स्वाम्यकारणम् ॥

भा० । स्त्रियोंका शांतिके मंत्रोंका अनुवचन और विवाहका प्रजापतिके निमित्त होम मङ्गल के लियेहै और पतिको स्वामी बनानेका कारण वाग्दानहै ॥

ता० । इन स्त्रियोंको जो स्वस्त्ययन (शांति अनुमंत्र वचन आदि) है और जो विवाहमें प्रजापतिके निमित्त यज्ञहै वह इनके मङ्गल (अभीष्ट सिद्धि)के लियेहै और जो स्त्रियोंका वाग्दान (सगाई) रूपकर्महै वही पतिके स्वामित्वका उत्पादकहै तिससे वाग्दानसे लेकर स्त्री पतिके परतन्त्र होतीहै तिससे पतिके आश्रय रहै और जो नवमे अध्यायमें कहेंगे कि (तेषांनिष्ठातु विज्ञेया विद्वद्भिः सप्तमेपदे) स्त्रियोंकी निष्ठा (पतिसेवादि) को विद्वान् सप्तपदी होने पर जाने वह भार्यात्व की सिद्धिके लियेहै इससे कुछ विरोधनहींहै १५२ ॥

अनृतावृतुकालेचमन्त्रसंस्कारकृत्पतिः । सुखस्यनित्यंदातेहपरलोकेचयोषितः १५३॥

प० । अनृतौ ऋतुकाले च मन्त्रसंस्कारकृत् पतिः सुखस्य नित्यं दाता इह परलोके च योषितः ॥

यो० । अनृतौ चपुनः ऋतुकाले इहलोके चपुनः परलोके योषितः सुखस्य नित्यं दाता मन्त्रसंस्कारकृत्पतिः अस्ति ॥

भा० । ता० । ऋतुकालके विना अथवा ऋतुकालमें इस लोकमें और परलोकमें प्रतिदिन सु-

खका देनेवाला मन्त्रोंसे संस्कार करनेवाला पतिहीहै क्योंकि इस गौतमके वचनसे ऋतुकालमें अथवा वर्जित तिथियों को छोड़कर सर्वदा गमन लिखाहै–उसी पतिकी आराधना से सुख आदि की प्राप्तिहोती है १५३ ॥

विशीलःकामवृत्तोवागुणैर्वापरिवर्जितः । उपचर्यःस्त्रियासाध्व्यासततंदेववत्पतिः १५४

प० । विशीलः कामवृत्तः वा गुणैः वा परिवर्जितः उपचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत् पतिः ॥

यो० । विशीलः वा कामवृत्तः–वा गुणैः परिवर्जितः पतिः साध्व्या स्त्रिया सततं देववत् उपचर्यः (सेवनीयः) ॥

भा० । ता० । सदाचारहीन अथवा अन्य स्त्री में आसक्त वा गुणों से वर्जित–पतिकी स्त्री निरंतर देवता के समान पूजाकरे अर्थात् पतिको देवता के समान समझे १५४ ॥

नास्तिस्त्रीणांपृथग्यज्ञोनव्रतंनाप्युपोषितम् । पतिंशुश्रूषतेयेनतेनस्वर्गेमहीयते १५५॥

प० । न अस्ति स्त्रीणां पृथक् यज्ञः न व्रतं न अपि उपोषितं पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते॥

यो० । स्त्रीणां पृथक् यज्ञः व्रतं–वा उपोषितं न अस्ति–येन पतिं शुश्रूषते तेन स्वर्गे महीयते (पूज्यते) ॥

भा० । स्त्रियों को पति के विना यज्ञ व्रत उपवास करने का अधिकार नहीं है किन्तु केवल पति की शुश्रूषा (सेवा) सेही स्त्री स्वर्गलोक में पूजाको प्राप्तहोती है ॥

ता० । स्त्रियों को अपने पति से पृथक् यज्ञ–व्रत और उपवास करनेका अधिकार नहीं है अर्थात् जैसे किसी स्त्रीके रजोदर्शन आदि दोष से उपस्थित न होने से पति दूसरी स्त्री से यज्ञ आदि करसक्ता है इसप्रकार पति के विना स्त्री यज्ञ आदि नहीं करसक्ती–और पति की अनुमति के विना व्रत और उपवास भी नहीं करसक्ती किन्तु पति की सेवासेही स्वर्गलोक में पूजा को प्राप्त होतीहै १५५ ॥

पाणिग्राहस्यसाध्वीस्त्रीजीवतोवामृतस्यवा ।
पतिलोकमभीप्सन्तीनाचरेत्किंचिदप्रियम् १५६ ॥

प० । पाणिग्राहस्य साध्वी स्त्री जीवतः वा मृतस्य वा पतिलोकं अभीप्सन्ती न आचरेत् किंचित् अप्रियम् ॥

यो० । पतिलोकं अभीप्सन्ती साध्वी स्त्री जीवतः वा मृतस्य पाणिग्राहस्य किंचित् अप्रियं न आचरेत् ॥

भा० । ता० । पतिके संग धर्मपूर्वक आचरण से संचय किया जो स्वर्गलोक उसको चाहती हुई साधुस्वभाव स्त्री जीवते और मरेहुये अपने पति की अप्रसन्नताका आचरण न करे अर्थात् पति के जीवते उनकी आज्ञाका पालन और मरेपीछे व्यभिचार का त्याग और शास्त्रोक्त श्राद्ध–इनको करती रहे १५६ ॥

कामंतुक्षपयेद्देहंपुष्पमूलफलैःशुभैः । नतुनामापिगृह्णीयात्पत्यौप्रेतेपरस्यतु १५७॥

प० । कामं तु क्षपयेत् देहं पुष्पमूलफलैः शुभैः न तु नाम अपि गृह्णीयात् पत्यौ प्रेते परस्य तु ॥

---

१ ऋतावुपेयात्सर्व्वत्र वाप्रतिषिद्ध वर्ज्जम् ॥

यो० । शुभैः पुष्पमूलफलैः कामं देहं क्षपयेत् परन्तु पत्यौ प्रेतेसति परस्य नाम अपि न गृह्णीयात् ॥

भा० । ता० । पवित्र—पुष्प मूल और फलों से अपने देह को चाहै कृश करदे परन्तु पति के मरे पीछे अन्य पुरुष का नाम भी न ले अर्थात् व्यभिचार में मनको न लगावे १५७ ॥

आसीतामरणात्क्षान्तानियताब्रह्मचारिणी।योधर्मएकपत्नीनांकांक्षन्तीतमनुत्तमम्१५८

प० । आसीत आमरणात् क्षान्ता नियता ब्रह्मचारिणी यः धर्मः एकपत्नीनां कांक्षंती तं अनुत्तमम् ॥

यो० । एकपत्नीनां अनुत्तमं यः धर्मः अनुत्तमं तं धर्मं कांक्षंती आमरणात् (मरणपर्यंतं) क्षांता — नियता — ब्रह्मचारिणी आसीत ॥

भा० । ता० । पतिव्रता स्त्रियों का जो सर्वोत्तम धर्म है उसको चाहतीहुई विधवा स्त्री मरण-पर्यंत क्षमासे युक्त और नियम सहित और ब्रह्मचर्य से रहै अर्थात् पुत्रके न होने पर भी पुत्रके लिये पर पुरुषका संग न करे १५८ ॥

अनेकानिसहस्राणिकुमारब्रह्मचारिणाम्।दिवंगतानिविप्राणामकृत्वाकुलसंततिम्१५९

प० । अनेकानि सहस्राणि कुमारब्रह्मचारिणां दिवं गतानि विप्राणां अकृत्वा कुलसंततिम् ॥

यो० । कुमारब्रह्मचारिणां विप्राणां अनेकानि सहस्राणि कुलसन्ततिं अकृत्वा दिवं गतानि (स्वर्गम्प्राप्तानि) ॥

भा० । ता० । बालक अवस्थासे ही जिन्होंने ब्रह्मचर्य धारणकिया अर्थात् विवाह नहीं किया ऐसे (बालखिल्य सनकादि) ब्राह्मणों के अनेक सहस्र कुलकी वृद्धि के लिये संतान के न पैदा करने पर भी स्वर्ग में चलेगये हैं १५९ ॥

मृतेभर्त्तरिसाध्वीस्त्रीब्रह्मचर्येव्यवस्थिता। स्वर्गंगच्छत्यपुत्रापियथातेब्रह्मचारिणः१६०

प० । मृते भर्त्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता स्वर्गं गच्छति अपुत्रा अपि यथा ते ब्रह्मचारिणः ॥

यो० । भर्त्तरि मृतेसति ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता अपुत्रा अपि साध्वी स्त्री यथा ते ब्रह्मचारिणः (स्वर्गगताः) तथा स्वर्गं गच्छति ॥

भा० । ता० । साधु है आचरण जिसका ऐसी स्त्री पति के मरेपीछे पुत्र के न होने पर भी अर्थात् अन्य पुरुष के संग से पुत्रको पैदा न भी करके उस प्रकार स्वर्गमें जाती है जैसे वे ब्रह्म-चारी (सनकादि) गयेहैं १६० ॥

अपत्यलोभाद्यातुस्त्रीभर्त्तारमतिवर्त्तते। सेहनिन्दामवाप्नोतिपतिलोकाच्चहीयते १६१ ॥

प० । अपत्यलोभात् या तु स्त्री भर्त्तारं अतिवर्त्तते सा इह निन्दां अवाप्नोति पतिलोकात् च हीयते ॥

यो० । या स्त्री अपत्यलोभात् भर्त्तारं अतिवर्त्तते सा इह (लोके) निन्दां अवाप्नोति चपुनः पतिलोकात् हीयते-अर्थात् परपुरुषोत्पन्नपुत्रेण स्वर्गं न लभते इत्यर्थः ॥

भा० । ता० । जो स्त्री मेरेपुत्रहो उससे मैं स्वर्ग में प्राप्तहूंगी इसबुद्धि से अपने पतिका अव-

लंघनकरतीहै अर्थात् व्यभिचार से पुत्रको पैदाकरतीहै वह स्त्री इसलोक में निन्दाको प्राप्तहोती है और पतिके लोक (स्वर्ग) में नहींजाती १६१ ॥

नान्योत्पन्नाप्रजास्तीहनचाप्यन्यपरिग्रहे।नद्वितीयश्चसाध्वीनांक्वचिद्भर्त्तोपदिश्यते१६२

प० । न अन्योत्पन्ना प्रजा अस्ति इह न च अपि अन्यपरिग्रहे न द्वितीयः च साध्वीनां क्वचित् भर्त्ता उपदिश्यते ॥

यो० । इहलोके अन्योत्पन्ना चपुनः अन्यपरिग्रहे अपि प्रजा न अस्ति चपुनः साध्वीनां स्त्रीणां द्वितीयः भर्त्ता क्वचित् न उपदिश्यते शास्त्रेणेतिशेषः ॥

भा० । अन्यपुरुष से पैदाकी और अन्यपुरुष की स्त्रीमें पैदाकीहुई सन्तान स्त्री और पुरुष दोनोंकी नहींहोती और साधु (सज्जन) स्त्रियोंको दूसरापति किसीभी शास्त्रमें नहीं कहाहै ॥

ता० । पहिले श्लोकमें कहेमें कारण कहतेहैं कि जिससे पतिसेभिन्न पुरुष से उत्पन्न सन्तान नहींकहाती अर्थात् शास्त्रोक्त नहीं होती और अन्यपत्नी में पैदाकीहुई सन्तान पैदाकरनेवाले पुरुष की नहींहोती और यह बातभी अनियोग जहांहो वहां जाननी क्योंकि जहां गुरुआदिकी आज्ञाहोतीहै वहां अनेक पति होसक्तेहैं इससे दूसराभी पतिहोहै परन्तु कलियुग में देवरआदि से पुत्रकी उत्पत्ति मनेहै तिससे निन्दाहोने से साधु स्वभाववाली स्त्रियोंको जगत्में किसी शास्त्र मेंभी दूसराभर्त्ता (पति) नहींकहाहै—इससे पुनर्भू (जिसकेदूसरापतिहो) भी नहींहोती १६२॥

पतिंहित्वापकृष्टंस्वमुत्कृष्टंयानिषेवते।निन्द्यैवसाभवेल्लोकेपरपूर्वेतिचोच्यते १६३ ॥

प० । पतिं हित्वा अपकृष्टं स्वं उत्कृष्टं या निषेवते निन्द्या एव सा भवेत् लोके परपूर्वा इति च उच्यते ॥

यो० । या स्त्री स्वं अपकृष्टं पतिं हित्वा उत्कृष्टं पतिं निषेवते सा स्त्री लोके निन्द्या एव भवेत् चपुनः जनैः परपूर्वा इति उच्यते ॥

भा० । ता० । जो स्त्री अपने अपकृष्ट (नीचवर्णका) पतिको त्यागकर उत्कृष्ट (उत्तमवर्ण) पतिको सेवती है वहस्त्री लोकमें निंदाको प्राप्तहो और वह परपूर्वा (जिसका पहिले अन्यपति हो) कहातीहै १६३ ॥

व्यभिचारात्तुभर्तुःस्त्रीलोकेप्राप्नोतिनिन्द्यताम् ।
शृगालयोनिंप्राप्नोतिपापरोगैश्चपीड्यते १६४ ॥

प० । व्यभिचारात् तु भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निंद्यतां शृगालयोनिं प्राप्नोति पापरोगैः च पीड्यते ॥

यो० । भर्तुः (पत्युः) व्यभिचारात् स्त्री लोके निंद्यतां प्राप्नोति चपुनः शृगालयोनिं प्राप्नोति चपुनः पापरोगैः (कुष्ठादिभिः) पीड्यते ॥

भा० । ता० । स्त्री पतिके व्यभिचार (अवलंघन) से जगत् में निन्दाको प्राप्तहोती है और मरने के अनन्तर शृगाल (गीदड़) की योनिको प्राप्तहोतीहै और कुष्ठआदि पापरोगोंसे पीडित होतीहै १६४ ॥

पतिंयानाभिचरतिमनोवाग्देहसंयता।साभर्तृलोकमाप्नोतिसद्भिःसाध्वीतिचोच्यते१६५

प० । पतिं या न अभिचरति मनोवाग्देहसंयता सा भर्तृलोकं आप्नोति सद्भिः साध्वी इति च उच्यते ॥

यो० । मनोवाग्देहसंयता या स्त्री पतिं न अभिचरति सा भर्तृलोकं आप्नोति चपुनः सद्भिः साध्वी इति उच्यते ॥

भा० । मन वाणी और देहकी सावधानी से जो स्त्री अपने पतिका व्यभिचार नहीं करती वह स्त्री पतिके लोकको प्राप्तहोती और सत्पुरुष उसे साध्वी कहते हैं ॥

ता० । मन वाणी देह इनको वशमें रखकर जो स्त्री अपने पतिका व्यभिचार नहीं करती अर्थात् मन वाणी देहसे अपने पतिकोही जो सेवतीहै वह स्त्री अपनेपति की सेवासे सञ्चय किये पतिके लोकको प्राप्तहोतीहै और सज्जनपुरुष उसे साध्वीकहतेहैं अर्थात् मन वाणीसेभी अपने पतिका व्यभिचार न करे १६५ ॥

अनेननारीवृत्तेनमनोवाग्देहसंयता । इहाग्र्यांकीर्त्तिमाप्नोतिपतिलोकंपरत्रच १६६ ॥

प० । अनेन नारीवृत्तेन मनोवाग्देहसंयता इह अग्र्यां कीर्त्तिं आप्नोति पतिलोकं परत्र च ॥

यो० । मनोवाग्देहसंयता स्त्री अनेन नारीवृत्तेन इह अग्र्यां कीर्त्तिं आप्नोति चपुनः परत्र (परलोके) पतिलोकं आप्नोति ॥

भा० । ता० । मन वाणी और देह इनको वशमें रखकर स्त्री इस पूर्वोक्त स्त्रीधर्म के करनेसे अर्थात् श्रेष्ठ आचरण–पतिकीसेवा–व्यभिचार के त्याग आदिसे इसलोकमें उत्तम कीर्त्ति और परलोकमें पतिके लोकको प्राप्तहोतीहै १६६ ॥

एवंवृत्तांसवर्णांस्त्रींद्विजातिःपूर्वमारिणीम् । दाहयेदग्निहोत्रेणयज्ञपात्रैश्चधर्मवित् १६७

प० । एवंवृत्तां सवर्णां स्त्रीं द्विजातिः पूर्वमारिणीं दाहयेत् अग्निहोत्रेण यज्ञपात्रैः च धर्मवित् ॥

यो० । धर्मवित् द्विजातिः पूर्वमारिणीं एवंवृत्तां सवर्णां स्त्रीं अग्निहोत्रेण चपुनः यज्ञपात्रैः दाहयेत् (दाहंकुर्यात्) ॥

भा० । ता० । धर्मका ज्ञाता द्विजाति (ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य) इस पूर्वोक्त आचारण वाली अपने समान वर्णकी और अपनेसे पहिले मरीहुई स्त्रीको वेद और धर्मशास्त्रकी अग्नि और यज्ञ के श्रुव आदि पात्रोंसे दाहकरे अर्थात् जिसअग्निमें होमकरताथा उसीअग्निसे दग्ध करदे १६७ ॥

भार्यायैपूर्वमारिण्यैदत्वाग्नीनन्त्यकर्मणि । पुनर्दारक्रियांकुर्यात्पुनराधानमेवच १६८ ॥

प० । भार्यायै पूर्वमारिण्यै दत्वा अग्नीन् अंत्यकर्मणि पुनः दारक्रियां कुर्यात् पुनः आधानं एव च ॥

यो० । द्विजातिः पूर्वमारिण्यै भार्यायै अन्त्यकर्मणि अग्नीन् दत्वा दारक्रियां चपुनः आधानं पुनः कुर्यात् ॥

भा० । ता० । द्विजाति पुत्रहो वा न हो पहिले मरीहुई स्त्रीको अंत्यके कर्म (दाह) में अग्नियोंको देकर फिर भी गृहस्थाश्रमके निमित्त विवाहकरै और अग्निहोत्रको भी ग्रहणकरै अर्थात् स्त्री और अग्निके विना गृहस्थमें न रहै १६८ ॥

अनेनविधिनानित्यंपञ्चयज्ञान्नहापयेत् । द्वितीयमायुषोभागंकृतदारोगृहेवसेत् १६९ ॥
इतिमानवेधर्मशास्त्रेभृगुप्रोक्तायांसंहितायांपञ्चमोऽध्यायः ५ ॥

प० । अनेन विधिना नित्यं पंचयज्ञान् न हापयेत् द्वितीयं आयुषः भागं कृतदारः गृहे वसेत् ॥

यो० । अनेन विधिना पंचयज्ञान नित्यं न हापयेत् — कृतदारः आयुषः द्वितीयं भागं गृहे वसेत् (तिष्ठेत्) ॥

भा० । ता० । द्विजाति इस पूर्वोक्त विधिसे पांच यज्ञोंको न छोड़े और विवाहको करके अवस्थाके दूसरे भाग पर्यन्त गृहस्थ आश्रम के धर्मोंको करताहुआ घरमें वसे—और तिसमें भी पांच यज्ञोंको सर्वोत्तम जानकर अवश्यकरै १६९ ॥

इति मन्वर्थभास्करे पंचमोऽध्यायः ५ ॥

अथषष्ठोऽध्यायः ॥

एवंगृहाश्रमेस्थित्वाविधिवत्स्नातकोद्विजः । वनेवसेत्तुनियतोयथावद्विजितेन्द्रियः १ ॥

प० । एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत् स्नातकः द्विजः वने वसेत् तु नियतः यथावद्विजितेन्द्रियः ॥

यो० । स्नातकः (गृहस्थः) द्विजः विधिवत् एवं गृहाश्रमे स्थित्वा यथावद्विजितेन्द्रियः नियतः सन् वने वसेत् ॥

भा० । ता० । चारों आश्रमोंका अधिकारी द्विज समावर्त्तन कर्मके अनंतर इस पूर्वोक्त प्रकार से विधिपूर्वक गृहस्थ आश्रममें टिककर निश्चयको करके शास्त्रोक्त विधिसे जीतीहैं इंद्रिय जिसने अर्थात् कषायोंके पकने पर वानप्रस्थ आश्रममें टिकै १ ॥

गृहस्थस्तुयदापश्येद्वलीपलितमात्मनः । अपत्यस्यैवचापत्यंतदारण्यंसमाश्रयेत् २ ॥

प० । गृहस्थः तु यदा पश्येत् वलीपलितं आत्मनः अपत्यस्य एव च अपत्यं तदा अरण्यं समाश्रयेत् ॥

यो० । गृहस्थः यदा आत्मनः (देहस्य) वलीपलितं चपुनः अपत्यस्य एव अपत्यं पश्येत् — तदा अरण्यं समाश्रयेत् (वनंगच्छेत्) ॥

भा० । ता० । गृहस्थी जिस समय अपनेदेहका वलीपलित (त्वचाको ढीली) और अपने पुत्रके पुत्र (पोता) को देखले अर्थात् ऐसे वैराग्यकी दशाको जानकर वनका आश्रयले अर्थात् वसै २ ॥

संत्यज्यग्राम्यमाहारंसर्वंचैवपरिच्छदम् । पुत्रेषुभार्यांनिक्षिप्यवनंगच्छेत्सहैववा ३ ॥

प० । संत्यज्य ग्राम्यं आहारं सर्वं च एव परिच्छदम् पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत् सह एव वा ॥

यो० । ग्राम्यं आहारं चपुनः सर्वं परिच्छदं संत्यज्य पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वा (भार्यया) सहएव वनं गच्छेत् ॥

भा० । ता० । व्रीही यव आदि ग्रामके भोजन और शय्या आदि संपूर्ण सामग्रियोंको त्यागकर और वनवासको न चाहतीहुई स्त्रीको पुत्रोंके आधीन करके और वनवास चाहतीहुईको अपने संगलेकर वनमें चलाजाय ३ ॥

अग्निहोत्रंसमादायगृह्यंचाग्निपरिच्छदम् । ग्रामादरण्यंनिःसृत्यनिवसेन्नियतेन्द्रियः ४ ॥

प० । अग्निहोत्रं समादाय गृह्यं च अग्निपरिच्छदम् ग्रामात् अरण्यं निःसृत्य निवसेत् नियतेन्द्रियः ॥

यो० । अग्निहोत्रं चपुनः गृह्यं अग्निपरिच्छदं समादाय ग्रामात् अरण्यं निःसृत्य नियतेन्द्रियः सन् अरण्ये निवसेत् ॥

भा० । ता० । अग्निहोत्र और घरके उपकरण और स्रुक् और स्रुव आदि सामग्रीको ग्रहण करके और ग्रामसे वनमें जाकर इन्द्रियोंको वशीभूतकरके वनमेंवसे—अर्थात् जितेन्द्रिय रहे ४ ॥

मुन्यन्नैर्विविधैर्मेध्यैःशाकमूलफलेनवा । एतानेवमहायज्ञान्निर्वपेद्विधिपूर्वकम् ५ ॥

प० । मुन्यन्नैः विविधैः मेध्यैः शाकमूलफलेन वा एतान् एव महायज्ञान् निर्वपेत् विधिपूर्वकम् ॥

यो० । विविधैः मेध्यैः मुन्यन्नैः (नीवारादिभिः) वा शाकमूलफलेन एतान् एव महायज्ञान् विधिपूर्वकम् निर्वपेत् (कुर्यात्) ॥

भा० । ता० । नानाप्रकार के पवित्र मुनियों के अन्न (नीवारआदि) से अथवा वनके शाक मूल और फलोंसे गृहस्थको करनेयोग्य इन्हीं पांचयज्ञोंको शास्त्रोक्तरीति से करे ५ ॥

वसीतचर्मचीरंवासायंस्नायात्प्रगेतथा । जटाश्चबिभृयान्नित्यंश्मश्रुलोमनखानिच ६ ॥

प० । वसीत चर्म चीरं वा सायं स्नायात् प्रगे तथा जटाः च बिभृयात् नित्यं श्मश्रुलोमनखानि च ॥

यो० । चर्म वा चीरं वसीत — सायं तथा प्रगे स्नायात् — जटाः चपुनः श्मश्रुलोमनखानि नित्यं बिभृयात् (धारयेत्) ॥

भा० । मृगआदि का चर्म चीर और वल्कल इनको धारे और सायंकाल और प्रातःकाल स्नानकरे और जटा श्मश्रु लोम नख इनकोधारे ॥

ता० । मृगआदि का चर्म वा चीर (पुरानेवस्त्र) इनका आच्छादन करे—हारीतऋषि ने तो इस वचनसे वल्कल का धारण करना भी कहाहै इससे वल्कल भी धारणकरे और सायंकाल और प्रातःकाल स्नानकरे और नित्य जटा और श्मश्रु (डाढ़ी) लोम और नख इनको धारण करे ६ ॥

यद्भक्ष्यंस्यात्ततोदद्याद्बलिंभिक्षांचशक्तितः । अम्मूलफलभिक्षाभिरर्चयेदाश्रमागतान् ७

प० । यत् भक्ष्यं स्यात् ततः दद्यात् बलिं भिक्षां च शक्तितः अम्मूलफलभिक्षाभिः अर्चयेत् आश्रमागतान् ॥

यो० । यत् (स्वस्य) भक्ष्यं स्यात् ततः बलिं चपुनः भिक्षां शक्तितः दद्यात् — आश्रमागतान् (अतिथीन्) अम्मूलफलभिक्षाभिः अर्चयेत् (पूजयेत्) ॥

१ वल्कलशाली चर्मचीरकुशमुञ्जफलकवासाः ॥

भा० । ता० । वनमें जो अपने भोजनकी वस्तुहों उनसेही अपनी शक्ति के अनुसार बलि और भिक्षादे और अपने आश्रम में आयेहुये अभ्यागतों को जल मूल फल और भिक्षासेपूजे अर्थात् सत्कारकरे ७ ॥

स्वाध्यायेनित्ययुक्तःस्याद्दान्तोमैत्रःसमाहितः।दातानित्यमनादातासर्वभूतानुकम्पकः८

प० । स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्यात् दान्तः मैत्रः समाहितः दाता नित्यं अनादाता सर्वभूतानुकंपकः ॥

यो० । दान्तः मैत्रः समाहितः द्विजः स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्यात् दाता अनादाता — सर्वभूतानुकंपकः नित्यं स्यात् ॥

भा० । ता० । द्विज वेदके अभ्यास में सदैव युक्तरहे और शीत उष्णआदि द्वंद्वोंकोसहे और सबका उपकार करे और मनकोरोके और निरन्तरदानदे और प्रतिग्रह न ले और सम्पूर्ण भूतों पर दया रक्खे ८ ॥

वैतानिकंचजुहुयादग्निहोत्रंयथाविधि।दर्शमस्कन्दयन्पर्वपौर्णमासंचयोगतः९॥

प० । वैतानिकं च जुहुयात् अग्निहोत्रं यथाविधि दर्शं अस्कंदयन् पर्व पौर्णमासं च योगतः ॥

यो० । योगतः दर्शं पर्व चपुनः पौर्णमासं पर्व अस्कंदयन् (अपरित्यजन) सन् वैतानिकं अग्निहोत्रं यथाविधि (शास्त्रोक्तरीत्या) जुहुयात् ॥

भा० । अमावस्या और पूर्णिमा के योग (समय) में शास्त्रोक्तरीति से वैतानिक होम को अवश्यही करे ॥

ता० । गार्हपत्य अग्निके कुण्डकी अग्नियोंका जो आहवनीय और दक्षिणाग्नियोंके कुण्डोंमें विहार (लेजाना) उसे वितान कहतेहैं उसअग्नि में जो होमकियाजाय उसे वैतानिक कहते हैं उस वैतानिक होमको अमावस्या और पूर्णिमाके पर्वोंको नहींत्यागताहुआ वानप्रस्थ शास्त्रोक्त रीतिसेकरे और भार्या (स्त्री) पुत्रोंको भी सौंपदीहो तथापि इनका परित्याग न करे जैसे स्त्रीके रजस्वलाहोनेपर करताथा अर्थात् मावस और पूर्णिमाके दिन पूर्वोक्तहोमको अवश्यकरे ९ ॥

ऋक्षेष्ट्याग्रायणंचैवचातुर्मास्यानिचाहरेत्।उत्तरायणंचक्रमशोदाक्षस्यायनमेवच१०॥

प० । ऋक्षेष्ट्याग्रायणं च एवं चातुर्मास्यानि च आहरेत् उत्तरायणं च क्रमशः दाक्षस्य अयनं एवं च ॥

यो० । ऋक्षेष्ट्याग्रायणं चपुनः चातुर्मास्यानि चपुनः उत्तरायणं चपुनः दाक्षस्य अयनं क्रमशः (क्रमेण) आहरेत् (कुर्यात्) ॥

भा० । नक्षत्रयज्ञ और नये अन्नका यज्ञ और चातुर्मास्य—उत्तरायण और दक्षिणायन यज्ञों को क्रमसे करे ॥

ता० । नक्षत्रयज्ञ और नये अन्नका यज्ञ और चातुर्मास्य यज्ञ उत्तरायण और दक्षिणायनयज्ञ इनको क्रमसे करे—इसमें कोई आचार्य यह कहते हैं कि वेदोक्त यह सम्पूर्ण दर्श पौर्णमासआदि कर्म जो वानप्रस्थ का कहाहै वह कुछ करने के लिये नहीं कहा किंतु वानप्रस्थकी प्रशंसाके लिये कहाहै क्योंकि ये सब कर्म ग्राम में उत्पन्न व्रीहिआदि से कियेजातेहैं और स्मृतिका यह सामर्थ्य

नहींहै श्रुतिके अंगको बाधे—यह ठीकनहींहै क्योंकि इससे अग्रिमश्लोक (वासंत इत्यादि) में मुनियों के नीवारआदि से चरु पुरोडाश आदि विधि वानप्रस्थको जो कहीहै उसकाभी निषेध नहींहोसक्ता—गोविंदराज तो यह कहते हैं कि किसीप्रकार से वनमें उत्पन्न व्रीहि आदिकोंसेही इनकर्मों को वानप्रस्थकरै १० ॥

वासंतशारदैर्मेध्यैर्मुन्यन्नैःस्वयमाहृतैः । पुरोडाशांश्चरूंश्चैवविधिवन्निर्वपेत्पृथक् ११ ॥

प० । वासंतशारदैः मेध्यैः मुन्यन्नैः स्वयं आहृतैः पुरोडाशान् चरून् च एव विधिवत् निर्वपेत् पृथक् ॥

यो० । स्वयं आहृतैः मेध्यैः वासंतशारदैः मुन्यन्नैः पुरोडाशान चपुनः चरून विधिवत् पृथक् निर्वपेत् (संपादयेत्) ॥

भा० । ता० । वसंत और शरदऋतुमें पैदाहुये पवित्र और स्वयं इकट्ठे किये मुनियोंके नीवार आदि अन्नोंसे पुरोडाश और चरुओंको शास्त्रोक्त रीतिसे पृथक्२ करै ११ ॥

देवताभ्यस्तुतद्धुत्वावन्यंमेध्यतरंहविः । शेषमात्मनियुञ्जीतलवणंचस्वयंकृतम् १२ ॥

प० । देवताभ्यः तु तत् हुत्वा वन्यं मेध्यतरं हविः शेषं आत्मनि युंजीत लवणं च स्वयंकृतम् ॥

यो० । वन्यं मेध्यतरं तत् हविः देवताभ्यः हुत्वा शेषंहविः चपुनः स्वयंकृतं लवणं आत्मनि युंजीत (स्वयं भुंजीत) ॥

भा० । ता० । वनके नीवार आदिसे बनाई उस हविः (अन्न) को देवताओंको देकर शेष अन्नको और ऊषर आदिसे स्वयं बनायेहुये लवणको स्वयं भोजनकरै- अर्थात देवताओंके देनेसे शेष अन्नकोही स्वयं भक्षण करै १२ ॥

स्थलजौदकशाकानिपुष्पमूलफलानिच ।मेध्यवृक्षोद्भवान्यद्यात्स्नेहांश्चफलसंभवान् १३

प० । स्थलजौदकशाकानि पुष्पमूलफलानि च मेध्यवृक्षोद्भवानि अद्यात् स्नेहान् च फलसंभवान् ॥

यो० । स्थलजौदकशाकानि चपुनः मेध्यवृक्षोद्भवानि पुष्पमूलफलानि—चपुनः फलसंभवान् स्नेहान् अद्यात् (भक्षयेत्) ॥

भा० । ता० । स्थल और जलमें पैदाहुये शाक और पवित्र (यज्ञके) वृक्षोंमें पैदाहुये पुष्प मूल और फल और गोंदी आदि वृक्षोंके फलमेंसे उत्पन्न स्नेह—इनको वानप्रस्थ भक्षणकरै १३ ॥

वर्जयेन्मधुमांसंचभौमानिकवकानिच । भूस्तृणंशिग्रुकंचैवश्लेष्मातकफलानिच १४ ॥

प० । वर्जयेत् मधु मांसं च भौमानि कवकानि च भूस्तृणं शिग्रुकं च एव श्लेष्मातकफलानि च ॥

यो० । मधु चपुनः मांसं चपुनः भौमानिकवकानि—भूस्तृणं चपुनः शिग्रुकं—चपुनः श्लेष्मातकफलानि (वानप्रस्थः) वर्जयेत् ॥

भा० । सहत—मांस और सबप्रकार के कवक और भूस्तृण—और शिग्रु और श्लेष्मातक—इनको वानप्रस्थ वर्जदे ॥

ता० । सहत-मांस और भौम (जो भूमिमें पैदाहों) ऐसे कवक (छत्राक) और भूस्तृण (जो मालवेमें होताहै ऐसा शाक) और शिग्रु (वाह्लीकदेशमें प्रसिद्ध शाक) और श्लेष्मातक (बहेड़ा) के फल-इन सबको वानप्रस्थ वर्जदे-यहां कवकों का जो भौमानि विशेषण दियाहै उसका यह तात्पर्य नहीं है कि जो छत्राकार भूमिमें पैदाहों वेही वर्जितहैं किंतु वृक्षपर पैदाहुये भी वर्जितहैं-यहांपर गोविंदराज का तो यह कथनहै कि कवकोंका जो भौम विशेषण दियाहै उससे यह प्रतीतहोताहै अन्य वृक्ष आदिके कवक भक्षणके योग्यहैं-यह ठीकनहीं क्योंकि मनुजीने द्विजातियोंको सब प्रकारके कवक अभक्ष्य कहेहैं और वानप्रस्थको तो नियमकी अधिकताही उचितहै अर्थात् सब प्रकारके कवकत्यागने योग्यहैं-यमराजने तो इसै वचनसे यह कहाहै कि भूमिमें अथवा वृक्षमें पैदाहुये छत्राकोंको जो भक्षणकरतेहैं उनको ब्रह्महत्यारे जानना और वे ब्रह्महत्यारोंमें भी निंदितहोतेहैं अर्थात् वृक्षपर पैदाहुये कवक भी नहींखाने-और मेधातिथिने भौमानि इस पदसे गोजिह्वा (गोभी) का निषेध कहाहै यह भी ठीक नहीं क्योंकि भौमपद का गोजिह्वा अर्थ किसी भी अभिधानकोश आदिमें प्रसिद्ध नहींहै-यद्यपि कवकों का निषेध पांचवें अध्यायमें कहआये थे यहांपर पुनः जो निषेधहै सो भूस्तृण आदिके भक्षण का जो प्रायश्चित्तहै वही प्रायश्चित्त कवकोंके भक्षणमेंहै यह जतानेके लियेहै १४ ॥

त्यजेदाश्वयुजेमासिमुन्यन्नंपूर्वसंचितम् । जीर्णानिचैववासांसिशाकमूलफलानिच १५॥

प० । त्यजेत् आश्वयुजे मासि मुन्यन्नं पूर्वसंचितं जीर्णानि च एव वासांसि शाकमूल फलानि च ॥

यो० । पूर्वसंचितं मुन्यन्नं चपुनः जीर्णानि वासांसि चपुनः शाकमूलफलानि आश्वयुजे मासि त्यजेत् ॥

भा० । ता० । पहिला इकट्ठा किया मुनियों का नीवार आदि अन्न और जीर्णवस्त्र और शाक मूल फल इनसबको आश्विन के महीने में त्यागदे अर्थात् फेंकदे १५ ॥

नफालकृष्टमश्नीयादुत्सृष्टमपिकेनचित् । नग्रामजातान्यार्त्तोऽपिमूलानिचफलानिच १६

प० । न फालकृष्टं अश्नीयात् उत्सृष्टं अपि केनचित् न ग्रामजातानि आर्त्तः अपि मूलानि च फलानि च ॥

यो० । आर्त्तः (क्षुधापीडितः) अपि वानप्रस्थः फालकृष्टं केनचित् पुरुषेण उत्सृष्टं (त्यक्तं) अपि चपुनः ग्रामजातानि मूलानि-फलानि न अश्नीयात् (न भक्षयेत्) ॥

भा० । ता० । हलसे जोते हुये खेत में पैदाहुये-और किसी के त्यागे हुये अन्न को और ग्राम में विना हलके जोते पैदाहुये मूल और फलों को वानप्रस्थ भक्षण न करे १६ ॥

अग्निपक्वाशनोवास्यात्कालपक्वभुगेववा । अश्मकुट्टोभवेद्वापिदन्तोलूखलिकोऽपिवा १७

प० । अग्निपक्वाशनः वा स्यात् कालपक्वभुक् एव वा अश्मकुट्टः भवेत् वा अपि दंतोलूखलिकः अपि वा ॥

---

१ भूमिजं वृक्षजं वापि छत्राकं भक्षयंतिये ब्रह्मघ्नांस्तान् विजानीयात् ब्रह्मवादिषु गर्हितान् ॥

यो० । अथवा वनस्थः द्विजः अग्निपक्वाशनः वा कालपक्वभुक् एव स्यात्—अथवा अश्मकुट्टः वा दन्तोलूखलिकः भवेत् ॥

भा० । ता० । वानप्रस्थ द्विज अग्नि मे पकेहुये पदार्थको अथवा काल (समयपर) से पके हुये को भक्षण करै और उसको भी पत्थरसे कूटकर भक्षण करै अथवा अपने दांतोंसेही चबा २ कर भक्षणकरै अर्थात् यथा कथंचित् उदर को भरै विशेष कर स्वादिष्ट पदार्थों में मन को न चलावै १७ ॥

सद्यःप्रक्षालकोवास्यान्माससंचयिकोऽपिवा।षण्मासनिचयोवास्यात्समानिचयएववा १८

प० । सद्यःप्रक्षालकः वा स्यात् माससंचयिकः अपि वा षण्मासनिचयः वा स्यात् समानिचयः एव वा ॥

यो० । अथवा वनस्थः द्विजः—सद्यःप्रक्षालकः वा माससंचयिकः स्यात् अथवा षण्मासनिचयः वा समानिचयः स्यात् ॥

भा० । ता० । वानप्रस्थ द्विज एकही दिनके लिये अथवा एक मासके लिये अथवा छः महीने के लिये अथवा एक वर्ष के निर्वाहके लिये नीवार आदि का संचय करै—इन सब में पहिला २ श्रेष्ठ है १८ ॥

नक्तंचान्नंसमश्नीयाद्दिवावाहृत्यशक्तितः।चतुर्थकालिकोवास्यात्स्याद्वाप्यष्टमकालिकः १९

प० । नक्तं च अन्नं समश्नीयात् दिवा वा आहृत्य शक्तितः चतुर्थकालिकः वा स्यात् स्यात् वा अपि अष्टमकालिकः ॥

यो० । शक्तितः अन्नं आहृत्य नक्तं वा दिवा समश्नीयात् अथवा चतुर्थकालिकः स्यात् अथवा अष्टमकालिकः स्यात् ॥

भा० । अपनी शक्तिभर अन्नको लाकर रात्रि को अथवा दिनमें भोजन करै—अथवा चौथे कालमें वा आठवें कालमें भोजन करै ॥

ता० । अपनी सामर्थ्य से अन्नको लाकर रात्रिको अथवा दिनमें भोजन करै—अथवा दिन के चौथे कालमें वा आठवें काल में भोजन करै अर्थात् सायंकाल और प्रातःकाल भोजन करना मनुष्यों के लिये देवताओं ने [१]वेद वचन से कहा है उसमें भी एकदिन उपवास करके दूसरे दिन सायंकाल के समय भोजनकरै अथवा तीनरात्र उपवास करके चौथे दिन की रात्रिमें भोजन करै १९ ॥

चान्द्रायणविधानैर्वाशुक्लकृष्णेचवर्त्तयेत्।पक्षान्तयोर्वाप्यश्नीयाद्यवागूंक्वथितांसकृत् २०॥

प० । चान्द्रायणविधानैः वा शुक्लकृष्णे च वर्त्तयेत् पक्षांतयोः वा अपि अश्नीयात् यवागूं क्वथितां सकृत् ॥

यो० । अथवा चांद्रायणविधानैः शुक्लकृष्णे वर्त्तयेत्—वा पक्षांतयोः (अमावस्या पूर्णिमयोः) क्वथितां यवागूं सकृत् अश्नीयात् (भक्षयेत्) ॥

---

१. सायंप्रातर्मनुष्याणामशनंदेवनिर्मितम् ॥

भा० । वा शुक्ल और कृष्ण पक्षमें चान्द्रायणव्रत करे अथवा पूर्णिमा और अमावस को पकी हुई लप्सी को एकवार भक्षणकरे ॥

ता० । अथवा शुक्ल और कृष्णपक्ष में चान्द्रायण की विधि से वर्त्ते अर्थात् इस[1] वचनके अनुसार शुक्ल पक्षमें एक२ ग्रास कमकरके और कृष्णपक्ष में एक२ग्रास बढ़ाकर भोजन करे—अथवा पक्षके अंतों (पूर्णिमा और अमावस) में पकीहुई यवागू (लप्सी) को एकवार भोजन करे अर्थात् सायंकाल को वा प्रातःकालको २० ॥

पुष्पमूलफलैर्वापिकेवलैर्वर्त्तयेत्सदा । कालपक्वैःस्वयंशीर्णैर्वैखानसमतेस्थितः २१ ॥

प० । पुष्पमूलफलैः वा अपि केवलैः वर्त्तयेत् सदा कालपक्वैः स्वयंशीर्णैः वैखानसमते स्थितः ॥

यो० । वैखानसमते स्थितः द्विजः केवलैः कालपक्वैः स्वयंशीर्णैः पुष्पमूलफलैः वा सदा वर्त्तयेत (जीवेत) ॥

भा० । ता० । समय पर पके और स्वयंपतित (गिरे) जो पुष्प—मूल और फल उनसेही केवल वैखानस मतमें स्थित अर्थात् वानप्रस्थ के शास्त्रोक्त धर्मोंको करताहुआ द्विज वर्त्ते अर्थात् केवल उक्त पुष्प आदिकों काही भक्षण करे २१ ॥

भूमौविपरिवर्त्तेततिष्ठेद्वाप्रपदैर्दिनम् । स्थानासनाभ्यांविहरेत्सवनेषूपयन्नपः २२ ॥

प० । भूमौ विपरिवर्त्तेत तिष्ठेत् वा प्रपदैः दिनम् स्थानासनाभ्यां विहरेत् सवनेषु उपयन् अपः ॥

यो० । वनस्थः द्विजः भूमौ विपरिवर्त्तेत वा दिनं प्रपदैः तिष्ठेत् —अथवा सवनेषु (त्रिकाले) अपः उपयन् सन् स्थानासनाभ्यां विहरेत् (तिष्ठेत्) ॥

भा० । वानप्रस्थ द्विज भूमिपर लेटै और स्थान और आसन से विहारकरे और अथवा दिनभर अपने पैरोंके अग्रभागको भूमिपर टेककर खड़ारहे—और त्रिकाल स्नान करे ॥

ता० । वानप्रस्थ द्विज केवल भूमिपर लेटे और स्थान और आसन पर बैठकर विहारकरे अर्थात् जाय और आवे परंतु यह नियम आवश्यकभोजन आदिके समयको छोड़कर समझना—अथवा दिनभर अपने पैरोंके अग्र भागसेही खड़ारहे और कुछ काल बैठारहे और कुछ काल शयन आदिको करे—और मध्य२में वृथागमन न करे—और सायंकाल मध्याह्न—और प्रातःकाल के समय स्नानको करे यद्यपि पहिले सायंकाल और प्रातःकाल कोही इस[2] वचनसे स्नान कहा है तथापि नियमकी अधिकतासे उसके संग इसका विकल्पहै अर्थात् अधिक नियमका अभिलाषी वानप्रस्थ त्रिकाल और अल्प नियमका अभिलाषी द्विकाल स्नानको करे २२ ॥

ग्रीष्मेपञ्चतपास्तुस्याद्वर्षास्वभ्रावकाशिकः । आर्द्रवासास्तुहेमन्तेक्रमशोवर्द्धयंस्तपः २३

प० । ग्रीष्मे पंचतपाः तु स्यात् वर्षासु अभ्रावकाशिकः आर्द्रवासाः तु हेमन्ते क्रमशः वर्द्धयन् तपः ॥

यो० । आत्मनः तपः क्रमशः वर्द्धयन् सन ग्रीष्मे पंचतपाः -वर्षासु अभ्रावकाशिकः -हेमन्ते आर्द्रवासाः — स्यात् ॥

१ एकैकंह्रासयेत्पिण्डं शुक्लेकृष्णेचवर्द्धयेत् ॥
२ स्नायात्सायमथतथा ॥

भा० । अपने तपको बढ़ाताहुआ वानप्रस्थ—ग्रीष्म ऋतुमें पंचाग्निमें तपकरै—और वर्षाऋतु में वर्षाके स्थानमें नग्न बैठारहे—और हेमंत (जाड़े) ऋतुमें गीले वस्त्रोंको धारण करै ॥

ता० । अपने तपकी वृद्धिचाहताहुआ वानप्रस्थ द्विज ग्रीष्म (गरमी) कालमें पंचाग्निमें तपको करै अर्थात् अपनी चारों दिशाओंमें अग्निको जलावै और ऊपरसे सूर्यकी धूपको सहै—और वर्षाऋतुमें ऐसे स्थानमें बैठे जहां अपने ऊपर वर्षाहोनीहो और आप छत्री आदिको न धारै—और हेमंत (शीतकाल) में आर्द्र (गीले) वस्त्रोंको धारणकरै—इस प्रकार तीनों ऋतुओं के तपसे वर्षको बितायाकरै २३ ॥

उपस्पृशंस्त्रिषवणंपितॄन्देवांश्चतर्पयेत् । तपश्चरंश्चोग्रतरंशोषयेद्देहमात्मनः २४ ॥

प० । उपस्पृशन् त्रिषवणं पितॄन् देवान् च तर्पयेत् तपः चरन् च उग्रतरं शोषयेत् देहं आत्मनः ॥

यो० । त्रिषवणं उपस्पृशन् सन् पितॄन् चपुनः देवान् तर्पयेत्—चपुनः उग्रतरं तपः चरन् सन् आत्मनः देहं शोषयेत् ॥

भा० । ता० । सायंकाल प्रातःकाल और मध्याह्नमें स्नानकरताहुआ वानप्रस्थ पितर और देवताओंके निमित्त तर्पणकरै और उग्रतर (अति कठिन) तपको करताहुआ पक्षके और मासके उपवाससे अपने देहको इस वचनके अनुसार सुखादे—अर्थात् क्षीणकरै २४ ॥

अग्नीनात्मनिवैतानान्समारोप्ययथाविधि।अनग्निरनिकेतःस्यान्मुनिर्मूलफलाशनः २५

प० । अग्नीन् आत्मनि वैतानान् समारोप्य यथाविधि अनग्निः अनिकेतः स्यात् मुनिः मूलफलाशनः ॥

यो० । वैतानान् अग्नीन् यथाविधि आत्मनि समारोप्य अनग्निः—अनिकेतः—मुनिः—मूलफलाशनः—स्यात् ॥

भा० । वैतानहै नाम जिनका ऐसी अग्नियोंको विधिपूर्वक अपने देह में रखकर अग्नि और घरको त्यागदे और मौन रहै और मूल फलोंका भक्षण करै ॥

ता० । जिन अग्नियोंमें गृहस्थ आश्रमके अनुसार होमकरताथा उन अग्नियोंको वानप्रस्थ विधिसे (भस्मका पीना) अपने देहमें स्थापन करके लौकिक अग्नि और घर इनसे शून्य रहै अर्थात् अग्निहोत्र न करै और न बसनेके लिये घर बनावै और मौनव्रतको धारै और मूल और फलोंका भक्षण करै परन्तु इस वशिष्ठ वचनके अनुसार छःमहीने के अनन्तर अग्नि और गृहका त्यागकरै २५ ॥

अप्रयत्नःसुखार्थेषुब्रह्मचारीधराशयः । शरणेष्वममश्चैववृक्षमूलनिकेतनः २६ ॥

प० । अप्रयत्नः सुखार्थेषु ब्रह्मचारी धराशयः शरणेषु अममः च एव वृक्षमूलनिकेतनः ॥

यो० । सुखार्थेषु अप्रयत्नः ब्रह्मचारी—धराशयः चपुनः शरणेषु अममः—वृक्षमूलनिकेतनः—स्यात् ॥

भा० । ता० । सुखदेनेवाले जो—स्वादु फल भक्षण शीत आतपका निवारण आदि—उनके

१ पक्षोपवासिनःकेचित् केचिन्मासोपवासिनः ॥
२ ऊर्ध्वंषण्मासेभ्योप्युपरिअनग्निरनिकेतनः ॥

लिये यत्न न करै और ब्रह्मचारी (स्त्रीका परित्यागी) रहै और भूमिपर सोवै और निवासके स्थानोंमें ममताको त्यागदे—और वृक्षकी जड़में अपना स्थान रक्खै २६ ॥

तापसेष्वेवविप्रेषुयात्रिकंभैक्षमाहरेत् । गृहमेधिषुचान्येषुद्विजेषुवनवासिषु २७ ॥

प० । तापसेषुँ एवँ विप्रेषुँ यात्रिकं भैक्षं आहरेत्ँ गृहमेधिषुँ चँ अन्येषुँ द्विजेषुँ वनवासिषुँ ॥

यो० । तापसेषु एव द्विजेषु चपुनः वनवासिषु गृहमेधिषु अन्येषु द्विजेषु यात्रिकं भैक्षं आहरेत् ॥

भा० । ता० । फल मूल न मिलें तो तपस्वी (वानप्रस्थ) ब्राह्मणों से अथवा इतर वनवासी गृहस्थी द्विजों के यहांसे अपने प्राणों की रक्षाके लियेही भिक्षाकी याचना करै २७ ॥

ग्रामादाहृत्यवाश्नीयादष्टौग्रासान्वनेवसन् । प्रतिगृह्यपुटेनैवपाणिनाशकलेनवा २८ ॥

प० । ग्रामात् आहृत्य वाँ अश्नीयात्ँ अष्टौ ग्रासान् वने वसन् प्रतिगृह्य पुटेन एवँ पाणिना शकलेन वाँ ॥

यो० । वने वसन (सन) ग्रामात् अष्टौ ग्रासान् आहृत्य — पुटेन एव अथवा पाणिना शकलेन प्रतिगृह्य — अश्नीयात् (भक्षयेत्) ॥

भा० । ता० । वनमें वसता हुआ (वानप्रस्थ) द्विज—वनवासी द्विजों के न मिलने पर ग्राम में से आठग्रास (कवल) लाकर पत्तों के दोने अथवा शराव के टुकड़े में वा हाथ में रखकर भक्षण करले २८ ॥

एताश्चान्याश्चसेवेतदीक्षाविप्रोवनेवसन् । विविधाश्चौपनिषदीरात्मसंसिद्धयेश्रुतीः २९॥

प० । एताः चँ अन्याः चँ सेवेतँ दीक्षाः विप्रः वँने वसन् विविधाः चँ औपनिषदीः आत्मसंसिद्धये श्रुतीः ॥

यो० । विप्रः वने वसन् (सन) एताः (पूर्वोक्ताः) चपुनः अन्याः दीक्षाः चपुनः आत्मसंसिद्धये विविधाः औपनिषदीः श्रुतीः — सेवेत ॥

भा० । ता० । वनमें वसता हुआ ब्राह्मण इन पूर्वोक्त नियमों को चपुनः अन्य जो वानप्रस्थ शास्त्र में कहे नियम उनको सेवै (करै) और आत्मज्ञानकी सिद्धि के लिये नानाप्रकार की और उपनिषदोंमें कही श्रुतियों का अभ्यास करै २६ ॥

ऋषिभिर्ब्राह्मणैश्चैवगृहस्थैरेवसेविताः । विद्यातपोविवृद्ध्यर्थंशरीरस्यचशुद्धये ३० ॥

प० । ऋषिभिः ब्राह्मणैः चँ एवँ गृहस्थैः एवँ सेविताः विद्यातपोविवृद्ध्यर्थं शरीरस्य चँ शुद्धये ॥

यो० । यस्मात् ऋषिभिः चपुनः ब्राह्मणैः चपुनः गृहस्थैः विद्यातपोविवृद्ध्यर्थं चपुनः शरीरस्य शुद्धये सेविताः एताः श्रुतयः सेविताः अतः वानप्रस्थः एताः सेवेत — (अभ्यसेत्) ॥

भा० । ता० । जिससे ऋषि और ब्राह्मण गृहस्थियों ने विद्या और तपकी वृद्धिके लिये और शरीर की शुद्धि के लिये इन श्रुतियोंका सेवन कराहै इससे वानप्रस्थ द्विज भी इन पूर्वोक्त दीक्षा और श्रुतियों का अभ्यास करै ३० ॥

अपराजितांवास्थायव्रजेद्दिशमजिह्मगः।आनिपाताच्छरीरस्ययुक्तोवार्यनिलाशनः ३१॥

प० । अपराजितां वा आस्थाय व्रजेत् दिशं अजिह्मगः आनिपातात् शरीरस्य युक्तः वार्यनिलाशनः ॥

यो० । युक्तः वार्यनिलाशनः अजिह्मगः सन् शरीरस्य आनिपातात् अपराजितां दिशं वा आस्थाय व्रजेत्—(गच्छेत्) ॥

भा० । योगमार्ग में स्थित और जल और पवनको भक्षण करता—और सीधीहै गति जिसकी ऐसा वानप्रस्थ द्विज ऐशान दिशा में चलाजाय अर्थात् देह को त्यागदे ॥

ता० । यदि देह में ऐसी व्याधि की उत्पत्ति होजाय तो योगमार्ग में स्थित होकर जल और पवन इनको भक्षण करता हुआ अकुटिल (सीधी) है गमन जिसका ऐसा वानप्रस्थ ईशान दिशाका आश्रय लेकर शरीरके मरण पर्य्यन्त गमन करै अर्थात् ऐशानीदिशा में चलाजाय—और वानप्रस्थ का यह शास्त्रोक्त मरण है इससे इसे श्रुति के संग विरोध नहींहै कि जिसको अपनी अवस्था की इच्छाहो वह ऐशानी दिशाको गमन न करै क्योंकि इस श्रुति स्वकामिशब्द के पढ़ने से वृथामरणे का निषेध है और शास्त्रोक्त मरण का निषेध है [1] ३१ ॥

आसांमहर्षिचर्याणांत्यक्त्वान्यतमयातनुम् । वीतशोकभयोविप्रोब्रह्मलोकेमहीयते ३२॥

प० । आसां महर्षिचर्याणां त्यक्त्वा अन्यतमया तनुं वीतशोकभयः विप्रः ब्रह्मलोके महीयते ॥

यो० । आसां महर्षिचर्याणां मध्ये अन्यतमया (चर्यया) तनुं त्यक्त्वा वीतशोकभयः विप्रः ब्रह्मलोके महीयते (पूजांलभते) ॥

भा० । इन पूर्वोक्त कर्मोंमें किसी न किसी कर्म से अपने देहको त्यागकर और शोक और भयसे निवृत्तहोकर ब्रह्मलोक में पूजाको प्राप्तहोता है ॥

ता० । इन पूर्वोक्त वानप्रस्थों के कर्मों मेंसे किसी एक कर्म के अनुष्ठान से अपने देह को त्यागकर और दुःख के भयसे निवृत्त हुआ वानप्रस्थ ब्रह्मलोक में पूजा को प्राप्त होताहै अर्थात् मोक्षको प्राप्तहोता है—कदाचित् कोई यह कहे कि इसे श्रुति में तो यह लिखाहै कि ज्ञानकेविना मुक्ति नहीं होती और वानप्रस्थको केवल कर्मसे ही कैसे मोक्ष प्राप्तहोता है—सो ठीक नहीं क्योंकि यह कह आयेहैं कि आत्मज्ञान की सिद्धिके लिये अनेक प्रकारकी उपनिषदों की श्रुतियोंका वानप्रस्थ अभ्यास करै तिससे इसको भी कर्म से अन्तःकरण शुद्धि होने पर आत्मज्ञान होसक्ताहै [2] ३२ ॥

वनेषुचविहृत्यैवंतृतीयंभागमायुषः । चतुर्थमायुषोभागंत्यक्त्वासंगान्परिव्रजेत् ३३ ॥

प० । वनेषु च विहृत्य एवं तृतीयं भागं आयुषः चतुर्थं आयुषः भागं त्यक्त्वा संगान् परिव्रजेत् ॥

यो० । आयुषः तृतीयं भागं एवं वनेषु विहृत्य—संगान् त्यक्त्वा आयुषः चतुर्थं भागं—परिव्रजेत् (संन्यसेत्) ॥

भा० । इस प्रकार अपनी अवस्थाके तीसरे भागमें वनोंमें विहारकरके अवस्थाके चौथे भागमें विषयोंके संगोंको त्यागकर संन्यास का ग्रहण करै ॥

---

१ नपुनरायुषः स्वकामी न मेयात् ॥

२ ऋतेज्ञानान्न मुक्तिः ॥

ता० । अपनी अवस्थाके तीसरे भागमें इस प्रकार वनोंमें विचरकर—यद्यपि अवस्थाके प्रमाण का कोई निश्चयनहींहै और इसी से उसको कोई जानभीनहींसक्ता—तथापि तीसरेभाग से वह समय लेना जिसमें रागों (विषय) से निवृत्तिहोजाय वह वानप्रस्थका समयलेना अतएव शंख लिखित ने यहकहा है कि[1] वनवास के पीछे शांत और वृद्धको संन्यास ग्रहणकरना—अर्थात् विधिपूर्वक दुष्करतपको करनेसे विषयोंसे शांतिपर्य्यन्त वानप्रस्थके कर्मोंको करके आयुःके चौथे भाग में अर्थात् अवस्था के शेषसमय में विषयोंके संगोंको सर्वथा त्यागकर संन्यास आश्रमको ग्रहणकरै ३३ ॥

आश्रमादाश्रमंगत्वाहुतहोमोजितेन्द्रियः । भिक्षाबलिपरिश्रान्तःप्रव्रजन्प्रेत्यवर्द्धते३४

प० । आश्रमात् आश्रमं गत्वा हुतहोमः जितेंद्रियः भिक्षाबलिपरिश्रांतः प्रव्रजन् प्रेत्य वर्द्धते॥

यो० । हुतहोमः—जितेंद्रियः भिक्षाबलिपरिश्रांतः द्विजः आश्रमात् आश्रमंगत्वा प्रव्रजन् मन् प्रेत्य वर्द्धते ॥

भा० । ता० । अग्निहोत्र को करके—और इंद्रियोंको जीतकर—और भिक्षा और बलिवैश्वदेवकी सेवासे श्रमकोकरके—और एक आश्रममें से दूसरे आश्रम में जाकर अर्थात् ब्रह्मचर्य—गृहस्थ और वानप्रस्थ आश्रमों के धर्मोंको क्रमसे करके संन्यास आश्रम में टिकताहुआ द्विज परलोक में जाकर वृद्धिको प्राप्तहोताहै अर्थात् ब्रह्म में लीनहोताहै ३४ ॥

ऋणानित्रीण्यपाकृत्यमनोमोक्षेनिवेशयेत् । अनपाकृत्यमोक्षंतुसेवमानोव्रजत्यधः ३५॥

प० । ऋणानि त्रीणि अपाकृत्य मनः मोक्षे निवेशयेत् अनपाकृत्य मोक्षं तु सेवमानः व्रजति अधः ॥

यो० । त्रीणि ऋणानि अपाकृत्य (दूरीकृत्य) मोक्षे मनः निवेशयेत—त्रीणि ऋणानि अनपाकृत्य मोक्षं सेवमानस्तु अधः व्रजति (नरकं गच्छति) ॥

भा० । ता० । तीनों ऋणों (देव पितृ ऋषि) को दूरकरकेही मोक्षमें मनको लगावे—और तीनऋणों के विना दूरकिये जो मोक्षको सेवताहै वह नरकमें जाता है ३५ ॥

अधीत्यविधिवद्वेदान्पुत्रांश्चोत्पाद्यधर्मतः । इष्ट्वाचशक्तितोयज्ञैर्मनोमोक्षेनिवेशयेत्३६॥

प० । अधीत्य विधिवत् वेदान् पुत्रान् च उत्पाद्य धर्मतः इष्ट्वा च शक्तितः यज्ञैः मनः मोक्षे निवेशयेत् ॥

यो० । विधिवत् वेदान अधीत्य—चपुनः धर्मतः पुत्रान उत्पाद्य—चपुनः शक्तितः यज्ञैः इष्ट्वा मोक्षे मनः निवेशयेत् ॥

भा० । विधिसे वेदोंको पढ़—और धर्मसे पुत्रोंको पैदाकर—और शक्तिसे यज्ञोंको करके मोक्षमार्ग में मनको लगावे ॥

ता० । उत्पन्नहोताही ब्राह्मण तीनऋणोंवाला होता है क्योंकि इस[2] श्रुति में यह लिखा है कि यज्ञसे देवता—और प्रजासे पितरों—और वेदके पढ़ने से ऋषियों का ऋण दूरकरै—इससे

---

१ वनवासादूर्ध्वं श्रान्तस्य परिगतवयसः पारिव्राज्यम् ॥

२ जायमानो ब्राह्मणस्त्रिभिः ऋणैः ऋणवान् जायते यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः स्वाध्यायेन ऋषिभ्यः ॥

शास्त्रोक्तरीति से वेदोंको पढ़कर—और धर्मसे (पर्वोंमें स्त्रीकेसंगका त्याग) पुत्रोंको पैदाकरके और शक्तिभर अश्वमेधआदि यज्ञोंकोकरके—मोक्षमें मनको लगावे अर्थात् मोक्षके अत्यन्त उपयोगी संन्यास आश्रमको ग्रहणकरै ३६ ॥

अनधीत्यद्विजोवेदाननुत्पाद्यतथासुतान्।अनिष्ट्वाचैवयज्ञैश्चमोक्षमिच्छन्व्रजत्यधः३७॥

प० । अनधीत्य द्विजः वेदान् अनुत्पाद्य तथा सुतान् अनिष्ट्वा च एव यज्ञैः च मोक्षं इच्छन् व्रजति अधः ॥

यो० । द्विजः वेदान् अनधीत्य — तथा सुतान् अनुत्पाद्य — चपुनः यज्ञैः अनिष्ट्वा मोक्षं इच्छन् सन् अधः व्रजति ॥

भा० । ता० । वेदोंकोविना पढ़े और पुत्रोंको पैदाकिये विना और यज्ञोंके कियेविना मोक्षकी इच्छाकरताहुआ द्विज नरकको प्राप्तहोताहै ३७ ॥

प्राजापत्यांनिरूप्येष्टिंसर्ववेदसदक्षिणाम् ।
आत्मन्यग्नीन्समारोप्यब्राह्मणःप्रव्रजेद्गृहात् ३८ ॥

प० । प्राजापत्यां निरूप्य इष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम् आत्मनि अग्नीन् समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेत् गृहात् ॥

यो० । सर्ववेदसदक्षिणां प्राजापत्यां इष्टिं निरूप्य — आत्मनि अग्नीन् समारोप्य — ब्राह्मणः गृहात् प्रव्रजेत् ॥

भा० । प्राजापत्य यज्ञकोकरके और आचार्यको सर्वस्व (सबद्रव्यआदि) दक्षिणादेकर और अपने आत्मामेंही अग्नियों को स्थापनकरके ब्राह्मण अपने घर से चलाजाय अर्थात् संन्यासी होजाय ॥

ता० । प्रजापतिहै देवता जिसका और सर्वस्वहै दक्षिणा जिसमें और यजुर्वेदके उपाख्यान में कहीहुई यज्ञ (जो संन्यासलेनेके समय कीजातीहै) और यजुर्वेदकीहीविधिसे अपनेआत्मा में अग्नियोंको स्थापनकरके घरसे संन्यास के निमित्त चलाजाय अर्थात् वानप्रस्थ के धर्मों को करके चौथे आश्रम में गमनकरै क्योंकि घर वनमें भी होताहै—इससे मनुने चारों आश्रमों का समुच्चय भी दिखाया और इसे जाबालश्रुति में कहेहुये चारोंआश्रमों के विकल्प भी सूचित करादिये—कि ब्रह्मचर्य को समाप्तकरके गृहस्थी और गृहस्थहोकर वानप्रस्थ और वानप्रस्थ को समाप्त करके संन्यासले—इतरथा ब्रह्मचर्यसेही संन्यासले अथवा गृहस्थसे वा वानप्रस्थ से संन्यासी होजाय ३८ ॥

योदत्वासर्वभूतेभ्यःप्रव्रजत्यभयंगृहात् । तस्यतेजोमयालोकाभवन्तिब्रह्मवादिनः ३९॥

प० । यः दत्वा सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजति अभयं गृहात् तस्य तेजोमयाः लोकाः भवन्ति ब्रह्मवादिनः ॥

यो० । यः ब्राह्मणः सर्वभूतेभ्यः अभयं दत्वा गृहात् प्रव्रजेत् — ब्रह्मवादिनः तस्य तेजोमया (लोका) भवंति ॥

भा० । ता० । जो ब्राह्मण सम्पूर्ण भूतों (स्थावर जंगम) को अभयदानदेकर घरसे चला जाताहै अर्थात् संन्यासी होताहै उस ब्रह्मवादी (ब्रह्मज्ञान के जनक उपनिषदों में स्थित) को

---

१ ब्रह्मचर्यं समाप्य गृहीभवेद्गृहीभूत्वा वनीभवेत् वनीभूत्वा प्रव्रजेत् इतरथा ब्रह्मचर्यादेवप्रव्रजेत् गृहाद्वा वनाद्वा ॥

तेजोमय लोकोंकी प्राप्तिहोती है अर्थात् सूर्य्यआदि के प्रकाशरहित ब्रह्मलोक आदिको वह प्राप्त होताहै ३९ ॥

यस्मादण्वपिभूतानांद्विजान्नोत्पद्यतेभयम् । तस्यदेहाद्विमुक्तस्यभयंनास्तिकुतश्चन ४० ॥

प० । यस्मात् अणु अपि भूतानां द्विजात् न उत्पद्यते भयं तस्य देहात् विमुक्तस्य भयं न अस्ति कुतश्चन ॥

यो० । यस्मात् द्विजात् भूतानां अणु अपि भयं न उत्पद्यते — देहात् विमुक्तस्य तस्य कुतश्चन भयं नास्ति ॥

भा० । ता० । जिस द्विजसे प्राणियोंको सूक्ष्मभी भय नहीं होताहै अर्थात् जो किसीको दुःख नहींदेता है देहसे विमुक्तहुये (मरे) उसको किसीसे भी भय नहीं होताहै ४० ॥

आगारादभिनिष्क्रान्तःपवित्रोपचितोमुनिः । समुपोढेषुकामेषुनिरपेक्षःपरिव्रजेत् ४१ ॥

प० । आगारात् अभिनिष्क्रांतः पवित्रोपचितः मुनिः समुपोढेषु कामेषु निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥

यो० । आगारात् अभिनिष्क्रांतः -पवित्रोपचितः मुनिः द्विजः समुपोढेषु कामेषु निरपेक्षः सन् परिव्रजेत् (संन्यासीभवेत्)

भा० । ता० । घरसे निकसकर और पवित्र दण्ड कमण्डलु आदिसे युक्त—और मौनीहोकर और अनायास से मिलेहुये पदार्थों में इच्छाको त्यागकर द्विज संन्यासको ग्रहणकरे ४१ ॥

एकएवचरेन्नित्यंसिद्ध्यर्थमसहायवान् । सिद्धिमेकस्यसंपश्यन्नजहातिनहीयते ४२ ॥

प० । एकः एव चरेत् नित्यं सिद्ध्यर्थं असहायवान् सिद्धिं एकस्य संपश्यन् न जहाति न हीयते ॥

यो० । एकस्य सिद्धिं संपश्यन् सन् सिद्ध्यर्थं असहायवान् एकएव यः नित्यं चरेत् — स न जहाति न हीयते ॥

भा० । ता० । सबके संग त्यागनेवाले एकाकीही मुक्तिहोतीहै यह जानताहुआ द्विज किसीको सहाय न रखकर एक (अकेला) ही जो विचरताहै और पुत्रआदि की ममताको छोड़ता है किसीके भी त्यागकरने में उसे दुःखनहीं होता और न त्यागनेपर इससे कोई दुःखी होगा अर्थात् सदैव सुख दुःखमें ममताको त्यागकर मुक्तिको प्राप्तहोताहै ४२ ॥

अनग्निरनिकेतःस्याद्ग्राममन्नार्थमाश्रयेत् । उपेक्षकोऽशंकुसुकोमुनिर्भावसमाहितः ४३ ॥

प० । अनग्निः अनिकेतः स्यात् ग्रामं अन्नार्थं आश्रयेत् उपेक्षकः अशंकुसुकः मुनिः भाव-समाहितः ॥

यो० । अनग्निः अनिकेतः उपेक्षकः अशंकुसुकः — मुनिः भावसमाहितः स्यात् — अन्नार्थं ग्रामं आश्रयेत् ॥

भा० । ता० । लौकिक अग्नि के संयोग से रहित और व्याधिआदि के होनेपर भी उसकी चिकित्सा से हीन और घरकात्यागी और स्थिर बुद्धि—अथवा संचयरहित—ब्रह्मका मननकर्त्ता और भावसे ब्रह्ममें निष्ठ—संन्यासीरहै और दिनरात वनमें वसताहुआ भी भिक्षाके लिये ग्राम में प्रवेश करै ४३ ॥

कपालंवृक्षमूलानिकुचेलमसहायता । समताचैवसर्वस्मिन्नेतन्मुक्तस्यलक्षणम् ४४ ॥

प० । कपालं वृक्षमूलानि कुचेलं असहायता समता च एव सर्वस्मिन् एतत् मुक्तस्य लक्षणम् ॥

यो० । कपालं — वृक्षमूलानि — कुचेलं — असहायता — चपुनः सर्वस्मिन् समता — मुक्तस्य एतत् लक्षणं-भवति ॥

भा० । ता० । कपाल (मिट्टीका कर्परआदि भिक्षाकापात्र)–वसने के लिये वृक्षकामूल–फटा और मोटा कौपीन कन्थाआदि वस्त्र–सहायकात्याग–और ब्रह्मबुद्धिसे सर्वत्र समता (शत्रु मित्र के अभाव) ये मुक्त के चिह्न हैं अर्थात् मुक्ति के साधन हैं ४४ ॥

नाभिनन्देतमरणंनाभिनन्देतजीवितम् । कालमेवप्रतीक्षेतनिर्देशंभृतकोयथा ४५ ॥

प० । नँ अभिनंदेतँ मरणं नँ अभिनंदेतँ जीवितम् कालं एवँ प्रतीक्षेतँ निर्देशं भृतकः यथा ॥

यो० । मरणं न अभिनंदेत–जीवनं न अभिनंदेत (नकामयेत्) किन्तु यथानिर्देशं (भृतिं) भृतकः तथा स्वकर्माधीनं कालं एव प्रतीक्षेत ॥

भा० । ता० । मरण और जीवन दोनोंकी कामना न करे किंतु जिसप्रकार भृत्य (नोकर) भृति (नोकरी) की प्रतीक्षाकरता है इसप्रकार अपने कर्मों के आधीन मरणकीही प्रतीक्षाकरे (बाटदेखे) ४५ ॥

दृष्टिपूतंन्यसेत्पादंवस्त्रपूतंजलंपिबेत् । सत्यपूतांवदेद्वाचंमनःपूतंसमाचरेत् ४६ ॥

प० । दृष्टिपूतं न्यसेतँ पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेतँ सत्यपूतां वदेतँ वाचं मनःपूतं समाचरेतँ ॥

यो० । दृष्टिपूतं पादं न्यसेत् — वस्त्रपूतं जलं पिबेत् — सत्यपूतांवाचं वदेत — मनःपूतं समाचरेत् ॥

भा० । ता० । केश और अस्थि आदिके बचावकेलिये देखकर भूमिपरपैररक्खे–और छोटे २ जीवोंके निवारणार्थ वस्त्र से पूत (छना) जलको पीवे -और सत्यसे पवित्र वाणीको कहे–और पवित्र मनसा सदा आचरणकरे निषिद्ध के संकल्प शून्यमनसे सदापवित्र रहे ४६ ॥

अतिवादांस्तितिक्षेतनावमन्येतकंचन । नचेमंदेहमाश्रित्यवैरंकुर्वीतकेनचित् ४७ ॥

प० । अतिवादान् तितिक्षेतँ नँ अवमन्येतँ कंचनँ नँ चँ इमं देहं आश्रित्य वैरं कुर्वीतँ केनचित् ॥

यो० । अतिवादान (परोक्तकटुवाक्यान) सहेत — कंचन पुरुषं न अवमन्येत — चपुनः इमंदेहं आश्रित्य केनचित वैरं न कुर्वीत ॥

भा० । ता० । अन्य के कहे अतिवादों (कटुवाक्य) को सहे–और किसी मनुष्यका भी तिरस्कार न करे–अनेक व्याधि से संयुक्त इसदेहके आश्रय से किसीकेभी संग वैर न करे ४७ ॥

क्रुध्यन्तंनप्रतिक्रुध्येदाक्रुष्टःकुशलंवदेत् । सप्तद्वारावकीर्णांचनवाचमनृतांवदेत् ४८ ॥

प० । क्रुध्यंतं नँ प्रतिक्रुध्येतँ आक्रुष्टः कुशलं वदेतँ सप्तद्वारावकीर्णां चँ नँ वाचं अनृतां वदेतँ ॥

यो० । क्रुध्यन्तं प्रति न क्रुध्येत (संजातकोधाय कस्मैचित्प्रतिकोपं न कुर्यात्) आक्रुष्टः (निन्दितश्चान्येन) कुशलं वदेत (नतुनिन्देत्) चपुनः सप्तद्वारावकीर्णां अनृतां वाचं न वदेत (किन्तुब्रह्ममात्रविषयां वदेत्) ॥

भा० । क्रुद्धहुये मनुष्य पर क्रोध न करै–और अपनी निन्दा करने पर भी भद्र (अच्छा) वचन कहे और सातद्वारोंके विषयोंके लिये मिथ्यावाणीको न कहे–अर्थात् ब्रह्मविषयक वाणी कोही कहे ॥

ता० । क्रोधकरतेहुये मनुष्यपर क्रोध न करै–और यदि अपने ऊपर कोईक्रोधकरे तो कुशल

(अच्छे) वचनकहै—अर्थात् निंदा न करै—और सातद्वारोंसे अवकीर्ण (निक्षिप्त) अर्थात् श्रोत्र त्वचा—नेत्र—जिह्वा—नासिका—मन—बुद्धि—इनसातोंद्वारोंको वशमेंकरके अनृत (मिथ्या) वाणी को न कहै सिद्धांत यह है कि इनसातद्वारों के जो शब्दआदि सातविषय हैं उनकी वार्ताको न कहै क्योंकि वेही सब विषय मिथ्या हैं—अर्थात् ब्रह्मविषयकी वाणी को कहै—इसमें कोई यह शंका करतेहैं कि मनसेही ब्रह्मकी उपासना होती है और ब्रह्मविषय आदि सब वाणियों का उच्चारण भी मनकाही व्यापारहै तो यह कैसे होसक्ताहै कि ब्रह्मविषय वाणी कोही कहै अन्य विषय वाणीको न कहै—इसका यह समाधान है कि अनृत इस विशेषण से यह सूचित किया कि असत्य (विनाशी) है विषय जिसका ऐसी वाणीको न कहै और अविनाशि ब्रह्मविषयक (ओंकारउपनिषत् आदि) सत्यरूप वाणी का तो उच्चारण करै—गोविन्दराज तो यह कहतेहैं कि—धर्म अर्थ—अर्थ काम २—धर्म अर्थ काम ३ ये सात वाणीका विषय होनेसे वाणीके द्वारहैं उनमें विक्षिप्त (विरुद्ध) वाणी को न कहै अर्थात् इनसातों में झूठ न बोले और कोई यह कहतेहैं कि सात भुवन वाणीका विषय होने से वाणीके द्वार हैं और विनाशी हैं उनके विषय असत्य वाणी न कहै अर्थात् सात भुवनोंके भोगके निमित्त मिथ्या न बोले किन्तु ब्रह्मविषयक वाणी कोही कहै ४८ ॥

अध्यात्मरतिरासीनोनिरपेक्षोनिरामिषः । आत्मनैवसहायेनसुखार्थीविचरेदिह ४९ ॥

प० । अध्यात्मरतिः आसीनः निरपेक्षः निरामिषः आत्मना एव सहायेन सुखार्थी विचरेत् इह ॥

यो० । सुखार्थी संन्यासी अध्यात्मरतिः – आसीनः – निरपेक्षः निरामिषः – सन आत्मना एव सहायेन इह विचरेत् ॥

भा० । मोक्षके सुखको चाहता हुआ संन्यासी आत्मा (ब्रह्म) मेंही प्रीति को रखकर—और योगासन से बैठाहुआ और अपेक्षा से रहित—और विषयों का त्यागी होकर—इस संसार में विचरै ॥

ता० । मोक्षरूप सुखका अभिलाषी संन्यासी—आत्माकेही विषे है रति जिसकी अर्थात् सदैव ब्रह्मके ध्यानमें तत्पर—और स्वस्तिक आदि योगीके आसन लगाये—और दण्ड कमण्डलु आदिकोंमें भी विशेषकर अपेक्षासे रहित—और विषयों की अभिलाषा से शून्य—होकर केवल अपने देहकीही सहायतासे—इस जगत्में विचरै—अर्थात् सबके संग और ममताको त्यागदे ४९ ॥

नचोत्पातनिमित्ताभ्यांननक्षत्राङ्गविद्यया।नानुशासनवादाभ्यांभिक्षांलिप्सेतकर्हिचित् ५०

प० । न च उत्पातनिमित्ताभ्यां न नक्षत्रांगविद्यया न अनुशासनवादाभ्यां भिक्षां लिप्सेत कर्हिचित् ॥

यो० । चपुनः उत्पातनिमित्ताभ्यां – नक्षत्रांगविद्यया – अनुशासनवादाभ्यां कर्हिचित् भिक्षां न लिप्सेत (न इच्छेत्) ॥

भा० । ता० । भूकम्प आदि उत्पात—और नेत्रस्पंद (फरकना) आदि निमित्तों के फलों को कहके—और ज्योतिष शास्त्रकी विद्यासे—ऐसा नीतिमार्ग है ऐसे रहना चाहिये इस प्रकार

की शिक्षा और वाद विवाद से—भिक्षाके लेने की इच्छा न करै अर्थात् विना याचना किये जो मिलै उसी से निर्वाह करै ५० ॥

नतापसैर्ब्राह्मणैर्वावयोभिरपिवाश्वभिः । आकीर्णंभिक्षुकैर्वान्यैरागारमुपसंव्रजेत् ५१ ॥

प० । न तापसैः ब्राह्मणैः वा वयोभिः अपि वा श्वभिः आकीर्णं भिक्षुकैः वा अन्यैः आगारं उपसंव्रजेत् ॥

यो० । तापसैः ब्राह्मणैः वा वयोभिः (पक्षिभिः) वा श्वभिः—वा अन्यैः भिक्षुकैः आकीर्णं आगारं (गृहं) न उपसंव्रजेत् (प्रविशत) ॥

भा० । ता० । अन्य तपस्वी वानप्रस्थ—अथवा भक्षण करनेवाले पक्षी—वा कुत्ते—अथवा इतर भिक्षुक—इनमें व्याप्त (भरा) घरमें प्रवेश न करै अर्थात् ऐसेघरमें प्रवेशकरै जिसमें इतर अन्नका अभिलाषी न हो ५१ ॥

कॢप्तकेशनखश्मश्रुःपात्रीदण्डीकुसुम्भवान् । विचरेन्नियतोनित्यंसर्वभूतान्यपीडयन् ५२

प० । कॢप्तकेशनखश्मश्रुः पात्री दण्डी कुसुम्भवान् विचरेत् नियतः नित्यं सर्वभूतानि अपीडयन् ॥

यो० । कॢप्तकेशनखश्मश्रुः पात्री—दण्डी—कुसुम्भवान—नियतःसन् संन्यासी सर्वभूतानि अपीडयन् सन् नित्यं विचरेत् (परिभ्रमेत्) ॥

भा० । ता० । कटे हैं केश नख और श्मश्रु जिसकी—भिक्षापात्रसहित और दण्ड और कमण्डलु से संयुक्त और सम्पूर्ण भूतोंको पीडित न करके और इंद्रियोंको वशमें रखकर संन्यासी सदैव विचरै ५२ ॥

अतैजसानिपात्राणितस्यस्युर्निर्व्रणानिच । तेषामद्भिःस्मृतंशौचंचमसानामिवाध्वरे ५३

प० । अतैजसानि पात्राणि तस्य स्युः निर्व्रणानि च तेषां अद्भिः स्मृतं शौचं चमसानां इव अध्वरे ॥

यो० । तस्य (संन्यासिनः) अतैजसानि निर्व्रणानि पात्राणि स्युः—तेषां (पात्राणां) शौचं—चमसानां अध्वरे इव अद्भिः (जलैः) स्मृतम्—(कथितम्) मनुनेति शेषः ॥

भा० । संन्यासी के पात्र—सोने आदि धातुओंके नहीं होते और छिद्रसे रहित होते हैं और उनकी शुद्धि केवल जलसे इसप्रकार होतीहै जैसे चमसाओं की यज्ञमें ॥

ता० । उस संन्यासीके पात्र सुवर्ण आदि धातुओं से भिन्न और छिद्ररहित—होतेहैं क्योंकि यमराजने इस वचनसे यह कहाहै कि सोने चांदी तांबे लोहे के पात्रों में भिक्षाग्रहण करनेका धर्म संन्यासी का नहींहै यदि ग्रहण कर भी ले तो नरक में जाता है—और उनसंन्यासीके पात्रों की इस प्रकार जलसे शुद्धि होतीहै जैसे यज्ञमें चमसों (यज्ञके पात्र) विशेष की ५३ ॥

अलाबुंदारुपात्रंचमृन्मयंवैदलंतथा । एतानियतिपात्राणिमनुःस्वायंभुवोऽब्रवीत् ५४॥

प० । अलाबुं दारुपात्रं च मृन्मयं वैदलं तथा एतानि यतिपात्राणि मनुः स्वायंभुवः अब्रवीत् ॥

---

१ सुवर्णरूप्यपात्रेषु ताम्रकांस्यायसेषुच गृह्णन्भिक्षांनधर्मोस्ति गृहीत्वानरकंव्रजेत् ॥

यो० । अलाबुं — चपुनः दारुपात्रं — मृन्मयं — तथा वैदलं (वंशनिर्मितं) — एतानि यतिपात्राणि स्वायम्भुवः मनुः अब्रवीत् (उक्तवान्) ॥

भा० । ता० । अलाबु (तुंबा)—काठकापात्र—मिट्टीकापात्र—और वैदल(बांसका पात्र)इतने पात्र स्वायम्भुवमनुने संन्यासीके लिये कहेहैं—और गोविन्दराजने तो वैदलसे वृक्षकी त्वचा का पात्र लियाहै ५४ ॥

एककालंचरेद्भैक्षंनप्रसज्जेतविस्तरे । भैक्षेप्रसक्तोहियतिर्विषयेष्वपिसज्जति ५५ ॥

प० । एककालं चरेत् भैक्षं न प्रसज्जेत् विस्तरे भैक्षे प्रसक्तः हि यतिः विषयेषु अपि सज्जति ॥

यो० । संन्यासी एककालं भैक्षं चरेत् — विस्तरे न प्रसज्जेत् — हि (यतः) भैक्षे प्रसक्तः यतिः विषयेषु अपि सज्जति (आसक्तो भवति) ॥

भा० । ता० । संन्यासी दिनमें एक समय भिक्षामांगे—और विस्तारमें आसक्ति न करै अर्थात् मनको न लगावे क्योंकि भिक्षाकी अधिकतामें आसक्तहुआ संन्यासी विषयों में भी आसक्त होजाताहै ५५ ॥

विधूमेसन्नमुसलेव्यङ्गारेभुक्तवज्जने । वृत्तेशरावसंपानेभिक्षांनित्यंयतिश्चरेत् ५६ ॥

प० । विधूमे सन्नमुसले व्यंगारे भुक्तवज्जने वृत्ते शरावसंपाते भिक्षां नित्यं यतिः चरेत् ॥

यो० । विधूमे — सन्नमुसले — व्यंगारे — भुक्तवज्जने — शरावसंपाते वृत्ते — सति — यतिः भिक्षां चरेत् (याचेत)॥

भा० । धूमा—और मुसल का शब्द—भोजनकी अग्नि—गृहस्थके मनुष्योंका भोजन—और भोलवोंका फेंकना—ये सब जब होचुकें उस समय संन्यासी भिक्षाकरै अर्थात् अपने भोजनकी इच्छासे किसीके भोजनमें बाधा न दे ॥

ता० । जिस समय पाक का धूमा न रहै और मुसल का शब्द भी निवृत्तहोजाय अर्थात् कोई चावलआदिको न कूटताहो—और भोजनकी अग्नि भी शांतहोगईहो—और गृहस्थकेसब मनुष्य भोजनकरचुके हों और शरावों (भोलवा) का संपात (फेंकना) भी होचुकाहो उस समय संन्यासी प्रतिदिन भिक्षाकी याचना करे (मांगे)—अर्थात् जब छः घटी दिन शेष रहै उस समय भिक्षाके लिये ग्राममें जाय—क्योंकि याज्ञवल्क्य ऋषिने यही कहाहै कि सायंकाल के समय दिनमें प्रमत्त न होकर भिक्षाटनकरै ५६ ॥

अलाभेनविषादीस्याल्लाभेचैवनहर्षयेत्।प्राणयात्रिकमात्रःस्यान्मात्रासंगाद्विनिर्गतः५७

प० । अलाभे न विषादी स्यात् लाभे च एव न हर्षयेत् प्राणयात्रिकमात्रः स्यात् मात्रासंगात् विनिर्गतः ॥

यो० । संन्यासी भिक्षायाः — अलाभे विषादी न स्यात् — चपुनः लाभेसति न हर्षयेत — किन्तु मात्रासंगात् विनिर्गतः सन् प्राणयात्रिकमात्रः स्यात् ॥

भा० । ता० । भिक्षाके न मिलनेपर संन्यासी दुःखी न हो—और मिलनेपर आनंद न मानै—किंतु उतनेही अन्नके भोजन में तत्पर रहै जितनेमें अपने प्राणों का निर्वाहहो—और विषयों

१ अप्रमत्तश्चरेद्भैक्षंसायाह्नेनाभिसन्धितः ॥

के संगसे रहित रहे अर्थात् दण्ड कमण्डलु आदिकों में भी श्रेष्ठ और अधम बुद्धि न करे ५७ ॥

अभिपूजितलाभांस्तुजुगुप्सेतैवसर्वशः । अभिपूजितलाभैश्चयतिर्मुक्तोऽपिबद्ध्यते ५८

प० । अभिपूजितलाभान् तु जुगुप्सेत एव सर्वशः अभिपूजितलाभैः च यतिः मुक्तः अपि बद्ध्यते ॥

यो० । सर्वशः अभिपूजितलाभान् जुगुप्सेत एव — मुक्तः अपि यतिः अभिपूजितलाभैः बद्ध्यते (बन्धनंप्राप्नोति) ॥

भा० । ता० । सत्कारपूर्वक जितनेलाभहैं उनकी जुगुप्सा (निंदा) करै—क्योंकि सत्कार-पूर्वक लाभहोनेपर देनेवाले का स्नेह और ममता आदि से मुक्तहोकर भी यति (संन्यासी) बन्धनको प्राप्तहोताहै ५८ ॥

अल्पान्नाभ्यवहारेणरहःस्थानासनेनच । ह्रियमाणानिविषयैरिन्द्रियाणिनिवर्त्तयेत ५९॥

प० । अल्पान्नाभ्यवहारेण रहःस्थानासनेन च ह्रियमाणानि विषयैः इन्द्रियाणि निवर्त्तयेत् ॥

यो० । विषयैः ह्रियमाणानि (आकृष्यमाणानि) इन्द्रियाणि अल्पान्नाभ्यवहारेण — चपुनः रहःस्थानासनेन निवर्तयेत् ॥

भा० । ता० । रूप आदि विषयोंमें लगीहुई इंद्रियोंको अल्प अन्नके भोजन और एकांत स्थानमें वास—से निवृत्तकरै (हटावे)—अर्थात् विषयोंमें आसक्त न हो क्योंकि ५९ ॥

इन्द्रियाणांनिरोधेनरागद्वेषक्षयेणच । अहिंसयाचभूतानाममृतत्वायकल्पते ६० ॥

प० । इंद्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च अहिंसया च भूतानां अमृतत्वाय कल्पते ॥

यो० । इंद्रियाणां निरोधेन चपुनः रागद्वेषक्षयेण — चपुनः भूतानां अहिंसया — संन्यासी अमृतत्वाय (मोक्षाय) कल्पते मोक्षयोग्योभवतीत्यर्थः ॥

भा० । ता० । विषयोंसे इंद्रियोंके अवरोध और रागद्वेषके नाशसे और संपूर्ण भूतोंकी हिंसा के त्यागसे संन्यासी मोक्षके योग्य होताहै ६० ॥

अवेक्षेतगतीर्नृणांकर्मदोषसमुद्भवाः । निरयेचैवपतनंयातनाश्चयमक्षये ६१ ॥

प० । अवेक्षेत गतीः नृणां कर्मदोषसमुद्भवाः निरये च एव पतनं यातनाः च यमक्षये ॥

यो० । कर्मदोषसमुद्भवाः नृणां गतीः चपुनः निरये पतनं — चपुनः यमक्षये यातनाः अवेक्षेत (पश्येत) ॥

भा० । कर्मके दोषोंसे पैदाहुई मनुष्योंकी गति और नरकमें पतन और यमलोककी पीडा इनको देखै अर्थात् इनसे भयभीतहोकर शास्त्रोक्त कर्मकरै ॥

ता० । अब इंद्रियोंके नियम (रोकना) का उपाय और विषयोंसे विरक्तिके लिये संसार के तत्त्वकी चिंताका उपदेश कहतेहैं कि—शास्त्रोक्त कर्मके न करने और निषिद्धकर्मके करनेसे मनुष्योंको पशु आदि योनिकी प्राप्तिको और नरकों में पतन को और यमलोकमें यातना अर्थात् तीक्ष्ण खड्गसे छेदन आदि के दुःख जो श्रुति और पुराणोंमें कहेहैं उनको देखै ६१ ॥

विप्रयोगंप्रियैश्चैवसंयोगंचतथाप्रियैः । जरयाचाभिभवनंव्याधिभिश्चोपपीडनम् ६२॥

प० । विप्रयोगं प्रियैः च एव संयोगं च तथा अप्रियैः जरया च अभिभवनं व्याधिभिः च उपपीडनम् ॥

यो० । चपुनः प्रियैः (पुत्रादिभिः) विप्रयोगं — तथा अप्रियैः (हिंसकादिभिः) संयोगं — चपुनः जरया अभिभवनं — चपुनः व्याधिभिः उपपीडनं — (अवेक्षेत) ॥

भा० । ता० । इष्ट पुत्र आदिके वियोग (मरण)—और अनिष्ट सिंह आदिके संयोग—और वृद्ध अवस्थासे तिरस्कार—और व्याधियोंसे पीडा—अपने कर्म दोषसे पैदाहुये इनको देखै ६२ ॥

देहादुत्क्रमणंचास्मात्पुनर्गर्भेचसंभवम् । योनिकोटिसहस्रेषुसृतीश्चास्यान्तरात्मनः ६३

प० । देहात् उत्क्रमणं च अस्मात् पुनः गर्भे च संभवं योनिकोटिसहस्रेषु सृतीः च अस्य अन्तरात्मनः ॥

यो० । चपुनः अस्य अन्तरात्मनः (जीवस्य) — अस्मात् देहात् उत्क्रमणं (मरणं) चपुनः पुनः गर्भे संभवं — चपुनः योनिकोटिसहस्रेषु सृतीः (जन्मानि) अवेक्षेत ॥

भा० । इसजीव का इसदेहसे मरण और फिर गर्भ में उत्पत्ति—और कोटियोंसहस्र निषिद्ध योनियों में जीवका गमन—इनकी चिंताकरै ॥

ता० । देहसे इसअन्तरात्मा (जीव)का उत्क्रमण (मरण) को—और फिर गर्भमें उत्पत्ति अर्थात् मर्मके बींधनेवाले जीवोंसे गर्भकीपीडा और महारोगोंसे दुःख—और श्लेष्मआदि दोषों से कंठमें उग्रवेदना आदि गर्भ के दुःखोंको—और कुत्ता शृगालआदि निकृष्ट कोटियों योनिमें जीवके जन्मोंको देखै—अर्थात् चिंताकरै ६३ ॥

अधर्मप्रभवंचैवदुःखयोगंशरीरिणाम् । धर्मार्थप्रभवंचैवसुखसंयोगमक्षयम् ६४ ॥

प० । अधर्मप्रभवं च एव दुःखयोगं शरीरिणां धर्मार्थप्रभवं च एव सुखसंयोगं अक्षयम् ॥

यो० । चपुनः शरीरिणां अधर्मप्रभवं दुःखयोगं — चपुनः धर्मार्थप्रभवं अक्षयं सुखसंयोगं — चिंतयन् ॥

भा० । ता० । और अधर्म से पैदाहुये देहधारी जीवोंके दुःख के सम्बन्ध और धर्म से पैदा हुये ब्रह्म के साक्षात्कारसे मोक्षरूप अविनाशी सुखके सम्बन्ध की चिन्ताकरै अर्थात् उक्त सुख कीही अभिलाषा करै ६४ ॥

सूक्ष्मतांचान्ववेक्षेतयोगेनपरमात्मनः । देहेषुचसमुत्पत्तिमुत्तमेष्वधमेषुच ६५ ॥

प० । सूक्ष्मतां च अन्ववेक्षेत योगेन परमात्मनः देहेषु च समुत्पत्तिं उत्तमेषु अधमेषु च ॥

यो० । योगेन परमात्मनः सूक्ष्मतां — चपुनः उत्तमेषु अधमेषु देहेषु समुत्पत्तिं अन्ववेक्षेत ॥

भा० । योगाभ्यास से परमात्मा की सूक्ष्मता और उत्तम अधम देहोंमें उत्पत्ति (जन्म) की चिन्ता करै ॥

ता० । अन्य विषयों से चित्त की वृत्ति का रोकना जो योग जिससे परमात्मा (जीव) की स्थूल शरीर की अपेक्षा सर्वान्तर्यामी होनेसे सूक्ष्मता (निरवयवता) को देखै—और देहके त्याग होने पर उत्तम अधम (देवता पशुआदि) शरीरों में शुभ अशुभ फल भोग के लिये जीव की उत्पत्ति की चिन्ता करै ६५ ॥

दूषितोऽपिचरेद्धर्मंयत्रतत्राश्रमेरतः । समःसर्वेषुभूतेषुनलिंगंधर्मकारणम् ६६ ॥

प० । दूषितः अपि चरेत् धर्मं यत्र तत्र आश्रमे रतः समः सर्वेषु भूतेषु न लिंगं धर्म्मकारणं ॥

यो० । यत्रतत्राश्रमेरतः दूषितः अपि सर्वेषुभूतेषु समः सन् धर्मंचरेत् — कुतः धर्मकारणं लिंगं न भवति ॥

भा० । ता० । जिस किसी आश्रम में टिकाहुआ मनुष्य उस आश्रमके विरुद्ध आचरण से दूषित होनेपर भी सब भूतों में सम (ब्रह्म) बुद्धि से धर्मका आचरण करे क्योंकि दण्ड आदि लिंगका धारणही धर्मका कारण नहींहै किन्तु शास्त्रोक्त धर्मका करनाहै—और यहबात भी धर्म्म की प्रधानता के लिये है कुछ लिंग के त्यागने के लिये नहींहै ६६ ॥

फलंकतकवृक्षस्ययद्यप्यम्बुप्रसादकम् । ननामग्रहणादेवतस्यवारिप्रसीदति ६७ ॥

प० । फलं कतकवृक्षस्य यद्यपि अम्बुप्रसादकम् न नामग्रहणात् एव तस्य वारि प्रसीदति ॥

यो० । यद्यपि कतकवृक्षस्य फलं अम्बुप्रसादकं भवति — तथापि तस्य नामग्रहणात् एव वारि (जलं) न प्रसीदति (स्वच्छंनभवति) ॥

भा० । ता० । यद्यपि कतक (निर्मली) के वृक्षका फल जलको प्रसन्न (स्वच्छ) करनेवाला होताहै तथापि उसफलके नाम लेनेसेही जलस्वच्छ नहींहोता किंतु जलमें गेरनेसे होताहै इसी प्रकार संन्यास के चिह्नका धारणही धर्म का कारणनहीं किंतु शास्त्रोक्तकर्म का करनाही धर्मका कारण है ६७ ॥

संरक्षणार्थंजन्तूनांरात्रावहनिवासदा । शरीरस्यात्ययेचैवसमीक्ष्यवसुधांचरेत् ६८ ॥

प० । संरक्षणार्थं जंतूनां रात्रौ अहनि वा सदा शरीरस्य अत्यये च एव समीक्ष्य वसुधां चरेत् ॥

यो० । शरीरस्य अत्ययेच (पीडायामपि) जंतूनां संरक्षणार्थं रात्रौ वा अहनि सदा वसुधां समीक्ष्य (दृष्ट्वा) चरेत् ॥

भा० । ता० । शरीरको पीडा अवस्था मेंभी रात्रि अथवा दिनमें सदैव छोटे २ जीवों (चेंटी आदि) की भलीप्रकार रक्षा के लिये पृथ्वीको देखकर विचरे ६८ ॥

अह्नारात्र्याचयाञ्जन्तून्हिनस्त्यज्ञानतोयतिः ।
तेषांस्नात्वाविशुद्ध्यर्थंप्राणायामान्षडाचरेत् ६९ ॥

प० । अह्ना रात्र्या च यान् जंतून् हिनस्ति अज्ञानतः यतिः तेषां स्नात्वा विशुद्ध्यर्थं प्राणायामान् षट् आचरेत् ॥

यो० । यतिः यान् जंतून् अह्ना वा रात्र्या वा अज्ञानतः हिनस्ति — तेषां विशुद्ध्यर्थं स्नात्वा षट् प्राणायामान् आचरेत् (कुर्यात्) ॥

भा० । ता० । रात्रि अथवा दिनमें संन्यासी जिन जीवोंकीहिंसा अज्ञानसेकरताहै—उनजीवों के मरने की हिंसा की शुद्धि के लिये स्नानकरके छः प्राणायामकरे और सातव्याहृति—गायत्री

शिरःमंत्र[1] इनको तीनवार पढ़नेसे प्राणायाम होताहै इसवसिष्ठजी के वचनानुसार प्राणायाम जानना ६९ ॥

प्राणायामाब्राह्मणस्यत्रयोऽपिविधिवत्कृताः । व्याहृतिप्रणवैर्युक्ताविज्ञेयंपरमंतपः ७०॥

प० । प्राणायामाः ब्राह्मणस्य त्रयः अपि विधिवत्कृताः व्याहृतिप्रणवैः युक्ताः विज्ञेयं परमं तपः ॥

यो० । विधिवत्कृताः व्याहृतिप्रणवैः युक्ताः त्रयः अपि प्राणायामाः ब्राह्मणस्य परमं तपः विज्ञेयम् (ज्ञातव्यम्) ॥

भा० । व्याहृति और ओंकार शिरःमंत्रसंयुक्त—और विधिपूर्वक कियेहुये तीन भी प्राणायाम ब्राह्मण का परमतप जानना ॥

ता० । सात व्याहृति और ओंकारसहित—और विधिपूर्वक कियेहुये तीनोंप्राणायाम ब्राह्मण का परमतप जानना अर्थात् पूरक कुंभक रेचकविधिसे किये प्राणायामही ब्राह्मणका परमतपहै[2] और पूरक कुंभक रेचकका स्वरूप योगि याज्ञवल्क्य ने इसप्रकार कहाहै कि[3] नासिकासे ऊपर खींचेहुये ऊर्ध्वश्वासको पूरक और निश्चलश्वासको कुंभक और छोड़ेहुये श्वासको रेचककहते हैं इससे तीनप्राणायाम तो अवश्यकरने यदि अधिककरै तो अधिकपाप का नाशहोताहै ७० ॥

दह्यन्तेध्मायमानानांधातूनांहियथामलाः ।
तथेन्द्रियाणांदह्यन्तेदोषाःप्राणस्यनिग्रहात् ७१ ॥

प० । दह्यंते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः तथा इंद्रियाणां दह्यंते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥

यो० । ध्मायमानानां धातूनां यथा मलाः दह्यन्ते — तथा प्राणस्य निग्रहात् इंद्रियाणां दोषाः दहंते (नश्यंति) ॥

भा० । ता० । जैसे अग्निमें तपाई हुई धातु (सोनाआदि) ओंके मैल दग्ध होतेहैं (जलते हैं) इसी प्रकार प्राणायाम करने से प्राणों के रोकने से इन्द्रियों के दोष (विषयों में आसक्ति आदि) दग्ध होते हैं अर्थात् नष्टहोते हैं ७१ ॥

प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्चकिल्बिषम् ।
प्रत्याहारेणसंसर्गान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ७२॥

प० । प्राणायामैः दहेत् दोषान् धारणाभिः च किल्बिषम् प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेन अनीश्वरान् गुणान् ॥

यो० । प्राणायामैः दोषान् (रागादीन्) — धारणाभिः किल्बिषम् (पापं) प्रत्याहारेण संसर्गान् (विषयसम्बन्धान्) ध्यानेन अनीश्वरान् गुणान् (क्रोधलोभमोहादीन्) दहेत् (नाशयेत्) ॥

भा० । प्राणायामोंसे रागआदि दोषोंको—और धारणासे पापको—और प्रत्याहार संसर्गोंको—और ध्यानसे क्रोध आदि अनीश्वर (जीव) के गुणों को दग्धकरदे अर्थात् नष्टकरै ॥

---

१ ओंभूः ओंभुवः ओंस्वः ओंमहः ओंजनः ओंतपः ओंसत्यं ओंतत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्यधीमहिधियोयोनः प्रचोदयात् आपोज्योतिरसोमृतं ब्रह्मभूर्भुवःस्वरोम् ॥

२ सव्याहृतिंसप्रणवांगायत्रींशिरसासह त्रिःपठेदायतप्राणः प्राणायामःसउच्यते ॥

३ नासिकोत्कृष्टउच्छ्वासोध्मानःपूरकउच्यते कुम्भको निश्चलश्वासो मुच्यमानस्तुरेचकः ॥

ता० । पूर्वोक्त प्राणायामों के करनेसे राग आदि दोषोंको—और धारणाओंसे अर्थात् अपनेको अपेक्षितदेशमें बैठकर परब्रह्मआदिमें जो मनको स्थिरकरना उसधारणासे पापको—और प्रत्याहारसे अर्थात् विषयोंसे इन्द्रियों के रोकनेसे विषयोंके सम्बन्धोंको—और ब्रह्मके ध्यानसे अर्थात्—सोहमस्मि—वह ब्रह्ममैंहूं इस एकाकार चिंतन से अनीश्वर (जो ईश्वर में नहीं) गुणों (क्रोध लोभ मोह आदि) को दग्धकरदे अर्थात् नष्ट करदे ७२ ॥

उच्चावचेषुभूतेषुदुर्ज्ञेयामकृतात्मभिः । ध्यानयोगेनसंपश्येद्गतिमस्यान्तरात्मनः ७३ ॥

प० । उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयां अकृतात्मभिः ध्यानयोगेन संपश्येत् गतिं अस्य अन्तरात्मनः ॥

यो० । अकृतात्मभिः दुर्ज्ञेयां उच्चावचेषु भूतेषु अस्य अन्तरात्मनः गतिं ध्यानयोगेन संपश्येत् ॥

भा० । जिनका मन वशमें नहीं उनको जानने के अयोग्य जो उत्तम अधम योनियों में इस अन्तरात्माकी गति (जन्म) उसको ध्यानके अभ्यास से देखे ॥

ता० । उत्तम और अधम (देव पशुआदि) जातियोंमें इस अन्तरात्मा की उस गति को देखै (जो गति मलीन अन्तःकरण मनुष्यों के जानने अयोग्यहै) ध्यानके योगसे भलीप्रकार देखै—और फिर अज्ञान—काम्य—और निषिद्ध कर्मों से यह जीव की गति होती है यह जानकर ब्रह्मनिष्ठ होजाय ७३ ॥

सम्यग्दर्शनसंपन्नःकर्मभिर्ननिबध्यते । दर्शनेनविहीनस्तुसंसारंप्रतिपद्यते ७४ ॥

प० । सम्यग्दर्शनसंपन्नः कर्मभिः न निबध्यते दर्शनेन विहीनः तु संसारं प्रतिपद्यते ॥

यो० । सम्यग्दर्शनसम्पन्नः पुरुषः कर्मभिः न निबध्यते – दर्शनेन विहीनः तु संसारं प्रतिपद्यते (प्राप्नोति) ॥

भा० । ब्रह्मज्ञान से युक्त पुरुष कर्म के बन्धनों को प्राप्त नहीं होता—और जो ब्रह्मज्ञानरहित है वह संसार को प्राप्तहोता है ॥

ता० । ब्रह्मज्ञानी कर्मों से नहीं बँधता अर्थात् कर्म से उसका फिर जन्म नहीं होता क्योंकि पूर्वसंचित पुण्य पापका ब्रह्मज्ञानसे इस[1] श्रुति और स्मृतिके अनुसार नाश होजाताहै कि जैसे मुंजकी रुई अग्निमें गेरने से दग्ध होजाती है इसीप्रकार इसके सम्पूर्ण पाप नष्टहोजाते हैं और यह ब्रह्मरूप होजाता है तिस कार्य्यकारण रूप ब्रह्मके ज्ञान होनेपर इसके सब कर्म नष्ट होजाते हैं—इससे पुण्य पाप दोनोंका सम्बन्ध नहीं रहता और ब्रह्मज्ञानके अनन्तर दैवाधीन पाप होने पर भी पापका सम्बन्ध नहीं होता—क्योंकि इस[2] श्रुति में यह लिखाहै जैसे कमल के पत्ते को जलका सम्बन्ध नहीं होता—इसी प्रकार ज्ञानी को देहमें पापका सम्बन्ध नहीं होता—और देहके आरंभक पुण्य पापका सम्बन्ध भी नहीं होता—यहीबात ब्रह्ममीमांसा में इस[3] श्रुतिमें व्यासजी

१ तद्यथा इषीकातूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयेत एवंहास्य सर्वेपाप्मानः प्रदूयंते इत्या ब्रह्मैवभवतीति क्षीयंते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे इतिस्मृतेः ॥

२ पुष्करपलाशमापो न श्लिष्यंते एवमेवं देहे पाप कर्म न श्लिष्यते ॥

३ तदधिगमे उत्तरपूर्वार्धयोरश्लेषविनाशौ तद्व्यपदेशात् ॥

ने निर्णयकी है कि उस ब्रह्म उपदेश की प्राप्ति के समय पहिले कर्म का नाश और अगले कर्म का असम्बन्ध होताहै और जो ब्रह्मके साक्षात्कार से हीन है वह तो जन्म मरणके प्रबन्ध को प्राप्त होताहै ७४ ॥

अहिंसयेन्द्रियासंगैर्वैदिकैश्चैवकर्मभिः । तपसश्चरणैश्चोग्रैःसाधयन्तीहतत्पदम् ७५ ॥

प० । अहिंसया इंद्रियासंगैः वैदिकैः च एव कर्मभिः तपसः चरणैः च उग्रैः साधयंति इह तत्पदम् ॥

यो० । ज्ञानिनः अहिंसया इंद्रियासंगैः चपुनः वैदिकैः कर्मभिः चपुनः उग्रैः तपसः चरणैः इह (संसारे) तत्पदं साधयंति (प्राप्नुवंति) ॥

भा० । अहिंसा–इंद्रियोंका विषयोंमें असम्बन्ध–और वेदोक्त कर्म–उग्र तप इनसे ब्रह्मपदको ज्ञानवान् सिद्ध करते हैं ॥

ता० । निषिद्ध हिंसाके त्यागसे–इंद्रियोंके विषयोंसे–असंगसे–और वेदोक्त नित्यकर्मों (संध्या वंदन आदि) करनेसे क्योंकि इस वचनमें काम्य कर्मको वर्जित कहाहै और उग्र (कृच्छ्र चांद्रायण आदि) तपके करने से इसलोक में ब्रह्ममें लयरूप ब्रह्मपदको प्राप्तहोते हैं–पहिले सम्यग्दर्शनको मोक्षका हेतु कहा इस श्लोकसे सम्यग्दर्शन के सहकारी कर्मको मोक्षकाहेतु कहा ७५ ॥

अस्थिस्थूणंस्नायुयुतंमांसशोणितलेपनम् । चर्मावनद्धंदुर्गन्धिपूर्णंमूत्रपुरीषयोः ७६ ॥

जराशोकसमाविष्टंरोगायतनमातुरम् । रजस्वलमनित्यंचभूतावासमिमंत्यजेत् ७७ ॥

प० । अस्थिस्थूणं स्नायुयुतं मांसशोणितलेपनम् चर्मावनद्धं दुर्गंधिपूर्णं मूत्रपुरीषयोः ॥

प० । जराशोकसमाविष्टं रोगायतनं आतुरं रजस्वलं अनित्यं च भूतावासं इमं त्यजेत् ॥

यो० । अस्थिस्थूणं स्नायुयुतं – मांसशोणितलेपनं – चर्मावनद्धं – मूत्रपुरीषयोः दुर्गंधिपूर्णं – जराशोकसमाविष्टं – रोगायतनं आतुरं – रजस्वलं चपुनः अनित्यं इमं भूतावासं देहं त्यजेत् ॥

भा० । ता० । अस्थि जिसमें स्थूणा(थूनी) हैं स्नायुरूपरज्जुसे जो बँधाहै–मांस और रुधिरसे जो लिप्तहै–चर्मसे जो ढकाहै–और मूत्र और पुरीष (विष्ठा) की दुर्गंधिसे जो पूर्णहै–जरा और दुःखसे जो संयुतहै–रोगोंका जो आधारहै और क्षुधा तृषा शीतउष्ण आदिसे जोआतुर (कातर) है और प्रायः जो रजोगुणसे संयुक्तहै और जो विनाशीहै–और पृथिवी आदिपांचों भूतोंका जो आवास (घर) है–ऐसे इस देहको त्यागदे अर्थात् ऐसा कर्म न करे जिससे फिर देहका सम्बन्धहो ७६ । ७७ ॥

नदीकूलंयथावृक्षोवृक्षंवाशकुनिर्यथा । तथात्यजन्निमंदेहंकृच्छ्राद्ग्राहाद्विमुच्यते ७८ ॥

प० । नदीकूलं यथा वृक्षः वृक्षं वा शकुनिः यथा तथा त्यजन् इमं देहं कृच्छ्रात् ग्राहात् विमुच्यते ॥

यो० । नदीकूलं त्यजन् यथावृक्षः – वा वृक्षं त्यजन् यथा शकुनिः (पक्षी) कृच्छ्राद्विमुक्तो भवति तथा इमं देहं त्यजन् सन् कृच्छ्राद् ग्राहात् ज्ञानी विमुच्यते (मुक्तोभवति) ॥

१. काम्यकर्मता न प्रशस्ता ॥

भा० । जैसे नदीके कूलको वृक्ष और वृक्षको पक्षी त्यागताहै इस प्रकार इस देहको त्यागता हुआ ज्ञानी दुःखरूप ग्राहसे छूटजाता है ॥

ता० । ब्रह्मके उपासक को देहके त्यागके समयमेंही मोक्षहोताहै—परंतु प्रारब्ध कर्मोंका भोगसेही नाशहोताहै—इससे देहके त्यागनेके दो प्रकारहैं कि१—जो मनुष्य कर्माधीन देहके त्यागकी प्रतीक्षाकरै (बाट देखे) वह इस प्रकार देहको त्यागे जैसे नदीके कूल (तट) को वृक्ष—अर्थात् वृक्ष अपने पड़नेको नहींजानता हुआ ही नदीके वेगसे गिरजाताहै—२—और जो ज्ञान और कर्मकी श्रेष्ठतासे भीष्म आदिके समान स्वाधीन मृत्युहो वह इस प्रकार देहको त्यागे जैसे वृक्षको पक्षी अर्थात् जैसे पक्षी वृक्षको अपनी इच्छासे त्यागताहै—इस प्रकार देहको त्यागता हुआ मुमुक्षु दुःखरूप ग्राहसे छूटजाताहै ७८ ॥

प्रियेषुस्वेषुसुकृतमप्रियेषुचदुष्कृतम् । विसृज्यध्यानयोगेनब्रह्माभ्येतिसनातनम् ७९ ॥

प० । प्रियेषु स्वेषु सुकृतं अप्रियेषु च दुष्कृतं विसृज्य ध्यानयोगेन ब्रह्म अभ्येति सनातनम् ॥

यो० । स्वेषु प्रियेषु सुकृतं (पुण्यं) चपुनः अप्रियेषु दुष्कृतं (पापं) ध्यानयोगेन विसृज्य सनातनं ब्रह्म अभ्येति (प्राप्नोति) ॥

भा० । ब्रह्मज्ञानी अपने मित्रों में पुण्यको और अपने शत्रुओं में पापको छोड़कर ध्यान के योगसे सनातन ब्रह्मको प्राप्तहोता है ॥

ता० । ब्रह्म ज्ञानी अपने मित्रोंमें हितकारियोंमें सुकृत (पुण्य) को और अपने अप्रिय (शत्रु) में दुष्कृत (पाप) को निःक्षेप (त्याग) कर ध्यानके योगसे नित्य ब्रह्मको प्राप्तहोताहै अर्थात् ब्रह्ममें लीन होताहै क्योंकि इस श्रुति[1] में यह लिखाहै इस ब्रह्मज्ञानीके पुत्र दाय (भाग) को पुत्र और साधकृत्य (कर्म) को मित्र और पापकृत्य को शत्रु प्राप्तहोतेहैं और इसीप्रकार इस[2] श्रुतिमें यह लिखाहै उन दोनों पुण्य पापोंमेंसे सुकृतको ज्ञाति के प्रिय मनुष्य और दुष्कृत को ज्ञातिके अप्रिय मनुष्य प्राप्तहोतेहैं—और ब्रह्म मीमांसामें पूर्वोक्त आदि श्रुति वाक्योंका उदाहरण देकर पुण्य पापकी हानि होनेपर भी ब्रह्मकी उपासना का निर्णय इस[3] आदि सूत्रोंसे व्यासजीने—कियाहै कि पुण्य पाप की हानि होनेपर भी मोक्षके लिये कृशअवस्थामें भी वेदोंमें ब्रह्मको गावे—इसमें कोई यह शंका करतेहैं कि अन्य के पुण्य पाप अन्य में कैसे चले जाते हैं—इसका यह समाधान है कि धर्म और अधर्म की व्यवस्थामें शास्त्र प्रमाण है और इतरमें पुण्य पाप के जानेमें भी शास्त्रही प्रमाण है—इससे शास्त्रके द्वारा पुण्य पाप का अन्य में जाना सिद्ध होसक्ता है—इसप्रकार शास्त्रसे बाधित होनेसे यह अनुमान भी नहीं होसक्ता कि अन्यके पुण्य पाप—अन्य में नहीं जासके—स्थानके भेदसे—अन्य के भोजनवत्—क्योंकि यदि अनुमानसे शास्त्रका बाधहोय तो यह भी अनुमान प्रमाण होजायगा कि प्राणी का शिर—शुद्ध है—प्राणीका अंगहोनेसे—शंखवत्—सिद्धांत यह है कि शास्त्रोक्त होनेसे शंख शुद्ध है और शिर नहीं—और मेधातिथि और गोविंदराज तो इस श्लोक का यह अर्थ करतेहैं—कि यदि ज्ञानी के प्यारको

१ तस्यपुत्रा दायमुपयंति सुहृदः साधुकृत्यं द्विषतः पापकृत्यं ॥

२ ततस्तेषु सुकृतदुष्कृतेष तेतस्य प्रियाज्ञातयः सुकृतमुपयंत्यप्रियादुष्कृतम् ॥

३ सुकृतदुष्कृतयोर्हानिमात्रश्रवणेप्युपासनं प्रतिपत्तव्यं- हानौतूपायनशब्दशेषत्वात् कुशाच्छंदस्तुत्युपगानवत् ॥

अथवा द्वेष (वैर) को कोई करै तो उनमें अपने ही पुण्य पापको कारण मानकर अर्थात् मेरी प्रीति में मेराही पुण्य कारणहै और द्वेषमें पाप–उनके करनेवाले रागद्वेषियोंको त्यागकर नित्य ब्रह्मभावको प्राप्तहोताहै–यह मेधातिथि गोविंदराज का अर्थ ठीक नहीं है क्योंकि विसृज्य (त्यागकर) इस क्रिया में श्लोकमें कहेहुये पुण्य पाप रूप कर्म को छोड़कर उसके करनेवाले रागद्वेषी पुरुषों को कर्म मानना अयोग्य है और उन कर्मोंमें भी विसृज्य इस क्रिया को त्याग कर प्रकल्प्य (मानकर) इस अपूर्व क्रिया को मानना भी अयोग्यहै और इस मनुकी व्याख्या में इसै प्रमाण से व्यासजी का कहा वेदार्थही प्रमाणहै और अब के पण्डितोंने जो अभिमानसे कल्पना करलिया है वह प्रमाण नहीं है ७६ ॥

यदाभावेनभवतिसर्वभावेषुनिःस्पृहः । तदासुखमवाप्नोतिप्रेत्यचेहचशाश्वतम् ८० ॥

प० । यदा भावेन भवति सर्वभावेषु निःस्पृहः तदा सुखं अवाप्नोति प्रेत्य च इह च शाश्वतं ॥

यो० । यदा सर्वभावेषु भावेन विषयेषु (दोषबुद्ध्या) निःस्पृहः भवति तदा प्रेत्य चपुनः इह शाश्वतं (अविनाशी) सुखं अवाप्नोति मुक्तोभवतीत्यर्थः ॥

भा० । ता० । जब मन से विषयों में दोष बुद्धि के द्वारा सब पदार्थों में इच्छाको त्यागताहै तभी इह लोकमें संतोष के सुख को और परलोकमें मोक्षके सुखको प्राप्तहोता है ८० ॥

अनेनविधिनासर्वांस्त्यक्त्वासंगान्शनैःशनैः। सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तोब्रह्मण्येवावतिष्ठते ८१ ॥

प० । अनेन विधिना सर्वान् त्यक्त्वा संगान् शनैः शनैः सर्वद्वंद्वविनिर्मुक्तः ब्रह्मणि एव अवतिष्ठते ॥

यो० । अनेन विधिना शनैः शनैः सर्वान् संगान् त्यक्त्वा सर्वद्वंद्वविनिर्मुक्तः सन् ब्रह्मणि एव अवतिष्ठते (लीयते) ॥

भा० । ता० । इस पूर्वोक्त विधि से पुत्र स्त्री आदि में ममतारूप सम्पूर्ण संगों को शनैः २ त्यागकर मान अपमान आदि सब द्वंद्वोंसे रहित होकर ब्रह्मज्ञानी ब्रह्ममें ही लीन होताहै ८१ ॥

ध्यानिकंसर्वमेवैतद्यदेतदभिशब्दितम् । नह्यनध्यात्मवित्कश्चित्क्रियाफलमुपाश्नुते ८२॥

प० । ध्यानिकं सर्वं एव एतत् यत् एतत् अभिशब्दितम् न हि अनध्यात्मवित् कश्चित् क्रियाफलं उपाश्नुते ॥

यो० । यत् एतत् (पूर्वं) अभिशब्दितं तत्सर्वं ध्यानिकं एव (परमात्मध्यानजन्यं एवभवति) हि (यतः) कश्चित् अपि अनध्यात्मवित् क्रियाफलं न उपाश्नुते (नभुनक्ति) ॥

भा० । जो यह पूर्व कहा है वहसब परमात्मा के ध्यान से होता है क्योंकि जिसको अध्यात्म ज्ञान नहीं है वह कोई भी उक्त ध्यानरूप कर्म के फलको प्राप्त नहीं होता ॥

ता० । जो यह पुत्र आदिमें ममता का और मान अपमान का त्याग और ब्रह्म में स्थिति (लय) कहा है वह सब परमात्मा के ध्यानसे होता है अर्थात् उक्त ध्यानी कोही ममता और मान अपमान आदि नहीं होते और वह ब्रह्मरूप होताहै क्योंकि कोई भी अनध्यात्मवित् है

---

१ व्यासव्याख्यातवेदार्थमेवमस्यामनुस्मृतेः मन्येनकल्पितंगर्वाद्वार्चीनैर्विचक्षणैः ॥

अर्थात् अपने जीवात्माको ब्रह्मरूप नहीं जानता वहउक्त ध्यानके ममताका और मान अपमान के त्याग आदि फलको भी प्राप्त नहीं होता ८२ ॥

अधियज्ञंब्रह्मजपेदाधिदैविकमेवच। आध्यात्मिकंचसततंवेदान्ताभिहितंचयत् ८३ ॥

प० अधियज्ञं ब्रह्म जपेत् आधिदैविकं एव च आध्यात्मिकं च सततं वेदान्ताभिहितं च यत् ॥

यो० । अधियज्ञं चपुनः आधिदैविकं–चपुनः आध्यात्मिकं चपुनः वेदान्ताभिहितं यत् ब्रह्म तत् जपेत् ॥

भा० । अधियज्ञ वेद को और आधिदैविक और आध्यात्मिक वेदको और वेदांतों में कहा जो वेद उसको निरन्तर जपै ॥

ता० । पहिले ब्रह्मके ध्यानके स्वरूपकी उपासना कही अब इस श्रुति के अनुसार[1] ब्रह्म की उपासनाका जो अंग (साधन) वेदका जप उसको कहते हैं कि इस आत्मा के जानने की इच्छा ब्राह्मण वेदान्त के जपसे करते हैं–अर्थात् ज्ञानका साधन वेदका जप कहते हैं–कि अधियज्ञ (जिसमें यज्ञ करने की विधि कही हो) वेदको और आधिदैविक (जिस में इन्द्र आदि देवताओं की स्तुति कही हो) वेदको–और आध्यात्मिक (जिसमें जीवका स्वरूप कहाहो) वेद को और जो वेदान्तों में कहाहो (सत्यंज्ञानमनन्तंब्रह्म इत्यादि) उस वेद को निरन्तर जपै अर्थात् ज्ञानके मोक्षके उपाय जपोंसे तत्पर रहै ८३ ॥

इदंशरणमज्ञानामिदमेवविजानताम्। इदमन्विच्छतांस्वर्गमिदमानन्त्यमिच्छताम् ८४

प० । इदं शरणं अज्ञानां इदं एव विजानतां इदं अन्विच्छतां स्वर्गं इदं आनंत्यं इच्छताम् ॥

यो० । इदं (वेद रूपं ब्रह्म) अज्ञानां शरणं–विजानतां इदं एव शरणं–स्वर्गं अन्विच्छतां (पुरुषाणां) इदं शरणं–आनंत्यं (मोक्षं) इच्छतां इदं शरणं (भवति) ॥

भा० । ता० । जो वेदका अर्थ नहीं जानते उनकी भी गति पाठमात्र से वेदहीहै और जो अर्थ जानते हैं उनकी गति पापनाशक होनेसे वेदही है–और स्वर्ग और मोक्ष की इच्छा करने वाले पुरुषों की भी गति वेदही है क्योंकि स्वर्ग मोक्ष की प्राप्ति के उपाय वेदसे ही जाने जाते हैं ८४ ॥

अनेनक्रमयोगेनपरिव्रजतियोद्विजः। सविधूयेहपाप्मानंपरंब्रह्माधिगच्छति ८५ ॥

प० । अनेन कर्मयोगेन परिव्रजति यः द्विजः सः विधूय इह पाप्मानं परं ब्रह्म अधिगच्छति ॥

यो० । यः द्विजः अनेन क्रमयोगेन परिव्रजति–सः इह पाप्मानं विधूय (विनाश्य) परंब्रह्म अधिगच्छति (प्राप्नोति)

भा० । ता० । जो द्विज इसक्रम से संन्यास आश्रमको ग्रहणकरता है वह इसीलोक में पाप को नष्टकरके परब्रह्म को प्राप्तहोताहै अर्थात् ब्रह्मसाक्षात्कार से उपाधि शरीर के नाशहोनेपर ब्रह्म में एकताको प्राप्तहोताहै ८५ ॥

एषधर्मोऽनुशिष्टोवोयतीनांनियतात्मनाम्। वेदसंन्यासिकानांतुकर्मयोगंनिबोधत ८६॥

प० । एषः धर्मः अनुशिष्टः वः यतीनां नियतात्मनां वेदसंन्यासिकानां तु कर्मयोगं निबोधत ॥

१ तमेतं वेदान्तवचनेन ब्राह्मणाविविदिषन्ति ॥

यो० । नियतात्मनां यतीनां एषः धर्मः (पूर्वोक्तः) वः (युष्मभ्यं) अनुशिष्टः (कथितः) वेदसंन्यासिकानां तु कर्मयोगं यूयं निबोधत (शृणुत) ॥

भा० । वशमें है मन जिनके ऐसे यतियोंका यह धर्म तुमको कहा अब वेद संन्यासियों (कुटीचक) के कर्मयोगको तुम सुनो ॥

ता० । नियत (वशीभूत) है मन जिनका ऐसे यतियों (संन्यासी) का अर्थात् कुटीचक बहूदक हंस परमहंस इनचारों का यह पूर्वोक्त धर्म तुमको कहा—अब वेदोक्तकर्मके करनेवाले जो कुटीचकरूप वेदसंन्यासी केवल उनकेही धर्मको तुमसुनो क्योंकि इस महाभारत के वचनानुसार चारप्रकार के भिक्षुः (संन्यासी) होते हैं तिनमें कुटीचक पुत्रके भी यहां वसकर भिक्षा खासक्ता है—गोविंदराज तो यहकहते हैं कि जिसने वेदोक्त अग्निहोत्रआदि कर्म त्यागदियेहों और ज्ञानके सम्पादक वेदोक्तकर्मको जो करताहो ऐसे गृहस्थीको वेद संन्यासी कहते हैं—सो ठीक नहींहै क्योंकि अग्निहोत्र करनेवाले गृहस्थीको अंत्येष्टिकर्म के समय अग्नियोंका त्याग करना और चौथे आश्रममें आत्मामें ही अग्नियोंका आरोप (मानना) शास्त्रने कहा है जब ये दोनों नहीं तो वैसेही अग्नियोंका त्यागहोजायगा—इससे गृहस्थीको वेदसंन्यासी बतातेहुये गोविंदराजने अग्नियोंका त्यागवैसेहीअर्थात् कहा—और मेधातिथिने निराश्रमीको वेद संन्यासी कहाहै उसके मतमेंभी चार आश्रमोंकानियम नहींबनसक्ता—इससे हमाराही कथनश्रेष्ठहै८६ ॥

ब्रह्मचारीगृहस्थश्चवानप्रस्थोयतिस्तथा । एतेगृहस्थप्रभवाश्चत्वारःपृथगाश्रमाः ८७ ॥

प० । ब्रह्मचारी गृहस्थः चँ वानप्रस्थः यतिः तथा एते गृहस्थप्रभवाः चत्वारः पृथगाश्रमाः ॥

यो० । ब्रह्मचारी चपुनः गृहस्थः वानप्रस्थः तथायतिः एते चत्वारः पृथगाश्रमाः गृहस्थप्रभवाः — भवंति ॥

भा० । ता० । यद्यपि वेद संन्यासीके प्रज्ञात कर्मके त्यागके पीछे यह वक्तव्यथा कि यह वेद संन्यासी आश्रम वालाहै वा नहीं—तथापि अब चारही आश्रमोंको कहतेहैं—ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ और यति—गृहस्थीसे पैदाहुये ये चार आश्रम पृथक्२ होतेहैं ८७ ॥

सर्वेऽपिक्रमशस्त्वेतेयथाशास्त्रंनिषेविताः । यथोक्तकारिणंविप्रंनयन्तिपरमांगतिम् ८८ ॥

प० । सर्वे अपि क्रमशः तु एते यथाशास्त्रं निषेविताः यथोक्तकारिणं विप्रं नयंति परमां गतिं ॥

यो० । यथाशास्त्रं क्रमशः निषेविताः सर्वे अपि एते यथोक्तकारिणं विप्रं परमां गतिं नयंति (प्रापयंति) ॥

भा० । ता० । शास्त्रके अनुसार सेवन किये ये चारों भी आश्रम (अर्थात् दो वा एक) यथोक्त (शास्त्र रीतिसे) करने वाले ब्राह्मणको परमगति (मोक्ष) को प्राप्तकरतेहैं ८८ ॥

सर्वेषामेवचैतेषांवेदस्मृतिविधानतः । गृहस्थउच्यतेश्रेष्ठःसत्रीनेतान्बिभर्तिहि ८९ ॥

प० । सर्वेषां एव चँ एतेषां वेदस्मृतिविधानतः गृहस्थः उच्यते श्रेष्ठः सः त्रीन् एतान् बिभर्ति हि ॥

यो० । एतेषां सर्वेषां अपिमध्ये वेदस्मृतिविधानतः गृहस्थः श्रेष्ठः (मन्वादिभिः) उच्यते — हि (यतः) सः (गृहस्थः) एतान् त्रीन् बिभर्ति (पोषयति) ॥

१ चतुर्धाभिक्षवस्तुस्युः कुटीचकबहूदकौ हंसःपरमहंसश्चयोयःपश्चात्सउत्तमः ॥

भा० । ता० । वेद संन्यासीका पुत्रके ऐश्वर्यमें वास कहेंगे इसलिये गृहस्थकी उत्तमता कहते हैं कि संपूर्ण इन ब्रह्मचारी आदि आश्रमोंमें प्रायः अग्निहोत्र आदि वेद और स्मृतिमें उक्तकर्म के करनेसे गृहस्थको मनु आदिकोंने श्रेष्ठ कहाहै क्योंकि यह गृहस्थी तीनों आश्रमोंको भिक्षाके देनेसे पुष्ट करताहै (पालताहै)—क्योंकि यह कहाहै कि प्रतिदिन ज्ञान और अन्नके लिये गृहस्थके आश्रय होतेहैं ८६ ॥

यथानदीनदाःसर्वेसागरेयान्तिसंस्थितिम्।तथैवाश्रमिणःसर्वेगृहस्थेयान्तिसंस्थितिम्९०

प० । यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यांति संस्थितिं तथा एव आश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यांति संस्थितिम् ॥

यो० । यथा सर्वे नदीनदाः सागरे संस्थितिं यांति तथैव सर्वे आश्रमिणः गृहस्थे संस्थितिं यांति (लभंते) ॥

भा० । ता० । जिसप्रकार संपूर्ण नदी और नद सागर में संस्थिति (भलीप्रकार टिकना) को प्राप्तहोतेहैं तिसीप्रकार गृहस्थ से भिन्न तीनों आश्रम भी गृहस्थमेंही स्थिति को प्राप्तहोते हैं अर्थात् गृहस्थ के आश्रयमें जीतेहैं ९० ॥

चतुर्भिरपिचैवैतैर्नित्यमाश्रमिभिर्द्विजैः । दशलक्षणकोधर्मःसेवितव्यःप्रयत्नतः ९१ ॥

प० । चतुर्भिः अपि च एव एतैः नित्यं आश्रमिभिः द्विजैः दशलक्षणकः धर्मः सेवितव्यः प्रयत्नतः ॥

यो० । चतुर्भिः आश्रमिभिः चापि एतैः द्विजैः दशलक्षणकः धर्मः प्रयत्नतः नित्यं सेवितव्यः (कर्त्तव्यः) ॥

भा० । ता० । चारों भी आश्रमवाले इन द्विजोंको दशलक्षणवाला धर्म बड़े यत्नसे प्रतिदिन सेवनकरना—अर्थात् दशप्रकार धर्म के अनुसारही चलना ९१ ॥

धृतिःक्षमादमोऽस्तेयंशौचमिन्द्रियनिग्रहः।धीर्विद्यासत्यमक्रोधोदशकंधर्मलक्षणम्९२

प० । धृतिः क्षमा दमः अस्तेयं शौचं इंद्रियनिग्रहः धीः[1] विद्या सत्यं अक्रोधः दशकं धर्मलक्षणम् ॥

यो० । एतत् धृतिः आदिदशकं धर्मलक्षणं (स्वरूपं) भवति ॥

भा० । संतोष—क्षमा—मनको वशमें रखना—न्यायसे धनको लेना—शुद्ध रहना—विषयोंसे इंद्रियोंको हटाना—शास्त्रके तत्त्वको जानना—आत्मा का ज्ञान—सत्यबोलना क्रोध न करना—यह दश प्रकार का धर्म का स्वरूप है ॥

ता० । उसी दशप्रकार के धर्मका स्वरूप और संख्याको दिखाते हैं—कि १ धृतिः (संतोष) २ क्षमा (यदि कोई अपना तिरस्कारभी करै तो उसका उपकारही करना)३—दम अर्थात् विकार के हेतु विषय के समीप आनेपर भी मनको वशमेंरखना क्योंकि इसे सनंदनके वचनसे यही दम पायाजाताहै—और गोविंदराजने शीत आतपआदि द्वंद्वोंके सहनेको दमकहाहै—४ अस्तेय अर्थात् अन्यायसे धनको ग्रहण न करना—५ शौच अर्थात् शास्त्रके अनुसार मिट्टी और जलसे

१ यस्मात्त्रयोऽप्याश्रमिणोज्ञानेनान्नेनचान्वहम् ॥

१ विकारहेतुविषयसन्निधानेप्यविक्रियत्वंमनसोदमनं दमः ॥

देहको शुद्धरखना—६ इंद्रियनिग्रह अर्थात् रूपआदि विषयों से चक्षुःआदि इंद्रियोंको हटाना—७ धी (शास्त्र के तत्त्वको जानना) ८ विद्या (आत्माको जानना) ९ सत्य (यथार्थबोलना) १० अक्रोध अर्थात् क्रोधकाहेतुहोनेपरभी क्रोधको न करना—यह दशप्रकारका धर्मकास्वरूपहै ९२ ॥

दशलक्षणानिधर्मस्ययेविप्राःसमधीयते । अधीत्यचानुवर्त्तन्तेतेयान्तिपरमांगतिम् ९३

प० । दशलक्षणानि धर्मस्य ये विप्राः समधीयंते अधीत्य च अनुवर्तंते ते यांति परमां गतिं ॥

यो० । ये विप्राः धर्मस्य दशलक्षणानि समधीयते—चपुनः अधीत्य अनुवर्त्तंते ते परमांगतिं यांति (प्राप्नुवंति) ॥

भा० । ता० । जो ब्राह्मण इनधर्म के दशलक्षणों को पढ़ते हैं और पढ़कर उसके अनुसार चलतेहैं वे ब्राह्मण ब्रह्मज्ञानकी उत्कटता (अधिकता) से मोक्षरूप परमगतिको प्राप्तहोतेहैं ९३ ॥

दशलक्षणकंधर्ममनुतिष्ठन्समाहितः । वेदान्तंविधिवच्छ्रुत्वासंन्यसेदनृणोद्विजः ९४ ॥

प० । दशलक्षणकं धर्मं अनुतिष्ठन् समाहितः वेदांतं विधिवत् श्रुत्वा संन्यसेत् अनृणः द्विजः ॥

यो० । समाहितः दशलक्षणकं धर्मं अनुतिष्ठन् सन् विधिवत् वेदांतं श्रुत्वा अनृणः द्विजः संन्यसेत् ॥

भा० । ता० । दशलक्षणधर्मको सावधान मनसे करके और गृहस्थ अवस्थामेंही वेदांत को विधिवत् सुनकर—दूरकियेहैं तीनोंऋण जिसने ऐसा द्विज संन्यासको आश्रयकरै ९४ ॥

संन्यस्यसर्वकर्माणिकर्मदोषानपानुदन् । नियतोवेदमभ्यस्यपुत्रैश्वर्येसुखंवसेत् ९५ ॥

प० । संन्यस्य सर्वकर्माणि कर्मदोषान् अपानुदन् नियतः वेदं अभ्यस्य पुत्रैश्वर्ये सुखं वसेत् ॥

यो० । सर्वकर्माणि संन्यस्य—कर्मदोषान् अपानुदन—नियतः द्विजः वेद अभ्यस्य—पुत्रैश्वर्ये सुखं वसेत् ॥

भा० । ता० । गृहस्थी के सम्पूर्ण अग्निहोत्रआदि कर्मों को त्यागकर—और अज्ञानसे जो जीव मरें उसपाप को प्राणायामआदिसे नष्टकरताहुआ और जितेंद्रियहोकर वेद (उपनिषद) को पढ़कर द्विज पुत्रके ऐश्वर्यमेंही सुखसे बसै- अर्थात् वस्त्र भोजनकी चिंतासे रहितहोकर पुत्र की दी भिक्षाकोही ग्रहण करतारहै—यहधर्म केवल कुटीचक संन्यासीकाहीहै ९५ ॥

एवंसंन्यस्यकर्माणिस्वकार्यपरमोऽस्पृहः । संन्यासेनापहत्यैनःप्राप्नोतिपरमांगतिम् ९६

प० । एवं संन्यस्य कर्माणि स्वकार्यपरमः अस्पृहः संन्यासेन अपहत्य एनः प्राप्नोति परमां गतिं ॥

यो० । स्वकार्यपरमः अस्पृहः द्विजः एवं कर्माणि संन्यस्य—संन्यासेन एनः (पापं) अपहत्य परमांगतिं (मोक्षं) प्राप्नोति ॥

भा० । ता० । ब्रह्मज्ञानरूप अपने कार्य में तत्पर और स्वर्गआदिकीभी इच्छासे रहित द्विज इसप्रकार अग्निहोत्रआदि कर्मोंको त्यागकर और संन्यास से पापको दूरकरके मोक्षरूप परम-गतिको प्राप्तहोताहै ९६ ॥

एषवोऽभिहितोधर्माब्राह्मणस्यचतुर्विधः । पुण्योऽक्षयफलःप्रेत्यराज्ञांधर्मंनिबोधत ९७

इतिमानवेधर्मशास्त्रेभृगुप्रोक्तायांसंहितायांषष्ठोऽध्यायः ६ ॥

प० । एषः वः अभिहितः धर्मः ब्राह्मणस्य चतुर्विधः पुण्यः अक्षयफलः प्रेत्य राज्ञां धर्मं निबोधत ॥

यो० । ब्राह्मणस्य – पुण्यः प्रेत्य अक्षयफलः एषः चतुर्विधः धर्मः वः (युष्माकं) अभिहितः (उक्तः)--राज्ञां धर्मं यूयं निबोधत (शृणुत) ॥

भा० । ता० । पवित्र और परलोक में अक्षयफल का दाता यह ब्राह्मण का चारप्रकार का (ब्रह्मचर्यआदि) धर्म तुमको कहा अब राजाओं के धर्मको तुम सुनो ९७ ॥

इति मन्वर्थभास्करे षष्ठोऽध्यायः ६ ॥

अथसप्तमोऽध्यायः ॥

राजधर्मान्प्रवक्ष्यामियथावृत्तोभवेन्नृपः । संभवश्चयथातस्यसिद्धिश्चपरमायथा १ ॥

प० । राजधर्मान् प्रवक्ष्यामि यथावृत्तः भवेत् नृपः संभवः च यथा तस्य सिद्धिः च परमा यथा ॥

यो० । नृपः यथावृत्तः भवेत् – तस्य संभवः (उत्पत्तिः) यथा – चपुनः तस्य परमा सिद्धिः यथा – भवेत् – तथा राजधर्मान् अहं प्रवक्ष्यामि (कथयिष्यामि) ॥

भा० । राजाके वर्त्ताव के भेद और राजाकी उत्पत्ति–और उसके इसलोक परलोकमें सिद्धि के प्रकारको तुमको कहताहूं ॥

ता० । इसश्लोक धर्मशब्द से इसलोक के और परलोक के लिये कर्त्तव्य कर्म लेते हैं और राजशब्दसे भी जो राजसिंहासनपर बैठाहो वहलेते हैं केवल क्षत्रियही नहीं–क्योंकि जो देश और पुरआदिकों की पालनाकरै वही नृपशब्दका अर्थ है--राजाको जैसा आचरण (वर्त्ताव) करना चाहिये–वैसेही उसके करनेयोग्य धर्मोंको–और उस राजाकी जिसप्रकार उत्पत्ति उस प्रकारको और जैसे इसलोक और परलोक में इसको फलकी प्राप्तिहोती है उसप्रकार को मैं तुमको कहताहूं १ ॥

ब्राह्मंप्राप्तेनसंस्कारंक्षत्रियेणयथाविधि । सर्वस्यास्ययथान्यायंकर्त्तव्यंपरिरक्षणम् २ ॥

प० । ब्राह्मं प्राप्तेन संस्कारं क्षत्रियेण यथाविधि सर्वस्य अस्य यथान्यायं कर्त्तव्यं परिरक्षणम् ॥

यो० । यथाविधि ब्राह्मं संस्कारं प्राप्तेन क्षत्रियेण (राज्ञा) अस्य सर्वस्य (जगतः) यथान्यायं परिरक्षणं कर्त्तव्यम् ॥

भा० । विधिपूर्वक वेदोक्त संस्कार को प्राप्तहुये क्षत्रियको सम्पूर्ण इस जगत् की नीति के अनुसार रक्षाकरनी ॥

ता० । शास्त्रोक्तरीति से ब्राह्म (वेदकीप्राप्ति का उपाय) संस्कार को प्राप्तहुये क्षत्रियको–अपने देश (राज्य) में टिकेहुये इस सम्पूर्ण जगत्की नीति के अनुसार रक्षा करनी इससे यह बात दर्शाई कि राज्यका अधिकारी क्षत्रियही है अन्यनहीं–इसीसे शास्त्रके तत्त्वजानना और जीवन के लिये जगत्की रक्षा ये दो कर्म क्षत्रिय के कहेंगे और ब्राह्मण विपत्ति में क्षत्रिय धर्म से जीवे–और वैश्य भी क्षत्रियधर्म से और शूद्र क्षत्रिय वैश्य के धर्म से विपत्ति में जीवे–यह

नारद मुनि ने कहाहै कि ब्राह्मण किसीसमय भी शूद्रका कर्म न करै–और शूद्र ब्राह्मण के कर्मको न करै क्योंकि इनके करनेसे ये दोनों पतित होजातेहैं–इनदोनों का उत्तम जाति और नीचजातिका कर्मनहीं है किंतु मध्यम (क्षत्रिय वैश्य) जातिके कर्मकोही ये दोनोंकरैं–क्योंकि मध्यमजाति के कर्म सबके साधारण हैं–और क्षत्रियकर्म यहहै कि रक्षा और धर्म के लिये वेद और तप–और धर्मपूर्वक रक्षाकरनेवाले क्षत्रियका धर्मसे छठाभाग होताहै अर्थात् रक्षाकेलिये छठाभागले यदि अपने भोगके लिये ग्रहणकरै तो नरक में जाता है २ ॥

अराजकेहिलोकेऽस्मिन्सर्वतोविद्रुतेभयात् । रक्षार्थमस्यसर्वस्यराजानमसृजत्प्रभुः ३ ॥

प० । अराजके हि लोके अस्मिन् सर्वतः विद्रुते भयात् रक्षार्थं अस्य सर्वस्य राजानं असृजत् प्रभुः ॥

यो० । हि (यतः) अराजके अस्मिन् लोके भयात् सर्वतः विद्रुते सति – अस्य सर्वस्य (जगतः) रक्षार्थंप्रभुः (ब्रह्मा) राजानं असृजत् (सृष्टवान्) ॥

भा० । ता० । क्योंकि राजा से हीन यह जगत् चारोंओरसे चलायमान हुआ तब इस सम्पूर्ण जगत् की रक्षा के लिये प्रभुने राजाको रचा तिससे राजाको जगत् की रक्षा अवश्य करनी ३ ॥

इन्द्रानिलयमार्काणामग्नेश्चवरुणस्यच । चन्द्रवित्तेशयोश्चैवमात्राभिर्निर्मितोनृपः ४ ॥

प० । इन्द्रानिलयमार्काणां अग्नेः च वरुणस्य च चन्द्रवित्तेशयोः च एव मात्राभिः निर्मितः नृपः ॥

यो० । इन्द्रानिलयमार्काणां – चपुनः अग्नेः चपुनः वरुणस्य – चपुनः चन्द्रवित्तेशयोः मात्राभिः (अंशैः) नृपः (प्रभुणा) निर्मितः (सृष्टः) ॥

भा० । ता० । इन्द्र–पवन–यम–सूर्य्य–अग्नि–वरुण–चन्द्रमा और कुवेर–इन आठों की मात्रा (अंश) ओंसे राजा को प्रभु ने रचा–अर्थात् राजा में इन आठों लोकपालों के अंश होते हैं ४ ॥

यस्मादेषांसुरेन्द्राणांमात्राभ्योनिर्मितोनृपः । तस्मादभिभवत्येषसर्वभूतानितेजसा ५ ॥

प० । यस्मात् एषां सुरेन्द्राणां मात्राभ्यः निर्मितः नृपः तस्मात् अभिभवति एषः सर्वभूतानि तेजसा ॥

यो० । यस्मात् एषां सुरेन्द्राणां मात्राभ्यः नृपः निर्मितः तस्मात् एषः (नृपः) तेजसा सर्वभूतानि अभिभवति (तिरस्करोति) ॥

भा० । ता० । जिससे इन देवताओंके इन्द्रोंकी मात्राओंसे परमेश्वरने राजाको रचा तिससे यह राजा अपने तेज से सम्पूर्ण भूतों का तिरस्कार करताहै अर्थात् सब प्राणियोंमें राजाही अधिक तेजस्वी होता है ५ ॥

---

१ नकथंचनकुर्वीत ब्राह्मणःकर्मवार्षलं वृषलःकर्मचब्राह्मं पतनीयेहितेतयोः- उत्कृष्टंचापकृष्टंच तयोःकर्मनविद्यते मध्यमेकर्मणीहित्वा सर्वसाधारणेहिते रक्षणंवेदधर्मार्थं तपःक्षत्रस्यरक्षणं- सर्वतोधर्मषड्भागोराज्ञोभवतिरक्ष्यतः ॥

तपत्यादित्यवच्चैषचक्षूंषिचमनांसिच । नचैनंभुविशक्नोतिकश्चिदप्यभिवीक्षितुम् ६ ॥

प० । तपति आदित्यवत् च एषः चक्षूंषि च मनांसि च न च एनं भुवि शक्नोति कश्चित् अपि अभिवीक्षितुम् ॥

यो० । एषः (राजा) पश्यतां पुरुषाणां चक्षूंषि चपुनः मनांसि आदित्यवत् तपति — चपुनः एनं (राजानं) भुवि कश्चित् अपि मनुष्यः अभिवीक्षितुं (सन्मुखंद्रष्टुं) न शक्नोति ॥

भा० । ता० । यह राजा देखने वाले मनुष्यों के नेत्र और मनों को सूर्य्य के समान तपायमान करता है—और इसराजा के पृथिवी पर कोई सन्मुख देखने को समर्थ नहीं होता ६ ॥

सोऽग्निर्भवतिवायुश्चसोऽर्कःसोमःसधर्मराट् । सकुबेरःसवरुणःसमहेन्द्रःप्रभावतः ७ ॥

प० । सः अग्निः भवति वायुः च सः अर्कः सोमः सः धर्मराट् सः कुबेरः सः वरुणः सः महेन्द्रः प्रभावतः ॥

यो० । सः राजा प्रभावतः अग्निः वायुः अर्कः सोमः धर्मराट् — कुबेरः वरुणः महेन्द्रः भवति ॥

भा० । ता० । पूर्वोक्त अग्नि आदि के अंशों से उत्पत्ति और अग्नि आदिकों के समान कार्य करने से नवमें अध्याय में राजाको तेजस्वी कहेंगे—इससे वह राजा अपने प्रभावसे अग्निवायु सूर्य चन्द्र—धर्मराज—कुबेर वरुण और इन्द्ररूप होताहै ७ ॥

बालोऽपिनावमन्तव्योमनुष्यइतिभूमिपः । महतीदेवताह्येषानररूपेणतिष्ठति ८ ॥

प० । बालः अपि न अवमन्तव्यः मनुष्यः इति भूमिपः महती देवता हि एषा नररूपेण तिष्ठति ॥

यो० । मनुष्यः इति बुद्ध्या बालः अपि राजा पुरुषेण न अवमन्तव्यः कुतः एषा महती देवता नररूपेण तिष्ठति ॥

भा० । ता० । यह मनुष्य है इस बुद्धिसे बालक राजाका भी अपमान न करै क्योंकि यह कोई एक महती (बड़ी) देवता मनुष्य रूपमें टिकरहीहै और देवता के अपमान में अधर्म्म आदि आठदोष कहे हैं ८ ॥

एकमेवदहत्यग्निर्नरंदुरुपसर्पिणम् । कुलंदहतिराजाग्निःसपशुद्रव्यसंचयम् ९ ॥

प० । एकं एव दहति अग्निः नरं दुरुपसर्पिणं कुलं दहति राजाग्निः सपशुद्रव्यसंचयं ॥

यो० । अग्निः दुरुपसर्पिणं एकं एव नरं दहति — राजाग्निः सपशुद्रव्यसंचयं कुलं दहति ॥

भा० । ता० । जो अग्नि के समीप विना कहेजाय उस दुरुपसर्पी एकही मनुष्यको अग्नि दग्ध करती है और राजारूप अग्नि तो पशु और द्रव्यसंचय सहित कुलको दग्ध करदेतीहै ९ ॥

कार्यंसोऽवेक्ष्यशक्तिंचदेशकालौचतत्त्वतः । कुरुतेधर्मसिद्ध्यर्थंविश्वरूपंपुनःपुनः १० ॥

प० । कार्यं सः अवेक्ष्य शक्तिं च देशकालौ च तत्त्वतः कुरुते धर्मसिद्ध्यर्थं विश्वरूपं पुनः पुनः ॥

यो० । सः राजा कार्यं — स्वस्वशक्तिं चपुनः देशकालौ तत्त्वतः अवेक्ष्य — धर्मसिद्ध्यर्थं पुनः पुनः विश्वरूपं (अनेकरूपं) कुरुते — (धारयति) ॥

भा० । वहराजा कार्य शक्ति देशकाल इनको यथार्थ देखकर धर्मकी सिद्धि के लिये अनेक रूप धारता है ॥

ता० । वहराजा कार्य और अपनीशक्ति और देशकाल को यथार्थरीति से देखकर धर्म की सिद्धिकेलिये बहुतसे रूपोंको करता है—यदि अशक्तिकी दशाहोय तो क्षमाकरता है और शक्ति होनेपर जड़से उखाड़देताहै इसीप्रकार एकही देशकालमें अपने प्रयोजन के अनुसार शत्रु मित्र वा उदासीन होजाताहै तिससे मैं राजाका प्याराहूं इसबुद्धिसे राजाका अपमान न करै १० ॥

यस्यप्रसादेपद्माश्रीर्विजयश्चपराक्रमे । मृत्युश्चवसतिक्रोधेसर्वतेजोमयोहिसः ११ ॥

प० । यस्य प्रसादे पद्मा श्रीः विजयः च पराक्रमे मृत्युः च वसति क्रोधे सर्वतेजोमयः हि सः

यो० । यस्य (राज्ञः) प्रसादे पद्मा श्रीः — चपुनः पराक्रमे विजयः — क्रोधेच मृत्युः — वसति सः राजा सर्वतेजोमयः (भवति) ॥

भा० । ता० । जिस राजाकी प्रसन्नतामें महती श्री वसतीहै और जिसके पराक्रममें विजय वसताहै और जिसके क्रोधमें मृत्यु वसता है वह राजा संपूर्ण तेजका रूपहै अर्थात् राजाकी प्रसन्नतासे अधिक धन—और पराक्रमसे विजय—और क्रोधसे मृत्यु होतीहै इससे ऐसे तेजस्वी राजाको लक्ष्मी और विजय और जीवनका अभिलाषी मनुष्य सदाप्रसन्न रक्खे ११ ॥

तंयस्तुद्वेष्टिसंमोहात्सविनश्यत्यसंशयम् । तस्यह्याशुविनाशायराजाप्रकुरुतेमनः १२॥

प० । तं यः तु द्वेष्टि संमोहात् सः विनश्यति असंशयं तस्य हि आशु विनाशाय राजा प्रकुरुते मनः ॥

यो० । यः पुरुषः संमोहात् तं द्वेष्टि सः असंशयं विनश्यति — हि — (यतः) तस्य विनाशाय राजा आशु मनः प्रकुरुते (नियुंक्ते) ॥

भा० । ता० । जो पुरुष उस राजाका द्वेष करताहै वह निश्चयसे नष्टहोजाताहै क्योंकि उसके विनाशके लिये राजा शीघ्रही मनको नियुक्त करताहै (लगाताहै) १२ ॥

तस्माद्धर्मयमिष्टेषुसव्यवस्येन्नराधिपः । अनिष्टंचाप्यनिष्टेषुतंधर्मंनविचालयेत् १३ ॥

प० । तस्मात् धर्मं यं इष्टेषु सः व्यवस्येत् नराधिपः अनिष्टं च अपि अनिष्टेषु तं धर्मं न विचालयेत् ॥

यो० । तस्मात् सः नराधिपः इष्टेषुयं धर्मं — अनिष्टेषु च यं अनिष्टं व्यवस्येत् (व्यवस्थापयेत्) तं धर्मं न विचालयेत् ॥

भा० । ता० । तिससे वह राजा अपने इष्टों (अपेक्षितों) में जिस धर्मकी और अनिष्टों में जिस अनिष्टकी व्यवस्था करदे उस राजाके धर्म्म (नियम) को चलायमान न करै अर्थात् राजाकी अनुमति में रहै १३ ॥

तस्यार्थेसर्वभूतानांगोप्तारंधर्ममात्मजम् । ब्रह्मतेजोमयंदण्डमसृजत्पूर्वमीश्वरः १४ ॥

प० । तस्य अर्थे सर्वभूतानां गोप्तारं धर्मं आत्मजं ब्रह्मतेजोमयं दंडं असृजत् पूर्वं ईश्वरः ॥

यो० । तस्य (राज्ञः) अर्थे सर्वभूतानां गोप्तारं — धर्मं आत्मजं ब्रह्मतेजोमयं दंडं ईश्वरः पूर्वं असृजत् (सृष्टवान्) ॥

भा० । ता० । उस राजाके लिये सब प्राणियोंका रक्षक धर्मरूप अपना पुत्र और ब्रह्मका तेजरूप दंडको ब्रह्माने पहिले रचा १४ ॥

तस्यसर्वाणिभूतानिस्थावराणिचराणिच । भयाद्भोगायकल्पन्तेस्वधर्मान्नचलन्तिच १५

प० । तस्य सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च भयात् भोगाय कल्पंते स्वधर्मात् न चलंति च ॥

टी० । तस्य दंडस्य भयात् स्थावराणि चराणि सर्वाणि भूतानि भोगाय कल्पंते चपुनः स्वधर्मात् न चलंति – (स्वधर्मेतिष्ठंति) ॥

भा० । उसी दंडके भयसे चराचर प्राणी भोगोंको भोगतेहैं और अपने धर्मसे चलायमान नहीं होते ॥

ता० । उसदंडके भयसे सब चराचर प्राणी भोगको करतेहैं अन्यथा दुर्बल प्राणीके धन और स्त्री आदिको प्रबल ग्रहण करनेपर और प्रबलके कोभी अति प्रबल ग्रहण करनेपर किसी का भी भोग सिद्ध न होगा–स्थावर वृक्ष आदिके काटलेनेपर स्थावरों के भोगमें बाधापड़जाय–और दंडहीके भयसे नित्य और नैमित्तिक कर्मकरनेसे अपने२ धर्मसे चलायमान नहींहोते १५ ॥

तंदेशकालौशक्तिंचविद्यांचावेक्ष्यतत्त्वतः । यथार्हतःसंप्रणयेन्नरेष्वन्यायवर्त्तिषु १६ ॥

प० । तं देशकालौ शक्तिं च विद्यां च अवेक्ष्य तत्त्वतः यथार्हतः संप्रणयेत् नरेषु अन्यायवर्त्तिषु ॥

टी० । देशकालौ – चपुनः शक्तिं – चपुनः विद्यां तत्त्वतः अवेक्ष्य अन्यायवर्त्तिषु नरेषु तं दंडं यथार्हतः संप्रणयेत् (प्रवर्त्तयेत्) ॥

भा० । ता० । देश काल–और दंडकी शक्ति और विद्या आदिको यथार्थ रीतिसे देखकर और इस अपराधपर यह दंड योग्यहै इत्यादि शास्त्रके अनुसार देखकर अन्यायके करनेवाले मनुष्यों पर उस दंडको राजा प्रवृत्तकरै अर्थात् अपराधके अनुसार दंडदे १६ ॥

सराजापुरुषोदण्डःसनेताशासिताचसः । चतुर्णामाश्रमाणांचधर्मस्यप्रतिभूःस्मृतः १७

प० । सः राजा पुरुषः दंडः सः नेता शासिता च सः चतुर्णां आश्रमाणां च धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः ॥

टी० । सः दंडः एव राजा – पुरुषः सः नेता – सः शासिता – सःएव चतुर्णां आश्रमाणां धर्मस्य प्रतिभूः (साक्षी) मुनिभिः स्मृतः ॥

भा० । वह दंडही–राजा वही पुरुष–वही नेता वही शिक्षक–वही चारों आश्रमोंके धर्मोंका साक्षी मुनियोंने कहाहै ॥

ता० । वस्तुतः वह दंडही राजाहै क्योंकि दंडकेही भयसे उसमें राजशक्ति होतीहै–और वह दंडही पुरुषहै उससे अन्य सब स्त्रीहै क्योंकि दंडके योग्य होनेसे स्त्रीके समान हैं–वही नेता कार्य्यों का प्राप्तकरनेवालाहै–वही शिक्षाका दाताहै और चारोंआश्रमों के धर्मों का प्रतिभूः (साक्षी) भी दंडही है अर्थात् दंडके भयसेही मनुष्य अपने २ धर्म में स्थितरहते हैं–यह सब मुनियों ने कहाहै १७ ॥

दण्डःशास्तिप्रजाःसर्वादण्डएवाभिरक्षति । दण्डःसुप्तेषुजागर्त्तिदण्डंधर्मंविदुर्बुधाः १८॥

प० । दंडः शास्ति प्रजाः सर्वाः दंडः एव अभिरक्षति दंडः सुप्तेषु जागर्त्ति दंडं धर्मं विदुः बुधाः ॥

यो० । सर्वाः प्रजाः दंडः शास्ति — दंडः एव अभिरक्षति — सुप्तेषु दंडः जागर्ति — बुधाः दंडं धर्मं विदुः ॥

भा० । सम्पूर्ण प्रजा को दण्डही शिक्षा देता है और दण्डही रक्षाकरता है और मनुष्योंके सोने पर दण्डही जागता है और पण्डितों ने दण्डको ही धर्म कहाहै ॥

ता० । सम्पूर्ण प्रजाओं को दण्डही आज्ञादेता है इससे शासिता दण्डका नाम ठीक कहा है और दण्डही सम्पूर्णप्रजाओं की रक्षाकरताहै इससे राजादण्डका ठीक नाम है और मनुष्योंके सोने पर भी दण्डही जागता है क्योंकि दण्डकेही भयसे चोर आदि प्रवृत्त नहीं होते और धर्म का कारण होनेसे पण्डितों ने दण्डकोही धर्म कहाहै—कारणको भी कार्य माना गया है क्योंकि इस लोक और परलोक के भयसे ही धर्म को करते हैं १८ ॥

समीक्ष्यसधृतःसम्यक्सर्वारञ्जयतिप्रजाः।असमीक्ष्यप्रणीतस्तुविनाशयतिसर्वतः १९॥

प० । समीक्ष्य सः धृतः सम्यक् सर्वाः रंजयति प्रजाः असमीक्ष्य प्रणीतः तु विनाशयति सर्वतः ॥

यो० । समीक्ष्य धृतः सः दण्डः सर्वाः प्रजाः सम्यक् रंजयति — असमीक्ष्य प्रणीतः तु सर्वतः विनाशयति ॥

भा० । ता० । शास्त्र के अनुसार भलीप्रकार दियाहुआ वह दण्ड सम्पूर्ण प्रजा को अनुरक्त (राजासे प्रसन्न) करता है और विनाविचारे तो दिया वह दण्ड सबको नष्ट करताहै अर्थात् स्त्री पुत्र समेत विनष्ट करदेताहै १९ ॥

यदिनप्रणयेद्राजादण्डंदण्ड्येष्वतन्द्रितः।शूलेमत्स्यानिवापक्ष्यन्दुर्बलान्बलवत्तराः२०

प० । यदि न प्रणयेत् राजा दण्डं दंड्येषु अतंद्रितः शूले मत्स्यान् इव अपक्ष्यन् दुर्बलान् बलवत्तराः ॥

यो० । यदि अनलसः राजा दण्ड्येषु दण्डम् प्रणयेत् — तर्हि बलवत्तराः मनुष्याः दुर्बलान् शूले मत्स्यान् इव अपक्ष्यन् — (पचेयुः) ॥

भा० । ता० । आलस्यको त्यागकर दण्ड देनेके योग्योंको दण्ड नदे तो बलवान् मनुष्य दुर्बल मनुष्यों को इसप्रकार पकाले जैसे शूलपर मत्स्यों को पकाते हैं अर्थात् बलवान् दुर्बलों की हिंसा करडालें २० ॥

अद्यात्काकःपुरोडाशंश्वाचलिह्याद्धविस्तथा ।
स्वाम्यंचनस्यात्कस्मिंश्चित्प्रवर्त्तेताधरोत्तरम् २१ ॥

प० । अद्यात् काकः पुरोडाशं श्वा च लिह्यात् हविः तथा स्वाम्यं च न स्यात् कस्मिंश्चित् प्रवर्त्तेत अधरोत्तरम् ॥

यो० । यदि राजा दण्डम् आचरिष्यत् तदा काकः पुरोडाशं अद्यात् चपुनः तथा श्वा हविः लिह्यात् — कस्मिंश्चित् स्वाम्यं च न स्यात् अधरोत्तरं (अपि) प्रवर्त्तेत ॥

भा० । ता० । जो राजा दण्ड को नदे तो यज्ञों के विषे सर्वथा हविके अयोग्य काकभी पुरोडाश को भक्षण करले और कुत्ता हविः को चाटले—और किसी वस्तु में किसीका भी स्वाम्य नहो क्योंकि उससे बलवान् उसपसे ग्रहण करले—और चारों वर्णोंमें छोटा जो शूद्रहै वह भी प्रधान ब्राह्मण के समान वर्त्ताव करनेलगे २१ ॥

सर्वोदण्डजितोलोकोदुर्लभोहिशुचिर्नरः । दण्डस्यहिभयात्सर्वंजगद्भोगायकल्पते २२॥

प० । सर्वः दण्डजितः लोकः दुर्लभः हि शुचिः नरः दण्डस्य हि भयात् सर्वं जगत् भोगाय कल्पते ॥

यो० । सर्वः लोकः दण्डजितः भवति — शुचिः नरः दुर्लभः अस्ति — हि (यतः) दण्डस्य भयात् सर्वजगत् भोगाय कल्पते (समर्थो भवति) ॥

भा० । ता० । दण्डसे ही नियम से रहना हुआ सम्पूर्ण जगत् सन्मार्ग में टिकता है क्योंकि स्वभाव से शुद्ध मनुष्य तो दुर्लभ है और दण्डके ही भयसे सम्पूर्ण जगत् आवश्यक भोजन आदिके भोग करने को समर्थ होताहै २२ ॥

देवदानवगन्धर्वारक्षांसिपतगोरगाः । तेऽपिभोगायकल्पन्तेदण्डेनैवनिपीडिताः २३ ॥

प० । देवदानवगन्धर्वाः रक्षांसि पतगोरगाः ते अपि भोगाय कल्पंते दण्डेन एव निपीडिताः ॥

यो० । देवदानवगन्धर्वाः रक्षांसि—पतगोरगाः (ये सन्ति) ते अपि दण्डे (एव निपीडिताः सन्तः भोगाय कल्पन्ते (समर्थाः भवंति) ॥

भा० । देवता—दानव—गन्धर्व—राक्षस—पक्षी—सर्प—भी दण्डकेही भयसे भोगकरनेको समर्थ होतेहैं—अर्थात् वर्षादान आदि के उपकार से भोगके सम्पादकहोते हैं ॥

ता० । पहिले दण्डको भोगका सम्पादक कह भी आयेहैं तोभी दृढ़ताके लिये पुनः कहते हैं—कि इन्द्र सूर्य वायु आदि देवता—दानव—गन्धर्व—राक्षस—पक्षी सर्प जो हैं वेभी जगदीश्वर के दण्ड से पीडित हुये ही भोगकरने को समर्थ होतेहैं क्योंकि इस[1] श्रुति से यह प्रतीत होताहै कि इस ईश्वरके भय से अग्नि सूर्य तपते हैं-इन्द्र वायु—और मृत्यु येभी इसीके भयसे दौड़ते हैं अर्थात् ईश्वरकी आज्ञा को करतेहैं २३ ॥

दुष्येयुःसर्ववर्णाश्चभिद्येरन्सर्वसेतवः । सर्वलोकप्रकोपश्चभवेद्दण्डस्यविभ्रमात् २४ ॥

प० । दुष्येयुः सर्ववर्णाः च भिद्येरन् सर्वसेतवः सर्वलोकप्रकोपः च भवेत् दंडस्य विभ्रमात् ॥

यो० । दंडस्य विभ्रमात (अकरणात) सर्ववर्णाः दुष्ययुः — सर्वसेतवः भिद्येरन — सर्वलोकप्रकोपश्च भवेत् ॥

भा० । ता० । दंडके न देनेसे संपूर्ण वर्ण दूषितहोजायँ अर्थात् परस्पर की स्त्रियोंके गमनसे वर्णसंकर होजायँ—और शास्त्रकी सब मर्यादा अर्थात् धर्म अर्थ काम मोक्षके फल नष्टहोजायँ—और संपूर्ण जगत्का कोप होजाय अर्थात् चोरी और साहस आदिके होनेसे सब जगत्में क्षोभ होजाय २४ ॥

यत्रश्यामोलोहिताक्षोदण्डश्चरतिपापहा । प्रजास्तत्रनमुह्यंतिनेताचेत्साधुपश्यति २५ ॥

प० । यत्र श्यामः लोहिताक्षः दंडः चरति पापहा प्रजाः तत्र न मुह्यंति नेता चेत् साधु पश्यति ॥

यो० । श्यामः लोहिताक्षः पापहा दंडः यत्र चरति — तत्र प्रजाः न मुह्यंति — चेत् (यदि) नेता (दंडदाता) साधु पश्यति — दंयादंय दंडस्य सम्यक जानाति ॥

---

१ भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपतिसूर्यः भयादिंद्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावतिपंचमः ॥

भा० । ता० । जिस देशमें शास्त्रद्वारा ज्ञान–श्यामरूप और रक्त नेत्र और पापका नाशक–दंडविचरताहै अर्थात् शास्त्रके अनुकूल दंड दियाजाताहै वहां प्रजा व्याकुल नहींहोती यदि दंड देनेवाला भलीप्रकार दंडकेदेने को जानताहो २५ ॥

तस्याहुःसंप्रणेतारंराजानंसत्यवादिनम् । समीक्ष्यकारिणंप्राज्ञंधर्मकामार्थकोविदम् २६॥

प० । तस्य आहुः संप्रणेतारं राजानं सत्यवादिनम् समीक्ष्यकारिणं प्राज्ञं धर्मकामार्थकोविदम् ॥

यो० । तस्य संप्रणेतारं सत्यवादिनं – समीक्ष्यकारिणं – प्राज्ञं – धर्मकामार्थकोविदं राजानं – बुधाः आहुः ॥

भा० । ता० । उसदंडके देनेवाला सत्यवादी–शास्त्रोक्तकरनेवाला–और प्राज्ञ अर्थात् तत्त्व अतत्त्वका ज्ञाता–और धर्म अर्थ काममें पंडित–जो राजा अर्थात् राजसिंहासनपर स्थितपुरुष वही कहाहै अर्थात् उक्तदंडको दे २६ ॥

तंराजाप्रणयन्सम्यक्त्रिवर्गेणाभिवर्द्धते । कामात्माविषमःक्षुद्रोदण्डेनैवनिहन्यते २७॥

प० । तं राजा प्रणयन् सम्यक् त्रिवर्गेण अभिवर्द्धते कामात्मा विषमः क्षुद्रः दंडेन एव निहन्यते ॥

यो० । तं दंडं राजा सम्यक् प्रणयन् सन् त्रिवर्गेण अभिवर्द्धते – कामात्मा – विषमः क्षुद्रः राजा दंडेन एव निहन्यते ॥

भा० । ता० । उस दंड यथोचित देतेहुये राजा के धर्म अर्थ काम वृद्धिको प्राप्तहोते हैं–और जो राजा कामीहै और जो विषम (अनुचित) दंडकोदेता है वहराजा उसीदंडसे माराजाता है अर्थात् प्रत्युत वही अपने अत्याचारसे मृत्युको प्राप्तहोताहै २७ ॥

दण्डोहिसुमहत्तेजोदुर्द्धरश्चाकृतात्मभिः । धर्माद्विचलितंहन्तिनृपमेवसबान्धवम् २८॥

प० । दंडः हि सुमहत् तेजः दुर्द्धरः च अकृतात्मभिः धर्मात् विचलितं हंति नृपं एव सबान्धवम् ॥

यो० । हि (यतः) सुमहत्तेजः चपुनः अकृतात्मभिः दुर्द्धरः दंडः धर्मात् विचलितं सबांधवं नृपं एव हंति ॥

भा० । ता० । अत्यंत महान् तेज वाला और शास्त्रके ज्ञानसे जो हीनहैं उनको दुर्द्धर–दंड धर्मसे चलायमान राजाको बंधुओं सहित नष्ट करदेताहै २८ ॥

ततोदुर्गंचराष्ट्रंचलोकंचसचराचरम् । अंतरिक्षगतांश्चैवमुनीन्देवांश्चपीडयेत् २९ ॥

प० । ततः दुर्गं च राष्ट्रं च लोकं च सचराचरम् अंतरिक्षगतान् च एव मुनीन् देवान् च पीडयेत् ॥

यो० । ततः अनंतरं दुर्गं – राष्ट्रं (देशं) चराचरं लोकं चपुनः अंतरिक्षगतान् मुनीन् चपुनः देवान् दंडः पीडयेत् ॥

भा० । ता० । पूर्वोक्त राजाके नष्ट करनेके अनंतर वह दंड–दुर्ग (किला)–देश और चराचर जगत् और अंतरिक्षमें रहनेवाले मुनि–और देवता इनको नष्ट करदेताहै क्योंकि देवता और

मुनि ये सब इस श्रुतिके अनुसार यज्ञकी हवि से जीतेहैं इससे दंड न होय तो यज्ञोंके नष्टहोनेसे हविके न मिलनेपर देवता और मुनि स्वयमेव नष्टहोजायँ २९ ॥

सोऽसहायेनमूढेनलुब्धेनाकृतबुद्धिना । नशक्योन्यायतोनेतुंसक्तेनविषयेषुच ३० ॥

प० । सः असहायेन मूढेन लुब्धेन अकृतबुद्धिना न शक्यः न्यायतः नेतुं सक्तेन विषयेषु च ॥

यो० । असहायेन — मूढेन — लुब्धेन — अकृतबुद्धिना — विषयेषु सक्तेन च राज्ञा सः दण्डः न्यायतः नेतुं न शक्यः ॥

भा० । ता० । मंत्रि–सेनापति पुरोहित आदिसे रहित और मूर्ख–लोभी और शास्त्रसे संस्कृत बुद्धिसे हीन–और विषयोंमें आसक्त–जो राजा वह उस दंडको नहीं देसक्ताहै ३० ॥

शुचिनासत्यसंधेनयथाशास्त्रानुसारिणा । प्रणेतुंशक्यतेदण्डःसुसहायेनधीमता ३१ ॥

प० । शुचिना सत्यसंधेन यथाशास्त्रानुसारिणा प्रणेतुं शक्यते दंडः सुसहायेन धीमता ॥

यो० । शुचिना — सत्यसंधेन — यथाशास्त्रानुसारिणा — सुसहायेन — धीमता — राज्ञा दंडः प्रणेतुं शक्यते — नान्येन ॥

भा० । ता० । धन और देह आदिमें शुद्ध–और सत्यप्रतिज्ञ–शास्त्रके अनुसार जो वर्त्ते–अच्छे२ जिसके मंत्रि आदि सहायहों और जो धीमान् (तत्त्वका ज्ञाता) हो वह राजा दंडको देसक्ताहै इतर नहीं ३१ ॥

स्वराष्ट्रेन्यायवृत्तःस्याद्भृशदण्डश्चशत्रुषु।सुहृत्स्वजिह्मःस्निग्धेषुब्राह्मणेषुक्षमान्वितः ३२

प० । स्वराष्ट्रे न्यायवृत्तः स्यात् भृशदंडः च शत्रुषु सुहृत्सु अजिह्मः स्निग्धेषु ब्राह्मणेषु क्षमान्वितः ॥

यो० । राजा — स्वराष्ट्रे न्यायवृत्तः — शत्रुषु च भृशदंडः — स्निग्धेषु सुहृत्सु अजिह्मः — ब्राह्मणेषु क्षमान्वितः — स्यात् ॥

भा० । ता० । राजा अपने देशमें शास्त्रोक्त रीतिके अनुसार व्यवहार करै (वर्त्ते)–और शत्रुओंको तीक्ष्ण दंडदे–और स्वभावसे प्रीतिवाले मित्रोंमें अकुटिल–और ब्राह्मणोंमें क्षमाशील–रहे ३२ ॥

एवंवृत्तस्यनृपतेःशिलोञ्छेनापिजीवतः।विस्तीर्यतेयशोलोकेतैलबिन्दुरिवाम्भसि ३३॥

प० । एवंवृत्तस्य नृपतेः शिलोञ्छेन अपि जीवतः विस्तीर्यते यशः लोके तैलबिन्दुः इव अंभसि ॥

यो० । एवंवृत्तस्य — शिलोञ्छेनापिजीवतः नृपतेः (राज्ञः) यशः — अंभसि तैलबिन्दुः इव लोके विस्तीर्यते (विस्तारं गच्छति) ॥

भा० । ता० । इस प्रकार वर्त्ताव करनेवाले–और शिलोञ्छवृत्ति (हूंछना) से भी जीवतेहुये (कोशसे हीन) राजाका यश लोकमें इस प्रकार विस्तारको प्राप्तहोताहै जैसे जलमें तेलकी बूंद फैलजातीहै–अर्थात् जगत्में कीर्त्तिहोतीहै ३३ ॥

अतस्तुविपरीतस्यनृपतेरजितात्मनः । संक्षिप्यतेयशोलोकेघृतबिन्दुरिवाम्भसि ३४ ॥

प० । अतः तु विपरीतस्य नृपतेः अजितात्मनः संक्षिप्यते यशः लोके घृतबिन्दुः इव अंभसि ॥

---

१ हविःप्रदानजीवनादेवाः ॥

यो० । अतः विपरीतस्य – अजितात्मनः नृपतेः यशः – लोके अम्भसि घृतबिन्दुः इव संक्षिप्यते – संकोचंगच्छति ॥

भा० । ता० । इससे विपरीत आचरण करनेवाले–और जिसने इंद्रियोंको न जीताहो ऐसे राजाका यश जगत्में इस प्रकार संकोचको प्राप्त होताहै जैसे जलमें घीकी बूंद ३४ ॥

स्वेस्वेधर्मेनिविष्टानांसर्वेषामनुपूर्वशः । वर्णानामाश्रमाणांचराजासृष्टोऽभिरक्षिता ३५॥

प० । स्वे स्वे धर्मे निविष्टानां सर्वेषां अनुपूर्वशः वर्णानां आश्रमाणां च राजा सृष्टः अभिरक्षिता ॥

यो० । अनुपूर्वशः स्वे स्वे धर्मे निविष्टानां सर्वेषां वर्णानां चपुनः आश्रमाणां अभिरक्षिता राजा ब्रह्मणा सृष्टः (रचितः) ॥

भा० । ता० । क्रमसे अपने२ धर्ममें टिकेहुये संपूर्ण ब्राह्मण आदि वर्ण और ब्रह्मचर्य आदि आश्रमोंका सब प्रकारसे रक्षाकरनेवाला राजाही ब्रह्माने रचाहै अर्थात् धर्मनिष्ठोंकी रक्षाके न करनेपर राजाको पापहोताहै और अपनेधर्मसे हीनोंकी रक्षा न करे तो कुछ पाप नहींहोता ३५ ॥

तेनयद्यत्सभृत्येनकर्त्तव्यंरक्षताप्रजाः । तत्तद्वोऽहंप्रवक्ष्यामियथावदनुपूर्वशः ३६ ॥

प० । तेन यत् यत् सभृत्येन कर्त्तव्यं रक्षता प्रजाः तत् तत् वः अहं प्रवक्ष्यामि यथावत् अनुपूर्वशः ॥

यो० । सभृत्येन – प्रजाः रक्षता तेन राज्ञा यत् यत् कर्त्तव्यं – तत् तत् वः (युष्माकं) यथावत् अनुपूर्वशः अहं प्रवक्ष्यामि (कथयिष्यामि) ॥

भा० । ता० । भृत्यों सहित और प्रजाकी रक्षा करनेवाले उस राजाको जो २ करने योग्य है वह२ सब तुमको मैं कहूं क्रमसे यथार्थ रीतिपर कहूंगा ३६ ॥

ब्राह्मणान्पर्युपासीतप्रातरुत्थायपार्थिवः । त्रैविद्यवृद्धान्विदुषस्तिष्ठेत्तेषांचशासने ३७॥

प० । ब्राह्मणान् पर्युपासीत प्रातः उत्थाय पार्थिवः त्रैविद्यवृद्धान् विदुषः तिष्ठेत् तेषां च शासने ॥

यो० । पार्थिवः प्रातः उत्थाय त्रैविद्यवृद्धान् ब्राह्मणान् पर्युपासीत चपुनः तेषां शासने (आज्ञायां) तिष्ठेत् ॥

भा० । ता० । राजा प्रतिदिन प्रातःकालके समय उठकर–वेदत्रयी (ऋक्यजुःसामवेद) और नीति शास्त्रके जाननेवाले ब्राह्मणोंकी सेवाकरै और उन ब्राह्मणोंकी आज्ञामेंही टिके ३७॥

वृद्धांश्चनित्यंसेवेतविप्रान्वेदविदःशुचीन् । वृद्धसेवीहिसततंरक्षोभिरपिपूज्यते ३८ ॥

प० । वृद्धान् च नित्यं सेवेत विप्रान् वेदविदः शुचीन् वृद्धसेवी हि सततं रक्षोभिः अपि पूज्यते ॥

यो० । वेदविदः शुचीन् – वृद्धान् विप्रान् नित्यं सेवेत – हि (यतः) सततं वृद्धसेवी राजा रक्षोभिः अपि पूज्यते (पूजांलभते) ॥

भा० । ता० । वेदके जाननेवाले शुद्ध और वृद्ध ब्राह्मणोंकी प्रतिदिन सेवाकरै क्योंकि वृद्धोंकी सेवाकरनेवाले राजाकी राक्षस भी पूजा करतेहैं अर्थात् स्वभावसे क्रूर राक्षस भी जब उक्त राजाके हितको करेंगे तो मनुष्य क्यों न करेंगे ३८ ॥

तेभ्योऽधिगच्छेद्विनयंविनीतात्मापिनित्यशः ।
विनीतात्माहिनृपतिर्नविनश्यतिकर्हिचित् ३९ ॥

प० । तेभ्यः अधिगच्छेत् विनयं विनीतात्मा अपि नित्यशः विनीतात्मा हि नृपतिः न विनश्यति कर्हिचित् ॥

यो० । विनीतात्मा अपि राजा तेभ्यः (वृद्धविप्रेभ्यः)—नित्यं विनयं अधिगच्छेत् (अभ्यसेत्) हि (यतः) विनीतात्मा नृपतिः कर्हिचित् न विनश्यति ॥

भा० । ता० । स्वाभाविक बुद्धि और शास्त्रजन्य ज्ञानसे विनीत भी राजा विनयकी अधिकता के लिये उन वृद्धब्राह्मणों से प्रतिदिन विनय का अभ्यास करै—क्योंकि विनीतात्मा राजा कभी भी नाशको प्राप्त नहींहोता ३९ ॥

बहवोऽविनयान्नष्टाराजानःसपरिच्छदाः । वनस्थाअपिराज्यानिविनयात्प्रतिपेदिरे ४० ॥

प० । बहवः अविनयात् नष्टाः राजानः सपरिच्छदाः वनस्थाः अपि राज्यानि विनयात् प्रतिपेदिरे ॥

यो० । अविनयात् बहवः राजानः सपरिच्छदाः नष्टाः—वनस्थाः अपि विनयात् पुनः राज्यानि प्रतिपेदिरे (राज्यंप्राप्ताः) ॥

भा० । ता० । विनय से रहित बहुतसे राजा—हस्ति अश्व कोशआदि सामग्री सहित भी बहुतसे राजा अविनयसेही नष्टहोगये—और वनमें टिकेहुये (सामग्रीहीन) भी बहुतसे राजा विनयसेही राज्यको प्राप्तहुये ४० ॥

वेनोविनष्टोऽविनयान्नहुषश्चैवपार्थिवः । सुदासोयवनश्चैवसुमुखोनिमिरेवच ४१ ॥

प० । वेनः विनष्टः अविनयात् नहुषः च एव पार्थिवः सुदासः यवनः च एव सुमुखः निमिः एव च ॥

यो० । वेनः चपुनः नहुषः—सुदासः—चपुनः यवनः—सुमुखः चपुनः निमिः—पार्थिवः अविनयात् विनष्टः (नाशंगतः) ॥

भा० । ता० । राजा वेन—और नहुष और सुदास यवन और सुमुख और निमि—ये सब राजा अविनयसेही नाशको प्राप्तहुये—इससे राजा कभी भी अन्यायको न करै ४१ ॥

पृथुस्तुविनयाद्राज्यंप्राप्तवान्मनुरेवच । कुबेरश्चधनैश्वर्यंब्राह्मण्यंचैवगाधिजः ४२ ॥

प० । पृथुः तु विनयात् राज्यं प्राप्तवान् मनुः एव च कुबेरः च धनैश्वर्यं ब्राह्मण्यं च एव गाधिजः ॥

यो० । पृथुः चपुनः मनुः विनयात् राज्यं—चपुनः कुबेरः धनैश्वर्यं—चपुनः गाधिजः ब्राह्मण्यं—प्राप्तवान् ॥

भा० । पृथु और मनुराज्यको और कुबेरधनाधिपत्यको गाधीकापुत्र विश्वामित्र ब्राह्मणत्व को—विनय से प्राप्तहुये ॥

ता० । पृथु और मनुको विनयसे राज्यप्राप्तहुआ और कुबेर विनय से धनाधिपति हुये क्षत्री भी गाधी के पुत्र विश्वामित्र उसीदेह में विनयकी कृपा से ब्राह्मण होगये यद्यपि राज्यलाभ के

प्रकरण में ब्राह्मणत्व की प्राप्ती का प्रस्ताव न था तोभी विनयकी श्रेष्ठता के लिये यहांपर कही क्योंकि शास्त्रोक्तकर्म को करना शास्त्र निषिद्धको त्यागनारूप यह विनयऐसाहै जिससे क्षत्री भी दुर्लभ ब्राह्मणत्व को प्राप्तहोगये ४२ ॥

त्रैविद्येभ्यस्त्रयींविद्यांदण्डनीतिंचशाश्वतीम्।
आन्वीक्षिकींचात्मविद्यांवार्तारम्भांश्चलोकतः ४३ ॥

प० । त्रैविद्येभ्यः त्रयीं विद्यां दंडनीतिं चँ शाश्वतीं आन्वीक्षिकीं चँ आत्मविद्यां वार्त्तारंभान् चँ लोकतः ॥

यो० । त्रैविद्येभ्यः त्रयीं विद्यां चपुनः शाश्वतीं दंडनीतिं चपुनः आन्वीक्षिकीं — आत्मविद्यां अधिगच्छेत् — चपुनः वार्त्तारंभान् लोकतः अधिगच्छेत् ॥

भा० । त्रिवेदीके ज्ञाताओंसे तीनोंवेद और सनातन दंडनीति—और आन्वीक्षिकी (न्याय) और ब्रह्मविद्या—इनका अभ्यासकरे और खेती—वाणिज्य आदि वार्त्ता उसके आरंभोंको लोक से सीखे ॥

ता० । वेदत्रयी (ऋक्यजुस्साम) के ज्ञाताओंसे तीनों वेदोंकी विद्याओंको जाने अर्थात् वेदत्रयीके अर्थ ग्रंथोंका अभ्यास करता रहे यद्यपि ब्रह्मचर्य अवस्थाहीमें वेदका अभ्यास करना लिखाहै और समावृत्तको (गृहस्थ) तो राज्यका अधिकारहै इससे राज्यके समय त्रिवेदी का पठन असंगतहै—तथापि ब्रह्मचर्य अवस्थामें पढ़ीहुई त्रिवेदीके अभ्यासके लिये यह उपदेशहै—और अर्थ शास्त्ररूप और नित्य (परंपरागत) योग क्षेमका उपदेश करनेवाली दंडनीति को ज्ञाताओंसे जाने—और आन्वीक्षिकी (तर्कविद्या) और ब्रह्म (जिसकी दयासे प्रतापकी वृद्धिमें आनन्दकी और दुःखकी अवस्थामें विषादकी शांति होतीहै) को सीखे अर्थात् तिस तिस विद्याके ज्ञाताओंसे इनपूर्वोक्त विद्याओंका अभ्यास राजा सदैव करता रहे—और वार्त्ता (खेती—वाणिज्य—पशु पालनादि) और वार्त्ताके आरंभ (धन संचयके उपाय) इनको—इनके जाननेवाले किसान वैश्य—गोपाल आदिकों से जाने ४३ ॥

इन्द्रियाणांजयेयोगंसमातिष्ठेद्दिवानिशम्। जितेन्द्रियोहिशक्नोतिवशेस्थापयितुंप्रजाः ४४

प० । इंद्रियाणां जये योगं समातिष्ठेत् दिवानिशं जितेन्द्रियः हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः ॥

यो० । इंद्रियाणांजये दिवानिशं योगं समातिष्ठेत् — हि (यतः) जितेन्द्रियः प्रजाः वशे स्थापयितुं शक्नोति ॥

भा० । इंद्रियोंके जयमें रातिदिन यत्नकरै क्योंकि जितेंद्रिय राजाही प्रजाओंको वशमें करसकाहै ॥

ता० । इंद्रियोंके जय (विषयोंमें आसक्ति का निवारण) में सदैव काल यत्नकरै क्योंकि जो राजा जितेन्द्रियहै वही प्रजा नियमन (वशीकरण) करनेको समर्थ होताहै—और विषय भोगमें व्यग्र (आसक्त) है वह नहीं होता—यद्यपि पहिले ब्रह्मचारीके धर्मोंमें इंद्रियोंका जय कहि आयेहैं—और वह जय संपूर्ण पुरुषार्थोंमें ग्रहण करने योग्यहै—तथापि राजाके धर्मोंमें इंद्रियोंकी

जयकी मुख्यताके ज्ञानार्थ—और जो आगे कहेंगे उन राजाके व्यसनोंकी निवृत्तिका कारणहोनेसे यहांपर फिर इंद्रियोंके जयका वर्णन किया ४४ ॥

दशकामसमुत्थानितथाष्टौक्रोधजानिच । व्यसनानिदुरंतानिप्रयत्नेनविवर्जयेत् ४५ ॥

प० । दश कामसमुत्थानि तथा अष्टौ क्रोधजानि च व्यसनानि दुरंतानि प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥

यो० । कामसमुत्थानिदश — तथा क्रोधजानि च अष्टौ दुरंतानि व्यसनानि प्रयत्नेन राजा विवर्जयेत् ॥

भा० । कामसे उत्पन्न दश—और क्रोधसे उत्पन्न आठ दुरंतव्यसनोंको प्रयत्न करिके राजा वर्जिदे ॥

ता० । कामसे पैदाहुये दश—और क्रोध से पैदाहुये जो आठ दुरंत व्यसन (जो आगे कहेंगे) हैं—उनको यत्नसे राजा वर्जदेइ—क्योंकि ये व्यसन प्रथम सुखदेते हैं अंतमें दुःखदेते हैं और इनका अंत दुर्लभहै—और इनके दुःखसे व्यसन वाला मनुष्य निवृत्त नहीं होसका ४५ ॥

कामजेषुप्रसक्तोहिव्यसनेषुमहीपतिः । वियुज्यतेऽर्थधर्माभ्यांक्रोधजेष्वात्मनैवतु ४६ ॥

प० । कामजेषु प्रसक्तः हि व्यसनेषु महीपतिः वियुज्यते अर्थधर्माभ्यां क्रोधजेषु आत्मना एव तु ॥

यो० । हि (यतः) कामजेषु व्यसनेषु प्रसक्तः महीपतिः अर्थधर्माभ्यां क्रोधजेषु प्रसक्तस्तु आत्मना एव वियुज्यते ॥

भा० । ता० । कामसे पैदाहुये व्यसनोंमें आसक्त राजा धर्मार्थसे और क्रोधसे पैदाहुये व्यसनोंमें आसक्त राजा अपने देहसे वियुक्त होताहै (अर्थात् उस राजाके धर्म अर्थ और देह नाशको प्राप्तहोते हैं) ४६ ॥

मृगयाक्षादिवास्वप्नःपरिवादःस्त्रियोमदः । तौर्यत्रिकंवृथाटयाचकामजोदशकोगणः ४७

प० । मृगया अक्षाः दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियः मदः तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजः दशकः गणः ॥

यो० । मृगया अक्षाः दिवास्वप्नः — परिवादः स्त्रियः मदः तौर्यत्रिकं (नृत्यगीतवादित्राणि) चपुनः वृथाट्या एषः दशकः गणः कामजो ज्ञेयः ॥

भा० । ता० । इन दशोंका गण (समूह) कामसे उत्पन्न जानना कि मृगया (मृगोंकावध) अक्षों (फांसे) की क्रीडा जो संपूर्ण कार्योंकी नष्टकरनेवाली होतीहै—दिनमें निद्रा—अन्यके दोषोंका कथन—स्त्रीका भोग—मदिरापीने से पैदाहुआ मद—नृत्य—गीत—बाजा—और वृथा भ्रमण ४७ ॥

पैशुन्यंसाहसंद्रोहईर्ष्यासूयार्थदूषणम् । वाग्दण्डजंचपारुष्यंक्रोधजोऽपिगणोष्टकः ४८ ॥

प० । पैशुन्यं साहसं द्रोहः ईर्ष्या असूया अर्थदूषणं वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजः अपि गणः अष्टकः ॥

यो० । पैशुन्यं — साहसं — द्रोहः ईर्ष्या — असूया — अर्थदूषणं — चपुनः वाग्दण्डजंपारुष्यं (वाक्पारुष्यंदण्डपारुष्यं) क्रोधजोऽपि अष्टकः गणो ज्ञेयः ॥

भा० । पैशुन्य–साहस–द्रोह–ईर्ष्या–असूया–(धनकादूषण) और कठोरवाणी और कठोर दंड इन आठोंका समूह क्रोधसे उत्पन्न जानना ॥

ता० । पैशुन्य (अर्थात् अविज्ञात दोषोंको प्रकट करना) साहस (सज्जनकाभी बंधन आदिसे निग्रह करना (दंडदेना) द्रोह (छलसे बधकरना) ईर्ष्या (अन्य के गुणों को नहीं सहना) असूया–(अन्यके गुणोंमें दोषोंको प्रकटकरना) अर्थ दूषण (अन्यके धनको हरना वा देनेयोग्य धनको न देना) वाग्पारुष्य (गाली वा कठोरवचन कहना) दण्डपारुष्य (अनुचित दण्डदेना) यह आठप्रकार का गण क्रोधसे जानना ४८ ॥

द्वयोरप्येतयोर्मूलंयंसर्वेकवयोविदुः । तंयत्नेनजयेल्लोभंतज्जावेतावुभौगणौ ४९ ॥

प० । द्वयोः अपि एतयोः मूलं यं सर्वे कवयः विदुः तं यत्नेन जयेत् लोभं तज्जौ एतौ उभौ गणौ ॥

यो० । सर्वे कवयः एतयोः द्वयोः अपि यं मूलं विदुः तं लोभं यत्नेन जयेत् (कुतः) एतौ उभौ गणौ तज्जौभवतः ॥

भा० । ता० । इनदोनों गणोंका संपूर्ण कवि मूल (कारण) जानते हैं उस लोभको राजा यत्नसे जीते क्योंकि ये दोनोंसमूह (कामजःक्रोधजः) लोभसेही पैदाहोते हैं ४९ ॥

पानमक्षाःस्त्रियश्चैवमृगयाचयथाक्रमम् । एतत्कष्टतमंविद्याच्चतुष्कंकामजेगणे ५० ॥

प० । पानं अक्षाः स्त्रियः च एव मृगया च यथाक्रमं एतत् कष्टतमं विद्यात् चतुष्कं कामजे गणे ॥

यो० । पानं अक्षाः स्त्रियः चपुनः मृगया एतत् चतुष्कं कामजे गणे यथाक्रमं कष्टतमं (दुःखहेतुं) विद्यात् जानीयात्॥

भा० । ता० । कामसे उत्पन्न समूह में इनचारोंको क्रमसे अत्यंत दुःखदाई जानना कि मदिराका पान–अक्षोंकीक्रीडा–स्त्रीसंभोग–मृगया–क्योंकि बहुधा कामसे उत्पन्न दशों में ये चारही निंदित हैं ५० ॥

दण्डस्यपातनञ्चैववाक्पारुष्यार्थदूषणे । क्रोधजेऽपिगणेविद्यात्कष्टमेतत्त्रिकंसदा ५१ ॥

प० । दंडस्य पातनं च एव वाग्पारुष्यार्थदूषणे क्रोधजे अपि गणे विद्यात् कष्टं एतत् त्रिकं सदा ॥

यो० । दंडस्य पातनं चपुनः वाग्पारुष्यार्थदूषणे – क्रोधजेऽपिगणे एतत् त्रिकं सदा कष्टं विद्यात् (जानीयात्) ॥

भा० । ता० । दंडकादेना–गाली वा कठोरवचन कहना और अर्थदूषण इनतीनोंको और क्रोधसे पैदाहुये समूह से सदैव दुखदाईजाने ५१ ॥

सप्तकस्यास्यवर्गस्यसर्वत्रैवानुषङ्गिणः । पूर्वंपूर्वंगुरुतरंविद्याद्व्यसनमात्मवान् ५२ ॥

प० । सप्तकस्य अस्य वर्गस्य सर्वत्र एव अनुषंगिणः पूर्वं पूर्वं गुरुतरं विद्यात् व्यसनं आत्मवान् ॥

यो० । सर्वत्रएव अनुषंगिणः अस्य सप्तकस्य वर्गस्य मध्ये आत्मवान् पुरुषः पूर्वपूर्वव्यसनं गुरुतरं विद्यात् ॥

भा० । आत्मज्ञानी राजा सर्वत्र होनेवाले इनसातों व्यसनों के समूह में पहिले पहिले व्यसनको अत्यन्त दुखदाई जाने ५२ ॥

ता० । संपूर्ण राजमण्डल के विषे होनेवाले इस मदिरापान आदि और काम क्रोधसे पैदा हुये सातव्यसनों में पहिला पहिला जो व्यसन है पिछिले पिछिले व्यसनों से ज्ञानी राजाको अत्यन्त दुखदाई जानना क्योंकि द्यूतसे मदिरापान इसहेतु से दुखदाई होताहै कि मदिरापान से उन्मत्त मनुष्यकी संज्ञानष्ट होजाती है यथेष्ट चेष्टासे देह धनआदिका विरोध इत्यादि दोष होतेहैं—और द्यूतमें कदाचित् धनकी प्राप्ती भी होजातीहै—और स्त्रीके व्यसनसे द्यूत इस से दुष्ट है कि द्यूतमें नीतिशास्त्र में कहेहुये वैरकी उत्पत्तिआदि दोष और मूत्र पुरीषके वेगको रोकने से देहमें व्याधिकी उत्पत्ति और रूप दोषहोते हैं--और स्त्री व्यसन में तो संतानरूपी उत्पत्तिरूप गुणकाभी योगहै—मृगयाकी अपेक्षा स्त्री व्यसन इससे दुष्टहै कि स्त्रीका व्यसनी अपने कार्यको समयपर न करने से धर्मकीरक्षा नहीं करसक्ता—और मृगयामें देहके व्यायामसे आरोग्यका गुणभीहै—इसप्रकार कामसे पैदाहुये मद्य—पानआदि चारोंमें पहिले पहिलेको अत्यन्त दुखदाई समझना—और क्रोधसे पैदाहुये तीनोंमें भी कठोरवाणीसे कठोरदंड इस से दुष्टहै कि कठोरदंड से छेदन कियाहुवा प्राणीका देह फिरनहीं होसक्ता—और कठोरवाणी से कुपित मनुष्य दान मान आदिसे शांत करनेको शक्यहोताहै—और अर्थदूषण से कठोरवाणी इसलिये दुष्टहै कठोर वाणीसे विधेहुये मर्मकी कोई चिकित्सा नहीं क्योंकि इस वचनसे यह प्रतीत होता है वाणी से कियाहुवा मर्मकाघाव फिरनहीं भरता और अर्थदूषण तो अत्यन्त धनकेदेने से नष्टहोसक्ता है—इसप्रकार क्रोधसे पैदाहुये दंडपातन—आदि तीनों में भी अत्यन्त दुखदाई पहिले पहिले को राजा यत्नसे त्यागदे ५२ ॥

व्यसनस्यचमृत्योश्चव्यसनंकष्टमुच्यते । व्यसन्यधोऽधोव्रजतिस्वर्यात्यव्यसनीमृतः ५३

प० । व्यसनस्य चँ मृत्योः चँ व्यसनं कष्टं उच्यँते व्यसनी अधः अधः व्रजति स्वः याति अव्यसनी मृतः ॥

यो० । व्यसनस्य चपुनः मृत्योः (मध्ये) व्यसनं कष्टं उच्यते (कुतः) व्यसनीपुनः (नर) अधः अधः व्रजति — अव्यसनीत मृतःसन् स्वः (स्वर्ग) याति ॥

भा० । व्यसन और मृत्युके बीचमें व्यसन अत्यंत दुखदाई होताहै—क्योंकि व्यसनी नरकों में जाता है और व्यसन हीन राजा मरकर स्वर्गमें जाता है ॥

ता० । यद्यपि संज्ञा नाशआदि दुःखकाहेतु और शास्त्रोक्तकर्म के विरोधी होने से मृत्यु और व्यसन दोनों तुल्य हैं तथापि मृत्युकी अपेक्षा परलोक में भी नरक हेतु होने से व्यसन अत्यन्त दुखदाईहै—सोई कहते हैं व्यसनी मनुष्य मरकर बहुत से नरकों में जाता है—और व्यसनहीन मनुष्य शास्त्रोक्तकर्म के विरोधी व्यसन के अभाव से स्वर्गमें जाता है—इस श्लोकसे व्यसनों में राजाकी अत्यन्त आसक्तिका निषेधहै सर्वथा व्यसनोंका नहीं समझना ५३ ॥

मौलाञ्छास्त्रविदःशूराँल्लब्धलक्षान्कुलोद्गतान् ।
सचिवान्सप्तचाष्टौवाप्रकुर्वीतपरीक्षितान् ५४ ॥

प० । मौलान् शास्त्रविदः शूरान् लब्धलक्षान् कुलोद्गतान् सचिवान् सप्त चँ अष्टौ वाँ प्रकुर्वीतँ परीक्षितान् ॥

१ नसंरोहयति वाक्कृतं अर्थदूषणंतु प्रचुरतरार्थदानाच्छक्यसमाधानम् ॥

यो० । (राजा) मौलान् – शास्त्रविदः – शूरान् – लब्धलक्षान् – कुलोद्गतान् – परीक्षितान् – सप्त – वा अष्टौ सचिवान् – प्रकुर्वीत ॥

भा० । मौल–शास्त्रके ज्ञाता–पराक्रमी– लब्धलक्ष–अच्छे कुल से उत्पन्न और परीक्षित सात वा आठ मंत्रियोंको राजा नियत करे ॥

ता० । मौल अर्थात् पिता–और पितामह आदि क्रमसे जो राजा के सेवकहों–वे भी द्रोह आदि से कदाचित् विरोधी होसकेहैं इससे शास्त्रके जाननेवाले–शूरवीर और लब्धलक्ष–अर्थात् जिनका शस्त्र लक्ष्यसे अन्यत्र न लगे और विशुद्ध कुल से पैदाहुये और परीक्षित–(जिनकी परीक्षा करलीहो) इसप्रकार के सात वा आठ सचिवों (मंत्री) को राजा नियत करे ५४ ॥

अपियत्सुकरंकर्मतदप्येकेनदुष्करम् । विशेषतोऽसहायेनकिंतुराज्यंमहोदयम् ५५ ॥

प० । अपि यत् सुकरं कर्म तत् अपि एकेन दुष्करं विशेषतः असहायेन किं तु राज्यं महोदयम् ॥

यो० । सुकरं अपि यत् कर्म तत् अपि एकेन दुष्करं (भवति) यतः विशेषतः महोदयं राज्यं तत् किं असहायेन दुष्करं न (भवति) अपितुभवत्येव ॥

भा० । ता० । जो कर्म सुखसे कियाजाताहै वह भी एक मनुष्यको दुष्करहोताहै विशेष कर्म महान् है फल जिसका ऐसा राज्य असहाय राजा को दुष्कर क्यों नहीं होगा–अर्थात् अवश्य होगा इससे सहायता के लिये पूर्वोक्त मंत्रीको राजा नियत करे ५५ ॥

तैःसार्द्धंचिन्तयेन्नित्यंसामान्यंसंधिविग्रहम् । स्थानंसमुदयंगुप्तिंलब्धप्रशमनानिच ५६

प० । तैः सार्द्धं चिंतयेत् नित्यं सामान्यं संधिविग्रहं स्थानं समुदयं गुप्तिं लब्धप्रशमनानि च ॥

यो० । राजा तैः (सचिवैः) सार्द्धं सामान्यं संधिविग्रहं – स्थानं – समुदयं – गुप्तिं – चपुनः लब्धप्रशमनानि नित्यं चिंतयेत ॥

भा० । उन मंत्रियोंके संग सामान्य संधिविग्रह (मेल विरोध) दंड–कोश–पुर–राष्ट्र–अन्न और सुवर्ण की उत्पत्ति का स्थान अपनी और देशकी रक्षा मिलेहुये द्रव्यको सत्पात्रोंको देना इन सबकी राजा प्रतिदिन चिंताकरे अर्थात् मंत्रिसंमति से इनको करे ॥

ता० । राजा उन मंत्रियों के संग सामान्य (जोगोपनीय न होय) जो संधिविग्रह की और स्थान (दंड–कोश–पुर– राष्ट्र आदि चार) इन चारोंमें जिससे दंड दियाजाय वे हाथी–अश्व–रथ– पदाति–दंड कहातेहैं उनके पोषण रक्षा की–और कोश (खजाना) उसके आय और व्ययकी–पुरके रक्षा की– और राष्ट्र–(देश) वासी मनुष्य पशु आदि के योग क्षेम की समुदय (अन्न–और हिरण्य आदिकी उत्पत्ति का स्थान) की और गुप्ती अर्थात् अपने अपने देशकी रक्षा की अर्थात् परीक्षा कियेहुये अन्न आदि का भक्षण और परीक्षित स्त्रियोंका संग करे और देशको अपनेवशमें रक्खे और लब्धप्रशमन अर्थात् मिलेहुये धनको सत्पात्रोंकोदेना–क्योंकि आगे मनुजी कहेंगे कि राजा जीतकर देवताओंका पूजनकरे इन सबकी उन मंत्रियोंके संग राजा चिंता (विचार) करे ५६ ॥

तेषांस्वंस्वमभिप्रायमुपलभ्यपृथक्पृथक् । समस्तानांचकार्येषुविदध्याद्धितमात्मनः ५७

प० । तेषां स्वं स्वं अभिप्रायं उपलभ्य पृथक् पृथक् समस्तानां च कार्येषु विदध्यात् हितं आत्मनः ॥

यो० । कार्येषु तेषां स्वं स्वं अभिप्रायं पृथक् पृथक् चपुनः समस्तानां अभिप्रायं उपलभ्य आत्मनः हितं विदध्यात् (कुर्यात्) ॥

भा० । ता० । कार्योंमें उन सम्पूर्णों के पृथक् २ अभिप्रायको और उन सबके इकट्ठे अभिप्रायको जानकर—जिसमें अपनाहितहो उसकाम को राजाकरै ५७ ॥

सर्वेषांतुविशिष्टेनब्राह्मणेनविपश्चिता। मन्त्रयेत्परमंमन्त्रंराजाषाड्गुण्यसंयुतम् ५८ ॥

प० । सर्वेषां तुं विशिष्टेनं ब्राह्मणेनं विपश्चितां मंत्रयेत् परमं मंत्रं राजा षाड्गुण्यसंयुतम् ॥

यो० । राजा सर्वेषां विशिष्टेन — विपश्चिता ब्राह्मणेन — सह षाड्गुण्यसंयुतं परमं मंत्रं मंत्रयेत् ॥

भा० । ता० । उन सबके मध्य में जो विशिष्ट (धार्मिक) है और पंडित ब्राह्मण है उसके संगसन्धि विग्रहआदि छः गुणोंसहित मंत्रको संमतकरै अर्थात् उसीकी संमतिसे करै ५८ ॥

नित्यंतस्मिन्समाश्वस्तःसर्वकार्याणिनिःक्षिपेत् ।
तेनसार्द्धंविनिश्चित्यततःकर्मसमारभेत ५९ ॥

प० । नित्यं तस्मिन् समाश्वस्तः सर्वकार्याणि निःक्षिपेत् तेनं सार्द्धं विनिश्चित्य ततः कर्म समारभेत् ॥

यो० । समाश्वस्तः राजा कार्याणि तस्मिन् नित्यं निःक्षिपेत् — तेन सार्द्धं कार्यं विनिश्चित्य अतः कर्म समारभेत् (कर्मारम्भं कुर्यात्) ॥

भा० । ता० । सदैवकाल उसके विषे विश्वासको प्राप्तहुआ राजा उसी विशिष्ट ब्राह्मण के आधीन समस्त कार्योंको करदे—और उसीकेसंग निश्चयकरके सम्पूर्ण कार्योंका प्रारंभकरै ५९॥

अन्यानपिप्रकुर्वीतशुचीन्प्राज्ञानवस्थितान् ।
सम्यगर्थसमाहर्तॄनमात्यान्सुपरीक्षितान् ६० ॥

प० । अन्यान् अपि प्रकुर्वीत शुचीन् प्राज्ञान् अवस्थितान् सम्यगर्थसमाहर्तॄन् अमात्यान् सुपरीक्षितान् ॥

यो० । अन्यान् अपि शुचीन् — प्राज्ञान् — अवस्थितान् — सम्यगर्थसमाहर्तॄन् — सुपरीक्षितान् — अमात्यान् राजा प्रकुर्वीत ॥

भा० । ता० । शुद्ध और प्राज्ञ (पंडित) और अवस्थित (स्वस्थचित्त) भलीप्रकार धन के पैदाकरनेवाले और भलीप्रकार परीक्षा किये—अन्यभी मंत्रियों को राजा नियुक्तकरै ६० ॥

निर्वर्त्तेतास्ययावद्भिरितिकर्तव्यतानृभिः ।
तावतोऽतन्द्रितान्दक्षान्प्रकुर्वीतविचक्षणान् ६१ ॥

प० । निवर्त्तेत अस्य यावद्भिः इतिकर्तव्यता नृभिः तावतः अतंद्रितान् दक्षान् प्रकुर्वीत विचक्षणान् ॥

यो० । अस्य (राज्ञः) यावद्भिः नृभिः इतिकर्तव्यता निवर्त्तेत (कार्य्यनिर्वाहोभवेत्) — अतंद्रितान् दक्षान् विचक्षणान् — तावतः (मन्त्रिणः) प्रकुर्वीत ॥

भा० । ता० । जितने मनुष्यों से इस राजाकी इति कर्तव्यता सिद्धहो अर्थात् कार्यबने उतनेही आलस्य से रहित—पंडित और चतुर मंत्रियोंको नियुक्तकरे ६१ ॥

तेषामर्थेनियुञ्जीतशूरान्दक्षान्कुलोद्गतान् । शुचीनाकरकर्मान्तेभीरूनन्तर्निवेशने ६२

प० । तेषां अर्थे नियुंजीत शूरान् दक्षान् कुलोद्गतान् शुचीन् आकरकर्मान्ते भीरून् अन्तर्निवेशने ॥

यो० । तेषां सचिवानांमध्ये — शूरान् — दक्षान् — कुलोद्गतान् शुचीन् आकरकर्मान्ते अर्थे नियुंजीत — भीरून् अन्तर्निवेशने नियुंजीत ॥

भा० । उन मंत्रियोंमेंसे शूरवीर—चतुर—कुलीन—और शुद्ध मनुष्योंको तो धन संचयके लिये आकरकर्मांत (खान ईख अन्नकी पैदाजहांहो) में और भीरुओंको अन्तःपुरमें नियतकरे ॥

ता० । उन मंत्रियोंमें जो शूर (विक्रांत)—चतुर और उत्तमकुलमें उत्पन्न और शुद्ध अर्थात् धनकी इच्छासे शून्य—जोहैं उनको धनकी उत्पत्तिके स्थानमें नियुक्तकरै और वह धनकी उत्पत्तिका स्थानही—आकरकर्मांत—इसपदसे मनुजीने कहाहै अर्थात् आकर (सुवर्णआदिकी उत्पत्तिके स्थान) और कर्मांत (इक्षुअन्नआदि के संग्रहका स्थान) में नियतकरे—और जो उनमें भीरु (डरपोक) हैं उनको अन्तर्निवेशन (भोजन—शयन—गृहकाअन्तःपुर) में नियुक्त करे—क्योंकि अन्तःपुर में यदि शूरवीर नियुक्त कियेजायँ तो कदाचित् शत्रु के उपजाप (भेद) से वे शूर स्त्री सहित एकाकी राजाको हनदेतेहैं ६२ ॥

दूतंचैवप्रकुर्वीतसर्वशास्त्रविशारदम् । इङ्गिताकारचेष्टज्ञंशुचिंदक्षंकुलोद्गतम् ६३ ॥

प० । दूतं च एव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदं इंगिताकारचेष्टज्ञं शुचिं दक्षं कुलोद्गतम् ॥

यो० । सर्वशास्त्रविशारदं — इंगिताकारचेष्टज्ञं — शुचिं — दक्षं — कुलोद्गतं — दूतं च राजा प्रकुर्वीत ॥

भा० । सम्पूर्ण शास्त्रों में कुशल—इंगित आकार और चेष्टा का ज्ञाता—शुद्ध—चतुर—और कुलीन दूतकोभी राजा नियुक्तकरे ६३ ॥

ता० । और इसप्रकारके दूतको भी राजा नियुक्तकरे कि—जो इसलोक और परलोकके अर्थका संपादक शास्त्रहै उसको जानताहो—और जो इंगित (अपने अभिप्रायके सूचक वचन और स्वर) और आकार (मुखकी प्रसन्नता और उदासीनता जिससे प्रीति और अप्रीति प्रतीत हों) और चेष्टा (हस्तआदिका चलाना) इनतीनों (इंगित आकारचेष्टा) को जो जानताहो—और जो शुद्धहो अर्थात् अन्याय से धनग्रहण स्त्री व्यसन जिसमें न हों और जो चतुर और कुलोद्गत (अच्छेकुल से उत्पन्न) हो ६३ ॥

अनुरक्तःशुचिर्दक्षःस्मृतिमान्देशकालवित् ।
वपुष्मान्वीतभीर्वाग्मीदूतोराज्ञःप्रशस्यते ६४ ॥

प० । अनुरक्तः शुचिः दक्षः स्मृतिमान् देशकालवित् वपुष्मान् वीतभीः वाग्मी दूतः राज्ञः प्रशस्यते ॥

यो० । अनुरक्तः शुचिः दक्षः स्मृतिमान् – देशकालवित् – वपुष्मान् – वीतभीः – वाग्मी – एतादृशो दूतः राज्ञः प्रशस्यते – (उत्तमो भवति) ॥

भा० । प्रीतिवाला–शुद्ध–चतुर–स्मृतिवाला–देश कालका ज्ञाता–सुंदर–निडर–वाग्मी ऐसा दूत राजा का प्रशस्त होताहै अर्थात् ऐसे ही दूतको राजा नियुक्तकरै ॥

ता० । जनों में प्रीति वाला अर्थात् इतर राजाका भी शत्रु न हो–धन और स्त्रीकी शुद्धि से युक्त–अर्थात् धन और स्त्रीके लोभसे जिसका भेद न हो सके–और दक्ष (चतुर) अर्थात् जो कार्यके समय को न बितावे–स्मृतिमान (जो संदेश को न भूले)–देशकाल का ज्ञाता (अर्थात् जो देश काल को जानकर अन्य संदेश को भी देश कालके अनुसार अन्यथा कहदे)– और सुंदर रूप जिसका हो अर्थात् जिसके वचनको आकारके देखतेही सब मान लें–और जो विगतभय हो अर्थात् यदिकिसी को अप्रिय संदेशा भी भेजाजाय तो उसको भी कहदे–वाग्मी अर्थात् युक्तिपूर्वक वचनों का वक्ता–इस प्रकार का राजा का दूत अत्यंत श्रेष्ठ होताहै ६४ ॥

अमात्येदण्डआयत्तोदण्डेवैनयिकीक्रिया । नृपतौकोशराष्ट्रेचदूतेसंधिविपर्ययौ ६५ ॥

प० । अमात्ये दंडः आयत्तः दंडे वैनयिकी क्रिया नृपतौ कोशराष्ट्रे च दूते संधिविपर्ययौ ॥

यो० । दंडः अमात्ये आयत्तः – वैनयिकी क्रिया दंडे आयत्ता – चपुनः कोशराष्ट्रे नृपतौ आयत्ते – संधिविपर्ययौ दूते आयत्तौ – सर्वत्र अस्ति – स्तः इत्यादुचितक्रिया योज्या ॥

भा० । दंड सेनापतिके आधीन विनय दंडके आधीन कोश और देश राजाके आधीन संधि और विग्रह दूत के आधीन–होतेहैं ॥

ता० । अमात्य (सेनापति)के हाथी अश्व–रथ–पदाति–रूपदंड आधीन हैं क्योंकि उसीकी इच्छासे वे अपने अपने कार्यों में प्रवृत्तहोतेहैं–और वैनयिकी क्रिया अर्थात् विनय दंडके आधीनहै–कोश और देश राजाके आधीन होतेहैं अर्थात् राजा इनको कभी पराधीन न करे अर्थात् इनकी चिंता स्वयमेवकरे और संधि विग्रह दूतके आधीन होते हैं–अर्थात् दूतकी ही संमति से राजासंधिविग्रहमें प्रवृत्त होय ६५ ॥

दूतएवहिसंधत्तेभिनत्त्येवचसंहतान् । दूतस्तत्कुरुतेकर्मभिद्यन्तेयेनवानवा ६६ ॥

प० । दूतः एव हि संधत्ते भिनत्ति एव च संहतान् दूतः तत् कुरुते कर्म भिद्यंते येन वा न वा ॥

यो० । हि (यतः) दूतः एव भिन्नान् संधत्ते चपुनः संहतान् भिनत्ति दूतः तत् कर्म कुरुते येन (कर्मणा) भिद्यन्ते वा न भिद्यंते ॥

भा० । ता० । दूतही भिन्नों (फंटेहुये) की संधिके संपादनमें समर्थहोता है और मिलेहुयों का भेदन भी दूतही करसक्ताहै और परदेशमें जाकर दूत उसकर्मको करता है जिससे मिलेहुये दोमनुष्य फंटजायँ वा न फंटें–इससे संधि और विग्रह दूतकेही आधीन है यह जो कहा सो ठीकहै ६६ ॥

सविद्यादस्यकृत्येषुनिगूढेङ्गितचेष्टितैः । आकारमिङ्गितंचेष्टांभृत्येषुचचिकीर्षितम् ६७॥

प० । सः विद्यात् अस्य कृत्येषु निगूढेंद्रियचेष्टितैः आकारं इंगितं चेष्टां भृत्येषु च चिकीर्षितम् ॥

यो० । सः (दूतः) अस्य (प्रतिपक्षिणःराज्ञः) कृत्येषु — निगूढेंद्रियचेष्टितैः आकारं — इंगितं चेष्टां — चपुनः भृत्येषु चिकीर्षितं विद्यात (जानीयात) ॥

भा० । विपक्षी राजाके कृत्योंमें नियुक्त जो गुप्त दूतोंके आकार और चेष्टासे आकार इंगित चेष्टाओंको और सेवकोंमें राजाके कर्त्तव्यको वह दूतही पहचाने ॥

ता० । वह दूतही विपक्षी राजाके कामोंमें आकार–इंगित–और चेष्टाको–उसी राजाके जो निगूढ (गुप्तअनुचर) परिजन अर्थात् गुप्तकाम करने में नियुक्त सेवक–और वेभी यदि राजा केहीसमीपहोयँ तो उनके आकार और चेष्टामें जानले और उसी राजाके सेवक भृत्योंमें–क्षोभी लोभी–अपमान कियाहोय तो–उसराजाकी इच्छाको जाने अर्थात् इन क्षोभीआदि भृत्योंपर यह राजा ऐसा वर्ताव कियाकरताहै ६७ ॥

बुध्वाचसर्वंतत्त्वेनपरराजचिकीर्षितम् । तथाप्रयत्नमातिष्ठेद्यथात्मानंनपीडयेत् ६८ ॥

प० । बुध्वा च सर्वं तत्त्वेन परराजचिकीर्षितम् तथा प्रयत्नं आतिष्ठेत् यथा आत्मानं न पीडयेत् ॥

यो० । परराजचिकीर्षितं सर्वं तत्त्वेन बुध्वा — यथा आत्मानं न पीडयेत् तथा प्रयत्नं आतिष्ठेत् (कुर्यात) ॥

भा० । ता० । पूर्वोक्त दूतकेद्वारा विपक्षी राजाके करनेको इष्टकामको जानकर ऐसा प्रयत्न करै जैसे अपने आत्माको पीडा (दुःख) न हो ६८ ॥

जाङ्गलंसस्यसंपन्नमार्यप्रायमनाविलम् । रम्यमानतसामन्तंस्वाजीव्यंदेशमावसेत् ६९

प० । जांगलं सस्यसंपन्नं आर्यप्रायं अनाविलं रम्यं आनतसामंतं स्वाजीव्यं देशं आवसेत् ॥

यो० । जांगलं — सस्यसंपन्नं — आर्यप्रायं — अनाविलं — रम्यं — आनतसामन्तं — स्वाजीव्यं — देशं राजा आवसेत् (एतादृशेदेशेवासंकुर्यात) ॥

भा० । जांगल–सस्यसे संयुक्त–सज्जनोंसेपूर्ण–दुःखसेरहित–रमणीक–और जिसकेवासी राजासे नवतेहों और जिसमें अच्छी जीविकाहो ऐसेदेशमें राजा अपना वासकरै ॥

ता० । जिसमें जल और तृण अल्पहों और पवन और आतप अधिकहों–और अन्नआदि जिसमें बहुतहों उसदेशको जांगल इस[1] वचनके अनुसार कहते हैं–जो देश जांगलहो–सस्यसे संपन्न (भरा) हो–और जिसमें धार्मिकजन रहतेहों–रोग और व्याधिसे जो व्याकुल न हो और फल पुष्प तरु लताआदि से जो मनोहरहो–और जिसके सामन्त (आसपासकेवासी) राजाको नवतेहों और जिसमें कृषि वाणिज्यआदिका जीवन सुलभहो–ऐसेदेशमें राजा अपने वसनेका स्थान बनाकर वसै ६९ ॥

धनुर्दुर्गंमहीदुर्गमब्दुर्गंवार्क्षमेववा । नृदुर्गंगिरिदुर्गंवासमाश्रित्यवसेत्पुरम् ७० ॥

प० । धनुर्दुर्गं महीदुर्गं अब्दुर्गं वार्क्षं एव वा नृदुर्गं गिरिदुर्गं वा समाश्रित्य वसेत् पुरम् ॥

यो० । धनुर्दुर्गं — महीदुर्गं — अब्दुर्गं — वा वार्क्षं दुर्गं — नृदुर्गं — वा गिरिदुर्गं समाश्रित्य — राजा पुरं वसेत् ॥

---

१ अल्पोदकतृणोयस्तु प्रवातः प्रचुरातपः सज्ञेयोजांगलोदेशो बहुधान्यादिसंयुतः ॥

भा० । धनुषोंकादुर्ग (किला) महीदुर्ग—जलकादुर्ग—वृक्षोंकादुर्ग—मनुष्योंकादुर्ग—पर्वतोंका दुर्ग बनाकर—राजा पुरमें वासकरे ॥

ता० । धनुषोंकादुर्ग जिसमेंहो अर्थात् पांच योजनतक धनुषोंसेयुक्त—और महीदुर्ग जिसमें हो अर्थात् पत्थर वा ईंटों से छःहाथचौड़ी और बारहहाथ ऊंची ऐसीभीति जिसमेंहो जिसके ऊपर युद्ध करनेवाले योद्धा फिरनेके और शस्त्रोंके चलानेके जिसमें झरोखेहों ऐसेप्राकार (परकोटा) से वेष्टित जोहो—और जिसमें जलकादुर्गहो अर्थात् जिसकी चारोंओर अगाध जलभरा हो—और जिसमें वृक्षोंकादुर्गहो अर्थात् जिसके बाहर योजन पर्यंत बड़े २ कांटोंके वृक्ष गुल्म लताआदि भरेहों—और जिसमें नृदुर्गहो अर्थात् जिसकी चारोंदिशाओंमें हाथी अश्व रथआदि से संयुक्त और पदातिआदि मनुष्य भरेहों—और जिसमें गिरिदुर्गहो अर्थात् जिसकी पीठपर कोई न चढ़सके और जिसका संकुचित और गुप्त एकही द्वारहो—और जिसके भीतर नदीका प्रवाहहो और जिसमें खेत और वृक्षहों—इनदुर्गोंमें से किसी एक वा दो तीन प्रकार के दुर्गको बनाकर अपनावास किसी पुरमें करे ७० ॥

सर्वेणतुप्रयत्नेनगिरिदुर्गंसमाश्रयेत । एषांहिबहुगुण्येनगिरिदुर्गंविशिष्यते ७१ ॥

प० । सर्वेण तु प्रयत्नेन गिरिदुर्गं समाश्रयेत् एषां हि बहुगुण्येन गिरिदुर्गं विशिष्यते

यो० । तुपुनः एषां (दुर्गाणां) मध्ये गिरिदुर्गं सर्वेण प्रयत्नेन समाश्रयेत—हि (यतः) एषां मध्ये बहुगुण्येन (हेतुना) गिरिदुर्गं विशिष्यते (श्रेष्ठमस्ति) ॥

भा० । ता० । इन सबदुर्गों में अनेक गुणोंसे संयुक्त होनेसे पर्वतोंका दुर्ग सर्वोत्तम है तिससे सबप्रकार के यत्नसे पर्वत के दुर्गका आश्रयले—क्योंकि उसमें दूसरा विपक्षी सहज से घुसनहीं सक्ता और दूसरे की सेनाको उसके मनुष्य शिलाआदि की वर्षा से नष्ट करसक्ते हैं ७१ ॥

त्रीण्याद्यान्याश्रितास्त्वेषांमृगगर्त्ताश्रयाऽप्सराः।त्रीण्युत्तराणिक्रमशःप्लवङ्गमनरामराः ७२

प० । त्रीणि आद्यानि आश्रिताः तु एषां मृगगर्ताश्रयाऽप्सराः त्रीणि उत्तराणि क्रमशः प्लवंगमनरामराः ॥

यो० । एषां (दुर्गाणां) मध्ये आद्यानि त्रीणि (दुर्गाणि) मृगगर्ताश्रयाऽप्सराः आश्रिताः संति—उत्तराणि त्रीणि क्रमशः प्लवंगमनरामराः आश्रिताः संति ॥

भा० । ता० । इन सब दुर्गोंमें पहिले तीन दुर्गों (धनुः मही जलके) में मृग और मूसे और नाके बसतेहैं और पिछले तीन दुर्गों (वृक्ष मनुष्य पर्वतके) में क्रमसे वानर मनुष्य और देवता बसतेहैं ७२ ॥

यथादुर्गाश्रितानेतान्नोपहिंसन्तिशत्रवः । तथारयोनहिंसन्तिनृपंदुर्गसमाश्रितम् ७३॥

प० । यथा दुर्गाश्रितान् एतान् न उपहिंसंति शत्रवः तथा अरयः न हिंसंति नृपं दुर्गसमाश्रितम् ॥

यो० । यथा दुर्गाश्रितान् एतान् (मृगवानरादीन) शत्रवः (सिंहादयः) न उपहिंसंति—तथा दुर्गसमाश्रितं नृपं अरयः न हिंसंति ॥

भा० । ता० । जैसे पूर्वोक्त दुर्गों में रहनेवाले मृग आदिकों की सिंह आदि शत्रु हिंसा नहीं करसक्ते इसी प्रकार दुर्गमें रहनेवाले राजाकोभी शत्रु हिंसानहीं करसक्ते ७३ ॥

एकःशतंयोधयतिप्राकारस्थोधनुर्द्धरः। शतंदशसहस्राणितस्माद्दुर्गंविधीयते ७४॥

प० । एकः शतं योधयति प्राकारस्थः धनुर्द्धरः शतं दशसहस्राणि तस्मात् दुर्गं विधीयते ॥

यो० । प्राकारस्थः एकः धनुर्द्धरः शतं योधयति — शतं (योद्धारः) दशसहस्राणि योधयंति — तस्मात् दुर्गं विधीयते (क्रियते) ॥

भा० । ता० । जिससे एक भी धनुषधारी प्राकार (किले) में बैठकर सौके संग युद्ध करसकाहै और सौ योद्धा दश सहस्रोंके संग युद्ध करसकेहैं—तिससे दुर्ग बनानेका उपदेश शास्त्रकारोंने कहाहै ७४ ॥

तत्स्यादायुधसंपन्नंधनधान्येनवाहनैः। ब्राह्मणैःशिल्पिभिर्यन्त्रैर्यवसेनोदकेनच ७५ ॥

प० । तत् स्यात् आयुधसंपन्नं धनधान्येन वाहनैः ब्राह्मणैः शिल्पिभिः यंत्रैः यवसेन उदकेन च ॥

यो० । तत (दुर्गं) आयुधसंपन्नं धनधान्येन — वाहनैः ब्राह्मणैः शिल्पिभिः यंत्रैः — यवसेन — चपुनः उदकेन-संपन्नं — स्यात ॥

भा० । ता० । आयुध (खड्ग आदि) धन—धान्य—वाहन (सवारी) ब्राह्मण—शिल्पी (कारीगर) यंत्र—यवस (भुंस)—और जल—इनसे संपन्न (संयुक्त वा पूर्ण) वह दुर्ग होनाचाहिये ७५ ॥

तस्यमध्येसुपर्याप्तंकारयेद्गृहमात्मनः। गुप्तंसर्वर्तुकंशुभ्रंजलवृक्षसमन्वितम् ७६ ॥

प० । तस्य मध्ये सुपर्याप्तं कारयेत् गृहं आत्मनः गुप्तं सर्वर्तुकं शुभ्रं जलवृक्षसमन्वितम् ॥

यो० । तस्य (दुर्गस्य) मध्ये सुपर्याप्तं — गुप्तं — सर्वर्तुकं — शुभ्रं — जलवृक्षसमन्वितं — आत्मनः गृहं — कारयेत ॥

भा० । ता० । उस दुर्गके मध्यमें—सुपर्याप्त अर्थात् स्त्री देवता आयुध अग्नि शाला आदिके जिसमें पृथक् २ स्थानहों—और जो परिखा प्राकार आदिसे गुप्त (रक्षित) हो—और सब ऋतुओंके फल पुष्प आदिसे संयुक्त—और अत्यंत शुभ्र—और वापी आदिके जल और वृक्षोंसे संपन्न—ऐसा अपने रहनेका घर बनावे ७६ ॥

तदध्यास्योद्वहेद्भार्यांसवर्णांलक्षणान्विताम्। कुलेमहतिसंभूतांहृद्यांरूपगुणान्विताम् ७७

प० । तत् अध्यास्य उद्वहेत् भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् कुले महति संभूतां हृद्यां रूपगुणान्विताम् ॥

यो० । राजा तत (गृहं) अध्यास्य — सवर्णां — लक्षणान्वितां — महति कुले संभूतां — हृद्यां रूपगुणान्वितां — भार्यां उद्वहेत (विवाहयेत) ॥

भा० । ता० । उस घरमें वसकर राजा—ऐसी स्त्रीके संग विवाह करै जो अपने समान वर्णकी हो और जो शुभके सूचक लक्षणोंसे संयुक्तहो—और जो महान् (बड़े) कुलमें उत्पन्नहो—और जो मनोहर हो—और गुणवतीहो ७७ ॥

पुरोहितंचकुर्वीतवृणुयादेवचर्त्विजम् । तेऽस्यगृह्याणिकर्माणिकुर्युर्वैतानिकानिच ७८ ॥

प० । पुरोहितं च कुर्वीत वृणुयात् एव च ऋत्विजं ते अस्य गृह्याणि कर्माणि कुर्युः वैतानिकानि च ॥

यो० । पुरोहितं कुर्वीत चपुनः ऋत्विजं वृणुयात् — ते (पुरोहितऋत्विजः) अस्य (राज्ञः) गृह्याणि चपुनः वैतानिकानि कर्माणि कुर्युः ॥

भा० । ता० । राजा एक पुरोहित को करे अर्थात् अथर्वण वेदमें कही विधिसे पुरोहितको बनावे—और एक ऋत्विज का वरणकरै वे दोनों पुरोहित और ऋत्विज इस राजाके गृह्य (शांति आदि) और वैतानिक (वेदत्रयीसे कर्तव्य यज्ञ आदि) कर्मोंको करावें ७८ ॥

यजेतराजाक्रतुभिर्विविधैराप्तदक्षिणैः । धर्मार्थंचैवविप्रेभ्योदद्याद्भोगान्धनानिच ७९ ॥

प० । यजेत राजा क्रतुभिः विविधैः आप्तदक्षिणैः धर्मार्थं च एव विप्रेभ्यः दद्यात् भोगान् धनानि च ॥

यो० । राजा — आप्तदक्षिणैः विविधैः क्रतुभिः यजेत — चपुनः धर्मार्थं विप्रेभ्यः भोगान् धनानिच — दद्यात् ॥

भा० । ता० । पूर्ण है दक्षिणा जिनमें ऐसी नानाप्रकारकी यज्ञों से राजा पूजनकरे—और धर्म के लिये ब्राह्मणों को भोग (भोजन वस्त्रआदि) और धनोंकोदे ७९ ॥

सांवत्सरिकमाप्तैश्चराष्ट्रादाहारयेद्बलिम् । स्याच्चाम्नायपरोलोकेवर्त्तेतपितृवन्नृपु ८० ॥

प० सांवत्सरिकं आप्तैः च राष्ट्रात् आहारयेत् बलिम् स्यात् च आम्नायपरः लोके वर्त्तेत पितृवत् नृपु ॥

यो० । आप्तैः (अमात्यैः) राष्ट्रात् सांवत्सरिकंबलिं आहारयेत् — चपुनः लोके आम्नायपरः स्यात् — नृपु पितृवत् वर्त्तेत ॥

भा० । ता० । अपने राष्ट्र (देश) में से राज्यमें नियुक्त सज्जन मंत्रियों के द्वारा वर्षदिन में लेनेयोग्य बलि (छठाभाग) को मँगवावे—और लोक में वेद के अनुसार वर्त्ते अर्थात् करआदि ग्रहणकरै—और मनुष्योंपर पिताके समान प्रीतिरक्खे ८० ॥

अध्यक्षान्विविधान्कुर्यात्तत्रतत्रविपश्चितः ।
तेऽस्यसर्वाण्यवेक्षेरन्नृणांकार्याणिकुर्वताम् ८१ ॥

प० । अध्यक्षान् विविधान् कुर्यात् तत्र तत्र विपश्चितः ते अस्य सर्वाणि अवेक्षेरन् नृणां कार्याणि कुर्वताम् ॥

यो० । तत्रतत्र विपश्चितः विविधान् अध्यक्षान् राजाकुर्यात् — ते अस्य (कार्याणि) कुर्वतां नृणां सर्वाणि कार्याणि अवेक्षेरन् (पश्येयुः) ॥

भा० । ता० । वहराजा तहां २ (हाथी अश्वआदिस्थानोंमें) विद्वान् और अनेक और काम में कुशल अध्यक्ष (देखनेवाले) नियतकरै—वे अध्यक्ष इसराजा के कामकरनेवाले मनुष्यों के सम्पूर्ण कामों को देखें ८१ ॥

आवृत्तानांगुरुकुलाद्विप्राणांपूजकोभवेत् । नृपाणामक्षयोह्येषनिधिर्ब्राह्मोऽभिधीयते ८२

प० । आवृत्तानां गुरुकुलात् विप्राणां पूजकः भवेत् नृपाणां अक्षयः हि एषः निधिः ब्राह्मः अभिधीयते ॥

यो० । गुरुकुलात् — आवृत्तानां विप्राणां पूजकः भवेत् — हि (यतः) एषः (उक्तविप्रपूजनरूपः) नृपाणां ब्राह्मः निधिः अभिधीयते (मन्वादिभिर्गीतिशेषः) ॥

भा० । ता० । वेदपढ़कर गुरुके कुलसे आयेहुए (गृहस्थ के अभिलाषी) ब्राह्मणोंका नियम पूर्वक धन धान्यसे पूजनकरे क्योंकि जो यह ब्राह्मणोंको दिये धनधान्यका यज्ञहै - सो राजाका अक्षयनिधि (कोश) शास्त्रमें कहाहै ८२ ॥

नतंस्तेनानचामित्राहरन्तिनचनश्यति । तस्माद्राज्ञानिधातव्योब्राह्मणेष्वक्षयोनिधिः ८३

प० । न तं स्तेनाः न च अमित्राः हरंति न च नश्यति तस्मात् राज्ञा निधातव्यः ब्राह्मणेषु अक्षयः निधिः ॥

यो० । यस्मात् तं (निधिं) स्तेनाः चपुनः अमित्राः (शत्रवः) नहरंति — चपुनः सः (निधिः) न नश्यति — तस्मात् ब्राह्मणेषु अक्षयः निधिः राज्ञा निधातव्यः (तेभ्योदेयः) ॥

भा० । ता० । उन ब्राह्मणों में स्थापित कीहुई निधि (कोश) को चोर और शत्रुनहीं हर सके—और न वहनिधि नष्टहोती है—तिससे राजा इस अनन्त फलदायक निधिको ब्राह्मणोंके विषे स्थापनकरे अर्थात् ब्राह्मणोंको धनधान्यदे ८३ ॥

नस्कन्दतेनव्यथतेनविनश्यतिकर्हिचित् । वरिष्ठमग्निहोत्रेभ्योब्राह्मणस्यमुखेहुतम् ८४॥

प० । न स्कंदते न व्यथते न विनश्यति कर्हिचित् वरिष्ठं अग्निहोत्रेभ्यः ब्राह्मणस्य मुखे हुतम् ॥

यो० । यतः ब्राह्मणस्य मुखेहुतं न स्कंदते — न व्यथते — न कर्हिचित् विनश्यति — तस्मात् अग्निहोत्रेभ्यः वरिष्ठं भवति ॥

भा० । ता० । ब्राह्मणके मुखमें होमकिया पदार्थ अर्थात् ब्राह्मणके हाथमेंदिया—क्योंकि इस वचनके अनुसार ब्राह्मणका हाथही मुखहोता है—झरतानहीं और शुष्कनहीं होता और दाह आदिसे नष्टनहींहोता इसमें अग्निहोत्रों से भी—ब्राह्मणके हस्तमेंदिया श्रेष्ठहै क्योंकि हवि कभी गिरभीजाती है और शुष्कहोजाती है और दाहआदिसे नष्टभी होजातीहै ८४ ॥

सममब्राह्मणेदानंद्विगुणंब्राह्मणब्रुवे । प्राधीतेशतसाहस्रमनन्तंवेदपारगे ८५ ॥

प० । समं अब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे प्राधीते शतसाहस्रं अनंतं वेदपारगे ॥

यो० । अब्राह्मणे दानं समं (तुल्यफलं) — ब्राह्मणब्रुवेद्विगुणं — प्राधीते — शतसाहस्रं — वेदपारगे अनंतं (असंख्यफलजनकं) — भवति ॥

भा० । ता० । ब्राह्मणसे भिन्न क्षत्रियआदि को देनेका फलसम (उतनाही) होताहै—और ब्राह्मणब्रुव (जो कर्महीनहो और अपनेको ब्राह्मण कहताहो) को देनेका फल द्विगुण (दुगुना)—फलका दाता होता है—और प्राधीत (जो पढ़ताहो) को देनेकाफल लक्षगुणा होता है—और वेदपारग (जिसने संपूर्ण शाखापढ़ीहों) को देनेकाफल अनंत होताहै ८५ ॥

---

१ पाण्यास्याहि द्विजःस्मृतः ॥

पात्रस्यहिविशेषेणश्रद्दधानतयैवच । अल्पंवाबहुवाप्रेत्यदानस्यावाप्यतेफलम् ८६ ॥

प० । पात्रस्य हि विशेषेण श्रद्दधानतया एव च अल्पं वा बहु वा प्रेत्य दानस्य अवाप्यते फलम् ॥

यो० । पात्रस्य विशेषेण चपुनः श्रद्दधानतया – दानस्य फलं अल्पं वा बहु प्रेत्य मनुष्यैः अवाप्यते (लभ्यते) ॥

भा० । ता० । विद्या और तपसे युक्त पात्रकी विशेषता और शास्त्रोक्त सत्यहै इस श्रद्धासे–अल्प अथवा अधिकदान का फल परलोक में मनुष्यों को मिलता है–इससे श्रद्धासे सुपात्र को दानदे ८६ ॥

समोत्तमाधमैराजात्वाहूतःपालयन्प्रजाः । ननिवर्त्तेतसंग्रामात्क्षात्रंधर्ममनुस्मरन् ८७॥

प० । समोत्तमाधमैः राजा तु आहूतः पालयन् प्रजाः न निवर्त्तेत संग्रामात् क्षात्रं धर्मं अनुस्मरन् ॥

यो० । समोत्तमाधमैः आहूतः राजा प्रजाः पालयन् क्षात्रं धर्मं अनुस्मरन्सन् संग्रामात् न निवर्त्तेत ॥

भा० । ता० । अपने से समान उत्तम और अधम राजाओंने युद्धकेलिये आहूत (बुलाया) राजा प्रजाकी पालना और क्षत्रियों के धर्म का स्मरण–करताहुआ राजा युद्धसे निवृत्त न हो–क्योंकि युद्ध के लिये बुलाये क्षत्रियको अवश्य युद्धकरना ८७ ॥

संग्रामेष्वनिवर्त्तित्वंप्रजानांचैवपालनम् । शुश्रूषाब्राह्मणानांचराज्ञांश्रेयस्करंपरम् ८८॥

प० । संग्रामेषु अनिवर्त्तित्वं प्रजानां च एव पालनं शुश्रूषा ब्राह्मणानां च राज्ञां श्रेयस्करं परम् ॥

यो० । संग्रामेषु अनिवर्त्तित्वं – चपुनः प्रजानां पालनं – चपुनः ब्राह्मणानां शुश्रूषा –(एतत्त्रयं) राज्ञां परं श्रेयस्करं भवति ॥

भा० । ता० । संग्राम में पराङ्मुख न होना–और प्रजाओंकी पालना करनी और ब्राह्मणों की शुश्रूषा (सेवा) करनी–ये तीनों राजाओं के अत्यन्त कल्याण करनेवाले होतेहैं ८८ ॥

आहवेषुमिथोऽन्योन्यंजिघांसन्तोमहीक्षितः ।
युध्यमानाःपरंशक्त्यास्वर्गंयान्त्यपराङ्मुखाः ८९॥

प० । आहवेषु मिथः अन्योन्यं जिघांसंतः महीक्षितः युध्यमानाः परं शक्त्या स्वर्गं यांति अपराङ्मुखाः ॥

यो० । आहवेषु मिथः अन्योन्यं जिघांसंतः शक्त्यायुध्यमानाः अपराङ्मुखाः महीक्षितः परं स्वर्गं यांति (गच्छंति) ॥

भा० । ता० । संग्रामों में परस्पर–परस्परको मारने की इच्छाकरते और युद्धकरतेहुये–और अपराङ्मुख(संमुखहुये)–राजा सर्वोत्तम स्वर्गमें जातेहैं–यद्यपि शत्रुकापराजय और धनआदि काभी लाभ है तथापि युद्धमें जाकर जो पराङ्मुख न हो उसको स्वर्ग भी अवश्य होताहै ८९ ॥

नकूटैरायुधैर्हन्याद्युध्यमानोरणेरिपून् । नकर्णिभिर्नापिदिग्धैर्नाग्निज्वलिततेजनैः ९० ॥

प० । न कूटैः आयुधैः हन्यात् युध्यमानः रणे रिपून् न कर्णिभिः न अपि दिग्धैः न अग्निज्वलिततेजनैः

यो० । रणे युध्यमानः राजा कूटैः आयुधैः—कर्णिभिः दिग्धैः अग्निज्वलिततेजनैः आयुधैः रिपून् न हन्यात् ॥

भा० । ता० । युद्ध करताहुआ राजा रणमें शत्रुओंको कूट आयुधों (जिनके बाहर काष्ठहो और भीतर तीक्ष्ण (पैने) शस्त्रहों) से शत्रुओंको न मारे—और कर्णीके आकार जिनको फलक (अग्रभाग) हो ऐसे बाणोंसे और जिनमें विष मिलाहो ऐसे और जिनका फलक अग्निसे तपाया हुआहो उन बाणोंसे भी शत्रुओंको न मारे ९० ॥

नचहन्यात्स्थलारूढंनक्लीबंनकृताञ्जलिम् । नमुक्तकेशंनासीनंनतवास्मीतिवादिनम् ९१

प० । न च हन्यात् स्थलारूढं न क्लीबं न कृतांजलिं न मुक्तकेशं न आसीनं न तव अस्मि इति वादिनम् ॥

यो० । स्थलारूढं—क्लीबं—कृतांजलिं—मुक्तकेशं—आसीनं—तवअस्मि इतिवादिनं—शत्रुं न हन्यात् ॥

भा० । ता० । आप रथमें बैठाहुआ राजा—रथछोड़कर स्थल पर खड़ेहुये राजाको—और नपुंसक राजाको—और कृतांजलि (जो हाथ जोड़े खड़ाहो) को—और मुक्तकेश (जिसके केश खुलेहों) उसको और मैं तेराहीहूं यह कहनेहुये राजाको—न मारे क्योंकि यह धर्म युद्धहोताहै ९१ ॥

नसुप्तंनविसन्नाहंननग्नंननिरायुधम् । नायुध्यमानंपश्यन्तंनपरेणसमागतम् ९२ ॥

प० । न सुप्तं न विसन्नाहं न नग्नं न निरायुधं न अयुध्यमानं पश्यंतं न परेण समागतम् ॥

यो० । सुप्तं—विसन्नाहं—नग्नं—निरायुधं—अयुध्यमानं पश्यंतं—परेण समागतं—शत्रुं—राजा न हन्यात् ॥

भा० । ता० । सोतेहुये—जिसपर सन्नाह (सजोआ) न हो उसको—नग्नको—आयुधसे हीनको— (जिसके पास शस्त्र न हो)—और जो युद्धतो न करताहो परंतु देखरहाहो और जो किसी अन्यके संग युद्ध कररहाहो—ऐसे शत्रुको भी राजा न मारे ९२ ॥

नायुधव्यसनप्राप्तंनार्त्तंनातिपरिक्षतम् । नभीतंनपरावृत्तंसतांधर्ममनुस्मरन् ९३ ॥

प० । न आयुधव्यसनप्राप्तं न आर्त्तं न अतिपरिक्षतं न भीतं न परावृत्तं सतां धर्मं अनुस्मरन् ॥

यो० । राजा—सतां धर्मं अनुस्मरन् सन् आयुधव्यसनप्राप्तं आर्त्तं—अतिपरिक्षतं—भीतं—परावृत्तं—शत्रुं न हन्यात् ॥

भा० । ता० । सज्जन क्षत्रियों के धर्मको स्मरणकरताहुआ राजा—ऐसे शत्रुको न मारे—जिसका खड्गआदि आयुध टूटगयाहो—और जो रोगीहो—जिसके अत्यन्त क्षत (घाव) हों—जो भयभीतहो और जो युद्धसे पराङ्मुखहो (लौटा वा भाजाहो) ९३ ॥

यस्तुभीतःपरावृत्तःसंग्रामेहन्यतेपरैः । भर्त्तुर्यद्दुष्कृतंकिंचित्तत्सर्वंप्रतिपद्यते ९४ ॥

प० । यः तु भीतः परावृत्तः संग्रामे हन्यते परैः भर्त्तुः यत् दुष्कृतं किंचित् तत् सर्वं प्रतिपद्यते ॥

यो० । भीतः परावृत्तः यः संग्रामे परैः हन्यते—सः यत् किंचित् भर्त्तुः दुष्कृतं (पापं) तत् सर्वं प्रतिपद्यते (प्राप्नोति)

भा० । जिस भयभीतको संग्राम में शत्रु मारदेतहैं वह अपने स्वामीके सम्पूर्ण पाप को प्राप्त होताहै ॥

ता० । पराङ्मुखहुये भयभीत जिस युद्धकरनेवाले को संग्राम में शत्रु मारदेते हैं—वह अपने स्वामीका जो कुछ पापहै उस सबको प्राप्तहोताहै—यहां पर यह शंका नहीं करनी कि स्वामी

का पाप सेवकको कैसे मिलेगा क्योंकि शास्त्र प्रमाणसे अन्य के पाप अन्य में जासक्तेहैं इसीसे शास्त्रसे विरुद्ध अनुमान भी नहीं होसक्ता–यह बात हम छटे अध्याय के ७९ श्लोकमें प्रकट कर आये हैं–इससे पराङ्मुख हतको पाप होताहै और स्वामी का पाप उसको नहीं मिलता यह गोविंदराजका–और अर्थवाद यह है ऐसा कथन मेधातिथि का मनुके अर्थ से विरुद्धहोनेसे ठीक नहीं है–क्योंकि अन्य के पुण्य पाप अन्य में शास्त्र प्रमाणसे जानेहैं यह बात व्यासजीने निर्णय की है–इससे जो अर्थ हमने कहा वही ठीक है ९४ ॥

यच्चास्यसुकृतंकिंचिदमुत्रार्थमुपार्जितम् । भर्त्तातत्सर्वमादत्तेपरावृत्तहतस्यतु ९५ ॥

प० । यत् च अस्य सुकृतं किंचित् अमुत्रार्थं उपार्जितं भर्त्ता तत् सर्वं आदत्ते परावृत्तहतस्य तु ॥

यो० । परावृत्तहतस्य अस्य अमुत्रार्थं उपार्जितं यत् किंचित् सुकृतं (पुण्यं) अस्ति तत् सर्वं भर्त्ता (स्वामी) आदत्ते (गृह्णाति) ॥

भा० । ता० । पराङ्मुखहोकर मरेहुये का जो कुछ परलोकके लिये संचित पुण्य है उस सब पुण्यको स्वामी लेलेता है अर्थात् शास्त्र प्रमाणसे वह स्वामीको मिलजाता है ९५ ॥

रथाश्वंहस्तिनंछत्रंधनंधान्यंपशून्स्त्रियः । सर्वद्रव्याणिकुप्यंचयोयज्जयतितस्यतत् ९६ ॥

प० । रथाश्वं हस्तिनं छत्रं धनं धान्यं पशून् स्त्रियः सर्वद्रव्याणि कुप्यं च यः यत् जयति तस्य तत् ॥

यो० । रथाश्वं–हस्तिनं–छत्रं–धनं धान्यं पशून्–स्त्रियः सर्वद्रव्याणि–चपुनः कुप्यं –एषां मध्ये यः योद्धा–यत् जयति तत् रथाश्वादिकं तस्य एव भवति ॥

भा० । जो योधा–रथ–घोड़ा–हाथी–वस्त्र अन्न–पशु–स्त्री–गुड़ लवण और सोने चांदी से भिन्न धातु–इनको जीतकर लावे वह उस योधाकीही होतीहै ॥

ता० । जीतेहुये संग्रामके पदार्थों को राजाहीन ग्रहण करै किंतु रथ–घोड़े–हाथी–छत्र–धन (वस्त्र) अन्न–पशु–स्त्री–और गुड़ लवण आदि सब द्रव्य और कुप्य (सोने चांदीसे भिन्न तांबा आदि) इनको जो सबसे पृथक् जीतकर लावे व उस जीतनेवालेकेही होतेहैं राजाके नहीं–और सोने चांदी आदि जीतेहुये धनको तो राजाकेही अर्पण करदे–क्योंकि इसीलिये यहां पर यह गिनतीकी है ९६ ॥

राज्ञश्चदद्युरुद्धारमित्येषावैदिकीश्रुतिः।राज्ञाचसर्वयोधेभ्योदातव्यमपृथग्जितम् ९७॥

प० । राज्ञः च दद्युः उद्धारं इति एषा वैदिकी श्रुतिः राज्ञा च सर्वयोधेभ्यः दातव्यं अपृथग्जितम् ॥

यो० । योधाः राज्ञः उद्धारं दद्युः–चपुनः राज्ञा सर्वयोधेभ्यः अपृथग्जितं दातव्यम्–इति एषा वैदिकी श्रुतिः अस्ति॥

भा० । यह वेदकी श्रुतिहै कि योधा राजाको उद्धारदें–और राजा भी मिलकर जीतेहुये धनको योधाओंको दे ॥

ता० । युद्ध करनेवाले मनुष्य राजाको उद्धार (जीतेहुये धनमें जो उत्तम)–सुवर्ण रजत कुप्यआदि) दें और हाथी घोड़ा वाहन आदिभी राजाकेही अर्पण करदें–क्योंकि इसे गौतमके

१ वाहनं च राज्ञ उद्धारश्च ॥

वचनसे यही प्रतीत होताहै कि वाहन और उद्धार राजाका होताहै—और उद्धारके देनेमें यह श्रुति भी है कि इंद्रने जब वृत्रासुरको हता तब देवताओं के समीप जाकर यह बोला कि मेरा उद्धारदो—और राजा भी मिलकर वा पृथक् २ जीतेहुये धनमेंसे सब योधाओंको पुरुषार्थ के अनुसार दे ९७ ॥

एषोऽनुपस्कृतःप्रोक्तोयोधधर्मःसनातनः ।
अस्माद्धर्मान्नच्यवेतक्षत्रियोघ्नन्रणेरिपून् ९८ ॥

प० । एषः अनुपस्कृतः प्रोक्तः योधधर्मः सनातनः अस्मात् धर्मात् न च्यवेत क्षत्रियः घ्नन् रणे रिपून् ॥

यो० । एषः अनुपस्कृतः (अतिगर्हितः) सनातनः योधधर्मः मया प्रोक्तः (कथितः)—क्षत्रियः रणे रिपून् घ्नन् सन् अस्मात् धर्मात् नच्यवेत (नपतेत्) ॥

भा० । ता० । अत्यंत निंदित और सनातन (अनादि संसारमें सदासे प्रचलित) योधाओं का यहधर्म मैंने तुमको कहा—संग्राम में शत्रुओंको मारताहुआ क्षत्रिय इस धर्मसे चलायमान नहो—युद्धका अधिकारी होनेसे क्षत्रिय कहाहै यदि अन्य भी राजाहो वह भी उक्तधर्मसे न चले९८॥

अलब्धंचैवलिप्सेतलब्धंरक्षेत्प्रयत्नतः । रक्षितंवर्द्धयेच्चैववृद्धंपात्रेषुनिःक्षिपेत् ९९ ॥

प० । अलब्धं च एव लिप्सेत लब्धं रक्षेत् प्रयत्नतः रक्षितं वर्द्धयेत् च एव वृद्धं पात्रेषु निःक्षिपेत् ॥

यो० । राजा अलब्धं धनं लिप्सेत—लब्धं धनं प्रयत्नतः रक्षेत्—रक्षितं धनं वर्द्धयेत् एव वृद्धं धनं पात्रेषु निःक्षिपेत् (दद्यात्) ॥

भा० । ता० । नहीं जीते भूमि रत्न आदि धनके जयकी इच्छाकरै और जीतेहुये धनकी प्रयत्नसे रक्षाकरै—और रक्षित धनको बढ़ावे और बढ़ाये धनको सुपात्र को दे ९९ ॥

एतच्चतुर्विधंविद्यात्पुरुषार्थप्रयोजनम् । अस्यनित्यमनुष्ठानंसम्यक्कुर्यादतन्द्रितः १०० ॥

प० । एतत् चतुर्विधं विद्यात् पुरुषार्थप्रयोजनम् अस्य नित्यं अनुष्ठानं सम्यक् कुर्यात् अतंद्रितः ॥

यो० । एतत् चतुर्विधं पुरुषार्थप्रयोजनं विद्यात्—अतंद्रितःसन अस्य नित्यं अनुष्ठानं कुर्यात् ॥

भा० । ता० । राजा—इस चार प्रकारके पुरुषार्थ (स्वर्ग आदि) के प्रयोजन (साधन) को जाने—इसीसे आलस्यको छोड़कर इसका नित्य (प्रतिदिन) करै १०० ॥

अलब्धमिच्छेद्दण्डेनलब्धंरक्षेदवेक्षया । रक्षितंवर्द्धयेद्वृद्ध्यावृद्धंदानेननिःक्षिपेत् १०१ ॥

प० । अलब्धं इच्छेत् दंडेन लब्धं रक्षेत् अवेक्षया रक्षितं वर्द्धयेत् वृद्ध्या वृद्धं दानेन निःक्षिपेत् ॥

यो० । अलब्धं हस्ति आदि धनं दंडेन इच्छेत्—लब्धं धनं अवेक्षया रक्षेत्—रक्षितं धनं वृद्ध्या वर्द्धयेत्—वर्द्धितं धनं—राजा दानेन निःक्षिपेत् (सुपात्रेभ्यः दद्यात्) ॥

भा० । ता० । नहींप्राप्तहुये हस्ति अश्व रथ पदातिआदि धनकीइच्छा दंड के द्वारा—राजाकरै और प्राप्तहुये धनकी अपने देखनेसे रक्षाकरै—और रक्षाकिये धनको वृद्धि (स्थल जल मार्ग आदिका व्यापार) से बढ़ावे और बढ़ायेहुये धनको सुपात्रोंकोदे १०१ ॥

---

१ इंद्रो वै वृत्रं हत्वेत्युपक्रम्य समहान् भूत्वा देवता अब्रवीत् उद्धारं मे उद्धरत ॥

नित्यमुद्यतदण्डःस्यान्नित्यंविवृतपौरुषः। नित्यंसंवृतसर्वार्थोनित्यंछिद्रानुसार्यरेः १०२॥

प० । नित्यं उद्यतदंडः स्यात् नित्यं विवृतपौरुषः नित्यं संवृतसर्वार्थः नित्यं छिद्रानुसारी अरेः ॥

यो० । राजा — नित्यं उद्यतदंडः स्यात् — नित्यंविवृतपौरुषःस्यात् — नित्यं संवृतसर्वार्थः स्यात् — नित्यं अरेः (शत्रोः) छिद्रानुसारी स्यात् ॥

भा० । ता० । राजा प्रतिदिन उद्यत दंडरहै अर्थात् हस्ति अश्वआदि की शिक्षाका अभ्यास प्रतिदिनकरै—और नित्य विवृत पौरुषरहै अर्थात् अस्त्रआदिसे अपने पुरुषार्थ को नित्य प्रकट रक्खै और नित्य संवृतसर्वार्थ रहै अर्थात् अपने मंत्र आचार चेष्टा आदिको प्रकट न करै—और नित्य शत्रुकेछिद्रोंका अनुसारीरहै अर्थात् शत्रुके दुःखआदिछिद्रोंको प्रतिदिन देखतारहै १०२॥

नित्यमुद्यतदण्डस्यकृत्स्नमुद्विजतेजगत्।तस्मात्सर्वाणिभूतानिदण्डेनैवप्रसाधयेत् १०३

प० । नित्यं उद्यतदंडस्य कृत्स्नं उद्विजते जगत् तस्मात् सर्वाणि भूतानि दंडेन एव प्रसाधयेत् ॥

यो० । नित्यं उद्यतदंडस्य राज्ञः सकाशात् कृत्स्नंजगत् उद्विजते — तस्मात् राजा सर्वाणि भूतानि दंडेन एव प्रसाधयेत् (स्ववशेकुर्यात्) ॥

भा० । ता० । जिससे नित्य उद्यतदंड राजा से सबजगत् कंपता है—तिससे दंडसेही सम्पूर्ण भूतोंको अपने वशमें—राजाकरै १०३ ॥

अमाययैववर्त्तेतनकथंचनमायया । बुद्ध्येतारिप्रयुक्तांचमायांनित्यंसुसंवृतः १०४ ॥

प० । अमायया एव वर्त्तेत न कथंचन मायया बुद्ध्येत अरिप्रयुक्तां च मायां नित्यं सुसंवृतः ॥

यो० । अमायया एव वर्त्तेत — मायया कथंचन न वर्त्तेत — चपुनः नित्यं सुसंवृतः सन् अरिप्रयुक्तां मायां बुद्ध्येत (जानीयात्) ॥

भा० । ता० । अमात्यआदिकों में राजा निष्कपटसे वर्त्तावकरै तो किसीकाभी विश्वासी न रहेगा और किसीप्रकार भी कपट से वर्त्ताव न करै अर्थात् धर्म रक्षाके लिये यथार्थ व्यवहार करै—और अपनीरक्षाको भलीप्रकार नित्यकरके—शत्रुकीमाया (अपनी प्रकृतिकाभेद) को दूतके द्वारा जाने १०४ ॥

नास्यछिद्रंपरोविद्याद्विद्याच्छिद्रंपरस्यतु । गूहेत्कूर्मइवाङ्गानिरक्षेद्विवरमात्मनः १०५ ॥

प० । न अस्य छिद्रं परः विद्यात् विद्यात् छिद्रं परस्य तु गूहेत् कूर्मः इव अंगानि रक्षेत् विवरं आत्मनः ॥

यो० । परः (शत्रुः) अस्य (राज्ञः) छिद्रं न विद्यात् — राजा तु परस्य छिद्रंविद्यात् — राजा कूर्मः (कच्छपः) इव अंगानि गूहेत् — आत्मनः विवरं रक्षेत् ॥

भा० । ता० । राजा ऐसा यत्नकरै जिससे इसके छिद्र (प्रकृतिभेद आदि) को शत्रु न जाने और शत्रुके छिद्रको दूतोंसे स्वयंजानले—और कछुवे के समान अपने अंगोंको छिपावै अर्थात् कछुवा जैसे अपने हाथ चरणआदि अवयवोंको अपने देहमें छिपाता है इसीप्रकार राजा भी

अपने मंत्रीआदि अंगोंको दान मानआदि से छिपावे (अपने आधीनकरै)—और यदि दैववश छिद्रहोभीजाय तो उसका यत्नसे प्रतीकारकरै १०५ ॥

वकवच्चिन्तयेदर्थान्सिंहवच्चपराक्रमेत् । वृकवच्चावलुम्पेतशशवच्चविनिष्पतेत् १०६ ॥

प० । वकवत् चिंतयेत् अर्थान् सिंहवत् च पराक्रमेत् वृकवत् च अवलुंपेत शशवत् च विनिष्पतेत् ॥

यो० । राजा — वकवत् अर्थान् चिंतयेत — चपुनः सिंहवत् पराक्रमेत् — चपुनः वृकवत् अवलुंपेत — चपुनः शशवत् विनिष्पतेत् ॥

भा० । बगुलेके समान अपने प्रयोजनोंकी चिंताकरै—सिंहके समान पराक्रमकरै—वृकके समान शत्रुको नष्टकरै—शशा (खरा) के समान पलायनकरै (भाजजाय) ॥

ता० । जैसे बक (बगुला) जलमें अतिचंचल स्वभाव मीनोंको अंतःकरणको लगाकर निश्चलतासे ग्रहण करता है—इसीप्रकार राजाभी भलीप्रकारकी है रक्षा जिसमें ऐसे शत्रुके देशों के लेनेकी चिंताकरै—और जैसे सिंह अतिबली और स्थूलभी हाथियोंकी सेनाके मारनेको पराक्रम करता है इसीप्रकार बलवान्ने दबाया निर्बल राजाभी अपनी शक्तिभर शत्रु के मारने में पराक्रमकरै—जैसे वृक (भिढ़ा) रक्षाकिये पशुको दैववश रक्षाकरनेवाले की असावधानी के समय मारदेता है—इसीप्रकार दुर्गमें बैठेहुये भी शत्रुको प्रमादकी अवस्था में नष्टकरदे—और जैसे शशा (खरा) मारनेमें चतुर अनेक व्याधों के मध्यमें स्थितभी कूदकर भाजजाताहै—इसी प्रकार निर्बल राजाभी बलवानोंसे घिरकर किसीप्रकार मोहितकरके गुणवाले किसी अन्य राजा का आश्रयलेले १०६ ॥

एवंविजयमानस्ययेऽस्यस्युःपरिपन्थिनः । तानानयेद्वशंसर्वान्सामादिभिरुपक्रमैः १०७

प० । एवं विजयमानस्य ये अस्य स्युः परिपंथिनः तान् आनयेत् वशं सर्वान् सामादिभिः उपक्रमैः ॥

यो० । एवं विजयमानस्य अस्य (राज्ञः) ये परिपंथिनः (विरोधिनः) स्युः तान् सर्वान् सामादिभिः उपक्रमैः (उपायैः) वशं आनयेत् (वशीकुर्यात्) ॥

भा० । ता० । इस उक्तप्रकार से विजय करतेहुये इस राजाके जो विरोधी होजायँ—उनसबको साम (शांति) आदि उपायोंसे वशमेंकरै १०७ ॥

यदितेतुनतिष्ठेयुरुपायैःप्रथमैस्त्रिभिः । दण्डेनैवप्रसह्यैताञ्छनकैर्वशमानयेत् १०८ ॥

प० । यदि ते तु न तिष्ठेयुः उपायैः प्रथमैः त्रिभिः दंडेन एव प्रसह्य एतान् शनकैः वशं आनयेत् ॥

यो० । यदि ते (विरोधिनः) प्रथमैः त्रिभिः (सामदामभेदैः) उपायैः नतिष्ठेयुः — तर्हि दंडेन एव प्रसह्य एतान् (विरोधिनः) वशं आनयेत् (वशीकुर्यात्) ॥

भा० । ता० । जो वे विरोधी पहिले तीन (साम भेद दंड) उपायोंसे विरोधका परित्याग न करैं—तो बलसेही दंडदेकर उनको अपने वशमेंकरै १०८ ॥

सामादीनामुपायानांचतुर्णामपिपण्डिताः।सामदण्डौप्रशंसन्तिनित्यंराष्ट्राभिवृद्धये १०६

प० । सामादीनां उपायानां चतुर्णां अपि पंडिताः सामदंडौ प्रशंसंति नित्यं राष्ट्राभिवृद्धये ॥

यो० । सामादीनां चतुर्णां अपि उपायानां मध्ये पंडिताः नित्यं राष्ट्राभिवृद्धये सामदंडौ प्रशंसंति (सामदंडयोरेव प्रशंसां कुर्वंतीत्यर्थः) ॥

भा० । ता० । साम दाम भेद दंड इनचारों उपायों के विषे पंडितजन प्रतिदिन देश की विशेषकर वृद्धिके लिये साम और दंडकीही प्रशंसाकरते हैं–क्योंकि शांतिरूप उपायमें परिश्रम धनकाव्यय–सेना का नाशआदि दोषों का अभावहै–और दंडरूप उपायमें पूर्वोक्तदोष होनेपर भी कार्यकी सिद्धिकी अधिकता है १०६ ॥

यथोद्धरतिनिर्दाताकक्षंधान्यंचरक्षति । तथारक्षेन्नृपोराष्ट्रंहन्याच्चपरिपन्थिनः ११० ॥

प० । यथा उद्धरति निर्दाता कक्षं धान्यं च रक्षति तथा रक्षेत् नृपः राष्ट्रं हन्यात् च परिपंथिनः ॥

यो० । निर्दाता (लवनकर्त्ता) यथा कक्षं उद्धरति–चपुनः धान्यंरक्षति–तथा नृपतिः राष्ट्रं रक्षेत् चपुनः परिपंथिनः (शत्रून्) हन्यात् ॥

भा० । ता० । जैसे धान्यका काटनेवाला खेत में से तृणोंको उखाड़ताहै और धान्यकीरक्षा करताहै इसीप्रकार राजाभी दुष्टोंकोमारे और शिष्टोंसहित अपने देशकी रक्षाकरै ११० ॥

मोहाद्राजास्वराष्ट्रंयःकर्षयत्यनवेक्षया । सोऽचिराद्भ्रश्यतेराज्याज्जीविताच्चसबान्धवः १११

प० । मोहात् राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयति अनवेक्षया सः अचिरात् भ्रश्यते राज्यात् जीवितात् च सबान्धवः ॥

यो० । यः राजा अनवेक्षया मोहात् स्वराष्ट्रं कर्षयति सबान्धवः सः राजा अचिरात् राज्यात् चपुनः जीवितात् भ्रश्यते (नश्यति) ॥

भा० । ता० । जो राजा शिष्ट और अशिष्टोंको न जानकर मोहसे अपनेदेशनिवासी मनुष्यों को पीडित करताहै (कष्टदेताहै) वह शीघ्रही देशके वैर और अधर्मसे राज्यसे और अपने जीवनसे पुत्र बन्धुओं समेत भ्रष्टहोजाताहै–अर्थात् नष्टहोजाताहै १११ ॥

शरीरकर्षणात्प्राणाःक्षीयन्तेप्राणिनांयथा ।
तथाराज्ञामपिप्राणाःक्षीयन्तेराष्ट्रकर्षणात् ११२ ॥

प० । शरीरकर्षणात् प्राणाः क्षीयंते प्राणिनां यथा तथा राज्ञां अपि प्राणाः क्षीयंते राष्ट्रकर्षणात् ॥

यो० । शरीरकर्षणात् (शोषणात्) प्राणिनां प्राणाः यथा क्षीयंते–तथा राज्ञां अपि प्राणाः राष्ट्रकर्षणात् क्षीयंते (नश्यंति) ॥

भा० । ता० । भोजन आदिके परित्यागसे शरीरके शुष्क होनेपर जैसे प्राणियोंके प्राण नष्टहोजातेहैं इसी प्रकार राष्ट्र (देश) को पीडादेनेसे राजाओंके भी प्राण नष्टहोजाते हैं तिससे देशकी रक्षा राजा इस प्रकार करै जैसे अपने शरीरकी ११२ ॥

राष्ट्रस्यसंग्रहेनित्यंविधानमिदमाचरेत् । सुसंगृहीतराष्ट्रोहिपार्थिवःसुखमेधते ११३ ॥

प० । राष्ट्रस्य संग्रहे नित्यं विधानं इदं आचरेत् सुसंगृहीतराष्ट्रः हि पार्थिवः सुखं एधते ॥

यो० । राष्ट्रस्य संग्रहे इदं विधानं नित्यं आचरेत् – हि (यतः) सुसंगृहीतराष्ट्रः पार्थिवः सुखं एधते(वर्द्धते)॥

भा० । ता० । देशकी रक्षामें इस (जो आगे कहेंगे) उपायको राजा प्रतिदिन करै—क्योंकि देशकी रक्षा करनेवाला राजा सुखसे बढ़ताहै ११३ ॥

द्वयोस्त्रयाणांपञ्चानांमध्येगुल्ममधिष्ठितम् । तथाग्रामशतानांचकुर्याद्राष्ट्रस्यसंग्रहम् ११४

प० । द्वयोः त्रयाणां पंचानां मध्ये गुल्मं अधिष्ठितम् तथा ग्रामशतानां च कुर्यात् राष्ट्रस्य संग्रहम् ॥

यो० । द्वयो ग्रामयोः मध्ये त्रयाणां पंचानां तथा ग्रामशतानां मध्ये अधिष्ठितं गुल्मं (रक्षित पुरुषसमूहं प्रधान पुरुष युक्तं) राष्ट्रस्यसंग्रहं (रक्षास्थानं) कुर्यात् ॥

भा० । ता० । दो ग्रामोंके और तीन–पांच अथवा सौ ग्रामोंके मध्यमें रक्षाकरनेवाले पुरुष जिसमेंहों ऐसा गुल्म (थाना) नियतकरै और एक राष्ट्र (देश) का संग्रह (किला) भी नियतकरै और इसका लघु बनावे और गुरु (बड़ा) बनानेमें विकल्पहै ११४ ॥

ग्रामस्याधिपतिंकुर्याद्दशग्रामपतिंतथा । विंशतीशंशतेशंचसहस्रपतिमेवच ११५ ॥

प० । ग्रामस्य अधिपतिं कुर्यात् दशग्रामपतिं तथा विंशतीशं शतेशं च सहस्रपतिं एव च ॥

यो० । ग्रामस्य अधिपतिं – तथा दशग्रामपतिं – विंशतीशं – चपुनः शतेशं – चपुनः सहस्रपतिं – कुर्यात् ॥

भा० । ता० । एक ग्रामके अधिपति को—और दश ग्रामके अधिपति को—बीस ग्रामोंके और सौ ग्रामोंके और सहस्र ग्रामोंके अधिपति (लंबरदार) को नियतराजा करै ११५ ॥

ग्रामदोषान्समुत्पन्नान्ग्रामिकःशनकैःस्वयम् ।
शंसेद्ग्रामदशेशायदशेशोविंशतीशिनम् ११६ ॥

प० । ग्रामदोषान् समुत्पन्नान् ग्रामिकः शनकैः स्वयं शंसेत् ग्रामदशेशाय दशेशः विंशतीशिनम् ॥

यो० । समुत्पन्नान ग्रामदोषान ग्रामिकः (ग्रामपतिः) स्वयं शनकैः ग्रामदशेशाय शंसेत् – दशेशः विंशतीशिनम् (विंशतिग्रामपतिं) शंसेत् (कथयेत) ॥

भा० । ता० । ग्राममें पैदाहुये चौर आदिके उपद्रवोंको—दश ग्रामके अधिपतिको और दश ग्रामोंका अधिपति बीस ग्रामोंके अधिपतिको आप जाकरकहै ११६ ॥

विंशतीशस्तुतत्सर्वंशतेशायनिवेदयेत् । शंसेद्ग्रामशतेशस्तुसहस्रपतयेस्वयम् ११७ ॥

प० । विंशतीशः तु तत् सर्वं शतेशाय निवेदयेत् शंसेत् ग्रामशतेशः तु सहस्रपतये स्वयम् ॥

यो० । विंशतीशः तत् सर्वं शतेशाय निवेदयेत् – ग्रामशतेशः तु – सहस्रपतये स्वयं शंसेत् – (कथयेत्) ॥

भा० । ता० । बीस ग्रामोंका अधिपति उस सबको सौ ग्रामोंके अधिपतिको—निवेदनकरै—और सौ ग्रामोंका अधिपति—सहस्र ग्रामोंके अधिपतिको स्वयं जाकर कहै इस प्रकार चौरादि-कंटकोंका उद्धार होसक्ताहै ११७ ॥

यानिराजप्रदेयानिप्रत्यहंग्रामवासिभिः ।
अन्नपानेन्धनादीनिग्रामिकस्तान्यवाप्नुयात् ११८ ॥

प० । यानि राजप्रदेयानि प्रत्यहं ग्रामवासिभिः अन्नपानेंधनादीनि ग्रामिकः तानि अवाप्नुयात् ॥

यो० । ग्रामवासिभिः प्रत्यहं राजप्रदेयानि यानि अन्नपानेंधनादीनि भवंति — तानि ग्रामिकः स्वयं अवाप्नुयात् — (प्राप्नुयात्) ॥

भा० । ता० । जो अन्न पान इंधन आदि ग्रामवासियोंको प्रतिदिन राजाको देनेहैं उन सबको ग्रामकाअधिपति अपने व्यय (खर्च) के लिये ग्रहणकरै—और वर्षके करको न ले ११८ ॥

दशीकुलंतुभुञ्जीतविंशीपञ्चकुलानिच । ग्रामंग्रामशताध्यक्षःसहस्राधिपतिःपुरम् ११९

प० । दशी कुलं तु भुंजीत विंशी पञ्चकुलानि च ग्रामं ग्रामशताध्यक्षः सहस्राधिपतिः पुरम् ॥

यो० । दशी कुलं भुंजीत — चपुनः विंशी पञ्चकुलानि — ग्रामशताध्यक्षः ग्रामं — सहस्राधिपतिः पुरं — भुंजीत ॥

भा० । दश ग्रामोंका स्वामी एक कुलको बीसका स्वामी पांच कुलोंको—सौ ग्रामोंका स्वामी एक ग्रामको—और सहस्र ग्रामोंका स्वामी एक नगरको—भोगे ॥

ता० । दश ग्रामोंका स्वामी अपने निर्वाहके लिये—एक कुलको भोगे अर्थात् जिस एक हल पर छः बैलहों ऐसे दो हलोंसे जितनी भूमि जोतीजाय उसे कुल कहतेहैं क्योंकि इस हारीत मुनिके वचनसे यह प्रतीत होताहै कि—आठ बैल जिसमें हों वह धर्मका हल—और छः बैलोंका जीनेवालोंका—और चार बैलोंका हल गृहस्थियोंका—और तीन बैलोंका हल ब्रह्महत्यारोंका होताहै—और बीस ग्रामोंका स्वामी पांच कुलोंको और सौ ग्रामोंका स्वामी एक ग्रामको और सहस्र ग्रामोंका अधिपति एक पुर (नगर) को—भोगे अर्थात् इनके निर्वाहके लिये राजापूर्वोक्त वृत्तियोंको नियतकरै ११९ ॥

तेषांग्राम्याणिकार्याणिपृथक्कार्याणिचैवहि ।
राज्ञोऽन्यःसचिवःस्निग्धस्तानिपश्येदतन्द्रितः १२० ॥

प० । तेषां ग्राम्याणि कार्याणि पृथक्कार्याणि च एव हि राज्ञः अन्यः सचिवः स्निग्धः तानि पश्येत् अतंद्रितः ॥

यो० । तेषां ग्राम्याणि कार्याणि चपुनः पृथक्कार्याणि यानि संति — तानि कार्याणि राज्ञः अन्यः स्निग्धः सचिवः अतंद्रितःसन् पश्येत ॥

भा० । ता० । उन ग्रामनिवासी आदिकों के परस्पर विवाद संबन्धी जो ग्रामके कार्यहैं और किये अथवा न किये पृथक्२ जो कार्यहैं—उन सबको राजाका प्यारा अन्य (दूसरा) मंत्री आलस्यको छोड़कर देखै १२० ॥

नगरेनगरेचैकंकुर्यात्सर्वार्थचिन्तकम् । उच्चैःस्थानंघोररूपंनक्षत्राणामिवग्रहम् १२१ ॥

प० । नगरे नगरे च एकं कुर्यात् सर्वार्थचिंतकम् उच्चैःस्थानं घोररूपं नक्षत्राणां इव ग्रहम् ॥

यो० । नगरे नगरे सर्वार्थचिंतकं – उच्चैः स्थानं – घोररूपं – नक्षत्राणां ग्रहं (शुक्रादिग्रहं) इव एकं (पुरुषं) कुर्यात् ॥

भा० । ता० । नगर२ में एक२ ऐसे मनुष्यको नियतकरै जो संपूर्ण कार्योंकी चिंताकरै और उत्तमकुलसे जो उत्पन्नहो–और हाथी घोड़आदि सामग्री से जो ऐसाभयानक प्रतीतहो जैसे नक्षत्रों में शुक्रआदि ग्रह अर्थात् तेजस्वीहो १२१ ॥

सताननुपरिक्रामेत्सर्वानेवसदास्वयम् । तेषांवृत्तंपरिणयेत्सम्यग्राष्ट्रेषुतच्चरैः १२२ ॥

प० । सः तान् अनुपरिक्रामेत् सर्वान् एव सदा स्वयम् तेषां वृत्तं परिणयेत् सम्यक् राष्ट्रेषु तच्चरैः ॥

यो० । सः (नगराधिकृतः) तान् सर्वान् एव सदा स्वयं अनुपरिक्रामेत् – तेषां राष्ट्रेषु वृत्तं तच्चरैः सम्यक् परिणयेत् (अवगच्छेत्) ॥

भा० । ता० । वह नगरका अधिकारी अपनी सेनासहित उनसबके पीछेचले और तहां२ नियतकिये दूतोंकेद्वारा अपने२ देशमें जो२ उनका चरित्रहै उसको भलीप्रकार जाने १२२ ॥

राज्ञोहिरक्षाधिकृताःपरस्वादायिनःशठाःभृत्याभवन्तिप्रायेणतेभ्योरक्षेदिमाःप्रजाः१२३॥

प० । राज्ञः हि रक्षाधिकृताः परस्वादायिनः शठाः भृत्याः भवंति प्रायेण तेभ्यः रक्षेत् इमाः प्रजाः ॥

यो० । हि (यतः) रक्षाधिकृताः राज्ञः भृत्याः प्रायेण परस्वादायिनः शठाः भवंति – अतः तेभ्यः (उक्तभृत्येभ्यः) इमाः प्रजाः राजा रक्षेत् ॥

भा० । ता० । रक्षाकरनेमें अधिकारी जो राजाके भृत्य वे बहुधा–परायेधनके ग्राहक और वंचकहोतेहैं उनभृत्योंसे इन अपनी प्रजाओंकी राजा रक्षाकरै १२३ ॥

येकार्यिकेभ्योऽर्थमेवगृह्णीयुःपापचेतसः। तेषांसर्वस्वमादायराजाकुर्यात्प्रवासनम् १२४॥

प० । ये कार्यिकेभ्यः अर्थं एव गृह्णीयुः पापचेतसः तेषां सर्वस्वं आदाय राजा कुर्यात् प्रवासनम् ॥

यो० । ये पापचेतसः भृत्याः कार्यिकेभ्यः अर्थं एव गृह्णीयुः – राजा तेषां सर्वस्वं आदाय प्रवासनं कुर्यात् (देशान्निस्सारयेत्) ॥

भा० । ता० । जो पापबुद्धि भृत्य कार्यवालोंसे वाणीके छलआदिको प्रकटकरके धनको ग्रहणकरतेहैं उनभृत्योंके सर्वस्वको ग्रहण करके राजादेशसे निकासदे १२४ ॥

राजकर्मसुयुक्तानांस्त्रीणांप्रेष्यजनस्यच । प्रत्यहंकल्पयेद्वृत्तिंस्थानकर्मानुरूपतः १२५॥

प० । राजकर्मसु युक्तानां स्त्रीणां प्रेष्यजनस्य च प्रत्यहं कल्पयेत् वृत्तिं स्थानकर्मानुरूपतः ॥

यो० । राजकर्मसुयुक्तानां – चपुनः स्त्रीणां प्रेष्यजनस्य वृत्तिं स्थानकर्मानुरूपतः प्रत्यहं राजा कल्पयेत् ॥

भा० । ता० । राजाके उपयोगी कर्मोंमें नियुक्त और स्त्रियोंके प्रेष्यजन (टहलुवे वा टहलनी) जोहैं उनकी वृत्ति (जीविका) को और उत्तम मध्यम नीच स्थान और काम के अनुसार प्रतिदिन राजाकरै १२५ ॥

पणोदेयोऽवकृष्टस्यषडुत्कृष्टस्यवेतनम् ।
षाण्मासिकस्तथाच्छादोधान्यद्रोणस्तुमासिकः १२६ ॥

प० । पणः देयः अवकृष्टस्य षट् उत्कृष्टस्य वेतनम् षाण्मासिकः तथा आच्छादः धान्यद्रोणः तु मासिकः ॥

यो० । अवकृष्टस्य वेतनं पणः देयः — उत्कृष्टस्य वेतनं षट्पणाः देयाः — तथा षाण्मासिकः आच्छादः तुपुनः मासिकः धान्यद्रोणः देयः ॥

भा० । अधम भृत्य को एकपण भृति छठेमहीने एकजोड़ा वस्त्र और एकमहीने में द्रोण भर अन्न देना—और उत्तम भृत्यको छःपण भृति छठेमहीने छः जोड़े वस्त्र और छः द्रोण अन्न देना ॥

ता० । घरका मार्जन और जलभरनेवाले अधम (छोटे) भृत्यकोएकपण (जो आगेकहेंगे)-वेतन (भृति नोकरी)—प्रतिदिन देनी—और छठेमहीने आच्छादन (ओढ़ने) के लिये दोवस्त्र दे और महीनेभरमें धान्यका एकद्रोणदे अर्थात् इसवचनके अनुसार चार आढकभर अन्न कि[१] आठमुट्ठियोंका एकाकिंचित् आठकिंचितोंका एकपुष्कल और चारपुष्कलोंका एकआढक—और चार आढकोंका एकद्रोण होताहै और उत्तम भृत्यको छःपणकी भृति—और छःमासमें छःवस्त्रों के जोड़े—और प्रतिमास छःद्रोण देने—और इसीरीतिसे मध्यमको तीनपणभृति—और छःमहीनेमें तीनवस्त्रोंके जोड़े और महीनेमें तीनद्रोणभर अन्नदेना १२६ ॥

क्रयविक्रयमध्वानंभक्तंचसपरिव्ययम् । योगक्षेमंचसंप्रेक्ष्यवणिजोदापयेत्करान् १२७॥

प० । क्रयविक्रयं अध्वानं भक्तं च सपरिव्ययं योगक्षेमं च संप्रेक्ष्य वणिजः दापयेत् करान् ॥

यो० । क्रयविक्रयं — अध्वानं — चपुनः सपरिव्ययं भक्तं — चपुनः योगक्षेमं — संप्रेक्ष्य वणिजः करान् दापयेत् (गृह्णीयात्) ॥

भा० । क्रयविक्रय—(लेनादेना) मार्ग—भोजनकाखर्च—रक्षाके विषे व्यय और लाभ इन सबको देखकर व्यापारियोंसे कर राजाले ॥

ता० । क्रयविक्रय अर्थात् यह वस्त्रआदि कितना मूल्यदेकर मोललिया और इसके बेचनेपर कितनालाभहुआ और कितनीदूर मार्गसे आया—और इसके लानेमें इसव्यापारीका शाकभाजी सहित भोजनमें कितना व्ययहुआ—और वनआदिकोंमें चोरोंसे रक्षाकरनेमें कितना व्ययहुआ और अब इसमें कितना लाभ (नफा)—है इन सबबातोंको देखकर वणिजों (व्यापारियों) से राजा करले १२७ ॥

यथाफलेनयुज्येतराजाकर्त्ताचकर्मणाम् । तथावेक्ष्यनृपोराष्ट्रेकल्पयेत्सततंकरान् १२८

प० । यथा फलेन युज्येत राजा कर्त्ता च कर्मणां तथा अवेक्ष्य नृपः राष्ट्रे कल्पयेत् सततं करान् ॥

यो० । राजा चपुनः कर्मणां कर्त्ता यथा फलेन युज्येत — तथानृपः अवेक्ष्य राष्ट्रे सततं करान् कल्पयेत् ॥

---

[१] अष्टमुष्टिर्भवेत किंचित्किञ्चिदष्टौचपुष्कलं — पुष्कलानितुचत्वारि आढकःपरिकीर्तितः — चतुराढकोभवेद्द्रोणः ॥

भा० ता० । देखनेवाला राजा और कृषिआदि कर्मों के कर्त्ता जैसे फलके भागीहों–तिसी प्रकार देखकर राजा देशमेंसे करोंको ग्रहणकरै १२८ ॥

यथाल्पाल्पमदन्त्याद्यंवार्योकोवत्सषट्पदाः ।
तथाल्पाल्पोगृहीतव्योराष्ट्राद्राज्ञाब्दिकःकरः १२९ ॥

प० । यथा अल्पाल्पं अदंति आद्यं वार्योकोवत्सषट्पदाः तथा अल्पाल्पः ग्रहीतव्यः राष्ट्रात् राज्ञा आब्दिकः करः ॥

यो० । वार्योको वत्सषट्पदाः यथा अल्पाल्पं आद्यं अदंति – तथा राज्ञाराष्ट्रात् आब्दिकः करः अल्पाल्पः ग्रहीतव्यः ॥

भा० । ता० । जैसे जलके वासी (जोंख आदि) वत्स–भ्रमर ये तीनों अल्प अल्प (थोड़ा२) आद्य (रक्त दूध मधु) को भक्षणकरतेहैं तिसीप्रकार राजा भी अल्प२ही वार्षिक कर–देशमेंसे ग्रहण करै अर्थात् मूल धनका नाश न करै १२९ ॥

पञ्चाशद्भागआदेयोराज्ञापशुहिरण्ययोः।धान्यानामष्टमोभागःषष्ठोद्वादशएववा१३०॥

प० । पंचाशद्भागः आदेयः राज्ञा पशुहिरण्ययोः धान्यानां अष्टमः भागः षष्ठः द्वादशः एव वा ॥

यो० । पशुहिरण्ययोः (मध्ये) राज्ञा – पंचाशद्भागः – धान्यानां अष्टमः षष्ठः वा द्वादशःभागः आदेयः (ग्राह्यः) ॥

भा० । ता० । मूलधनसे अधिक जो पशु और हिरण्य (सोना) उनमें से पंचासवां भाग राजा ग्रहण करै और अन्नोंका आठवां–छठा वा वारहवां भाग ग्रहण करै अर्थात् भूमिकी उत्तमता और लघुता और जोतनेमें अल्प और अधिक क्लेशकी अपेक्षासे यह विकल्प (भेद) है १३० ॥

आददीताथषड्भागंद्रुमांसमधुसर्पिषाम्।गन्धौषधिरसानांचपुष्पमूलफलस्यच१३१॥

प० । आददीत अथ षड्भागं द्रुमांसमधुसर्पिषां गंधौषधिरसानां च पुष्पमूलफलस्य च ॥

यो० । द्रुमांसमधुसर्पिषां चपुनः गंधौषधिरसानां – चपुनः पुष्पमूलफलस्य – षड्भागं राजा आददीत (गृह्णीयात्) ॥

भा० । ता० । वृक्ष मांस मधु घी–और गंध ओषधिरस–और पुष्प मूल फल इनके लाभ (नफा) मेंसे राजा छठा भाग ग्रहण करै १३१ ॥

पत्रशाकतृणानांचचर्मणांवैदलस्यच।मृन्मयानांचभाण्डानांसर्वस्याश्ममयस्यच१३२॥

प० । पत्रशाकतृणानां च चर्मणां वैदलस्य च मृन्मयानां च भांडानां सर्वस्य अश्ममयस्य च ॥

यो० । पत्रशाकतृणानां चपुनः तृणानां वैदलस्य चपुनः मृन्मयानां भांडानां चपुनः सर्वस्य अश्ममयस्य – षड्भागं राजा आददीत (गृह्णीयात्) ॥

भा० । ता० । पत्ते शाक तृण–चर्म–वैदल (बांसके पात्र)–मिट्टीके पात्र–और पत्थरकी सब प्रकार की वस्तु इनके भी छठेभागको राजा ग्रहण करै १३२ ॥

म्रियमाणोप्याददीतनराजाश्रोत्रियात्करम् ।
नचक्षुधाऽस्यसंसीदेच्छ्रोत्रियोविषयेवसन् १३३ ॥

प० । म्रियमाणः अपि आददीत न राजा श्रोत्रियात् करम् न च क्षुधा अस्य संसीदेत् श्रोत्रियः विषये वसन् ॥

यो० । म्रियमाणः अपि राजा श्रोत्रियात् करं न आददीत—चपुनः श्रोत्रियः अस्य (राज्ञः) विषये वसन्मन् क्षुधा न संसीदेत् (दुःखमप्राप्नुयात्) ॥

भा० । ता० । मरताहुआ (निर्द्धनी) भी राजा वेदपाठी ब्राह्मणसे करको न ले—और इस राजाके देशमें वसता हुआ वेदपाठी क्षुधासे दुःख न पावे अर्थात् भूखा न रहै १३३ ॥

यस्यराज्ञस्तुविषयेश्रोत्रियःसीदतिक्षुधा । तस्यापितत्क्षुधाराष्ट्रमचिरेणैवसीदति १३४॥

प० । यस्य राज्ञः तु विषये श्रोत्रियः सीदति क्षुधा तस्य अपि तत् क्षुधा राष्ट्रम् अचिरेण एव सीदति ॥

यो० । यस्य राज्ञः विषये (देशे) श्रोत्रियः (वेदपाठी) क्षुधासीदति—तस्य अपि तत् राष्ट्रं अचिरेण एव क्षुधा सीदति (दुःखंगच्छति) ॥

भा० । ता० । जिस राजाके देशमें वेदपाठी क्षुधासे दुःखी रहताहै—उस राजाका वह देश भी शीघ्रही क्षुधासे दुःखी होताहै १३४ ॥

श्रुतवृत्तेविदित्वास्यवृत्तिंधर्म्यांप्रकल्पयेत्।संरक्षेत्सर्वतश्चैनंपितापुत्रमिवौरसम् १३५ ॥

प० । श्रुतवृत्ते विदित्वा अस्य वृत्तिं धर्म्यां प्रकल्पयेत् संरक्षेत् सर्वतः च एनं पिता पुत्रं इव औरसम् ॥

यो० । अस्य (वेदपाठिनः) श्रुतवृत्ते विदित्वा धर्म्यां वृत्तिं प्रकल्पयेत्—चपुनः एनं (श्रोत्रियं)—पिता औरसं पुत्रं इव सर्वतः संरक्षेत् ॥

भा० । ता० इसकारण इसपाठी का शास्त्रज्ञान और आचरण को जानकर धर्मकी आजीविका नियतकरदे और चौरआदि श्रोत्रिय की इसप्रकार रक्षाकरै जैसे पिता औरस (अपनेसे उत्पन्न) पुत्रकी करताहै १३५ ॥

संरक्ष्यमाणोराज्ञायंकुरुतेधर्ममन्वहम् । तेनायुर्वर्द्धतेराज्ञोद्रविणंराष्ट्रमेवच १३६ ॥

प० । संरक्ष्यमाणः राज्ञा यं कुरुते धर्मं अन्वहं तेन आयुः वर्द्धते राज्ञः द्रविणं राष्ट्रं एव च ॥

यो० । राज्ञा संरक्ष्यमाणः श्रोत्रियः अन्वहं य धर्मं कुरुते—तेनधर्मेण राज्ञः आयुः द्रविणं चपुनः राष्ट्रं वर्द्धते ॥

भा० । ता० । राजाने कीहै रक्षा जिसकी ऐसा श्रोत्रिय प्रतिदिन जिस धर्मको करताहै—उस धर्मसे राजाकी अवस्था—द्रव्य—और देश—वृद्धिको प्राप्तहोतेहैं १३६ ॥

यत्किंचिदपिवर्षस्यदापयेत्करसंज्ञितम् । व्यवहारेणजीवन्तंराजाराष्ट्रेपृथग्जनम् १३७

प० । यत् किंचित् अपि वर्षस्य दापयेत् करसंज्ञितम् व्यवहारेण जीवंतं राजा राष्ट्रे पृथग्जनं ॥

यो० । राजा—स्वराष्ट्रे—व्यवहारेण जीवंतं पृथग्जनं (निकृष्टपुरुषं)—यत् किंचित् अपि वर्षस्य करसंज्ञितं दापयेत् ॥

भा० । ता० । अपने देशमें जो व्यवहार से अर्थात् शाक पत्ते आदि अल्पवस्तुके क्रय विक्रयसे जीतेहुये नीचमनुष्यों से कुछ थोड़ासा वार्षिक कर राजा ग्रहणकरै १३७ ॥

कारुकाञ्छिल्पिनश्चैवशूद्रांश्चात्मोपजीविनः ।
एकैकंकारयेत्कर्ममासिमासिमहीपतिः १३८ ॥

प० । कारुकान् शिल्पिनः च एव शूद्रान् च आत्मोपजीविनः एकैकं कारयेत् कर्म मासि मासि महीपतिः ॥

यो० । महीपतिः — कारुकान् चपुनः शिल्पिनः चपुनः शूद्रान् — आत्मोपजीविनः एकषान् मासि मासि एकैकं कर्म कारयेत् ॥

भा० । ता० । कारुक (कारीगर) और शिल्पी (उनसे कुछ उत्तम) और लोहकार आदि शूद्र और देहके क्लेशसे जीनेवाले भारिक (बोझढोनेवाले)–इनसबसे राजा प्रतिमासमें एक२ दिन काम करवावे–और उसदिन के दाम न दे १३८ ॥

नोच्छिन्द्यादात्मनोमूलंपरेषांचातितृष्णया ।
उच्छिन्दन्ह्यात्मनोमूलमात्मानंतांश्चपीडयेत् १३९ ॥

प० । न उच्छिन्द्यात् आत्मनः मूलं परेषां च अतितृष्णया उच्छिदन् हि आत्मनः मूलं आत्मानं तान् च पीडयेत् ॥

यो० । आत्मनः चपुनः अतितृष्णया परेषां मूलं न उच्छिद्यात् — हि (यतः) आत्मनः मूलं उच्छिदन् राजा आत्मानं चपुनः तान् (परान) पीडयेत् ॥

भा० । ता० । अपना मूल (जड़) और अत्यन्त तृष्णामें इतरोंके मूलका छेद (नाश) को राजा न करे–अर्थात् सर्वथा कर शुल्कआदि के त्यागसे अपना और अत्यन्त करआदि के लेने से औरों का मूल नाश न करे अपने मूलके नाशमें अपने आत्माको और इतरों के मूलकेनाशसे इतरोंको पीडाकरनाहै १३९ ॥

तीक्ष्णश्चैवमृदुश्चस्यात्कार्यंवीक्ष्यमहीपतिः।तीक्ष्णश्चैवमृदुश्चैवराजाभवतिसंमतः १४०

प० । तीक्ष्णः च एव मृदुः च स्यात् कार्यं वीक्ष्य महीपतिः तीक्ष्णः च एव मृदुः च एव राजा भवति संमतः ॥

यो० । महीपतिः कार्यं वीक्ष्य तीक्ष्णः चपुनः मृदुः स्यात् — कुतः तीक्ष्णः चपुनः मृदुः राजा संमतः भवति ॥

भा० । ता० । कार्य को देखकर राजा तीक्ष्ण (तीखा) और मृदु (कोमल) स्वभाव रहे अर्थात् एकरस न रहे किंतु किसीकार्य में तीखा और किसी में कोमलरहे क्योंकि तीक्ष्ण और कोमल राजा उत्तम होता है १४० ॥

अमात्यमुख्यंधर्मज्ञंप्राज्ञंदान्तंकुलोद्गतम् ।
स्थापयेदासनेतस्मिन्खिन्नःकार्येक्षणेनृणाम् १४१ ॥

प० । अमात्यमुख्यं धर्मज्ञं प्राज्ञं दांतं कुलोद्गतं स्थापयेत् आसने तस्मिन् खिन्नः कार्येक्षणे नृणाम् ॥

यो० । नृणां कार्येक्षणे खिन्नः राजा तस्मिन् आसने — धर्मज्ञं — प्राज्ञं — दांतं — कुलोद्गतं अमात्यमुख्यं स्थापयेत् ॥

भा० । ता० । स्वयं मनुष्योंके कार्यदर्शन में खिन्न (असमर्थ) राजा उस राजसिंहासनपर–ऐसे मंत्री को बैठावे जो प्रधान–धर्मकाज्ञाता–बुद्धिमान्–जितेंद्रिय और कुलीनहो १४१ ॥

एवंसर्वविधायेममितिकर्त्तव्यमात्मनः।
युक्तश्चैवाप्रमत्तश्चपरिरक्षेदिमाःप्रजाः १४२ ॥

प० । एवं सर्वं विधाय इमं इतिकर्तव्यं आत्मनः युक्तः च एव अप्रमत्तः च परिरक्षेत् इमाः प्रजाः ॥

यो० । एवं इमं सर्वं आत्मनः इतिकर्तव्यं विधाय – युक्तः चपुनःअप्रमत्तः राजा इमाः प्रजाः परिरक्षेत् ॥

भा० । ता० । इसप्रकार–पूर्वोक्त सम्पूर्ण अपने इतिकर्तव्य (करनेयोग्य) को (बंदोबस्त) करके युक्त और प्रमाद रहित राजा सबप्रकार से इनप्रजाओं की रक्षाकरै १४२ ॥

विक्रोशन्त्योयस्यराष्ट्राद्ध्रियन्तेदस्युभिःप्रजाः।
संपश्यतःसभृत्यस्यमृतःसनतुजीवति १४३ ॥

प० । विक्रोशंत्यः यस्य राष्ट्रात् ह्रियंते दस्युभिः प्रजाः संपश्यतः सभृत्यस्य मृतः सः न तु जीवति ॥

यो० । सभृत्यस्य संपश्यतः यस्य राज्ञः राष्ट्रात् विक्रोशंत्यः प्रजाः दस्युभिः ह्रियंते – सः राजा मृतः नतु जीवति ॥

भा० । ता० । मंत्रियों समेत देखतेहुये जिसराजाके राज्यमें से आक्रोशकरती (रोती) हुई प्रजाओंको चोर लेजातेहैं अर्थात् चोरों के भयसे अन्यत्र जातीहैं–वहराजा मृतहै और जीवता नहीं अर्थात् उसका जीवन भी मरणहीहै–तिससे राजा अप्रमत्तहोकर प्रजाकीरक्षाकरै १४३ ॥

क्षत्रियस्यपरोधर्मःप्रजानामेवपालनम्। निर्दिष्टफलभोक्ताहिराजाधर्मेणयुज्यते १४४॥

प० । क्षत्रियस्य परः धर्मः प्रजानां एव पालनं निर्दिष्टफलभोक्ता हि राजा धर्मेण युज्यते ॥

यो० । प्रजानां पालनं एव क्षत्रियस्य परः धर्मः अस्ति – हि (यतः) निर्दिष्टफलभोक्ता राजा धर्मेण युज्यते (धर्मस्य भोक्ता भवति) ॥

भा० । ता० । प्रजाकी रक्षाही क्षत्रियका परम धर्महै–जिससे शास्त्रोक्त फलका भोक्ता राजा धर्मके फलका भोक्ता होताहै १४४ ॥

उत्थायपश्चिमेयामेकृतशौचःसमाहितः।
हुताग्निर्ब्राह्मणांश्चार्च्यप्रविशेत्सशुभांसभाम् १४५ ॥

प० । उत्थाय पश्चिमे यामे कृतशौचः समाहितः हुताग्निः ब्राह्मणान् च आर्च्य प्रविशेत् सः शुभां सभाम् ॥

यो० । पश्चिमे यामे उत्थाय कृतशौचः समाहितः हुताग्निः सः राजा ब्राह्मणान् आर्च्य शुभां सभां प्रविशेत् ॥

भा० । ता० । रात्रिके पिछले प्रहरमें उठकर कियाहै मूत्र और मलत्याग का शौच जिसने और सावधान और अग्निहोत्रकी है जिसने ऐसा वह राजा ब्राह्मणोंका पूजन करके शुभ (वास्तु शास्त्रमें कहेहुये लक्षणोंसे संपन्न) सभामें प्रवेशकरै १४५ ॥

तत्रस्थितःप्रजाःसर्वाःप्रतिनन्द्यविसर्जयेत् ।
विसृज्यचप्रजाःसर्वामन्त्रयेत्सहमन्त्रिभिः १४६ ॥

प० । तत्र स्थितः प्रजाः सर्वाः प्रतिनंद्य विसर्जयेत् विसृज्य च प्रजाः सर्वाः मंत्रयेत् सह मंत्रिभिः ॥

यो० । तत्र (सभायां) स्थितः राजा सर्वाः प्रजाः प्रतिनंद्य विसर्जयेत् — चपुनः सर्वाः प्रजाः विसृज्य मंत्रिभिः सह मंत्रयेत् ॥

भा० । ता० । उस सभामें स्थित (बैठा) राजा संपूर्ण प्रजाकी प्रशंसा करके विसर्जनकरै— और उन संपूर्ण प्रजाओंका विसर्जन करके मंत्रियोंके संग मंत्र (संधि विग्रह आदि) का विचार करै १४६ ॥

गिरिपृष्ठंसमारुह्यप्रासादंवारहोगतः । अरण्येनिश्शलाकेवामन्त्रयेदविभावितः १४७ ॥

प० । गिरिपृष्ठं समारुह्य प्रासादं वा रहोगतः अरण्ये निश्शलाके वा मंत्रयेत् अविभावितः ॥

यो० । गिरिपृष्ठं — वा प्रासादं समारुह्य — रहोगतः अरण्ये वा निश्शलाके (निष्कंटके) देशे अविभावितः (अन्यै रनुपलक्षितः) राजा मंत्रयेत् ॥

भा० । ता० । पर्वतकी शिखरपर बैठकर अथवा किसी निर्जनस्थानके एकांतमें बैठकर अथवा वनमें वा विविक्त देशमें मंत्रभेदके करनेवाले जहां न देखे बैठकर—पंचांग मंत्रको विचारै—अर्थात् कार्योंके आरंभका उपाय१—पुरुष और द्रव्यकी संपत्ति—२—देशकाल विभाग३—विनिपातका प्रतीकार४—कार्यसिद्धि५—इन पंचांगोंका विचारकरै १४७ ॥

यस्यमन्त्रंनजानन्तिसमागम्यपृथग्जनाः ।
सकृत्स्नांपृथिवींभुंक्तेकोशहीनोऽपिपार्थिवः १४८ ॥

प० । यस्य मंत्रं न जानंति समागम्य पृथग्जनाः सः कृत्स्नां पृथिवीं भुंक्ते कोशहीनः अपि पार्थिवः ॥

यो० । यस्य मंत्रं समागम्य पृथग्जनाः न जानंति कोशहीनः अपि सः पार्थिवः कृत्स्नां पृथिवीं भुंक्ते ॥

भा० । ता० । जिस राजाके मंत्रको इकट्ठे होकर इतरजन नहींजाने—कोशसे हीन (निर्द्धन) भी वह राजा संपूर्ण पृथिवीको भोगताहै १४८ ॥

जडमूकान्धबधिरांस्तिर्यग्योनान्वयोतिगान् ।
स्त्रीम्लेच्छव्याधितव्यङ्गान्मन्त्रकालेऽपसारयेत् १४९ ॥

प० । जडमूकांधबधिरान् तिर्यग्योनान् वयोतिगान् स्त्रीम्लेच्छव्याधितव्यंगान् मंत्रकाले अपसारयेत् ॥

यो० । जडमूकांधबधिरान् — तिर्यग्योनान् — वयोतिगान् स्त्रीम्लेच्छव्याधितव्यंगान् (जीवान्) — मंत्रकाले राजा अपसारयेत् ॥

भा० । ता० । जड मूक—अंध बधिर अर्थात् बुद्धिवाणी नेत्र कान इनसे जो हीन हैं और तिर्यग्योनि (शुक सारिका आदि) और वृद्ध स्त्री म्लेच्छ रोगी और अंगहीन—इनसबोंको मंत्र के समय में राजा निकासदे १४९ ॥

भिन्दन्त्यवमतामन्त्रंतिर्यग्योनास्तथैवच। स्त्रियश्चैवविशेषेणतस्मात्तत्रादृतोभवेत् १५०

प० । भिंदंति अवमताः मंत्रं तिर्यग्योनाः तथा एव च स्त्रियः च एव विशेषेण तस्मात् तत्र आदृतः भवेत् ॥

यो० । अवमताः तिर्यग्योनाः चपुनः स्त्रियः विशेषेण मंत्रंभिंदंति — तस्मात्तत्र (एषां अपसारणे) राजा आदृतः भवेत् ॥

भा० । ता० । पूर्वजन्म के पापसे जडताआदिको प्राप्तहुये ये जडआदि अपमानकरने से और शुकआदि और विशेषकर स्त्री अस्थिरबुद्धिहोतीहैं इससे ये सबमंत्रका भेदनकरदेतेहैं—इससेइन के दूरकरने में राजा यत्नवान् रहै १५० ॥

मध्यंदिनेऽर्द्धरात्रेवाविश्रान्तोविगतक्लमः । चिन्तयेद्धर्मकामार्थान्सार्द्धंतैरेकएववा १५१

प० । मध्यंदिने अर्द्धरात्रे वा विश्रांतः विगतक्लमः चिंतयेत् धर्मकामार्थान् सार्द्धं तैः एकः एव वा ॥

यो० । तैः (मंत्रिभिः)सार्द्धं वा एकः एव विश्रांतः विगतक्लमः राजा मध्यंदिने वा अर्द्धरात्रे धर्मकामार्थान् चिंतयेत् ॥

भा० । ता० । विश्रामको करके और खेदहीन राजा उन मंत्रियोंसहित अथवा एकाकीराजा मध्याह्न के अथवा अर्द्धरात्र के समय—धर्म अर्थ—कामोंकी चिंताकरै—विचारै १५१ ॥

परस्परविरुद्धानांतेषांचसमुपार्जनम् । कन्यानांसंप्रदानंचकुमाराणांचरक्षणम् १५२ ॥

प० । परस्परविरुद्धानां तेषां च समुपार्जनम् कन्यानां संप्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम् ॥

यो० । परस्परविरुद्धानां तेषां (धर्मादीनां) समुपार्जनम् — चपुनः कन्यानां संप्रदानं — चपुनः कुमाराणां रक्षणं — चिंतयेत् ॥

भा० । ता० । परस्पर विरुद्ध जो धर्म अर्थ काम उनके संचयकी और कन्याओं का संप्रदान (विवाह)—की और कुमारों की रक्षाकी चिंताकरै १५२ ॥

दूतसंप्रेपणंचैवकार्यशेषंतथैवच । अन्तःपुरप्रचारंचप्रणिधीनांचचेष्टितम् १५३ ॥

प० । दूतसंप्रेषणं च एव कार्यशेषं तथा एव च अन्तःपुरप्रचारं च प्रणिधीनां च चेष्टितम् ॥

यो० । दूतसंप्रेषणं — तथैव कार्यशेषं — चपुनः अन्तःपुरप्रचारं — चपुनः प्रणिधीनां चेष्टितं — राजा चिंतयेत् ॥

भा० । दूतोंकाप्रेषण और कार्योंकाशेष और रनिवासकी चेष्टा—और दूतोंकी चेष्टा—इनसबकी चिंता (विचार) को राजा करै ॥

ता० । दूतोंको गुप्त अर्थ लेखआदि को भेजकर पर राजाके देशमें प्रस्थान की—और प्रारब्ध कियेहुये कार्य की समाप्तिकी—और स्त्रियोंकी अत्यन्त विषमचेष्टाकी—क्योंकि इस वचन के अनुसार स्त्रियोंकी चेष्टा विषमहोतीहै कि अपनी वेणीमें छिपाये शस्त्र से राजा विदूरथको रानी ने और विषलगेहुये नूपुरसे विरक्त देवीस्त्रीने काशिराजको मारदिया—यहजानकर आत्मरक्षाके लिये अन्तःपुर (रनिवास) की स्त्रियोंके चेष्टितको सखीदासीआदि के द्वाराजाने—और विपक्षी राजाओंमें नियुक्त दूतोंकी चेष्टाको अन्यदूतों से जाने १५३ ॥

१ शस्त्रेणवेणीविनिगूहितेन विदूरथंवैमहिषीजघान विषप्रदिग्धेनचनूपुरेण देवीविरक्ताकिलकाशिराजम् ॥

कृत्स्नंचाष्टविधंकर्मपञ्चवर्गंचतत्त्वतः । अनुरागापरागौचप्रचारंमण्डलस्यच १५४ ॥

प० । कृत्स्नं च अष्टविधं कर्म पंचवर्गं च तत्त्वतः अनुरागापरागौ च प्रचारं मंडलस्य च ॥

यो० । राजा अष्टविधं कृत्स्नं कर्म — चपुनः तत्त्वतः पंचवर्गं — चपुनः अनुरागापरागौ — चपुनः मंडलस्य प्रचारं — चिंतयेत् ॥

भा० । संपूर्ण अष्टविध कर्म—और पंचवर्ग और अनुराग और विराग और मंडलका प्रचार इन सबकी राजा यथार्थ चिंताकरै ॥

ता० । सम्पूर्ण अष्टवर्ग कर्मकी राजा चिंताकरै वे आठों इनवचनों से शुक्राचार्य ने कहे हैं कि आदान—विसर्ग प्रेष निषेध और पांचवां अर्थका कथन—व्यवहार का देखना—दंड—शुद्धि (प्रायश्चित्त) इनआठगतियों में राजा युक्तरहै और इन आठकर्मोंवाला राजा स्वर्ग में जाकर इन्द्रकी पूजाको प्राप्तहोताहै—इन आठोंमें १ पहिला आदान यह है कि—करोंका लेना—२विसर्ग यहहै कि भृत्यआदि को धनदेना—३ प्रेष मंत्रीआदिको भेजना—४ निषेधयहहै—दृष्ट और अदृष्ट कामके करनेसे निषेध—५ अर्थ वचनयहहै कि दृष्ट और अदृष्टके विरुद्धकर्मोंमें अर्थ (प्रयोजन) का वचन क्योंकि कार्य के संदेह में राजाकी आज्ञासेही निर्णय होता है—६ व्यवहार का ईक्षण यहहै कि प्रजाके ऋणआदि विवाद में निर्णयकरना—७ दंडयह है कि उक्त विवाद में उचित दंडलेना—और पराजित से शास्त्रोक्तधन ग्रहणकरना—८ शुद्धियह है कि पापकर्म किसीने किया होय तो उससे प्रायश्चित्त कराना—मेधातिथि ने तो अष्टविधकर्म ये कहेहैं कि १ नहींकिये कार्य का आरम्भ—२ प्रारम्भ किये कार्य की समाप्ति—३ कियेहुये कर्म के भेद—४ कर्म के फलों का संग्रह—५ साम—६ दाम—७ दंड—८ भेद—अथवा १ व्यापार का मार्ग—२ जलमें सेतु बांधना—३ दुर्गबनाना—४ कियेहुये कार्य के संस्कारों का निर्णय—५ हाथीका बंधन—६ खानका खोदना—७ शून्यस्थान में प्रवेश—८ काष्ठकेवनोंका छेदन—इसीप्रकार राजा तत्त्वसे पंचवर्गके प्रचारकी चिंता करै अर्थात् पांचप्रकार के दूतोंको नियतकरै उनदूतों के ये ५ भेद हैं—१ कापटिक दूसरे के मर्म को जो जाने—जिसके शिष्य प्रगल्भहों—जो कपटसे व्यवहारकरै आजीविकाके अभिलाषी इस दूतको धन और मानदेकर एकांत में यहकहै कि जिसके दुराचार को देखो उसीसमय मुझसे कहो—२ उदास्थित अर्थात् पतित संन्यासी जगत् में प्रकट दोषवाले और बुद्धि और शौच से युक्त और आजीविका के अभिलाषी उसको भी राजा एकांतमें कापटिक के समान उपदेशकरै और ऐसे मठमें उसे रक्खै जहां बहुतवस्तु होतीहों और उसकी जीविकाके लिये इतर कुछभूमि को नियतकरै और वह अन्यभी राजाके संन्यासी दूतोंको भोजन वस्त्रदे—३ कर्षक (किसान) अर्थात् जिसकी कुछ जीविका न हो और बुद्धि और शुद्धिसे जो युक्तहो और बहानेका गृहस्थीहो इसको भी पूर्व के समान कहकर अपनी भूमि में उससे खेती करवावै—४ वाणिजिक यहहै कि जिसकी कुछ वृत्ति न हो और बहानेका व्यापारी जो हो उसको भी धन और मान देकर अपना करै और उसपर व्यापार करावै—५ तापस व्यंजक यह है कि मुंड रहै अथवा जटाधारै और जीविका को जो चाहै वहभी किसी आश्रम में बसकर बहुत से मुंड और जटाधारी तपस्वि-

१ आदानेचविसर्गंच तथाप्रैषनिषेधयोः पंचमेचार्थवचने व्यवहारस्यचेक्षणे दंडशुद्ध्योः सदायुक्तस्तेनाष्टगतिकोनृपः अष्टकर्मादिवंयाति राजाशक्राभिपूजितः ॥

यों में तपस्याकरै और सबके संमुख महीने वा दो महीने में बेर आदिकी एक मुष्टिको भक्षण करै और एकांतमें राजाके दियेहुये उत्तम२ भोजनकरै और इसके शिष्य जगत्में यह प्रकटकरते रहें कि हमारे गुरु भूत भविष्यत्को जानतेहैं तिससे बहुतसे मनुष्य विश्वासके योग्य कार्य और अकार्य को पूछेंगे और अन्यके कुकर्म आदिको कहेंगे—इस प्रकार पंचवर्ग की राजा नियतकरने की चिंताकरै—और इस प्रकार पंचवर्गको नियतकरके पंचवर्ग के द्वारा विपक्षी राजाके और अपने मंत्रियोंके अनुराग और विराग (प्रीति अप्रीति) की चिंताकरै अर्थात् कौन राजा संधि चाहताहै और कौन विग्रह (लड़ाई) चाहताहै और अपने मंडलके प्रचार की चिंताकरै १५४ ॥

मध्यमस्यप्रचारंचविजिगीषोश्चचेष्टितम् । उदासीनप्रचारंचशत्रोश्चैवप्रयत्नतः १५५ ॥

प० । मध्यमस्य प्रचारं च विजिगीषोः च चेष्टितम् उदासीनप्रचारं च शत्रोः च एव प्रयत्नतः ॥

यो० । मध्यमस्य प्रचारं — चपुनः विजिगीषोः चेष्टितं — चपुनः उदासीनप्रचारं — चपुनः शत्रोः प्रचारं — प्रयत्नतः राजा चिन्तयेत् ॥

भा० । मध्यम का प्रचार—विजिगीषुकी चेष्टा—उदासीन और शत्रु इन दोनोंका प्रचार इन सबकी बड़े प्रयत्नसे चिंताकरै ॥

ता० । मध्यम अर्थात् जो शत्रु और विजिगीषु (जो जयका अभिलाषीहो) की पृथ्वीके समीप रहताहो और दोनोंके मेलमें अनुग्रहकी और पृथक् होनेपर दंडदेनेकी सामर्थ्य रखताहो उसे मध्यम कहतेहैं—उसके प्रचारकी—और बुद्धि और उत्साह गुण स्वभाव इनमें जो समर्थ उसे विजिगीषु कहतेहैं उसकी चेष्टाकी—और जो मध्यम और विजिगीषुके मेलमें अनुग्रह और नहीं मेलमें दंडको देसकै उसे उदासीन कहतेहैं उसके प्रचारकी—और सहज—अकृत्रिम—भूम्यनंतर भेदोंसे तीन प्रकारके शत्रुओंकी चेष्टाकी—राजा प्रयत्नसे चिन्ताकरै—अर्थात् इसकी चिन्ता में पहिलोंकी अपेक्षा महान् यत्नकरै १५५ ॥

एताःप्रकृतयोमूलंमण्डलस्यसमासतः ।
अष्टौचान्याःसमाख्याताद्वादशैवतुताःस्मृताः १५६ ॥

प० । एताः प्रकृतयः मूलं मंडलस्य समासतः अष्टौ च अन्याः समाख्याताः द्वादश एव तु ताः स्मृताः ॥

यो० । एताः (मध्यमाद्याः चतस्रः प्रकृतयः) समासतः मंडलस्य मूलंभवंति — चपुनः अष्टौ अन्याः समाख्याताः अतः ताः (प्रकृतयः) द्वादश एव स्मृताः मनुनेतिशेषः ॥

भा० । ये चारों प्रकृति संक्षेपसे मंडलका मूल होतीहैं और आठ और भी प्रकृति कहीहैं इससे सब प्रकृति बारह कहीहैं ॥

ता० । ये मध्यम आदि चार प्रकृति मंडलका मूलहैं और वक्ष्यमाण (जो आगे कहतेहैं) आठ प्रकृतियोंकी आदिकीहैं—और आठ प्रकृति अन्य (और) कहीहैं अर्थात्—मित्र—अरिमित्र मित्रमित्र—अरिमित्र मित्र—ये चार प्रकृति तो आगेकी होती हैं—और इसीप्रकार चार प्रकृति पश्चात् होतीहैं पार्ष्णिग्राह—आक्रंद—पार्ष्णिग्राहासार—आक्रंदासार—ये आठ प्रकृतिहोतीहैं और पूर्वोक्त मध्यम आदि चारों मूल प्रकृतियोंके मेलसे ये सब बारह प्रकृति होतीहैं १५६ ॥

अमात्यराष्ट्रदुर्गार्थदण्डाख्याःपञ्चचापराः । प्रत्येकंकथिताह्येताःसंक्षेपेणद्विसप्ततिः १५७

प० । अमात्यराष्ट्रदुर्गार्थदंडाख्याः पंच च अपराः प्रत्येकं कथिताः हि एताः संक्षेपेण द्विसप्ततिः ॥

यो० । चपुनः अमात्यराष्ट्रदुर्गार्थ दंडाख्याः अपराः पंच प्रकृतयः प्रत्येकं भवंति हि (यतः) एवं एताः संक्षेपेण द्विसप्ततिः कथिताः ॥

भा० । अमात्य–देश–दुर्ग–कोश–दंड के भेदसे ये बारहप्रकृति प्रत्येक पांच २ प्रकार की होती हैं इससे ये सब संक्षेपसे बहत्तर कहीहैं ॥

ता० । इनचारों मूलप्रकृति और आठों शाखाप्रकृतियोंमें एक२ के प्रति अमात्य–देश–दुर्ग-कोश–दंडभेदसे पांच २ प्रकृतिहोतीहैं और ये जब प्रत्येक पांच २ हुईं तो षष्टि ६० होगईं और पूर्वोक्त बारहके जोड़नेसे ये सब द्विसप्तति (बहत्तर) कही हैं १५७ ॥

अनन्तरमरिंविद्यादरिसेविनमेवच । अरेरनन्तरंमित्रमुदासीनंतयोःपरम् १५८ ॥

प० । अनंतरं अरिं विद्यात् अरिसेविनं एव च अरेः अनंतरं मित्रं उदासीनं तयोः परम् ॥

यो० । अनंतरं आरिं — चपुनः अरिसेविनं अपि अरिं एव विद्यात् — अरेः अनंतरं (विजिगीषोःनृपस्य एकांतरम्) मित्रंविद्यात् तयोः (अरिमित्रयोः) परं उदासीनं विद्यात् ॥

भा० । जो अनन्तरहो और जो शत्रुका सेवकहो उसे शत्रुजाने और शत्रुका जो अनन्तरहो उसे मित्रजाने और इनदोनों से जो अन्य उसे उदासीन जाने ॥

ता० । जो विजिगीषु राजा के चारोंदिशामेंहो उसको और जो शत्रुको सेवकहो उसको शत्रु जाने–और शत्रु के चारोंदिशाओंमेंहो और विजिगीषु राजा का एकांतर (समीप) हो उसको मित्रजाने और इन शत्रु और मित्रोंसे जो भिन्नहो उसे उदासीन (न शत्रु न मित्र) प्रकृतिजाने इनप्रकृतियोंकेही आगेपीछे करनेसेही भेद होजाताहै और जो आगेहों वे शत्रुकहातेहैं और जो पीछेहो वह चाहे शत्रुभीहो उसे पार्ष्णिग्राह कहतेहैं १५८ ॥

तान्सर्वानभिसंदध्यात्सामादिभिरुपक्रमैः । व्यस्तैश्चैवसमस्तैश्चपौरुषेणनयेनच १५९

प० । तान् सर्वान् अभिसंदध्यात् सामादिभिः उपक्रमैः व्यस्तैः च एव समस्तैः च पौरुषेण नयेन च ॥

यो० । व्यस्तैः चपुनः समस्तैः सामादिभिः उपक्रमैः चपुनः पौरुषेण – नयेन – तान् सर्वान् (शत्र्वादीन्) अभिसंदध्यात् (वशेकुर्यात्) ॥

भा० । ता० । उनसब शत्रुआदि राजाओं को साम भेद दान दंडआदि व्यस्त (एक२) अथवा संपूर्ण उपायोंसे अथवा केवल पौरुष (दंड) वा नय (साम) से अपनेवश में राजाकरे क्योंकि इस[१] वचन के अनुसार प्रतिदिन देशवृद्धि के लिये साम और दंडकी बुद्धिमान् मनुष्य प्रशंसा करते हैं १५९ ॥

---

१. सामदंडौ प्रशंसंति नित्यं राष्ट्राभिवृद्धये ॥

संधिंचविग्रहंचैवयानमासनमेवच । द्वैधीभावंसंश्रयंचषड्गुणांश्चिन्तयेत्सदा १६० ॥

प० । संधिं चँ विग्रहं चँ एँव यानं आसनं एँव चँ द्वैधीभावं संश्रयं चँ षड्गुणान् चिंतयेत् सदा॥

यो० । संधिं – विग्रहं – यानं – चपुनः आसनं – द्वैधीभावं – चपुनः संश्रयं – एतान् षड्गुणान् राजा सदा चिंतयेत् ॥

भा० । संधि–विग्रह–यान–आसन–द्वैधीभाव–संश्रय–इनछः गुणोंकी राजा सदैव चिंताकरै॥

ता० । संधि–परस्पर अनुग्रह (भलाई) के लिये हाथी अश्व धन आदि के प्रबन्ध से हम तुम दोनों परस्पर का उपकार करें इसनियम को संधि कहते हैं इसकी–और वैरकी और अधिक विग्रह की इच्छासे शत्रु पर चढ़ाई को यान कहते हैं इसकी–और उपेक्षाकरके बैठरहने को आसन कहते हैं इसकी–और अपने कार्यकी सिद्धि के लिये सेना को द्विधा करने (फोड़ना) को द्वैधीभाव कहते हैं इसकी–और शत्रु से पीडित हो अति प्रबल राजाके आश्रय लेना इसको संश्रय कहते हैं इन छः गुणों (संधि विग्रह यान आसन–द्वैधीभाव–संश्रय) की राजा सदैव चिंता करै जिस गुणके आश्रय से–अपनी वृद्धि हो और परकी हानि हो उसीगुणका आश्रयले १६० ॥

आसनंचैवयानंचसंधिंविग्रहमेवच । कार्यंवीक्ष्यप्रयुञ्जीतद्वैधंसंश्रयमेवच १६१ ॥

प० । आसनं चँ एँव यानं चँ संधिं विग्रहं एँव चँ कार्यं वीक्ष्यँ प्रयुंजीतँ द्वैधं संश्रयं एँव चँ ॥

यो० । राजा – कार्यं वीक्ष्य आसनं चपुनः यानं – संधिं – विग्रहं द्वैधं – चपुनः संश्रयं प्रयुंजीत ॥

भा० । ता० । संधि आदि गुणोंका करना प्रथम कहा अब उनमें उचितों के अनुष्ठान (करने) के लिये कहतेहैं कि अपनी वृद्धि और दूसरे की हानिरूप कार्य को देखकर आसन–यान–संधि–विग्रह–द्वैध और संश्रय–इनको करै अर्थात् संधि करके बैठे–वैरलगाकर यान (चढ़ाई) करै द्वैध–संश्रय अर्थात् किसी के संग संधि–और किसीके संग वैर करै १६१ ॥

संधिंतुद्विविधंविद्याद्राजाविग्रहमेवच । उभेयानासनेचैवद्विविधःसंश्रयःस्मृतः १६२ ॥

प० । संधिं तु द्विविधं विद्यात् राजा विग्रहं एवं चँ उभे यानासने चँ एवँ द्विविधः संश्रयः स्मृतः

यो० । राजा – संधिं चपुनः विग्रहं – द्विविधं चपुनः उभे यानासने द्विविधे विद्यात् – संश्रयः द्विविधः स्मृतः ॥

भा० । ता० । संधि विग्रह–यान–आसन और संश्रय (आश्रय) ये सब दो २ प्रकार के जानने १६२ ॥

समानयानकर्माचविपरीतस्तथैवच । तदात्वायतिसंयुक्तःसंधिर्ज्ञेयोद्विलक्षणः १६३ ॥

प० । समानयानकर्मा चँ विपरीतः तथा एवँ चँ तदात्वायातिसंयुक्तः संधिः ज्ञेयः द्विलक्षणः ॥

यो० । समानयानकर्मा चपुनः विपरीतः (असमानयानकर्मा) तदात्वायतिसंयुक्तः संधिः द्विलक्षणः ज्ञेयः – विद्वद्भिरितिशेषः ॥

भा० । उसीसमय में वा पीछेसे फलकेलिये, जो किसी के संग मिलकर यानहो अथवा परस्पर सम्मति से पृथक् २ चढ़ाईकरनाहो–ये दोनों संधिसमानकर्मा और असमानकर्मा–क्रम से कहातीहैं और ये दोही उनके लक्षणहैं ॥

ता० । उसी समय फल लाभ के अर्थ अथवा पीछेसे फललाभ के लिये किसी अन्य राजासे मिलकर दूसरे के ऊपर यान कियाजाय वह संधि समान यानकर्मा होतीहै—और जो इसप्रकार के मेलसे संधिहोतीहै कि तू वहांजाय और मैं वहांजाऊंगा उसीसमय अथवा पीछे से फललाभ के लिये जो कीजाय उस संधिको असमानयानकर्मा कहते हैं—इसप्रकार संधि के दो स्वरूप होतेहैं १६३ ॥

स्वयंकृतश्चकार्यार्थमकालेकालएववा । मित्रस्यचैवापकृतेद्विविधोविग्रहःस्मृतः १६४ ॥

प० । स्वयंकृतः चँ कार्यार्थे अकाले काले एवँ वाँ मित्रस्य चँ एवँ अपकृते द्विविधः विग्रहः स्मृतः ॥

यो० । अकाले वा काले एव कार्यार्थे स्वयंकृतः चपुनः मित्रस्य एव अपकृते सति कृतः एवं विग्रहः द्विविधः स्मृतः- मनुनेतिशेषः ॥

भा० । मनुआदिने विग्रह दोप्रकारका कहाहै कि समयपर अथवा विनासमयपर स्वयंकिया और मित्र के अपकार कियेपर जो कियाजाय—ये विग्रहके दोभेदहैं ॥

ता० । शत्रुकी जयकी आशासे—शत्रुके व्यसनआदिको सुनकर यात्राके मार्गशिर आदिकाल से अन्यकाल में भी आवश्यकता को देखकर स्वयंकिया जो विग्रह वह १ प्रथमहै—और अपने मित्रके किसी अन्य राजासे तिरस्कार करनेपर मित्रकी रक्षाकेलिये जो विग्रहकरना वह २ दूसरा विग्रह कहतेहैं—इसप्रकार विग्रहके दोभेदहैं—गोविंदराज तो यह कहतेहैं कि—मित्रेणचैवाप कृते—यहपाठहै और इसका अर्थ यहहै कि इतर राजाका शत्रु अपनामित्र होता है उसके तिरस्कार करनेपर और शत्रु के व्यसन (दुःख) होनेपर जो यान उनसे दो प्रकार का विग्रह होता है—इससे हमने जो वृद्धोंके सम्मत पूर्वोक्त पाठ और अर्थहैं वेही स्वीकार कियेहैं १६४ ॥

एकाकिनश्चात्ययिकेकार्येप्राप्तेयदृच्छया । संहतस्यचमित्रेणद्विविधंयानमुच्यते १६५ ॥

प० । एकाकिनः चँ आत्ययिके कार्ये प्राप्ते यदृच्छया संहतस्य चँ मित्रेण द्विविधं यानं उच्यते ॥

यो० । आत्ययिके कार्ये यदृच्छया प्राप्तेसति एकाकिनः—चपुनः मित्रेणसह संहतस्य यत् यानं एवं द्विविधंयानं उच्यते—मनुनेतिशेषः ॥

भा० । ता० । मनुआदिकोंने यान भी दोप्रकार का कहा है कि यदि अकस्मात् आवश्यक कार्य आनपड़ने पर एकाकी समर्थ राजा जो यानकरे वह और असमर्थ होय तो मित्रको संगलेकर गमन करे १६५ ॥

क्षीणस्यचैवक्रमशोदैवात्पूर्वकृतेनवा । मित्रस्यचानुरोधेनद्विविधंस्मृतमासनम् १६६ ॥

प० । क्षीणस्य चँ एवँ क्रमशः दैवात् पूर्वकृतेन वाँ मित्रस्य चँ अनुरोधेन द्विविधं स्मृतं आसनम् ॥

यो० । दैवात् वा पूर्वकृतेन कर्मणा क्रमशः क्षीणस्य—चपुनः मित्रस्य अनुरोधेन इत्येवं द्विविधं आसनं मुनिभिः स्मृतम् ॥

भा० । ता० । पूर्व जन्मके संचित पापसे अथवा इसी जन्म में पहिले कियेहुये पापसे क्रम २

नष्टहुआ है हाथी अश्व कोश जिसका ऐसे का और मित्रके अनुरोधसे समृद्ध (समर्थ) राजा का जो बैठा रहना—इसप्रकार मुनियोंने दोप्रकार का आसन कहाहै १६६ ॥

बलस्यस्वामिनश्चैवस्थितिःकार्यार्थसिद्धये।द्विविधंकीर्त्यतेद्वैधंषाड्गुण्यगुणवेदिभिः१६७

प० । बलस्य स्वामिनः च एव स्थितिः कार्यार्थसिद्धये द्विविधं कीर्त्यते द्वैधं षाड्गुण्यगुणवेदिभिः ॥

यो० । कार्यार्थसिद्धये बलस्य (सेनायाः) चपुनः स्वामिनः या स्थितिः सा एवं षाड्गुण्यगुणवेदिभिः द्वैधं द्विविधं कीर्त्यते ॥

भा० । ता० । पूर्वोक्त छः गुणोंके गुणोंके जानने वालोंने इसप्रकार द्वैधके भी दो भेदकहेहैं कि एक स्थानमें तो सेनापतिहै अधिष्ठाता जिसका ऐसीसेना अपने प्रयोजनकी सिद्धिके लिये स्थित करनी और अन्यत्र किसी किलेमें कुछ सेना समेत राजाकी स्थितिकरनी १६७ ॥

अर्थसंपादनार्थंचपीड्यमानस्यशत्रुभिः।साधुषुव्यपदेशार्थंद्विविधःसंश्रयःस्मृतः१६८

प० । अर्थसंपादनार्थं च पीड्यमानस्य शत्रुभिः साधुषु व्यपदेशार्थं द्विविधः संश्रयः स्मृतः ॥

यो० । शत्रुभिः पीड्यमानस्य अर्थसंपादनार्थं—चपुनः साधुषु व्यपदेशार्थं—एवं संश्रयः द्विविधः स्मृतः ॥

भा० । ता० । शत्रुओंसे पीडित राजाका शत्रुकी पीडाकी शांतिके लिये किसी बलवान् राजा का आश्रय लेना—अथवा शत्रुकी पीडा न होने भी आगे होनेवाली शत्रुकी पीडाकी शंका से किसी अन्य राजाका आश्रय—यह जगत्में विदितकरनेकोलेना कि यह अमुक महाबली राजाके आश्रयहै—इस प्रकार दो प्रकारका संश्रय मुनियोंने कहाहै १६८ ॥

यदावगच्छेदायत्यामाधिक्यंध्रुवमात्मनः।तदात्वेचाल्पिकांपीडांतदासंधिंसमाश्रयेत्१६९

प० । यदा अवगच्छेत् आयत्यां आधिक्यं ध्रुवं आत्मनः तदात्वे च अल्पिकां पीडां तदा संधिं समाश्रयेत् ॥

यो० । यदा आयत्यां आत्मनः ध्रुवं आधिक्यं—चपुनः तदात्वे अल्पिकां पीडां अवगच्छेत्—तदा राजा संधिं समाश्रयेत् ॥

भा० । ता० । जिस समय राजाको अपने आधिक्यका अवश्य निश्चयहो और उस समय (वर्त्तमान कालमें) अल्प पीडाहो अर्थात् कुछ धन आदिका क्षयहो उस समय राजा अल्प धनकी हानिको स्वीकार करके संधिको करले १६९ ॥

यदाप्रकृष्टामन्येतसर्वास्तुप्रकृतीर्भृशम्।अत्युच्छ्रितंतथात्मानंतदाकुर्वीतविग्रहम्१७०

प० । यदा प्रकृष्टाः मन्येत सर्वाः तु प्रकृतीः भृशम् अत्युच्छ्रितं तथा आत्मानं तदा कुर्वीत विग्रहम् ॥

यो० । यदा राजा सर्वाः प्रकृतीः भृशं प्रकृष्टाः मन्येत—तथा आत्मानं अत्युच्छ्रितं मन्येत तदा विग्रहं कुर्वीत ॥

भा० । ता० । जिस समय राजा अपनी अमात्य आदि संपूर्ण प्रकृतियोंको दान मान आदि से संतुष्टमाने और अपने आत्माको हस्ति अश्व कोश आदिसे उपचित (बढ़ाहुआ) माने उस समय विग्रह करै (लड़ै) १७० ॥

यदामन्येतभावेनहृष्टंपुष्टंबलंस्वकम्। परस्यविपरीतंचतदायायाद्रिपुंप्रति १७१॥

प०। यदा मन्येत भावेन हृष्टं पुष्टं बलं स्वकं परस्य विपरीतं च तदा यायात् रिपुं प्रति॥

यो०। यदा राजा स्वकंबलं भावेन हृष्टं पुष्टं चपुनः परस्य (शत्रोः) विपरीतं मन्येत तदा रिपुंप्रति यायात् (गच्छेत्)॥

भा०। ता०। जिस समय राजा अपनी मंत्री आदि सेनाको यथार्थमें हृष्ट (प्रसन्न) और पुष्ट देखे और शत्रुकी सेनाको हृष्ट पुष्ट न देखे उस समय शत्रुके ऊपर चढ़ाई करे १७१॥

यदातुस्यात्परिक्षीणोवाहनेनबलेनच। तदासीतप्रयत्नेनशनकैःसांत्वयन्नरीन् १७२॥

प०। यदा तु स्यात् परिक्षीणः वाहनेन बलेन च तदा आसीत प्रयत्नेन शनकैः सांत्वयन् अरीन्॥

यो०। यदा राजा वाहनेन चपुनः बलेन परिक्षीणः स्यात्—तदा शनकैः अरीन् सांत्वयन् सन् आसीत॥

भा०। ता०। जब राजा हस्ति अश्व आदि वाहनों और मंत्री आदि सेनासे परिक्षीण (हीन) हो तब शांतिसे शत्रुओंको शनैः२ सांत्वकरताहुआ आसन करे (बैठारहै) अर्थात् कुछ न करे १७२॥

मन्येतारिंयदाराजासर्वथाबलवत्तरम्। तदाद्विधाबलंकृत्वासाधयेत्कार्यमात्मनः१७३॥

प०। मन्येत अरिं यदा राजा सर्वथा बलवत्तरं तदा द्विधा बलं कृत्वा साधयेत् कार्यं आत्मनः॥

यो०। यदा राजा अरिं सर्वथा बलवत्तरं मन्येत तदाबलं द्विधाकृत्वा आत्मनः कार्यं साधयेत्॥

भा०। ता०। जब राजा सब प्रकारसे शत्रुको अत्यन्त बलवान देखे तब दो स्थानमें पृथक्२ सेनाको करके अर्थात् कुछ सेना सहित तो स्वयं दुर्गमें रहै और कुछ सेनाके भागसे शत्रुका विरोधकरे इस प्रकार द्वैध करके अपने कार्यको सिद्धकरे १७३॥

यदापरबलानांतुगमनीयतमोभवेत्। तदातुसंश्रयेत्क्षिप्रंधार्मिकंबलिनंनृपम् १७४॥

प०। यदा परबलानां तु गमनीयतमः भवेत् तदा तु संश्रयेत् क्षिप्रं धार्मिकं बलिनं नृपम्॥

यो०। यदा तु राजा परबलानां गमनीयतमः भवेत्—तदा धार्मिकं बलिनं नृपं क्षिप्रं संश्रयेत्—(आश्रयेत्)॥

भा०। ता०। जिस समयमें राजा मंत्री आदि प्रकृतियोंके दोषसे पराई सेना का ग्राह्य (पकड़ने योग्य) होजाय अर्थात् द्वैध और दुर्गके आश्रयसे अपनी रक्षा न करसके—तब धार्मिक और अत्यंत बली राजाका शीघ्रही आश्रयले १७४॥

निग्रहंप्रकृतीनांचकुर्याद्योऽरिबलस्यच। उपसेवेततंनित्यंसर्वयत्नैर्गुरुंयथा १७५॥

प०। निग्रहं प्रकृतीनां च कुर्यात् यः अरिबलस्य च उपसेवेत तं नित्यं सर्वयत्नैः गुरुं यथा॥

यो०। यः नृपः प्रकृतीनां चपुनः अरिबलस्य निग्रहं कुर्यात् तं सर्वयत्नैः यथा गुरुं तथा नित्यं उपसेवेत॥

भा०। ता०। जिन प्रकृतियोंके दोषसे यह वश करने योग्यहुआहै उन प्रकृतियोंके और शत्रुकी सेना (जिससे इसे भय हुआहो) के निग्रह (दंडदेना) में समर्थहो उस राजाकी इस प्रकार सेवाकरे जैसे गुरुकी सेवा करतेहैं १७५॥

यदितत्रापिसंपश्येद्दोषंसंश्रयकारितम् । सुयुद्धमेवतत्रापिनिर्विशङ्कःसमाचरेत् १७६ ॥

प० । यदि तत्र अपि संपश्येत् दोषं संश्रयकारितम् सुयुद्धं एव तत्र अपि निर्विशङ्कः समाचरेत् ॥

यो० । यदि तत्रापि संश्रयकारितं दोषं संपश्येत् तदा तत्रापि निर्विशंकःसन सुयुद्धं एव समाचरेत् ॥

भा० । ता० । दूसरेका आश्रय अगतिकगति (अचारी) है इससे यदि अन्यके आश्रयमें भी राजा कोई दोष देखे तो उस समयमें भी शंकाको त्यागकर भलीप्रकार युद्धकरे क्योंकि दुर्बल भी बलवान्का पराजय करदेताहै और युद्धमें सन्मुख मरनेपर स्वर्गकी प्राप्तिहोतीहै १७६ ॥

सर्वोपायैस्तथाकुर्यान्नीतिज्ञःपृथिवीपतिः । यथास्याभ्यधिकानस्युर्मित्रोदासीनशत्रवः १७७

प० । सर्वोपायैः तथा कुर्यात् नीतिज्ञः पृथिवीपतिः यथा अस्य अभ्यधिकाः न स्युः मित्रोदासीनशत्रवः ॥

यो० । नीतिज्ञः पृथिवीपतिः सर्वोपायैः तथा कुर्यात् — यथा अस्य मित्रोदासीनशत्रवः अभ्यधिकाः न स्युः ॥

भा० । ता० । नीतिका जाननेवाला राजा संपूर्ण साम आदि उपायोंसे वह यत्नकरे जिस यत्नसे इसके मित्र उदासीन और शत्रु अधिक न हों क्योंकि उनके अधिक होनेपर यह राजा ग्राह्य होजाताहै और कभी मित्र भी धन आदिके लोभसे शत्रुहोजातेहैं १७७ ॥

आयतिंसर्वकार्याणांतदात्वंचविचारयेत् । अतीतानांचसर्वेषांगुणदोषौचतत्त्वतः १७८

प० । आयतिं सर्वकार्याणां तदात्वं च विचारयेत् अतीतानां च सर्वेषां गुणदोषौ च तत्त्वतः ॥

यो० । सर्वकार्याणां आयतिं चपुनः तदात्वं — चपुनः अतीतानां सर्वेषां तत्त्वतः गुणदोषौ — राजा विचारयेत् ॥

भा० । ता० । संपूर्ण कार्योंके गुण दोषोंको उत्तरकाल और शीघ्रकरनेके लिये वर्त्तमानकाल को और अतीत (बीतेहुये) संपूर्णकार्यों के गुण और दोषों को यथार्थरीति से—राजा विचारै अर्थात् कितना व्ययहुआ और कितना शेषरहा १७८ ॥

आयत्यांगुणदोषज्ञस्तदात्वेक्षिप्रनिश्चयः । अतीतेकार्यशेषज्ञःशत्रुभिर्नाभिभूयते १७९

प० । आयत्यां गुणदोषज्ञः तदात्वे क्षिप्रनिश्चयः अतीते कार्यशेषज्ञः शत्रुभिः न अभिभूयते ॥

यो० । आयत्यां गुणदोषज्ञः तदात्वे क्षिप्रनिश्चयः — अतीते कार्यशेषज्ञः राजा शत्रुभिः न अभिभूयते ॥

भा० । ता० । जो राजा आगामी (आनेवाला) कालमें कार्योंके गुणदोषों को जाने अर्थात् गुणदेनेवाले कार्यका आरम्भ और दोषवालेका त्यागकरे—और जो वर्त्तमानकाल में शीघ्रही निश्चयकरके कार्यकोकरे—और जो अतीत (गयेहुये) कालमें कार्यके शेषकोजाने वहीराजा कार्य की समाप्तिके समय उसके फलको प्राप्तहोता है—इसीसे तीनोंकालों में सावधान राजाका शत्रुओंसे तिरस्कार नहीं होता १७९ ॥

यथैनंनाभिसंदध्युर्मित्रोदासीनशत्रवः । तथासर्वंसंविदध्यादेषसामासिकोनयः १८० ॥

प० । यथा एनं न अभिसंदध्युः मित्रोदासीनशत्रवः तथा सर्वं संविदध्यात् एषः सामासिकः नयः ॥

यो० । मित्रोदासीनशत्रवः यथा एनं (राजानं) न अभिसंदध्युः तथा एव सर्वं संविदध्यात् एषः सामासिकः नयः — अस्तीतिशेषः ।

भा० । ता० । जिसप्रकार मित्र उदासीन और शत्रु इस राजाको बाधा न दें उसीप्रकार संविधान (कार्योंका करना) करै यही संक्षेपसे न्यायहै १८० ॥

यदातुयानमातिष्ठेदरिराष्ट्रंप्रतिप्रभुः । तदानेनविधानेनयायादरिपुरंशनैः १८१ ॥

प० । यदा तु यानं आतिष्ठेत् अरिराष्ट्रं प्रति प्रभुः तदा अनेन विधानेन यायात् अरिपुरं शनैः ॥

यो० । प्रभुः यदा अरिराष्ट्रं प्रति यानं आतिष्ठेत् (यात्रांकुर्यात्) तदा अनेन विधानेन अरिपुरं शनैः यायात् (गच्छेत्) ॥

भा० । ता० । जब राजा शत्रु के देशपर यात्राका आरम्भकरै—उससमय इसविधि से (जो आगे कहेंगे) शनैः २ यात्राको करै १८१ ॥

मार्गशीर्षेशुभेमासियायाद्यात्रांमहीपतिः।फाल्गुनंवाथचैत्रंवामासौप्रतियथाबलम् १८२॥

प० । मार्गशीर्षे शुभे मासि यायात् यात्रां महीपतिः फाल्गुनं वा अथ चैत्रं वा मासौ प्रति यथाबलम् ॥

यो० । महीपतिः शुभे मार्गशीर्षे मासि यात्रां कुर्यात् — अथवा यथाबलं (राजानं) प्रति फाल्गुनं वा चैत्रं एतौ मासौ यात्रार्थं श्रेयौ ॥

भा० । मार्गशिर आदि शुभ मास में अथवा फागुन चैत्रमें यथाबल (दूसरे राजा के बलको देखकर) राजा गमनकरै ॥

ता० । जिस चतुरंग सेनासहित राजाकी हाथीवाली सेनाके मनुष्योंका गमन न होनेसे यात्रा में विलंब होजाय,और हेमंत (जाड़ा) के समय अधिक सस्यसे युक्त शत्रुके देशमें जो जाना चाहै वह गमनकेलिये उत्तम मार्गशीर्ष (अगहन) महीने में यात्राकरै—और जो शीघ्र गमन कियाचाहै और विपक्षी राजाके देशको सस्यआदिसे संपन्नदेखे तो अपने बल इस वचनके अनुसार फागुन चैत्रमें भी यात्राकोकरै १८२ ॥

अन्येष्वपितुकालेषुयदापश्येद्ध्रुवंजयम्।तदायायाद्विगृह्यैवव्यसनेचोत्थितेरिपोः १८३॥

प० । अन्येषु अपि तु कालेषु यदा पश्येत् ध्रुवं जयम् तदा यायात् विगृह्य एव व्यसने च उत्थिते रिपोः ॥

यो० । अन्येषु अपिकालेषु यदा आत्मनः जयं ध्रुवं पश्येत् तदा च पुनः रिपोः व्यसने उत्थितेसति विगृह्य एव — राजा यायात् (गच्छेत्) ॥

भा० । पूर्वोक्तकाल से अन्य समयमें भी अपनीजयके निश्चयको देख अथवा शत्रुकी पीडा को देखकर राजा यात्राकोकरै ॥

ता० । उक्त मार्गशिरके समयसे भिन्न समयमें भी राजा जब अपनी जयको निश्चय समझै तो अपनीसेनाके बलयोग्य ग्रीष्मआदि समय में हाथीआदिको लेकर युद्धकेलिये यात्राको करै

१. यदासस्यगुणोत्पन्नं परराष्ट्रंतदाव्रजेत् ॥

और अथवा जब शत्रुको उसके मंत्रीआदिकों में कठोर दंडआदिके देनेसे व्यसन (दुःख) देखे उससमयमें भी युद्धके निमित्त यात्राकरे १८३ ॥

कृत्वाविधानंमूलेतुयात्रिकंचयथाविधि । उपगृह्यास्पदंचैवचारान्सम्यग्विधायच १८४

संशोध्यत्रिविधंमार्गंषड्विधंचबलंस्वकम् । सांपरायिककल्पेनयायादरिपुरंशनैः १८५ ॥

प० । कृत्वा विधानं मूले तु यात्रिकं च यथाविधि उपगृह्य आस्पदं च एव चारान् सम्यक् विधाय च ॥

प० । संशोध्य त्रिविधं मार्गं षड्विधं च बलं स्वकम् सांपरायिककल्पेन यायात् अरिपुरं शनैः ॥

यो० । मूले चपुनः यात्रिकं विधानं यथाविधि कृत्वा चपुनः आस्पदं उपगृह्य — चपुनः चारान सम्यक् विधाय — त्रिविधं मार्गं चपुनः षड्विधं स्वकंबलं संशोध्य सांपरायिककल्पेन शनैः अरिपुरं प्रति राजा यायात् — (गच्छेत्) ॥

भा० । अपने मूल स्थान की और शास्त्रोक्त रीतिसे यात्राकी विधि और आस्पद का ग्रहण और दूतोंका करना—और तीन प्रकारके मार्गकी और छः प्रकारकी सेनाकी शुद्धिको करके राजा संग्रामके योग्य विधिसे शनैः२ शत्रुके पुरमें गमनकरे—अर्थात् चारोंतरफसे अपनी रक्षाको देखकर शत्रुपर चढ़ाईकरे ॥

ता० । मूलमें अर्थात् अपने देश और दुर्गमें पार्ष्णिग्राहका संविधान- प्रधान पुरुषको रक्षाके लिये नियतकरके और वहां कुछ सेनाको रखकर प्रतिविधानको करके—और यात्राके उपयोगी वाहन—शस्त्र वर्म आदिसे यात्राका विधान शास्त्रोक्त रीतिसे करके और अन्यदेशमें जाकर जिसमें इसकी स्थिति होसके ऐसे आस्पद (तम्बूआदि) को ग्रहण करके और अन्य राजाके मंत्री आदिको वशमें करके और शत्रुका भेद लेनेवाले कपटी दूतोंका प्रस्थान करके—और जंगल पाटविक विषय भेदसे तीनप्रकारके मार्गको शुद्धकरके अर्थात् वृक्ष लता गुल्म आदिके छेदन—ऊंचे नीचेको समान करनेसे स्वच्छ करके—और हाथी—घोड़ा—रथ—पदाति—सेना—सेवकरूप छः प्रकारकी सेनाको उचित भोजन औषध सत्कार आदिसे प्रसन्न करके—संग्रामके योग्य विधिसे शत्रुके देश में शनैः२ गमन करे १८४ । १८५ ॥

शत्रुसेविनिमित्रेचगूढेयुक्ततरोभवेत् । गतप्रत्यागतेचैवसहिकष्टतरोरिपुः १८६ ॥

प० । शत्रुसेविनि मित्रे च गूढे युक्ततरः भवेत् गतप्रत्यागते च एव सः हि कष्टतरः रिपुः ॥

यो० । गूढे शत्रुसेविनि मित्रे-चपुनः गतप्रत्यागते मित्रे राजा युक्ततरः भवेत् — हि (यतः) सः (पूर्वोक्तद्विरूपः) कष्टतरः रिपुः (शत्रुः) मुनिभिः स्मृतः ॥

भा० । ता० । जो मित्र छिपकर राजाके शत्रुकी सेवाको करताहो उसके विषे और जो मित्र पहिले विरक्तहोकर चलागयाहो और फिर चलाआयाहो उसके विषे—राजा अत्यंत सावधान रहै क्योंकि ये दोनों बड़े कष्टसे दमन करने योग्य शत्रुरूपहोतेहैं १८६ ॥

दण्डव्यूहेनतन्मार्गंयायात्तुशकटेनवा । वराहमकराभ्यांवासूच्यावागरुडेनवा १८७॥

प० । दंडव्यूहेन तन्मार्गं यायात् तु शकटेन वा वराहमकराभ्यां वा सूच्या वा गरुडेन वा ॥

यो० । दंडव्यूहेन--वा शकटेन व्यूहेन--वा वराहमकराभ्यां व्यूहाभ्यां—वा सूच्या व्यूहेन—वा गरुडेन व्यूहेन—राजा तन्मार्गे यायात् ॥

भा० । उस चलने योग्य मार्गमें राजा इसप्रकार सेनाकी रचना को करके गमन करै—कि दंडव्यूह—शकटव्यूह—वराहव्यूह—मकरव्यूह—सूचीव्यूह—और गरुडव्यूह ॥

ता० । जब राजाको चारोंओर से भयहो उससमय दंडव्यूह से शत्रुके मार्ग में गमन करै दंड आदि के आकार जो सेनाकी रचना उसे दंडव्यूह आदि कहतेहैं अर्थात् सबसे आगे सेना का अध्यक्ष—मध्यमें राजा—और सबसे पीछे सेनापति—और दोनों पार्श्वोंमें हाथी और हाथियोंके समीप घोड़े और उनके समीप पदाति (पैदल) हों सर्वत्र समान और दीर्घ इसप्रकार की सेनाकी रचना उसे दंडव्यूह कहतेहैं—यदि राजाको पीछे का भयहो तो शकटव्यूह से मार्ग में गमनकरै अर्थात् जिससेना की रचना का सूची (सूई) के समान अग्रभागहो पीछेसे मोटी हो उससेना की रचनाको शकटव्यूहकहते हैं और राजाको पार्श्वोंमें भयहोय तो वराहव्यूह और गरुडव्यूह से उसमार्ग में गमनकरै अर्थात् जिससेना का अग्रभागसूक्ष्महो और पिछला भाग और मध्यभाग ये दोनों पृथु (मोटे) हों उस सेना की रचनाको वराहव्यूह कहते हैं और जिस सेना की रचनाका अग्रभाग सूक्ष्म पिछलाभाग पृथु और मध्यकाभाग अत्यन्त पृथु हो उससेना की रचनाको गरुडव्यूह कहतेहैं—और यदि आगे और पीछे दोनों ओर राजा को भयप्रतीतहोय तो मकरव्यूहसे गमनकरै अर्थात् जिसका अग्रभाग पृथुहो और मध्य भी पृथुहो और पिछलाभाग सूक्ष्महो उस सेनाकी रचनाको मकरव्यूह कहतेहैं—और यदि राजाको अग्रभागमेंही भयप्रतीतहोय तो सूचीव्यूहसे उसमार्ग में गमनकरै अर्थात् पिपीलिका (चैंटी) ओं की पंक्तिके अग्रपश्चाद्भाव (ऐसीनहो कि कभी कोई आगे और कभीकोई पीछे) से संहत (जटित) अर्थात् जहां२ सेनाहै वहां२ अत्यन्त शूरवीर पुरुष अग्रभाग में रहैं उससेना की रचनाको सूचीव्यूह कहतेहैं—सिद्धान्त यहहै जिसतरफ भयदेखै उसभयके नष्टकरनेवाले व्यूहसेही राजा गमनकरै १८७ ॥

यतश्चभयमाशङ्केत्ततोविस्तारयेद्बलम् । पद्मेनचैवव्यूहेननिविशेतसदास्वयम् १८८ ॥

प० । यतः च भयं आशंकेत् ततः विस्तारयेत् बलम् पद्मेन च एव व्यूहेन निविशेत सदा स्वयम् ॥

यो० । राजा यतः भयं आशंकेत ततः (तस्यांदिशि) बलं विस्तारयेत्—चपुनः राजा सदा पद्मेनव्यूहेन सदा परराष्ट्रं निविशेत ॥

भा० । ता० । जिसदिशामें राजाको भयकी आशंकाहो उसीदिशामें अपनीसेनाको विस्तारै (बढ़ावै) और राजा सदैव पद्मव्यूहसे स्वयंशत्रुके देशमें प्रवेशकरै अर्थात् जिस सेनाकाविस्तार चारोंतरफ समानहो और मध्यमें जिगीषु राजाहो उस सेनाकी रचनाको पद्मव्यूह कहतेहैं इस व्यूह के द्वारा राजा कपट से प्रवेशकरै १८८ ॥

सेनापतिबलाध्यक्षौसर्वदिक्षुनिवेशयेत् । यतश्चभयमाशङ्केत्प्राचींतांकल्पयेद्दिशम् १८९ ॥

प० । सेनापतिबलाध्यक्षौ सर्वदिक्षु निवेशयेत् यतः च भयं आशंकेत् प्राचीं तां कल्पयेत् दिशम् ॥

यो० । राजा सर्वदिक्षु सेनापतिबलाध्यक्षौ निवेशयेत् — चपुनः यतः भयं आशंकेत तां दिशं प्राचीं कल्पयेत् (मन्येत)

भा० । सब दिशाओं में सेनापति और बलाध्यक्षों को राजा नियतकरै और जिस दिशा में भयकी आशंकाहो उसीदिशाको प्राची (पूर्व) दिशा मानै ॥

ता० । हाथी घोड़े रथ पैदलरूप सेना के दशअंगों का एक पति (स्वामी) होता है उसको पत्तिक कहतेहैं और दशपत्तिकों का जो पति उसे सेनापतिकहतेहैं—और दशसेनापतियोंका जो पति उसे सेनानायक वा बलाध्यक्षकहतेहैं—इनदोनों सेनापति और बलाध्यक्षोंको राजा संपूर्ण दिशाओं में संग्रामयुद्ध के लिये नियतकरै और जिसदिशा में राजाको भय की शंकाहो उसी दिशाको पूर्वदिशा कल्पितकरै (मानै) १८९ ॥

गुल्मांश्चस्थापयेदाप्तान्कृतसंज्ञान्समंततः । स्थानेयुद्धेचकुशलानभीरूनविकारिणः १९०

प० । गुल्मान् च स्थापयेत् आप्तान् कृतसंज्ञान् समंततः स्थाने युद्धे च कुशलान् अभीरून् अविकारिणः ॥

यो० । आप्तान् — कृतसंज्ञान — स्थाने चपुनः युद्धे कुशलान — अभीरून — अविकारिणः — गुल्मान् समंततः राजा स्थापयेत् ॥

भा० । सज्जन—शंखआदि शब्दरूप संकेतोंके ज्ञाता—स्थान और युद्धमें कुशल—निडर और अविकारी(भेदकोनप्राप्तहों) जो गुल्म—उनको सबदिशाओंमें (चारोंओर) राजास्थापनकरै ॥

ता० । जिनगुल्मों का अधिपति आप्त (सज्जन) हो और जिनकोस्थिति और अपसरण के लिये भेरी—पटह शंखआदि शब्दोंके संकेतों का ज्ञानहो और जो टिकने और युद्धमें प्रवीण हों और जो भीरुनहों और जो अव्यभिचारीहैं अर्थात् जिनका कोई भेद न करसके ऐसे गुल्मों (सेनाकेकुछअंग) को सेनापति और बलाध्यक्षों से दूरदेश में इसलिये राजा स्थापनकरै कि वे इधर उधर से शत्रुका प्रवेश न होनेदें और शत्रुकीचेष्टाको जानते रहें १९० ॥

संहतान्योधयेदल्पान्कामंविस्तारयेद्बहून् । सूच्यावज्रेणचैवैतान्व्यूहेनव्यूह्ययोधयेत् १९१

प० । संहतान् योधयेत् अल्पान् कामं विस्तारयेत् बहून् सूच्या वज्रेण च एव एतान् व्यूहेन व्यूह्य योधयेत् ॥

यो० । अल्पान् योधान संहतान कृत्वा योधयेत् — बहून योधान कामं विस्तारयेत् चपुनः एतान सूच्या वज्रेण व्यूहेन व्यूह्य योधयेत् ॥

भा० । इकट्ठे किये हुये कुछ योधाओंसे युद्ध करावे और अपनी इच्छाके अनुसार बहुतसे योधाओंको विस्तारै अर्थात् बढ़ावे—और इन योधाओंको पूर्वोक्त सूची और वज्र व्यूहसे व्यूहन (इकट्ठे) करके युद्ध करावे ॥

ता० । अल्प (कुछ) योधाओंको संधान (मिलाना) के योग्य करके युद्ध करावे और बहुत से योधाओंको अपनी इच्छाके अनुसार विस्तारै (बढ़ावे)—और उनको पूर्वोक्त सूचीव्यूह अथवा वज्रव्यूहसे स्थितकरके युद्धकरावे—तीनप्रकारसे सेनाकी स्थितिको वज्रव्यूहकहतेहैं १९१॥

स्यन्दनाश्वैःसमेयुद्ध्येदनूपेनौद्विपैस्तथा। वृक्षगुल्मावृतेचापैरसिचर्मायुधैःस्थले १९२॥

प० । स्यंदनाश्वैः समे युद्ध्येत् अनूपे नौद्विपैः तथा वृक्षगुल्मावृते चापैः असिचर्मायुधैः स्थले ॥

यो० । समे भूभागे स्यंदनाश्वैः – तथा अनूपे (जलप्राये) भूभागे नौद्विपैः – वृक्ष गुल्मावृते भूभागे चापैः – स्थले भूभागे असिचर्मायुधैः – राजा युद्ध्येत् ॥

भा० । ता० । सम (इकसा) भूमिके भागमें रथ और घोड़ोंसे और अधिक जलवाले भूभागमें नाव और हाथियोंसे–वृक्ष और गुल्मोंसे संयुक्त भूभागमें धनुषोंसे–और गड्ढे कांटे पत्थर आदिसे हीन स्थलमें खड्ग चर्मायुध (ढाल तरवार) शस्त्रोंसे–राजा युद्धकरै (लड़ै) १९२ ॥

कुरुक्षेत्रांश्चमत्स्यांश्चपञ्चालानशूरसेनजान्। दीर्घांल्लघूंश्चैवनरानग्रानीकेषुयोजयेत्१९३

प० । कुरुक्षेत्रान् च मत्स्यान् च पंचालान् शूरसेनजान् दीर्घान् लघून् च एवं नरान् अग्रानीकेषु योधयेत् ॥

यो० । कुरुक्षेत्रान् चपुनः मत्स्यान् पंचालान – शूरसेनजान – दीर्घान् चपुनः लघून् नरान् राजा अग्रानीकेषु योधयेत् ॥

भा० । ता० । कुरुक्षेत्रमें उत्पन्न और मत्स्य (विराटदेश) देशमें निवासी–और पंचाल (कांन्यकुब्ज और अहिच्छत्र) देशमें उत्पन्न–और शूरसेन (मथुरा) देशमें उत्पन्न–और जिनका पृथु (लम्बा) और लघु शरीरहो चाहे वे उक्तदेशोंसे अन्यदेशमें भी उत्पन्नहों–इतने योधाओंसे सेनाके अग्रभागमें युद्धकरावै १९३ ॥

प्रहर्षयेद्बलंव्यूह्यतांश्चसम्यक्परीक्षयेत्। चेष्टाश्चैवविजानीयादरीन्योधयतामपि १९४

प० । प्रहर्षयेत् बलं व्यूह्य तान् च सम्यक् परीक्षयेत् चेष्टाः च एव विजानीयात् अरीन् योधयतां अपि ॥

यो० । राजा बलं व्यूह्य प्रहर्षयेत् – चपुनः तान् योधान् सम्यक् परीक्षयेत् – चपुनः अरीन् योधयतां अपि स्वयोधानां चेष्टाः विजानीयात् ॥

भा० । सेनाको रचकर योधाओंकी प्रसन्नताकरै और उनयोधाओंकी भलीप्रकार परीक्षाकरै और शत्रुओंकेसंग लड़तेहुयोंकी चेष्टाओंको पहचानै ॥

ता० । अपनी सेनाका व्यूहरचकर सेनाके योधाओंको इसप्रकार प्रोत्साहितकरै (उत्साह दिलावै) कि तुमको जयहोनेपर धर्मकालाभ और सन्मुख मरनेपर स्वर्गकीप्राप्ति और पलायन (भाजना) करनेपर स्वामीके पापका ग्रहण और अप्रसन्नता और नरक में गमन–होगा–और उनयोधाओंकी इसप्रकार परीक्षाकरै कि किसप्रकारसे प्रसन्नहोतेहैं और कैसे क्रोधहोतेहैं–और शत्रुओंके संग युद्धकरतेहुये अपने योधाओंकी चेष्टा (आचरण) ओंकोजानै १९४ ॥

उपरुध्यारिमासीतराष्ट्रंचास्योपपीडयेत्। दूषयेच्चास्यसततंयवसान्नोदकेन्धनम् १९५॥

प० । उपरुध्य अरिं आसीत राष्ट्रं च अस्य उपपीडयेत् दूषयेत् च अस्य सततं यवसान्नोदकेन्धनम् ॥

यो० । राजा अरिं उपरुध्य आसीत — चपुनः अस्य (शत्रोः) राष्ट्रं उपपीडयेत् चपुनः अस्य यवसान्नोदकेन्धनं दूषयेत् — विषादिमेलनेनेतिशेषः ॥

भा० । ता० । दुर्गमें अथवा विना दुर्गबैठे शत्रुको चारोंओर से रोककर राजाबैठे और इस शत्रु के देशको पीडादे (उजाड़दे) और शत्रुके घास अन्न जल इंधनआदि सदैव निंदित वस्तु मिला२ कर दूषितकरै (बिगाड़दे) १९५ ॥

भिन्द्याच्चैवतडागानिप्राकारपरिखास्तथा । समवस्कन्दयेच्चैनंरात्रौवित्रासयेत्तथा १९६॥

प० । भिंद्यात् च एव तडागानि प्राकारपरिखाः तथा समवस्कंदयेत् च एनं रात्रौ वित्रासयेत् तथा ॥

यो० । चपुनः तडागानि तथा प्राकारपरिखाः भिंद्यात् — चपुनः एनं (शत्रुं) समवस्कंदयेत् — तथा रात्रौ वित्रासयेत् ॥

भा० । ता० । शत्रुके जीवनके उपाय तालाव और दुर्गकी परिखा (खाई) इनका भेदन करै अर्थात् मिट्टिआदिको भरके शुष्ककरदे — फिर शत्रुको निःशंकहोकर भलीप्रकार दवाले और रात्रिके विषे कुत्सित ढक्काआदिके शब्दसे दुःखीकरै १९६ ॥

उपजप्यानुपजपेद्बुध्येतैवचतत्कृतम् । युक्तेचदैवेयुध्येतजयप्रेप्सुरपेतभीः १९७॥

प० । उपजप्यान् उपजपेत् बुध्येत एव च तत्कृतम् युक्ते च दैवे युध्येत जयप्रेप्सुः अपेतभीः ॥

यो० । राजा उपजप्यान् उपजपेत — चपुनः तत्कृतं बुध्येत एव — चपुनः जयप्रेप्सुः अपेतभीः राजा दैवे युक्तेसति युध्येत ॥

भा० । ता० । उपजाप (भेद) करनेके योग्य शत्रु वंशके राज्याभिलाषी और मंत्री आदि का भेद (फोड़ना) करै — और भिन्न कियेहुये उन मंत्रियोंकी चेष्टाको अवश्यजाने कि ये मेरे अनुकूल चल रहे हैं अथवा अपने स्वामीके — और जयका अभिलाषी राजा — शुभ ग्रहकी दशा आदि से शुभ दैव (अच्छा मुहूर्त) में निडरहोकर युद्धकरै १९७ ॥

साम्नादानेनभेदेनसमस्तैरथवापृथक् । विजेतुंप्रयतेतारीन्नयुद्धेनकदाचन १९८ ॥

प० । साम्ना दानेन भेदेन समस्तैः अथवा पृथक् विजेतुं प्रयतेत अरीन् न युद्धेन कदाचन ॥

यो० । साम्ना दानेन भेदेन — समस्तैः अथवा पृथक् अरीन् विजेतुं राजा प्रयतेत — युद्धेन विजेतुं कदाचन न प्रयतेत ॥

भा० । ता० । प्रीति — आदर सत्कार दिखाने — हित कहने आदि रूप शांतिसे — अथवा हाथी अश्व रथ द्रव्य आदिके देनेसे — और राजाकी प्रजा और राजाके अनुयायी जो राज्यके अभिलाषी उनके भेदसे — और ये साम आदि सबहों चाहे एक२ हो — ही शत्रुओंके जीतनेका यत्नकरै और युद्धसे जीतनेकी इच्छा कभी भी न करे १९८ ॥

अनित्योविजयोयस्माद्दृश्यतेयुध्यमानयोः । पराजयश्चसंग्रामेतस्माद्युद्धंविवर्जयेत् १९९

प० । अनित्यः विजयः यस्मात् दृश्यते युध्यमानयोः पराजयः च संग्रामे तस्मात् युद्धं विवर्जयेत् ॥

यो० । यस्मात् संग्रामे युद्ध्यमानयोः राज्ञोः विजयः चपुनः पराजयः अनित्यः दृश्यते तस्मात् राजायुद्धं विवर्जयेत् ॥

भा० । ता० । जिससे संग्राम युद्धकरतेहुये दोनों राजाओंका विजय और पराजय अनित्य दीखताहै क्योंकि कभी दैवगति अल्पसेनाके स्वामीका विजय और अधिक सेना के स्वामी का पराजय होजाताहै तिससे राजा यदि अन्य सामआदि उपायोंसे कार्यबने तो युद्धको विशेषकर वर्जदे १९९ ॥

त्रयाणामप्युपायानांपूर्वोक्तानामसम्भवे । तथायुद्ध्येतसंपन्नोविजयेतरिपून्यथा २०० ॥

प० । त्रयाणाँ अँपि उपायानाँ पूर्वोक्तानाँ असंभवे तथाँ युद्ध्येतँ संपन्नः विजयेतँ रिपून् यथाँ ॥

यो० । पूर्वोक्तानां त्रयाणां अपि उपायानां असंभवे सति संपन्नः राजा तथा युद्ध्येत यथा रिपून् विजयेत ॥

भा० । यदि पूर्वोक्त तीनों उपाय असंभवहोयँ तो-यत्नवाला राजा तिसप्रकार युद्धकरै जैसे शत्रुओंका विजयकरै ॥

ता० । यदि पूर्वोक्त तीनों (साम दाम भेद) उपायोंका असंभवहो (न बनसकें) यतो जय पराजय के सन्देह में भी सम्पन्नहुआ (बड़ेयत्नसे) उसप्रकारसे सावधान होकर युद्धकरै जिस प्रकार शत्रुओंकाविजयकरै क्योंकि जयमें धनकालाभ और सन्मुख मरनेपर स्वर्गकी प्राप्तिहोती है-और जो शत्रु के पराजय निश्चय से सन्देहहोय तो युद्धमें से भाग जानाही श्रेष्ठ है क्योंकि आगे मनुजीही कहेंगे कि अपने आत्मा की सदैव रक्षाकरनी-यह गोविंदराज और मेधातिथि कहतेहैं परंतु यह नरकका साधनहोनेसे अनुचितहै २०० ॥

जित्वासंपूजयेद्देवान्ब्राह्मणांश्चैवधार्मिकान्।प्रदद्यात्परिहारांश्चख्यापयेदभयानिच२०१

प० । जित्वाँ संपूजयेतँ देवान् ब्राह्मणान् चँ एवँ धार्मिकान् प्रदद्यातँ परिहारान् चँ ख्यापयेतँ अभयानि चँ ॥

यो० । राजा-जित्वा देवान् चपुनः धार्मिकान् ब्राह्मणान् पूजयेत्-चपुनः परिहारान् (पारितोषिकान्) प्रदद्यात्-चपुनः अभयानि ख्यापयेत् ॥

भा० । राजा जीतकर देवता और धार्मिक ब्राह्मणोंकापूजनकरै और परिहारों को दे और सबको अभय विदित करै ॥

ता० । शत्रुके देशका पराजयकरके राजा वहां जो देवताहों उनका और धार्मिक ब्राह्मणोंका सुवर्णआदि का दान और संमानआदि से पूजनकरै और यह पूजन भी इस याज्ञवल्क्य के वचनानुसार उसीद्रव्य के एकभागमेंसे करै जो शत्रुके पराजयसे मिलाहो कि जयसे संचयकिये हुये द्रव्यको ब्राह्मणोंकोदेने और प्रजाको अभयदानसे अधिक और राजाओंका उत्तमधर्म नहीं है और उस देश के निवासियोंको ये परिहार (पारितोषिक) दे कि मैंने देवता और ब्राह्मणों के लिये इतनाद्रव्य दियाहै और यह अभय उसदेश में विदितकरै कि अपने स्वामीकी भक्तिसे जिनमनुष्योंने हमारा अपकार (अपमान) कियाहै वह अपराध हमने क्षमाकिया अब वे सब निर्भयहुये अपने २ व्यापार को करैं २०१ ॥

---

१ नातःपरतरोधर्मोनृपाणांयद्रणार्जितम् विप्रेभ्योदीयतेद्रव्यं प्रजाभ्यश्चाभयंसदा ॥

सर्वेषांतुविदित्वैषांसमासेनचिकीर्षितम् । स्थापयेत्तत्रतद्वंश्यंकुर्याच्चससमक्रियाम् २०२

प० । सर्वेषां तु विदित्वा एषां समासेन चिकीर्षितम् स्थापयेत् तत्र तद्वंश्य कुर्यात् च सः समक्रियाम् ॥

यो० । एषां सर्वेषां समासेन चिकीर्षितं विदित्वा सः (राजा) तत्र (राजसिंहासने) तद्वंश्यं स्थापयेत् — चपुनः समक्रियां (नियमं) कुर्यात् ॥

भा० । ता० । इन सब (शत्रु और उसके मंत्री) के अभिप्राय (कर्त्तव्य) को संक्षेपसे जानकर—राजसिंहासनपर उसीराजा के वंश के किसी मनुष्यका अभिषेककरै और यह नियमकरदे तुम यहकरियो और यह मतकरियो २०२ ॥

प्रमाणानिचकुर्वीततेषांधर्म्यान्यथोदितान् । रत्नैश्चपूजयेदेनंप्रधानपुरुषैःसह २०३ ॥

प० । प्रमाणानि च कुर्वीत तेषां धर्म्यान् यथोदितान् रत्नैः च पूजयेत् एनं प्रधानपुरुषैः सह ॥

यो० । तेषां धर्म्यान् यथोदितान प्रमाणानि कुर्वीत — चपुनः प्रधानपुरुषैः सह एनं (राजानं) रत्नैः पूजयेत् ॥

भा० । ता० । और शत्रु के देश के मनुष्यों के धर्मके अनुकूल और शास्त्रोक्त आचरणों को प्रमाणकरादे—और अभिषेक किये मुख्य २ मंत्रियों समेत इस राजा का रत्नआदि के दान से पूजनकरै २०३ ॥

आदानमप्रियकरंदानंचप्रियकारकम् । अभीप्सितानामर्थानांकालेयुक्तंप्रशस्यते २०४

प० । आदानं अप्रियकरम् दानं च प्रियकारकम् अभीप्सितानां अर्थानां काले युक्तं प्रशस्यते ॥

यो० । अभीप्सितानां — अर्थानां अप्रियकरं आदानं चपुनः प्रियकरं दानं कालयुक्तं बुधैः प्रशस्यते ॥

भा० । ता० । अपनेको वाञ्छित द्रव्योंका आदान अप्रसन्नता और दान प्रसन्नताका कारण होताहै परंतु समय २ परही आदान और दानकी पंडितजन प्रशंसाकरतेहैं—इससे जयके अनंतर उस शत्रु राजाकी अवश्य पूजाकरै २०४ ॥

सर्वंकर्मेदमायत्तंविधानेदैवमानुषे । तयोर्दैवमचिन्त्यंतुमानुषेविद्यतेक्रिया २०५ ॥

प० । सर्वं कर्म इदं आयत्तं विधाने दैवमानुषे तयोः दैवं अचिन्त्यं तु मानुषे विद्यते क्रिया ॥

यो० । सर्वं इदं कर्म दैव मानुषविधाने आयत्तं अस्ति — तयोः (दैवमानुषविधानयोः) दैवं अचिंत्यं भवति — मानुषे क्रिया विद्यते (अस्ति) ॥

भा० । ता० । संपूर्ण यह कर्म (मनुष्य का कर्त्तव्य) दैव और मानुष कर्म की विधिके आधीन है और पूर्व जन्म के पुण्य और पापको दैव कहतेहैं और मनुष्य के व्यापार को मानुष कर्म कहतेहैं—तिन दोनों दैव और मानुष विधियोंमें दैव तो जानने के अयोग्यहै और मनुष्य कर्म के जानने की तो क्रिया होसक्तीहै—इससे राजा मनुष्य के कर्मानुसारही यत्नकरै २०५ ॥

सहवापिव्रजेद्युक्तःसंधिंकृत्वाप्रयत्नतः । मित्रंहिरण्यंभूमिंवासंपश्यंस्त्रिविधंफलम् २०६ ॥

प० । सह वा अपि व्रजेत् युक्तः संधिं कृत्वा प्रयत्नतः मित्रं हिरण्यं भूमिं वा संपश्यन् त्रिविधं फलम् ॥

यो० । युक्तः राजा प्रयत्नतः संधिं कृत्वा-मित्रं — हिरण्यं- वा भूमिं — एतत् त्रिविधं फलं संपश्यन्सन् सहएव व्रजेत् (गच्छेत्) ॥

भा० । ता० । पूर्वोक्त प्रकारसे शत्रुके संग युद्धकरै—अथवा उस शत्रुकोही मित्रता वा उसकी दीहुई द्रव्य और भूमिकी प्राप्ति इस तीन प्रकार के फलको देखता हुआ राजा उसके संग संधि (मित्रता) करके यत्नसे गमन करै २०६ ॥

पार्ष्णिग्राहंचसंप्रेक्ष्यतथाक्रन्दंचमण्डले।मित्रादथाप्यमित्राद्वायात्राफलमवाप्नुयात् २०७

प० । पार्ष्णिग्राहं चँ संप्रेक्ष्यँ तथाँ आक्रंदं चँ मंडले मित्रात् अथँ अँपि अमित्रात् वाँ यात्रा-फलं अवाप्नुयात् ॥

यो० । पार्ष्णिग्राहं तथा मंडले आक्रंदं संप्रेक्ष्य (दृष्ट्वा) मित्रात् अथ अपि अमित्रात् वा यात्राफलं राजा अवाप्नुयात् (गृह्णीयात) ॥

भा० । पार्ष्णिग्राह और मंडलमें आक्रंद इन दोनोंको देखकर यात्राकरै और मित्र अथवा शत्रुसे यात्राके फलको ग्रहणकरै (ले) ॥

ता० । शत्रुके सन्मुख गमन करनेवाले विजिगीषु राजाका जो पृष्ठवर्ती (पीठपर रहनेवाला) जो राजा देशपर चढ़ाईकरनाचाहे उसे पार्ष्णिग्राहकहतेहैं और उसका नियामक (प्रेरक) जोराजा वह आक्रंदहोताहै इन दोनोंको मंडलमें भलीप्रकार देखकर राजा गमनकरै और अपनी यात्राके फल (प्रयोजन) को मित्रसे अथवा शत्रुसे ग्रहणकरै अर्थात् यात्राके फल लेनेमें शत्रु वा मित्रको न देखै—इस प्रकार करनेवाला राजा दोषका भागी नहींहोता २०७ ॥

हिरण्यभूमिसंप्राप्त्यापार्थिवोनतथैधते। यथामित्रंध्रुवंलब्ध्वाकृशमप्यायतिक्षमम् २०८

प० । हिरण्यभूमिसंप्राप्त्याँ पार्थिवः नँ तथाँ एधते यथाँ मित्रं ध्रुवं लब्ध्वाँ कृशं अँपि आयति-क्षमम् ॥

यो० । पार्थिवः हिरण्यभूमिसंप्राप्त्या तथा न एधते — यथा ध्रुवं आयतिक्षमं कृशं अपि मित्रं लब्ध्वा एधते ॥

भा० । ता० । सुवर्ण और पृथ्वीके लाभहोनेपर राजा उस प्रकार वृद्धिको प्राप्त नहींहोताहै—जिस प्रकार ऐसे मित्रके मिलनेपर होताहै कि जो संप्रति कृश (अल्पबल) भी हो और आगामी समयमें बढ़ने वाला हो और जो निश्चलहो अर्थात् मित्रतासे चलायमान न हो २०८ ॥

धर्मज्ञंचकृतज्ञंचतुष्टप्रकृतिमेवच । अनुरक्तंस्थिरारम्भंलघुमित्रंप्रशस्यते २०९ ॥

प० । धर्मज्ञं चँ कृतज्ञं चँ तुष्टप्रकृतिं एवँ चँ अनुरक्तं स्थिरारंभं लघु मित्रं प्रशस्यते ॥

यो० । धर्मज्ञं — कृतज्ञं — चपुनः तुष्टप्रकृतिं — अनुरक्तं — स्थिरारंभ — लघु — मित्रं — प्रशस्यते ॥

भा० । ता० । धर्मका और कियेहुये उपकारका ज्ञाता (जाननेवाला) और सदैवप्रसन्न—और अपनेमें प्रीतिवाला—और जिसके कार्योंका प्रारंभ स्थिरहो—ऐसा मित्र चाहे लघु (तुच्छ) भी हो तो भी उत्तम होताहै २०९ ॥

प्राज्ञंकुलीनंशूरंचदक्षंदातारमेवच । कृतज्ञंधृतिमन्तंचकष्टमाहुररिंबुधाः २१० ॥

प० । प्राज्ञं कुलीनं शूरं चँ दक्षं दातारं एवँ चँ कृतज्ञं धृतिमंतं चँ कष्टं आहुः अरिं बुधाः ॥

यो० । प्राज्ञं – कुलीनं – शूरं दक्षं चपुनः दातारं – कृतज्ञं चपुनः धृतिमंतं – आरिं बुधाः कष्टं आहुः ॥

भा० । ता० । ऐसे शत्रुको पंडितजन कष्ट (जीतनेके अयोग्य) कहतेहैं कि जो पंडित (विद्वान्)हो. कुलीन–शूरवीर–चतुर–दाता–उपकारोंका ज्ञाता–और सुख और दुःखमें धीरहो २१० ॥

आर्यतापुरुषज्ञानंशौर्यंकरुणवेदिता । स्थौललक्ष्यंचसततमुदासीनगुणोदयः २११ ॥

प० । आर्यता पुरुषज्ञानं शौर्यं करुणवेदिता स्थौललक्ष्यं च सततं उदासीनगुणोदयः ॥

यो० । आर्यता – पुरुषज्ञानं शौर्यं करुणवेदिता – चपुनः सततं स्थौललक्ष्यं – एषः उदासीनगुणोदयः (अस्ति) ॥

भा० । साधु–पुरुष विशेषका ज्ञान–पराक्रमी–दयालु–बहुत दाता–ये उदासीन राजाके गुण हैं–ऐसे उदासीन राजाके आश्रयसे विद्वान् आदि शत्रुके संग भी युद्धकरे ॥

ता० । साधुता (श्रेष्ठ मनुष्य होना) और पुरुष विशेषकी पहचान–और पराक्रमी–और कृपालुता और सदैव स्थूललक्ष्यहोना अर्थात् बहुत देना अथवा स्थूललक्ष्य उसेकहतेहैं जो अपने प्रयोजनमें सूक्ष्म विचार न करना यह मेधातिथि और गोविंदराजका अर्थ ठीक नहींहै–ये उदासीनके गुणोंकी सामग्रीहैं–तिससे ऐसे उदासीन राजाके आश्रयसे–पंडित आदि शत्रुके संग भी युद्धकरे २११ ॥

क्षेम्यांसस्यप्रदांनित्यंपशुवृद्धिकरीमपि । परित्यजेन्नृपोभूमिमात्मार्थमविचारयन् २१२ ॥

प० । क्षेम्यां सस्यप्रदां नित्यं पशुवृद्धिकरीं अपि परित्यजेत् नृपः भूमिं आत्मार्थं अविचारयन् ॥

यो० । क्षेम्यां – नित्यं सस्यप्रदां – पशुवृद्धिकरीं अपि भूमिं नृपः अविचारयन् सन आत्मार्थं परित्यजेत् ॥

भा० । ता० । आरोग्यआदि कल्याणके योग्य और जलआदिकी अनुकूलतासे सदैव सस्य (घास अन्न) आदिकी देनेवाली और अतएव पशुओंकी बढ़ानेवाली भी–भूमिको राजा पूर्वापर विचारको छोड़कर अपनी रक्षाकेलिये छोड़दे अर्थात् अपनी रक्षाको मुख्यसमझे २१२ ॥

आपदर्थंधनंरक्षेद्दारान्रक्षेद्धनैरपि । आत्मानंसततंरक्षेद्दारैरपिधनैरपि २१३ ॥

प० । आपदर्थं धनं रक्षेत् दारान् रक्षेत् धनैः अपि आत्मानं सततं रक्षेत् दारैः अपि धनैः अपि ॥

यो० । आपदर्थं धनंरक्षेत् – धनैः अपि दारान् रक्षेत् – दारैः धनैः अपि आत्मानं सततं रक्षेत् ॥

भा० । ता० । मनुष्य आपत्ति (दुःख) की निवृत्तिकेलिये धनकी और धनोंसे अर्थात् धनके व्ययसे दारा (स्त्रियों) ओंकी–और स्त्री और धन इनको भी त्यागकर अपने आत्माकी निरंतर रक्षाकरे अर्थात् सबसे अधिक अपने देहकी रक्षाकरे क्योंकि इसश्रुति[1] में देहकीरक्षा सबसे कर्त्तव्य है २१३ ॥

सहसर्वाःसमुत्पन्नाःप्रसमीक्ष्यापदोभृशम् । संयुक्तांश्चवियुक्तांश्चसर्वोपायान्सृजेद्बुधः २१४

प० । सह सर्वाः समुत्पन्नाः प्रसमीक्ष्य आपदः भृशम् संयुक्तान् च वियुक्तान् च सर्वोपायान् सृजेत् बुधः ॥

यो० । सर्वाः आपदः सह समुत्पन्नाः भृशं प्रसमीक्ष्य – संयुक्तान् चपुनः वियुक्तान् सर्वोपायान् बुधः सृजेत ॥

---

१ सर्वत एवात्मानं गोपायीत ॥

भा० ता० । संपूर्ण (कोशकाक्षय–प्रकृतिकाकोप मित्रको दुःखआदि) अत्यन्त आपत्तियों को एकसमयमेंही पैदाहुई देखकर–इकट्ठे और पृथक् २ संपूर्ण उपायोंको शास्त्रके जाननेवाला पुरुष करै २१४ ॥

उपेतारमुपेयंचसर्वोपायांश्चकृत्स्नशः । एतत्त्रयंसमाश्रित्यप्रयतेतार्थसिद्धये २१५ ॥

प० । उपेतारं उपेयं च सर्वोपायान् च कृत्स्नशः एतत् त्रयं समाश्रित्य प्रयतेत अर्थसिद्धये ॥

यो० । उपेतारं (आत्मानं) चपुनः उपेयं (प्राप्तव्यं)–चपुनः कृत्स्नशः सर्वोपायान् (सामादीन्) एतत्त्रयं (उपेत्रादि) समाश्रित्य अर्थसिद्धये राजा प्रयतेत ॥

भा० । ता० । अपनी आत्मा और प्राप्तहोने योग्य (शत्रु)–और सामआदि संपूर्ण उपाय इनतीनोंका आश्रय लेकर अर्थात् तीनोंको यथार्थ विचारकर प्रयोजन सिद्धि के लिये राजा यत्नकरै २१५ ॥

एवंसर्वमिदंराजासहसंमन्त्र्यमन्त्रिभिः।व्यायम्याप्लुत्यमध्याह्नेभोक्तुमन्तःपुरंविशेत् २१६

प० । एवं सर्वं इदं राजा सह संमंत्र्य मंत्रिभिः व्यायम्य आप्लुत्य मध्याह्ने भोक्तुं अन्तःपुरं विशेत् ॥

यो० । एवं इदं सर्वं (राजवृत्तं) मंत्रिभिः सह राजा संमंत्र्य व्यायम्य चपुनः मध्याह्ने आप्लुत्य भोक्तुं अंतःपुरं विशेत् ॥

भा० । ता० । इस उक्तप्रकारसे संपूर्ण राज्यके वृत्तांतको मंत्रियोंके संग विचारकर और आयुधआदिके अभ्याससे व्यायाम करके और मध्याह्नमें स्नानआदि नित्यकर्मोंको करके भोजन करने के लिये अन्तःपुर (रनिवास) में प्रवेशकरै २१६ ॥

तत्रात्मभूतैःकालज्ञैरहार्यैःपरिचारकैः । सुपरीक्षितमन्नाद्यमद्यान्मन्त्रैर्विषापहैः २१७॥

प० । तत्र आत्मभूतैः कालज्ञैः अहार्यैः परिचारकैः सुपरीक्षितं अन्नाद्यं अद्यात् मंत्रैः विषापहैः ॥

यो० । तत्र (अन्तःपुरे) आत्मभूतैः कालज्ञैः अहार्यैः परिचारकैः सुपरीक्षितं अन्नाद्यं विषापहैः मंत्रैः राजा अद्यात् (भक्षयेत्) ॥

भा० । ता० । उस रनिवास में राजा जाकर अपनेसमान और भोजनके समयके ज्ञाता और अव्यभिचारी जो सूपकार (रसोइया) आदिकोंने भलीप्रकारसेही परीक्षा जिसकी अर्थात् चकोरआदि के दिखानेसे निर्विष अन्नका निश्चय करके क्योंकि विषसहित अन्नके देखनेसे चकोरके नेत्र रक्त होजातेहैं–ऐसे अन्नको विषसे दूरकरनेवाले मंत्रों से अन्नको अभिमंत्रित करके अन्नका भोजन करै २१७ ॥

विषघ्नैरगदैश्चास्यसर्वद्रव्याणियोजयेत् । विषघ्नानिचरत्नानिनियतोधारयेत्सदा २१८

प० । विषघ्नैः अगदैः च अस्य सर्वद्रव्याणि योजयेत् विषघ्नानि च रत्नानि नियतः धारयेत् सदा ॥

यो० । अस्य राज्ञः सर्वद्रव्याणि (भोज्यानि) विषघ्नैः अगदैः योजयेत् – चपुनः विषघ्नानि रत्नानि नियतःसन् राजा सदा धारयेत् ॥

भा० । ता० । विषके नष्टकरनेवाली ओषधियोंसे इस राजाके खाने योग्य सब पदार्थों को युक्त करै–और राजा विषके नष्टकरनेवाले संपूर्ण रत्नोंको सदैव धारणकरै २१८ ॥

परीक्षिताःस्त्रियश्चैनंव्यजनोदकधूपनैः । वेषाभरणसंशुद्धाःस्पृशेयुःसुसमाहिताः२१९॥

प० । परीक्षिताः स्त्रियः च एनं व्यजनोदकधूपनैः वेषाभरणसंशुद्धाः स्पृशेयुः सुसमाहिताः ॥

यो० । चपुनः एनं (राजानं) परीक्षिताः वेषाभरणसंशुद्धाः सुसमाहिताः स्त्रियः व्यजनोदकधूपनैः स्पृशेयुः (परिचरेयुः) ॥

भा० । ता० । गुप्त दूतोंके द्वारा की है परीक्षा जिनकी और गुप्त शस्त्र और विषसे लिये हुये भूषणकी शंकासे अर्पण कियेहैं वेष और भूषण जिन्होंने और सावधानहै मन जिनका ऐसी स्त्री व्यजन (चवँर) और जल (स्नान आदिमें) और धूप आदिसे इस राजा की परिचर्या (सेवा) करै २१९ ॥

एवंप्रयत्नंकुर्वीतयानशय्यासनाशने । स्नानेप्रसाधनेचैवसर्वालंकारकेषुच २२० ॥

प० । एवं प्रयत्नं कुर्वीत यानशय्यासनाशने स्नाने प्रसाधने च एव सर्वालंकारकेषु च ॥

यो० । यान शय्यासनाशने – स्नाने चपुनः प्रसाधने चपुनः सर्वालंकारकेषु – राजा एवं प्रयत्नं कुर्वीत ॥

भा० । ता० । इसी प्रकार परीक्षा आदिके प्रयत्नको राजा–गमन–शय्या–आसन–भोजन–स्नान–अनुलेपन (चंदन आदिसे) और संपूर्ण अलंकार आदिकोंमें भी–करै २२० ॥

भुक्तवान्विहरेच्चैवस्त्रीभिरन्तःपुरेसह । विहृत्यतुयथाकालंपुनःकार्याणिचिन्तयेत्२२१॥

प० । भुक्तवान् विहरेत् च एव स्त्रीभिः अंतःपुरे सह विहृत्य तु यथाकालं पुनः कार्याणि चिंतयेत् ॥

यो० । भुक्तवान् राजा स्त्रीभिःसह अंतः पुरे विहरेत – तुपुनः यथाकालं विहृत्य पुनः कार्याणि चिंतयेत् ॥

भा० । ता० । कियाहै भोजन जिसने ऐसा राजा रनिवासमें स्त्रियोंके संग विहारकरै और यथाकाल (दिनके सप्तम७भागमें) वहांपर विहारको करके दिनके अष्टम भागमें फिर अपने कार्योंकी चिंताकरै २२१ ॥

अलंकृतश्चसंपश्येदायुधीयंपुनर्जनम् । वाहनानिचसर्वाणिशस्त्राण्याभरणानिच२२२॥

प० । अलंकृतः च संपश्येत् आयुधीयं पुनः जनम् वाहनानि च सर्वाणि शस्त्राणि आभरणानि च ॥

यो० । पुनः अलंकृतः राजा चपुनः आयुधीयंजनं – चपुनः सर्वाणि वाहनानि – चपुनः शस्त्राणि आभरणानि – संपश्येत् ॥

भा० । ता० । फिर राजा–अलंकृत (शोभित) होकर आयुधसे जीनेवाले जन और संपूर्ण वाहन (सवारी) और शस्त्र और भूषण इन सबका अवलोकनकरै (देखै) २२२ ॥

संध्यांचोपास्यशृणुयादन्तर्वेश्मनिशस्त्रभृत् ।
रहस्याख्यायिनांचैवप्रणिधीनांचचेष्टितम् २२३ ॥
गत्वाकक्षान्तरंत्वन्यत्समनुज्ञाप्यतंजनम्।प्रविशेद्भोजनार्थंचस्त्रीवृतोऽन्तःपुरंपुनः २२४

प० । संध्यां च उपास्य शृणुयात् अंतर्वेश्मनि शस्त्रभृत् रहस्याख्यायिनां च एव प्रणिधीनां च चेष्टितम् ॥

प० । गत्वा कक्षांतरं तु अन्यत् समनुज्ञाप्य तं जनं प्रविशेत् भोजनार्थं च स्त्रीवृतः अंतःपुरं पुनः ॥

यो० । संध्यां उपास्य (कृत्वा) शस्त्रभृत् राजा — रहस्याख्यायिनां चपुनः प्रणिधीनां चेष्टितं अंतर्वेश्मनि अन्यत् कक्षांतरं गत्वा — शृणुयात् — ततः तंजनं समनुज्ञाप्य स्त्रीवृतः राजा भोजनार्थं पुनः अंतःपुरं प्रविशेत ॥

भा० । ता० । फिर राजा संध्या समय की ईश्वरकी उपासना करके घरके भीतर किसी अन्य कक्षांतर (गुप्तस्थान) में जाकर और शस्त्रोंको धारकर रहस्य (गुप्तवार्त्ता) कहनेवाले दूतों के चेष्टित (कर्त्तव्य)—को सुनै—फिर उन दूतोंको आज्ञादेकर स्त्रियोंसमेत राजा भोजनके लिये रनिवासमें प्रवेशकरै २२३ । २२४ ॥

तत्रभुक्त्वापुनःकिंचित्तूर्यघोषैःप्रहर्षितः । संविशेत्तुयथाकालमुत्तिष्ठेच्चगतक्लमः २२५ ॥

प०।तत्र भुक्त्वा पुनः किंचित् तूर्यघोषैः प्रहर्षितः संविशेत् तु यथाकालं उत्तिष्ठेत् च गतक्लमः ॥

यो० । तत्र (अंतःपुरे) तूर्यघोषैः प्रहर्षितः राजा किंचित् भुक्त्वा यथाकालं संविशेत् चपुनः गतक्लमः सन् उत्तिष्ठेत (जागृयात्) ॥

भा० । ता० । उस अंतःपुरमें तूर्य (बाजा) के शब्दों से प्रसन्नहुआ राजा यत्किंचित् (थोड़ा) भोजन करके शयनके समय (४ घड़ी रात्रिके पीछे) शयनकरै और विश्रामको करके रात्रिके पिछले प्रहरमें उठै (जगै) २२५ ॥

एतद्विधानमातिष्ठेदरोगःपृथिवीपतिः । अस्वस्थःसर्वमेतत्तुभृत्येषुविनियोजयेत् २२६ ॥
इतिमानवेधर्मशास्त्रेभृगुप्रोक्तायांसंहितायांराजधर्मोनामसप्तमोऽध्यायः ७ ॥

प० । एतत् विधानं आतिष्ठेत् अरोगः पृथिवीपतिः अस्वस्थः सर्वं एतत् तु भृत्येषु विनियोजयेत् ॥

यो० । अरोगः पृथिवीपतिः एतत् विधानं आतिष्ठेत् (स्वयंकुर्यात्) अस्वस्थः राजा एतत् सर्वं भृत्येषु विनियोजयेत (समर्पयेत) ॥

भा० । ता० । अरोग—(स्वस्थ) राजा इस प्रजाकी रक्षा आदि विधिको स्वयंकरै और अस्वस्थ(रोगी)राजा अर्थात् रोगके समय इस संपूर्णविधिको योग्य और श्रेष्ठ मंत्रियोंको समर्पणकरदे २२६ ॥

इति मन्वर्थभास्करे सप्तमोऽध्यायः ७ ॥

अथअष्टमोऽध्यायः ॥

व्यवहारान्दिदृक्षुस्तुब्राह्मणैःसहपार्थिवः।मन्त्रज्ञैर्मन्त्रिभिश्चैवविनीतःप्रविशेत्सभाम् १॥

प० । व्यवहारान् दिदृक्षुः तु ब्राह्मणैः सह पार्थिवः मंत्रज्ञैः मंत्रिभिः च एव विनीतः प्रविशेत् सभां ॥

यो० । व्यवहारान् दिदृक्षुः पार्थिवः ब्राह्मणैः चपुनः मंत्रज्ञैः मंत्रिभिः सह विनीतः (सन्) सभां प्रविशेत् ॥

भा० । व्यवहारों के देखनेकी है इच्छा जिसकी ऐसा राजा ब्राह्मण और मंत्रके जाननेवाले मंत्रियों सहित विनीत होकर सभा में प्रवेशकरे ॥

ता० । इसप्रकार विपक्षी राजाओंसे प्रजाओं की रक्षाके द्वारा प्राप्तहुई है जीविका जिसको ऐसा राजा प्रजाओंके परस्पर विवादसे उत्पन्न दुःखकी निवृत्ति के लिये ऋण आदान आदि अठारह प्रकार के विवादमें परस्पर विरुद्ध है प्रयोजन जिनका ऐसे अर्थि प्रत्यर्थि (मदई मुदाइले) योंके वाक्यसे पैदाहुये संदेह का हरनेवाला जो विचाररूप व्यवहार उसके देखने की है इच्छा जिसकी ऐसा राजा क्योंकि इस कात्यायनके वचनानुसार धन आदि के संदेहको जो हरे उसीको व्यवहार कहतेहैं ब्राह्मण और मंत्रके जाननेवाले मंत्रियों सहित विनीतहोकर अर्थात् वाणी हस्त पाद आदि देहकी चपलताको छोड़कर क्योंकि जब राजा अविनीत (उद्धत)होताहै तो वादि प्रतिवादियों की बुद्धि नष्टहोनेसे वे यथार्थ नहीं कहसक्ते इससे तत्त्वनिर्णय नहीं होगा अर्थात् यथार्थ न्याय नहीं होगा इससे विनीत होकर सभा के बीच में राजा प्रवेशकरे और इस राजाके व्यवहारके देखनेका यहफलहै प्रजाओंकी परस्पर पीडाकी निवृत्ति और यथार्थ निर्णय से रक्षा और राजाको परलोकमें स्वर्गहोगा १ ॥

तत्रासीनःस्थितोवापिपाणिमुद्यम्यदक्षिणम् ।
विनीतवेषाभरणःपश्येत्कार्याणिकार्यिणाम् २ ॥

प० । तत्र आसीनः स्थितः वा अपि पाणिं उद्यम्य दक्षिणं विनीतवेषाभरणः पश्येत् कार्याणि कार्यिणां ॥

यो० । तत्र आसीनः वा स्थितः विनीतवेषाभरणः राजा दक्षिणंपाणिं उद्यम्य कार्यिणां कार्याणि पश्येत् ॥

भा० । ता० । उससभामें बड़े कार्यमें बैठा छोटेकार्य में खड़ाहुवा नहीं उद्धत है वेष–और अलंकार जिसका ऐसा राजा दाहनी भुजाको उठाकर कार्य (मुकद्दमे) वाले कार्योंका विचार करे २ ॥

प्रत्यहंदेशदृष्टैश्चशास्त्रदृष्टैश्चहेतुभिः । अष्टादशसुमार्गेषुनिबद्धानिपृथक्पृथक् ३ ॥

प० । प्रत्यहं देशदृष्टैः च शास्त्रदृष्टैः च हेतुभिः अष्टादशसु मार्गेषु निबद्धानि पृथक् पृथक् ॥

यो० । अष्टादशसुमार्गेषु पृथक् पृथक् निबद्धानि कार्याणि देशदृष्टैः चपुनः शास्त्रदृष्टैः हेतुभिः प्रत्यहं विचारयेत् ॥

१ विनानार्थेहसंदेहे हरणंहारउच्यते नानासंदेहहरणाद्व्यवहारइतिस्मृतः ॥

भा० । ता० । ऋणादानआदि अठारह प्रकारके मार्गोंमें पृथक् पृथक् बँधे (पड़े) हुये कार्योंको देशमेंदेख और शास्त्रमें देखेहुये अर्थात् साक्षिआदि हेतुओंसे प्रतिदिन विचारे ३ ॥

तेषामाद्यमृणादानंनिक्षेपोऽस्वामिविक्रयः । संभूयचसमुत्थानंदत्तस्यानपकर्मच ४ ॥

प०। तेषां आद्यं ऋणादानं निक्षेपः अस्वामिविक्रयः संभूय च समुत्थानं दत्तस्य अनपकर्म च॥

यो० । तेषां अष्टादशव्यवहाराणां आद्यं ऋणादानं निक्षेपः अस्वामिविक्रयः चपुनः संभूयसमुत्थानं चपुनः दत्तस्य अनपकर्म ज्ञेयम् ॥

भा० । ता० । उन अठारह प्रकार के व्यवहारों में पहिले ऋणादान है और वह इस नारद वचन के इहहोता है कि ऋणदेने योग्य नहीं देने योग्यहोता है और जिससे ऋण जिसप्रकार लियाहो लेने और देनेका जो व्यवहार ठहराहोय उसे ऋणादान कहते हैं और दूसरा निक्षेप अर्थात् अपनाधन दूसरेको अर्पण करना (सौंपदेना) तीसरा अस्वामिविक्रय अर्थात् दूसरे की चीज वेचदेना और चौथा इकट्ठे होकर (साझेमें) व्यवहार करना और पांचवां दियेहुये धनका अपात्रबुद्धि वा क्रोधसे ग्रहण करना ४ ॥

वेतनस्यैवचादानंसंविदश्चव्यतिक्रमः । क्रयविक्रयानुशयोविवादःस्वामिपालयोः ५ ॥
सीमाविवादधर्मश्चपारुष्येदण्डवाचिके । स्तेयंचसाहसंचैवस्त्रीसंग्रहणमेवच ६ ॥
स्त्रीपुंधर्मोविभागश्चद्यूतमाह्वयएवच । पदान्यष्टादशैतानिव्यवहारस्थिताविह ७ ॥

प० । वेतनस्य एव च अदानं संविदः च व्यतिक्रमः क्रयविक्रयानुशयः विवादः स्वामिपालयोः ॥

प० । सीमाविवादधर्मः च पारुष्ये दंडवाचिके स्तेयं च साहसं च एव स्त्रीसंग्रहणं एव च ॥

प० । स्त्रीपुंधर्मः विभागः च द्यूतं आह्वयः एव च पदानि अष्टादश एतानि व्यवहारस्थितौ इह ॥

यो० । वेतनस्य चपुनः अदानं चपुनः संविद् व्यतिक्रमः क्रयविक्रयानुशयः स्वामिपालयोर्विवादः चपुनः सीमाविवादधर्मः दंडवाचिके पारुष्ये चपुनः स्तेयं चपुनः साहसं चपुनः स्त्रीसंग्रहणं स्त्रीपुंधर्मः चपुनः विभागः द्यूतं — आह्वयः एतानि अष्टादशइह व्यवहारस्थितौ पदानि (भवंति) ॥

भा० । ता० । वेतन का न देना अर्थात् भृत्यकीभृति (नौकरी) न देना—और कीहुई व्यवस्थाको न करना और क्रयविक्रयका विवाद—स्वामिपशुपालका विवाद—सीमाकाविवाद—कठोरदंड—और कठोरवाणी—और चोरी—और बलसे दूसरेके धनको हरना—और स्त्रीको परपुरुषका संपर्क (संग) और स्त्री पुरुषकाधर्म—पिताआदिके धनका विभाग—और आह्वय द्यूत अर्थात् पक्षी और मेषादि प्राणियोंका युद्धकरानाये चारोंदलोकोंमें कहेहुये अठारह इस जगतमें व्यवहारकी प्रवृत्तिके स्थान हैं—अर्थात् इन अठारहोंमेंही मनुष्योंका वाद विवाद होताहै५—६—७॥

एषुस्थानेषुभूयिष्ठंविवादंचरतांनृणाम् । धर्मंशाश्वतमाश्रित्यकुर्यात्कार्यविनिर्णयम् ८ ॥

प० । एषु स्थानेषु भूयिष्ठं विवादं चरतां नृणां धर्मं शाश्वतं आश्रित्य कुर्यात् कार्यविनिर्णयं ॥

यो० । (राजा) एषु स्थानेषु भूयिष्ठं चरतां नृणां कार्यविनिर्णयं शाश्वतं धर्ममाश्रित्य कार्यविनिर्णयं कुर्यात् ॥

१ ऋणंदेयमदेयंच येनयत्रयथाचयत् दानग्रहणधर्माश्च तदृणादानमुच्यते ॥

भा० । ता० । इन अष्टादश व्यवहारके स्थानमें अनेकप्रकारका विवाद करतेहुये मनुष्यों के कार्यका विनिर्णय सनातनधर्मका अवलम्बन करिके राजाकरे और जो इन अठारहमें विवाद के स्थान नहींआयेहैं वे इस नारद वचन के अनुसार प्रकीर्णक कहातेहैं–क्योंकि इसश्लोकमें भूयिष्ठपद देनेसे बहुतसे विवादके स्थान (मनुने) सूचन कियेहैं ८ ॥

यदास्वयंनकुर्यात्तुनृपतिःकार्यदर्शनम् । तदानियुञ्ज्याद्विद्वांसंब्राह्मणंकार्यदर्शने ९ ॥

प० । यदा स्वयं न कुर्यात् तु नृपतिः कार्यदर्शनं तदा नियुंज्यात् विद्वांसं ब्राह्मणं कार्यदर्शने॥

यो० । यदा तु नृपतिः कार्यदर्शनं स्वयं न कुर्यात् तदा विद्वांसं ब्राह्मणं कार्यदर्शने नियुंज्यात ॥

भा० । ता० । जबराजा अन्यकार्यमें व्याकुल वा रोगआदिसे कार्योंको न देखसके तबकार्यों के देखनेमें विद्वान् ब्राह्मणको नियुक्तकरे ९ ॥

सोऽस्यकार्याणिसंपश्येत्सभ्यैरेवत्रिभिर्वृतः।सभामेवप्रविश्याग्र्यामासीनःस्थितएववा१०

प० । सः अस्य कार्याणि संपश्येत् सभ्यैः एव त्रिभिः वृतः सभां एव प्रविश्य अग्र्यां आसीनः स्थितः एव वा ॥

यो० । स विद्वान् ब्राह्मणः त्रिभिः सभ्यैः वृतःएव अग्र्यांसभांएवप्रविश्य आसीनः वा स्थितःएव सन् अस्य (राज्ञः) कार्याणि संपश्येत् ॥

भा० । ता० । वह विद्वान् ब्राह्मण तीनसभासदों समेत मुख्यसभा में प्रविष्ट होकर बैठकर अथवा खड़ाहोकर राजाके देखनेयोग्य कार्य्योंकोकरै अर्थात् चलताफिरता किसीकार्यको न देखे क्योंकि उससमय चित्त विक्षिप्त होता है १० ॥

यस्मिन्देशेनिषीदन्तिविप्रावेदविदस्त्रयः।राज्ञश्चाधिकृतोविद्वान्ब्रह्मणस्तांसभांविदुः११

प० । यस्मिन् देशे निषीदन्ति विप्राः वेदविदः त्रयः राज्ञः च अधिकृतः विद्वान् ब्रह्मणः ताम् सभां विदुः ॥

यो० । यस्मिन्देशे वेदविदःत्रयःविप्राः निषीदंति चपुनः राज्ञःअधिकृतः विद्वान्निषीदति बुधाःतांब्रह्मणःसभांविदुः ॥

भा० । ता० । जिसस्थान में वेदत्रयी के जाननेवाले और राजानेदियाहै अधिकार जिसको ऐसा विद्वान् ब्राह्मणटिकतेहैं उसराजाकी सभाको ब्रह्माकी सभाकेसमान विद्वान्जानतेहैं ११ ॥

धर्मोविद्धस्त्वधर्मेणसभांयत्रोपतिष्ठते । शल्यंचास्यनकृन्तन्तिविद्धास्तत्रसभासदः १२ ॥

प० । धर्मः विद्धः तु अधर्मेण सभां यत्र उपतिष्ठते शल्यं च अस्य न कृन्तन्ति विद्धाः तत्र सभासदः ॥

यो० । यत्र अधर्मेणविद्धः धर्मः सभां उपतिष्ठते तत्रसभासदः अधर्मेणविद्धाः सन्तः अस्य (धर्मस्य) शल्यं (अधर्मरूपं) न कृन्तन्ति (न दूरीकुर्वीत) ॥

भा० । जिसदेशमें अधर्मसे मिला धर्म सभामें टिकताहै उससभामें अधर्मसे विधेहुये सभासद धर्मकीपीडा (अधर्म) को दूर नहींकरसक्ते ॥

ता० । सभाशब्द का यहअर्थ है भानामप्रकाश के सहित जो वर्त्ते उसे सभाकहते हैं अर्थात्

१ नद्दष्टंयच्चपूर्वेषु सर्वंतत्स्यात्प्रकीर्णकं ॥

विद्वानों का समागम जहांहोय वही सभाहोतीहै जिससभामें सत्यबोलनेसे पैदाहुआ धर्म झूंठ बोलनेसे पैदाहुये अधर्म से पीडित होता है अर्थात् दोनों वादि विवादियों के मध्यमें एक सत्य बोलता है और एकझूंठ बोलता है उससे धर्म की पीडाकरनेवाले और अधर्म के शल्य (कांटे) से बिधेहुये सभासद धर्म के शल्य अधर्मको दूरनहींकरसक्ते क्योंकि वे आपही अधर्म से बिध जातेहैं १२ ॥

सभांवानप्रवेष्टव्यंवक्तव्यंवासमञ्जसम् । अब्रुवन्विब्रुवन्वापिनरोभवतिकिल्बिषी १३ ॥

प० । सभां वा न प्रवेष्टव्यं वक्तव्यं वा समंजसं अब्रुवन् विब्रुवन् वा अपि नरः भवति किल्बिषी ॥

यो० । सभांज्ञात्वा पुरुषेण न प्रवेष्टव्यं वा समंजसं वक्तव्यं (कुतः) अब्रुवन् वा विब्रुवन् आपिनरः किल्बिषी भवति ॥

भा० । ता० । सभाको जानकर मनुष्य सभा में प्रवेश न करे यदिकरे तो सत्यबोले क्योंकि तूष्णीं बैठाहुआ और झूंठबोलताहुआ मनुष्य पापका भागीहोता है १३ ॥

यत्रधर्मोह्यधर्मेणसत्यंयत्रानृतेनच । हन्यतेप्रेक्षमाणानांहतास्तत्रसभासदः १४ ॥

प० । यत्र धर्मः हि अधर्मेण सत्यं यत्र अनृतेन च हन्यते प्रेक्षमाणानां हताः तत्र सभासदः ॥

यो० । यत्र (सभायां) अधर्मेण धर्मः यत्र अनृतेन सत्यं हन्यते तत्र प्रेक्षमाणानां (अनादृत्य) सभासदः तेन अधर्मेण हताः भवंति ॥

भा० । ता० । जिससभा में वादि विवादियों के धर्मको अधर्म और सत्यको झूंठ नष्टकरदे अर्थात् जिस सभा के साक्षी धर्म से निर्णय न करें उससभामें वह अधर्म देखनेवालोंको छोड़-कर वे सभासदही उस अधर्म से नष्टकियेजातेहैं अर्थात् उस अधर्म के फलको भोगतेहैं १४ ॥

धर्मएवहतोहन्तिधर्मोरक्षतिरक्षितः । तस्माद्धर्मोनहन्तव्योमानोधर्मोहतोऽवधीत् १५॥

प० । धर्मः एव हतः हन्ति धर्मः रक्षति रक्षितः तस्मात् धर्मः न हंतव्यः मा नः धर्मः हतः अवधीत् ॥

यो० । हतः धर्मः एव हंति रक्षितः धर्मः रक्षति तस्मात् हतःधर्मः नः (अस्मान्) मा अवधीत् (इतिबुद्ध्या) धर्मोनहंतव्यः ॥

भा० । ता० । अवलंघनकियाहुआ धर्मही इष्ट अनिष्टोंसहित नष्टकरताहै—और सेवनकिया धर्मही रक्षाकरताहै जिससे इसबुद्धिसे प्राड्विवाक (वकील) कभी भी धर्मकाअवलंघन न करे कि नष्टकियाहुआ धर्म तेरेसहित हमको मतनष्टकरो—जो प्राड्विवाक वादि विवादी सभासद इनके विरुद्ध वर्त्तताहै उसके प्रति यह सम्बोधन है १५ ॥

वृषोहिभगवान्धर्मस्तस्ययःकुरुतेह्यलम् । वृषलंतंविदुर्देवास्तस्माद्धर्मंनलोपयेत् १६ ॥

प० । वृषः हि भगवान् धर्मः तस्य यः कुरुते हि अलं वृषलं तं विदुः देवाः तस्मात् धर्मं न लोपयेत् ॥

यो० । हि (यतः) वृषःभगवान्धर्मः (अस्ति) तस्य यःपुरुषः अलं (विनाशं) कुरुते तं देवाः वृषलंविदुः—तस्माद्धर्मं न लोपयेत् ॥

भा० । ता० । जिससे भगवान् धर्मकोही वृष कहतेहैं क्योंकि धर्मही मनुष्यकी कामनाओं

को वर्षताहै उसवृषका जो अलं (नाश) करताहै देवता उसीपुरुषको वृषल (शूद्र) जानते हैं तिससे मनुष्य कभी भी अपने धर्मकालोप (विनाश) न करे १६ ॥

एकएवसुहृद्धर्मोनिधनेऽप्यनुयातियः । शरीरेणसमंनाशंसर्वमन्यद्धिगच्छति १७॥

प० । एकः एव सुहृत् धर्मः निधने अपि अनुयाति यः शरीरेण समं नाशं सर्वं अन्यत् हि गच्छति ॥

यो० । यः निधनेअपि अनुयाति सःधर्मः एव एकःसुहृत् अस्ति हि (यतः) अन्यत् सर्वं शरीरेण समं (नाशं) गच्छति ॥

भा० । ता० । एक धर्मही अपना मित्रहै जो मरनेपर भी वांछितफल देनेकेलिये संग चलता है और अन्य सम्पूर्ण (स्त्री पुत्रादि) शरीर के नष्टहोनेपरही नाश (अदर्शन) को प्राप्तहोजाते हैं अर्थात् शरीर के छुटनेपर स्त्री पुत्रादिक कोई भी जीवात्माको नहींदेखते इससे स्त्री पुत्रादिकोंके स्नेहको त्यागदे परंतु धर्मको न त्यागे १७ ॥

पादोधर्मस्यकर्त्तारंपादःसाक्षिणमृच्छति । पादःसभासदःसर्वान्पादोराजानमृच्छति१८

प० । पादः धर्मस्य कर्त्तारं पादः साक्षिणं ऋच्छति पादः सभासदः सर्वान् पादः राजानं ऋच्छति ॥

यो० । धर्मस्यपादः कर्त्तारं पादः साक्षिणं ऋच्छति पादः सर्वान् सभासदः पादः राजानं ऋच्छति (प्राप्नोति) ॥

भा० । ता० । कुरीतिसे व्यवहारदेखनेसे अधर्म का चौथाभाग अधर्मकरनेवाले और चौथा भाग साक्षिको और चौथाभाग सम्पूर्ण सभासदों को और चौथाभाग राजा को प्राप्त होता है अर्थात् इनसबको पापका सम्बंध होताहै १८ ॥

राजाभवत्यनेनास्तुमुच्यन्तेचसभासदः । एनोगच्छतिकर्त्तारंनिन्दार्होयत्रनिन्द्यते १९॥

प० । राजा भवति अनेनाः तु मुच्यंते च सभासदः एनः गच्छति कर्त्तारं निन्दार्हः यत्र निन्द्यते ॥

यो० । यत्र निंदार्हः निंद्यते तत्र राजा अनेनाः भवति चपुनः सभासदः मुच्यंते एनः कर्त्तारं गच्छति ॥

भा० । ता० । जिससभामें निंदाकेयोग्य (असत्यवादी) वादी अथवा प्रतिवादीकी निंदाकी जाती है वहां राजा पापसे हीन होताहै–सभासदभी पापसे छूटते हैं–पापके फल करने वाले को प्राप्त होताहै १९ ॥

जातिमात्रोपजीवीवाकामंस्याद्ब्राह्मणब्रुवः । धर्मप्रवक्तानृपतेर्नतुशूद्रःकथंचन २० ॥

प० । जातिमात्रोपजीवी वा कामं स्यात् ब्राह्मणब्रुवः धर्मप्रवक्ता नृपतेः न तु शूद्रः कथंचन ॥

यो० । नृपतेः धर्मप्रवक्ता जातिमात्रोपजीवी ब्राह्मणब्रुवः कामंस्यात् शूद्रस्तु कथंचन न स्यात् ॥

भा० । जातिमात्र से जीविका करते हुये अपने कर्म से हीन भी ब्राह्मण कोई धर्मके विवेचन में राजा नियत के शूद्रको कभी न करे ॥

ता० । ब्राह्मण जातिसेही जो जीवताहोइ अर्थात् जातिका ब्राह्मण होइ चाहे कर्मको न भी करता हो परन्तु साक्षी आदि के द्वारा न्याय और अन्याय के निरूपण में समर्थ हो–जिसे ब्राह्मणब्रुव कहते हैं–और शूद्रधर्म का कहनेवाला भी कभी नियत न करना चाहिये अर्थात् पूर्वोक्त

शास्त्रके जाननेवाले ब्राह्मणके अभाव में जो जातिमात्रसे ही ब्राह्मण होइ उसे नियुक्तकरे और व्यवहारके जाननेवाले धार्मिक भी शूद्रको नियत न करे—यद्यपि धर्मप्रवक्ता इससेही धर्म के कहने वाले ब्राह्मणका जो विधान उससेही शूद्रका निषेध सिद्धथा फिर जो नतु शूद्रःकथंचन इस पदसे शूद्र का निषेध कियाहै वह योग्य ब्राह्मण के न मिलने पर क्षत्री—और वैश्यकी अनुमति के लियेहै—क्योंकि इस कात्यायन ऋषि के वचन से यह सिद्धहोताहै कि जहांपर विद्वान ब्राह्मण न मिले वहां धर्म शास्त्र के जाननेवाले क्षत्री को अथवा वैश्यको नियुक्त करे शूद्रको तो यत्न से वर्जिदे २० ॥

यस्यशूद्रस्तुकुरुतेराज्ञोधर्मविवेचनम् । तस्यसीदतितद्राष्ट्रंपङ्केगौरिवपश्यतः २१ ॥

प० । यस्य शूद्रः तु कुरुते राज्ञः धर्मविवेचनं तस्य सीदति तत् राष्ट्रं पंके गौः इव पश्यतः ॥

यो० । यस्यराज्ञः धर्मविवेचनं शूद्रःकुरुते तस्य पश्यतः एव तत् राष्ट्रं पंके गौरिवसीदति ॥

भा० । ता० । जिसराजा के यहां धर्म का विवेचन शूद्र करताहै उस राजाका वहदेशराजाके देखतेही इसप्रकार दुखी होताहै जैसे पंक (कीच) में गो दुखीहोतीहै २१ ॥

यद्राष्ट्रंशूद्रभूयिष्ठंनास्तिकाक्रान्तमद्विजम् ।
विनश्यत्याशुतत्कृत्स्नंदुर्भिक्षव्याधिपीडितम् २२ ॥

प० । यत् राष्ट्रं शूद्रभूयिष्ठं नास्तिकाक्रान्तं अद्विजं विनश्यति आशु तत् कृत्स्नं दुर्भिक्षव्याधिपीडितम् ॥

यो० । यत् राष्ट्रं (देशं) शूद्रभूयिष्ठं नास्तिकाक्रांतं अद्विजं (भवति) तत् कृत्स्नं दुर्भिक्षव्याधिपीडितं सत् आशु विनश्यति ॥

भा० । ता० । जिसराजाके देशमें बहुत शूद्रहोइँ अथवा नास्तिकहोइँ और द्विज न होइँ उस राजाका वह संपूर्ण देश दुर्भिक्ष और व्याधिसे दुखी होकर शीघ्रही नष्टहोताहै—अर्थात् उस देश में—होमादिक के अभाव से वृष्टिके न होनेसे दुर्भिक्ष और शान्ति आदि के अभाव से रोगादिक होतेहैं २२ ॥

धर्मासनमधिष्ठायसंवीताङ्गःसमाहितः । प्रणम्यलोकपालेभ्यःकार्यदर्शनमारभेत् २३ ॥

प० । धर्मासनं अधिष्ठाय संवीतांगः समाहितः प्रणम्य लोकपालेभ्यः कार्यदर्शनं आरभेत् ॥

यो० । संवीतांगः समाहितः (राजा) धर्मासनं अधिष्ठाय—लोकपालेभ्यः प्रणम्य कार्यदर्शनं आरभेत् ॥

भा० । ता० । अपने देहको ढककर अर्थात् वस्त्रों को धारण करिके सावधानी से धर्मासन (सिंहासन) पर बैठकर और लोकपालों को नमस्कार करिके (राजा) कार्योंके देखने का आरंभकरे २३ ॥

अर्थानर्थावुभौबुद्ध्वाधर्माधर्मौचकेवलौ ।वर्णक्रमेणसर्वाणिपश्येत्कार्याणिकार्यिणाम्२४॥

प० । अर्थानर्थौ उभौ बुद्ध्वा धर्माधर्मौ च केवलौ वर्णक्रमेण सर्वाणि पश्येत् कार्याणि कार्यिणाम् ॥

---

१ यत्राविप्रोनविद्वान्स्यात्क्षत्रियंतत्रयोजयेत् वैश्यंवाधर्मशास्त्रज्ञंशूद्रंयत्नेनवर्जयेत् ॥

यो० । उभौ अर्थानर्थौ चपुनः केवलौ धर्माधर्मौ बुद्ध्वा कार्यिणां सर्वाणि कार्याणि वर्णक्रमेण पश्येत् ॥

भा० । ता० । दोनों अर्थ और अनर्थको और केवल धर्म और अधर्मको जानकर कार्यवालों के संपूर्ण कार्योंको वर्णोंके क्रमसे देखे—अर्थात् प्रथम ब्राह्मणके फिर क्षत्री वैश्य शूद्रके कामोंका निर्णयकरे २४ ॥

बाह्यैर्विभावयेल्लिङ्गैर्भावमन्तर्गतंनृणाम् । स्वरवर्णेङ्गिताकारैश्चक्षुषाचेष्टितेनच २५ ॥

प० । बाह्यैः विभावयेत् लिंगैः भावं अंतर्गतं नृणां स्वरवर्णेङ्गिताकारैः चक्षुषा चेष्टितेन च ॥

यो० । नृणां अंतर्गतं भावं बाह्यैः लिङ्गैः चपुनः स्वरवर्णेङ्गिताकारैः चक्षुषा चपुनः चेष्टितेन विभावयेत् (कथयेत्) ॥

भा० । ता० । मनुष्योंके मनके अभिप्रायको बाहिरके लिङ्गों (स्वर आदि) से—और स्वर (गदगदवाणी) आकार स्वाभाविक से अन्यथा मुखकी कृष्णता आदि इङ्गित (नीचेको देखना) आकार और पसीना और रोमांचका उठना नेत्र और चेष्टा (हाथोंका फेकना) इनसे मनुष्योंके भीतरले अभिप्रायको राजा जाने २५ ॥

आकारैरिङ्गितैर्गत्याचेष्टयाभाषितेनच । नेत्रवक्त्रविकारैश्चगृह्यतेऽन्तर्गतंमनः २६ ॥

प० । आकारैः इङ्गितैः गत्या चेष्टया भाषितेन च नेत्रवक्त्रविकारैः च गृह्यते अंतर्गतम् मनः ॥

यो० । आकारैः इंगितैः — गत्या चेष्टया चपुनः भाषितेन चपुनः नेत्रवक्त्र विकारैः अंतर्गतं मनः गृह्यते (ज्ञायते) ॥

भा० । ता० । आकारइंगित (नीचेको देखना आदि) चेष्टा बोलना नेत्र और मुखका बिकार इनसे भीतर रहताहुआ भी मन जाना जाताहै २६ ॥

बालदायादिकंरिक्थंतावद्राजानुपालयेत् । यावत्सस्यात्समावृत्तोयावच्चातीतशैशवः २७ ॥

प० । बालदायादिकं रिक्थं तावत् राजा अनुपालयेत् यावत् सः स्यात् समावृत्तः यावत् च अतीतशैशवः ॥

यो० । राजा बालदायादिकं रिक्थं तावत् अनुपालयेत् यावत् सः बालः समावृत्तः स्यात् चपुनः यावत् अतीतशैशवः स्यात् ॥

भा० । ता० । अनाथ बालकके धनको यदि कोई पितृव्य (चचा) आदि अन्यायसे ग्रहण करनेलगे तो राजा उस धनकी तबतक रक्षाकरे जबतक वह बालक समावृत्त न हो अर्थात् गुरुके यहां छत्तीसवर्ष आदि ब्रह्मचारीके धर्मको करिके गृहस्थाश्रममें प्रविष्ट न हो और जो असामर्थ्य आदिसे ब्रह्मचर्य्य आदिही समावृत्तहो वह उसके धनको भी तबतक रक्षाकरे और सोलहवर्षकी अवस्थातक बालकहोताहै इस नारदके वचनसे यही प्रतीत होताहै कि सोलह वर्षतक बालक होताहै २७ ॥

वसापुत्रासुचैवंस्याद्रक्षणंनिष्कुलासुच । पतिव्रतासुचस्त्रीषुविधवास्वातुरासुच २८ ॥

प० । वसापुत्रासु च एवं स्यात् रक्षणं निष्कुलासु च पतिव्रतासु च स्त्रीषु विधवासु आतुरासु च ॥

यो० । वसापुत्रासु चपुनः निष्कुलासु पतिव्रतासु विधवासु चपुनः आतुरासु धनस्य रक्षणं एवं (बालधनवत्) स्यात् ॥

---

१ बालआषोडशाद्वर्षात् ॥

भा० । बंध्या (पुत्रहीन) निष्कुल—पतिव्रता—विधवा—रोगवाली जो स्त्रीहैं इन सबके धनकी भी रक्षा राजा बालकके धनके समानही करे ॥

ता० । बंध्या स्त्रियोंमें और अपुत्रा स्त्रियोंके धनकी भी बालक के धनकी तुल्यही राजा रक्षा करे क्योंकि उनका पति उनके निर्वाहमात्र धनको देकर दूसरा विवाह करलेताहै और जो स्त्री पुत्रवाली नहींहै दैव वशसे उनका पति परदेशमें हो वा न हो उनके धनकी—और जो स्त्री निष्कुल जिनके कुलका सपिंड नहींहै और जो साधु स्वभावहै अर्थात् पतिव्रताहै और जो विधवा अथवा रोगवालीहै उनके धनकी भी राजा इसी प्रकार रक्षाकरै जैसे बालक के धनकी करताहै २८ ॥

जीवन्तीनांतुतासांयेतद्धरेयुःस्वबान्धवाः।ताञ्छिष्याच्चौरदण्डेनधार्मिकःपृथिवीपतिः२९

प० । जीवंतीनां तु तासां ये तत् हरेयुः स्वबांधवाः तान् शिष्यात् चौरदंडेन धार्मिकः पृथिवीपतिः ॥

यो० । ये स्वबांधवाः जीवंतीनां तासां तद्धनं हरेयुः तान् धार्मिकः पृथिवीपतिः चौरदंडेन शिष्यात् ॥

भा० । ता० । जो उनके बांधव (उनके पीछे अधिकारी) जीतीहुई उन स्त्रियोंके उस धनको हरलें धार्मिक राजा—चौरके दंडसे शिक्षादे २९ ॥

प्रणष्टस्वामिकंरिक्थंराजात्र्यब्दंनिधापयेत्।अर्वाक्त्र्यब्दाद्धरेत्स्वामीपरेणनृपतिर्हरेत्३०

प० । प्रणष्टस्वामिकं रिक्थं राजा त्र्यब्दं निधापयेत् अर्वाक् त्र्यब्दात् हरेत् स्वामी परेण नृपतिः हरेत् ॥

यो० । राजा प्रणष्ट स्वामिकं रिक्थं त्र्यब्दं निधापयेत् त्र्यब्दात् अर्वाक् स्वामीधनं हरेत् परेण नृपतिः हरेत् ॥

भा० । ता० । जिस धनके स्वामीका ज्ञान न होइ उस धनको भेरी शब्दके घोषणके अनंतर (ढँढोरा पिटवाकर) राज्यके द्वारपर तीन वर्षतक रक्खे यदि तीनवर्षके बीचमें धनका स्वामी आयजाय तो उस धनको वही ग्रहणकरे तीनवर्षके अनंतर राजा अपने आधीनमें करले ३० ॥

ममेदमितियोब्रूयात्सोऽनुयोज्योयथाविधि।संवाद्यरूपसंख्यादीन्स्वामीतद्द्रव्यमर्हति३१

प० । मम इदं इति यः ब्रूयात् सः अनुयोज्यः यथाविधि संवाद्य रूपसंख्यादीन् स्वामी तत् द्रव्यं अर्हति ॥

यो० । यः पुरुषः इदंधनं मम (अस्ति) इति ब्रूयात् सः किंरूपं किंसंख्याकं कुत्र प्रनष्ट इत्येवं यथाविधि अनुयोज्यः (प्रष्टव्यः) ततः रूपसंख्यादीन संवाद्य तत् द्रव्यं स्वामी अर्हति ॥

भा० । ता० । जो मनुष्य उस धनको अपनावतावै उसको यथाविधि इसप्रकार पूछे कि क्या धनथा कितनी उसकी संख्याथी कहाँजातारहाथा यदि वह रूप और संख्यादिक को सत्य सत्य बतादे तो वह धनका स्वामीही उस धनको ग्रहण करने योग्य होताहै ३१ ॥

अवेदयानोनष्टस्यदेशंकालंचतत्त्वतः । वर्णंरूपंप्रमाणंचतत्समंदण्डमर्हति ३२ ॥

प० । अवेदयानः नष्टस्य देशं कालं च तत्त्वतः वर्णं रूपं प्रमाणं च तत्समं दंडं अर्हति ॥

यो० । नष्टस्य धनस्य देशं चपुनः कालं वर्णरूपं चपुनः प्रमाणं अवेदयानः पुरुषः तत्समं दंडं अर्हति ॥

भा० । ता० । जो नष्टहुये द्रव्यके देश काल वर्ण–रूप–और प्रमाणको यथार्थ न जानताहो अर्थात् उस देशमें उसकालमें इस वर्णका इस आकारका इतना मेरा द्रव्य जाता रहाहै इनको यथार्थ न बतासके वह मनुष्य उस धनके तुल्यही दंडके योग्य होताहै ३२ ॥

आददीताथषड्भागंप्रणष्टाधिगतान्नृपः । दशमंद्वादशंवापिसतांधर्ममनुस्मरन् ३३॥

प० । आददीत अथ षट् भागं प्रणष्टाधिगतात् नृपः दशमं द्वादशं वा अपि सतां धर्मं अनुस्मरन् ॥

यो० । प्रणष्टाधिगतात् नृपः सतांधर्मं अनुस्मरन् (सन) षड्भागं दशमं वा द्वादशं भागं आददीत (गृह्णीयात्) ॥

भा० । जो धन नष्टहुआ राजाको मिले उस धनमेंसे छठा–दशवां–बारहवां भाग सज्जनोंके धर्मका ज्ञाता राजा ग्रहणकरे और शेषधनको स्वामीको देदे ॥

ता० । सज्जनोंके धर्मको स्मरण करताहुआ राजा उसनष्ट अपनेको मिलेहुये धनमेंसे छठा–दशवां–वा बारहवां–भाग इस लिये ग्रहणकरले कि उस धनकी रक्षा राजाने कीहै–और यह छठा और दशवां और बारहवें भागका लेना भी धनके स्वामी की निर्गुण सगुणताकी अपेक्षासे है अर्थात् निर्गुणसे छठाभाग गुणवान से दशवांभाग अत्यंत गुणवानसे बारहवां भाग ग्रहणकरे शेष धनको धन के स्वामीको अर्पणकरदे ३३ ॥

प्रणष्टाधिगतंद्रव्यंतिष्ठेद्युक्तैरधिष्ठितम्।यांस्तत्रचौरान्गृह्णीयात्तान्राजेभेनघातयेत्३४॥

प० । प्रणष्टाधिगतं द्रव्यं तिष्ठेत् युक्तैः अधिष्ठितं यान् तत्र चौरान् गृह्णीयात् तान् राजा इभेन घातयेत् ॥

यो० । प्रणष्टाधिगतं द्रव्यं युक्तैः अधिष्ठितंतिष्ठेत् तत्र (धने) यान् पुरुषान् चौरान् गृह्णीयात् तान् इभेन राजा घातयेत् ॥

भा० । जो नष्टहुआ द्रव्य राजाकोमिले उसको युक्त (रक्षाकरनेवाले) पुरुषोंसे रक्षाकरे और और जिनको उसधनमेंसे चोरजानले उनको हाथीसे राजा मरवाइदे ॥

ता० । जो द्रव्य किसीका नष्टहुआ राजाके मनुष्योंको मिले उस धनको उसकी रक्षामें नियत मनुष्योंसे रक्षित रक्खे और उस धनमें जिनको चोरजाने उनको राजा हाथीसे मरवाइदे इस श्लोकमें गोविंदराज यह कहतेहैं कि सौसे अधिक की चोरीकरनेपर मरवावें अर्थात् सोने की सौ मुद्रासे अधिक चोरी करनेपर इस वचन के अनुसार मारना लिखाहै सो ठीक नहींहै क्योंकि संधिकरिके (मिलकर) चोरीहोतीहैं–और किसीके नष्टहुये और राजाके रक्षाकियेद्रव्य के हरनेसे यहांपर वधकहाहै इससे उक्त वचन सामान्य वधमें लगताहै और यहवध विशेषका कहाहै ३४ ॥

ममायमितियोब्रूयान्निधिंसत्येनमानवः । तस्याददीतषड्भागंराजाद्वादशमेववा३५ ॥

प० । मम अयं इति यः ब्रूयात् निधिं सत्येन मानवः तस्य आददीत षड्भागं राजा द्वादशं एव वा ॥

---

१ शतादभ्यधिके वधः ॥

यो० । यःमानवः अयं (निधिः) मम (अस्ति) इति सत्येननिधिंब्रूयात् तस्य षड्भागं वाद्वादशंभागं राजा आददीत (गृह्णीयात्) ॥

भा० । ता० । जो मनुष्य निधिके मिलनेपर सत्यसे यहकहे कि यहनिधि (खजाना) मेरा है उसमेंसे छठाभाग अथवा बारहवांभाग स्वयंग्रहण करले शेष धनको स्वामीको देदे ३५ ॥

अनृतंतुवदन्दण्ड्यःस्ववित्तस्यांशमष्टमम ।
तस्यैववानिधानस्यसंख्यायाल्पीयसींकलाम् ३६ ॥

प० । अनृतं तु वदन् दंड्यः स्ववित्तस्य अंशं अष्टमं तस्य एव वा निधानस्य संख्याय अल्पीयसीं कलां ॥

यो० । अनृतं वदन् पुरुषः स्ववित्तस्य अष्टमं अंशं वातस्य एवनिधानस्य अल्पीयसीं कलां दंड्यः ॥

भा० । ता० । जो धन अपना न होइ उसको अपना बनाताहुआ मनुष्य अपने वित्तके आठवेंभागके दंडयोग्यहै अथवा उसीनिधिको गिनकर उसमेंसे थोड़ेसेभागके दंडयोग्यहोताहै ३६ ॥

विद्वांस्तुब्राह्मणोदृष्ट्वापूर्वोपनिहितंनिधिम् । अशेषतोऽप्याददीतसर्वस्याधिपतिर्हिसः ३७

प० । विद्वान् तु ब्राह्मणः दृष्ट्वा पूर्वोपनिहितं निधिम् अशेषतः अपि आददीत सर्वस्य अधिपतिः हि सः ॥

यो० । विद्वान् ब्राह्मणस्तु पूर्वोपनिहितं निधिं दृष्ट्वा अशेषतः अपि आददीत हि (यतः)सः ब्राह्मणः सर्वस्य अधिपतिः (अस्ति) ॥

भा० । विद्वानब्राह्मण तो किसीकी रक्खीहुई निधिको देखकर सबको ग्रहणकरले क्योंकि वह विद्वान ब्राह्मण सबकाप्रभुहै ॥

ता० । विद्वान् ब्राह्मण पहिले गड़ीहुई निधि को संपूर्ण को लेले अर्थात् छठाभाग राजा को नदे क्योंकि सब धनोंका स्वामी राजा होता है क्योंकि इस वर्नन सर्वस्वंब्राह्मणस्येदम् से सब वस्तु ब्राह्मण काही सर्वस्व होताहै और नारद मुनि याज्ञवल्क्यने यह कहाहै कि अन्यकी गाड़ीहुई निधिको प्राप्तहोकर राजा ग्रहण करले ब्राह्मण को छोड़कर सब धनका स्वामी राजाही होताहै—राजा निधि को पाकर उसमें से आधा धन ब्राह्मणों को दे और विद्वान् ब्राह्मण संपूर्ण निधि का स्वामी होताहै इससे गोविंदराज मेधातिथि ने यह जो कहाहै कि जो मनुष्य यह कहे कि निधि मेरीहै और इसकाअर्थ यहकिया है कि राजाको देनेयोग्य धनके निराशके लिये यह वचनहै (ममायमितियोब्रूयात्) कि राजाके देनेयोग्य धनके निराशके लियेहै और यहवचन पिताकी रक्खी निधिमेंमेंही छठाआदि भागदे यहबात अनार्षहै इससे नारद याज्ञवल्क्यसे विपरीत अपने मनसे कल्पना कियाहुआ विरुद्ध अर्थ ठीकनहीं है ३७ ॥

यंतुपश्येन्निधिंराजापुराणंनिहितंक्षितौ । तस्माद्द्विजेभ्योदत्त्वार्द्धमर्द्धंकोशेप्रवेशयेत् ३८॥

प० । यं तु पश्येत् निधिं राजा पुराणं निहितं क्षितौ तस्मात् द्विजेभ्यः दत्त्वा अर्द्धं अर्द्धं कोशे प्रवेशयेत् ॥

---

१ परेणनिहितंलब्ध्वा राजाह्यपहरेन्निधिम् राजास्वामीनिधेस्सर्व सर्वेषांब्राह्मणादृते ॥
२ राजालब्ध्वानिधिंदद्यात् द्विजेभ्योर्द्धंद्विजःपुनः विद्वानशेषमादद्यात् ससर्वस्यप्रभुर्यतः ॥

यो० । राजाक्षितौ निहितं यं पुराणं निधिं पश्येत् तस्मात् अर्द्धं द्विजेभ्यः दत्त्वा अर्द्धं कोशे प्रवेशयेत् ॥

भा० । ता० । पृथ्वीमें गड़ीहुई पुराणीनिधिको राजादेखे अर्थात् राजाको मिले उसनिधिमें से आधा धन ब्राह्मणको देकर आधा अपने कोशमें रखदे ३८ ॥

निधीनांतुपुराणानांधातूनामेवचक्षितौ । अर्द्धभाग्रक्षणाद्राजाभूमेरधिपतिर्हिसः ३९ ॥

प० । निधीनां तु पुराणानां धातूनां एवं च क्षितौ अर्द्धभाक् रक्षणात् राजा भूमेः अधिपतिः हि सः ॥

यो० । पुराणानां निधीनां चपुनः क्षितौ धातूनां रक्षणात् राजा अर्द्धभाक् (भवति) हि (यतः) सः भूमेः अधिपतिः अतः अर्द्धभाक् भवति ॥

भा० । ता० । पुराणीनिधि और पृथ्वीकी धातुओंके अर्द्धभाग का ग्रहणकरनेवाला इसलिये राजाहोताहै कि वह पृथ्वीकी रक्षाकरताहै और पृथ्वीका अधिपति है ३९ ॥

दातव्यंसर्ववर्णेभ्योराज्ञाचौरैर्हृतंधनम् । राजातदुपयुञ्जानश्चौरस्याप्नोतिकिल्बिषम् ४० ॥

प० । दातव्यं सर्ववर्णेभ्यः राज्ञा चौरैः हृतं धनं राजा तदुपयुञ्जानः चौरस्य आप्नोति किल्बिषम् ॥

यो० । राज्ञा चौरैर्हृतंधनं सर्ववर्णेभ्यः दातव्यं तदुपयुञ्जानः राजा चौरस्य किल्बिषं आप्नोति ॥

भा० । ता० । लोकोंकाधन जो चोरों ने हरलियाहो उसधनको राजा सम्पूर्ण वर्णोंकोदेदे अर्थात् जिसवर्णकाहो उसीवर्ण के मनुष्य को देदे क्योंकि उसधनको जो राजा भोगताहै उसको वहीपाप होताहै जो चोरको होताहै ४० ॥

जातिजानपदान्धर्मान्श्रेणीधर्मांश्चधर्मवित् । समीक्ष्यकुलधर्मांश्चस्वधर्मंप्रतिपालयेत् ४१

प० । जातिजानपदान् धर्मान् श्रेणीधर्मान् च धर्मवित् समीक्ष्य कुलधर्मान् च स्वधर्मं प्रतिपालयेत् ॥

यो० । धर्मवित् राजा जातिजानपदान् धर्मान् चपुनः श्रेणीधर्मान् चपुनः कुलधर्मान् समीक्ष्य स्वधर्मं प्रतिपालयेत् ॥

भा० । जाति–देश–श्रेणी (वैश्यआदि) कुल इनके धर्मोंको देखकर राजा अपने धर्म को कहे ॥

ता० । जातिके धर्म अर्थात् ब्राह्मणादि जातियोंमें नियत याजनआदि धर्म और देशके धर्म अर्थात् जो शास्त्रसे विरुद्ध नहों और देशरीति से प्रसिद्धहों–क्योंकि इस गौतमऋषी के वचन से यहप्रतीत होताहै देशजाति कुल इनके धर्म प्रमाणहैं जो शास्त्रमें निषिद्धनहीं और वैश्यआदिकों के धर्म और कुल कुलके विषे व्यवस्थितधर्म इनको जानकर राजा व्यवहारों के विषे शास्त्रके अनुकूल धर्मोंकी व्यवस्थाकरे ४१ ॥

स्वानिकर्माणिकुर्वाणादूरेसंतोऽपिमानवाः । प्रियाभवन्तिलोकस्यस्वेस्वेकर्मण्यवस्थिताः ४२

प० । स्वानि कर्माणि कुर्वाणाः दूरे सन्तः अपि मानवाः प्रियाः भवन्ति लोकस्य स्वे स्वे कर्मणि अवस्थिताः ॥

१ देशजातिकुलधर्माश्च आम्नायैरप्रतिषिद्धाः प्रमाणम् ॥

यो० । दूरे सन्तः अपि स्वानि कर्माणि कुर्वाणाः स्वे स्वे कर्मणि अवस्थिताः मानवाः लोकस्य प्रियाः भवन्ति ॥

भा० । ता० । जाति–देश–कुल आदि के अनुसार अपने अपने कर्मको करतेहुये और अपने अपने नित्य (सन्ध्याआदि) और नैमित्तिकः (जातेष्टिआदि) कर्मोंमें वर्त्ततेहुये दूरहहुये भी मनुष्य जगत्के प्यारेहोते हैं ४२ ॥

नोत्पादयेत्स्वयंकार्यंराजानाप्यस्यपूरुषः । नचप्रापितमन्येनग्रसेदर्थंकथंचन ४३ ॥

प० । न उत्पादयेत् स्वयं कार्यं राजा न अपि अस्य पूरुषः न च प्रापितं अन्येन ग्रसेत् अर्थं कथंचन ॥

यो० । राजा अस्य पूरुषः अपि कार्यं (विवादं) स्वयं न उत्पादयेत् चपुनः अन्येन प्रापितं अर्थं नच प्रापितं अर्थं कथंचन न ग्रसेत् ॥

भा० । ता० । राजा अथवा राजाका कोई भृत्य स्वयं कार्य (विवाद) को पैदा न करे और और के प्राप्तकियेहुये कार्यको किसीप्रकार नहीं ग्रसे अर्थात् लोभसे ऋणादी के विवादको न करै क्योंकि इस कात्यायन के वचन से यह प्रतीतहोता है कि राजा अपने आप कार्यको पैदा न करे ४३ ॥

यथानयत्यसृक्पातैर्मृगस्यमृगयुःपदम् । नयेत्तथानुमानेनधर्मस्यनृपतिःपदम् ४४ ॥

प० । यथा नयति असृक्पातैः मृगस्य मृगयुः पदं नयेत् तथा अनुमानेन धर्मस्य नृपतिः पदम् ॥

यो० । यथा मृगयुः (व्याधः) मृगस्य पदं असृक्पातैः नयति तथा नृपतिः धर्मस्य पदं अनुमानेन नयेत् ॥

भा० । ता० । जैसे रुधिर के पडनेसे मृगके स्थानको व्याध प्राप्तहोता है तैसे राजा भी अनुमान से धर्मके तत्त्वको निश्चय करे ४४ ॥

सत्यमर्थंचसंपश्येदात्मानमथसाक्षिणः । देशंरूपंचकालंचव्यवहारविधौस्थितः ४५ ॥

प० । सत्यं अर्थं च संपश्येत् आत्मानं अथ साक्षिणः देशं रूपं च कालं च व्यवहारविधौ स्थितः ॥

यो० । व्यवहारविधौस्थितः राजा सत्यं चपुनः अर्थं आत्मानं अथ साक्षिणः देशं रूपं चपुनः कालं संपश्येत् ॥

भा० । निर्णय करने के समय बैठाहुआ राजा सत्य धनआदि का व्यवहार अपनी आत्मा साक्षि (गवाह) देश व्यवहारका स्वरूप काल इनको देखे अर्थात् इन्हींके अनुसार निर्णय करे ॥

ता० । व्यवहार के देखनेमें जब राजा प्रवृत्तहो तब छलको छोडके सत्यको देखे और गौ–सोना आदि धनके व्यवहारको देखे अर्थात् यह न देखे कि इस मनुष्यने मेरीतरफको आंख मीचकर हँसी करी ऐसे अपराधको न देखे और अपने आत्माको इसलिये देखे कि जोमैं यथार्थ निर्णय करूंगा स्वर्गआदि फलका भागीहोंगा और साक्षियोंको सत्य असत्यके निर्णयकेलिये देखे और देश–काल के योग्य वस्तुको देखे और छोटे अथवा बडे व्यवहार के स्वरूपको देखे ४५ ॥

सद्भिराचरितंयत्स्याद्धार्मिकैश्चद्विजातिभिः।तद्देशकुलजातीनामविरुद्धंप्रकल्पयेत् ४६

प० । सद्भिः आचरितं यत् स्यात् धार्मिकैः च द्विजातिभिः तत् देशकुलजातीनां अविरुद्धं प्रकल्पयेत् ॥

---

१ नराजातुवशित्वेन धनलोभेनवापुनः । स्वयंकर्माणिकुर्वीत नराणामभिवादिनाम् ॥

यो० । यत् सद्भिः चपुनः धार्मिकैः द्विजातिभिः आचरितंस्यात् देशकुलजातीनां अविरुद्धं तत् (व्यवहारनिर्णयम्) प्रकल्पयेत् ॥

भा० । ता० । जो आचरण सत्पुरुषोंने धर्मके ज्ञाता द्विजातियोंने कियाहो देश–कुल–जाति इन के अविरोधी उसी आचरणके अनुसार व्यवहारका निर्णयकरे ४६ ॥

अधमर्णार्थसिद्ध्यर्थमुत्तमर्णेनचोदितः । दापयेद्धनिकस्यार्थमधमर्णाद्विभावितम् ४७॥

प० । अधमर्णार्थसिद्ध्यर्थं उत्तमर्णेन चोदितः दापयेत् धनिकस्य अर्थं अधमर्णात् विभावितम् ॥

यो० । अधमर्णार्थसिद्ध्यर्थं उत्तमर्णेन चोदितः राजा अधमर्णात् विभावितं धनिकस्य अर्थं दापयेत् ॥

भा० । ता० । अधमर्ण (करजवाले) से धनकी सिद्धिकेलिये उत्तमर्ण ने की प्रेरणा जिसको ऐसा राजा धनिकको धन तब दिवावे जब अधमर्णपर उसके धनकी लेख साक्षिआदिसे निश्चयहोजाय ४७॥

यैर्यैरुपायैरर्थंस्वंप्राप्नुयादुत्तमर्णिकः । तैस्तैरुपायैःसंगृह्यदापयेदधमर्णिकम् ४८ ॥

प० । यैः यैः उपायैः अर्थं स्वं प्राप्नुयात् उत्तमर्णिकः तैः तैः उपायैः संगृह्य दापयेत् अधमर्णिकम् ॥

यो० । उत्तमर्णिकः यैः यैः उपायैः स्वमर्थं प्राप्नुयात् तैः तैः उपायैः संगृह्य अधमर्णिकं दापयेत् ॥

भा० । ता० । उत्तमर्ण (धनि) जिन२ उपायों से अपने धनको प्राप्तहो उन उन उपायोंसे वश में करिकै अधमर्णिक से उत्तमर्ण के धनको राजा दिवावे ४८ ॥

धर्मेणव्यवहारेणछलेनाचरितेनच । प्रयुक्तंसाधयेदर्थंपञ्चमेनबलेनच ४९ ॥

प० । धर्मेण व्यवहारेण छलेन आचरितेन च प्रयुक्तं साधयेत् अर्थं पंचमेन बलेन च ॥

यो० । राजा धर्मेण–व्यवहारेण–छलेन–चपुनः आचरितेन चपुनः पंचमेन बलेन अर्थं साधयेत् ॥

भा० । धर्म व्यवहार छल आचरित और पांचवें बलसे उत्तमर्ण का अधमर्ण से राजा धन को दिवावे ॥

ता० । अधमर्ण से उत्तमर्णके धनको (राजा) धर्मसे दिवावे [१]धर्म इस वचन के अनुसार वृहस्पतिने कहेहैं मित्र और संबन्धियों का कथन और शांति–अनुगम इनके द्वारा अधमर्णसे धनीको जो धनदिलाना उसे धर्म कहते हैं और यदि धनदेनमें अधमर्णका विवाद न होय तो व्यवहार से अर्थात् लेख साक्षीआदिकों से निश्चय करके धनको दिवावे और मेधातिथि तो यह कहतेहैं कि जो अधमर्ण निर्धन है उसीसे व्यवहार के द्वारा उत्तमर्णको धन दिवावे अर्थात् अधमर्ण से कुछ सेवा–कृषि–व्यापार आदि काम कराकर उससे पैदाहुये धनको उत्तमर्णको दिलादे और छल आचरित बलात्कार इन तीनोंका स्वरूप इस [२]वचन से वृहस्पति ने यह कहाहै कि बहाने से अधमर्ण से धन को इसप्रकार मांगकर कि मानो किसी और कामकेलिये धन राजाने मँगाया है फिर उसधन को उत्तमर्णकोदेदे उसको छलकहतेहैं स्त्री–पुत्र पशु इनसबको मारकर अधमर्णको दरवज्जेपर बैठाकर उत्तमर्णको जो धनदिलानाउसको आचरित कहतेहैं और अधमर्णको बांधकर अपने घरलाना उससे ताड़नादि यत्नों से उत्तमर्णकोजो धन दिलाना उसे बलात्कार कहते हैं ४९ ॥

---

१ सुहृत्संबन्धिसंदिष्टैः साम्नाचानुगमेनच । प्रायेणवाऋणीदाप्यो धर्मएषउदाहृतः ॥

२ छद्मनायाचितंचार्थमानीयऋणिकाद्बली । अन्याहृतादिवाहृत्य दाप्यतेतत्रसोपधिः ॥ दारपुत्रपशून्हत्वा कृत्वाद्वारोपवेशनम् । यत्रार्थीदाप्यतेऽर्थंस्वन्तदाचरितमुच्यते ॥ बध्वास्वगृहमानीय ताडनाद्यैरुपक्रमैः । ऋणिकोदाप्यतेयत्र बलात्कारः प्रकीर्तितः ॥

यःस्वयंसाधयेदर्थमुत्तमर्णोऽधमर्णिकात्।नसराज्ञाभियोक्तव्यःस्वकंसंसाधयन्धनम् ५०

प० । यः स्वयं साधयेत् अर्थं उत्तमर्णः अधमर्णिकात् न सः राज्ञा अभियोक्तव्यः स्वकं संसाधयन् धनम् ॥

यो० । यः उत्तमर्णः अधमर्णिकात् अर्थंस्वयंसाधयेत् स्वकंधनं संसाधयन सः उत्तमर्णः राज्ञा न अभियोक्तव्यः—(न निषेद्धव्यः) ॥

भा० । ता० । जो उत्तमर्ण बलआदि यत्नसे अपने धनको अधमर्णसे सिद्धकरे (लेइ) अपनेधन को भलीप्रकार ग्रहणकरतेहुये उस उत्तमर्णको राजा निषेधनकरे कि राजदरबारमें कहेबिना स्वयमेव बलसे धनको क्यों ग्रहणकरता है ५० ॥

अर्थेऽपव्ययमानंतुकरणेनविभावितम् । दापयेद्धनिकस्यार्थंदण्डलेशंचशक्तितः ५१ ॥

प० । अर्थे अपव्ययमानं तु करणेन विभावितं दापयेत् धनिकस्य अर्थं दंडलेशं च शक्तितः ॥

यो० । अर्थे अपव्ययमानं (अधमर्णं) करणेनविभावितं धनिकस्य अर्थं चपुनः शक्तितः दंडलेशं राजादापयेत् ॥

भा० । ता० । जो उत्तमर्ण धनकी नाहींकरताहो कि मुझे इसका ऋणनहींदेना उसअधमर्णपर यदि लेख साक्षि दिव्यआदि से धनका निश्चय होजाय तो उसधनको उत्तमर्णको दिलावे और शक्ति के अनुसार कुछ दंडभी दे अर्थात् दूना वा दशांश दंडदे ५१ ॥

अपह्नवेऽधमर्णस्यदेहीत्युक्तस्यसंसदि । अभियोक्तादिशेद्देश्यंकरणंवान्यदुद्दिशेत् ५२

प०।अपह्नवे अधमर्णस्य देहि इति उक्तस्य संसदि अभियोक्ता दिशेत् देश्यं करणं वा अन्यत् उद्दिशेत् ॥

यो० । धनंदेहि इतिसंसदि उक्तस्य अधमर्णस्य अपह्नवेसति अभियोक्ता देश्यंदिशेत् वा अन्यत् करणं उद्दिशेत् ॥

भा० । ता० । सभामें प्राड्विवाक (वकील) ने यहकहाहै जिसको कि उत्तमर्ण के धनकोदेदे ऐसा अधमर्ण यदि अपह्नव अपलाप (नाहीं) करे तो कि मुझे इसकाधन नहीं देना तो अभियोक्ता (मुद्दई) जिसजगह धनदियाहो उसजगह के साक्षीकोदे क्योंकि स्त्री और मूर्खादिकों के ऋणका निर्णय साक्षियोंसेही होताहै अथवा अन्यपत्र आदि (अधमर्ण का लिखाहुआ) कारण उत्तमर्ण कहे ५२ ॥

अदेश्यंयश्चदिशतिनिर्दिश्यापह्नुतेचयः।यश्चाधरोत्तरानर्थान्विगीतान्नावबुद्ध्यते ५३
अपदिश्यापदेश्यंचपुनर्यस्त्वपधावति।सम्यक्प्रणिहितंचार्थंपृष्टःसन्नाभिनन्दति५४॥
असंभाष्येसाक्षिभिश्चदेशेसंभाषतेमिथः।निरुच्यमानंप्रश्नंचनेच्छेद्यश्चापिनिष्पतेत्५५
ब्रूहीत्युक्तश्चनब्रूयादुक्तंचनविभावयेत् । नचपूर्वापरंविद्यात्तस्मादर्थात्सहीयते ५६ ॥

प० । अदेश्यं यः च दिशति निर्दिश्य अपह्नुते च यः च अधरोत्तरान् अर्थान् विगीतान् न अवबुद्ध्यते ॥
प०।अपदिश्य अपदेश्यं च पुनः यः तु अपधावति सम्यक् प्रणिहितं च अर्थं पृष्टः सन् न अभिनंदति॥
प०।असंभाष्ये साक्षिभिः च देशे संभाषते मिथः निरुच्यमानं प्रश्नं च न इच्छेत् यः च अपि निष्पतेत्॥
प० । ब्रूहि इति उक्तः च न ब्रूयात् उक्तं च न विभावयेत् न च पूर्वापरं विद्यात् तस्मात् अर्थात् सः हीयते ॥

यो० । यः उत्तमर्णः अदेश्यं दिशति यः चपुनः निर्दिश्य अपह्नुते चपुनः यः अधरोत्तरान् अर्थान् विगीतान् न अवबुद्ध्यते चपुनः अपदेश्यं अपदिश्य पुनः अपधावति चपुनः पृष्टः सन सम्यक् प्रणिहितं अर्थं न अभिनंदति यः असंभाष्ये

देशे साक्षिभिः सहमिथः संभाषते यः निरुच्यमाणं प्रश्नं न इच्छेत् चपुनः यः निष्पतेत् यः ब्रूहीति उक्तस्सन् न ब्रूयात् चपुनः उक्तं न विभावयेत् चपुनः यः पूर्वापरं न विद्यात् सः उत्तमर्णः तस्मात् अर्थात् हीयते तं धनं न लभते इत्यर्थः ॥

भा० । ता० । जो उत्तमर्ण ऐसे देशमें धनदिये को बतावे जहां ऋणलेने के समय अधमर्णनहो अथवा उक्तदेश को कहकर जो नाहींकरदे अथवा जो पूर्वापर विरुद्ध अपने वचनोंको कहै और जो अपदेश्यको कहकर फिर हटजाय अर्थात् प्रथम तो यहकहे कि एकपल सोना मेरेहाथसेलियाहै फिर यहकहै कि मेरे पुत्रके हाथसे लियाहै---और जो भलीप्रकार प्रतिज्ञा कियेहुये धनका समाधान न करसके अर्थात् जब प्राड्विवाक (वकील) यह पूछे विना किसीकी साक्षी तैंने क्योंदिया उसका उत्तर न देसके--और जो एकांत निर्जन देश में अपने साक्षियों के संग परस्पर वार्तालापकरे--और जो भाषार्थ (अर्जी) के स्थिरकरने के लिये कहे हुये प्राड्विवाकके प्रश्नको न चाहे और जो पतनकरे अर्थात् उक्त व्यवहारोंको न कहिकर अन्य २ बात करनेलगे और जो पूछनेपर उत्तर न देसके और जो अपने साध्य के प्रमाणका निश्चय न करसके और जो पूर्वापर न जानताहो अर्थात् साधन (कारण) साध्य (कार्य्य) इनका जिसे ज्ञान न हो इतने उत्तमर्ण अपने सिद्धकरनेयोग्य अर्थसे हीनहोतेहैं अर्थात् इनको अधमर्ण से राजा धन न दिवावे ५३–५४–५५–५६ ॥

साक्षिणःसन्तिमेत्युक्त्वादिशेत्युक्तोदिशेन्नयः।धर्मस्थःकारणैरेतैर्हीनंतमपिनिर्दिशेत् ५७

प० । साक्षिणः संति मे इति उक्त्वा दिश इति उक्तः दिशेत् न यः धर्मस्थः कारणैः एतैः हीनं तं अपि निर्दिशेत् ॥

यो० । यः मे साक्षिणः संति इति उक्त्वा दिश इति उक्तःसन न दिशेत् धर्मस्थः (प्राड्विवाकः) एतैः कारणैः तं अपि हीनं निर्दिशेत् ॥

भा० । ता० । जो उत्तमर्ण मेरेसाक्षी हैं यहकहकर यदि है तो वर्णनकरे ऐसे प्राड्विवाक के कहने पर साक्षियोंको न कहसके उसकोभी धार्मिक प्राड्विवाक इनपूर्वोक्त कारणों से हीन अर्थात् पराजित कहै ५७ ॥

अभियोक्तानचेद्ब्रूयाद्बध्योदण्ड्यश्चधर्मतः।नचेत्त्रिपक्षात्प्रब्रूयाद्धर्मंप्रतिपराजितः ५८

प० । अभियोक्ता न चेत् ब्रूयात् बध्यः दण्ड्यः च धर्मतः न चेत् त्रिपक्षात् प्रब्रूयात् धर्मं प्रति पराजितः ॥

यो० । चेत् (यदि) अभियोक्ता न ब्रूयात् तर्हि राज्ञा वध्यः चपुनः धर्मतः दंड्यःस्यात् चेत् यदि प्रत्यर्थी त्रिपक्षात् न प्रब्रूयात् तर्हि धर्मप्रति पराजितःस्यात् ॥

भा० । ता० । जो अर्थि राजा के यहां निवेदन करिके निर्णय के समय कुछ न कहसके वह मारने और दण्ड देने योग्य है अर्थात् यदि विषय (मामला) भारी होय तो मारने योग्य है और लघु होय तो दण्ड देने योग्य है और जो प्रत्यर्थि (मुद्दाइले) तीन पक्ष तक उसका उत्तर न दे सके तो वह धर्म से पराजित होता है ५८ ॥

योयावन्निह्नुवीतार्थंमिथ्यायावतिवावदेत्।तौनृपेणह्यधर्मज्ञौदाप्यौतद्द्विगुणंदमम् ५९॥

प० । यः यावत् निह्नुवीत अर्थं मिथ्या यावति वा वदेत् तौ नृपेण हि अधर्मज्ञौ दाप्यौ तत् द्विगुणं दमम् ॥

यो०। यः प्रत्यर्थी यावत् अर्थ निह्नुवीत वा अर्थी यावति धने मिथ्यावदेत् अधर्मज्ञौ तौ नृपेण तत् द्विगुणं दमं दाप्यौ॥

भा०। जो प्रत्यर्थि जितने धनको न माने अथवा जो प्रत्यर्थि इतने धनको झूठ बतावे उन दोनों अधर्मियों को उस धनसे राजा दूना दण्ड दे॥

ता०। जो प्रत्यर्थि जितने धनका अपनयन (मुकरना) करे अथवा जो अर्थि जितने धनके विषे झूठ बोले उन दोनों अधर्मियों को उससे दूने धनका दण्ड राजा दे परन्तु यदि जानकर अपनयन और मिथ्या बोले यदि प्रमाद से करे तो शत अथवा शतांश अथवा दशांश दण्ड के भागी होते हैं ५९॥

पृष्टोऽपव्ययमानस्तुकृतावस्थोधनैषिणा।त्र्यवरैःसाक्षिभिर्भाव्योनृपब्राह्मणसन्निधौ६०॥

प०। पृष्टः अपव्ययमानः तुं कृतावस्थः धनैषिणा त्र्यवरैः साक्षिभिः भाव्यः नृपब्राह्मणसंनिधौ॥

यो०। धनैषिणा कृतावस्थः प्राड्विवाकेन पृष्टः अपव्ययमानः प्रत्यर्थी नृपब्राह्मणसंनिधौ त्र्यवरैः साक्षिभिः भाव्यः॥

भा०। ता०। धनकी इच्छा वाले उत्तमर्णने राजा के पुरुषों द्वारा बुलाया हुआ जो प्रत्यर्थि प्राड्विवाक के पूछने पर यह अपह्नव करे कि मैं इसके रुपये को नहीं धराता तो राजा के अधिकारी ब्राह्मण के समीप कमसे कम तीन साक्षियों से उसकी भावना (निर्णय) करै ६०॥

यादृशाधनिभिःकार्याव्यवहारेषुसाक्षिणः।तादृशान्संप्रवक्ष्यामियथावाच्यमृतंचतैः६१॥

प०। यादृशाः धनिभिः कार्याः व्यवहारेषु साक्षिणः तादृशान् संप्रवक्ष्यामि यथा वाच्यं ऋतं च तैः॥

यो०। व्यवहारेषु धनिभिः यादृशाः साक्षिणः कार्याः तादृशान्–चपुनः यथा तैः ऋतंवाच्यं तथा अहं संप्रवक्ष्यामि॥

भा०। ता०। ऋणादान आदिव्यवहारों में धनियों को जैसे साक्षी करने उनको जिस प्रकार साक्षी सत्य उस प्रकार को मैं कहूंगा॥ ६१

गृहिणःपुत्रिणोमौलाःक्षत्रविट्शूद्रयोनयः।अर्थ्युक्ताःसाक्ष्यमर्हन्तिनयेकेचिदनापदि६२॥

प०। गृहिणः पुत्रिणः मौलाः क्षत्रविट्शूद्रयोनयः अर्थ्युक्ताः साक्ष्यं अर्हन्ति न ये केचित् अनापदि॥

यो०। गृहिणः पुत्रिणः मौलाः क्षत्रविट्शूद्रयोनयः अर्थ्युक्ताः साक्ष्यं अनापदि अर्हन्तिये केचित् न अर्हन्ति॥

भा०। विना आपत्ती के समय गृहस्थी–पुत्रवाले उसी देशके और क्षत्री–वैश्य–शूद्र इन जातियों के साक्षी हो सकते हैं और जो कोई नहीं हो सकते॥

ता०। अर्थि (मुद्दई) के कहे हुये गृहस्थी अर्थात् जिनका विवाह हुआ हो और जो पुत्रवालेहों और उसी देश के पैदाहुये हों और क्षत्री–वैश्य–शूद्र जात्यहों वेही साक्षी देने योग्य विना आपत्तिके समयमें होते हैं और जो कोई नहीं होते क्योंकि जो साक्षी गृहस्थी आदि होते हैं वे अपने सन्तान आदि के भयसे और देश वासियों के विरोध से कभी भी अन्यथा नहीं करेंगे और यदि आपत्तिकाल हो जैसा कि कठोर वचन कठोर दण्ड स्त्री का संग्रह इनमें तो जो कोई साक्षी मिले वह भी साक्षी दे सकता है ६२॥

आप्ताःसर्वेषुवर्णेषुकार्याःकार्येषुसाक्षिणः । सर्वधर्मविदोलुब्धाविपरीतांस्तुवर्जयेत् ६३ ॥

प० । आप्ताः सर्वेषु वर्णेषु कार्याः कार्येषु साक्षिणः सर्वधर्मविदः अलुब्धाः विपरीतान् तु वर्जयेत् ॥

यो० । कार्येषु सर्वधर्मविदः अलुब्धाः साक्षिणः सर्वेषुवर्णेषु आप्ताः कार्याः विपरीतान् तु (राजा) वर्जयेत् ॥

भा० । ता० । सम्पूर्ण वर्णों में जो यथार्थ वादी और सम्पूर्ण धर्मोंके जो ज्ञाता हैं और जो लोभ से रहित हैं ऐसेही साक्षियों को ऋणादान आदिमें करना और इनसे जो विपरीत हैं उनको राजा वर्जदे ६३ ॥

नार्थसम्बन्धिनोनाप्तानसहायानवैरिणः । नदृष्टदोषाःकर्तव्यानव्याध्यार्त्तानदूषिताः ६४

प० । न अर्थसम्बन्धिनः न आप्ताः न सहायाः न वैरिणः न दृष्टदोषाः कर्तव्याः न व्याध्यार्त्ताः न दूषिताः ॥

यो० । अर्थ सम्बन्धिनः आप्ताः सहायाः वैरिणः दृष्टदोषाः व्याध्यार्त्ताः दूषिताः साक्षिणः न कर्तव्याः ॥

भा० । ता० । ऐसे साक्षियों को कभी न करे जो ऋण आदि धन के सम्बन्धि हों और जो अपने मित्र हों और जो अपने सहायक हों और जो वैरी हों और जिनकी कभी झूठी साक्षी देखी हों और जो रोग से पीडितहों और जो महापातक आदि दूषण लगे हों ऐसे साक्षियों को कभी न करे क्योंकि ये लोभ प्रीति वैर स्मृति का नाश आदि से अन्यथा कहसकते हैं ६४ ॥

नसाक्षीनृपतिःकार्योनकारुककुशीलवौ । नश्रोत्रियोनलिंगस्थोनसंगेभ्योविनिर्गतः ६५ ॥

प० । न साक्षी नृपतिः कार्यः न कारुककुशीलवौ न श्रोत्रियः न लिंगस्थः न संगेभ्यः विनिर्गतः ॥

यो० । नृपतिः साक्षीन कार्यः कारुककुशीलवौ साक्षिणौ न कार्यौ श्रोत्रियः लिङ्गस्थः संगेभ्यः विनिर्गतः साक्षी न कार्यः ॥

भा० । राजा कारुक नट आदि वेद पाठी और ब्रह्मचारी संन्यासी इतने मनुष्यों को कभी भी साक्षी न करै ॥

ता० । राजाको इसलिये साक्षी न करे कि वह सबका प्रभु है साक्षी की रीति से वह पूछने को अयोग्य है और कारुक (कारीगर) कुशीलव (नट आदि) इनको भी इसलिये साक्षी न करे कि ये अपने काममें व्यग्र रहते हैं और धनके लोभ से अन्यथा भी कह सकते हैं और वेदपाठी को इसलिये साक्षी न करे कि वह भी अपने कर्म में व्यग्र रहता है और ब्रह्मचारी संन्यासी ये दोनों अपने कर्म में व्यग्र रहते हैं और संन्यासी ब्रह्मनिष्ठ इससे साक्षी के अयोग्य हैं और श्रोत्रिय पद देने से यह सूचित किया कि जो ब्राह्मण पठन और अग्निहोत्रमें व्यग्र नहीं हैं वे साक्षी हो सकते हैं ६५ ॥

नाध्यधीनोनवक्तव्योनदस्युर्नविकर्मकृत् । नवृद्धोनशिशुर्नैकोनान्त्योनविकलेन्द्रियः ६६

प० । न अध्यधीनः न वक्तव्यः न दस्युः न विकर्मकृत् न वृद्धः न शिशुः न एकः न अन्त्यः न विकलेन्द्रियः ॥

यो० । अध्यधीनः वक्तव्यः दस्युः विकर्मकृत् वृद्धः शिशुः एकः अंत्यःविकलेन्द्रियः साक्षी न कार्यः ॥

भा० । अत्यंत पराधीन जगत्में निंदित क्रूरकर्मका कर्त्ता और निषिद्धकर्मकारी वृद्ध बालक एकाकी अंत्यज इंद्रियोंसेहीन इतने मनुष्योंकी कभी भी साक्षी न ले ॥

ता० । अध्यधीन जो अत्यंत परतंत्र हो उसे गर्भदास कहते हैं--वक्तव्य जो शास्त्रोक्त कर्मकेत्याग से जगत्में निंदितहों--दस्यु जो कठोर कर्मोंकोकरे और निषिद्ध कर्मोंका करनेवाला ये सब इसलिये साक्षीनहीं करने कि इनको रागद्वेष होतेहैं--और वृद्ध इसलिये साक्षीनहीं करनाकि वृद्ध अवस्थामें प्रायः स्मृतिनहीं रहती बालक इसलिये साक्षी नहीं करनाकि उसको व्यवहारका ज्ञान नहींहोता और एकाकीको इसलिये साक्षीनहीं करना कि प्रवास गमन और मरणकी शंकाहोती है और पहिले कमसेकम तीनसाक्षी कहिआयेहैं और अंत्यजः (चांडालादि) इसलिये साक्षी नहींकरना कि उस-को कर्मोंकाज्ञान नहींहोता और विकलेंद्रिय (अंधाआदि) इसलिये साक्षीनहीं होते उनको देखने आदिके बिना यथार्थ ज्ञाननहींहोता अर्थात् इतने मनुष्योंकी साक्षीको राजा कदाचित् न माने ६६॥

नार्त्तोनमत्तोनोन्मत्तोनक्षुत्तृष्णोपपीडितः।नश्रमार्त्तोनकामार्त्तोनक्रुद्धोनापितस्करः ६७

प० । नँ आर्त्तः नँ मत्तः नँ उन्मत्तः नँ क्षुत्तृष्णोपपीडितः नँ श्रमार्त्तः नँः कामार्त्तः नँ क्रुद्धः नँ अपि तस्करः ॥

यो० । आर्त्तःमत्तः उन्मत्तः क्षुत्तृष्णोपपीडितः श्रमार्त्तः कामार्त्तः क्रुद्धः तस्करः अपि साक्षी न कार्यः ॥

भा० । आर्त्त-मत्त-उन्मत्त-क्षुधा और तृषासेपीडित-परिश्रम और कामदेवसे दुखी-क्रोधी चौर-इन सबको साक्षी न करे ॥

ता० । आर्त्त (बंधुआदिके विनाशसे दुखी) मत्त (मदिरा पीनेसे उन्मादि) उन्मत्त (भूत आदिकी पीडासेपीडित) क्षुधा और पिपासासे दुखी और मार्गके गमन आदिसेदुखी कामदेवसे पी-डित--क्रोधी और चोर इनको साक्षी नकरे इन सबमें चौर न करनेमें अधार्मिक हेतुहैं और आर्त्तआदि के न करनेमें बुद्धिकीहीनता हेतु है ६७ ॥

स्त्रीणांसाक्ष्यंस्त्रियःकुर्युर्द्विजानांसदृशाद्विजाः।शूद्राश्चसंतःशूद्राणामंत्यानामंत्ययोनयः ६८

प० । स्त्रीणां साक्ष्यं स्त्रियः कुर्युः द्विजानां सदृशाः द्विजाः शूद्राः चँ सन्तः शूद्राणां अंत्यानां अंत्ययोनयः ॥

यो० । स्त्रीणांसाक्ष्यंस्त्रियः द्विजानां साक्ष्यं सदृशाः द्विजाः शूद्राणां साक्ष्यं सन्तः शूद्राः अंत्यानांसाक्ष्यं अंत्ययोनयःकुर्युः ॥

भा० । स्त्रियोंकी साक्षी स्त्री और द्विजोंकीसाक्षी सजातिय द्विज और शूद्रोंकीसाक्षी श्रेष्ठशूद्र और अंत्यजों की साक्षी अंत्यजकरें ॥

ता० स्त्रियोंके परस्पर ऋणादान आदि व्यवहार में स्त्री और ब्राह्मण-क्षत्री-वैश्य इनके व्यवहा-रोंमें इनके सजातीय द्विज और शूद्रोंके व्यवहारमें साधुशूद्र चांडालआदि के व्यवहारमें चांडालआ-दि साक्षीहोते हैं अर्थात् जिसजातिके मनुष्यका व्यवहारहो उसीजातिका साक्षीहोता है यहबातकब है जबतक सजातीय साक्षीमिले और सजातीय के न मिलनेपर इस याज्ञवल्क्यके वचनानुसार विजातिय भी साक्षीहोतेहैं कि अपनेवर्णके अथवा सब वर्णोंमें सबसाक्षी होतेहैं ६८[1] ॥

---

१ यथाजाति यथावर्णं सर्वेसर्वेषुवास्मृताः ॥

अनुभावीतुयःकश्चित्कुर्यात्साक्ष्यंविवादिनाम्।अन्तर्वेश्मन्यरण्येवाशरीरस्यापिचात्यये६९

प० । अनुभावी तु यः कश्चित् कुर्यात् साक्ष्यं विवादिनाम् अन्तर्वेश्मनि अरण्ये वा शरीरस्य अपि च अत्यये ॥

यो० । अन्तर्वेश्मनि वा अरण्ये चपुनः शरीरस्य अत्यये (नाशे) यः कश्चित् अनुभावी सः विवादिनां साक्ष्यं कुर्यात् ॥

भा० । ता० । घरके भीतर अथवा वनमें और शरीर के उपघात (चोटलगनेपर) में जो कोई मिलसके वही विवाद वालों की साक्षी दे सकता है अर्थात् साक्षी पूर्वोक्त लक्षण न होने पर भी साक्षी होसकता है ६९ ॥

स्त्रियाप्यसंभवेकार्यंबालेनस्थविरेणवा।शिष्येणबन्धुनावापिदासेनभृतकेनवा ७० ॥

प० । स्त्रिया अपि असम्भवे कार्यं बालेन स्थविरेण वा शिष्येण बन्धुना वा अपि दासेन भृतकेन वा ॥

यो० । असंभवेसति स्त्रिया बालेन वा स्थविरेण शिष्येण अथवा बन्धुना दासेन वा भृतकेन साक्ष्यं कार्यम् ॥

भा० । ता० । यदि घरके भीतर आदि में पूर्वोक्त साक्षी न मिले तो स्त्री—बालक—वृद्ध—शिष्य—बन्धु—सेवक—भृतकभी साक्षी करसकते हैं ७० ॥

बालवृद्धातुराणांचसाक्ष्येषुवदतांमृषा । जानीयादस्थिरांवाचमुत्सिक्तमनसांतथा ७१

प० । बालवृद्धातुराणां च साक्ष्येषु वदतां मृषा जानीयात् अस्थिरां वाचं उत्सिक्तमनसां तथा ॥

यो० । बालवृद्धातुराणां तथा उत्सिक्तमनसां साक्ष्येषु मृषा वदतां (मनुष्याणां) वाचं अस्थिरां जानीयात् ॥

भा० । ता० । बालक—वृद्ध और रोगी और जिनका मन स्थिर न हो ऐसे मनुष्य जो साक्षी समय झूठ बोलें तो उनकी अस्थिर वाणी को (राजा) अनुमान से जान लें क्योंकि इस वचन से[1] वाणी आदि लिंगों से जानना कहा है ७१ ॥

साहसेषुचसर्वेषुस्तेयसंग्रहणेषु च । वाग्दण्डयोश्चपारुष्येनपरीक्षेतसाक्षिणः ७२ ॥

प० । साहसेषु च सर्वेषु स्तेयसंग्रहणेषु च वाग्दण्डयोः च पारुष्ये न परीक्षेत साक्षिणः ॥

यो० । राजा सर्वेषु साहसेषु चपुनः स्तेयसंग्रहणेषु चपुनः वाग्दण्डयोः पारुष्ये साक्षिणः न परीक्षेत ॥

भा० । ता० । गृहके दाह आदि सम्पूर्ण साहस के कर्मों में और स्तेय (चोरी) स्त्री आदिके संग्रहण में कठोर वचन कहने और कठोर दण्ड के देने में साक्षियों की परीक्षा न करे ७२ ॥

बहुत्वंपरिगृह्णीयात्साक्षिद्वैधेनराधिपः । समेषुतुगुणोत्कृष्टान्गुणिद्वैधेद्विजोत्तमान् ७३॥

प० । बहुत्वं परिगृह्णीयात् साक्षिद्वैधे नराधिपः समेषु तु गुणोत्कृष्टान् गुणिद्वैधे द्विजोत्तमान् ॥

यो० । साक्षिद्वैधे सति नराधिपः बहुत्वं—समेषु साक्षिषुसत्सु—गुणोत्कृष्टान्—गुणिद्वैधेसति द्विजोत्तमान् परिगृह्णीयात् ॥

भा० । साक्षियोंके विरोधमें राजाजो अधिक साक्षीकहें उसको और समान साक्षियोंके विरोधमें जो गुणी कहें उसको और गुणियों के भी विरोधमें जो अपनेकर्ममें तत्पर अथवा ब्राह्मणकहें उसको राजा प्रमाणकरें ॥

---

[1] वाग्भिर्विभावयेत् लिङ्गैः ॥

ता० । जहांपर परस्पर विरुद्ध साक्षी कहे वहां बहुत साक्षी ने जो कहाहो उसी को निर्णय के लिये राजा ग्रहणकरे और तुल्यही साक्षी विरुद्ध अर्थ को कहे तो गुणवाले के कथन को प्रमाण करे और यदि गुणवाले परस्पर विरुद्ध कहें तो जो द्विजों में उत्तम हैं अर्थात् अपने कर्म में सावधान होंउन्हींके कथनको इसे बृहस्पतिके वचनके अनुसार प्रमाण करे गोविंदराज तो यहकहते हैं कि गुणवालोंके विवादमें तो द्विजोत्तमों (ब्राह्मण) के वचनको प्रमाणकरें ७३ ॥

समक्षदर्शनात्साक्ष्यंश्रवणाच्चैवसिद्ध्यति। तत्रसत्यंब्रुवन्साक्षीधर्मार्थाभ्यांनहीयते७४॥

प०। समक्षदर्शनात् साक्ष्यं श्रवणात् च एव सिद्ध्यति तत्र सत्यं ब्रुवन् साक्षी धर्मार्थाभ्यां न हीयते ॥

यो० । समक्षदर्शनात् चपुनः श्रवणात् साक्ष्यंसिद्ध्यति तत्रसाक्षी सत्यं ब्रुवनसन् धर्मार्थाभ्यां न हीयते ॥

भा० । ता० । प्रत्यक्ष देखनेसे औ सुननेसे साक्षी सिद्धहोतेहैं अर्थात् देखनेयोग्य में देखनेसे और सुननेयोग्यमें सुनने से उससाक्षी में सत्य बोलताहुआ साक्षी धर्म अर्थ से हीननहीं होता अर्थात् सत्य वचनसे धर्मसे दंडका अभाव और दंडके अभावसे धनकी प्राप्ति होती है ७४ ॥

साक्षीदृष्टश्रुतादन्यद्विब्रुवन्नार्यसंसदि । अवाङ्नरकमभ्येतिप्रेत्यस्वर्गाच्चहीयते ७५ ॥

प० । साक्षी दृष्टश्रुतात् अन्यत् विब्रुवन् आर्यसंसदि अवाक् नरकं अभ्येति प्रेत्य स्वर्गात् च हीयते ॥

यो०। आर्यसंसदि दृष्टश्रुतात अन्यत् विब्रुवन साक्षी अवाक्सन नरकंअभ्येति चपुनः प्रेत्य स्वर्गात् हीयते ॥

भा० । ता० । सज्जनों की सभामें देखे और सुनेसे अन्य और विरुद्ध कहताहुआ साक्षी नीचेको मुखकिये नरकमें जाता है और परलोकमें किसी अन्य कर्मसे स्वर्गकी प्राप्तिरूप फलसे इसी पापसे हीन होजाता है ७५ ॥

यत्रानिबद्धोऽपीक्षेतशृणुयाद्वापिकिंचन। पृष्टस्तत्रापितद्ब्रूयाद्यथादृष्टंयथाश्रुतम् ७६

प० । यत्र अनिबद्धः अपि ईक्षेत् शृणुयात् वा अपि किंचन पृष्टः तत्र अपि तत् ब्रूयात् यथादृष्टं यथाश्रुतं ॥

यो० । अनिबद्धः अपि यत्र साक्षी यत् ईक्षेत् वा किंचन शृणुयात् तत्र अपि सपृष्टः सन तत् यथादृष्टं यथाश्रुतं ब्रूयात् ॥

भा० । ता० । इस विषयमें तू हमारा साक्षी होजाय इसप्रकार नहींकिया भी साक्षी जिस ऋणा-दान आदि व्यवहारको देखे वा कठोर वचनादि व्यवहारसुने उसे व्यवहार पूछाहुआ साक्षी अपने देखेसुनेके अनुसारही वर्णनकरे ७६ ॥

एकोऽलुब्धस्तुसाक्षीस्याद्बह्व्यःशुच्योऽपिनस्त्रियः।स्त्रीबुद्धेरस्थिरत्वात्तुदोषैश्चान्येपियेवृताः७७

प० । एकः अलुब्धः तु साक्षी स्यात् बह्व्यः शुच्यः अपि न स्त्रियः स्त्रीबुद्धेः अस्थिरत्वात् तु दोषैः च अन्ये अपि ये वृताः ॥

यो० । एकः अलुब्धः साक्षीस्यात् शुच्य. अपि बह्व्य स्त्रीबुद्धेः अस्थिरत्वात स्त्रियः साक्षिणः नस्युः अन्ये अपि येदोषैर्वृताः तेऽपि साक्षिणः नस्युः ॥

भा० । लोभसे हीन एकभी मनुष्य साक्षी होसकता है स्थिरबुद्धि न होनेसे शुद्ध बहुतसी भी स्त्री नहीं होसकती—और दोषोंसे युक्त अन्य मनुष्य भी साक्षी नहीं होसकते हैं ॥

ता० । लोभसेहीन एकभीमनुष्य साक्षहोसकताहै यहांपर अलुब्ध इहपदच्छेदकरना क्योंकि इसे

---

१ शुचिःक्रियश्चधर्मज्ञः साक्षीयत्रानुभूतवाक् । प्रमाणमेकोपिभवेत् साहसेषुविशेषतः ॥

व्यासजी के वचनानुसार वहीसाक्षी प्रमाण होता है—क्रिया में शुद्ध—धर्म का ज्ञाता जिसकी सत्य वाणी कभीदेखी है ऐसासाक्षी एकभी सर्वत्र विशेषकर साहसोंमें होसकता है मेधातिथि गोविंदराज ने तो यहांपर—एकोलुब्धस्त्वसाक्षीस्यात्—यहपाठ पढ़कर यहअर्थ किया है लोभी मनुष्य एकसाक्षी नहींहोता अर्थात् किसी अवस्थामें गुणि लोभहीन एकभी साक्षी होसकता है—और देहकी शुद्धिसे युक्त स्त्री इसलिये साक्षी ऋणादानआदि देखेहुये व्यवहारों में इसकारण से साक्षी नहीं होसकती कि उनकी बुद्धि स्थिरनहीं होती—और विनादेखे चोरी—कठोरवाणी—और कठंदण्डमें तो स्त्रियोंको भी साक्षहोना कहा है—और इतर मनुष्य जो चोरीआदि दोषोंसे युक्तहों वेभी देखेहुये व्यवहारों में साक्षी नहीं होसकते ७७ ॥

स्वभावेनैवयद्ब्रूयुस्तद्ग्राह्यंव्यावहारिकम् । अतोयदन्यद्विब्रूयुर्धर्मार्थंतदपार्थकम् ७८ ॥

प० । स्वभावेन एवं यत् ब्रूयुः तत् ग्राह्यं व्यावहारिकं अतः यत् अन्यत् विब्रूयुः धर्मार्थं तत् अपार्थकं ॥

यो० । साक्षिणः स्वभावेन यद्ब्रूयुः व्यावहारिकं तत् ग्राह्यं अतः अन्यत यत् विब्रूयुः धर्मार्थकं अपार्थकं तत् न ग्राह्यं ॥

भा० । ता० । जो साक्षी भयआदि के विना अपने स्वभाव से कहे व्यवहार के निर्णयके लिये उसको राजा ग्रहणकरे (मानै) और जो इससे अन्यथा साक्षी विरुद्धकरे धर्मके लिये वह उनका कथन मिथ्याहै अर्थात् उसको (राजा) ग्रहण न करे ७८ ॥

सभान्तःसाक्षिणःप्राप्तानर्थिप्रत्यर्थिसन्निधौ । प्राड्विवाकोऽनुयुञ्जीतविधिनानेनसान्त्वयन् ७९ ॥

प० । सभांतः साक्षिणः प्राप्तान् अर्थिप्रत्यर्थिसंनिधौ प्राड्विवाकः अनुयुंजीत विधिना अनेन सांत्वयन् ॥

यो० । अर्थिप्रत्यर्थिसंनिधौ सभांतः प्राप्तान साक्षिणः अनेनविधिना सांत्वयन सन प्राड्विवाकः अनुयुंजीत (पृच्छेत्)॥

भा० । ता० । अर्थि और प्रत्यर्थि (मुद्दई मुद्दआअलेह) की संनिधिमें सभाके बीच आयेहुये साक्षियोंको इसविधि (जो आगेकहेंगे) से शांतकरता प्राड्विवाक (राजाका अधिकारी ब्राह्मण जाति वकील) पूंछे ७९ ॥

यद्द्वयोरनयोर्वेत्थकार्येऽस्मिन्चेष्टितंमिथः । तद्ब्रूतसर्वंसत्येनयुष्माकंह्यत्रसाक्षिता ८० ॥

प० । यत् द्वयोः अनयोः वेत्थ कार्ये अस्मिन् चेष्टितं मिथः तत् ब्रूत सर्वं सत्येन युष्माकं हि अत्र साक्षिता ॥

यो० । अस्मिनकार्ये यत् अनयोः द्वयोः मिथः चेष्टितं यत् यूयं वेत्थ तत्सर्वं सत्येन ब्रूत हि (यतः) अत्र (कार्ये) युष्माकं साक्षिता (अस्ति) ॥

भा० । ता० । इनदोनों वादीविवादियों का परस्पर चेष्टित जो तुम जानतेहो उससबको सत्य से कहो क्योंकि इसकार्यमें तुम्हारी साक्षीहै ८० ॥

सत्यंसाक्ष्येब्रुवन्साक्षीलोकानाप्नोतिपुष्कलान् । इहचानुत्तमांकीर्तिंवागेषाब्रह्मपूजिता ८१ ॥

प० । सत्यं साक्ष्ये ब्रुवन् साक्षी लोकान् आप्नोति पुष्कलान् इह च अनुत्तमां कीर्तिं वाक् एषा ब्रह्मपूजिता ॥

यो० । साक्ष्ये सत्यं ब्रुवन् (सन्) साक्षी पुष्कलान् लोकान् चपुनः इह अनुत्तमांकीर्तिं आप्नोति (यतः) एषा (सत्यरूपा) वाक् ब्रह्मपूजिता (अस्ति) ॥

भा० । ता० । साक्षिदेने में सत्यबोलताहुआ साक्षी ब्रह्मलोक आदि उत्तम लोकोंको और इस लोक में सबसे उत्तम कीर्ती को प्राप्त होताहै यह वाणी अर्थात् यह बात ब्रह्माकी भी पूजितहै ८१ ॥

साक्ष्येऽनृतंवदन्पाशैर्बद्ध्यतेवारुणैर्भृशम्।विवशःशतमाजातीस्तस्मात्साक्ष्यंवदेदृतम्८२॥

प० । साक्ष्ये अनृतं वदन् पाशैः बद्ध्यते वारुणैः भृशं विवशः शतं आजातीः तस्मात् साक्ष्यं वदेत् ऋतं ॥

यो० । यस्मात् साक्ष्ये अनृतं वदन् (पुरुषः) शतं आजातीः(यावत् शतं जन्मानि) विवशः भृशं वारुणैः पाशैः बद्ध्यते तस्मात् ऋतं साक्ष्यं वदेत् ॥

भा० । ता० । साक्षी देनेमें झूठ बोलताहुआ साक्षी परवश होकर सौ जन्म पर्यंत वरुणकी पाशों (जलोदरादि) से पीड़ित होताहै तिससे साक्षी सत्यही बोले ८२ ॥

सत्येनपूयतेसाक्षीधर्मःसत्येनवर्द्धते । तस्मात्सत्यंहिवक्तव्यंसर्ववर्णेषुसाक्षिभिः ८३ ॥

प० । सत्येन पूयते साक्षी धर्मः सत्येन वर्द्धते तस्मात् सत्यं हि वक्तव्यं सर्ववर्णेषु साक्षिभिः ॥

यो० । यस्मात् सत्येन साक्षी पूयते-सत्येन धर्मःवर्द्धते-तस्मात् सर्ववर्णेषु साक्षिभिः सत्यं वक्तव्यम् ॥

भा० । ता० । सत्य से पहिले संचित किये हुये पाप से भी साक्षी छुटता है और इसका सत्य से धर्म बढ़ता है-तिससे संपूर्ण वर्णों के विषय साक्षी सत्यही बोले ८३ ॥

आत्मैवह्यात्मनःसाक्षीगतिरात्मातथात्मनः।मावमंस्थाःस्वमात्मानंनृणांसाक्षिणमुत्तमम् ८४॥

प० । आत्मा एव आत्मनः साक्षी गतिः आत्मा तथा आत्मनः मा अवमंस्थाः स्वं आत्मानं नृणां साक्षिणं उत्तमम् ॥

यो० । यस्मात् आत्मनः साक्षी आत्मा एव तथा आत्मनः गतिः आत्मा (अस्ति) तस्मात् नृणां उत्तमं साक्षिणं स्वं आत्मानं मा अवमंस्थाः ॥

भा० । ता० । आत्माही अपने आत्माकी साक्षी है-और अपने आत्माकी गति भी आत्माही है तिससे मनुष्योंके मध्यमें उत्तम साक्षी जो अपना आत्मा उसका अपमान झूठ बोलकर मतकरे ८४॥

मन्यन्तेवैपापकृतोनकश्चित्पश्यतीतिनः।तांस्तुदेवाःप्रपश्यन्तिस्वस्यैवान्तरपूरुषः ८५

प० । मन्यंते वै पापकृतः न कश्चित् पश्यति इति नः तान् तु देवाः प्रपश्यंति स्वस्य एव अंतरपूरुषः ॥

यो० । नः (अस्मान्) कश्चित् न पश्यति इति पापकृतः मन्यंते तान् (पापिनः) देवाः प्रपश्यंति स्वस्य एव अंतरपूरुषः प्रपश्यति ॥

भा० । ता० । पाप करनेवाले मनुष्य यह मानते हैं कि हमको कोई नहीं देखता परन्तु उनको देवता (जो आगे कहेंगे) जो अपना अंतरात्मा देखता है ८५ ॥

द्यौर्भूमिरापोहृदयंचन्द्रार्काग्नियमानिलाः।रात्रिःसंध्येचधर्मश्चवृत्तज्ञाःसर्वदेहिनाम्८६

प० । द्यौः भूमिः आपः हृदयं चंद्रार्काग्नियमानिलाः रात्रिः संध्ये च धर्मः च वृत्तज्ञाः सर्वदेहिनाम् ॥

यो० । द्यौः-भूमिः-आपः-हृदयं-चंद्रार्काग्नियमानिलाः रात्रिः-चपुनः संध्ये धर्मः-(एते) सर्वदेहिनां वृत्तज्ञाः सन्ति ॥

भा० । ता० । स्वर्ग भूमि जल हृदय (जीव) चन्द्रमा सूर्य अग्नि यमराज पवन रात्रि दोनों संध्या और धर्म ये सब देहधारियों के शुभ और अशुभ कर्मों के जानने वाले हैं-अर्थात् सब प्राणियों के शुभाशुभ को देखते हैं स्वर्ग आदिक मनुष्यों के आचरण के ज्ञाता इसे वेद के वचनानुसार होतेहैं कि स्वर्ग आदिकोंकी कोई देवता अधिष्ठातृ (स्वामिनि) होतीहैं और वह देह में किसी एक स्थान में टिकीहुई सब वृत्तान्त को जानती हैं ८६ ॥

देवब्राह्मणसान्निध्येसाक्ष्यंपृच्छेदृतंद्विजान।उदङ्मुखान्प्राङ्मुखान्वापूर्वाह्णेवैशुचिःशुचीन्८७

प० । देवब्राह्मणसांनिध्ये साक्ष्यं पृच्छेत् ऋतं द्विजान् उदङ्मुखान् प्राङ्मुखान् वा पूर्वाह्णे वै शुचिः शुचीन् ॥

यो० । देवब्राह्मणसांनिध्ये उदङ्मुखान वा प्राङ्मुखान शुचीन द्विजान शुचिः (प्राड्विवाक) पूर्वाह्णे ऋतं साक्ष्यं पृच्छेत् ॥

भा० । ता० । शुद्ध प्राड्विवाक देवता और ब्राह्मणके समीप उत्तर अथवा पूर्वदिशाको मुख किये बैठे जो शुद्ध द्विज उनको पूर्वाह्ण कालमें ऋत (जैसीकी तैसी) साक्षी को पूंछे ८७ ॥

ब्रूहीतिब्राह्मणंपृच्छेत्सत्यंब्रूहीतिपार्थिवम्।गोबीजकांचनैर्वैश्यंशूद्रंसर्वैस्तुपातकैः ८८

प० । ब्रूहि इति ब्राह्मणं पृच्छेत् सत्यं ब्रूहि इति पार्थिवं गोबीजकांचनैः वैश्यं शूद्रं सर्वैः तु पातकैः ॥

यो० । ब्रूहि इति शब्दं उच्चार्य ब्राह्मणं सत्यं ब्रूहि इति पार्थिवं गोबीजकांचनैः वैश्यं सर्वैः पातकैः शूद्रं प्राड्विवाकःसाक्ष्यं पृच्छेत् ॥

भा० । ता० । ब्रूहि (कहिये) इस शब्दको कहकर ब्राह्मणको और सत्य कहिये यह कहकर क्षत्री को और गौ बीज सोना इनकी चोरी से जो पाप होताहै वही पाप झूठ बोलनेपर तुमकोहोगा यह कहकर वैश्यको और यदि झूठबोलेगा तो सम्पूर्ण पातकोंका दोष तुझेहोगा यह कहकर शूद्रको प्राड्विवाक पूंछे ८८ ॥

ब्रह्मघ्नोयेस्मृतालोकायेचस्त्रीबालघातिनाम्।मित्रद्रुहःकृतघ्नस्यतेतेस्युर्ब्रुवतोमृषा८९

प० । ब्रह्मघ्नः ये स्मृताः लोकाः ये च स्त्रीबालघातिनां मित्रद्रुहः कृतघ्नस्य ते ते स्युः ब्रुवतः मृषा ॥

यो० । ये लोकाः ब्रह्मघ्नः पुनः ये लोकाः स्त्रीबालघातिनां मित्रद्रुहः कृतघ्नस्य ये लोकाः भवंति ते ते लोकाः मृषा ब्रुवतः पुरुषस्य स्युः ॥

भा० । ता० । ब्राह्मणके और स्त्री बालकके मारने वालोंको और मित्रके द्रोही कृतघ्नको जो जो लोक होते हैं वे वे सब लोक झूठ साक्षी बोलने वाले को होते हैं ८९ ॥

जन्मप्रभृतियत्किञ्चित्पुण्यंभद्रत्वयाकृतम्।तत्तेसर्वंशुनोगच्छेद्यदिब्रूयास्त्वमन्यथा९०

प० । जन्मप्रभृति यत् किंचित् पुण्यं भद्र त्वया कृतं तत् ते सर्वं शुनः गच्छेत् यदि ब्रूयाः त्वं अन्यथा ॥

---

१ दिवादीनांचाधिष्ठातृदेवतास्ति साचशरीरिण्येकत्रावस्थिता तत्सर्वजानाति-

यो० । यदि त्वं अन्यथा ब्रूयाः तर्हि हे भद्र यत्किंचित् पुण्यं जन्मप्रभृति त्वया कृतं तत्सर्वं ते पुण्यं शुनः गच्छेत् ॥

भा०।ता०। हे भद्र (शुभ कर्म करने वाला) जो तू अन्यथा कहेगा तो जो कुछ पुण्य जन्म से लेकर तैंने कियाहै वह सम्पूर्ण तेरा पुण्य श्वानों (कुत्तों) को प्राप्त हो जायगा ९० ॥

एकोहमस्मीत्यात्मानंयत्त्वंकल्याणमन्यसे।नित्यंस्थितस्तेहृद्येषपुण्यपापेक्षितामुनिः ९१

प० । एकः अहं अस्मि इति आत्मानं यत् त्वं कल्याण मन्यसे नित्यं स्थितः ते हृदि एषः पुण्यपापेक्षिता मुनिः ॥

यो० । हे कल्याण यत् त्वं अहं एकः अस्मि इति आत्मानं मन्यसे (तन्मामंस्थाः) कुतः ते हृदि पुण्यपापेक्षिता मुनिः नित्यं स्थितः अस्ति ॥

भा० । जो तू अपने आत्माको यह मानता है कि मैं एकहूं सो ठीक नहीं क्योंकि तेरे हृदय में पुण्य पापका देखने वाला यह परमात्मा सदैव स्थित है ॥

ता० । हे भद्र मैं अकेलाही जीवात्माहूँ ऐसे जो तू मानताहै ऐसे मत मान क्योंकि तेरे हृदय में पुण्य और पापोंका देखनेवाला सर्वज्ञ परमात्मा सदैव स्थित है क्योंकि इस श्रुति के अनुसार इस देहमें दो पक्षी ऐसे रहते हैं जो सदैव संग रहें और परस्पर मित्र हैं और एकही जिनके रहने का वृक्ष (देह) है उन दोनोंमें एक (जीव) कर्म के फलको स्वादता से भोगता है और उनमें दूसरा (परमात्मा) कर्मके फलको नहीं भोगता हुआ जीवात्मा का साक्षी रहताहै ९१॥

यमोवैवस्वतोदेवोयस्तवैषहृदिस्थितः।तेनचेदविवादस्तेमागंगांमाकुरून्गमः ९२

प० । यमः वैवस्वतः देवः यः तव एषः हृदि स्थितः तेन चेत् अविवादः ते मा गंगां मा कुरून् गमः ॥

यो० । यः एषः यमः वैवस्वतः देवः तव हृदि स्थितः चेत (यदि) तेन सह ते अविवादः (अस्ति) तर्हि गंगां वा कुरून् मा गमः—मा याहि ॥

भा० । सबका नियामक और दण्डका दाता जो यह परमात्मा देव तेरे हृदयमें स्थित है यदि उसके संग तेरा विवाद नहीं है तो गंगा और कुरुक्षेत्रमें पाप दूर करने को मत जा ॥

ता० । जो यह देव सबका नियामक और दण्ड देनेवाला देवता (परमात्मा) तेरे हृदय में स्थितहै उसके संग यदि तेरा अविवाद है अर्थात् यथार्थ कथने से उसके संग तू विवाद नहीं करैगा तो सत्य बोलने करिके निष्पाप और कृतकृत्य हुआ तू गंगाजी और कुरुक्षेत्र में झूठ बोलने से हुये पापकी निवृत्ति के लिये मतजा अर्थात् मनुजीने कहाहुआ जो सत्य वही गंगाजी कुरुक्षेत्र के समान मत्स्यपुराणमें इस वचनसे प्रकट किया है कि जहां कहीं स्नान करने से गंगाजी कुरुक्षेत्र के तुल्यहैं यदि तू अन्यथा कहेगा तेरा अन्तर्यामी परमात्मा अन्यथा जानता है तो अन्तर्यामि परमात्मा संग विवाद होजायगा यहांपर मेधातिथि गोविन्दराज तो यह अर्थ करते हैं कि सूर्यका पुत्र जो दक्षिण दिशाका पति यमराज है वह जगत्के द्वारा सुनने से तेरे हृदयमें प्रकाश

१ द्वासुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥
२ कुरुक्षेत्रसमागंगा यत्रतत्रावगाहिता इति ॥

कररहाहै जो उसके संग अधर्मको करिकै तू विवाद नहीं करेगा तो पाप दूरकरनेके लिये गंगा और कुरुक्षेत्र में जानेकी आवश्यकता न पड़ेगी ९२ ॥

नग्नोमुण्डःकपालेनभिक्षार्थीक्षुत्पिपासितः।अन्धःशत्रुकुलंगच्छेद्यःसाक्ष्यमनृतंवदेत्९३

प०। नग्नः मुण्डः कपालेन भिक्षार्थी क्षुत्पिपासितः अन्धः शत्रुकुलं गच्छेत् यः साक्ष्यं अनृतं वदेत्॥

यो० । यः पुरुषः अनृतं साक्ष्यं वदेत् सः नग्नः मुंडः कपालेन उपलक्षितः भिक्षार्थी क्षुत्पिपासितः अन्धः (सन्) शत्रुकुलं गच्छेत् ॥

भा० । ता० । जो मनुष्य झूठी साक्षी कहताहै वह नग्न (नंगा) मुण्ड कपाललिये भूखा और प्यासा और अन्ध होकर भिक्षाके लिये अगिले जन्म वा इसी जन्ममें शत्रुके कुलमें जाता है ९३ ॥

अवाक्शिरास्तमस्यन्धेकिल्बिषीनरकंव्रजेत्।यःप्रश्नंवितथंब्रूयात्पृष्टःसन्धर्मनिश्चये९४

प०। अवाक्शिराः तमसि अन्धे किल्बिषी नरकं व्रजेत् यः प्रश्नं वितथं ब्रूयात् पृष्टः सन् धर्मनिश्चये

यो० । धर्मनिश्चये पृष्टः सन् यः पुरुषः वितथं प्रश्नं ब्रूयात् सः किल्बिषी अवाक्शिराः सन् अन्धे तमसि व्रजेत् ॥

भा० । ता० । जो पुरुष धर्मनिश्चय के पूछने पर प्रश्न को झूठा कहता है अर्थात् मिथ्या बोलता है वह पापी पुरुष महान् अन्धकार में जो नरक उसमें जाता है ९४ ॥

अन्धोमत्स्यानिवाश्नातिसनरःकण्टकैःसह।योभाषतेऽर्थवैकल्यमप्रत्यक्षंसभांगतः९५॥

प० । अन्धः मत्स्यान् इव अश्नाति सः नरः कंटकैः सह यः भाषते अर्थवैकल्यं अप्रत्यक्षं सभां गतः ॥

यो० । यः सभांगतः पुरुषः अप्रत्यक्षं अर्थवैकल्यं भाषते अन्धः सः नरः कंटकैः सह मत्स्यान् इव अश्नाति ॥

भा० । ता० । राजा की सभामें प्राप्त हुआ जो मनुष्य विना देखे यथार्थ के अयथार्थ अभिप्राय को धन आदि के लोभ से अन्यथा कहता है वह मनुष्य इस प्रकार सुखबुद्धी से प्रवर्त्त हुआ दुःखही को भोगता है जैसे अन्धा मनुष्य कांटों समेत मत्स्यों को भक्षण करता है ९५ ॥

यस्यविद्वान्हिवदतःक्षेत्रज्ञोनाभिशङ्कते।तस्मान्नदेवाःश्रेयांसंलोकेऽन्यंपुरुषंविदुः९६॥

प० । यस्य विद्वान् हि वदतः क्षेत्रज्ञः न अभिशंकते तस्मात् न देवाः श्रेयांसं लोके अन्यं पुरुषं विदुः ॥

यो० । वदतः यस्य पुरुषस्य—विद्वान् क्षेत्रज्ञः न अभिशंकते तस्मात् अन्यं पुरुषं लोके श्रेयांसं देवाः नविदुः—न जानन्ति ॥

भा० । ता० । कहते हुये जिससे सर्वज्ञ अन्तर्यामी यह शंका नहीं करता कि सत्य कहता है कि झूठ किन्तु सत्यही कहता है यह अन्तर्यामीको जिसका निश्चय है जगत् में उससे अन्य पुरुष को अत्यन्त श्रेष्ठ देवता नहीं जानते अर्थात् उसी को सर्वोत्तम जानते हैं ९६ ॥

यावतोबान्धवान्यस्मिन्हन्तिसाक्ष्येऽनृतंवदन्।तावतःसंख्ययातस्मिन्शृणुसौम्यानुपूर्वशः९७॥

प० । यावतः बांधवान् यस्मिन् हन्ति साक्ष्ये अनृतं वदन् तावतः संख्यया तस्मिन् शृणु सौम्य अनुपूर्वशः ॥

यो० । साक्ष्ये अनृतं वदन् सन पुरुषः यस्मिन् साक्ष्ये यावतः बांधवान् हन्ति तस्मिन् संख्यया तावतः हे सौम्य त्वं अनुपूर्वशः शृणु ॥

भा० । ता० । जिस वस्तुकी साक्षी में झूठ बोलता हुआ मनुष्य जितने बांधवों को नष्ट करता है अर्थात् नरक में गेरता है उस साक्षी में गिनती से उतनों कोही हे सौम्य क्रम से कहे हुयेन को तू सुन ९७ ॥

पञ्चपश्वनृतेहन्तिदशहन्तिगवानृते। शतमश्वानृतेहन्तिसहस्रंपुरुषानृते ९८ ॥

प० । पंच पश्वनृते हन्ति दश हन्ति गवानृते शतं अश्वानृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते ॥

यो० । पश्वनृते पंच हन्ति गवानृते दश हन्ति --अश्वानृते शतं हन्ति --पुरुषानृते सहस्रं हन्ति ॥

भा० । ता० । पशुके विषे झूठ बोलने से पांच बांधवों को और गौ के झूठ बोलने पर दश बांधवों को–और घोडे के झूठ बोलने पर सौ बांधवों को और पुरुष के झूठ बोलने के लिये हजार बांधवों को (नष्ट करता है) अर्थात् नरक में पहुंचाता है ९८ ॥

हन्तिजातानजातांश्चहिरण्यार्थेनृतंवदन्। सर्वंभूम्यनृतेहन्तिमास्मभूम्यनृतंवदीः ९९ ॥

प० । हन्ति जातान् अजातान् च हिरण्यार्थे अनृतं वदन् सर्वं भूम्यनृते हन्ति मा स्म भूम्यनृतं वदीः ॥

यो०। हिरण्यार्थे अनृतंवदन पुरुषः जातान् नपुनः अजातान हंति भूम्यनृते सर्वं हंति तस्मात् त्वं भूम्यनृतं मास्म वदीः॥

भा० । ता० । सोने के निमित्त झूठको बोलताहुआ मनुष्य पैदाहुये पुत्र आदिकोंको नरक में पहुंचाता है और आप इनकी हत्या के दोषको प्राप्त होताहै पृथ्वी के विषय में झूठ बोलताहुआ मनुष्य संपूर्ण प्राणियों की हत्या के दोषको प्राप्त होताहै ९९ ॥

अप्सुभूमिवदित्याहुःस्त्रीणांभोगेचमैथुने। अब्जेषुचैवरत्नेषुसर्वेष्वश्ममयेषुच १०० ॥

प० । अप्सु भूमिवत् इति आहुः स्त्रीणां भोगे च मैथुने अब्जेषु च एव रत्नेषु सर्वेषु अश्ममयेषु च ॥

यो० । अप्सु चपुनः स्त्रीणां मैथुनं भोगे चपुनः अब्जेषु अश्ममयेषु चपुनः सर्वेषुरत्नेषु भूमिवत् दोषो (भवति) इति बुधाः आहुः ॥

भा० । ता० । तडाग–कूप आदि के जलके ग्रहण में स्त्रियों के मैथुनरूपी भोगमें और जलसे पैदाहुये (मोती आदि) और पाषाण (वैडूर्य आदि) के संपूर्ण रत्नों में झूठ बोलताहुआ मनुष्य भूमि के समान दोष को प्राप्त होता है अर्थात् सम्पूर्ण प्राणियों की हत्या के दोष का भागी होता है १०० ॥

एतान्दोषानवेक्ष्यत्वंसर्वाननृतभाषणे। यथाश्रुतंयथादृष्टंसर्वमेवाञ्जसावद १०१ ॥

प० । एतान् दोषान् अवेक्ष्य त्वं सर्वान् अनृतभाषणे यथा श्रुतं यथा दृष्टं सर्वं एव अंजसा वद ॥

यो० । अनृतभाषणे एतान् दोषान् अवेक्ष्य यथाश्रुतं यथादृष्टं एव सर्वं अंजसा त्वं वद ॥

भा० । ता० । झूठ बोलने में इन पूर्वोक्त दोषों को देखकर जैसा तैं सुना है और जैसा देखा है उस सब को तू यथार्थ कह दे १०१ ॥

गोरक्षकान्वाणिजिकांस्तथाकारुकुशीलवान्। प्रेष्यान्वार्द्धुषिकांश्चैवविप्रान्शूद्रवदाचरेत् १०२

प० । गोरक्षकान् वाणिजिकान् तथा कारुकुशीलवान् प्रेष्यान् वार्द्धुषिकान् च एव विप्रान् शूद्रवत् आचरेत् ॥

यो० । राजा गोरक्षकान्–वाणिजिकान् तथा कारुकुशीलवान् प्रेष्यान् वार्द्धुषिकान् विप्रान् शूद्रवत् आचरेत् पृच्छेत् ॥

भा० । ता० । गौओं की रक्षा से जीने वाले और व्यापारी और कारु (कारीगर) कुशीलव और प्रैष्य (दास) और वार्द्धुषिक (व्याज लेने वाले) इतने ब्राह्मणों को राजा साक्षी के विषे शूद्र के समान पूछे १०२ ॥

तद्वदन्धर्मतोऽर्थेषुजानन्नप्यन्यथानरः । नस्वर्गाच्च्यवतेलोकाद्दैवींवाचंवदन्तिताम् १०३

प० । तत् वदन् धर्मतः अर्थेषु जानन् अपि अन्यथा नरः न स्वर्गात् च्यवते लोकात् दैवीं वाचं वदन्ति ताम् ॥

यो० । तस्मात् अन्यथा जानन् अपि नरः अर्थेषु धर्मतः वदन् सन् स्वर्गात् लोकात् न च्यवते यस्मात् तां वाचं मन्वादयो दैवीं वदंति ॥

भा० । ता० । तिससे अन्यथा जानता हुआ भी मनुष्य व्यवहारों में धर्म से (दया आदि) अन्यथा कहता हुआ स्वर्ग लोक से भ्रष्ट नहीं होता अर्थात् स्वर्ग में जाता है–क्योंकि धर्म के लिये इस वाणी (झूठी) को भी दैवी (देवताओं की) वाणी मनु आदि कहते हैं और वह झूठी वाणी इतने स्थानों में कहनी कि १०३ ॥

शूद्रविट्क्षत्रविप्राणांयत्रर्तोक्तौभवेद्वधः । तत्रवक्तव्यमनृतंतद्धिसत्याद्विशिष्यते १०४॥

प० । शूद्रविट्क्षत्रविप्राणां यत्र ऋतोक्तौ भवेत् वधः तत्र वक्तव्यं अनृतं तत् हि[1] सत्यात् विशिष्यते ॥

यो० । यत्र ऋतोक्तौ सत्यां शूद्रविट्क्षत्रविप्राणां वधः भवेत् तत्र अनृतं वक्तव्यं–हि (यतः) तत् (अनृतं) सत्यात् विशिष्यते (अतिरिच्यते) ॥

भा० । जहां सत्यहोनेपर चारों वर्णोंका वध (हत्या) होता हो वहांपर झूठको बोले क्योंकि वह झूठ सत्य से उत्तम होता है ॥

ता० । जिस व्यवहार में सत्य बोलने से शूद्र–वैश्य–क्षत्री–ब्राह्मणों का वध होता है उसव्यवहार में झूठ भी बोलदे क्योंकि उस व्यवहार में झूठ भी प्राणों की रक्षा करने से सत्यसे अधिक होता है परन्तु यह झूठ बोलना प्राणियों की रक्षा के लिये उसी समय कहा है कि जब प्रमाद से कोई अधर्म चारो वर्णो पै बनपरे–और अत्यन्त अधर्मी चौर आदि चारो वर्णो के अधर्मी होने पर तो प्राणों की रक्षा के होने पर भी झूठ न बोले–क्योंकि इस गौतम ऋषि के वचनानुसार यह प्रतीत होता है कि यदि झूठ से किसीका जीवन होताहो तो झूठ बोलनेमें दोष नहीं–और यदि झूठ से पापी का जीवन होता हो तो झूठ बोलने में दोष है–इसमें कोई यह विरोध देते हैं कि मनु जीही आगे लिखेंगे सम्पूर्ण पापों में टिकेहुये भी ब्राह्मण को कदाचित् न हने तो यहां पर कैसे ब्राह्म-

१ नानृत वदने दोषो यज्जीवनं चेत् तदधीनं नतुपापीयसो जीवनम् ॥

ण का वध कहा यह विरोध ठीक नहीं क्योंकि राजा का दण्ड अत्यन्त उग्र (निठुर) होता है इस से कभी राजा ब्राह्मण को भी दण्ड दे सकता है इस श्लोक में पहिले पढ़ने योग्य विप्र आदि क्रम को त्यागकरि शूद्र आदि क्रम से इसलिये चारो वर्णों को पढ़ा है कि इसमें शूद्र आदि के वध का वर्णन अमांगलिक है १०४ ॥

वाग्दैवत्यैश्चचरुभिर्यजेरंस्तेसरस्वतीम्।अनृतस्यैनसस्तस्यकुर्वाणानिष्कृतिंपराम्॥१०५॥

प० । वाग्दैवत्यैः च चरुभिः यजेरन् ते सरस्वतीं अनृतस्य एनसः तस्य कुर्वाणाः निष्कृतिं पराम् ॥

यो० । तस्य अनृतस्य एनसः परां निष्कृतिं कुर्वाणाः ते वाग्दैवत्यैः चरुभिः सरस्वतीं यजेरन ॥

भा० । चारो वर्णों की जीवरक्षा के लिये झूठ बोलने वाले वे मनुष्य झूठरूपी पापके प्रायश्चित्त करने के लिये वाणी है देवता जिनका ऐसी साकल्यों से सरस्वती का पूजन करें अर्थात् सरस्वती के मन्त्रों से होम करें ॥

ता० । झूठ बोलनेवाले साक्षी उस झूठ रूपी पापका उत्तम प्रायश्चित्त करनेवाले वेसाक्षी वाणी है देवता जिनका ऐसेचरु (साकल्य) ओं से सरस्वती का पूजन करें यह बात तब होती है जब साक्षी बहुत हों यदि एकही साक्षी हो तो उसके बहुत चरु नहीं हो सकते क्योंकि कपिञ्जलाधिकरण न्याय से कम से कम तीन चरु आवश्यक हैं—यद्यपि वाग्दैवत्यैः इस पद का यह अर्थ होनेसे कि वाणी है देवता जिनका ऐसे चरुओं से पूजनकरे वाणी को देवतात्व सिद्ध होता है सरस्वती शब्दसे नहीं होता क्योंकि विधि शब्द (विधानका बोधक यजेरन् आदि) जब मंत्र में होता है तो इसे मीमांसाके न्यायसे उसका अर्थ भाव होजाता है जैसा कि देवता पद का भाव देवतात्वरूप धर्म होता है इससे इस श्लोक में सरस्वती व्यर्थ है—तथापि इस श्रुतिसे वाक् और सरस्वती का एक अर्थ होने से सरस्वती पदको मनुजीने इस श्लोक में दिया है और इस प्रकरणमें यह प्रायश्चित्त का कथन लाघव के लिये है—क्योंकि जो आगे प्रायश्चित्त प्रकरण में कहते तो शूद्र और वैश्य क्षत्री—और ब्राह्मण इनके वध में जो झूठबोले यहभी दुबारा प्रायश्चित्त प्रकरणमें मनुजी को पढ़ना पड़ता १०५ ॥

कूष्मांडैर्वापिजुहुयाद्घृतमग्नौयथाविधि।उदित्यृचावावारुण्यात्र्यृचेनाब्दैवतेनवा१०६

प० । कूष्मांडैः वा अपि जुहुयात् घृतं अग्नौ यथाविधि उदित्यृचा वा वारुण्या त्र्यृचेन अब्दैवतेन वा

यो० । अथवा कूष्मांडैः वा वारुण्या उत् (इतिऋचा वा अब्दैवतेनत्र्यृचेन यथाविधि अग्नौघृतं पूर्वोक्तानृतवादी जुहुयात्॥

भा० । ता० । पूर्वोक्त झूठकाबोलनेवाला मनुष्य कूष्मांड मन्त्रोंसे अथवा वरुणके उत्इस ऋचा

---

१ कपिंजलानालभेत— यहां पर कपिंजलान च इस बहुवचन से तीन कपिंजल लिये जाते हैं ॥
२ विधिशब्दस्यमंत्रत्वेभावःस्यात् ॥
३ वाग्वैसरस्वती ॥
४ यद्देवादेवहेडमित्यादयः ॥
५ उदुत्तमंवरुणपाशमस्मदवाधमं गृथेयः आदित्यव्रतेत वानागसो अदितये स्यामस्वाहा ॥

से अथवा जल है देवता जिसका ऐसे त्र्यृचं (तीन ऋचा) से शास्त्रोक्त विधि के अनुसार अग्नि में होम करे १०६ ॥

त्रिपक्षादब्रुवन्साक्ष्यमृणादिषुनरोऽगदः । तदृणंप्राप्नुयात्सर्वंदशबंधंचसर्वतः १०७ ॥

प० । त्रिपक्षात् अब्रुवन् साक्ष्यं ऋणादिषु नरः अगदः तत् ऋणं प्राप्नुयात् सर्वं दशबंधं च सर्वतः ॥

यो० । अगदःनरः त्रिपक्षात् ऋणादिषु साक्ष्यं अब्रुवन यदि भवतितर्हि तत्सर्वं ऋणं उत्तमर्णः प्राप्नुयात् चपुनः सर्वतः दशबंधं (दशमभागं) राज्ञोदद्यात् ॥

भा० । ता० । यदि नीरोग मनुष्य तीन पक्ष पर्यन्त ऋण आदि व्यवहारों में साक्षी को न कहे तो उस सम्पूर्ण ऋण को उत्तमर्ण को दे और उस सम्पूर्ण ऋण के धन में से दशवां भाग राजा को दे १०७ ॥

यस्यदृश्येतसप्ताहादुक्तवाक्यस्यसाक्षिणः । रोगोऽग्निर्ज्ञातिमरणमृणंदाप्योदमंचसः १०८

प० । यस्य दृश्येत सप्ताहात् उक्तवाक्यस्य साक्षिणः रोगः अग्निः ज्ञातिमरणं ऋणं दाप्यः दमं च सः ॥

यो० ।यस्य उक्तवाक्यस्य साक्षिणः सप्ताहात् रोगः अग्निः ज्ञातिमरणं दृश्येत सःसाक्षी राज्ञाऋणं चपुनः दमं दाप्यः॥

भा० । ता० । दीहै साक्षी जिसने ऐसे जिस साक्षी के सातदिनके भीतर रोग अग्निका दाह और पुत्र आदि ज्ञातिका मरण होजाय तो उस साक्षीसे राजा उतने उसऋणको उत्तमर्ण को दिवादे और कुछ दंड राजा ले क्योंकि उसके झूठ बोलनेसेही उसके यहां रोगादिक होते हैं अन्यथा नहीं१०८ ॥

असाक्षिकेषुत्वर्थेषुमिथोविवदमानयोः । अविन्दंस्तत्त्वतःसत्यंशपथेनापिलम्भयेत् १०९

प० । असाक्षिकेषु तु अर्थेषु मिथः विवदमानयोः अविंदन् तत्त्वतः सत्यं शपथेन अपि लंभयेत् ॥

यो० । असाक्षिकेषु अर्थेषु विवदमानयोः तत्त्वतः सत्यं अविदन सन् शपथेन अपि लंभयेत् ॥

भा० । ता० । जिन व्यवहारों में कोई भी साक्षीनहीं उनमें परस्पर विवादकरतेहुये मनुष्यों के सत्यको यथार्थनहीं जानताहुआ राजाशपथ (सौगन्द) सेभी लंभनकरे अर्थात् सुगंदें देकर व्यवहार का निर्णयकरले १०९ ॥

महर्षिभिश्चदेवैश्चकार्यार्थंशपथाःकृताः । वसिष्ठश्चापिशपथंशेपेपैवयवनेनृपे ११० ॥

प० । महर्षिभिः च देवैः च कार्यार्थं शपथाः कृताः वसिष्ठः च अपि शपथं शेपे वै यवने नृपे ॥

यो० । महर्षिभिः चपुनः देवैः कार्यार्थं शपथाः कृताः चपुनः वसिष्ठः अपि यवने नृपे शपथं शेपे ॥

भा० । ता० । महर्षि और देवताओंने भी संदिग्ध कार्यके निर्णयार्थ शपथकी हैं—और वसिष्ठजी ने भी उससमय यवन के पुत्र सुदामाकी इसलिये शपथकी हैं ११० ॥

नवृथाशपथंकुर्यात्स्वल्पेऽप्यर्थेनरोबुधः । वृथाहिशपथंकुर्वन्प्रेत्यचेहचनश्यति १११ ॥

१ आपोहिष्ठामयोभुवस्तानऊर्जेदधातनः महेरणाय चक्षसे योवः शिवतमोरसः ओं तस्य भाजयतेहनः उशतीरिवमातरः तस्मात् अरंगमाममो यस्यक्षयायजिन्वथ आपोजनयथाचन ॥

प०। नँ वृथौ शपथं कुर्यातँ स्वल्पे अँपि अँर्थे नरः बुधः वृथौ हिँ शपथं कुर्वन् प्रेत्य चैँ इहैँ नश्यति

यो०। बुधःनरः स्वल्पे अपि अर्थे वृथा शपथं न कुर्यात् हि (यतः) वृथा शपथं कुर्वन् नरः प्रेत्य चपुनः इह नश्यति॥

भा०। ता०। अल्प कार्य के विषे पीड़ित जन कभी भी वृथा शपथ को न करे क्योंकि वृथा शपथ को करता हुआ मनुष्य परलोक में इस लोकमें नाशको प्राप्त होताहै अर्थात् परलोक में नरक और इसलोक में निन्दा को प्राप्त होता है १११॥

कामिनीषुविवाहेषुगवांभक्ष्येतथेन्धने।ब्राह्मणाभ्युपपत्तौचशपथेनास्तिपातकम्११२॥

प०। कामिनीषुँ विवाहेषुँ गवां भँक्ष्ये तथौ इंधँने ब्राह्मणाभ्युपपँत्तौ चँ शपँथे नँ अँस्ति पातकम्॥

यो०। कामिनीषु-विवाहेषु-गवांभक्ष्ये तथा इंधने चपुनः ब्राह्मणाभ्युपपत्तौ शपथे पातकं न अस्ति॥

भा०। ता०। कामिनियों में अर्थात् जिस मनुष्य के बहुत स्त्री हों वह अपनी किसी स्त्री को इस प्रकार शपथ करिके रति करे कि मेरी कामना और किसी स्त्री में नहीं किन्तु मेरी तुही अत्यन्त प्यारी है और विवाह में अर्थात् इस शपथसे विवाह करने पर भी कि मैं दूसरी स्त्री को न विवाहूंगा फिर दूसरा विवाह करिले और गौओं के लिये घास आदि के-होम के लिये इंधन के लाने में और ब्राह्मण की रक्षा के लिये स्वीकार किये धनमें वृथा शपथ करनेपरभी पातक नहीं होता ११२॥

सत्येनशापयेद्विप्रंक्षत्रियंवाहनायुधैः। गोबीजकाञ्चनैर्वैश्यंशूद्रंसर्वैस्तुपातकैः ११३॥

प०। सत्येनँ शापयेतँ विप्रँ क्षत्रियं वाहनायुँधैः गोबीजकांचँनैः वैश्यं शूद्रं सँर्वैः तुँ पातँकैः॥

यो०। विप्रं सत्येन-क्षत्रियं वाहनायुधैः-वैश्यं गोबीजकांचनैः-शूद्रं सर्वैः पातकैः शापयेत्॥

भा०। ता०। सत्यसे ब्राह्मणको वाहन और आयुधसे क्षत्री को शपथ (सौगन्द) दिलावे अर्थात् तेरा सत्य जावै तो यथार्थ साक्षी दीजिये और तेरे वाहन आयुध निष्फल होजायँगे इसतरह दोनों से शपथले-और इस प्रकार वैश्य से गौ बीज-काञ्चन की शपथले जो तू झूठ बोलेगा तो गौ बीज सोना निष्फल होजायँगे और शूद्र को इसप्रकार शपथदे कि झूठ बोलने से तेरे सम्पूर्ण पातक लगेंगे ११३॥

अग्निंवाहारयेदेनमप्सुचैनंनिमज्जयेत्। पुत्रदारस्यवाप्येनंशिरांसिस्पर्शयेत्पृथक् ११४॥

प०। अग्निं वौ आहारयेतँ एनं अप्सुँ चँ एनं निमज्जयेतँ पुत्रदारस्य वौ अँपि एनं शिरांसि स्पर्शयेतँ पृथक्॥

यो०। एनं अग्निं वा आहारयेत्-चपुनः एनं अप्सुनिमज्जयेत्-वा पुत्रदारस्य शिरांसि पृथक् पृथक् एनं स्पर्शयेत्॥

भा०। ता०। अथवा अग्नी की समान तपा हुआ आठ अंगुल का और पचास टकेभर लोहे का पिण्ड शूद्रके हाथ पर रखकर सात पेंड चलावे अथवा जिसजगह जलौका (जोक) न हो ऐसे जल में इसको गोता लगवावे अथवा पुत्र-स्त्री के शिरोंका इसपर पृथक् पृथक् स्पर्श करावे ११४॥

यमिद्धोनदहत्यग्निरापोनोन्मज्जयन्तिच। नचार्त्तिमृच्छतिक्षिप्रंसज्ञेयःशपथेशुचिः ११५

प०। यं इद्धः नँ दहँति अग्निः आपः नँ उन्मज्जँयंति चँ नँ चँ आर्तिं ऋच्छँति क्षिप्रं सः ज्ञेयः शपँथे शुचिः॥

यो० । इद्धः अग्निः यं न दहति चपुनः आपः न उन्मज्जयंति चपुनः यः क्षिप्रं आर्ति न ऋच्छति सः पुरुषः शपथे शुचिः ज्ञेयः ॥

भा० । ता० । जिसको जलती हुई अग्नि दग्ध न करे और जिसको जल न डुबावे और जो शीघ्र बड़े दुःखको न प्राप्तहो उस मनुष्य को शपथमें शुद्धजानै ११५ ॥

वत्सस्यह्यभिशस्तस्यपुराभ्रात्रायवीयसा । नाग्निर्ददाहरोमापिसत्येनजगतःस्पृशः ११६

प० । वत्सस्यं हिं अभिशस्तस्य पुरा भ्रात्रा यवीयसा नं अग्निः ददाह रोम अपि सत्येन जगतः स्पृशः ॥

यो० । यतः पुरा यवीयसा भ्रात्रा अभिशस्तस्य वत्सस्य सत्येन जगतः स्पृशः अग्निः रोम अपि न ददाह ॥

भा० । ता० । पूर्व काल में दूसरी माताके पुत्र छोटे भाईने अभिशस्त किये हुये वत्सके रोमको भी सत्यसे सम्पूर्ण जगत्के स्पर्श करने वाले (साक्षी) अग्निने एक रोम को भी दग्ध न किया उस वत्सको छोटे भाईने यह कहा था कि तू शूद्राका पुत्र है ब्राह्मण नहीं उसने अग्नि का स्पर्श किया और वह दग्ध न भया ११६ ॥

यस्मिन्यस्मिन्विवादेतुकौटसाक्ष्यंकृतंभवेत् । तत्तत्कार्यंनिवर्तेतकृतंचाप्यकृतंभवेत् ११७॥

प० । यस्मिन् यस्मिन् विवादे तुं कौटसाक्ष्यं कृतं भवेत् तत् तत् कार्यं निवर्तेत कृतं चं अपि अकृतं भवेत् ॥

यो० । यस्मिन् यस्मिन् विवादे कौटसाक्ष्यं कृतं भवेत् तत् तत् कार्यं निवर्तेत चपुनः कृतं (सफलं) अपि अकृतं भवेत् ॥

भा० । ता० । जिस २ विवादमें साक्षियोंने झूंठी साक्षी दी हो समाप्त हुये भी उस उस कार्य को प्राड्विवाक निवर्तकरदें और किया हुआ भी वह कार्य विना किया होजाता है—इससे उसकी पुनः परीक्षा करे ११७ ॥

लोभान्मोहाद्भयान्मैत्रात्कामात्क्रोधात्तथैवच । अज्ञानाद्बालभावाच्चसाक्ष्यंवितथमुच्यते ११८

प० । लोभात् मोहात् भयात् मैत्रात् कामात् क्रोधात् तथा एवं चं अज्ञानात् बालभावात् चं साक्ष्यं वितथं उच्यते ॥

यो० । लोभात् मोहात् भयात् मैत्रात् कामात् चपुनः तथैव क्रोधात् अज्ञानात् चपुनः बालभावात् साक्ष्यं वितथं (बुधैः) उच्यते ॥

भा० । ता० । इतने कारणों से पण्डितजन साक्षी को झूंठी कहते हैं कि लोभ—मोह—भय—मित्रता—कामदेव—क्रोध—अज्ञान—और बालभाव (असावधानी) से ११८ ॥

एषामन्यतमेस्थानेयःसाक्ष्यमनृतंवदेत् । तस्यदण्डविशेषांस्तुप्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ११९

प० । एषां अन्यतमे स्थाने यः साक्ष्यं अनृतं वदेत् तस्य दण्डविशेषान् तुं प्रवक्ष्यामि—अनुपूर्वशः ॥

यो० । यः पुरुषः एषां अन्यतमेस्थाने अनृतं साक्ष्यं वदेत् तस्य दण्डविशेषान् तु अनुपूर्वशः अहं प्रवक्ष्यामि ॥

भा० । ता० । जो साक्षी इन पूर्वोक्त लोभादीके मध्यमें जिस स्थानमें झूंठी साक्षी को कहता है उसी उसके दण्ड विशेषों को क्रमसे मैं कहता हूं—अर्थात् जिस जगह जो दण्ड राजादे उसी को कहता हूं ११९ ॥

लोभात्सहस्रंदण्ड्यस्तुमोहात्पूर्वंतुसाहसम् । भयाद्वौमध्यमौदण्डौमैत्रात्पूर्वंचतुर्गुणम् १२० ॥

प० । लोभात् सहस्रं दंड्यः तु मोहात् पूर्वं तु साहसं भयात् द्वौ मध्यमौ दण्डौ मैत्रात् पूर्वं चतुर्गुणम् ॥

यो० । लोभात् मिथ्योक्तासत्यां सहस्रं दंड्यः मोहात् मिथ्याभिधाने पूर्वं साहसं भयात् अनृतकथने द्वौ मध्यमौ साहसौ दण्डौ स्तः मैत्रात् मिथ्याकथने पूर्वं साहसं चतुर्गुणं दण्डो राज्ञादेयः ॥

भा० । ता० । जो मनुष्य लोभसे झूंठ बोले उसको एक सहस्र (जो आगे कहेंगे) दण्ड राजादे और जो मोह से झूंठ कहै उसे प्रथम साहस भयसे जो झूंठ कहे उसको दो मध्यम साहस और जो मित्रतासे झूंठ बोले उसको चार प्रथम साहस दण्ड राजादे १२० ॥

कामाद्दशगुणंपूर्वंक्रोधात्तुत्रिगुणंपरम् । अज्ञानाद्द्वेशतेपूर्णेबालिश्याच्छतमेवतु १२१ ॥

प० । कामात् दशगुणं पूर्वं क्रोधात् तु त्रिगुणं परं अज्ञानात् द्वे शते पूर्णे बालिश्यात् शतं एवं तु ॥

यो० । कामात् मिथ्योक्तौ पूर्वं दशगुणं क्रोधात् मिथ्योक्तौ परं (मध्यमं) त्रिगुणं अज्ञानात् मिथ्योक्तौ पूर्णे द्वेशते तु बालिश्यात् मिथ्योक्तौ शतं एव —राज्ञा दंड्यः ॥

भा० । ता० । स्त्री के भोग की कामनासे जो मिथ्या बोले उसको दशगुणा प्रथम साहस और जो क्रोधसे झूंठ बोले उसको तिगुणा मध्यम साहस और अज्ञानसे झूंठ बोले उसको पूरे दोसैपण—और जो असावधानीसे झूंठ बोले उसको एक शतपण—राजा दण्ड दे १२१ ॥

एतानाहुःकौटसाक्ष्येप्रोक्तान्दण्डान्मनीषिभिः । धर्मस्याव्यभिचारार्थमधर्मनियमायच १२२ ॥

प० । एतान् आहुः कौटसाक्ष्ये प्रोक्तान् दण्डान् मनीषिभिः धर्मस्य अव्यभिचारार्थं अधर्मनियमाय च ॥

यो० । धर्मस्य अव्यभिचारार्थं चपुनः अधर्मनियमाय मनीषिभिः कौटसाक्ष्ये प्रोक्तान एतान दण्डान मन्वादयः आहुः कथयामासुः ॥

भा० । ता० । सत्यरूप धर्मकी प्रवृत्ती और झूंठरूप अधर्मकी निवृत्तीकेलिये झूंठी साक्षीमें बुद्धिमानों के कहेहुये इनदंडों को मनुआदि ने कहा है—परंतु यह दंड वारंवार झूंठी साक्षी करनेपरही राजादे १२२ ॥

कौटसाक्ष्यंतुकुर्वाणांस्त्रीन्वर्णान्धार्मिकोनृपः । प्रवासयेद्दण्डयित्वाब्राह्मणंतुविवासयेत् १२३

प० । कौटसाक्ष्यं तु कुर्वाणान् त्रीन् वर्णान् धार्मिकः नृपः प्रवासयेत् दंडयित्वा ब्राह्मणं तु विवासयेत् ॥

यो० । धार्मिकः नृपः कौटसाक्ष्यं कुर्वाणान त्रीन् वर्णान दंडयित्वा प्रवासयेत तुपुनः ब्राह्मणं विवासयेत् ॥

भा० । धर्मका ज्ञाता राजा झूंठी साक्षी देतेहुये तीनोंवर्णोंको दंडदेकर देशसे निकालदे और ब्राह्मण को तो विना दंडदिये निकालदे ॥

ता० । झूंठीसाक्षी करतेहुये तीनोंवर्णों को दंडदेकर धार्मिक राजा अपनेदेशसे बाहर निकालदे और ब्राह्मणको तो धनका दंड न देकर धनसमेत देश से बाहर निकालदे क्योंकि इस वचन से आगे मनुजीही यहकहेंगे कि चाहे सबपापों में टिकेहुये ब्राह्मण को न मारे किंतु इसब्राह्मणको धन

---

१ नजातुब्राह्मणंहन्यात् सर्वपापेष्ववस्थितम् । राष्ट्रादेनंबहिःकुर्यात् समग्रधनमक्षतम् ॥

समेत देशसे बाहर करदे—गोविंदराज तो यह कहतेहैं प्रथम साहस दंडदेकर नग्नकरदे—और मेधातिथि यहकहतेहैं कि ब्राह्मण का यही विवास है कि उसके वस्त्रोंको लेले गृहको नष्टकरदे ये दोनों अर्थ कल्पित प्रतीत होतेहैं १२३ ॥

दशस्थानानिदण्डस्यमनुःस्वायंभुवोऽब्रवीत् । त्रिषुवर्णेषुयानिस्युरक्षतोब्राह्मणोव्रजेत् १२४

प० । दश स्थानानि दंडस्य मनुः स्वायंभुवः अब्रवीत् त्रिषु वर्णेषु यानि स्युः अक्षतः ब्राह्मणः व्रजेत् ॥

यो० । यानि त्रिषुवर्णेषु स्युः तानि दशदंडस्यस्थानानि स्वायंभुवः मनुः अब्रवीत् ब्राह्मणः अक्षतः एव व्रजेत् ॥

भा० । ता० । जो तीनोंवर्णोंमें (क्षत्री—वैश्य—शूद्र) होतेहैं अर्थात् दियेजातेहैं वे दंडके दशस्थान ब्रह्मा के पुत्र मनुजीने कहेहैं—और महान् अपराधकरनेपर भी ब्राह्मण तो अक्षत (घावहीन) राजा के देशसे चलाजाय १२४ ॥

उपस्थमुदरंजिह्वाहस्तौपादौचपञ्चमम् । चक्षुर्नासाचकर्णौचधनंदेहस्तथैवच १२५ ॥

प० । उपस्थं उदरं जिह्वा हस्तौ पादौ च पंचमं चक्षुः नासा च कर्णौ च धनं देहः तथा एव च ॥

यो० । उपस्थं-उदरं-जिह्वा हस्तौ चपुनः पंचमं पादौ चक्षुः नासा चपुनः कर्णौ चपुनः धनं चपुनः तथैवदेहः एतानि दशदंडस्थानानि भवंति ॥

भा० । ता० । ये दशदंडदेनेके स्थान हैं उपस्थ (लिंगइन्द्री) उदर (पेट) जिह्वा हाथ—पांचवां पाद चक्षु (नेत्र) नासिका—कर्ण धन चपुनः देह ये दशदंड के स्थान हैं जिस अंगसे मनुष्य अपराधकरे उसीअंग में अपराध के अनुसार ताडनआदिको करे और छोटे से अपराध पर तो शास्त्रोक्त रीति से धनकादंड और महापातकआदि में देहकादंड दे १२५ ॥

अनुबंधंपरिज्ञायदेशकालौचतत्त्वतः । सारापराधौचालोक्यदण्डंदंड्येषुपातयेत् १२६॥

प० । अनुबंधं परिज्ञाय देशकालौ च तत्त्वतः सारापराधौ च आलोक्य दंडं दंड्येषु पातयेत् ॥

यो० । राजा अनुबंधं चपुनः देशकालौ तत्त्वतः परिज्ञाय चपुनः सारापराधौ आलोक्य दंड्येषु दंडं पातयेत् ॥

भा० । ता० । राजा यथार्थरीतिसे अनुबंध (वारंवार इच्छासे अपराधकरना) देश (वनआदि) और काल (रात्रिआदि) इनकोजानकर और अपराधकरनेवालेका सार (धन और शरीरकी सामर्थ्य) और अपराध (छोटा या बडा) इनकोदेखकर दंडदेनेयोग्यकोदंडदे जो आगे कहेंगे उनसबमें राजा के विचारने योग्य हैं १२६ ॥

अधर्मदण्डनंलोकेयशोघ्नंकीर्तिनाशनम् । अस्वर्ग्यंचपरत्रापितस्मात्तत्परिवर्जयेत् १२७ ॥

प० । अधर्मदंडनं लोके यशोघ्नं कीर्तिनाशनं अस्वर्ग्यं च परत्र अपि तस्मात् तत् परिवर्जयेत् ॥

यो० । अधर्मदंडनं राज्ञः लोके यशोघ्नं कीर्तिनाशनं भवति परत्र (परलोके) अपि अस्वर्ग्यं भवति तस्मात् तत् (अधर्मदंडं) राजा परिवर्जयेत् ॥

भा० । ता० । अधर्म से दंडदेना जगत् में राजा के यश और कीर्त्तिकानाशक होता है—और परलोक में भी स्वर्गका प्रतिबंधक होताहै इससे राजा अधर्म दंडको सर्वथा त्यागदे और जीतेहुये की प्रसिद्धिको यश और मरे की प्रसिद्धिको कीर्त्ति कहतेहैं इससे अपराधीकी सामर्थ्यके अनुसारही राजा दंडदे १२७ ॥

अदण्ड्यान्दण्डयन्राजादण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन् । अयशोमहदाप्नोतिनरकंचैवगच्छति १२८

प० । अदंड्यान् दंडयन् राजा दंड्यान् च एव अपि अदंडयन् अयशः महत् आप्नोति नरकं च एव गच्छति ॥

यो० । राजा अदंड्यान दंडयन चपुनः दंड्यान अदंडयन अपि मन महत् अयश आप्नोति चपुनः नरकं एव गच्छति॥

भा० । ता० । जो राजा दंडदेने के अयोग्यों को दंडदेता है और दंडदेने के योग्योंको दंडनहींदेता है वहबडे अपयश को प्राप्तहोता है और मरने के अनन्तर नरक में भी जाता है १२८ ॥

वाग्दण्डंप्रथमंकुर्याद्धिग्दण्डंतदनन्तरम् । तृतीयंधनदण्डंतु वधदण्डमतःपरम् १२९ ॥

प० । वाग्दंडं प्रथमं कुर्यात् धिग्दंडं तदनन्तरं तृतीयं धनदंडं तु वधदंडं अतः परम् ॥

यो० । राजा प्रथमं वाग्दंडं तदनन्तरं धिग्दंडं तृतीयं धनदंडं अतःपरं वधदंडं प्रयुंज्यात् ॥

भा० । राजा पहिले वाग्दंड उसीके पीछे धिग्दंड तीसरा धनका दंड और उसके अनन्तर वध दंडदे ॥

ता० । सबसे प्रथम राजा वाणीसे दंडदे अर्थात् इसप्रकार अपराधीसे कहे तैंनेअच्छानहींकियाकि ऐसा फिर मतकरियो इसप्रकार वाणीसे झिडके यदि फिरभी शांतिको न प्राप्तहो तो धिग्दंड अर्थात् तेरे जन्मको धिक्कार है तू मनजीवे तेरे पापकी हानिहो यदि फिर भी वह कुमार्गसे न हटे तो तीसरा धनका दंड यदि फिरभी वह कुकर्मसे न बैठे तो वधदंड दे अर्थात् उसको ताडना किसी अंगका छेदनकरिदे परन्तु मारेनहीं १२९ ॥

वधेनापियदात्वेतान्निग्रहीतुंनशक्नुयात् । तदैषुसर्वमप्येतत्प्रयुञ्जीतचतुष्टयम् १३० ॥

प० । वधेन अपि यदा तु एतान् निग्रहीतुं न शक्नुयात् तदा एषु सर्वं अपि एतत् प्रयुंजीत चतुष्टयम्॥

यो० । यदा वधेन अपि एतान निग्रहीतुं राजा न शक्नुयात् तदा एषु (अपराधिषु) सर्वं अपि एतत् चतुष्टयं (वाग्दंडादिकं) प्रयुंजीत (कुर्यात) ॥

भा० । ता० । जिससमय इन अपराधियों को वधसे भी वश में न करसके उस समय इन अपराधियों को पूर्वोक्त चारोंप्रकार का दंडदेकर वशकरे १३० ॥

लोकसंव्यवहारार्थंयाःसंज्ञाःप्रथिताभुवि । ताम्ररूप्यसुवर्णानांताःप्रवक्ष्याम्यशेषतः १३१

प० । लोकसंव्यवहारार्थं याः संज्ञाः प्रथिताः भुवि ताम्ररूप्यसुवर्णानां ताः प्रवक्ष्यामि अशेषतः ॥

यो० । ताम्ररूप्यसुवर्णानां याः संज्ञाः लोकसंव्यवहारार्थं भुवि प्रथिताः ताः (संज्ञाः) अशेषतः अहं प्रवक्ष्यामि ॥

भा० । ता० । तांबा—चांदी—सोना इनकी जो पण आदि संज्ञा क्रय विक्रय आदि जगत्के व्यवहारकी पृथ्वीपर प्रसिद्ध हैं उन संपूर्ण संज्ञाओंको दंड आदि में उपयोगार्थ में कहताहूं कि १३१ ॥

जालान्तरगतेभानौयत्सूक्ष्मंदृश्यतेरजः । प्रथमंतत्प्रमाणानांत्रसरेणुंप्रचक्षते १३२ ॥

प० । जालांतरगते भानौ यत् सूक्ष्मं दृश्यते रजः प्रथमं तत् प्रमाणानां त्रसरेणुं प्रचक्षते ॥

यो० । भानौ जालांतरगते सति यत् सूक्ष्मं रजः दृश्यते तत् प्रमाणानां प्रथमं बुधाः त्रसरेणुं प्रचक्षते ॥

भा० । ता० । जिससमय सूर्य की धूप जाल के अंतर में प्राप्तहो अर्थात् झरोखे के भीतर आवे उस समय नीचे ऊपरको उड़तेहुये जो छोटे २ रज (धूल) दीखते हैं उसी रजको संपूर्ण परिमाणों (तोल) में पहिला त्रसरेणु पंडितजन कहते हैं १३२ ॥

त्रसरेणवोऽष्टौविज्ञेयालिक्षैकापरिमाणतः । ताराजसर्षपस्तिस्रस्तेत्रयोगौरसर्षपः १३३ ॥

प० । त्रसरेणवः अष्टौ विज्ञेया लिक्षा एका परिमाणतः ताः राजसर्षपः तिस्रः ते त्रयः गौरसर्षपः ॥

यो० । अष्टौ त्रसरेणवः परिमाणतः एकालिक्षा विज्ञेया ताः (लिक्षाः) तिस्रः राजसर्षपोज्ञेयः त्रयः ते (राजसर्षपाः) गौरसर्षपः ज्ञेयः ॥

भा० । ता० । आठ त्रसरेणुके परिमाण की एक लिक्षा जाननी और तीन लिक्षाओं का एक राजसर्षप (राई) और तीन राजसर्षपोंका एक गौरसर्षप (सिरसों) जानना १३३ ॥

सर्षपाःषट्यवोमध्यस्त्रियवंत्वेककृष्णलम् । पञ्चकृष्णलकोमाषस्तेसुवर्णस्तुषोडश १३४

प० । सर्षपाः षट् यवः मध्यः त्रियवं तु एककृष्णलं पंचकृष्णलकः माषः ते सुवर्णः तु षोडश ॥

यो० । षट्सर्षपाः मध्ययवः विज्ञेयः त्रियवं तु एककृष्णलं (रत्ती) पंचकृष्णलकः माषः षोडशते (माषाः) सुवर्णः विज्ञेयः (अशर्फी) ॥

भा० । ता० । छै गौरसर्षपोंका एक मध्यम (न छोटा न बड़ा) यव (जौ) होताहै और तीनयवों का एक कृष्णल (रत्ती) होताहै और पांच कृष्णलोंका एक माषा होताहै और सोलह माषोंका एक सुवर्ण (अशर्फी) होताहै १३४ ॥

पलंसुवर्णाश्चत्वारःपलानिधरणंदश । द्वेकृष्णलेसमधृतेविज्ञेयोरौप्यमाषकः १३५ ॥

प० । पलं सुवर्णाः चत्वारः पलानि धरणं दश द्वे कृष्णले समधृते विज्ञेयः रौप्यमाषकः ॥

यो० । चत्वारः सुवर्णाः पलं दशपलानि धरणं विज्ञेयं समधृते द्वे कृष्णले रौप्यमाषकः विज्ञेयः ॥

भा० । ता० । चार सुवर्णोंका एक पल और दश पलोंका एक धरण और समान तुलामें रक्खे- हुये दो कृष्णलोंका एक रूप्यका माषा होताहै अर्थात् मासेभर चांदी होती है १३५ ॥

तेषोडशस्याद्धरणंपुराणश्चैवराजतः । कार्षापणंतुविज्ञेयस्ताम्रिकःकार्षिकःपणः १३६ ॥

प० । ते षोडश स्यात् धरणं पुराणः च एव राजतः कार्षापणं तु विज्ञेयः ताम्रिकः कार्षिकः पणः ॥

यो० । ते षोडश (रूप्यमाषकाः) धरणं चपुनः राजतः पुराणः विज्ञेयः ताम्रिकः कार्षिकः कार्षापण पणः विज्ञेयः ॥

भा० । ता० । उन सोलह चांदी के माषोंका एक चांदी का धरण और पुराण होताहै और कर्ष भर तांबेका एक कार्षापण पण जानना और पलके चौथे भागको कर्ष कहते हैं १३६ ॥

धरणानिदशज्ञेयःशतमानस्तुराजतः । चतुःसौवर्णिकोनिष्कोविज्ञेयस्तुप्रमाणतः १३७ ॥

प० । धरणानि दश ज्ञेयः शतमानः तु राजतः चतुःसौवर्णिकः निष्कः विज्ञेयः तु प्रमाणतः ॥

यो० । दशधरणानि राजतः शतमानः विज्ञेयः चतुःसौवर्णिकः प्रमाणतः निष्कः विज्ञेयः ॥

भा० । ता० । चांदी के दश धरणोंका चांदीका एक शतमान और चार सुवर्णोंका प्रमाणसे एक निष्क जानना १३७ ॥

पणानांद्वेशतेसार्धेप्रथमःसाहसःस्मृतः । मध्यमःपञ्चविज्ञेयःसहस्रंत्वेवचोत्तमः १३८ ॥

प० । पणानां द्वे शते सार्द्धे प्रथमः साहसः स्मृतः मध्यमः पंच विज्ञेयः सहस्रं तु एवं च उत्तमः ॥

यो० । पणानां सार्द्धे द्वे शते प्रथमः साहसः पणानां पंचशतानि मध्यमः साहसः पणानां सहस्रं तु उत्तमः साहसः मन्वादिभिः स्मृतः ॥

भा० । ता० । सार्द्ध द्विशत २५० पणोंका प्रथम साहस और पंचशत ५०० पणोंका मध्यम साहस और सहस्र पणोंका उत्तम साहस—दंड मनु आदिक मुनियोंने कहा है १३८ ॥

ऋणेदेयेप्रतिज्ञातेपञ्चकंशतमर्हति । अपह्नवेतद्द्विगुणंतन्मनोरनुशासनम् १३९ ॥

प० । ऋणे देये प्रतिज्ञाते पंचकं शतं अर्हति अपह्नवे तद्द्विगुणं तत् मनोः अनुशासनम् ॥

यो० । देये ऋणे प्रतिज्ञाते सति पंचकं शतं दंडं अधमर्णः अर्हति अपह्नवे सति तद्द्विगुणं (दशपणं) दंडं अर्हति मनोः तत् (एतत्) अनुशासनं भवति ॥

भा० । ता० । उत्तमर्ण की राजसभामें भाषापत्र (अर्जी) देनेपर यदि अधमर्ण यह प्रतिज्ञाकरे कि मुझे इसका ऋण देनाहै तो सौ पणपर पांचपण दंडदेने योग्य होताहै और यदि अधमर्ण राजसभामें यहकहै कि इसके ऋणको मैं नहीं धारताहूं अर्थात् झूंठबोले तो सौ पणपर दशपण दंडदेने योग्य होता है—यह मनुकी आज्ञा है अर्थात् दंडदेने का प्रकार है १३९ ॥

वसिष्ठविहितांवृद्धिंसृजेद्वित्तविवर्द्धिनीम् । अशीतिभागंगृह्णीयान्मासाद्वार्द्धुषिकःशते १४० ॥

प० । वसिष्ठविहितां वृद्धिं सृजेत् वित्तविवर्द्धिनीं अशीतिभागं गृह्णीयात् मासात् वार्द्धुषिकः शते ॥

यो० । वार्द्धुषिकः वित्तविवर्द्धिनीं वसिष्ठविहितां वृद्धिं सृजेत शतेमासात् अशीतिभागं गृह्णीयात् ॥

भा० । ता० । वार्द्धुषिक वृद्धीसे (व्याज) जीविका करनेवाला धनके बढानेवाली वसिष्ठजी की कहीहुई वृद्धिको ग्रहणकरे अर्थात् व्याजले कि १००) रुपयेपर महीने में अस्सीवांभाग १।) रुपया अधमर्ण से ग्रहणकरे १४० ॥

द्विकंशतंवागृह्णीयात्सतांधर्ममनुस्मरन् । द्विकंशतंहिगृह्णानोनभवत्यर्थकिल्बिषी १४१ ॥

प० । द्विकं शतं वा गृह्णीयात् सतां धर्मं अनुस्मरन् द्विकं शतं हि गृह्णानः न भवति अर्थकिल्बिषी ॥

यो० । राजा सतां धर्मं अनुस्मरन् सन् द्विकं शतं गृह्णीयात् हि (यतः) द्विकं शतं गृह्णानः अर्थकिल्बिषी न भवति ॥

भा० । ता० । सत्पुरुषोंके धर्म का स्मरण करताहुआ राजा सौ रुपये पर एक महीने में दोरुपये वृद्धिको ग्रहणकरे क्योंकि शतपर दो रुपये लेताहुआ राजा धनके ग्रहणकरने में पापका भागी नहीं होता १४१ ॥

द्विकंत्रिकंचतुष्कंचपञ्चकंचशतंसमम् । मासस्यवृद्धिंगृह्णीयाद्वर्णानामनुपूर्वशः १४२ ॥

प० । द्विकं त्रिकं चतुष्कं च पंचकं च शतं समं मासस्य वृद्धिं गृह्णीयात् वर्णानां अनुपूर्वशः ॥

यो० । राजा वर्णानां अनुपूर्वशः द्विकं-त्रिकं—चतुष्कं-चपुनः पंचकं समं शतं मासस्य वृद्धिं गृह्णीयात् ॥

भा० । राजा वर्णों के क्रम से सौ रुपये पर दो तीन चार पांच रुपये की एक महीने में समान वृद्धिको ग्रहणकरे ॥

ता० । राजा ब्राह्मण आदि वर्णों के क्रम से दो तीन–चार–पांच–रुपये सौ रुपये पर एक महीने में सम (न कम न ज्यादह) वृद्धिको ग्रहणकरे इसमें कोई यह शंका करते हैं कि पिछे सौ रुपये पर अशीतिभाग (१।) रुपया वृद्धि ब्राह्मण से लेने कही है वह लघु है और इस श्लोक में दो रुपये मासिक वृद्धि जो ब्राह्मण से लेनी कही है वह गुरु है इससे ब्राह्मणको लघु और गुरु दोनों पक्ष कैसे कहे इसका समाधान मेधातिथि गोविंदराजने तो यह कहा है कि जो अशीतिभाग वृद्धि से राजाका निर्वाह नहो तो दो रुपये मासिक वृद्धि ग्रहणकरे और उल्लूकभट्ट तो यह कहते हैं कि जो ऋण सबंधक (सावधी) है अर्थात् इस नेमसे लिया जाता है कि इतने काल में देदेंगे उस ऋण की वृद्धि अशीतिभाग करे और जो ऋण अवधी से हीन है उसकी वृद्धि ब्राह्मण से प्रत्येक शतपर एक मासमें दो रुपये २) ग्रहणकरे क्योंकि याज्ञवल्क्य ऋषि ने भी इस वचन से यह कहा है कि सबंधक ऋण में महीने २ पर अशीतिभाग वृद्धि होती है और बंधक हीन ऋण पर चारोंवर्णों के क्रम से शतरुपये पर दो तीन चार पांच रुपये वृद्धि होती है इससे वेदांत में गायेहुये महान् मुनि याज्ञवल्क्य के वचनानुसार होनेसे उल्लूक भट्टकाही समाधान ठीक है और आधुनिक मेधातिथि गोविंदराजका समाधान याज्ञवल्क्य के विरुद्ध होने पर ठीक नहीं है १४२ ॥

नत्वेवाधौसोपकारेकौसीदींवृद्धिमाप्नुयात ।नचाधेःकालसंरोधान्निसर्गोऽस्तिनविक्रयः१४३॥

प० । नँ तुँ एवँ आँधौ सोपकाँरे कौसीदीं वृँद्धिं आप्नुयाँत् नँ चँ आँधेः कालसंरोधात् निसँर्गः अँस्ति नँ विक्रँयः ॥

यो० । राजा सोपकारे आधौ कौसीदीं वृद्धिं नेव आप्नुयात् चपुनः आधेः कालसंरोधात् निसर्गः विक्रयः न अस्ति॥

भा० । उपकार करनेवाली आधि में उत्तमर्ण को धनकी वृद्धि नहीं मिल सक्ती और चिरकाल तक रहीहुई आधि को अधमर्ण न दूसरे को देसक्ता है न बेच सक्ता है ॥

ता० । सोपकार आधि (गिरवी) में धनके प्रयोग से जो वृद्धि होती है उस वृद्धि को उत्तमर्ण नहीं प्राप्त होता अर्थात् जो किसी से भूमि गौ–घर आदि को रखकर रुपया ले उस भूमि आदि से जो जीविका हो वही उत्तमर्ण लेसकता है और रुपये की जो वृद्धि होती है उसको नहीं लेसकता उस आधी के चिरकाल रहने पर चाहे मूल धन से दूना धन उत्तमर्ण को मिलजाय तो भी अधमर्ण उसको न दे सकता है न बेच सकता है यहां पर मेधातिथि गोविन्दराज तो यह कहते हैं चिरकाल की भी आधी को अधमर्ण बन्धक (अवधि) से किसी दूसरे के यहां अर्प्पण (देना) नहीं देसकता परन्तु इस में सब देशों के शिष्टाचार का विरोध है क्योंकि एक जगह आधि रक्खे हुये भूमि आदिकों का भी अधिक धन के लोभ से दूसरी जगह आधि करने का संप्रदाय है १४३ ॥

नभोक्तव्योबलादाधिर्भुञ्जानोवृद्धिमुत्सृजेत।मूल्येनतोषयेच्चैनमाधिस्तेनोऽन्यथाभवेत्१४४॥

प० । नँ भोक्तव्यः बलात् आँधिः भुंजानः वृद्धिं उत्सृजेत् मूल्येनँ तोषयेत् चँ एनं आधिस्तेनः अन्यथाँ भवेत् ॥

यो० । आधिः उत्तमर्णेन बलात् न भोक्तव्यः–भुंजानः वृद्धिं उत्सृजेत् चपुनः एनं (अधमर्णं) मूल्येन तोषयेत् अन्यथा आधिस्तेनः भवेत् ॥

१ अशीतिभागो वृद्धिःस्यात् मासि मासि सबंधके। वर्णक्रमात् शतंद्वित्रि चतुःपंचकमन्यथा ॥

भा०। ता०। यदि कोई मनुष्य किसी के यहां वस्त्र भूषण आदि गुप्त आधि को रखदे तो उस आधी को उत्तमर्ण बलसे न भोगे यदि भोगे तो वृद्धि को छोड़ दे–(व्याज न ले) और उसके यथार्थ मूल्य को देकर अधमर्ण को प्रसन्न करे यदि न करे तो उत्तमर्ण आधिका चोर होता है यदि वह आधि भोगने से बिगड़जाय तो उसका जो अच्छी अवस्था का जो मूल्य देकर अधमर्ण को प्रसन्न करे १४४ ॥

आधिश्चोपनिधिश्चोभौनकालात्ययमर्हतः। अवहार्यौभवेतांतौदीर्घकालमवस्थितौ १४५॥

प०। आधिः च उपनिधिः च उभौ न कालात्ययं अर्हतः अवहार्यौ भवेतां तौ दीर्घकालं अवस्थितौ॥

यो०। आधिः चपुनः उपनिधिः उभौ कालात्ययं न अर्हतः दीर्घकालं अवस्थितौ अपि तौ अवहार्यौ भवेताम् ॥

भा०। ता०। आधि और उपनिधि (प्रीतिसे भोगके लिये अर्पण किया द्रव्य) ये दोनों काल के अत्यय करने योग्य नहीं होते किन्तु बहुत दिन तक उत्तमर्णके पासस्थित भी ये दोनों उसी समय देने योग्य होतेहैं जिस समय अधमर्ण लेने की प्रार्थना करे १४५ ॥

संप्रीत्याभुज्यमानानिननश्यन्तिकदाचन। धेनुरुष्ट्रोवहन्नश्वोयश्चदम्यःप्रयुज्यते १४६॥

प०। संप्रीत्या भुज्यमानानि न नश्यन्ति कदाचन धेनुः उष्ट्रः वहन् अश्वः यः च दम्यः प्रयुज्यते॥

यो०। धेनुः उष्ट्रः वहन् अश्वः चपुनः यः दम्यः प्रयुज्यते संप्रीत्याभुज्यमानानि इमानि कदाचन न नश्यन्ति ॥

भा०। धेनु चलतेहुये ऊंट और घोड़ा और दमनकरने के बैल यदि ये आधिकियेहों और अधमर्ण की राजी से उत्तमर्ण इनगे तो अधमर्णकेही रहतेहैं ॥

ता०। गौ और चलतेहुये ऊंट और घोड़ा और दमनकरने के बैल आधि कियेहुये इनको यदि उत्तमर्ण अधमर्ण की राजीसे भोगले तो ये कदाचित् नष्ट नहीं होते अर्थात् मूलधन देकर जब चाहे तभी अधमर्ण उत्तमर्ण से लेले यहवचन इसलिये है कि दशवर्ष के अनन्तर भोगीहुई आधि नष्ट होजाती है यह आगे जो कहेंगे सो गौआदिक से भिन्नके विषय में समझना और यहभी एक दिखाने मात्र है प्रीतिसे भोगाहुआ कोई भी पदार्थ नष्टनहीहोता अर्थात् अधमर्ण का होताहै १४६ ॥

यत्किंचिद्दशवर्षाणिसन्निधौप्रेक्षतेधनी। भुज्यमानंपरैस्तूष्णींनसतल्लब्धुमर्हति १४७॥

प०। यत् किंचित् दशवर्षाणि संनिधौ प्रेक्षते धनी भुज्यमानं परैः तूष्णीं न सः तत् लब्धुं अर्हति॥

यो०। धनी यत् किंचित् (धनजातं) परैः दशवर्षाणि भुज्यमानं तूष्णीं संनिधौ प्रेक्षते सः धनी तत् धनं लब्धुं न अर्हति ॥

भा०। ता०। धनका स्वामी किसी अपने धनको दशवर्षतक दूसरोंको भोगताहुआ समीपही में रहताहुआ देखे और उनको भोगने का निषेध न करे तो वह धनी उसधनके प्राप्त योग्य नहींहोता अर्थात् वहधन उसको नहीं मिलसक्ता अर्थात् उसधनमेंसे उसका सत्व निकलजाताहै १४७ ॥

अजडश्चेदपोगण्डोविषयेचास्यभुज्यते। भग्नंतद्व्यवहारेणभोक्तातद्द्रव्यमर्हति १४८॥

प०। अजडः चेत् अपोगंडः विषये च अस्य भुज्यते भग्नं तत् व्यवहारेण भोक्ता तत् द्रव्यं अर्हति॥

यो०। चेत् (यदि) सः धनस्वामी अजडः—अपोगंडः भवति चपुनः अस्य (धनिनः) विषये तत् धनं भुज्यते तर्हि तत् धनं व्यवहारेण भग्नं भवति—भोक्ता तत् द्रव्यं अर्हति ॥

भा० । बुद्धिमान् और सोलहवर्ष से अधिक अवस्था का अधमर्णहो उसके नेत्रों के आगे उसके धनको कोई भोगताहो तो वहधन व्यवहारसे नष्टहोजाताहै और भोगनेवालेकाही वहधनहोजाताहै॥

ता० । जो धनकास्वामी अजडहो अर्थात् बुद्धिहीननहो और अपौगंड नहो अर्थात् सोलहवर्ष से ऊपर जिसकी अवस्थाहो क्योंकि इस नारदके वचनानुसार सोलहवर्ष से पहिलेतक पौगंडअवस्था होती है और उसके नेत्रोंके आगे उसधनको उत्तमर्ण भोगताहो तो वह धन व्यवहारसे नष्टहोजाता है—अर्थात् अधमर्ण का नहींरहता किंतु भोगनेवालेकाही वह द्रव्यहोजाताहै १४८ ॥

आधिःसीमाबालधनंनिक्षेपोपनिधिःस्त्रियः । राजस्वंश्रोत्रियस्वंचनभोगेनप्रणश्यति १४९ ॥

प०।आधिः सीमा बालधनं निक्षेपः उपनिधिः स्त्रियः राजस्वं श्रोत्रियस्वं च न भोगेन प्रणश्यति॥

यो० । आधिः सीमा बालधनं निक्षेपः उपनिधिः स्त्रियः राजस्वं चपुनः श्रोत्रियस्वं (एतत्सर्वं) भोगेन न प्रणश्यति ॥

भा० । आधि—सीमा—बालककाधन—निक्षेप—उपनिधि स्त्री और राजा वेदपाठी का धन ये सब भोगने से नष्टनहींहोते ॥

ता० । आधि—सीमा (ग्रामआदि की मर्यादा) बालक का धन—निक्षेप (धरोहर) उपनिधि (जो मोहरलगाकर रक्खारक्खाय) और दासीआदि स्त्री राजा और वेदपाठीकाधन ये सब पूर्वोक्त दश वर्ष के भोगसे नष्टनहींहोते अर्थात् भोगनेवाले के नहींहोते किंतु धनके स्वामीकोहीहोतेहैं इसनारद के वचनानुसार निक्षेप और उपनिधि का यहभेद है जो उत्तमर्ण को पूछकर रक्खीजाय वह निक्षेप और जो उत्तमर्णके विनापूछे अपनी मुहरलगाकर रक्खीजाय उसको उपनिधि कहतेहैं १४९ ॥

यःस्वामिनाऽननुज्ञातमाधिंभुंक्तेविचक्षणः । तेनार्द्धवृद्धिर्मोक्तव्यातस्यभोगस्यनिष्कृतिः १५० ॥

प० । यः स्वामिना अननुज्ञातं आधिं भुंक्ते विचक्षणः तेन अर्द्धवृद्धिः मोक्तव्या तस्य भोगस्य निष्कृतिः ॥

यो० । यः विचक्षणः स्वामिना अननुज्ञातं तं आधिंभुंक्ते तेन (भोक्त्रा) तस्य भोगस्य अर्द्धवृद्धिः मोक्तव्या ॥

भा० । ता० । जो बुद्धिमान् उत्तमर्ण धनके स्वामीकी आज्ञाके विना आधिकोभोगे वह उसभोग की निष्कृति (शुद्धि) रूप आधिवृद्धिको और बलसे आधिके भोगनेसे तो सम्पूर्ण वृद्धिका छोड़ना पीछे कहिआये हैं १५० ॥

कुसीदवृद्धिर्द्वैगुण्यंनात्येतिसकृदाहृता । धान्येसदेलवेवाह्येनातिक्रामतिपञ्चताम् १५१ ॥

प० । कुसीदवृद्धिः द्वैगुण्यं न अत्येति सकृत् आहृता धान्ये सदे लवे वाह्ये न अतिक्रामति पंचताम् ॥

यो० । सकृत् आहृता कुसीदवृद्धिः द्वैगुण्यं न अत्येति धान्ये सदेलवे वाह्ये यावृद्धिः सा पंचतां न अतिक्रामति ॥

भा० । एकवार ग्रहणकी हुई धनकी वृद्धि द्विगुणसे अधिक नहीं होती और अन्न—वृक्ष के फल और ऊन—लोम आदि और बैल इनकी वृद्धि मूलधनसे पांचगुनेसे अधिक नहीं होती ॥

ता० । वृद्धि (व्याज) के लिये जो धनको देना उसको कुशीद कहते हैं—उसकी वृद्धि यदि एक वार उत्तमर्ण ने लेलीहो तो दूनेसे अधिक नहींहोती अर्थात् जितनाधन व्याजपर दियाहो उतने

१ बाल आषोडशाद्वर्षात् पौगंड श्चापिशब्दितः ॥
२ वासनस्थमनाख्याय समुद्रंयन्निधीयते ॥

धनसे अधिक व्याज नहींहोसक्ता और यदि अन्न वृक्षकेफल ऊनआदि और वाह्य (चलानेयोग्यबली वर्दआदि) इनमें जो वृद्धि ठहराईहो तो पांचगुणी से अधिक नहींहोसक्ती १५१ ॥

कृतानुसारादधिकाव्यतिरिक्तानसिद्ध्यति । कुसीदपथमाहुस्तंपञ्चकंशतमर्हति १५२ ॥

प० । कृतानुसारात् अधिका व्यतिरिक्ता नँ सिद्ध्यँति कुसीदपथं आहुः तं पंचकं शतं अर्हति ॥

यो० । कृतानुसारात् अधिका व्यतिरिक्ता वृद्धिः न सिद्ध्यति मन्वादयः तं (अधिकवृद्धिव्यवहारं) कुसीदपथं आहुः—सः (वृद्धिग्राही) पञ्चकं शतं दंडं अर्हति ॥

भा० । शास्त्रोक्त वृद्धिसे अधिक की हुई वृद्धि विना की होती है क्योंकि इस व्यवहार को मनु आदिकों ने कहा है और यदि मांगने पर अधमर्ण न दे तो एक शत के पांचशत देने योग्य होताहै ॥

ता० । शास्त्रने वर्ण क्रमसे जो दो–तीनरुपये शतरुपयेपर कहे हैं उससे अधिक भिन्न की हुई उत्तमर्ण की वृद्धि सो सिद्ध नहीं होती अर्थात् राजा उसको नहीं की हुई समझे और जहां रुपयेदेनेके समय वृद्धि का निश्चय न हुआ हो वहां पर भी वर्णोंके क्रमसे दो–तीन–चार–पांच रुपयेही सौ रुपये पर ग्रहण करने अधिक नहीं–क्योंकि इस विष्णु वचनं के अनुसार इह प्रतीत होता है कि विना की हुई भी वृद्धि को–अधमर्ण दे यदि वर्ष दिन से अधिक होजाय तो वर्णों के क्रम से पूर्वोक्त वृद्धि को दें–और इस मार्ग को मनु आदिक कुसीदपथ (निंदित मार्ग) कहते हैं–अर्थात् शास्त्रोक्त वृद्धिसे अधिक वृद्धिलेना मनु आदिकोंने निंदित कहा है–क्योंकि यह अधमर्ण जो शूद्रको पंचशत ५००) पांचसौ दण्डके योग्य होता है— इसी से पूर्वोक्त धर्म वृद्धिसे यह अधम है और इसी से जो दण्ड शूद्रको है वही दण्ड द्विजाती को भी इस निंदित वृद्धिकी महिमा से होता है और विना की हुई यह वृद्धि मांगने से पीछे जाननी अर्थात् उत्तमर्ण के मांगने पर जब अधमर्ण न दे यही बात इस वचन से कात्यायनने कहा कि उत्तमर्णके मांगे विना प्रीतिसे दिया हुआ धन नहीं बढ़ता और उत्तमर्ण के मांगने से अधमर्ण न दे तो पांचसौ तक अर्थात् सौ रुपयेपर पांचसौ तक बढ़ताहै १५२॥

नातिसांवत्सरींवृद्धिंनचादृष्टांपुनर्हरेत् । चक्रवृद्धिःकालवृद्धिःकारिताकायिकाचया १५३ ॥

प० । नँ अतिसांवत्सरीं वृद्धिं नँ चँ अदृष्टां पुनः हरेत् चक्रवृद्धिः कालवृद्धिः कारिता कायिका चँ याँ ॥

यो० । उत्तमर्णः अतिसांवत्सरीं चपुनः अदृष्टां वृद्धिं पुनः न हरेत् चपुनः यावृद्धिः चक्रवृद्धिः कालवृद्धिः कारिता कायिका भवति तां अपि न हरेत ॥

भा० । वर्ष दिन के अनंतर कीहुई वृद्धि और शास्त्र में न कही वृद्धि और चक्रवृद्धि कालवृद्धि कारितवृद्धि और कायिकवृद्धि इन चारों वृद्धियोंको ग्रहण न करे ॥

ता० । वर्ष दिन के अनंतर वृद्धि (नियम वृद्धि)को ग्रहण न करे कि इस नियम से मुझे एक महीने में वा दो–तीन–महीने में गिनती करिकरि एकवार वृद्धि देते जाना इस वृद्धिको वर्षदिन तक करे पश्चात् न करे और जो वृद्धि शास्त्रमें नहीं कही उससे अधिक वृद्धिको भी ग्रहण न करे और चक्रवृद्धि कालवृद्धि कारितवृद्धि और कायिक (देहकी) वृद्धिको भी उत्तमर्ण ग्रहण न करें

---

१ वृद्धिंदद्युरकृताअपि वत्सरातिक्रमे यथाविहितां वर्णक्रमेण ॥
२ प्रीतिदत्तंनवर्द्धेत यावन्नप्रतियाचितम् । याच्यमानंनदत्तंचेत् वर्द्धतेपंचकंशतम् ॥

और चक्रवृद्धि आदि चारों वृद्धियोंका स्वरूप बृहस्पति ने इस वचन से वर्णनकिया है कि जो वृद्धि देहसे दीजाय वह कायिक—और जो प्रत्येक महीने में कीजाय वह कालिक—और जो वृद्धि पर वृद्धि (ब्याजपर ब्याज) लीजाय वह चक्रवृद्धि—और उत्तमर्ण के भयसे जिस वृद्धिको अधमर्ण निश्चयकरदे वह कारित होती है—इन चारोंमें चक्रवृद्धि तो स्वरूपसेही निंदित है—और मूलधन से दूनि से अधिक ग्रहणकरने से कालवृद्धि भी निंदित है—और कायिकवृद्धि वो होतीहै कि कोई मनुष्य किसी को दश रुपये इस नियम से दे कि पांचदिन हमारी प्रत्येक मासमें सेवा करिदिया करना यदि उस मनुष्यसे अधिक परिश्रम करायाजाय तो कायिक वृद्धि भी निंदित है और कारित भी उत्तमर्ण के भयसे नियत होती है इससे इनचारोंमें शास्त्रमें नहीं कहीहुई इनको ग्रहण न करे क्योंकि इसवचनें के अनुसार बृहस्पतिने यह कहा है कि दूने से अधिक भाग और चक्रवृद्धि और वृद्धिसहित मूल धनके पूर्ण होनेपर भी वृद्धिके लोभसे वृद्धि लिये जाना इन वृद्धियों से व्यवहार करना और कात्यायननें भी यह कहा है कि अधमर्ण की कीहुई अधिक वृद्धि होतीहै और आपत्काल में कीहुई वृद्धि कारित होतीहै इन दोनों वृद्धियोंको अधमर्ण दे और इनसे अन्यथा कीहुई वृद्धियों को कभी न दे १५३ ॥

ऋणंदातुमशक्तोयःकर्तुमिच्छेत्पुनःक्रियाम् । सदत्त्वानिर्जितांवृद्धिंकरणंपरिवर्तयेत् १५४ ॥

प० । ऋणं दातुं अशक्तः यः कर्तुं इच्छेत् पुनः क्रियां सः दत्त्वा निर्जितां वृद्धिं करणं परिवर्त्तयेत् ॥

यो० । यः (अधमर्णः) ऋणंदातुं अशक्तः सन पुनः क्रियां (लेख्यादि) कर्तुं इच्छेत सः निर्जितां वृद्धिं दत्त्वा करणं परिवर्त्तयेत् ॥

भा० । ता० । ऋणदेने को असमर्थ जो अधमर्ण फिर लेख्यादि क्रियाको किया चाहे वह अधमर्ण निर्जित वृद्धिको (स्वीकारकी वृद्धिको) उत्तमर्ण को देकर अपने करण (लेख्य) को बदल दे अर्थात् तमस्सुकको बदल दे १५४ ॥

अदर्शयित्वातत्रैवहिरण्यंपरिवर्तयेत् । यावतीसंभवेद्वृद्धिस्तावतींदातुमर्हति १५५ ॥

प० । अदर्शयित्वा तत्र एव हिरण्यं परिवर्त्तयेत् यावती संभवेत् वृद्धिः तावतीं दातुं अर्हति ॥

यो० । हिरण्यं अदर्शयित्वा तत्रैव (लेख्यपत्रे) अधमर्णः हिरण्यं परिवर्त्तयेत् यावती वृद्धिः संभवेत् तावतीं अधमर्णः दातुं अर्हति ॥

भा० । ता० । यदि दैवगतिसे वृद्धिके रुपयेदेने को समयपर अधमर्ण समर्थ न होय तो वृद्धिके धनको भी मिलाकर दूसरे लेख्यपत्रमें उत्तमर्ण को लेख्यपत्र लिखदे—और उससमयतक जितना वृद्धिपर वृद्धिकाधन (सूदपरसूद) हो उतनाही धन अधमर्ण देनेके योग्यहोताहै १५५ ॥

चक्रवृद्धिंसमारूढोदेशकालव्यवस्थितः । अतिक्रामन्देशकालौनतत्फलमवाप्नुयात् १५६ ॥

प० । चक्रवृद्धिं समारूढः देशकालव्यवस्थितः अतिक्रामन् देशकालौ न तत्फलं अवाप्नुयात् ॥

---

१ कायिकाकायसंयुक्ता मासग्राह्याचकालिका । वृद्धेर्वृद्धिश्चक्रवृद्धिः कारिताऋणिनाकृता ॥

२ भागोयद्द्विगुणादूर्ध्वं चक्रवृद्धिश्चगृह्यते पूर्णेचसोदयंपश्चाद्वाधुष्यंतद्विगर्हितम् ॥

३ ऋणिकेनकृतावृद्धिरधिकासंप्रकल्पिता । आपत्कालकृतानित्यं दातव्याकारितातथा ॥ अन्यथाकारितावृद्धिर्नदातव्याकथंचन ॥

यो० । चक्रवृद्धिसमारूढः देशकालव्यवस्थितः पुरुषः देशकालौ अति क्रामन् सन् तत्फलं (चक्रवृद्धि धनं) न अवाप्नुयात् ॥

भा० । देशकाल की व्यवस्थासे शकटकी वृद्धिके निश्चयवाला उत्तमर्ण यदि नियमित देशकाल को दैवसे पूर्ण न करसके तो उसशकटवृद्धि के सम्पूर्णफल का भागी नहींहोता किंतु कुछ न्यूनफल का भागी होताहै कि ॥

ता० । यहां चक्रवृद्धि शब्दसे चक्रवाले शकट (गाड़ी) आदि भारकी वृद्धि मनुजीको अभिमत है—चक्रवृद्धि का भागी जो देशकाल में टिकाहुआ उत्तमर्ण अर्थात् जो काशीपर्यंत इतना तेरे लवणादिको में लेजाऊं तो इतनाधन (भाड़ा) देना इसदेश की व्यवस्था और यदि महीनेभर तेरेइतने भारको प्रतिदिन अमुक स्थानपर पहुंचाय दियाकरूं तो इतनाधन (जो ठहरजाइ) मुझे देदेना इसकाल की व्यवस्था में टिकाहुआ उत्तमर्ण (गाड़ीवान) यदि पूर्वोक्त नियमित देशकाल को दैव से पूर्ण न करसके तो शकट के लेजानेके लाभरूप सम्पूर्णफलको नहींप्राप्तहोसक्ता अर्थात् कुछन्यून फलका भागी होताहै कि १५६ ॥

समुद्रयानकुशलादेशकालार्थदर्शिनः । स्थापयन्तितुयांवृद्धिंसातत्राधिगमंप्रति १५७ ॥

प० । समुद्रयानकुशलाः देशकालार्थदर्शिनः स्थापयंति तु यां वृद्धिं सा तत्र अधिगमं प्रति ॥

यो० । देशकालार्थदर्शिनः समुद्रयानकुशलाः तत्र यां वृद्धिं स्थापयंति अधिगमं प्रति सा तत्र प्रमाणं (भवति) ॥

भा० । देश और काल के तत्त्वको जाननेवाले समुद्रकी यात्रामें कुशल जिसवृद्धिकी ऐसे विषय में जो व्यवस्थादें वही व्यवस्था वृद्धीकी प्राप्तिमें प्रमाणहै अर्थात् उसी व्यवस्था के अनुसार उत्तमर्ण को धनदें ॥

ता० । समुद्र के गमनमें चतुर और देश—कालके तात्पर्यके जाननेवाले पुरुष अर्थात् इतनेकाल में इतने देशपर्यंत इतनेभारके लेजानेपर इतना लाभ (भाड़ा) ग्रहणकरने के योग्य है—इसप्रकार को जाननेवाले वैश्यआदि (व्यापारी मनुष्य) उसविषयमें जो वृद्धिनिर्णयकरिदें वहीवृद्धि ऐसेविषय में धनकी प्राप्तिकेलिये प्रमाणहोतीहै अर्थात् उनकेही कथनके अनुसार ठहराईहुई वृद्धिसे कुछन्यून वृद्धि प्रमाण है १५७ ॥

योयस्यप्रतिभूस्तिष्ठेद्दर्शनायेहमानवः । अदर्शयन्सतंतस्यप्रयच्छेत्स्वधनादृणम् १५८ ॥

प० । यः यस्य प्रतिभूः तिष्ठेत् दर्शनाय इह मानवः अदर्शयन् सः तं तस्य प्रयच्छेत् स्वधनात् ऋणम् ॥

यो० । यः मानवः यस्य दर्शनाय इह प्रतिभूः तिष्ठेत् सः मानवः तं मनुष्यं अदर्शयन् सन् स्वधनात् तस्य ऋणं प्रयच्छेत् ॥

भा० । ता० । जिसमनुष्य के दिखाने के लिये जे साक्षीटिके (हों) अर्थात् अमुकसमयपर इस अधमर्णको तेरे समीप उपस्थितकरदूंगा इसप्रकार साक्षी लिखदें उस अधमर्णको नहीं दिखाताहुआ वहसाक्षी अपने धनमेंसे उत्तमर्ण को ऋणका धनदे १५८ ॥

प्रातिभाव्यंवृथादानमाक्षिकंसौरिकंचयत् । दण्डशुल्कावशेषंचनपुत्रोदातुमर्हति १५९ ॥

प० । प्रातिभाव्यं वृथादानं आक्षिकं सौरिकं च यत् दंडशुल्कावशेषं च न पुत्रः दातुं अर्हति ॥

यो० । (पितरि मृतेसति) पुत्रः प्रातिभाव्यं वृथादानं आक्षिकं सौरिकं चपुनः दंडशुल्कावशेषं यत् धनं तत् दातुं न अर्हति ॥

भा० । साक्षी वृथादान–द्यूत–मदिरापान–दंड–महसूल इनमें जो पिताकाऋण उसको पिता के मरनेपर पुत्र देनेयोग्य नहीं है ॥

ता० । यदि पिता मरिजाय तो पुत्र इतनेऋण को उत्तमर्ण को देनेयोग्य नहींहोता कि जो धन प्रतिभू (जामिन) काहो और जो पिताने वृथादान अर्थात् परिहाससे गयाआदिके पंडाओंको देने के लिये पिताने स्वीकारकियाहो और जो द्यूतमें पिताने ऋणकियाहो अथवा मदिराके पानकरनेमें जो पितापर ऋणहो और जो पितापर राजा के दंडकाशेषहो–अथवा शुल्क (घटआदि का महसूल) का शेषहो–इनको पुत्र न दे १५६ ॥

दर्शनप्रातिभाव्येतुविधिःस्यात्पूर्वचोदितः । दानप्रतिभुविप्रेतेदायादानपिदापयेत् १६० ॥

प० । दर्शनप्रातिभाव्ये तु विधिः स्यात् पूर्वचोदितः दानप्रतिभुवि प्रेते दायादान् अपि दापयेत् ॥

यो० । दर्शनप्रातिभाव्ये पूर्वचोदितः विधिःस्यात् दानप्रतिभुवि प्रेते दायादान् अपि राजा दापयेत् ॥

भा० । दिखाने का जो साक्षीहो वहां पूर्वोक्तही विधि है और दानकासाक्षी मरिजाय तो पुत्रोंसे भी राजा ऋणको दिवादे ॥

ता० । जो अधमर्ण के उत्तमर्ण को दिखाने में साक्षी है वहां पूर्वोक्तही विधानहोता है अर्थात् दिखानेवाला साक्षी मरिजाय तो उसका पुत्र साक्षीके ऋणको न दे–यदि दानका जो साक्षी है अर्थात् जिसकी साक्षीमें जो दान ब्राह्मणआदि को पिताने दियाहो पिताके मरनेपर उस साक्षी के पुत्रोंसे भी उसऋणको राजा ब्राह्मण आदिको दिवादे १६० ॥

अदातरिपुनर्दाताविज्ञातप्रकृतावृणम् । पश्चात्प्रतिभुविप्रेतेपरीप्सेत्केनहेतुना १६१ ॥

प० । अदातरि पुनः दाता विज्ञातप्रकृतौ ऋणं पश्चात् प्रतिभुवि प्रेते परीप्सेत् केन हेतुना ॥

यो० । विज्ञातप्रकृतौ ऋणं अदातरि (सति) पश्चात् प्रतिभुवि प्रेतेसति पुनः दाता (उत्तमर्णः) केन हेतुना धनं प्राप्तुं परीप्सेत् ॥

भा० । साक्षी धनके देनेयोग्य प्रतिभू धनको न दे और दैवयोगसे साक्षीमरजाय तो उत्तमर्ण किस युक्तिसे अपने धनके लेनेकी चेष्टाकरे ॥

ता० । जो प्रतिभू विज्ञात प्रकृतीहो अर्थात् साक्षीके सम्पूर्ण मूल धनके देने की सामर्थ्य रखता हो वह धनको न दे और दैवयोगसे प्रतिभू (जामिन) मरजाय तो फिर ऋणकेदेनेवाला किसकारण से अपने धनके लेनेकी इच्छाकरे क्योंकि प्रतिभू तो मरगया और उसकापुत्र दानके प्रतिभू का पुत्र होनेसे देनहींसक्ता ऐसे विषयमें उत्तमर्ण का धन कैसे प्राप्तहो १६१ ॥

निरादिष्टधनश्चेत्तुप्रतिभूस्यादलंधनः । स्वधनादेवतद्दद्यान्निरादिष्टइतिस्थितिः १६२ ॥

प० । निरादिष्टधनः चेत् तु प्रतिभूः स्यात् अलंधनः स्वधनात् एव तत् दद्यात् निरादिष्टः इति स्थितिः ॥

यो० । चेत् यदि निरादिष्टधनः प्रतिभूः अलंधनःस्यात् तदा निरादिष्टःस्वधनात् एव तत् धनं दद्यात् इतिस्थितिः (शास्त्रमर्यादा) अस्तीति शेषः ॥

भा० । यदि साक्षी को अधमर्ण ने धनदे दिया हो और उसका पुत्र उस धनके देने में समर्थ हो तो अपने पिता के मरने पर उत्तमर्ण को अपने धनमेंसेही ऋणको देदे यही शास्त्रकी मर्यादाहै ॥

ता० । यदि अधमर्ण के दिखाने और प्रतीती का प्रतिभू निरादिष्ट धनहो अर्थात् अधमर्णने उस को धन देदियाहो और उसने उत्तमर्णको न दियाहो और जितने धनसे ऋण दूर होसके उतना धन उस प्रतिभू (साक्षी) का पुत्र भी अपने धनमेंसे पिता के मरने पर भी उत्तमर्ण को देदे यह शास्त्र संप्रदाय है १६२ ॥

मत्तोन्मत्तार्त्ताध्यधीनैर्बालेनस्थविरेणवा । असंबद्धकृतश्चैवव्यवहारोनसिद्ध्यति १६३ ॥

प० । मत्तोन्मत्तार्त्ताध्यधीनैः बालेन स्थविरेण वा असंबद्धकृतः च एवं व्यवहारः न सिद्ध्यति ॥

यो० । मत्तोन्मत्तार्त्ताध्यधीनैः बालेन वा स्थविरेण असंबद्धकृतः व्यवहारोपि न सिद्ध्यति ॥

भा० । ता० । मत्त–उन्मत्त–व्याधि आदिसे पीडित और अस्वतंत्र (सेवकादि) बालक और वृद्ध इन्होंने असंबद्धरीती से अर्थात् पिता– भाई आदि की आज्ञा के विना किया जो ऋण आदि का व्यवहार (लेन देन) वह सिद्ध नहीं होता अर्थात् यथार्थ नहीं जानना १६३ ॥

सत्यानभाषाभवतियद्यपिस्यात्प्रतिष्ठिता । बहिश्चेद्भाष्यतेधर्मान्नियताद्व्यावहारिकात् १६४॥

प० । सत्या न भाषा भवति यद्यपि स्यात् प्रतिष्ठिता बहिः चेत् भाष्यते धर्मात् नियतात् व्यावहारिकात् ॥

यो० । चेत् (यदि) नियतात् व्यावहारिकात् धर्मात् बहिः भाष्यते तर्हि भाषा यद्यपि प्रतिष्ठिता स्यात् तथापि सत्या न भवति ॥

भा० । ता० । जो भाषा शास्त्रोक्त धर्म और व्यवहारसे बाहिर लिखीजाय चाहे वह भाषा (अर्जी) लिखने आदि से स्थिरता को भी प्राप्तहो तो भी सत्य नहीं होती इससे उसके लिये राजा निर्णय में प्रवृत्त न हो १६४ ॥

योगाधमनविक्रीतंयोगदानप्रतिग्रहम् । यत्रवाप्युपधिंपश्येत्तत्सर्वंविनिवर्तयेत् १६५ ॥

प० । योगाधमनविक्रीतं योगदानप्रतिग्रहं यत्र वा अपि उपधिं पश्येत् तत् सर्वं विनिवर्तयेत् ॥

यो० । योगाधमनविक्रीतं योगदानप्रतिग्रहं यत्र वा राजा उपधि अपि पश्येत् तत् सर्वं विनिवर्तयेत् ॥

भा० । ता० । योग (छल) से जो बन्धक विक्रय (बेचना) दान प्रतिग्रह कियेजायँ अथवा जिसमें राजा छल को देखे इन सम्पूर्ण व्यवहारों को राजा निवृत्त करिदे अर्थात् झूठे जानकर इन का निर्णय न करे १६५ ॥

ग्रहीतायदिनष्टःस्यात्कुटुम्बार्थेकृतोव्ययः । दातव्यंबान्धवैस्तत्स्यात्प्रविभक्तैरपिस्वतः १६६ ॥

प० । ग्रहीता यदि नष्टः स्यात् कुटुम्बार्थे कृतः व्ययः दातव्यं बांधवैः तत् स्यात् प्रविभक्तैः अपि स्वतः ॥

यो० । यदि ग्रहीता (ऋणग्राही) नष्टःस्यात् तेनकुटुम्बार्थे व्ययः कृतः तर्हि तत् धनं प्रविभक्तैःअपि बांधवैः स्वतः (स्वधनात्) दातव्यं स्यात् ॥

भा० । ता० । जो ऋणके लेनेवाला मरजाय और उसने कुटुम्बके लिये उस द्रव्यका व्यय किया हो तो उस ऋणको विभक्त अथवा अविभक्त भी सम्पूर्ण बांधव अपने धनमें से दे दें क्योंकि वह धन उन्हीं की पालना के लिये उसने किया था १६६ ॥

कुटुम्बार्थेऽध्यधीनोऽपिव्यवहारंयमाचरेत् । स्वदेशेवाविदेशेवातंज्यायान्नविचालयेत् १६७ ॥

प० । कुटुम्बार्थे अध्यधीनः अपि व्यवहारं यं आचरेत् स्वदेशे वा विदेशे वा तं ज्यायान् न विचालयेत् ॥

यो० । अध्यधीनः अपि कुटुम्बार्थे यं व्यवहारं स्वदेशे वा विदेशे आचरेत् तं व्यवहारं ज्यायान (श्रेष्ठपुरुषः) न विचालयेत् ॥

भा० । ता० । सेवक भी स्वामी के कुटुम्ब के लिये जिस ऋणादान आदि व्यवहारको स्वदेश में वा पर देश में करे उस व्यवहार को स्वामी भी स्वीकार करे क्योंकि सेवकने स्वामी के कुटुम्बकी पालना के लिये व्यवहार किया है १६७ ॥

बलाद्दत्तंबलाद्भुक्तंबलाद्यच्चापिलेखितम् । सर्वान्बलकृतानर्थानकृतान्मनुरब्रवीत् १६८ ॥

प० । बलात् दत्तं बलात् भुक्तं बलात् यत् च अपि लेखितं सर्वान् बलकृतान् अर्थान् अकृतान् मनुः अब्रवीत् ॥

यो० । यत् बलात् दत्तं बलात् भुक्तं - चपुनः यत् बलात् लेखितं सर्वान बलकृतान् अर्थान मनुः अकृतान् अब्रवीत् ॥

भा० । ता० । जो देने के अयोग्य वस्तु बलसे दीजाय और जो बल से पृथिवी आदि भोगी जाय और जो चक्रवृद्धि आदि पत्रमें बलसे लिखवा लीजाय बलसे किये हुये इन सम्पूर्ण व्यवहारों को अकृत (निवृत्तकरनेयोग्य) अर्थात् झूंठे मनुजीने कहे हैं १६८ ॥

त्रयःपरार्थेक्लिश्यन्तिसाक्षिणःप्रतिभूःकुलम् । चत्वारस्तूपचीयन्तेविप्रआढ्योवणिङ्नृपः १६९

प० । त्रयः परार्थे क्लिश्यन्ति साक्षिणः प्रतिभूः कुलं चत्वारः तु उपचीयन्ते विप्रः आढ्यः वणिक् नृपः ॥

यो० । साक्षिणः प्रतिभूः कुलं एते त्रयः परार्थे क्लिश्यन्ति - विप्रः आढ्यः वणिक् नृपः एते चत्वारः उपचीयंते (वृद्धिंगच्छंति) ॥

भा० । साक्षी—प्रतिभू—कुल ये तीनों दूसरे के लिये क्लेश भोगते हैं और ब्राह्मण धनी व्यापारी—राजा—ये चारों पराये धनसे बढ़ते हैं ॥

ता० । साक्षी प्रतिभू—और धर्म के लिये व्यवहार देखने वाले कुल ये तीनों दूसरे मनुष्य के अर्थ दुःख पाते हैं इससे राजा बलसे किसी को साक्षी प्रतिभू और व्यवहारका देखने वाला न करे और ब्राह्मण उत्तमर्ण—व्यापारी—और राजा ये चारों दूसरे के धनसे बढ़ते हैं अर्थात् ब्राह्मण दानके धनसे और उत्तमर्ण ऋणके देने से जो वृद्धि उससे और व्यापारी विक्रयसे और राजा व्यवहारके देखने से धनकी वृद्धि को प्राप्त होते हैं तिस से ब्राह्मण दानके लिये दाताको और उत्तमर्ण अधमर्ण को और व्यापारी लेने वाले को और राजा व्यवहार करनेवाले को बलसे प्रवृत्त न करे क्योंकि किया हुआ कार्य अकृत होता है १६९ ॥

अनादेयंनाददीतपरिक्षीणोऽपिपार्थिवः । नचादेयंसमृद्धोऽपिसूक्ष्ममप्यर्थमुत्सृजेत् १७० ॥

प० । अनादेयं न आददीत परिक्षीणः अपि पार्थिवः न च आदेयं समृद्धः अपि सूक्ष्मं अपि अर्थं उत्सृजेत् ॥

यो० । परिक्षीणः अपि पार्थिवः अनादेयं (धनं) न आददीत—समृद्धः अपि पार्थिवः सूक्ष्मं अपि आदेयं अर्थं न उत्सृजेत् ॥

भा० । ता० । निर्धन भी राजाग्रहणकरने के अयोग्य धनको ग्रहण न करे और समृद्ध (अधिक-धनी) भी राजा ग्रहण करने योग्य अल्पभी धनको न छोड़े—क्योंकि १७० ॥

अनादेयस्यचादानादादेयस्यचवर्जनात् । दौर्बल्यंख्याप्यतेराज्ञःसप्रेत्येहचनश्यति १७१ ॥

प० । अनादेयस्य च आदानात् आदेयस्य च वर्जनात् दौर्बल्यं ख्याप्यते राज्ञः सः प्रेत्य इह च नश्यति ॥

यो० । अनादेयस्य आदानात् चपुनः आदेयस्यवर्जनात् राज्ञः दौर्बल्यं ख्याप्यते—सः राजा प्रेत्य चपुनः इह नश्यति ॥

भा० । ता० । ग्रहणकरने अयोग्य द्रव्यके ग्रहणकरनेसे और ग्रहणकरने योग्य द्रव्यके परित्याग से राजा की दुर्बलता प्रतीत होतीहै और वह राजा परलोक में नरकादि भोगसे और इसअकीर्त्ति से नष्टहोता है १७१ ॥

स्वादानाद्वर्णसंसर्गात्त्वबलानांचरक्षणात् । बलंसंजायतेराज्ञःसप्रेत्येहचवर्द्धते १७२ ॥

प० । स्वादानात् वर्णसंसर्गात् तु अबलानां च रक्षणात् बलं संजायते राज्ञः सः प्रेत्य इह च वर्द्धते ॥

यो० । स्वादानात् वर्णसंसर्गात् चपुनः अबलानां रक्षणात् राज्ञः बलं संजायते सः राजा प्रेत्य चपुनः इह वर्द्धते ॥

भा० । न्यायपूर्वक धनलेना वर्णोंकापरस्पर सम्बन्ध दुर्बलोंकीरक्षा इनसे राजा बलवान् होता है और वहराजा इसलोक और परलोक में बढ़ताहै ॥

ता० । न्यायसे धनका ग्रहणकरना और ब्राह्मणआदि वर्णोंका सजातीय वर्णोंकेसंग विवाहआदि सम्बन्धकराना अथवा वर्णोंके संकरसे प्रजाकीरक्षाकरनी दुर्बलमनुष्योंकी बलीमनुष्योंसे रक्षाकरनी इनसे राजा का बलबढ़ता है—अर्थात् सामर्थ होताहै और इसीसे वहराजा परलोक और इसलोक में वृद्धि को प्राप्तहोताहै १७२ ॥

तस्माद्यमइवस्वामीस्वयंहित्वाप्रियाप्रिये । वर्त्तेतयाम्ययावृत्त्याजितक्रोधोजितेन्द्रियः १७३ ॥

प० । तस्मात् यमः इव स्वामी स्वयं हित्वा प्रियाप्रिये वर्त्तेत याम्यया वृत्त्या जितक्रोधः जितेन्द्रियः

यो० । तस्मात् जितक्रोधः जितेन्द्रियः स्वामी स्वयं प्रियाप्रिये हित्वा याम्ययावृत्त्या यमः इव वर्त्तेत ॥

भा० । ता० । तिससे क्रोध और इन्द्रिनको जीतकर अपनेभी प्रिय और अप्रियको त्यागकर यम-राजकी वृत्तिसे अर्थात् समतासे यमराज की समानही बर्त्तावकरै १७३ ॥

यस्त्वधर्मेणकार्याणिमोहात्कुर्यान्नराधिपः । अचिरात्तंदुरात्मानंवशेकुर्वन्तिशत्रवः १७४ ॥

प० । यः तु अधर्मेण कार्याणि मोहात् कुर्यात् नराधिपः अचिरात् तं दुरात्मानं वशे कुर्वंति शत्रवः ॥

यो० । यः नराधिपः मोहात् अधर्मेण कार्याणि कुर्यात् तं दुरात्मानं अचिरात् शत्रवः वशे कुर्वंति ॥

भा० । ता० । जो राजा अज्ञानसे अधर्म के अनुसार अपनेकार्योंको करता है उसदुरात्मा राजा को थोड़ेहीकाल में शत्रुवश में करलेतेहैं १७४ ॥

कामक्रोधौतुसंयम्ययोऽर्थान्धर्मेणपश्यति । प्रजास्तमनुवर्तन्तेसमुद्रमिवसिन्धवः १७५ ॥

प० । कामक्रोधौ तु संयम्य यः अर्थान् धर्मेण पश्यति प्रजाः तं अनुवर्त्तते समुद्रं इव सिंधवः ॥

यो० । यः राजा कामक्रोधौ संयम्य अर्थान धर्मेण पश्यति तं राजानं सिंधवः समुद्रं इव प्रजाः अनुवर्त्तते ॥

भा० । जो राजा रागद्वेप छोड़कर धर्मसे कार्योंको देखताहै उसको प्रजा इसप्रकार भजतीहैं जैसे समुद्रको नदी ॥

ता० । जो राजा काम और क्रोध अर्थात् रागद्वेप को त्यागकर धर्मकीरीतिसे कार्योंको देखता है उसको सम्पूर्णप्रजा इसप्रकार भजतीहैं जैसे सम्पूर्णनदी समुद्रको अर्थात् जैसे नदी समुद्रसे निवृत्त नहींहोतीं उसीके संग एकरूप को प्राप्तहोजातीहैं इसीप्रकार प्रजा भी उसराजासे पृथक् नहीं होतीं किंतु उसी की एकताको प्राप्तहोजाती हैं १७५ ॥

यःसाधयन्तंछन्देनवेदयेद्धनिकंनृपे । सराज्ञातच्चतुर्भागंदाप्यस्तस्यचतद्धनम् १७६ ॥

प० । यः साधयंतं छंदेन वेदयेत् धनिकं नृपे सः राज्ञा तच्चतुर्भागं दाप्यः तस्य च तत् धनम् ॥

यो० । यः अधमर्णः धनं छंदेन साधयंतं धनिकं नृपे वेदयेत् सः अधमर्णः राज्ञा तच्चतुर्भागं चपुनः तस्य तत् धनं दाप्यः ॥

भा० । ता० । जो अधमर्ण अपनी इच्छासे धनको सिद्धकरतेहुये उत्तमर्ण का राजासे निवेदन करदे उस अधमर्ण को राजा उसधनका चतुर्थांशदण्डदे और उत्तमर्ण का जितनाधनहो वह सब दिलादे १७६ ॥

कर्मणापिसमंकुर्याद्धनिकायाधमर्णिकः । समोऽवकृष्टजातिस्तुदद्याच्छ्रेयांस्तुतच्छनैः १७७ ॥

प० । कर्मणा अपि समं कुर्यात् धनिकाय अधमर्णिकः समः अवकृष्टजातिः तु दद्यात् श्रेयान् तु तत् शनैः ॥

यो० । समः अवकृष्टजातिः अधमर्णिकः धनिकाय कर्मणाऽपि समंकुर्यात् श्रेयान तु तत ऋणं शनैः दद्यात् ॥

भा० । समान—और अपने से नीचजाति अधमर्णको कामकराकर अपने समानकरे और उत्तम जातिका अधमर्ण तो शनैः २ धनकोदेदे ॥

ता० । जो अधमर्ण सजातीय अथवा नीचजातिहो वह अपनीजातिके योग्य कर्म (सेवा) आदि कर्म को करिके उत्तमर्णको धनदेनेसे अपनी आत्माको समानकरे अर्थात् उनदोनों में जो यहभेद था कि एक उत्तमर्ण एकअधमर्ण वह सेवाआदि करनेसे दूरहोगया इससे वे दोनोंसम (बराबर) होगये और यहां समजाति से ब्राह्मण भिन्नलेने क्योंकि इस कात्यायन के वचन से यह प्रतीत होता है कि क्षत्री—वैश्य—शूद्र—इनसे कर्म कराकर समानकरे अर्थात् अपनेऋण दूरकराले—और नीचों को राजा दण्डदे—और उत्कृष्ट अपने से अधिक अधमर्णसे काम न करावे किंतु वह अधमर्ण शनैः शनैः उत्तमर्ण के धनकोदेदे १७७ ॥

अनेनविधिनाराजामिथोविवदतांनृणाम् । साक्षिप्रत्ययसिद्धानिकार्याणिसमतांनयेत् १७८ ॥

प० । अनेन विधिना राजा मिथः विवदतां नृणाम् साक्षिप्रत्ययसिद्धानि कार्याणि समतां नयेत् ॥

---

१ कर्मणाक्षत्रविट्शूद्रान् समानजातीयान् हीनांस्तुदापयेत् ॥

यो० । राजा मिथः विवदतां नृणां साक्षिप्रत्ययसिद्धानि कार्याणि अनेन विधिना समतां नयेत् ॥

भा० । ता० । परस्पर विवादकरतेहुये मनुष्यों के साक्षिआदि प्रमाणोंसे निर्णय कियेहुये कार्यों (मुकद्दमों) को इसविधिसे समकरे (निबटावे) १७८ ॥

कुलजेवृत्तसंपन्नेधर्मज्ञेसत्यवादिनि । महापक्षेधनिन्यार्येनिक्षेपंनिक्षिपेद्बुधः १७९ ॥

प० । कुलजे वृत्तसंपन्ने धर्मज्ञे सत्यवादिनि महापक्षे धनिनि आर्ये निक्षेपं निक्षिपेत् बुधः ॥

यो० । कुलजे-वृत्तसंपन्ने धर्मज्ञे सत्यवादिनि महापक्षे धनिनि आर्ये एवंविधपुरुषे बुधः निक्षेपं निक्षिपेत् ॥

भा० । ता० । विद्वान् मनुष्य ऐसे पुरुष के समीप निक्षेप (धरोहर) को धरे कि जो अच्छेकुल से पैदाहो और उत्तम आचरणवाला और धर्मका ज्ञाता सत्यवादी बहुत जिसके पुत्रआदि कुटुम्बहों और कोमल जिसकीप्रकृतिहो क्योंकि ऐसेपुरुषके समीप रक्खाहुआ निक्षेप नष्टनहींहोता १७९ ॥

योयथानिक्षिपेद्धस्तेयमर्थंयस्यमानवः । सतथैवग्रहीतव्योयथादायस्तथाग्रहः १८० ॥

प० । यः यथा निक्षिपेत् हस्ते यं अर्थं यस्य मानवः सः तथा एव ग्रहीतव्यः यथा दायः तथा ग्रहः

यो० । यः मानवः यं अर्थं यस्य हस्ते यथा निक्षिपेत् सः अर्थः तथा एव ग्रहीतव्यः कुतः यथा दायः तथाग्रहः (भवति)

भा० । जो मनुष्य जिसके हाथमें जिसप्रकार धनको समर्पणकरे उसको वह उसीरीतिसे ग्रहण करै उसीरीति से रक्खाहो क्योंकि जिसप्रकार से देना उसीप्रकार से लेना योग्य है ॥

ता० । जो मनुष्य जिसप्रकारसे अर्थात् मुद्रासहित वा रहित साक्षी सहित वा रहित जिससुवर्ण आदि धनको जिसमनुष्यके हाथमें दे उसधनको उसीप्रकार रखनेवाला तिससे ग्रहणकरे क्योंकि जिसप्रकार से समर्प्पण किया उसीप्रकार ग्रहणकरना न्याय्य है यदि रखनेवाला मुद्रासहित धनको रखकर और उसकी आपहीमुद्रा (मोहर) को उखाड़कर यहकहै कि मुझे तोलकर मेरी वस्तुदे उस रखनेवाले को राजा दंड दे १८० ॥

योनिक्षेपंयाच्यमानोनिक्षेप्तुर्नप्रयच्छति । सयाच्यःप्राड्विवाकेनतन्निक्षेप्तुरसन्निधौ १८१ ॥

प० । यः निक्षेपं याच्यमानः निक्षेप्तुः न प्रयच्छति सः याच्यः प्राड्विवाकेन तम् निक्षेप्तुः असंनिधौ

यो० । यः याच्यमानः निक्षेप्तुः निक्षेपं न प्रयच्छति सः तं निक्षेप्तुः असंनिधौ प्राड्विवाकेन याच्यः ॥

भा० । ता० । जो मनुष्य निक्षेप रखनेवाले के मांगनेपर रखनेवाले को न दे उसपर प्राड्विवाक ऐसे स्थानपर मांगे जहां निक्षेप रखनेवाला न हो और मांगने की रीति का यह प्रकारहै कि १८१ ॥

साक्ष्यभावेप्रणिधिभिर्वयोरूपसमन्वितैः । अपदेशैश्चसंन्यस्यहिरण्यंतस्यतत्त्वतः १८२ ॥

प० । साक्ष्यभावे प्रणिधिभिः वयोरूपसमन्वितैः अपदेशैः च संन्यस्य हिरण्यं तस्य तत्त्वतः ॥

यो० । साक्ष्यभावे वयोरूपसमन्वितैः प्रणिधिभिः चपुनः अपदेशैः तस्य हिरण्यं तत्त्वतः संन्यस्य प्राड्विवाकेन याच्यः ॥

भा० । यदि कोई साक्षी न होय युवा और सौम्य और व्याज (बहाने) के कहने वाले दूतों पर अन्य हिरण्य उसी के यहां यथार्थ रीतिसे रखवाकर उससे पूंछे कि वह सुवर्ण लाओ जो तुम्हारे यहां दूत रख गये हैं ॥

ता० । यदि उस निक्षेप रखने वाले का कोई साक्षी न हो और वह मिथ्याही अपना निक्षेप बताता होय तो प्राड्विवाक अपने प्रणिधि (सभाके चार पुरुष) यों से कि जो बालक न होयँ और जिनका सौम्य स्वभाव हो और जो राजा के उपद्रव आदि के बहाने के कहने वालेहों उनसे कुछ हिरण्य आदि द्रव्य उसी निक्षेपधारी के समीप रखवाकर प्राड्विवाक उससे पूंछे कि तेरे यहां कोई चार पुरुष सुवर्ण आदि द्रव्य जो रखगये हैं उसे हमको दे १८२ ॥

सयदिप्रतिपद्येतयथान्यस्तंयथाकृतम् । नतत्रविद्यतेकिंचिद्यत्परैरभियुज्यते १८३ ॥

प० । सः यदि प्रतिपद्येत यथान्यस्तं यथाकृतं न तत्र विद्यते किंचित् यत् परैः अभियुज्यते ॥

यो० । यदि सः निक्षेपधारी यथान्यस्तं यथाकृतं प्रतिपद्येत तर्हि परैः यत् अभियुज्यते तत् तत्र किंचित् न विद्यते ॥

भा० । यदि जिस प्रकार रक्खे और जिस प्रकार किये हिरण्य को वह स्वीकार करले तो पहिले वो जो अभियोग (दावा) किया था वह इसके पास नहीं है ॥

ता० । यदि वह निक्षेपधारी जैसा मुद्रा सहित वा रहित और जैसा किया अर्थात् कटक वा मुकुट आदि भूषण जैसा दूत रख गये हों उसको उसी प्रकार स्वीकार करिके यह कहे कि सत्य है अपना निक्षेप लेजाओ तो पहिले निक्षेप रखने वाले ने जिसने प्राड्विवाक पर जाकर कहा था कि मैंने इसके पास इतना द्रव्य रक्खा है तो प्राड्विवाक यह जानले कि इसके पास उसने कुछ नहीं रक्खा इससे वह अवश्य मिथ्यावादी है १८३ ॥

तेषांनदद्याद्यदितुतद्धिरण्यंयथाविधि । उभौनिगृह्यदाप्यःस्यादितिधर्मस्यधारणा १८४ ॥

प० । तेषां न दद्यात् यदि तु तत् हिरण्यं यथाविधि उभौ निगृह्य दाप्यः स्यात् इति धर्मस्य धारणा ॥

यो० । यदि तु तेषां तत् हिरण्यं यथाविधि न दद्यात् तर्हि राज्ञा उभौ निगृह्य (निक्षेपधारी) दाप्यःस्यात् धर्मस्य धारणा इति (अस्ति) ॥

भा० । ता० । यदि वह निक्षेपधारी उन राजदूतों के हिरण्य को यथा विधि (जैसा का तैसा) न दे तो वे दोनों निक्षेप उससे राजा पीडा देकर दण्डले यही धर्म का निर्णय है १८४ ॥

निक्षेपोपनिधीनित्यंनदेयौप्रत्यनन्तरे । नश्यतोविनिपातेतावनिपातेत्वनाशिनौ १८५ ॥

प० । निक्षेपोपनिधी नित्यं न देयौ प्रत्यनन्तरे नश्यतः विनिपाते तौ अनिपाते तु अनाशिनौ ॥

यो० । निक्षेपोपनिधी प्रत्यनन्तरे नित्यं न देयौ (कुतः) विनिपातेसति तौ नश्यतः अनिपाते तु अनाशिनौ (भवतः)॥

भा० । निक्षेप और उपनिधि सौंपनेवाले के पुत्रको कभी न दे क्योंकि सौंपनेवाले के विनाश में ये नष्ट होजाती हैं और जीवते हुये नष्ट नहीं होतीं ॥

ता० । निक्षेप और उपनिधि जो गिनकर और मुद्राके विना सौंपाजाय उसको निक्षेप कहते हैं और विना गिने मुद्रित करि (मोहरलगाकर) के सौंपाजाय उसे उपनिधि कहते हैं ये दोनों रखने वाले और जिसके पास रक्खाजाय इन दोनों जीवते हुये प्रत्यन्तर (पुत्रादि) को कदाचित् भी नहीं देने क्योंकि जो उस पुत्रके पिता का न देना अथवा मरण होनेपर नष्ट होजाती हैं और जिस को सौंपा है उसको देने योग्य होती हैं और पुत्र पिता ये दोनों जीते हैं निक्षेप और उपनिधि ये

दोनों नष्ट नहीं होतीं इससे अनर्थ का सन्देह होने से पुत्रादिकों को न देने जिसने अर्पण किया हो उसको देने १८५ ॥

स्वयमेवतुयोदद्यान्मृतस्यप्रत्यनन्तरे।नसराज्ञानियोक्तव्योननिक्षेप्तुश्चबन्धुभिः १८६

प० । स्वयं एव तु यः दद्यात् मृतस्य प्रत्यनन्तरे न सः राज्ञा नियोक्तव्यः न निक्षेप्तुः च बंधुभिः ॥

यो० । यः पुरुषः मृतस्य प्रत्यनन्तरे स्वयं एव निक्षेपोपनिधिः दद्यात् सः राज्ञा चपुनः निक्षेप्तु. बंधुभिः न नियोक्तव्यः ॥

भा० । जो विना मांगे स्वयंहि मरे के पुत्रको निक्षेप और उपनिधि को दे दे राजा और निक्षेप वाले के पुत्र उसको अन्य द्रव्य के लिये अभियुक्त न करे यदि सन्देह होय तो यह करे कि ॥

ता० । जो निक्षेपधारी मरे मृत्युको प्राप्त हुये सौंपने वाले के पुत्रको स्वयंहि निक्षेप और उपनिधिको दे दे अर्थात् विना मांगे अर्पण करिदे उसको राजा सौंपने पुत्र आदि बन्धु नियुक्त न करे अर्थात् यह न कहे कि अन्य भी द्रव्य तेरे समीप हमारे पिताने और कुछ रक्खा होगा यदि किसी कारण से अन्य द्रव्य रखने का भ्रम होय तो इस प्रकार वर्ताव करे कि १८६ ॥

अच्छलेनैवचान्विच्छेत्तमर्थंप्रीतिपूर्वकम्।विचार्यतस्यवावृत्तंसाम्नैवपरिसाधयेत् १८७

प० । अच्छलेन एव च अन्विच्छेत् तं अर्थं प्रीतिपूर्वकं विचार्य्य तस्य वा वृत्तं साम्ना एव परिसाधयेत् ॥

यो० । मृतनिक्षेप्तृपुत्रः—तं अर्थं प्रीतिपूर्वकं अच्छलेन एव अन्विच्छेत् वा तस्य वृत्तं विचार्य साम्ना एव तं अर्थं परिसाधयेत् ॥

भा० । छलको त्यागकर प्रसन्नता से उस धनका निर्णय करे अथवा उसके धर्मपूर्वक आचरण को विचार कर शान्ति से उस धनका निश्चय करे ॥

ता० मरेहुये सौंपने वाले का पुत्र उस धनको प्रसन्नतापूर्वक और छलको त्यागकर निश्चय करे अर्थात् उसके दिये हुये धनसे अधिक धन सौंपा है या नहीं यह निर्णय करे और शीघ्रता और दीव्य (जो आगे कहेंगे) सुगंद देने उक्त धनसे अधिक धनका निर्णय न करे अथवा उस निक्षेपधारी के शीलको देखकर अर्थात् यह धर्मज्ञहै यह जानकर शान्तिके वचनोंसे अधिक धनका निश्चय करे अर्थात् कठोर भाषणसे न करे १८७ ॥

निक्षेपेष्वेषसर्वेषुविधिःस्यात्परिसाधने।समुद्रेनाप्नुयात्किञ्चिद्यदितस्मान्नसंहरेत् १८८

प० । निक्षेपेषु एषः सर्वेषु विधिः स्यात् तु अरिसाधने समुद्रे न आप्नुयात् किंचित् यदि तस्मात् न संहरेत् ॥

यो० सर्वेषु निक्षेपेषु अरिसाधने सति एषः विधिःस्यात् समुद्रे यदि निक्षेपधारी तस्मान्नसंहरेत् तर्हि किंचित् न आप्नुयात् ॥

भा० । यदि पूर्वोक्त सम्पूर्ण निक्षेपों में चोरी आदि होजाय तो पूर्वोक्त विधिसे निर्णय करे जो निक्षेप का द्रव्य मुद्रा सहितहो और निक्षेपधारी ने भ्रामिक मुद्रा लगाकर कुछ न हरा होय तो सौंपने वाले को कुछ नहीं मिलता ॥

ता० । इन सम्पूर्ण निक्षेपों में यदि अरि साधन होजाय अर्थात् चोरी आदिसे ये नष्ट होजायँ तो इसी पूर्वोक्त विधिसे निर्णय करे अर्थात् साक्ष्यभावे १८२ एकसौ बयासी के श्लोक आदि में कहे हुये उपायों से निर्णय करे यदि सौंपा हुआ द्रव्य मुद्रा सहितहो और निक्षेपधारी उसमें से हरण न करे तो सौंपने वाले को उसमेंसे कुछ नहीं मिल सकता १८८ ॥

चौरैर्हृतंजलेनोढमग्निनादग्धमेववा । नदद्याद्यदितस्मात्सनसंहरतिकिंचन १८९ ॥

प० । चौरैः हृतं जलेन ऊढं अग्निना दग्धं एव वा न दद्यात् यदि तस्मात् सः न संहरति किंचन ॥

यो० । यदि सः निक्षेपधारी तस्मात् किंचन न संहरति तर्हि चौरैः हृतं जलेन ऊढं वा अग्निना दग्धं निक्षेप्तुः न दद्यात् ॥

भा० । ता० । यदि सौंपने वाले का द्रव्य चोर हर लेगयेहों अथवा जल में बहकर देशान्तर में पहुंचगया हो अथवा अग्नि से जलगया हो और निक्षेपधारी ने उसमें से किंचित् भी न लिया होय तो सौंपने वाले को न मिले १८९ ॥

निक्षेपस्यापहर्तारमनिक्षेप्तारमेवच । सर्वैरुपायैरन्विच्छेच्छपथैश्चैववैदिकैः १९० ॥

प० । निक्षेपस्य अपहर्त्तारं अनिक्षेप्तारं एव च सर्वैः उपायैः अन्विच्छेत् शपथैः च एव वैदिकैः ॥

यो० । राजा निक्षेपस्य अपहर्त्तारं चपुनः अनिक्षेप्तारं सर्वैः उपायैः चपुनः वैदिकैः शपथैः अन्विच्छेत् ॥

भा० । ता० । निक्षेपके हरने वाले और विना सौंपकर मांगनेवाले को राजा साम दाम आदि सम्पूर्ण उपायों और वेद में कहे हुये अग्नि का ग्रहण आदि शपथों से निश्चय करे १९० ॥

योनिक्षेपंनार्पयतियश्चानिक्षिप्ययाचते । तावुभौचौरवच्छास्यौदाप्यौवातत्समंदमम् १९१

प० । यः निक्षेपं न अर्पयति यः च अनिक्षिप्य याचते तौ उभौ चौरवत् शास्यौ दाप्यौ वा तत्समं दमम् ॥

यो० । यः निक्षेपं न अर्पयति चपुनः यः अनिक्षिप्य याचते तौ उभौ चौरवत् शास्यौ वा तत्समं दण्डं दाप्यौ ॥

भा० । ता० । जो मनुष्य सौंपेहुये द्रव्यको न दे अथवा विना सौंपे जो मांगे उन दोनों को राजा चोर के समान दण्ड दे यदि वह धन सुवर्ण मोती आदि अधिक मौल्य का हो और यदि अल्प मूल्य (तांबा आदि) होय तो उतनाही उन दोनों को दण्ड दे जितना वह द्रव्य हो १९१ ॥

निक्षेपस्यापहर्तारंतत्समंदापयेद्दमम् । तथोपनिधिहर्तारमविशेषेणपार्थिवः १९२ ॥

प० । निक्षेपस्य अपहर्त्तारं तत्समं दापयेत् दमम् तथा उपनिधिहर्त्तारं अविशेषेण पार्थिवः ॥

यो० । पार्थिवः निक्षेपस्यहर्त्तारं तथा उपनिधिहर्त्तारं अविशेषेण तत्समं दमं दापयेत् ॥

भा० । निक्षेप के हरने वाले और उपनिधिके हरने वाले को राजा समान रीतिसे उतनाही दण्ड दे जितनी निक्षेप और उपनिधि हो ॥

ता० । निक्षेप और उपनिधि के हरने वाले को राजा अविशेष से उतनाही दण्डदे जितने के निक्षेप और उपनिधि हों और जो विना सौंपे मांगे उसको भी इतनाही दण्ड दे इस में कोई एक पुनरुक्ति दोष की शंका करते हैं क्योंकि विना सौंपे मांगने वाले को पिछले श्लोक में कहाहुआ यही दण्ड है सो ठीक नहीं क्योंकि यदि अपराध भारीहो तो पिछले श्लोक से ब्राह्मण

से भिन्न वर्ण को चोरके समान दण्ड दे-इससे शरीरका भी दण्ड ब्राह्मण को प्राप्तहुआ उसकी निवृत्तिके लिये इस श्लोकमें दुवारा कहे हुये उक्त दण्डकी निवृत्ति के लिये यह श्लोकहै और इसमें कहे हुये दण्डसे नियम से धनके दण्डको लेना इस पर कोई यह कहते हैं कि पिछला श्लोक व्यर्थ होगा सो भी ठीक नहीं क्योंकि यह श्लोक उसी में घटेगा जिसने पहिलाही अपराध कियाहो और पिछले श्लोक में वारंवार अपराध करने पर राजा को दण्ड देने योग्य है और मुद्रा सहित जो द्रव्य सौंपाजाय तो उसे उपनिधि कहते हैं उस के हरने वाले को राजा वही दण्ड दे जो शास्त्र में कहा हो १९२ ॥

उपधाभिश्चयःकश्चित्परद्रव्यंहरेन्नरः।ससहायःसहन्तव्यःप्रकाशंविविधैर्वधैः १९३॥

प० । उपधाभिः च यः कश्चित् परद्रव्यं हरेत् नरः ससहायः सः हन्तव्यः प्रकाशं विविधैः वधैः ॥

यो० । यः नरः उपधाभिः परद्रव्यंहरेत् ससहायः सः विविधैः वधैः प्रकाशं हन्तव्यः ॥

भा० । जो मनुष्य छलसे किसी द्रव्य को चुरावे उसके सहकारी को और उस मनुष्य को राजा अनेक प्रकारके मारने के उपायों से नष्ट करि दे ॥

ता० । जो मनुष्य इस प्रकारके छलों से कि राजा तुमपर क्रोध हो रहे हैं मैं तेरी रक्षा करूंगा इससे तू मुझे धन देदे अथवा अपनी कन्याको विवाहदे किसी दूसरे के द्रव्यको हरले उस मनुष्य को उस छलमें जो सहकारी उनके समेत अनेक प्रकारके मारने के उपायों से अर्थात् हाथ पैर-शिर-इनके छेदनसे अनेक मनुष्यों के सामने नष्ट करि दे १९३ ॥

निक्षेपोयःकृतोयेनयावांश्चकुलसन्निधौ । तावानेवसविज्ञेयोविब्रुवन्दण्डमर्हति १९४॥

प० । निक्षेपः यः कृतः येन यावान् च कुलसंनिधौ तावान् एव सः विज्ञेयः विब्रुवन् दण्डं अर्हति ॥

यो० । येन यः निक्षेपः कुलसंनिधौ यावान् कृतः सः निक्षेपः तावान् एव विज्ञेयः विब्रुवन् (सन्) दण्डं अर्हति ॥

भा० । ता० । जिस मनुष्यने जितना निक्षेप साक्षियों के सामने किया हो वह निक्षेप साक्षियों से कहने में उतनाही जानना और निक्षेप देने वाला यदि विरुद्ध कहे तो उक्त रीति से दण्ड के योग्य होता है १९४ ॥

मिथोदायःकृतोयेनगृहीतोमिथएववा । मिथएवप्रदातव्योयथादायस्तथाग्रहः १९५ ॥

प० । मिथः दायः कृतः येन गृहीतः मिथः एव वा मिथः एव प्रदातव्यः यथा दायः तथा ग्रहः ॥

यो० । येन पुरुषेण मिथः दायः कृतः येन मिथः एववा गृहीतः सः दायः मिथःएव प्रदातव्यः यथा दायः तथा ग्रहो (भवति) ॥

भा० । जिस मनुष्यने एकान्तमें निक्षेप दिया हो जिसने लिया हो वह मनुष्य एकान्तमेंही उस निक्षेप को दे दे क्योंकि जैसा देना वैसा लेना ॥

ता० । जिस मनुष्यने परस्पर की सम्मति से दाय (निक्षेप कियाहो) अर्थात् एकान्तमें किसी को सौंप दिया हो और उस निक्षेपधारी ने भी एकान्तमेंही ग्रहण करलिया हो उस निक्षेप को एकान्तमेंही निक्षेपधारी समर्प्पण करिदे अर्थात् उसके देनेके समय साक्षीकी अपेक्षा न करे इस श्लोक

से निक्षेपधारी का यह नियम कहाहै योयथा निक्षिपेद्धस्तु इस एकसौ अस्सी १८०के श्लोकसे रखने वाले का नियम कहा इससे पुनरुक्ति दोष नहीं है—और जैसा देना वैसा लेना १६५ ॥

निक्षिप्तस्यधनस्यैवंप्रीत्योपनिहितस्यच।राजाविनिर्णयंकुर्यादक्षिण्वन्न्यासधारिणम् १९६॥

प० । निक्षिप्तस्य धनस्य एवं प्रीत्या उपनिहितस्य च राजा विनिर्णयं कुर्यात् अक्षिण्वन् न्यास-धारिणम् ॥

यो० । निक्षिप्तस्य धनस्य चपुनः प्रीत्या उपनिहितस्य धनस्य न्यासधारिणं अक्षिण्वन् सः राजा एवं विनिर्णयं कुर्यात् ॥

भा० । ता० । निक्षेप धनके और प्रीतिसे रक्खे हुये उपनिधि रूप धनके विनिर्णय को राजा इस प्रकार करे जैसे निक्षेपधारी को पीडा न पहुंचे १९६ ॥

विक्रीणीतेपरस्यस्वंयोस्वामीस्वाम्यसंमतः । नतंनयेतसाक्ष्यंतुस्तेनमस्तेनमानिनम् १९७॥

प० । विक्रीणीते परस्य स्वं यः अस्वामी स्वाम्यसंमतः न तं नयेत साक्ष्यं तु स्तेनं अस्तेनमा-निनम् ॥

यो० । अस्वामी यः स्वाम्यसंमतः सन् परस्य स्वं विक्रीणीते अस्तेनमानिनं तं स्तेनं साक्ष्यं राजा न नयेत् ॥

भा० । ता० । जो धनका स्वामी न होकर धनके स्वामीकी संमतिके विना दूसरेके द्रव्यको बेचदे आपनाको चोर नहीं मानता उसचोरको राजा किसी विषयमें भी प्रमाण न करे अर्थात् उसकी साक्षी आदि न ले १९७ ॥

अवहार्योभवेच्चैषसान्वयःषट्शतंदमम् । निरन्वयोऽनपसरःप्राप्तःस्याच्चौरकिल्बिषम् १९८॥

प०। अवहार्यः भवेत् च एषः सान्वयः षट् शतं दमम् निरन्वयः अनपसरः प्राप्तः स्यात् चौरकिल्बिषम्॥

यो० । सान्वयः एषः षट्शतं दमं अवहार्यः भवेत् निरन्वयः अनपसरः चौरकिल्बिषं प्राप्तःस्यात् ॥

भा० । यदि वह स्वामीके वंशकाहोय तो राजा उसे छसै ६०० पणदंडदे और यदि वंशका न होइ और वंशके किसी मनुष्यसे उसे वहधन किसीरीति से न मिलाहोय तो राजा चोरके समान दण्डदे ॥

ता० । जो दूसरेके धनका बेचनेवाला धनके स्वामीका सान्वयहो अर्थात् वंशकाहो तो राजा इसको षट्शत (६००) पणदंडदे—और जो स्वामी के सम्बन्ध न होय और अनपसरहोय अर्थात् स्वामीके सम्बन्धि पुत्रादिकसे वहधन उसको प्रतिग्रह वा मोललेकर न मिलाहोय तो वह मनुष्य चौरके पापको प्राप्तहोता है अर्थात् राजा उसको चोरीका दण्डदे १९८ ॥

अस्वामिनाकृतोयस्तुदायोविक्रयएववा । अकृतःसतुविज्ञेयोव्यवहारेयथास्थितिः १९९ ॥

प० । अस्वामिना कृतः यः तु दायः विक्रयः एव वा अकृतः सः तु विज्ञेयः व्यवहारे यथा स्थितिः ॥

यो० । यः दायः वा विक्रयः अस्वामिना कृतः भवेत् सः यथा व्यवहारस्थितिः तथा अकृतः विज्ञेयः ॥

भा० । ता० । जो अस्वामिने (स्वामीसे अन्य) दियाहो अथवा बेचाहो उस संपूर्णको व्यवहार की मर्यादाके अनुसार राजा अकृत (नहींकिया) जाने १९९ ॥

संभोगोदृश्यतेयत्रनदृश्येतागमःक्वचित् । आगमःकारणंतत्रनसंभोगइतिस्थितिः २००

प० । संभोगः दृश्यते यत्र न दृश्येत आगमः क्वचित् आगमः कारणं तत्र न संभोगः इति स्थितिः ॥

यो० । यत्र (वस्तुनि) संभोगःदृश्यते—आगमः क्वचित् न दृश्येत तत्र आगमः कारणं (भवति) संभोगःकारणं न भवति इतिस्थितिः (शास्त्रमर्यादा) अस्ति ॥

भा० । ता० । जिसवस्तुमें संभोग दीखताहो अर्थात् उसवस्तुका लेनदेन वर्तना राजाको प्रतीत होताहै उसवस्तुके उस भोगनेवाले के समीप कोई प्रमाण आनेका न दीखताहो ऐसे विषयमें आगम (आनेका निश्चय) प्रमाण होताहै और उसका भोगना प्रमाण नहीं होता यही शास्त्र की मर्यादाहै २०० ॥

विक्रयाद्योधनंकिंचिद्गृह्णीयात्कुलसन्निधौ । क्रयेणसविशुद्धंहिन्यायतोलभतेधनम् २०१ ॥

प० । विक्रयात् यः धनं किंचित् गृह्णीयात् कुलसंनिधौ क्रयेण सः विशुद्धं हि न्यायतः लभते धनम् ॥

यो० । यः (पुरुषः) किंचित्धनं विक्रयात् कुलसंनिधौ गृह्णीयात् सःपुरुषः क्रयेण विशुद्धंधनं न्यायतः (लभते) (प्राप्नोति) ॥

भा० । ता० । जो मनुष्य कुलकी संनिधिमें अर्थात् व्यवहारियोंके समूहमें विक्रयके स्थान (बाजार) से किसीधनको ग्रहणकरिले अर्थात् मोललेले धनके अस्वामीसे लियाहुआ मूल्यसे विशुद्ध उसधनको वह न्यायसे प्राप्तहोताहै २०१ ॥

अथमूलमनाहार्यंप्रकाशक्रयशोधितः । अदण्ड्योमुच्यतेराज्ञानाष्टिकोलभतेधनम् २०२ ॥

प० । अथ मूलं अनाहार्यं प्रकाशक्रयशोधितः अदंड्यः मुच्यते राज्ञा नाष्टिकः लभते धनम् ॥

यो० । अथमूलं मूलधनं अनाहार्यं भवति प्रकाश क्रयशोधितः अदंड्यः केता राज्ञा मुच्यते नाष्टिकः(नष्टधनस्वामी) धनंलभते ॥

भा० । धनके स्वामीका मूलधन नष्टनहीं होसकता अर्थात् उसको मिलसकता है और सबके सन्मुख लेनेसे शुद्ध दण्डके अयोग्य मोललेनेवालेको राजा छोड़िदे और नष्टधनके स्वामीको धन प्राप्तहोताहै ॥

ता० । किसी दूसरेके धनको बेचनेवाला उसके मूलधनका अर्थात् जितनेमें धनके स्वामीने खरीदाहो उस मूलधनको मरने वा देशान्तर जानेसे आहरण करनेको समर्थ नहीं होसकता अर्थात् पचानहीं सकता और बहुतजनोंके सामने क्रय (मोललेना) करनेसे निश्चयको प्राप्तहुआ दण्डके अयोग्य होनेसे राजासे छुटसकता है अर्थात् राजा उसे छोड़दे और नष्टधनका स्वामी जो किसी अन्यके हाथसे बिकाहो उसद्रव्यको उस मोललेनेवालेके हाथसे प्राप्तहोसकताहै परन्तु ऐसीअवस्था में इसबृहस्पतिके वचनानुसार आधामूल्य मोललेनेवालेको देकर धनका यथार्थ स्वामी अपने धन को ग्रहणकरे व्यापारियोंकी बीथियों (गली)में विद्यमान जिसधनको राजाका पुरुष पहिचानले किसी और अनजानसे खरीदाहोय अथवा बेचनेवाला मरिगयाहोय तो धनका स्वामी आधामोल देकर

१ वणिग्वीथीपरिगतं विज्ञातंराजपूरुषैः । अविज्ञाताश्रयात्क्रीतं विक्रेतायत्रवामृतः ॥ स्वामीदत्त्वार्धमूल्यंतु प्रगृह्णीयात्स्वकंधनम् ॥ अर्द्धंद्वयोरपहृतं तत्रस्याद्व्यवहारतः ॥

अपने धनको ग्रहणकरिले क्योंकि लौकिक व्यवहारके अनुसार उनदोनोंका आधा २ धन हराहुआ होताहै २०२ ॥

नान्यदन्येनसंसृष्टरूपंविक्रयमर्हति । नचासारंनचन्यूनंनदूरेणातिरोहितम् २०३ ॥

प० । न अन्यत् अन्येन संसृष्टरूपं विक्रयं अर्हति न च असारं न च न्यूनं न दूरेण तिरोहितम् ॥

यो० । अन्येन संसृष्टरूपं अन्यत् चपुनः असारं चपुनः न्यूनं दूरेणतिरोहितं विक्रयं न अर्हति ॥

भा० । ता० । अन्यवस्तुसे मिलीहुई अन्यवस्तु जैसे केसरि में कसूम और असार (निषिद्ध) वस्तुको सार कहकर और न्यून—अर्थात् तोलमेंकम—और जो दूरसे छिपीहुईहो अर्थात् नेत्रोंके सामने नहों अथवा रोगआदिसे जिसका रूप नष्टहोगयाहो इतनी वस्तुओंका कोई विक्रय नहीं करि सकता अर्थात् बेचनहीं सकता २०३ ॥

अन्यांचेद्दर्शयित्वान्यावोढुःकन्याप्रदीयते । उभेतएकशुल्केनवहेदित्यब्रवीन्मनुः२०४॥

प० । अन्यां चेत् दर्शयित्वा अन्या वोढुः कन्या प्रदीयते उभे ते एकशुल्केन वहेत् इति अब्रवीत् मनुः ॥

यो० । चेत् (यदि) अन्यां कन्यां दर्शयित्वा अन्या कन्या वोढुः प्रदीयते तर्हि वोढा उभेते कन्ये एकशुल्केन वहेत् इति मनुः अब्रवीत् ॥

भा० । यदि अन्य कन्याको दिखाकर अन्य कन्या वरको कोई मोललेकर विवाहदे तो उनदोनों कन्याओंको एकही शुल्कसे वर विवाहले इह मनुने कहाहै ॥

ता० । शुल्कसे देनेयोग्य जोकन्या अर्थात् पिता रुपया लेकर जिसको विवाहे चाहे अन्य कन्याको शुल्क व्यवस्थाके समय निर्दोष दिखाकर और विवाहके समय दोषवाली कन्या जो वरको देताहै तो वह उनदोनों कन्याओंको एकही शुल्कसे विवाहले इह मनुजीने कही है यहांपर इसबातका कथन मनुजीने इस क्रय विक्रयके प्रकरणमें इसलिये कहाहै कि शुल्कको लेकर कन्यादान विक्रय रूपही है २०४ ॥

नोन्मत्तायानकुष्ठिन्यानचयास्पृष्टमैथुना । पूर्वंदोषानभिख्याप्यप्रदातादण्डमर्हति २०५॥

प० । न उन्मत्तायाः न कुष्ठिन्या न च या अस्पृष्टमैथुना पूर्वं दोषान् अभिख्याप्य प्रदाता दण्डं अर्हति॥

यो० । उन्मत्तायाः कुष्ठिन्या या अस्पृष्टमैथुना तस्याः पूर्वंदोषान अभिख्याप्य प्रदाता दण्डं न अर्हति ॥

भा० । ता० । उन्मत्त और कुष्ठवाली और जिसका किसी पुरुषके संग मैथुनहुआहो इन कन्याओंके उन्मादआदि दोषोंको वरके प्रति कहिकर देनेवाला पिता दण्डकेयोग्य नहीं होता यदि दोषोंको न कहकर विवाहदे तो दण्डकेयोग्य अवश्य होताहै इससे आगे मनुजी८ अध्यायमें २२३ श्लोक में दण्ड कहेंगे २०५ ॥

ऋत्विग्यदिवृतोयज्ञेस्वकर्मपरिहापयेत् । तस्यकर्मानुरूपेणदेयोंऽशःसहकर्तृभिः २०६॥

प० । ऋत्विक् यदि वृतः यज्ञे स्वकर्म परिहापयेत् तस्य कर्मानुरूपेण देयः अंशः सह कर्तृभिः ॥

यो० । यदि यज्ञेवृतः ऋत्विक् रोगादिना स्वकर्म परिहापयेत् तर्हि कर्मानुरूपेण कर्तृभिःसह तस्य अंशो देयः ॥

भा० । ता० । यज्ञमें वरणकिया है जिसका ऐसा ऋत्विक् रोगपीडित होकर यदि अपने कर्मको

त्यागदे तो उसके कर्मके अनुसार अन्य ऋत्विजोंके संग उसको भी दक्षिणाका अंश यजमानदेवें २०६॥

दक्षिणासुचदत्तासुस्वकर्मपरिहापयन् । कृत्स्नमेवलभेतांशमन्येनैवचकारयेत् २०७॥

प० । दक्षिणासु च दत्तासु स्वकर्म परिहापयन् कृत्स्नं एव लभेत अंशं अन्येन एव च कारयेत् ॥

यो० । यदि दक्षिणासु दत्तासु सतीषु स्वकर्म परिहापयन् ऋत्विजः कृत्स्नमेव अंशंलभेत यजमानः शेषंकर्मअन्येन ऋत्विजाकारयेत् ॥

भा० । ता० । जो ऋत्विज दक्षिणा देनेपर अर्थात् माध्यंदिन और सवनआदिमें कुछ दक्षिणा देनेके अनन्तर अपने कर्मको त्यागताहुआ ऋत्विज संपूर्ण दक्षिणाके भागको प्राप्तहोता है और यजमान शेषकर्मको किसी अन्य ऋत्विजसे करालै २०७॥

यस्मिन्कर्मणियास्तुस्युरुक्ताःप्रत्यंगदक्षिणाः । सएवताआददीतभजेरन्सर्वएववा २०८॥

प० । यस्मिन् कर्मणि याः तु स्युः उक्ताः प्रत्यंगदक्षिणाः सः एव ताः आददीत भजेरन् सर्वे एव वा॥

यो० । यस्मिन् कर्मणि याः प्रत्यंगदक्षिणाः उक्ताः स्युः ताः दक्षिणाः सः एव आददीत वा सर्वे एव भजेरन् ॥

भा० । ता० । जिसकर्म (आधान आदि) में अंग२ प्रति जो दक्षिणाशास्त्रमें कही है उन संपूर्ण दक्षिणाओंको वही ऋत्विज ग्रहणकरिले अथवा सब ऋत्विज उन दक्षिणाओंका विभाग करिलें ऐसे संशयमें यह सिद्धान्त होताहै कि २०८॥

रथंहरेतवाध्वर्युर्ब्रह्माधानेचवाजिनम् । होतावापिहरेदश्वमुद्गाताचाप्यनःक्रये२०९॥

प० । रथं हरेत वा अध्वर्युः ब्रह्मा आधाने च वाजिनं होता वा अपि हरेत् अश्वं उद्गाता च अपि अनः क्रये ॥

यो० । आधाने अध्वर्युः रथंहरेत ब्रह्मा वाजिनं वा होता अश्वं हरेत् चपुनः उद्गाता क्रये अनः हरेत् ॥

भा० । ता० । किसी २ शाखामें आधान यज्ञमें अध्वर्योको रथकी दक्षिणा और ब्रह्माको वाजि (घोड़ा) की दक्षिणाको अथवा होता अश्वको ग्रहणकरे और उद्गाता ऐसे शकट (गाड़ा)को ग्रहण करे जो सोमआदिके लेजानेमें युक्तहो इस व्यवस्थासे जो दक्षिणाशास्त्रमें जिसको कही है वह उसी दक्षिणाको ग्रहणकरे और यदि विप्रतिपत्ति होयँ तो इसप्रकार दक्षिणाका विभागकरै २०९॥

सर्वेषामर्द्धिनोमुख्यास्तदर्द्धेनार्द्धिनोऽपरे । तृतीयिनस्तृतीयांशाश्चतुर्थांशाश्चपादिनः२१०

प० । सर्वेषां अर्द्धिनः मुख्याः तदर्द्धेन अर्द्धिनः अपरे तृतीयिनः तृतीयांशाः चतुर्थांशाः च पादिनः॥

यो० । सर्वेषां षोडशानां ऋत्विजांमध्ये मुख्याः ऋत्विजः अर्द्धिनोभवंतिअपरे चत्वारः तदर्द्धेन अर्द्धिनोभवंति तृतीयिनः तृतीयांशाः भवंति चपुनः पादिनः चतुर्थांशाः भवंति ॥

भा० । संपूर्ण ऋत्विजोंमें मुख्य ऋत्विज आधी दक्षिणाके और दूसरे चार उनसे आधी दक्षिणाके और तीसरे चार मुख्य ऋत्विजोंसे तृतीयांश दक्षिणाके और चौथे चार मुख्य ऋत्विजोंसे चतुर्थांश दक्षिणाके भागीहोतेहैं ॥

ता० । इस[1] श्रुतिके अनुसार उस यजमानको सौ १००) गौ दक्षिणा ठहराकर यज्ञकरावे और उन सौ गौओंकी दक्षिणाको संपूर्ण सोलह ऋत्विज इसप्रकार ग्रहणकरें कि उनसब ऋत्विजों में

१ तंशतेनदीक्षयति ।

जो प्रधानहैं (होता अध्वर्यु ब्रह्मा उदगाता) वे उस दक्षिणाके आधेभाग (४८अड़तालीस गौओं) को ग्रहणकरें यद्यपि आधी दक्षिणाकी पचास गौ होती हैं तथापि कात्यायन ऋषिने इस[1] वचनसे प्रत्येक मुख्य ऋत्विजोंको बारह १२ बारह गौदान कहाहै और आधेसे दोगौ न्यूनलेने सेभीये आधी दक्षिणाके भागी कहेजातेहैं और इनसे इतर चार (मैत्रावरुण प्रस्थाता–ब्राह्मणाच्छंशि–प्रस्तोता– येचारो मुख्य ऋत्विजोंकी दक्षिणाके आधी दक्षिणाके ग्रहणकरनेसे आधी दक्षिणा (२४ गौ) वाले कहातेहैं और तीसरे चार–(अच्छावाक–नेष्टाः–आग्नीध्रः–प्रतिहर्ता) ये मुख्य ऋत्विजोंकी दक्षिणा के तृतीयभाग (१६ गौ) को प्राप्तहोतेहैं और चौथे चार (तुग्राव–उन्नेता–पोता–सुब्रह्मण्या) ये मुख्य ऋत्विजोंकी दक्षिणाके चौथेभाग (१२ गौ) प्राप्तहोतेहैं इसप्रकारसे इन संपूर्ण ऋत्विजोंकी दक्षिणा इस कात्यायनके सूत्रसे[2] स्फुटकीहै २१० ॥

संभूयस्वानिकर्माणिकुर्वद्भिरिहमानवैः। अनेनविधियोगेनकर्तव्यांशप्रकल्पना २११ ॥

प० । संभूय स्वानि कर्माणि कुर्वद्भिः इह मानवैः अनेन विधियोगेन कर्तव्या अंशप्रकल्पना ॥

यो० । संभूय स्वानि कर्माणि कुर्वद्भिः मानवैः इह अनेनविधियोगेन अंशप्रकल्पना कर्तव्या ॥

भा० । ता० । मिलकर अपने २ गृहनिर्माणआदि कर्मोंको करतेहुये स्थपति सूत्रधार्य आदि कारीगर मनुष्य भी इसीप्रकार अर्थात् यज्ञ दक्षिणाके भागानुसार अपने २ भागकी कल्पना (निर्णय) को करिलें २११ ॥

धर्मार्थंयेनदत्तंस्यात्कस्मैचिद्याचतेधनम्। पश्चाच्चनतथातत्स्यान्नदेयंतस्यतद्भवेत् २१२

प० । धर्मार्थं येन दत्तं स्यात् कस्मैचित् याचते धनं पश्चात् च न तथा तत् स्यात् न देयं तस्य तत् भवेत् ॥

यो० । येन पुरुषेण याचते कस्मैचित् धनं यदि धर्मार्थं यदि दत्तंस्यात् तद्धनं तथा पश्चात् न स्यात् तर्हि तस्य तद्धनं न देयं भवेत् ॥

भा० । किसी मनुष्य ने किसी याचक को धर्म के लिये धन दिया हो और उसने वह धन धर्म में न लगाया होय तो उसको वह धन न देय होता है अर्थात् लौटाने योग्य होता है ॥

ता० । याचना (मांगना) करते हुये किसी मनुष्य को धर्मकारी के निमित्त किसी पुरुषने धन दिया हो और वह धन पीछे से उस प्रकार न लगा हो अर्थात् धर्म में व्यय न हुआ हो तो वह मनुष्य उस मनुष्य को देने योग्य नहीं है अर्थात् दिये हुये को भी लौटा ले और यदि देने की प्रतिज्ञा की हो तो उसको न दे क्योंकि इस गौतम वचन[3] के अनुसार यह प्रतीत होता है कि धन देने की प्रतिज्ञा करके भी अधर्मी मनुष्य को न दे २१२ ॥

यदिसंसाधयेत्तत्तुदर्पाल्लोभेनवापुनः। राज्ञादाप्यःसुवर्णंस्यात्तस्यस्तेयस्यनिष्कृतिः २१३

प० । यदि संसाधयेत् तत् तु दर्पात् लोभेन वा पुनः राज्ञा दाप्यः सुवर्णं स्यात् तस्य स्तेयस्य निष्कृतिः ॥

१ षड्द्वादशादेभ्यः ।
२ षडद्वितीयेभ्यश्चतस्रतृतीयेभ्यस्तिस्रश्चतुर्थेभ्यः ।
३ प्रतिश्रुत्याप्यधर्मसंयुक्ताय न दद्यात् ॥

यो० । यदि दर्पात् लोभेन वा याचकः तत् धनं संसाधयेत् तदा राज्ञा तस्य स्तेयस्य निष्कृतिः सुवर्णं दाप्यः स्यात् ॥

भा० । ता० । यदि वह याचक अभिमान वा लोभ से उस धन को न दे और प्रतिज्ञा किये हुये धन को लोभ से लेना चाहै तो राजा उस पापकी शुद्धिके लिये सुवर्ण का दण्डदे २१३ ॥

दत्तस्यैषोदिताधर्म्यायथावदनपक्रिया।अतऊर्ध्वंप्रवक्ष्यामिवेतनस्यानपक्रियाम् २१४

प० । दत्तस्य एषा उदिता धर्म्या यथावत् अनपक्रिया अतः ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वेतनस्य अनपक्रियाम् ॥

यो० । एषा धर्म्या दत्तस्य अनपाक्रिया यथावत् उदिता अतः ऊर्ध्वं वेतनस्य अनपक्रियां प्रवक्ष्यामि ॥

भा० । ता० । यह दिये हुये धनकी अनपक्रिया (न देना) धर्म के अनुसार कही इसके आगे वेतन (नौकरी) की अनपक्रिया को कहता हूं २१४ ॥

भृतोनार्तोनकुर्याद्योदर्पात्कर्मयथोदितम्।सदण्ड्यःकृष्णलान्यष्टौनदेयंचास्यवेतनम् २१५

प० । भृतः न आर्तः न कुर्यात् यः दर्पात् कर्म यथोदितं सः दंड्यः कृष्णलानि अष्टौ न देयं च अस्य वेतनम् ॥

यो० । न आर्तः यः भृतः यथोदितं कर्म न कुर्यात् सः भृतः अष्टौकृष्णलानि राज्ञा दंड्यः चपुनः अस्य वेतनं न देयम् ॥

भा० । ता० । जो भृत (सेवक) स्वस्थ अवस्था में भी कहे के अनुसार अहंकार से अपने काम को न करे उस सेवक को राजा आठ कृष्णल दण्ड दे और उसका वेतन (नौकरी) न दे २१५ ॥

आर्तस्तुकुर्यात्स्वस्थःसन्यथाभाषितमादितः।सदीर्घस्यापिकालस्यतल्लभेतैववेतनम् २१६

प० । आर्तः तु कुर्यात् स्वस्थः सन् यथाभाषितं आदितः सः दीर्घस्य अपि कालस्य तत् लभेत एव वेतनम् ॥

यो० । आर्तः सेवकस्तु स्वस्थः सन यथा भाषितं आदितः कुर्यात् सः भृतः दीर्घस्य अपि कालस्य तत् वेतनं लभेत एव ॥

भा० । ता० । रोगवाला जो भृतक स्वस्थ होकर उसी प्रकार कर्म को करि दे जैसा पहिले उस से कहा था उस भृतक को अधिक काल के भी उस वेतन को प्राप्त हो सकता है २१६ ॥

यथोक्तमार्तःसुस्थोवायस्तत्कर्मनकारयेत्।नतस्यवेतनंदेयमल्पोनस्यापिकर्मणः २१७॥

प० । यथोक्तं आर्तः सुस्थः वा यः तत् कर्म न कारयेत् न तस्य वेतनं देयं अल्पोनस्य अपि कर्मणः ॥

यो० । यः आर्तः यथोक्तं तत् कर्म अन्येन न कारयेत् वा सुस्थः स्वयं न कुर्यात् अल्पोनस्य अपि कर्मणः वेतनं तस्य न देयम् ॥

भा० । ता० । जो मनुष्य दुःख की अवस्था में यथोक्त कर्म को किसी अन्यसे न करा दे और स्वस्थ अवस्था में स्वयं न करे उस मनुष्य को अल्प और कुछ न्यून काम का भी वेतन न दे २१७॥

एषधर्मोऽखिलेनोक्तोवेतनादानकर्मणः।अतऊर्ध्वंप्रवक्ष्यामिधर्मंसमयभेदिनाम् २१८॥

प० । एषः धर्मः अखिलेन उक्तः वेतनादानकर्मणः अतः ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि धर्मं समयभेदिनाम् ॥

यो० । वेतनादानकर्मणः एषः धर्मः अखिलेनमया उक्तः अतः ऊर्ध्वं समयभेदिनां धर्मं प्रवक्ष्यामि ॥

भा०। ता०। वेतनादान (वेतन का ग्रहण) कर्म का यह सम्पूर्ण धर्म (व्यवस्था) मैंने कहा इससे आगे समयभेदि (व्यवस्था के अवलंबन करने वाले) यों का धर्म कहता हूं २१८॥

योग्रामदेशसंघानांकृत्वासत्येनसंविदम्।विसंवदेन्नरोलोभात्तंराष्ट्राद्विप्रवासयेत् २१९॥

प०। यः ग्रामदेशसंघानाँ कृत्वा सत्येन संविदं विसंवदेत् नरः लोभात् तं राष्ट्रात् विप्रवासयेत् ॥

यो०। यः नरः ग्रामदेशसंघानां सत्येन संविदं कृत्वा लोभात् विसंवदेत् राजा तं नरं राष्ट्रात् विप्रवासयेत् (निष्कासयेत्)॥

भा०। ता०। जो मनुष्य ग्राम देश और संग इनकी संविद संकेत वा प्रतिज्ञा को इस प्रकार की हम तुम मिलकर यह बात करेंगे इस का परित्याग करे सत्यादि शपथ (सौगन्द) पूर्वक करिके और उस संकेत से लोभ वश होकर विसंवाद करे अर्थात् अपनी प्रतिज्ञा पर न रहे उस मनुष्य को राजा अपने देश में से निकास दे २१९॥

निगृह्यदापयेच्चैनंसमयव्यभिचारिणम्।चतुःसुवर्णान्षण्निष्कांश्छतमानंचराजतम् २२०

प०। निगृह्य दापयेत् च एनं समयव्यभिचारिणं चतुःसुवर्णान् षट् निष्कान् शतमानं च राजतम् ॥

यो०। चपुनः समयव्यभिचारिणं एनं निगृह्य चतुःसुवर्णान् षट् निष्कान् चपुनः राजतं शतमानं राजा दापयेत् ॥

भा०। ता०। यदि देशसे न निकासे तो समयके व्यभिचारी इसका निग्रह (बांधना) करिके चारसुवर्ण छः निष्क और शतचांदी अर्थात् एकसौबीस१२० रत्तीका दण्डदे यह दण्ड कार्यकी लघुता और गौरव की अपेक्षा से न्यून वा अधिक दे २२०॥

एतद्दण्डविधिंकुर्याद्धार्मिकःपृथिवीपतिः।ग्रामजातिसमूहेषुसमयव्यभिचारिणाम् २२१

प०। एतद्दण्डविधिं कुर्यात् धार्मिकः पृथिवीपतिः ग्रामजातिसमूहेषु समयव्यभिचारिणाम् ॥

यो०। धार्मिकः पृथिवीपतिः ग्रामजातिसमूहेषु समयव्यभिचारिणां एतद्दण्डविधिं कुर्यात् ॥

भा०। ता०। धर्मशील राजा ग्राम और जाति के समूह में जो समय व्यभिचारी हैं उनके लिये भी इसी दण्ड विधि को करे २२१॥

क्रीत्वाविक्रीयवाकिञ्चिद्यस्येहानुशयोभवेत्।सोऽन्तर्दशाहात्तद्द्रव्यंदद्याच्चैवाददीतच २२२

प०। क्रीत्वा विक्रीय वा किंचित् यस्य इह अनुशयः भवेत् सः अन्तर्दशाहात् तत् द्रव्यं दद्यात् च एव आददीत च ॥

यो०। किंचिद्द्रव्यं क्रीत्वा वा विक्रीय यस्यइह अनुशयः भवेत् सः अन्तर्दशाहात् तद्द्रव्यं दद्यात् चपुनः आददीत ॥

भा०। ता०। किसी द्रव्य को मोललेकर वा बेंचकर जिसमनुष्यको लेने और देनेके विषयमें पश्चात्ताप की मैंने अच्छानहींबेंचा अथवा लिया वहमनुष्य दशदिनके भीतर उसद्रव्यकोदेदे अथवा लेले वहद्रव्य स्थिरार्न जिसका (लाभस्थिरहो) लाभ वहद्रव्य स्थिरहो अर्थात् भूमि वा तांबाआदि हो २२२॥

परेणतुदशाहस्यनदद्यान्नापिदापयेत्।आददानोददच्चैवराज्ञादण्ड्यःशतानिषट् २२३

प०। परेण तु दशाहस्य न दद्यात् न अपि दापयेत् आददानः ददत् च एव राज्ञा दंड्यः शतानि षट्

यो० । दशाहस्यपरेणतु न दद्यात् नापिदापयेत् चपुनः आददानः ददत् पुरुषः राज्ञा षट्शतानि दंड्यः भवेत् ॥

भा० । ता० । दशदिन के आगे न देय और न ले अर्थात् मोललियेहुये को नदे और बिकेहुये न फेरे जो ग्रहणकरता है और जो देता है उसको राजा छसै ६०० पणदंडदे २२३ ॥

यस्तुदोषवतींकन्यामनाख्यायप्रयच्छति।तस्यकुर्यान्नृपोदण्डंस्वयंपण्णवतिंपणान् २२४

प० । यः तु दोषवतीं कन्यां अनाख्याय प्रयच्छति तस्य कुर्यात् नृपः दंडं स्वयं पण्णवतिं पणान् ॥

यो० । यः पुरुषः दोषवतीं कन्यां अनाख्याय प्रयच्छति तस्यनृपः स्वयं पण्णवतिंपणान दंडंकुर्यात् ॥

भा० । जो मनुष्य दोषवाली कन्या के दोषको न कहिकर विवाहकरिदे तो उसकोराजा ९६ पण दंडदे ॥

ता० । जो मनुष्य दोषवती कन्याके दोषोंको नहींकह वरकोदेताहै उसमनुष्यको राजा स्वयं ९६ छयानबेपण दंडदे पहिले दोसै पांचके श्लोक में दंडदेना कहा है यहांपर जो कन्या के उन्मादआदि दोषोंको न कहकर विवाहकरदेता है तो उसको यह (९६ छयानबेपण) दंड होता है यह विशेष दंड कहा २२४ ॥

अकन्येतितुयःकन्यांब्रूयाद्द्वेषेणमानवः।सशतंप्राप्नुयाद्दण्डंतस्यादोषमदर्शयन् २२५ ॥

प० । अकन्या इति तु यः कन्यां ब्रूयात् द्वेषेण मानवः सः शतं प्राप्नुयात् दंडं तस्याः दोषं अदर्शयन् ॥

यो० । यः मानवः कन्यां द्वेषेण अकन्या इतिब्रूयात् सः तस्याः दोषं अदर्शयनसन शतं दंडं प्राप्नुयात् ॥

भा० । ता० । जो मनुष्य द्वेषसे कन्याको अकन्या कहै अर्थात् क्षतयोनि पुरुष के सम्बन्धवाली बतावे यदि वह उसकन्याके दोषको निश्चय न करादे तो राजा उसको सौपण दंडदे २२५ ॥

पाणिग्रहणिकामन्त्राःकन्यास्वेवप्रतिष्ठिताः।नाकन्यासुक्वचिन्नृणांलुप्तधर्मक्रियाहिताः २२६

प० । पाणिग्रहणिकाः मंत्राः कन्यासु एव प्रतिष्ठिताः न अकन्यासु क्वचित् नृणां लुप्तधर्मक्रियाः हि ताः

यो० । पाणिग्रहणिकाः मंत्राः कन्यासु एव प्रतिष्ठिताः भवंति क्वचिन्नृणां अकन्यासु न प्रतिष्ठिता हि (यतः) ताः (क्षतयोनयःकन्याः) लुप्तधर्मक्रियाः भवंति ॥

भा० । कन्याओं के लियेही मनुष्यों के विवाहकरने के मंत्रवेद में कहे हैं और अकन्याओंके लिये कहीं भी नहींकहे क्योंकि वेदोक्त मंत्रोंसे संस्कारकीहुई कन्या नष्टधर्महोती हैं ॥

ता० । पूर्वोक्त कन्याको अकन्या बतानेवालेको दंडदेना युक्तहै क्योंकि वेदोक्त मनुष्योंके इत्यादि[१] वेदोक्तमंत्र कन्याओं के विषयही व्यवस्थित हैं अर्थात् कन्याके निमित्त कहेगये हैं और अकन्याओं के निमित्तकहीं भी शास्त्र में धर्मविवाहके लिये नहीं है इससे विवाहके मंत्रों से संस्कारकीहुई भी क्षत-योनि नष्टधर्म विवाहवाली होती है अर्थात् उनका विवाह धर्मपूर्वक नहींहोता यहवचन क्षतयोनि कन्याके विवाहके मंत्र और होमका निषेधकरनेवालानहींहै क्योंकि गर्भवती और पुत्रवती कन्याओं का इन[२] दोवचनों से मनुजीही कहेंगे और देवलऋषिने तो इस[३] मंत्रसे गांधर्वविवाहोंमें भी होम

१ अर्यमणंनुदेवंकन्याअग्निमयक्षतः सनोअर्यमादेवप्रेतोमुंचतुमापतये स्वाहा ॥

२ यागर्भिणीसंस्क्रियते-वोढुःकन्यासमुद्भवम् ॥

३ गांधर्वेषुविवाहेषुपुनर्वैवाहिकोविधिः । कर्तव्यश्चत्रिभिर्वर्णैःसमयेनाग्निसाक्षिकः ॥

और मंत्रोंकी विधिकहीहै और गांधर्वविवाह प्रथमकन्या के संग गमनकरिकै पीछेसे होता है क्योंकि गांधर्व विवाहों में तीनों अग्नि साक्षिपूर्वक पुनः विवाहकी विधिकरै और मनु ने क्षत्रीको गांधर्व विवाह सुधर्म कहाहै इससे यह क्षतयोनि के विवाहको अधर्म का कथन क्षत्रीसे इतर द्विजोंमें समझना २२६ ॥

पाणिग्रहणिकामन्त्रानियतंदारलक्षणम्। तेषांनिष्ठातुविज्ञेयाविद्वद्भिःसप्तमेपदे २२७॥

प० । पाणिग्रहणिकाः मंत्राः नियतं दारलक्षणं तेषां निष्ठाः तु विज्ञेयाः विद्वद्भिः सप्तमे पदे ॥

यो० । पाणिग्रहणिकाः मंत्राः नियतं दारलक्षणं भवति तेषां मंत्राणां निष्ठा विद्वद्भिः सप्तमे पदे विज्ञेयाः ॥

भा० । विवाहके मंत्रही निश्चयसे भार्यात्वके उत्पादक हैं और उनकी सिद्धि विद्वानोंको सातवें पद (सप्तपदी) में जाननी ॥

ता० । पूर्वोक्त विवाहके मंत्रही निश्चयसे स्त्रीके लक्षण हैं अर्थात् उसस्त्रीमें भार्यात्वके संपादक हैं और उनमंत्रोंकी निष्ठा (सिद्धि) विद्वानोंको सातवेंपदमें इस मंत्रसे जाननी क्योंकि सप्तपदीके अनन्तरही भार्यात्व पैदाहोता है इससे यदि सप्तपदीसे पहिले किसीप्रकारकी कन्याके विषे वरको शंका होजाय तो उस कन्याको त्यागदे और सप्तपदी अनन्तर त्यागना अयोग्य है २२७ ॥

यस्मिन्यस्मिन्कृतेकार्येयस्येहानुशयोभवेत्। तमनेनविधानेनधर्मेपथिनिवेशयेत् २२८ ॥

प० यस्मिन् यस्मिन् कृते कार्ये यस्य इह अनुशयः भवेत् तं अनेन विधानेन धर्मे पथि निवेशयेत् ॥

यो० । यस्मिन २ कार्ये कृते सति यस्य इह अनुशयः भवेत् तं अनेन विधानेन राजा धर्मे पथि निवेशयेत् ॥

भा० । ता० । जिस २ कार्यके कियेपीछे जिस मनुष्यको पश्चात्तापहो उस मनुष्यको राजा इसी विधिसे धर्मके मार्ग में स्थापनकरे अर्थात् दशदिन के भीतरही वह उसकार्य से पृथक् होसकता है अनंतर नहीं २२८ ॥

पशुषुस्वामिनांचैवपालानांचव्यतिक्रमे। विवादंसंप्रवक्ष्यामियथावद्धर्मतत्त्वतः २२९ ॥

प० । पशुषु स्वामिनां च एवं पालानां च व्यतिक्रमे विवादं संप्रवक्ष्यामि यथावत् धर्मतत्त्वतः ॥

यो० । स्वामिनां चपुनः पालानां पशुषु व्यतिक्रमेसति धर्मतत्त्वतः यथावत् विवादं संप्रवक्ष्यामि ॥

भा० । ता० । पशुओंके स्वामी और पाले (ग्वालिया) का यदि पशुओंमें व्यतिक्रम होजाय तो उस विषयमें धर्मपूर्वक यथार्थ विवादकोमें कहताहूं अर्थात् पशुओंके नष्ट होजानेपर स्वामी वा पाल दोषका भागी होताहै इस निर्णयको कहताहूं २२९ ॥

दिवावक्तव्यतापालेरात्रौस्वामिनितद्गृहे। योगक्षेमेऽन्यथाचेत्तुपालोवक्तव्यतामियात् २३०

प० । दिवा वक्तव्यता पाले रात्रौ स्वामिनि तद्गृहे योगक्षेमे अन्यथा चेत् तु पालः वक्तव्यतां इयात् ॥

यो० । दिवायोगक्षेमे पालेवक्तव्यता रात्रौ तद्गृहे योगक्षेमे स्वामिनि वक्तव्यता भवति चेत् अन्यथा पालः वक्तव्यतां इयात् ॥

१ एकमिषेद्वेऊर्जे त्रीणिरायस्पोषाय चत्वारिमायोभवाय पंचपशुभ्यः षड्ऋतुभ्यः सखासप्तपदीभव ॥

भा० । दिनमें पशुओंके योग क्षेमकी विपरीतता होनेसे ग्वालिया और रात्रिमें स्वामी दोषका भागीहोता है जो रात्रिमें भी ग्वालियेकेही आधीनहों तो ग्वालिया दोषकाभागी होताहै ॥

ता० । यदि दिनमें स्वामी अपने गौ आदि पशुओंको ग्वालियेके हाथमें सौंपदे और उनके योग क्षेममें कोईवस्तु अन्यथा होजाय वा नष्टहोजाय तो ग्वालिया दोषका भागी होता है और संध्याके समय ग्वालियेके सौंपनेपर यदि स्वामीके घरमें विद्यमान पशुओं को रात्रिसमय योगक्षेममें अन्यथा भावहोजाय अर्थात् चोरी होजाय वा मरिजाय तो स्वामीही दोषकाभागी होता है अर्थात् ग्वालिया निर्दोषहै यदि रात्रिमें पशु ग्वालियेकेही आधीन रहतेहों तो ग्वालियाही दोषका भागीहोताहै २३०॥

गोपःक्षीरभृतोयस्तुसदुह्याद्दशतोवराम्। गोस्वाम्यनुमतेभृत्यःसास्यात्पालेऽभृतेभृतिः २३१

प० । गोपः क्षीरभृतः यः तु सः दुह्यात् दशतः वराम् गोस्वाम्यनुमते भृत्यः सा स्यात् पाले अभृते भृतिः ॥

यो० । यः गोपः क्षीरभृतः भवति सः भृत्यः गोस्वाम्यनुमते दशत (दशसु) वरां (श्रेष्ठां गां)दुह्यात्—सा अभृते पाले भृतिः स्यात् ॥

भा० । ता० । जिस ग्वालियेकी दूधही भृति (नौकरीहो) वह भृत्य गौओंके स्वामीकी अनुमतिसे दशगौओंमेंसे श्रेष्ठ एकगौको दुहिले यही द्रव्यकी भृतिसे हीन ग्वालियेकी भृतिहोतीहै अर्थात् एकगौके दूधको लेकर ग्वालिया दशगौओंकी रक्षाकरे २३१ ॥

नष्टंविनष्टंकृमिभिःश्वहतंविषमेमृतम् । हीनंपुरुषकारेणप्रदद्यात्पालएवतु २३२ ॥

प० । नष्टं विनष्टं कृमिभिः श्वहतं विषमे मृतं हीनं पुरुषकारेण प्रदद्यात् पालः एव तु ॥

यो० । नष्टं कृमिभिः विनष्टं श्वहतं विषममृतं पुरुषकारेणहीनं पशुंपालःएव स्वामिने प्रदद्यात् ॥

भा० । ता० । जो पशु नष्टहोजाय अर्थात् जिसको ग्वालिया अपने आंखोंके सामने न रक्खे वहकहीं चलाजाय और जिसको कृमि (कीट) नष्टकरिदें अथवा जिसको श्वानमारिदे और जो विषमदेशमें (ऊंचेनीचेसे) मरजाय और जो ग्वालियेके पुरुषार्थ न करनेसे नष्टहोजाय ऐसे पशुको ग्वालियाही पशुके स्वामीकोदे २३२ ॥

विघुष्यतुहृतंचौरैर्नपालोदातुमर्हति । यदिदेशेचकालेचस्वामिनःस्वस्यशंसति २३३ ॥

प० । विघुष्य तु हृतं चौरैः न पालः दातुं अर्हति यदि देशे च काले च स्वामिनः स्वस्य शंसति ॥

यो० । यदि देशे चपुनः काले स्वस्य स्वामिनः पालः शंसति नहि चौरैः विघुष्य हृतंपशुं पालः दातुं न अर्हति ॥

भा० । ता० यदि घोषणादेकर अर्थात् ढँढोरेसे इह विदित करिके कि अमुक समय में तेरे पशुकी हम चोरी करेंगे जिस पशुको चोरोंने हराहो तो उसपशुको ग्वालिया देनहीं सकता जो समीपदेशमें रहते अपने स्वामीको हरनेके अनन्तरही जाकर कहिदे २३३ ॥

कर्णौचर्मचवालांश्चबस्तिस्नायुंचरोचनाम्। पशुषुस्वामिनांदद्यान्मृतेष्वंगानिदर्शयेत् २३४ ॥

प० । कर्णौ चर्म च वालान् च बस्तिं स्नायुं च रोचनां पशुषु स्वामिनां दद्यात् मृतेषु अंगानि दर्शयेत् ॥

यो० । गोपालपशुषु मृतेषु कर्णौ चर्म वालान् बस्तिं स्नायुं रोचनां स्वामिनां दद्यात् चपुनः अंगानि शृंगखुरादीनि दर्शयेत् ॥

भा० । ता० । पशुओंके मरनेपर ग्वालिया पशुके स्वामियोंको कान चर्म—बाल—बस्ति स्नायु—गोरोचन इनकोदेदे और शृंग खुरआदि अन्य अंगोंको भी स्वामीको दिखादे २३४ ॥

अजाविकेतुसंरुद्धेवृकैःपालेत्वनायति।यांप्रसह्यवृकोहन्यात्पालेतत्किल्बिषम्भवेत् २३५ ॥

प० । अजाविके तु संरुद्धे वृकैः पाले तु अनायति यां प्रसह्य वृकः हन्यात् पाले तत् किल्बिषम् भवेत् ॥

यो० । वृकैः अजाविके संरुद्धे सति पाले अनायति सति यां अजां वा एडकां प्रसह्यवृकः हन्यात् तत् किल्बिषं पाले भवेत् ॥

भा० । ता० । यदि बकरी और भेड़ोंको वृक (भिड़िहा) रोकले और ग्वालिया उनके बचानेको न आवै और जिसबकरी वा भेड़को वृकवलसे मारिदे तो उसके दोषकाभागी ग्वालियाहोताहै २३५॥

तासांचेदवरुद्धानांचरन्तीनांमिथोवने।यामुत्प्लुत्यवृकोहन्यान्नपालस्तत्रकिल्बिषी२३६॥

प० । तासां चेत् अवरुद्धानां चरंतीनां मिथः वने यां उत्प्लुत्य वृकः हन्यात् न पालः तत्र किल्बिषी ॥

यो० । चेत् (यदि) अवरुद्धानां वनेमिथः चरंतीनां तासांमध्ये यां (अजांएडकांवा) वृकःप्रसह्य हन्यात् तत्किल्बिषं पालेभवेत् ॥

भा० । ता० । यदि ग्वालियेने चारोतरफसे रोकीहुई और मिलकर वनमें चुगतीहुई बकरी और भेड़ोंके बीचमेंसे किसी एक बकरी व भेड़को बलात्कारसे कूदकर वृक (भिड़िहा) मारदे तो उसके दोषका भागी ग्वालियाहोता है २३६ ॥

धनुःशतंपरीहारोग्रामस्यस्यात्समन्ततः।शम्यापातास्त्रयोवापित्रिगुणोनगरस्यतु २३७

प० । धनुःशतं परीहारः ग्रामस्य स्यात् समंततः शम्या पाताः त्रयः वा अपि त्रिगुणः नगरस्य तु ॥

यो० । ग्रामस्य समंततः धनुःशतं वा त्रयः शम्या पाताः परीहारःस्यात् नगरस्यतु पूर्वोक्ताः त्रिगुणःपरीहारःस्यात् ॥

भा० । ग्रामके समिप चारसै धनुष अथवा लाठी जहांतक तीनबार फेकनेसे पहुंचे उतना परीहार होताहै और नगरके समीप इससे तिगुना होताहै ॥

ता० । ग्रामकी चारोदिशामें सौ धनुषका परीहारहोता है अर्थात् सौ धनुषपर्यंत ग्रामके समीप की भूमि जोतनी नहीं चाहिये और चारहाथका एकधनुष होताहै अथवा जितनी दूरतक साधारण मनुष्य शम्या (लकड़ी) को तीनबार फेके उतनी दूरतक ग्रामके समीप परीहार होताहै इतनी भुमि पशुओंके चरनेकेलिये राजा छोड़वादे और किसीको जोतने न दे और नगर (शहर) के समीप पूर्वोक्तसे तिगुना परीहारहोता है २३७ ॥

तत्रापरिवृतंधान्यंविहिंस्युःपशवोयदि।नतत्रप्रणयेद्दण्डंनृपतिःपशुरक्षिणाम् २३८ ॥

प० । तत्र अपरिवृतं धान्यं विहिंस्युः पशवः यदि न तत्र प्रणयेत् दण्डं नृपतिः पशुरक्षिणाम् ॥

यो० । यदि तत्र अपरिवृतं धान्यं पशवःविहिंस्युः तर्हि नृपतिः तत्र पशुरक्षिणां दंडं न प्रणयेत् ॥

भा० । ता० । जो उस परिहारमें अपरिवृत (जिसकी चारोतरफसे वाडनकीहो) खेतको पशु भक्षण करिले तो राजा पशुओंकी रक्षाकरनेवालेको दण्डनदे २३८ ॥

वृतिंतत्रप्रकुर्वीतयामुष्ट्रोनविलोकयेत् । छिद्रंचवारयेत्सर्वंश्वसूकरमुखानुगम् २३९ ॥

प० । वृतिं तत्र प्रकुर्वीत यां उष्ट्रः न विलोकयेत् छिद्रं च वारयेत् सर्वं श्वसूकरमुखानुगम् ॥

यो० । तत्र (परिहारक्षेत्रे) यां उष्ट्रः न विलोकयेत्तांवृतिं प्रकुर्वीत चपुनः श्वसूकरमुखानुगं छिद्रं वारयेत् ॥

भा० । ता० । उसपरिहारकी खेतकी ऐसी वृति (वाड) करे जिससे बाहर खड़ाहुआ ऊंट खेत को न देखसके और उसकां टोंकी वृतिमें जो ऐसे छिद्रहों जिनमें कुत्ते और सूकरका मुख प्रविष्टहोसके उनसब छिद्रोंको न रहनेदे २३९ ॥

पथिक्षेत्रेपरिवृतेग्रामान्तीयेऽथवापुनः । सपालःशतदण्डार्होविपालान्वारयेत्पशून् २४०

प० । पथि क्षेत्रे परिवृते ग्रामांतीये अथवा पुनः सः पालः शतदण्डार्हः विपालान् वारयेत् पशून्

यो० । पथिक्षेत्रे अथवा ग्रामांतीये परिवृतेसति यदि पशुःप्रविश्य भक्षयति तदापालः शतदण्डार्होभवति विपालान् पशून् स्वामी वारयेत् ॥

भा० । यदि मार्ग वा ग्रामके समीप वाड कियेहुये खेतको पशुभक्षणकरिलें तो ग्वालिया सौ पणदंडके योग्यहोताहै यदि पशुकेसमीप ग्वालियानहो तो खेतकारक्षक पशुको स्वयं निकासदे ॥

ता० । मार्गके समीपके खेतमें अथवा ग्रामके परिवृत (पूर्वोक्त वाड जिसकी लगीहोय) परिहारके खेतमें यदि पशु प्रविष्ट होकर खेतको भक्षणकरिलें तो ग्वालिये को राजा सौपणदंडदे यदि पशुओंके समीप ग्वालियानहो और पशु खेतको भक्षणकरिरहेहों तो खेतकास्वामी पशुओंको निकालदे यहांपर पशुको निर्दोपहोने से ग्वालियेकोही दंडकहाहै २४० ॥

क्षेत्रेष्वन्येषुतुपशुःसपादंपणमर्हति । सर्वत्रतुसदोदेयःक्षेत्रिकस्येतिधारणा २४१ ॥

प० । क्षेत्रेषु अन्येषु तु पशुः सपादं पणं अर्हति सर्वत्र तु सदा देयः क्षेत्रिकस्य इति धारणा ॥

यो० । अन्येषुक्षेत्रेषु (मार्गग्रामसमीपक्षेत्रभिन्नेषु) सस्यं भक्षयनपशुः (पशुस्वामी) सपादं पणंदंडं अर्हति—सर्वत्र (सर्वस्मिनक्षेत्रे भक्षितेसति) क्षेत्रिकस्य क्षेत्रफलं पालेन स्वामिनावादेयः इतिधारणा मर्यादा अस्ति ॥

भा० । ता० । मार्ग और ग्रामके परिहार से भिन्नखेतों को जो पशु भक्षणकरिले तो उसपशुके स्वामीको सवापण राजा दंडदे यदि सम्पूर्ण क्षेत्रकोही पशुभक्षणकरिलें तो उसखेतके फलको ग्वालिया अथवा पशुकास्वामी अपराध के अनुसार खेतके स्वामीको दे यहीनिश्चय है २४१ ॥

अनिर्दशाहांगांसूतांवृपान्देवपशूंस्तथा । सपालान्वाविपालान्वानदण्ड्यान्मनुरब्रवीत् २४२

प० । अनिर्दशाहां गां सूतां वृपान् देवपशून् तथा सपालान् वा विपालान् वा न दंड्यान् मनुः अब्रवीत् ॥

यो० । अनिर्दशाहां सूतां गां सपालान् वा विपालान् वृपान् तथा देवपशून् न दंड्यान् मनुः अब्रवीत् ॥

भा० । ता० । दशदिन के भीतरकी प्रसूतगौ और चक्र और शूलसे अंकित छोड़ेहुये बैल और विष्णु और महादेवआदि प्रतिमाओं के पशु ये चाहे ग्वालिये सहित वा रहितहोकर जो किसी के खेतको भक्षणकरनेलगें तो इनकास्वामी दंडके अयोग्यहोताहै यह मनुजीनेकहाहै २ छोड़ेहुये बैलों कोभी गौओं के गर्भार्थ ग्वालिये गोकुल ८ गोसमूह) में रखते हैं इससे उनको भी सपालकहना ठीकहै २४२ ॥

क्षेत्रियस्यात्ययेदण्डोभागाद्दशगुणोभवेत् । ततोऽर्द्धदण्डोभृत्यानामज्ञानात्क्षेत्रियस्यतु २४३॥

प० । क्षेत्रियस्य अत्यये दंडः भागात् दशगुणः भवेत् ततः अर्द्धदंडः भृत्यानां अज्ञानात् क्षेत्रियस्य तु

यो० । क्षेत्रियस्य अत्यये सति भागात् दशगुणःदंडः क्षेत्रियस्यतु अज्ञानात् भृत्यानां ततः अर्द्धदंडो भवेत् ॥

भा० । ता० । यदि क्षेत्रकास्वामी अपने पशुसे क्षेत्रको नष्टकरिदे तो उसखेतके नाशसे जितने राजाके करकी हानिभईहो उससे दशगुना दंड क्षेत्रके स्वामीको होताहै यदि क्षत्रके स्वामिको ज्ञान (खबर) नहो और भृत्योंके अपराधसे खेत नष्टहुआहो तो उसपूर्वोक्त दंडसे आधादंड खेतके स्वामी को होताहै २४३ ॥

एतद्विधानमातिष्ठेद्धार्मिकःपृथिवीपतिः । स्वामिनांचपशूनांचपालानांचव्यतिक्रमे २४४ ॥

प० । एतद्विधानं आतिष्ठेत् धार्मिकः पृथिवीपतिः स्वामिनां च पशूनां च पालानां च व्यतिक्रमे ॥

यो० । स्वामिनां चपुनः पशूनां चपुनः पालानां व्यतिक्रमे (अपराधे सति) धार्मिकः पृथिवीपतिः एतद्विधानं आतिष्ठेत् (कुर्यात्) ॥

भा० । ता० । स्वामी और पशु और ग्वालिये इनके अपराधकरनेपर अर्थात् खेतकेभक्षणमें धर्म का जाननेवाला राजा इसपूर्वोक्त विधिकोकरै अथवा पूर्वोक्तरीतिसे दंडदे २४४ ॥

सीमांप्रतिसमुत्पन्नेविवादेग्रामयोर्द्वयोः । ज्येष्ठेमासिनयेत्सीमांसुप्रकाशेषुसेतुषु २४५ ॥

प० । सीमां प्रति समुत्पन्ने विवादे ग्रामयोः द्वयोः ज्येष्ठे मासि नयेत् सीमां सुप्रकाशेषु सेतुषु ॥

यो० । द्वयोः ग्रामयोः सीमां प्रति विवादे समुत्पन्ने सति ज्येष्ठमासे सेतुषु (सीमाचिह्नेषु) सुप्रकाशेषु सत्सु राजासीमां नयेत् (निश्चनुयात्) ॥

भा० । ता० । यदि दोग्रामों का सीमाकेलिये विवाद उत्पन्नहोय तो ज्येष्ठ के महीने में सीमाके चिह्नों के प्रकटहोनेपर राजा सीमा का निश्चयकरै २४५ ॥

सीमावृक्षांश्चकुर्वीतन्यग्रोधाश्वत्थकिंशुकान्।शाल्मलीन्सालतालांश्चक्षीरिणश्चैवपादपान्२४६

प० । सीमावृक्षान् च कुर्वीत न्यग्रोधाश्वत्थकिंशुकान् शाल्मलीन् सालतालान् च क्षीरिणः च एव पादपान् ॥

यो० । न्यग्रोधाश्वत्थकिंशुकान् शाल्मलीन् सालतालान् चपुनः क्षीरिणः पादपान् सीमावृक्षान् राजा कुर्वीत ॥

भा० । ता० । बड़–पीपल–ढाक–सेमल–साल–ताल–और दूधवाले गूलरआदि वृक्ष इनको राजा सीमाके वृक्षकरै अर्थात् जहां दोनोंग्रामों की सीमाहों वहांपर इनको लगादे २४६ ॥

गुल्मान्वेणूंश्चविविधाञ्छमीवल्लीस्थलानिच।शरान्कुब्जकगुल्मांश्चतथासीमाननश्यति२४७

प० । गुल्मान् वेणून् च विविधान् शमीवल्लीस्थलानि च शरान् कुब्जकगुल्मान् च तथा सीमा न नश्यति ॥

यो० । गुल्मान् चपुनः विविधान् वेणून् चपुनः शमीवल्लीस्थलानि शरान् चपुनः कुब्जकगुल्मान् (सीमाचिह्नान्) कुर्वीत तथा सीमाननश्यति ॥

भा० । ता० । गुल्म (जिनकेडाले न होयँ) और अनेकप्रकारके वेणूअर्थात् अधिक वा अल्प

काँटेवाले और शमी और लता और स्थल (ऊंचे २ टीले) और शर और कुब्जक गुल्म इनसबको राजा सीमाके चिह्नकरे क्योंकि इसप्रकार करनेसे सीमा नष्टनहींहोसक्ती २४७ ॥

तडागान्युदपानानिवाप्यःप्रस्रवणानिच । सीमासंधिषुकार्याणिदेवतायतनानिच २४८ ॥

प० । तडागानि उदपानानि वाप्यः प्रस्रवणानि च सीमासंधिषु कार्याणि देवतायतनानि च ॥

यो० । तडागानि उदपानानि वाप्यः प्रस्रवणानि चपुनः देवतायतनानि सीमासंधिषु राज्ञा कार्याणि ॥

भा० । ता० । तलाव—कूप—वापी—(बावडी) प्रस्रवण (जलकीकूल) देवताके मंदिर इनको सीमाकी संधियों (मेल) में राजाकरै क्योंकि ये जब सीमा के निर्णयकेलिये प्रसिद्धकरिदियेजायँगे तो इनमें जलआदि लेनेकेलिये जो जन आवेंगे वे परम्परा के सुननेसे बहुतदिन पीछे भी सीमाके निर्णयमें साक्षीहोजायँगे २४८ ॥

उपच्छन्नानिचान्यानिसीमालिंगानिकारयेत् ।सीमाज्ञानेनृणांवीक्ष्यनित्यंलोकेविपर्ययम् २४९

प०।उपच्छन्नानि च अन्यानि सीमालिंगानि कारयेत् सीमाज्ञाने नृणां वीक्ष्य नित्यं लोके विपर्ययम्॥

यो० । सीमाज्ञाने नृणां लोके नित्यं विपर्ययं वीक्ष्य अन्यानि उपच्छन्नानि सीमालिंगानि राजा कारयेत् ॥

भा० । ता० । सीमा के निर्णयमें मनुष्यों का सदासे भ्रमको देखकर राजा गुप्त अन्यभी सीमाके चिह्नोंको करिदे कि २४९ ॥

अश्मनोऽस्थीनिगोवालांस्तुषान्भस्मकपालिकाः।करीषमिष्टकांगाराञ्छर्करावालुकास्तथा २५०

यानिचैवंप्रकाराणिकालाद्भूमिर्नभक्षयेत् । तानिसंधिषुसीमायामप्रकाशानिकारयेत् २५१

प० । अश्मनः अस्थीनि गोवालान् तुषान् भस्मकपालिकाः करीषं इष्टकांगारान् शर्कराः वालुकाः तथा

प० । यानि च एवं प्रकाराणि कालात् भूमिः न भक्षयेत् तानि संधिषु सीमायां अप्रकाशानि कारयेत् ॥

यो० । अश्मनः अस्थीनि गोवालान् तुषान् भस्मकपालिकाः करीषं इष्टकांगारान् शर्कराः तथा वालुकाः चपुनः एवं प्रकाराणि यानि भूमिकालात् नभक्षयेत् तानि संधिषु सीमायां राजा अप्रकाशानिकारयेत् ॥

भा० । बनाहुआ पत्थर गोवाल भस्म तुष कपालिका सूखा गोबर पक्कीईंट पत्थरका कंकर कोले रेत और जो ऐसी वस्तुहैं जिनको चिरकालतक भी पृथ्वी न खासके उनसबको अर्थात् अंजन विनोले आदिकों को संधिकी सीमामें गुप्तप्रकारसे राजा घटआदि में रखकर पृथ्वीमेंगाडिदे ॥

ता० । पत्थरके टुकड़े गौओं के बाल भस्म—कपालिका—सूखागोबर पक्कीईंट—अंगार (कोले) शर्करा पत्थर की कंकरी) बालु रेत इनको और इन्हींकेसदृश अंजन अस्थिआदि जिनको चिरकाल तक भी पृथ्वी भक्षण न करिसके अर्थात् अपने में न मिलासके उनको संधिकी सीमा में गुप्तकरिकै राजा रखिदे अर्थात् घड़ोंमें इनको रखकर उनघटोंको पृथ्वीमें खोदकर और छिपकरगाडिदे क्योंकि इस[1] बृहस्पति के वचनसे घडों में रखकरही पृथ्वीमें गाडना लिखाहै २५० । २५१ ॥

---

१ प्रक्षिप्यकुंभे ष्वेतानि सीमांतेषुनिधापयेत् ॥

एतैर्लिङ्गैर्नयेत्सीमांराजाविवदमानयोः। पूर्वभुक्त्याचसततमुदकस्यागमेनच २५२ ॥

प० । एतैः लिंगैः नयेत् सीमां राजा विवदमानयोः पूर्वभुक्त्या च सततं उदकस्य आगमेन च ॥

यो० । राजा विवदमानयोः ग्रामयोः सीमां एतैः लिंगैः चपुनः पूर्वभुक्त्या चपुनः सततं उदकस्य आगमेन नयेत् (निश्चिनुयात्) ॥

भा० । ता० । विवादकरतेहुये ग्रामोंकी सीमाको इनपूर्वोक्त चिह्नोंसे और सदासे वसतेहुये ग्रामों के पहिली भुक्तिसे अर्थात् जोतने और बोनेसे और जो ग्रामोंकी सीमापर निरन्तर जलका प्रवाह बहताहोय तो उससे राजा पार और अपाररहतेहुये ग्रामोंकी सीमाको निश्चयकरै २५२ ॥

यदिसंशयएवस्याल्लिङ्गानामपिदर्शने।साक्षिप्रत्ययएवस्यात्सीमावादविनिर्णयः २५३

प० । यदि संशयः एव स्यात् लिंगानां अपि दर्शने साक्षिप्रत्ययः एव स्यात् सीमावादविनिर्णयः ॥

यो० । यदि लिंगानां दर्शने अपि सति सीमायां संशयः एवस्यात् तदा साक्षिप्रत्ययः एव सीमावादविनिर्णयः स्यात् ॥

भा० । ता० । जो गुप्त और प्रकाश सीमा के लिंगोंके देखनेपर भी सीमामें सन्देहही हो अर्थात् गुप्तअंगार आदि दूसरेस्थानमें खोदकर गाडिदियेहों और प्रसिद्ध वटआदि वृक्षोंमें कोई किसी को बतावे कोई किसीको तो सीमा के विवाद में साक्षियोंकी प्रतीतिसेही राजा निर्णयकरै २५३ ॥

ग्रामीयककुलानांचसमक्षंसीम्निसाक्षिणः। प्रष्टव्याःसीमलिंगानितयोश्चैवविवादिनोः २५४॥

प० । ग्रामीयककुलानां च समक्षं सीम्नि साक्षिणः प्रष्टव्याः सीमलिंगानि तयोः च एव विवादिनोः

यो० । ग्रामीयककुलानां चपुनः तयोः सीम्नि विवादिनोः समक्षं राज्ञा साक्षिणः सीमलिंगानि प्रष्टव्याः ॥

भा० । ता० । ग्राममें रहनेवाले मनुष्योंके और सीमा में विवादकरतेहुये उनदोनों के सन्मुख सीमाके चिह्नोंको राजा साक्षियोंसे पूंछै २५४ ॥

तेपृष्टास्तुयथाब्रूयुःसमस्ताःसीम्निनिश्चयम्।निबध्नीयात्तथासीमांसर्वांस्तांश्चैवनामतः २५५

प० । ते पृष्टाः तु यथा ब्रूयुः समस्ताः सीम्नि निश्चयं निबध्नीयात् तथा सीमां सर्वान् तान् च एव नामतः ॥

यो० । राज्ञा पृष्टाः समस्ताः ते (साक्षिणः) सीम्नियथानिश्चयं ब्रूयुः तथा सीमां चपुनः नामतः तान सर्वान राजा निबध्नीयात् ॥

भा० । ता० । राजा के पूंछेहुये वे सम्पूर्ण साक्षि जिसप्रकार सीमाका निश्चयकहैं उसी प्रकार सीमाको और उनसम्पूर्ण साक्षियों के नामों को राजा एकपत्रपर लिखदे २५५ ॥

शिरोभिस्तेगृहीत्वोर्वींस्रग्विणोरक्तवाससः। सुकृतैःशापिताःस्वैस्स्वैर्नयेयुस्तेसमञ्जसम् २५६

प० । शिरोभिः ते गृहीत्वा उर्वीं स्रग्विणः रक्तवाससः सुकृतैः शापिताः स्वैः स्वैः नयेयुः ते समंजसम् ॥

यो० । स्रग्विणः रक्तवाससः स्वैः स्वैः सुकृतैः शापिताः ते (साक्षिणः) शिरोभिः उर्वीं गृहीत्वा तां (सीमां) समंजसं नयेयुः ॥

भा० । ता० । रक्तफूलों की माला धारण और रक्तवस्त्रों को पहनकर अपने २ सुकृतोंकी सौगंद

अर्थात् यदि हम झूंठकहें तो हमारापुण्य निष्फलहोजावे सौगन्ददी है जिनको ऐसे वे साक्षी अपने शिरपर पृथ्वीको रखकर अर्थार्थ रीतिसे सीमाका निर्णयकरें यहांपर इसे याज्ञवल्क्य के वचनानुसार रक्तपुष्पों कीही माला समझनी २५६ ॥

यथोक्तेननयन्तस्तेपूयन्तेसत्यसाक्षिणः । विपरीतंनयन्तस्तुदाप्याःस्युर्द्विशतंदमम् २५७ ॥

प० । यथोक्तेन नयन्तः ते पूयंते सत्यसाक्षिणः विपरीतं नयन्तः तु दाप्याः स्युः द्विशतं दमम् ॥

यो० । यथोक्तेन नयंतः ते सत्यसाक्षिणः पूयंते विपरीतं नयंतः तु द्विशतंदमं राज्ञा दाप्याः स्युः ॥

भा० । ता० । शास्त्रोक्त विधिकेअनुसार निर्णय करतेहुये वे सच्चेसाक्षी पवित्रहोतेहैं और विपरीत (झूंठा) रीतिसे निर्णयकरतेहुये साक्षियोंको दोसे पण दंड राजादे २५७ ॥

साक्ष्यभावेतुचत्वारोग्रामाः सामन्तवासिनः । सीमाविनिर्णयंकुर्युःप्रयताराजसन्निधौ २५८

प० । साक्ष्यभावे तु चत्वारः ग्रामाः सामंतवासिनः सीमाविनिर्णयं कुर्युः प्रयताः राजसन्निधौ ॥

यो० । साक्ष्यभावे सति तु सामंतवासिनः चत्वारः ग्रामाः प्रयताः संतः राजसंनिधौ सीमाविनिर्णयं कुर्युः ॥

भा० । ता० । यदि साक्षियों का अभावहो तो समीप में बसनेवाला चारग्राम साक्षिके धर्म में टिककर सावधानी से राजाके समीप (सन्मुख) सीमाके निर्णयकोकरें २५८ ॥

सामन्तानामभावेतुमौलानांसीम्निसाक्षिणाम् । इमानप्यनुयुञ्जीतपुरुषान्वनगोचरान् २५९

प० । सामंतानां अभावे तु मौलानां सीम्नि साक्षिणां इमान् अपि अनुयुंजीत पुरुषान् वनगोचरान् ॥

यो० । सीम्निसाक्षिणां सामंतानां मौलानां अभावेसति तु इमान् अपि वनगोचरान् पुरुषान् साक्षिधर्मेण राजा अनुयुंजीत ॥

भा० । ता० । यदि उक्त चारग्राम और ग्राममें सदासे रहनेवाले भी साक्षियोंका अभावहोय तो वनमें विचरनेवाले इन (जो आगे कहते हैं) मनुष्यों को राजा पूंछे २५९ ॥

व्याधाञ्छाकुनिकान्गोपान्कैवर्तान्मूलखानकान् । व्यालग्राहानुञ्छवृत्तीनन्यांश्चवनचारिणः२६०

प० । व्याधान् शाकुनिकान् गोपान् कैवर्तान् मूलखानकान् व्यालग्राहान् उञ्छवृत्तीन् अन्यान् च वनचारिणः ॥

यो० । राजा व्याधान् शाकुनिकान् गोपान् कैवर्तान् मूलखानकान् व्यालग्राहान् उञ्छवृत्तीन् चपुनः अन्यान् वनचारिणः सीमां पृच्छेत् ॥

भा० । ता० । व्याध–शाकुनिक–(जो पक्षियों के मारनेसे जीवे) गोपाल–कैवर्त–(मत्स्योंसे जीवे) मूलोंके खोदनेवाले सर्पोंकेग्राही–उञ्छवृत्ति इनको और फलफूल ईंधन इनकेलिये वनमें विचरनेवाले अन्यपुरुषों को सीमा का निर्णय पूंछे क्योंकि यह सम्पूर्ण उग्रग्रामों में होकर सदा वनमें जाते हैं इससे इनको सीमा का ज्ञान होताहै २६० ॥

तेपृष्टास्तुयथाब्रूयुःसीमासन्धिषुलक्षणम् । तत्तथास्थापयेद्राजाधर्मेणग्रामयोर्द्वयोः२६१॥

प० । ते पृष्टाः तु यथा ब्रूयुः सीमासंधिषु लक्षणं तत् तथा स्थापयेत् राजा धर्मेण ग्रामयोः द्वयोः ॥

---

१ रक्तस्रग्वाससः सीमां नयेयुः ॥

यो० । पृष्टाः ते(व्याधादयः) सीमासंधिषु यथालक्षणं ब्रूयुः तत् (लक्षणं) राजा द्वयोः ग्रामयोः सीमायां धर्मेण स्थापयेत् ॥

भा० । ता० । राजा के पूंछे हुये ग्राम के मनुष्य सीमा की सन्धियों में जिस प्रकार के चिह्न को कहैं उसी प्रकार उस चिह्न को दोनों ग्रामों की सीमा में धर्म से राजा स्थापन करै अर्थात् उनके बताये हुये चिह्न सेही सीमा का निर्णय करे २६१ ॥

क्षेत्रकूपतडागानामारामस्यगृहस्यच । सामन्तप्रत्ययोज्ञेयःसीमासेतुविनिर्णयः २६२ ॥

प० । क्षेत्रकूपतडागानां आरामस्य गृहस्य च सामन्तप्रत्ययः ज्ञेयः सीमासेतुविनिर्णयः ॥

यो० । क्षेत्रकूपतडागानां आरामस्य चपुनः गृहस्य सामन्तप्रत्ययः सीमासेतुविनिर्णयः ज्ञेयः ॥

भा० । ता० । एक ग्राम के क्षेत्र-(खेत) कूप तडाग-आराम (बाग) और घर इनकी सीमा का निर्णय सम्पूर्ण देशवासियों की साक्षियों सेही राजा जानले अर्थात् पूर्वोक्त व्याध आदिकों की साक्षि से न करे २६२ ॥

सामन्ताश्चेन्मृषाब्रूयुःसेतौविवदतांनृणाम्।सर्वेपृथक्पृथग्दण्ड्याराज्ञामध्यमसाहसम् २६३

प० । सामन्ताः चेत् मृषा ब्रूयुः सेतौ विवदतां नृणां सर्वे पृथक् पृथक् दण्ड्याः राज्ञा मध्यमसाहसम् ॥

यो० । चेत् सेतौ विवदतांनृणां सामन्ताः मृषाब्रूयुः तर्हि राज्ञा सर्वे पृथक् पृथक् मध्यम साहसं दण्ड्याः ॥

भा० । ता० । यदि सीमा की सेतु (मर्यादा) के लिये विवाद करते हुये मनुष्यों के सामन्त (देशवासी) साक्षी में झूंठ बोलें तो उन सम्पूर्णों को राजा एक एक के प्रति मध्यम साहस दण्ड दे-और जो वे साक्षि अन्य देशवासी होयँ तो दो सौ पण दण्ड दे २६३ ॥

गृहंतडागमारामंक्षेत्रंवाभीषयाहरन् । शतानिपञ्चदण्ड्यःस्यादज्ञानाद्द्विशतोदमः २६४

प० । गृहं तडागं आरामं क्षेत्रं वा भीषया हरन् शतानि पञ्च दण्ड्यः स्यात् अज्ञानात् द्विशतः दमः ॥

यो० । अन्यस्य गृहं तडागं आरामं वा क्षेत्रं भीषया हरन् पुरुषः पञ्चशतानि राज्ञा दण्ड्यः स्यात् अज्ञानात् हरन् द्विशतो दमोज्ञेयः ॥

भा० । ता० । जो मनुष्य किसी के घर तडाग-आराम वा खेत को किसी प्रकार का भय दिखाकर हरि ले तो राजा उसे पांचसौ पण दण्ड दे यदि वह अज्ञान से हरै तो दोसौ पण दण्डदे२६४॥

सीमायामविषह्यायांस्वयंराजैवधर्मवित् । प्रदिशेद्भूमिमेतेषामुपकारादितिस्थितिः २६५

प० । सीमायां अविषह्यायां स्वयं राजा एव धर्मवित् प्रदिशेत् भूमिं एतेषां उपकारात् इति स्थितिः ॥

यो० । सीमायां अविषह्यायां सत्यां धर्मवित् राजा एतेषां उपकारात् स्वयं एव भूमिं प्रदिशेत् इति स्थितिः (शास्त्रव्यवस्था अस्ति) ॥

भा० । ता० । यदि सीमा के चिह्न में साक्षियों के अभावसे सीमा का निश्चय न होसके तो धर्मज्ञ अर्थात् पक्षपात से रहित राजाही दोनों ग्रामके विवाद के कारण भूमि को इनके उपकार को जानकर इनकोही दे दे अर्थात् दोनों को बांट दे क्योंकि इसके विना इनका परस्पर अधिक विवाद होसकता है यह निश्चय जानकर इन्हीं के अर्पण करदे यह शास्त्र की मर्यादा है २६५ ॥

एषोऽखिलेनाभिहितोधर्मःसीमाविनिर्णये । अतऊर्ध्वंप्रवक्ष्यामिवाक्पारुष्यविनिर्णयम् २६६

प० । एषः अखिलेन अभिहितः धर्मः सीमाविनिर्णये अतः ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वाक्पारुष्यविनिर्णयम् ॥

यो० । सीमाविनिर्णये एषः धर्मः अखिलेन अभिहितः (उक्त) अतः ऊर्ध्वं वाक्पारुष्यविनिर्णयं प्रवक्ष्यामि ॥

भा० । ता० । सीमाके निर्णय में यह सम्पूर्ण धर्म तुमको कहा इससे आगे वाक्पारुष्य (कठोर वचन) का निर्णय कहता हूं २६६ ॥

शतंब्राह्मणमाक्रुश्यक्षत्रियोदण्डमर्हति । वैश्योऽप्यर्द्धशतंद्वेवाशूद्रस्तुवधमर्हति २६७ ॥

प० । शतं ब्राह्मणं आक्रुश्य क्षत्रियः दण्डं अर्हति वैश्यः अपि अर्द्धशतं द्वे वा शूद्रः तु वधं अर्हति ॥

यो० । ब्राह्मणं आक्रुश्य क्षत्रियः शतं वैश्यः अर्द्धशतं वा द्विशतं दंडं अर्हति शूद्रस्तु वधं अर्हति ॥

भा० । ता० । यदि क्षत्री ब्राह्मण को आक्रोश करे अर्थात् चोर दुष्ट इत्यादि कठोर वचन कहे तो सौ १०० पण दण्ड के योग्य और वैश्य डेढ़सौ १५० वा दोसौ पण दण्ड के योग्य होता है और शूद्र वध (मारना) के योग्य होता है २६७ ॥

पञ्चाशद्ब्राह्मणोदण्ड्यःक्षत्रियस्याभिशंसने । वैश्येस्यादर्द्धपञ्चाशच्छूद्रेद्वादशकोदमः २६८

प० पंचाशत् ब्राह्मणः दंड्यः क्षत्रियस्य अभिशंसने वैश्ये स्यात् अर्द्धपंचाशत् शूद्रे द्वादशकः दमः ॥

यो० । क्षत्रियस्य अभिशंसनेसति ब्राह्मणः पञ्चाशत् दंड्यः वैश्ये अर्द्धपञ्चाशत् शूद्रे द्वादशकः दमःस्यात् ॥

भा० । ता० । यदि ब्राह्मण क्षत्री का आक्षेप (निन्दा) करे तो बारह पण और वैश्य की निन्दा करने पर पच्चीस पण और शूद्र की निन्दा करने पर बारह पण दण्ड ब्राह्मणको होताहै २६८ ॥

समवर्णेद्विजातीनांद्वादशैवव्यतिक्रमे । वादेष्ववचनीयेषुतदेवद्विगुणंभवेत् २६९ ॥

प० । समवर्णे द्विजातीनां द्वादश एव व्यतिक्रमे वादेषु अवचनीयेषु तत् एव द्विगुणं भवेत् ॥

यो० । द्विजातीनां समवर्णे व्यतिक्रमेसति द्वादश पणो दण्डो भवति अवचनीयेषु वादेषु तदेव द्विगुणं भवेत् ॥

भा० । ता० । यदि ब्राह्मण—क्षत्री—वैश्य—शूद्र—ये तीनों द्विजाति अपने सजातीय का आक्रोश करें तो बारह पण दण्ड होता है और जो कहने के अयोग्य (माता—भगिनी आदि को अनुचित-वचन) कहें तो वही दण्ड द्विगुण (२४ पण) दण्ड होजाता है २६९ ॥

एकजातिर्द्विजातींस्तुवाचादारुणयाक्षिपन् । जिह्वायाःप्राप्नुयाच्छेदंजघन्यप्रभवोहिसः २७०

प० । एकजातिः द्विजातीन् तु वाचा दारुणया क्षिपन् जिह्वायाः प्राप्नुयात् छेदं जघन्यप्रभवः हि सः ॥

यो० । एकजातिः (शूद्रः) दारुणयावाचा क्षिपन् सन् हि (यतः) सःजघन्यप्रभवः अतः जिह्वायाः छेदं प्राप्नुयात् ॥

भा० । ता० । यदि शूद्र पूर्वोक्त द्विजातियों की कठोर वचन से निन्दा करे तो जिह्वा के छेदन को प्राप्त होता है क्योंकि वह शूद्र जघन्य (अधम) पाद से पैदा हुआ है २७० ॥

नामजातिग्रहंत्वेषामभिद्रोहेणकुर्वतः।निक्षेप्योऽयोमयःशंकुर्ज्वलन्नास्येदशांगुलः २७१

प० । नामजातिग्रहं तु एषां अभिद्रोहेण कुर्वतः निक्षेप्यः अयोमयः शंकुः ज्वलन् आस्ये दशांगुलः ॥

यो० । एषां (द्विजातीनां) नामजातिग्रहं अभिद्रोहेण कुर्वतः शूद्रस्य आस्ये अयोमयः ज्वलन् शंकुः निक्षेप्यः ॥

भा० । ता० । द्रोह से द्विजातियों का नाम वा जाति का ग्रहण (लेना) अरे ब्राह्मण नीच इत्यादि करै तो इस शूद्र के मुख में दश अंगुल लम्बा लोहेका शंकु (गज) राजा डालदे २७१ ॥

धर्मोपदेशंदर्पेणविप्राणामस्यकुर्वतः । तप्तमासेचयेत्तैलंवक्त्रेश्रोत्रेचपार्थिवः २७२॥

प० । धर्मोपदेशं दर्पेण विप्राणां अस्य कुर्वतः तप्तं आसेचयेत् तैलं वक्त्रे श्रोत्रे च पार्थिवः ॥

यो० । दर्पेण विप्राणां धर्मोपदेशं कुर्वतः अस्य (शूद्रस्य) वक्त्रे चपुनः श्रोत्रे तप्तं तैलं पार्थिवः आसेचयेत् ॥

भा० । ता० । जो शूद्र किसी से किंचित् धर्मको जानकर ब्राह्मणों को अहंकारसे धर्म का उपदेश करता है अर्थात् हे ब्राह्मण तुझे यह धर्म करना चाहिये ऐसे कहता है उस शूद्रके मुख और कानों में जलता हुआ तेल राजा डाल दे २७२ ॥

श्रुतंदेशंचजातिंचकर्मशारीरमेवच । वितथेनब्रुवन्दर्पाद्दाप्यःस्याद्विशतंदमम् २७३॥

प० । श्रुतं देशं च जातिं च कर्म शारीरं एव च वितथेन ब्रुवन् दर्पात् दाप्यः स्यात् द्विशतं दमम् ॥

यो० । श्रुतं देशं जातिं चपुनः शारीरं कर्म दर्पात् वितथेन ब्रुवन् शूद्रः राज्ञा द्विशतं दमं दाप्यः स्यात् ॥

भा० । जो किसी की विद्या–देश–जाति–देहके संस्कार–इनको झूठ बतावे उसको राजा दोसौ पण दंड दे ॥

ता० । जो मनुष्य श्रुत सुनने को अर्थात् तैंने यह नहीं सुना है अथवा देशको अर्थात् उस देशमें उत्पन्न हुआ नहीं है और जाति को तेरी यह जाति नहीं है और शरीर के यज्ञोपवीत आदि संस्कारोंको अर्थात् तेरे संस्कार नहीं हुये किसी दूसरे के इन सबको मिथ्या कहै तो राजा उसको दोसौ पण दंड दे यह दंड केवल शूद्रके लिये ही नहीं है किंतु समान जातियों के लिये है अर्थात् जो मनुष्य अपने सजातीयके विषे पूर्वोक्त झूठ बोले तो वह पूर्वोक्त दंड का भागी होताहै २७३ ॥

काणंवाप्यथवाखंजमन्यंवापितथाविधम् । तथ्येनापिब्रुवन्दाप्योदंडंकार्षापणावरम् २७४॥

प० । काणं वा अपि अथवा खंजं अन्यं वा अपि तथाविधं तथ्येन अपि ब्रुवन् दाप्यः दंडं कार्षापणावरम् ॥

यो० । काणं अथवा खंजं वा तथाविधं अन्यं तथ्येन अपि काणादिकं ब्रुवन् पुरुषः कार्षापणावरं दंडं दाप्यः ॥

भा० । ता० । जो मनुष्य काने को काना और खंज (लंगड़ा) को खंज और हस्त–पाद आदि से जो विकल (शून्य) हों उनको वैसाही सत्य कहै अर्थात् जैसाहो वैसाही कहै तो उस मनुष्यको राजा कम से कम एक कार्षापण दंड दे २७४ ॥

मातरंपितरंजायांभ्रातरंतनयंगुरुम् । आक्षारयञ्छतंदाप्यःपन्थानंचाददद्गुरोः २७५

प० । मातरं पितरं जायां भ्रातरं तनयं गुरुं आक्षारयन् शतं दाप्यः पंथानं च अददत् गुरोः ॥

यो० । मातरं–पितरं–जायां–भ्रातरं–तनयं–गुरुं–आक्षारयन् चपुनः गुरोः पंथानं अददत् पुरुषः शतं पणं राज्ञा दाप्यः ॥

भा० । माता–पिता–स्त्री–भाई–पुत्र–गुरु–इनको जो शाप लगावे अथवा गुरुको मार्ग न दे तो उसको राजा सौ पण दंड दे ॥

ता० । जो मनुष्य अपनी माता पिता जाया भाई पुत्र गुरु इनका आक्षारण अर्थात् पातकी आदि कहकर निंदाकरै अथवा अपने गुरुको सन्मुख आता देखकर मार्ग को न छोड़िदे उस मनुष्यको राजा सौ पण दंड दे इस अर्थ में आक्षारण शब्दका अर्थ पातक लगाना कहा है और इससे स्त्री पुत्र भाई इनको भी गुरुके समान दंड कहा है और मेधातिथि तो आक्षारण शब्द का अर्थ भेदन कहकर यह कहते हैं कि जो माता पिता आदिकोंकी परस्पर प्रीति में भेद करिदे तो उसको सौ पण दंड होताहै २७५ ॥

ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यांतुदंडःकार्योविजानता । ब्राह्मणेसाहसःपूर्वःक्षत्रियेत्वेवमध्यमः २७६

प० । ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यां तु दंडः कार्यः विजानता ब्राह्मणे साहसः पूर्वः क्षत्रिये तु एव मध्यमः ॥

यो० । ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यां आक्रोशेसति विजानता राज्ञा दंडः कार्यः ब्राह्मणे पूर्वः साहसः क्षत्रिये तु मध्यमः साहसः कार्यः ॥

भा० । ता० । यदि ब्राह्मण और क्षत्रिय परस्पर एक दूसरे को पतित बतावे तो शास्त्र का जाननेवाला इसप्रकार दंड दे कि यदि ब्राह्मण क्षत्रिय को पतित कहे तो प्रथम साहस दंड दे और यदि क्षत्री ब्राह्मण को पतित बतावे तो मध्यम साहस दंड दे २७६ ॥

विट्शूद्रयोरेवमेवस्वजातिंप्रतितत्त्वतः । छेदवर्ज्जंप्रणयनंदण्डस्येतिविनिश्चयः२७७॥

प० । विट्शूद्रयोः एवं एव स्वजातिं प्रति तत्त्वतः छेदवर्ज्जं प्रणयनं दंडस्य इति विनिश्चयः ॥

यो० । एवं एव विट् शूद्रयोः स्वजातिं प्रति तत्त्वतः आक्रोशे छेदवर्ज्जं दंडस्य प्रणयनं राज्ञा कर्त्तव्यं इति विनिश्चयः अस्ति ॥

भा० । परस्पर पतित बतानेवाले वैश्य शूद्र को भी राजा इसीप्रकार दंड दे परंतु शूद्रकी जिह्वा का छेदन न करे यह शास्त्रकी मर्यादा है ॥

ता० । यदि वैश्य और शूद्र अपनी परस्पर जाति के मनुष्य को पतित बतावें तो इसीप्रकार जिह्वा के छेदनको छोड़कर राजा दंड दे यह शास्त्रका निश्चय है अर्थात् यदि शूद्रको वैश्य पतित बतावै तो प्रथम साहस और शूद्र वैश्यको पतित बतावे तो मध्यम साहस दंड दे इससे जो पीछे दोसौ सत्तर २७० के श्लोकमें शूद्रको वैश्य के आक्रोशमें जिह्वा का छेदन कहिआये हैं वह दंड ब्राह्मण और क्षत्रिय के पतित बताने में ही समझना अथवा वैश्यकी निंदा करने में तो शूद्रको मध्यम साहसही दंड होताहै २७७ ॥

एषदण्डविधिःप्रोक्तोवाक्पारुष्यस्यतत्त्वतः।अतऊर्ध्वंप्रवक्ष्यामिदण्डपारुष्यनिर्णयम् २७८

प० । एषः दंडविधिः प्रोक्तः वाक्पारुष्यस्य तत्त्वतः अतः ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि दंडपारुष्यनिर्णयम् ॥

यो० । एषः वाक्पारुष्यस्य दंडविधिः मया तत्त्वतः प्रोक्तः अतः ऊर्ध्वं दंडपारुष्यनिर्णयं प्रवक्ष्यामि ॥

भा० । ता० । वाक्पारुष्य अर्थात् कठोर वचन कहने का यह यथार्थ दंडकी विधि में कही इससे आगे दंडपारुष्य (कठोर दंड) का निर्णय कहताहूं २७८ ॥

येनकेनचिदंगेनहिंस्याच्चेच्छ्रेष्ठमन्त्यजः।छेत्तव्यंतत्तदेवास्यतन्मनोरनुशासनम् २७९ ॥

प० । येन केनचित् अंगेन हिंस्यात् चेत् श्रेष्ठं अंत्यजः छेत्तव्यं तत् तत् एव अस्य तत् मनोः अनुशासनम् ॥

यो० । चेत् (यदि) अंत्यजः श्रेष्ठं येन केनचित् अंगेन हिंस्यात् तत् तत् एव अस्य अंगं राज्ञा छेत्तव्यं मनोः तत् अनुशासनं (आज्ञा) भवति ॥

भा० । ता० । यदि शूद्र जिस २ अंग से द्विजातियों की हिंसाकरै उस शूद्रका वही २ अंग राजा छेदन करिदे यह मनुकी आज्ञा है २७९ ॥

पाणिमुद्यम्यदंडंवापाणिच्छेदनमर्हति । पादेनप्रहरन्कोपात्पादच्छेदनमर्हति २८० ॥

प० । पाणिं उद्यम्य दंडं वा पाणिछेदनं अर्हति पादेन प्रहरन् कोपात् पादछेदनं अर्हति ॥

यो० । शूद्रः पाणिं वा दंडं उद्यम्य पाणिछेदनं अर्हति कोपात् पादेन प्रहरन् शूद्रः पादछेदनं अर्हति ॥

भा० । ता० । जो शूद्र द्विजाति के मारने के लिये हाथको वा दंडको उठावै वह हाथके छेदन योग्य होता है और जो कोपसे द्विजाती का पैरसे प्रहारकरै अर्थात् लातमारै तो पैरोंके छेदन के योग्य होताहै २८० ॥

सहासनमभिप्रेप्सुरुत्कृष्टस्यापकृष्टजः।कट्यांकृतांकोनिर्वास्यःस्फिचंवास्यावकर्तयेत् २८१

प० । सहासनं अभिप्रेप्सुः उत्कृष्टस्य अपकृष्टजः कट्यां कृतांकः निर्वास्यः स्फिचं वा अस्य अवकर्तयेत् ॥

यो० । उत्कृष्टस्य सहासनं अभिप्रेप्सुः अपकृष्टजः राज्ञा कट्यां कृतांकः सन निर्वास्यः वा अस्य स्फिचं राजा अवकर्तयेत् ॥

भा० । ता० । जो शूद्र ब्राह्मण के संग एक आसन पर बैठने की इच्छाकरै उस शूद्रकी कटि (कमर) में राजा चिह्नबनाकर (दागदकर) देश से निकास दे अथवा इसके स्फिच (चूतड़) को कतर दे परंतु इसप्रकार कतरै जैसे वह शूद्र मर न जाय २८१ ॥

अवनिष्ठीवतोदर्पाद्द्वावोष्ठौछेदयेन्नृपः । अवमूत्रयतोमेढ्रमवशर्धयतोगुदम् २८२ ॥

प० । अवनिष्ठीवतः दर्पात् द्वौ ओष्ठौ छेदयेत् नृपः अवमूत्रयतः मेढ्रं अवशर्धयतः गुदम् ॥

यो० । दर्पात् ब्राह्मणान अवनिष्ठीवतः पुरुषस्य द्वौ ओष्ठौ अवमूत्रयतः मेढ्रं अवशर्धयतः गुदं नृपः छेदयेत् ॥

भा० । ता० । अभिमान से ब्राह्मणों के ऊपर थूकतेहुये शूद्र के दोनों होंठ और ब्राह्मणोंके ऊपर मूत्रकरतेहुये का लिंग और ब्राह्मणोंके ऊपर अधोवायु करतेहुये की गुदाको राजा छेदनकरै २८२ ॥

केशेषुगृह्णतोहस्तौछेदयेदविचारयन् । पादयोर्दाढिकायांचग्रीवायांवृषणेषुच २८३ ॥

प० । केशेषु गृह्णतः हस्तौ छेदयेत् अविचारयन् पादयोः दाढिकायां च ग्रीवायां वृषणेषु च ॥

यो० । केशेषु पादयोः दाढिकायां ग्रीवायां चपुनः वृषणेषु ब्राह्मणं दर्पात् गृह्णतः शूद्रस्य हस्तौ राजा अविचारयन सन् छेदयेत् ॥

भा० । ता० । ब्राह्मण के केश–पैर–दाढ़ी ग्रीवा वृषण–इनको जो अभिमान से ग्रहणकरै तो

उस शूद्रके हाथोंको राजा छेदनकरै और उस समय यह विचार न करै कि इसको पीड़ा होगी वा नहीं २८३ ॥

त्वग्भेदकःशतंदंड्योलोहितस्यचदर्शकः।मांसभेत्तातुषण्णिष्कान्प्रवास्यस्त्वस्थिभेदकः२८४ ॥

प० । त्वग्भेदकः शतं दंड्यः लोहितस्य च दर्शकः मांसभेत्ता तु षट् निष्कान् प्रवास्यः तु अस्थि-भेदकः ॥

यो० । त्वग्भेदकः चपुनः लोहितस्य दर्शकः पुरुषः शतं दंड्यः मांसभेत्ता षण्णिष्कान दंड्यः अस्थि भेदकस्तु राज्ञा प्रवास्यः ॥

भा० । ता० । जो सजातीय मनुष्य की त्वचाका छेदन करै अथवा देहमें से रुधिर को निकास दे उसको सौ पण का और मांस के भेदन करनेवाले को छः निष्कका राजा दंड दे और जो अस्थि (हड्डी) को छेदन करै उसको तो अपने राज्य में से निकाल दे २८४ ॥

वनस्पतीनांसर्वेषामुपभोगंयथायथा । तथातथादमःकार्योहिंसायामितिधारणा २८५॥

प० । वनस्पतीनां सर्वेषां उपभोगं यथा यथा तथा तथा दमः कार्यः हिंसायां इति धारणा ॥

यो० । सर्वेषां वनस्पतीनां यथा यथा उपयोगं भवति तथा तथा वनस्पतीनां हिंसायां सत्यां दमः (दंडः) राज्ञा कार्यः इतिधारणा निश्चयः अस्ति ॥

भा० । सम्पूर्ण वनस्पतियों का जैसा २ उपभोग होताहै वैसा वैसाही उनकी हिंसा करने में भी राजा दंडदे यह शास्त्रका निश्चय है ॥

ता० । वृक्ष आदि सम्पूर्ण वनस्पतियों का जिस २ प्रकार अर्थात् फल–पुष्प–पत्र आदिसे उत्तम–मध्यम–अधम रूपहोताहै उसी२ प्रकारसे वनस्पतियों की हिंसामें भी उत्तम साहस मध्यम साहस आदि दण्ड को राजा दे यही शास्त्रकी व्यवस्था है क्योंकि इसी वचनसे विष्णु ने यह कहा है कि जो मनुष्य वृक्षके फलोंका उपभोग करै अथवा वृक्षोंको छेदन करिदे उसको उत्तम साहस और जो फूलोंका उपभोग और वृक्षोंको छेदनकरै उसको मध्यम साहस और बल्लि लता गुल्म इनको छेदन करै तो उसको सौकार्षापण और जो तृणों को छेदन करै तो उसको एक कार्षापण दंड राजा दे २८५ ॥

मनुष्याणांपशूनांचदुःखायप्रहृतेसति । यथायथामहद्दुःखंदंडंकुर्यात्तथातथा २८६ ॥

पद–मनुष्याणां पशूनां च दुःखाय प्रहृते सति यथा यथा महद्दुःखं दंडं कुर्यात् तथा तथा ॥

यो० । मनुष्याणां चपुनः पशूनां दुःखाय प्रहृते सति यथा यथा महद्दुःखं भवति तथा तथा दण्डं राजा कुर्यात् ॥

भा० । ता० । यदि कोई पुरुष (मनुष्यों और पशुओंके दुःख देनेके लिये प्रहारकरै तो जैसा २ अधिक दुःख हो वैसाही वैसा अधिक दंड राजादे अर्थात् त्वचाके छेदनमें सौ पण दंड जो कहाहै यदि अधिक त्वचाका भेदन होजाय तो वहां परभी अधिक दंडदे २८६ ॥

अंगावपीडनायांचव्रणशोणितयोस्तथा । समुत्थानव्ययंदाप्यःसर्वदंडमथापिवा२८७॥

पद । अंगा वपीडनायां च व्रणशोणितयोः तथा समुत्थानव्ययं दाप्यः सर्वदण्डं अथ अपि वा ॥

यो० । अंगावपीडनायां तथा व्रणशोणितयोः पीडायां सत्यां राज्ञा समुत्थानव्ययं वा सर्वदंडं राज्ञा दाप्यः ॥

---

१ फलोपभोगद्रुमच्छेदीतूत्तमं साहसं पुष्पोपभोगच्छेदी मध्यमं वल्लीगुल्म लताछेदीकार्षापणशतं तृणच्छेद्येककार्षापणंच

भा० । अंगोंकी पीडादेने और घाव रुधिर निकासने पर जितना व्यय आराम होनेमें हो उतना दण्ड राजादे अथवा शास्त्रोक्त सम्पूर्ण दण्डदे ॥

ता० । यदि कोई मनुष्य किसी के कर चरण आदि अंगोंको पीडादे अथवा घाव और रुधिर निकासकरि पीडादे तो राजा उसको समुत्थान व्ययदण्डदे अर्थात् जितने कालमें घावभरे उतने समय में पथ्य और औषध में जो व्यय (खर्च) पड़े उतना दंड राजादे यदि पीडा देनेवाला पीडा देना न चाहै तो वह व्यय और उस पीडाका दंड ये दोनों दंड राजा उसेदे २८७ ॥

द्रव्याणिहिंस्याद्योयस्यज्ञानतोऽज्ञानतोपिवा।सतस्योत्पादयेत्तुष्टिंराज्ञोदद्याच्चतत्समम२८८

प० । द्रव्याणि हिंस्यात् यः यस्य ज्ञानतः अज्ञानतः अपि वा सः तस्य उत्पादयेत् तुष्टिं राज्ञः दद्यात् च तत्समम् ॥

यो० । यः पुरुष यस्य द्रव्याणि ज्ञानतः वा अज्ञानतः हिंस्यात् सः तस्य तुष्टिं उत्पादयेत् चपुनः तत्समंराज्ञःदद्यात् ॥

भा० । ता० । जो मनुष्य जानकर वा अज्ञानसे जिसके द्रव्यों को नष्टकरिदे वह दूसरे द्रव्यों को देकर उसका सन्तोष करिदे और राजाको उतना द्रव्यदे जितना उसने नष्ट कियाहो २८८ ॥

चर्मचार्मिकभांडेषुकाष्ठलोष्ठमयेषुच । मूल्यात्पंचगुणोदंडःपुष्पमूलफलेषुच २८९ ॥

प० । चर्मचार्मिक भांडेषु काष्ठलोष्ठमयेषु च मूल्यात् पञ्चगुणः दंडः पुष्पमूलफलेषु च ॥

यो० । चर्मचार्मिकभांडेषु चपुनः काष्ठलोष्ठमयेषु चपुनः पुष्पमूलफलेषु नाशितेषु सत्सु मूल्यात् पंचगुणः दंडः राज्ञेदेयः—स्वामिनः सन्तोपस्तु कर्तव्य एव ॥

भा० । ता० । जो मनुष्य किसीके चर्म वा चर्मसे बनी वस्तु वा पात्र अथवा काष्ठ वा मिट्टी के पात्रोंको अथवा पुष्प मूल फलोंको नष्ट करिदे तो मूल्यसे पांचगुणा दण्ड राजाकोदे और स्वामीको प्रसन्न करिदे २८९ ॥

यानस्यचैवयातुश्चयानस्वामिनएवच । दशातिवर्तनान्याहुःशेषदंडोविधीयते २९० ॥

प०। यानस्य च एव यातुः च यानस्वामिनः एव च दश अतिवर्तनानि आहुः शेषे दंडः विधीयते॥

यो० । यानस्य यातुः चपुनः यानस्वामिनः दश अति वर्तनानि मन्वादयः आहुः शेषे राज्ञा दंडःविधीयते ॥

भा० । यान—सारथी—यानका स्वामी इनके दश अपराधोंमें दण्डका न देना मनु आदिकोंने कहा है और शेष अपराधों में दण्ड कहा है ॥

ता० । रथ आदि यान (सवारी) और याता (सारथि) और यानका स्वामी इन तीनोंके दश अपराधों में दण्डका अतिवर्त्तन (न देना) मनु आदिकों ने कहा है और उन दशसे शेष अपराधों में दण्ड कहाहै अर्थात् उनदशों के होनेसे कोई प्राणी मरजाय अथवा द्रव्य नष्ट होजाय तो यानके स्वामीको राजा दण्ड न दे और शेष होनेपर दण्डदे उन सबको अगिले दो श्लोकों में वर्णन करते हैं कि २९० ॥

छिन्ननास्येभग्नयुगेतिर्यक्प्रतिमुखागते । अक्षभंगेचयानस्यचक्रभंगेतथैवच २९१॥
छेदनेचैवयन्त्राणांयोक्त्ररश्म्योस्तथैवच ।आक्रन्देचाप्यपैहीतिनदंडंमनुरब्रवीत्२९२॥

प० । छिन्ननास्ये भग्नयुगे तिर्यक् प्रतिमुखागते अक्षभंगे च यानस्य चक्रभंगे तथा एव च ॥

प० । छेदने च एव यन्त्राणां योक्त्ररश्म्योः तथा एव च आक्रंदे च अपि अपेहि इति न दण्डं मनुः अब्रवीत् ॥

यो० । छिन्ननास्ये भग्नयुगे तिर्यक्प्रतिमुखागते यानेसति चपुनः यानस्य अक्षभंगे तथैव चक्रभंगे चपुनः यन्त्राणां छेदने तथैव योक्त्ररश्म्योः छेदनेसति चपुनः अपेहि इति आक्रंदेसति मनुः दण्डं न अब्रवीत् ॥

भा० । ता० । यदि बैलकी नाथ छिदजाय और जूआ टूटजाय अथवा ऊँची नीची भूमिसे रथ तिरछा होजाय अथवा चक्रके भीतरका काष्ठ टूटजाय अथवा चक्र (पहिया) टूटजाय अथवा यन्त्र (चामकेबँधने) टूटजायँ अथवा योक्त्र (बैलकी नारकी रज्जु) टूटजायअथवा रश्मि (रास) टूट जाय तो और सारथी के इस प्रकार शब्द करने से कि यहांसे हटजाओ हटजाओ इन दश बातों के होने पर यदि यान (सवारी) से कोई प्राणी मरजाय अथवा किसीका द्रव्य नष्टहोजाय तो सारथी अथवा उसके स्वामीको दण्डदेना मनुने नहीं कहाहै २९१ । २९२ ॥

यत्रापवर्ततेयुग्यंवैगुण्यात्प्राजकस्यतु। तत्रस्वामीभवेद्दंड्योहिंसायांद्विशतंदमम्२९३॥

प०।यत्र अपवर्तते युग्यं वैगुण्यात् प्राजकस्य तु तत्र स्वामी भवेत् दण्ड्यः हिंसायां द्विशतं दमम्॥

यो० । यत्र प्राजकस्य वैगुण्यात् युग्यं अपवर्तते तत्र स्वामी हिंसायां द्विशतंदमं दंड्यः भवेत् ॥

भा० । ता० । जहां सारथी के वैगुण्य (मूर्खता) से रथ अन्यथा (तिरछा) चलताहो और किसी प्राणीकी हिंसा होजाय तो रथके स्वामीको इसलिये दोसौ पण दंड राजादे कि उसने मूर्ख सारथी क्यों रक्खा २९३ ॥

प्राजकश्चेद्भवेदाप्तःप्राजकोदंडमर्हति।युग्यस्थाःप्राजकेऽनाप्तेसर्वेदंड्याःशतंशतम् २९४

प० । प्राजकः चेत् भवेत् आप्तः प्राजकः दण्डं अर्हति युग्यस्थाः प्राजके अनाप्ते सर्वे दंड्याः शतं शतम् ॥

यो०।चेत्(यदि) प्राजकः आप्तः भवेत् तर्हि प्राजकः दंडं अर्हति प्राजके अनाप्तेसति युग्यस्थाः सर्वे शतं शतं राज्ञादंड्याः॥

भा० । ता० । यदि सारथी कुशलहो और रथके अन्यथा चलने से कोई मरजाय तो सारथीही दण्डके योग्यहोताहै अर्थात् दोसौ पण दंड आदि का भागी होताहै और यदि सारथी कुशल न होय तो रथमें बैठनेवाले स्वामी से भिन्न सम्पूर्ण मनुष्यभी सौ सौ पण दण्ड के योग्य होते हैं २९४ ॥

सचेत्तुपथिसंरुद्धःपशुभिर्वारथेनवा । प्रमापयेत्प्राणभृतस्तत्रदंडोऽविचारितः २९५ ॥

प० । सः चेत् तु पथि संरुद्धः पशुभिः वा रथेन वा प्रमापयेत् प्राणभृतः तत्र दण्डः अविचारितः ॥

यो० । चेत् (यदि) पथि पशुभिः वा अन्येन रथेन संरुद्धः सः प्राजकः प्राणभृतः प्रमापयेत् तर्हि तत्रदंडः अविचारितः राज्ञा कर्तव्यः ॥

भा० । ता० । यदि सन्मुख आये हुये बहुत से गौ आदि पशु और अन्यरथ सारथीको रोकैं और वह अपने रथके चलाने में सावधान न होनेसे रथको न लौटायसके और अपने घोड़ोंको यथाशक्ति सावधानीसे चलावेभी यदि घोड़े वा रथसे कोई प्राणी मरजाय तो ऐसे स्थलमें राजा दंडदेने में विचार न करै अर्थात् इसरीति अनुसार दंडदेवे २९५ ॥

मनुष्यमारणेक्षिप्रंचौरवत्किल्बिषंभवेत् । प्राणभृत्सुमहत्स्वर्धंगोगजोष्ट्रहयादिषु २९६॥

प० । मनुष्यमारणे क्षिप्रं चौरवत् किल्बिषं भवेत् प्राणभृत्सु महत्सु अर्द्धं गोगजोष्ट्रहयादिषु ॥

यो० । मनुष्यमारणे सति किल्बिषं चौरवत् क्षिप्रं भवेत् गोगजोष्ट्रहयादिषु प्राणभृत्सु महत्सु मृतेषु सत्सु अर्द्धं किल्बिषं भवेत् ॥

भा० । ता० । यदि सारथी की असावधानी से कोई मनुष्य मरजाय तो चौरके समान उत्तम साहस (सहस्रपण) दंड सारथीकोदे और यदि गौ–हाथी-ऊंट-घोड़े-आदि बड़े २ प्राणधारीमरजांय तो उत्तमसाहस का आधा (५००पण) दण्ड होताहै २९६ ॥

क्षुद्रकाणांपशूनांतुहिंसायांद्विशतोदमः । पंचाशत्तुभवेद्दंडःशुभेषुमृगपक्षिषु २९७॥

प० । क्षुद्रकाणां पशूनां तु हिंसायां द्विशतः दमः पंचाशत् तु भवेत् दंडः शुभेषु मृगपक्षिषु ॥

यो० । क्षुद्रकाणां पशूनां हिंसायां द्विशतः दमः शुभेषु मृगपक्षिषु मृतेषु सत्सु पंचाशत् दंडः भवेत् ॥

भा० । ता० । यदि क्षुद्र (छोटे २) पशू सारथीकी असावधानी से मरजांय तो द्विशत (२०० पण) दंड और श्रेष्ठमृग (रुरुपृषत्आदि) और श्रेष्ठपक्षि (तोता हंस सारसआदि) ये मरजांय तो पचासपण दंड सारथीको होताहै २९७ ॥

गर्दभाजाविकानांतुदंडःस्यात्पंचमाषिकः । माषकस्तुभवेद्दंडःश्वशूकरनिपातने २९८॥

प० । गर्द्दभाजाविकानां तु दंडः स्यात् पंचमाषिकः माषकः तु भवेत् दंडः श्वशूकरनिपातने ॥

यो० । गर्द्दभाजाविकानां हिंसायां पंचमाषिकः दंडः— श्वशूकरनिपातने माषकः दंडः भवेत् ॥

भा० । ता० । यदि गधा–बकरी–भेड़–ये मरजांय तो पांचमासे चांदीकादंड सारथीको होता है यदि कुत्ता–शूकर–मरजांय तो एकमाषा चांदीका दंडहोताहै अर्थात् जैसे मूल्यकाजीव मरे वैसाही दंड राजा सारथिकोदे २९८ ॥

भार्यापुत्रश्चदासश्चप्रेष्योभ्राताचसोदरः।प्राप्तापराधास्ताड्याःस्यूरज्ज्वावेणुदलेनवा२९९

प० । भार्या पुत्रः च दासः च प्रेष्यः भ्राता च सोदरः प्राप्तापराधाः ताड्याः स्युः रज्ज्वा वेणुदलेन वा ॥

यो० । भार्या- पुत्रः- दासः- प्रेष्यः चपुनः सोदरः भ्राता प्राप्तापराधाः एते रज्ज्वा वा वेणुदलेन ताड्याः स्युः ॥

भा० । ता० । स्त्री–पुत्र–दास–भृत्य–और सोदर (सगा) भाई ये सब, कोई अपराधकरें तो रज्जु (रस्सी) और बांसकी पतली लकड़ीसे शिक्षाकेलिये इनकीताडनाकरै और कोई दंडनदे२९९॥

पृष्ठतस्तुशरीरस्यनोत्तमांगेकथंचन । अतोन्यथातुप्रहरन्प्राप्तःस्याच्चौरकिल्बिषम् ३००॥

प०। पृष्ठतः तु शरीरस्य न उत्तमांगे कथंचन अतः अन्यथा तु प्रहरन् प्राप्तः स्यात् चौरकिल्बिषम् ॥

यो० । शरीरस्य पृष्ठतः भार्यादयः ताड्याः स्युः उत्तमांगे (शिरसि) कथंचन ताड्याः नस्युः अतः अन्यथा प्रहरन् सन् चौरकिल्बिषं प्राप्तःस्यात् ॥

भा० । ता० । यदि रज्जु और बांस दलसे स्त्री आदिकोंको ताडनादे तो शरीरकी पीठपरदे और उत्तमअंग (शिर) पर कभी भी ताडना नदे क्योंकि पूर्वोक्त प्रकारसे अन्यथा ताडताहुआ मनुष्य चौर के दंडको प्राप्तहोताहै ३०० ॥

एषोऽखिलेनाभिहितोदंडपारुष्यनिर्णयः । स्तेनस्यातःप्रवक्ष्यामिविधिंदण्डविनिर्णये २०१॥

प० । एषः अखिलेन अभिहितः दंडपारुष्यनिर्णयः स्तेनस्य अतः प्रवक्ष्यामि विधिं दंडविनिर्णये ॥

यो० । एषः दंडपारुष्यनिर्णयः अखिलेन मया अभिहितः अतः परं स्तेनस्य दंडविनिर्णये विधिं प्रवक्ष्यामि ॥

भा० । ता० । यह सम्पूर्ण दंडकी कठोरता का निर्णय मैंनेकहा इसके अनन्तर स्तेन (चोर) के दंडके निर्णयकी विधिको कहताहूं २०१ ॥

परमंयत्नमातिष्ठेत्स्तेनानांनिग्रहेनृपः । स्तेनानांनिग्रहादस्ययशोराष्ट्रंचवर्द्धते ३०२ ॥

प० । परमं यत्नं आतिष्ठेत् स्तेनानां निग्रहे नृपः स्तेनानां निग्रहात् अस्य यशः राष्ट्रं च वर्द्धते ॥

यो० । स्तेनानां निग्रहे नृपः परमंयत्नं आतिष्ठेत् कुतः स्तेनानां निग्रहात् अस्य यशः चपुनःराष्ट्रं वर्द्धते ॥

भा० । ता० । चोरों के निग्रह अर्थात् नियमन (ताडनासे नष्टकरना) में राजा परमयत्नकरै क्योंकि चोरोंके निग्रहसे इसराजा का यश और देश ये दोनों बढ़ते हैं अर्थात् उपद्रवों की शांति से देशमें सुखचैन रहताहै ३०२ ॥

अभयस्यहियोदातासपूज्यःसततंनृपः । सत्रंहिवर्धतेतस्यसदैवाभयदक्षिणम् ३०३ ॥

प०।अभयस्य हि यः दाता सः पूज्यः सततं नृपः सत्रं हि वर्द्धते तस्य सदा एव अभयदक्षिणम्

यो० । यः नृपः सततं अभयस्य दाता भवति सः पूज्यः हि (यतः) सदा एव अभयदक्षिणं तस्य सत्रं वर्द्धते ॥

भा० । अभय के देनेवाले राजाकी निरन्तर पूजाकरै क्योंकि अभयकी है दक्षिणा जिसमें ऐसा उसराजा का यज्ञरूप देश सदैव बढ़ताहै ॥

ता० । चोरोंको दंडदेनेसे जो राजा अपनी प्रजाकी निरन्तर रक्षाकरने से राजा अभय (भयका अभाव) को देताहै वहराजा सबके पूजनेयोग्य अर्थात् श्लाघा का भागी होताहै क्योंकि उसराजाका सत्र अर्थात् समाजआदि यज्ञके समान देशबढ़ता है क्योंकि इसयज्ञ में चोरों के अभाव से प्रजाको सदैव अभयकी दक्षिणा राजा से मिलती है इससे उसराजा का प्रजारूपी यज्ञ सदैव बढ़ताहै—इतर यज्ञोंमें किसी नियत समयपर नियत दक्षिणा मिलती है इसराजाकी यज्ञमें सम्पूर्णकाल में अभय दक्षिणा प्रजाको मिलती रहती है इससे राजा इसप्रजाकी रक्षारूप यज्ञका कदाचित् भी परित्याग न करै अर्थात् सदैव चोरोंको दंडदेतारहै ३०३ ॥

सर्वतोधर्मषड्भागोराज्ञोभवतिरक्षतः । अधर्मादपिषड्भागोभवत्यस्यह्यरक्षतः ३०४॥

प० । सर्वतः धर्मषड्भागः राज्ञः भवति रक्षतः अधर्मात् अपि षड्भागः भवति अस्य हि अरक्षतः॥

यो० । रक्षतः राज्ञः सर्वेन धर्मषड्भागो भवति अरक्षतः अस्य अधर्मात् अपि षड्भागो भवति ॥

भा० । रक्षाकरनेवाले राजाको सबके धर्म में से छठाभाग और रक्षा न करनेवाले राजा को सबके अधर्ममेंसे छठाभाग मिलता है ॥

ता० । रक्षाकरनेवाले राजाको भृतिके देनेवाले व्यापारी आदिकोंसे और वेदके पढ़नेवाले श्रोत्रिय आदिकों से धर्मका छठाभाग मिलता है अर्थात् इनके पुण्यका छठाअंश राजा को मिलता है—और जो राजा प्रजाकी रक्षानहींकरता उसको व्यापारी और श्रोत्रियआदिकोंके अधर्ममें से छठाभाग राजा को मिलता है अर्थात् जो ये पापकरते हैं उसके छठेअंशका भागी राजा होताहै तिससे राजा

चोरोंको दंडदेकर बडेयत्नसे प्रजाकी रक्षाकरै इसमें कोई यह शंका करते हैं कि जिसमनुष्यको भृति (नौकरी) देकर मोल लेलिया उससे छठाभाग पुण्यका राजाको युक्तनहीं है—यहशंका ठीकनहीं है क्योंकि यदि धर्मसे भृति देकर मोललियाहो अथवा राजा के कोप के भय से ठीक २ भृति भृत्यको मिलीहोय तो राजा का छठाभागीहोना ठीक है और राजा ने उसकी भृति दिलाने और भृति शास्त्रोक्त है वा नहीं यह विचार न कियाहोय तो राजाको छठेअंशका भागीहोना उचितनहीं है ३०४ ॥

यदधीतेयद्यजतेयद्ददातियदर्चति । तस्यषड्भागभाग्राजासम्यग्भवतिरक्षणात् ३०५॥

प० । यत् अधीते यत् यजते यत् ददाति यत् अर्चति तस्य षड्भागभाग् राजा सम्यक् भवति रक्षणात् ॥

यो० । मनुष्यः यत् अधीते यत् यजते यत् ददाति यत् अर्चति सम्यक् रक्षणात् राजा तस्य षड्भागभाग् भवति ॥

भा० । ता० । मनुष्य जो पढता है यज्ञकरताहै दानदेताहै देवताओंका पूजनकरताहै उस सबके छठे अंशकाभागी राजा इससे होताहै कि वह भलीप्रकार प्रजाकी रक्षा करताहै ३०५ ॥

रक्षन्धर्मेणभूतानिराजावध्यांश्चघातयन् । यजतेऽहरहर्यज्ञैःसहस्रशतदक्षिणैः ३०६ ॥

प० । रक्षन् धर्मेण भूतानि राजा वध्यान् च घातयन् यजते अहःअहः यज्ञैः सहस्रशतदक्षिणैः ॥

यो० । भूतानि धर्मेणरक्षन् चपुनः वध्यान् घातयन् सन् राजा सहस्रशतदक्षिणैः यज्ञैः अहःअहः यजते ॥

भा० । ता० । स्थावर और जंगम आदि संपूर्ण भूतों की धर्मपूर्वक अर्थात् शास्त्रके अनुसार दंड देनेसे रक्षाकरताहुआ और स्तेन आदि हिंसकोंको ताडना देताहुआ राजा लक्षमुद्राओंकीहै दक्षिणा जिनमें ऐसी यज्ञोंसे प्रतिदिन ईश्वरको पूजता है अर्थात् पूर्वोक्त यज्ञोंके पुण्यको प्राप्तहोताहै ३०६ ॥

योऽरक्षन्बलिमादत्तेकरंशुल्कंचपार्थिवः । प्रतिभागंचदंडंचससद्योनरकंव्रजेत् ३०७

प० । यः अरक्षन् बलिं आदत्ते करं शुल्कं च पार्थिवः प्रतिभागं च दंडं च सः सद्यः नरकं व्रजेत् ॥

यो० । यः पार्थिवः अरक्षन् सन् बलिं करं शुल्कं प्रतिभागं चपुनः दंडं आदत्ते सः राजा सद्यः नरकं व्रजेत् ॥

भा० । प्रजाकी रक्षा न करताहुआ जो राजा बलि, कर—शुल्क—प्रतिभाग—(भेट) दंड—(जुर्माना आदि) को लेताहै वह मरकर शीघ्र नरक में जाताहै ॥

ता० । जो राजा प्रजाकी रक्षाको न करिके बलि(अन्नका छठाभाग)जो ग्रामवासियोंसे प्रतिमास व षण्मासमें लिया जाता है वह कर और शुल्क अर्थात् स्थल और जल के व्यापारियोंसे द्रव्यके अनुसार किसी नियत स्थानपर जो लिया जाता है जिसको महसूल कहते हैं और प्रतिभाग फल पुष्प शाक तृण आदि का उपायन (भेट) प्रतिदिन जो राजाको दियाजाताहै और दंड जो व्यवहारि-(मुकद्दमवाले)यों से लिया जाता है—इन सबको ग्रहणकरता है वह राजा मरनेके अनंतरही नरक में जाता है ३०७ ॥

अरक्षितारंराजानंबलिषड्भागहारिणम् । तमाहुःसर्वलोकस्यसमग्रमलहारकम् ३०८

प० । अरक्षितारं राजानं बलिषड्भागहारिणं तं आहुः सर्वलोकस्य समग्रमलहारकम् ॥

यो० । अरक्षितारं बलिषड्भागहारिणं तं राजानं सर्वलोकस्य समग्रमलहारकं बुधाः आहुः ॥

भा०। ता०। प्रजाकी रक्षा न करने और बलिका छठाभाग लेनेवाले उस राजाको संपूर्ण जगत् के समग्र पापोंकाभागी विद्वानोंने कहा है ३०८॥

अनपेक्षितमर्यादंनास्तिकंविप्रलुम्पकम्। अरक्षितारमत्तारंनृपंविद्यादधोगतिम् ३०९

प०। अनपेक्षितमर्यादं नास्तिकं विप्रलुंपकं अरक्षितारं अत्तारं नृपं विद्यात् अधोगतिम्॥

यो०। अनपेक्षितमर्यादं नास्तिकं विप्रलुंपकं अरक्षितारं अत्तारं नृपं अधोगतिं विद्यात्॥

भा०। ता०। जो राजा मर्यादाकी अपेक्षा न करै अर्थात् शास्त्रोक्त रीतिसे न वर्ते और जो नास्तिकहो अर्थात् परलोक को न माने और जो विप्रलुम्पक अनुचित दंड आदि से धनका ग्रहण करै और जो प्रजाकीरक्षा न करै और अन्न आदिके करको भक्षणकरै ऐसे राजाको नरकगामिजानै ३०९॥

अधार्मिकंत्रिभिर्न्यायैर्निगृह्णीयात्प्रयत्नतः। निरोधनेनबन्धेनविविधेनवधेनच ३१०॥

प०। अधार्मिकं त्रिभिः न्यायैः निगृह्णीयात् प्रयत्नतः निरोधनेन बंधेन विविधेन वधेन च॥

यो०। राजानिरोधनेन, बंधेन, चपुनः विविधेन वधेन एभिस्त्रिभिः न्यायैः अधार्मिकं प्रयत्नतः निगृह्णीयात्॥

भा०। ता०। राजा चौर आदि अधर्मियोंको अपराधके अनुसार इन तीनों न्यायोंसे निगृहीत (वशीभूत) करै कि निरोधन अर्थात् कारागार (कैदखान) में प्रवेशकरनेसे और बंधन (बेड़ीडालना) से और विविध, (अनेकप्रकार) के कर चरणछेदन आदिकोंकी हिंसाओंसे ३१०॥

निग्रहेणहिपापानांसाधूनांसंग्रहेणच। द्विजातयइवेज्याभिःपूयन्तेसततंनृपाः ३११॥

प०। निग्रहेण हि पापानां साधूनां संग्रहेण च द्विजातयः इव इज्याभिः पूयंते सततं नृपाः॥

यो०। पापानां निग्रहेण चपुनः साधूनां संग्रहेण इज्याभिः द्विजातयः इव नृपाः सततं पूयंते॥

भा०। ता०। पापियों को दंडदेने और साधुओंपर अनुग्रह करने से राजा इसप्रकार निरंतर पवित्र होतेहैं जैसे यज्ञोंके करनेसे तीनों द्विजाति अर्थात् ब्राह्मण,क्षत्री, वैश्य इससे राजा पापियोंको दंडदे और साधुओंपर अनुग्रहकरै ३११॥

क्षन्तव्यंप्रभुणानित्यंक्षिपतांकार्यिणांनृणाम्।बालवृद्धातुराणांचकुर्वताहितमात्मनः३१२

प०। क्षंतव्यं प्रभुणा नित्यं क्षिपतां कार्यिणां नृणां बालवृद्धातुराणां च कुर्वता हितं आत्मनः॥

यो०। आत्मनः हितं कुर्वता प्रभुणा कार्यिणां नृणां क्षिपतां चपुनः बालवृद्धातुराणां नित्यं क्षंतव्यं॥

भा०। ता०। अपने हितको चाहताहुआ राजा कार्यवाले मनुष्योंके अर्थात् अर्थि प्रत्यर्थि (मुद्दई, मुद्दआअलेह) के और बालक, वृद्ध, और रोगियोंके आक्षेप (अनुचित वचन) की सदैव क्षमाकरै—अर्थात् ये सब दुःखितहोकर असावधानीसे कोई अनुचितवचनभी कहदें तो उसकी क्षमाकरै (सहले) ३१२॥

यःक्षिप्तोमर्षयत्यार्तैस्तेनस्वर्गेमहीयते। यस्त्वैश्वर्यान्नक्षमतेनरकंतेनगच्छति ३१३॥

प०। यः क्षिप्तः मर्षयति आर्तैः तेन स्वर्गे महीयते यः तु ऐश्वर्यात् न क्षमते नरकं तेन गच्छति॥

यो०। आर्तैः क्षिप्तः यः राजा मर्षयति सः तेन स्वर्गे महीयते तुपुनः यः ऐश्वर्यात् न क्षमते तेन नरकं गच्छति॥

भा०। ता०। दुःखीहुये मनुष्यों के कठोर वचनों को जो राजा सहताहै वह राजा उक्त वचनों

के सहनेसे स्वर्गमें पूजाको प्राप्तहोताहै और जो राजा अपनी प्रभुतासे क्षमा नहीं करता वह राजा क्षमाके न करने से नरक में जाताहै ३१३ ॥

राजास्तेनेनगन्तव्योमुक्तकेशेनधावता।आचक्षाणेनतत्स्तेयमेवंकर्मास्मिशाधिमाम् ३१४
स्कन्धेनादायमुसलंलगुडंवापिखादिरम्।शक्तिंचोभयतस्तीक्ष्णामायसंदण्डमेववा ३१५

प० । राजा स्तेनेन गंतव्यः मुक्तकेशेन धावता आचक्षाणेन तत् स्तेयं एवंकर्मा अस्मि शाधि माम् ॥

प० । स्कंधेन आदाय मुसलं लगुडं वा अपि खादिरं शक्तिं च उभयतः तीक्ष्णां आयसं दंडं एव वा ॥

यो० । स्कंधेन मुसलं वा खादिरं लगुडं उभयतः तीक्ष्णां शक्तिं वा आयसं दंडं मुक्तकेशेन धावता एवंकर्मा अहं अस्मि त्वं मां शाधि इति तत्स्तेयं आचक्षाणेन स्तेनेनराजागंतव्यः ॥

भा० । मैं चौरहूं मुझे शिक्षादो यहकहताहुआ केशों को खोलकर बड़ीशीघ्रतासे चोर अपने कांधे पर मुसल वा खैरकादंड वा दोनोंतरफ पैनीबर्छी वा लोहेकादंड इनकोरखकर राजाके समीपजाय ॥

ता० । केशोंको खोलकर दौड़ताहुआ और ब्राह्मणका सुवर्ण मैंनेचुरायाहै इससे तुमझुझे शिक्षा दो अर्थात् मारदो इसप्रकार अपनीचोरीको कहताहुआ चोर अपने कांधेपर मुसल अथवा खैरकादंड अथवा दोनोंतरफ पैनीधारवाली शक्ति (बर्छी) अथवा लोहेकादंड रखकर राजाकेसमीप चलाजाय यद्यपि सुवर्ण की चोरीका प्रायश्चित्त प्रायश्चित्त के प्रकरण में कहेंगे तथापि सुवर्ण की चोरीकरने वाले को यह राजाका दंडहोताहै इसलिये यहां दंडप्रकरणमें इसकालिखना उचितहै ३१४।३१५॥

शासनाद्वाविमोक्षाद्वास्तेनःस्तेयाद्विमुच्यते।अशासित्वातुतंराजास्तेनस्याप्नोतिकिल्बिषम्३१६

प० । शासनात् वा विमोक्षात् वा स्तेनः स्तेयात् विमुच्यते अशासित्वा तु तं राजा स्तेनस्य आप्नोति किल्बिषम् ॥

यो० । शासनात् वा विमोक्षात् स्तेयात् स्तेनं विमुच्यते राजा तु तं अशासित्वा स्तेनस्य किल्बिषं आप्नोति ॥

भा० । चौरको शिक्षादेनेसे वा छोड़नेसे चोर अपने पापसे छूटताहै यदि राजा चौरको शिक्षा न दे तो राजाही चौरके पापका भागी होताहै ॥

ता० । एकवार मुसल के प्रहारसे यदि चौरके प्राणोंका परित्यागहोजाय अथवा मृतकके समान जीतेहुयेकोही राजा छोड़दे तो वह चौर उससोनेकी चोरी के पापसे छूटजाताहै क्योंकि याज्ञवल्क्य ऋषिने इस वचनसे यहकहाहै कि मुसलादिक के प्रहारसे पीड़ित और मृतक के तुल्य चौर जीता हुआ भी शुद्धहोजाता है और यदि राजा उसको किसीप्रकार के दयाभावसे न मारे तो उसचौरका पाप राजाको प्राप्तहोता है ३१६ ॥

अन्नादेभ्रूणहामार्ष्टिपत्यौभार्यापचारिणी।गुरौशिष्यश्चयाज्यश्चस्तेनोराजनिकिल्बिषम्३१७

प० । अन्नादे भ्रूणहा मार्ष्टि पत्यौ भार्या अपचारिणी गुरौ शिष्यः च याज्यः च स्तेनः राजनि किल्बिषम् ॥

यो० । भ्रूणहा अन्नादे अपचारिणी भार्या पत्यौ शिष्यः चपुनः याज्यः गुरौ स्तेनः राजनि किल्बिषं मार्ष्टि ॥

---

१ मृतकल्पः प्रहारार्त्तो जीवन्नपिविशुद्ध्यति ॥

भा०। ब्रह्महत्यारे का पाप अन्नखानेवालेको औ व्यभिचारिणी स्त्रीकापाप पतिको शिष्यकापाप गुरुको यजमानकापाप यज्ञकरानेवाले को और चौर का पाप राजाको लगताहै इससे राजा चौरको अवश्यदंडदे॥

ता०। ब्रह्महत्यारा अन्नके भक्षणकरनेवाले में अपने पापको समर्पण करता है अर्थात् जो पाप ब्रह्महत्यारे को होताहै वही उसके अन्नभक्षणकरनेवाले को होताहै यह नहींसमझना कि ब्रह्महत्यारे का पाप नष्ट होताहै और व्यभिचार करनेवाली स्त्री अपने पतिको पापका समर्पण करती है—यदि पति उस जारकी क्षमाकरै तो पतिभी उसी पापको प्राप्तहोताहै जिसकी वह स्त्री होतीहै और शिष्य अपने गुरुमें अपने पापको अर्प्पण करताहै यदि गुरु शिष्य के सन्ध्यक और अग्निहोत्र आदि न करनेको सहताहो और याज्य यज्ञ करता हुआ यजमान किसी विधिको त्यागदे और यज्ञ करानेवाला उसकी क्षमाकरै अर्थात् शिक्षा न दे तो याजक में अपने पापको समर्प्पण करताहै और चौर अपने पापको राजाको समर्प्पण करता है यदि राजा चोर को छोड़दे और दण्ड न दे ३१७॥

राजनिर्धूतदण्डास्तुकृत्वापापानिमानवाः।निर्मलाःस्वर्गमायान्तिसन्तःसुकृतिनोयथा३१८॥

प०। राजनिर्धूतदंडाः तु कृत्वा पापानि मानवाः निर्मलाः स्वर्गं आयांति सन्तः सुकृतिनः यथा॥

यो०। पापानि कृत्वा राजनिर्धूतदंडाः मानवाः यथा सुकृतिनः सन्तः तथा निर्मलाः स्वर्गं आयांति॥

भा०। ता०। किया है पाप जिन्होंने ऐसे मनुष्य राजाके दण्ड देनेपर निर्मल हुये इस प्रकार स्वर्ग में जातेहैं जैसे पुण्यात्मासाधु इससे दण्डभी प्रायश्चित्त के समान पापका नाशकारक होता है ३१८॥

यस्तुरज्जुंघटंकूपाद्धरेद्भिद्याच्चयःप्रपाम्।सदण्डंप्राप्नुयान्माषंतच्चतस्मिन्समाहरेत्३१९

प०। यः तु रज्जुं घटं कूपात् हरेत् भिद्यात् च यः प्रपां सः दण्डं प्राप्नुयात् माषं तत् च तस्मिन् समाहरेत्॥

यो०। यः पुरुषः कूपात् रज्जुं वा घटंहरेत्—चपुनः यः प्रपां भिद्यात् सः माषं दण्डं प्राप्नुयात् चपुनः तत् (रज्ज्वादिकं) तस्मिन् (कूपे) समाहरेत् (समर्पयेत्)॥

भा०। ता०। जो मनुष्य जलभरने को कूपपर रक्खीहुई रज्जु और घटको चुरावै अथवा प्याऊ को नष्टकरदे तो वे दोनों मनुष्य एक मासे सोनेके दण्डको प्राप्त होतेहैं—क्योंकि इसे कात्यायन के वचनसे सोने का मापाही शास्त्रोक्त दण्ड प्रतीत होता है और उस रज्जु और घट को कुयेंके ऊपर समर्प्पण करिदे ३१९॥

धान्यंदशभ्यःकुम्भेभ्योहरतोऽभ्यधिकंवधः।शेषेप्येकादशगुणंदाप्यस्तस्यचतद्धनम्३२०

प०। धान्यं दशभ्यः कुम्भेभ्यः हरतः अभ्यधिकं वधः शेषे अपि एकादशगुणं दाप्यः तस्य च तत् धनम्॥

यो०। दशभ्यः कुम्भेभ्यः अभ्यधिकं धान्यं हरतः पुरुषस्य राज्ञा वधः कर्तव्यः शेषे (दशपर्यन्ते) हृते सति एकादशगुणं चपुनः तस्य अन्नस्वामिनः तत् धनं राज्ञा दाप्यः (दण्डनीयः)॥

१ यन्निर्दिष्टंतु सौवर्णं माषं तत्र प्रकल्पयेत्॥

भा० । ता० । जो मनुष्य दश कुम्भों (घट) से अधिक चोरी करै उस मनुष्यका राजा वधकरदे अर्थात् चौर अन्नके स्वामी इनके गुणकी अपेक्षासे ताडन, अंगछेदन और मारणका दण्डराजादे और यदि एकसे लेकर दश पर्यंत कुम्भ अन्नकी चोरी करै और उसको छिपावै तो ग्यारहगुणा दण्ड राजाले और अन्नके स्वामी का धन चौरसे दिलादे—और दोसौपल अन्नको द्रोण कहतेहैं और बीस द्रोण का एक कुम्भ होताहै ३२० ॥

तथाधरिममेयानांशतादभ्यधिकेवधः । सुवर्णरजतादीनामुत्तमानांचवाससाम् ३२१ ॥

प० । तथा धरिममेयानां शतात् अभ्यधिके वधः सुवर्णरजतादीनां उत्तमानां च वाससाम् ॥

यो० । तथा धरिममेयानां अन्नानां, सुवर्णरजतादीनां, चपुनः उत्तमानां वाससां, शतात् अभ्यधिके हृते सति राज्ञावधः कर्तव्यः ॥

भा० । ता० । तिसी प्रकार तुला (तकडी) में तोलने योग्य अन्नों और सुवर्ण, चांदी, और उत्तम वस्त्र, पशु आदिकोंको शत (सौ) से अधिक की चोरी करै तो राजा चौर को मारिदे यहांपरभी अधिक और न्यून दण्डका विचार देश,काल,चौरकी जाति,और गुणकी अपेक्षासे राजाकरले ३२१ ॥

पञ्चाशतस्त्वभ्यधिकेहस्तच्छेदनमिष्यते।शेषेत्वेकादशगुणंमूल्याद्दण्डंप्रकल्पयेत् ३२२

प० । पंचाशतः तु अभ्यधिके हस्तच्छेदनं इष्यते शेषे तु एकादशगुणं मूल्यात् दण्डं प्रकल्पयेत् ॥

यो० । पञ्चाशतः अभ्यधिके हृते सति हस्तच्छेदनं इष्यते शेषे (पञ्चाशदन्तरे) हृते सति मूल्यात् दशगुणं दण्डं प्रकल्पयेत् ॥

भा० । ता० । यदि पूर्वोक्त अन्न और सुवर्ण आदि की पचास से अधिक चोरी करै तो राजा चौर के हाथों को छेदन करिदे यदि पचासके भीतरही चुरावै तो मोल से ग्यारहगुणा दण्ड राजा चौर को दे ३२२ ॥

पुरुषाणांकुलीनानांनारीणांचविशेषतः । मुख्यानांचैवरत्नानांहरणेवधमर्हति ३२३ ॥

प० । पुरुषाणां कुलीनानां नारीणां च विशेषतः मुख्यानां च एव रत्नानां हरणे वधं अर्हति ॥

यो० । कुलीनानां पुरुषाणां चपुनः विशेषतः नारीणां चपुनः मुख्यानां रत्नानां हरणेसति चोरः वधं अर्हति ॥

भा० । ता० । यदि चौर अच्छे कुलके मनुष्यों की और विशेष कर स्त्रियों की और उत्तम २ रत्नों (वज्र वैडूर्य आदि) की चोरी करै तो राजा चौर को मार दे ३२३ ॥

महापशूनांहरणेशस्त्राणामौषधस्यच । कालमासाद्यकार्यंचदण्डंराजाप्रकल्पयेत् ३२४ ॥

प० । महापशूनां हरणे शस्त्राणां औषधस्य च कालं आसाद्य कार्यं च दण्डं राजा प्रकल्पयेत् ॥

यो० । महापशूनां हरणे शस्त्राणां चपुनः औषधस्य कालं चपुनः कार्यं आसाद्य राजा दण्डं प्रकल्पयेत् ॥

भा० । ता० । हाथी, अश्व, गौ, भैंस आदि बडे २ पशु और खड्ग आदि शस्त्र और घृत आदि औषध इनकी जो चोरी करै उसको दुर्भिक्ष आदि काल के अनुसार न्यून वा अधिक दण्ड राजा दे ३२४ ॥

गोषुब्राह्मणसंस्थासुछुरिकायाश्चभेदने । पशूनांहरणेचैवसद्यःकार्योऽर्धपादिकः ३२५ ॥

प०। गोषु ब्राह्मणसंस्थासु छुरिकायाः च भेदने पशूनां हरणे च एवं सद्यः कार्यः अर्धपादिकः॥

यो०। ब्राह्मणसंस्थासु गोषु हृतासु चपुनः गवां छुरिकायाः भेदने सति चपुनः पशूनां हरणे सति राज्ञा सद्यः अर्धपादिकः दण्डः कार्यः॥

भा०। ता०। ब्राह्मण की गौओं के हरने और जोतने के लिये बन्ध्या होने पर छुरी से नाकके छेदन में और बकरी, भेड़ आदि पशुओं के यज्ञके लिये चोरी करने में आधा पाद दण्ड दे अर्थात् छेदन के दण्डसे आधा दण्ड दे ३२५॥

सूत्रकार्पासकिण्वानांगोमयस्यगुडस्यच।दध्नःक्षीरस्यतक्रस्यपानीयस्यतृणस्यच३२६
वेणुवैदलभाण्डानांलवणानांतथैवच। मृन्मयानांचहरणेमृदोभस्मनएवच ३२७॥
मत्स्यानांपक्षिणांचैवतैलस्यचघृतस्यच।मांसस्यमधुनश्चैवयच्चान्यत्पशुसंभवम्३२८॥
अन्येषांचैवमादीनामद्यानांमोदकस्यच।पक्वान्नानांचसर्वेषांतन्मूल्याद्द्विगुणोदमः३२९

प०। सूत्रकार्पासकिण्वानां गोमयस्य गुडस्य च दध्नः क्षीरस्य तक्रस्य पानीयस्य तृणस्य च॥

प०। वेणुवैदलभाण्डानां लवणानांतथा एवं च मृन्मयानां च हरणे मृदः भस्मनः एवं च॥

प०। मत्स्यानां पक्षिणां च एवं तैलस्य च घृतस्य च मांसस्य मधुनः च एवं यत् च अन्यत् पशुसम्भवम्॥

प०। अन्येषां च एवमादीनां अद्यानां मोदकस्य च पक्वान्नानां च सर्वेषां तन्मूल्यात् द्विगुणः दमः॥

यो०। सूत्रकार्पासकिण्वानां— गोमयस्य गुडस्य —दध्नः क्षीरस्य तक्रस्य पानीयस्य— चपुनः तृणस्य—वेणु वैदलभाण्डानां लवणानां चपुनःमृन्मयानां—मृदः चपुन. भस्मनः मत्स्यानां—पक्षिणां तैलस्य—घृतस्य—मांसस्य—मधुन. चपुनः यत अन्यत पशुसम्भवं तस्य चपुनः एवमादीनां अन्येषां अद्यानां चपुनः मोदकस्य चपुनः सर्वेषां पक्वान्नानां हरणे सति राज्ञा तन्मूल्यात् द्विगुणः दमः कार्यः॥

भा०। ता०। ऊन आदि का सूत्र और कपास और किण्व (मदिराकाबीज) गोमय, गुड़, दही दूध, मठा, जल और तृण और बांस के दलसे बने हुये पात्र और लवण और मट्टी के पात्र और मट्टी, भस्म, और मत्स्य, पक्षी, तैल, घी, मांस, मधु (सहत) और पशुसे पैदा हुये अन्य (मृगचर्म सींग ढाल आदि) और एसेही तुच्छ मनसिल आदि पदार्थ और पक्वान्न और मोदक इन सम्पूर्ण वस्तुओंकी जो चोरीकरै उसको जितनेकी जो वस्तु हो उनसे दूना दण्ड राजा दे ३२६। ३२९॥

पुष्पेषुहरितेधान्येगुल्मवल्लीनगेषुच।अन्येष्वपरिपूतेषुदण्डःस्यात्पञ्चकृष्णलः३३०॥

प०। पुष्पेषु हरिते धान्ये गुल्मवल्लीनगेषु च अन्येषु अपरिपूतेषु दंडः स्यात् पंचकृष्णलः॥

यो०। पुष्पेषु हरिते धान्ये गुल्मवल्लीनगेषु चपुनः अन्येषु अपरिपूतेषु हृतेषु पञ्चकृष्णलः दण्डस्स्यात्॥

भा०। ता०। पुष्प—और क्षेत्र में खड़ाहुआ हरा अन्न—और गुल्म—लता—वृक्ष और अन्य जो अपरिपूत (जिनको समर्थ पुरुष भार बांधकर लेजासके) इन सब की चोरी में चोर के देश और काल के अनुसार चांदी वा सोने के पांच कृष्णल (मासाभर) दण्ड राजा दे ३३०॥

परिपूतेषुधान्येषुशाकमूलफलेषुच। निरन्वयेशतंदण्डःसान्वयेऽर्द्धशतंदमः ३३१॥

प०। परिपूतेषु धान्येषु शाकमूलफलेषु च निरन्वये शतं दण्डः सान्वये अर्द्धशतं दमः॥

यो०। परिपूतेषु धान्येषु चपुनः शाकमूलफलेषु हृतेषु सत्सु निरन्वये शतं दण्डः सान्वये अर्द्धशतं दमः राज्ञा देयः॥

भा० । ता० । यदि परिपूत रक्षा किये हुये वृक्ष और अन्न शाक मूल फल इनको कोई ऐसा पुरुष चुरावे जिसके संग स्वामी का कोई सम्बन्ध न होय (जैसे एक ग्राम में बसना आदि) तो उसको सौ पण दण्ड राजा दे और यदि स्वामी के संग कोई सम्बन्ध होय तो पचास पण दण्ड दे यह दण्ड उस अन्न पर है जो स्थल (खलियाना वा पैर) में रक्खाहो यदि घरमें रक्खे हुये अन्नको चुरावे तो पूर्वोक्त से ग्यारहगुणा दण्ड होता है ३३१ ॥

स्यात्साहसंत्वन्वयवत्प्रसभंकर्मयत्कृतम् । निरन्वयंभवेत्स्तेयंहृत्वापव्ययतेचयत् ३३२ ॥

प० । स्यात् साहसं तु अन्वयवत् प्रसभं कर्म यत् कृतं निरन्वयं भवेत् स्तेयं हृत्वा अपव्ययते च यत् ॥

यो० । यत्कर्म प्रसभं कृतं तत अन्वयवत् चेत भवेत् साहसं स्यात् निरन्वयं चेत् यत् हृत्वा अपव्ययते तत्कर्म स्तेयं भवेत् ॥

भा० । ता० । जो पूर्वोक्त अन्न आदि की चोरी रूप कर्म द्रव्यके स्वामी के समक्ष (सामने) बल से किया जाय उसे साहस कहते हैं क्योंकि सह नाम बल का है उस से जो किया जाय उसे साहस कहते हैं इस में राजा चोरी का दण्ड न दे और जो द्रव्य स्वामी के परोक्ष (पीछे) हरा जाय उसे और जिसको चुराकर अपह्नव (मुकरना) किया जाय उसको स्तेय (चोरी) कहते हैं ३३२ ॥

यस्त्वेतान्युपक्लृप्तानिद्रव्याणिस्तेनयेन्नरः । तमाद्यंदण्डयेद्राजायश्चाग्निंचोरयेद्गृहात् ३३३

प० । यः तु एतानि उपक्लृप्तानि द्रव्याणि स्तेनयेत् नरः तं आद्यं दण्डयेत् राजा यः च अग्निं चोरयेत् गृहात् ॥

यो० । यः नरः उपक्लृप्तानि एतानि द्रव्याणि स्तेनयेत् च पुनः यः गृहात् अग्निं चोरयेत् तं राजा आद्यं साहसं दण्डयेत् ॥

भा० । अपने वर्तने के लिये स्वामीने रक्खेहुये सूत आदि द्रव्योंको किसी के घरमेंसे होमकी अग्निको जो चुरावे उसको राजा प्रथम साहस दंडदे ॥

ता० । जो इन पूर्वोक्त सूत आदि द्रव्योंको चुरावे ये द्रव्य स्वामीने अपने भोगने के लिये स्वच्छ कर २ रक्खेहों और जो मनुष्य किसी के घरमें से आहवनीय आदि तीनों अग्नियोंको चुरावे इन दोनों मनुष्योंको राजा प्रथम साहस दंडदे और आधान अग्निकी उपेक्षा करनेवाले स्वामी को भी किंचित् दंडदे गोविंदराजने तो लौकिक अग्निके चुराने वाले को यह दंड कहा है सो ठीक नहीं क्योंकि थोडे अपराधपर अधिक दंड अयुक्त है ३३३ ॥

येनयेनयथाङ्गेनस्तेनोनृषुविचेष्टते । तत्तदेवहरेत्तस्यप्रत्यादेशायपार्थिवः ३३४ ॥

प० । येन येन यथा अङ्गेन स्तेनः नृषु विचेष्टते तत् तत् एव हरेत् तस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः ॥

यो० । येन येन अङ्गेन स्तेनः नृषु यथा विचेष्टते तस्य तत् तत् एव अङ्गं प्रत्यादेशाय पार्थिवः हरेत् ॥

भा० । ता० । जिस २ अंगसे मनुष्यों के धनचुरानेमें जिस २ प्रकार से चौर विरुद्ध (धनकाचुराना) की चेष्टाकरताहै उसी २ अंगका उसकी चोरी के पापसे निवृत्ति के लिये राजा छेदन करदे और यह अंगका छेदन धन और स्वामीकी बडाई की अपेक्षा से करे ३३४ ॥

पिताचार्यःसुहन्माताभार्यापुत्रःपुरोहितः।नादण्ड्योनामराज्ञोऽस्तियःस्वधर्मेनतिष्ठति ३३५

प०। पिता आचार्यः सुहृत् माता भार्या पुत्रः पुरोहितः न अदंड्यः नाम राज्ञः अस्ति यः स्वधर्मे न तिष्ठति ॥

यो०। यः पिता—आचार्यः—सुहृत्—माता—भार्या—पुत्रः—पुरोहितः— स्वधर्मे न तिष्ठति सः राज्ञः अदंड्यः नाम न अस्ति ॥

भा०। ता०। यदि पिता आचार्य मित्र-माता-स्त्री—पुत्र—और पुरोहित—इनमेंसे कोई अपनेधर्म पर न टिकै तो यह बात प्रसिद्ध है कि राजाको अदंड्य (दंडदेने के अयोग्य) कोई नहीं हैं अर्थात् अपराधकरने पर इनको भी राजा दंडदे ३३५॥

कार्षापणंभवेद्दण्ड्योयत्रान्यःप्राकृतोजनः।तत्रराजाभवेद्दण्ड्यःसहस्रमितिधारणा ३३६ ॥

प०। कार्षापणं भवेत् दंड्यः यत्र अन्यः प्राकृतः जनः तत्र राजा भवेत् दंड्यः सहस्रं इति धारणा ॥

यो०। यत्र अपराधे अन्यः प्राकृतः जनः तत्र कार्षापणं दंडः भवेत् तत्र अपराधे राजा सहस्रं पणं दंड्यः भवेत् इति धारणा (निश्चयः) अस्ति ॥

भा०। ता०। जिस अपराधके करने पर राजासे अन्य प्राकृत मनुष्यको एक कार्षापण दंडहोता है उसी अपराधके करने पर राजाको सहस्र पण दंडहोताहै यही शास्त्रका निश्चयहै और राजा उस अपने दंडके द्रव्यको जलमें गेरदे अथवा ब्राह्मणोंको देदे क्योंकि आगे मनुजीही वरुणको दंड का स्वामी कहेंगे ३३६ ॥

अष्टापाद्यंतुशूद्रस्यस्तेयेभवतिकिल्बिषम्।षोडशैवतुवैश्यस्यद्वात्रिंशत्क्षत्रियस्यच ३३७ ॥
ब्राह्मणस्यचतुःषष्टिःपूर्णंवापिशतंभवेत्। द्विगुणावाचतुःषष्टिस्तद्दोषगुणविद्धिसः ३३८ ॥

प०। अष्टापाद्यं तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्बिषं षोडश एव तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत् क्षत्रियस्य च ॥

प०। ब्राह्मणस्य चतुःषष्टिः पूर्णं वा अपि शतं भवेत् द्विगुणा वा चतुःषष्टिः तत्दोषगुणवित् हि सः॥

यो०। हि (यतः) सः तद्दोषगुणवित् अतः शूद्रस्य स्तेये अष्टापाद्यं (अष्टगुणं) वैश्यस्य षोडश एव चपुनः क्षत्रियस्य द्वात्रिंशत् किल्बिषं भवति ब्राह्मणस्य चतुःषष्टिः वा पूर्णशतं वा द्विगुणा चतुःषष्टिः किल्बिषं भवेत् ॥

भा०। ता०। जिस पदार्थ की चोरी में जो दंड कहा है वह चोरीके गुण दोषोंको जाननेवाले मनुष्योंको इसप्रकार राजाको देना चाहिये कि शूद्रको आठगुणा वैश्यको सोलहगुणा क्षत्रियकोबत्तीसगुणा और ब्राह्मणको चौसठगुणा वा सौगुणा अथवा एकसौ अट्ठाईसगुणा दंडहोताहै ब्राह्मणको यह तीनप्रकारका दंड ब्राह्मणके गुणोंकी अपेक्षासे देना चाहिये क्योंकि सबसे अधिक गुण दोषके ज्ञाता ब्राह्मणही हैं ३३७। ३३८ ॥

वानस्पत्यंमूलफलंदार्वग्न्यर्थंतथैवच।तृणंचगोभ्योग्रासार्थमस्तेयंमनुरब्रवीत् ३३९ ॥

प०। वानस्पत्यं मूलफलं दारु अग्न्यर्थं तथा एव च तृणं च गोभ्यः ग्रासार्थं अस्तेयं मनुः अब्रवीत्॥

यो०। वानस्पत्यं—मूलफलं— चपुनः तथैव अग्न्यर्थं दारु चपुनः गोभ्यः ग्रासार्थं तृणं मनुः अस्तेयं अब्रवीत् ॥

भा०। वनस्पति के फूल, मूल, फल—होमके लिये काठ गौओंके लिये तृण इनको मनुजी ने अस्तेय कहा है अर्थात् इनकी चोरी चोरी नहीं है ॥

ता० । जिनकी वाड आदि से अथवा मनुष्यसे रोक वा रक्षा नकर रक्खीहो ऐसी वनस्पतियोंके पुष्प मूल–और फलोंको और होमके लिये काष्ठको और गौओं के भक्षणकेलिये तृणों (घास आदि) को मनुजी ने अस्तेय कहा है अर्थात् इनको विना पूछे भी लेने से न कोई दंड है न कुछ अधर्म है क्योंकि इस गौतम ऋषी के वचनसे यह प्रतीतहोता है कि विना रोकीहुई वनस्पतियों के फूलों को और विना वाडकिये फलोंको इसप्रकार लेले जैसे अपनोंको लेताहो ३३९ ॥

योऽदत्तादायिनोहस्ताल्लिप्सेतब्राह्मणोधनम् । याजनाध्यापनेनापियथास्तेनस्तथैवसः ३४०

प० । यः अदत्तादायिनः हस्तात् लिप्सेत ब्राह्मणः धनं याजनाध्यापनेन अपि यथा स्तेनः तथा एव सः ॥

यो० । यः ब्राह्मणः याजनाध्यापनेन अपि अदत्तादायिनः हस्तात् धनं लिप्सेत सः ब्राह्मणः यथा स्तेनः तथैव ज्ञेयः॥

भा० । ता० । जो ब्राह्मण यज्ञकराने और पढ़ाने से भी चोरके हाथसे धनलेनेकी इच्छाकरै उस ब्राह्मणको भी वैसाही समझना चाहिये जैसा वह चोर है इससे इस ब्राह्मण को भी चोरके समान दंडहोताहै परंतु यदि ब्राह्मणके उस धनका यह निश्चय होना चाहिये कि यह धन चोरीकाहै ३४० ॥

द्विजोऽध्वगःक्षीणवृत्तिर्द्वाविक्षूद्वेचमूलके । आददानःपरक्षेत्रान्नदण्डंदातुमर्हति ३४१ ॥

प० । द्विजः अध्वगः क्षीणवृत्तिः द्वौ इक्षू द्वे च मूलके आददानः परक्षेत्रात् न दंडं दातुं अर्हति ॥

यो० । परक्षेत्रात् द्वौ इक्षू चपुनः द्वे मूलके आददानः क्षीणवृत्तिः अध्वगः द्विजः दंडं दातुं न अर्हति ॥

भा० । ता० । जो मार्ग में चलनेवाला क्षीणवृत्ति (जिसके पास मार्ग का खर्च न होय) ऐसा द्विज दूसरे के खेतमें से दो गांडे अथवा दो मूली लेले तो दंडदेने योग्य नहीं होताहै ३४१ ॥

असंधितानांसंधातासंधितानांचमोक्षकः । दासाश्वरथहर्ताचप्राप्तःस्याच्चौरकिल्बिषम् ३४२

प० । असंधितानां संधाता संधितानां च मोक्षकः दासाश्वरथहर्ता च प्राप्तः स्यात् चौरकिल्बिषम् ॥

यो० । असंधितानां संधाता चपुनः संधितानां मोक्षकः चपुनः दासाश्वरथहर्ता पुरुषः चौरकिल्बिषं प्राप्तः स्यात् ॥

भा० । ता० । किसी के विना बंधेहुये पशुओंको जो संधानकरै (बांधले) और जो संधान किये हुयोंको खोलिदे और दास–घोड़े–रथ इनकी जो चोरीकरै वह मनुष्य चोरके दंडको प्राप्तहोताहै वह दंड लघु और गुरु अपराधके अनुसार अंगका छेदन, मारन, धनका लेना आदि समझना ३४२ ॥

अनेनविधिनाराजाकुर्वाणःस्तेननिग्रहम् । यशोऽस्मिन्प्राप्नुयाल्लोकेप्रेत्यचानुत्तमंसुखम् ३४३

प० । अनेन विधिना राजा कुर्वाणः स्तेननिग्रहं यशः अस्मिन् प्राप्नुयात् लोके प्रेत्य च अनुत्तमं सुखम् ॥

यो० । अनेन विधिना स्तेननिग्रहं कुर्वाणः राजा अस्मिन् लोके यशः चपुनः प्रेत्य अनुत्तमं सुखं प्राप्नुयात् ॥

भा० । ता० । इसविधिसे चोरोंको दंडदेताहुआ राजा इसलोक में यशको और परलोकमें उत्तम सुखको प्राप्तहोता है ३४३ ॥

ऐन्द्रंस्थानमभिप्रेप्सुर्यशश्चाक्षयमव्ययम् । नोपेक्षेतक्षणमपिराजासाहसिकंनरम् ३४४ ॥

प० । ऐन्द्रं स्थानं अभिप्रेप्सुः यशः च अक्षयं अव्ययं न उपेक्षेत क्षणं अपि राजा साहसिकं नरम् ॥

यो० । ऐन्द्रं स्थानं चपुनः अक्षयं अव्ययं यशः अभिप्रेप्सुः राजा क्षणं अपि साहसिकं नरं न उपेक्षेत ॥

भा० । ता० । अब साहसिक का दंड वर्णन करतेहैं कि इन्द्र के स्थानको (सबका अधिपति बनना) और जो कभी नष्ट और न्यूननहों ऐसे यशकी वाञ्छा करताहुआ राजा क्षणमात्र भी साहसिक मनुष्यकी उपेक्षा न करै अर्थात् न छोड़े ३४४ ॥

वाग्दुष्टात्तस्कराच्चैवदण्डेनैवचहिंसतः । साहसस्यनरःकर्ताविज्ञेयःपापकृत्तमः ३४५ ॥

प० । वाग्दुष्टात् तस्करात् च एव दंडेन एव च हिंसतः साहसस्य नरः कर्ता विज्ञेयः पापकृत्तमः॥

यो० । वाग्दुष्टात् तस्करात् चपुनः दंडेन एवहिंसतः (सकासात्) साहसस्य कर्ता नरः पापकृत्तमः विज्ञेयः ॥

भा० । ता० । दुष्टवचन कहनेवाले और चोर और दंडसे हिंसाकरनेवाले मनुष्यकी अपेक्षा साहस करनेवाला मनुष्य अत्यंत पापकारी जानना ३४५ ॥

साहसेवर्तमानंतुयोमर्षयतिपार्थिवः । सविनाशंव्रजत्याशुविद्वेषंचाधिगच्छति ३४६ ॥

प० । साहसे वर्तमानं तु यः मर्षयति पार्थिवः सः विनाशं व्रजति आशु विद्वेषं च अधिगच्छति ॥

यो० । यः पार्थिवः साहसेवर्तमानं नरं मर्षयति सः नरः आशु विनाशं व्रजति चपुनः विद्वेषं अधिगच्छति ॥

भा० । ता० । जो राजा साहसकरतेहुये मनुष्यपर क्षमा करताहै अर्थात् दंड नहीं देता वह राजा शीघ्रही पापियोंकी उपेक्षासे नष्टहोताहै और अपनी प्रजाके मनुष्योंके संग वैरको प्राप्त होताहै क्योंकि धन आदि के नाशसे प्रजा उस राजा के संग वैर मानने लगती है ३४६ ॥

नमित्रकारणाद्राजाविपुलाद्वाधनागमात् । समुत्सृजेत्साहसिकान्सर्वभूतभयावहान् ३४७ ॥

प० । न मित्रकारणात् राजा विपुलात् वा धनागमात् समुत्सृजेत् साहसिकान् सर्वभूतभयावहान्

यो० । मित्रकारणात् वा विपुलात् धनागमात् सर्वभूतभयावहान् साहसिकान् नरान् राजा न समुत्सृजेत् ॥

भा० । ता० । किसी मित्रके कहने से अथवा बहुत धनकी प्राप्तिसे भी संपूर्ण प्राणियोंको भयदेनेवाले साहसिक मनुष्योंको राजा न छोड़े अर्थात् अवश्य दंडदे ३४७ ॥

शस्त्रंद्विजातिभिर्ग्राह्यंधर्मोयत्रोपरुध्यते । द्विजातीनांचवर्णानांविप्लवेकालकारिते ३४८ ॥
आत्मनश्चपरित्राणेदक्षिणानांचसंगरे । स्त्रीविप्राभ्युपपत्तौचघ्नन्धर्मेणनदुष्यति ३४९ ॥

प० । शस्त्रं द्विजातिभिः ग्राह्यं धर्मः यत्र उपरुध्यते द्विजातीनां च वर्णानां विप्लवे कालकारिते ॥

प० । आत्मनः च परित्राणे दक्षिणानां च संगरे स्त्रीविप्राभ्युपपत्तौ च घ्नन् धर्मेण न दुष्यति ॥

यो० । यत्र द्विजातीनां वर्णानां धर्मः उपरुध्यते तत्र कालकारिते विप्लवे चपुनः आत्मनः परित्राणे चपुनः संगरे स्त्रीविप्राभ्युपपत्तौ सत्यां द्विजातिभिः शस्त्रं ग्राह्यं यतः धर्मेणघ्नन् न दुष्यति ॥

भा० । ता० । जिससमय द्विज और चारोंवर्णोंके धर्म का अवरोधहोय और समय का कियाहुआ विप्लवहो अर्थात् राजा के नहोने से शत्रु राजाकी सेना अपने देश में आयजाय अथवा स्त्रीके निमित्त संग्रामहोय और अपनी रक्षा के लिये और दक्षिणाओं के लिये युद्धहोय और स्त्री, ब्राह्मण, इनको कोई आपत्ति आनकर पड़े तो तीनों द्विजाति भी शस्त्रोंको ग्रहणकरैं क्योंकि धर्म के युद्धसे अन्योंको मारताहुआ द्विज दोषको प्राप्त नहीं होता ३४८ । ३४९ ॥

गुरुंवाबालवृद्धौवाब्राह्मणंवाबहुश्रुतम् । आततायिनमायान्तंहन्यादेवाविचारयन् ३५०

प० । गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतं आततायिनं आयांतं हन्यात् एवं अविचारयन्

यो० । गुरुं वा बालवृद्धौ वा बहुश्रुतं ब्राह्मणं आयांतं आततायिनं अविचारयन् सन् हन्यात् एव ॥

भा० । गुरु, बालक, वृद्ध, धन विद्यासे संपन्न ब्राह्मण सन्मुख आतेहुये इतने आततायियों के मारने में विचार न करै अर्थात् अवश्य मारिदे ॥

ता० । गुरु, बालक, वृद्ध, और बहुश्रुत (अधिक विद्यावाला) ब्राह्मण सन्मुख आतेहुये इन आततायियों को भी विचारको छोड़कर मारिदे अर्थात् ये वित्त (धन) विद्यासे उत्कृष्टहों और पलायन (भाजनों) से अपनेको बचा भी न सकें तो भी इनको नष्टकरिदे क्योंकि उशना ऋषिने इस[1] वचन से यह कहा है शस्त्रधारी आततायीको मारकर दोष नहीं होता और कात्यायन ने भी भृगुऋषि की यह संमति लिखी है कि[2] तप, वेद, और उत्तम कुल में जन्म आदि से श्रेष्ठ भी आततायी के मारने में पाप नहीं होता क्योंकि भृगुऋषी ने नीचका वधही कहा है और मेधातिथि गोविंदराज तो यह कहतेहैं कि यह पहिले श्लोककाही अनुवाद है कि गुरु आदि आततायियोंको भी नष्टकरिदे तो अन्य आततायियों को क्यों नहीं नष्ट करै ३५० ॥

नाततायिवधेदोषोहन्तुर्भवतिकश्चन। प्रकाशंवाऽप्रकाशंवामन्युस्तंमन्युमृच्छति ३५१

प० । न आततायिवधे दोषः हंतुः भवति कश्चन प्रकाशं वा अप्रकाशं वा मन्युः तं मन्युं ऋच्छति

यो० । प्रकाशं वा अप्रकाशं आततायिवधे हंतुः कश्चन दोषः न भवति तं मन्युं मन्युः ऋच्छति ॥

भा० । ता० । बहुत मनुष्यों के सन्मुख अथवा एकांत में आततायी के मारने में मारनेवालेको कोई दोष नहीं होता क्योंकि मारनेवाले मनुष्यका मन्यु (क्रोधका देवता) मरनेवाले के क्रोध को नष्टकरताहै अर्थात् क्रोध अपराधी है और क्रोधही मारनेवाला है और उक्त साहसकरनेवाले मनुष्य को अपराध के अनुसार मारना (अंगका छेदन धनका छीनना आदि दंडदेने) ३५१ ॥

परदाराभिमर्शेषुप्रवृत्तान्नृन्महीपतिः । उद्वेजनकरैर्दण्डैश्छिन्नयित्वाप्रवासयेत् ३५२ ॥

प० । परदाराभिमर्शेषु प्रवृत्तान् नॄन् महीपतिः उद्वेजनकरैः दंडैः छिन्नयित्वा प्रवासयेत् ॥

यो० । महीपतिः परदाराभिमर्शेषु प्रवृत्तान्नॄन् उद्वेजनकरैः दंडैः छिन्नयित्वा प्रवासयेत् ॥

भा० । ता० । परस्त्री के संभोगमें प्रवृत्तहुये मनुष्योंको उद्वेजन (कंपाना) करनेवाले दंडोंसे नाक, होठ, आदि काटकर अपने देश से राजा निकास दे ३५२ ॥

तत्समुत्थोहिलोकस्यजायतेवर्णसंकरः । येनमूलहरोधर्मःसर्वनाशायकल्पते ३५३ ॥

प० । तत्समुत्थः हि लोकस्य जायते वर्णसंकरः येन मूलहरः अधर्मः सर्वनाशाय कल्पते ॥

यो० । हि (यतः) तत्समुत्थः वर्णसंकरः लोकस्य जायते येन मूलहरः अधर्मः सर्वनाशाय कल्पते ॥

भा० । ता० । क्योंकि पराई स्त्री के गमनसे जगत् में वर्णोंका संकर होजाता है और जिस वर्ण-

---

१ गृहीतशस्त्रमाततायिनं हत्वा न दोषः ॥
२ आततायिनिचोत्कृष्टे तपःस्वाध्यायजन्मतः । वधस्तत्रतुनैवस्यात् पापेहीनेवधोभृगुः ॥

संकर से जगत् के मूलका नष्टकरनेवाला अधर्म सब जगत् के नाशके लिये होजाता है अर्थात् शुद्ध स्त्रीवाले यजमानके मिलने पर यज्ञ नहीं होती और सूर्य को आहुति नहीं पहुंचती आहुति के न पहुंचने पर वृष्टि नहीं और वृष्टि के न होने से जगत् का नाश होजाता है इसमें यह वचन प्रमाण है ३५३ ॥

परस्यपत्न्यापुरुषःसंभाषांयोजयन्रहः। पूर्वमाक्षारितोदोषैःप्राप्नुयात्पूर्वसाहसम् ३५४ ॥

प० । परस्य पत्न्या पुरुषः सम्भाषां योजयन् रहः पूर्वं आक्षारितः दोषैः प्राप्नुयात् पूर्वसाहसम् ॥

यो० । पूर्वं दोषैः आक्षारितः पुरुषः परस्य पत्न्या सह संभाषां रहः योजयन् मनः पूर्वसाहसं दण्डं प्राप्नुयात् ॥

भा० । ता० । जो मनुष्य एकान्त में दूसरे मनुष्य की स्त्री के संग संभाषण करै और और वह स्त्री जगत् में निन्दा आदि से डर कर प्रार्थना अथवा कठोर वचन से उस मनुष्य को भिड़कदे अर्थात् उसके अनुकूल बात न करै तो उस मनुष्य को राजा प्रथम साहस दण्ड दे ३५४ ॥

यस्त्वनाक्षारितःपूर्वमभिभाषेतकारणात्। नदोषंप्राप्नुयात्किंचिन्नहितस्यव्यतिक्रमः ३५५ ॥

प० । यः तु अनाक्षारितः पूर्वं अभिभाषेत कारणात् न दोषं प्राप्नुयात् किंचित् न हि तस्य व्यतिक्रमः ॥

यो० । पूर्वं अनाक्षारितः यः कारणात् पर पत्न्या सह अभि भाषेत सः किंचित् दोषं न प्राप्नुयात् हि (यतः) तस्य व्यतिक्रमः न अस्ति ॥

भा० । ता० । जिस मनुष्य को बोलने से पहिले स्त्री प्रार्थना कठोर वचन आदि कहि कर मने न करै और किसी प्रयोजन के लिये अन्य की स्त्री के संग जो मनुष्य सबके सन्मुख संभाषण करै वह मनुष्य दण्ड देने योग्य और दोष का भागी नहीं होता क्योंकि उसका कोई अपराध नहीं ३५५ ॥

परस्त्रियंयोऽभिवदेत्तीर्थेऽरण्येवनेऽपिवा । नदीनांवापिसंभेदेससंग्रहणमाप्नुयात् ३५६ ॥

प० । परस्त्रियं यः अभिवदेत् तीर्थे अरण्ये वने अपि वा नदीनां वा अपि संभेदे सः संग्रहणं आप्नुयात् ॥

यो० । यः मनुष्यः तीर्थे अरण्ये वने वा नदीनां संभेदे परस्त्रियं अभिवदेत् सः नरः संग्रहणं आप्नुयात् ॥

भा० । ता० । जो मनुष्य किसी तीर्थ अथवा अरण्य और वन वा नदियों के संगम में पराई स्त्री के संग संभाषण करै अनाक्षारित (जिसकी प्रार्थना आदि न की हो) भी वह मनुष्य संग्रहण के दण्ड (सहस्र) पण को प्राप्त होता है क्योंकि जिस से भली प्रकार अन्य स्त्री का संभोग जाना जाय उसे संग्रहण कहते हैं ३५६ ॥

उपचारक्रियाकेलिःस्पर्शोभूषणवाससाम् । सहखट्वासनंचैवसर्वंसंग्रहणंस्मृतम् ३५७ ॥

प० । उपचारक्रिया केलिः स्पर्शः भूषणवाससाम् सहखट्वासनं च एव सर्वं संग्रहणं स्मृतम् ॥

यो० । उपचारक्रिया केलिः भूषणवाससाम् स्पर्शः चपुनः सह खट्वासनं एतत् सर्वं मन्वादिभिः संग्रहणं स्मृतम् ॥

भा० । ता० । उपचारकी क्रिया अर्थात् मालाका धारण और गन्धका लेपन और हँसना वा स्पर्श करना अथवा भूषण और वस्त्रों को छूना और एक खट्वापर बैठना यह सम्पूर्ण मन्वादिकों ने संग्रहण कहा है ३५७ ॥

---

१ अग्नौप्रास्ताहुतिः सम्यक् आदित्यमुपतिष्ठते । आदित्यात् जायतेवृष्टिः वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥

स्त्रियंस्पृशेददेशेयःस्पृष्टोवामर्षयेत्तया। परस्परस्यानुमतेस्सर्वंसंग्रहणंस्मृतम् ३५८ ॥

प० । स्त्रियं स्पृशेत् अदेशे यः स्पृष्टः वा मर्षयेत् तया परस्परस्य अनुमतेः सर्वं संग्रहणं स्मृतम् ॥

यो० । यः अदेशे (योन्यादौ) स्त्रियं स्पृशेत् वा तया सह मर्षयेत् परस्परस्य अनुमतेः एतत्सर्वं संग्रहणं स्मृतम् ॥

भा० । ता० । जो मनुष्य अन्य की स्त्री के स्तन वा जंघा आदि का स्पर्श करै अथवा जिस मनुष्य का अन्य की स्त्री वृषण आदिकोंका स्पर्श करै और वह मनुष्य सहिले तो इस परस्पर के अंगिकार होने पर भी यह सब मनु आदिकों ने संग्रहण कहा है ३५८ ॥

अब्राह्मणःसंग्रहणेप्राणान्तंदण्डमर्हति। चतुर्णामपिवर्णानांदारारक्ष्यतमाःसदा३५९॥

प० । अब्राह्मणः संग्रहणे प्राणांतं दण्डं अर्हति चतुर्णाम् अपि वर्णानां दाराः रक्ष्यतमाः सदा ॥

यो० । संग्रहणे अब्राह्मणः प्राणांतं दंडं अर्हति चतुर्णाम् अपि वर्णानां सदा दारा रक्ष्यतमाः भवन्ति ॥

भा० । ता० । संग्रहण करने में अब्राह्मण (शूद्र) प्राणान्तदण्ड (मृत्यु) को प्राप्त होता है क्योंकि चारों वर्णों को धन पुत्रादिक की अपेक्षा स्त्री सदैव रक्षा करने योग्य है यहां अब्राह्मणसे शूद्र लेते हैं क्योंकि क्षत्री वैश्य को इतना दण्ड नहीं हो सकता और यह दण्ड उस समय समझना ब्राह्मणी की इच्छा न होय और शूद्र बल से संग्रहण करै ३५९ ॥

भिक्षुकाबन्दिनश्चैवदीक्षिताःकारवस्तथा। संभाषणंसहस्त्रीभिःकुर्युरप्रतिवारिताः३६० ॥

प० । भिक्षुकाः वन्दिनः च एव दीक्षिताः कारवः तथा संभाषणं सह स्त्रीभिः कुर्युः अप्रतिवारिताः ॥

यो० । भिक्षुकाः चपुनः वन्दिनः दीक्षिताः एव तथा कारवः स्त्रीभिःसह संभाषणं अप्रतिवारिताः सन्तः कुर्युः ॥

भा० । ता० । भिक्षुक, बन्दीजन, दीक्षित, (जिनको यज्ञ करनेकेलिये दीक्षाकाउपदेश किया हो) सूपकारआदि कारीगर येसब पराई स्त्रियोंके संग सम्भाषणकरनेमें अनिवारितहैं अर्थात् इनकोमनेन करे ये संग्रहण के दण्डभागी नहीं हैं ३६० ॥

नसंभाषांपरस्त्रीभिःप्रतिषिद्धःसमाचरेत्। निषिद्धोभाषमाणस्तुसुवर्णंदण्डमर्हति ३६१ ॥

प० । न सम्भाषां परस्त्रीभिः प्रतिषिद्धः समाचरेत् निषिद्धः भाषमाणः तु सुवर्णं दण्डं अर्हति ॥

यो० । पतिना प्रतिषिद्धः पुरुषः परस्त्रीभिः संभाषां न समाचरेत् निषिद्धः भाषमाणस्तु सुवर्णं दण्डं अर्हति ॥

भा० । ता० स्त्री के पति ने मने किया हुआ मनुष्य अन्य की स्त्री के संग सम्भाषण न करै क्योंकि निषेध करने पर सम्भाषण करता हुआ मनुष्य सोलह मासे सुवर्ण के दण्ड को प्राप्त होता है ३६१ ॥

नैषचारणदारेषुविधिर्नात्मोपजीविषु। सज्जयन्तिहितेनारीर्निगूढाश्चारयन्तिच३६२॥

प० । न एषः चारणदारेषु विधिः न आत्मोपजीविषु सज्जयन्ति हि ते नारीः निगूढाः चारयन्ति च ॥

यो० । चारणदारेषु आत्मोपजीविषु एषः विधिः न अस्ति हि (यतः) निगूढाः ते नारीः सज्जयन्ति चपुनः चारयन्ति ॥

भा० । ता० । अन्य की स्त्रीकेसंग यह सम्भाषणका निषेध चारण(नट व गानेवाले) और आत्मो-

पजवी (भार्या से जो जीवें) इन में नहीं है क्योंकि ये सब अन्य पुरुषों को अपने घर में बुलाकर अपनी स्त्रियों का संग करते हैं और स्वयं आये हुये पुरुषों को अपने सन्मुख अपनी स्त्रियों से व्यवहार आप छिपकर कराते हैं यहां पर आत्मा पद से भार्या लीनी है क्योंकि स्त्री और पुत्रये दोनों अपना देह होते हैं ३६२ ॥

किंचिदेवतुदाप्यःस्यात्संभाषांताभिराचरन्। प्रैष्यासुचैकभक्तासुरहःप्रव्रजितासुच३६३॥

प०। किंचित् एव तु दाप्यः स्यात् सम्भाषां ताभिः आचरन् प्रैष्यासु च एकभक्तासु रहः प्रव्रजितासु च ॥

यो०। ताभिः सह चपुनः प्रैष्यासु एकभक्तासुचपुनः प्रव्रजितासु रहः संभाषांआचरन् पुरुषः किंचित् एवदाप्यःस्यात्॥

भा०। ता०। चारण आदिकों की स्त्रियों के संग और दासी और एक भक्त (बौद्धमतकी स्त्री) और ब्रह्मचारिणी इनके संग एकान्तमें सम्भाषण करतेहुये मनुष्यको यत्किञ्चित्तही दण्डदे३६३॥

योऽकामांदूषयेत्कन्यांससद्योवधमर्हति। सकामांदूषयंस्तुल्योनवधंप्राप्नुयान्नरः३६४॥

प०। यः अकामां दूषयेत् कन्यां सः सद्यः वधं अर्हति सकामां दूषयन् तुल्यः न वधं प्राप्नुयात् नरः॥

यो०। तुल्यः यः नरः अकामां कन्यां दूषयेत् सः सद्यः वधं अर्हति तुपुनः सकामां दूषयन् नरः वधं न प्राप्नुयात् ॥

भा०। ता०। जो सजातीय मनुष्य नहीं इच्छा करतीहुई किसी की कन्याके संग गमन करता है वह उसी समय मारने के योग्य होता है और इच्छा करती हुई कन्या को भोगता हुआ मनुष्य मारने के दण्ड को प्राप्त नहीं होता ३६४ ॥

कन्यांभजंतीमुत्कृष्टंनकिंचिदपिदापयेत्। जघन्यंसेवमानांतुसंयतांवासयेद्गृहे ३६५॥

प०। कन्यां भजन्तीं उत्कृष्टं न किञ्चित् अपि दापयेत् जघन्यं सेवमानां तु संयतां वासयेत् गृहे॥

यो०। उत्कृष्टं भजन्तीं कन्यां किञ्चित् अपि न दापयेत् तुपुनः जघन्यं सेवमानां गृहे संयतां वासयेत् ॥

भा०। ता०। जो कन्या उत्कृष्ट जातिकेपुरुष को भजतीहो उसकन्याको कुछभी दण्ड न दे और नीच वर्ण के मनुष्य को भजती हुई कन्याको तो रोक कर घर में बसावे अर्थात् उस कन्या का विवाह उत्कृष्ट जाति के उसी मनुष्य के संग करदे जिसको उसने भजा था ३६५ ॥

उत्तमांसेवमानस्तुजघन्योवधमर्हति। शुल्कंदद्यात्सेवमानःसमामिच्छेत्पितायदि ३६६

प०। उत्तमां सेवमानः तु जघन्यः वधं अर्हति शुल्कं दद्यात् सेवमानः समां इच्छेत् पिता यदि ॥

यो०। उत्तमां सेवमानः जघन्यः वधं अर्हति समां सेवमानः पुरुषः यदि पिता इच्छेत् तर्हि शुल्कं दद्यात् ॥

भा०। ता०। उत्तम वर्ण की कन्या को भोगता हुआ मनुष्य वधके योग्य होता है और सजातीय कन्या को भोगता हुआ मनुष्य यदि कन्या का पिता चाहै तो उसको शुल्क मोल देकर उस कन्या के संग विवाह करले ३६६ ॥

अभिषह्यतुयःकन्यांकुर्याद्दर्पेणमानवः। तस्याशुकर्त्येअंगुल्यौदण्डंचार्हतिषट्शतम्३६७॥

प०। अभिषह्य तु यः कन्यां कुर्यात् दर्पेण मानवः तस्य आशु कर्त्ये अंगुल्यौ दण्डं च अर्हति षट्शतम् ॥

यो० । यः मानवः दर्पेण अभिषद्य कन्यां कुर्यात् तस्य आशु अंगुल्यौ कर्त्ये भवतः चपुनः षट्शतं दण्डं अर्हति ॥

भा० । ता० । जो मनुष्य बलात्कार और अहंकार से किसी की कन्या की योनि में अंगुली डा-रकर दूषण लगाता है उसकी उसी समय अंगुलियों को राजा काट दे और छः सौ ६०० पण दण्ड दे ३६७ ॥

सकामांदूषयंस्तुल्योनांगुलिच्छेदमाप्नुयात् । द्विशतंतुदमंदाप्यःप्रसंगविनिवृत्तये ३६८॥

प० । सकामां दूषयन् तुल्यः न अंगुलिच्छेदं आप्नुयात् द्विशतं तु दमं दाप्यः प्रसंगविनिवृत्तये ॥

यो० । तुल्यः (सजातीयः) मनुष्यः सकामां दूषयनसन् अंगुलिच्छेदं न आप्नुयात्—किन्तु प्रसंगविनिवृत्तये किञ्चित् एव दमं दाप्यः (दण्ड्यः) स्यात् ॥

भा० । ता० । इच्छा करती हुई कन्या को दूषित करते हुये मनुष्य की अंगुलियोंका छेदनन करे किन्तु आगे को प्रसंग की निवृत्ति के लिये यत् किञ्चित्ही दण्ड दे ३६८ ॥

कन्यैवकन्यांयाकुर्यात्तस्याःस्याद्द्विशतोदमः।शुल्कंचद्विगुणंदद्याच्छिफाश्चैवाप्नुयाद्दश ३६९

प० । कन्या एव कन्यां या कुर्यात् तस्याः स्यात् द्विशतः दमः शुल्कं च द्विगुणं दद्यात् शिफाः च एव आप्नुयात् दश ॥

यो० । या कन्या एव अंगुलिप्रक्षेपेण कन्यां नाशयेत् तस्या. द्विशतः दमः स्यात् चपुनः द्विगुणं शुल्कं कन्या पितुः दद्यात् —चपुनः दशशिफाः (बेंत) आप्नुयात् ॥

भा० । ता० । जो कन्याही किसी की कन्या की योनि में अंगुली डालकर नष्ट करदे उस कन्या को दो सौ पण दण्ड राजादे और कन्याके पिताको वह कन्यादूना शुल्क (मोल) दे और दशबेंत के प्रहार उस कन्या को राजा लगवावे ३६९ ॥

यातुकन्यांप्रकुर्यात्स्त्रीसासद्योमौण्डयमर्हति । अंगुल्योरेववाछेदंखरेणोद्वहनंतथा ३७०

प० । या तु कन्यां प्रकुर्यात् स्त्री सा सद्यः मौण्ड्यं अर्हति अंगुल्योः एव वा छेदं खरेण उद्वहनं तथा ॥

यो० । तुपुनः या स्त्री कन्यां प्रकुर्यात सा सद्यः मौण्ड्यं— वा अंगुल्योः एवच्छेदनं - तथा खरेण राजमार्गे उद्वहनं— अर्हति ॥

भा० । ता० । जो स्त्रीही अंगुली डालकर कन्या को दूषित (भ्रष्ट) करदे—वह स्त्री उसी समय मुण्डन वा अंगुलियों के छेदन—अथवा गधे पर चढ़ाकर राजमार्ग (सड़क) में गमन—के योग्य होती है अर्थात् राजा उस स्त्री को उक्त दण्ड दे ३७० ॥

भर्त्तारंलंघयेद्यातुस्त्रीज्ञातिगुणदर्पिता । तांश्वभिःखादयेद्राजासंस्थानेबहुसंस्थिते३७१

प० । भर्त्तारं लंघयेत् या तु स्त्री ज्ञातिगुणदर्पिता तां श्वभिः खादयेत् राजा संस्थाने बहुसंस्थिते॥

यो० । तुपुनः या स्त्री ज्ञातिगुणदर्पिता सती भर्त्तारं लंघयेत् तां स्त्रीं बहुसंस्थिते संस्थाने राजा श्वभिः खादयेत् (भक्षयेत्) ॥

भा० । ता० । जो स्त्री अपने पिता भाई आदि के धन और गुणों से अभिमान करके अपने पति का अवलंघन करती है अर्थात् पुरुषान्तर का संग—वा पति की आज्ञा नहीं मानने से अपने ईश्वरके

समान पतिही में प्रीति नहीं रखती है उस स्त्री को जहां बहुत मनुष्य स्थित हों ऐसे स्थान में कुत्तों से भक्षण करा दे ३७१ ॥

पुमांसंदाहयेत्पापंशयनेतप्तआयसे । अभ्यादध्युश्चकाष्ठानितत्रदह्येतपापकृत्३७२ ॥

प० । पुमांसं दाहयेत् पापं शयने तप्ते आयसे अभ्यादध्युः च काष्ठानि तत्र दह्येत पापकृत् ॥

यो० । आयसे तप्ते शयने पापं पुमांसं दाहयेत्—घातकाः काष्ठानि अभ्यादध्युः तत्र पापकृत् दह्येत–(भस्मीभूयात्) ॥

भा० । ता० । अन्य स्त्री के संग गमन करनेवाले पूर्वोक्त पापी मनुष्य को अग्नि से तपायमान लोहे की शय्यापर दग्ध करै—और घातक (हत्यारे) मनुष्य चारों ओर से काष्ठों को रखते जांय उस शय्यापर वह पाप करने वाला मनुष्य भस्म होजाय ३७२ ॥

संवत्सराभिशस्तस्यदुष्टस्यद्विगुणोदमः । व्रात्ययासहसंवासेचाण्डाल्यातावदेवतु३७३

प० । संवत्सराभिशस्तस्य दुष्टस्य द्विगुणः दमः व्रात्यया सह संवासे चांडाल्या तावत् एव तु ॥

यो० । संवत्सराभिशस्तस्य दुष्टस्य द्विगुणः दमः (दण्डः) ज्ञेयः—तुपुनः व्रात्यया तथा चाण्डाल्यासहसंवासे सति तावत् एव (द्विगुणः) दण्डः देयः ॥

भा० । पर की स्त्री के संग करने वाले और व्रात्यजाति की और चाण्डाली के संग गमन करने वाले दुष्ट पुरुष को जो दण्ड (१००० पण) पहिले कहा है उससे दूना उस दुष्ट को जब होता है यदि वह वर्ष दिन के पीछे पुनः संग करै ॥

ता० । अन्य स्त्री के संग गमन करने से दुष्ट मनुष्य यदि वर्ष दिन से अधिक फिर निन्दा को प्राप्त होजाय तो पूर्वोक्त दण्ड से दूना दण्ड दे और तिसी प्रकार व्रात्य (जिनका शास्त्रोक्त समयतक यज्ञोपवीत संस्कार न होता हो) जाति की और चाण्डाली स्त्री के संग भोग करने में भी उतना ही दण्ड (दूना) वर्ष दिन के अनन्तर होता है अर्थात् चाण्डाली के संग एक वार गमन में सहस्र पण दण्ड कहा है यदि वर्ष दिन के अनन्तर पुनः संग करै तो दो सहस्र पण दण्ड देने योग्य होता है इसी प्रकार व्रात्या के भी गमन में एक वार होय तो एक सहस्र पण और वर्ष दिन के पीछे पुनः भी संग करै तो दो सहस्र पण दण्ड राजा दे ३७३ ॥

शूद्रोगुप्तमगुप्तंवाद्वैजातंवर्णमावसन् । अगुप्तमंगसर्वस्वैर्गुप्तंसर्वेणहीयते ३७४ ॥

प० । शूद्रः गुप्तं अगुप्तं वा द्वैजातं वर्णं आवसन् अगुप्तं अंगसर्वस्वैः गुप्तं सर्वेण हीयते ॥

यो० । गुप्तं वा अगुप्तं द्वैजातं वर्णं आवसन् शूद्रः यदि भवति तर्हि अगुप्तंगमन अंगसर्वस्वैः गुप्तं गमन् सर्वेण हीयते ॥

भा० । रक्षा नहीं कीहुई द्विजातियोंकी स्त्रीको भोगताहुआ शूद्र लिंग छेदन और सर्वस्व छीनने के दंडको—और रक्षा कीहुई को भोगताहुआ शूद्र देहका वध और सर्वस्व छीनने के दंड को प्राप्त होताहै ॥

ता० । पति आदि से रक्षित वा अरक्षित द्विजातियों की स्त्री के संग भोगकरताहुआ शूद्र अंग (लिंग) छेदन और सर्वस्वको छीनने—के दंड को प्राप्त होताहै और यदि पूर्वोक्त स्त्री रक्षित न होय तो उस से संग करता हुआ शूद्र देहऔर धन छीनने के दण्ड को प्राप्त होता है यद्यपि इस श्लोक

में भंग का नाम कहा है तथापि भंगपदसे लिंगही इंद्रिय लेना क्योंकि इस गौतम ऋषिके वचनसे यही प्रतीत होता है कि उत्तम वर्णों की स्त्रीके गमनकरने पर लिंगका छेदन और सर्वस्व का हरण दंड होताहै—और यदि स्त्रीका कोई रक्षक होय तो—गमन करनेवाले का वध, पूर्वोक्त दंडसे अधिक है अर्थात् उसका सर्वस्व हरण और वध दोनों दंड होतेहैं ३७४ ॥

वैश्यःसर्वस्वदण्डःस्यात्संवत्सरनिरोधतः।सहस्रंक्षत्रियोदण्ड्योमौण्ड्यंमूत्रेणचार्हति ३७५

प० । वैश्यः सर्वस्वदंडः स्यात् संवत्सरनिरोधतः सहस्रं क्षत्रियः दंड्यः मौंड्यं मूत्रेण च अर्हति ॥

यो० । ब्राह्मणीगमने—वैश्यः संवत्सरनिरोधत. अनंतरं सर्वस्वदंड.स्यात्- क्षत्रियः सहस्रंदंड्यः स्यात् चपुनः मूत्रेण मौंड्यं अर्हति ॥

भा० । ता० । यदि वैश्य ब्राह्मणी के संग गमनकरे तो राजा उस वैश्यको एकवर्ष निरोध (कैद) के अनंतर सर्वस्व हरने का दंडदे—और यदि क्षत्रिय ब्राह्मणी के संग गमनकरै तो सहस्र पण दंड के और गधेके मूत्रसे मुंडनको प्राप्त होताहै ३७५ ॥

ब्राह्मणींयद्यगुप्तांतुगच्छेतांवैश्यपार्थिवौ।वैश्यंपंचशतंकुर्यात्क्षत्रियंतुसहस्रिणम्३७६॥

प० । ब्राह्मणीं यदि अगुप्तां तु गच्छेतां वैश्यपार्थिवौ वैश्यं पंचशतं कुर्यात् क्षत्रियं तु सहस्रिणम्॥

यो० । यदि वैश्यपार्थिवौ अगुप्तां ब्राह्मणीं गच्छेतां तर्हि वैश्यं पंचशतं क्षत्रियंतु सहस्रिणं राजा कुर्यात् ॥

भा० । ता० । यदि वैश्य और क्षत्रिय नही रक्षाकी हुई ब्राह्मणी के संग गमनकरैं तो वैश्य को पांचसौपण और क्षत्रियको सहस्रपण दंड राजा दे और यह वैश्यको पांचसौपण का दंड तभी दे जब वैश्यने उस ब्राह्मणीको शूद्रासमझाहो अथवा निर्गुण और जातिमात्रमेंही जो जीवतीहो अर्थात् नाममात्रकी ब्राह्मणी हो—और यदि पूर्वोक्त से इतर (शुद्ध) ब्राह्मणी के संगही वैश्यगमन करै तो वैश्यको भी सहस्रपणकाही दंड राजा दे ३७६ ॥

उभावपितुतावेवब्राह्मण्यागुप्तयासह।विप्लुतौशूद्रवद्दण्ड्यौदग्धव्यौवाकटाग्निना ३७७॥

प० । उभौ अपि तु तौ एव ब्राह्मण्या गुप्तया सह विप्लुतौ शूद्रवत् दंड्यौ दग्धव्यौ वा कटाग्निना॥

यो० । तौ उभौ एव क्षत्रिय वैश्यौ गुप्तया ब्राह्मण्यासह संगतौ चेत् भवतः तर्हि विप्लुतौ शूद्रवत् दंड्यौ वा कटाग्निना दग्धव्यौ ॥

भा० । गुणवाली ब्राह्मणी के संग गमनकरनेवाले उन दोनों वैश्य और क्षत्रियको सर्वस्वहरण का दंडदे अथवा कट (तृण) की अग्निमें भस्म करदे ॥

ता० । यदि वेही दोनों क्षत्रिय और वैश्य रक्षित ब्राह्मणी का संगकरैं तो शूद्रके समान सर्वस्व हरने के दंडको प्राप्त होतेहैं अथवा कंठमें बांधकर दोनोंको राजा दग्ध करदे—तिस दाहमें यह विशेष है कि वैश्यको रक्त कुशाओं से दग्ध करै और क्षत्रियको शरोंके पत्तोंसे क्योंकि इस वचनसे वशिष्ठ-जीने यही कहा है और यद्यपि पहिले यह कहआये हैं कि क्षत्रियको ब्राह्मणी गमनपर एक सहस्र पण दंड और वैश्यको पांचसौ पण दंड होताहै परन्तु यह गुरु दंड तभी होताहै जब वह ब्राह्मणी गुणवतीहो ३७७ ॥

---

१ आर्यस्त्र्यभिगमनेलिंगोद्धारः सर्वस्वहरणं गोप्ताचेद्वधोऽधिकः ॥

सहस्रंब्राह्मणोदण्ड्योगुप्तांविप्रांबलाद्व्रजन् । शतानिपंचदण्ड्यस्स्यादिच्छन्त्यासहसंगतः३७८

प० । सहस्रं ब्राह्मणः दंड्यः गुप्तां विप्रां बलात् व्रजन् शतानि पंच दंड्यः स्यात् इच्छंत्या सह संगतः ॥

यो० । गुप्तां विप्रां बलात् व्रजन् ब्राह्मणः सहस्रं इच्छंत्यासह संगतः ब्राह्मणः पंचशतानि दंड्यः स्यात् ॥

भा० । ता० । रक्षा की हुई ब्राह्मणी के संग बलसे गमन करता हुआ ब्राह्मण एक सहस्र पण के दंड को और इच्छा करती हुई ब्राह्मणी के संग गमन करता हुआ ब्राह्मण पांचसौ पण दंड को प्राप्त होताहै ३७८ ॥

मौण्ड्यंप्राणान्तिकोदण्डोब्राह्मणस्यविधीयते । इतरेषांतुवर्णानांदंडःप्राणान्तिकोभवेत्३७९॥

प० । मौंड्यं प्राणांतिकः दंडः ब्राह्मणस्य विधीयते इतरेषां तु वर्णानां दंडः प्राणांतिकः भवेत् ॥

यो० । ब्राह्मणस्य प्राणांतिकः दंडः मौंड्यं विधीयते-इतरेषां वर्णानां तु प्राणांतिकः दंडः भवेत् ॥

भा० । ता० । ब्राह्मणका प्राणांतिक (वध) दंड मुंडनही शास्त्र में कहा है और ब्राह्मण से इतर तीनों वर्णोंका प्राणांतिक (मारण) ही दंड होताहै ३७९ ॥

नजातुब्राह्मणंहन्यात्सर्वपापेष्वपिस्थितम् । राष्ट्रादेनंबहिःकुर्यात्समग्रधनमक्षतम्३८०

प० । न जातु ब्राह्मणं हन्यात् सर्वपापेषु अपि स्थितं राष्ट्रात् एनं बहिः कुर्यात् समग्रधनं अक्षतम् ॥

यो० । सर्वपापेषु स्थितं अपि ब्राह्मणं जातु न हन्यात् किंतु समग्रधनं अक्षतं एनं (ब्राह्मणं) राजा राष्ट्रात् बहिः कुर्यात् ॥

भा० । ता० । सम्पूर्ण पापों में स्थित भी ब्राह्मण को कदाचित् न मारै किन्तु सम्पूर्ण धन सहित और देह में घावों से रहित इस पापी ब्राह्मण को राजा देश से बाहर निकास दे ३८० ॥

नब्राह्मणवधाद्भूयानधर्मोविद्यतेभुवि । तस्मादस्यवधंराजामनसापिनचिन्तयेत्३८१ ॥

प० । न ब्राह्मणवधात् भूयान् अधर्मः विद्यते भुवि तस्मात् अस्य वधं राजा मनसा अपि न चिन्तयेत् ॥

यो० । ब्राह्मणवधात् भूयान् अधर्मः भुवि न विद्यते-तस्मात् अस्य (ब्राह्मणस्य) वधं राजा मनसा अपि न चिन्तयेत् ॥

भा० । ता० । ब्राह्मण के वध से अधिक अधर्म पृथ्वी पर नहीं है तिससे सम्पूर्ण पापोंको करने वाले भी ब्राह्मण के वध की चिन्ता राजा मन से भी न करै ३८१ ॥

वैश्यश्चेत्क्षत्रियांगुप्तांवैश्यांवाक्षत्रियोव्रजेत् । योब्राह्मण्यामगुप्तायांतावुभौदंडमर्हतः३८२ ॥

प० । वैश्यः चेत् क्षत्रियां गुप्तां वैश्यां वा क्षत्रियः व्रजेत् यः ब्राह्मण्यां अगुप्तायां तौ उभौ दण्डं अर्हतः॥

यो० । चेत् (यदि) वैश्यः गुप्तां क्षत्रियां—वा क्षत्रियः गुप्तां वैश्यां—तयोः अगुप्तायां ब्राह्मण्यां गमने यः दण्डः उक्तः तं दंडं तौ उभौ अर्हतः ॥

भा० । जो वैश्य रक्षित क्षत्रियाके संग वा क्षत्रिय वैश्याके संग गमन करता है उनदोनोंको वही दंडहोताहै जो अरक्षित ब्राह्मणीके गमनमें कहआये हैं अर्थात् वैश्यको पांचसौपण और क्षत्रिय को सहस्रपण ॥

ता० । जो वैश्य रक्षा की हुई क्षत्रिया के संग वा जो क्षत्रिय रक्षा की हुई वैश्या के संग गमन करें वे दोनों उसीदण्डके योग्यहोतेहैं जो दण्ड नहीं रक्षाकीहुई ब्राह्मणीके गमनमें उनको पहिले कहआये हैं अर्थात् वैश्यको पांचसौपण और क्षत्रियको सहस्रपण दंड राजादे—और यहदण्ड उसी वैश्यको होताहै जो गुणवान् होकर निर्गुण क्षत्रियामें शूद्राजानकर गमन करता है और जानकर वैश्यामें गमन करतेहुये क्षत्रियको तो उक्तदण्ड योग्यही है ३८२ ॥

सहस्रंब्राह्मणोदंडंदाप्योगुप्तेतुतेव्रजन् । शूद्रायांक्षत्रियविशोःसाहस्रोवैभवेद्दमः ३८३ ॥

प० । सहस्रं ब्राह्मणः दण्डं दाप्यः गुप्ते तु ते व्रजन् शूद्रायां क्षत्रियविशोः साहस्रः वै भवेत् दमः ॥

यो० । गुप्ते ते (क्षत्रियवैश्यस्त्रियौ) व्रजन ब्राह्मणः सहस्रं दंडं दाप्यः क्षत्रियविशोः शूद्रायां गमने साहस्रः दमः भवेत् ॥

भा० । ता० रक्षाकीहुई क्षत्रिया और वैश्यामें गमन करतेहुये ब्राह्मणको और रक्षित शूद्रामें गमन करतेहुये क्षत्रिय और वैश्यको भी एकसहस्रपण दंडदे ३८३ ॥

क्षत्रियायामगुप्तायांवैश्येपंचशतंदमः । मूत्रेणमौण्ड्यमिच्छेत्तुक्षत्रियोदंडमेववा ३८४ ॥

प० । क्षत्रियायां अगुप्तायां वैश्ये पंचशतं दमः मूत्रेण मौंड्यं इच्छेत् तु क्षत्रियः दण्डं एव वा ॥

यो० अगुप्तायां क्षत्रियायां वैश्ये गंतरिमति पंचशतं दमः भवति क्षत्रियः तु गर्दभ मूत्रेण मुण्डनं वा दंडं इच्छेत् अर्थात् तस्मै अन्यतरः दमः देयः ॥

भा० । ता० । नहीं रक्षित क्षत्रियाके संग गमन करतेहुये वैश्यको पांचसौपण दंडहोता है और अरक्षित क्षत्रियामेंगमनकरतेहुये क्षत्रियको तो गधेकेमूत्रसे मुण्डन वा पांचसौपण दंडहोताहै ३८४ ॥

अगुप्तेक्षत्रियावैश्येशूद्रांवाब्राह्मणोव्रजन् । शतानिपंचदण्ड्यःस्यात्सहस्रंत्वन्त्यजस्त्रियम् ३८५

प० । अगुप्ते क्षत्रियावैश्ये शूद्रां वा ब्राह्मणः व्रजन् शतानि पंच दंड्यः स्यात् सहस्रं तु अन्त्यजस्त्रियम् ॥

यो० । अगुप्ते क्षत्रियावैश्ये वा अगुप्तां शूद्रां व्रजन ब्राह्मणः पंचशतानिदंड्यः—अन्त्यजस्त्रियं व्रजन् ब्राह्मणः तु सहस्रंपणं दंड्यःस्यात् ॥

भा० । ता० । नहीं रक्षाकीहुई क्षत्रिया और वैश्यामें वा अरक्षित शूद्रामें गमन करतेहुये ब्राह्मणको पांचसौपण, और अन्त्यजकी स्त्री (भंगन) में गमन करतेहुये ब्राह्मणको एकसहस्रपण, दण्ड राजादे—अन्त्यज वह कहाता है जो अन्तमेंहो अर्थात् जिससे परे कोई नीच न हो ३८५ ॥

यस्यस्तेनःपुरेनास्तिनान्यस्त्रीगोनदुष्टवाक् । नसाहसिकदंडघ्नौसराजाशक्रलोकभाक् ३८६

प० । यस्य स्तेनः पुरे न अस्ति न अन्यस्त्रीगः न दुष्टवाक् न साहसिकदण्डघ्नौ सः राजा शक्रलोकभाक् ॥

यो० । यस्य राज्ञः पुरे स्तेनः—अन्यस्त्रीगः—दुष्टवाक्— न अस्ति—साहसिकदण्डघ्नौ न स्तः सः राजा शक्रलोकभाक् (स्वर्गगामी) भवति ॥

भा० । ता० । जिस राजाके नगरमें चौर—परस्त्रीगामी (व्यभिचारी) दुष्टवाणी—और साहसिक और कठोरदण्डका दाता येसब नहीं हैं वह राजा इन्द्रकेलोकमें जाताहै ३८६ ॥

एतेषांनिग्रहोराज्ञःपंचानांविषयेस्वके।साम्राज्यकृत्सजात्येषुलोकेचैवयशस्करः ३८७॥

प० । एतेषां निग्रहः राज्ञः पंचानां विषये स्वके साम्राज्यकृत् सजात्येषु लोके च एव यशस्करः ॥

यो० । यस्य राज्ञः एतेषां पंचानां स्वके विषये निग्रहः अस्ति सः राजा सजात्येषु साम्राज्यकृत् चपुनः लोके यशस्करः भवति ॥

भा० । ता० । जिस राजाके राज्यमें इन पूर्वोक्त स्तेन आदिका निग्रह (दंड वा अभाव) है वह राजा अपने सजातीय राजाओंमें चक्रवर्ती राजाहोताहै और इसलोकमें यशका कर्त्ताहोताहै ३८७॥

ऋत्विजंयस्त्यजेद्याज्योयाज्यंचर्त्विक्त्यजेद्यदि। शक्तंकर्मण्यदुष्टंचतयोर्दण्डःशतंशतम् ३८८

प० । ऋत्विजं यः त्यजेत् याज्यः याज्यं च ऋत्विक् त्यजेत् यदि शक्तं कर्मणि अदुष्टं च तयोः दंडः शतं शतम् ॥

यो० । यः याज्यः कर्मणिशक्तं अदुष्टं ऋत्विजं त्यजेत् चपुनः ऋत्विक् यदि याज्यं त्यजेत् तयोः (ऋत्विक् याज्ययोः) शतं शतं पणं दण्डः भवेत् ॥

भा० ता० जो यजमान कर्म करानेमें समर्थ और अदुष्ट (साधु) ऋत्विज्को त्यागदे अथवा जो ऋत्विज् अदुष्ट यजमानको त्यागदे उन दोनोंको सौ२ पण दण्ड राजादे ३८८ ॥

नमातानपितानस्त्रीनपुत्रस्त्यागमर्हति । त्यजन्नपतितानेतान्राज्ञादण्ड्यःशतानिषट्३८९

प० । न माता न पिता न स्त्री न पुत्रः त्यागं अर्हति त्यजन् अपतितान् एतान् राज्ञा दण्ड्यः शतानि षट् ॥

यो० । माता पिता स्त्री पुत्रः त्यागं न अर्हति अपतितान् एतान् त्यजन् पुरुषः राज्ञा षट् शतानि दंड्यः भवेत् ॥

भा० । ता० । माता पिता स्त्री और पुत्र येसब त्यागनेके योग्य नहीं होते अर्थात् भरण पोषण आदिसे उपेक्षा योग्य नहींहोते और जो अपतित इनचारोंका परित्याग करता है उसको इनमेंसे एक२ के परित्याग करनेपर राजा छः २ सौ पण दंडदे ३८९ ॥

आश्रमेषुद्विजातीनांकार्येविवदतांमिथः। नविब्रूयान्नृपोधर्मंचिकीर्षन्हितमात्मनः३९०॥

प० । आश्रमेषु द्विजातीनां कार्ये विवदतां मिथः न विब्रूयात् नृपः धर्मं चिकीर्षन् हितं आत्मनः ॥

यो० । आश्रमेषु कार्ये मिथः विवदतां द्विजातीनां सतां आत्मनः हितं चिकीर्षुः नृपः धर्मं न विब्रूयात् ॥

भा० । ता० । गृहस्थाश्रमके कार्योंमें परस्पर इसप्रकार कि यह शास्त्रका अर्थ है यह शास्त्रका अर्थ नहीं है विवाद करतेहुये द्विजातियों के बीचमें अपने हितको चाहताहुआ राजा विशेषकर धर्मको न कहै कि यह धर्महै ऐसा उपदेश न करे ३९० ॥

यथार्हमेतानभ्यर्च्यब्राह्मणैःसहपार्थिवः। सांत्वेनप्रशमय्यादौस्वधर्मंप्रतिपादयेत् ३९१

प० । यथार्हं एतान् अभ्यर्च्य ब्राह्मणैः सह पार्थिवः सांत्वेन प्रशमय्य आदौ स्वधर्मं प्रतिपादयेत् ॥

यो० । पार्थिवः एतान् (आश्रमिणः) ब्राह्मणैः सह यथार्हं अभ्यर्च्य आदौ सांत्वेन प्रशमय्य स्वधर्मं प्रतिपादयेत् (बोधयेत्) ॥

भा० । ता० । इनसब आश्रमवालोंकी प्रथम राजा यथोचित पूजाकरके और शांतिके वाक्योंसे शांतकरके और इनके क्रोधकी निवृत्ति करके फिर इनका जो धर्म उसका प्रतिपादन करै अर्थात् बतावे ३९१ ॥

प्रातिवेश्यानुवेश्यौचकल्याणेविंशतिद्विजे। अर्हावभोजयन्विप्रोदण्डमर्हतिमाषकम ३९२ ॥

प० । प्रातिवेश्यानुवेश्यौ चँ कल्याँणे विँशतिद्विजे अर्हौ अभोजयन विप्रः दर्ण्डं अर्हति माषकम् ॥

यो० । विंशतिद्विजे कल्याणे अर्हौ प्रातिवेश्यानुवेश्यौ अभोजयन विप्रः माषकं दंडं अर्हति ॥

भा० । जिस उत्सवमें बीस ब्राह्मण भोजनकरैं उसमें प्रातिवेश्य और अनुवेश्य का परित्याग करनेवाला ब्राह्मण एकमासा चांदी के दंड योग्य होताहै ॥

ता० । जो ब्राह्मण निरन्तर गृहमेंही वसै उसे प्रातिवेश्य और निरन्तर न वसै उसे अनुवेश्य कहतेहैं–जिस उत्सवमें बीस ब्राह्मणोंका भोजन कराया जाता है उस में प्रातिवेश्य और अनुवेश्य जो ब्राह्मणोंका परित्याग करै क्योंकि ये दोनों ब्राह्मण भोजन करानेके योग्य कहेहैं और इसै विष्णु के वचनसे इनके अवलंघनमें दोष कहा है उस ब्राह्मणको एकमासा चांदी दंडदे ३९२ ॥

श्रोत्रियःश्रोत्रियंसाधुंभूतकृत्येष्वभोजयन् । तदन्नंद्विगुणंदाप्योहिरण्यंचैवमाषकम् ३९३ ॥

प० । श्रोत्रियः श्रोत्रियं साधुं भूतकृत्येषुँ अभोजयन् तदन्नं द्विगुणं दाप्यः हिरण्यं चँ एवँ माषकम् ॥

यो० । साधुं श्रोत्रियं भूतकृत्येषु अभोजयन श्रोत्रियः द्विगुणं तदन्नं चपुनः माषकं हिरण्यं दाप्यः (दंड्यः) ॥

भा० । ता० । जो वेदपाठी ब्राह्मण सज्जन वेदपाठीको विवाहादि कार्योंमें न जिमावे और प्रातिवेश्य और अनुवेश्य और अन्य ब्राह्मणको जिमा दे उस ब्राह्मणको राजा उससे दूना अन्न और एकमासा सोना दंडदे ३९३ ॥

अन्धोजडःपीठसर्पिस्सप्तत्यास्थविरश्चयः।श्रोत्रियेषूपकुर्वंश्चनदाप्याःकेनचित्करम् ३९४॥

प० । अंधः जडः पीठसर्पिः सप्तत्याँ स्थविरः चँ यः श्रोत्रियेषुँ उपकुर्वन् चँ नँ दाप्याः केनचित् करम् ॥

यो० । अंधः जडः (बधिरः) पीठसर्पिः (पंगुः) चपुनः यः सप्तत्या स्थविरः सः चपुनः श्रोत्रियेषु उपकुर्वन् एते केनचित् अपि राज्ञा करं न दाप्याः ॥

भा० । ता० । अंध, बधिर, पंगु और ७० वर्ष का वृद्ध धन और अन्नसे वेदपाठियोंका उपकारी इतने ब्राह्मणोंको क्षीण कोष भी कोई राजा करका दंड न दे किंतु इनपर अनुग्रह करै ३९४ ॥

श्रोत्रियंव्याधितार्तौचबालवृद्धावकिंचनम्।महाकुलीनमार्यंचराजासंपूजयेत्सदा ३९५

प० । श्रोत्रियं व्याधितार्तौ चँ बालवृद्धौ अकिंचनं महाकुलीनं आर्यं चँ राजा संपूजयेत् सदा ॥

यो० । श्रोत्रियं–व्याधितार्तौ–बालवृद्धौ–अकिंचनं महाकुलीनं–चपुनः आर्यं–राजा सदा संपूजयेत् ॥

भा० । ता० । वेदपाठी–रोगी–और पुत्र के वियोग आदि से दुःखी बालक–वृद्ध–दरिद्री उत्तम कुल से उत्पन्न और उत्तम आचरण करनेवाला इतने ब्राह्मणों का राजा पूजन सदैव दान मान से करै ३९५ ॥

शाल्मलीफलकेश्लक्ष्णेनेनिज्यान्नेजकःशनैः। नचवासांसिवासोभिर्निर्हरेन्नचवासयेत् ३९६

---

१ प्रातिवेश्यब्राह्मणातिक्रमकारीच ॥

प० । शाल्मलीफलके श्लक्ष्णे नेनिज्यात् नेजकः शनैः न च वासांसि वासोभिः निर्हरेत् न च वासयेत् ॥

यो० । नेजकः (रजकः) श्लक्ष्णे शाल्मलीफलके शनैः वासांसि नेनिज्यात् वासोभिः वासांसि न निर्हरेत् चपुनः न वासयेत् ॥

भा० । ता० । रजक (धोबी) सेमरके चिकने पट्टेपर शनैः २ वस्त्रोंको धोवे और किसी के अन्य वस्त्रों में न मिलावे और दूसरे के वस्त्र अन्यको धारण करने को न दे और न आप धारणकरै यदि इसप्रकार न करै तो दंड देने योग्य होताहै ३९६ ॥

तन्तुवायोदशपलंदद्यादेकपलाधिकम् । अतोऽन्यथावर्तमानोदाप्योद्वादशकंदमम् ३९७॥

प० । तंतुवायः दशपलं दद्यात् एकपलाधिकं अतः अन्यथा वर्तमानः दाप्यः द्वादशकं दमम् ॥

यो० । तंतुवायः दशपलं सूत्रं गृहीत्वा एकपलाधिकं वस्त्रं दद्यात् अतः अन्यथा वर्तमानः सः राज्ञा द्वादशकं दमं दाप्यः (दंडनीयः) ॥

भा० । ता० । तंतुवाय (कोली वा जुलाहा) दशपल सूतको लेकर बारहपल वस्त्र स्वामी को तोलदे-यदि इससे अन्यथा वर्ताव करै तो राजा उस तंतुवायको बारहपल दंडदे और वह वस्त्र के स्वामी की प्रसन्नता करै ३९७ ॥

शुल्कस्थानेषुकुशलाःसर्वपण्यविचक्षणाः । कुर्युरर्घंयथापण्यंततोविंशंनृपोहरेत् ३९८ ॥

प० । शुल्कस्थानेषु कुशलाः सर्वपण्यविचक्षणाः कुर्युः अर्घं यथापण्यं ततः विंशं नृपः हरेत् ॥

यो० । शुल्कस्थानेषु सर्वपण्यविचक्षणाः कुशलाः यथापण्यं अर्घं कुर्युः ततः (अर्घात्) विंशं नृपः हरेत् ॥

भा० । ता० । संपूर्ण पण्यों (बेचने की वस्तु) के सार और असार के जाननेवाले कुशल मनुष्य शुल्क के स्थानों में पण्य की वस्तुके अनुसार अर्घ (मूल्य) का निश्चय करदें अर्थात् इसवस्तु पर इतना लाभ लेना चाहिये और उस लाभमें से बीसवां भाग राजा ग्रहणकरै-जल अथवा स्थलके मार्ग में जो कर व्यवहारी राजाको देतेहैं उसे शुल्क कहते हैं ३९८ ॥

राज्ञःप्रख्यातभाण्डानिप्रतिषिद्धानियानिच । तानिनिर्हरतोलोभात्सर्वहारंहरेन्नृपः ३९९

प० । राज्ञः प्रख्यातभांडानि प्रतिषिद्धानि यानि च तानि निर्हरतः लोभात् सर्वहारं हरेत् नृपः ॥

यो० । राज्ञः यानि प्रख्यात भांडानि-चपुनः यानि राज्ञा प्रतिषिद्धानि लोभात् तानि निर्हरतः पुरुषस्य नृपः सर्वहारं हरेत् ॥

भा० । ता० । राजा के जो प्रसिद्धपात्र और विक्रेय वस्तु और हाथी अश्व आदिहैं और जो वस्तु राजाने निषिद्ध करदी हैं जैसा कि दुर्भिक्ष में देशांतरको अन्न कोई न लेजाय-इनको जो मनुष्य देशांतरमें लोभसे लेजाय-उसके सर्वस्वको राजा हरले (छीनले) ३९९ ॥

शुल्कस्थानंपरिहरन्नकालेक्रयविक्रयी । मिथ्यावादीचसंख्यानेदाप्योऽष्टगुणमत्ययम् ४०० ॥

प० । शुल्कस्थानं परिहरन् अकाले क्रयविक्रयी मिथ्यावादी च संख्याने दाप्यः अष्टगुणं अत्ययम् ॥

यो० । शुल्कस्थानं परिहरन्-अकाले क्रयविक्रयी-चपुनः संख्याने मिथ्यावादी-पुरुषः अष्टगुणं अत्ययं दाप्यः ॥

भा० । ता० । जो मनुष्य शुल्कस्थानको बचाकर कुमार्ग को अन्न आदि लेजाय अथवा जो अस-

मय में लेन देन करै अथवा शुल्ककी न्यूनता के लिये अधिक वस्तुको न्यून बतावे उसने झूंठ बोल कर जितना राजा का कर बचाया चाहाहो उससे आठगुना दंड राजा उस मनुष्य को दे ४०० ॥

आगमंनिर्गमंस्थानंतथावृद्धिक्षयावुभौ।विचार्य्यसर्वपण्यानांकारयेत्क्रयविक्रयौ४०१॥

प० । आगमं निर्गमं स्थानं तथा वृद्धिक्षयौ उभौ विचार्य्य सर्वपण्यानां कारयेत् क्रयविक्रयौ ॥

यो० । राजा-आगमं-निर्गमं-स्थानं-तथा उभौ वृद्धिक्षयौ विचार्य-सर्वपण्यानां क्रयविक्रयौ कारयेत् ॥

भा० । द्रव्यों के आने और जाने और रखने का समय और वृद्धि और हानि इन सबका निर्णय करके राजा क्रय और विक्रय का स्थापन करै ॥

ता० । कितनी दूरके देशांतरसे यह द्रव्यआया है यह पदार्थ का आगम (आना) और अपने देश में पैदाहुआ द्रव्य कितनी दूर जायगा यह पदार्थ का निर्गम (जाना) और कितने काल पर्यंत रखने पर कितना मूल्य मिलेगा—और कितनी इस द्रव्य में वृद्धि हुई—और भृत्यों के भोजन वस्त्र और यान आदि में कितना व्यय (खर्च) हुआ— इसप्रकार इन सबका निश्चय करै जैसे खरीदनेवाले व्यापारियों को दुःख नहो फिर क्रय और विक्रयों का राजा स्थापन करै—अर्थात् बेचन और खरीदने के नियमों को नियत करै ४०१ ॥

पंचरात्रेपंचरात्रेपक्षेपक्षेऽथवागते । कुर्वीतचैषांप्रत्यक्षमर्घसंस्थापनन्नृपः ४०२ ॥

प० । पंचरात्रे पंचरात्रे पक्षे पक्षे अथवा गते कुर्वीत च एषां प्रत्यक्षं अर्घसंस्थापनं नृपः ॥

यो० । पंचरात्रे पंचरात्रे अथवा पक्षे पक्षे गतेगते एषां अर्घसंस्थापनं नृपः प्रत्यक्षं कुर्वीत ॥

भा० । ता० । पांच२ रात्रि अथवा पंद्रह२ दिनके अनन्तर इन संपूर्ण द्रव्योंके अर्घ (मोल) की व्यवस्थाका नियम सबव्यापारियों के सन्मुखकरै क्योंकि द्रव्योंका आनाजाना और उपाय इनका कोई नियत समय नहीं है ४०२ ॥

तुलामानंप्रतीमानंसर्वंचस्यात्सुलक्षितम् । षट्सुषट्सुचमासेषुपुनरेवपरीक्षयेत् ४०३ ॥

प० । तुलामानं प्रतीमानं सर्वं च स्यात् सुलक्षितम् षट्सु षट्सु च मासेषु पुनः एवं परीक्षयेत् ॥

यो० । तुलामानं चपुनः प्रतीमानं सर्वं राजा सुलक्षितं स्यात् चपुनः षट्सु षट्सु मासेषु गतेषु राजा पुनः एव (अपि) परीक्षयेत् ॥

भा० । ता० । तोलका प्रमाण और सुवर्णआदिके तोलकी परीक्षाकेलिये जो कियाजाय वह प्रतीमान इन सबको राजादेखे अर्थात् स्वयं देखकर नियतकरै और छः२ महीने के अनन्तर पुनः परीक्षा करतारहै ४०३ ॥

पणंयानंतरेदाप्यंपौरुषोऽर्द्धपणंतरे । पादंपशुश्चयोषिच्चपादार्द्धंरिक्तकःपुमान् ४०४ ॥

प० । पणं यानं तरे दाप्यं पौरुषः अर्द्धपणं तरे पादं पशुः च योषित् च पादार्द्धं रिक्तकः पुमान् ॥

यो० । राजा-तरे यानं पणं दाप्यं-पौरुषः तरे अर्द्धपणं दाप्यः-पशुः चपुनः योषित् (स्त्री) पादं-रिक्तकः पुमान पादार्द्धं दाप्यः ॥

भा० । ता० । नावसे पार उतारनेमें भांडोंसे भरेहुये यानोंपर राजा एकपण दंडदे अर्थात् एक

पण कर (महसूल) ले और पुरुषके भारपर आधापण—और पशु और स्त्रीसे चौथाई पण—और रिक्तक (रीता) अर्थात् भाररहित मनुष्यसे पणका आठवांभाग—राजा ग्रहणकरै ४०४ ॥

भाण्डपूर्णानियानानितार्यंदाप्यानिसारतः । रिक्तभाण्डानियत्किंचित्पुमांसश्चापरिच्छदाः ४०५

प० । भांडपूर्णानि यानानि तार्यं दाप्यानि सारतः रिक्तभांडानि यत् किंचित् पुमांसः च अपरिच्छदाः ॥

यो० । भांडपूर्णानि यानानि सारतः तार्यं राज्ञा दाप्यानि-रिक्तभांडानि चपुनः अपरिच्छदाः पुमांसः यत् किंचित् दाप्याः-(दंडनीयाः) ॥

भा० । ता० । विक्रयके द्रव्यसे भरेहुये शकट (गाडी) यानोंपर सारको देखकर अर्थात् जैसा द्रव्यभराहो वैसाही कर राजा ग्रहणकरै और द्रव्योंसे रहित गून और कम्बल आदिकोंपर और अपरिच्छद (दरिद्री) मनुष्योंपर यत् किंचितही करको राजा ग्रहणकरै ४०५ ॥

दीर्घाध्वनियथादेशंयथाकालंतरोभवेत् । नदीतीरेषुतद्विद्यात्समुद्रेनास्तिलक्षणम् ४०६

प० । दीर्घाध्वनि यथादेशं यथाकालं तरः भवेत् नदीतीरेषु तत् विद्यात् समुद्रे न अस्ति लक्षणम् ॥

यो० । दीर्घाध्वनि यथादेशं यथाकालं तरः भवेत् तत् (पूर्वोक्तं) नदीतीरेषु विद्यात्-समुद्रे लक्षणं न अस्ति ॥

भा० । ता० । यदि नदीके मार्गसे दूरदेशमें द्रव्यजाय तो वहांपर देशकालके अनुसार नावका करहोता है अर्थात् जलके न्यून वा अधिकवेगको और उष्णकाल और वर्षाके समयको देखकर नाव के मूल्य (कर) को राजा नियतकरै और यहमूल्य नदीके तीरपर समझना—और समुद्रमें तो पवन के आधीन नाव चलती है इससे नावके चलनेमें बाधा नहीं होसकती—वहां उचितही करको राजा ग्रहणकरै ४०६ ॥

गर्भिणीतुद्विमासादिस्तथाप्रव्रजितोमुनिः । ब्राह्मणालिङ्गिनश्चैवनदाप्यास्तारिकंतरे ४०७

प० । गर्भिणी तु द्विमासादिः तथा प्रव्रजितः मुनिः ब्राह्मणाः लिंगिनः च एव न दाप्याः तारिकं तरे ॥

यो० । द्विमासादिः गर्भिणी स्त्री तथा प्रव्रजितः मुनिः चपुनः लिंगिनः ब्राह्मणाः तरे तारिकं न दाप्याः ॥

भा० । ता० । दोमहीनेसे अधिक गर्भवती स्त्री और संन्यासी मुनि (वानप्रस्थ) और ब्रह्मचारी ब्राह्मण—इनसे नावका कर राजा ग्रहण न करै (नले) ४०७ ॥

यन्नाविकिंचिद्दासानांविशीर्येतापराधतः । तद्दासैरेवदातव्यंसमागम्यस्वतोऽशतः ४०८

प० । यत् नावि किंचित् दासानां विशीर्येत अपराधतः तत् दासैः एव दातव्यं समागम्य स्वतः अंशतः ॥

यो० । नावि यत् किंचित् द्रव्यं दासानां अपराधतः विशीर्येत (नश्येत्) तत् द्रव्यं स्वतः अंशतः दासैः एव समागम्य दातव्यम् ॥

भा० । ता० । जो द्रव्य नावमें दासों (सेवक) के अपराधसे नष्ट होजाय उसद्रव्यको अपने अंशमेंसे इकट्ठे होकर दासही देदे ४०८ ॥

एषनौयायिनामुक्तोव्यवहारस्यनिर्णयः । दासापराधतस्तोयेदैविकेनास्तिनिग्रहः ४०९

प० । एषः नौयायिनां उक्तः व्यवहारस्य निर्णयः दासापराधतः तोये दैविके न अस्ति निग्रहः ॥

यो० । नौयायिनां व्यवहारस्य एषः निर्णयः उक्तः तोये दासापराधतः दैविके निग्रहः न अस्ति ॥

भा० । ता० । नावमें जानेवाले व्यवहारियोंका जो द्रव्य जलमें दासोंके अपराधसे नष्टहोजाय उसको नावके चलानेवाले दासहीदें-यह निर्णय मैंनेकहा और दैवगतिसे अर्थात् प्रबल पवनआदि के वेगसे नष्टहुई नावके होनेपर जो हानिहोजाय वहां दासोंको कुछदण्ड नहींहोता ४०९ ॥

वाणिज्यंकारयेद्वैश्यंकुसीदंकृषिमेवच । पशूनांरक्षणंचैवदास्यंशूद्रंद्विजन्मनाम् ४१० ॥

प० । वाणिज्यं कारयेत् वैश्यं कुसीदं कृषिं एवं च पशूनां रक्षणं च एवं दास्यं शूद्रं द्विजन्मनाम् ॥

यो० । राजा वैश्यं वाणिज्यं-कुसीदं-कृषिं-चपुनः पशूनां रक्षणं कारयेत्-शूद्रं द्विजन्मनां दास्यं कारयेत् ॥

भा० । ता० । राजा-वैश्यसे वाणिज्य (लेनदेन) और कुसीद (व्याजपर रुपयादेना) और खेती और पशुओंकी रक्षा करवावे-और शूद्रपर द्विजातियोंकी सेवा करवावे यदि वैश्य और शूद्र न करें तो राजा दंडदे ४१० ॥

क्षत्रियंचैववैश्यंचब्राह्मणोवृत्तिकर्शितौ । बिभृयादानृशंस्येनस्वानिकर्माणिकारयन् ४११ ॥

प० । क्षत्रियं च एवं वैश्यं च ब्राह्मणः वृत्तिकर्शितौ बिभृयात् आनृशंस्येन स्वानि कर्माणि कारयन् ॥

यो० । ब्राह्मणः वृत्तिकर्शितौ क्षत्रियं चपुनः वैश्यं स्वानि कर्माणि कारयन् सन् आनृशंस्येन बिभृयात् (पालयेत्)॥

भा० । ता० । आजीविकासे रहित क्षत्री और वैश्यपर उनकी जातिके कर्मोंको दयासे करवाता हुआ ब्राह्मण दोनोंको भोजन वस्त्रसे पालनाकरै यदि सामर्थ्यवाला ब्राह्मण शरणागतहुये और उक्त (कहेहुये) क्षत्रिय और वैश्यकी पालना न करै तो राजा उसको दंडदे ४११ ॥

दास्यंतुकारयँल्लोभाद्ब्राह्मणःसंस्कृतान्द्विजान् । अनिच्छतःप्राभवत्याद्राज्ञादण्ड्यःशतानिषट् ४१२

प० । दास्यं तु कारयन् लोभात् ब्राह्मणः संस्कृतान् द्विजान् अनिच्छतः प्राभवत्यात् राज्ञा दंड्यः शतानि षट् ॥

यो० । प्राभवत्यात् दास्यं अनिच्छतः संस्कृतान् द्विजान् लोभात् दास्यं कार्यं ब्राह्मणः षट् शतानि राज्ञा दंड्यः ॥

भा० । ता० । प्रभुतासे सेवाको नहीं चाहतेहुये संस्कृत (जिनका यज्ञोपवीत होचुकाहो) द्विजों पर लोभसे सेवाकरातेहुये ब्राह्मणको राजा ६०० पणदंडदे ४१२ ॥

शूद्रंतुकारयेद्दास्यंक्रीतमक्रीतमेववा । दास्यायैवहिसृष्टोऽसौब्राह्मणस्यस्वयंभुवा ४१३ ॥

प० । शूद्रं तु कारयेत् दास्यं क्रीतं अक्रीतं एवं वा दास्याय एवं हि सृष्टः असौ ब्राह्मणस्य स्वयंभुवा ॥

यो० । क्रीतं वा अक्रीतं एव शूद्रं ब्राह्मणः दास्यं कारयेत्-हि (यतः) स्वयंभुवा ब्राह्मणस्य दास्याय एव असौ सृष्टः (रचितः) ॥

भा० । ता० । भोजन वस्त्रदेकर पालन कियेहुये वा नहीं पालन कियेहुये शूद्रपर तो ब्राह्मणसेवा करवावे क्योंकि ब्राह्मणकी सेवाकेलियेही इसशूद्रको ब्रह्माने रचाहै ४१३ ॥

नस्वामिनानसृष्टोऽपिशूद्रोदास्याद्विमुच्यते । निसर्गजंहितत्तस्यकस्तस्मात्तदपोहति ४१४ ॥

प० । नँ स्वामिँना निसृष्टः अँपि शूद्रंः दास्यौत् विमुच्यैते निसँर्गजं हिँ तत् तस्य कः तस्मौत् तत् अपोहैति ॥

यो० । स्वामिना निसृष्टः अपि शूद्रः दास्यात् न विमुच्यते-हि (यतः) तत् (दास्यं) तस्य निसर्गजं (स्वाभाविकं) अस्ति अतः तत् (दास्यं) तस्मात् कः अपोहति-(दूरीकरोति) ॥

भा० । स्वामीका त्यागाहुआ भी शूद्र सेवाकरनेसे नहीं छूटसकता क्योंकि सेवा शूद्रका स्वाभाविक धर्म है वह उससे दूरनहीं होसकता ॥

ता० । जिससे यह शूद्रध्वजा बांधकर संग्रामके जीतनेसे दासभावको प्राप्तहुआ है इससे स्वामीके त्यागनेपर भी दासभावसे नहीं छूटसकता–क्योंकि शूद्रका दासभावहोना स्वाभाविक कर्म है इससे उस दासकर्मको शूद्रसे कोई भी दूरनहीं करसकता अर्थात् जैसे उसकी शूद्रत्वजाति दूरनहीं होसकती इसीप्रकार दासकर्म भी दूरनहीं होसकता–इससे परलोकमें सुखकेलिये भी शूद्र ब्राह्मणों की सेवाकरै–यदि न करै तो शूद्रके धर्मोंमें दासकर्मका गिनना वृथा होजायगा ४१४ ॥

ध्वजाहृतोभक्तदासोगृहजःक्रीतदत्त्रिमौ । पैत्रिकोदण्डदासश्चसप्तैतेदासयोनय. ४१५ ॥

प० । ध्वजाहृतः भक्तदासः गृहजः क्रीतदत्त्रिमौ पैत्रिकः दंडदासः चँ सप्त एते दासयोनयः ॥

यो० । ध्वजाहृतः भक्तदासः गृहजः क्रीतदत्त्रिमौ पैत्रिकः चपुनः दण्डदास –एते सप्तदासयोनयः सन्ति ॥

भा० । ता० । ये सातप्रकारके दासके कारण होतेहैं–संग्रामसे जीता–भोजनदेकर रक्खाहुआ–दासीका पुत्र–मोलदेकर लिया–और सेवाकेलिये दियाहुआ–और पिताके आगेसे चलाआया–दण्ड आदिसे सेवा करनेवाला अर्थात् ऋणआदिके देने अर्थ जो सेवाका स्वीकारकरै ४१५ ॥

भार्यापुत्रश्चदासश्चत्रयएवाधनाःस्मृताः । यत्तेसमधिगच्छन्तियस्यतेतस्यतद्धनम् ४१६ ॥

प० । भार्या पुत्रः चँ दासः चँ त्रयः एवँ अधनाः स्मृताः यत् ते समधिगच्छंति यस्य ते तस्य तत् धनम् ॥

यो० । भार्या पुत्रः चपुनः दासः एतेत्रयः एव अधनाः स्मृताः ते यत् धनं समधिगच्छन्ति तत् धनं तस्य भवति यस्य ते भवन्ति ॥

भा० । स्त्री–पुत्र–दास–ये तीनों निर्द्धन कहे हैं ये तीनों जो धन संचित करते हैं वहधन उसकाही है जिसके ये तीनों होते हैं अर्थात् जो इनतीनोंका स्वामी है ॥

ता० । स्त्री–पुत्र–दास–इनतीनोंको मनुआदिकोंने निर्द्धन कहाहै क्योंकि जिस धनको ये तीनों संचय करतेहैं वह धन उसकाही होताहै जिसके ये तीनोंहोतेहैं–यह वचन भार्याआदि तीनोंको परतन्त्र जतानेकेलिये है और सर्वथा निर्द्धनका बोधक नहींहै क्योंकि आगे मनुजीही अध्यग्निआदि छःप्रकारका धन स्त्रीका कहेंगे और धनसेही अदृष्ट कर्म बनते हैं इससे स्त्रीको भी पतिके संग यज्ञ का अधिकार है और पुरुषके धनमें अनुमतिकेद्वारा स्त्रीभी धर्म करनेवाली होती है ४१६ ॥

विस्रब्धंब्राह्मणःशूद्राद्द्रव्योपादानमाचरेत् । नहितस्यास्तिकिंचित्स्वंभर्तृहार्यधनोहिसः ४१७

प० विस्रब्धं ब्राह्मणः शूद्रात् द्रव्योपादानं आचरेत् नँ हिँ तस्य अस्ति किंचित् स्वं भर्तृहार्य धनः हिँ सः ॥

यो० । ब्राह्मणः शूद्रात् विस्रब्धं द्रव्योपादानं आचरेत्–हि (यतः) तस्य (शूद्रस्य) किंचित् स्वं न अस्ति–हि (यतः) सः (शूद्रः) भर्तृहार्यधनः भवति ॥

भा० । ता० । ब्राह्मण शूद्रसे निस्संदेह होकर धनका ग्रहणकरै–क्योंकि जिससे उस शूद्रके धन का ग्राहक स्वामीहोता है इससे उस शूद्रका किंचित् भी धन नहींहोता–इससे यदि ब्राह्मण आपत्तिके समय बलात्कारसे भी शूद्रसे धनका ग्रहण करले तो राजा उस ब्राह्मणको दंड न दे ४१७ ॥

वैश्यशूद्रौप्रयत्नेनस्वानिकर्माणिकारयेत् ।तौहिच्युतौस्वकर्मभ्यःक्षोभयेतामिदंजगत् ४१८॥

प० वैश्यशूद्रौ प्रयत्नेन स्वानि कर्माणि कारयेत् तौ हि च्युतौ स्वकर्मभ्यः क्षोभयेतां इदं जगत् ॥

यो० । राजा वैश्यशूद्रौ प्रयत्नेन स्वानि कर्माणि कारयेत्– हि (यतः) स्वकर्मभ्यः च्युतौ तौ इदं जगत् क्षोभयेताम् ॥

भा० । ता० । वैश्य और शूद्रपर राजा बडे यत्नसे अपने२ कर्मोंको करावे क्योंकि अपने कर्मोंसे पतित येदोनों (न करते) इस जगत्को अनुचित धनके मदसे व्याकुल करदेतेहैं ४१८ ॥

अहन्यहन्यवेक्षेतकर्मान्तान्वाहनानिच । आयव्ययौचनियतावाकरान्कोशमेवच ४१९ ॥

प० अहनि अहनि अवेक्षेत कर्मांतान् वाहनानि च आयव्ययौ च नियतौ आकरान् कोशं एवं च॥

यो० । कर्मांतान् चपुनः वाहनानि नियतौ आयव्ययौ आकरान् चपुनः कोशं राजा अहनि अहनि अवेक्षेत (पश्येत्) ॥

भा० । ता० । प्रारम्भ कियेहुये कर्मोंकी समाप्तिको और हाथीआदि वाहनोंको आज कौनवस्तु आई और कौनगई–और सुवर्ण आदिके आकर (खानि) और कोश– इन सबको राजा प्रतिदिन देखै ४१९ ॥

एवंसर्वानिमान्राजाव्यवहारान्समापयन् । व्यपोह्यकिल्बिषंसर्वंप्राप्नोतिपरमांगतिम् ४२० ॥

इतिमानवेधर्मशास्त्रेभृगुप्रोक्तायांसंहितायामष्टमोऽध्यायः ८ ॥

प० । एवं सर्वान् इमान् राजा व्यवहारान् समापयन् व्यपोह्य किल्बिषं सर्वं प्राप्नोति परमां गतिम्॥

यो० । इमान् सर्वान् व्यवहारान् एवं समापयन् राजा सर्वं किल्बिषं व्यपोह्य परमां गतिं प्राप्नोति ॥

भा० । ता० । इस पूर्वोक्त रीतिसे इन संपूर्ण व्यवहारोंको समाप्त करताहुआ अर्थात् यथार्थ निर्णय करताहुआ राजा सबपापको नष्टकरके परमगतिको प्राप्तहोता है ४२० ॥

इति मन्वर्थ भास्करे अष्टमोऽध्यायः ८ ॥

अथनवमाध्यायः ९ ॥

पुरुषस्यस्त्रियाश्चैवधर्म्येवर्त्मनितिष्ठतोः।संयोगेविप्रयोगेचधर्मान्वक्ष्यामिशाश्वतान् १

प० । पुरुषस्य स्त्रियाः च एवं धर्म्ये वर्त्मनि तिष्ठतोः संयोगे विप्रयोगे च धर्म्यान् वक्ष्यामि शाश्वतान् ॥

यो० । धर्म्ये वर्त्मनि तिष्ठतोः पुरुषस्य चपुनः स्त्रियाः संयोगे चपुनः विप्रयोगे शाश्वतान् धर्मान् वक्ष्यामि ॥

भा० । ता० । धर्मके हितकारी परस्पर प्रीतिके मार्गमें टिकतेहुये स्त्री और पुरुष के संयोग और वियोग में परंपरा से चले आये धर्मोंको कहताहूं– यहां व्यवहार के प्रकरणमें स्त्री पुरुष के धर्मोंका इसलिये वर्णन किया है कि यदि स्त्री अथवा पुरुष परस्परके कर्तव्य धर्म का अवलंबन करें तो दंड से भी राजा उनको उनके धर्म में स्थापन करै १ ॥

अस्वतन्त्राःस्त्रियःकार्य्याःपुरुषैस्वैर्दिवानिशम् । विषयेषुचसज्जन्त्यःसंस्थाप्याआत्मनोवशे २

प० । अस्वतंत्राः स्त्रियः कार्याः पुरुषैः स्वैः दिवानिशं विषयेषु च सज्जंत्यः संस्थाप्याः आत्मनः वशे ॥

यो० । स्वैः पुरुषैः स्त्रियः दिवानिशं अस्वतंत्राः कार्याः चपुनः विषयेषु सज्जंत्यः स्त्रियः आत्मनः वशे संस्थाप्याः ॥

भा० । ता० । अपने पति आदि मनुष्य स्त्रियोंको सदैव अस्वतंत्र (पराधीन) रक्खें–और अनिषिद्ध भी विषयोंमें आसक्त हुई स्त्रियोंको अपने वशमें टिकावें अर्थात् पतिके अनुकूल जैसे रहैं उस प्रकार रक्खें २ ॥

पितारक्षतिकौमारेभर्त्तारक्षतियौवने । रक्षन्तिस्थविरेपुत्रानस्त्रीस्वातन्त्र्यमर्हति ३ ॥

प० । पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने रक्षंति स्थविरे पुत्राः न स्त्री स्वातंत्र्यं अर्हति ॥

यो० । कौमारे पिता रक्षति- यौवने भर्ता रक्षति–स्थविरे पुत्राः रक्षंति-अतः स्त्री स्वातंत्र्यं न अर्हति ॥

भा० । ता० । बालक अवस्थामें स्त्रीकी रक्षा पिता–और यौवन अवस्थामें पति–और वृद्धअवस्थामें पुत्र रक्षा, करते हैं– इससे स्त्री कभी भी स्वतंत्र रहने योग्य नहीं हैं–यहां पर यौवनमें पति की रक्षाका कथन प्रायिक है क्योंकि जिसके पति और पुत्र नहों उसकी रक्षा पिता आदि को भी कर्तव्य है ३ ॥

कालेऽदातापितावाच्योवाच्यश्चानुपयन्पतिः । मृतेभर्त्तरिपुत्रस्तुवाच्योमातुररक्षिता ४ ॥

प० । काले अदाता पिता वाच्यः वाच्यः च अनुपयन् पतिः मृते भर्तरि पुत्रः तु वाच्यः मातुः अरक्षिता ॥

यो० । काले अदाता पिता वाच्यः भवति–अनुपयन् पतिः वाच्यः– भर्त्तरि मृते सति मातुः अरक्षिता पुत्रः वाच्यः (निंदार्हः) भवति ॥

भा० । ता० । समयपर (ऋतुकाल से पूर्व) कन्याको नहीं देताहुआ पिता निंदाके योग्य होताहै क्योंकि इस[1] गौतमके वचनसे ऋतुकाल से पूर्वही कन्याका दान कहा है और ऋतुकालमें स्त्री के संग गमन को न करताहुआ पति–और पतिके मरने पर माताकी रक्षा न करताहुआ पुत्र निंदित होताहै ४ ॥

सूक्ष्मेभ्योऽपिप्रसंगेभ्यःस्त्रियोरक्ष्याविशेषतः । द्वयोर्हिकुलयोःशोकमावहेयुररक्षिताः ५ ॥

प० । सूक्ष्मेभ्यः अपि प्रसंगेभ्यः स्त्रियः रक्ष्याः विशेषतः द्वयोः हि कुलयोः शोकं आवहेयुः अरक्षिताः ॥

यो० । सूक्ष्मेभ्यः अपि प्रसंगेभ्यः स्त्रियः विशेषतः रक्ष्याः–हि (यतः) अरक्षिताः स्त्रियः द्वयोः कुलयोः शोकं आवहेयुः (दापयेयुः) ॥

१ प्रदानं प्रागृतोरिति ॥

भा० । ता० । अल्प २ भी कुसंगों (जिनसे शील नष्टहो) से स्त्रियोंकी विशेषकर रक्षा करनी क्योंकि नहीं की है रक्षा जिनकी ऐसी स्त्री दोनों कुलों (पिता और पति के) को शोक (संताप) दिलाती हैं ५ ॥

इमंहिसर्ववर्णानांपश्यन्तोधर्ममुत्तमम् । यतन्तेरक्षितुंभार्यांभर्त्तारोदुर्बलाअपि ६ ॥

प० । इमं हि सर्ववर्णानां पश्यंतः धर्मं उत्तमं यतंते रक्षितुं भार्यां भर्त्तारः दुर्बलाः अपि ॥

यो० । सर्ववर्णानां इमं उत्तमं धर्मं पश्यंतः दुर्बला: अपि भर्तारः भार्यां रक्षितुं यतंते (यत्नंकुर्वंति) ॥

भा० । ता० । ब्राह्मण आदि चारों वर्णों के इस उत्तम धर्म को देखतेहुये दुर्बल भी पति (अन्धे पंगु आदि) भार्या (स्त्री) की रक्षा करने में यत्नकरते हैं ६ ॥

स्वांप्रसूतिंचरित्रञ्चकुलमात्मानमेवच । स्वञ्चधर्मम्प्रयत्नेनजायांरक्षन्हिरक्षति ७ ॥

प० । स्वां प्रसूतिं चरित्रं च कुलं आत्मानं एवं च स्वं च धर्मं प्रयत्नेन जायां रक्षन् हि रक्षति ॥

यो० । हि (यतः) प्रयत्नेन जायां रक्षन् सन् पुरुषः स्वां प्रसूतिं चरित्रं-कुलं चपुनः आत्मानं चपुनः स्वं धर्मं रक्षति ॥

भा० । जिससे भार्या की रक्षा जो बड़े यत्न से करता है वह अपनी संतान—आचरण—कुल और अपने आत्मा—और अपने धर्म की रक्षा करता है इससे स्त्री की रक्षा करै ॥

ता० । जिससे बड़े यत्न से जाया (पत्नी) की रक्षा करनेवाला मनुष्य असंकीर्ण और विशुद्ध संतानकी उत्पत्ति से अपनी संतानकी—और शिष्टों के आचरण की—और अपने कुलकी और शुद्ध संतान के होने से अपने मरने पर और्द्ध दैहिक कर्म के करने से अपने आत्मा की और—अपने धर्म की—रक्षा करता है क्योंकि जिसकी भार्या शुद्धहो उसी को आधान (अग्निहोत्र) का भी अधिकार है इससे मनुष्य भार्या की रक्षा अवश्यमेव करै ७ ॥

पतिर्भार्यांसम्प्रविश्यगर्भोभूत्वेहजायते । जायायास्तद्धिजायात्वंयदस्यांजायतेपुनः ८ ॥

प० । पतिः भार्यां संप्रविश्य गर्भः भूत्वा इह जायते जायायाः तत् हि जायात्वं यत् अस्यां जायते पुनः ॥

यो० । पतिः भार्यां संप्रविश्य-गर्भः भूत्वा इह (भार्यायां) जायते हि (निश्चयेन) जायायाः जायात्वं तत् भवति यत् अस्यां (जायायां) पुनः जायते (उत्पद्यते) ॥

भा० । पति जायामें प्रविष्टहो और गर्भ होकर भार्यामें पैदा होताहै—और वही जायाका जायापनहै जो पति इस जायामें पुनः (फिर) पैदा होताहै ॥

ता० । पति शुक्ररूप होकर भार्या में प्रवेशकरके और गर्भ रूपहोकर दशवें मासमें पैदा होताहै—क्योंकि इस[1] श्रुति में यह लिखाहै कि पुत्र अपनी आत्मा है और जायाका वही जायापन है कि जिससे पति इस जायामें फिर (दुबारा) पैदा होताहै और यही इसे[2] बह्वृच ब्राह्मणमें लिखाहै कि पति मातारूप जायामें प्रवेश करता है और गर्भ होकर उसी भार्या से फिर नवीन होकर दशवें मास में

---

१ आत्मावै पुत्रनामासि ॥

२ पतिर्जायांप्रविशति गर्भोभूत्वेहमातरं तस्यां पुनर्नवोभूत्वा दशमेमासिजायते तज्जाया जाया भवति यदस्यां जायते पुनः ॥

उत्पन्न होताहै वही जाया जाया होती है जिसमें पति पुनः पैदा होताहै—इससे भार्या की अवश्य रक्षा करनी इसलिये इस श्लोक से जाया शब्द के अर्थकोही मनुजीने स्पष्ट किया है ८ ॥

यादृशंभजतेहिस्त्रीसुतंसूतेतथाविधम् । तस्मात्प्रजाविशुद्ध्यर्थंस्त्रियंरक्षेत्प्रयत्नतः ९ ॥

प० । यादृशं भजते हि स्त्री सुतं सूते तथाविधं तस्मात् प्रजाविशुद्ध्यर्थं स्त्रियं रक्षेत् प्रयत्नतः ॥

यो० । स्त्री यादृशं पुरुषं भजते तथाविधं सुतं सूते तस्मात् प्रजाविशुद्ध्यर्थं प्रयत्नतः स्त्रियं रक्षेत् ॥

भा० । ता० । जैसे (शास्त्रोक्त वा निषिद्ध) पतिको स्त्री भजती है वैसेही पुत्रको पैदाकरती है अर्थात् उत्तमसे उत्तम और नीचसे नीच को—तिससे संतानकी शुद्धिके लिये बड़े यत्नसे स्त्री की रक्षा करै ९ ॥

नकश्चिद्योषितःशक्तःप्रसह्यपरिरक्षितुम् । एतैरुपाययोगैस्तुशक्यास्ताःपरिरक्षितुम् १०

प० । न कश्चित् योषितः शक्तः प्रसह्य परिरक्षितुं एतैः उपाययोगैः तु शक्याः ताः परिरक्षितुम् ॥

यो० । कश्चित् अपि पुरुषः प्रसह्य योषितः परिरक्षितुं नशक्तः एतैः (वक्ष्यमाणैः) उपाययोगैः तु ताः स्त्रियः परिरक्षितुं शक्याः भवंति ॥

भा० । ता० । कोई भी मनुष्य बलसे स्त्रियोंकी रक्षा करनेको समर्थ नहीं होता—परंतु इनउपायोंसे (जो आगे कहेंगे) वे स्त्री रक्षाकरनेको शक्य हैं अर्थात् इन उपायों से मनुष्य इनकी रक्षा करसकता है १० ॥

अर्थस्यसंग्रहेचैनांव्ययेचैवनियोजयेत् । शौचेधर्मेऽन्नपक्त्यांचपारिणाह्यस्यचेक्षणे ११ ॥

प० । अर्थस्य संग्रहे च एनां व्यये च एव नियोजयेत् शौचे धर्मे अन्नपक्त्यां च पारिणाह्यस्य च ईक्षणे ॥

यो० । पुरुषः एनां (भार्यां) अर्थस्य (धनस्य) संग्रहे चपुनः व्यये शौचे—धर्मे चपुनः अन्नपक्त्यां (अन्नपाके) चपुनः पारिणाह्यस्य (गृहसामग्र्याः) ईक्षणे (दर्शने) नियोजयेत् ॥

भा० । ता० । उनही रक्षा के उपायोंको कहते हैं कि मनुष्य अपनी स्त्रीको धनके संग्रह और व्यय (खर्च) में—और द्रव्य और देहकी शुद्धिमें—और पतिकी सेवा आदि धर्ममें और अन्न के पाक (भोजन बनाना) में और शय्या—आसन—कुंड— कटाह आदि घरकी सामग्रियों के देखने में—नियुक्त करै—अर्थात् इनमें लगने से स्त्रीका चित्त अन्यथा न होगा ११ ॥

अरक्षितागृहेरुद्धाःपुरुषैराप्तकारिभिः । आत्मानमात्मनायास्तुरक्षेयुस्ताःसुरक्षिताः १२

प० । अरक्षिताः गृहे रुद्धाः पुरुषैः आप्तकारिभिः आत्मानं आत्मना याः तु रक्षेयुः ताः सुरक्षिताः ॥

यो० । आप्तकारिभिः पुरुषैः गृहे रुद्धाः स्त्रियः अरक्षिताः भवंति—तुपुनः याः स्त्रियः आत्मना आत्मानं रक्षेयुः ताः सुरक्षिताः भवंति ॥

भा० । साधु सेवकों से घरमें रोकीहुई स्त्री रक्षित नहीं होती और जो स्त्री अपनी बुद्धिसे ही अपनी रक्षाकरती हैं वे भलीप्रकार रक्षित होती हैं ॥

ता० । आप्त (सज्जन) आज्ञाके करनेवाले पुरुषों के घरके भीतर रुद्ध (रोकीहुई) भी स्त्री रक्षित (रक्षाकरने योग्य) नहीं होती अर्थात् दुष्टशील होने से अपनी रक्षाकर नहीं सकती और जो स्त्री

धर्म की ज्ञाताहोनेसे अपनी बुद्धिसेही अपने आत्माकी रक्षा करतीहैं वे स्त्री भलीप्रकार रक्षित होती हैं—इससे धर्म अधर्म के फल स्वर्ग और नरक आदि के उपदेशसे स्त्रियों का संयम करना—यही स्त्रियोंकी रक्षाका मुख्य उपाय है १२ ॥

पानंदुर्जनसंसर्गःपत्याचविरहोऽटनम् । स्वप्नोऽन्यगेहवासश्चनारीसंदूषणानिषट् १३ ॥

प० । पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहः अटनं स्वप्नः अन्यगेहवासः च नारीसंदूषणानि षट् ॥

यो० । पानं—दुर्जनसंसर्गः चपुनः पत्या विरहः अटनं—स्वप्नः चपुनः अन्यगेहवासः—इमानिषट् नारीसंदूषणानि—भवंति ॥

भा० । ता० । मदिराकापीना—दुर्जनोंका संग—पतिसे वियोग—इधर उधर भ्रमण—विना समय सोना—अन्य के घर में वास ये छः स्त्रियोंके दूषण हैं अर्थात् व्यभिचार आदि के पैदाकरनेवाले होते हैं तिससे इन दूषणों से स्त्रियोंकी रक्षा करै १३ ॥

नैतारूपंपरीक्षन्तेनासांवयसिसंस्थितिः । सुरूपंवाविरूपंवापुमानित्येवभुञ्जते १४ ॥

प० । न एताः रूपं परीक्षंते न आसां वयसि संस्थितिः सुरूपं वा विरूपं वा पुमान् इति एव भुंजते ॥

यो० । एताः (स्त्रियः) रूपं न परीक्षंते—एषां वयसि (यौवनादौ) संस्थितिः (आदरः) न भवति—किंतु पुमान् इति बुद्ध्वाएव सुरूपं वा विरूपं भुंजते ॥

भा० । ता० । ये स्त्री रूपकी परीक्षा नहीं करतीं और न इनका आदर यौवन आदि अवस्था में है किंतु पुरुषमात्रको देखकरही ये स्त्री भोगती हैं अर्थात् जैसे तैसे पुरुषका देखनाही इनकी रति का संपादक होताहै १४ ॥

पौंश्चल्याच्चलचित्ताच्चनैस्नेह्याच्चस्वभावतः । रक्षितायत्नतोऽपीहभर्तृष्वेताविकुर्वते १५

प० । पौंश्चल्यात् चलचित्तात् च नैस्नेह्यात् च स्वभावतः रक्षिताः यत्नतः अपि इह भर्तृषु एताः विकुर्वते ॥

यो० । यत्नतः रक्षिताः अपि एताः पौंश्चल्यात् चपुनः चलचित्तात् चपुनः स्वभावतः नैस्नेह्यात् भर्तृषु विकुर्वते (विकारं कुर्वंति) ॥

भा० । ता० । यत्नसे रक्षाकी हुई भी स्त्री—पुरुष के देखने से ही भोग आदि की अभिलाषा—चित्तकी अस्थिरता—और स्वभाव से स्नेहकी हीनता—से अपने भर्ताओं में विकारको प्राप्त होती हैं अर्थात् पतिके प्रतिकूल आचरण करती हैं १५ ॥

एवंस्वभावंज्ञात्वाऽऽसांप्रजापतिनिसर्गजम् । परमंयत्नमातिष्ठेत्पुरुषोरक्षणंप्रति १६ ॥

प० । एवं स्वभावं ज्ञात्वा आसां प्रजापतिनिसर्गजं परमं यत्नं आतिष्ठेत् पुरुषः रक्षणं प्रति ॥

यो० । प्रजापतिनिसर्गजं एषां एवं स्वभावं ज्ञात्वा पुरुषः रक्षणं प्रति परमं यत्नं आतिष्ठेत् (कुर्यात्) ॥

भा० । ता० । ब्रह्मा की सृष्टिकाल से पैदाहुये इनके ऐसे स्वभाव को जानकर इनकी रक्षा में मनुष्य परम यत्न करै १६ ॥

शय्यासनमलंकारंकामंक्रोधमनार्जवम् । द्रोहभावंकुचर्यांचस्त्रीभ्योमनुरकल्पयत् १७ ॥

प० । शय्यासनं अलंकारं कामं क्रोधं अनार्जवं द्रोहभावं कुचर्यां च स्त्रीभ्यः मनुः अकल्पयत् ॥

यो० । शय्यासनं अलंकारं—कामं क्रोधं—अनार्जवं—द्रोहभावं—चपुनः कुचर्यां—मनुः स्त्रीभ्यः अकल्पयत् (अर्चयत्) ॥

भा० । ता० । शय्यापर बैठना—भूषणों में प्रीति—कामदेव—क्रोध—कुटिलता—द्रोह—निंदित आचरण—ये सब मनुजी ने स्त्रियोंके लिये रचे हैं इससे स्त्री यत्नसे रक्षाकरने योग्य हैं १७ ॥

नास्तिस्त्रीणांक्रियामन्त्रैरितिधर्मेव्यवस्थितिः।निरिन्द्रियाह्यमन्त्राश्चस्त्रियोऽनृतमितिस्थितिः१८

प० । न अस्ति स्त्रीणां क्रिया मंत्रैः इति धर्मे व्यवस्थितिः निरिंद्रियाः हि अमंत्राः च स्त्रियः अनृतं इति स्थितिः ॥

यो० । स्त्रीणां मंत्रैः क्रिया न अस्ति इति धर्मे व्यवस्थितिः अस्ति— निरिंद्रियाः चपुनः अमंत्राः स्त्रियः अनृतं (अनृत रूपाः) इति स्थितिः (धर्मशास्त्रमर्यादास्तीत्यर्थः) ॥

भा० । स्त्रियोंका मंत्रों से संस्कार नहीं होता यही शास्त्रकी मर्यादा है और न इनको धर्म का ज्ञान होता और न ये मंत्रको जानती हैं—इससे झूंठकेसमान अमंगलरूपहैं—यही शास्त्रकी मर्यादाहै ॥

ता० । स्त्रियोंके जातकर्म आदि संस्कार मंत्रों से नहीं होते यह शास्त्रकी धर्म के विषयमें मर्यादा है इसीसे मंत्रों सहित संस्कारोंके न होनेसे इनका अंतःकरण निष्पाप नहींहोता और धर्ममें प्रमाणश्रुति और स्मृतिसे हीन होने से धर्मका भी ज्ञान स्त्रियोंको नहीं होता—और पापके दूरकरनेवाले मंत्रोंके जपसे भी स्त्री हीन होती हैं अर्थात् दैवगति से पापके होनेपर उसका प्रायश्चित्त नहीं करसकतीं—इन कारणों से स्त्री अनृत (झूंठ) के समान अशुभ हैं यही शास्त्र की मर्यादा है—तिससे ये स्त्री यत्नसे रक्षाकरने योग्य हैं १८ ॥

तथाचश्रुतयोबह्वयोनिगीतानिगमेष्वपि।स्वालक्षण्यपरीक्षार्थंतासांशृणुतनिष्कृतीः १९

प० । तथा च श्रुतयः बह्वयः निगीताः निगमेषु अपि स्वालक्षण्यपरीक्षार्थं तासां शृणुत निष्कृतीः ॥

यो० । तथाच बह्वयः श्रुतयः निगमेषु अपि स्वालक्षण्यपरीक्षार्थं निगीताः तासां श्रुतीनां मध्ये निष्कृतीः श्रुतीः (श्रुतिं) यूयं शृणुत ॥

भा० । वेदोंमें बहुतसी श्रुतिकही हैं उनमें व्यभिचारकी परीक्षा (ज्ञान) के जतानेवाली जो श्रुति है उसको तुम सुनो ॥

ता० । व्यभिचार करना स्त्रियोंका स्वभाव होताहै इसमें श्रुतिरूप प्रमाणको कहते हैं कि व्यभिचार ज्ञानकेलिये बहुतसी श्रुति वेदमें पढ़ीहैं कि यह हमनहीं जानसकते ब्राह्मण है वा अब्राह्मण—उन श्रुतियोंमें जो श्रुति व्यभिचारके प्रायश्चित्त बोधकहै अर्थात् व्यभिचारका प्रायश्चित्त जिनमें कहा है उन श्रुतियोंको तुमसुनो वहश्रुति यद्यपि एकही है इससे बहुवचन कहना असंगत है तथापि यहां बहुवचन (श्रुतीः) से एकही श्रुतिलेनी क्योंकि इस शास्त्रसे (अम्) इस एक वचनको (शस्) यह बहुवचन व्यत्ययसे होगया है [१] १९ ॥

यन्मेमाताप्रलुलुभेविचरन्त्यपतिव्रता । तन्मेरेतःपितावृक्तामित्यस्यैतन्निदर्शनम् २०॥

प० । यत् मे माता प्रलुलुभे विचरंती अपतिव्रता तत् मे रेतः पिता वृक्तां इति अस्य एतत् निदर्शनम् ॥

---

१ सुप्तिङुपग्रहलिंगनराणां कालहलच्स्वरकर्तृयङांच । व्यत्ययमिच्छतिशास्त्रकृदेषां सोपिचसिद्ध्यतिबाहुलकेन—इससे सूपका व्यत्यय होताहै ॥

यो० । यत् अपतिव्रता विचरंती मे माता प्रलुलुभे तत् रेतः मे पिता वृङ्क्तां इति एतत् अस्य निदर्शनं (दृष्टांतः) ॥

भा० । अन्य मनुष्योंके घरोंमें विचरती और अपतिव्रता मेरीमाता जो परपुरुषमें मनकोलुभाती भई व्यभिचारसे दुष्ट उसवीर्यको मेरेपिता शुद्धकरो यहीमन्त्र व्यभिचारका उदाहरण है ॥

ता० । कोई पुत्र अपनी माताके व्यभिचारको जानकर कहता है कि अपतिव्रता मेरीमाता (जो स्त्री मन वाणी कर्मसे पतिसे भिन्न पुरुषकी कामना न करै उसे पतिव्रता कहतेहैं)–अन्यके घरोंमें जातीहुई अन्य पुरुषोंमें मनको लुभातीभई वह जो परपुरुषके संकल्पसे भ्रष्टवीर्य है उसवीर्यको मेरापिता शुद्धकरो–स्त्रीके व्यभिचार शीलहोनेका यही उदाहरण है अर्थात् इसश्रुतिके तनिपादोंमें पढ़ाहै और यहमन्त्र चातुर्मास्य आदिमें पढ़ाहै २० ॥

ध्यायत्यनिष्टंयत्किंचित्पाणिग्राहस्यचेतसा । तस्यैषव्यभिचारस्यनिह्नवःसम्यगुच्यते २१

प० । ध्यायंती अनिष्टं यत् किंचित् पाणिग्राहस्य चेतसा तस्य एषः व्यभिचारस्य निह्नवः सम्यक् उच्यते ॥

यो० । चेतसा पाणिग्राहस्य यत्किंचित् अनिष्टं ध्यायन्ती मे माता प्रलुलुभे तस्य व्यभिचारस्य निह्नवः (प्रायश्चित्तं) एषः (पूर्वोक्तमन्त्रः) मन्वादिभिः सम्यक् उच्यते ॥

भा० । ता० । अब इसीमन्त्रको मानस व्यभिचारका भी प्रायश्चित्त वर्णन करतेहैं कि पतिको अप्रिय जो परपुरुषका गमन उसका ध्यान करतीहुई जो मेरीमाता लुभाई उसमानस व्यभिचार का भी यहीमंत्र भलीप्रकार शोधकहै यहमनु आदि कहतेहैं–इसश्लोकमें मातापद पढ़ा है इससे यह प्रायश्चित्त पुत्रही करै मातानहीं २१ ॥

यादृग्गुणेनभर्त्रास्त्रीसंयुज्येतयथाविधि । तादृग्गुणासाभवतिसमुद्रेणेवनिम्नगा २२ ॥

प० । यादृग्गुणेन भर्त्रा स्त्री संयुज्यते यथाविधि तादृग्गुणा सा भवति समुद्रेण इव निम्नगा ॥

यो० । स्त्री यादृग्गुणेन भर्त्रासह यथाविधि संयुज्येत सा स्त्री समुद्रेण संयुक्ता निम्नगा इव तादृग्गुणा एव भवति ॥

भा० । ता० । स्त्री विवाहकी विधिसे जैसे गुणी (साधु वा असाधु) पतिकेसंग संयुक्तहोती है वहस्त्री अपने पतिके समान गुणवती इसप्रकार होजाती है जैसे समुद्रके संगसे मिष्टनदी भी खारी होजातीहै–इससे अपने समान गुणोंकी प्राप्तिकेलिये पुरुष स्त्रीकी रक्षाकरै २२ ॥

अक्षमालावसिष्ठेनसंयुक्ताऽधमयोनिजा । शारंगीमन्दपालेनजगामाभ्यर्हणीयताम् २३

प० । अक्षमाला वसिष्ठेन संयुक्ता अधमयोनिजा शारंगी मन्दपालेन जगाम अभ्यर्हणीयताम् ॥

यो० । वसिष्ठेन संयुक्ता अधमयोनिजा अक्षमाला मन्दपालेन संयुक्ता शारंगी अभ्यर्हणीयतां जगाम (प्राप्तवान्)॥

भा० । ता० । अधम योनिमें पैदाहुई भी अक्षमाला वसिष्ठके संग विवाह होनेसे और मंदपाल ऋषिके संग विवाह होनेपर शारंगी (चटका) पूज्यताको प्राप्तहोगई २३ ॥

एताश्चान्याश्चलोकेऽस्मिन्नपकृष्टप्रसूतयः । उत्कर्षंयोषितःप्राप्ताःस्वैःस्वैर्भर्तृगुणैःशुभैः २४

प० । एताः च अन्याः च लोके अस्मिन् अपकृष्टप्रसूतयः उत्कर्षं योषितः प्राप्ताः स्वैः स्वैः भर्तृगुणैः शुभैः ॥

यो० एताः चपुनः अन्याः अपकृष्टप्रसूतयः योषितः अस्मिन् लोके शुभैः स्वैः स्वैः भर्तृगुणैः उत्कर्षं प्राप्ताः ॥

भा० । ता० । अधम है जन्म जिनका ऐसी ये दोनोंस्त्री और सत्यवती आदि अन्यस्त्री अपने२ पतियोंके गुणोंसे इसलोकमें उत्तमताको प्राप्तहुईं २४ ॥

एषोदितालोकयात्रानित्यंस्त्रीपुंसयोःशुभा । प्रेत्येहचसुखोदर्कान्प्रजाधर्मान्निबोधत २५ ॥

प० । एषा उदिता लोकयात्रा नित्यं स्त्रीपुंसयोः शुभा प्रेत्य इह च सुखोदर्कान् प्रजाधर्मान् निबोधत ॥

यो० । नित्यं शुभा स्त्रीपुंसयोः एषा लोकयात्रा उदिता प्रेत्यचपुनः इहसुखोदर्कान् प्रजाधर्मान् यूयं निबोधत (शृणुत) ॥

भा० । ता० । सदैव शुभदायक स्त्री और पुरुषका यह लोकाचार हमनेकहा—अब परलोक और इसलोकमें सुखदायी प्रजा (सन्तान) के धर्मोंको सुनो २५ ॥

प्रजनार्थंमहाभागाःपूजार्हागृहदीप्तयः । स्त्रियःश्रियश्चगेहेषुनविशेषोऽस्तिकश्चन २६

प० । प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हाः गृहदीप्तयः स्त्रियः श्रियः च गेहेषु न विशेषः अस्ति कश्चन ॥

यो० । यस्मात् प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हाः गृहदीप्तयः स्त्रियः भवन्ति तस्मात् स्त्रियः चपुनः श्रियः गेहेषु कश्चन विशेषः न अस्ति ॥

भा० । ता० । यद्यपि स्त्रियोंकी बहुत दोषोंसे रक्षाकरनी कहीहै तथापि येस्त्री गर्भसे पुत्रोंको उत्पन्न करती हैं इससे महाभागिन (अनेक कल्याणोंसे युक्त) और वस्त्र भूषणआदिसे सन्मानके योग्य—और घरकी शोभाजनक होतीहैं तिससे लक्ष्मी और स्त्रीका घरोंमें कुछ विशेष नहींहोता अर्थात् जैसे लक्ष्मीकेविना घरकी शोभानहीं ऐसेही स्त्रीके विना भी नहीं होती २६ ॥

उत्पादनमपत्यस्यजातस्यपरिपालनम् । प्रत्यहंलोकयात्रायाःप्रत्यक्षंस्त्रीनिबन्धनम् २७ ॥

प० उत्पादनं अपत्यस्य जातस्य परिपालनं प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम् ॥

यो० । अपत्यस्य उत्पादनं जातस्य परिपालनं लोकयात्रायाः प्रत्यहं प्रत्यक्षं एतत्सर्वं स्त्रीनिबन्धनंभवति ॥

भा० । ता० । सन्तानकी उत्पत्ति—और उत्पन्नहुई सन्तानकी पालना करनी—और प्रतिदिन लोकयात्रा (अतिथि मित्रबन्धुआदिका भोजनआदि (लोकव्यवहार) को प्रत्यक्ष (देखना) करना] इनसबका कारण स्त्रीही होती है २७ ॥

अपत्यंधर्मकार्याणिशुश्रूषारतिरुत्तमा । दाराधीनस्तथास्वर्गःपितॄणामात्मनश्चह२८ ॥

प० । अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिः उत्तमा दाराधीनः तथा स्वर्गः पितॄणां आत्मनः च ह ॥

यो० । अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा उत्तमारतिः दाराधीना तथा पितॄणां चपुनः आत्मनः स्वर्गः दाराधीनः भवति ॥

भा० । ता० । संतानकी उत्पत्ति—अग्निहोत्र आदि धर्म के कार्य—और शुश्रूषा (सेवा) और पितर और अपने आत्माको स्वर्ग की प्राप्ति—ये सब स्त्री के ही आधीन हैं—यद्यपि पहिले श्लोक में भी संतान कहआये हैं तथापि संतान का फिर (दुबारा) कहना इसलिये है कि संतानही सब कार्यों में मुख्य है २८ ॥

पतिंयानाभिचरतिमनोवाग्देहसंयता॥साभर्तृलोकानाप्नोतिसद्भिःसाध्वीतिचोच्यते २९

प० । पतिं याँ नँ अभिचरति मनोवाग्देहसंयता सा भर्तृलोकान् आप्नोति सद्भिः साध्वी इति चँ उच्यते ॥

यो० । या स्त्री मनोवाग्देहसंयता सती पतिं न अभिचरति सा स्त्री भर्तृलोकान् आप्नोति चपुनः सद्भिः साध्वी इति उच्यते ॥

भा० । ता० । मन वाणी देह हैं वशमें जिसके ऐसी जो स्त्री मन वाणी देहसे अपने पति का व्यभिचार (अवलंघन) नहीं करती वह स्त्री अपने पतिके संग स्वर्ग आदि लोकोंको प्राप्त होती है और सज्जन मनुष्य इसलोक में भी उसको साध्वी कहते हैं २९ ॥

व्यभिचारात्तुभर्तुःस्त्रीलोकेप्राप्नोतिनिन्द्यताम् । सृगालयोनिंचाप्नोतिपापरोगैश्चपीड्यते ३०

प० । व्यभिचारात् तुँ भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निंद्यतां सृगालयोनिं चँ आप्नोति पापरोगैः चँ पीड्यते ॥

यो० । भर्तुः व्यभिचारात् स्त्री लोके निंद्यतां प्राप्नोति चपुनः सृगालयोनिं आप्नोति–चपुनः पापरोगैः पीड्यते पीडां प्राप्नोति) ॥

भा० । ता० । पतिके व्यभिचार से स्त्री जगत्में निंदाको और जन्मांतर में सृगाल (सियार) की योनिको प्राप्त होती है–और कुष्ठ आदि पाप रोगों से पीडित होती है–ये दोनों श्लोक पांच अध्याय के स्त्री धर्म प्रकरण में भी पढ़े हैं तथापि महान् प्रयोजन के लिये पुनः पढ़े हैं ३० ॥

पुत्रंप्रत्युदितंसद्भिःपूर्वजैश्चमहर्षिभिः । विश्वजन्यमिमंपुण्यमुपन्यासंनिबोधत ३१ ॥

प० । पुत्रं प्रति उदितं सद्भिः पूर्वजैः चँ महर्षिभिः विश्वजन्यं इमं पुण्यं उपन्यासं निबोधत ॥

यो० । सद्भिः चपुनः पूर्वजैः महर्षिभिः पुत्रं प्रति उदितं विश्वजन्यं पुण्यं इमं उपन्यासं यूयं निबोधत (शृणुत) ॥

भा० । ता० । पहिले सज्जन पुरुष और बड़े २ ऋषियों ने पुत्रके लिये कहेहुये और जगत्के हितकारी और पवित्र इस (जो आगे वर्णन करते हैं) विचारको तुम सुनो ३१ ॥

भर्तुःपुत्रंविजानंतिश्रुतिद्वैधंतुभर्तरि । आहुरुत्पादकंकेचिदपरेक्षेत्रिणंविदुः ३२ ॥

प० । भर्तुः पुत्रं विजानंति श्रुतिद्वैधं तु भर्तरि आहुः उत्पादकं केचित् अपरे क्षेत्रिणं विदुः ॥

यो० । ऋषयः भर्तुः पुत्रं विजानंति (मन्यंते) तुपुनः भर्तरि श्रुतिद्वैधं अस्ति केचित् अवोढारं अपि उत्पादकं अपरे अनुत्पादकं अपि क्षेत्रिणं (वोढारं) पुत्रिणं आहुः कथयंति ॥

भा० । ता० । स्त्री का जो पति उसीका पुत्रहोना है मुनियों ने यही कहा है–और कोई एक यह कहते हैं कि विवाहे हुये पतिसे भिन्न भी जो पैदाकरनेवाला (देवर आदि) उसीका पुत्र कहते हैं–और अन्यमुनि अन्य से पैदाहुआ भी पुत्र क्षेत्री (विवाहा) का ही होताहै–परंतु श्रेष्ठ वही है जो पुत्र अपने से अपनी स्त्री में हो ३२ ॥

क्षेत्रभूतास्मृतानारीबीजभूतःस्मृतःपुमान् । क्षेत्रबीजसमायोगात्संभवःसर्वदेहिनाम् ३३

प० । क्षेत्रभूता स्मृता नारी बीजभूतः स्मृतः पुमान् क्षेत्रबीजसमायोगात् संभवः सर्वदेहिनाम् ॥

यो० । नारी क्षेत्रभूता स्मृता–पुमान् बीजभूतः स्मृतः मन्वादिभिरितिशेषः क्षेत्रबीजसमायोगात् सर्वदेहिनां संभवः (भवति) ॥

भा० । स्त्री क्षेत्रके समानहोतीहै और पुरुष बीजके समान कहा है—और क्षेत्र और बीज के मेलसे संपूर्ण देहधारियोंकी उत्पत्ति होती है ॥

ता० । व्रीही आदि के उत्पत्ति के स्थानको क्षेत्र कहते हैं उसी के समान स्त्रीको भी मुनियों ने कहा है—और व्रीही आदि के बीजकी समान पुरुष (पुरुषका बीज) को कहाहै—और क्षेत्र और बीज का समागम होने से संपूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति होती है—इससे क्षेत्र और बीज दोनोंको उत्पत्तिमें कारणता होनेसे यह विवाद ठीक है कि जिसका क्षेत्र उसका पुत्र होता है अथवा जिसका बीज उसका ३३ ॥

विशिष्टंकुत्रचिद्बीजंस्त्रीयोनिस्त्वेवकुत्रचित् । उभयंतुसमंयत्रसाप्रसूतिःप्रशस्यते ३४

प० । विशिष्टं कुत्रचित् बीजं स्त्रीयोनिः तु एव कुत्रचित् उभयं तु समं यत्र सा प्रसूतिः प्रशस्यते

यो० । कुत्रचित् बीजं विशिष्टं कुत्रचित् स्त्रीयोनि विशिष्टा भवति यत्र तु उभयं (योनिबीजे) समं (तुल्यं) भवति सा प्रसूतिः प्रशस्यते (अप्राकथ्यते) मन्वादिभिरितिशेषः ॥

भा० । कहीं २ तो बीज प्रधान है और कहीं २ क्षेत्र और जहां बीज क्षेत्र दोनों एककेहीहों वही संतान मनु आदि ने श्रेष्ठकही है ॥

ता० । कहीं २ तो बीज उत्तम समझागया है जैसा कि जिस बीज के लिये क्षेत्र बोयाजाता है इसै न्यायसे परकी स्त्री में पैदाहुआ भी बुध चंद्रमाकाही पुत्रहुआ और व्यास ऋष्यशृंग आदि भी उनकेही पुत्रहुये जिनका बीजथा—और कहीं २ क्षेत्र कीही प्रधानता है क्योंकि मृत मनुष्यकी तल्प (शय्या) पर जो परपुरुष से पैदाहो वह उसकाही पुत्रहोताहै जिसका क्षेत्रथा यही बात इसै वचन से मनुजी कहेंगे—इसी से विचित्र वीर्य से क्षत्रिय जातिकी स्त्रीमें पैदाहुये धृतराष्ट्र आदि क्षत्रियही हुये—और जहां पर बीज और योनि दोनों समान हैं अर्थात् वही पैदाकरनेवाला और वही विवाहने वाला है—वही पुत्र मनु आदि ने श्रेष्ठ कहा है ३४ ॥

बीजस्यचैवयोन्याश्चबीजमुत्कृष्टमुच्यते । सर्वभूतप्रसूतिर्हिबीजलक्षणलक्षिता ३५ ॥

प० । बीजस्य च एव योन्याः च बीजं उत्कृष्टं उच्यते सर्वभूतप्रसूतिः हि बीजलक्षणलक्षिता ॥

यो० । बीजस्य चपुनः योन्याः (अनयोर्मध्ये) बीजं उत्कृष्टं उच्यते हि (यत.) सर्वभूतप्रसूतिः बीजलक्षणलक्षिता भवति ॥

भा० । ता० । बीज और योनि (क्षेत्र) इन दोनों में बीजही प्रधान कहा है क्योंकि प्राणियों के प्रारम्भ कियेहुये संपूर्ण पदार्थों (अन्नआदि) की उत्पत्ति बीजकेही लक्षण (चिह्न वा वर्ण) से लक्षित (संयुक्त) होतीहै ३५ ॥

यादृशंतूप्यतेबीजंक्षेत्रेकालोपपादिते । तादृग्रोहतितत्तस्मिन्बीजंस्वैर्व्यञ्जितंगुणैः ३६

प० यादृशं तु उप्यते बीजं क्षेत्रे कालोपपादिते तादृक् रोहति तत् तस्मिन् बीजं स्वैः व्यंजितं गुणैः ॥

यो० । कालोपपादिते क्षेत्रे यादृशं बीजं उप्यते—तत् बीजं तस्मिन् क्षेत्रे स्वैः गुणैः व्यंजितं सत् तादृक् रोहति ॥

भा० । ता० । समयपर संपादनकिये (बनायेहुये) खेतमें जिसजातिका बीज बोयाजाता है—

१ यदर्थमुप्तायाम्—उत्पन्नोबीजिनोबुधः ॥
२ यस्तल्पजः प्रमीतस्य ॥

अपने वर्णआदि गुणों से संयुक्तही वहबीज वैसाही उसखेत में पैदाहोता है अर्थात् अन्यसे अन्य नहीं होता ३६ ॥

इयंभूमिर्हिभूतानांशाश्वतीयोनिरुच्यते।नचयोनिगुणान्कांश्चिद्बीजंपुष्यतिपुष्टिषु ३७

प० । इयं भूमिः हि भूतानां शाश्वती योनिः उच्यते न च योनिगुणान् कांश्चित् बीजं पुष्यति पुष्टिषु ॥

यो० । हि (निश्चये) इयं एव भूमिः भूतानां शाश्वती योनिः (मन्वादिभिः) उच्यते—अतः बीजं—कांश्चित् योनिगुणान् पुष्टिषु न पुष्यति (नभजते) ॥

भा० । ता० । यह भूमिही सब प्राणियोंके बोयेहुये तरु गुल्मआदिकी सदासे उत्पत्तिकी योनि (कारण) है और कोई भी योनिके मिट्टीआदिके रूपआदि धर्मोंको उत्पत्तिके समय बीज प्राप्तनहीं होता तिससे योनिके गुणोंका अनुवर्तन न होनेसे क्षेत्रकी मुख्यता नहीं होसकती और ३७ ॥

भूमावप्येककेदारेकालोप्तानिकृषीवलैः।नानारूपाणिजायन्तेबीजानीहस्वभावतः ३८ ॥

प० । भूमौ अपि एककेदारे कालोप्तानि कृषीवलैः नानारूपाणि जायन्ते बीजानि इह स्वभावतः ॥

यो० । भूमौ अपि एककेदारे कृषीवलैः कालोप्तानि बीजानि इह नानारूपाणि स्वभावतः जायंते ॥

भा० । ता० । भूमिमें भी समयपर किसानोंने एकखेतमें बोयेहुये बीज - बीजके स्वभावानुसार नानारूप (मूंग धानआदि) के होतेहैं अर्थात् पृथिवी एकहै इसमें एकरूप नहींहोते ३८ ॥

व्रीहयःशालयोमुद्गास्तिलामाषास्तथायवाः। यथाबीजंप्ररोहन्तिलशुनानीक्षवस्तथा ३९ ॥

प० । व्रीहयः शालयः मुद्गाः तिलाः माषाः तथा यवाः यथाबीजं प्ररोहन्ति लशुनानि इक्षवः तथा ॥

यो० । व्रीहयः शालयः मुद्गाः तिलाः माषाः तथा यवाः लशुनानि तथा इक्षवः यथाबीजं प्ररोहंति ॥

भा० । ता० । सांठीधान—शालि (कलम वा चावल) मूंग—तिल—माष (उड़द)—लहशन और ईख येसब बीजके अनुसारही जमते हैं और नानारूपके होजाते हैं ३९ ॥

अन्यदुप्तंजातमन्यदित्येतन्नोपपद्यते। उप्यतेयद्धियद्बीजंतत्तदेवप्ररोहति ४० ॥

प० । अन्यत् उप्तं जातं अन्यत् इति एतत् न उपपद्यते उप्यते यत् हि यत् बीजं तत् तत् एव प्ररोहति ॥

यो० । अन्यत् उप्तं अन्यत् जातं इति एतत् न उपपद्यते हि (यतः) यत् यत् बीजं उप्यते तत् तत् एव प्ररोहति (उत्पद्यते) ॥

भा० । ता० । अन्यबीज बोयाजाय और अन्य पैदाहोय अर्थात् व्रीहिबोनेसे मूंगपैदाहो—यहबात नहींहै तिससे जो बीज बोयाजाता है वही पैदाहोताहै इससे जैसे खेतोंमें बीजकीही प्रधानता है इसीप्रकार मनुष्योंमें भी बीजकीही प्रधानता है ४० ॥

तत्प्राज्ञेनविनीतेनज्ञानविज्ञानवेदिना । आयुष्कामेनवप्तव्यंनजातुपरयोषिति ४१ ॥

प० । तत् प्राज्ञेन विनीतेन ज्ञानविज्ञानवेदिना आयुष्कामेन वप्तव्यं न जातु परयोषिति ॥

यो० । तत् (तस्मात्) प्राज्ञेन विनीतेन ज्ञानविज्ञानवेदिना आयुष्कामेन पुरुषेण जातु (कदाचिदपि) परयोषिति न वप्तव्यम्—बीजमितिशेषः ॥

भा० । ता० । तिससे बुद्धिमान् और विशेषकर नम्र और वेदवेदांगोंके ज्ञाता—और अपनी अव-

स्थाका अभिलाषी पुरुष कदाचित् भी अन्यकी स्त्रीमें बीजको न बोवे अर्थात् व्यभिचार न करे ४१॥

अत्रगाथावायुगीताःकीर्तयन्तिपुराविदः।यथाबीजंनवप्तव्यंपुंसापरपरिग्रहे ४२ ॥

प० अत्र गाथाः वायुगीताः कीर्तयन्ति पुराविदः यथा बीजं न वप्तव्यं पुंसा परपरिग्रहे ॥

यो० । अत्र (विषये) पुराविदः वायुगीताः गाथाः तथा कीर्तयन्ति यथा परपरिग्रहे पुंसा बीजं न वप्तव्यम् ॥

भा० । ता० । बीतेहुये समयके ज्ञाता इसविषयमें वायुदेवताकी कहीहुई कथाओंको अर्थात् वेदोक्त वचनोंको कहतेहैं कि मनुष्य कभीभी दूसरे मनुष्यकी स्त्रीमें बीजको न बोवे अर्थात् अपनीही विवाहित स्त्रीमें रतरहे ४२ ॥

नश्यतीषुर्यथाविद्धःखेविद्धमनुविद्ध्यतः।तथानश्यतिवैक्षिप्रंबीजंपरपरिग्रहे ४३ ॥

प० । नश्यति इषुः यथा विद्धः खे विद्धं अनुविद्ध्यतः तथा नश्यति वै क्षिप्रं बीजं परपरिग्रहे ॥

यो० । विद्धं मृगं अनुविद्ध्यतः पुरुषस्य इषुः (बाण.) यथा नश्यति तथा परपरिग्रहे बीजं क्षिप्रं नश्यति (निष्फलो भवति) ॥

भा० । ता० । जैसे अन्य पुरुषके बींधेहुये मृगके शरीरमें उसीछिद्रमें बाणको फेंकतेहुये मनुष्यका बाण निष्फल होताहै क्योंकि पहिले मारनेवालेकोही उसके मूल्यका लाभहोता है—इसीप्रकार परकीस्त्रीमें बोयाहुया बीजभी नष्टहोजाता है क्योंकि गर्भ ग्रहणके अनन्तर क्षेत्र (स्त्री) वालेकोही शीघ्रफलका लाभहोता है उक्त बोनेवालेको पापसे इतर कुछनहीं मिलसक्ता ४३ ॥

पृथोरपीमांपृथिवींभार्यांपूर्वविदोविदुः। स्थाणुच्छेदस्यकेदारमाहुःशल्यवतोमृगम् ४४

प० । पृथोः अपि इमां पृथिवीं भार्यां पूर्वविदः विदुः स्थाणुच्छेदस्य केदारं आहुः शल्यवतः मृगम्॥

यो० । पूर्वविदः इमां पृथिवीं पृथोः अपि भार्यां विदुः स्थाणुच्छेदस्य केदारं शल्यवतः मृगं आहुः ॥

भा० । पिछले समयके ज्ञाताओंने भी इस पृथिवीको पृथुराजाकी भार्या इससे कहाहै कि पृथु राजाने इसको समानकिया है और इसका प्रथम परिग्रह कियाहै और स्थाणुओंका छेदन जो करै उसका खेत और जिसने पहिले मृगको बींधा उसका मृगकहाहै ॥

ता० । यद्यपि अनेक राजाओंके संग इस पृथिवीका सम्बन्धहुआ है तथापि पृथुराजाने इसको सम (बराबर) कियाहै और पहिले स्वीकार कियाहै इससे पृथुकी भी भार्या इसको पूर्वकालके ज्ञाता कहतेहैं तिससे केदार (खेत) भी उसकाही होताहै जो स्थाणु (वृक्ष तृणआदि) ओंको उखाड़कर खेतको बनाता है और मृगभी उसकाही कहा है जिसने पहिले बाणसे बींधाहो—इससे पहिले जिसकेसंग विवाहहुआहो वही स्वामी होता है और अतएव उसकाही अपत्य होता है और पैदाकरनेवालेका नहीं होता ४४ ॥

एतावानेवपुरुषोयज्जायात्माप्रजेतिह।विप्राःप्राहुस्तथाचैतद्योभर्तासास्मृतांगना ४५

प० । एतावान् एव पुरुषः यत् जाया आत्मा प्रजा इति ह विप्राः प्राहुः तथा च एतत् यः भर्ता *सा स्मृता अंगना ॥*

यो० । यत् जाया आत्मा प्रजा इति एतावान् (एतत्त्रयरूपं) एव पुरुषो भवति—तथाच *यः भर्ता सा अंगना* स्मृता एतत् विप्राः प्राहुः (*कथयतिस्म*) ॥

भा० । स्त्री पुरुष संतान इन तीनोंरूपही पुरुष होता है और इसीसे वेदके ज्ञाता ब्राह्मण यह कहते हैं कि जो भर्त्ता है वही स्त्रीहै इन दोनों देहोंमें कुछ भेद नहीं है ॥

ता० । एकाकी मनुष्यही पुरुष नहीं होताहै किन्तु यहबात प्रकटहै कि भार्या अपनादेह-और संतान येतीनों मिलकर पुरुषहोता है क्योंकि इस वाजसनेय ब्राह्मणसे यही प्रतीतहोता है कि यह स्त्री इस पुरुषका अर्द्धभाग है क्योंकि जबतक इसको जायानहीं मिलती तबतक उत्पन्न नहींहोता और तबतक यह असंपूर्ण रहताहै और जिससमय यह जायाको प्राप्तहोता है और उसमें पुत्ररूपसे पैदाहोता है तभी संपूर्ण होताहै और इसीसे वेदकेज्ञाता ब्राह्मण यह कहतेहैं कि जो भर्ता वहीस्त्री कहीहै अर्थात् दोनोंमें कुछभेद नहींहै इससे उसभार्यामें अन्य पुरुषसे पैदा कियाहुआ पुत्र भर्ताकाही पुत्रहोताहै इससे क्षेत्रकीही मुख्यता है बीजकी नहीं ४५ ॥

ननिष्क्रयविसर्गाभ्यांभर्तुर्भार्याविमुच्यते।एवंधर्मंविजानीमःप्रजापतिविनिर्मितम् ४६॥

प० । नँ निष्क्रयविसर्गाभ्यां भर्तुः भार्या विमुच्यते एवं धर्मं विजानीमः प्रजापतिविनिर्मितम् ॥

यो० । निष्क्रयविसर्गाभ्यां भर्तुः सकाशात् भार्या न विमुच्यते एवं रूपं प्रजापतिविनिर्मितं धर्मं वयं विजानीमः ॥

भा० । विक्रय और त्यागसे स्त्री पतिसे पृथक् नहीं होसकती ब्रह्मा के रचे इस धर्म को ही हम मानते हैं ॥

ता० । विक्रय (बेचने) और विसर्ग (त्यागने) से स्त्री पतिके स्त्री स्वरूपसे दूर नहीं होसकती यह प्रजापति का रचाहुआ जो धर्म उसको हम मानते हैं इससे परकी स्त्रीको मोल लेकर और अपने आधीन करके और उसमें जो संतान उत्पन्न हुई वह संतान उसकी ही होतीहै जिसकी वह स्त्री है और बीजवाले की नहीं होती ४६ ॥

सकृदंशोनिपततिसकृत्कन्याप्रदीयते।सकृदाहददानीतित्रीण्येतानिसतांसकृत् ४७॥

प० । सकृत् अंशः निपतति सकृत् कन्या प्रदीयते सकृत् आह ददानि इति त्रीणि एतानि सतां सकृत् ॥

यो० । अंशः सकृत् निपतति-कन्या सकृत् प्रदीयते अहं ददानि इति सकृत् आह एतानि त्रीणि सतां सकृत् भवंति (न पुनः पुनः) ॥

भा० । पिता के धन का विभाग-एक बार-कन्या का दान एकबार-और गौ आदि का दान एकबार-होताहै-इससे साधुजनोंके ये तीनों एकबारही होतेहैं बारंबार नहीं ॥

ता० । भाइयोंने जो पिता आदि के धनका विभाग किया है वह एकबारही होताहै फिर अन्यथा नहीं होसकता-और पिता आदि ने एक वरको दीहुई कन्या फिर अन्यको नहीं दीजाती-और यहां पर इसको इसलिये लिखा है कि किसी अन्य मनुष्यने अन्यको कन्या देदी और फिर वह कन्या पिता आदि को मिलगईहो उसमें पैदाहुई संतान भी बीजवाले की नहीं होती-और कन्यासे इतर गौ आदि द्रव्योंमें भी एकबारही (ददानि) मैं देताहूं यह कहाजाता है फिर वे अन्यको नहीं दिये

---

१ अर्द्धोह्वाएष आत्मनस्तस्मात् यज्जायांनविंदते नैतावत्प्रजायते असर्वोहितावद्भवति-अथयदैवजायांविंदतेऽथप्रजायते र्हि सर्वोभवतितथाचैतद्वेदविदोविप्रावदन्ति योभर्तासैवभार्यास्मृतेति ॥

जाते–ये तीनों साधुजनोंके एकबारही होतेहैं बारंबार नहीं–यद्यपि यहां पर कन्यादानही प्रकृत में उपयोगी था तथापि भाग और दान भी प्रसंग से एकबारही वर्णन किये हैं और ददानि (देताहूं) इससे ही कन्यादान भी आजाता तथापि प्रकरणमें उपयुक्त होनेसेही पृथक् (जुदा) कहाहै ४७ ॥

यथागोऽश्वोष्ट्रदासीषुमहिष्यजाविकासुच । नोत्पादकःप्रजाभागीतथैवान्यांगनास्वपि ४८ ॥

प० । यथा गोऽश्वोष्ट्रदासीषु महिष्यजाविकासु च न उत्पादकः प्रजाभागी तथा एव अन्यांगनासु अपि ॥

यो० । गोऽश्वोष्ट्रदासीषु चपुनः महिष्यजाविकासु उत्पादकः यथा प्रजाभागी न भवति तथा एव अन्यांगनासु अपि उत्पादकः प्रजाभागी न भवति ॥

भा० । ता० । जैसे दूसरे की गौ-ऊंटनी-दासी-महिषी (भैंस) अजा भेड़ों में अपने बैल आदि से बछड़े–आदि के पैदाकरनेवाला मनुष्य प्रजा (वत्स आदि) का भागी नहीं होता इसीप्रकार अन्य की स्त्रियों में भी संतान को पैदाकरनेवाला मनुष्य संतान का भागी नहीं होता किन्तु उन स्त्रियों के स्वामीही होतेहैं ४८ ॥

येऽक्षेत्रिणोबीजवन्तःपरक्षेत्रप्रवापिणः । तेवैसस्यस्यजातस्यनलभन्तेफलंक्कचित् ४९ ॥

प० । ये अक्षेत्रिणः बीजवंतः परक्षेत्रप्रवापिणः ते वै सस्यस्य जातस्य न लभंते फलं क्कचित् ॥

यो० । अक्षेत्रिणः परक्षेत्रप्रवापिणः ये बीजवन्तः सन्ति ते जातस्य सस्यस्य फलं क्कचित् अपि न लभंते (नप्राप्नुवंति)॥

भा० । ता० । जो मनुष्य क्षेत्र (खेत) के स्वामी नहीं हैं और बीजके स्वामी हैं यदि वे अन्यके क्षेत्रमें बीजको बोदें तो वे क्षेत्रमें पैदाहुये धान्यआदि सस्यके फलको कभीभी प्राप्तनहीं होते किन्तु क्षेत्रका स्वामीही फलकाभागी होताहै ४९ ॥

यदन्यगोषुवृषभोवत्सानांजनयेच्छतम् । गोमिनामेवतेवत्सामोघंस्कन्दितमार्षभम् ५०

प० । यत् अन्यगोषु वृषभः वत्सानां जनयेत् शतं गोमिनां एव ते वत्साः मोघं स्कंदितं आर्षभम् ॥

यो० । यत् अन्यगोषु वृषभः वत्सानां शतं जनयेत् ते वत्साः गोमिनां (गोस्वामिनां) एवभवंति आर्षभं स्कंदितं (वीर्यसेचनं) मोघं (निष्फलं) भवति ॥

भा० । यदि अन्यकी गौओंमें सौबछड़ोंको भी किसीका बैल पैदाकरै तो वे बछड़े उनकेही होते हैं जिनकी गौ और बैलका वीर्य सींचना वृथाहै अर्थात् निष्फल है ॥

ता० । अन्यकी गौओंमें अपने बैलसे सौबछड़ोंको भी जो पैदाकरता है वे बछड़े उनगौओं के स्वामीकेही होतेहैं और बैलोंके स्वामीके नहींहोते और बैलका जो वीर्यका सींचना है वह मोघ (निष्फल) होताहै–गोऽश्वोष्ट्र इस ४८ के श्लोकमें तो यह दृष्टांतदिया कि पैदाकरनेवाला प्रजाका भागी नहींहोता और यहांपर यह दृष्टांतदिया है कि क्षेत्रका स्वामीही प्रजाका भागी होताहै इससे पुनरुक्ति दोष नहीं है ५० ॥

तथैवाक्षेत्रिणोबीजंपरक्षेत्रप्रवापिणः । कुर्वन्तिक्षेत्रिणामर्थंनबीजीलभतेफलम् ५१ ॥

प० । तथा एव अक्षेत्रिणः बीजं परक्षेत्रप्रवापिणः कुर्वंति क्षेत्रिणां अर्थं न बीजी लभंते फलम् ॥

यो० । परक्षेत्रप्रवापिणः अक्षेत्रिणः बीजं तथैव निष्फलंभवति ते (परक्षेत्रवप्तारः) क्षेत्रिणां एवअर्थं कुर्वंति बीजी फलं (अपत्यरूपं) नलभते ॥

भा० । पूर्वोक्त बैलके वीर्यके समान अन्यकी स्त्रीमें बोनेवालोंका बीजभी वृथाहै और वे क्षेत्रवाले केही प्रयोजनको सिद्धकरते हैं बीजवालेको संतानरूप फलनहीं मिलता ॥

ता० । जैसे अन्यकी गौओंमें पैदाकियेहुये बछड़े गौवालेके होतेहैं और बैलका वीर्य वृथाहै इसी प्रकार अन्यकीस्त्रीमें वीर्यको सींचनेवाला क्षेत्रका अस्वामी है उसका बीजभी निष्फल होताहै और अन्यकीस्त्रीमें बीज बोनेवाले वे मनुष्य उनकेही संतानरूप प्रयोजनको करते हैं जिनकी वे स्त्रीहैं— और बीजवालेको संतानरूप फलकी प्राप्ति नहींहोती ५१ ॥

फलंत्वनभिसंधायक्षेत्रिणांबीजिनांतथा । प्रत्यक्षंक्षेत्रिणामर्थोबीजाद्योनिर्गरीयसी ५२॥

प० । फलं तु अनभिसंधाय क्षेत्रिणां बीजिनां तथा प्रत्यक्षं क्षेत्रिणां अर्थः बीजात् योनिः गरीयसी॥

यो० । क्षेत्रिणां तथा बीजिनां मध्ये फलं अनभिसंधाय अर्थः प्रत्यक्षं क्षेत्रिणां भवति- कुतः बीजात् योनिः गरीयसी (प्रधाना) भवति ॥

भा० । ता० । क्षेत्र और बीजवालोंके मध्यमें जहां यह नियम न हुआहो कि जो इसस्त्रीमें संतानहो वह हमदोनोंकी रही—वहां संतानरूप अर्थ निस्संदेहसे क्षेत्रवालेकाही होताहै क्योंकि बीज से योनि प्रधान है ५२ ॥

क्रियाभ्युपगमात्त्वेतद्बीजार्थंयत्प्रदीयते । तस्येहभागिनौदृष्टौबीजीक्षेत्रिकएवच ५३ ॥

प० । क्रियाभ्युपगमात् तु एतत् बीजार्थं यत् प्रदीयते तस्य इह भागिनौ दृष्टौ बीजी क्षेत्रिकः एव च ॥

यो० । यत् (यस्मात्) क्रियाभ्युपगमात (पूर्वोक्तनियमेन) बीजार्थं एतत् क्षेत्रं प्रदीयते तस्य (अपत्यस्य) भागिनौ बीजी चपुनः क्षेत्रिकः इह (जगति) उभौ दृष्टौ ॥

भा० । ता० । जो इसस्त्रीमें संतानहोगी वह दोनोंकीहोगी इसनियमसे जिस क्षेत्रको बीजबोने के लिये स्वामी (पति) देता है उस संतान के भागी बीज और क्षेत्रवाले दोनोंही इस संसारमें देखेहैं ५३ ॥

ओघवाताहृतंबीजंयस्यक्षेत्रेप्ररोहति । क्षेत्रिकस्यैवतद्बीजंनवप्तालभतेफलम् ५४

प० । ओघवाताहृतं बीजं यस्य क्षेत्रे प्ररोहति क्षेत्रिकस्य एव तत् बीजं न वप्ता लभते फलम् ॥

यो० । यस्यक्षेत्रे ओघवाताहृतं बीजं प्ररोहति तत् बीजं क्षेत्रिकस्य एवभवति वप्ता फलं न लभते ॥

भा० । जलके वेग और पवनसे लायाहुआ बीज जिसके खेतमें जमता है उसकाही वह बीज होताहै बोनेवालेको उसका फल नहीं मिलता ॥

ता० । जलकावेग और पवनसे दूसरेके क्षेत्रसे लायाहुआ जो बीज जिसके खेतमें उत्पन्नहोजाय उसी खेतके स्वामीका वहबीज होताहै और जिसने बोयाहो उसका नहींहोता अतएव बोनेवाला उसके फलको प्राप्त नहींहोता—इससे इसवचनसे यहबात दिखाई कि अपनीस्त्रीके भ्रमसे यदि अन्यकी स्त्रीमें गमन होजाय और बीजवाला यहभी समझे कि यहपुत्र मेराहोगा सो नहींहै किंतु वह संतान क्षेत्रवालेकीही होतीहै ५४ ॥

एषधर्मोगवाश्वस्यदास्युष्ट्राजाविकस्यच । विहंगमहिषीणांचविज्ञेयःप्रसवंप्रति ५५ ॥

प० । एषः धर्मः गवाश्वस्य दास्युष्ट्राजाविकस्य च विहंगमहिषीणां च विज्ञेयः प्रसवं प्रति ॥

यो० । गवाश्वस्य—चपुनः दास्युष्ट्राजाविकस्य चपुनः विहंगमहिषीणां प्रसवं प्रति एषः धर्मः विज्ञेयः ॥

भा० । ता० । गौ—अश्व—दासी—ऊंट—बकरी—भेड़—पक्षी—भैंस इनकी संतानकेलिये भी यही नियम जानना—अर्थात् गौ अश्वआदिका स्वामीही संतानका भागीहोता है और बैलआदिका स्वामी नहींहोता और यदि यहनियम होगयाहो कि दोनों संतानके भागीहोंगे तो दोनोंही भागीहोतेहैं ५५॥

एतद्वःसारफल्गुत्वंबीजयोन्योःप्रकीर्तितम्। अतःपरंप्रवक्ष्यामियोषितांधर्ममापदि ५६

प० । एतत् वः सारफल्गुत्वं बीजयोन्योः प्रकीर्तितं अतः परं प्रवक्ष्यामि योषितां धर्मं आपदि ॥

यो० । एतत् बीजयोन्योः सारफल्गुत्वं वः (युष्माकं) प्रकीर्तितं अतःपरं आपदि योषितां धर्मं प्रवक्ष्यामि ॥

भा० । ता० । बीज और योनि (क्षेत्र) की प्रधानता और अप्रधानता यह तुमको कही इससे आगे आपत्काल में अर्थात् संतान के न होने में स्त्रियों के धर्म को कहूंगा ५६ ॥

भ्रातुर्ज्येष्ठस्यभार्यायागुरुपत्न्यनुजस्यसा। यवीयसस्तुयाभार्यास्नुषाज्येष्ठस्यसास्मृता ५७

प० । भ्रातुः ज्येष्ठस्य भार्या या गुरुपत्नी अनुजस्य सा यवीयसः तु या भार्या स्नुषा ज्येष्ठस्य सा स्मृता ॥

यो० । ज्येष्ठस्य भ्रातुः या भार्या सा अनुजस्य गुरुपत्नी तुपुनः यवीयसः भ्रातुःया भार्या सा ज्येष्ठस्य स्नुषा—मन्वादिभिः स्मृता ॥

भा० । ता० । ज्येष्ठ भाई की जो स्त्री है वह छोटे भाई की गुरुपत्नी होती है क्योंकि जेठा भाई गुरुतुल्य है और छोटे भाई की जो स्त्री है वह बड़े भाई की स्नुषा मनुआदिकोंने कही है अर्थात् पुत्र की बधूके समान होती है ५७ ॥

ज्येष्ठोयवीयसोभार्यांयवीयान्वाग्रजस्त्रियम्। पतितौभवतोगत्वानियुक्तावप्यनापदि ५८

प० । ज्येष्ठः यवीयसः भार्यां यवीयान् वा अग्रजस्त्रियं पतितौ भवतः गत्वा नियुक्तौ अपि अनापदि ॥

यो० । ज्येष्ठः यवीयसः भार्यां यवीयान् वा अग्रजस्त्रियं अनापदि नियुक्तौ अपि गत्वा पतितौ भवतः ॥

भा० । ता० । जेठाभाई छोटे भाई की भार्या के संग और छोटाभाई बड़े भाई की स्त्री के संग आपत्काल के बिना गमनकरके गुरु आदि की आज्ञाहोने पर भी पतित होतेहैं ५८ ॥

देवराद्वासपिण्डाद्वास्त्रियासम्यङ्नियुक्तया। प्रजेप्सिताधिगन्तव्यासंतानस्यपरिक्षये ५९॥

प० । देवरात् वा सपिंडात् वा स्त्रिया सम्यक् नियुक्तया प्रजा ईप्सिता अधिगंतव्या संतानस्य परिक्षये ॥

यो० । सम्यक् नियुक्तया स्त्रिया सन्तानस्य परिक्षयेसति देवरात् वा सपिंडात् ईप्सिता प्रजा अधिगंतव्या (प्राप्तव्या)

भा० । सन्तानके अभावमें भलीप्रकार नियुक्तस्त्री देवर वा सपिंडसे वाञ्छित सन्तानको पैदाकरले ॥

ता० । यदि सन्तान का अभावहोय तो भलीप्रकार गुरुआदिनेदीहै आज्ञाजिसको ऐसी स्त्री देवर से अथवा सपिंडसे वाञ्छित सन्तान को पैदाकरले—यहांपर वाञ्छित यहकहनेसे यहसूचित कियाहै कि यदि पहिली सन्तान कार्य के योग्य न होय तो फिर गमनकरै ५९ ॥

विधवायांनियुक्तस्तुघृताक्तोवाग्यतोनिशि। एकमुत्पादयेत्पुत्रंनद्वितीयंकथंचन ६० ॥

प० । विधवायाँ नियुक्तः तुँ घृताक्तः वाग्यतः निशि एकं उत्पादयेत् पुत्रं नँ द्वितीयं कथंचनँ ॥

यो० । गुर्वादिना नियुक्तः पुरुषः घृताक्तः वाग्यतः सन् निशि विधवायां एकंपुत्रं उत्पादयेत् द्वितीयं कथंचन न उत्पादयेत् ॥

भा० । ता० । गुरुआदि का नियुक्त पुरुष मौनी और घृतको देहसंमलकर रात्रिके समय विधवा में एकही पुत्रको पैदाकरै और दूसरे को कभी न करै ६० ॥

द्वितीयमेकेप्रजनंमन्यन्तेस्त्रीषुतद्विदः। अनिर्वृत्तंनियोगार्थंपश्यन्तोधर्मतस्तयोः ६१ ॥

प० । द्वितीयं एके प्रजनं मन्यंते स्त्रीषु तद्विदः अनिर्वृत्तं नियोगार्थं पश्यंतः धर्मतः तयोः ॥

यो० । धर्मतः तयोः नियोगार्थं अनिर्वृत्तं पश्यंतः एके तद्विदः स्त्रीषु द्वितीयं प्रजनं मन्यंते ॥

भा० । ता० । धर्म से उन स्त्री पुरुषों के नियोग फलको नहीं हुआ देखते हुये पुत्रकी उत्पत्ति की विधिके ज्ञाता कोई आचार्य अर्थात् एक पुत्रवाला भी अपुत्रही होताहै इस शिष्टों के संप्रदायसे नियोगके प्रयोजनको असंपूर्ण जानकर दूसरे पुत्रकी भी अनुमति देतेहैं ६१ ॥

विधवायांनियोगार्थेनिर्वृत्तेतुयथाविधि। गुरुवच्चस्नुपावच्चवर्तेयातांपरस्परम् ६२ ॥

प० । विधवायां नियोगार्थे निर्वृत्ते तु यथाविधि गुरुवत् चँ स्नुपावत् चँ वर्त्तेयातां परस्परम् ॥

यो० । विधवायां नियोगार्थे यथाविधि निर्वृत्ते सति ज्येष्ठभ्राता कनिष्ठभ्रातृ भार्या च परस्परं गुरुवत् पुनः स्नुषावत् वर्त्तेयाताम् ॥

भा० । ता० । शास्त्र के अनुसार विधवास्त्री में जब नियोग का गर्भ धारण रूप फलहोजाय तब जेठाभाई और छोटे भाई की स्त्री गुरु और पुत्रवधूके समान परस्पर वर्ताव करें अर्थात् स्त्री उसे गुरु समझे और जेठाभाई उसे पुत्रवधू के समान समझे ६२ ॥

नियुक्तौयौविधिंहित्वावर्तेयातांतुकामतः। तावुभौपतितौस्यातांस्नुपागगुरुतल्पगौ ६३

प० । नियुक्तौ यौ विधिं हित्वा वर्तेयातां तु कामतः तौ उभौ पतितौ स्यातां स्नुपागगुरुतल्पगौ॥

यो० । यौ नियुक्तौ विधिं हित्वा कामतः वर्तेयातां स्नुपागगुरुतल्पगौ तौ उभौ पतितौ स्याताम् ॥

भा० । ता० । अन्यकी स्त्री में नियुक्त कियाहुआ जो जेठाभाई और छोटे भाई की स्त्री यदि वे पूर्वोक्त (घृताभ्यंग) विधिको छोड़कर अपनी इच्छा के अनुसार वर्ताव करें तो पुत्रवधू और गुरु की स्त्री के संग गमनकरनेवाले वे दोनों पतित होतेहैं ६३ ॥

नान्यस्मिन्विधवानारीनियोक्तव्याद्विजातिभिः। अन्यस्मिनहिनियुंजानाधर्मंहन्युःसनातनम् ६४

प० । नँ अन्यस्मिन विधवा नारी नियोक्तव्या द्विजातिभिः अन्यस्मिन् हिँ नियुंजानाः धर्मं हन्युः सनातनम् ॥

यो० । द्विजातिभिः विधवानारी अन्यस्मिन् (देवरादौ) न नियोक्तव्या-हि (यतः) अन्यस्मिन नियुंजानाः द्विजातयः सनातनम् धर्मं हन्युः (नाशयेयुः) ॥

भा० । ता० । इसप्रकार नियोगको कहकर उसका निषेध कहते हैं कि ब्राह्मण आदि द्विजाति इतर देवर आदिकों में विधवा स्त्रीको नियुक्त न करें क्योंकि देवर आदिकों में नियुक्तकरनेवाले वे द्विजाति उस स्त्री के एक पतित्व (पतिव्रत) रूप अनादि धर्म को नष्ट करते हैं ६४ ॥

नोद्वाहिकेषुमन्त्रेषुनियोगःकीर्त्यतेक्वचित् । नविवाहविधावुक्तंविधवावेदनंपुनः ६५ ॥

प० । न उद्वाहिकेषु मंत्रेषु नियोगः कीर्त्यते क्वचित् न विवाहविधौ उक्तं विधवावेदनं पुनः ॥

यो० । उद्वाहिकेषु मंत्रेषु क्वचित् अपि नियोगः न कीर्त्यते—विवाहविधौ पुनः विधवावेदनं न उक्तम् ॥

भा० । ता० । अर्यमणंनुदेवं—इत्यादि विवाहके मंत्रों में किसी भी वेदकी शाखामें नियोग नहीं कहा है और विवाहकी विधिवाले शास्त्र में भी फिर विधवाका विवाह नहीं कहा ६५ ॥

अयंद्विजैर्हिविद्वद्भिःपशुधर्मोविगर्हितः । मनुष्याणामपिप्रोक्तोवेनेराज्यंप्रशासति ६६ ॥

प० । अयं द्विजैः हि विद्वद्भिः पशुधर्मः विगर्हितः मनुष्याणां अपि प्रोक्तः वेने राज्यं प्रशासति ॥

यो० । हि (यतः) विद्वद्भिः द्विजैः अयं मनुष्याणां अपि पशुधर्मः विगर्हितः—कुतः वेने राज्यं प्रशासति सति प्रोक्तः वेने नेति शेषः ॥

भा० । ता० । क्योंकि पशुओंका यह धर्म मनुष्यों के लिये पडित द्विजोंने निंदित कहाहै क्योंकि राज्यकरतेहुये राजा वेनने इस कुधर्म को कहा है—इससे वेनसेही यह पशुधर्म चला है इससे ही निंदा योग्य है ६६ ॥

समहीमखिलांभुञ्जन्राजर्षिप्रवरःपुरा । वर्णानांसंकरंचक्रेकामोपहतचेतनः ६७ ॥

प० । सः महीं अखिलां भुंजन् राजर्षिप्रवरः पुरा वर्णानां संकरं चक्रे कामोपहतचेतनः ॥

यो० । अखिलां महीं पुराभुंजन् सः राजर्षिप्रवरः कामोपहतचेतनः सन् वर्णानां संकरं चक्रे (अकरोत्) ॥

भा० । ता० । संपूर्ण पृथिवी की पूर्व समयमें पालना करताहुआ राजर्षियोंमें मुख्य वह वेन—कामदेवसे नष्टबुद्धिहोकर वर्णोंका संकर (हेलमेल) करताभया और इस भाई की स्त्री में गमनको भी प्रचलित करताभया ६७ ॥

ततःप्रभृतियोमोहात्प्रमीतपतिकांस्त्रियम् । नियोजयत्यपत्यार्थंतंविगर्हन्तिसाधवः ६८ ॥

प० । ततः प्रभृति यः मोहात् प्रमीतपतिकां स्त्रियं नियोजयति अपत्यार्थं तं विगर्हति साधवः ॥

यो० । ततः प्रभृति यः पुरुषः मोहात् प्रमीतपतिकां स्त्रियं अपत्यार्थं नियोजयति-साधवः तं विगर्हति (निंदंति) ॥

भा० । वेनके राज्य पीछे जो विधवाको संतानके लिये नियुक्त करता है उसकी साधुजन निंदा करतेहैं ॥

ता० । वेनके राज्य के अनंतर जो मनुष्य विधवा स्त्रीको शास्त्र के अर्थ को न जानकर संतानके लिये देवर आदि के भोगके निमित्त नियुक्त करता है उस मनुष्यकी साधुजन निंदाकरतेहैं—और यह अपने कहेहुये नियोगका निषेध जो मनुजी ने कहाहै वह कलियुगमें समझना क्योंकि इसे बृहस्पतिके वचनसे यह प्रतीत होताहै कि मुनियों ने अपने कहे नियोगोंका स्वयं निषेध कहाहै और युगों के क्रम से अन्य मनुष्य इसको विधिसे नहीं करसकते—और सतयुग और त्रेता और द्वापरमें मनुष्य तप ज्ञानसे संयुक्त रहे और कलियुगमें मनुष्योंकी शक्ति की हानि कही है—और पहिले ऋषियों ने

१ उक्तानियोगामुनिना निषिद्धाःस्वयमेवतु युगक्रमादशक्योऽयं कर्तुमन्यैर्विधानतः ॥
तपोज्ञानसमायुक्ताः कृतत्रेतायुगेनराः द्वापरेचकलौनृणां शक्तिहानिर्हिनिर्मिता ॥
अनेकधाकृतापुत्रा ऋषिभिश्चपुरातनैः नशक्यंतेऽधुनाकर्तुं शक्तिहीनैरिदंतनैः ॥

अनेकप्रकार के पुत्र किये हैं और शक्तिसे हीन अब के मनुष्य उन पुत्रोंको नहीं करसकते—इससे युगोंकी व्यवस्थाको न जानकर गोविंदराजका यह कथन ठीक नहीं है कि संतान के अभाव में नियोगसे अनियोगही श्रेष्ठ है उसके इसकथनको हम नहीं मानते क्योंकि मुनिकी व्याख्याके विरुद्ध है और प्रायः कर मनुके वाक्योंमें मुनिकी व्याख्याही श्रेष्ठ है ६८ ॥

यस्याम्रियेतकन्यायावाचासत्येकृतेपतिः।तामनेनविधानेननिजोविन्देतदेवरः ६९ ॥

प० । यस्याः म्रियेत कन्यायाः वाचा सत्ये कृते पतिः तां अनेन विधानेन निजः विंदेत देवरः ॥

यो० । वाचा सत्ये कृते सति यस्याः कन्यायाः पतिः म्रियेत तां कन्यां अनेन विधानेन निजः देवरः विंदेत (परिणयेत्) ॥

भा० । ता० । जिस कन्याका पति वाग्दान (सगाई) किये पीछे मृत्युको प्राप्त होजाय उस कन्याको उसी कन्याका देवर इस (जो आगे कहते हैं) विधिसे विवाहले ६९ ॥

यथाविध्यभिगम्यैनांशुक्लवस्त्रांशुचिव्रताम्।मिथोभजेताप्रसवात्सकृत्सकृदृतावृतौ ७० ॥

प० । यथाविधि अभिगम्य एनां शुक्लवस्त्रां शुचिव्रतां मिथः भजेत आप्रसवात् सकृत् सकृत् ऋतौ ऋतौ ॥

यो० । शुक्लवस्त्रां शुचिव्रतां एनां यथाविधि अभिगम्य (विवाह्य) आप्रसवात् ऋतौ ऋतौ सकृत् सकृत् स देवरः मिथः भजेत (गच्छेत्) ॥

भा० । विधिसे वह देवर इस कन्याको विवाहकर और श्वेतवस्त्र और देह आदि की शुद्धिवाली इस कन्याके संग गर्भ की स्थिति पर्यंत ऋतु २ में एक २ वार गमन करै ॥

ता० । वह देवर शास्त्रोक्त रीतिसे इस कन्याको विवाहकर शुक्ल हैं वस्त्र जिसके ऐसी और देह वाणी मन से शुद्ध इस कन्याके संग तबतक ऋतु ऋतु में एक एकवार गमन करै जबतक गर्भ की स्थिति न हो इसप्रकार कन्याके नियोगप्रकार और विवाह के न होनेसे और गमनकी आज्ञासे वह संतान उसकी ही होतीहै जिसके संग वाग्दान हुआथा ७० ॥

नदत्त्वाकस्यचित्कन्यांपुनर्दद्याद्विचक्षणः । दत्त्वापुनःप्रयच्छन्हिप्राप्नोतिपुरुषानृतम् ७१ ॥

प० । न दत्त्वा कस्यचित् कन्यां पुनः दद्यात् विचक्षणः दत्त्वा पुनः प्रयच्छन् हि प्राप्नोति पुरुषानृतम् ॥

यो० । विचक्षणः कस्यचित् कन्यां दत्त्वा पुनः न दद्यात्—हि (यतः) दत्त्वा पुनः प्रयच्छन् सन् पुरुषानृतं प्राप्नोति ॥

भा० । बुद्धिमान् मनुष्य किसी एकको कन्या देकर फिर अन्यको न दे क्योंकि अन्यको देने से पुरुष के अनृतको प्राप्त होताहै ॥

ता० । बुद्धिमान (दान के गुण दोषों का ज्ञाता) मनुष्य किसी वरको कन्याको देकर और फिर उसी कन्याको अन्य मनुष्यको न दे क्योंकि एक को देकर दूसरे को देताहुआ मनुष्य पुरुष के अनृत (झूंठ १०००) पणके दंडको प्राप्त होताहै—यह वचन इसलिये है कि विवाह के समय यदि सप्तपदी न हुई हो और दैववश लड़का मरजाय तो उस लड़केकी भार्या न होनेसे कन्याको किसी अन्य लड़के को न दे किन्तु विधवाही के धर्मों में वह लड़की रहै ७१ ॥

विधिवत्प्रतिगृह्यापित्यजेत्कन्यांविगर्हिताम्।व्याधितांविप्रदुष्टांवाछद्मनाचोपपादिताम् ७२

प० । विधिवत् प्रतिगृह्य अपि त्यजेत् कन्यां विगर्हितां व्याधितां विप्रदुष्टां वा छद्मना च उपपादिताम् ॥

यो० । पुरुषः कन्यां विधिवत् प्रतिगृह्य अपि विगर्हितां-व्याधितां-विप्रदुष्टां चपुनः छद्मना उपपादितां-ज्ञात्वा त्यजेत् ॥

भा० । निंदित-रोगवाली और दुष्ट और छल से दी कन्याको विधिपूर्वक ग्रहण करके-पुरुष त्याग दे ॥

ता० । पुरुष शास्त्रोक्त विधिके अनुसार ग्रहणकरके भी-विधवाके लक्षणोंसे युक्त-रोगवाली और विप्रदुष्ट अर्थात् किसी अन्य पुरुषके संपर्क की शंका जिसमें हो और जो छलसे दीहो अर्थात् जिसके गुण दोष न बतायेहों और सप्तपदी करने से प्रथम जिसकी दुष्टता प्रतीतहुई हो ऐसी कन्या को वर त्याग दे ७२ ॥

यस्तुदोषवतींकन्यामनाख्यायोपपादयेत् । तस्यतद्वितथंकुर्यात्कन्यादातुर्दुरात्मनः ७३॥

प० । यः तु दोषवतीं कन्यां अनाख्याय उपपादयेत् तस्य तत् वितथं कुर्यात् कन्यादातुः दुरात्मनः॥

यो० । यः दोषवतीं कन्यां अनाख्याय उपपादयेत् तस्य दुरात्मनः कन्यादातुः तत् कन्यादानं वितथं कुर्यात्-तां तस्मै एव प्रत्यर्पयेदित्यर्थः ॥

भा० । ता० । जो कन्याकादाता दोषवाली कन्याके दोषोंको न कहकर देताहै दुरात्मा उस कन्या के दाताका वह कन्यादान कन्याके लौटानेसे वितथ (असत्य) करदे-ये वचन ऐसी कन्याके त्यागमें दोषके अभावार्थ हैं ७३ ॥

विधायवृत्तिंभार्यायाःप्रवसेत्कार्यवान्नरः । अवृत्तिकर्षिताहिस्त्रीप्रदुष्येत्स्थितिमत्यपि७४ ॥

प० । विधाय वृत्तिं भार्यायाः प्रवसेत् कार्यवान् नरः अवृत्तिकर्षिता हि स्त्री प्रदुष्येत् स्थितिमती अपि ॥

यो० । कार्यवान् नरः भार्यायाः वृत्तिं विधाय प्रवसेत्-हि (यतः) अवृत्तिकर्षिता स्त्री स्थितिमती अपि प्रदुष्येत् (दूषिताभवेत्) ॥

भा० । ता० । कार्यवाला मनुष्य अपनी स्त्री की वृत्ति (भोजन वस्त्र आदि) को करके परदेश में गमन करै क्योंकि जीविकाके विना दुःखको प्राप्तहुई शीलवाली भी स्त्री दुष्टहोजाती है अर्थात् अन्य पुरुष से संगत होजाती है ७४ ॥

विधायप्रोषितेवृत्तिंजीवेन्नियममास्थिता । प्रोषितेत्वविधायैवजीवेच्छिल्पैरगर्हितैः ७५

प० । विधाय प्रोषिते वृत्तिं जीवेत् नियमं आस्थिता प्रोषिते तु अविधाय एव जीवेत् शिल्पैः अगर्हितैः ॥

यो० । वृत्तिं विधाय भर्तरि प्रोषितेसति नियमं आस्थिता स्त्री जीवेत् वृत्तिं अविधाय प्रोषिते सति अगर्हितैः शिल्पैः जीवेत् ॥

भा० । ता० । यदि भोजन और वस्त्र को देकर पति परदेश में चलाजाय तो स्त्री नियम में टिक कर अपना निर्वाह करै-और यदि भोजन वस्त्र न देकर पति परदेश में चलाजाय तो ऐसे शिल्पों (सीना पिरोना) से अपना निर्वाह करै जो निंदित नहों ७५ ॥

प्रोषितोधर्मकार्यार्थंप्रतीक्ष्योऽष्टौनरस्समाः । विद्यार्थंषट्यशोर्थंवाकामार्थंत्रींस्तुवत्सरान् ७६

प० । प्रोषितः धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्यः अष्टौ नरः समाः विद्यार्थं षट् यशोर्थं वा कामार्थं त्रीन् तु वत्सरान् ॥

यो० । धर्मकार्यार्थं प्रोषितः नरः (पतिः) अष्टौ समाः विद्यार्थं वा यशोर्थं षट्समाः कामार्थं प्रोषितः त्रीन् वत्सरान् स्त्रिया प्रतीक्ष्यः ॥

भा० । धर्मकार्य के लिये परदेश में गतपति की आठवर्षतक—और विद्या और यशकेलिये गतकी छः वर्षतक—और अन्यस्त्री की कामनासे परदेश में गतकी तीनवर्षतक स्त्री प्रतीक्षाकरै फिर स्वयं पतिके समीप चलीजाय ॥

ता० । गुरु की आज्ञाका पालन आदि धर्म कार्य के लिये परदेश में गये हुये पति की स्त्री आठ वर्ष पर्यंत प्रतीक्षा करै (बाट देखै) और आठ वर्षतक न आवे तो स्वयं उस पति के समीप चलीजाय क्योंकि वसिष्ठजीने इस वचनसे यहकहाहै कि परदेशमें गतमनुष्य (पति) की पत्नी पांचवर्षतक बाटदेखै अनन्तर पति के समीप चलीजाय—और विद्या वा अपनी विद्या के द्वारा यशकेलिये परदेश में गतपतिकी पत्नी छःवर्षपर्यन्त प्रतीक्षाकरै फिर उसके समीप चलीजाय—और अन्यस्त्री के भोगार्थ परदेश में गतमनुष्यकी स्त्री तीनवर्षतक प्रतीक्षाकरै पश्चात् पति के समीप चलीजाय ७६ ॥

संवत्सरंप्रतीक्षेतद्विषंतींयोषितंपतिः । ऊर्ध्वंसंवत्सरात्त्वेनांदायंहृत्वानसंवसेत् ७७ ॥

प० । संवत्सरं प्रतीक्षेत द्विषंतीं योषितं पतिः ऊर्ध्वं संवत्सरात् तु एनां दायं हृत्वा न संवसेत् ॥

यो० । पतिः द्विषंतीं योषितं संवत्सरं प्रतीक्षेत संवत्सरात् ऊर्ध्वं न दायंहृत्वा एनां न संवसेत् ॥

भा० । ता० । विषयआदि कामों में द्वेष (वैर) करतीहुई स्त्री की एकवर्षतक प्रतीक्षाकरै और वर्ष के अनन्तर तो इसके भूषण आदिको छीनकर एकशय्यापर शयन न करावे—और भोजन वस्त्र तो दियेजाय ७७ ॥

अतिक्रामेत्प्रमत्तंयामत्तंरोगार्त्तमेववा । सात्रीन्मासान्परित्याज्याविभूषणपरिच्छदा ७८

प० । अतिक्रामेत् प्रमत्तं या मत्तं रोगार्त्तं एवं वा सा त्रीन् मासान् परित्याज्या विभूषणपरिच्छदा ॥

यो० । यास्त्री प्रमत्तं-मत्तं-वा रोगार्त्तं पतिं अतिक्रामेत् विभूषणपरिच्छदा सा त्रीन् मासान् परित्याज्या-पतिनेतिशेषः ॥

भा० । ता० । जो स्त्री प्रमादी (जुयेमें उन्मत्त) मदिरा के पीनेसे मत्त—रोगसेदुःखी अपने पति का अवलंघन करती है अर्थात् सेवाके न करने से तिरस्कार करती है उसस्त्रीके भूषण और शय्या आदि सामग्रियों को छीनकर तीनमहीने पर्यंत परित्याग करदे ७८ ॥

उन्मत्तंपतितंक्लीबमबीजंपापरोगिणम् । नत्यागोऽस्तिद्विषंत्याश्चनचदायापवर्तनम् ७९ ॥

प० । उन्मत्तं पतितं क्लीबं अबीजं पापरोगिणं न त्यागः अस्ति द्विषन्त्याः च न च दायापवर्तनम् ॥

यो० । उन्मत्तं-पतितं-क्लीबं-अबीजं-पापरोगिणं द्विषंत्याः स्त्रियाः त्यागः चपुनः दायापवर्तनं न अस्ति ॥

भा० । ता० । उन्मत्त (वात से जिसकी प्रकृति स्वस्थनहो) जातिसे पतित—नपुंसक—और अबीज

---

१ प्रोषितपत्नीपंचवर्षाण्युपासीत ऊर्ध्वंपतिसकाशंगच्छेत् ॥

(जिसकाबीज न जमताहो) और जिसके कुष्ठआदि पापरोगहों—ऐसे पतिका जो द्वेष (वैर) करै उसस्त्रीका परित्याग और धनका छीनना न करै ७९ ॥

मद्यपासाधुवृत्ताचप्रतिकूलाचयाभवेत् । व्याधितावाधिवेत्तव्याहिंस्राऽर्थघ्नीचसर्वदा ८०॥

प० । मद्यपा असाधुवृत्ता च प्रतिकूला च या भवेत् व्याधिता वा अधिवेत्तव्या हिंस्रा अर्थघ्नी च सर्वदा ॥

यो० । मद्यपा- असाधुवृत्ता- चपुनः या प्रतिकूला भवेत् सा- व्याधिता हिंस्रा सर्वदा अर्थघ्नी- स्त्री पतिना अधिवेत्तव्या ॥

भा० । ता० । मदिरापीने और निंदित आचरणकरनेवाली और जो पतिके प्रतिकूल आचरण करै और जिस स्त्री को कुष्ठआदिरोगहों और जो अपने सेवकोंको ताडनाकरतीहो और जो निरन्तर धनका नाशकरतीहो—अर्थात् अधिकव्यय (खर्च) करतीहो ऐसी स्त्री के विद्यमानहोनेपर भी पति दूसरा विवाह करले ८० ॥

वन्ध्याष्टमेऽधिवेद्याब्देदशमेतुमृतप्रजा । एकादशेस्त्रीजननीसद्यस्त्वप्रियवादिनी ८१ ॥

प० । वंध्या अष्टमे अधिवेद्या अब्दे दशमे तु मृतप्रजा एकादशे स्त्रीजननी सद्यः तु अप्रियवादिनी

यो० । अष्टमे अब्दे वंध्या- दशमे मृतप्रजा- एकादशे स्त्री जननी तुपुनः अप्रियवादिनी- स्त्री सद्यः पतिना अधिवेद्या-भवति ॥

भा० । जिसके सन्ताननहो—अथवा जिसकी सन्तान मरजातीहो—वा जिसके कन्याहीकन्या पैदा होतीहों—इन तीनों स्त्रियोंके विद्यमान रहते भी पतिक्रमसे आठवें—दशवें—ग्यारहवेंवर्ष दूसराविवाह करले—और कठोरवचन कहनेवाली स्त्रीके रहते तो उसीसमय द्वितीय विवाहकरले ॥

ता० । जिसके प्रथम की ऋतुसे आठवर्ष पर्यंत यदि सन्तान न होय तो उसवन्ध्या स्त्रीके रहते भी आठवेंवर्ष पति दूसराविवाहकरले और जिसकी सन्तान मरजातीहो उसके होनेपर दशमें वर्ष विवाहकरले—और जिसस्त्रीके कन्याही कन्या होतीहों उसकेरहते ग्यारहवेंवर्ष द्वितीय विवाहकरले—और जो कठोरवचन कहतीहो उसके रहते उसीसमय दूसरा विवाह पतिकरले परन्तु वह कठोर वचन कहनेवाली स्त्री यदि पुत्रवतीहोय तो दूसरा विवाह न करै क्योंकि इस आपस्तम्बऋषिके वचन से यह प्रतीत होता है कि धर्म और प्रजासे संयुक्त स्त्री होय तो अन्यस्त्रीकेसंग विवाहनकरै—यदि इन दोनों (धर्म प्रजा) में से एकभी न होय तो द्वितीय विवाहकरले ८१ ॥

यारोगिणीस्यात्तुहितासंपन्नाचैवशीलतः। सानुज्ञाप्याधिवेत्तव्यानावमन्याचकर्हिचित्८२॥

प० । या रोगिणी स्यात् तु हिता सम्पन्ना च एव शीलतः सा अनुज्ञाप्य अधिवेत्तव्या न अवमन्या च कर्हिचित् ॥

यो० । रोगिणी या स्त्री पत्युः हिता चपुनः शीलतः सम्पन्ना स्यात् सा स्त्री अनुज्ञाप्य अधिवेत्तव्या कर्हिचित् अपि पतिना न अवमन्या ॥

भा० । ता० । जो रोगवाली स्त्री अपनेपति की हितकारिणीहो और अच्छे शीलसे सम्पन्नहो उस

---

१ धर्मप्रजासम्पन्नेदारेनान्यांकुर्वीतान्यतरापायेतुकुर्वीत ॥

स्त्री के विद्यमान रहते पति दूसरा विवाहकरै तो उसस्त्रीकी आज्ञालेकर करै और कभी भी उसका अपमान न करै अर्थात् उसकी प्रसन्नताहोय तो करै और न होय तो न करै ८२ ॥

अधिविन्नातुयानारीनिर्गच्छेद्रुषितागृहात्। सासद्यःसन्निरोद्धव्यात्याज्यावाकुलसन्निधौ ८३

प० । अधिविन्ना तु या नारी निर्गच्छेत् रुषिता गृहात् सा सद्यः संनिरोद्धव्या त्याज्या वा कुल-संन्निधौ ॥

यो० । या अधिविन्ना नारी रुषिता सती गृहात् निर्गच्छेत् सा सद्यः सन्निरोद्धव्या वा कुलसन्निधौ त्याज्या ॥

भा० । ता० । दूसरा विवाहकरनेपर जो स्त्री क्रोधसे रूसकर घरमेंसे चलीजाय उसको क्रोधकी निवृत्ति होनेतक शीघ्रही रज्जुआदि से बांधकर रक्खै अथवा पिताआदि कुलके मनुष्यों के सन्मुख उसको त्यागदे ८३ ॥

प्रतिषिद्धापिवेद्यानुमद्यमभ्युदयेष्वपि। प्रेक्षासमाजंगच्छेद्वासादण्ड्याकृष्णलानिषट् ८४ ॥

प० । प्रतिषिद्धा पिबेत् या तु मद्यं अभ्युदयेषु अपि प्रेक्षासमाजं गच्छेत् वा सा दंड्या कृष्ण-लानि षट् ॥

यो० । प्रतिषिद्धा अपि या स्त्री अभ्युदयेषु अपि मद्यं पिबेत् वा प्रेक्षासमाजं गच्छेत् सा स्त्री षट् कृष्णलानि राज्ञा दंड्या भवेत् ॥

भा० । ता० । क्षत्रियआदि जातिकी जो स्त्री पतिके निषेधकरने पर भी विवाहआदि उत्सवों में मदिरा का पानकरती है अथवा नृत्यआदि के देखनेको, अथवा बहुत मनुष्यों के समूह में, जातीहै उस स्त्रीको राजा छः कृष्णल सुवर्ण का दण्डदे ८४ ॥

यदिस्वाश्चपराश्चैवविन्देरन्योषितोद्विजाः। तासांवर्णक्रमेणस्याज्ज्यैष्ठ्यंपूजाचवेश्मच८५

प० । यदि स्वाः च पराः च एव विंदरन् योषितः द्विजाः तासां वर्णक्रमेण स्यात् ज्यैष्ठ्यं पूजा च वेश्म च ॥

यो० । यदि द्विजाः स्वाः (सजातीयाः) चपुनः पराः (विजातीयाः) योषितः विंदरन्–तर्हि तासां स्त्रीणां वर्ण क्रमेण ज्यैष्ठ्यं, पूजा, चपुनः वेश्म (गृहं) स्यात् ॥

भा० । ता० । यदि तीनों द्विज अपनी सजातीय और विजातीय स्त्रियों को विवाहलें तो उन स्त्रियोंकी ज्येष्ठता अर्थात् मानसहित भाषण, दायकाभाग–और वस्त्र भूषणआदि के देने से सत्कार, और घर, ये सब वर्णके क्रमसे होते हैं अर्थात् उत्तमवर्णकी स्त्रीके उत्तम और नीचवर्णवालीके नीच होते हैं ८५ ॥

भर्तुःशरीरशुश्रूषांधर्मकार्यंचनैत्यकम्। स्वाचैवकुर्यात्सर्वेषांनास्वजातिःकथंचन ८६ ॥

प० । भर्तुः शरीरशुश्रूषां धर्मकार्यं च नैत्यकं स्वा च एव कुर्यात् सर्वेषां न अस्वजातिः कथंचन ॥

यो० । सर्वेषां वर्णानां मध्ये भर्तुः शरीरशुश्रूषां चपुनः नैत्यकं धर्मकार्यं स्वा (सजातीया) कुर्यात् अस्वजातिः कथंचन न कुर्यात् ॥

भा० । ता० । पतिके शरीर की शुश्रूषा अर्थात् अन्नदानआदि–और नित्यकरनेयोग्य धर्मके कर्म अर्थात्–भिक्षाकादान–अतिथिसत्कार–होमके पदार्थों का संगम–इनसबकर्मों को सजातीय स्त्रीही करै और विजातीय इनको कभी न करै ८६ ॥

यस्तुतत्कारयेन्मोहात्सजात्यास्थितयान्यया।यथाब्राह्मणचाण्डालःपूर्वदृष्टस्तथैवसः८७ ॥

प० । यः तु तत् कारयेत् मोहात् सजात्या स्थितया अन्यया यथा ब्राह्मणचाण्डालः पूर्वदृष्टः तथा एव सः ॥

यो० । यः ब्राह्मणः मोहात् सजात्या स्थितया अन्यया तत् (देहसेवादिकं) कारयेत् सः यथा पूर्वदृष्टः (पूर्वोक्तः) ब्राह्मणचांडालः तथैव भवति ॥

भा० । ता० । जो ब्राह्मण मोहसे सजातीय स्त्री के विद्यमानहोते विजातीय स्त्रीसे अपने देहकी सेवाआदिकर्मकराताहै वहवैसाही ब्राह्मण चाण्डालहै जैसाब्राह्मणीमें शूद्रसेपैदाहुआचाण्डाल पहिले कहआये हैं ८७ ॥

उत्कृष्टायाभिरूपायवरायसदृशायच। अप्राप्तामपितांतस्मैकन्यांदद्याद्यथाविधि ८८ ॥

प० । उत्कृष्टाय अभिरूपाय वराय सदृशाय च अप्राप्तां अपि तां तस्मै कन्यां दद्यात् यथाविधि ॥

यो० । उत्कृष्टाय अभिरूपाय सदृशाय तस्मै वराय अप्राप्तां (विवाहयोग्यां) अपि तां कन्यां यथाविधि दद्यात् ॥

भा० । ता० । यदि वर कुल आचरणसे उत्तम-सजातीय और सुरूप मिलजाय तो उसवरको विवाह के समय को नहींप्राप्तहुई भी उसकन्याको विवाह दे अर्थात् इस वचनसे दक्षऋषि ने ८ आठवर्ष की कन्याका विवाह धर्म के अनुकूल कहाहै-उससे पूर्व भी श्रेष्ठवरमिलेतो विवाहदे ८८॥

काममामरणात्तिष्ठेद्गृहेकन्यर्तुमत्यपि। नचैवैनांप्रयच्छेत्तुगुणहीनायकर्हिचित् ८९ ॥

प० । कामं आमरणात् तिष्ठेत् गृहे कन्या ऋतुमती अपि न च एव एनां प्रयच्छेत् तु गुणहीनाय कर्हिचित् ॥

यो० ।ऋतुमती अपि कन्या आमरणात् गृहे कामं तिष्ठेत्-पुनः एनां गुणहीनाय कर्हिचित् न प्रयच्छेत् ॥

भा० । ता० । ऋतुवाली भी कन्या चाहे मरणपर्यंत घरमेंरहै परन्तु इसकन्याको कभी भी पिता गुणोंसे हीन वरकोनदे अर्थात् विद्याआदि गुणसंयुक्त वरकोही कन्यादेनी निर्गुणको कभीनदेनी८९॥

त्रीणिवर्षाण्युदीक्षेतकुमार्यृतुमतीसती। ऊर्ध्वंतुकालादेतस्माद्विंदेतसदृशंपतिम् ९० ॥

प० । त्रीणि वर्षाणि उदीक्षेत कुमारी ऋतुमती सती ऊर्ध्वं तु कालात् एतस्मात् विंदेत सदृशं पतिम् ॥

यो० । ऋतुमती सती कुमारी त्रीणि वर्षाणि उदीक्षेत -एतस्मात् कालात् ऊर्ध्वंतु सदृशंपतिं विंदेत (वृणीत) ॥

भा० । ता० । ऋतुवाली कन्या तीनवर्ष पर्यंत अपने विवाहके लिये पिताकी बाटदेखै-और इस तीनवर्ष के अनन्तर तो अपने सदृश (तुल्य) पतिको स्वयं वरले अर्थात् तीनवर्ष पीछे यथेच्छपति को विवाहले ९० ॥

अदीयमानाभर्तारमधिगच्छेद्यदिस्वयम्। नैनःकिंचिदवाप्नोतिनचयंसाधिगच्छति९१

प० । अदीयमाना भर्तारं अधिगच्छेत् यदि स्वयं न एनः किंचित् अवाप्नोति न च यं सा अधिगच्छति ॥

---

१ विवाहयेदष्टवर्षामेवंधर्मोनहीयते ॥

यो० । यदि पूर्वोक्ते कालानन्तरं अदीयमाना भर्तारं स्वयं अधिगच्छेत् तर्हि सा कुमारी चपुनः यं पतिं सा अधिगच्छति सः पतिः किंचित् एनः (पापं) न अवाप्नोति ॥

भा० । ता० । यदि पिताआदिकों की नहींदीहुई कन्या पूर्वोक्त (ऋतु) काल के अनन्तर स्वयं पतिको वरले तो वह कन्या और उसका वहपति किंचित् (कुछ) भी पापको प्राप्तनहीं होते ९१ ॥

अलंकारंनाददीतपित्र्यंकन्यास्वयंवरा । मातृकंभ्रातृदत्तंवास्तेनास्याद्यदितंहरेत् ९२ ॥

प० । अलंकारं न आददीत पित्र्यं कन्या स्वयंवरा मातृकं भ्रातृदत्तं वा स्तेना स्यात् यदि तं हरेत् ॥

यो० । स्वयंवरा कन्या–पित्र्यं–मातृकं वा भ्रातृदत्तं अलंकारं न आददीत–यदि तं (अलंकारं) हरेत् तर्हि स्तेना (चोरी) स्यात् ॥

भा० । ता० । पतिका स्वयंवर करनेवाली कन्या पिता माता भ्राता के दियेहुये भूषणोंको न लेजाय क्योंकि यदि पूर्वोक्त भूषणोंको स्वीकारकरके लेजायगी तो चोरीकरनेवाली होजातीहै ९२॥

पित्रेनदद्याच्छुल्कंतुकन्यामृतुमतींहरन् । सहिस्वाम्याद्तिक्रामेदृतूनांप्रतिरोधनात् ९३ ॥

प० । पित्रे न दद्यात् शुल्कं तु कन्यां ऋतुमतीं हरन् सः हि स्वाम्यात् अतिक्रामेत् ऋतूनां प्रतिरोधनात् ॥

यो० । ऋतुमतीं कन्यां हरन् वरः पित्रे शुल्कं न दद्यात्–हि (यतः) सः (पिता) ऋतूनां प्रतिरोधनात् स्वाम्यात् अतिक्रामेत् (हीयते) ॥

भा० । ता० । ऋतुवाली कन्याको विवाहता हुआ वर कन्याके पिताको शुल्क (मोल) न दे– क्योंकि वह कन्या का पिता ऋतुओं के फल सन्तान के अवरोधसे उसकन्या के स्वामित्व से रहित होजाता है अर्थात् वह उक्तकन्या का स्वामी नहींरहता ९३ ॥

त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्कन्यांहृद्यांद्वादशवार्षिकीम् । त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षांवाधर्मेसीदतिसत्वरः ९४ ॥

प० । त्रिंशद्वर्षः उद्वहेत् कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम् त्र्यष्टवर्षः अष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः ॥

यो० । त्रिंशद्वर्षः पुरुषः हृद्यां द्वादशवार्षिकीं कन्यां वा त्र्यष्टवर्षः पुमान् अष्टवर्षां कन्यां उद्वहेत्–सत्वरः पुरुषः धर्मे सीदति॥

भा० । तीस वर्षका मनुष्य बारह वर्षकी मनोहर कन्याको और चौबीस वर्षका आठ वर्ष की कन्याको विवाहै और शीघ्र करनेवाला धार्मिक नहीं होताहै ॥

ता० । तीसवर्ष का मनुष्य–मनोहर और बारहवर्ष की कन्याको अथवा चौबीसवर्ष का मनुष्य आठवर्ष की कन्याको विवाहै जो मनुष्य इससे पहिले विवाहने में शीघ्रता करताहै वहधर्म में कष्ट को पाताहै अर्थात् धार्मिक नहींरहता–योग्यकालके लिये यहवचन समझना क्योंकि प्रायः इन्हें वचनोंसे इतने कालपर वेदपढ़सक्ता है और वरकी अवस्थासे त्रिभाग (तिहाई) है अवस्था जिसकी ऐसीकन्या युवावरके योग्यहोतीहै और वेदपढ़ा ब्रह्मचारी गृहस्थाश्रममेंजाय और विलंबनकरै ९४॥

देवदत्तांपतिर्भार्यांविन्दतेनेच्छयात्मनः । तांसाध्वींबिभृयान्नित्यंदेवानांप्रियमाचरन् ९५ ॥

प० । देवदत्तां पतिः भार्यां विंदते न इच्छया आत्मनः तां साध्वीं बिभृयात् नित्यं देवानां प्रियं आचरन् ॥

---

१ त्रिभागवयस्काचकन्यावोढुर्यूनोयोग्या–गृहीतवेदश्चाप्रकुर्वाणकोगृहस्थाश्रम्यस्तु ॥

यो० । देवदत्तां भार्यां पतिः विंदते आत्मनः इच्छया न विंदते-देवानां प्रियं आचरन् पुरुषः तां नित्यं बिभृयात् (पालयेत्) ॥

भा० । ता० । देवताओंकी दीहुई भार्या को पति प्राप्तहोताहै अपनी इच्छासे नहीं होता क्योंकि इत्यादि मंत्रों से वेदमें यह कहा है कि भग अर्यमा सूर्य आदि देवताओं ने गृहस्थाश्रम के लिये तुझे मुझको दिया है और तू मेरे गृहस्थके धारण करनेवाली है-इससे देवताओंकी प्रीतिका अभिलाषी मनुष्य उस साध्वी स्त्री की भोजन वस्त्र आदि से निरंतर पालना करै ९५ ॥

प्रजनार्थंस्त्रियःसृष्टाःसंतानार्थंचमानवाः । तस्मात्साधारणोधर्मःश्रुतौपत्न्यासहोदितः ९६

प० । *प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः संतानार्थं च मानवाः तस्मात् साधारणः धर्मः श्रुतौ पत्न्या सह उदितः ॥*

यो० । *स्त्रियः प्रजनार्थं-मानवाः संतानार्थं सृष्टाः (रचिताः)तस्मात् साधारणः धर्मः पत्न्या सह श्रुतौ उदितः (कथितः)॥*

भा० । ता० । *गर्भ ग्रहणके लिये स्त्री रची हैं और संतान (गर्भाधान) के लिये मनुष्योंको रचा है* तिससे गर्भ की उत्पत्ति के समान अग्निका आधान आदि भी साधारण धर्म इसे श्रुति में पत्नी सहितही कहा है अर्थात एकाकी कोई कर्म नहीं करना कहा-और उक्त श्रुतिका अर्थ यहहै कि रेशमवस्त्रों को धारणकरके स्त्री पुरुष अग्निका आधानकरैं-तिससे भार्या की अवश्य पालनाकरै ९६ ॥

कन्यायांदत्तशुल्कायांम्रियेतयदिशुल्कदः । देवरायप्रदातव्यायदिकन्यानुमन्यते ९७ ॥

प० । कन्यायां दत्तशुल्कायां म्रियेत यदि शुल्कदः देवराय प्रदातव्या यदि कन्या अनुमन्यते ॥

यो० । यदि कन्यायां दत्तशुल्कायां सत्यां शुल्कदः म्रियेत तर्हि कन्या यदि अनुमन्यते तदा देवराय प्रदातव्या ॥

भा० । ता० । जो कन्याका शुल्क (मोल) देने पर शुल्क देनेवाला पुरुष (वर) मरजाय तो वह कन्या देवरको देदेनी यदि कन्याकी अनुमतिहो ९७ ॥

आददीतनशूद्रोऽपिशुल्कंदुहितरंददन् । शुल्कंहिगृह्णन्कुरुतेछन्नंदुहितृविक्रयम् ९८ ॥

प० । आददीत न शूद्रः अपि शुल्कं दुहितरं ददन् शुल्कं हि गृह्णन् कुरुते छन्नं दुहितृविक्रयम् ॥

यो० । दुहितरं ददत् शूद्रः अपि शुल्कं न आददीत-हि (यतः) लोभेन शुल्कं गृह्णन् सन् छन्नं दुहितृविक्रयं कुरुते ॥

भा० । ता० । शास्त्रको न जाननेवाला और कन्याको देताहुआ शूद्र भी शुल्कको ग्रहण न करै क्योंकि जो लोभ से शुल्कको ग्रहणकरता है वह गुप्तरीतिसे अपनी लड़की को बेचताहै-पहिले (न कन्यायाः पिता विद्वान्) इस वचनसे शुल्कका निषेध कहा और फिर यह कहा कि शुल्क देनेवाला मरजाय तो देवरको देदे इससे यह शंका होती है कि शुल्क भी शास्त्रोक्त है-इस शंकाकी निवृत्ति के लिये पुनः यह शुल्कका निषेध कहा है ९८ ॥

एतत्तुनपरेचक्रुर्नापरेजातुमानवाः । यदन्यस्यप्रतिज्ञायपुनरन्यस्यदीयते ९९ ॥

प० । एतत् तु न परे चक्रुः न अपरे जातु मानवाः यत् अन्यस्य प्रतिज्ञाय पुनः अन्यस्य दीयते ॥

यो० । यत् अन्यस्य प्रतिज्ञाय पुनः अन्यस्य कन्या दीयते एतत् परे (पूर्वेशिष्टाः) न जातु (कदाचित्) चक्रुः अपरे (वर्तमानाः) अपि मानवाः न कुर्वंति ॥

---

१ भगोऽर्यमादेवः सवितापुरंधिर्मह्यंत्वादुर्गार्हपत्यायदेवाः ॥
२ क्षौमे वसाना वग्नीनादधीयाताम् ॥

भा० । ता० । यह बात न तो पहिले शिष्टोंने की है और न वर्तमान समयके शिष्टकरते हैं कि किसी एक अन्यको कन्या देने की प्रतिज्ञाकरके फिर किसी अन्यको कन्या दीजाय ६६ ॥

नानुशुश्रुमजात्वेतत्पूर्वेष्वपिहिजन्मसु । शुल्कसंज्ञेनमूल्येनच्छन्नंदुहितृविक्रयम् १०० ॥

प० । न अनुशुश्रुम जातु एतत् पूर्वेषु अपि हि जन्मसु शुल्कसंज्ञेन मूल्येन छन्नं दुहितृविक्रयम् ॥

यो० । शुल्कसंज्ञेन मूल्येन छन्नं यत् दुहितृविक्रयं एतत पूर्वेषु अपि जन्मसु जातु (कदाचित्) वयं न अनुशुश्रुम ॥

भा० । ता० । यह बात हमने पहिले कल्पों में भी नहीं सुनी कि शुल्क है नाम जिसका ऐसे मूल्यसे छन्न (गुप्त) कन्याका बेचना—अर्थात् शुल्कके बहानेसे मोललेकर कन्याका दानकरना १००॥

अन्योन्यस्याव्यभीचारोभवेदामरणान्तिकः । एषधर्मःसमासेनज्ञेयःस्त्रीपुंसयोःपरः १०१

प० । अन्योन्यस्य अव्यभीचारः भवेत् आमरणांतिकः एषः धर्मः समासेन ज्ञेयः स्त्रीपुंसयोः परः ॥

यो० । आमरणांतिकः अन्योन्यस्य अव्यभीचारः भवेत् एषः धर्मः स्त्रीपुंसयोः समासेन परः (श्रेष्ठः) ज्ञेयः ॥

भा० । ता० । संक्षेपसे स्त्री और पतिका यह धर्म जानना कि मरणपर्यंत परस्पर व्यभिचार न हो अर्थात् धर्म अर्थ काम आदि में स्त्री पतिसे पृथक् नहो और पति स्त्रीसे पृथक् नहो—किंतु दोनों एक मतहोकरही संपूर्ण कर्मोंको कियाकरें १०१ ॥

तथानित्यंयतेयातांस्त्रीपुंसौतुकृतक्रियौ । यथानाभिचरेतांतौवियुक्तावितरेतरम् १०२ ॥

प० । तथा नित्यं यतेयातां स्त्रीपुंसौ तु कृतक्रियौ यथा न अभिचरेतां तौ वियुक्तौ इतरेतरम् ॥

यो० । यथा वियुक्तौ तौ (स्त्री पुरुषौ) इतरेतरं न अभिचरेतां कृतक्रियौ स्त्रीपुंसौ नित्यं तथा यतेयाताम् ॥

भा० । ता० । विवाह के अनंतर दोनों स्त्री और पुरुष तिसप्रकार यत्नकरें जिससे वियुक्त (बिछड़ना) होकर परस्पर धर्म अर्थ कामोंमें व्यभिचार नहो अर्थात् दोनोंकी असंमति न होने पावे १०२ ॥

एषस्त्रीपुंसयोरुक्तोधर्मोवोरतिसंहितः । आपद्यपत्यप्राप्तिश्चदायभागंनिबोधत १०३ ॥

प० । एषः स्त्रीपुंसयोः उक्तः धर्मः वः रतिसंहितः आपदि अपत्यप्राप्तिः च दायभागं निबोधत ॥

यो० । एषः स्त्रीपुंसयोः रतिसंहितः धर्मः वः (युष्माकं) उक्तः च पुनः आपदि अपत्यप्राप्तिः (नियोगविधिना) उक्ता इदानीं दायभागं यूयं निबोधत (शृणुत) ॥

भा० । ता० । यह स्त्री और पुरुषका परस्पर प्रीतिसे युक्त धर्म और आपत्ति (संतान का अभाव) के समय संतानकी प्राप्ति भी नियोगकी विधिसे तुमको कही—अब तुम दाय (पिता आदि का धन) का भाग (बांटना) सुनो अर्थात् धनके विभाग की व्यवस्थाको सुनो १०३ ॥

अथ दायभागः ॥

इस श्लोकसे पहिले श्लोकमें मनुजीने यह प्रतिज्ञाकी है कि अब तुम दायभागको सुनो इससे प्रथम इस दायभाग प्रकरणमें यह निरूपण करना आवश्यकहै कि दायभाग किसको कहते हैं और दायभाग पदमें दायपदका क्या अर्थहै—इस दायभाग शब्दमें दाय शब्दका यह अर्थ है कि जोसुवर्ण

आदि धन स्वामी के संबंध से अन्य किसी पुत्र आदि का स्व (अपना) होजाय अर्थात् पुत्र आदि उसके स्वामी होजायँ उसे दाय कहते हैं क्योंकि जिसका जो धन होता है उस धनका वह स्वामी होताहै और वह धन उस स्वामीका स्व होताहै और धन और स्वामीका परस्पर स्वस्वामिभाव संबंधहोताहै और स्वस्वामिभाव संबंधका यह अर्थ है कि भावनाम धर्म का है जो स्व और स्वामी में रहता है अर्थात् स्वमें स्वत्व और स्वामीमें स्वामित्व इनदोनों (स्वत्व स्वामित्व) का परस्पर निरूप्य निरूपकभाव संबंध है अर्थात् स्वत्वका निरूपित (कियाहुआ) स्वामी में स्वामित्व और स्वामित्व निरूपित स्वमें स्वत्व है अर्थात् स्व है तो स्वामी है और स्वामी है तो स्व है–निदान एकके विना एकका होना असंभव है ॥

उस दाय के दो भेद हैं १ अप्रतिबंध (जिसका कोई अवरोधक नहो) २ सप्रतिबंध (जिसका कोई अवरोधकहो) उन दोनों में पुत्र और पौत्रोंका जो पिता और पितामह के धनमें स्वत्व (अपनापन) है वह अप्रतिबंध है क्योंकि उसको कोई हटा नहीं सका–और धनके स्वामी के पितृव्य (चाचा) और भाई आदि का जो धनके स्वामीके धनमें स्वत्व है वह सप्रतिबंधहै क्योंकि पुत्र पौत्र और स्वामीके अभावमेंही उनका स्वत्व होसक्ता है अर्थात पुत्र और स्वामी उनके स्वत्वके प्रतिबंधक (हटाने वाले) हैं–इसीप्रकार पुत्र पौत्र आदि के पुत्र आदि में भी समझना चाहिये ॥

विभाग उसको कहते हैं कि अनेक हैं स्वामी जिनके ऐसे द्रव्योंको उन स्वामियोंमें से प्रत्येक के अंशके अनुसार उन द्रव्योंका स्थापन (व्यवस्था) करदेना–क्योंकि नारदमुनिने इस[1] वचनसे यह कहा है कि पिता आदि के धनका विभाग (बांटना) पुत्र आदि जहां करते हैं उसको दायभाग कहते हैं और यही दायभाग का स्वरूप विद्वान् जानते हैं ॥

अब यहां पर यह निरूपणकरने योग्य है कि १ किससमय में–२ किसका–३ किसप्रकार–४ कौन विभाग करै–इनचारों में किससमय में–किसप्रकार–कौन विभागकरै इनतीनोंका निर्णय तो जहां २ जिसका विभाग कहेंगे वहां २ करेंगे–किसका विभाग करना इसका निर्णय करते हैं कि–पिता आदि के धनमें पुत्रका स्वत्व विभाग के पीछे पैदा होताहै–अथवा पुत्रके जन्मतेही उस पिता के धनमें पुत्रका जो स्वत्वथा उस विद्यमान स्वत्वकाही विभागहोताहै और वह पुत्र आदि का स्वत्व भी पिताके धनमें शास्त्र में कहने से मानना वा किसी अन्य प्रमाणसे भी होसका है–इसमें कोई यह कहते हैं कि इस[2] गौतम ऋषि के वचनसे शास्त्रके प्रमाणसे ही पुत्रका स्वत्वहोताहै कि रिक्थ (जिस दायका कोई प्रतिबंधक नहो) क्रय (मोललेना) विभाग–प्रतिग्रह–और निधि (पृथिवी में स्थितधन) आदि की प्राप्ति–इनसे धनका स्वामी होताहै और ब्राह्मण को यज्ञ आदि कराने–और क्षत्रियको जीतकर–और वैश्य और शूद्रको खेती वा सेवासे जो धन मिले उस धनमें इनचारोंवर्णो का पूर्वोक्तोंसे अधिक स्वत्वहोता है अर्थात् उस धनके स्वामी येही होतेहैं–यदि किसी शास्त्र से भिन्न प्रमाणसे भी स्वत्वहोजाय तो यह गौतमका वचन निरर्थक होजाय और पीछे मनुजी यह कहआये हैं जो[3] ब्राह्मण चोरके हाथसे यज्ञकराने वा पढ़ानेसे भी धनको ग्रहणकरने की इच्छाकरै वह ब्राह्मण

---

१ विभागोर्थस्यपैत्र्यस्यतनयैर्यत्रकल्प्यते । दायभागइतिप्रोक्तंदायभागपदंबुधैः ॥

२ स्वामीरिक्थक्रयसंविभागपरिग्रहाधिगमेषुब्राह्मणस्याधिकंलब्धं–क्षत्रियस्यविजितंनिर्विष्टंवैश्यशूद्रयोः ॥

३ योऽदत्तादायिनोहस्ताल्लिप्सेतब्राह्मणोधनम् । याजनाध्यापनाद्वापियथास्तेनस्तथैवसः ॥

भी चोरके समान है यह भी जभी ठीक होसक्ता है जब स्वत्व शास्त्र के द्वाराही होताहै-क्योंकि लोक सिद्धहोता तो दंडदेना और चोरके समान बताना ठीक न होता क्योंकि ब्राह्मणने उसीसे लिया जिसके हाथमें उस धनको देखा-और जो स्वत्व लोक प्रसिद्धही होय तो-मेरा स्व इसने चुरालिया यह व्यवहार न होनाचाहिये क्योंकि लोक दृष्टिसे तो वह चोरकाही स्वहोताहै-और सुवर्ण और चांदी आदि के स्वरूपके समान यह संशय भी न होगा कि इसका स्व है कि मेरा-तिससे यही ठीकहै कि शास्त्र से ही स्वत्वका निर्णय होताहै-इस विषयमें कोई यह कहतेहैं कि लौकिकही स्वत्वहै-क्योंकि इससे लौकिक कार्य सिद्ध होतेहैं-व्रीहि आदि के समान-अर्थात् इस अनुमानसे स्वत्व लौकिक है शास्त्र से सिद्ध नहीं होसक्ता-जैसे अग्निहोत्र में आहवनीय (व्रीहि) आदि-शास्त्र सिद्धहैं और लौकिक क्रियाके साधन नहीं होसक्ते-कदाचित् कोई शंकाकरै कि आहवनीय आदि भी पाक आदि लौकिक क्रिया के साधन हैं-यह शंका ठीकनहीं है क्योंकि आहवनीयरूपसे अग्निपाक का साधन नहीं है किंतु प्रत्यक्ष दीखने योग्य अग्निरूपसे है-और यहां पर सुवर्ण आदि रूपसे लौकिक क्रिया के साधन (कारण) नहीं हैं किंतु सुवर्ण आदि के स्वत्वही क्रियाके साधन हैं-क्योंकि जो सुवर्ण आदि जिसका स्व नहीं होता वह उसके किसी वस्तुके मोललेने के काम को नहीं देसक्ता-और जिन प्रत्यंत (ग्रामादि) वासियोंने शास्त्रका व्यवहार नहीं देखा वे भी लेन देन करते दीखते हैं और नियमसे उपायोंका संपादक लौकिक स्वत्वही है यह न्याय के ज्ञाता मानते हैं-यही दिखातेहैं कि मीमांसा के लिप्सासूत्रके तीसरे वर्णक में यह कहा है कि द्रव्य संचयके नियम क्रतु (यज्ञ)के अर्थही होंगे तो उनमें स्वत्वही न होगा क्योंकि स्वत्व लौकिक है इस शंकाके अभावकी आशंका करके इसरीतिसे गुरु (मीमांसा शास्त्र के आचार्य प्रभाकर) ने उक्त शंकाका समर्थन कराहै कि प्रतिग्रह आदि से स्वत्व लौकिक है अर्थात् लोक प्रसिद्ध है-कदाचित् इसमें वही शंका फिर होतीहै कि द्रव्य संचयको यज्ञके अर्थ मानोगे तो स्वत्वही न होगा और स्वत्वके न होनेसे यज्ञकी प्रवृत्ति न होगी-यह किसी का प्रलाप (अनर्थक वचन) है अर्जन (संचय) से स्वत्व पैदा नहीं होता और स्वत्व को लौकिकही मानकर सिद्धांत भी किया है इससे पुरुषको नियमोंका अवलंघन है यज्ञका नहीं-और इसके अर्थ का स्पष्ट विवरण यह किया है कि जब द्रव्यसंचय के नियम यज्ञार्थ हैं तो नियम पूर्वक संचित धनोंसेही यज्ञ सिद्ध होताहै और अनियम (अन्याय) से संचित धनोंसे नहीं-नियमों के अवलंघनका दोष पुरुषको नहीं होता इस आशंकाका सिद्धांत यह किया है कि धनसंचयका नियम पुरुषार्थ है उस नियम के अवलंघन पूर्वक द्रव्य संचयसे यज्ञकी सिद्धि तो होती है परंतु पुरुष को नियम के अवलंघन का दोष होताहै इससे नियमों के अवलंघन से अर्जित धनोंमें भी स्वत्वको माना है न मानोगे तो यज्ञकी सिद्धि न होगी-कदाचित् इसमें कोई यह शंकाकरै कि चोरीके धनमें भी स्वत्व होजायगा-यह ठीक नहीं है क्योंकि लोकमें चोरी के धनमें स्वत्वकी प्रसिद्धिका व्यवहार नहीं है-इसप्रकार प्रतिग्रह आदि उपायों से स्वत्व लौकिक है यह जब व्यवस्था भई-तो ब्राह्मणके प्रतिग्रह आदि धनसंचय के उपाय हैं क्षत्रियके विजय-वैश्यके कृषि-शूद्रके सेवा-आदि हैं-और रिक्थ आदि सब वर्णों के साधारण हैं-जो पहिले-(स्वामी रिक्थक्रय संविभागपरिग्रहाधिगमेषु)इस वचनसे कहे हैं-इसका अर्थ वर्णन करआये हैं-और यह भी कहआये हैं कि प्रतिग्रह से लब्ध धनमें ब्राह्मणका-विजय से लब्ध धनमें क्षत्रिय का-कृषि आदि से लब्ध धनमें वैश्यका-सेवा आदि से

लब्ध (मिले) धनमें शूद्रका-असाधारण स्वत्वहोताहै-इसीप्रकार अनुलोमज और प्रतिलोमजजातियोंके जो २ उपाय कहेहैं जैसे कि सूतोंका अश्वोंका सारथिपन-उनसे असाधारण स्वत्व उत्पन्न होताहै इस वैश्य आदि के उपायको निर्विष्ट कहते हैं क्योंकि इस वचनसे यही त्रिकांड शेषमें कहा है-यद्यपि याज्ञवल्क्य ऋषिने इस वचनसे यह कहा है कि अपुत्रका धन क्रमसे इनको मिलता है कि पत्नी-लड़की-पिता-माता-भाई-भाई के पुत्र-गोत्रज-बंधु-शिष्य-सब्रह्मचारी-(संग का पाठक) इनमें पहिले २ के अभाव में पिछला २ धनका भागी होताहै-यद्यपि इस वचनसे स्वत्व शास्त्र सिद्ध होताहै-तथापि स्वामीके संबंध से बहुत से पत्नी आदि धनके भागी लोक रीतिसे पाये संदेह निवृत्ति के लिये-पत्नी इत्यादि-वचन हैं-इसमें स्वत्वके लौकिक मानने में कोई भी दोष नहीं है-और पहिले जो यह कहआये हैं कि जो स्वत्व लौकिक होय तो यह कथन ठीक नहीं होगा कि मेरा स्व इसने चुराया क्योंकि लोक में तो वह धन चोर के हाथ मेंहोने से चोरकाही पायाजाता है वह भी ठीकनहीं है-क्योंकि स्वत्व के हेतु (कारण) क्रय आदिके सन्देहसे स्वत्वका सन्देह होसक्ताहै और स्वत्व लौकिकहै वा शास्त्रसिद्धहै इस विचारकरने का प्रयोजन तो इस वचनसे यहप्रतीत होता है-जो ब्राह्मण निंदित जीविका से धनको इकट्ठा करतेहैं उसधनके परित्याग-और जपतपसे शुद्धहोतेहैं-यदि स्वत्व शास्त्र सिद्धहोता तो निंदितअसत्प्रतिग्रह व्यापारआदि से प्राप्तहुये धनमें स्वत्वही नहीहोता इससे पुत्रोंके विभागकरने योग्यही वह धन नहींहोगा और जब स्वत्वको लौकिक मानते हैं तब असत्प्रतिग्रह आदिसे लब्धमेंभी स्वत्वहोता है इससे वहधन पुत्रों के विभागकरने योग्य होसक्ता है और उसके त्याग जप तप रूप प्रायश्चित्त पिताकोही करनापड़ताहै और उसके पुत्रोंका तो वहदायहै इससे पुत्रोंको दोषकासम्बंध नहींहोता-और मनुजीका भी यहकथनहै कि सातप्रकारसे द्रव्यआना धर्मयुक्त होताहै कि दाय-लाभ-क्रय-जय-प्रयोग-और कर्मयोग-और उत्तमप्रतिग्रह-अब यह सन्देहशेषरहा कि-विभागसे स्वत्व पैदा होता है कि विद्यमान स्वत्ववाले धनकाही विभाग होताहै-उनदोनों में पहिले यही प्रतीत होताहै कि विभाग के अनन्तर स्वत्व पैदाहोता है क्योंकि जो जन्मसेही स्वत्वहोता तो पुत्रके पैदाहोतेही पिता उसपुत्र के जातकर्म को न करसक्ता क्योंकि उसपुत्रका भी जन्मलेतेही उसधनमें स्वत्व पैदा होगया और पिताका स्वत्व तो विद्यमानही था इससे साधारण (साझेके) धनमें से पिताको एक कपर्द्दिका (कौड़ी) व्ययकरनेका भी अधिकार न होता-और जो जन्मसेही स्वत्वहोता तो विभाग से पहिले जो धन पिताने किसी पुत्रको देदिया है उसका विभाग निषिद्ध है और सबकी अनुमति से वहधन दिया है उसका विभाग प्राप्त नहीं होसक्ता इससे उसके विभाग का निषेध अनुचित है और इसमें यह वचन प्रमाण है कि शूरवीरता से लब्ध और स्त्रीकाधन-विद्यासे लब्धधन और जो धन पिताकी प्रसन्नतासे मिले ये सबधन विभागकरने योग्य नहीं होते-और जो जन्मसेही स्वत्व

१ निर्वेशोभृतिभोगयोः ॥

२ पत्नीदुहितरश्चैवपितरौभ्रातरस्तथा । तत्सुतागोत्रजाबंधुशिष्यसब्रह्मचारिणः । एषामभावेपूर्वस्यधनभागुत्तरोत्तरः ॥

३ यद्गर्हितेनार्जयंति कर्मणाब्राह्मणाधनम् । तस्योत्सर्गेणशुद्ध्यंतिजप्येनतपसैवच ॥

४ सप्तवित्तागमाधर्म्यादायोलाभःक्रयोजयः । प्रयोगःकर्मयोगश्चसत्प्रतिग्रहएवच ॥

५ शौर्यवीर्याधनेचोभेयच्चविद्याधनंभवेत् । त्रीण्येतान्यविभाज्यानिप्रसादोयश्चपैतृकः ॥

मानोगे तो यह प्रीतिसे स्त्रीको देना भी संगत न होगा कि जो धन स्त्रीको पतिने प्रसन्न होकर दियाहो उसधनको वह स्त्री पतिके मरे पीछे भी यथेच्छभोगे और स्थावर के विना किसीको देदे— और मणि—मोती—मूंगा इनसबका स्वामी पिताहोताहै और सम्पूर्णस्थावर धनका पितामह स्वामी होता है—और पिताकी प्रसन्नता से पुत्र वस्त्र आभरण इनको भोगे और पिताकेदिये स्थावरधनको नहींभोगै—इन दोनों वचनोंसे प्रीति से स्थावर के देनेका जो निषेध है वह उसी स्थावरका है जो पितामहका संचितहो—और पितामह के मरे पीछे वह स्थावरधन पिता और पुत्र का साधारण भी होता है परन्तु मणि मोतीआदि पिताकेही होतेहैं यहबात भी इसीवचन से प्रतीत होतीहै—तिससे जन्मसेही स्वत्व होताहै परन्तु स्वामीके मरेपीछे विभाग के अनन्तर पुत्रआदिका स्वत्व होता है— इससे पिताके पीछे विभागसे पहिले जो पिताका स्वत्वथा वहभी नष्टहोगया—इससे यह भी शंका कोई नहींकरसक्ता कि अन्य कोई ग्रहणकरनेलगे तो मने करना न चाहिये—तिसीप्रकार एकपुत्र के धनमें भी पिताके मरनेपरही पुत्रका स्वत्वहोता है—इसविषयमें विज्ञानेश्वर (मिताक्षरा) का तो यहमत है कि स्वत्व लोक प्रसिद्धही है और लोकमें पुत्रादिकों का स्वत्व जन्मसेही अत्यन्त प्रसिद्ध है उसको कोई नहीं मिथ्याकरसक्ता—और विभाग उसी धनका होता है जिसके बहुत स्वामी हैं— और अन्यके और त्यागेहुये धनका नहींहोता है—क्योंकि इस वचनसे गौतमऋषिने यहकहाहै कि उत्पत्तिसेही धनका स्वामी होनेसे पुत्र धनको प्राप्तहोताहै यह आचार्य कहतेहैं —और पूर्वोक्त (मणि मुक्ता प्रवालानां) ये वचन भी जन्मसे स्वत्व माननेपरही संगत होते हैं-और पितामह के संचित स्थावर विषयकनहीं हैं क्योंकि—(न पिता न पितामहः) इसवचन से याज्ञवल्क्य ने स्थावर धनमें किसीकी भी असाधारण स्वामिता नहींकही अर्थात् सबकी साधारण स्वामिता होती है—और यह वचन भी जन्मसेही स्वत्वको जनाता है कि पितामह अपने संचितधनको पुत्र वा पौत्र होनेपर न दे—जैसे तुम्हारे मतमें पितामह के मणि—मोती वस्त्र भूषण आदि में वचनसे पुत्रका स्वत्व है इसी प्रकार हमारे मतमें पिताके भी मणि आदिकों में वचनसेही और पिताकोही देनेका अधिकार है अर्थात् इनमें कोई विशेषता नहीं है—और प्रसन्न होकर पतिने स्त्रीको जो धनदिया है उसधनको वह स्त्री पतिके मरेपीछे यथेच्छभोगे और स्थावरधनको छोड़करकिसीको दानकरदे और (भर्त्रा प्रीतेन) इत्यादि वचनों का भी यह तात्पर्य है कि अपने संचितधनको भी पिता पुत्रआदि की अनुमति के विना न दे क्योंकि पूर्वोक्त मणि मुक्ताआदि वचनोंसे स्थावरसे भिन्नही धनका प्रीतिसे दान देने का निश्चय है और (जन्मसे स्वत्वमानोगेतो) जो पीछे यहकहआयेहैं कि वेदोक्तकर्मों (जोधनसाध्यहैं) में पिताको अधिकार न होगा यह भी ठीक नहींहै क्योंकि वचनों के बलसे साधारण धनके व्ययका भी अधिकार होसक्ता है—सिद्धांत यह है कि पिता और पितामहके धनमें यद्यपि जन्मसेही स्वत्व पैदाहोता है तथापि आवश्यक धर्मकार्य—प्रीतिदान—कुटुम्ब का भरण—आपत्तिका निवारण—इनमें

---

१ भर्त्राप्रीतेनयद्दत्तंस्त्रियैतस्मिन्मृतेपितत् । सायथाकाममश्नीयाद्दद्याद्वास्थावरादृते ॥

२ मणिमुक्ताप्रवालानांसर्वस्यैवपितामभुः । स्थावरस्यतुसर्वस्यनपितानपितामहः ॥
पितृप्रसादाद्भुज्यन्तेवस्त्राण्याभरणानिच । स्थावरंतुनभुज्येतप्रसादेसतिपैत्रिके ॥

३ तंतथोत्पत्त्यैवार्थस्वामित्वाल्लभेतेत्याचार्याः ॥

४ पितामहस्यहिस्वार्जितमपिपुत्रेपौत्रेचसत्यदेयम् ॥

स्थावरधनसे भिन्नधनके व्ययकरने में पिताकी स्वतन्त्रता है–और अपने संचित वा पितासे मिले स्थावरधन में पिताभी पुत्रके परतंत्र है अर्थात् पुत्रकी अनुमति के विना स्थावरधनका व्यय (खर्च) विक्रय नहींकरसक्ता–क्योंकि इनै वचनोंसे यह प्रतीत होता है कि–स्थावर और द्विपद (पशु) अपने संचित भी इनका विना सबपुत्रोंकी सम्मति दान और विक्रय नहींहोता–जो पुत्र पैदाहोचुके हैं और जो नहीं पैदाहुये वेभी वृत्ति (जीविका) को चाहते हैं इससे इनकादान और विक्रय पिता नहींकरसक्ता–और आपत्ति के समय कुटुम्ब की पालना और विशेषकर धर्म के लिये दान आधमन (गिरवी) विक्रयको इसै वचनमें एकभी करदे–और विभक्त (जुदे) और अविभक्त सब सपिंड स्थावरधनमें समान होते हैं और एकमनुष्य इनके देने आधमन और विक्रय करने को असमर्थ है इसै वचनका भी यह अभिप्राय है कि वह द्रव्य सबका है और एक कोई स्वामी नहीं होसक्ता इससे सबकी संमति अवश्य लेनी और विभागहुये पीछे तो विभागहुआ वा नहीं इससंदेह की निवृत्ति के और व्यवहार की शुद्धिके लिये सबकी संमति लेनी होती है कुछ सबके स्वामी होने से नहीं इससे विभक्त (जुदे) भाइयोंकी अनुमति के बिना भी व्यवहार सिद्धहो (चल) सक्ताहै-और जो यह वचनै है कि अपनाग्राम–जाति–सामंत–दायकग्राहक–हिरण्य (द्रव्य) और जल इनका दान इनछःसे पृथिवी चलीजाती है अर्थात् अन्यकी होजाती है–इसवचनका अभिप्राय यह है कि ग्रामकी अनुमति प्रतिग्रह के प्रकाश के लिये है कुछ इसलिये नहीं है कि ग्रामकी अनुमति के बिना व्यवहार में न्यूनताहोगी–क्योंकि इसै वचनसे पदार्थका और विशेषकर स्थावरका प्रतिग्रह प्रकाश रीतिपर होताहै और सामन्तकी अनुमति इसलियेहै कि सीमामें विवादनहो–और हिरण्योदकदान इसलिये है कि स्थावर का विक्रय नहींहोसक्ता और अनुमति से आधिहोसक्ती है इसै वचन से स्थावर का विक्रय तो होतानहीं–परन्तु इसै वचनसे भूमिदानका यहफल है कि जो भूमिकोदेता है वा लेता है पुण्यके कर्ता वे दोनों नियमसे स्वर्गमें जातेहैं इससे भूमिका विक्रय दानरूपसे होता है और वहदान हिरण्य (सोना) और जलदे (संकल्प) कर करे–सिद्धांत यह है कि पिता और पितामहके धनमें जन्मसेही स्वत्व है–परन्तु पिताके और पितामहके धनमें यद्यपि जन्मसेही स्वत्व होता है तथापि अपने संचितधनको पिता यथेच्छ देसक्ताहै पुत्र निषेध नहींकरसक्ता और पितामह के संचितधनमें पुत्र निषेध करसक्ता है क्योंकि जो पिता अपने पिताके अनवाप्त (अप्राप्य) द्रव्य को प्राप्त (वसूल) करले तो उसधनको पुत्रोंकी सम्मति के बिना न बांटै–अर्थात् माता पिता के संचितधनमें पुत्र अस्वतंत्र है और पितामहके धनमें तो अनुमतिलेने योग्य पुत्र भी होताहै ॥

वीर मित्रोदयकार तो यहकहते हैं कि पिछले अध्याय के अंत्यश्लोक में दायशब्दका अर्थ स्वामि

१ स्थावरंद्विपदंचैवयद्यपिस्वयमर्जितम् । असंभूयसुतान्सर्वानदानंनचविक्रयः । येजातायेप्यजाताश्च येचगर्भेव्यवस्थिताः वृत्तिंचतेभिकांक्षंति नदानंनचविक्रयः ॥
२ एकोपिस्थावरेकुर्याद्दानाधमनविक्रयम् । आपत्कालेकुटुंबार्थे धर्मार्थेचविशेषतः ॥
३ विभक्ताअविभक्तावा सपिंडाःस्थावरेसमाः । एकोह्यनीशःसर्वत्र दानाधमनविक्रये ॥
४ स्वग्रामज्ञातिसम्बन्धदायादानुमतेनच । हिरण्योदकदानेनषड्भिर्गच्छतिमेदिनी ॥
५ प्रतिग्रहःप्रकाशःस्यात् स्थावरस्यविशेषतः ॥
६ स्थावरेविक्रयोनास्ति कुर्यादाधिमनुज्ञया ॥
७ भूमिंयःप्रतिगृह्णाति यश्चभूमिंप्रयच्छति उभौतौपुण्यकर्तारौनियतौस्वर्गगामिनौ ॥

सम्बन्धी द्रव्यमें स्वत्वरूपहै क्योंकि निघंटुकारने इसे वचन से यहकहाहै विभागकरने योग्य पिता के द्रव्यको विद्वानों ने दायकहा है और इस निघंटु के वचनमें पितापद धनके स्वामीका बोधक है क्योंकि पिताके अभाव में—(पत्नीदुहितरः) इसयाज्ञवल्क्य के वचनसे अन्योंकाभी दायहोसक्ता है और विभक्तव्यं—इसपद का भी यहअर्थ करना कि जो धन विभाग के योग्यहो अन्यथा एक है पुत्र जिसके ऐसे स्वामीके धनमें विभागके अभावसे दायशब्दकी वाच्यता (अर्थ) न होगी—अर्थात् यदि दूसरापुत्र होता तो वहधन भी विभाग कियाजाता—इससे विभागकेयोग्य पिताकेधनको दायकहना ठीक है—जीमूतवाहन तो कहते हैं कि—दीयतेइतिदायः—(जोदियाजाय वहदाय) इसव्युत्पत्ति से दायशब्द और दायात् ये दोनों गौणहैं क्योंकि मृत—संन्यासीआदि के धनमें भी स्वत्वकी निवृत्तिसे पुत्रआदि का स्वत्व होता है और मृत और संन्यासीआदिकों का उसधन में त्यागनहींहोता—अर्थात् पहिले द्रव्य स्वामी के आधीननहीं त्यागहोता है और उसके स्वामित्व के अभाव होनेपर जिसद्रव्यमें अन्यका स्वत्व पैदाहोजाय उसीमें दायशब्द निरूढ़ है—यह जीमूतवाहन का कथन ठीकनहीं है—क्योंकि यदि निरूढ़होता तो दाय और ददातिशब्दों को गौणमानना असंगत है क्योंकि जिसपदके अवयवों का अर्थ न हो वही रूढ़होता है और अवयवों का अर्थ जीमूतवाहन ने स्वयंकहा है इससे योगरूढ़ भी नहींहोसक्ता—और जन्मसे भी स्वत्वकी उत्पत्तिकहेंगे इससे यहकहनाभी असंगत है कि पहिले स्वामी के स्वामित्वके नाशहोनेपर अन्यका स्वत्व जिसधनमेंहो उसमें निरूढ़दाय शब्द है—और अनेकोंका जिनद्रव्यों में स्वामित्व है उनमें पृथक् २ स्वामित्व का बोधक विभागशब्द है—इसी से एकपुत्रके धनमें विभागशब्दका कथन नहींहोता और इसको दायमिला यहभीकहतेहैं—और जो दासी गौआदि साधारण धन हैं वहां भी सेवा और दोहनाआदि के समय २ पर होने से विभाग होसक्ता है क्योंकि इन वचनों से बृहस्पति ने यहकहाहै कि एकस्त्रीपर अपने २ अंशके अनुसार घर २ में काम करावें—और कूप और बावड़ी के जलको भी अपने २ अंशके अनुसार ग्रहणकरते हैं—और उसका युक्तिसे विभागकरले अन्यथा अनर्थ होजायगा ॥

वहदाय दोप्रकारकाहै १ अप्रतिबंध—२ सप्रतिबंध—पुत्रादिकों का पिताआदिके धनमें दाय अप्रतिबंध है क्योंकि पिताके विद्यमान रहतेही जन्मसे स्वत्व पैदाहोजाता है इससे उसका कोई अवरोधक नहींहोता—और विभक्त—असंसृष्टि—अपुत्र जो मराहुआमनुष्य उसके धनमें जो पिता भाई आदि का स्वत्व है वह सप्रतिबंधदायहै क्योंकि उसदायमें उसस्वामीका होना प्रतिबंधकहै अर्थात् उसके मरे पीछेही इनका स्वत्वहोताहै—इसमें कोई यहकहते हैं कि सबदाय सप्रतिबंध है क्योंकि स्वामीके विद्यमानरहते जन्ममात्रसेही स्वत्वको नहींकहसक्ते—यदि जन्मसेही स्वत्वहोता तो उस साधारण धनसे पिता आधानआदि कर्म न करसक्ता और इसै श्रुतिकाभी विरोध होता—कि जिसके पुत्रहुआहो वह कृष्णकेशी होकर अग्नियों का आधान करै और विभाग से पहिले पिताआदि की प्रसन्नता से दिया और पूर्वोक्त (भर्त्राप्रीतेन) इसवचनसे पतिने स्त्री को दिया जो धन उसको अविभाज्य (बांटने अयोग्य) कहना निरर्थकहोजायगा—क्योंकि यदि सबकी अनुमतिसे पिताआदिने

---

१ विभक्तव्यंपितृद्रव्यंदायमाहुर्मनीषिणः ॥

२ एकांस्त्रींकारयेत्कर्मयथांशेनगृहेगृहे—उद्धृत्यकूपवाप्यंभस्त्वनुसारेणगृह्यते—युक्त्याविभजनीयंतदन्यथानर्थकंभवेत् ॥

३ जातपुत्रःकृष्णकेशोऽग्नीनादधीत ॥

दियाहोय तो सबने दिया इससे विभाग की प्राप्तिही नहींहोसक्ती (प्राप्तौसत्यांनिषेधः) इसन्यायसे प्राप्तिके बिना निषेध कैसा—और यदि सबकी अनुमतिसे नहींदिया तो अनुमति के बिना साधारण द्रव्यका दानही असम्भव है—कदाचित् कोई यहकहै कि पूर्वोक्त—भर्त्रा प्रीतेन—(प्रीतेनभर्त्रा स्थावद्दत्ते यद्दत्तं तत् सा तस्मिन्मृते यथाकामं अश्नीयात् वा दद्यात्) इसश्लोक का उक्त योजना से यहअर्थहै कि प्रसन्नहुये पतिने स्थावरसे भिन्न जो धन स्त्रीको दिया है उसधनको वहस्त्री यथेच्छभोगै वा दे—अर्थात् पति स्त्री को विभाग के पीछे भी स्थावरधन न दे यदि पिताने देभीदियाहोय तो उससे छीन कर पुत्रबांटले और स्थावरसे भिन्नधनको तो न ले निदान स्थावरकी प्रीतिसे न देनेको बोधनकरता है—यह शंका ठीकनहीं है—यथा यस्य इनकी व्यवहित योजना अयुक्त है और स्थावर की प्रीतिसे न देनेही का यहवचन बोधकहोता तो इतरका कहना व्यर्थहोजाता ॥

कदाचित् कोई यहशंकाकरै कि पूर्वोक्त (मणिमुक्ता) आदि वचन अवश्य विभागसे पहिले स्थावर की प्रीतिसे न देनेकोबोधनकरतेहैं—क्योंकि मणिमुक्ताआदिको प्रीतिसेदे और स्थावरकोनदे—अन्यथा स्थावर का न देना अर्थात् आजाता फिर उसका निषेधकहना व्यर्थहोजाता—इससे पुत्रोंका जन्मसे भी स्वत्व है तथापि पुत्रोंकी अनुमति के बिना भी मणिमुक्ताआदिके देनेमें पितास्वतन्त्रहै अर्थात् देसक्ता है और स्थावरको तो पुत्रकी अनुमतिसेही देसक्ताहै यही इनदोनोंवचनोंका अर्थहोनेसे जन्म से स्वत्व पैदा होताहै—यह ठीक नहीं है वह पितामहके स्थावर विषयमें होनेसे पितामहके मरे पीछे वह धन पिता पुत्रका साधारण होताहै उस सब द्रव्यमें पुत्रका स्वत्व है परंतु स्थावरमें पुत्रकी अनुमतिसे क्रय आदि को पिताकरै और मणिमुक्ता आदि में तो पिता स्वतंत्रता से करै अर्थात् पुत्रकी अनुमतिको न ले—और पूर्वोक्त जो गौतम का वचन मिताक्षरामें है उत्पत्त्यैवार्थस्वामित्वंलभते इत्याचार्याः—जन्मतेही धनका स्वामी होनेमें प्रमाण मानाहै इस वचनका दायभाग तत्त्वकारक ने यह अर्थ किया है कि जब पिताके मरने पर पिताका स्वत्व नष्टहोगया और पितासे पैदाहुये पुत्रका पिता हेतु (कारण) था इससे इतरोंकी अपेक्षा पुत्रमें पिताकासंबंध अधिकहै इसलिये जनक (पिता) के धनमें पुत्रोंका स्वामित्व होनेसे पिताका धन पुत्रकोही मिलता है अन्य किसी संबंधीको नहीं मिलता यह आचार्य मानते हैं कुछ पिताका स्वत्व विद्यमान रहते पुत्रका स्वत्व होजाता है यह उक्त वचनका अर्थ नहीं है क्योंकि यह अर्थ करेंगे तो नारद ऋषिके कहेहुये इस वचनसे विरोधहोजायगा—कि पिताके मरे पीछे पुत्र पिताके धनका विभागकरैं—यदि जन्मसेही पुत्रका स्वत्वहोता तो धनका विभागकरै ऐसा कहनाही ठीक होता—और देवल ऋषिने भी इस वचनसे यह कहा है कि पिताके मरने पर पुत्र पिताके धनका विभागकरें और निर्दोष (पतित आदि भिन्न) पिताके विद्यमानरहते पुत्रोंका स्वामित्व नहीं होता और मनुजी भी इस दायभागके प्रथम श्लोक में यह प्रकट कहेंगे कि पिता और माताके मरे पीछे पुत्र पिताके धनका विभागकरें और माता पिताके जीवते पुत्रोंका अस्वाम्य है ॥

और शंखलिखित दोनों ऋषियों ने जो यह कहाहै कि पिताके जीवते पुत्र धनको न बांटें और

---

१ पितर्यूर्ध्वंगतेपुत्राविभजेयुर्धनंपितुः ॥

२ पितर्युपरतेपुत्राविभजेयुर्द्धनंपितुः । अस्वाम्यंहिभवेदेषांनिर्दोषेपितरिस्थिते ॥

३ नजीवतिपितरिपुत्रारिक्थंविभजेरन्—यद्यपिस्वाम्यंपश्चादधिगतंतैःअनर्हापत्यपुत्राअर्थधर्मयोरस्वतंत्रत्वात् ॥

स्मृतिचंद्रिकाकारने जो इस वचनका यह अर्थ लिखाहै कि यद्यपि जन्म के अनंतरही पिताकेधनमें पुत्रोंको स्वामित्व मिलताहै तथापि पिताके जीवते पिताकी इच्छा के विना पिताके आधीन और अर्थ धर्म में अस्वतंत्र होनेसे पुत्र विभागकरने के अयोग्य होतेहैं —इस वचनसे पिताके धनमें जन्म से ही पुत्रोंका स्वत्वहोना प्रकट है—यह भी ठीक नहीं है क्योंकि जन्मसे अस्वामित्वके बोधक बहुत से मनु आदिवचनों के विरोधसे इसवचनका अर्थ कल्पतरुमें इसप्रकार वर्णन किया है कि पुत्रोंको जो पिताका धन पीछे मिलाहै और व्यापारसे हीन पुत्रोंने विद्या आदिसे धनका जो संचय किया है इन दोनोंमेंसे अपनी स्वतंत्रतासे संचित धनमें भी पुत्रोंका स्वामित्व पिताके जीवते हुये नहीं होता और पिताके धनमें तो किसप्रकार होसक्ता है क्योंकि जबतक पिता जीवे तबतक अर्थ और धर्म में पुत्रोंका पराधीनता होती है ॥

और स्वत्व शास्त्रसेही जानाजाता है उस स्वत्वके कारणोंमें रिक्थ और क्रय आदि के समान जन्म कारण नहीं कहाहै इससे जन्म से स्वत्वको प्रमाण मानना असंगत है इसीसे यह शंका भी दूरभई कि पूर्वोक्त—भार्यापुत्रश्च—जैसे इस वचन में भार्या—पुत्र—दास इनतीनोंको अधन (अस्वामी) कहाहै और जो धन ये तीनों पैदाकरैं वह धन उसकाही होताहै जिसके ये तीनोंहों—और यह वचन परतंत्रमात्र का बोधक है इसीप्रकार अस्वामित्वके बोधक इतर वचन भी पराधीनता केही बोधक हैं--क्योंकि भार्या आदि भी अग्न्याधान आदि में आचार्य का वरण करसक्ती हैं इससे यह सिद्धभया कि उनका भी स्वामित्व होताहै--और अस्वातंत्र्यमात्रकेही बोधक उक्त वचन हैं यदि न मानोगे तो पुत्रआदिकोंमें भी धनसे साध्य (करनेयोग्य) पुराणादिकों में कहाहुआ जो कर्म करने का अधिकार वहभी विरुद्धहोजायगा—और इसविषयमें तो प्रत्युत जन्मकी स्वत्वकारणतामें कोई प्रमाण न होनेसे अनेकवचनों का वर्णनही वृथाहोजायगा ॥

और यदि स्वत्वलौकिकहोय तो उसस्वत्वके उपायभी लौकिकहोयँगे तो पूर्वोक्त (स्वामिरिक्थ) यहवचन भी अनुवादमात्र होनेसे व्यर्थ होजायगा क्योंकि पाकसे ओदन (भात) होताहै ऐसा निष्प्रयोजन अनुवाद शास्त्रमें कहीं नहींहोता—और उसवचनका अर्थ यहहै कि—दाय—क्रय—संविभाग-परिग्रह अर्थात् पहिले किसीके अस्वीकारकिये वनके साधारण तृण काष्ठआदिका स्वीकार—अधिगम (जिसका कोई स्वामीनहो ऐसे निधिआदि का मिलना) जब ये सब स्वत्वके कारण होते हैं तभी स्वामी होता है और ब्राह्मण का प्रतिग्रहआदिसे प्राप्तमें और क्षत्रियका युद्धमें विजित और दंडआदि से प्राप्तमें और वैश्य और शूद्रका खेती गौओंकी रक्षा सेवाआदि से लब्ध में अधिक (असाधारण) स्वत्वहोता है—इसीप्रकार प्रतिलोम से उत्पन्न सूतआदिकोंका भी अश्व सारथिपनआदि असाधारण स्वत्व समझना क्योंकि ये सर्व कर्म भृतिरूप हैं और निर्विष्टशब्दसे ग्रहण कियेजाते हैं क्योंकि त्रिकांड में (निर्वेशोभृतिभोगयोः) यह लिखा है ॥

और यदि स्वत्वको लौकिकमानोगे तो जो ब्राह्मणचौरके हाथसे यज्ञकराकर वा पढ़ाकरभी धन को ले वह ब्राह्मण भी चौरके समान होता है—इसवचनसे दंडकादेना सिद्ध न होगा क्योंकि ब्राह्मण ने अपनीवृत्तिसेही लिया है और जब स्वत्वको शास्त्र सिद्धमानते हैं तो चौरको यज्ञकराने से मिले धनमें इसीवचन से स्वत्व पैदा नहींहोसक्ता इससे दंड भी उसको सिद्धहोसक्ता है—और स्वत्व के

१ भार्यापुत्रश्चदासश्चत्रयएवाधनाःस्मृताः। यत्तेसमधिगच्छंतियस्यतेतस्यतद्धनम् ॥

लौकिक मानने में यहभी न होसकेगा कि मेरा स्व (धन) इसने चुरालिया क्योंकि उसधन में लोकरीतिसे चोरकाही स्वत्व है—और जब स्वत्व शास्त्रसे मानाजाता है तो चोरी करना निषिद्ध है इससे स्वत्वका कारण नहींहोसक्ता इससे मेराधन इसने चुराया यहव्यवहार—और यदि सुवर्णत्व आदि के समान स्वत्वभी प्रत्यक्ष प्रमाण से मानोगे जैसे सुवर्णमें सोना है वा रूपा यह सन्देह नहीं होता तिसीप्रकार इसका स्व (धन) है कि इसका—यह सन्देहभी न होगा—क्योंकि लोकरीति से जिसके हाथमें उसीकाधन होताहै—और संग्रहकरनेवाले ने भी यहकहाहै कि जो वस्तु जिसके हाथ में है उसका स्वामी वही नहींहोता—क्योंकि चोरीआदिसे अन्यकाधन अन्यकेहाथमें क्या नहींदीख सक्ता—तिससे शास्त्रसेही स्वामित्व होता है यदि न मानोगे तो इसने इसकाधन चुराया यहकहना न बनेगा—और शास्त्रमेंही धनकाआना प्रसिद्ध है और पृथक् २ वर्णन भी कियाहै—अर्थात् (स्वामी रिक्थ) इसवचन से साधारण और असाधारणरूप धनकाआना पृथक् २ कहा है—निदान स्वत्व शास्त्र से सिद्धहै ॥

कदाचित् कोई कहै कि जिसधनको अपनी इच्छासे जो व्ययकरसके उसधन में उसमनुष्य का स्वत्व होता है—और चोरीआदि से संचितधनका दंडके भयसे यथेष्ट व्यय नहींहोसक्ता इसीसे सुवर्णत्व आदि के तुल्य न होनेसे सन्देह भी होसक्ता है—यहकहना भी ठीकनहीं है शास्त्रकेद्वारा कुटुम्ब पालन आदि में व्ययका निर्णयहोने से इच्छाके अनुसार धनके व्ययकी सिद्धि का असंभव है यही बात इस वचनसे शंकापूर्वक संग्रहकार ने कहीहै कि वही स्व होता है जिसको अपनीइच्छासे व्यय करसकें यहठीकनहीं क्योंकि सम्पूर्णधनका व्यय शास्त्रसेही नियमितहै—कदाचित् कोईकहै कि रिक्थ आदिके समान उत्पत्तिभी धनस्वामित्वकाजनकहै इसगौतमवचनमें जन्मकापर्याय उत्पत्तिभीस्वत्व का हेतु कहा है इससे स्वत्व और स्वत्वके उपाय शास्त्र से भी जाने जाते हैं तो भी जन्मसेही पिता के धनमें पुत्रोंका स्वत्व है—वह ठीक नहीं है क्योंकि उस वचनका अनेक दूषणों से अन्यथा अर्थ पहिलेही कहआये हैं और इसीसे धारेश्वरने भी यही सिद्धांत किया है कि स्वत्व शास्त्रसेही जाना जाता है ॥

और यदि जन्मसेही पिताके धनमें पुत्रका स्वत्व होजायगा तो पिताकी इच्छाके विना भी पुत्रों की इच्छासेही विभाग होजायगा—कदाचित् कोई कहै कि पुत्रों की अस्वतंत्रता से विभाग न होगा—यह भी ठीक नहीं क्योंकि दृष्ट और अदृष्टका विरोधमात्ररहो परंतु व्यवहार की सिद्धि (विभाग)में कोई बाधा न होगी—जैसे जब पिता आदि के संग पुत्र आदिकोंका चतुष्पात् (नालिश) व्यवहार होताहै वहां पुत्रोंको दृष्ट अदृष्टमें कल्याणका विघात (नाश) ही होताहै यह बात (शिष्ये पितुः पुत्रे) इत्यादि वचनोंमें वीरमित्रोदयकारने व्यवहाराध्यायमें कही है तैसेही यहां पर भी होगा—और यहां होजाओ ऐसा नहीं कहसक्ते—क्योंकि सब निबंधों (शास्त्र) का विरोध आवेगा—और कहीं २ जन्मसे ही स्वत्वका लिखना इस अभिप्राय से है कि पिता और पुत्रके संबंधका कारण जन्म है और पिता के स्वत्व नाशका हेतु पिताका मरण है इससे परंपरासे जन्मको भी स्वत्व का हेतुत्व होताहै ॥

---

१ वर्ततेयस्ययद्धस्तेतस्यस्वामीसएवन । अन्यस्वमन्यद्धस्तेषुचौर्याद्यैःकिंनदृश्यते ॥ तस्माच्छास्त्रतएवस्यात्स्वाम्यंनानुभवादपि । अस्यापहृतमेतेनयुक्तंवक्तुमनन्यथा ॥ विदितोर्थागमःशास्त्रेतथावर्णिपृथक्पृथक् ॥

२ नचस्वमुच्यतेतत्यत् स्वेच्छयाविनियुज्यते । विनियोगोस्यसर्वस्यशास्त्रेणैवनियम्यते ॥

और ऊर्द्धंपितुश्च—इत्यादि मनुजी के वचनका यह अभिप्राय है कि पिता आदि के जीवते पुत्रों का जन्म से स्वत्वहोने पर भी पुत्रोंकी इच्छा के बिना विभाग होताहै और पिताके मरे पीछे तो पुत्रोंकी इच्छासेही विभाग होताहै—यह बात अन्याय्यहै क्योंकि यह वचन पुत्रोंके अस्वाम्यका बोध-कहोजायगा—कदाचित् कोई कहै कि पिताके मरणसमय का और विभागकी विधिकेलिये यह मनु-का वचन है—यह कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि विभाग दृष्टार्थ है इससे दोनोंकाहोना असंभवहै—और यह वचन विभागका नियम बोधक भी नहीं है कि पिताके मरे पीछे विभाग अवश्यहीहो—क्योंकि आगे मनुजीही इस वचनसे यह विकल्प कहेंगे कि सबभाई इसप्रकार इकट्ठे बसें वा धर्म की कामनासे पृथक् २ बसें—और समयकी विधि उक्त वचनको मानोगे तो पिताके मरने पीछेही विभाग होनेसे नैमित्तिक विभागमें निमित्तके आनंतर्य का बाध होजायगा क्योंकि मरनेके अनंतरही विभागहोना असंभव है इससे जात पुत्रका इष्टि (यज्ञ) के समान प्राण वियोगकी आपत्तिरूप विशेष विरोधका यहां पर अभाव है—इससे पिता माताके जीवते पितामाताके धनमें पुत्रोंका स्वत्व नहीं है किंतु मरे पीछे है इसप्रकार उसी काल में स्वत्वबोधनके लिये मनु आदि के वचन हैं और विभाग तो स्वतंत्रहोनेसे उसी काल में इच्छासे प्राप्तहै इससे अनुवाद कियाजाता है निदान इस वचनके विरोधसे भी जन्म से स्वत्वको नहीं कहसक्ते क्योंकि पिताके उपराम (शांति) और पतितहोनेको भी स्वत्वका नाशक कहेंगे—सिद्धांत यह है पिताके स्वत्वका नाशहोनेपरही पिताके धनमें पुत्रोंका स्वा-मित्व होताहै और पिताके स्वत्व रहते नहीं होता क्योंकि माता पिताका स्वामित्व प्रतिबंधक है इससे संपूर्ण दाय सप्रतिबंधही होताहै दोप्रकार का दाय नहीं होसक्ता ॥

यहां पर वीरमित्रोदयकार यह कहते हैं—कि— यदि पिताके स्वत्वका नाशही पुत्र आदि के स्वत्व में हेतु होगा तो निर्दोष पिताके जीवते हुये पुत्रोंको उन वेदोक्त कर्मोंमें अधिकार न होगा जो धनसे होतेहैं इससे—इस—(जातपुत्रःकृष्णकेशोऽग्नीनादधीत) श्रुतिका विरोध दोनों पक्षोंमें तुल्य होगा—और अपने कपालोंसे कल्पित स्मृतिके अनुरोधसे श्रुतिका संकोच करना अयुक्त है—आहिताग्नि और किया है प्रथम यज्ञ जिसने ऐसे पिताके जीवतेहुये भी उस श्रुतिकी प्रवृत्ति पुत्रों आदि के प्रति भी अविशेषसे है—और यज्ञकरनेवाले संपूर्ण शिष्ट उस कर्म को करते हैं—और जात पुत्र कृष्णके-शपदसे भी यह कहा है—कि अवस्थामें जो बड़े हैं उनका अवलंघन न करै और स्वरूप से उनकी अव्यवहित स्थिति अपेक्षित नहीं है यह बात विरोधाधिकरणमें भाष्य वार्तिक आदि में स्थित है—कदाचित् कोई यह कहै कि जैसे तुम्हारे मतमें पुत्रोंकी अनुमतिसे पिताको विभाग करनेका अधि-कार है इसीप्रकार हमारे मतमें भी पिताकी अनुमतिसे विभाग करने का अधिकार है—यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि दोनों मतोंमें पिताका स्वत्व धनमें विद्यमान है इससे प्रधान रूप जो स्वत्व का त्याग उसको कोई नहीं हटा सक्ता—आपके मतमें पुत्रादिकों का स्वत्वही नहीं है और कुछ अनुमति स्वत्वका जनक नहीं है तो यज्ञ आदि प्रधान कार्य की सिद्धि किसप्रकार होसक्ती है—और सिद्धांत तो यहहै कि पिताको पुत्रकी अनुमति की अपेक्षा नहीं है क्योंकि पिता स्वतंत्र है और पुत्रोंको तो पिताकी अनुमति अपेक्षित है क्योंकि पुत्र पिताके आधीन है इतनाही विशेष है—जैसे पराधीन होनेसे स्त्रीको अपने भी धनसे यज्ञ पूर्त व्रत—आदि करनेमें पतिकी अनुमति अपेक्षित है

१ एवंसहवसेयुर्वापृथग्वाधर्मकाम्यया ॥

यदि स्त्री अनुमति नले तो पाप और कर्म की भ्रष्टताहो और प्रधान रूप यज्ञकी सिद्धि नहो—और पिता आदि की अनुमतिको यदि स्वत्वका जनक इसके अनुरोधसे मानोगे तो वह न लौकिक है और न शास्त्रीय—तिससे केवल शास्त्रसेही सिद्धस्वत्व में किसी न किसी प्रकार से जन्मकाभीग्रहण आवश्यक है—क्योंकि (स्वामीरिक्थ) इस गौतमवचनके अधिगमपदसे जन्मकाभीसंग्रह आवश्यक है क्योंकि श्रुति स्मृति पुराण शिष्टाचार आदि से सिद्धयज्ञकरने का अधिकार निर्दोष पिताआदि के जीवते भी पुत्रोंको है—सिद्धांत तो यहहै कि स्वत्वलोक सिद्धही है और लोकमें जन्मलेतेही पुत्रोंको स्वत्वका अधिकार पिताकेधन में होताहै यहबात वीर मित्रोदयकार ने सिद्धकीहै—और जो पीछे यह कहा है कि पिताआदि का जब अनुमति के अयोग्यपुत्रोंके समान स्वत्व है तो पुत्रोंकी अनुमति के विना आधानआदि किसप्रकार होंगे—वह इस अभिप्रायसे कहाहै कि पिताको स्वतन्त्र होनेसे अनुमति के योग्य पुत्रोंकी भी अनुमाति की अपेक्षानहीं है और अनुमति के अयोग्यों की अनुमति की अपेक्षा तो कहांसे होसक्तीहै—और यज्ञकी विधिके बलसेही अधिकार होता है यह विज्ञानेश्वर मिताक्षरा में कहते हैं—इससे जन्मसेही धनका स्वामित्व पुत्रोंका होताहै—इसीसे (स्वामीरिक्थ) इस गौतमवचनका जो अर्थ इसअभिप्रायसे जीमूतवाहन और रघुनन्दनने किया है कि परंपरासे उत्पत्ति भी स्वत्वकाहेतु है—वहभी व्यर्थ है—और पूर्वोक्त शंखवचनकाभी वही अर्थ ठीकहै जो स्मृतिचंद्रिका के कर्त्ता ने कहाहै और कल्पतरु की व्याख्या में तो वियाआदि से उपात्त (संचित) का अध्याहार करना असंगत है और जन्मपदका अध्याहार तो इससे अयुक्तनहींहै किंतु पुत्रके आक्षेपसे उपस्थित है तिससे श्रुतिके अनुकूल स्मृतिके बलसे मनु, नारद, देवल, इनके वचनोंकोही अस्वातन्त्र्यके बोधक कहना अतीव उचित है ॥

और जो यहकहा है कि जन्मसे स्वत्व मानोगे तो प्रीतिसे दियेहुये द्रव्यके विभागको नहीं बोधन करनेवाले वचन संगत न होंगे—वहभी ठीकनहीं है क्योंकि अनुमाति के अभावसे स्थावर को प्रीति से न देनाही उनवचनों से स्थिर किया है—अथवा इस वचनसे पिताकी स्वतन्त्रता से पिताके दिये स्थावर से अन्यधनका विभाग पिताकी अनुमति के विना न करें और स्थावर और द्विपद (पशु) आदि तो चाहे स्वयं संचितभीहों तथापि सम्पूर्ण पुत्रों के संगत (मेल) विना न दानकरै और न बेचै और (मणिमुक्ता) यहवचन भी तभी ठीकहोता है जब जन्मसे स्वत्व मानते हैं और पितामह संचित स्थावर विषयकनहीं है क्योंकि स्थावरधनमें पिता और पितामह दोनोंकोभी प्रभु (स्वामी) नहीं कहा है और पितामह अपने संचित धनको पुत्र और पौत्र के होनेपर भी नदे—जैसे परकेमत में पितामह के भी मणि मुक्ता प्रवाल आदि में पिताकाही स्वत्व है तैसेही जन्मसे स्वत्वपक्ष में भी पुत्रोंका स्थावर धनमें भी साधारण स्वत्व है पिताको दानका अधिकार है यह विशेष नहीं है तिससे यह सिद्धांत है कि पिता और पितामहके धनमें पुत्रोंका स्वत्व जन्म से ही है तथापि आवश्यक धर्म कार्यों में और शास्त्रोक्त कुटुंबपालन, आपत्तिका निवारण आदि में स्थावरसे अन्य धन के व्ययकरनेमें पिताकी स्वतंत्रताहै और स्थावर तो चाहे स्वसंचित भी हो तो भी पुत्रकी अनुमति की अपेक्षाहै—और इसवचनसे भी जन्म सेही स्वत्व है कि जो पैदाहुये हैं और पैदा नहीं हुये

---

१ स्थावरंद्विपदंचैवयद्यपिस्वयमार्जितम् । असंभूयसुतान्सर्वान्नदानंनचविक्रयः ॥
२ येजातायेप्यजाताश्चयेचगर्भेव्यवस्थिताः ।वृत्तिंचतेभिकांक्षंतिनदानंनचविक्रयः ॥

वा गर्भमें हैं वे सब वृत्तिकी इच्छाकरतेहैं इससे स्थावरकादान और विक्रय नहींहोता—और जो पीछे यह कहा है कि स्वत्व केवल शास्त्रसेही जानाजाताहै और शास्त्र में कहीं भी जन्मको स्वत्वका हेतु नहीं कहा इससे किसप्रकार पुत्रादिकोंका स्वत्व जन्म से होसक्ता है—यह भी ठीक नहीं है क्योंकि (स्वामीरिक्थ) इस गौतम वचन में उत्पत्तिको भी स्वत्वका हेतु कहआये हैं—और सिद्धांत तो यह है कि स्वत्व केवल शास्त्र सेही जानाजाताहै यह युक्तिसे युक्त (ठीक) नहीं है क्योंकि जो अत्यंत (ग्राम आदि) वासी सर्वथा शास्त्रकी गंधसे हीन म्लेच्छ आदि हैं उनका भी यह व्यवहार दीखता है कि यह अन्यका वा मेरा स्व (धन) है और इसीसे क्रय विक्रय का व्यवहार भी उनमें देखते हैं—तिससे क्रय आदि का जनक वह स्वामित्व भी उन्होंने प्रत्यक्षसेही जान लिया जिससे वे उस धन को यथेष्ट व्ययकरसके हैं—और इसीकी पुष्टिके लिये मिताक्षरामें विज्ञानेश्वरने यह अनुमान भी कहा है कि—स्वत्व—लोक सिद्धहै लोकमें प्रसिद्ध—अर्थ क्रियाओंका कारक होनेसे—व्रीहियोंकेसमान—जो आहवनीय आदि शास्त्रसे जानेजातेहैं वे लौकिक अर्थ क्रियाको नहीं करसके—यद्यपि आहवनीय आदि भी याग आदि लौकिक क्रिया के साधन हैं तथापि लोक प्रमाण अग्निरूपसे हैं अलौकिक आहवनीय आदि रूपसे नहीं हैं इससे व्यभिचाररूप दोषनहीं है—और यहां तो सुवर्ण आदि अपने रूपसे अर्थ क्रियाके जनक नहीं हैं किंतु स्वत्वरूपसेहीहैं—जैसे सुवर्ण आदि अपने लौकिकरूपसे भूषण आदि क्रियाको करते हैं इसीप्रकार क्रय विक्रय आदि लौकिक क्रियाओंका कर्ता स्वत्व भी लौकिक ही है क्योंकि विना स्वत्व के कोई भी जगत्में क्रय विक्रय आदि नहीं करसक्ता—कदाचित् कोई इसमें यह शंकाकरे—कि—(स्वामीरिक्थ) इत्यादि स्मृतियोंको लोक सिद्ध स्वत्वका अनुवादकहोनेसे व्यर्थताहोजायगी—यह शंका भी ठीक नहीं है—क्योंकि जैसे व्याकरणमें धर्म अधर्म के उपयोगी साधु असाधु शब्दोंका विवेक किया है—और वे शब्द अनादि सिद्ध अर्थोंकेही बोधक होतेहैं और विना व्याकरण साधु असाधु (भले बुरे) शब्दोंका ज्ञान असंभव है इससे व्याकरण शास्त्र व्यर्थ नहीं है तिसीप्रकार संकीर्ण व्यवहारी मनुष्योंको प्रकटतासे अज्ञात जो स्वत्व उसकेही विवेक का जनक शास्त्र भी व्यर्थ नहीं होसक्ता जैसे अलौकिक साधुत्वको साधुजन नहीं बोलसके अन्योन्याश्रयदोषके प्रसंगसे इसीप्रकार यहां पर भी समझो—और नय विवेकमें इसे वचनसे भवनाथने यह कहा है कि लोक सिद्ध अर्जन (संचय) जन्म और क्रय आदि सेही होताहै और इसीसे निंदाके योग्य नहीं होता है वह पहिले लोकोंकी बुद्धि का विषय होताहै और स्मृति शास्त्र उसके प्रबंधकर्ता हैं जैसे व्याकरण संगीत आदि स्मृति साधु शब्दोंका—क्योंकि लोकसे प्रसिद्धही राग आदि का विद्वानों के लिये लक्षण शास्त्र में कहा है यह बात स्मृति अधिकरणमें आचार्योंने कही है—(स्वामी रिक्थ) इसवचन का व्याख्यान तो पहिलेही कहआये हैं—और उस वचनमें रिक्थ शब्दसे निष्प्रतिबंधदाय और संविभाग शब्दसे सप्रतिबंधदाय ग्रहणकरना यह मिताक्षरामें विज्ञानेश्वरने कहा है और स्मृतिचंद्रिकाकारने तो पिता आदि के धनमें पुत्रोंके स्वामित्वका जनक रिक्थ जन्म सेही होताहै यह कहकर यह कहा है कि पिता आदि के धनमें विशेष (पृथक् २) में रहनेवाले स्वामित्वका संपादक जो विभाग वह संविभाग होताहै—यह स्मृतिचंद्रिकाकारका कथन ठीक नहीं है क्योंकि विद्यमान है स्वत्व जिसमें उस धनका विभाग होताहै उस विभागको स्वत्व का हेतु कहना अनुचित है धनके

१ सिद्धंचार्जनंजन्मादिअतएवानिंद्यं—प्रथमलोकधीविषयव्यवस्थितं—तत्प्रबंधनार्थास्मृतिर्व्याकरणादिवत् ॥

विभागसे एक देशमें स्वत्वकी स्थिति की जाती है यदि स्वामी पदसे कहीं मुख्य और कहीं अमुख्य ग्रहणकरोगे तो वैरूप्य (कहीं कुछ कहीं कुछ) दोष आवेगा—इसीसे मिताक्षरामें विज्ञानेश्वराचार्यने यह कहाहै कि विभाग उसी धनका होताहै जिसके अनेक स्वामीहों और अन्यके और प्रहीण (त्यक्त) धनका नहीं होता—इससे जगत्में पुत्रोंका स्वत्व जन्मसेही अत्यंत प्रसिद्ध है—और याज्ञवल्क्य ऋषि का जो—(पत्नीदुहितरश्चैव)—यह वचन है उसका भी यह अभिप्राय है कि स्वामिके संबंधी अनेक हैं इससे अनेकोंको दाय प्राप्तभया उसमें संदेह निवृत्ति के लिये है अर्थात् लोकप्रसिद्ध भी स्वत्व पत्नी आदि का होताहै इतरोंका नहीं—और बहुधा व्यावहारिक स्मृतियोंको लोकप्रसिद्ध अर्थकाही अनुवादक ग्रंथकारोंने कहा है—नियत हैं उपाय जिसके ऐसा स्वत्व लौकिकही है यह भगवान् गुरुको (प्राभाकर) भी संमत है क्योंकि लिप्सानयके तीसरे वर्णकमें यह आशंकाकरके कि द्रव्यके अर्जनके नियम क्रतुके लिये होंगे तो स्वत्वको अलौकिक होनेसे स्वत्वहीन होगा इससे पूर्व पक्षका असंभव होगा—फिर इस पूर्व पक्षका यह समाधान गुरुने दियाहै कि द्रव्यके अर्जन के नियम प्रतिग्रह आदिकोंको जो स्वत्वका साधन है वह लोकसिद्धही है—कदाचित् कोई यह आशंकाकरे कि यदि द्रव्यके संचय क्रतुके लिये होगा तो वह अपना स्व नहीं होगा और स्वके न होनेसे यज्ञकीही प्रवृत्ति न होगी यह किसी का प्रलाप है कि अर्जन स्वत्वका संपादक नहीं है इससे यह विरुद्ध है—और इसका यह अर्थ है कि जब द्रव्य अर्जनके नियम क्रतुके अर्थ हैं तो तब नियम स्वत्वके उपाय हैं यह बात इस शास्त्र से नहीं आती है क्योंकि यह शास्त्र नियमोंको क्रत्वर्थ बोधनकरके चरितार्थ होचुका फिर प्रतिग्रह आदि से लब्ध धनमें स्वत्वहोताहै इसमें कोई प्रमाण नहीं होसक्ता और विना स्वत्वके स्वत्वके त्याग रूप यज्ञका असंभव है फिर ये द्रव्य अर्जन के नियम किसके होंगे इससे पूर्व पक्षका असंभव है यह शंकाका तात्पर्य है—और यह किसी का प्रलाप है इसके उत्तरका यह तात्पर्य है कि अर्जन प्रतिग्रह आदिकोंको स्वत्वहेतुता लोक में प्रसिद्ध है उसमें कुछ शास्त्र का व्यापार नहीं है इससे नियमोंको क्रतुके अर्थताही जानीगई इससे यज्ञोंका असंभव और नियमोंकी अनर्थकता नहीं है—और सिद्धांत में भी गुरुने स्वत्वको लौकिकही मानकर विचारका प्रयोजन कहाहै इससे पुरुषकोही नियमोंका अवलंघन है क्रतुका नहीं इसका भी यह तात्पर्य कहा है कि जब द्रव्य अर्जनके नियम क्रत्वर्थ हैं तो तब नियमसे संचित धनसेही क्रतु होती है और नियम के अवलंघनसे अर्जित धनसे यज्ञ नहीं होती इस पूर्व पक्षमें पुरुष को नियम के अवलंघन करने का दोष नहीं है—और सिद्धांतमें तो द्रव्य अर्जन के नियम क्रतुके अर्थ नहीं हैं किंतु केवल पुरुषार्थ हैं इससे नियमों के अवलंघन से संचित धनसे भी क्रतुकी सिद्धि निर्दोषहै परंतु नियमोंके अवलंघन का दोष पुरुषको होताहै—इससे यह स्वीकार अवश्य किया कि नियमोंके अवलंघन से संचित धनमें भी स्वत्व है अन्यथा उससे क्रतु की सिद्धि क्यों कहते—और उसी अधिकरण में कुमारी के स्वामी भी आपको यही संमत है कि स्वत्व लौकिक है इस वार्तिक से स्वत्वको लौकिक कहा है और इसीसे शास्त्रदीपिका में पार्थसारथिने यह कहाहै—अर्जन रागसे प्राप्त है और शास्त्रसे नहीं और रागसे पुरुषार्थसेही द्रव्यकी प्राप्ति

१ द्रव्यार्जननियमानांक्रत्वर्थत्वेस्वत्वमेवनस्यात्स्वत्वस्यालौकिकत्वात् द्रव्यार्जनप्रतिग्रहादीनांस्वत्वसाधनत्वं लोकसिद्धमेव—प्रलपितंइदंकेनापिअर्जनंस्वत्वंनापादयतीति ॥

२ कुमारीस्वामिनोप्यत्र भवत.स्वत्वंलौकिकमित्येवाभिमतम् ॥

प्रत्यक्ष होती है क्योंकि संचित द्रव्य पुरुषको प्रसन्नकरने से पुरुषार्थ जानाजाता है और अनुमानसे क्रतुका एक शेष नहीं जान सके–तिससे द्रव्य पुरुषार्थ है और क्रतु भी एक पुरुषके कार्यों में कोई है इससे अन्य कार्यों के समान क्रतु में भी पुरुषार्थ होसक्ता है–कुछ द्रव्य क्रतु का अंग नहीं है जो क्रतुका अंग मानोगे तो जीवनके लोपसे क्रतुकी ही प्रवृत्ति न होगी–इसग्रंथसे जब अर्जनको शास्त्रीय कहा तो स्वत्व और स्वत्वके उपायोंका लौकिकहोना स्पष्टकहा है–और यहभी उसने कहा है कि तिससे पुरुषार्थरूप द्रव्यार्जन दृष्टार्थ (लौकिक) है और चाहे नियमदृष्टार्थ न होनेसे अदृष्टार्थहो और अदृष्टभी पुरुषार्थ अर्जन का विषयहोने से पुरुषमेंही कल्पना कियाजाताहै तिससे अन्यउपाय से संचयकरनेवाला प्रायश्चित्त के योग्यहोताहै–तिससे (स्वामीरिक्थ) आदि वचन भी (इसकेही बोधकहैं) (किरिक्थआदिकोंको लौकिकस्वत्वके उपायोंका अनुवादकरके उपायांतरसे अर्जननकरै) इससे अनर्थकी शंका भी नहींहोसक्ती–जैसे तृप्तिके कारण भोजन में दिशाओंका नियम है कि अमुक दिशाके सम्मुख बैठकर भोजनकरै इसीप्रकार द्रव्यकाअर्जन क्रतुकेलिये पुरुषार्थ है और नियम तो पूर्वपक्ष में युक्तिसे कहाहै वही वहांपर उदाहरणहै यहीभट्ट और गुरुकेमनमें भेदहै–और यहबात तो दोनोंको सम्मत है कि स्वत्व लौकिक है–और यही सिद्धांत है–और तिस २ के दूषण और भूषण तो तहां २ अन्यग्रन्थों में कहेहैं इससे उनको यहांउपयोग न होनेसे नहींकहते–इससे चोरी आदिसे मिलाधन भी क्रत्वर्थ होजायगा-यह संग्रहकार और धारेश्वर का कथन भी परास्त होगया–क्योंकि लोक में चोरीके धनमें स्वत्वको प्रसिद्धिही नहींहोतीहै–किंतु यही व्यवहारहोता है कि यह अन्यका स्व है इसकानहीं–और क्रयआदि करनेमें भी सन्देह होनेसे यह संदेह भी नहींहोसक्ता कि इसका स्व है कि इसका—और इससे स्वत्वको लौकिकमानने में यहशंका भी दूरभई कि मेरा स्व (धन) इसने चुराया यह कोई न कहेगा क्योंकि चोरकाही स्वत्वहै ॥

और संग्रहकारने जो यहकहाहै कि चोरीके धनका शास्त्रमें यथेच्छ व्ययकरना शास्त्रकारोंने नहीं लिखा इससे यथेष्ट विनियोगरूप स्वत्व उसमें नहींहोसक्ता क्योंकि उसधनको अपनी इच्छाके अनुसार किसी भी कार्यमें नहींलगासक्ता–वहभी ठीकनहीं क्योंकि हम यहनहींकहते कि इच्छाके अनुसार जिसको लगासके वही स्व होताहै किंतु यहकहते हैं कि इच्छासे लगाने योग्य जोहो उसे स्व कहतेहैं अन्यथा राजा के भयसे इच्छाके नाशहोनेपर भी उसधनमें लगानेकी इच्छा और अनिच्छा का होना और न होना (जो दोनों परस्पर विरुद्ध हैं) होनेलगेंगे राजाआदिके दंडके समान शास्त्र के दंडसे इच्छाके अनुसार नहीं लगानेपर भी लगानेकी योग्यता दूरनहीं होसक्ती–इसीसे दुराचारी मनुष्य शास्त्रके विरुद्धलगाये धनमें अस्वत्व का व्यवहार नहींहोता किंतु शास्त्रके अवलंघनसे पापमात्रही होगा– तिसके लगाने की योग्यता में तिसका कियाहुआ संचितही होता है वह वहांपर विद्यमानही है–यही नयविवेक ग्रंथ में कहाहै कि[1] जो धन जिसने संचयकिया है वह उसके यथेच्छ लगाने योग्य होताहै जैसे कोठीमें स्थित बीज प्रतिबंधसे अंकुरको पैदानहींकरसक्ता परन्तु अंकुरके पैदाकरनेमें योग्य होताहै–वस्तुतः सिद्धांत तो यहहै बीजत्व और अंकुरयोग्यत्व इनदोनोंके समान-स्वत्वत्व (अपनापन) और यथेष्ट विनियोगार्हत्व (इच्छाके अनुसार खर्चकरना) इन दोनोंकाभी भेदही है क्योंकि जब तक अर्हताके अवच्छेदक (योग्य)का परिचयनहो तबतक अर्हताके स्वरूपकाभी ज्ञाननहीं

१ तच्चतस्यतदर्हंययेनार्जितम् ॥

होसक्का और अर्ह योग्यको कहते हैं और अर्ह (स्वत्व)में रहनेवाला धर्म (स्वत्वत्व)अर्हतावच्छेदकहो-ताहै क्योंकि न्यायशास्त्र में वही अवच्छेदक होताहै जो न्यून और अधिकमें न रहै[१] अर्थात् अर्हताका समवृत्ति स्वत्वत्व अर्हताका अवच्छेदक होताहै—तिससे ब्राह्मणत्वके समान स्वत्वभी स्वत्वोंकेउपायों के ज्ञानसे जानाजाता है और वह उत्पत्ति विनाशवाला पदार्थांतरहीहै और ब्राह्मणत्व तो जातिरूप नित्यहै इतनाही इनदोनों में भेद है इसीसे मिताक्षरामें स्वत्वके लौकिक और अलौकिकके विचार का यह प्रयोजनकहाहै कि जो स्वत्वको शास्त्रसेही जाननेयोग्य मानोगे तो इसे मनुके वचनानुसार कि जो धन ब्राह्मण निंदितकर्मसे संचित करतेहैं उसधन के त्याग—दान—वा तपकरनेसे शुद्धहोतेहैं जिसजातिको जो उपाय धनसंचय में निषिद्ध है उससे संचितधनमें उसका स्वत्व नहींहोता इससे चोरीके धनके समान उसधनको उसके पुत्र न बांटैं—और यदि स्वत्वको लौकिकमानोगे तो निषिद्ध से संचित में भी स्वत्व होजायगा इससे अपनेपिता का धन होने से पुत्र उसधनको भी बांटलें—और निषिद्धकर्म से संचयका पाप उसकोहीहोगा पुत्रोंकानहीं—क्योंकि पुत्रोंका तो वहधनदाय (हिस्सा) रूप है—और मनुजीने भी इसवचन से[३] दायको उत्तमउपाय धनसंचयका कहाहै—कि दाय—लाभ-क्रय—जय—व्याजपर द्रव्यदेना—कर्मकराना—और उत्तम प्रतिग्रह—ये सात धनके उपाय उत्तम हैं—और इनमें दायआदि तीन चारोंवर्णोंके लिये और जय क्षत्रियके लिये और वृद्धि वैश्यके और शूद्रके लिये सेवा और उत्तमप्रतिग्रह ब्राह्मण के लिये उत्तम हैं—और कर्मयोग तो ब्राह्मणकेही प्रतिउत्तमहै इसमें मदनरत्नकार ने यह दूषणकहाहै कि स्वत्वको शास्त्रगम्यहोनेपरभी निंदित प्रतिग्रहके निषेधसे यहबात नहींजानीजाती कि इनसे स्वत्वकी उत्पत्ति नहींहोती किंतु यह जानीजाती है कि निंदित प्रतिग्रहआदि से पापकी उत्पत्ति होतीहै क्योंकि इनवचनोंसे यहकहा है कि आपत्ति के समय जहां तहां भोजनकरता वा प्रतिग्रह लेताहुआ अग्नि के समान ब्राह्मण पापभागी नहींहोताहै और कु-सीद खेती व्यापार इनको सेवकोंसे करावे वा आपत्तिके समय स्वयंकरै तो पापभागी नहीं होता अर्थात् आपत्तिके समय पापभागी नहींहोता तो स्वस्थतामें पापभागी अवश्य होताहै—इसीसे विना आपत्ति के समय जप तप रूप प्रायश्चित्त कहा है—और चोरीकेसमान निंदित प्रतिग्रहमें कोई राज दंड नहींकहा है—तिससे निंदित प्रतिग्रहको पूर्वपक्ष और सिद्धांतमें स्वत्वका जनककहाहै इससे वह धनभी पुत्रोंको बांटनेयोग्य है—इससे मिताक्षरा में विचारका यह प्रयोजन युक्तनहीं है—इसमें वीर-मित्रोदयकार यहकहते हैं कि शास्त्रसे गम्य जो स्वत्वको कहता है उसके मतमें जैसे चोरीका निषेध स्वत्व का उत्पादक न होनाही दंडका प्रयोजन इसविचारको युक्तहै—तिसीप्रकार निंदित प्रतिग्रहको भी प्रायश्चित्त के योग्य बोधनकरनारहो—और आपत्तिके समय इस वचनसे यहकहा है कि जिसको छःसमयतक भोजन न मिले वह ब्राह्मण सातवें भोजनके समयमें एकसमय भोजनके योग्य पदार्थ

---

१ अन्यूनानतिरिक्तवृत्तित्वमवच्छेदकत्वम् ॥

२ यद्गर्हितेनार्जयंतिकर्मणाब्राह्मणाधनं। तस्योत्सर्गेणशुद्ध्यंतिदानेनतपसैवच ॥

३ सप्तवित्तागमाधर्म्या दायोलाभःक्रयोजयः । प्रयोगःकर्मयोगश्चसत्प्रतिग्रहएवच ॥

४ आपद्गतःसंप्रगृह्णन् भुंजानोवायतस्ततः । नलिप्यतेनसापिभोज्वलनार्कसमोहिसः ॥
कुसीदंकृषिवाणिज्यं प्रकुर्वीतास्वयंकृतम् । आपत्कालेस्वयंकुर्यान्नैनसायुज्यतेद्विजः ॥

५ तथैवसप्तमेभक्ते भक्तानिषडनश्नता । अश्वस्तनविधानेनहर्तव्यंहीनकर्मणः ॥
आख्यातव्यश्चतत्तस्मै पृच्छतेयदिपृच्छति ॥

को निंदितकर्मवालेसे भी ग्रहणकरले और यदि राजा पूंछे तो उसको यथार्थ कहदे-और चोरी के धनमें ये तीनों बात नहींहोसकीं तिसीप्रकार असत्प्रतिग्रहमें भी रहो-अन्यथा दोनोंपक्षों में निंदित प्रतिग्रह संचितधनसे पांचों महायज्ञ न होंगे-कदाचित् कोई यह शंकाकरै कि स्वत्वके चोरी आदि उपाय क्योंनहींहैं-उसका उत्तरयहहै कि प्राप्तिके अन्तर्गत होनेसे कथंचित् चोरीआदि भी स्वत्व के उपाय अवश्यकहने-अन्यथा निषेध चोरीका सिद्ध न होगा-और शास्त्रप्राप्त निषेध में विकल्पकेभय से-दीक्षित होम नहींकरता-इसके समान भाष्यकारके मतसे सामान्य विशेषभाव की रीतिसे विशेष निषेध और सामान्य विधिका बाध्य बाधकभाव भी मतान्तरसे मानना होगा-प्रतिग्रहआदिकी प्राप्ति तो ब्राह्मणआदिकोहैही इससे आपत्ति और आपत्तिके अभाव के बलसे उत्पत्ति और निषेध दोनों बनसक्ते हैं-कदाचित् कोई शंकाकरै कि बिना आपत्ति भी निंदितप्रतिग्रह और स्वयंकिये व्यापारआदि में ब्राह्मण को राजदंड भी होनाचाहिये-इसका उत्तर यहीहै कि होजाओ-क्योंकि अपने धर्म के त्यागीको राजदंडका अभाव (नहींहोना) किसीको भी सम्मत नहीं है वह दंड कहीं विशेष और कहीं सामान्य यहबात भिन्न है-इससे शास्त्रसिद्ध स्वत्वके कहनेवाले के मत में यहभी एक दूषणहै कि चोरीआदि तीनके निषेधको स्वत्वके प्रयोजकमाननेमें गौरवहोगा और पर्युदास (निषेध) के स्वीकारकाभी गौरवहोगा-और स्वत्वको लौकिकवादी के मतमें तो एकदंडकाही दोष है-क्योंकि चोरीआदि स्वत्वके उपाय नहीं यहबात तो लोक सिद्धही है और उनका निषेध भी रागसे प्राप्त है इससे पर्युदास आदिका गौरव भी नहीं है इससे लौकिक स्वत्वके माननेमें लाघव है-तिससे स्वत्व को शास्त्रसिद्ध मानोगे तो असत्प्रतिग्रहआदि उसके उपाय न होंगे और उनसे संचितधनमें पिताके स्वत्वका अभाव होगा इससे चोरी के धनके समान निंदित प्रतिग्रहसे लब्धधनभी विभाग के योग्य न होगा-और जब स्वत्वको लोकसिद्ध मानते हैं तो लोकमें निंदित प्रतिग्रहआदि भी उपाय हैं तो वहधन भी विभाग के योग्य होसक्ता है इससे मिताक्षरामें कहाहुआ प्रयोजन बहुतठीकहै-और यह बात भी उपलक्षणहै क्योंकि पूर्वपक्षमें यथा चोरीआदि से संचितको पिताकाधनकहने में पुत्रआदि को दंड और प्रायश्चित्त होता है तैसेही निंदितप्रतिग्रह आदि के ग्रहणमें भी दण्ड जानना क्योंकि संचयकरनेवालेकोही शास्त्रमें प्रायश्चित्त कहाहै ॥

यहां यहबात विचारने योग्यहै कि जब स्वत्व लौकिकहै और चोरी लोकमें धनका उपाय नहीं है परन्तु जिस को छःसमय तक भोजन न मिले वह सातवें समय निंदितकर्मवाले से भी एक समय भोजनयोग्य अन्नको ग्रहणकरले इसवचनके बलसे चोरीके धनमें स्वत्व पैदाहोताहै कि नहीं पहिला पक्ष तो नहींकहसक्ते क्योंकि लोकमें चोरीको धनका उपाय नहींकहनेसे उसमें स्वत्वकी उत्पत्तिभी नहींकहसक्ते क्योंकि प्रत्यक्ष विरुद्ध वस्तुको सहस्रोंभी शास्त्रकेवचन इसप्रकार पैदानहींकरसक्ते जैसे जलसे दधिको-और दूसरापक्ष भी नहींकहसक्ते क्योंकि बिना स्वत्वके पांचमहायज्ञ कैसे होसकेहैं-कदाचित् कोई कहै कि चोरी के धनसे क्षुधाकी निवृत्ति तो करले परन्तु परलोक के लिये और कोई कर्म न करै यहकहना भी ठीकनहीं है क्योंकि शिष्टों का आचार ऐसानहीं है कि वे बिना पांचयज्ञ किये भोजनकरें और इसमें यह वचन भी प्रमाण है कि शिष्टमनुष्य पंचमहायज्ञ आदि किये बिना उसअन्नका भोजन नहीं करते हैं क्योंकि जिसअन्नको जगत्में पुरुषखाता है उसीअन्नको उसमनुष्य

[1] शिष्टाःपंचमहायज्ञाद्यकृत्वानोपभुंजते । यदन्नःपुरुषोलोकेतदन्नास्तस्यदेवताः ॥

के देवता खाते हैं—इसीसे पुराणोंके इतिहासोंमें यहबात सुनीजातीहै कि विश्वामित्रऋषि अश्वकी जंघाको श्वपच के घरसे चुराकर और यहमनमें करके कि इन्द्रादि देवताओंको देकर भोजन करूंगा जब उसजंघा का भाग देवताओंके देनेको प्रवृत्तभया तब प्रसन्नहुये इन्द्रआदिकोंने वर्षाकी और उसी समय बहुतसा अन्न भी होगया—और यदि स्वत्वशास्त्र सिद्धमानोगे तो शास्त्रके अनुसार चोरी को स्वत्व का जनक और नहींजनक दोनों विरुद्धनही हैं—और लौकिक स्वत्ववादीके मतमें उभय पाशा रज्जु (रस्सी) है ॥

इसमें यह समाधान है कि यद्यपि चोरी लोक में स्वत्व का जनक नही है तथापि छः समय में जिसको भोजन न मिले वह सातवें समय निंदितसेभी भोजन का ग्रहणकरे इसवचनसे चोरी भी स्वत्वजनक प्रतीत होतीहै क्योंकि सम्पूर्ण स्वत्व शास्त्रीयहैं यह जिनको ज्ञाननहींहै उनको क्रय विक्रयआदि स्वत्वसे होनेवाले नहीं होंगे इससे चोरीके निषेधसे यहीबात जानीजाती है कि चोरी से दंड और पापहीहोता है और चोरी में स्वत्वकी जनकता प्रसिद्धही नहीं है इससे स्वत्व के अभाव का बोधकनहींहै—जैसे ब्राह्मणत्व सबमें प्रत्यक्ष है परन्तु जातिकी बड़ाई में शास्त्र सिद्ध है क्योंकि पुरुषकी इयंता (यहजाति यहव्यक्ति) का नियम शास्त्रसेही जानाजाता है—इसीसे इसे वचन से आचार्योंने यहकहाहै कि—इतना तो यहां शास्त्रसेही जाननेयोग्य समझना क्योंकि पुरुषकी इयंता का नियम लोकप्रमाण से नहींजानाजाता है—और वहांपर भी ब्राह्मण परंपरासे पैदाहुई व्यक्तिमें ब्राह्मणत्व प्रकट कियाजाताहै यह व्यंग्य व्यंजक भावहीहै जिसको शास्त्रीय व्यंजक का ज्ञान है उस को उसव्यक्ति (शरीर) में ब्राह्मणत्व प्रत्यक्षहीहै क्योंकि व्यक्ति के प्रत्यक्षसेही जातिका प्रत्यक्षहोता है—यहां तो सबप्रकार की चोरीको स्वत्वके न पैदा करनेवाली के निश्चयसे क्वचित् आपत्ति के समयकी चोरीको स्वत्वकी पैदाकरनेवाली शास्त्र से मानते हैं—कदाचित् कोईकहे कि इसमें प्रत्यक्ष का विरोध है और प्रत्यक्ष विरुद्धको शास्त्रके सहस्र वचन भी बाधननहीं करसक्ते—यह कहना ठीक नहींहै क्योंकि लोकसेभी यहबात नहींजानीजाती कि चोरी स्वत्वका जनक नहीं है किन्तु चोरी के धनसे व्यवहार नहींहोता इससे चोरी स्वत्वका उपाय नहींहोसक्ता—यही लोकसे प्रतीत होता है—और जैसे पुत्रेष्टि (पुत्रकेलियेयज्ञ) आदि लोक से न जाने पुत्रआदिके जनकहैं और यहबात शास्त्र से जानीजाती है तैसेही यहांपर भी लोक में दृष्ट अन्यउपायों की जनकतामें रहो—और आहवनीय आदि कर्म जो ऐसे हैं जिनका कोई दृष्ट उपाय नहीं यहबात भिन्न है—जैसे उत्तेजकके मंत्रोंको अथर्वणआदि शास्त्रके बलसे प्रतिबंधक (अवरोधकियेहुये) अग्निआदिको कार्यकी जनकता शास्त्रसे जानी जाती है और लोकमें भी दृष्ट है इसकाही नाम उत्तेजकता है और शक्तिकानाश और उत्पत्ति के मानने में तो यह गौरव है कि अग्निमें जलाने की शक्ति है—मणिसमीप आनेपर वह शक्ति नष्टहोगई—और उत्तेजक मणिके समीप आनेपर फिर पैदाहोगई ॥

जन्मसे स्वत्व का खण्डन करनेवाले जीमूतवाहन ने तो यहकहा है कि कहीं जन्मसे भी स्वत्व होता है क्योंकि पिता पुत्रके सम्बन्ध में पुत्रका जन्महीहेतु है और सम्बन्ध और पिताका मरण पुत्र के स्वत्वमें परम्परासे कारण हैं यहकहकर यहकहाहै पैदाकरनेरूपपिताके व्यापारसे पुत्रके स्वत्वकी कैसे उत्पत्तिहोगी यह शंकाकरके यहकहाहै कि अन्यके व्यापारसे अन्यके स्वत्वकी उत्पत्ति भी शास्त्र

---

१ एतन्मात्रंत्विहागमिकंप्रेत्यत्तव्यम् । नह्ययंपुरुषेयंतानियमोलोकप्रमाणगम्यः ॥

रूप प्रमाणसे विरुद्ध नहीं है—और लोकमें देखाभीहै कि चेतनके उद्देश्यसे कियेहुयेदानके व्यापारसे सम्प्रदान का स्वत्व होताहै—और स्वीकारसे स्वत्वकहोगे तो स्वीकारकरनेवालाही दाता होजायगा—और परायेस्वत्वरूप फलकी प्राप्तिही दानरूपहै और वहफलसम्प्रदानके आधीनहै—जैसेदेवताके उद्देश्य से साकल्यका त्यागीभी यजमान,होता, नहींहोता किंतु अग्निमें साकल्यका प्रक्षेपकरनेवालाऋत्विकही होताहोताहै—किंचमनसेपात्रके उद्देशसे जो दियाजाय वहदानकहाताहै इसशास्त्रके वचनसे सम्प्रदान के स्वीकारसे पहिले भीदानहोताहै—कदाचित् कोई कहै कि (स्वीकुर्वन्) इसपदमें अभूततद्भाव में च्विप्रत्यय का यहअर्थ है कि जो स्वनहो उसको जो स्वकरले—उसको स्वीकुर्वन् कहतेहैं उससे पहिले किसप्रकार स्वत्व होसक्ता है—इसमें हम यह कहते हैं कि पैदाहुआ भी स्वत्व संप्रदानके स्वीकार रूपके व्यापारसे अपना कियाजाता है कि यह धन मेरा है और में इससे यथेष्ट व्यवहार करसक्ताहूं यही स्वीकार शब्दका अर्थ है—याजन और अध्यापनके साहचर्यसे प्रतिग्रहचाहे स्वत्वको पैदा न करै तथापि अर्जनरूप तो होसक्ता है—याजनमें दक्षिणाके ग्रहणसेही स्वत्व होताहै—और पिताके मरण समय पुत्रका जीवनही पुत्रका अर्जन होसक्ता है और इसीप्रकार भाई के मरणसमय भाई का जीवनही स्वत्व न माननेवालेको भी मानना पड़ेगा—उसीप्रकार प्रतिग्रह में भी रहो—यह भी उन्मत्त का बिलास है क्योंकि स्वत्वको लौकिक सिद्धकरनेसे शास्त्रमूलता निराकृत (खंडित) है—और जो यह कहा है कि चेतनके लिये त्यागरूप दानसे संप्रदान का स्वत्वहोताहै यहभी ठीक नहीं है—प्रतिग्रहलेने वाले का स्वत्व स्वीकारके बिना पैदा नहीं होसक्ता यदि पात्र विशेष के उद्देश्यसे दियाहुआ पदार्थ संप्रदानने स्वीकार न किया और उसका स्वत्व पैदा होजाय तो—दूसरे संप्रदान (लेनेवाला) को दाता नहीं देसकेगा—और जो यहकहआयेहैं कि स्वीकार करनेवालाही दाता होजायगा—वह भी अयुक्त है क्योंकि अन्यके स्वत्वका पैदाकरनेवाला व्यापार दानहोताहै और दानपदका अर्थ यह है कि संप्रदानके स्वीकारानुकूल अनुमान आदि व्यापार और वह संप्रदानके स्वीकार बिना फलको पैदा नहीं करसक्ता इसमें संप्रदानका व्यापार भी उसके अंतर्गत है कुछ संप्रदानका व्यापारही दान नहीं है—और जो यह कहा है कि देवताके उद्देशसे त्यागी यजमान होता नहीं होता किंतु अग्निमें प्रक्षेपका कर्ता ऋत्विकही होताहै—यह भी ठीक नहीं है—जहां यजमानही अग्निहोत्र करताहै वहां होताहोसक्ताहै और जहां दर्शआदिमें यजमानत्यागमात्रकोही करताहै और अध्वर्युआदि चरुकाप्रक्षेप (फेंकना) करते हैं वहां पर भी यथोचित पृथक् २ व्यवहार करनेमें कुछ विरोध नहींहै क्योंकि बिना त्यागेका प्रक्षेप होम नहीं कहाता—वह त्याग अपना वा अन्यका कियाहो अथवा सहाय सहितहो-इसमें कोई दोष नहीं है—(और जो यह कहा कि पिताके मरणसमय जीवनही पुत्रका व्यापार है) इसीसे यागको अपनी सिद्धिमें प्रक्षेपकी अपेक्षा नहीं और होमकोतो है—दानको तो प्रतिग्रह लेनेवालेके व्यापारकी अपेक्षा है ही—क्योंकि बिना उसके दानही नहीं होसक्ता—इत्यादि यह भी ठीक नहीं क्योंकि वहां पर उत्सर्गकाही विधान है दानका नहीं इसीसे दाता उसके फलको प्राप्तहोताहै यह कहा है अन्यथा यह कथन भी अनुवाद होजाता—यदि दान मानोगे दाताको उसके फलका अभाव नहीं होसक्ता इससे उसके फलको प्राप्तहोताहै यह कहना वृथा होजाता—इससे यह सिद्धांत है कि दान शब्दमें दाधातुका यह अर्थ है कि पात्रके उद्देश्य से जलका प्रक्षेप करना और दानकी सिद्धि तो संप्रदानके स्वीकारकरने पर ही होती है—इससे उत्सृजे (त्यागताहूं) यही संकल्प शिष्टोंकावा-

क्यहै और दास्ये (देताहूं) यह नहीं है—इससे प्रतिग्रहसेही दानके फलहोनेपर संप्रदानका स्वत्व हे जैसे प्रतिग्रह भी अर्जनरूप होसका है क्योंकि स्वत्वके पैदाकरनेवाले व्यापारको अर्जन कहते हैं इसीसे प्राभाकरने यह कहा है कि अर्जन स्वत्वको पैदा नहीं करता है यह किसी का प्रलाप है यह बिरुद्ध है इस का अर्थ कहआये हैं—कि अर्जन स्वत्वको पैदा नहीं करताहै यह किसी का प्रलाप है—और यह धन मेराहै इस ज्ञानरूपही स्वत्व है और उसको दाताके व्यापारसेही उत्पन्न स्वत्व व्यवहारका संपादक मानोगे तो अर्जन शब्द वहां पर गौण मानना पड़ेगा—और अन्यको उसके देनेकी अनुपपत्ति तो पहिले कहआये हैं—यदि उसको नहीं मानोगे तो पहिले पैदाहुये उसके स्वत्वकानाश मानना पड़ेगा—कदाचित् इसमें कोई यह शंकाकरै कि दाताकेही व्यापारसे दाताके स्वत्वका नाश और संप्रदानके स्वत्वकी उत्पत्ति तो तुमको भी माननी पड़ेगी अन्यथा किसी अन्य (मध्यस्थ) का ही स्वत्व पैदा होजायगा—और मेरे मतमें भी पात्रके उद्देशसे दिये पदार्थको यदि पात्र स्वीकार न करै तो पैदाहुआ भी संप्रदानका स्वत्व नष्ट होजाता है और अन्य कोई स्वीकार करले तो उसका स्वत्व पैदा होजाताहै इससे कोई बिरोध नहीं है क्योंकि साधारण स्वत्वकानाश और असाधारण स्वत्वकी उत्पत्ति होती है—यह शंका ठीक नहीं है क्योंकि संप्रदानके स्वीकार बिना संप्रदानकासाधारण स्वत्व व्यवहारके न होनेसे उसके स्वत्वकी उत्पत्ति अप्रामाणिकीहै इससे उसको गौरवसे नहीं मानते किंतु यथेच्छ देनेके योग्य रूप स्वत्वके दूरहोनेपर भी अन्यके स्वत्वकी प्राप्तिरूप फलकेअभाव से दानकी सिद्धि न होनेसे दाताकाही स्वत्व रहता है जैसे हवन कियेहुये हविमें भस्मपर्यंत रहता है क्योंकि किसी को स्पर्श तबतक नहीं करना लिखाहै—इसीसे अन्यके स्वत्वकी उत्पत्तिके न होनेसे मध्यस्थके निषेधकरनेका दोष दाताको नहीं होता और शिष्टाचार भी यही है—कदाचित् कोई शंका करै कि उत्सर्गमात्र (देना) कोही तुमने विधिमाना है दूसरेके स्वत्वकी उत्पत्तिमें अनादर होगा—यह शंका ठीक नहीं है क्योंकि अन्यके स्वत्वके उत्पत्ति करनेवाले कोही उत्सर्ग कहते हैं यदि न मानोगे तो होमके विषयमें भस्म पर्यंत आदर न होगा॥

और जो यह कहा है कि यद्यपि प्रतिग्रह स्वत्वका जनक नहींभी है तथापि याजन और अध्यापनके साहचर्य से गौण अर्जन है—यह भी अज्ञानसेहीहै क्योंकि द्विज आदिकोंके जो २ भागहैं उन २ भागोंको दक्षिणाके समय भृतिरूपसेही देतेहैं और इसीसे दानको इसे जैमिनी सूत्रके अनुसार परिक्रय कहते हैं कि स्वामीके कर्म को परिक्रय कहते हैं कर्म करनेवालोंकी प्रसन्नताकी पैदाकरनेवाली जो भृति वह परिक्रय होती है—इसीप्रकार अध्यापनमें भी पढ़ानेवालेको जो धन शिष्य देताहै पढ़ानेवाले की प्रसन्नताका जनक (भृति) होहै और जो नियत मासिकसे अध्यापन है वह उपपातक है इसीसे याजन और अध्यापन भृति होनेसे प्रतिग्रह से पृथक् कहे हैं तिससे दोनों मुख्य अर्जन हैं इसीसे ऋत्विक् और अध्यापक को जो धन दियाजाताहै उसे दक्षिणा कहते हैं॥

और जो किसी ने यह कहा है कि जैसे भाई के धनमें अन्य भाइयोंके स्वत्वका पैदाकरनेवाला भाईका निधन (मरना) है अथवा अन्य भाइयोंका जीवनहै—इसीप्रकार पुत्र आदि में पिताका निधन (मरण) वा पिताके मरणसमयमें पुत्रका जीवन पिताके धनमें स्वत्वका जनक क्यों नहीं हो—

१ मलपितामर्दकेनापिअर्जनंस्वत्वंनापादयतीतिविप्रतिपद्धमिति॥

२ स्वामिकर्मपरिक्रयः॥

यह भी जन्मको स्वत्वका जनक माननेसे परिहार कियागयाहै और जो किसी ने यह कहा है कि पिताके मरे पीछे पुत्र पिताके धनका विभाग करें (ऊर्द्ध्वं पितुश्च) यह मनु वचन भी जन्मसेही स्वत्व माननेमें घटताहै—यदि पिताके मरनेसे पहिले विभागका निषेधक उक्त मनुवचनको मानोगे तो स्वार्थमें उसका तात्पर्य न होगा क्योंकि प्रत्यक्ष विभागबोधक होनेसे विभागका विधान और काल का विधान दोनों असंभव हैं—और पक्षमें प्राप्त विभागको नियमार्थताके सहवार्सी विधिकेसंग विरोध आदि दोष होंगे तिससे पिता और माताके विद्यमानरहते उनके धनमें पुत्रोंका स्वामित्व नहीं होता और उनके मरे पीछेही होताहै इसीके जताने के लिये (ऊर्द्ध्वंपितुश्च) यह मनुका वचन है—यह भी भ्रमसेही किसी का कथन है क्योंकि स्वार्थ का बोधन न करना इसमें तुल्यही है—पिताके मरणसे पहिले भी अस्वतंत्रतासे कालके विधानका बोधकहोनेमें कोई बाधक नहीं है—और इच्छासे प्राप्त कालका अनुवादक माननेपर भी व्यवहारके शास्त्रद्वारा होनेसे कोई विरोध नहीं है—इससे यह शंका भी परास्त (खंडित) हुई कि जातेष्टिके समान पिताके मरनेके अनंतर क्षणमें ही विभागका प्रसंग होजायगा—और कुछ काल के विधानसे पिताका मरनाही विभागमें निमित्त नहीं बोधित किया—अन्यथा कारणके होनेपर कार्य अवश्य होताहै पिताके मरे पीछे विभागकरनेमें पापको भी प्रसंग होजायगा—और पतित और संन्यासी होनेपर पिताके स्वत्वका नाश तो अधिक होताहै—और पुत्रों का जन्म से स्वत्व तो तुल्य है—और पतित होनेपर प्रायश्चित्तका न करनाही स्वत्वके नाश और विभागकी अयोग्यता का बोधक है अन्यथा द्रव्यसे साध्य प्रायश्चित्त भी पिता माताको न होगा—और माताके रजकी निवृत्ति—भगिनियों का विवाह—और शांति (वैराग्य)से पिताकीरति के अभाव होनेपर विभागकरें यहवचन[1] भी कालका बोधकही है और पति के समान स्वत्वका अभाव वहां नहींहोता ॥

इसीसे विभागका १ प्रथम समय तो पिता के स्वत्वकानाश है और दूसरा पिताकेस्वत्व रहनेपर पिताकी इच्छा ये दोकाल कहकर और विभागके तीनकाल दूषितकरके (जो मिताक्षरा में कहेहैं) जीमूतवाहन ने दायभाग में यहकहाहै कि पतित अनिच्छा शांतिसे पिता के स्वत्व का नाश प्रथम—और पिता के स्वत्वरहते पिताकी इच्छा से दूसरा ये दोकालही उपसंहार में युक्त कहे हैं और यह भी कहा है कि पिता के स्वत्व न जानेपरभी पुत्रोंका विभागही न करनेवाले तेरमतमें पिताके धन में पुत्रोंके स्वत्वकी उत्पत्ति किसप्रकार होसक्ती है और पिता माताके जीवते उनवचनों के संग विरोध कैसे नहीं है जो स्वामित्वके बोधकनहीं है और विना स्वत्वके विभाग असंभव है इसमें उनका विभाग कैसे—और ऊर्द्ध्वंपितुश्च—इसवचनमें पिताके स्वत्वका नाशही विवक्षित है इसीसे मृतपदको छोड़कर ऊर्द्ध्वंपद दिया है और पिता के स्वत्वकानाश तो पिताके मरण के समान पतित और निस्पृह दशामेंभी होताहै इत्यादि अपने पूर्वापर ग्रंथों के संग विरोधभी कैसे नहीं है और वीरमित्रोदय में भी शांति और निस्पृहतासे पिताकेधनमें पुत्रोंका स्वत्वकहाहै इसमेंभी शान्तिआदिसे यदि पिता के स्वत्वका नाशही विवक्षित है तो यहकहना विरुद्ध है कि पिताके स्वत्वके न जानेपरभी पिताकी इच्छासे दूसरा विभाग का समय है—और पिताके स्वत्व के नाशके समय पुत्रादिकों का जीवनरूप जो संचय के स्वीकारसे जब पिताका स्वत्व है तो पिताके धनमें पुत्रोंके स्वत्वका स्वीकार कैसे हो-

१ मातुर्निवृत्तेरजसिप्रत्तासुभगिनीषुच। निवृत्तेवापिरमणात् पितर्युपरतस्पृहे ॥

सक्ता है—और आश्रमके त्याग और माताके रजकी निवृत्तिमात्रसे पिताके स्वत्वकानाश नहींहोसक्ता क्योंकि वह द्रव्य स्वामी के सम्बन्धाधीन है और उसके स्वामित्व नाशहोनेपर जिसद्रव्य में स्वत्व हो उसमें दायशब्द निरूढ़हैं यहदायशब्दका अर्थ नहीं है और न यहअर्थहै कि पिताके स्वत्व न जाने पर जिसधनका विभागहो वह दायशब्द वाच्य है इत्यादि बहुतसेदोष शास्त्रीयस्वत्व माननेमें आवेंगे और जन्मसे स्वत्वमाननेमें कोई दोषनहीं—इसीसे मिताक्षरामें पहिले स्वामीके सम्बन्धाधीन जिस धनमें अन्यकास्वत्वहो वहदायशब्द वाच्यकहा है कुछ धनके स्वामीकानाश नहींकहा इससे दोप्रकार का दाय सिद्धहुआ ॥

और जो जीमूतवाहन ने यहकहा है कि अनेक हैं स्वामी जिनके ऐसे द्रव्यों का एकदेश में जो व्यवस्थापन विभागशब्दका अर्थहै फिर यह शंकाकरिकै कि सम्बन्धकी अविशेषतासे सबका सबधन में पैदाहुआ जो स्वत्व उसको किसीएक द्रव्यमें व्यवस्थापनको विभाग कहतेहैं—अन्य सम्बन्धी का होना है विरोधी जिसका ऐसे सम्बन्धको अवयवोंमेंही उसस्वत्वकी जनकता है जो विभागसे जाना जाताहै सबधन में पिताके स्वत्वकी उत्पत्ति और विनाशकी कल्पनाकरनेमें गौरवहै और यथेष्टविनि-योग (खर्चकरना) रूप फलके अभाव से उपयोग भी नहीं है इसप्रकार मिताक्षरा के कथन को दूषितकरिकै यहकहा है कि एकदेशमें स्थित जो भूआदि में पैदाहुआ स्वत्व वह व्यवहार के अयोग्य है और व्यवस्था रहित है और उसमें ऐसा कोई प्रमाणनहीं है जिससे यहप्रतीतहो कि इसमें स्वत्व है या नहीं इससे उसस्वत्व का गुटिकापात (पांसेडालना) आदिसे प्रकटकरने को अथवा विशेष करिकै स्वत्वके ज्ञापनको विभाग कहते हैं—इस जीमूतवाहन के कथनको दायतत्त्वकारने इसप्रकार दूषितकिया है कि किसप्रकार वचनके विना निश्चय होसक्ता है कि जिसमें पुत्रकास्वत्वहो उसीपर गुटिका गिरै—और जहांपर पिताके परनेपर पिताके दोअश्व हैं वहांपर एकअश्वसे जो धन भाई ने संचय किया है वहांपर संचयकरनेवाले के दोभाग और दूसरे का एकभाग सबको सम्मत है—ऐसी जगह यदि पिछले धनके विभाग के समय अश्वसे धनसंचयकरनेवाले को गुटिकापातसे वही अश्व मिलगया तो जो स्वत्वको प्रादेशिक (जोकिसीएकजगहरहै) कहताहै उसके मतमें अर्जन (संचय) करनेवालेकाही अश्वथा उसअश्वसे संचित धनमें दूसरे भाईका कैसे विभाग होसक्ताहै क्योंकि जब अश्वमेंही दूसरेभाईका स्वत्वनहीं तो अश्वसे संचितधनका विभाग तो सुतरां नहींहोसक्ता और यदि वह अश्व गुटिकापात से धनसंचयकरनेवालेसे दूसरेभाई को मिलजाय तो उस अश्व से संचितधन का समभागही होना उचित है क्योंकि संचयकरनेवाले का देह परिश्रम और एकमें अश्वका परि-श्रम ये दोनों उसधनके हेतुहैं—वस्तुतः तो यहबात है कि सम्बन्धकी समता से सम्पूर्ण सम्बन्धियों का सम्पूर्ण धनमें पैदाहुआ जो स्वत्व उसको गुटिकापात आदिसे एकदेशमेंही व्यवस्थापन करना विभागहोताहै और अगतिसे सबधनमें स्वत्वकी उत्पत्ति और विनाश भी मानने पड़ते हैं ॥

और जहां भाइयोंकी संसृष्टता है (इकट्ठेहैं) वहां प्रादेशिक स्वत्वकी उत्पत्ति और सम्पूर्ण धनमें स्वत्वकानाश जैसे इस[1] बृहस्पतिके वचनानुसार मानते हैं कि जो पिताने पृथक् कियाहुआ—भाई—फिर अपनेभाई में अथवा चाचामें प्रीतिसे मिलजाय तो वह संसृष्ट कहलाता है—जिन पिता भाई पितृव्य (चाचा) आदिकों का पितृ पितामह संचितद्रव्य से अविभक्त स्वत्व उत्पत्तिसे होताहै वेही

---

१ विभक्तोयःपुनःपित्राभ्रातावैकत्रसंस्थितः । पितृव्येणाथवाप्रीत्या सतत्संसृष्टउच्यते ॥

विभाग के अनन्तर परस्पर प्रीतिसे यह प्रतिज्ञाकरिलेते हैं कि जो तेराधन है सो मेराधनहै जो मेरा है सो तेराहै और एकरूपसे एककार्यमें स्थितजोहै वह संसृष्ट कहलाताहै—और अनेकजातिके मनुष्य केवल धनके संसर्गसे इकट्ठा कार्यकरनेवाले व्यापारी और विभक्तहुये वे भाई जिनकी परस्परप्रीतिपूर्वक प्रतिज्ञा न हुईहो वेभी द्रव्यके इकट्ठा करनेसे संसृष्ट नहींकहातेहैं यहकहकर दायभागकारकने भी पूर्वोक्त संसृष्टताही स्वीकारकीहै और साधारण स्वत्व माननेसेही यह कात्यायनका वचन संगत होता है एकत्र रहतेहुये भाइयों ने जो पदार्थ भोगाहो उसकाविभाग न करै इसीसे परस्परकी चोरी को भी यह धारण (निश्चय) नहींकरता इससे इसे नारद के वचन से कि साक्षीकी प्रातिभाव्य (जामिनी) दान–ग्रहण–इतने कर्म विभक्तहुये भाई परस्परकरें और अविभक्त न करें यहदानादिक के निषेध का मूलन्याय है और दानादिक से पहिले भी देनेयोग्य द्रव्य में प्रतिग्रहीताका स्वत्वहोने से दान और प्रतिग्रहका असम्भव है और अविभक्त द्रव्यसे कियेहुये कर्मके सबभाई फलभागी होते हैं क्योंकि इनै नारद–और व्यास के वचनोंसे यहप्रतीत होता है कि अविभक्त भाइयों का एकधर्म और विभक्तों का पृथक् २ होता है–और सम्पूर्ण स्थावर धन और गोत्र परम्परासे चलाआया जो साधारण धन उसका विक्रय और दान परस्पर की सम्मति के विना एकभाई न करै इस वचन में समस्तपददेनेसे यह स्वीकार कियाहै कि सम्पूर्णधन में प्रत्येक भाइयों का साधारण स्वत्व है इसीसे एककी सम्मति के विना दूसराभाई विक्रय नहींकरसक्ता है इससे स्वत्व सम्पूर्ण धनमें है एकदेशमें नहीं और यहीबात मिताक्षराकारको भी यहवर्णन करनेसे अभिमत है कि अनेकद्रव्य समुदाय के स्वामित्वका एकदेश में जो व्यवस्थापन उसे विभाग कहते हैं ॥

इस विषयमें यहबात विचारने योग्य है कि द्रव्यसमुदायका कियाहुआ स्वामी में स्वामित्व और स्वामी का कियाहुआ द्रव्य समुदाय में स्वत्व व्यासज्यवृत्ति (जो सबमें व्यापकहो) है वा प्रत्येक वृत्ति है इन दोनोंमें व्यासज्यवृत्ति तो नहीं कहसक्ते क्योंकि एक २ स्वामित्व और स्वत्वके आश्रयके नाशहोनेपर उनकानाशऔर शेष समुदायमें स्थित उनकी उत्पत्ति माननेमें कल्पनाका गौरवहै और प्रत्येक स्वामीका प्रत्येक द्रव्यमें दान क्रय आदिकोंमें यथेष्ट व्ययकी अयोग्यताहोगी इससे व्यवहारमें विसंवाद होजायगा और प्रत्येक वृत्ति भी नहीं कहसक्ते क्योंकि विभाग होनेपरही उसका नाश और उत्पत्तिकी कल्पनामें गौरवहोगा–और विद्यमान स्वत्वका विभागहोताहै विभागसे स्वत्व नहीं होता इस ग्रंथका विरोध होजायगा ॥

इसमें वीरमित्रोदयकार यह कहते हैं कि प्रत्येक में संबंधके अविशेष से रहनेवाले स्वामित्वहैं वे सब परस्पर के विभाग होनेपर परस्परके (अन्य २ के) द्रव्यमें इसप्रकार नष्टहोजातेहैं जैसे मरण और संन्याससे इससे कोई भी अनुपपत्ति नहीं है और इसीको व्यवस्थापन कहते हैं अन्यथा एक देशमें उत्पादनकोही विभाग कहदेते–इसीसे विनाशमात्रकीही कल्पना है स्वत्वांतरकी उत्पत्ति की कल्पना नहीं है–जीमूतवाहनके मतमें तो विभागसे पहिले यह निरूपण नहीं करसक्ते कि मेरा

---

१ बंधूनामविभक्तानां भोगंनैवप्रदापयेत् ॥

२ साक्षित्वंप्रातिभाव्यंच दानंग्रहणमेवच । विभक्ता भ्रातरःकुर्युः नाविभक्ताःपरस्परम् ॥

३ भ्रातृणामविभक्तानामेकोधर्मःप्रवर्तते । विभागेसतिधर्मोपि भवेत्तेषांपृथक्पृथक् ॥ स्थावरस्यसमस्तस्यगोत्रसाधारणस्यच । नैकःकुर्यात्क्रयंदानं परस्परमतंविना ॥

वास्तव स्वत्व कहां है इससे धनके आधीन वेदोक्त और स्मृत्युक्त कर्मोका उच्छेद (नाश) होजायगा— विभागके अनंतर कीहुई अनुमति से परस्परके द्रव्यमें परस्परके स्वत्वांतरकी उत्पत्ति मानोगे तो स्वत्वकी उत्पत्ति विनाशकी कल्पनाका गौरव मानना पड़ेगा—जो जीमूतवाहनने मिताक्षराके मतमें दोष दियाहै उससे भी अधिक जीमूतवाहनको मानना पड़ेगा—और व्यवहारके अनुपयोगसे समुदाय के स्वत्वकी अनुपयोगता जो कही है वह भी एक देशमें स्वत्व मानने पर तुल्य है ॥

सिद्धांत यह है कि जन्मसेही स्वत्व पैदा होताहै और शास्त्रोक्त वचन उसी स्वत्वके व्यंजक (प्रकाशक) हैं ॥

अब विभाग के समय और कर्ताओं का वर्णन करते हैं ॥

ऊर्ध्वंपितुश्चमातुश्चसमेत्यभ्रातरःसमम् । भजेरन्पैतृकंरिक्थमनीशास्तेहिजीवतोः १०४ ॥

प० । ऊर्ध्वं पितुः चैं मातुः चैं समेत्य भ्रातरः समं भजेरन् पैतृकं रिक्थं अनीशाः ते हि जीवतोः

यो० । भ्रातरः पितुः चपुनः मातुः ऊर्ध्वं (मरणानन्तरं) समेत्य पैतृकं रिक्थं (धनं) समं भजेरन्—हि (यतः) जीवतोः (पित्रोः) ते (भ्रातरः) अनीशाः स्वतंत्रतया धनविभागं कर्तुं न शक्ताः इत्यर्थः ॥

भा०।ता० । संपूर्ण भाई मिलकर पिताके और माताके मरणानंतर इकट्ठे होकर पिता और माताके धनका विभागकरें क्योंकि वे सबभाई माता पिता के जीवते माता पिता के धनमें स्वामी नहीं हैं अर्थात् स्वतंत्र नहीं हैं और यह पिताके मरणानंतर धनका विभाग उसीसमय जानना जब जीवते पिताके धनके बांटनेकी इच्छा न हो क्योंकि याज्ञवल्क्यने इस वचनसे जीवतेहुये भी पिताको धन का विभाग कहा है कि यदि पिता विभाग करै तो अपनी इच्छाके अनुसार पुत्रोंका विभाग करै— यहां पैतृकपदसे पिता और माताका धनलेना क्योंकि प्रथम अर्द्ध श्लोक में दोनोंका ग्रहण है इसीसे पिताके मरणानंतर पिताके धनका और माताके मरे पीछे माताके धनका विभागकरने का काल (समय) होताहै ये दोकाल मनुने इसीवचनसे कहे हैं और पितुश्चमातुश्च यह च शब्द अन्यकालका भीसूचकहै कुछइन्हीं दोकालोंके नियमार्थ नहींहै और पितृधनके विभागमें माताका जीवन और मातृधनके विभागमें पिताका जीवन इस संग्रहकारके वचनसे प्रतिबंधक नहीं है कि माताके जीवते भी पिताके धनका विभाग होताहै क्योंकि पतिके विना माताको स्वतंत्रतासे धनका स्वामित्व नहीं है—और पिताके जीवते भी माताके स्त्री धनका विभाग होता है क्योंकि पुत्रोंके विद्यमान रहते पति स्त्री धनका स्वामी नहीं होसका अर्थात् पतिके अभावमें पुत्रोंके विद्यमान रहते माताको पतिके धनमें स्वामित्व नहीं है इससे माताके जीवते भी पुत्रोंका विभाग करना युक्त है—इसीप्रकार पुत्रोंके होते पतिका स्त्री धनमें स्वामित्व नहीं है इससे पिताके जीवते भी पुत्रोंका माताके धनका विभाग करनेमें अधिकारहै और—अनीशास्तेहिजीवतोः—यह पद भी इसका बोधक नहीं है कि माता पिताके जीवते उनके धनमें पुत्रोंका स्वामित्व नहीं—किंतु इसका बोधकहै कि उनके धनकी व्यवस्थाकरनेमें पुत्र अस्वतंत्र हैं और पुत्रोंका स्वत्व तो पिताके धनमें जन्मसेही है ॥

---

१ विभागंचेत्पिताकुर्यात्इच्छयाविभजेत्सुतान् ॥

१ पितृद्रव्यविभागःस्यातजीवत्यामपिमातरि।नस्वतंत्रतयास्वाम्यंयस्मान्मातुःपतिंविना॥मातृद्रव्यविभागोपितथापितरिजीवति । सत्स्वपत्येषुयस्मान्नस्त्रीधनस्यपतिःपतिः ॥

याज्ञवल्क्य ऋषिने इस वचनसे यह कहा है कि यदि पिता विभाग करा चाहै तो अपनीइच्छा के अनुसार विभाग करै अथवा ज्येष्ठ पुत्रको श्रेष्ठ भागदे वा सम्पूर्ण पुत्रोंको समान अंशसे विभाग करदे—इस वचनमें पिता अपनी इच्छासे पुत्रोंका विभाग करै यह कहतेहुये याज्ञवल्क्यजी ने यह सूचित किया है कि जीवते पिताकी इच्छा होय तो वह भी विभाग का समय है और उस समयमें भी विभाग का कर्त्ता पिताही है क्योंकि इस वचनसे निर्दोष पिताके रहते पुत्रोंको अस्वतंत्रता कही है इससे निर्दोष पिताके रहते पुत्रोंका अस्वातंत्र्य कहनेसे पतित पिता के विद्यमान रहते भी पुत्र पिताके परतंत्र नहीं होते तब पुत्रोंकी इच्छासे भी विभाग होसक्ता है यह भी एक विभागका समय है—और इसीप्रकार अन्य भी पुत्रोंकी इच्छासे विभागका समय है कि जब पिताकी द्रव्यमें इच्छा न रहै और स्त्री संगसे निवृत्ति होजाय अथवा माताके रजोधर्मकी निवृत्तिहोजाय तब पुत्र अपनीइच्छा से विभाग को करलें—क्योंकि नारदऋषिने इस वचनसे यह कहकर कि पिता के मरे पीछे पुत्र धन का विभाग करें—फिर इस वचनसे यह कहा है कि माताके रजोधर्म की निवृत्ति और भगिनियों का विवाह और पिताकी स्त्री संगसे और धनकी इच्छासे निवृत्ति होनेपर पुत्र विभाग को करलें ॥

जीमूतवाहनने तो—विनष्टे वाप्यशरणे—यह पाठ लिखकर यह अर्थ किया है कि पतित और गृहस्थाश्रम रहित पिता होय तो पुत्र विभाग करलें—और यह भी कहा है कि निवृत्तेवाविरमणात्—यह पाठ बनाकर (जो शास्त्र में न लिखा हो) है यह जीमूतवाहन का कथन अयुक्त है क्योंकि मिताक्षरा आदि बहुत ग्रन्थोंमें लिखितहै और गौतम ऋषिने भी इस वचनसे यह कहाहै कि पिताके पीछे पुत्र धनको बांटें अथवा माताके रजकी निवृत्ति होनेपर तो माता के जीवतेभी विभाग करलें—और बृहस्पतिने भी इस वचनसे यह कहा है कि माता पिता के अभाव में भाइयों का विभाग शास्त्र ने दिखाया है और माता पिता के जीवते भी माताके रजकी निवृत्ति होने पर विभाग इष्ट है—और तिसी प्रकार माताके रजोधर्म होते भी यदि पिता दीर्घ रोग से ग्रस्तहो वा अधर्मी हो तो इस शंख ऋषि के वचनानुसार पुत्रों की इच्छासे विभाग होताहै कि पिताके निष्काम—वृद्ध—विपरीत बुद्धि—रोगी होनेपर विभाग होता है—और नारद ऋषिने भी इस वचनसे यह कहा है कि—रोगी—क्रोधी—विषयी—शास्त्र विरुद्ध कर्मों का कर्त्ता—जो पिता वह विभाग करने में समर्थ नहीं है ॥

अब विभागके ये तीन काल हुये कि १ पिता के मरनेपर—२ माताके रजकी निवृत्ति होनेपर—३ पिता के जीवते भी पिता की इच्छासे—इस मिताक्षरा ग्रन्थ में जो जीमूतवाहन ने यह दूषण दिया है कि यदि माताके रजकी निवृत्ति को पिता की वाञ्छा शान्ति का विशेषण मानोगे अर्थात्

---

१ विभागंचेत्पिताकुर्यादिच्छयाविभजेत्सुतान् । ज्येष्ठंवाश्रेष्ठभागेनसर्वेवास्युःसमांशिनः ॥
२ अस्वाम्यंहिभवेदेषांनिर्दोषेपितरिस्थिते ॥
३ अतऊर्ध्वंपितुःपुत्राःविभजेयुर्द्धनंसमम् ॥
४ मातुर्निवृत्तेरजसिप्रत्तासुभगिनीषुच । निवृत्तेवापिरमणात्पितर्युपरतस्पृहे ॥
५ ऊर्ध्वंपितुःपुत्रारिक्थंविभजेरन्—निवृत्तेचापिरजसिमातुर्जीवतिचेच्छति ॥
६ पित्रोरभावेभ्रातृणांविभागःसंप्रदर्शितः । मातुर्निवृत्तेरजसिजीवतोरपिहीस्यते ॥
७ अकामेपितरिरिक्थविभागोवृद्धेविपरीतचेतसिरोगिणिचेति ॥
८ व्याधितःकुपितश्चैवविषयासक्तमानसः । अयथाशास्त्रकारीचनविभागेपिताप्रभुः ॥

माताके रजकी निवृत्तिसे पिता की इच्छा के त्याग होनेपरही विभाग मानोगे तो मनुने इसे वचन से यह विवाह का समय कहा है कि तीस वर्ष का मनुष्य मनोहर बारह वर्ष की और चौबीस वर्षका आठ वर्ष की कन्या को विवाहै और जो इससे शीघ्रता करता है वह धर्म से दुःखी होता है—और इसे वचनसे पचास वर्ष की अवस्था में वनमें जाना लिखा है उस समय माता की अवस्था ३२ वा २४ वर्ष की होगी उस समयमें रजकी निवृत्ति होना असम्भव है इससे पिता की भोगेच्छा के अभाव वा वानप्रस्थ होनेपर उसके पुत्रों की इच्छा होनेपर विभाग नहीं होगा—यदि माताके रजकी निवृत्तिरूप विशेषणसे रहित पिता की वांछाके त्यागकोही विभाग का समय कहोगे तो पिताकी भोगेच्छा रहते और पतित होनेपर भी विभाग नहीं होगा—यदि इसको भी विभाग का काल मानोगे तो चार काल मानने पड़ेंगे कि १ पिता का मरण— २ पतितहोना— ३ निस्पृहता—४ पिता की इच्छा—तिससे पतितत्व, निस्पृहत्व, मरण, इनसे पिता के स्वत्व का नाश प्रथम—और जीवते हुये पिता की इच्छा द्वितीय—ये दोही विभाग के काल ठीक हैं ॥

यह जीमूतवाहनने जो मिताक्षरा के विषयों पर दूषण दिया है वह मिताक्षरा के अभिप्राय को न जानकर है क्योंकि मिताक्षराकारने तीन काल का नियम नहीं कहा है किन्तु आगे जाकर तथा इत्यादि ग्रन्थसे अन्य काल भी समीप मेंही कहा है और नियम में कोई बीच भी नहीं है—और यह बातभी असंगत है कि पिता के स्वत्वका नाश और पिता की इच्छा से ये दोही काल युक्त हैं— क्योंकि निवृत्तरज माता जब होजाय— इस पद का अन्वय इससे ठीक न होगा कि माताके रजकी निवृत्ति मात्रसेही पिता के स्वत्वकी निवृत्ति नहीं होसकती क्योंकि जन्म से स्वत्व की व्यवस्था की है और पिता के स्वत्व का नाश काल का उपलक्षण है—इसी प्रकार दीर्घ रोग ग्रस्त होने पर भी पिता के स्वत्व का नाश नहीं होसकता इससे दोही विभागके समयों की सिद्धि जीमूतवाहन नहीं करसकता ॥

और जो जीमूतवाहन ने यह कहा है कि माताके रजकी निवृत्तिसे पिता को विभाग करना यह पितामहके धनके विषय में है क्योंकि माताके रजकी निवृत्तिसे अन्य पुत्र होने की सम्भावना नहीं रहती उस समय में भी पिता की इच्छासेही पुत्रों का विभाग होता है क्योंकि रजकी निवृत्ति हुये विना क्रम से आगत धनका विभाग मानोगे तो उनकी वृत्ति (भाग) का लोप होजायगा जो विभाग के पीछे पैदा होंगे और उनकी वृत्ति का लोपकरना इसे वचनसे युक्त नहीं है कि जो पुत्र पैदा हुये हैं वा नहीं पैदा हुये हैं और जो गर्भ में स्थित हैं वे भी वृत्ति को चाहते हैं क्योंकि वृत्ति का लोप नहीं होता—और पिता के धनमें दोही कालोंके होनेसे मनु और गौतम आदिकोंने मृत पदको छोड़कर ऊर्ध्व पद पढ़ा है और उसका अर्थ यह है कि पिता के स्वत्व का नाश होनेपर—और जो इस वचनको पिता के धनके विषय मानोगे तो इसे याज्ञवल्क्य के वचनका कोई विषय न होगा कि विभाग के पीछे पैदा हुआ पुत्र पिताकेही धनको ग्रहणकरै क्योंकि रजकी निवृत्ति होनेपर पुत्रकी उत्पत्ति नहीं होसकती और माताके धनको भी इस वचनका विषय नहीं कहसकते क्योंकि माताही

१ त्रिंशद्वर्षोवहेत्कन्यांहृद्यांद्वादशवार्षिकीम् । त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षांवाधर्मेसीदतिसत्वरः ॥
२ वनंपञ्चाशतोव्रजेत् ॥
३ येजातायेप्यजाताश्चयेचगर्भेव्यवस्थिताः । वृत्तिंचतेभिकांक्षन्तिवृत्तिलोपोनविद्यते ॥
४ ऊर्ध्वंविभागाज्जातस्तुपित्र्यमेवहरेद्धनम् ॥

निर्द्धन होजायगी इससे पितामह धनके विषयही यह वचन संगत होसकता है—और इच्छाके विना केवल रजकी निवृत्ति विभाग का हेतु नहीं होसकती क्योंकि इच्छा के विना विभाग का होना असम्भव है और वह इच्छा भी इस गौतम के वचनसे पिताकीही लेनी कि पिता के मरने के अनन्तर अथवा माताके रजकी निवृत्ति और पिता की इच्छा—होनेपर पुत्र धनका विभाग करें इससे पितामहके धन विभाग के भी दोही काल हैं कि १ माता पिता के मरण—२और माताके रजकी निवृत्ति होने पर पिता की इच्छा—यह भी जीमूतवाहनका कथन ठीक नहीं है क्योंकि पिता के धन में भी वृत्ति का लोप तुल्य है—और पितामह आदिके धनमें भी (ऊर्ध्वंविभागाज्जातस्तु—विभाग से पीछे जो पैदाहुआ वह पिताकेही धनको ग्रहणकरै) इस वचनकी असंगति तुल्य है—और पिता की भोगेच्छा होनेपर यदि पतित दोष लगजाय तो पितामह के धनका भी विभाग पुत्रों की इच्छासे सबको सम्मत है—और सिद्धान्त तो इस याज्ञवल्क्यके वचनानुसार यह है कि जो पितामह के संपादन किये हुये भूमि, निबन्ध—द्रव्य हैं उनमें पिता और पुत्रका स्वामित्व समान है इससे पुत्रकी इच्छासे भी उसका विभाग उचित है ॥

इस विषयमेंवीर मित्रोदयकार का तो यह सिद्धान्तहै कि स्वतन्त्रता के योग्य पिताके जीवते हुये उसकी इच्छाही विभागका कारणहै और पतित संन्यासी आदि होनेसे यदि पिता स्वतन्त्रताके योग्य न रहै तो पुत्रकी इच्छा भी विभागमें कारण होती है और पिता के मरनेपर पुत्रोंकी इच्छा अर्थात् सिद्ध है इससे तीनही विभागके पूर्वोक्तकाल युक्तहैं—यदि न मानोगे तो स्पृहाआदिके त्याग पतित—संन्यासी होना आदिकोंके विकल्पके समुच्चयकी कल्पना की अनुपपत्तिहोनेसे विशेष्य विशेषणकी व्यवस्था न होसकेगी इससे बहुतव्याकुलता होजायगी—इससे किसी वचनमें कोई पढ़ेहैं और किसी में कोई—यह भी संगत होता है कि एक मूल कल्पना की लघुतासे—स्पृहाका त्याग आदि से एक पिताकीअस्वतंत्रताही उपलक्षणसे लेते हैं—और अनीशास्तेहिजीवतोः—निर्दोषेपितरिस्थिते—जीवतोरपिशस्यते—ये वचन भी इसीसे भलीप्रकार संगत होते हैं कि पुत्र पिता माताके जीवते और निर्दोष पिताके विद्यमान रहते अस्वतंत्र है और पतित होनेपर माता पिताके जीवते भी विभाग श्रेष्ठ है—इसीसे माता पिताके जीवते हुये भाइयोंका सहबसना मुख्य है और उनकी अनुमति से ज्येष्ठकी वा कार्य करने योग्य कनिष्ठकी मुख्यता होतीहै और अन्य सब उसके अनुरोधी होतेहैं ये दो पक्ष व्यास आदिकोंने इन वचनों से कहे हैं कि माता पिताके जीवते पुत्रोंका सहवास कहाहै—इस वचनसे हारीत ने भी यह कहा है कि पिताके जीवते पुत्र धनका ग्रहण दान आदि में स्वतंत्र नहीं है और दीन—परदेशी—रोगी होनेपर तो ज्येष्ठ पुत्र यथेच्छ कार्योंकी चिंताकरै और शंखलिखितने भी इन वचनों से स्पष्टकहा है कि पिताकी अशक्त अवस्थामें कुटुंबके व्यवहारोंको ज्येष्ठ करै वा माता पिताकी अनुमतिसे कनिष्ठकरै—और पिताकी इच्छाके विना धनका विभाग नहींहोता और यदि पिता वृद्ध, विप-

१ ऊर्ध्वंपितुःपुत्रारिक्थंविभजेयुर्निवृत्तेरजसिमातुर्जीवतिचेच्छतीति ॥
२ भूर्यापितामहोपात्तानिबन्धोद्रव्यमेववा । तत्रस्यात्सदृशंस्वाम्यंपितुःपुत्रस्यचैवहि ॥
३ भ्रातृणांजीवतोःपित्रोःसहवासोविधीयते ॥
४ जीवतिपितरिपुत्राणांअर्थादानविसर्गाक्षेपेषुनस्वातंत्र्यंकामंदीनेप्रोषितेआर्तिगतेज्येष्ठोवार्थांश्चिंतयेत् ॥
५ पितर्यशक्तेकुटुंबव्यवहारान्ज्येष्ठःप्रतिकुर्यात्अनन्तरोवाकार्यज्ञस्तदनुमतोनत्वकामेपितरिरिक्थविभागो वृद्धेविपरीतचेतसिदीर्घरोगिणिवाज्येष्ठएव पितृवदर्थान्पालयेदितरेषामृक्थमूलंहिकुटुम्बमस्वतंत्राःपितृमन्तोमातुरप्येवमवस्थितायाः ॥

रीतबुद्धि, दीर्घरोगी होजाय तो ज्येष्ठ भाईही पिताके समान धनकी पालना करै क्योंकि कुटुंबका मूल धनहै और माता पिताके विद्यमान रहते सब भाई अस्वतंत्र हैं—तिससे पूर्वोक्त रीतिसे विभाग के तीनही काल हैं—इस मनुके वचनमें समेत्य इसपदसे साहित्य (इकट्ठे होकर) और बहुवचन अविवक्षित हैं क्योंकि एक और दो भाइयोंकी इच्छासे विभाग नहीं होगा इस वीरमित्रोदयके ग्रंथसे विरोध होजायगा—और सम (बराबर) विभाग करें—यह नियम है—और इसे व्यासके वचनमें पित्रोः इस द्विवचनसे माता और पिता दोनोंके ग्रहणसे सोदरभाई पिताके धनका भी विभाग माताके अभावमें ही करें कुछ माताके अभावका उपादान माताके धनके विभागकेहीलिये नहीं है क्योंकि जीवतोः (जीवते माता पिता) यह पद भी माताके धनमें न लगेगा इससे अन्य धन विषयक कहना पड़ेगा अर्थात् जिसधनमें माता पिताका अभाव निमित्त है उसीमें जीवन भी उत्तमकहा है इससे माताके धनमें माताका अभाव यह अर्थ ठीक नहीं है यह जीमूतवाहनका कथन असंगत है क्योंकि इसी मनुके वचनमें (पितुश्चमातुश्च) इस पृथक् निर्देशसे—अन्यथा द्विवचनका विभाग संबंधमात्र की विवक्षा सेही अर्थ करना ठीक था—अन्यथा एकके धनमें अन्यतर (कोई सा) का होना अदृष्टार्थ होता—और जो यह कहा है कि (जीवतोः) यह माताके धनके विषय न होगा उसका भी क्या अभिप्राय है कि यदि पिताके जीवते माताको अस्वतंत्र होने से माताके धन विषयक नहीं है तो पुत्रों के होते भार्या के धनमें भी पिताका स्वामित्व है इससे माताके अभावका भी उसमें अनुपयोगहोने से अन्य विषयकत्व होजायगा और अभिप्रायांतरत्व (अन्य आशयत्व) जो है सो संभवत् उक्ति है यह वीरमित्रोदयकार कहते हैं तिससे दृष्टार्थ होनेसे माताके धनमेंही माताका अभाव है यह संग्रहकारका कथनहीठीक है—और जैसे जीवते माता पिताके समय भाइयों का सहवास मुख्यहै तैसेही माता पिताके पीछे भी सहवासही मुख्यहै क्योंकि इसे शंखलिखित के वचनसे यही प्रतीत होताहै कि यथेच्छ सबभाई मिलकर बसें और एकजगहरहते धन वृद्धि को प्राप्तहों—इसीसे मनुजी भी इस श्लोक से यह कहते हैं कि संग बसतेहुये भाई ज्येष्ठको पिता के समान पूजनीय समझें—कि १०४॥

ज्येष्ठएवतुगृह्णीयात्पित्र्यंधनमशेषतः। शेषास्तमुपजीवेयुर्यथैवपितरंतथा १०५

प० । ज्येष्ठः एवं तु गृह्णीयात् पित्र्यं धनं अशेषतः शेषाः तं उपजीवेयुः यथा एवं पितरं तथा ॥

यो० । अशेषतः पित्र्यं धनं ज्येष्ठएवगृह्णीयात् शेषाः (कनिष्ठाः) तं तथैव पितरं तथा उपजीवेयुः ॥

भा० । पिताके सम्पूर्ण धनको ज्येठाभाईही ग्रहणकरै और शेष (छोटे) भाई अपने भोजनवस्त्र के लिये ज्येठभाई के इसप्रकार आधीनरहें जैसे अपने पिताके आधीन रहतेथे ॥

ता० । ज्येठापुत्रही पिताके सम्पूर्ण धनको ग्रहणकरै क्योंकि नारदऋषिने इसे[3] वचनसे यहकहा है कि एकाकी ज्येठाभाई सबभाइयों की इसप्रकार पालनाकरै जैसे पिता करतेथे यदि ज्येठाभाई सबभाइयों की पालनाकरने में अशक्तहोय तो कनिष्ठ (छोटा) भाईही सबकी पालनाकरै क्योंकि कुलकी स्थिति शक्तिकी अपेक्षासे है—और शेषभाई (छोटे) भोजन वस्त्र के लिये पिता के समान

---

१ भ्रातृणांजीवतोः पित्रोः सहवासोविधीयते ॥

२ काममसहवसेयुरेकतः संहतावृद्धिमापयेरन् ॥

३ बिभृयाद्वैकतःपुत्रान् ज्येष्ठोभ्रातायथापिता । भ्राताशक्तःकनिष्ठोवा शक्त्यपेक्षाकुलस्थितिः ॥

उस जेठेभाईकेही आश्रय रहैं अर्थात् एकमतहोकर इकट्ठे बसतेहुये ज्येठेभाईकेही आधीनरहैं–इस वचनसे लेकर–एवंसहवसेयुः–इसवचन पर्यंत वचनों से मनुजी ने यही वर्णन किया है कि सम्पूर्ण भाइयों का एकत्ररहना वा सम्मतिपूर्वक पृथक् रहना श्रेष्ठ है १०५॥

ज्येष्ठेनजातमात्रेणपुत्रीभवतिमानवः। पितॄणामनृणश्चैवसतस्मात्सर्वमर्हति १०६॥

प०। ज्येष्ठेन जातमात्रेण पुत्री भवति मानवः पितॄणां अनृणः च एव सः तस्मात् सर्वं अर्हति॥

यो०। जातमात्रेण ज्येष्ठेन मानवः पुत्री चपुनः पितॄणां अनृणः भवति–तस्मात् सः ज्येष्ठः सर्वं अर्हति–सर्वद्रव्यप्राप्तियोग्योभवतीत्यर्थः॥

भा०। ज्येष्ठपुत्र के उत्पन्न होतेही मनुष्य पुत्रवान् और पितरों के ऋणसे रहितहोता है तिससे वह ज्येष्ठही सबधन ग्रहणकरने के योग्य होताहै॥

ता०। ज्येष्ठपुत्रके उत्पन्न होतेही अर्थात् संस्कारहीन भी ज्येष्ठपुत्रसे मनुष्य पुत्रवान्होताहै और पितरों का अनृण (ऋणसेहीन) होता है क्योंकि इनश्रुति और वचनोंसे ज्येष्ठकोही मुख्यता वर्णन की है–और यहकहा है कि पुत्रविना स्वर्गनहीं है प्रजासे पितरोंके ऋणसे छूटताहै तिससे ज्येष्ठपुत्रही सबधन ग्रहणकरनेयोग्य होताहै और उसके छोटेभ्राता उसज्येष्ठकेसे संगशांतिसे वर्तावकरें १०६॥

यस्मिन्नृणंसन्नयतियेनचानन्त्यमश्नुते।सएवधर्मजःपुत्रःकामजानितरान्विदुः १०७॥

प०।यस्मिन् ऋणं सन्नयति येन च आनंत्यं अश्नुते सः एव धर्मजः पुत्रः कामजान् इतरान् विदुः

यो०। यस्मिन् जाते सति ऋणं सन्नयति (शोधयति) चपुनः येन जातेन अमृतत्वं अश्नुते सः (ज्येष्ठः) एव पुत्रः धर्मजः ज्ञेयः इतरान् (कनिष्ठान्) कामजान् विदुः–मन्वादयऋषयः॥

भा०। जिससे ऋणकी निवृत्ति होती है और जिससे स्वर्गहोता है वही ज्येष्ठपुत्र धर्मसे उत्पन्न होता है और शेष पुत्रोंको मुनियों ने कामज कहाहै अर्थात् बडेके मरणानन्तर उनसेभी ऋणनिवृत्ति की आशा है॥

ता०। जिस ज्येष्ठपुत्र के उत्पन्नहोनेही मनुष्य पितरोंके ऋणसे शुद्ध (निवृत्त) होता है अर्थात् ज्येष्ठपुत्र से पितरोंको यह आशाहोती है कि हमारे लिये श्राद्ध और तर्पणका अधिकारी उत्पन्नहुआ क्योंकि इसे श्रुतिसे यहकहा है जिससे ऋणको शुद्धकरना है और जिससे मोक्षको प्राप्त होताहै यदि पिता पैदाहुये उसज्येष्ठपुत्र के मुखकोदेखले तो स्वर्गमें जाताहै–और जिससे आनन्त्य (स्वर्गआदि उत्तमलोक) को प्राप्तहोता है वही ज्येष्ठपुत्र पिताका धर्मज पुत्रहै अर्थात् वही धर्मसे पैदाहुआ होता है क्योंकि ऋणआदि के दूरकरने का उपाय उस एकसेही होजाता है–और इतर जो पुत्रहैं वे काम (इच्छा) की महिमा से उत्पन्नहोनेसे मुनियों ने कामज कहेहैं १०७॥

पितेवपालयेत्पुत्रान्ज्येष्ठोभ्रातॄन्यवीयसः। पुत्रवच्चापिवर्त्तेरन्ज्येष्ठेभ्रातरिधर्मतः १०८॥

प०। पिता इव पालयेत् पुत्रान् ज्येष्ठः भ्रातॄन् यवीयसः पुत्रवत् च अपि वर्तेरन् ज्येष्ठे भ्रातरि धर्मतः॥

---

१ नापुत्रस्यलोकोस्ति–प्रजयापितृभ्यः–पुत्रेणजातमात्रेण पितॄणामनृणश्चसः॥
२ ऋणमस्मिन्सन्नयत्यमृतत्वंचगच्छति–पितापुत्रस्यजातस्यपश्येच्चेज्जीवतोमुखम्॥

यो०। ज्येष्ठः यवीयसः भ्रातॄन् पिता पुत्रान् इव पालयेत् चपुनः यवीयसः भ्रातरः अपि ज्येष्ठे भ्रातरि धर्मतः पुत्रवत् वर्त्तेरन् ॥

भा० । ता० । जेठाभाई अपने कनिष्ठ भाइयोंकी इसप्रकार पालनाकरै जैसे पिता पुत्रों की करताथा और वे कनिष्ठभाई भी जेठेभाई के संग इसप्रकार धर्मसे वर्तावरक्खें जैसे पितामें रखतेथे— क्योंकि वही पिता कहाता है जो अपनी रक्षाकरता है १०८ ॥

ज्येष्ठःकुलंवर्द्धयतिविनाशयतिवापुनः । ज्येष्ठःपूज्यतमोलोकेज्येष्ठःसद्भिरगर्हितः १०९ ॥

प० । ज्येष्ठः कुलं वर्द्धयति विनाशयति वा पुनः ज्येष्ठः पूज्यतमः लोके ज्येष्ठः सद्भिः अगर्हितः ॥

यो० । ज्येष्ठः कुलं वर्द्धयति—वा पुनः विनाशयति ज्येष्ठः लोके पूज्यतमः भवति—ज्येष्ठः सद्भिः अगर्हितः भवति ॥

भा० । ज्येष्ठहीकुलको बढ़ाताहै और ज्येष्ठही कुलको नष्टकरताहै—और ज्येष्ठही जगत् में अत्यन्त पूजा (बड़ाई) के योग्य होताहै—और ज्येष्ठही साधुओंकी निंदा के अयोग्य होताहै ॥

ता० । नहीं कियाहै पिताके धनका विभाग जिसने ऐसा ज्येष्ठभाई यदि धार्मिक होय तो उसके छोटेभाई भी उसकेअनुयायी होनेसे धार्मिकहोंगे इससे ज्येष्ठही कुलकी वृद्धिकरताहै यदि जेठाभाई अधार्मिक होगा तो उसके अनुयायी छोटेभाई भी अधार्मिक होजायँगे तो ज्येष्ठही कुलको नष्टकरदेता है—इससे गुणवान् जेठाभाई लोकमें अत्यन्त पूजनेयोग्य होताहै और साधुओं की निन्दाके अयोग्य होता है १०९ ॥

योज्येष्ठोज्येष्ठवृत्तिःस्यान्मातेवसहिपितेवसः । अज्येष्ठवृत्तिर्यस्तुस्यात्ससंपूज्यस्तुबंधुवत् ११०

प० । यः ज्येष्ठः ज्येष्ठवृत्तिः स्यात् माता इव हि पिता इव सः अज्येष्ठवृत्तिः यः तु स्यात् सः सम्पूज्यः तु बंधुवत् ॥

यो० । यः ज्येष्ठः ज्येष्ठवृत्तिः स्यात् सः माताइव पिताइव ज्ञेयः तुपुनः यः ज्येष्ठः अज्येष्ठवृत्तिः स्यात् सः बंधुवत् (मातुलादितुल्यं) सम्पूज्यः नतुमातापितृतुल्यम् ॥

भा० । ता० । जो जेठाभाई अनुज (छोटे) भाइयों में जेठभावसे वर्ते अर्थात् पिताके समान बर्तावकरै वह जेठाभाई माता और पिताके समान जानना और जो ज्येष्ठवृत्ति न हो अर्थात् पूर्वोक्त रीतिसे छोटेभाइयों के संग बर्ताव न करै उसको बन्धुवत् पूजना अर्थात् मातुलआदि बन्धुओं के समानही उसका सत्कार छोटेभाईकरें अधिकनहीं ११० ॥

एवंसहवसेयुर्वापृथग्वाधर्मकाम्यया । पृथग्विवर्द्धतेधर्मस्तस्माद्धर्म्यापृथक्क्रिया १११ ॥

प० । एवं सहवसेयुः वा पृथक् वा धर्मकाम्यया पृथक् विवर्द्धते धर्मः तस्मात् धर्म्या पृथक्क्रिया ॥

यो० । भ्रातरः एवं सहवसेयुः वा धर्मकाम्यया पृथक् वसेयुः यस्मात् पृथक् धर्मः विवर्द्धते तस्मात् पृथक्क्रिया धर्म्या भवति ॥

भा० । सबभाई इसपूर्वोक्त प्रकारसे संगवसें वा धर्मकी कामना से पृथक् २ वसें क्योंकि पृथक् रहने से धर्म बढ़ता है तिससे पृथक् २ करना धर्मके अर्थ होताहै ॥

ता० । इसप्रकार नहींकिया है विभाग जिन्होंने ऐसेभाई सह (इकट्ठे) वसें—अथवा धर्मकीकामनासे पृथक् २ वसें क्योंकि पृथक् २ रहनेसे धर्मकी वृद्धिहोतीहै अर्थात् पांचमहायज्ञआदिका करना

पृथक् २ होताहै तिससे विभाग का करना धर्म के अर्थ है क्योंकि बृहस्पति ने इसे वचनसे यहकहा है कि यदि सबभाइयों का पाक एकस्थानमें होताहो और इकट्ठे वसतेहोयँ तो पितर और देवताओं का पूजन एकहोता है—और विभाग होनेपर वही पंचयज्ञादि पूजन घर २ में पृथक् २ होता है—यहांपर संग्रहकारने यहकहाहै कि[2] पुत्र, पिता के धनको विभागसे स्व (अपना) करलेते हैं अर्थात् विभागसे उसमें पुत्रोंका स्वत्व होजाताहै और स्वत्वहोनेसे अग्निहोत्रआदि कर्म जो धर्मके अनुकूल हैं वे पृथक् प्रवृत्त होते हैं इससे इस मनुके वचनमें भी धर्मपदसे अग्निहोत्रआदि धर्मकी वृद्धिकाभी ग्रहण है—यहसंग्रहकार का कथन ठीकनहीं है क्योंकि पिता के धनमें पुत्रोंकास्वत्व जन्मसेही होता है इससे विभागसे पहिले भी वेद और धर्मशास्त्रोक्त कर्मकरने का पुत्रोंको अधिकारहै इससे धर्मपद से पंचयज्ञरूपही धर्मका ग्रहण है—और जैसे गुणवाले जेठेभाई की सम्मतिपूर्वक संगमें वसैं वैसाही उसका सत्कार ज्येष्ठभाई करै क्योंकि इसे[3] वचन से यहकहाहै कि जो जेठाभाई छोटे भाइयों का तिरस्कार करै वह विभागका भागीनहींहोता और राजाको दंडनीय होता है १११ ॥

अथ उद्धृत विभाग प्रकरणम् ॥

ज्येष्ठस्याविंशउद्धारःसर्वद्रव्याच्चयद्वरम्। ततोर्द्धंमध्यमस्यस्यात्तुरीयंतुयवीयसः ११२ ॥

प० । ज्येष्ठस्य विंशः उद्धारः सर्वद्रव्यात् च यत् वरं ततः अर्द्धं मध्यमस्य स्यात् तुरीयं तु यवीयसः ॥

यो० । ज्येष्ठस्यविंशः चपुनः सर्वद्रव्यात् यद्द्रव्यं वरं (श्रेष्ठं) तत् उद्धारः स्यात्-ततः अर्द्धं मध्यमस्य—यवीयसः तुरीयं (चतुर्थभाग) उद्धारः स्यात् ॥

भा० । ता० । इकट्ठे द्रव्यमें से पृथक् निकासकर बीसवां भाग अथवा सब द्रव्यों में जो उत्तमहो वह ज्येष्ठ को दे और उससे आधा (चालीसवां भाग) और उससे छोटे का चौथा भाग (अस्सीवां भाग) देकर जो शेष धन बचै उसको सब भाई समान अंशकरके बांट लें ११२ ॥

ज्येष्ठश्चैवकनिष्ठश्चसंहरेतांयथोदितम्। येऽन्येज्येष्ठकनिष्ठाभ्यांतेषांस्यान्मध्यमंधनम् ११३

प० । ज्येष्ठः च एव कनिष्ठः च संहरेतां यथोदितं ये अन्ये ज्येष्ठकनिष्ठाभ्यां तेषां स्यात् मध्यमं धनम् ॥

यो० । ज्येष्ठः चपुनः कनिष्ठः यथोदितं (पूर्वश्लोकोक्तं उद्धारं) संहरेतां (गृह्णीयातां) ये ज्येष्ठ कनिष्ठाभ्यां अन्ये तेषां मध्यमं धनं स्यात् ॥

भा० । ता० । जेठा और सबसे छोटा ये दोनों पूर्व श्लोक में कहे हुये उद्धार को ग्रहणकरैं और ज्येष्ठ कनिष्ठसे अन्य जो मध्यम हैं उनका मध्यम धन होता है और उनमें भी मध्यमकी ज्येष्ठ और कनिष्ठताकी अपेक्षा को न करके मध्यमको उक्त चालीसवां भाग दे—यह श्लोक इसलिये है कि मध्यमों को अवान्तर ज्येष्ठता और कनिष्ठताका भाग नहीं देना ११३ ॥

---

१ एकपाकेनवसतांपितृदेवद्विजार्चनम्। एकंभवेद्विभक्तानांतदेवस्याद्गृहेगृहे ॥
२ कियतस्वंविभागेन पुत्राणांपितृकंधनम् । स्वत्वेसतिप्रवर्त्ततेतस्माद्धर्म्या:पृथक्क्रियाः ॥
३ योलोभाद्विनिकुर्वीतज्येष्ठोभ्रातॄन्यवीयस ।:सोज्येष्ठःस्यादभागश्चनियंतव्यश्चराजभिः ॥

सर्वेषांधनजातानामाददीताग्र्यमग्रजः।यच्चसातिशयंकिंचिद्दशतश्चाप्नुयाद्वरम् ११४

प० । सर्वेषां धनजातानां आददीत अग्र्यं अग्रजः यत् च सातिशयं किञ्चित् दशतः च आप्नुयात् वरम् ॥

यो० । अग्रजः सर्वेषां धनजातानां अग्र्यं (मुख्यं) चपुनः यत् किंचित् सातिशयं (अत्युत्तमद्रव्यं) आददीत (गृह्णीयात)चपुनः दशतः (गवादिपशुभ्यः) वरं (श्रेष्ठं) आप्नुयात् (लभेत)

भा० । सब धन में से मुख्य धन—और एक जो मुख्य द्रव्यहो—और दश पशु में से मुख्य पशु—इनको जेठा भाई ग्रहण करै ॥

ता० । सब प्रकारके धन समुदायमें जो श्रेष्ठ धनहो उस धनको और जो कोई वस्तु एकभी बहुमूल्य की हो उसको जेठाभाई ग्रहण करले और इसी गौतमके वचनानुसार दश गोआदि पशुओं में से जो उत्तम पशुहो वह भी जेठेभाई को प्राप्तहोता है—यह विषम विभाग भी तभी करना जब जेठाभाई गुणवान्हो और इतर निर्गुण हों और यदि सब समान गुणी होयँ तो इस प्रकार विभाग करें कि ११४ ॥

उद्धारोनदशस्वस्तिसम्पन्नानांस्वकर्मसु । यत्किंचिदेवदेयंतुज्यायसेमानवर्द्धनम् ११५ ॥

प० । उद्धारः न दशसु अस्ति संपन्नानां स्वकर्मसु यत् किञ्चित् एव देयं तु ज्यायसे मानवर्द्धनम् ॥

यो० । स्वकर्मसु संपन्नानां—दशसु उद्धारः न अस्ति ज्यायसे (ज्येष्ठाय) यत्किंचित् एव मानवर्द्धनं देयं भ्रातृभिः इति शेषः ॥

भा० । यदि सब छोटे भाई अपने २ कर्मों में सम्पन्न होयँ तो पूर्वोक्त दश पशुओं में से एक पशु का उद्धार जेठे भाई को न दे किन्तु जेठेभाई को मान बडाई के लिये यत् किञ्चित् वस्तु दे दें ॥

ता० । दश पशुओं में से एक मुख्य पशुका जो उद्धार जेठाभाई को कहा है वह उस समय नहीं होता जिस समय अध्ययन और अपने२ कर्मों में कनिष्ठ भ्राता सम्पन्नहों परन्तु उस समय भी जेठे भाई को यत्किञ्चित् द्रव्यमानके लिये देना—इससे यह सिद्धभया कि सम गुणवान् भ्राताओं में उद्धार नहीं होता किन्तु [illegible] होता है जब जेठाभाई सबसे उत्तम गुणवान् हो ११५ ॥

एवंसमुद्धृतोद्धारेसमानंशान्प्रकल्पयेत् । उद्धारेऽनुद्धृतेत्वेषामियंस्यादंशकल्पना ११६ ॥

प० । एवं समुद्धृतोद्धारे समान् अंशान् प्रकल्पयेत् उद्धारे अनुद्धृते तु एषां इयं स्यात् अंशकल्पना ॥

यो० । एवं समुद्धृतोद्धारे (धने) समान अंशान प्रकल्पयेत (कुर्यात्) अनुद्धृते उद्धारे सति तु इयं अंशकल्पनास्यात् ॥

भा० । ता० । जिसधनमेंसे पूर्वोक्त बीसवांभागआदिका उद्धार होचुकाहो उसमेंसे जेठाभाई सब भाइयों के समान भागकरदे—और यदि बीसवांभागआदि उद्धार नहींकियाहोय तो इसप्रकार भागों की कल्पना करे कि ११६ ॥

एकाधिकंहरेज्ज्येष्ठःपुत्रोऽध्यर्द्धंततोऽनुजः।अंशमंशंयवीयांसइतिधर्मोव्यवस्थितः११७

प० । एकाधिकं हरेत् ज्येष्ठः पुत्रः अध्यर्द्धं ततः अनुजः अंशं अंशं यवीयांसः इति धर्मः व्यवस्थितः॥

यो० । ज्येष्ठःपुत्रः एकाधिकं (अंशं) हरेत्—ततः अनुजः अध्यर्द्धं हरेत्—यवीयांसः (कनिष्ठाः) अंशं अंशं हरेयुः—इति धर्मः व्यवस्थितः—अस्ति ॥

---

१ दशतःपशूनाम् ॥

भा० । ता० । ज्येठाभाई एक अधिक अंश(भाग)ग्रहणकरै अर्थात् दोभागले—और उससे छोटाभाई डेढ़भाग ग्रहणकरै और इतर छोटेभाई एक २ भाग ग्रहणकरैं यहधर्म की व्यवस्था है—और यह भी विषम विभाग तभी होताहै ज्येठा और उसका अनुज विद्याआदि गुणोंसे सम्पन्नहों और कनिष्ठभाई निर्गुणहों—ज्येठे और उससे छोटेको अधिकदान कहाहै ॥

इस मनुग्रन्थ में कोई यह दोषदेते हैं कि पहिले मनुजीने इसी नवमअध्याय के १०४ ऊर्ध्वंपितुश्च, इसश्लोकमें सबभाइयोंका समानविभाग कहाहै और पुनः यहां आकर यह विषमविभाग कहा कि ज्येठेभाई को बीसवां उद्धारआदि ग्रहणकरना—और याज्ञवल्क्यऋषिने भी व्यवहाराध्यायके ११७ वें श्लोकमें यहकहाहै कि यदि पिता विभागकरै तो अपनीइच्छासे करै अथवा ज्येठेभाईको श्रेष्ठभाग दे अथवा सबको समान अंशदे—इससे सर्वोत्तम मनुजी के और याज्ञवल्क्य के ग्रंथ में यह पूर्वापर विरोध प्रतीत होता है—इसमें मिताक्षराकार ने यहसमाधान दिया है कि यह विषमभाग शास्त्रदृष्ट भी है तथापि लोकविरुद्ध अर्थात् अप्रचलित होनेसे नहींकरना क्योंकि इसे वचनसे यहकहा है कि लोकविरुद्धकर्मको इससे न करै कि स्वर्गका देनेवाला नहींहोता—जैसे वेदपाठी के लिये महानबैल अथवा समान अज(बकरा) दे इसे वचनसे बैल और अजका विधानभी है तथापि लोकविरुद्ध होनेसे कोई नहींकरता—और इसीप्रकार इसे वचनसे गवालम्भन कहाहै कि मित्रावरुण देवताओं की गौ और वशाका आलम्भनकरै—तथापि लोकविरुद्धसे कोई नहींकरता और न करना भी अपनी इच्छासे नहींहै किन्तु इसे वचनसे निषिद्धहै कि जैसे कलियुगमें नियोगधर्म और अनुबन्ध्या(गौ)कावध नहींहोताइसी प्रकार उद्धार विभाग भी नहींहोता—और आपस्तम्बऋषिने भी इन वचनोंसे पहिले समविभाग कह कर फिर सबधनका स्वामी ज्येठेको कहकर यहकहा है कि सुवर्ण कालीगौ और कृष्णभूमिका पदार्थये सबज्येठे भाईके होतेहैं—और पिताका भाग रथहोताहै और सब घरके पात्र—और भूषण और ज्ञातिसे मिला धनस्त्रीके भागहोतेहैं—इसप्रकार उद्धार विभागको दिखाकर यह कहाहै कि उद्धार विभाग शास्त्र में निषिद्ध है और मनुजी भी आगे उद्धार विभागका निषेधकहेंगे कि यहां सामान्य विधिहै कि पुत्रों का दायका विभागकरै—तिससे शास्त्र दृष्ट भी विषम विभागको लोक और श्रुतिके विरोधसे न करै—इससे सब भाई समानही विभागकरैं—क्योंकि योगीश्वर याज्ञवल्क्यऋषिने भी व्यवहाराध्यायके इसे श्लोक ११९ में यह कहाहै कि यदि पिता न्यूनाधिकभागसे पुत्रोंका विभागकरै तो धर्मानुकूलहोय तो ठीक है क्योंकि पिताका कियाहुआ वह विभाग विभागहै अर्थात् पिताचाहै किसी पुत्रपर प्रसन्न होकर अधिक देदे परंतु पिताके मरे पीछे वा जीवतेहुये उद्धार विभागकरना ठीक नहीं है—और यही बात इन दोनों बृहस्पति और नारदके वचनोंसे प्रतीत होती है—पुत्रोंके जो भाग पिताने सम न्यून

१ अस्वर्ग्यंलोकविद्विष्टंधर्ममप्याचरेन्नतु ॥
२ महोक्षंवामहाजंवाश्रोत्रियायोपकल्पयेत् ॥
३ मैत्रावरुणींगांवशामनुबंध्यामालभेत ॥
४ यथानियोगधर्मोनोनानुबन्ध्यावधोपिवा । तथोद्धारविभागोपि नैवसंप्रतिवर्तते ॥
५ जीवनपुत्रेभ्योदायंविभजेत्समं—ज्येष्ठंदायादएक.—सुवर्णकृष्णागावः कृष्णंभौमंज्येष्ठस्य- पितुःपरीभांडंच—गृहेलंकारोभार्यायाज्ञातिधनंचेत्येके—तच्छास्त्रैर्विप्रतिषिद्धम् ॥
६ शक्तस्यानीहमानस्यकिंचिद्दत्वापृथक्क्रिया । न्यूनाधिकविभक्तानांधर्म्यःपितृकृतःस्मृतः ॥
७ समन्यूनाधिकाभागा.पित्रायेषांप्रकल्पिताः । तथैवतेपालनीया.विनेयास्तेस्युरन्यथा ॥
पित्रैवतुविभक्तायेसमन्यूनाधिकैर्धनैः । तेषांसएवधर्म्यःस्यात्सर्वस्यहिपिताप्रभुः ॥

वा अधिक करदिये हैं उन भागोंको पिताकी आज्ञाके अनुसार पुत्रमानें न मानें तो दंड देने योग्य होतेहैं–जो सम न्यून अधिक भागसे पिताने पृथक् २ पुत्रोंको करदिया है उन पुत्रोंको वही धर्म के अनुकूल मानना क्योंकि पिता सबका प्रभु(स्वामी)है अर्थात् यदि पिता ज्येष्ठ आदि पुत्रोंमेंसे किसी को श्रेष्ठभाग दंदे तो अन्यभाई पश्चात्ताप नकरें और यदि समान भागही पिताकरदे तो ज्येष्ठ आदि पश्चात्ताप न करें क्योंकि पिताने जो किया वह धर्म्य (धर्मके अनुकूल) होताहै–और बौधायनऋषि ने भी इसँ वचनसे समही विभाग कहा है कि पुत्रोंको दाय का विभागकरे क्योंकि वह पिताका धन अविशेषतासे सबका अंशहै क्योंकि इसँ श्रुतिमें विशेषता नहीं सुनीजाती है केवल पुत्रोंका विभाग करनाही कहा है–और गौतम वशिष्ठ नारदऋषियोंने भी इनँ वचनोंसे क्रमसे यह कहा है कि दो भाग ज्येष्ठ के और अन्य पुत्रोंका एक २ होताहै–अब भाइयोंका दायभाग कहते हैं कि दोभाग गौ और अश्व ज्येष्ठभाई ले–और दशमभाग और अजा और भेड़ और घर छोटाभाई ले–लोहा और घर की सामग्री मध्यम भाई ले–ज्येठे को अधिक भागदे और छोटे को भी उत्तम भागदे और सब को समान भागदे–और विना विवाही भगिनीको भी समान भागदे–अर्थात् उक्त तीनों ऋषियोंने उद्धार के विनाही विषम विभाग कहा है और यदि पिता अपनी इच्छासे सम विभागकरै तो अपनी पत्नियोंको भी पुत्रोंके समान भागदे क्योंकि याज्ञवल्क्यऋषिने इसँ वचनसे यह कहाहै कि जो पिता सब पुत्रोंके समान भागकरै तो अपनी उनस्त्रियोंको भी समान भागदे जिनको पति वा श्वशुरसे स्त्रीधन न मिलाहो–अर्थात् जो पिता श्रेष्ठ भाग आदि से पुत्रोंका विभागकरै तो भी उद्धार शेष धनमें से पत्नियोंको पुत्रोंके समान भागदे और जो पत्नियोंका ज्येष्ठ भाग आदि है उसको न दे–और उद्धार न दे अर्थात् सम विभागकरै तोभी समभाग स्त्रियोंको दे–और स्त्रीका जो उद्धार कि (परीभांड (भोजन पात्र आदि) भूषण) कहा है उसका विचार आगे करेंगे–इस विषयमें कोई यह शंकाकरतेहैं कि उद्धार और अनुद्धार दोनों पक्षोंमें भी मिताक्षरामें स्त्रियोंका जब समान अंश विज्ञानेश्वरने कहा तब–यदि कुर्यात्–इसवचनमें सम अंशका अनुवाद व्यर्थ है क्योंकि इतनाही कहना ठीकहोता कि पत्नियोंको ज्येष्ठभाग नहीं देना–तो पत्नियोंको अंशके अभाव का अनुवाद प्रतिपादन के लिये यह कथन है–फिर पत्न्यः कार्याः समांशिकाः यह कथन है इससे कोई दोष नहीं है ११७ ॥

स्वेभ्योंऽशेभ्यस्तुकन्याभ्यःप्रदद्युर्भ्रातरःपृथक्।स्वात्स्वादंशाच्चतुर्भागंपतिताःस्युरदित्सवः ११८

प० । स्वेभ्यः अंशेभ्यः तुँ कन्याभ्यः प्रदद्युः भ्रातरः पृथक् स्वात् स्वात् अंशात् चतुर्भागं पतिताः स्युः अदित्सवः ॥

यो० । भ्रातरः स्वेभ्यः अंशेभ्यः स्वात् स्वात् अंशात् चतुर्भागं कन्याभ्यः पृथक् प्रदद्युः अदित्सवः पतिताः स्युः पतिताः भवन्तीत्यर्थः ॥

---

१ पुत्रेभ्योदायंव्यभजेत्इतिसोंशःसर्वेषामविशेषात् ॥

२ पुत्रेभ्योदायंव्यभजेत् ॥

३ द्व्यंशीवापूर्वजःस्यादेकैकमितरेषाम्–अथभ्रातॄणांदायभागोद्व्यंशंहरे ज्ज्येष्ठो गवाश्वस्यचात्रदशममजावयोगृहंचकनिष्ठस्यकार्ष्णायसंगृहोपकरणानिमध्यमस्य–ज्येष्ठस्यांशाधिकोदेयःकनिष्ठस्यवरःस्मृतः । समांशभाजःशेषाःस्युरप्रत्ताभगिनीस्तथा॥

४ यदिकुर्यात्समानंशान्पत्न्यःकार्याःसमांशिकाः । नदत्तंस्त्रीधनंयासांभर्त्रावाश्वशुरेणवा ॥

भा० । सबभाई अपने २ अंशों की अपेक्षासे और अपने २ अंश में से चौथाई भाग पृथक् २ करके कन्याओंको अर्थात् पिताकी पुत्रियों को दानकरदें यदि न दें तो पतित होते हैं ॥

ता० । ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र-ये चारोंभाई अपनी २ जातिकी अपेक्षा अपने २ भागों में से चार २ भागोंको पृथक्करके अर्थात् ब्राह्मणसे ब्राह्मणी आदि चारोंवर्णोंकी स्त्रियों में पैदाहुये चारों पुत्र अपने २ भागमेंसे चौथाभाग कन्याओंको पृथक् २ दें अर्थात् जो जिसकी भगिनीहो वहीलड़का अपनी भगिनीको अपने भागमेंसे विवाह के लिये चौथाभाग देदे-और यदि भगिनियोंके संस्कारके लिये चौथाभाग न दियाचाहैं तो पतित होतेहैं क्योंकि याज्ञवल्क्यऋषिने इस[1] वचनसे यह कहा है जिन भाई भगिनियों का विवाह नहीं हुआ उनका विवाह वे लड़के अपने भागमेंसे चतुर्थांश देकर करें-इससे यह बात जाननी कि जो सजातीय दूसरी मातासे पैदाहुई भगिनीहोय तो सोदरभगिनीको चौथाभाग अवश्य दे ॥

और पूर्वोक्त याज्ञवल्क्यके श्लोककी मिताक्षरामें तो यह लिखा है कि पिताके मरे पीछे विभाग करनेवाले पुत्र समुदायके द्रव्यसे भाइयोंका विवाह करें-और अपने अंशमेंसे चौथाभागदेकर विना विवाही भगिनियोंका भी विवाहकरें-इससे यह बात स्पष्ट है कि पिताके मरे पीछे लड़की भी अंश भागिनी होतीहैं परंतु उसमें यह अर्थ नहीं कि सबभाई पृथक् २ कियेहुये अपने २ भागमेंसे चौथा२ भाग कन्याओंको दें किंतु जिस जातिकी कन्याहो उसी जातीकी स्त्रीमें पैदाहुये पुत्रका चौथाभाग देना-अर्थात् जो कन्या ब्राह्मणी की पुत्रीहोय तो ब्राह्मणी के पुत्रका जितना भाग होताहै उससे चौथाई उस कन्याका भाग होताहै-जैसे कि जिस पुरुषकी एक ब्राह्मणीही स्त्रीहो और एकपुत्र और एकही कन्याहो वहां सबधनके दोभाग करै और दो भागोंमेंसे एक भागकी चौथाई कन्याकोदे और शेष सातभाग पुत्र ग्रहणकरै-यदि दो पुत्र एक कन्याहोय तो तीन भागोंमें से चौथाभाग कन्याको देकर शेष द्रव्यको दोनों भाई आधा २ ग्रहणकरैं-यदि एक पुत्र और दो कन्याहोंय तो सब द्रव्यके तीन भागोंमेंसे एकभाग के दोभाग दोनों कन्याओंको देकर शेष दशभाग पुत्र ग्रहणकरै इसीप्रकार सजातीय सम विषम भाई और भगिनियों में समझना-और यदि ब्राह्मणी का पुत्र एकहो और क्षत्रियकी कन्या एक होय तो तब पिताके धनके सातविभाग करै और क्षत्रिया स्त्रीके पुत्रके तीनभागोंको चारभागकरके चौथाभाग कन्याको देकर शेष धनको ब्राह्मणीका पुत्र ग्रहणकरै-जो ब्राह्मणीके पुत्र दो होंय और क्षत्रियाकी कन्या एक--तो-पिताके धनके एकादश ११ भागकरै उनमेंसे क्षत्रिया पुत्रके तीन भागोंके चारभागोंमेंसे चौथाई भाग कन्याको देकर शेष धनको ब्राह्मणी का पुत्र ग्रहण करै-इसीप्रकार भिन्न जातिकी पुत्रियोंमें विभागको समझना-और यह व्याख्यान ठीक नहीं है कि संस्कारमात्रही कन्याको दे क्योंकि मनुजी के इसी वचनसे चौथाभाग देना प्रतीत होताहै और इस वचनका अर्थ यह है कि ब्राह्मण आदि भाई-ब्राह्मण आदि भगिनियोंको अपनी २ जाति के भागों मेंसे जो एक भाग है उसका चौथाभाग कन्याओंको दें-कुछ अपनेभागमेंसे चौथाई दें यह अर्थ नहीं है यदि न दें तो पतित होतेहैं इससे देनेकी आवश्यकता प्रतीत होती है-इसमें कोई तो यह कहते हैं कि चौथाभाग देना अविवक्षित (कहना इष्ट नहीं) है किंतु विवाह के योग्य धन देनाही इष्ट है-वह ठीक नहीं है क्योंकि मनु और याज्ञवल्क्य दोनों स्मृतियोंमें चतुर्थ भाग देनेकी अविवक्षामें कोई

१ असंस्कृतास्तुसंस्कार्याभ्रातृभिःपूर्वसंस्कृतैः ॥ भगिन्यश्चनिजादंशाद्दत्वांशंतुतुरीयकम् ॥

प्रमाणनहींहै और न देनेमें पापको भी कहाहै—कोई यह कहते हैं कि भागदेनाही अभीष्ट मानोगे तो जिसकन्याके बहुतभाईहोंगे उसको बहुतधनमिलेगा और जिसके बहुतभगिनीहोंगी वहनिर्धनहोजाय-गा— इसका समाधान तो इस उक्त रीतिसे करदिया कि अपने एक भागमें से चौथाई भाग दें शेष धनको पुत्र ग्रहण करें—इससे मिताक्षरा का तो यह सिद्धान्त है कि एक भागमेंसे चौथाभाग कन्या को दें, और व्यासजीने भी इसे वचनसे यह कहा है कि जो विना विवाहे लड़का और लड़की हैं उन सबका विवाह पिता के धनमें से विवाहे हुये भाई विधिपूर्वक करें—और नारद ऋषिने इसे वचनसे यह कहा है कि जो पिता का धन न होय तो अपनेही धनमें से विवाह आदि संस्कारकरें— अर्थात् संस्कारके उपयोगी द्रव्य दें—और बृहस्पति जी ने भी इसे वचनसे यह कहा है कि भाइयों का समानभाग और कन्याओंका चौथाई भाग होता है—और कात्यायन ऋषिने तो इसे वचनसे यह कहा है कि विना विवाही कन्याओं का चौथाभाग और पुत्रोंके तीनभाग इष्ट हैं यदि धन अ-ल्पहोय तो दोनों का समानभाग होता है—और स्मृतिचन्द्रिकाकारने तो इसे देवल ऋषिके वचना-नुसार विवाहके योग्य द्रव्यदेनाही कन्याओं को लिखा है ॥

इसमें वीरमित्रोदयकार का यह सिद्धान्त है कि कन्याओं को पिता के द्रव्यमें से पुत्रों के एक भाग में से चौथाईभाग देना और विवाहके योग्य धन उससे पृथक्देना—क्योंकि इसे शंख वचनसे यह प्रतीत होता है कि जब पिताके धनका विभागहो तब कन्याको भूपण और विवाहके योग्य स्त्री धन मिले और इसी शंख वचनका पराशरस्मृतिकी टीका में विद्यारण्य श्रीचरणने यह अर्थ किया है कि पितृधनके विभाग करते समय कन्या अपने धारण किये हुये अलंकारों को प्राप्त होती हैं— और यदि विवाहके योग्यही धन पिता के धनमें से कन्याओं को मिले तो पूर्वोक्त देवल वचनमें धन के वाची वसुशब्दका पुनः प्रयोग व्यर्थ होजायगा—इससे पिता के धनमें से पूर्वोक्त भाग और विवाहके योग्य धन ये दोनोंही कन्याको देने—तिससे पिताके जीवते हुये विभाग में कन्या भी पिताके द्रव्यकी अंशभागिनी होती हैं—और विभागसे पहिले जो कुछपितादे वही उनकोमिलताहै॥

इस विपयमें जीमूतवाहनने तो यह कहा है कि इस मनुके और पूर्वोक्त याज्ञवल्क्य ऋषिके वचन से भगिनियोंको इससे चौथा अंश नहीं कहा कि उनको पिताके धनका अनधिकार है—क्योंकि अन-धिकारी को दूसरा भाई अपने अंशसे दे यह कहना असम्भव है और उसका अधिकार है तो वह अ-पने बलसे स्वयं लेसका है—तिसी प्रकार कन्याओं को चौथे अंशके बलसे लेने में अधिकार नहीं है—और न वे बलसे लेसकी हैं किन्तु न देने से भाइयों को दोप है इससे उनको चौथा अंशदेना— यह जीमूतवाहनका द्राविडी प्राणायाम, विचित्ररूप अर्थ प्रयोजक नहीं है—क्योंकि पुत्रोंके विभाग में पिताकी इच्छा कारण है और पुत्रोंके विभागके समयभी ज्येठेभाई को उद्धार भी लिखा है—और

---

१ असंस्कृतास्तुयेतत्रपैतृकादेवतद्धनात् । संस्कार्याभ्रातृभिर्ज्येष्ठैः कन्यकाश्चयथाविधिः ॥

२ अविद्यमानेपित्र्यर्थेस्वांशादुद्धृत्यवापुनः । अवश्यंकार्याःसंस्काराभ्रातृभिःपूर्वसंस्कृतैः ॥

३ समांशाभ्रातरस्तेषांचतुर्थांशाश्चकन्यकाः ॥

४ कन्यकानांत्वदत्तानांचतुर्थोभागइष्यते । पुत्राणांचत्रयोभागाःसाम्यंत्वल्पधनेस्मृतम् ॥

५ कन्याभ्यश्चपितृद्रव्यंदेयंवैवाहिकंवसु ॥

६ विभाज्यमानेदायादेकन्यालंकारवैवाहिकंचस्त्रीधनंलभेत् ॥

जो जीमूतवाहनने इसे नारदके वचनसे यह कहा है कि जिन भाइयों का संस्कार नहीं हुआ उनका संस्कार पिताके धनमें से सब भाई करें—इससे और पूर्वोक्तअविद्यमाने, इस वचनसे भाइयों काही संस्कार प्रतीत होता है कन्याओं का नहीं—यह कहना अत्यन्त लघु है क्योंकि पूर्वोक्त मनु आदिके वचनोंसे कन्याका संस्कार भी आवश्यक प्रतीत होता है—क्योंकि यदि भाई आदि भगिनियों का संस्कार न करें तो याज्ञवल्क्य ऋषिके इसे वचनसे यह प्रतीत होता है कि यदि पिता—पितामह—भाई—कुलकासम्बन्धी—माता—इनमें पूर्व २ न होय तो अग्रिम २ कन्याका दानकरै जो न करै तो ऋतु २ में भ्रूणहत्याको प्राप्त होता है इससे भाई को याज्ञवल्क्य ऋषिने भगिनी के विवाह न करने पर भ्रूणहत्याका दोष कहा है इसी वचनके अनुसार पूर्वोक्त (एषां) इस नारदके वचनमें भी एषां यह पद सामान्य में नपुंसकलिंग है अर्थात् पुत्र पुत्री सबका बोधक होने से भगिनियोंका भी संस्कार भाइयों को उचित है—और मदनरत्नकारनेभी इसे बृहस्पति वचनको पढ़कर यह अर्थ लिखा है कि जो विवाह रहित छोटे भाई हैं उनका विवाह पिता के धनमें से ज्येठे भाई करें— और इस बृहस्पतिके वचनमें भ्रातापद भगिनियों का भी उपलक्षण है—परन्तु इस सबका सिद्धान्त यह है इस वचनमें संस्कार रहित और जहां तहां अनूढानां दुहितॄणां—कन्यकानांत्वदत्तानां—इन पदों के देने से वेही भगिनी पूर्वोक्त चतुर्थांशभागिनी होती हैं जिनका विवाह न हुआ हो—और जिनका विवाह हो चुका हो उनको तो किञ्चित् मान सत्कार योग्यही धन मिलता है—इस विषयका यथार्थ विचार मातृधन के विभाग के समय करेंगे ११८ ॥

अजाविकंसैकशफंनजातुविषमंभजेत् । अजाविकंतुविषमंज्येष्ठस्यैवविधीयते ११९ ॥

प० । अजाविकं सैकशफं न जातु विषमं भजेत् अजाविकं तु विषमं ज्येष्ठस्य एव विधीयते ॥

यो० । विषमं सैकशफं अजाविकं जातु (कदाचित् अपि) नभजेत् -तु (यत) विषमं अजाविकं ज्येष्ठस्य एव विधीयते ॥

भा० । विषम अजा भेड अश्वआदि का विभाग न करें क्योंकि वे ज्येठभाईकेही होते हैं ॥

ता० । विषम अर्थात् विभागके समय समान करने के अयोग्य (जैसा कि एकघोड़ा और दोभाई हों) अजा (बकरी) भेड़—और अश्वआदि एकशफ (खुर) वालों का विभाग न करै और न उसके समान मूल्यलगाकर वा विक्रयकरके उनके मूल्यका विभागकरै—क्योंकि विषम अजा और भेड़ ज्येठे भाईकेही होतेहैं—अर्थात् ज्येठेभाई के सत्कार के लिये उनको देदे ११९ ॥

अथ नियोगप्रकरण ॥

यवीयान्ज्येष्ठभार्यायांपुत्रमुत्पादयेद्यदि।समस्तत्रविभागःस्यादितिधर्मोव्यवस्थितः१२०

प० । यवीयान् ज्येष्ठभार्यायां पुत्रं उत्पादयेत् यदि समः तत्र विभागः स्यात् इति धर्मः व्यवस्थितः

---

१ एषांतुनकृतःपित्रासंस्कारविषयःक्रमात् । कर्तव्याभ्रातृभिस्तेषांपैतृकादेवतद्धनात् ॥

२ पितापितामहोभ्रातासकुल्योजननीतथा । कन्याप्रदःपूर्वनाशेप्रकृतिस्थःपरःपरः ॥ अप्रयच्छन्समाप्नोतिभ्रूणहत्यामृतावृतौ ॥

३ असंस्कृताभ्रातरस्तु येस्युस्तत्रयवीयसः । संस्कार्याःपूर्वजैस्तेवै पैतृकान्मध्यकाद्धनात् ॥

यो० । यदि यवीयान् ज्येष्ठभार्यायां पुत्रं उत्पादयेत् तत्र विभागः समः स्यात् इतिधर्मः व्यवस्थितः (अस्ति) ॥

भा० । यदि ज्येष्ठभाई की भार्या में छोटाभाई पुत्रको उक्तनियोग विधिसे पैदाकरै तो समानविभाग (बराबर) होताहै—यही धर्मकी व्यवस्था है ॥

ता० । यदि छोटाभाई इस[1] मनुके पूर्वोक्त नियोगधर्म से कि जिस ज्येठेभाईकी स्त्रीकेपुत्रनहो उस स्त्रीके संग पुत्र कामना और गुरुकी आज्ञासे—देवर—सपिंड—वा सगोत्र—गमनकरै ज्येठेभाईकी स्त्री में पुत्रको पैदाकरै तो उसका और उसके पितृव्यआदिकों का समान विभाग होताहै—यही धर्म की व्यवस्था है—और याज्ञवल्क्यऋषिने इस[2] वचनसे यहकहाहै कि जिसपुत्रहीन मनुष्य ने अन्यकीस्त्री में पूर्वोक्त नियोगसे जो पुत्र पैदाकियाहै वह दोनोंकेधनका भागी है और दोनों (स्त्रीवाले और बीजवाले) को धर्मसे पिंडकादाता होताहै—परन्तु वही क्षेत्रज दोनोंको पिंडदेनेवाला पूर्वोक्त इस मनुवचनके अनुसार होताहै जो देवरकी स्त्रीमें इसप्रतिज्ञासे नियोगहोताहै कि जो लड़कापैदाहोगा वह दोनोंकारहा उसकोही इससे द्वयामुष्यायण कहते हैं कि उसके दोपिता होते हैं और यदि वह देवर अन्य की स्त्रीमें उसके पतिके पुत्रकेलिये प्रवृत्तहोय तो वे पुत्र क्षेत्रवालेकेही धनके स्वामी और पिंड देनेवाले होते हैं—जैसे लोकमें खेतीकेलिये जो खेत दियाजाता है—उसखेतमें पैदाहुआ अन्न, बीज और खेतवाले का तभी समान होताहै जब इसप्रतिज्ञासे[3] दियाजाय कि मेरेपास खेत है बीजनहीं तेरेपासबीजहै खेतनहीं इससे हमतुम दोनोंमिलकर खेतीकोकरें उसमें पैदाहुये फलके दोनोंस्वामी होतेहैं—और जहां यह प्रतिज्ञा नहींहोती वहां उसस्त्रीके पतिकाही पुत्रहोता है—यहीबात इस[4] वचन से मनुजी कहआयेहैं कि फलकी प्रतिज्ञाके विना क्षेत्रवालेकाही फल होता है क्योंकि बीजसे योनि बलवान् होतीहै—और यह नियोग भी मिताक्षरा में वाग्दत्ता के विषयमेंही कहाहै—और मनुजीने भी पीछे इन[5] वचनोंसे नियोगका निषेध वर्णन किया है जिनका अर्थ विस्तार से पहिले वर्णनकरचुके हैं और सामान्य अर्थ यहहै कि देवरसे वा सपिंडसे सन्तान के नाशहोनेपर नियोगधर्मसे वाञ्छितप्रजा को स्त्री पैदाकरे—और विधवामें नियुक्तमनुष्य घीकाउबटना करिके और मौनहोकर रात्रि के समय एकही पुत्रको पैदाकरै दूसरा न करै—और विवाहके मंत्रों में कहींभी नियोग नहींलिखा और न विधवा का पुनः विवाह लिखा यह नियोग पशुओं का धर्म है इससे विद्वानों ने निंदित किया है/और यह उससमय से चला है जब राजा वेन ने राज्यकिया और सम्पूर्णवर्णों को संकरकरादिया—उससे पीछे जो मनुष्य अज्ञानसे विधवास्त्रीके संग सन्तान के निमित्त नियोगसे प्रवृत्त होताहै उसकी साधुजन निंदाकरते हैं ॥

इसमें कोई यह शंकाकरते हैं कि पूर्वोक्तरीतिसे मनुने नियोगका विधान और निषेध दोनों कहे हैं इससे विकल्पहोना चाहिये—सो ठीकनहीं क्योंकि जो नियोगकरनेवालों की निंदाकहीहै और स्त्री के धर्मों में इन[6] वचनोंसे नियोगमें मनुजीनेही बहुतसे दोष वर्णनकियेहैं कि स्त्री चाहै फूल,मूल, फल

१ अपुत्रांगुर्वनुज्ञातोदेवरःपुत्रकाम्यया । सपिंडोवासगोत्रोवाघृताभ्यक्तऋतावियात् ॥
२ अपुत्रेणपरक्षेत्रेनियोगोत्पादितःसुतः । उभयोरप्यसौरिक्थी पिंडदाताचधर्मतः ॥
३ क्रियाभ्युपगमात्क्षेत्रं बीजार्थंयत्प्रदीयते । तस्येहभागिनौदृष्टौ बीजीक्षेत्रिकएवच ॥
४ फलंत्वनभिसंधाय बीजिनांक्षेत्रिणांतथा । प्रत्यक्षंक्षेत्रिणामर्थोबीजाद्योनिर्बलीयसी ॥
५ नवमअध्याय के ५९ से ६८ तक ॥
६ पांचवें अध्याय के १५७ श्लोकसे १६१ तक ॥

से अपने देहको क्षीणकरिदे परन्तु पतिके मरेपीछे दूसरे पुरुषका नाम न ले—और पतिव्रताओं ( )धर्मकी आकांक्षा करनेवाली विधवा स्त्री मरणपर्यंत क्षमा और नियमसे ब्रह्मचारिणीरहै—जो स्त्री पति के मरेपीछे ब्रह्मचर्य में टिकती है वह विनापुत्रभी इसप्रकार स्वर्ग में जाती है जैसे विनापुत्र अनेक ब्रह्मचारी गये हैं—और जो स्त्री सन्तान के लोभसे अपनेपतिका अवलंघन करती है वह इसलोक में निंदाको प्राप्तहोती है और परलोक (स्वर्ग) में भी नहींजाती—इससे जीवन और अपत्य के लोभसे परपुरुषका आश्रयलेने का स्त्रीको मनुजीने स्पष्ट निषेध किया है—सिद्धान्तयह है कि इन याज्ञवल्क्य ऋषि और मनु के वचनोंसे वाग्दत्ता (जिसकी सगाई होचुकीहो) कन्याकाही नियोग शास्त्रोक्त है—और वही जगत् में प्रचलितहै कि जिस कन्याकापति वाग्दान किये पीछे मरजाय उसकन्या को इस विधि से अर्थात् घृतका अभ्यंग और मौन धारकर देवर विवाहले—और यथाविधि उसको विवाहकर सपेदवस्त्र धारणकिये और शुद्ध उसस्त्रीको ऋतुऋतुमें एकएकवार संगकरै—इससे मनुकीविधि और निषेध इनदोनों से विकल्प मानना शास्त्र के विरुद्ध है—और नारदऋषिने भी इसे वचनसे यहकहा है क्षेत्रवालेकी अनुमतिसे जिसके क्षेत्रमें बीज सींचाजाताहै वहबीज और क्षेत्रवाले दोनोंका अपत्य होताहै—और कात्यायन और शंखलिखित ऋषियोंनेभी इनै वचनोंसे यहकहाहै कि विवाहकरनेवाले का अपत्य होताहै यह बृहस्पतिका मतहै और शुक्राचार्यका मत यहहै कि बीज और क्षेत्रवाले दोनों की अनुमतिसे जो बीज बोयाजाता है वह दोनोंका होता है—क्षेत्रवालेकी अनुमतिसे जो बीज बोया जाता है उसके भागी बीज और क्षेत्रवाले दोनों होतेहैं क्योंकि एकके विना भी फल नहींहोसक्ता है और कोई यह कहते हैं कि जीवतेहुये अन्यके क्षेत्र में जो पैदाहो उसे क्षेत्रज कहतेहैं और मरेपीछे जो अन्यकी स्त्री में पैदाहो उसे द्व्यामुष्यायण कहते हैं और यही इसेवचनसे हारीतने कहाहै—कोई यहकहते हैं कि विनाबीज क्षेत्र और विना क्षेत्र बीज नहींफलतेहैं इससे दोनोंका पुत्र—क्षेत्रज होता है—और यह क्षेत्रज इसे वचन के अनुसार श्राद्धमें दोनों पिताओंको दोपिंडदे अथवा एकही पिंडमें दोनोंका नामोच्चारणकरै—इसीप्रकार पितामह आदि और लेपभाग भुजोंमें (७ वीं पीढ़ी) पर्यंत दो २ काही उच्चारणकरै—क्योंकि आपस्तम्बऋषि ने इसे वचनसे यहकहा है कि जो दोपिताहोंय तो एक ही पिंडमें दो २ का नाम उच्चारणकरै—और नारदऋषिनेभी इसे वचनसे यहकहाहै कि द्व्यामुष्यायण पुत्र—दोनों पिताओं को पिंड और जलदें और बीज और क्षेत्रवालेके धनमेंसे आधेधनको ग्रहण करें—और बौधायनऋषिने भी इसे वचनसे यहकहाहै कि दोनों पिताओंको पिंडदानकरै और पिंड२

१ यस्याम्रियेतकन्याया वाचासत्येकृतेपति । तामनेनविधानेननिजोविन्देतदेवरः ॥ यथाविध्यधिगम्यैनांशुक्लवस्त्रांशुचिव्रताम् । मिथोभजेताप्रसवात् सकृत्सकृदृतावृतौ ॥

२ क्षेत्रिकानुमतेबीजं यस्यक्षेत्रेप्रमुच्यते । तदपत्यंद्वयोरेवबीजिकक्षेत्रिकयोर्मतम् ॥

३ क्षेत्रिकस्यमतेनापिफलमुत्पादयेन्तुयः । तस्येहभागिनौतौतुनफलार्हंविनैकतः ॥ मन्त्रसंस्कारकर्तुरपत्यमित्यांगिरसोबीजिकक्षेत्रिकयोरनुमते यद्वीजंप्रकीर्त्यते तद्द्विधास्वस्येत्युशनाः ॥

४ जीवतिक्षेत्रजमाहुरस्वातंत्र्यान्मृतेद्व्यामुष्यायणमनुप्तबीजत्वात्नाबीजंक्षेत्रंफलति नाक्षेत्रंबीजंरोहत्युभयदर्शनादुभयोरपत्यम् ॥

५ द्वौपिंडौनिर्वपेद्यद्वैकपिंडेवाद्वावनुकीर्तयेत् द्वितीयेपुत्रस्तृतीयेपौत्रोलेपिनश्चत्रीन्वाचक्षणआसप्तमात् ॥

६ यदिद्विपितास्यादेकैकस्मिन्पिंडेद्वौद्वावुपलक्षयेत् ॥

७ द्व्यामुष्यायणकादद्युर्द्वाभ्यांपिंडोदकेपृथक् । ऋक्थादर्धंसमादद्युर्बीजिक्षेत्रिकयोस्तथा ॥

८ द्विपितुःपिंडदानंस्यात् पिंडेपिंडेचनामनी । त्रयश्चपिंडाःषण्णांस्युः रेवंकुर्वन्नमुह्यति ॥

यों का नाम ग्रहणकरै पिता पितामह प्रपितामह इनछःओंको तीनही पिंडदे ऐसे करताहुआ दोष का भागी नहींहोता–अनुमतिसे जो क्षेत्रजहुआहै उसके दोगोत्र और दोपिताहोते हैं और दोनोंकेही स्वधा और धनका भागी होता है–मनुजीने भी इस वचनसे यहकहाहै कि मृत–नपुंसक–रोगी इन की स्त्रीमें जो नियोगविधिसे पैदाहो वह क्षेत्रजपुत्र होताहै–सिद्धांतयहहै कि क्षेत्रज दोप्रकारकाहोता है एक द्विपितृक–और दूसरा क्षेत्रिकपितृक–अर्थात् एकके दोनोंपिता होते हैं और एकका वही पिता होताहै जिसकी स्त्रीमें पैदाहुआहो १२० ॥

उपसर्जनंप्रधानस्यधर्मतोनोपपद्यते । पिताप्रधानंप्रजनेतस्माद्धर्मेणतंभजेत् १२१ ॥

प० । उपसर्जनं प्रधानस्य धर्मतः न उपपद्यते पिता प्रधानं प्रजने तस्मात् धर्मेण तं भजेत् ॥

यो० । उपसर्जनं (अप्रधानंक्षेत्रजः) प्रधानस्य (क्षेत्रिणः) धर्मतः न उपपद्यते धर्मपुत्रो न भवतीत्यर्थः अर्थात् पितृधर्मेण सोद्धारभागी नभवति–प्रजने (उत्पत्तौ) पिता (क्षेत्री) प्रधानं भवति- तस्मात् तं धर्मेण (पूर्वोक्तरूपेण) भजेत् (विभजेत्)– उद्धारस्तस्मैनदेयइत्यर्थः ॥

भा० । ज्येठे भाईका गौण (क्षेत्रज) पुत्र धर्म से नहीं होता है और क्षेत्रवाला पिताही उत्पत्ति में प्रधानहोता है तिससे उस क्षेत्रज का विभाग पितृव्यके संग धर्म से (समान) करै अर्थात् उद्धार विभाग न दे ॥

ता० । जो ज्येठेभाईका क्षेत्रज पुत्रहो उसको पिताकेसमान उद्धार विभाग नहींमिलता इसलिये यहवचन है जो उपसर्जन (गौण) क्षेत्रजपुत्रहै वह प्रधान (ज्येठेभाई) का धर्मसे पुत्रनहीं होताहै इसीसे उद्धार विभाग का भागी नहींहोताहै और क्षेत्रवाला पिताभी स्त्रीकेद्वारा अपत्य के उत्पादन में प्रधान होताहै तिससे पूर्वोक्त समानभागसेही उसको भागदे अर्थात् आधा पितृव्यको और आधा क्षेत्रजपुत्रको दे–यहवचन भी पूर्ववचनकाही शेष है १२१ ॥

पुत्रःकनिष्ठोज्येष्ठायांकनिष्ठायांचपूर्वजः । कथंतत्रविभागःस्यादितिचेत्संशयोभवेत् १२२ ॥

प० । पुत्रः कनिष्ठः ज्येष्ठायां कनिष्ठायां च पूर्वजः कथं तत्र विभागः स्यात् इति चेत् संशयः भवेत् ॥

यो० । ज्येष्ठायां स्त्रियां कनिष्ठः पुत्रः चपुनः कनिष्ठायां पूर्वजः (ज्येष्ठः) पुत्रः भवेत् तत्र विभागः कथं स्यात् इतियदि संशयःभवेत् तर्हि ॥

भा० । ता० । यदि प्रथम विवाही स्त्री में कनिष्ठ (छोटा) पुत्रहो और पीछे विवाही स्त्री का पुत्र ज्येठा होय और वहां यह सन्देह होय कि माताके विवाह क्रमसे ज्येष्ठता होती है कि जन्मके क्रमसे और उनके धनका विभाग भी कैसे होय तो १२२ ॥

एकंवृषभमुद्धारंसंहरेतसपूर्वजः । ततोऽपरेज्येष्ठवृषास्तदूनानांस्वमातृतः १२३ ॥

प० । एकं वृषभं उद्धारं संहरेत सः पूर्वजः ततः अपरे ज्येष्ठवृषाः तदूनानां स्वमातृतः ॥

यो० । सः पूर्वजः एकं वृषभं उद्धारं संहरेत (गृह्णीयात्) स्वमातृतः तदूनानां मध्ये ये अपरे पुत्राः ते अज्येष्ठवृषाः भवन्ति– ज्येष्ठवृषभोद्धारं न लभंते इत्यर्थः प्रत्येकं एकैकभागग्राहिणो भवन्तीत्यर्थः ॥

भा० । पूर्वोक्त ज्येठी स्त्री का पुत्र एक वृषभके उद्धार को ग्रहणकरै और अपनी २ माताके क्रम से जो उससे कनिष्ठ हैं वे एक वृषभ उद्धार के भागी नहीं होते ॥

---

१ यस्तल्पजःप्रमीतस्यक्लीवस्यव्याधितस्यच । स्वधर्मेणनियुक्तायां सपुत्रःक्षेत्रजःस्मृतः ॥

ता० । वह प्रथम विवाहीहुई स्त्री में पैदाहुआ पुत्र कनिष्ठ (छोटा) भी है तथापि एक वृषभ (बैल) का उद्धार ग्रहणकरै उससे अन्य जो अपनी २ माताके क्रमसे ज्येष्ठा के पुत्रसे ऊन (छोटे) हैं वे सब ज्येष्ठभाई को जो एक वृषभका उद्धार मिलता है उसके भागी नहीं होते हैं अर्थात् एक २ भागकेही भागी होते हैं—इससे माताके क्रमसेही ज्येष्ठता होती है जन्म क्रमसे नहीं होती है १२३ ॥

ज्येष्ठस्तुजातोज्येष्ठायांहरेद्वृषभषोडश । ततःस्वमातृतःशेषाभजेरन्नितिधारणा १२४ ॥

प० । ज्येष्ठः तु जातः ज्येष्ठायाँ हरेत् वृषभषोडशं ततः स्वमातृतः शेषाः भजेरन् इति धारणा ॥

यो० । ज्येष्ठायां पत्न्यांजातः ज्येष्ठः वृषभषोडश (१६ गाः) उद्धारं हरेत् ततः शेषाः स्वमातृतः धनं भजेरन् इति धारणा (शास्त्रनिश्चयः) अस्ति ॥

भा० । ता० । प्रथम विवाही हुई स्त्री में पैदाहुआ जो सबभाइयों में ज्येठा पुत्र है—वह एक है वृषभ (बैल) जिनमें ऐसी सोलह गौओं का उद्धार ग्रहणकरै अर्थात् पन्दरह गौ और एक बैल ग्रहण करै—और उससे कनिष्ठ जो शेष भाई हैं वे अपनी अपनी माताओं के अनुसार धनका विभाग करैं—यही शास्त्रका निश्चय है १२४ ॥

सदृशस्त्रीषुजातानांपुत्राणामविशेषतः।नमातृतोज्यैष्ठ्यमस्तिजन्मतोज्यैष्ठ्यमुच्यते१२५॥

प० । सदृशस्त्रीषुजातानां पुत्राणां अविशेषतः न मातृतः ज्यैष्ठ्यं अस्ति जन्मतः ज्यैष्ठ्यं उच्यते ॥

यो० । सदृशस्त्रीषुजातानां पुत्राणां अविशेषतः मातृतः ज्यैष्ठ्यं न अस्ति किन्तु जन्मतः ज्यैष्ठ्यं उच्यते ॥

भा० । सजातिय स्त्रियों में पैदाहुये पुत्रों को जातिकी विशेषता न होने से माताके क्रमसे ज्येष्ठता नहीं है—किन्तु जन्मसेही ज्येष्ठता है अर्थात् वही ज्येष्ठ भाई कहा जाता है जो पहिले जन्मा है ॥

ता० । जो पुत्र सजातीय स्त्रियोंमें पैदाहुये हैं उनमें कोई जातिकी विशेषता नहीं है इससे माता के क्रमसे उनमें ज्येष्ठ व्यवहार नहीं होता किन्तु जन्मसेही ज्येष्ठ व्यवहार ऋषियोंने कहा है—और उनही जन्म ज्येष्ठाओं को पूर्वोक्त वीसवांभाग उद्धार मिलना चाहिये—यहां यह विरोध प्रतीत होता है कि पहिले माताके क्रमसे ज्येष्ठताका विधान किया और यहां आनकर उसी ज्येष्ठताका निषेध किया अब किस वचनके अनुसार ज्येष्ठता मानकर पूर्वोक्त उद्धार, कौनसे ज्येठ भाई को दियाजाय अर्थात् ज्येठी पत्नी के कनिष्ठ पुत्रको दियाजाय वा छोटी पत्नीके ज्येष्ठ पुत्रको दियाजाय—इस विरोध का परिहार इस रीतिसे करना कि जैसे मीमांसा में इन वचनों से षोडशी का ग्रहण और अग्रहण दोनों विधान किये हैं—अर्थात् षोडशी (मन्त्र विशेष) का ग्रहण करना और न ग्रहण करना दोनों कहे हैं—कि एक वचन तो अतिरात्र (अर्द्धरात्र) में षोडशी के उच्चारण करने को कहता है और एक न करने को ॥

इसी प्रकार यहांपरभी जो पूर्वोक्त ज्येष्ठताका विधान और निषेध है—वे इस प्रकार विकल्प की व्यवस्थासे योग्य समझने कि यदि ज्येठी पत्नी का कनिष्ठपुत्र गुणवान्हो और छोटी पत्नीका ज्येष्ठ पुत्र निर्गुण होय तो ज्येठी के पुत्रको ज्येष्ठता समझनी—और यदि छोटी पत्नीका ज्येष्ठपुत्र गुणवान् होय और बडी पत्नीका कनिष्ठपुत्र निर्गुण होय तो छोटी पत्नीके पुत्रको ज्येष्ठता समझनी अर्थात् गुणसेही गुरुता और निर्गुणसे लघुता समझी जाती है इसीसे बृहस्पतिने इस वचनसे यह कहा है[1]

---

१ जन्मविद्यागुणज्येष्ठोत्र्यंशंदायादवाप्नुयात् ॥

कि जो जन्म विद्या गुण इन तीनों से ज्येष्ठ है वही दायके तीसरे अंश को प्राप्त होता है—अर्थात् विद्याकी अधिकतासेही जन्मसे ज्येष्ठ को तीसराभाग, उद्धार, कहा है और निर्गुणको एक वृषभ उद्धार और मन्दगुणीको सोलह वृषभ उद्धार कहे हैं ये दोनों पिछले उद्धार मातृक्रमसे ज्येठे के लिये हैं—मेधातिथिने तो माताके क्रमसे ज्येष्ठता का अनुवाद कहा है—और गोविन्दराजने दोनों को वही ज्येष्ठता कही है जो वर्णन की गई है १२५॥

जन्मज्येष्ठेनचाह्वानंस्वब्राह्मण्यास्वपिस्मृतम्। यमयोश्चैवगर्भेषुजन्मतोज्येष्ठतास्मृता १२६

प० । जन्मज्येष्ठेन च आह्वानं स्वब्राह्मण्यासु अपि स्मृतं यमयोः च एव गर्भेषु जन्मतः ज्येष्ठता स्मृता ॥

यो० । स्वब्राह्मण्यासु अपि जन्मज्येष्ठेन आह्वानं ऋषिभिः स्मृतं चपुनः गर्भेषु यमयोः ज्येष्ठता जन्मतः मन्वादिभिः स्मृता ॥

भा० । स्वब्राह्मण्या मन्त्रों में भी जन्म से ज्येठेकोही इन्द्रका आह्वान करना कहा है और गर्भ में जो एकवार दोभाई वसते हैं उनमें भी उसी को ज्येष्ठता कही है जो पहिले जन्मा है ॥

ता० । स्वब्राह्मण्या एक मन्त्र है ज्योतिष्टोमयज्ञमें इन्द्रके आह्वान के लिये पढ़ाजाता है उस ज्योतिष्टोमयज्ञमें वही ज्येठापुत्र पिताके समीप बैठकर इन्द्रका आह्वान (बुलाना) करता है जिसका जन्म पहिले हुआहो—और एकसमय गर्भसे जन्मेहुये जो यम (जोडियापुत्र) हैं उनमें भी उसी की ज्येष्ठता मनुआदिकोंने कही है जिसका जन्म प्रथम हुवा हो १२६ ॥

अथ पुत्रिकाप्रकरणम् ॥

अपुत्रोऽनेनविधिनासुतांकुर्वीतपुत्रिकाम्। यदपत्यंभवेदस्यांतन्ममस्यात्स्वधाकरम् १२७

प० । अपुत्रः अनेन विधिना सुतां कुर्वीत पुत्रिकां यत् अपत्यं भवेत् अस्यां तत् मम स्यात् स्वधाकरम् ॥

यो० । अपुत्रः—यत् अस्यां अपत्यं भवेत् तत् मम स्वधाकरंस्यात् अनेन विधिना सुतां पुत्रिकां कुर्वीत—अनेन पुत्रिकाधर्मेणैवसुतायाविवाहं कुर्यात् ॥

भा० । पुत्रहीन मनुष्य इस विधिसे अपनी लडकीको पुत्रिकाकरै कि इसमें जो संतानहो वह मेरे भी श्राद्ध आदि का कर्ता होगा ॥

ता० । नहीं है पुत्र जिसके ऐसा मनुष्य इस विधिसे अपनी पुत्री को पुत्रिका धर्म से विवाहै अर्थात् जामाताके संग कन्यादानके समय यह प्रतिज्ञाकरले कि जो लडका इस कन्याकेहो वह मेरी स्वधा (और्ध्वदैहिकश्राद्धआदि) करनेवालाहोगा—और वह प्रतिज्ञा वशिष्ठजीने इस वचनसे इसप्रकार करनी लिखी है कि जिसकेभाई नहीं है ऐसी इनभूषणवस्त्रोंसे शोभित इसकन्याको इसलियेदेताहूं कि इसमें जो पुत्रहोगा वह मेरापुत्रहोगा—अर्थात् कन्यादानसे प्रथमयह संवित् (पण) करनेपरहीपुत्रि-

१ अभ्रातृकांप्रदास्यामितुभ्यंकन्यामलंकृताम् । अस्यांयोजायतेपुत्रःसमेपुत्रोभवेदिति ॥

का होतीहै और गौतम ऋषिने भी इसे वचनसे यह कहाहै कि संतानहीन पिता इससंवादसे पुत्रिका को देदे कि मेरेलिये अपत्य (संतान) को पैदाकरना—और कोई तो यह कहतेहैं कि पूर्वोक्त प्रतिज्ञा के विनाभी मनके संकल्पसे कन्याके दानकरनेसे पुत्रिका होती है क्योंकि ब्रह्मपुराणमें इने वचनोंसे यह कहाहै कि अपुत्रमनुष्यने जो कन्या मनसे पुत्रवत् (तुल्य) करलीहै अथवा गर्भसे पहिले राजा अग्नि बांधवोंके सामने पुत्रिकाकरलीहै—वा शुल्क लेकर जो पिताने वरको दी है—अथवा पिताके मरे पीछे माताने जो दीहै वह कन्या भी पुत्रिका जाननी—वह कन्या पिताके दायमेंसे समान (तुल्य) भागको प्राप्त होती है—और इसे वचनसे वशिष्ठजीने दूसरापुत्र पुत्रिकाको कहा है १२७ ॥

अनेनतुविधानेनपुराचक्रेऽथपुत्रिकाः । विवृद्ध्यर्थंस्ववंशस्यस्वयंदक्षःप्रजापतिः १२८

प० । अनेनं तुं विधानेनं पुरां चक्रे अथं पुत्रिकाः विवृद्ध्यर्थं स्ववंशस्यं स्वयं दक्षः प्रजापतिः ॥

यो० । दक्षः प्रजापतिः पुरा अनेन (पूर्वोक्तेन) विधानेन स्ववंशस्य विवृद्ध्यर्थं स्वयं पुत्रिकाः चक्रे ॥

भा० । ता० । दक्षप्रजापतिने भी पहिले समयमें इसही पूर्वोक्त विधिसे अपनेवंशकी विशेष वृद्धि के लिये पुत्रिकाओंको किया अर्थात् संपूर्ण साठकीसाठ ६० लड़की पुत्रिकाकरलीं १२८ ॥

ददौसदशधर्मायकश्यपायत्रयोदश । सोमायराज्ञेसत्कृत्यप्रीतात्मासप्तविंशतिम् १२९

प० । ददौ सः दशं धर्माय कश्यपाय त्रयोदशं सोमाय राज्ञे सत्कृत्यं प्रीतात्मा सप्तविंशतिम् ॥

यो० । प्रीतात्मा सः दक्षः धर्माय दश—कश्यपाय त्रयोदश—सोमाय राज्ञे सप्तविंशतिं सत्कृत्य ददौ (दत्तवान्) ॥

भा० । ता० । होनेवाले पुत्रिका पुत्रके लाभसे प्रसन्नहै मन जिसका ऐसे उस दक्षप्रजापति ने दश कन्या धर्म को और त्रयोदश १३ कन्या कश्यप ऋषिको और राजा सोमको सप्तविंशति (सत्ताईस) वस्त्र भूषण आदि से सत्कारकरके दी—यह सत्कारकरके देना अन्य मनुष्योंके भी पुत्रिका करने में प्रमाण है १२९ ॥

यथैवात्मातथापुत्रःपुत्रेणदुहितासमा । तस्यामात्मनितिष्ठन्त्यांकथमन्योधनंहरेत् १३० ॥

प० । यथां एवं आत्मां तथां पुत्रः पुत्रेणं दुहिता समा तस्यां आत्मनि तिष्ठंत्यां कथं अन्यः धनं हरेत् ॥

यो० । यथा आत्मा तथा एव पुत्रः भवति दुहिता पुत्रेण समा भवति आत्मनि तस्यां तिष्ठंत्यां सत्यां अन्यः (पितृव्यादिः) धनं कथं हरेत (गृह्णीयात्) ॥

भा० । ता० । जैसा अपना आत्माहै वैसाही पुत्र है क्योंकि इसे मंत्रसे पुत्रको आत्मा कहा है—और दुहिता (लड़की) भी पुत्रके समान होती है क्योंकि वह भी अपनेअंगोंसे उत्पन्न होती है इससे उस लड़की के विद्यमान होते अपुत्रके धनको अन्य किसप्रकार लेसक्ता है १३० ॥

मातुस्तुयौतकंयत्स्यात्कुमारीभागएवसः । दौहित्रएवचहरेदपुत्रस्याखिलंधनम् १३१

---

१ पितोत्सृजेत्पुत्रिकामनपत्योमदर्थमपत्यमितिसंवाद्य ॥

२ अपुत्रेणातुयाकन्यामनसापुत्रवत्कृता । राजाग्निबांधवेभ्यश्चसमक्षंवापिकुत्रचित् ॥ प्रागार्भमथवाशुल्कयुक्तापित्रावराय वा । मृतेपितरिवादत्तासाविज्ञेयातुपुत्रिका ॥ पित्र्यादंशात्समंभागंलभतेतादृशीसुता ॥

३ द्वितीयःपुत्रःपुत्रिकैव ॥

४ आत्मावैपुत्रनामासि ॥

प० । मातुः तु यौतकं यत् स्यात् कुमारीभागः एव सः दौहित्रः एव च हरेत् अपुत्रस्य अखिलं धनम् ॥

यो० । यत् मातुः यौतकं स्यात् सः कुमारीभागः एव भवति–चपुनः अपुत्रस्य अखिलं धनं दौहित्रः एव हरेत् ॥

भा० । जो माताका यौतक धनहै वह कुमारी काही भाग है और अपुत्रमातामहके संपूर्ण धनको दौहित्रही ग्रहणकरै ॥

ता० । माताका जो यौतक धनहै वह कुमारी (विना विवाही) कन्याकाही भागहोताहै–यौतक वह धनहोताहै जो विवाहके समय एकआसनपर मिलकर बैठेहुये वधू और वरके समयमें कन्याको बांधव देतेहैं क्योंकि युत शब्दका (युमिश्रणामिश्रणयोः)–इस धातुसे मिलेहुये यह अर्थ लेते हैं और उन युतोंका जो धन उसे यौतक कहते हैं अर्थात् उक्त मिलने के समय माताको प्राप्तहुआ जो धन वह माताका यौतक होताहै–कोई तो युत शब्दका यह अर्थ करते हैं कि इस[1] श्रुतिके अनुसार विवाह के समय स्त्री और पुरुषका एक शरीर होनेसे मिश्रता होती है अर्थात् अस्थियों के संग अस्थि और मांसोंके संग मांस और त्वचाके संग त्वचा दोनोंके परस्पर एक होजाते हैं और कोई यह कहते हैं कि इस[2] मंत्रके अनुसार दोनोंका हृदय एक होजाता है कि जो तेरा (स्त्रीका) हृदय है वह मेरा हो और जो मेरा हृदय है वह तेरा हो–सिद्धांत यह है कि दोनोंकी एकता होनेमें कोई संदेह नहीं है–और कुमारी शब्दसे विना विवाही कन्याका ग्रहण है क्योंकि इस[3] गौतम ऋषिके वचनके अनुसार यह प्रतीत होताहै कि स्त्री धन उनही लड़कियोंका होताहै जो विना विवाही–और अप्रतिष्ठित हैं और पुत्रसे रहित उक्त मातामह (नाना) के संपूर्ण धनको दौहित्र (पुत्रीका पुत्र) ही ग्रहण करै–इसका विभाग स्त्री धनके विभाग में भलीप्रकार किया जायगा १३१ ॥

दौहित्रोह्यखिलंरिक्थमपुत्रस्यपितुर्हरेत् । सएवदद्याद्द्वौपिण्डौपित्रेमातामहायच १३२ ॥

प० । दौहित्रः हि अखिलं रिक्थं अपुत्रस्य पितुः हरेत् सः एव दद्यात् द्वौ पिंडौ पित्रे मातामहाय च ॥

यो० । दौहित्रः अपुत्रस्य पितुः अखिलं धनं हरेत् सः एव (दौहित्रः एव) पित्रे (जनकाय) चपुनः मातामहाय द्वौ पिंडौ दद्यात् ॥

भा० । दौहित्रही पुत्रहीन अपने पिताके भी धनको ग्रहणकरै और वही दौहित्र अपने पिता और मातामह (नाना) को दो पिंड दे ॥

ता० । यहां दौहित्र शब्दसे पुत्रिकाका पुत्र लेना क्योंकि उसकाही प्रकरणहै उसको मातामहके धनका ग्रहण तो पीछे कहा है और अपने जनकका धन ग्रहण और जनकको पिंडदान के लिये इस वचनका आरंभहै–क्योंकि पिता शब्दसे जनककाही सर्वत्र ग्रहण होताहै–जो मनुष्य अन्यकी पुत्रिकाका पुत्र है वह अपने उस जनक (पिता) के धनको ग्रहण करै और पिंडदे जिसके अन्य पुत्रनहो और वही पिता और मातामह को दो पिंडदे–और पिंडदेना भी श्राद्धका उपलक्षण है अर्थात् दोनों

---

१ अस्थिभिरस्थीनिमांसैर्मांसानित्वचात्वचं–संदधामि ॥

२ यदेतद्धृदयंतवतदस्तुहृदयंममयदेतद्धृदयंममतदस्तुहृदयंतव ॥

३ स्त्रीधनंदुहितॄणामप्रत्तानामप्रतिष्ठितानाम् ॥

के निमित्त पार्वण आदि श्राद्धकरै यह वचन इस शंकाकी निवृत्ति के लिये है कि पौत्रिकेय (पुत्रिका का पुत्र) होनेपर पिताके धनका ग्रहणकरना और पिताको पिंडदेना न होना चाहिये १३२ ॥

पौत्रदौहित्रयोर्लोकेनविशेषोऽस्तिधर्मतः । तयोर्हिमातापितरौसंभूतौतस्यदेहतः १३३

प० । पौत्रदौहित्रयोः लोके न विशेषः अस्ति धर्मतः तयोः हि मातापितरौ संभूतौ तस्य देहतः ॥

यो० । पौत्रदौहित्रयोः लोके कश्चन विशेषः न अस्ति—हि (यतः) तयोः (पौत्रदौहित्रयोः) मातापितरौ (पुत्रदुहितरौ) तस्य (पितुः) देहतः संभूतौ (उत्पन्नौ) ॥

भा० । ता० । पौत्र(पोता वा नाती)और दौहित्र (पुत्रीकापुत्र) इनमें कुछ भी विशेषता जगत्में नहीं है क्योंकि इनदोनोंके पिता और माता (पुत्रऔरदुहिता) उसमनुष्यके देहसेही उत्पन्नहुयेहैं १३३ ॥

पुत्रिकायांकृतायांतुयदिपुत्रोऽनुजायते।समस्तत्रविभागःस्याज्ज्येष्ठतानास्तिहिस्त्रियाः१३४

प० । पुत्रिकायां कृतायां तु यदि पुत्रः अनुजायते समः तत्र विभागः स्यात् ज्येष्ठता न अस्ति हि स्त्रियाः ॥

यो० । यदिपुत्रिकायां कृतायां सत्यां पुत्रः अनुजायते तत्र (तदा) समः विभागः स्यात् हि (यतः) स्त्रियाः ज्येष्ठता नाऽस्ति ॥

भा० । ता० । यदि पुत्रिका करनेके अनन्तर पुत्रिकाकरनेवालेके पुत्रहोजाय तो उनदोनोंपुत्रिका और पुत्र का सम (बराबर) विभागहोनाहै और पुत्रिकाको उद्धार नहींदेना—क्योंकि ज्येठीभी उस पुत्रिकाको उद्धारदेने के लिये ज्येष्ठता नहींहोती—अर्थात् वह पुत्रीकी ज्येष्ठता उद्धार में माननेयोग्य नहीं है १३४ ॥

अपुत्रायांमृतायांतुपुत्रिकायांकथंचन । धनंतत्पुत्रिकाभर्ताहरेतैवाविचारयन् १३५ ॥

प० । अपुत्रायां मृतायां तु पुत्रिकायां कथंचन धनं तत्पुत्रिकाभर्ता हरेत एव अविचारयन् ॥

यो० । कथंचन पुत्रिकायां अपुत्रायां मृतायां सत्यां तत्पुत्रिकाभर्ता एव अविचारयन् सन् धनं हरेत् ॥

भा० । ता० । यदि पूर्वोक्त पुत्रिका—पुत्रके होनेसे प्रथमही मरजाय तो उसपुत्रिका का पतिही विचारको छोडकर अर्थात् निश्शंकहोकर धनको ग्रहणकरै—यहवचन इसलिये है कि पुत्रिका पुत्रके समान होती है इससे पत्नी और पुत्ररहित मृतक के धनका ग्रहण पिताको पाया, उसको न मिलै पुत्रिकाके भर्ता को मिलै १३५ ॥

अकृतावाकृतावापियंविन्देत्सदृशात्सुतम् । पौत्रीमातामहस्तेनदद्यात्पिण्डंहरेद्धनम् १३६

प० । अकृता वा कृता वा अपि यं विंदेत् सदृशात् सुतम् पौत्री मातामहः तेन दद्यात् पिंडं हरेत् धनम् ॥

यो० । अकृता वा कृता पुत्रिका सदृशात् (सजातीयात्पत्युः) सकाशात् यं सुतं विंदेत् (लभेत्) तेन पुत्रेण मातामहः पौत्री (पौत्रवान) भवति—अतः सः पौत्रः मातामहाय पिंडं दद्यात्—धनंहरेत् ॥

भा० । पुत्रिकाकीहुई वा न कीहुई लडकी अपने सजातीय पतिसे जिसपुत्रको पैदाकरै उस पुत्री के पुत्रसे मातामह पौत्रवाला होता है इससे वह पौत्र मातामहको पिंडदे और उसके धनको ग्रहणकरै ॥

ता० । पुत्रिका दोप्रकारकी होती है १ अकृता—२ कृता—जो वरको इसपूर्वोक्त प्रतिज्ञासे न दीजाय कि इसकन्याको इसलियेदेताहूं कि जो इसके पुत्रहोय वहमेरी स्वधाकरनेवालाहो—वहपुत्रिका अकृता होती है क्योंकि गौतमऋषिने इस वचनसे यहकहाहै कि मनमें अभिसंधि (विचार) मात्र से भी किन्हींऋषियों के मतसे पुत्रिका होती है—और जो पूर्वोक्त प्रतिज्ञासेही कीजाय वहकृता होती है—इसीसे जिसके भाई पितानहों उसकन्याके विवाहका पुत्रिकाधर्मकी शंकासे मनुजीही इस वचन से निषेधकर आयेहैं कृता वा अकृता (की वा नकी) पुत्रिका अपनी समानजातिके पतिसे जिसपुत्र को पैदाकरै उस दुहिताके पुत्रसेही मातामह पौत्रवाला होताहै तिससे यहपुत्र मातामह को पिंडदे और उसके धनको ग्रहणकरै—गोविंदराज तो यहकहतेहैं कि अकृता दुहिता वह होती है जो पुत्रिका धर्मसे न विवाहीहो उसका भी पुत्र मातामहके धनमें मातामही (नानी) होते भी वैसाही अधिकारी है जैसा पुत्रिका का पुत्रहोता है यह गोविंदराजका कथनठीकनहींहै क्योंकि पुत्रिकाको पुत्रके तुल्य कहाहै—पुत्रिका और अपुत्रिका जब तुल्यनहींकही तो उनदोनोंके पुत्रतुल्य कदाचित् भी नहीं होसक्ते १३६ ॥

पुत्रेणलोकान्जयतिपौत्रेणानन्त्यमश्नुते। अथपुत्रस्यपौत्रेणब्रध्नस्याप्नोतिविष्टपम् १३७ ॥

प० । पुत्रेण लोकान् जयति पौत्रेण आनंत्यं अश्नुते अथ पुत्रस्य पौत्रेण ब्रध्नस्य आप्नोति विष्टपम् ॥

यो० । मनुष्यः पुत्रेण लोकान जयति पौत्रेण आनंत्यं अश्नुते अथ पुत्रस्य पौत्रेण (प्रपौत्रेण) ब्रध्नस्य (सूर्यस्य) विष्टपं (लोकं) आप्नोति ॥

भा० । ता० । मनुष्य पैदाहुयेपुत्रसे स्वर्गआदिलोकोंको जीतताहै अर्थात् प्राप्तहोताहै औरपौत्रकी उत्पत्तिसे आनंत्यको भोगता है अर्थात् चिरकालतक स्वर्गमें वसता है और पुत्रका पौत्र (प्रपौत्र) होनेपर सूर्यलोक को प्राप्तहोता है इसपुत्रकी प्रशंसा का वर्णन दायभाग प्रकरण में इसलिये है कि पत्नीआदि के विद्यमान रहते भी पुत्रकाही पिताके धनमें अधिकार है अन्यका नहीं है १३७ ॥

पुन्नाम्नोनरकाद्यस्मात्त्रायतेपितरंसुतः । तस्मात्पुत्रइतिप्रोक्तःस्वयमेवस्वयंभुवा १३८ ॥

प० । पुन्नाम्नः नरकात् यस्मात् त्रायते पितरं सुतः तस्मात् पुत्रः इति प्रोक्तः स्वयं एव स्वयंभुवा ॥

यो० । यस्मात् सुतः पुन्नाम्नः नरकात् पितरं त्रायते तस्मात् स्वयम्भुवा स्वयं एव पुत्रः इति प्रोक्तः (कथितः) ॥

भा० । ता० । जिसकारण से पुत्र अपने पिताकी—पुं—नाम नरकसे रक्षाकरताहै तिससे स्वयंही महान् उपकारक होनेसे ब्रह्माने पुत्र कहा है और इसपुत्र शब्दकाही अर्थ इसलिये कहाहै कि वह पुं (मनुष्य) की सन्तानही दायकाभागी होतीहै जो पुं—नरकसे रक्षाकरती है १३८ ॥

पौत्रदौहित्रयोर्लोकेविशेषोनोपपद्यते। दौहित्रोऽपिह्यमुत्रैनंसंतारयतिपौत्रवत् १३९ ॥

प० । पौत्रदौहित्रयोः लोके विशेषः न उपपद्यते दौहित्रः अपि हि अमुत्र एनं सन्तारयति पौत्रवत् ॥

यो० । लोके पौत्रदौहित्रयोः कश्चन विशेषः न उपपद्यते—यतः दौहित्रः अपि एनं (मातामहं) पौत्रवत् अमुत्र (परलोके) सन्तारयति ॥

---

१ अभिसंधिमात्रात्पुत्रिकामेकेषाम् ॥

२ यस्यास्तुनभवेद्भ्रातानविज्ञायेतवापिता । नोपयच्छेततांप्राज्ञःपुत्रिकाधर्मशंकया ॥

भा० । ता० । जगत् में पुत्रिका का पुत्र—और पौत्र इनदोनोंका कुछ विशेष नहीं है क्योंकि दौहित्र भी अपने मातामह (नाना) को परलोकमें पौत्रके समान निस्तारता है—यहवचन इसलिये है कि पुत्रिका का पुत्र पौत्र के समान है और पुत्रिका के किये पीछे पैदाहुये पुत्रकेसंग धनमेंतुल्य भागका अधिकारी होता है १३९ ॥

मातुःप्रथमतःपिण्डंनिर्वपेत्पुत्रिकासुतः।द्वितीयन्तुपितुस्तस्यास्तृतीयंतत्पितुःपितुः१४०॥

प० । मातुः प्रथमतः पिंडं निर्वपेत् पुत्रिकासुतः द्वितीयं तु पितुः तस्याः तृतीयं तत्पितुःपितुः ॥

यो । पुत्रिकासुतः प्रथमतः मातुः पिंडं द्वितीयं पिंडं तस्याः (मातुः) पितुः (मातामहाय) तृतीयंपिंडं तत्पितुःपितुः (मातुः पितामहाय) निर्वपेत (दद्यात्) ॥

भा० । ता० । पुत्रिका का पुत्र पहिला पिंड माताको—दूसरापिंड माताके पिताको—तीसरा पिंड माताके पिताके पिताको—दे—और अपने पितादिकों को तो—पित्र मातामहायच इसक्रम से दे अर्थात् दोनोंपक्षों के पितरों को पिंडदे १४० ॥

अथ दत्तकप्रकरणम् ॥

उपपन्नोगुणैःसर्वैःपुत्रोयस्यतुदत्त्रिमः।सहरेतैवतद्रिक्थंसंप्राप्तोऽप्यन्यगोत्रतः१४१॥

प० । उपपन्नः गुणैः सर्वैः पुत्रः यस्य तु दत्त्रिमः सः हरेत एव तद्रिक्थं संप्राप्तः अपि अन्यगोत्रतः ॥

यो० । यस्य (पुरुषस्य) सर्वैः गुणैः उपपन्नः दत्त्रिमःपुत्र. भवेत् अन्यगोत्रतः संप्राप्तः अपि स. (दत्तक) एव तद्रिक्थं (धनं) हरेत ॥

भा० । जिस मनुष्य का दत्तकपुत्र सम्पूर्ण गुणोंसे युक्तहो वहचाहे अन्यगोत्रसेभी प्राप्तहो तथापि उसके दाय को ग्रहण अवश्यकरे ॥

ता० । आगे मनुजी द्वादशविध पुत्रोंको धनके भागी कहेंगे और औरस और क्षेत्रजपुत्रके अभाव में दत्तकको भी धनकाभागी कहेंगे—परन्तु यहवचन इसलिये है कि औरसपुत्र के विद्यमान होतेभी विद्याआदि गुणोंसे युक्त दत्तकभी पिताके दायकाभागी होताहै—जिसमनुष्यका दत्तकपुत्र पढ़नाआदि गुणोंसे सम्पन्नहो चाहे वहदत्तक अन्यगोत्रसे भी आयाहो तोभी पिताके दायका भागी होता है इसी वचन से औरसपुत्रकोही पिताके धनका स्वामी है और सबसे उत्तमकहाहै इससे औरसकेसंग दत्तक पुत्रका समभाग उचित नहीं है किंतु क्षेत्रजआदिको जो षष्ठअंश का भागी कहा है उतनेही अंशका भागी दत्तकभी होताहै—गोविंदराज तो यहकहतेहैं कि औरस और क्षेत्रजपुत्रके अभावमेंही सर्वगुणों से संयुक्त दत्तक पिताके धनका भागी होताहै इसलिये यहवचन है—यह गोविंदराज का कथन ठीक नहींहै क्योंकि कृत्रिमआदि पुत्र तो निर्गुण भी पिता के धनके भागीहों और उनसे पूर्व भी द्वादश पुत्रों में पढ़ा (लिखा) हुआ दत्तक वही पिताके धनकाभागीहो जो सबगुणोंसे संयुक्तहो—यह महा अन्याय है १४१ ॥

---

१ अतएवौरसःपुत्रःपित्र्यस्यवसुनःप्रभुः ॥

गोत्ररिक्थेजनयितुर्नहरेद्दत्त्रिमःक्वचित्। गोत्ररिक्थानुगःपिण्डोव्यपैतिददतःस्वधा १४२

प० । गोत्ररिक्थे जनयितुः नँ हरेत्ँ दत्त्रिमः क्वचित्ँ गोत्ररिक्थानुगः पिण्डः व्यपैति ददतः स्वधाँ॥

यो० । दत्त्रिमः सुतः क्वचित् अपि जनयितुः गोत्ररिक्थे न हरेत् पिंडः गोत्ररिक्थानुगः भवति–पुत्रं ददतः पुरुषस्य स्वधा व्यपैति (नश्यति) ॥

भा० । ता० । दत्तकपुत्र अपने जनक (पैदाकरनेवाले) पिताकेगोत्र और धनको नहींप्राप्तहोता और पिंड, गोत्र और दायका अनुगामी होताहै अर्थात् जिसके गोत्र और धनको ग्रहणकरताहै उस-कोही पिंड दियाजाताहै–इससे जो मनुष्य अपने पुत्रको किसी अन्यको देदेताहै उसके उसपुत्र के किये स्वधा (श्राद्ध पिंडदानआदि) नष्ट होजाते हैं ॥

सबसे पहिले इसदत्तकप्रकरण में यह निर्णय कर्तव्य है कि किसविधिसे लियाहुआ दत्तकपुत्र पुत्रके करनेयोग्य कर्मों का अधिकारी होताहै–और दत्तक लेने का हेतु क्या है– कि कौन ले वा दे-सक्ताहै–और कैसा पुत्र लियाजाताहै–दत्तकपुत्रके लेनेमें हेतु तो यहहै कि अत्रिऋषिने इस¹ वचनसे यहकहा है कि जो मनुष्य पुत्रहीन है वह पिंड और जलदान और और्ध्वदेहिक क्रियाके लिये जिस किसीसे प्रयत्नपूर्वक पुत्रका प्रतिनिधि करै अर्थात् दत्तकपुत्र ग्रहणकरै और शौनकऋषि ने भी इस² वचनसे यहकहा है कि पुत्रहीनहो वा जिसके पुत्र मरगयेहों वहपुत्रके लिये उपवासकरके दत्तकलेने की विधि से दत्तकपुत्रले–और इस³ श्रुतिमें यहकहा है कि पैदाहोतेही ब्राह्मणपर ऋषि देवता पितर इनतीनों के क्रमसे ये ३ तीनऋणहोतेहैं कि ब्रह्मचर्य–यज्ञ–प्रजा–और वही ऋणसे रहित होता है जो ब्रह्मचारी–यज्ञकाकर्ता–और पुत्रवान् होताहै–इससे पितरोंके ऋणकी निवृत्तिके लिये पुत्रहीन मनुष्यको दत्तकपुत्रका लेना आवश्यकहै–और मनुजीनेभी इस⁴ वचनसे यहकहा है कि माता पिता जिसपुत्रको आपत्ति के समय दें वहदत्तक होता है और अपरार्कग्रन्थ में आपत्तिपदसे लेनेवाले के पुत्रका न होना लिया है और मिताक्षराकारने तो आपत्तिपदसे दुर्भिक्षआदिका ग्रहणकियाहै इससे आपत्तिके विना पुत्रको नदे–और इस⁵वचनसे कात्यायनऋषिने भी यहकहाहै कि आपत्तिकेही समय पुत्रकादान और विक्रयकरै और अन्यथा न करै यहशास्त्र का निश्चय है–और मनुजीभी इस⁶ वचन से दत्तकपुत्र के लेने में पिंड जल क्रिया इनको और नामकोहेतु कहेंगे कि–पुत्रहीनमनुष्य जैसे तैसे पुत्रको पिंड जल क्रिया और नाम कीर्त्तन (लेना या प्रसिद्धि)के लिये पुत्रका ग्रहणकरै–और इस⁷ श्रुतिमें यहकहा है कि पुत्रहीनको स्वर्गलोकही नहींहोता–सिद्धान्त यह है कि तहां २ श्रुति स्मृति पुराणआदिकों में पुत्रकेलेने की आवश्यकता पिंडआदि के लिये वर्णनकी है इससे दत्तकपुत्र लेना आवश्यक है–पुत्रके लेने में हेतुओं का वर्णनकरके जो लेसक्ता है उसका वर्णनकरतेहैं कि ॥

---

१ अपुत्रेणैवकर्तव्यःपुत्रःप्रतिनिधिःसदा । पिंडोदकक्रियाहेतोर्यस्मात्तस्मात्प्रयत्नतः ॥

२ अपुत्रोमृतपुत्रोवा पुत्रार्थंसमुपोष्यच ॥

३ जायमानोवैब्राह्मणस्त्रिभिःऋणवान्जायतेब्रह्मचर्येणऋषिभ्यः यज्ञेनदेवेभ्यःप्रजयापितृभ्यःएषवाअनृणोयःपुत्रीयज्वा ब्रह्मचारीच ॥

४ मातापितावादद्यातांयमद्भिःपुत्रमापदि ॥

५ आपत्कालेतुकर्तव्यंदानंविक्रयएववा । अन्यथानप्रकर्तव्यमितिशास्त्रविनिश्चयः ॥

६ अपुत्रेणसुतःकार्योयादृक्तादृक्प्रयत्नतः । पिंडोदकक्रियाहेतोर्नामसंकीर्त्तनायच ॥

७ नापुत्रस्यलोकोस्ति ॥

दत्तकपुत्रको पुरुषही लेसकाहै स्त्री नहींलेसकी क्योंकि पूर्वोक्त अत्रि शौनकआदि के वचनों में—अपुत्रः—यहपुरुषका बोधक पुल्लिंगही शब्दपढाहै इससे स्त्रीको पतिकी आज्ञाके विना दत्तकलेने का अधिकार नहींहै क्योंकि वसिष्ठऋषि ने इस वचनसे यहकहाहै कि स्त्री न तो पुत्रको भर्ताकी आज्ञा के विना दे और न ले इसका प्रयोजन यहहै कि यदि दैववश से पति दत्तकपुत्रको न लेसकाहो और मरने के समय अपनी स्त्रीको आज्ञादेजाय तो स्त्री का लियाहुआ वहदत्तक भर्ताकाभी पुत्र होसक्ता है इसीसे इस सत्यापाढसूत्रमें इतने पुत्रोंको दोगोत्रों का सम्बन्ध कहाहै—कि सहोढ (जो विवाहके समय कन्याकेगर्भमेंहो) क्षेत्रज—कृत्रिम—पुत्रिकापुत्र स्त्रीद्वारज (जोस्त्रीकेद्वारापतिकादत्तकपुत्रहो) आसुरआदि विवाहसे विवाहीहुई स्त्रीकापुत्र—और जो कन्या यज्ञकी दक्षिणामें मिलीहो उसकन्या का पुत्र—इससे स्पष्ट प्रतीत होताहै कि स्त्रीको भी दत्तकलेनेका अधिकार पतिकी आज्ञासेहै अन्यथा स्त्रीद्वारज पुत्रका होना असम्भव है—कदाचित् कोई कहै कि दत्तकपुत्रलेने की विधिमें इस वचनसे शौनकऋषि ने यहकहाहै कि व्याहृतियोंसे होमकरके जिसके बांधव समीपहों उसपुत्र को इस मंत्र से ग्रहणकरै इससे पुरुषही होमको करसक्ता है और लेनेके उक्त मंत्रको पढसक्ता है अतएव पुरुषही लेसक्ता है स्त्रीको मंत्र और होम करने में अधिकार नहीं है इससे स्त्रीको दत्तकलेनेका अधिकार नहीं है—यहशंका ठीक नहीं है क्योंकि शौनक ऋषिने अपनी पद्धतिमें आचार्यका वरण कहा है इससे आचार्यके द्वारा स्त्री भी होमको करसक्ती है और दत्तकलेनेके मंत्रको भी पढसक्ती है अन्यथा शूद्रको होम और मंत्रका अनधिकारहोनेसे दत्तकपुत्रके लेनेका अधिकार न होगा—यह बात संबंध तत्त्वमें लिखी है—तिससे जिस किसी प्रयत्न से पुत्रका प्रतिनिधि औरसपुत्रके न होनेसे अवश्य करना—और वे पुत्रके प्रतिनिधि यद्यपि ग्यारह प्रकार के पुत्र होते हैं—तथापि दत्तकहीका लेना शास्त्रोक्तहै क्योंकि कलियुग में इस बृहस्पतिके वचन से इतर पुत्रोंका करना निषिद्ध है कि जो पहिले ऋषियोंने अनेकप्रकारके पुत्र किये हैं उनको शक्ति हीन अबके मनुष्य नहीं करसक्ते और शौनकऋषिने भी दत्तक और औरससे इतरपुत्रोंका इस वचन से ग्रहणकरना निषेध किया है और पाराशर ऋषिने भी यह वर्णन किया है कि कलियुग में औरस—क्षेत्रज—दत्तक—और कृत्रिम—येही पुत्र होते हैं इन चारोंमें कलियुग में नियोग का निषेध है—इससे क्षेत्रज पुत्रको पैदा न करना—सिद्धांत यह है कि इस वचनसे विवाही हुई स्त्री में स्वयं पैदा कियाहुआ जो पुत्रहै वह सबसे मुख्य (औरस) पुत्र मनुजी ने कहाहै—यदि वह न होय तो पुरुषदत्तक—कृत्रिम—इन दोनोंमेंसे एक पुत्रको ग्रहण करै ॥

अब कैसा पुत्र दत्तक लेना इसको वर्णन करते हैं—ब्राह्मण—अपने(७ पीढी पर्यंत) सपिंडोंमेंसेही दत्तक पुत्रले यदि सपिंड न मिले तो जो असपिंड अपने गोत्रमें हो उसको ले अन्यको न ले क्योंकि

१ नस्त्रीपुत्रंदद्यात्प्रतिगृह्णीयाद्वाअन्यत्राभर्त्रनुज्ञानात् ॥

२ अथोढक्षेत्रजकृत्रिमपुत्रिकापुत्रस्त्रीद्वारजासुरागूढजदक्षिणाजानांपित्रोश्च ॥

३ व्याहृतिभिर्हुत्वाअदूरबांधवंबंधुसंनिकृष्टंएवप्रतिगृह्णीयात् ॥

४ ॐदेवस्यत्वासवितुःप्रसवेश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णोहस्ताभ्याम्—प्रतिगृह्णामि ॥

५ अनेकधाकृताःपुत्राऋषिभिर्येपुरातनैः । नशक्यास्तेधुनाकर्तुंशक्तिहीनतयानरैः ॥

६ दत्तौरसेतरेषांतुनपुत्रत्वेपरिग्रहः । औरसःक्षेत्रजश्चैवदत्तःकृत्रिमकःसुतः ॥

७ स्वक्षेत्रेसंस्कृतायांतुस्वयमुत्पादितश्चयः । तमौरसंविजानीयात्पुत्रंप्रथमकल्पितम् ॥

इसे वचनसे यह पूर्वोक्तही प्रतीत होताहै—और इसे वासिष्ठजी के वचनानुसार अपने माता पिता के एकही पुत्र जो हो उसको भी न ले और न दे—और भर्ताकी आज्ञाके विना न स्त्री देसक्ती है और न लेसक्ती है अर्थात् विधवाके पुत्रको भी न ले—यद्यपि इसे वचनसे वत्स और व्यास ऋषिने यह कहा है कि माता वा पिता जिस पुत्रको दें वह दत्तक पुत्र कहाहै तथापि वही माता देसक्ती है जिसे भर्ता की आज्ञा हुई हो—और पूर्वोक्त होमके अनंतर वही पुत्रलेना जिसको पिताने संकल्पपूर्वक दिया हो—और इनें वचनोंसे वृद्ध गौतम और कालिकापुराण—ने यह कहा है कि जो दत्तक और क्रीत आदि पुत्र अपने गोत्रमेंसे लिये हैं वे विधिसे संतान होतेहैं और सपिंडताका विधान नहीं कियाजा-ता—अन्यके भी बीज से पैदाहुये दत्तक आदि पुत्र अपने गोत्रसे संस्कारकरने पर पुत्र होजाते हैं—और यदि सपिंडका लड़का न मिले तो असपिंडको ले वे असपिंड भी दोप्रकारके होते हैं एकगोत्र का और भिन्नगोत्रका इससे जो समानगोत्र और असपिंड है वह मुख्य है—और भिन्नगोत्र और सपिंड गौण होतेहैं—यद्यपि समानगोत्र असपिंड और भिन्नगोत्र सपिंड—ये दोनों तुल्य होने चा-हिये—पहिले में सपिंडता और दूसरेमें गोत्रका अभाव है तथापि समान गोत्र असपिंड इसलिये मुख्य है कि वह अपने बीजसंबंध से समीप है और भिन्नगोत्र भी सपिंडही मातामह आदि के कुल से लेना—सिद्धांत यह है कि सबसे मुख्य तो समान गोत्र और सपिंड होताहै यदि वह न मिले तो चौदह पीढ़ी पर्यंतसे सोदकलेना—यदि वह भी न मिले तो इक्कीस पीढ़ी पर्यंतसे असमानोदक और सगोत्रको लेना—वह भी न मिले तो भिन्नगोत्र और असपिंडको भी लेना—क्योंकि शाकल ऋषिने इसे वचनसे यह कहा है कि सपिंडका अपत्य—सगोत्रज—सगोत्र न मिले तो अन्यगोत्रसे पैदाहुये पुत्रको भी पुत्रहीन द्विज पुत्रकरले अर्थात् दत्तक लेले—और वसिष्ठजी ने भी इस पूर्वोक्त वचन में (अदूरबांधवं इत्यादि) अदूरबांधव पदसे समीपका सगोत्र लिया है—और वह समीपता सगोत्रसे वा अल्पपीढ़ियों के व्यवधानसे लेनी—तिस वचनके अनुसार भी सगोत्र—अल्पव्यवधान—सपिंड मुख्य हैं—उसके अभाव में बहुत पुरुषोंका व्यवहित—सगोत्र सपिंड लेना—वह भी न मिले तो असमान गोत्र सपिंड—वह भी न मिले तो बंधुओं में समीप सपिंड—अर्थात् अपना असपिंड (सोदक) यदि वह भी न मिले तो समानगोत्र (जो इक्कीस पीढ़ी के अंतर्गत हो) वह भी न मिले तो असमानगोत्र असपिंड भी लेना—सिद्धांत यह है कि गोत्र और पिंडसे जो समीपहो उसके मिलने पर दूसरेको न ले—और यदि कुल वा शीलसे दत्तक पुत्रमें संदेह होजाय तो इसे वसिष्ठके वचनानुसार बांधवों से दूर समझकर शूद्रकेसमान टिकावे—और सपिंड और असगोत्रमेंही संदेह होताहै इससे अन्यगोत्रसे दत्तकको न ले—यद्यपि सपिंड और असपिंडसे अन्य कोई नहीं होता तथापि सवर्ण जातिकेही दत्तक

१ ब्राह्मणानांसपिंडेषुकर्तव्यःपुत्रसंग्रहः । तदभावेऽसपिंडोवान्यत्रतुनैवकारयेत् ॥
२ नत्वेकंपुत्रंदद्यात्प्रतिगृह्णीयाद्वानस्त्रीपुत्रंदद्यात्प्रतिगृह्णीयाद्वान्यत्रानुज्ञानाद्भर्तुः ॥
३ दद्यान्मातापितावायंसपुत्रोदत्त्रिमःस्मृतः ।
४ स्वगोत्रेषुकृतायेस्युर्दत्तक्रीतादयःसुताः । विधिनागोत्रतांयांतिनसापिंड्यंविधीयते ॥
दत्ताद्याअपितनयाःनिजगोत्रेणसंस्कृताः । आयांतिपुत्रतांसम्यगन्यबीजसमुद्भवाः ॥
५ सपिंडापत्यकंचैवसगोत्रजमथापिवा । अपुत्रकोद्विजोयस्मात्पुत्रत्वेपरिकल्पयेत् ॥
६ संदेहेचोत्पन्नेदूरेबांधवंशूद्रमिवस्थापयेत् ॥

को ले इसं वचनसे सपिंड और असपिंड सजातीय लिये हैं इस सजातीय पदसे विजातीय सपिंड और असपिंडोंका निवारणहुआ—इससे विजातीय असपिंडका निषेध न होनेसे विजातीय पुत्रका भी ग्रहणकरना पाया उसकी निवृत्ति के लिये—(अदूरबांधवं) यह वचन है इसीसे वृद्ध गौतमने इसं वचनसे यह कहा है कि यदि अन्य जातिका पुत्र कदाचित् ग्रहणकर लिया होय तो उसको शौनक ऋषिके मतानुसार दायका भागी न करै—तिससे भिन्न जातिके दत्तकको न ले—क्योंकि मनुजी भी इसं वचनसे सजातीय और प्रीतिवाले कोही दत्तक कहेंगे—और मनुजीने जो इसं वचनमें असदृश पदसे विजातीय पुत्रका भी लेना कहा है कि माता पिताके समीपसे जिसको संतान के लिये मोल ले वह सदृशहो वा असदृशहो उसको क्रीतक पुत्रकहते हैं—इस वचनसे गुणोंसे असदृशलेना जाति से नहीं—और समीपके सगोत्र सपिंडोंमें भी जहां तक बने सोदरभाईके पुत्रकोही दत्तकपुत्रकरै और मिताक्षरा में भी इसं वाक्य से यही लिखा है—और मनुजी भी इसं वचन से यह कह आये हैं कि एकसे पैदाहुये सहोदरभाइयों में यदि एकपुत्रवान् होजाय तो वे सब उसके पुत्रसे पुत्रवाले होतेहैं—अर्थात् भाई—भाई के पुत्रको दत्तकविधिसे लेकर पुत्रवाला होसक्ताहै—इसवचनमें भाइयोंको लेनेका अधिकार कहनेसे भगिनी को भाई के पुत्रका और भाईको भागिनीके पुत्रकालेना योग्यनहीं है क्योंकि वृद्धगौतम और शौनकऋषि ने इसँ वचनसे यहकहाहै कि ब्राह्मणआदि तीनोंवर्णोंमें भागिनेय (भानजा) कदाचित् भी दत्तक नहींहोसक्ता इसवचनमें भागिनेयपदसे भाईकापुत्र भी लेते हैं इससे भगिनी भी भाई के पुत्रको न ले ॥

एकपुत्रको न दे और न ले—क्योंकि यह निषेध है—यद्यपि कालिकापुराणमें शंकरके पुत्र—वेताल और भैरव का एकपुत्रसेही पुत्रवत्ता कहीहै कि—वेताल और भैरव तपके लिये पर्वत में गये और वे दोनों विवाहसे हीनथे मार्कंडेय से उन्होंने यहसुनी कि पुत्रकेविना गतिनहींहै पुत्रपौत्रवाले स्वर्ग में गये हैं फिर कैलासपरगये वहां महादेवके वचन से नन्दीने उनको यहकहा कि तुम पुत्रहीनहो पुत्र के पैदाकरनेमें यत्नकरो—फिर उन्होंने नन्दीसेकहा कि करेंगे फिर किसीसमय भैरवसे उर्वशीअप्सरा में सुवेश पुत्रहुआ वेताल ने उसीको अपना पुत्र भी करलिया उस एकपुत्रसेही वे दोनों स्वर्ग को प्राप्तहुये—इससे एकपुत्रका भी देना शास्त्रोक्त है—तथापि यहकालिकापुराणका तात्पर्यनहीं है कि एक को दत्तक देदे किन्तु उस एकही सुवेशपुत्रसे वे दोनों वेताल भैरव स्वर्गमेंगये यही तात्पर्यहै—क्योंकि शौनकऋषि के इसं वचन से एकपुत्रको देना निषिद्ध है और बहुत पुत्रवालेकोही पुत्रका देना कहा है—और वसिष्ठजीने भी उक्तवचनसे यहकहाहै कि न एकपुत्रकोदे और न ले—क्योंकि वहपुत्र पुरु-

१ सर्वेषामेववर्णानांजातिष्वेवनचान्यतः ॥
२ यदिस्यादन्यजातीयोगृहीतोवासुतःक्वचित् । अंशभाजंनतंकुर्याच्छौनकस्यमतंहितत् ॥
३ सदृशंप्रीतिसंयुक्तंसज्ञेयोदत्त्रिम सुतः ॥
४ क्रीणीयाद्यस्त्वपत्यार्थेमातापित्रोर्यमंतिकात् । सक्रीतकःसुतस्तस्यसदृशोऽसदृशोऽपिवा ॥
५ भ्रातृपुत्रएवपुत्रीकार्यः ॥
६ भ्रातृणामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान्भवेत् । सर्वेतेतेनपुत्रेणपुत्रिणोमनुरब्रवीत् ॥
७ ब्राह्मणादित्रयेनास्तिभागिनेयःसुतःक्वचित् । दौहित्रोभागिनेयश्चशूद्रैस्तुक्रियतेसुतः ॥
८ नत्वेकंपुत्रंदद्यात्प्रतिगृह्णीयाद्वा ॥
९ नैकपुत्रेणकर्तव्यंपुत्रदानंकथंचन । बहुपुत्रेणकर्तव्यंपुत्रदानंप्रयत्नतः ॥

धर्मों की सन्तानके लिये है यदि दियाजायगा तो सन्तान का अभाव होजायगा—यद्यपि इन¹ योगीश्वर नारदऋषि के वचनोंसे पुत्रकादान निषिद्धहै कि शिक्षाकेलिये पुत्र और पुत्रों की बधू पिता के आधीन हैं और विक्रय और दानमें पिताके वशमें नहीं हैं और स्त्री और पुत्रको छोड़कर ह आन करै—निक्षेप (धरोहर) पुत्र स्त्री—सर्वस्व साधारणधन इनको महान् आपत्तिमें भी आचार्योंसे भर्त्ताके अयोग्य कहेहैं तथापि ये वचन एकपुत्र विषयक हैं—और महाभारत में भीष्म के प्रति वैक दिया इसे² वचनसे यहकहाहै कि हेकौरवनन्दन (भीष्म) जो एकपुत्रवान्है उसको मैं इसप्रकार अपुत्रमानता हूं जैसे एकनेत्रवाला नेत्रहीन है क्योंकि उसनेत्र के नाशहोनेपर अन्धा होजाता है इससे बहुतपुत्र वाले मनुष्यकेही पुत्रको ग्रहणकरै—पुत्रकेदेनेका पिता और पतिकी आज्ञासे माताकोभी इसे³ वसिष्ठ जीके वचनानुसार अधिकार है कि—शुक्रशोणितसे पैदाहुये पुत्रके माता पिता दोनों निमित्त कारण हैं इससे उसपुत्र के देने, विक्रय, त्यागमें दोनोंही प्रभु (समर्थ) हैं—बौधायनऋषिने भी इसे⁴ वचन से पुत्र में माता पिताके सम्बन्धकी तुल्यताही वर्णनकीहै—और पूर्वोक्तवचनोंसे मनु याज्ञवल्क्यने भी दोनोंकोही देनाकहाहै और कालिकापुराण में तो दत्तकके लेने में इन⁵ वचनोंसे यह विशेषकहाहै कि यदि दत्तकआदि पुत्रों का लेनेवाले के गोत्रसे अपनी शाखा और शास्त्रोक्त विधि से जातकर्म आदि संस्कार कियेजायं तो वे लेनेवाले के पुत्र होते हैं चाहे वे अन्यके बीजसे पैदाहुयेहों—जिसपुत्र का मुण्डनपर्यंत संस्कार, पिता के गोत्रसे होचुकाहो वह अन्यका दत्तकपुत्र नहींहोसक्ता—और यदि मुण्डनआदि संस्कार निज (लेनेवाला) के गोत्रसे कियेहों तो दत्तकआदि पुत्र होसकेहैं और न होयँ तो दास (टहलवे) कहाते हैं और पांचवर्ष की अवस्था से अधिक अवस्थाके दत्तकआदि पुत्र नहीं होसक्ते—इससे पांचवर्ष की अवस्थाके दत्तकको लेकर प्रथम पुत्रेष्टि (जातकर्म) करै और यदि पौनर्भवपुत्र लेनेकी इच्छाहोय तो पैदाहोतेही अपने घरलेआवै और लाकर पौनर्भवष्टोम यज्ञकरिकै जातकर्म आदि सम्पूर्ण संस्कारकरै—पौनर्भवष्टोम यज्ञकिये पीछेही पौनर्भवपुत्र होताहै—और वसिष्ठ ऋषि ने भी इस⁶ वचनसे यहकहा है कि अन्यशाखा में पैदाहुआ भी दत्तकपुत्र ग्रहणकरले और वह अपनी शाखा की विधि और गोत्रसे अपनी शाखा का भागी होजाता है—और यदि मुण्डन के पीछे दत्तक लियाजाय तो उसको दासता होती है पुत्रत्व नहींहोता और दास उसकोकहतेहैं कि जो मोल

१ सुतस्यसुतदाराणांवशित्वमनुशासने । विक्रयेचैवदानेचवशित्वंनसुतेपितुः देयंदारसुतादृते निक्षेपःपुत्रदारंच सर्वस्वं चान्वयेसति । आपत्स्वपिहिकष्टासुवर्त्तमानेनदेहिना ॥ अदेयान्याहुराचार्याःयच्चसाधारणंधनम् ॥
२ एकपुत्रोह्यपुत्रोमेमतःकौरवनन्दन । एकंचक्षुर्यथाऽचक्षुर्नाशेतस्यांधएवहि ॥
३ शुक्रशोणितसम्भवःपुरुषोमातृपितृनिमित्तकस्तस्यप्रदानविक्रयपरित्यागेषुमातापितरौप्रभवतः ॥
४ मातापित्रोरेवसंसर्गसाम्यात् ॥
५ दत्ताद्याअपितनयानिजगोत्रेणसंस्कृताः। आयान्तिपुत्रतांसम्यगन्यबीजसमुद्भवाः॥ पितुर्गोत्रेणयःपुत्रःसंस्कृतःपृथिवीपते । आचूडांतंनपुत्रःसपुत्रतांयातिचान्यतः ॥ चूडाद्यायदिसंस्कारानिजगोत्रेणवैकृताः । दत्ताद्यास्तनयास्तेस्युरन्यथादासउच्यते॥ ऊर्ध्वंतुपंचमाद्वर्षात् नदत्ताद्याःसुतानृप । गृहीत्वापंचवर्षीयंपुत्रेष्टिंप्रथमंचरेत् ॥ पौनर्भवंतुतनयंजातमात्रं समानयेत् । कृत्वापौनर्भवष्टोमंजातमात्रस्यतस्यवै ॥ सर्वांस्तुकुर्यात्संस्कारान् जातकर्मादिकान्नरः । कृतेपौनर्भवष्टोमे सुतःपौनर्भवस्ततः ॥
६ अन्यशाखोद्भवोदत्तः पुत्रश्चैवोपनायतः । स्वगोत्रेणस्वशाखोक्तविधिनासःस्वशाखभाक् ॥

लीहुई स्त्री में रतिसे पैदाहो–क्योंकि इसे वचन से यहकहा है कि मोललली स्त्री पत्नी नहींकहाती–और वह दैव और पितृकर्मके योग्य नहींहोती विद्वानोंने उसे दासी कहाहै–और वह दासपुत्र राज्य का भागी नहींहोता और न ब्राह्मण के श्राद्ध के करनेवाला होता–और सबपुत्रों में वह अधमहोता है–इससे उसको त्यागदे–सिद्धांत यहहै कि वहीदत्तक लेना जिसके मुण्डनआदि संस्कार नहींहुये हों–और पांचवर्ष से अधिकका तो असंस्कृत भी नहींलेना–इससे दत्तकलेनेका समय पांचवर्षपर्यंत है–जन्मसे लेकर तीनवर्षतक मुख्य समय है–और तीनसे पांचतक गौण है–और इससे ऊपर गौणकाल भी नहीं है–और संस्कारोंसे पहिले पुत्रेष्टि करनेसे उसका दासभाव दूर होता है और ऐसे पुत्रको दत्तकले जो पुत्रकेसदृशहो अर्थात् नियोग आदि से उसकोस्वयं पैदाकरसके क्योंकि इसे वचनसे यह कहा है कि अंगात् अंगात् इस ऋचाको जपकर और बालकके मस्तकको सूंघकर और वस्त्र आदिसे शोभितकरके पुत्रकेसमान जोबालक उसकोग्रहणकरै अर्थात् भाई सपिंड सगोत्र का पुत्रही ऐसा होसक्ता है जिसको स्वयं भी पैदाकरसके–अर्थात् जिसकी माताके संग लेनेवालेका विवाह होसकै–अर्थात् भाई–चाचा–मामा–दौहित्र–भानजा आदि जो ऐसेहैं कि इनकी माताकेसंग लेनेवालेका रति (मैथुन) का योग नहीं होसक्ता इससे ये दत्तक भी नहीं होसकें–क्योंकि भाई चाचा मामा–दौहित्र–भानजा–इनकी माताओं के संग रतिका योग इसलिये नहीं होता कि इनके संग विवाह आदि विरुद्ध संबंध होताहै–जैसा विरुद्ध संबंध गृह्य परिशिष्टमें इसे मंत्रसे वर्जित कहा है कि जहां बधू और वर दोनोंको पितृसाम्यताहो अर्थात् बधूका वर पिताके तुल्य है जैसी शाली की पुत्री–और वरकी बधू माताके समान हो जैसी चाचीकी भगिनी–इसीप्रकार यहां पर भी विरुद्धसंबंध वर्जित है–सिद्धांत यह है कि जिसकी माताके संग रतिकी संभावनाहो वह दत्तक होसक्ता है–अन्य नहीं ॥

अब दत्तकके लेनेकी विधिकोवर्णन करते हैं–प्रथम श्रेष्ठमुहूर्तका ज्योतिषशास्त्रके अनुसार निश्चयकरै और मुहूर्तसे पहिले उपवासको अपुत्रमनुष्यकरै और इसे वृद्धगौतमके वचनानुसार पुत्रहीन वा मृतपुत्र दत्तकले–वस्त्र और कुंडल पगड़ी अंगूठी लड़के को दे और धर्ममें संयुक्त वेदपारग विष्णु के भक्त आचार्य–ग्रामके स्वामी–शुद्धद्विज, इनका मधुपर्कसे पूजनकरै और इसे बृहस्पतिके वचनानुसार बंधु और ग्रामके स्वामीको बुलावे और तीन द्विजोंको पुत्रकीयाचनाकेलिये मधुपर्कसे पूजे–

१ क्रीतायारमितामौल्यैः मादासीतिनिगद्यते । तस्यांयांजायतेपुत्रोदासपुत्रस्तुसस्मृतः ॥ क्रयक्रीतातुयानारीनसापत्न्यभिधीयते । नसादैवेनसापित्र्ये दासीतांकवयोविदुः ॥ नराज्ञोराज्यभाक्सस्यात् विप्राणांश्राद्धकृन्नच । अधमःसर्वपुत्रेभ्यः तंतस्मात्परिवर्ज्जयेत् ॥

२ अंगादंगेत्यृचंजप्त्वा आघ्रायीशशुमूर्द्धनि । वस्त्रादिभिरलंकृत्यपुत्रच्छायावहंसुतम् ॥

३ दंपत्योर्मिथःपितृमातृसाम्येविरुद्धसंबंधोयथाभार्यास्वसुर्दौहितापितृव्यपत्नीस्वसाचेति ॥

४ बंध्योमृतप्रजोवापि ॥

५ बंधूनाहूयसर्वांस्तुग्रामस्वामिनमेवच ॥

शौनकोहंप्रवक्ष्यामिपुत्रसंग्रहमुत्तमम् । अपुत्रोमृतपुत्रोवापुत्रार्थंसमुपोष्यच ॥ वाससीकुंडलेदत्त्वाउष्णीषंचांगुलीयकम् । आचार्यंधर्मसंयुक्तंवैष्णवंवेदपारगम् ॥ मधुपर्केणसंपूज्यराजानंचद्विजानशुचीन् । बर्हिःकुशमयंचैवपालाशंचेध्ममेवच ॥ एतानाहृत्यबंधूंश्चज्ञातीनाहूययत्नतः । अग्न्याधानादिकंतत्रकृत्वाज्योत्पवनांतकम् ॥ दातुःगत्वासमक्षंतुपुत्रंदेहीतियाचयेत् । दाने समर्थोदातास्मैयेयज्ञेनेतिपंचभिः ॥ देवस्यत्वेतिमंत्रेणहस्ताभ्यांपरिगृह्यच ॥ अंगादंगेत्यृचंजप्त्वा ॥ नृत्यगीतैश्चवाद्यैश्चस्वस्तिशब्दैश्चसंयुतम् । गृहमध्येतमाधायचरुंहुत्वाविधानतः ॥

और बर्हिः कुशा–ढांककी पलाशी और होम और पूजनकी सामग्री आदिको एकत्रकरै–और ब्राह्मण और बंधुओंको भोजन करावे और आचार्य के द्वारा अग्न्याधान(अग्निस्थापनसे लेकर आज्योत्पवन) पर्यंत कर्म को करके दाताके समीप जाकर इसप्रकार याचनाकरै कि पुत्रको मुझे दे–दानमें समर्थ दाता–ये यज्ञेन–इत्यादि पांच मंत्रोंको पढ़कर पुत्रको देदे–लेनेवाला (देवस्यत्वा) इसमंत्रसे ग्रहण करै और ॐअंगादंगात्संभवसिहृदयादधिजीवसे । आत्मावैपुत्रनामासिसंजीवशरदःशतम्–इसमंत्र को पढ़कर बालक के मस्तकको संघे और वस्त्र आदि से शोभितकरके पुत्रके तुल्य–पुत्रको ग्रहणकरै फिर नृत्य गीत वाद्यों (बाजे) स्वस्तिवाचन, सहित अपने घरमें लेजायकर विधिसे चरुका होमकरै यस्त्वाहृदा–तुभ्यमग्ने–सोमोददत् इत्यादि पांच ऋचा–इसप्रकार इन सात मंत्रोंसे सातचरुकी आहुतियोंसे हवनकरके पूर्वोक्त पुत्रको ग्रहणकरै फिर आचार्यको यथाशक्ति ब्राह्मणवरण दक्षिणादे–राजा अपने आधे राज्यके एकवर्षमें लब्ध धनमेंसे आधाधनदे वैश्य तीनिसै २०० मुद्रादे क्योंकि राजाको इस वचनसे वृद्धगौतमने एकवर्ष की प्राप्तिका आधाभाग देना कहा है और उक्त ऋषि ने इस वचनसे वैश्यको अपनी शक्तिके अनुसार सोने चांदी तांबा–इनके तीनिसे रुपये कहेहैं और शूद्र सर्वस्वदे अथवा शक्तिके अनुसार दे–जो पुत्र इस विधिके अनुसार नहीं लियाजाता वह इस वचन के अनुसार धनका भागी नहीं होता किन्तु विवाहकेही योग्यहोताहै अर्थात् लेनेवाला उसका विवाहमात्रकरदे–सिद्धांत यहहै कि दत्तक आदि संस्कार (पूर्वोक्त विधि) से पुत्र होसकेहैं–यदि दानप्रतिग्रह होम इनमेंसे एक भी न होय तो ये दत्तक आदि पुत्र नहीं होसके–यहांतक दत्तक लेनेका हेतु–दत्तकका स्वरूप–लेनेकी विधि–ये तीनों प्रायः वर्णन किये–अब दत्तकके दायभागका स्वरूप वर्णन करतेहैं–कि–जिस दत्तकको पूर्वोक्त विधिसे न लियाहो और उसके पीछे औरस पुत्र होजाय तो उस धनका वही स्वामी इस वचनसे होताहै जो और धनमें स्वभावसे स्वामी है–अर्थात् औरसके होते गृहीतपुत्र धनकाभागी नहीं होसक्ता–और विधिसे गृहीत भी दत्तकके अनंतर औरस पुत्रहोजाय तो दत्तकको इस वचनके अनुसार ज्येष्ठकाभाग (उद्धार) नहीं मिलेगा–और वसिष्ठजीने इस वचन से यह वर्णन किया है कि यदि दत्तकके लिये पीछे औरसपुत्र पैदाहोजाय तो दत्तकको चतुर्थांशमिलना चाहिये–और मनुजी ने तो विधिसे लियेहुये अन्य गोत्रके भी दत्तकको इसी वचनसे समग्र धनकाभागी कहा है परंतु औरस के होनेपर मनुजी ने भी समभाग कहाहै और बौधायन ऋषिने भी इस वचनसे चौथाभाग कहा है–और जो वृद्धगौतमने इस वचनसे पिताकेधनके समभागी दत्तक और औरसको कहा है वह समान भाग तभी होताहै जो दत्तकपुत्र गुणवानहो–और औरस निर्गुण

यस्त्वाहृदेत्यृचैनैवतुभ्यमग्नेत्यृचैकया सोमोददादित्येताभिःप्रत्यृचंपंचभिस्तथा ॥

१ प्रदद्याचार्द्धराज्योत्थमेकवर्षाहृतंधनम् ॥

२ शतत्रयंनाणकानांसौवर्णमथराजतम् । प्रदद्यात्ताम्रमथवा–उत्तमादिव्यवस्थया ॥

३ अविधायविधानंयःपरिगृह्णातिपुत्रकम् । विवाहविधिभाजंतंकुर्यान्नधनभाजनम् ॥

४ तस्मिन्जातेसुतेदत्तेनकृतेचाविधानके । तत्स्वंतस्यैवविज्ञेयंयःस्वामीपितुरंजसा ॥

५ जातेष्वन्येषुपुत्रेषुदत्तपुत्रपरिग्रहात् । पिताचेद्विभजेद्दत्तंनैवज्येष्ठांशभाग्भवेत् ॥

६ तस्मिंश्चेत्प्रतिगृहीतेऔरसःउत्पद्येत चतुर्थभागभागीस्याद्दत्तकइति ॥

७ यद्येवंकृत्वात्वौरसःपुत्रउत्पद्येततुरीयभागभवति ॥

८ दत्तपुत्रेयथाजातेकदाचित्त्वौरसोभवेत् । पितुर्वित्तस्यसर्वस्यभवेतांसमभागिनौ ॥

हो—और देवलऋषिने भी इस वचनसे यह कहाहै कि धर्म के लिये जो दत्तक आदि पुत्र पाले हैं—वे अंश और पिंडदेनेके भागी होते हैं और सपिंड नहीं होसके—क्योंकि इस वचनसे बृहत्मनुने यह कहा है कि दत्त, क्रीत, आदि पुत्रोंमें बीजबोनेवाले की सपिंडता रहती है और वह सपिंडता पांच वा सात पीढ़ीतक होती है और गोत्र तो पालना करनेवाले का होता है—तिस से दत्तककी सपिंडता लेनेवाले की नहींहोती किंतु जनकके कुलमेंही सातपीढ़ी पर्यंत सपिंडताहोती है—कोई तो इस संग्रहकार के वचनानुसार यहकहतेहैं कि दत्तकपुत्रोंकी सपिंडता जनक और लेनेवाले—दोनोंकुल में तीनपीढ़ीतक होती हैं—यही निश्चय है—दत्तक मीमांसाकार का तो यहमत है कि सातपुरुषतक पिताके कुल में और तीनतक लेनेवाले के कुलमें दत्तककी सपिंडता होतीहै—इसलिये दत्तकआदि पुत्रों का दोनों कुल में उत्पन्नहुई कन्याके संग विवाहभी नहीं करना—क्योंकि पारिजात ग्रन्थमें इस वचन से यह लिखाहै कि द्व्यामुष्यायण (क्षेत्रज) दत्तक क्रीतआदि जो पुत्र हैं वे दोनों गोत्रमें विवाहकरने के योग्य नहींहोते—और प्रवरमंजरी ग्रन्थमें भी यह कहाहै कि दत्तक क्रीत—कृत्रिम—पुत्रिकापुत्र आदिकों के यथासम्भव दोप्रवर और गोत्र होते हैं इससे इनके विवाहमें दोगोत्र और दोप्रवर वर्जित हैं ॥

अब दत्तक के अशौचका भी प्रसंगसे निर्णय करते हैं कि इन बृहस्पति और ब्रह्मपुराणके वचनानुसार तीन दिनतक दत्तक का अशौच होताहै अन्यके आश्रित स्त्री और परस्त्रीके पुत्र यदि मरजायँ तो तीनरात्र में स्नानकरके ब्राह्मणोंकी शुद्धि होतीहै—सबवर्णोंमें औरसपुत्रको छोड़कर क्षेत्रजआदि पुत्रों के जन्म और मरणमें तीनरात्र का अशौच साधारण होता है—परन्तु दत्तक को पिताके मरने में इस मरीचिऋषि के वचन के अनुसार दशदिनका अशौच होताहै जो पुत्र वा शिष्य पिताके मरने पर पितृमेध (क्रिया) करै वह और प्रेतके लेजानेवाले दशदिनमें शुद्धहोते हैं—और दत्तकआदि पुत्र पिता के मरण के दिन इस जातूकर्ण्यऋषि के वचनानुसार एकोद्दिष्टही श्राद्धकरैं और क्षेत्रज और औरस तो पार्वण श्राद्धकरैं—और अनेकगोत्र जितने पुत्र हैं वे इस पराशर के वचनानुसार एकोद्दिष्ट श्राद्धकरैं तिसमें औरस माता पिता के क्षयदिन में पार्वणकरै और सबदत्तक आदि एकोद्दिष्ट श्राद्धकरैं १४२ ॥

इति दत्तकप्रकरणम् ॥

---

१ धर्मार्थंवर्द्धिता पुत्रास्तत्तद्गोत्रेणपुत्रवत् । अंशपिंडविभागित्वंनेषुकेवलमीरितम् ॥
२ दत्तक्रीतादिपुत्राणांबीजवप्तुःसपिंडता । पंचमीसप्तमीतद्वद्गोत्रंतत्पालकस्यच ॥
३ दत्तकानांतुपुत्राणांसापिंड्यंस्यात्त्रिपूरुषम् । जनकस्यकुलेतद्वद्गृहीतुरितिधारणा ॥
४ द्व्यामुष्यायणकायेस्युर्दत्तकक्रीतकादयः । गोत्रद्वयेप्यनुद्वाह्याःशुंगशैशिरयोर्यथा ॥
५ दत्तकक्रीतकृत्रिमपुत्रिकापुत्रादीनांयथासम्भवंगोत्रद्वयंसप्रवरमस्तीत्येतावतान्द्विगोत्राणांगोत्रद्वयंसप्रवरंविवाहेवर्ज्यम् ॥
६ अन्याश्रितेषुदारेषुपरपत्नीसुतेषुच । मृतेष्वाप्लुत्यशुद्ध्यंतित्रिरात्रेणाद्विजोत्तमाः ॥
७ गुरोःप्रेतस्यशिष्यस्तुपितृमेधंसमाचरन् । प्रेताहारैःसमन्तत्रदशरात्रेणशुद्ध्यति ॥
८ प्रत्यब्दंपार्वणेनैवविधिनाक्षेत्रजौरसौ । कुर्यातामितरेकुर्युरेकोद्दिष्टंसुतादश ॥
९ सर्वत्रानेकगोत्राणामेकोद्दिष्टंक्षयेऽहनि ॥

अथ क्षेत्रविभागप्रकरणम् ॥

अनियुक्तासुतश्चैवपुत्रिण्याप्तश्चदेवरात् । उभौतौनार्हतोभागंजारजातककामजौ १४३ ॥

प० । अनियुक्तासुतः च एव पुत्रिण्यां आप्तः च देवरात् उभौ तौ न अर्हतः भागं जारजातककामजौ ॥

यो० । अनियुक्तासुतः चपुनः देवरात् पुत्रिण्या (पुत्रवत्या) आप्तः जारजातककामजौ उभौ तौ भागं न अर्हतः-भागयोग्यौ न भवतः इत्यर्थः ॥

भा० । ता० । जिस स्त्रीको गुरुआदि का नियोग सन्तान के लिये न हुआहो उसका पुत्र-और पुत्रवाली स्त्री के नियोगविधिसे भी जो हुआहो वह-जारसे और कामनासे पैदाहुये ये दोनों भागके योग्य नहींहोते १४३ ॥

नियुक्तायामपिपुमान्नार्यांजातोऽविधानतः । नैवार्हःपैतृकंरिक्थंपतितोत्पादितोहिसः १४४

प० । नियुक्तायां अपि पुमान् नार्यां जातः अविधानतः न एव अर्हः पैतृकं रिक्थं पतितोत्पादितः हि सः ॥

यो० । यः पुमान् नियुक्तायां अपि नार्यां अविधानतः जातः सः पैतृकं रिक्थं नैवअर्हः (योग्यः) हि (यतः) सः पतितोत्पादितः (पतिताज्जातः) ॥

भा० । ता० । जो पुरुष गुरुआदिकी नियुक्त कीहुई स्त्रीमें भी घृतके अभ्यंगआदि शास्त्रोक्तविधि से उत्पन्न नहींहुआ वह भी क्षेत्रवाले पिता के धनके योग्य नहींहोता क्योंकि वह पतितसे पैदाहुआ है इससे नियुक्तामें भी शास्त्रोक्तविधि के विना पुत्रको पैदा अपने पतितहोनेके भयसे न करै १४४ ॥

हरेत्तत्रनियुक्तायांजातःपुत्रोयथौरसः । क्षेत्रिकस्यतुतद्बीजंधर्मतःप्रसवश्चसः १४५ ॥

प० । हरेत् तत्र नियुक्तायां जातः पुत्रः यथा औरसः क्षेत्रिकस्य तु तत् बीजं धर्मतः प्रसवः च सः ॥

यो० । तत्र नियुक्तायां स्त्रियांजातः पुत्रः यथा औरसः तथा धनं हरेत् तु (यतः) तत् क्षेत्रिकस्य बीजं-चपुनः सः धर्मतः प्रसवः-भवति ॥

भा० । गुरुआदि की आज्ञासे जो पुत्र पैदा होताहै वहपुत्र औरस के समान होता है और क्षेत्र (स्त्री) वालाही उसकी उत्पत्तिका कारणहोताहै-और वह उसकाही धर्मसे प्रसव (पुत्र) होताहै ॥

ता० । गुरुआदि की नियुक्तकीहुई स्त्री में पैदाहुआ जो क्षेत्रजपुत्र है वह औरस के समान धन को ग्रहणकरै क्योंकि वह (पिता) ही उसका कारणरूप बीजहै और क्षेत्रकास्वामीही उसके गर्भाधानआदि कार्योंके करने में अधिकारी है और वह लड़का धर्म से अपत्यभी उसकाहीहै और अपत्य पदका अर्थ यहहै कि जिससे पितर नरक में न पड़ें उसको अपत्य कहतेहैं-यद्यपि पीछे भी मनुजी इस वचनसे यहकहआये हैं कि जो छोटाभाई ज्येठभाई की पत्नी में जिसपुत्रको पैदाकरै उसपुत्र का चाचाआदि के संग समानभाग होताहै-तथापि यहवचन इसलिये है कि यदि गुणवाला क्षेत्रज होय तो उसको भी औरसके समान उद्धार विभाग का अधिकार है १४५ ॥

यवीयाञ्ज्येष्ठभार्यायांपुत्रमुत्पादयेद्यदि । समस्तत्रविभागःस्यादितिधर्मोव्यवस्थितः ॥

धनंयोबिभृयाद्भ्रातुर्मृतस्यस्त्रियमेवच । सोऽपत्यंभ्रातुरुत्पाद्यदद्यात्तस्यैवतद्धनम् १४६ ॥

प० । धनं यः विभृयात् भ्रातुः मृतस्य स्त्रियं एव च सः अपत्यं भ्रातुः उत्पाद्य दद्यात् तस्य एव तत् धनम् ॥

यो० । यः मृतस्य भ्रातुः धनं चपुनः स्त्रियं बिभृयात् सः भ्रातुः अपत्यं उत्पाद्य तस्य (अपत्यस्य) एव तत् धनं दद्यात् ॥

भा० । ता० । जो भाई मरेहुये भाई का स्थावर जंगम (अचल चल) रूप धन (जो रक्षाकरने में असमर्थ भाई की स्त्रीने रक्षाकेलिये समर्पणकरदियाहो) की रक्षाकरै और उसस्त्रीकीभी पालना करै वहभाई उस स्त्रीमें नियोगधर्मसे पुत्रको पैदाकरके उसकोही वहधन देदे—यहवचन वहांके लिये है जहां भाई पृथक् २ रहतेहों—क्योंकि पीछे दोनोंका समानभाग कहआये हैं १४६ ॥

यानियुक्तान्यतःपुत्रंदेवराद्वाप्यवाप्नुयात् । तंकामजमरिक्थीयंवृथोत्पन्नंप्रचक्षते १४७॥

प० । या नियुक्ता अन्यतः पुत्रं देवरात् वा अपि अवाप्नुयात् तं कामजं अरिक्थीयं वृथोत्पन्नं प्रचक्षते ॥

यो० । नियुक्ता या स्त्री अन्यतः वा देवरात् अपि पुत्रं अवाप्नुयात् कामजं वृथोत्पन्नं तं अरिक्थीयं प्रचक्षते मन्वादयः इतिशेषः ॥

भा० । जो नियुक्त स्त्री सपिंड वा देवर से कामशांति के लिये पुत्रको पैदाकरै उसपुत्र को वृथा उत्पन्न और धनका अभागी कहाहै ॥

ता० । जो स्त्री गुरुआदि की आज्ञाके अनुसार अन्य (सपिंड) से वा देवरसे पुत्रको पैदाकरै यदि वहपुत्र कामजहो अर्थात् कामदेवकी शांतिकेलिये किये मैथुनरूपसंगसे उत्पन्नहो—उसको मनुआदि ऋषियोंने धनकाभागी नहींकहा है क्योंकि वहवृथा उत्पन्न होता है—किंतु वही उसके धनका भागी होताहै जो अकामजहो और नारदऋषिने इसे वचनमें अकामजके ये लक्षण कहेहैं कि—अपने मुख से भाई की स्त्रीकामुख और गात्रोंसे गात्रों के संस्पर्शको यथासम्भव त्यागताहुआ देवर आदि उसके शेष कुलकी सन्तान की वृद्धिकेलियेही पुत्रको पैदाकरै और कामदेवकी शांतिके लिये न करै (यद्यपि यह नियोगधर्म से पुत्रकी उत्पत्ति मनुजीने वर्णनभी की है परन्तु शास्त्रोक्त वचन और लोकरीतिके अनुसार कलियुगमें त्यागने योग्य है इसके प्रमाण पीछे वर्णन करचुके हैं इससे पुनः लिखने की आवश्यकता नहीं है) १४७ ॥

अथ विजातीयपुत्रविभागप्रकरणम् ॥

एतद्विधानंविज्ञेयंविभागस्यैकयोनिषु । बह्वीषुचैकजातानांनानास्त्रीषुनिबोधत १४८ ॥

प० । एतत् विधानं विज्ञेयं विभागस्य एकयोनिषु बह्वीषु च एकजातानां नानास्त्रीषु निबोधत ॥

यो० । एकयोनिषु जातानां पुत्राणां विभागस्य विधानं एतत् विज्ञेयं—बह्वीषु नानास्त्रीषु जातानां विभागं यूयं निबोधत (अस्मात्) ॥

---

१ मुखान्मुखंपरिहरनगात्रैर्गात्राण्यसंस्पृशन् । कुलेतदवशेषेचसन्तानार्थंनकामतः ॥

भा० । ता० । सजातीय स्त्रियों में एकमनुष्यसे पैदाहुये पुत्रोंके विभागकी यह (पूर्वोक्त) विधि जाननी अब अनेकजातिकी अनेक स्त्रियोंमें एकसे पैदाहुये पुत्रोंकेविभागकी विधिकोतुमसुनो १४८ ॥

ब्राह्मणस्यानुपूर्व्येणचतस्रस्तुयदिस्त्रियः।तासांपुत्रेषुजातेषुविभागेऽयंविधिःस्मृतः १४९

प० । ब्राह्मणस्य आनुपूर्व्येण चतस्रः तु यदि स्त्रियः तासां पुत्रेषु जातेषु विभागे अयं विधिः स्मृतः ॥

यो० । यदि ब्राह्मणस्य आनुपूर्व्येण चतस्रः स्त्रियः स्युः तासां (स्त्रीणां) जातेषु पुत्रेषु अयं विधिः मन्वादिभिः स्मृतः ॥

भा० । ता० । यदि ब्राह्मण की वर्णक्रमसे चारस्त्रीहों उनके पैदाहुये पुत्रोंमें विभाग की यहविधि मनुआदिकों ने कही है कि १४९ ॥

कीनाशोगोवृषोयानमलंकारश्चवेश्मच।विप्रस्यौद्धारिकंदेयमेकांशश्चप्रधानतः १५०

प० । कीनाशः गोवृषः यानं अलंकारः च वेश्म च विप्रस्य औद्धारिकं देयं एकांशः च प्रधानतः ॥

यो० । कीनाशः गोवृषः यानं-अलंकारः चपुनः-वेश्म (गृहं) एतत् औद्धारिकं चपुनः प्रधानतः एकांशःविप्रस्यदेयम् ॥

भा० । ता० । कीनाश (किसान वा खेती) और गौओंमें आसक्त वृष (सांड) अश्वआदि यान भूषण-और घर-(जोप्रधानहो) और जितने भागहों उनमेंसे प्रधानभाग-ये तो ब्राह्मणीके पुत्रको उद्धार दे और शेष धनका इसरीतिसे विभागकरे कि १५० ॥

त्र्यंशंदायाद्धरेद्विप्रोद्वावंशौक्षत्रियासुतः।वैश्याजःसार्द्धमेवांशमंशंशूद्रासुतोहरेत् १५१ ॥

प० । त्र्यंशं दायात् हरेत् विप्रः द्वौ अंशौ क्षत्रियासुतः वैश्याजः सार्द्धं एव अंशं अंशं शूद्रासुतः हरेत् ॥

यो० । विप्रः (पुत्रः) दायात् त्र्यंशं-क्षत्रियासुतः द्वौ अंशौ-वैश्याजः सार्द्धमेव अंशं शूद्रासुतः अंशं हरेत् ॥

भा० । ब्राह्मण तीनअंश-क्षत्रिय दोअंश-वैश्य डेढ़अंश-और शूद्र एकअंश को ग्रहणकरे ॥

ता० । ब्राह्मणी का पुत्र सबदायमें से तीनअंश ग्रहणकरै-और क्षत्रिया का पुत्र दोअंश-वैश्या का पुत्र सार्द्ध (डेढ़) अंश-और शूद्राकापुत्र एकअंश ग्रहणकरे जहां एक ब्राह्मणी का और एकक्षत्रियाका पुत्रहो वहां पांचभागकरै उनमेंसे ३ भाग ब्राह्मणको और २ भाग क्षत्रियकोदे-यदि पूर्वोक्त दोपुत्रहों और एकपुत्र वैश्या का होय तो साढ़ेआठ ८॥ भागकरै और एक शूद्राकाभी पुत्रहोय तो साढ़े नौ ९॥ भागकरै-और पूर्वोक्तरीति से बांटले १५१ ॥

सर्ववारिक्थजातंतद्दशधापरिकल्प्यच।धर्म्यंविभागंकुर्वीतविधिनाऽनेनधर्मवित् १५२ ॥

प० । सर्वं वा रिक्थजातं तत् दशधा परिकल्प्य च धर्म्यं विभागं कुर्वीत विधिना अनेन धर्मवित् ॥

यो० । वा तत् रिक्थजातं दशधा परिकल्प्य-धर्मवित् अनेन विधिना धर्म्यं विभागं कुर्वीत ॥

भा० । ता० । अथवा उस सम्पूर्ण धनके समूहको दशप्रकारकरके धर्मकाज्ञाता (ब्राह्मण) इस विधिसे धर्म के अनुसार विभागकरै-कि-१५२ ॥

चतुरोऽंशान्हरेद्विप्रस्त्रीनंशान्क्षत्रियासुतः।वैश्यापुत्रोहरेद्द्व्यंशमंशंशूद्रासुतोहरेत् १५३

प० । चतुरः अंशान् हरेत् विप्रः त्रीन् अंशान् क्षत्रियासुतः वैश्यापुत्रः हरेत् द्व्यंशं अंशं शूद्रासुतः हरेत् ॥

यो० । विप्रः चतुरः अंशान्–क्षत्रिया सुतः त्रीन् अंशान् हरेत्–वैश्यापुत्रः द्व्यंशं हरेत्–शूद्रासुतः अंशं हरेत् ॥

भा० । ब्राह्मणी का पुत्र चारअंश–क्षत्रियाका तीनअंश–वैश्याका पुत्र दोअंश–और शूद्राका पुत्र एकअंश–ग्रहणकरै ॥

ता० । ब्राह्मण चारभागोंको और क्षत्रिय तीनभागोंको और वैश्य दोभाग–शूद्र एकहभिाग,ग्रहण करै–अर्थात् सबधन के दशभागकरके पूर्वोक्तरीतिसे वर्णके अनुसार–चार–तीन–दो–एक–भागोंको चारों विजातीय पुत्र ग्रहणकरलें–और योगीश्वर याज्ञवल्क्यऋषिने तो इसवचनके अर्द्धभागसे यही कहकर यह अधिक कहा है कि ब्राह्मण के पुत्र अपनी २ माताओंके वर्णक्रमसे चार–तीन–दो एक–भागको ग्रहणकरें–और क्षत्रियपुत्र तीन दो एकभागों को–और वैश्य के पुत्र दो एकभागको ग्रहणकरें– क्योंकि याज्ञवल्क्यऋषिने इस वचनसे ब्राह्मणकी चार–क्षत्रियकीतीन–वैश्यकीदो और शूद्रकीएक स्त्री कहीहैं–और येही स्त्री मनुजीभी कहआये हैं–और यहवर्णक्रमसे धनकाविभाग उसी धनका होताहै जो दानसे लब्धजो भूमि उससे भिन्नहो अर्थात् प्रतिग्रहसे मिली भूमिका भाग विजातीय पुत्रोंको इस मिताक्षरामें लिखित बृहस्पति वचनके अनुसारनदे–कि प्रतिग्रहकीभूमिको क्षत्रियाआदिके पुत्रोंकोनदे–और जो पिता भूमिको दे भी तो पिताकेमरनेपर ब्राह्मणीकापुत्र छीन ले–और जो पिताकी क्रीत भूमिहोय तो क्षत्रियआदि भाइयोंकोभीदे परन्तु जो शूद्रास्त्रीमें पैदाहुआ ब्राह्मणका पुत्रहै उसको विज्ञानेश्वरने मिताक्षरामें इस देवलऋषिके वचनसे भूमिके भागका निषेध कहाहै कि शूद्रामें पैदाहुआ द्विजातियोंका पुत्र भूमिकेभाग योग्य नहीं होता–और अपनी जातिकेही सबधनको प्राप्तहोता है यही धर्म की व्यवस्थाहै–और जो मनुजी इसी अध्यायके १५५ श्लोकमें यह कहेंगे कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंका जो शूद्रापुत्रहै वह धनकाभागी नहींहोता किन्तु जो कुछधन अपनीप्रसन्नतासे पिता देदे वही उसका धन होता है–यह भी वचन उस शूद्रापुत्रके लिये है जिसको पिताने कुछ देदियाहो और जो पिताने अपनी प्रसन्नतासे न दिया होय तो शूद्रापुत्र भी एकअंशका भागी होताहै–वीरमित्रोदयकारने तो पुत्रके लिये शूद्राका विवाह निषिद्ध लिखाहै क्योंकि मनु और विष्णुके इन दोवचनोंसे यह प्रतीत होताहै कि जो द्विजाति हीनजातिकी स्त्रीके संग विवाह करते हैं वे संतान सहित कुलोंको शूद्र (निषिद्ध कुल) करते हैं और अत्रिऋषिका यह मत है कि शूद्राका विवाहकरतेही ब्राह्मण पतितहोताहै–और उतथ्यके पुत्र शौनक का यह मत है कि शूद्रामें संतान होनेसे पतित होता है–और भृगुका यह मत है कि शूद्राके पुत्रके पुत्र होनेपर पतित होताहै सिद्धांत यह है कि कुलकी भ्रष्टतामें कोई संदेह नहीं है–और ब्राह्मण को तो उक्त ऋषियोंकेही इस वचनसे शूद्राके विवाहका विशेषकर निषेध कहा है कि शूद्राको अपनी शय्यामें स्थापनकरके ब्राह्मण अधोगतिको प्राप्तहोताहै

१ चतुस्त्रिद्व्येकभागाःस्युर्वर्णशोब्राह्मणात्मजाः । क्षत्रियास्त्रिद्व्येकभागाविड्जास्तुद्व्येकभागिनः ॥

२ तिस्रोवर्णानुपूर्व्येणद्वेतथैकायथाक्रमम् । ब्राह्मणक्षत्रियविशांभार्याः स्वाशूद्रजन्मनः ॥

३ नप्रतिग्रहभूर्देयाक्षत्रियादिसुतायवै । यद्यप्येषांपितादद्यान्मृतेविप्रासुतोहरेत् ॥

४ शूद्र्यांद्विजातिभिर्जातोनभूमेर्भागमर्हति । सजातावाप्नुयात्सर्वमितिधर्मोव्यवस्थितः ॥

५ हीनजातिंस्त्रियंमोहादुद्वहंतोद्विजातयः । कुलान्येवनयंत्याशु ससंतानानिशूद्रताम् ॥ शूद्रावेदीपतत्यत्रेरुतथ्यतनयस्यच । शौनकस्यसुतोत्पत्त्या तदपत्यतयाभृगोः ॥

६ शूद्रांशयनमारोप्यब्राह्मणोयात्यधोगतिम् । जनयित्वासुतंतस्यांब्राह्मण्यादेवहीयते ॥

और शूद्रामें पुत्रकी उत्पत्ति होनेसे तो पतितही होजाताहै—और याज्ञवल्क्यऋषिने भी इसे वचनसे यह कहाहै कि द्विजातियोंको जो शूद्रसे स्त्रीका ग्रहण है यह मेरामत नहीं है क्योंकि स्त्रीमें अपनी आत्माही पुत्ररूपसे पैदा होती है—निदान जब द्विजातियोंकी शूद्रा स्त्रीही नहीं होसक्ती तो उसके अंशके विभागका भी वर्णनकरना वृथा प्रतीतहोताहै तथापि रति और धर्म के लिये जो विवाह हैं वे गौण होतेहैं और संतानार्थ जो विवाह है वही मुख्य होताहै—इससे रति वा धर्म के लिये विवाही हुई शूद्रामें प्रसंगवश पुत्रहोजाय तो वह भी पूर्वोक्त अंशकाभागी होताहै इसीसे मनुजी भी इसे वचनसे यह कहआये हैं कि कामनासे प्रवृत्तहुये द्विजातियोंकी क्रमसे अवर (नीच) वर्णकी स्त्रीहोतीहैं इससे यह स्पष्टहै कि सजातीय स्त्रीकाही विवाह मुख्यहै और शंखलिखित ऋषियोंने भी इसे वचन से यह कहाहै कि जो सजातीय भार्या, की जाती हैं वे सबके कल्याणकरनेवाली होतीहैं और यही मुख्य पक्ष है—और यह अनुकल्प (गौणपक्ष) है कि ब्राह्मणकी चार—क्षत्रियकी तीन—वैश्यकी दो—शूद्रकी एक स्त्री क्रमसे होती हैं—अर्थात् पिछली २ नीच होती हैं—और चारों वर्णोंकी स्त्रियोंके पुत्रों के जो धन विभागमें दोप्रकार मनुजी ने १५१—१५२ श्लोक में वर्णन किये हैं वे तभी करने जो क्षत्रियाका पुत्र निर्गुण और ब्राह्मणी का पुत्र सगुण हो—क्योंकि बृहस्पतिऋषिने इसे वचनसे यह कहाहै कि जो ब्राह्मणसे पैदाहुआ क्षत्रिया और वैश्याका पुत्र जन्मसे ज्येष्ठहो और गुणवान् होय तो ब्राह्मणी के पुत्रके समान भागका अधिकारी होताहै और ब्राह्मण वा क्षत्रियसे वैश्यामें पैदाहुआ पुत्र भी ज्येष्ठ वा गुणी होय तो क्षत्रिय, ब्राह्मणके पुत्रका समानभागी होता है—और बौधायनऋषिने भी इसे वचनसे यह कहाहै कि सजातिय और अनंतर वर्ण की स्त्रीमें पैदाहुये दोनों पुत्रों में यदि अनंतर वर्ण की स्त्रीका पुत्र गुणवान् होय तो वह भी ज्येष्ठके भागको ग्रहणकरे क्योंकि वही सबकी पालनाकरनेवाला होताहै जो गुणवान् हो और इस वचनमें यह कहनेसे कि अनंतर वर्ण की स्त्री का गुणवान् पुत्र ज्येष्ठ अंशकाभागी होताहै—यह भी सिद्ध होगया कि जो वैश्यसे शूद्रामें पैदाहुआ गुणवान् पुत्र, वह भी वैश्याके पुत्रका समानभागी होताहै—और यदि शूद्रा स्त्रीकाही एक पुत्रहोय तो वह भी पिताके धनमेंसे तृतीयभागका अधिकारी होताहै और दो भाग सपिंडोंके और सपिंडनहोयँ तो सकुल्योंके और सकुल्य भी न होयँ तो श्राद्ध आदि करनेवाले के होते हैं क्योंकि देवलऋषि ने इसे वचनसे यह कहाहै कि ब्राह्मणसे पैदाहुआ निषादही एकपुत्र तृतीयभागको और दोभाग सपिंड वा सकुल्य वा स्वधाका दाता ग्रहणकरे—और क्षत्रिय वा वैश्यका जो एकही शूद्राका पुत्रहोय तो वह आधेधनका भागी होताहै और शेष आधे धनको अन्य पत्नी आदि धनके अधिकारी ग्रहणकरें अर्थात् उस दूसरे आधे धनके विभागकी वही गति होती है जो पुत्रहीनके धनकी कहेंगे—और यही बात इसे

---

१ यदुच्यतेद्विजातीनांशूद्राद्दारोपसंग्रहः । नैतन्ममनतंयस्मात्तत्रात्माजायतेस्वयम् ॥

२ कामतस्तुप्रवृत्तानामिमाःस्युःक्रमशोऽवराः ॥

३ भार्याःकार्याःसजातीयाःसर्वेषांश्रेयस्यइति । पूर्वःकल्पस्ततोनुकल्पश्चतस्रोब्राह्मणस्यानुपूर्व्येण—तिस्रोराजन्यस्य—द्वेवैश्यस्य—एकाशूद्रस्येति ॥

४ विप्रात्क्षत्रियाज्जातोजन्मज्येष्ठोगुणान्वितः । भवेत्समांशोविप्रेणवैश्याजातस्तथैवच ॥

५ सवर्णापुत्रानंतरपुत्रयोरनंतरापुत्रश्चेद्गुणवान् सज्येष्ठांशंहरेत्तुगुणवानद्धिशेषाणांभर्ताभवतीति ॥

६ निषादएकपुत्रस्तुविप्रस्यसतृतीयभाक् । द्वौसपिंडःसकुल्योवास्वधादाताथवाहरेत् ॥

७ द्विजातीनांशूद्रस्त्वेकपुत्रोऽर्द्धहरोऽपुत्राऽर्थस्ययागतिःसार्द्धस्यद्वितीयस्येति ॥

वचनसे विष्णुऋषिने स्पष्ट कही है—यद्यपि मनुजी ने और योगीश्वर याज्ञवल्क्य आदि ऋषियों ने सजातीय और विजातीय स्त्रियोंके संग विवाह कहे हैं और उनसे पैदाहुये पुत्रोंके विभाग भी कहे हैं परन्तु वे सब जातिकी हीनताके जनक होनेसे आधुनिक समयमें प्रचलित नहीं हैं १५३ ॥

यद्यपिस्यात्तुसत्पुत्रोऽप्यसत्पुत्रोऽपिवाभवेत् । नाधिकंदशमाद्दद्याच्छूद्रापुत्रायधर्मतः १५४

प० । यद्यपि स्यात् तु सत्पुत्रः अपि असत्पुत्रः अपि वा भवेत् न अधिकं दशमात् दद्यात् शूद्रापुत्राय धर्मतः ॥

यो० । यद्यपि ब्राह्मणः सत्पुत्रः वा असत्पुत्रः अपि भवेत् तथापि शूद्रापुत्राय दशमात् अधिकं धर्मतः न दद्यात् ॥

भा० । ता० । चाहे ब्राह्मणके पुत्र विद्यमानहो चाहे पुत्र विद्यमान न हो—तथापि शूद्राकेपुत्रको दशवें भागसे अधिक भाग—धर्म के अनुसार न दे—इस वचनसे शूद्राके पुत्रको अधिक देनेका निषेध होनेसे क्षत्रिया और वैश्यामें जो ब्राह्मणके पुत्र हैं वे सब धनके स्वामी होजायँगे १५४ ॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशांशूद्रापुत्रोनरिक्थभाक् । यदेवास्यपितादद्यात्तदेवास्यधनंभवेत् १५५

प० । ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्रापुत्रः न रिक्थभाक् यत् एव अस्य पिता दद्यात् तत् एव अस्य धनं भवेत् ॥

यो० । ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्रापुत्रः रिक्थभाक् न भवति—अस्य (अस्मै) पिता यत् एव दद्यात् तत् एव अस्य धनं भवेत् ॥

भा० । ता० । ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्य—इनका जो शूद्रामें पैदाहुआ पुत्र है वह धनकाभागी नहीं होता किंतु पिता अपनी प्रसन्नता से जो कुछ उसकोदेदे वही उसकाधन होताहै—यहवचन, निर्गुण शूद्राके पुत्र अथवा विना विवाहीहुई शूद्रामें पैदाहुये पुत्रको दशमभागका—निषेधक है १५५ ॥

समवर्णासुयेजाताःसर्वेपुत्राद्विजन्मनाम् । उद्धारंज्यायसेदत्त्वाभजेरन्नितरेसमम् १५६ ॥

प० । समवर्णासु ये जाताः सर्वे पुत्राः द्विजन्मनाम् उद्धारं ज्यायसे दत्त्वा भजेरन् इतरे समम् ॥

यो० । द्विजन्मनां समवर्णासु स्त्रीषु ये पुत्राः जाताः ते सर्वे ज्यायसे (ज्येष्ठाय) उद्धारं दत्त्वा इतरे (ज्येष्ठसहिताः) समं भजेरन् ॥

भा० । ता० । समानवर्ण की स्त्रियोंमें पैदाहुये जो द्विजातियों के पुत्र हैं—वे ज्येष्ठभाईको पूर्वोक्त उद्धार देकर शेषधनको ज्येष्ठभाई सहित सबभाई समान बांटलें—इसउद्धार विभाग का जैसे कलियुगमें निषेध है वहप्रकार उद्धारविभाग प्रकरण में वर्णन करचुके हैं १५६ ॥

शूद्रस्यतुसवर्णैवनान्याभार्याविधीयते । तस्यांजाताःसमांशाःस्युर्यदिपुत्रशतंभवेत् १५७॥

प० । शूद्रस्य तु सवर्णा एव न अन्या भार्या विधीयते तस्यां जाताः समांशाः स्युः यदि पुत्रशतं भवेत् ॥

यो० । शूद्रस्य तु सवर्णा एव भार्या विधीयते अन्या न विधीयते तस्यां जाताः पुत्रशतं अपि भवेत् तदा अपि समांशाः स्युः (भवेयुः) ॥

भा० । ता० । शूद्रकी स्त्री तो समानवर्ण (शूद्रा) कीही स्त्री कही है न उत्तमवर्णकी और नीच जातिकी—उसशूद्रामें पैदाहुये शूद्रकेपुत्र चाहे सौभी क्योंनहों तथापि समानही विभागवाले होतेहैं अर्थात् न्यून वा अधिकरीतिसे परस्पर विभाग नहींकरसक्ते १५७ ॥

अथ द्वादशविधपुत्रस्वरूप,विभाग,प्रकरणम् ॥

पुत्रान्द्वादशयानाहनृणांस्वायम्भुवोमनुः । तेषांषड्बन्धुदायादाःषडदायादबान्धवाः१५८ ॥

प० । पुत्रान् द्वादश यान् आह नृणां स्वायंभुवः मनुः तेषां षट् बंधुदायादाः षट् अदायादबांधवाः ॥

यो० । स्वायंभुवः मनुः नृणां यान् द्वादश पुत्रान् आह-तेषां मध्ये आद्याः (औरसादयः) षट्-बंधुदायादाः बांधवा दायादाश्च भवंतीत्यर्थः-द्वितीयाः षट् (कानीनादयः) अदायादबान्धवाः अदायादाबांधवाः गोत्रधनहरानभवंतीत्यर्थः ॥

भा० । स्वायंभुवमनु ने जो बारहप्रकारके पुत्र मनुष्यों के कहेहैं उनमेंसे प्रथमके छःबंधु दायाद होतेहैं अर्थात् बांधव-सगोत्री-दायके भागी होतेहैं-और अगले छः अबन्धुदायाद होतेहैं अर्थात् गोत्र और दायकेभागी नहींहोते किंतु बांधव होतेहैं ॥

ता० । ब्रह्माके पुत्र स्वायंभुवमनुजीने जो द्वादशपुत्र मनुष्योंककहेहैं उनमेंसे पहिले छः (औरस आदिपुत्र) बांधव सगोत्री और दायाद होतेहैं अर्थात् बांधवहोनेसे सपिंड और समानोदकोंको-पिंड और जलदान देने के योग्य होतेहैं और यदि अन्य (पत्नीआदि) समीप का कोई न होय तो दाय (पिताकाधन) को भी ग्रहणकरतेहैं-क्योंकि पुत्रोंकोही पिता के धनके भागी, मनुजी आगे कहेंगे-और उत्तर (पिछले) (काननिआदि) छः गोत्र और दायके भागी नहींहोते परन्तु बांधव होतेहैं-तिस उदकदान और क्रियाआदि बांधवोंके कामको करसक्तेहैं-मेधातिथिने तो कानीनआदि पिछले छःओंको अदायाद और अबांधव कहाहै सो ठीकनहींहै क्योंकि बौधायनऋषिने इसवचनसे कानीन आदिकोंको भी गोत्रकेभागी कहाहै कि कानीन-सहोढ-क्रीत-पौनर्भव-स्वयंदत्त और निषाद-इन को गोत्रके भागी कहते हैं-अर्थात् बांधव कहते हैं १५८ ॥

औरसःक्षेत्रजश्चैवदत्तःकृत्रिमएवच । गूढोत्पन्नोऽपविद्धश्चदायादाबांधवाश्चषट्१५९ ॥

प० । औरसः क्षेत्रजः च एव दत्तः कृत्रिमः एव च गूढोत्पन्नः अपविद्धः च दायादाः बांधवाः च षट् ॥

यो० । औरसः चपुनः क्षेत्रजः-दत्तः-चपुनः कृत्रिमः-गूढोत्पन्नः चपुनः अपविद्धः-एते षट् -दायादाः चपुनः बांधवाः भवन्ति ॥

भा० । ता० । औरस-क्षेत्रज-दत्तक-कृत्रिम-गूढोत्पन्न-और अपविद्ध-ये छः दायाद (धनके भागी) और बांधव होते हैं १५९ ॥

कानीनश्चसहोढश्चक्रीतःपौनर्भवस्तथा । स्वयंदत्तश्चशौद्रश्चषडदायादबान्धवाः१६० ॥

प० । कानीनः च सहोढः च क्रीतः पौनर्भवः तथा स्वयंदत्तः च शौद्रः च षट् अदायादबांधवाः ॥

यो० । कानीनः-चपुनः सहोढः क्रीतः तथा पौनर्भवः-स्वयंदत्तः चपुनः अपविद्धः एतेषट् अदायादबांधवाः-भवंति ॥

भा० । ता० । काननि-सहोढ-क्रीत-पौनर्भव-स्वयंदत्त और शौद्र-ये छः अदायादबांधव होते हैं अर्थात् गोत्र और धनके भागी नहींहोते और बांधव होतेहैं १६० ॥

यादृशंफलमाप्नोतिकुप्लवैःसंतरन्जलम् । तादृशंफलमाप्नोतिकुपुत्रैःसंतरंस्तमः १६१ ॥

---

१ कानीनंचसहोढंचक्रीतंपौनर्भवंतथा । स्वयंदत्तंनिषादंचगोत्रभाजःप्रचक्षते ॥

प० । यादृशं फलं आप्नोति कुप्लवैः सन्तरन् जलम् तादृशं फलं आप्नोति कुपुत्रैः सन्तरन् तमः॥

यो० । कुप्लवैः जलं सन्तरन् मनुष्यः यादृशं फलं आप्नोति—कुपुत्रैः तमः सन्तरन् अपि तादृशं फलं आप्नोति ॥

भा० । तृणआदि की नावसे जलको तरताहुआ मनुष्य जैसे फलको प्राप्त होता है—निंदितपुत्रों से तम (दुःख) को तरताहुआ भी मनुष्य तिसीप्रकार के दुःखको प्राप्त होता है—अर्थात् कुपुत्रोंका फल दुःखही होता है ॥

ता० । अब यह वर्णन करतेहैं कि क्षेत्रजआदि पुत्र औरस पुत्रके तुल्य नहींहोसक्ते कि तृणआदि से बनाईहुई कुत्सित नावसे जलको तरताहुआ मनुष्य जैसे फलको प्राप्तहोता है अर्थात् डूबताहै तिसीप्रकार क्षेत्रजआदि पुत्रोंसे दुःख (संसार) तरताहुआ मनुष्यभी—दुःखरूप फलको प्राप्तहोता है—इसवचनसेयहकहा कि क्षेत्रजआदिपुत्र औरसपुत्रके समान संपूर्णकार्यकरनेयोग्यनहींहोते १६१॥

यद्येकरिक्थिनौस्यातामौरसक्षेत्रजौसुतौ। यस्ययत्पैतृकंरिक्थंसतद्गृह्णीतनेतरः १६२

प० । यदि एकरिक्थिनौ स्यातां औरसक्षेत्रजौ सुतौ यस्य यत् पैतृकं रिक्थं सः तत् गृह्णीत न इतरः॥

यो० । यदि औरसक्षेत्रजौ सुतौ एकरिक्थिनौ स्यातां तर्हि यस्य यत् रिक्थं पैतृकं सः तत्गृह्णीत इतरः न गृह्णीत ॥

भा० । यदि औरस और क्षेत्रज दोनों एक धनकेभागी होजायँ तो—जिसके जनक (पिता) का जो धनहो उसी धनको वह ग्रहणकरै अर्थात् क्षेत्रज—क्षेत्रिक पिताके धनको ग्रहण न करै ॥

ता० । अपुत्र मनुष्य ने परके क्षेत्र (स्त्री) में नियोगसे पैदाकिया जो पुत्रहै वह इसे याज्ञवल्क्य के वचनानुसार क्षेत्रजपुत्र होताहै उसक्षेत्रजपुत्रके अनन्तर क्षेत्रिक पिताके यदि औरसपुत्र होजाय तो वे क्षेत्रज और औरस यद्यपि एकही पिताके धनलेने योग्य होतेहैं तथापि जिसके जनक (पिता) का जो धनहै उसकोही वह ग्रहणकरै और इतरपुत्र ग्रहण न करै अर्थात् क्षेत्रजपुत्र क्षेत्रिक पिताकेधन को ग्रहण न करै और जो आगे मनुजी यह कहेंगे—(षष्ठंतुक्षेत्रजस्यांशं) कि औरसपुत्र दायके विभाग के समय क्षेत्रजको छठाभागदे यह बहुत पुत्रके होनेपर समझना—और पूर्वोक्त वचनसे याज्ञवल्क्य ने जो दोनों पिताओं के धनका भागी क्षेत्रजको कहाहै वह औरस पुत्रके अभावमें समझना—मेधातिथि गोविंदराजने तो इस श्लोकमें क्षेत्रपदसे अनियुक्ताका पुत्र लिया है अर्थात् पूर्वोक्त नियोग से जो पैदा न हुआ हो—वह ठीक नहीं है क्योंकि विना नियोग क्षेत्रजपुत्र नहीं होसक्ता और उसको—(अनियुक्तासुतश्च)इसवचनसे धनके ग्रहणका निषेधहोनेसे वह धनकाभागी भी नहीं होसक्ता १६२॥

एकएवौरसःपुत्रःपित्र्यस्यवसुनःप्रभुः। शेषाणामानृशंस्यार्थंप्रदद्यात्तुप्रजीवनम् १६३

प० । एकः एव औरसः पुत्रः पित्र्यस्य वसुनः प्रभुः शेषाणां आनृशंस्यार्थं प्रदद्यात् तु प्रजीवनम्॥

यो० । एकः औरसः एवपुत्रः पित्र्यस्य वसुनः प्रभुः भवति—शेषाणां तु आनृशंस्यार्थं प्रजीवनं प्रदद्यात् ॥

भा० । पिताके धनका—एक औरस पुत्रही—स्वामी होताहै और शेष पुत्रोंको दोषकी निवृत्तिके लिये भोजन वस्त्र मात्रही दे ॥

ता० । यह वचन इसलिये है कि यदि व्याधि आदि से प्रथम औरस पुत्र न हुआ हो और इसी से क्षेत्रज आदि पुत्रकरलिये हों फिर औषध आदिसे व्याधि के दूरहोनेपर औरस उत्पन्न होजाय तो

---

१ अपुत्रेणपरक्षेत्रेनियोगोत्पादितःसुतः। उभयोरप्यसौरिक्थीपिंडदाताचधर्मतः॥

इसप्रकार व्यवस्था करै कि एक औरसही पुत्र पिताके धनका स्वामी होताहै और षष्ठांशके भागी क्षेत्रजको छोड़कर शेष पुत्रोंको पापकी निवृत्ति के लिये प्रजीवन (भोजन वस्त्र) दे १६३ ॥

षष्ठंतुक्षेत्रजस्यांशंप्रदद्यात्पैतृकाद्धनात्। औरसोविभजन्दायंपित्र्यंपंचममेववा १६४॥

प० । षष्ठं तुं क्षेत्रजस्य अंशं प्रदद्यात् पैतृकात् धनात् औरसः विभजन् दायं पित्र्यं पंचमं एवं वा॥

यो० । औरसः दायं विभजनसन् क्षेत्रजस्य पैतृकात् धनात् षष्ठं अंशं वा पंचमं एव अंशं प्रदद्यात् ॥

भा० । ता० । दायका विभाग करताहुआ औरसपुत्र अपने पिताके धनमेंसे क्षेत्रज पुत्रको छठा वा पांचवां भागदे अर्थात् गुणी क्षेत्रजको पांचवां और निर्गुण को छठाभागदे १६४ ॥

औरसक्षेत्रजौपुत्रौपितृरिक्थस्यभागिनौ। दशापरेतुक्रमशोगोत्ररिक्थांशभागिनः१६५ ॥

प० । औरसक्षेत्रजौ पुत्रौ पितृरिक्थस्य भागिनौ दश अपरे तुं क्रमशः गोत्ररिक्थांशभागिनः ॥

यो० । पितृरिक्थस्यभागिनौ औरसक्षेत्रजौपुत्रौस्तः–अपरेदश (दत्तकादयः) क्रमशः गोत्ररिक्थांशभागिनः भवंति न रिक्थहराः ॥

भा० । ता० । औरस और क्षेत्रज ये दोही पुत्र पिताके धनके ग्रहणकरनेवाले होतेहैं और दत्तक आदि दश जो अन्यपुत्रहैं–वे क्रमसे गोत्रके भागी होतेहैं और पूर्व २ के अभावमें पर २ धनके भागी होतेहैं १६५ ॥

स्वक्षेत्रेसंस्कृतायांतुस्वयमुत्पादयेद्धियम्।तमौरसंविजानीयात्पुत्रंप्रथमकल्पितम्१६६

प० । स्वँक्षेत्रे संस्कृतायां तुं स्वयं उत्पादयेत् हि यं तं औरसं विजानीयात् पुत्रं प्रथमकल्पितम्॥

यो० । संस्कृतायां स्वक्षेत्रे (स्त्रियां) यं स्वयंहि (एव) उत्पादयेत् तं प्रथमकल्पितं औरसं पुत्रं विजानीयात् ॥

भा० । विवाहीहुई अपनी स्त्रीमें जिसको स्वयं पैदाकरै वह प्रथमकहाहुआ औरसपुत्र जानना अर्थात् उसको सबसे उत्तम समझना ॥

ता० । अब औरस आदि पुत्रोंका स्वरूप वर्णन करते हैं–कि कन्या अवस्थामें ही विवाही हुई अपनी स्त्रीमें जिस पुत्रको स्वयं पैदाकरै सबसे प्रथम वर्णन कियेहुये उस पुत्रको इस[1] बौधायनऋषिके वचनानुसार सवर्णामें उत्पन्न होनेसे औरस जाने क्योंकि योगीश्वर याज्ञवल्क्य ऋषि ने इस[2] वचनसे यह कहा है कि जो धर्मपत्नी में पैदाहो वह औरस पुत्र होताहै इसका अर्थ मिताक्षरा में विज्ञानेश्वरने यह लिखाहै कि अपने वर्णकी और धर्म विवाहसे विवाहीहुई पत्नीमें जो पैदाहुआहो वह औरस पुत्रहोताहै–परन्तु इसमें वीरमित्रोदयकारका तो यह कथनहै कि यदि सवर्णामें उत्पन्न कोही औरस पुत्रकहोगे तो मूर्द्धाभिषिक्त आदि जो अनुलोमजपुत्र हैं वे औरस न होंगे और उनको बौधायन आदिकोंने औरसपुत्र कहाहै क्योंकि वे सवर्णामें पैदा नहीं होते और धर्मसे विवाही स्त्रीमें उत्पन्न मूर्द्धाभिषिक्त आदि औरसके होतेभी इतर पुत्र धनकेभागी होजायँगे इससे बौधायनके वचनमें सवर्णापदसे श्रेष्ठ स्त्रीका ग्रहणहै अतएव इसी वचनमें मनुने संस्कृत स्त्रीमें उत्पन्नकोही औरस पुत्रकहाहै–और वासिष्ठजीने भी इस[3] वचनसे यह कहाहै कि ये बारह सनातन पुत्र स्वयं पैदा किये

---

१ सवर्णायांसंस्कृतायामुत्पादितमौरसंविद्यात् ॥

२ औरसोधर्मपत्नीजः–सवर्णाधर्मविवाहोढाधर्मपत्नीतस्यांजातऔरसःपुत्रइतिमिताक्षरा ॥

३ द्वादशैवपुत्राःपुराणदृष्टाःस्वयमुत्पादिताःस्वक्षेत्रेसंस्कृतायामौरसःप्रथमइति ॥

होतेहैं तिनमें पहिला संस्कृत (विवाहित) अपने क्षेत्र (स्त्री) में जो पैदाहो वह सबमें प्रथम औरस होताहै–और विष्णुने भी इसे वचनसे यह कहाहै कि अब द्वादश पुत्रोंको कहते हैं तिनमें अपनेक्षेत्र में जो स्वयं पैदाकिया वह सबसे प्रथम औरस होताहै–और देवलऋषिने भी इसे वचनसे यह कहा है कि विवाहित अपनीभार्यामें जो स्वयं पैदाकियाहो वह सबमें प्रधान और पिताके वंशका बढ़ानेवाला औरसनाम पुत्रहोताहै–और आपस्तंब ऋषिने भी इसे वचनसे यहकहाहै कि शास्त्रसे विहित और सजातीय स्त्रीके संग ऋतुके अनुसार गमनकरते हुये मनुष्यके जो पुत्रहों उनको धर्मका संबंध और दोनों माता पिताओं के दायकी प्राप्तिहोतीहै–पूर्वोक्त बहुत ऋषियोंके कथनानुसार और इन्हें वचनोंसे आपस्तंब और बौधायनऋषिके वचनमें सवर्णापद श्रेष्ठकाही बोधकहै–कि–हेपुत्र तू अंग१ से होताहै और हृदयसे जन्मताहै इससे तू पुत्रनामका आत्माही है इससे सौवर्षतक जीव जैसे पितरोंने पुष्करस्रज कुमारका गर्भाधानकरा तैसेही पुरुषकी आत्मा तू इसलोकमें जन्मताहै पिता और माताका आत्मा पुत्र होताहै और अनुग्रहसे पुन्नामकेनरकसे माता पिताकी रक्षाकरता है तिससे तेरा पुत्रनाम हुआ–सिद्धांत यह है कि पूर्वोक्त सवर्णापदसे उत्कर्षका ग्रहणहोनेसे असवर्णा स्त्रियोंमें पैदाहुये पुत्रोंका भी जो विभागका प्रकार (इस औरस प्रकरणमें) कहेंगे वह भी संगत होताहै–इसीसे रत्नाकरने सवर्णापदका अर्थ अपूर्वा लिखा है और उसका अर्थ यहकिया है जिसका कोई पूर्वपति नहो अर्थात् वाग्दान भी न हुआहो और पारिजात ग्रन्थमेंभी इसे रीतिसे यहकहाहै कि सवर्णा वही लेनी जो द्विजों की द्विजा–और शूद्रकी शूद्राहो–और यहनहीं कि ब्राह्मणकी ब्राह्मणी–और क्षत्रिय की क्षत्रिया–और वैश्यकी वैश्याहो–अन्यथा ब्राह्मणकी विवाहित क्षत्रियाके पुत्रोंकी द्वादशपुत्रों में गणना न होगी सिद्धांत यहहै कि मनु याज्ञवल्क्य–वीरमित्रोदयआदि की सम्मतिके अनुसार वहभी औरसपुत्र होताहै जो तीनों द्विजातियों की कन्याओंमें अनुलोमविधि से उत्पन्न होताहै और सजातीय स्त्री में उत्पन्न तो अवश्यही होताहै १६६ ॥

यस्तल्पजःप्रमीतस्यक्लीबस्यव्याधितस्यवा।स्वधर्मेणनियुक्तायांसपुत्रःक्षेत्रजःस्मृतः १६७

प० । यः तल्पजः प्रमीतस्य क्लीबस्य व्याधितस्य वा स्वधर्मेणनियुक्तायां सः पुत्रः क्षेत्रजः स्मृतः ॥

यो० । यः प्रमीतस्य–क्लीबस्य–वा व्याधितस्य स्वधर्मेणनियुक्तायां स्त्रियां तल्पजः सः क्षेत्रजः पुत्रः मन्वादिभिः स्मृतः ॥

भा० । मरे और नपुंसक–और ऐसे रोगी जिनको सन्तान पैदाकरनेकी सामर्थ्यनहो ऐसेमनुष्य की स्त्रीमें जो नियोग विधिसे पैदाहो वह क्षेत्रजपुत्र मनुआदिकों ने कहाहै ॥

ता० । जो पुत्र मृतक–नपुंसक–रोगी (कुष्ठीआदि) जिससे सन्तान न होसके ऐसे रोगसेग्रस्त

---

१ अथद्वादशपुत्राभवंतिस्वक्षेत्रेसंस्कृतायामुत्पादितःस्वयमौरसःप्रथमइति ॥

२ संस्कृतायांस्वभार्यायांस्वयमुत्पादितोहियः । औरसोनामपुत्रःसप्रधानःपितृवंशधृक् ॥

३ सवर्णाशास्त्रविहितांयथर्तुगच्छतःपुत्रास्तेषांधर्माभिसंबंधःदायेनाव्यतिक्रमश्चोभयोर्मातापित्रोः ॥

४ अंगादंगात्संभवसिहृदयादभिजायसे । आत्मावैपुत्रनामासिसंजीवशरदःशतम् ॥ आधत्तपितरोगर्भंकुमारंकनकस्रजम् । यथेहपुरुषस्यात्मातथात्वमिहजायसे ॥आत्मापुत्रइतिप्रोक्तः पितुर्मातुरनुग्रहात् । पुन्नाम्नस्त्रायसेयस्मात्पुत्रस्तेनासिसंज्ञितः ॥

५ सवर्णामपूर्वां–नपूर्वःपतिर्यस्याः सा–वाग्दत्तापियानभवतीत्यर्थः ॥

६ सवर्णात्रद्विजस्यद्विजा–शूद्रस्यशूद्रा–नतुब्राह्मणस्यब्राह्मणी क्षत्रियस्यक्षत्रिया वैश्यस्यवैश्या अन्यथाब्राह्मणादिपरिणीतक्षत्रियादिपुत्राणां द्वादशपुत्रांतर्भावोनस्यादिति ॥

इतने मनुष्यों की स्त्रीमें-धीसे अभ्यंगआदि पूर्वोक्त नियोगधर्मसे गुरुकी आज्ञानुसार जो पुत्र उत्पन्न हो उसे मनुआदि ऋषियों ने क्षेत्रज कहाहै-इसक्षेत्रज के पैदाकरनेकी विधि और विभाग इसी अध्याय के १२० श्लोकमें वर्णन करचुके हैं-इससे पुनः वर्णनकरने की आवश्यकता नहीं है १६७ ॥

मातापितावादद्यातांयमद्भिःपुत्रमापदि । सदृशंप्रीतिसंयुक्तंसज्ञेयोदत्त्रिमःसुतः १६८ ॥

प० । माता पिता वा दद्यातां यं अद्भिः पुत्रं आपदि सदृशं प्रीतिसंयुक्तं सः ज्ञेयः दत्त्रिमः सुतः ॥

यो० । माता वा पिता-सदृशं प्रीतिसंयुक्तं यंपुत्रं आपदि अद्भिः दद्यातां स. सुत दत्त्रिमः (दत्तकः) ज्ञेयः ॥

भा० । माता वा पिता जिस सजातीय पुत्रको आपत्तिके समय जलसे संकल्पपूर्वक अपनीप्रसन्नता से दें वह मनुआदिकों ने दत्तकपुत्रकहा है ॥

ता० । पूर्वोक्त इस[1] वसिष्ठऋषि के वचनानुसार माता वा पिता इनदोनोंके शुक्र शोणितसे पुरुष का सम्भव (जन्म) होताहै उसपुत्रके दान विक्रय त्यागमें माता वा पिता स्वामी होते हैं-इससे माता वा पिता जिसपुत्रको आपत्ति के समय (लेनेवाले के पुत्र न होनेपर) अपने समानजाति के जिसपुत्रको प्रसन्नतासे जलको लेकर संकल्प से अर्थात् दत्तकप्रकरण में उक्त विधिसे दें वहपुत्र दत्त्रिम मनुआदिकों ने कहा है-दत्तककी विधि और प्रकार (समय) हेतु-विभाग दत्तकप्रकरण में वर्णनकरआये हैं १६८ ॥

सदृशंतुप्रकुर्याद्यंगुणदोषविचक्षणम् । पुत्रंपुत्रगुणैर्युक्तंसविज्ञेयश्चकृत्रिमः १६९ ॥

प० । सदृशं तु प्रकुर्यात् यं गुणदोषविचक्षणम् पुत्रं पुत्रगुणैः युक्तं सः विज्ञेयः च कृत्रिमः ॥

यो० । सदृशं गुणदोषविचक्षणं पुत्रगुणैः युक्तं यं पुत्रं मनुष्यः पुत्रं कुर्यात् सः पुत्रः कृत्रिमः ज्ञेयः विद्वद्भिरिति शेषः ॥

भा० । पुत्रके गुण और दोषके जाननेमें चतुर और पुत्रकेगुणोंसे युक्त-और सजातीय-जिसपुत्र को मनुष्य पुत्रकरले वह कृत्रिम पुत्र जानना ॥

ता० । अपने सजातिय और गुणदोष में पंडित अर्थात् माता पिताके श्राद्धकरने और न करनेके गुण दोषोंके ज्ञाता और माता पिताकी सेवाआदि पुत्रके गुणों से युक्त जिसपुत्रको पुत्रकरले वह कृत्रिमपुत्र जानना याज्ञवल्क्यऋषि ने तो इस[2] वचनसे यहकहा है कि स्वयं कियाहुआ पुत्र कृत्रिम होताहै और इसकी टीका मिताक्षरा में यह लिखाहै कि पुत्रकी इच्छावाले मनुष्यने धनक्षेत्र आदि दिखाने के लोभआदि को देकर जिसको पुत्रकरलियाहो और वहलड़का माता पितासे रहितहो-वह कृत्रिमपुत्र होता है १६९ ॥

उत्पद्यतेगृहेयस्यनचज्ञायेतकस्यसः । सगृहेगूढउत्पन्नस्तस्यस्याद्यस्यतल्पजः १७० ॥

प० । उत्पद्यते गृहे यस्य न च ज्ञायेत कस्य सः सः गृहे गूढः उत्पन्नः तस्य स्यात् यस्य तल्पजः ॥

यो० । यस्य गृहे (भार्यायां) उत्पद्यते-सः कस्य इति न ज्ञायेत-गृहेगूढः उत्पन्नः सः यस्य तल्पजः (भार्योत्पन्नः) तस्य स्यात् ॥

---

१ शुक्रशोणितसम्भवःपुरुषोमातापितृनिमित्तकः तस्यप्रदानविक्रयपरित्यागेषुमातापितरौप्रभवतः ॥

२ कृत्रिमःस्यात्स्वयंकृतः ॥

भा० । जो पुत्र जिसमनुष्यकी स्त्रीमें सवर्णीजारसे अर्थात् अपनी जातिके जारसे उत्पन्नहो और यह प्रतीतिनहो कि किसका है घरमें गूढउत्पन्न (गूढोत्पन्न) वहपुत्र उसकाही पुत्रहोता है जिसकी स्त्रीमें पैदाहुआ है ॥

ता० । जिसमनुष्यके घरमेंही स्थित स्त्रीमें किसी सजातीय जारसे जो पुत्र उत्पन्नहोजाय और यहज्ञान नहो कि इससे उत्पन्नहुआहै परन्तु यहज्ञान तो हो कि सजातीय से पैदाहुआ है घरमें गूढ (गुप्त) उत्पन्न उसपुत्रको गूढोत्पन्न कहते हैं और वह उसीका पुत्रहोताहै जिसकी तल्प (स्त्री)में पैदाहुआहो—मिताक्षरा और वीरमित्रोदयमें भी वही गूढोत्पन्न पुत्र कहाहै जो सजातीय जारसे गुप्त उत्पन्नहुआहो क्योंकि याज्ञवल्क्यऋषिने इस[1] वचनसे यहकहा है कि यहविधि मैंने सजातीय पुत्रों की कही कि पूर्व २ औरसआदि पुत्रोंके अभावमें पर २ धनकाभागी होताहै यदि सजातीयसे उत्पन्न के निश्चयसे गूढोत्पन्न न मानाजाय तो याज्ञवल्क्यऋषि यह कैसे कहते कि सजातीयपुत्रों की यह विधि कही १७० ॥

मातापितृभ्यामुत्सृष्टंतयोरन्यतरेणवा । यंपुत्रंपरिगृह्णीयादपविद्धःसउच्यते १७१ ॥

प० । मातापितृभ्यां उत्सृष्टं तयोः अन्यतरेण वा यं पुत्रं परिगृह्णीयात् अपविद्धः सः उच्यते ॥

यो० । मातापितृभ्यां वा तयोः अन्यतरेण उत्सृष्टं यंपुत्रं पुरुषः परिगृह्णीयात् सः पुत्रः अपविद्धः मन्वादिभिः उच्यते ॥

भा० । माता पिता दोनों या उनमेंसे एकके त्यागेहुये पुत्रको जो ग्रहणकरले वह उसकाअपविद्ध पुत्र होता है ॥

ता० । माता पिता दोनों मिलकर अथवा एक २ जिसपुत्रको त्याग दें और उसको जो मनुष्य ग्रहणकरले वह उसका अपविद्धपुत्र मनुआदि ऋषियोंने कहाहै और इस[2] वचनसे वसिष्ठजी ने और इस[3] वचनसे विष्णुने यहकहा है कि माता पिताके त्यागेहुये पुत्रको जो ग्रहणकरले वह उसका अपविद्ध पुत्र होता है—और पंचम और ग्यारहवां उनके पाठकी अपेक्षा जानना १७१ ॥

पितृवेश्मनिकन्यातुयंपुत्रंजनयेद्रहः । तंकानीनंवदेन्नाम्नावोढुःकन्यासमुद्भवम् १७२ ॥

प० । पितृवेश्मनि कन्या तु यं पुत्रं जनयेत् रहः तं कानीनं वदेत् नाम्ना वोढुः कन्यासमुद्भवम् ॥

यो० । कन्या यं पुत्रं पितृवेश्मनि रहः जनयेत् कन्यासमुद्भवं नाम्ना कानीनं तं वोढुः पुत्रं वदेत् (कथयेत्) ॥

भा० । पिताके घरमें जिस पुत्रको कन्या एकांत (गुप्त) में पैदाकरै—कन्यासे पैदाहुये उस पुत्रको नामसे कानीन कहते हैं और वह वोढा का पुत्र होताहै ॥

ता० । पिताके घरमें जिसपुत्र को कन्या (अविवाहिता) अप्रकट पैदाकरै कन्यासे पैदाहुआ वह पुत्र नामसे (कानीन) होताहै और उसकाही पुत्र होताहै जिस वर के संग कन्याका विवाहहो—याज्ञवल्क्यऋषिने तो इस[4] वचनसे यहकहाहै कि कन्यासे पैदाहुआ जो कानीनहै वह मातामह (नाना) का पुत्र मानाहै और मिताक्षरा में यह लिखाहै कि यदि अविवाहितका होय तो मातामहका और

१ सजातीयेष्वयंप्रोक्तस्तनयेषुमयाविधिः ॥

२ अपविद्धःपंचमोयं मातापितृभ्यामपास्तंगृह्णीयात् ॥

३ अपविद्धस्त्वेकादशः पित्रामात्राचपरित्यक्तःसयेनगृहीतः ॥

४ कानीनःकन्यकाजातोमातामहसुतोमतः । यद्यनूढायांभवेत्सदामातामहस्यऊढायांतुवोढुरेवपुत्रः इतिमिताक्षरा ॥

विवाहितकापुत्रहोय तो जिससे विवाहहो उसकापुत्र होताहै—इन दोनों ऋषियों के वचनसे तो यही प्रतीतहुआ कि विनाविवाही और पिताके घरमें स्थितकन्यासे जो सजातीय जारसे उत्पन्नहो वह कानीनमातामहका पुत्रहोताहै और ब्रह्मपुराणमें इसकेविरुद्ध इसे वचनसे यहलिखाहै कि विनादानकी हुई कन्यामें जो सजातीय जारसे पिताके घरमें पैदाहो वह उसकाही पुत्रहोगा जिसको वह कन्या दीजायगी और नारद ऋषिने भी इसे वचनसे यह कहाहै कि कानीन—सहोढ—और गूढोत्पन्न इन तीनोंका पिता विवाहकरनेवाला होताहै और ये भी उसकेही धनके भागी होतेहैं—इन वचनोंमें यह बात तो ठीक है कि विना दानकीहुई कन्यामें पिताके घरमें जो सवर्ण जारसे पैदाहो वह कानीन होताहै परंतु यह बात विरुद्ध है कि जिसको विवाहीजाय उसका पुत्र होताहै और मिताक्षराका भी यह कथन ठीक नहीं है कि विना विवाही में पैदाहोय तो मातामहका और विवाहितमें पैदाहोय तो जिससे विवाहाहो उसका पुत्र होताहै क्योंकि जो विना विवाही कन्यामें पैदा न होय वह कानीन नहीं होसक्ता कन्या वही कहाती है जिसका विवाह न हुआ हो—यदि विवाहके अनंतर भी कन्या होजाय तो सब कोई किसी न किसी की कन्या होतीहै और पूर्वोक्त ब्रह्मपुराण के वचनमें जो यह कहाहै कि विनादान कीहुई से भी जो उत्पन्न वह कानीन होताहै—इसके संग भी विरोध है—और कल्पतरुग्रंथ में भी परस्पर विरुद्ध वचनोंको लिखकर विरोधका कुछ समाधान नहीं किया—उनवचनों में वसिष्ठजीके इसे वचनका यह अर्थ है कि जो विना विवाही पिताके घरमें कामदेवसे जिस पुत्रको पैदाकरै वह पांचवां कानीन मातामहका पुत्रहोताहै और दूसरे इसे वचनका अर्थ यह है कि जिसकी पुत्रहीन कन्या अपनीशय्यामें पुत्रको पैदाकरै वह मातामहका पुत्रहोताहै वह नानाकोपिंड दे और उसके धनको ग्रहणकरै और इसे नारदके वचनका यह अर्थ है कि जिसके पिताकी खबर न हो और माता मरगईहो वह कानीन मातामहको पिंडदे और उसके धनको ग्रहणकरै—और बौधायनऋषिके इसे वचनका यह अर्थ है कि विना विवाही और विना दी जिस कन्यामें गमनकरने से जो पुत्र पैदाहो वह कानीन होताहै—निदान ये सब वचन परस्पर विरोधकोही कहते हैं—इस विरोध का परिहार (दूर) वीरमित्रोदयमें इसप्रकार किया है कि वही कानीन मातामहका पुत्रहोताहै जो उस कन्यामें सजातीयसे पैदाहुआहो जिसका सर्वथादान न हुआहो अर्थात् सगाई भी न हुई हो और यही उन ऋषियोंका तात्पर्य है जिन्होंने कानीनको मातामहका पुत्रकहाहै—और वह कानीन वोढा (विवाहका कर्ता पति) का पुत्रहोताहै जो उस कन्यामें सजातीयसे पैदाहो जिसका मानसिक संकल्प (सगाई) वा प्रत्यक्ष संकल्प होगयाहो परन्तु सप्तपदी पर्यंत विवाहकी विधिसे वरकी भार्या न हुई हो और यही उन मनु आदि के वचनोंका तात्पर्य है जिनमें कानीन को वोढा का पुत्र कहा है और पूर्वोक्त नारदके वचनमें—अदत्तायां—और बौधायनके वचनमें—अनतिसृष्टायां—इन पदोंसे भी वही कन्या लीजाती है जो सप्तपदी पर्यंत विवाहकी विधिसे भार्या न हुई हो परन्तु संकल्पहोचुका

१ अदत्तायांतुयोजातःसवर्णेनपितुर्गृहे । सकानीनःसुतस्तस्ययस्मैमादीयतेपुनः ॥
२ कानीनश्चसहोढश्चगूढायांयश्चजायते । तेषांवोढापिताज्ञेय तेचभागहराःस्मृताः ॥
३ कानीनःपंचमःयापितृगृहेऽसंस्कृताकामादुत्पादयेत्सकानीनोमातामहस्यपुत्रोभवति ॥
४ अपुत्रादुहितायस्यपुत्रंविदेततल्पजः । पौत्रीमातामहस्तेनदद्यात्पिंडंहरेद्धनम् ॥
५ अज्ञातपितृकोयस्तुकानीनोमृतमातृकः । मातामहस्यदद्यात्सपिंडंरिक्थंहरेत्ततः ॥
६ असंस्कृतामनतिसृष्टांयांउपगच्छेत्तस्यांयोजातःसःकानीनइति ॥

हो और सर्वथा अदत्ता नहीं ली—और यही बात ठीक भी है कि संकल्पसे पिताके स्वत्वकी निवृत्ति और पतिके स्वत्वका प्रारंभहोगया और कन्याके पिताका भी सर्वथा स्वत्व नहीं गया इससे वह पुत्र कानीन भी कहाताहै और पिताके स्वत्वके प्रारंभसे पिताका भी पुत्र होताहै—और जिस कन्यामें कन्याके पिताकाही पूर्ण स्वत्व है उस कन्यामें पैदाहुआ पुत्र मातामहका पुत्र होसक्ता है—और इस मनुके वचनका भी यह तात्पर्यहै कि जिस कन्याका संकल्पहोचुकाहो और जो विवाहकी विधिसमाप्त न होनेसे वोढाकी भार्या न हुई हो उस कन्यासे पैदाहुआ जो पुत्र वह उसकाही पुत्रहोताहै जिसके संग कन्या विवाहीजाय अतएव मनुजी ने पिताके घरमें—(पितृवेश्मनि) यह लिखाहै क्योंकि विवाह की समाप्ति होनेपरही पतिके घरमें प्रवेशहोताहै—और पूर्वोक्त मिताक्षरा ग्रंथका भी यही अर्थ है कि अनूढामें अर्थात् पतिको प्राप्त न हुई हो और संकल्प होचुकाहो उस कन्या में जो पुत्र पैदाहो वह मातामह (नाना) का पुत्र होताहै और जो पतिको प्राप्त होगईहो अर्थात् विवाहकी विधि समाप्त होचुकीहो और पतिके घर न पहुंचीहो उसका जो पुत्र वह वोढा (पति) का होताहै—और जो विवाह की विधिके अनंतर पतिके घर पहुंचगई हो और वहां ही सजातीय जारसे पुत्र पैदाहोजाय तो वह गूढोत्पन्न कहाताहै—इससे संपूर्ण वचन—परस्पर विरोधकी निवृत्तिहोनेसे संगत (ठीक) होगये १७२॥

यागर्भिणीसंस्क्रियतेज्ञाताज्ञातापिवासती। वोढुःसगर्भोभवतिसहोढइतिचोच्यते १७३

प०। या गर्भिणी संस्क्रियते ज्ञाता अज्ञाता अपि वा सती वोढुः सः गर्भः भवति सहोढः इति च उच्यते॥

यो०। ज्ञाता वा अज्ञाता अपि वा सती या कन्या गर्भिणी पित्रा संस्क्रियते सः गर्भः वोढुः (विवाहकर्तुः) पुत्रःभवति चपुनः सहोढः इति मन्वादिभिः उच्यते (कथ्यते)॥

भा०। प्रसिद्ध वा अप्रसिद्ध गर्भवाली जिसकन्याका विवाहकियाजाय उस कन्याके गर्भसे उत्पन्न जो पुत्र वह सहोढ कहाताहै और वोढा (विवाहकर्ता वर) का पुत्र होताहै॥

ता०। जिस कन्याका ज्ञात वा अज्ञात गर्भवाली काही पिता संस्कार करै वह गर्भ अर्थात् गर्भमें से पैदाहुआ पुत्र वोढा (विवाह का कर्ता पति) काही होताहै और मनु आदिकोंने उसको सहोढपुत्र कहाहै—याज्ञवल्क्यऋषिने भी इस[1] वचनसे यह कहाहै कि—जो विवाहके समय गर्भमें स्थितहो और विवाहसे पहिले जारसे उत्पन्न वह गर्भहो और विवाहकेसमय स्त्रीके मिलनेके समय वोढाकोमिले वह सहोढ होताहै—और विष्णुने भी इस[2] वचनसे यह कहाहै कि सातवां वह सहोढपुत्र पाणिग्रह (विवाहनेवाला) का होताहै जो गर्भिणी विवाहीहुई कन्याका पुत्रहो १७३॥

क्रीणीयाद्यस्त्वपत्यार्थमातापित्रोर्यमन्तिकात्। सक्रीतकःसुतस्तस्यसदृशोऽसदृशोऽपिवा १७४

प०। क्रीणीयात् यः तु अपत्यार्थं मातापित्रोः यं अंतिकात् सः क्रीतकः सुतः तस्य सदृशः असदृशः अपि वा॥

यो०। यः पुरुषः मातापित्रोः अंतिकात् यं (पुत्रं) अपत्यार्थं क्रीणीयात् सः पुत्रः तस्य (क्रेतुः) सदृशः (गुणैःतुल्यः) वा असदृशः (गुणैर्न्यूनः) क्रीतकः (मौल्यः) सुतः भवतीति शेषः॥

---

१ गर्भेविन्नःसहोढजः॥
२ सहोढःसप्तमःगर्भिणीयासंस्क्रियतेतस्याःपुत्रःसतुपाणिग्रहस्य॥

भा०। माता पिताके सकाशसे संतानकेलिये जो पुत्र मोललियाजाय चाहै पुत्रके गुणोंसे तुल्य हो वा अतुल्यहो वह उसका क्रीतकपुत्र होताहै ॥

ता०। जो मनुष्य माता पिताके सकाशसे जिसपुत्रको सन्तानके लिये क्रयकरले अर्थात् मोललेले पुत्रकेगुणोंसे तुल्यहो वा अतुल्य वहक्रीतकपुत्र उसकाहीहोताहै जिसनेमोलदेकर लियाहो—इसश्लोक में सदृश और असदृशपदों से सजातीय और विजातीयका ग्रहणनहींहै किंतु गुणोंसे तुल्य और गुणों से न्यूनका ग्रहणहै क्योंकि याज्ञवल्क्यऋषिने इसे वचनसे यहकहा है कि सजातीय पुत्रोंकेही धन विभागकी यहविधि मैंनेकहीहै इससे सबपुत्रोंको सजातीय कहनेसे इसको सजातीयही समझना—और बौधायनऋषिने भी इसे वचन से यहकहा है कि माता पिता दोनों के वा एक कोई के हाथसे संतानकेलिये जो पुत्र मोललियाजाय वह क्रीतक पुत्रहोताहै १७४ ॥

यापत्यावापरित्यक्ताविधवावास्वयेच्छया। उत्पादयेत्पुनर्भूत्वासपौनर्भवउच्यते १७५॥

प०। या पत्या वा परित्यक्ता विधवा वा स्वया इच्छया उत्पादयेत् पुनः भूत्वा सः पौनर्भवः उच्यते ॥

यो०। पत्या (भर्त्रा) परित्यक्ता वा विधवा स्वया इच्छया अन्यस्य भार्या भूत्वा पुत्रं उत्पादयेत् सः पौनर्भवः उच्यते मन्वादिभिरिति शेषः ॥

भा०। पतिकी त्यागीहुई वा विधवा अपनी इच्छासे पुनः अन्यकी भार्याहोकर जिसपुत्रको पैदा करै उसको पौनर्भव कहते हैं ॥

ता०। पतिकी किसीकारणसे त्यागीहुई वा विधवा अपनी इच्छासे दूसरेकी भार्याहोकर जिस पुत्रको उत्पन्नकरै वह पौनर्भव पुत्र पैदाकरनेवालेका होताहै—वीरमित्रोदयमें पुनर्भूके दोभेद लिखेहैं एक तो वहहोतीहै जो विवाहितहो परन्तु अक्षतयोनिहो अर्थात् जिसको पुरुष का सम्बन्ध न हुआ हो और प्रथमपतिसे अन्य पतिकेसंग जिसका विवाहहुआहो—और दूसरी वहहोती है जिसको विवाहसे पहिलेही पुरुषके संभोगका दूषण लगगयाहो—इनदोनों पुनर्भुवों में पैदाहुआ पुत्र पौनर्भव होताहै क्योंकि याज्ञवल्क्यऋषिने इसे वचनसे यहकहाहै कि अक्षत (पुरुषके सम्बन्धरहित) वा क्षत (पुरुषसम्बन्धवाली) स्त्रीमें जो उत्पन्नहो वह पौनर्भवपुत्र होताहै—और कात्यायनऋषिने भी इसे वचनसे यहकहाहै कि क्लीब वा पतित पतिको छोड़कर जो स्त्री अन्यपतिको प्राप्तहो वह पुनर्भूहोती है उसमें पैदाहुआ पुत्र—पौनर्भव पैदाकरनेवालेका होताहै १७५ ॥

साचेदक्षतयोनिःस्याद्गतप्रत्यागतापिवा। पौनर्भवेनभर्त्रासापुनःसंस्कारमर्हति१७६ ॥

प०। सा चेत् अक्षतयोनिः स्यात् गतप्रत्यागता अपि वा पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारं अर्हति॥

यो०। चेत् (यदि) सा अक्षतयोनिः स्यात् वा गतप्रत्यागता अपि स्यात् तथापि पौनर्भवेन भर्त्रा पुनः संस्कारं अर्हति—पुनर्विवाहयोग्या भवतीत्यर्थः ॥

---

१ सजातीयेष्वयंप्रोक्तस्तनयेषुमयाविधिः ॥
२ मातापित्रोर्हस्तात् क्रीतोन्यतरस्य वायोऽपत्यार्थेगृह्यते सक्रीतकइति ॥
३ अक्षतायांक्षतायांवाजातःपौनर्भवःसुतः ॥
४ क्लीबंविहायपतितं यापुनर्लभतेपतिम् । तस्यांपौनर्भवोजातो व्यक्तमुत्पादकस्यसः ॥

भा० । वह पुनर्भू स्त्री अक्षतयोनिहो वा चलीगईहो और फिर लौटआईहो—वहस्त्री उसपहिले भर्त्ताके संगही पुनः विवाहके योग्य होतीहै ॥

ता० । जो वहस्त्री अक्षतयोनिहो (पुरुषसम्बन्धहीन) और अन्य पुरुषका आश्रयलेकर अथवा कुमार जो प्रथमपति उसको त्याग और अन्यका आश्रयलेकर फिर उस प्रथमपतिके समीपही आगईहो तो वहस्त्री उस पौनर्भव (दुबारापतिहोनेवाला) भर्त्ताकेसंग पुनः संस्कार (विवाह) करनेके योग्य होती है १७६ ॥

मातापितृविहीनोयस्त्यक्तोवास्यादकारणात्। आत्मानंस्पर्शयेद्यस्मैस्वयंदत्तस्तुसस्मृतः१७७

प० । मातापितृविहीनः यः त्यक्तः वा स्यात् अकारणात् आत्मानं स्पर्शयेत् यस्मै स्वयंदत्तः तु सः स्मृतः ॥

यो० । मातापितृविहीनः वा अकारणात् त्यक्तः यः यस्मै आत्मानं स्पर्शयेत् (दद्यात्) सः स्वयंदत्तः स्मृतः ॥

भा० । जिसके माता पिता मरगयेहों अथवा विनाकारण माता पिताने जिसको त्यागदियाहो वह बालक जिसको अपनी आत्माको समर्पण करदे वह स्वयंदत्त पुत्रहोता है ॥

ता० । जो बालक माता पिताने त्यागके योग्यकारणके विनाही द्वेषआदिसे त्यागदियाहो अथवा जिसके माता पिता मरगयेहों और वह लड़का अपने आत्माको जिसके अर्पणकरदे अर्थात् यहकहदे कि मैं आपका पुत्रहूंगा वह उस ग्रहण करनेवालेका स्वयंदत्त पुत्र मनुआदिकऋषियों ने कहा है—याज्ञवल्क्यऋषिने भी इस वचनसे यहीकहा है कि जिसने अपने आत्माको देदियाहो वह स्वयंदत्त पुत्र होताहै १७७ ॥

यंब्राह्मणस्तुशूद्रायांकामादुत्पादयेत्सुतम्।सपारयन्नेवशवस्तस्मात्पारशवःस्मृतः१७८

प० । यं ब्राह्मणः तु शूद्रायां कामात् उत्पादयेत् सुतम् सः पारयन् एव शवः तस्मात् पारशवः स्मृतः ॥

यो० । ब्राह्मणः शूद्रायां (विवाहितायां) यंसुतं कामात् उत्पादयेत् यस्मात् पारयन् (जीवन) एव सः शवः मृतः तस्मात् मन्वादिभिः पारशवः स्मृतः (कथितः) ॥

भा० । ब्राह्मण विवाहित शूद्रामें जिसपुत्रको कामसे पैदाकरै—जीवताही शव वहपुत्र मनुआदिकोंने पारशव कहाहै ॥

ता० । इस वचनमें शूद्राभी इस याज्ञवल्क्यके वचनानुसार विवाहितहीलेनी अर्थात् यहविधि मैंने विवाहित स्त्रियोंमें पैदाहुये पुत्रोंकी कही है—ऐसी शूद्रामें जो ब्राह्मण कामनाकेलिये जिसपुत्र को पैदाकरै जीवताही शव (मुर्दा) के तुल्य वहपुत्र होताहै इससे पारशव मनुआदिऋषियोंने कहा है—यद्यपि यहपुत्र भी पिताके उपकारार्थ श्राद्धआदि करताहै तथापि संपूर्ण उपकार नहीं करसकता इससे पारशव कहाताहै—इस पारशवपुत्रको याज्ञवल्क्यऋषिने द्वादशपुत्रोंके मध्यमें इसलिये नहीं लिखा कि उक्तऋषिने सबपुत्रोंको वर्णनकरके यहकहा है कि यहविधि सजातीयपुत्रोंकी मैंनेकही

---

१ दद्यात्मातुस्वयंदत्तः ॥
२ विन्नास्वेषविधिःस्मृतः ॥

है–और शूद्रामें उत्पन्न पारशव किसीप्रकारभी सजातीय नहीं होसकता–और द्विजातिका जो शूद्रा पुत्रहै उसको धनभागी भी नहीं कहाहै किन्तु शूद्रसे जो दासीमें उत्पन्नहोताहै उसकोही इस[1] वचन से याज्ञवल्क्यने धनकाभागी कहाहै–और बौधायनऋषिने भी इस[2] वचनसे यहकहाहै कि ब्राह्मण से जो शूद्रामें पैदाहो वह पारशवपुत्र कहाहै १७८ ॥

दास्यांवादासदास्यांवायःशूद्रस्यसुतोभवेत्।सोऽनुज्ञातोहरेदंशमितिधर्मोव्यवस्थितः१७९॥

प० । दास्यां वा दासदास्यां वा यः शूद्रस्य सुतः भवेत् सः अनुज्ञातः हरेत् अंशं इति धर्मः व्यवस्थितः ॥

यो० । दास्यां वा दासदास्यां शूद्रस्य यः सुतः भवेत् परिणीतापुत्रैः अनुज्ञातः सः अंशंहरेत् इतिधर्मः व्यवस्थितः ॥

भा० । ता० । दासीमें वा दासकी दासीमें जो पुत्र शूद्रके सकाशसे पैदाहो वह शूद्रकी विवाहित स्त्रीके पुत्रोंकी आज्ञासे अन्यभाइयोंके समान अंशका ग्रहणकरे १७९ ॥

क्षेत्रजादीन्सुतानेतानेकादशयथोदितान्।पुत्रप्रतिनिधीनाहुःक्रियालोपान्मनीषिणः१८०

प० । क्षेत्रजादीन् सुतान् एतान् एकादश यथोदितान् पुत्रप्रतिनिधीन् आहुः क्रियालोपात् मनीषिणः ॥

यो० । यथोदितान क्षेत्रजादीन् एतान एकादशसुतान क्रियालोपात् हेतोः पुत्रप्रतिनिधीन मनीषिणः आहुः– (कथयंतिस्म) ॥

भा० । पूर्वोक्त ये क्षेत्रज आदि जो ग्यारहपुत्र हैं उनको क्रियाके लोपसे बुद्धिमान् ऋषियोंने पुत्र का प्रतिनिधि कहा है ॥

ता० । मनीषियोंने पूर्वोक्त इन क्षेत्रज आदि एकादश पुत्रोंको औरसपुत्रके प्रतिनिधि (गौणपुत्र) इसलिये कहाहै कि पुत्र पैदाकरनेकी विधि और पुत्रके करनेयोग्य श्राद्ध आदिका लोप न होय और स्मृतिचंद्रिकाकारने तो इसवचनका यह अर्थ लिखा है कि औरसपुत्रके अभावमें औरसके करनेयोग्य श्राद्ध आदि क्रियाके लोपसे डरतेहुये मनीषियोंने अर्थात् बुद्धिमान् ऋषियोंने पूर्वोक्त ग्यारह–पुत्र के प्रतिनिधि कहेहैं–और बृहस्पतिने इन[3] वचनोंसे यहकहाहै कि जो मनुजीने क्रम से १३ तेरहपुत्र कहेहैं उनमें संतानका कारण एक औरसही पुत्रहोताहै और दशपुत्रिका (कन्या) के तुल्य होतेहैं–इसवचन से क्षेत्रज और पुत्रिकारूप पुत्र भी संतानके कारण जानने–और जैसे सत्पुरुष घीके विना तेलको प्रतिनिधि करलेते हैं इसप्रकार कन्या और औरसपुत्रके अभावमें ग्यारह पुत्रोंको भी प्रतिनिधि कहाहै और ब्रह्मपुराण में भी इन[4] वचनोंसे यह कहा है कि दत्तक–स्वयंदत्त–कृत्रिम–क्रीत–

---

१ जातोपिदास्यांशूद्रेण कामतोंशहरोभवेत् ॥

२ द्विजातिप्रवराच्छूद्रायां जात कामात्पारशवइति ॥

३ पुत्रास्त्रयोदशप्रोक्तामनुनायेनुपूर्वशः । संतानकारणंतेषामौरसःपुत्रिकादश ॥ आज्यंविनायथातैलंसद्भिःप्रतिनिधिः स्मृतः । तथैकादशपुत्रास्तुपुत्रिकौरसयोर्विना ॥

४ दत्तकश्चस्वयंदत्तःकृत्रिमःक्रीतएवच । अपविद्धाश्चयेपुत्राभरणीयाःसदैवहि ॥ भिन्नगोत्राःपृथक्पिंडाःपृथग्वंशकरास्तथा । सूतकेमृतकेवापित्र्यहाशौचस्यभागिनः । अपित्र्याश्चदातॄणांक्षेत्रबीजवतांतथा ॥ शूद्रोदासःपारशवोविप्राणांविद्यते क्वचित् ॥ राज्ञांनृशाप्रदग्धानांनित्यंक्षयवतांतथा । अथसंग्रामशीलानांकदाचिद्वाभवंतिते ॥ औरसोयदिवापुत्रस्त्वथवापुत्रिकासुतः । नविद्यतेनत्रतेषांविज्ञेयाःक्षेत्रजादयः ॥ एकादशपृथग्भावा वंशमात्रकरास्तुते । श्राद्धादिदासवत्सर्वैःतेषांकुर्वंतिनि-

और अपविद्ध—इनपुत्रोंकी सदैव पालनाकरै और इनके गोत्र पिंड और वंश ये तीनों पितासे भिन्न होतेहैं और पिताके जन्ममरण के सूतकमें इनको एकदिनका आशौच होताहै—और वस्त्र अन्नकेदेने वाले और क्षेत्र और बीज वाले ब्राह्मणोंका कदाचित्‌ही शूद्र—दास—पारशव—पुत्रहोते हैं और शापसे दग्ध और प्रतिदिन क्षयवाले और संग्राममें लडनेवाले राजाओंका भी कदाचित्‌ही—पारशव—पुत्र होताहै यदि औरसपुत्र अथवा पुत्रिकापुत्र जिनके न होय उनकेही क्षेत्रज आदि पुत्र जानने—और क्षेत्रज आदि एकादश ११ पुत्र पृथक् २ अभिप्रायवाले और वंशके करनेवाले होतेहैं और वे अपने२ पिताओंके श्राद्ध आदि दासके समान करते हैं—और गूढोत्पन्न—कानीन—सहोढ—और पौनर्भव—ये पांचोंपुत्र राजदंडके भयसे वैश्योंको वर्जित हैं—और शेष छः ६ पुत्र वैश्योंके भी होतेहैं—और दास है वृत्ति जिनकी और परपिंड (अन्न)के भक्षणकरनेवाले और दूसरेके आधीनहै शरीर जिनका ऐसे शूद्रों को तो कदाचित् भी पुत्रका प्रतिनिधि न करना तिससे दास और दासकी दासी का पुत्र दासही होताहै—सिद्धांत यह है कि औरस और पुत्रिकापुत्र इन दोनों के विना शेष पुत्र अगति (लाचार)की गति है १८० ॥

यएतेऽभिहिताःपुत्राःप्रसंगादन्यबीजजाः। यस्यतेबीजतोजातास्तस्यतेनेतरस्यतु १८१ ॥

प० । ये एते अभिहिताः पुत्राः प्रसंगात् अन्यबीजजाः यस्य ते बीजतः जाताः तस्य ते न इतरस्य तु ॥

यो० । प्रसंगात् अन्यबीजजाः ये एते पुत्राः अभिहिताः ते यस्य बीजतः जाताः तस्यैव पुत्राः भवंति इतरस्यपुत्राः न भवंति॥

भा० । जो ये प्रसंगवश अन्यके बीजसे पैदाहुये पुत्र वर्णन किये हैं वे जिसके बीजसे हुयेहों उसकेही पुत्र होतेहैं इतर के नहीं ॥

ता० । जो ये क्षेत्रज आदि अन्यके बीजसे पैदाहुये पुत्र औरस पुत्रके प्रसंगसे वर्णन किये हैं वे जिससे पैदा होतेहैं उसके ही पुत्र होतेहैं और इतर क्षेत्रिक (स्त्रीका पति) आदि के नहीं होते—इस वचनमें अन्य बीजजाः इसपदसे अन्यके बीजसे पैदाहुये नहीं लेने किन्तु ग्यारह प्रकारके पुत्रलेने क्योंकि अपने बीजसे पैदाहुये भी पूर्वोक्त पौनर्भव और शूद्र (पारशव) ये दोनों पूर्वोक्त बृहस्पति के (आज्यंविना) इस वचनके अनुसार वर्जित लिखेहैं १८१ ॥

भ्रातॄणामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान्भवेत्। सर्वांस्तांस्तेनपुत्रेणपुत्रिणोमनुरब्रवीत् १८२ ॥

प० । भ्रातॄणां एकजातानां एकः चेत् पुत्रवान् भवेत् सर्वान् तान् तेन पुत्रेण पुत्रिणः मनुः अब्रवीत् ॥

यो० । चेत् (यदि) एकजातानां भ्रातॄणांमध्येएकः पुत्रवान् भवेत् तान् सर्वान् तेन पुत्रेण पुत्रिणः मनुः अब्रवीत् ॥

भा० । यदि एकसे पैदाहुये भाइयों में एकभाई पुत्रवान् होय तो वे सब भाई उस एकपुत्रसेही पुत्रवाले मनुजी ने कहे हैं ॥

ता० । एक माता पितासे पैदाहुये भ्राताओंके मध्यमें यदि एकभाई पुत्रवान्हो और अन्य भाई पुत्रहीनहों तो उस एक पुत्रसेही सबको मनुने पुत्रवाले कहाहै—तिससे उस भ्रातृपुत्रके विद्यमानहोते

स्यशः ॥ गूढोत्पन्नश्चकानीनःसहोढःक्षेत्रजस्तथा । पौनर्भवश्चवैश्यानांराजदंडभयादपि ॥ वर्जिताःपंचशानेनांशेषाःसर्वेभवन्त्यपि । शूद्राणांदासवृत्तीनांपरपिण्डोपजीविनाम् ॥ परायत्तशरीराणांनकश्चित्पुत्रइत्यपि । तस्माद्दासस्यदास्याश्च जायतेदासएवहि ॥

संते क्षेत्रज आदि पुत्रके प्रतिनिधि न करने क्योंकि वही पिंडकादाता और धनकाभागी होताहै—और उसको धन जब मिलताहै यदि पत्नी—दुहिता—पिता—माता—भाई ये नहों क्योंकि याज्ञवल्क्यके इस वचनसे यही प्रतीत होताहै कि अपुत्रकाधन क्रमसे इनको मिलताहै कि पत्नी—दुहिता—पिता—माता—भाई—भाई के पुत्र गोत्रज—बंधु—शिष्य—सब्रह्मचारी इनसबमें पूर्व पूर्व के अभावमें उत्तरउत्तर को उक्त धन मिलताहै—इसका विशेष विचार अपुत्र धनके विभाग प्रकरणमें करेंगे १८२ ॥

सर्वासामेकपत्नीनामेकाचेत्पुत्रिणीभवेत् ।सर्वास्तास्तेनपुत्रेणप्राहपुत्रवतीर्मनुः १८३ ॥

प० । सर्वासां एकपत्नीनां एका चेत् पुत्रिणी भवेत् सर्वाः ताः तेन पुत्रेण प्राह पुत्रवतीः मनुः ॥

यो० । चेत् (यदि) एक पत्नीनां सर्वासां स्त्रीणां मध्ये एका पुत्रिणी भवेत् ताः सर्वाः तेन पुत्रेण मनुः पुत्रवतीः प्राह ॥

भा० । ता० । यदि समान है पति जिनका ऐसी सब स्त्रियोंमें एकस्त्री पुत्रवाली होय तो वे सब स्त्री उसी एक पुत्रसे मनुजी ने पुत्रवाली कही हैं १८३ ॥

अथ द्वादशपुत्रदायभागप्रकरणम् ॥

श्रेयसःश्रेयसोऽलाभेपापीयान्रिक्थमर्हति । बहवश्चेत्तुसदृशाःसर्वेरिक्थस्यभागिनः १८४

प० । श्रेयसः श्रेयसः अलाभे पापीयान् रिक्थं अर्हति बहवः चेत् तु सदृशाः सर्वे रिक्थस्य भागिनः ॥

यो० । श्रेयसः श्रेयसः पुत्रस्य अलाभे पापीयान् पुत्रः रिक्थं अर्हति चेत् (यदि) बहवः सदृशाः स्युः तर्हि सर्वे रिक्थस्यभागिनो भवंति ॥

भा० । श्रेष्ठ२ पुत्रके अभावमें अधम२ पुत्र धनके भागके योग्यहोताहै यदि बहुतसे सदृश (समान) पुत्रहोयँ तो सबधनके भागी होतेहैं ॥

ता० । अब बारहप्रकारके पुत्रोंका निरूपण करिके उनके दायका विभाग वर्णन करतेहैं श्रेष्ठ २ पुत्र के अलाभमें अर्थात् न होनेपर पापीयान् (गौण) पुत्र धनका भागी होताहै और इस वचन से विष्णु ऋषिने उसकोही श्रेष्ठ, अंशभागी, और इतर भाइयोंकी पालना करनेवाला, कहा है जो इन औरसआदि पुत्रोंके मध्य में यदि पहिले २ पुत्रका अभावहोय तो अग्रिम२ धनकाभाग ग्रहण करै और इतर पुत्रोंका पालनकरै इसीसे मनुने द्वादशपुत्रोंमें शूद्रापुत्र (पारशव) की गणना इस लियेकीहै कि क्षेत्रजआदि पुत्रोंके विद्यमान रहते शूद्रापुत्र धनकाभागी नहीं होसकता अन्यथा उस को क्षत्रिया और वैश्याके पुत्रोंकी तुल्य औरस होनेसे धनकाभाग मिलना योग्यथा—और क्षेत्रज और गुणवाले दत्तकपुत्रोंको तो पांचवां वा छठाभाग औरसपुत्रको स्वभागमेंसे देनाकहाहै—और यदि समानरूप पौनर्भवआदि बहुतसे पुत्रहोयँ तो वे सब विभागसे समान (बराबर) धनको ग्रहणकरें ॥

याज्ञवल्क्यऋषिने भी इस वचनसे पूर्व२ के अभावमें पर२ को पिंडकादाता और अंशकाभागी कहा है—और मिताक्षरामें भी यहलिखा है कि औरस और पूर्वोक्त पुत्रिका दोहोयँ तो दोनों इस

१ पत्नीदुहितरश्चैवपितरौभ्रातरस्तथा । तत्सुतागोत्रजाःबंधुःशिष्यसब्रह्मचारिणः ॥ एषामभावेपूर्वस्यधनभागुत्तरोत्तरः । स्वर्यातस्यह्यपुत्रस्यसर्ववर्णेष्वयंविधिः ॥

२ तेषांपूर्वःपूर्वःश्रेयान्सएवदायहरःसचान्यान्बिभृयात् ॥

३ पिंडदोंशहरश्चैषां पूर्वाभावेपरःपरः ॥

मनुके वचनानुसार सम (बराबर) विभागकरै और स्त्री (पुत्रिका)की ज्येष्ठता नहींहोती और अन्य पुत्रोंके मध्यमें भी पहिले२ पुत्रकेहोते वसिष्ठजीने पर२ को चतुर्थ अंशकाभागी इसँ वचनसे कहाहै कि यदि दत्तकलियेपर औरसपुत्र होजाय तो वहदत्तक चतुर्थअंशका भागीहोता है—और दत्तकपदसे संपूर्ण पुत्रके प्रतिनिधि समझने क्योंकि वे सबकेसब पुत्रकिये जातेहैं क्योंकि कात्यायनऋषिने इस वचनसे यहकहाहै कि औरसपुत्रके होनेपर सजातीय (दत्तकआदि) सबपुत्र चतुर्थांशके भागीहोते हैं और विजातिय (कानीनआदि) तो भोजन और वस्त्रके योग्यहोते हैं—और विष्णुऋषिने जो इसँ वचनसे कानीन—गूढोत्पन्न—सहोढ—पौनर्भव—इन अधमपुत्रोंको पिंड और धनकाभागी नहीं कहा है—वहभी तभीहै कि जब औरसपुत्र न होय यदि औरसपुत्र होजाय तो इनचारोंको भी चतुर्थांश न मिले—और औरसके अभावमें तो कानीनआदि सजातीय पुत्रोंकोभी पूर्वोक्त याज्ञवल्क्यके वचनानुसार पिताके सबधनका ग्रहणकरना युक्तहै—और मनुजीने जो इसँ वचनसे यहकहा है कि एक औरसपुत्रही पिताके धनका स्वामी होताहै और शेषपुत्रोंको तो दोष निवृत्तिकेलिये जीवनके अर्थ भोजन वस्त्रदे—इसकाभी यहअभिप्रायहै कि यदि दत्तकआदि औरसके प्रतिकूलहोयँ, वा निर्गुणहोयँ तोभोजनवस्त्रदे और अनुकूल और गुणवान्होयँतो चतुर्थांशदे—और क्षेत्रजकेविषयमेंतोमनुजीने इसँ वचनसेयहकहाहै कि औरसपुत्र पिताके धनमेंसे छठा वा पांचवांभाग—दायभागकेसमय क्षेत्रजकोदे अर्थात् प्रतिकूल और निर्गुण क्षेत्रजको छठाभाग- और गुणवान् प्रतिकूलको वा निर्गुण अनुकूलको पांचवां भागदे और मनुजीनेही द्वादश पुत्रोंमेंसे छःको अर्थात् औरस—क्षेत्रज—दत्तक—कृत्रिम—गूढोत्पन्न—अपविद्ध—इनको दायकेभागी और पिछले छःको अर्थात् कानीन—सहोढ—क्रीत—पौनर्भव—स्वयंदत्त—पौत्री—शौद्र (पारशव) इनको दायके अभागी कहाहै वहभी इस अभिप्रायसेहै कि—यदि अपने पिताके सपिंड—समानोदक आदि समीपके न होयँ तो पहिले छः धनके भागी होते हैं और पिछले छः नहीहोते और वही बांधव होताहै जो समान गोत्रहोकर जलदान करसकै वे दोनों इनँ श्लोकोंमें उक्त द्वादशपुत्रोंके समान हैं—और पूर्वोक्त इसँ वचनसे दत्तकको जनकपिताके गोत्र और धनका अभागी और देनेवाले पिताको पिंड और स्वधाका अभाव कहाहै—उस श्लोकमें भी दत्तक पदसे सबप्रकारके प्रतिनिधि पुत्रलेने—और सबही पुत्र पूर्व२ के अभावमें पिताके धनके भागी होते हैं—क्योंकि योगीश्वर याज्ञवल्क्यऋषिने इसँ वचनसे यहकहा है कि पिताके धनके स्वामी, न भाई न माता पिता, होतेहैं किंतु पुत्रहोते हैं इस वचनसे याज्ञवल्क्यऋषिने सबपुत्रोंको धनके भागी कहाहै—क्योंकि औरसपुत्रको तो इसँ वचनसेही धनकाभागी कहचुकेहैं कि एक औरसपुत्रही पिता

१ पुत्रिकायांकृतायांतुयदिपुत्रोनुजायते । समस्तत्रविभागःस्याज्ज्येष्ठतानास्तिहिस्त्रियाः ॥
२ उत्पन्नेत्वौरसेपुत्रेचतुर्थांशहराःसुताः । सवर्णाअसवर्णास्तुग्रासाच्छादनभाजनाः ॥
३ अप्रशस्तास्तुकानीनगूढोत्पन्नसहोढजाः । पौनर्भवश्चनैवैतेपिंडरिक्थांशभागिनः ॥
४ एकएवौरसःपुत्रःपित्र्यस्यवसुनःप्रभुः । शेषाणामानृशंस्यार्थंप्रदद्यात्तुप्रजीवनम् ॥
५ षष्ठंतुक्षेत्रजस्यांशंप्रदद्यात्पैतृकाद्धनात् । औरसोविभजन्दायंपित्र्यंपंचममेववा ॥
६ औरसःक्षेत्रजश्चैवदत्तःकृत्रिमएवच । गूढोत्पन्नोपविद्धश्चदायादाबांधवाश्चषट् ॥ कानीनश्चसहोढश्चक्रीतःपौनर्भवस्तथा । स्वयंदत्तश्चशौद्रश्चषडदायादबांधवाः ॥
७ गोत्ररिक्थेजनयितुर्नभजेद्दत्रिमःसुतः । गोत्ररिक्थानुगःपिंडोव्यपैतिददतःस्वधा ॥
८ नभ्रातरोनपितरःपुत्रारिक्थहराःपितुः ॥
९ एकएवौरसःपुत्रःपित्र्यस्यवसुनःप्रभुः ॥

के धनका स्वामी होताहै और दोनों षट्टों (छः२पुत्रोंका समूह) में भी दायाद (दायकेलेनेवाला) होना प्रसिद्धहै–यद्यपि वासिष्ठआदि ऋषियोंने द्वादशप्रकारके पुत्रोंके छः२के दोवर्ग व्यत्ययसे पढ़ेहैं तथापि उनवचनोंकी संगति गुणी और अगुणीके विचारसे जाननी अर्थात् जो धनभागियोंके समूह में पढ़ाहो वहगुणी और धनके अभागियोंमें पढ़ेहों वे निर्गुणी समझने और गौतमऋषिने जो पुत्रिका पुत्रको दशवां पढ़ाहै वह विजातीय पुत्रिकाका पुत्र समझना–तिससे यहबात सिद्धहुई कि पूर्व२ के अभावमें पर२ पुत्र धनका भागी होताहै और मनुजीने यहकहा है कि यदि सबभाइयोंमें एक पुत्रवान्होय तो उसपुत्रसे सब पुत्रवाले होतेहैं उसका भी यही तात्पर्यहै कि यदि भाईका पुत्र प्रतिनिधि होसकै तो इतरके पुत्रको कभी न करै–यदि भाईका पुत्रभी अपना पुत्रहोता तो याज्ञवल्क्यऋषि इस[1] वचनसे भाईके पुत्रोंको भाईके सुत (तत्सुताः) क्योंकहते प्रत्युत अपने सुत ऐसा कहते–वीरमित्रोदयमें तो मिताक्षरासे इतना विशेषहै कि बृहस्पतिने इस[2] वचनसे यहकहा है कि एक औरसपुत्रही पिताके धनमें स्वामीकहा है और पुत्रिका भी उसके तुल्य होती है–शेष पुत्र पालन करने योग्यहोतेहैं–पहिले मनुजीने (पुत्रिकायां) इसवचनमें यहकहाहै कि पुत्रिका कियेपीछे जो औरसपुत्र होजाय तो दोनोंका समान भागहोताहै और स्त्रीकी ज्येष्ठता नहींहोती– इस मनु और मिताक्षरामें कोई यहशंका करते हैं कि यदि औरसपुत्रसे पहिले पुत्रिकाका पुत्रहोजाय और पीछे औरसपुत्रहोय तो पुत्रिकाके पुत्रको ज्येष्ठ और स्त्री भिन्नहोनेसे ज्येष्ठता क्योंनहीं होती अर्थात् उसको ज्येठेका उद्धारभाग मिलना चाहिये–यहशंका ठीकनहीं है क्योंकि वह पुत्रिकाका पुत्र नाना का पौत्रहोताहै पुत्रनहीं मनुजीनेभी इस[3]वचनसे उसको पौत्रहीकहाहै कि पूर्वोक्तप्रकारसे पुत्रिकाकी हुई वा नकीहुई सजातियपतिसे जिसपुत्रकोपैदाकरै उसपुत्रसे मातामह(नाना)भीपौत्री(पौत्रवाला) होताहै वहपौत्रमातामहको पिंडदे और उसकेधनको ग्रहणकरै–अर्थात् पुत्रिकापुत्रहुई और उसकापुत्र (दौहित्र)भी पौत्रहोताहै –और पौत्रको ज्येष्ठहोनेपर किसीनेभीअधिकता(उद्धारदेना) कहींनहींसुना– इसमें कोई यह शंकाकरते हैं कि पुत्रिकाकरनेकी रीति के बोधक इस[4] वचनमें पुत्रिकाके पुत्रको भी पुत्रकहाहै कि भूषण वस्त्र से शोभित इसकन्याको इसलिये तुझे देताहूं कि इसमें जो पुत्रहो वह मेरापुत्रहो इसप्रतिज्ञासे जो कन्या दीजातीहै वही पुत्रिका कहातीहै–यह शंकाठीक नहीं है–क्योंकि मनुके विरोधसे इसवचनमें पुत्रपद गौण पुत्रका बोधकहै–क्योंकि पुत्र वही होताहै जिसमें पुंस्त्वहो और जो अपनेसे पैदाहो–जैसे पुत्रिका अपने से पैदाहोती है परंतु उसमें पुंस्त्वके न होनेसे मुख्य पुत्रत्व नहीं होता किंतु गौण पुत्रत्व होताहै इसीप्रकार पुत्रिकाके पुत्रमें पुंस्त्व है परंतु वह अपने से पैदा नहीं होता इससे इन दोनोंमें गौण पुत्रत्वही होताहै सिद्धांत यह है कि मुख्यपुत्रत्व तो एक औरसमेंही होताहै–इसीप्रकार दत्तकआदि अन्य पुत्रोंकोभी पूर्व पूर्व पुत्रके विद्यमान रहतेसंपूर्णभाग का अधिकार तो नहीं किंतु इस[5] वसिष्ठ वचनके अनुसार चौथेभाग का अधिकार होताहै कि यदि

१ तत्सुतागोत्रजाबन्धुशिष्यसब्रह्मचारिणः ॥
२ एकएवौरसःपित्र्येधनेस्वामीप्रकीर्तितः । तत्तुल्यापुत्रिकाप्रोक्ताभर्तव्यास्त्वपरेसुताः ॥
३ अकृतावाकृतावापियंविंदेत्सदृशात्सुतम् । पौत्रीमातामहस्तेनदद्यात्पिंडंहरेद्धनम् ॥
४ अभ्रातृकांप्रदास्यामितुभ्यंकन्यामलंकृताम् । अस्यांयोजायतेपुत्रःसमेपुत्रोभवेदिति ॥
५ तस्मिंश्चेत्प्रतिगृहीतेऔरसउत्पद्येतचतुर्थभागभागीस्याद्दत्तकः ॥

दत्तक आदि पुत्रोंके लेनेपर औरसपुत्र होजाय तो दत्तक चौथे भागका अधिकारी होताहै इस वसिष्ठ के वचनमें दत्तकपद क्रीत आदि पुत्रोंका भी उपलक्षण है—और उक्त कात्यायन के वचनमें भी औरसपुत्रके होनेपर इतर पुत्रोंको चौथाई भाग कहा है—और इसीसे विष्णुने इसै वचनसे यह कहाहै कि कानीन—गूढोत्पन्न—सहोढ—और पौनर्भव—अधम ये पुत्र पिंड और धनकेभागी औरसपुत्रके होने पर नहीं होते—और यदि औरस न होय तो कानीन आदिकोंकोही पिंड और धनकाभागी पूर्वोक्त याज्ञवल्क्यके वचनसे कहआयेहैं—यद्यपि ब्रह्मपुराणमें इसै वचनसे यह कहाहै कि औरसपुत्रहीसमग्र धनका भोक्ताहोताहै और क्षेत्रज तीसरे भागका और पुत्रिकाका पुत्र चौथेभागका होताहै—इसवचन से और मनुके वचनोंसे विरोध प्रतीत होताहै क्योंकि मनुने औरस और पुत्रिकाके पुत्रका समान भागकहाहै—और इसने चौथा—और मनुने क्षेत्रजको पांचवां वा छठभाग और इसने तीसरा—तथापि इसके विरोधका परिहार इसरीतिसे करना कि ब्रह्मपुराण में वही पुत्रिकाकापुत्र लेना जो अत्यंत निर्गुण औरसवर्णहो—और क्षेत्रज वह लेना कि जो अत्यंत गुणी और औरसपुत्रके अनुकूलहो—और दत्तकको तो औरसके अभावमें धनकाभागी मनुजी कहआये हैं चाहे वह अन्य गोत्रसे लियाहो वा सगोत्रसे परंतु जिससे वह पैदाहुआहो उसके धनको प्राप्त नहीं होता—इसका विशेष विचार दत्तक प्रकरणमें लिखआये हैं—और क्षेत्रज—औरसपुत्रका तो इसै वचनसे समानभाग आदि इत्यादि वचनोंसे समान भाग मनुजी कहआयेहैं इसीप्रकार न्यून अधिकभाग क्षेत्रज आदि पुत्रोंके बृहस्पति आदिकोंने जो वर्णन कियेहैं उनकी भी व्यवस्था जिसतिसप्रकार (निर्गुण और सगुणभेद) से करनी क्योंकि बृहस्पति ने इसै वचनसे यह कहा है कि क्षेत्रज आदि पांच वा छः पुत्र समानभागी होतेहैं और हारीतने इसै वचनसे यह कहाहै कि धनका विभाग करताहुआ पुरुष कानीनको २१ इक्कीसवां भाग पौनर्भवको बीसवां—द्व्यामुष्यायणको उन्नीसवां—पुत्रिका पुत्रकोसत्तरहवां—और शेषभाग औरसको दे—और ब्रह्मपुराण में इनै वचनोंमें यह कहाहै कि नीचसे पैदाहुआ भी औरसपुत्र सबधनका भोक्ता होताहै—और क्षेत्रज तीसराभाग—और पुत्रिकापुत्र चौथाभाग—कृत्रिम पांचवां—गूढज छठा—अपविद्ध सातवां—कानीन आठवां—सहोढनववां—और क्रीत दशवां—पौनर्भव ग्यारहवां—स्वयंदत्त बारहवां—और शूद्राका पुत्र चाहे गोत्रजहो और चाहे धर्मिष्ठ ब्रह्मचारीहो तेरहवां भाग पिताके धनमेंसे भोगताहै—इन वचनों के परस्पर विरोधका निवारण सगुण निर्गुणके भेदसे वा देशाचारसे करना अर्थात् गुणवान् पुत्रोंको अधिक और निर्गुणोंको न्यूनभागके बोधक ये वचन समझने—और हारीत

---

१ अप्रशस्तास्तुकानीनगूढोत्पन्नसहोढजाः । पौनर्भवश्चनैवैतेपिंडरिक्थांशभागिनः ॥

२ समग्रधनभोक्तास्यादौरसोपिजघन्यजः । त्रिभागंक्षेत्रजोभुंक्तेचतुर्थंपुत्रिकासुतः ॥

३ यवीयाञ्ज्येष्ठभार्यायांपुत्रमुत्पादयेद्यदि । समस्तत्रविभागःस्यादितिधर्मोव्यवस्थितः ॥

४ क्षेत्रजाद्याःसुताश्चान्येपंचषट्समभागिनः ॥

५ विभजिष्यमाणएकविंशङ्कानीनायदद्यात् विंशम्पौनर्भवाय एकोनविंशंद्व्यामुष्यायणाय अष्टादशंक्षेत्रजाय सप्तदशंपुत्रिकापुत्राय इतरानौरसायपुत्रायदद्युः ॥

६ समग्रधनभोक्तास्यादौरसोपिजघन्यजः । त्रिभागंक्षेत्रजोभुंक्तेचतुर्थंपुत्रिकासुतः ॥ कृत्रिमःपंचमंभागंषड्भागंगूढसंभवः । सप्तांशंचापविद्धस्तुकानीनश्चाष्टमांशकः ॥ नवभागंसहोढश्चक्रीतोदशममश्नुते । पौनर्भवस्तुपरतोद्वादशंस्वयमागतः ॥ त्रयोदशमभागंतुशौद्रोभुंक्तेपितुर्धनात् । तद्गोत्रजोवाधर्मिष्ठोब्रह्मचार्यथवापुनः ॥

ऋषिने तो इसै वचनसे यह कहाहै कि ये छः पुत्र बंधु और दायके भागीहैं कि साधु स्त्रीमें स्वयंपैदा किया (औरस)–क्षेत्रज–पौनर्भव–कानीन–पुत्रिकापुत्र–और गूढज–और ये छः पुत्र बंधु और दाय के भागी नहीं हैं कि–दत्तक–क्रीत–अपविद्ध–सहोढ–स्वयमुपगत–सहसादृष्ट–और सहसादृष्ट वह होताहै जो माता पितासे विहीनहो और अकस्मात् मिलगयाहो–और किसी ने प्रसन्नताकरके पुत्र करलियाहो अर्थात् कृत्रिम–इस हारीतके ग्रंथमें मनुका विरोध स्पष्ट है क्योंकि मनुने कानीन पौनर्भव को धनके अभागी कहा है और इसने धनके भागी–इसीप्रकार दत्तक–कृत्रिम–अपविद्धों में भी मनुके विपरीत कहाहै इस विरोधका भी परिहार सवर्ण आदि और देशाचार भेद से करना–और बौधायन ऋषिने तो इनै वचनोंसे वेही दायके भागी और अभागी कहे हैं जो मनुजी ने कहे हैं कि औरस–पुत्रिकापुत्र–क्षेत्रज–दत्तक–कृत्रिम–गूढज–अपविद्ध–ये धनके भागी कहेहैं–और कानीन–सहोढ–क्रीत– पौनर्भव–स्वयंदत्त–और निषाद (शौद्र)–ये गोत्रके भागीकहेहैं धनकेनहीं–परंतुमनुजीने द्वादश कहेहैं–इसने पुत्रिकापुत्र को भी पढ़करत्रयोदश–किन्तु इसके और मनुजी के ग्रंथमें विरोध नहीं है क्योंकि मनुजी ने भी पुत्रिकापुत्रको धनका भागी कहा है ॥

देवल ऋषिने तो इनै वचनों से यह कहा है कि ये बारहपुत्र संतानके लिये कहे हैं और आत्मज (गोत्रज) हों वा भिन्न गोत्रहों अथवा अकस्मात् मिलेहों उनमें पहिले छः बंधु और अंशके भागी होतेहैं–और अगिले छः पिताकेही धनकेभागी होतेहैं,और इनपुत्रोंका आनु पूर्वी से(क्रम) विशेष है अर्थात् प्रथम प्रथम उत्तम होताहै ये सब जिसके औरसपुत्र न हों उसकेही दायके भागी होते हैं–यदि इन पुत्रोंके किये पीछे औरसपुत्र होजाय तो इनमेंज्येष्ठता नहीं होती और इनमें जो सजातीयपुत्रहोतेहैं वे तीसरे अंशकेभागीहोतेहैं और जो दीन(निर्धन)विजातीय होतेहैं वे भोजन वस्त्रके योग्य होतेहैं ॥

और नारदऋषिनेभी इनै वचनोंसे यह कहाहै कि औरस–क्षेत्रज–पुत्रिकापुत्र–कानीन–सहोढ–गूढोत्पन्न–पौनर्भव–अपविद्ध–दत्त–क्रीत–कृत–स्वयमुपगत–ये बारहपुत्र कहेहैं इनमें प्रथम छःबंधु और दायभागी होतेहैं और पिछले छः बंधु और दायाद नहीं होते और इनमें प्रथम प्रथम श्रेष्ठ और परपर अधमकहाहै–और ये पिताकी परंपरासे चले आये धनके स्वामी होतेहैं और श्रेष्ठ श्रेष्ठ के अभावमें अधम अधम धनको प्राप्त होताहै–और मनुजी ने भी इसै वचनसे यह कहा है कि श्रेष्ठ २ के अलाभमें पापी धनकेयोग्य होताहै यदि अनेकपुत्र समानहों तो सब धनकेभागी होतेहैं–बृहस्प-

१ षड्बंधुदायादासाक्ष्यांस्वयमुत्पादितः क्षेत्रजः पौनर्भवःकानीनःपुत्रिकापुत्रो गूढोत्पन्नोगृहेइति बंधुदायादादत्तःक्रीतोपविद्धः सहोढःस्वयमुपगत सहसादृष्टश्चेत्यबंधुदायादाइति ॥

२ औरसंपुत्रिकापुत्रंक्षेत्रजंदत्तकृत्रिमौ । गूढजंवापविद्धंचरिक्थभाजःप्रचक्षते ॥ कानीनंचसहोढंचक्रीतंपौनर्भवंतथा । स्वयंदत्तंनिषादंचगोत्रभाजःप्रचक्षते ॥

३ एतेद्वादशपुत्रास्तुसंतत्यर्थमुदाहृताः । आत्मजाःपरजाश्चैवलब्धायादृच्छिकास्तथा ॥ तेषांषड्बंधुदायादाःपूर्वेन्येपितुरेवषट् । विशेषश्चापिपुत्राणामानुपूर्व्याद्विशिष्यते ॥ सर्वेष्वनौरसम्येतपुत्रादायहराःस्मृताः ॥ औरसेपुनरुत्पन्नेतषुज्यैष्ठ्यंनविद्यते ॥ तेषांसवर्णायेपुत्रास्तेतृतीयांशभागिनः । दीनास्तमुपजीवेयुःग्रासाच्छादनसंभृताः ॥

४ औरसक्षेत्रजश्चैवपुत्रिकापुत्रएवच । कानीनश्चसहोढश्चगूढोत्पन्नस्तथैवच ॥ पौनर्भवोऽपविद्धश्चदत्तःक्रीतःकृतस्तथा । स्वयंचोपगत पुत्राद्वादशैतेप्रकीर्तिताः ॥ एषांषड्बंधुदायादाःषडदायादबांधवाः । पूर्वःपूर्वःस्मृतःश्रेष्ठोजघन्योयोह्यनुत्तरः ॥ क्रमायातेप्रवर्ततमृतेपितरितद्धने । ज्यायसोज्यायसोऽभावेजघन्यस्तदवाप्नुयात् ॥

५ श्रेयसःश्रेयसोऽलाभेपापीयानरिक्थमर्हति । बहवश्चेत्तुसदृशाःसर्वेरिक्थस्यभागिनः ॥

तिने भी इनें वचनोंसे यह कहाहै कि दत्तक–अपविद्ध–क्रीत शौद्र येसब जातिसेशुद्धहोयँ तो मध्यम और धनके भागी कहेहैं–और येपुत्र सज्जनोंने निंदितकहे हैं कि क्षेत्रज–पौनर्भव–कानीन–सहोढ–गूढोत्पन्न–और हारीतऋषिने इनें वचनोंसे यह कहाहै कि शूद्रापुत्र स्वयंदत्त–और क्रीतक–ये तीनों पुत्र गोत्रके भागी कहेहैं और कांडपृष्ठ होतेहैं और कांडपृष्ठ उसको कहते हैं जो अपने कुलको पृष्ठ (छोड़ वा पीछे) कर अन्यकुलमें चलाजाय वह उस पापसे कांडपृष्ठ होताहै–और यमराजने भी इनें वचनोंसे यह कहाहै कि ये तनिपुत्र कांडपृष्ठ मनुने कहेहैं आपत्तिमें दिया दत्तक–स्वयमुपगत–और वैष्णवी–(शूद्रा) का पुत्र क्योंकि कुलको कांडकहते हैं और प्रथम कुलको ये त्यागतेहैं–जो ज्येष्ठपुत्र हो उसको अपने कुल में ग्रहणकरै अर्थात् कुलीन समझे–सिद्धांत यह है कि अनेक ऋषियोंने ये बारहप्रकारके पुत्रकहेहैं और इन सबके उपसंहार में योगीश्वर याज्ञवल्क्यने इनेंवचनोंसे यह नियमकरदिया है कि पूर्व पूर्व पुत्रोंके अभावमें वही वही धनकाभागी होताहै जो जो पुत्र पैदाकरनेवाले का सजातीय हो–इससे कानीन–गूढोत्पन्न–सहोढ–पौनर्भव–ये जनककेद्वारा सजातीयहैं–औरस रूपसे नहीं हैं और उनपुत्रोंमेंवर्ण और जातिके लक्षणसेवर्ण और जातिके विवेककोकहकरयोगीश्वर याज्ञवल्क्यनेही इसं वचनसे यह कहाहै कि यह विभागकी विधि मैंने उनपुत्रोंकी कही है जो विवाहित स्त्रियोंमें पैदाहुये हैं–और मूर्द्धाभिषिक्त आदि अनुलोम विधिसे उत्पन्नोंका तो औरसपुत्रों मेंही अंतर्भाव है इससे इसं वचनसे उनके भी चार, तीन, दो, एक–भाग कहआये हैं और उनपुत्रों के भी अभावमें क्षेत्रज आदि पिताके धनके भागी कहे हैं और औरस आदि के अभावमें भी शूद्राके पुत्रको तो इसं मनुवचन के अनुसार धनका भाग नहीं मिलता कि चाहै सजातीय पुत्रहों वा नहों परन्तु शूद्राके पुत्रको दशवेंभागसे अधिक नदे और इसीवचन से सवर्ण पुत्र के अभाव में क्षत्रिया और वैश्याके पुत्रको संपूर्ण पिताकेधन ग्रहण करनेका अधिकार है और शूद्राके पुत्रको जो पूर्वोक्त वचनसे याज्ञवल्क्यने एकभाग कहाहै वह भी सदाचार करनेवाले शूद्रापुत्रको समझना–अन्यथा मनुके वचनके संग विरोध होगा और शूद्र धनके विभागमें यह विशेष इसे वचनसे याज्ञवल्क्यने कहा है कि शूद्रसे दासीमें पैदाहुआ पुत्र पिता के धनको यथेच्छ (पिताकी आज्ञानुसार) ग्रहणकरै और पिताके मरे पीछे विवाहित स्त्रीके पुत्र भाई उसको आधाभागदें और भाई और पिताकी लड़की के पुत्र न होयँ तो शूद्राका पुत्रही सबधनकोग्रहणकरै और जोद्विजातियोंमें शूद्रासेपैदाहुआ दासीकापुत्र है वह पिताकी इच्छासे आधे भी धनका भागी नहीं होता किंतु अनुकूल होनेपर भोजन वस्त्रका

१ दत्तोऽपविद्धः क्रीतश्चकृतःशौद्रस्तथैवच । जातिशुद्धामध्यमास्तेसर्वेरिक्थसुताःस्मृताः ॥ क्षेत्रजोगर्हितःसद्भिस्तथापौनर्भवःसुतः । कानीनश्चसहोढश्चगूढोत्पन्नस्तथैवच ॥

२ शूद्रापुत्राःस्वयंदत्तायश्चैतक्रीतकाः सुताः । सर्वेनगोत्रिणःप्रोक्ताःकाण्डपृष्ठानसंशयः ॥ स्वकुलंपृष्ठतःकृत्वायोवैरन्यकुलंव्रजेत् । तेनदुश्चरितेनासौकाण्डपृष्ठोनसंशयः ॥

३ आपद्दत्तास्वयमुपगतायश्चस्याद्वैष्णवीसुतः । सर्वेतमनुनाप्रोक्ताःकाण्डपृष्ठास्त्रयस्तथा ॥ कुलंकांडमितिख्यातंयस्मात्पूर्वाणितेजहुः । तत्रज्येष्ठतरोयःस्यात्तंवंकांडंविनिर्दिशेत् ॥

४ सजातीयेष्वयंप्रोक्तस्तनयेषुमयाविधिः । पिंडदोंशहरश्चैषांपूर्वाभावेपरःपरः ॥

५ विन्नास्वेषविधिःस्मृतः ॥

६ चतुस्त्रिद्व्येकभागाःस्युर्वर्णशोब्राह्मणात्मजाः ॥

७ यद्यपिस्यात्तुसत्पुत्रोप्यसत्पुत्रोपिवाभवेत् । नाधिकंदशमाद्दद्याच्छूद्रापुत्रायधर्मतः ॥

८ जातोपिदास्यांशूद्रेणकामतोंशहरोभवेत् । मृतेपितरिकुर्युस्तंभ्रातरस्त्वर्द्धभागिकम् ॥ अभ्रातृकोहरेत्सर्वंदुहितॄणांसुताहते ॥

भागी होताहै–इसवचन से यह नहीं समझना कि सब भाई अपने २ भागों में से शूद्राके पुत्रको अर्द्ध २ भागदें क्योंकि जहां शूद्रके सजातीय भाई बहुत हों और शूद्रापुत्र एकहोय तो वह बहुतधन का भागी होजायगा और वे अल्प धनी होजायँगे–इससे यह अर्थ समझना कि सब भाइयों को जितना २ भाग मिले उससे आधाभाग दासीके पुत्र को मिलै ॥

सिद्धांत यह है कि सबसे मुख्य अधिकारी पिताके धनका वह होताहै जो धर्मसे विवाहित सजातीय स्त्रीमें अपने वीर्य से पैदा होताहै–और उसमें कुछन्यन पुत्रिकाकापुत्र होताहै क्योंकि उसकी माता भी उसके अंगसे उत्पन्न हुई है और शेषपुत्र अर्थात् क्षेत्रज आदि पूर्व २ के अभावमेंही धनके भागी यथागुण (गुणके अनुसार)होतेहैं–और क्षेत्रज पुत्रको जो विभागकहाहै वह कलियुगमें पूर्वोक्त नियोगके निषेध से करने योग्य नहीं है–और पूर्वोक्त न्यूनाधिकभाग वा उद्धार विभाग भी देशाचार विरुद्धहोनेसे अप्रचलितहै तिससे संपूर्ण औरस भाइयोंका समानभागही उचितहोनेसे कर्त्तव्यहै १८४॥

अथ अपुत्रधनविभागप्रकरणम् ॥

नभ्रातरोनपितरःपुत्रारिक्थहराःपितुः।पिताहरेदपुत्रस्यरिक्थंभ्रातरएवच १८५ ॥

प० । नँ भ्रातरः नँ पितरः पुत्राः रिक्थहराः पितुः पिता हरेत् अपुत्रस्य रिक्थं भ्रातरः एवं चँ ॥

यो० । पितुः रिक्थहराः पुत्राः भवंति–भ्रातरः पितरः न भवंति–अपुत्रस्य रिक्थं (धनं) पिता हरेत् चपुनः भ्रातरः हरेयुः॥

भा० । पिताके धनके अधिकारी भाई और माता पिता नहींहोते किंतु क्षेत्रजआदि पुत्रहोतेहैं–और पुत्रहीन मनुष्यके धनको पत्नी और दुहिताके अभावमें पिता ग्रहणकरै और वह न होय तो भ्राता भी ग्रहणकरैं ॥

ता० । सोदरभाई और माता पिता पिताके धनकेभागी नहींहोते किन्तु औरसके अभावमें क्षेत्रजआदि गौणपुत्रही पिताके धनके भागीहोते हैं और यह वचनका अर्द्धभाग क्षेत्रजआदिकोंको भी धनके भागकाबोधकहै–क्योंकि औरसको तो पूर्वही–एकएवौरसः–इस वचनसे धनकाभाग कहचुके हैं–अब अपुत्रधनके दायभागका वर्णन करतेहैं कि जिसमनुष्यके पुत्र पत्नी दुहिता न होयँ उसके धनको पिता ग्रहणकरै और पिताके अभावमें भ्राताभी धनको ग्रहणकरैं–इसका विचार आगे शीघ्रही करेंगे–अब क्षेत्रजआदिकोंको भी पुत्रहीन पितामहके धनमें अधिकार दिखातेहैं कि १८५ ॥

त्रयाणामुदकंकार्यंत्रिषुपिण्डःप्रवर्तते।चतुर्थःसंप्रदातैषांपञ्चमोनोपपद्यते १८६ ॥

प० । त्रयाणां उदकं कार्यं त्रिषुँ पिंडः प्रवर्त्तते चतुर्थःसंप्रदाता एषां पंचमः नँ उपपद्यते ॥

यो० । त्रयाणां (पित्रादीनां) उदकं (जलदानं) कार्यं पिंडः त्रिषु प्रवर्तते–चतुर्थः एषां संप्रदाता भवति–पंचमः न उपपद्यते (न उपलभ्यते) ॥

भा० । तीनको जलका और पिंडका दानहोताहै और जल और पिंडके देनेवाला चौथाहोता है और पांचवां मिलता नहींहै अर्थात् पांचवेंका सम्बन्ध नहीं है ॥

ता० । पिता–पितामह प्रपितामह इनतीनोंकोही जलदानदेना और इनही तीनोंमें पिंड प्रवृत्त

होताहै अर्थात् दियाजाताहै और चौथा पिंड और उदक (जल) का दाता होताहै—पांचवेंका इन में कोई सम्बन्ध नहींहोता तिससे अपुत्र पितामहके धनमें गौणपौत्रों (क्षेत्रजआदि) काभी अधिकारहै—औरसपुत्र और पौत्रको तो इस वचनसेही अधिकार सिद्धहै इससे गौणपौत्रोंकेही अपुत्र पितामहके धनमें अधिकारका बोधक यहवचनहै १८६ ॥

अनन्तरःसपिण्डाद्यस्तस्यतस्यधनंभवेत् । अतऊर्ध्वंसकुल्यःस्यादाचार्यःशिष्यएववा १८७

प० । अनंतरः सपिंडात् यः तस्य तस्य धनं भवेत् अतः ऊर्ध्वं सकुल्यः स्यात् आचार्यः शिष्यः एवं वा ॥

यो० यःसपिंडात् अनन्तरः भवति तस्यतस्यधनंभवेत्- अतः ऊर्ध्वं सकुल्यः धनभाक्स्यात् आचार्यःवाशिष्य. एवस्यात्॥

भा० । जो २ अपुत्र मनुष्यों के सपिंडों में अनंतर हो उस २ का ही धनहोताहै और सपिंडों के पीछे आचार्य—वा उत्तम शिष्य धनके भागी होते हैं ॥

ता० । यद्यपि यह वचन सामान्यरीतिसे धन स्वामीके अनन्त (समीप) का धन प्राप्तिका बोधकहै तथापि औरसआदि सपिंडोंको धनकाभाग वर्णन करचुके हैं इससे अनुक्त पत्नीआदिकोंको दायप्राप्तिका बोधकही यह वचनहै—सपिंडोंके मध्यमें जो२ अत्यन्त संनिकृष्ट पुरुष वा स्त्रीहो उसकोही मृतक पिताकाधन मिलना चाहिये सबसे प्रथम औरस, पिताके धनमें स्वतन्त्र अधिकारी होताहै और वह औरस क्षेत्रज और गुणवाले दत्तकपुत्रोंको पूर्वोक्त पांचवां वा छठाभागदे और शेष पुत्रोंका भी भरण पोषणकरै और औरसके अभावमें पुत्रिकाका पुत्र—और दौहित्र—धनका अधिकारी होताहै क्योंकि इस वचनसे अपुत्रके संपूर्ण धनका अधिकारी दौहित्रको कहाहै और उसके अभाव में क्षेत्रजआदि एकादश ११ पुत्र पूर्वोक्तरीतिसे यथाक्रम धनके अधिकारी होतेहैं—और विवाही शूद्रा का पुत्रभी पूर्वोक्तरीतिसे दशवेंभागका अधिकारी होता है और दशमभागसे शेषधनको अनन्तरका सपिंड ग्रहणकरे—तिनमें यदि तेरहप्रकारके पुत्र न होयँ तो पत्नी धनकी अधिकारिणी होतीहै अर्थात् पत्नीको धनमिलताहै क्योंकि याज्ञवल्क्यऋषिने इन वचनोंसे अपुत्रधनके विभागमें सबसे पहिले पत्नीकोही अधिकारकहा है—उनवचनोंका यह तात्पर्य है कि पूर्वोक्त द्वादशपुत्रोंसे जो रहित स्वर्गगामी (मृतक) है उसके धनके अधिकारी पूर्व पूर्वके अभावमें क्रमसे उत्तरोत्तर पत्नीआदि होतेहैं—और यहविधि संपूर्ण मूर्द्धाभिषिक्त—अनुलोमज—प्रतिलोमजोंमें—और ब्राह्मणआदि चारोंवर्णोंमें जाननी उनसबमें प्रथम पत्नी—को धनका अधिकार होता है—और पत्नी वहहोती है जो विवाहमें होम विधिसे संस्कृतहो क्योंकि पतिकीस्त्रीको पत्नी कहतेहैं—और वह पत्नीशब्द इस पाणिनिसूत्रके अनुसार यज्ञके संयोगमेंही पतिशब्दसे ङीप्प्रत्यय और ईकारको नकारहोनेसे बनताहै—और इन याज्ञवल्क्यके वचनोंमें पत्नीशब्द जातिवाचक होनेसे अनेक पत्नियोंका बोधकहै तिससे यदि अनेकपत्नी होयँ तो वेसब सजातिय और विजातीयक्रमसे यथोचित पतिके धनको ग्रहणकरलें—पत्नीशब्दके

१ पुत्रेणलोकानजयति ॥

२ दौहित्रएवचहरेत् अपुत्रस्याखिलंधनम् ॥

३ पत्नीदुहितरश्चैव पितरौभ्रातरस्तथा । तत्सुतागोत्रजोबन्धुः शिष्यःसब्रह्मचारिणः ॥ एषामभावेपूर्वस्य धनभागुत्तरोत्तरः । स्वर्यातस्यह्यपुत्रस्य सर्ववर्णेष्वयंविधिः ॥

४ पत्युर्नोयज्ञसंयोगे पतिशब्दस्यनकारोंतादेशस्यात् यज्ञेनसंयोगे ॥

पढ़नेसे बहस्त्री धनको पूर्वोक्त पत्नीके विद्यमान रहते ग्रहण नहींकरसक्ती जो आसुरआदि विवाहोंसे विवाहीहो क्योंकि इसै वचनसे यहकहाहै कि मोललीहुई नारी पत्नी नहींहोती और दैव-पितर-कर्मके योग्यभी नहींहोती उसको कवियोंने दासीकहाहै अर्थात् वह संभोग करनेही योग्य होतीहै-परलोकके कर्मोंमें उसका अधिकार नहींहोता इससे परकीदारा न होनेसे रतिकरनेका उसके संग दोषनहीं-अतएव इसै वचनसे मनुजीने निन्दित विवाहोंसे निन्दित और उत्तम विवाहोंसे उत्तम प्रजाकहीहै तिससे निंदित विवाहोंको वर्ज्जदे-इसीप्रकार सन्तानकेही गुण दोषकहेहैं और रतिका दोषनहींकहा और सन्तानमें भी दोष-वर्ण-और जातिका अभावनहीं-किन्तु सदाचार और उत्तम स्वभाव न होनाही दोष होताहै क्योंकि पतिसे विवाहित सजातीय स्त्रीमें जो पैदाहोताहै वह उसी वर्ण जातिका होताहै जो पतिकी होती है क्योंकि इसै वचनसे यहकहाहै कि विवाहित स्त्रियोंकीही यहविधि मैंने वर्णनकी इससे निंदित विवाहोंसे विवाही स्त्रीको दैव और पितरोंके कर्ममें पतिकेसंग बैठनेका अधिकार नहींहोता इससे यहबात सिद्ध है कि पितरआदिकोंके कर्मोंकी जिसको करनेकी योग्यताहै वहीपतिके धनकी अधिकारिणी होती है और वेद धर्म शास्त्रोक्त कर्ममें अधिकारवाली पतिव्रताकोही पतिकेधनका अधिकार होताहै यहबातभी पत्नीशब्दके पढ़नेसेही सूचितहोतीहै प्रजापतिने भी इसै वचनसे यहकहाहै कि यदि स्त्री पतिसे पहिले मरजाय तो अग्निहोत्रको प्राप्तहोतीहै अर्थात् पति उसविवाहकी अग्निसे पत्नीका दाहकरिके फिर पत्नीकेविना अग्निहोत्र नहीं करसकता और यदि पति प्रथम मरजाय तो पतिव्रता नारी उसके धनको प्राप्त होती है-यही सनातन धर्म है और वृद्धमनुने भी इसै वचनसे यहकहाहै कि पुत्रहीन पतिकी शय्याका पालन करतीहुई पतिव्रता स्त्रीही पतिकोपिंडदे और उसकेअंश(भाग)कोग्रहणकरे-और पतिकेअंत्येष्टिकर्ममें भाइयोंकेविद्यमान रहते भी पत्नीकोही अधिकारहै-क्योंकि इसै वचनसेपुत्रहीन पतिके अन्त्य कर्ममें पुत्रवत् पत्नीको भी अधिकारकहाहै-और प्रजापतिनेभी इनै वचनोंसे यहकहाहै कि पत्नी-जंगम-(मुद्राआदि)स्थावर (भूमि वृक्ष आदि) कुप्य (सीसाआदि) अन्न-रस-वस्त्र इनको लेकर अपने पतिका मासिक और पाण्मासिक श्राद्धकरै और पितृव्य (पतिके चाचा) गुरु-दौहित्र-पतिकी स्वसा (भगिनी) पुत्र मामा वृद्ध और अतिथि इनको कव्य (पितरोंकेलिये संकल्पकिया अन्नआदि)और पूर्त्त (वापी-बाग और कर्मकी दक्षिणाआदि) इनसे पूजनकरै इनवचनोंसे यहबातकही कि स्थावर सहित भर्त्ताके सबधनको लेकर उसधनसे अपने अधिकारके अनुसार पति और अपने कल्याणकारी कर्मभी पतिके भाईआदिकोंकी सम्मतिसे पत्नीकोकरने यदि इसप्रकार वर्त्तावकरतीहुई स्त्रीको कोई बांधव वा सपिंड शत्रुभावसे दुःखदे वा किसी कर्म करनेमें निषेधकरै तो राजा उनके धनको इसै

१ क्रयक्रीतातुयानारी नसापत्नीविधीयते । नसादैवेनसापित्र्ये दासींतांकवयोविदुः ॥
२ अनिंदितैःस्त्रीविवाहैरनिंद्याभवतिप्रजा । निंदितैर्निंदितानृणां तस्मान्निंद्यानविवर्जयेत् ॥
३ विवाहस्वेषविधिःस्मृतः ॥
४ पूर्वंमृतात्वग्निहोत्रं मृतेभर्त्तरितद्धनम् । लभेत्पतिव्रतानारी धर्मएषःसनातनः ॥
५ अपुत्राशयनंभर्तुः पालयंतीव्रतेस्थिता । पत्न्येवदद्यात्तत्पिंडं कृत्स्नमंशंलभेतच ॥
६ अपुत्रस्यान्त्यकर्मण्यप्यपुत्रपुत्रवत्पत्नी ॥
७ जंगमंस्थावरंहेमं कुप्यधान्यंरसाम्बरम् । आदायदापयेच्छ्राद्धं मासषाण्मासिकादिकम् ॥ पितृव्यगुरुदौहित्रान भर्तुःस्वस्रीयमातुलान् । पूजयेत्कव्यपूर्त्ताभ्यां वृद्धांश्चाप्यतिथीन्स्त्रियः ॥
८ सपिण्डाबान्धवायेतु तस्याःस्युःपरिपंथिनः । हिंस्युर्धनानितान्राजा चौरदंडेनशासयेत् ॥

वचनके अनुसार छीनले और चौरका दण्डदे और इस वचनके अनुसार स्त्रीको स्थावर धनग्रहण करनेका बृहस्पतिने जो निषेधकिया है कि विभागहोने के समय जो कुछ आधि (धरोहरआदि) विविधधन कहाहै उससबको विधवा जाया ग्रहणकरै परन्तु स्थावरको ग्रहण न करै वह स्थावरका निषेध, पूर्वोक्त प्रजापति वचनके विरोधसे सदाचरण रहित पत्नीकाहै अथवा उस स्थावरकाहै जो पतिके भाइयोंमें विभक्त (बटा) न हो–फिर इस वचनके अनुसार उक्त वचनको पुत्रीरहित पत्नी विषयककहा फिर दोनों पूर्वोक्त वचनोंको मिताक्षरा कल्पतरु हलायुधआदि ग्रन्थोंमें न लिखनेसे पूर्वोक्त बार्हस्पत्यके कथनको निर्मूलकहा–और–(जंगमंस्थावरं) इसवचनको सबग्रंथोंमें लिखनेसे समूल (प्रमाणसहित) कहकर फिरउसकी व्यवस्थाको कल्पित बताकर मदनरत्नकारने यह व्यवस्थाकरदी कि वहीस्त्री स्थावरआदि संपूर्ण धनको ग्रहणकरै जो ब्राह्मआदि उत्तम विवाहोंसे विवाहीहो क्योंकि उनवचनोंमें पत्नीशब्द पढ़ाहै और वहीस्त्री स्थावर धनको ग्रहण न करै जो आसुरआदि विवाहोंसे विवाहीहो क्योंकि उनवचनोंमें जाया वा स्त्रीशब्दही केवलपढ़े हैं–इस मदनरत्नकारकी व्यवस्थाको स्मृतिचन्द्रिकाकारने इसप्रकार खण्डनकिया कि आसुरआदि विवाहोंसे विवाहीहुई स्त्रीका पत्नीशब्दसे ग्रहण न करोगे तो जिनवचनोंमें जायापदहै उनमें भी निंदित विवाहोंसे विवाहीहुई स्त्रियोंका ग्रहण न होगा अर्थात् वे पत्नी न कहावेंगी–और दुहितृरहित पत्नीकोही स्थावरके ग्रहणका निषेधहै–यह जो उक्त वचनोंकी व्यवस्था उसको कल्पित कहना भी ठीकनहीं है क्योंकि दुहिताके होते उसकी संतान (दौहित्र) के द्वारा स्थावर धनके लाभसे स्वामी (मातामह) का उपकार होसक्ताहै इससे वही स्थावर धनकोले जिसके दुहिताहो और जिसके दुहिता न हो वह न ले–इसमें कोई प्रमाण नहीं है अतएव पिताको भी अपने संचित स्थावर धनमें पुत्रकी सम्मतिके विना अधिकार नहींकहा–और जो किसीने इस वचनसे यहकहाहै कि पतिके मरेपीछे कुलकी पालना करनेवाली स्त्री जीवनमात्रही पतिके धनमेंसे ग्रहणकरै और दान आधमन (गिर्वी) और विक्रयमें अधिकार नहीं है और कात्यायनऋषिने भी नटनर्तकआदि वृथा कर्मोंकेलिये स्त्रीको स्थावरका निषेधकहाहै और परलोककेलिये तो आधमन और विक्रयकरनेमें भी दोषनहीं है क्योंकि इस वचनसे यही प्रतीत होताहै कि व्रत उपवासमें तत्पर–ब्रह्मचर्यमें टिकी इन्द्रियोंके दमन, दान, में रत पुत्रहीन भी स्त्री स्वर्गमें जाती है–इससे कामनाकेलिये कर्तव्य दानआदिकमें भी स्त्रीको अधिकार है तो नित्य नैमित्तिकमें क्योंनहोगा और कात्यायनने इस वचनसे जो यहकहाहै कि पतिकी शय्याकी पालना करनेवाली पुत्रहीन स्त्री श्वशुरआदिके आधीन, मरणपर्यंत थकितहोकर पतिके धनको भोगे और पत्नीके मरेपीछे दायादों (दुहिताआदि अंशकेभागी) को उसधनकी प्राप्तिहो–स्मृतिचंद्रिकाकारने इसका यह तात्पर्य वर्णनकिया है कि वह क्षांत होती है जिसको इतर दायादोंने धनके लगानेमें प्रतिबन्ध कियाहो वहस्त्री तभी पतिके स्वयंसंचित वा मिलेहुये अविभक्त धनको मरणप-

---

१ यद्विभक्तेधनंकिञ्चिदाध्यादिविविधंस्मृतम् । तज्जायास्थावरंमुक्ता लभतेमृतभर्तृका ॥

२ वृत्तस्थापिकृतेप्यंशे नस्त्रीस्थावरमर्हतीति ॥

३ मृतेभर्तरिभर्त्रंशं लभेतकुलपालिका । यावज्जीवंनहिस्वाम्यन्दानाधमनविक्रये ॥

४ व्रतोपवासनिरता ब्रह्मचर्येव्यवस्थिता । दमदानरतानित्यमपुत्रापिदिवंव्रजेत् ॥

५ अपुत्राशयनंभर्तुः पालयंतीगुरौस्थिता । भुञ्जीतामरणात्क्षांता दायादाऊर्ध्वमाप्नुयुः ॥

र्यन्त भोगसकती है जिसके श्वशुरआदि अन्यकार्योंमें व्यग्रहोनेसे उसकी रक्षा न करसकें और मनु आदिके वचनानुसार विभक्त धनको तो यथेच्छ भोगसकतीहै ॥

इसमें पूर्वदेशनिवासी (बंगाली तो यह कहतेहैं कि गुरु (श्वशुरआदि) के समीप टिकीहुई भर्त्ताके धनको केवल भोगै और यथेच्छ दान आधि विक्रयआदि न करै और उसकेपीछे दुहिताआदि धनके अधिकारी ग्रहणकरैं और ज्ञातिके न करैं–और न स्त्री धनके अधिकारी ग्रहणकरैं–क्योंकि वे दुहिताआदिकोंसे अधमहोनेसे दुहिताके धन ग्रहणकरनेमें बाधा (हटाना) नहीं करसकते और स्त्री धनके अधिकारियोंको कात्यायनके वचनोंसेही धनका ग्रहण कहआये हैं इससे फिर कहेंगे तो पुनरुक्तिदोषहोगा इससे पत्नी दुहितरः इस याज्ञवल्क्यके वचनसे पूर्वके अभावमें जो पर२ अपुत्र असंसृष्ट, और विभक्त, जो मृतक उसके धनके अधिकारी कहेहैं–वे जैसे पत्नीकोही प्रथम धनका अधिकार जनातेहैं इसीप्रकार पत्नीके मरनेपर भोगसे बचेहुये धनको ग्रहणकरें क्योंकि पत्नीके अभावमें दुहिताआदिही अपुत्र मृतकके उपकारक होतेहैं–और पतिके धनका उपभोग स्त्रीको इस[1] महाभारतके वचनसे भी प्रतीत होताहै कि स्त्रियोंको अपने पतिके दायग्रहण करनेका उपभोगही फलकहा है और पतिके धनमेंसे स्त्री कदाचित् भी अपहार (वृथानाश) न करै और वह उपभोग भी केवल पतिके उपकारार्थ देहधारण मात्रहीकरै और सूक्ष्मवस्त्र आदिकोंमें वृथा व्ययन करै–और इससे बृहस्पतिके वचनमें भी पितृव्यपदसे पतिके सपिंड दौहित्रपदसे दुहिताकी सन्तान और मातुलपदसे माताकाकुल ग्रहणकिया है इनमेंसे किसीको अपनीशक्तिके अनुसार उतनाही धनदे जितनेमें पतिका ऊर्ध्व दैहिक श्राद्धआदि होसकें और अपनेपिताके कुलसम्बन्धियोंको तो पतिकुलके सम्बन्धियोंकी अनुमतिसेदे–क्योंकि नारदमुनिके इन[2] वचनोंसे यह प्रतीत होताहै कि भर्त्ताके मरेपीछे स्त्रीके दानआदि करने और रक्षा पोषणकरनेमें पतिका कुटुम्ब सहकारी और समर्थ होताहै और जबपतिके कुलमें कोई आश्रय न रहै अथवा धनसे क्षीणहोजाय अथवा कोईमनुष्य न रहै और पतिका सपिंडभी न होय तो स्त्रीका प्रभु (रक्षक) पिताका कुलहोताहै–इस नारदके वचनानुसार कोई यह कहतेहैं कि स्त्रीको पतिके धनमें दान विक्रयका अधिकार नहीं–उसमें यह वक्तव्यहै कि स्त्रीको दान करनेसे उसका फलनहीं होसकता अथवा वह करनहीं सकती फलका न होना तो युक्तनहीं क्योंकि मनुआदिके वचनोंसे भर्त्ताके धनमें जबस्त्रीका स्वत्वहै तो दानकाफल अवश्यहोगा–इसीसे जीमूतवाहनने स्थावर और द्विपदके दानके निषेधक जितने वचनहैं उनको लिखकर यह निर्णय किया है कि जो मनुष्य दुराचारीहै और कुटुम्बके मनुष्योंको दुःखदेनेकेलिये स्थावरआदि धनके देनेमें प्रवृत्त हो उसको अधर्मका भागी जनाते हैं और कुछ दानके न होनेको बोधन नहीं करते–यथेष्टदेनेके योग्य जैसा स्वत्व इतर द्रव्योंमें स्त्रीका होताहै वैसाही स्थावरमें होताहै क्योंकि वस्तुके स्वरूपको सौ वचनभी अन्यथा नहीं करसकते–तिसी प्रकार यहां भी जो स्त्री दुराचार और पतिके दायादोंको दुःख देने के लिये पति धनके दान आदि में प्रवृत्तहो उसको अधर्म होता है और जो धर्मके लिये दानमें प्रवृत्त है और अपने जीवनके लिये धनका विक्रयकरे तो उसको अधर्म

१ स्त्रीणांस्वपतिदायस्तु उपभोगफलःस्मृतः । नापहारंस्त्रियःकुर्युःपतिवित्तात्कथंचन ॥

२ मृतेभर्त्तर्यपुत्रायाः पतिपक्षःप्रभुःस्त्रियाः । विनियोगेऽर्थरक्षासु भरणेषुसईश्वरः ॥ परिक्षीणेपतिकुले निर्मनुष्येनिराश्रये । तत्सपिंडेषुचासत्सु पितृपक्षःप्रभुःस्त्रियाः ॥

नहीं होता कदाचित् कोई कहै कि पूर्वोक्त कात्यायनके वचनसे भोगकाही नियम है और पीछेसे दायादोंको धनग्रहणकरना कहा है इससे स्त्रीको दान आदि का अनधिकार अविभक्त धनके समान विभक्त धनमें भी है यह शंका ठीक नहीं है क्योंकि अविभक्त धनमें सबका साधारण स्वत्व होताहै और विभक्त धनमें स्त्रीका असाधारण स्वत्वहोताहै—यदि स्त्रीको दान आदिका अधिकार न होता तो पूर्वोक्त वचनोंमें दमदान में तत्पर स्त्रीको कव्यपूर्त्तोंमे पितरोंका पूजन किसप्रकार कहते सिद्धांत तो यह है कि—जब धनके स्वत्ववाला स्वामी मरगया तो उसके धनका ग्रहण समीपके अधिकारियोंको और पत्नी आदि शब्द संबंध के बोधकहैं—इससे पत्नीको द्रव्यकी स्वामिता उत्पन्नहोगई तो पतिकी दुहिताको धनका किसप्रकार प्रसंगहोसक्ता है—इससे द्रव्य स्वामीके मरे पीछे उसके संबंधी पत्नी आदिक उसके धनको प्राप्तहोतेहैं—अन्यथा दुहिताको पुत्रहीन पिताके धन मिलनेपर दुहितामरजाय तो दुहिताकी संतानको लंघकर पतिके पिताकोही धन मिलजानेसे बड़ी अव्यवस्था होजायगी तिस से पतिकाधन पत्नीको मिलताहै और उसके मरे पर भोगसे बचाहुआ धन इसेयाज्ञवल्क्यके वचनानुसार दुहिताओंको मिलता है—यही बात उक्त कात्यायनके वचनसे निवारण की है कि पत्नीके पीछे दायाद अर्थात् पतिके धनके अधिकारी पिता आदि पत्नीके धनको ग्रहणकरें—इससे उक्त कात्यायन के वचनका यह तात्पर्य है कि दायादशब्द से भर्ताके दायाधिकारी, अविभक्त जो भर्त्ताका धन उसके अधिकारी होतेहैं—और पत्नीके भोगसे बचेहुये विभक्त धनके भी वेही अधिकारी होतेहैं और पत्नीके धनाधिकारी दुहिता आदि उक्त धनको ग्रहण न करें—तिससे परलोकार्थ दानमें और इसलोक और परलोकार्थ कार्य के लिये संपूर्ण पतिके धनका विक्रय आधिकरनेमें पत्नीको अधिकार है—और अनावश्यक नटनर्त्तक आदिकोंके दानके लिये आधि और विक्रय न करें—इसीसे पूर्वोक्तकात्यायनकेवचन में क्षांता कहनेसे यह सूचितकिया कि वृथाद्रव्यका व्ययकारिणी न होय—और पूर्वोक्त दान धर्म में जो महाभारतका वचनहै उसकाभी यह तात्पर्य है कि स्त्रियोंको अपने पतिके धन ग्रहणकरनेका प्रयोजन वही भोगहोताहै जो धर्म के समीपहो—और पतिके धनमेंसे वृथाव्यय न करें—यद्यपि पूर्वोक्त कात्यायन के वचनमें अपहार (चोरी) न करना कहाहै तथापि अपहार शब्दसे नट नर्त्तक आदि का वृथादान सूक्ष्म वस्त्र धारण करने की इच्छा और स्वच्छ भाजन आदि का भी ग्रहणहै क्योंकि संयम वाली स्त्रीको ये सबभी अनुचित होनेसे चोरीके तुल्य हैं और धर्मकेलियेजो दानहै वह चोरीकेतुल्य न होनेसे अपहार नहीं होता तिससे पत्नीको पुत्रहीन और विभक्त और असंसृष्ट पतिके धनग्रहण करनेमें बहुत से वचन प्रमाण हैं कि बृहस्पतिने इन वचनोंसे यह कहा है कि वेद—धर्मशास्त्र और लोकाचारमें पंडित जनोंने जायाको शरीर का अर्द्धभाग और पाप पुण्यके फलमें समान कहाहै और जिस मनुष्यकी स्त्री न मरीहो उसका आधादेह जीवताहै—और आधेदेहके जीवतेहुये अन्य किसप्रकार धनको लेसक्ता है कुल के मनुष्य पिता माता भाई इनके होते भी पुत्रहीन मरेहुये पति के भागलेनेवाली पत्नीहीहोतीहै—और याज्ञवल्क्यनेभी सबसेपहिले उक्तवचनोंमें पत्नीका अधिकार कहा

१ मातुर्दुहितरःशेषमृणात्ताभ्यःऋतेन्वयः ॥

२ आम्नायेस्मृतितंत्रेचलोकाचारेचसूरिभिः । शरीरार्द्धंस्मृताजायापुण्यापुण्यफलेसमा ॥ यस्यनोपरताभार्यादेहार्द्धंतस्य जीवति । जीवत्यर्द्धशरीरेर्थंकथमन्यःसमाप्नुयात् ॥ सकुल्यैर्विद्यमानैस्तुपितृमातृसनाभिभिः । अपुत्रस्यप्रमीतस्यपत्नीतद्भाग हारिणी ॥

है—और विष्णुने भी इस वचनसे यह कहा है कि पुत्रहीनका धन पत्नीको पहुंचताहै—पत्नीके अभाव में दुहिताको—और दुहिताके अभावमें पिताको पिताके अभावमें माताको माताके अभावमें भ्राता को भ्राताके अभावमें भ्राताके पुत्रोंको और उनके अभावमें बंधुओंको और बंधुओं के अभावमें सकुल्योंको अर्थात् सपिंड और गोत्रजोंको और उनके अभावमें शिष्यको और उसके अभावमें संगपढ़ने वाले को और उसके अभावमें ब्राह्मणके धनको छोड़कर राजाको पहुंचताहै—कात्यायन ऋषिने भी इस वचनसे यह कहा है कि यदि व्यभिचारिणी न होय तो पत्नी पतिके धनको ग्रहणकरती है पत्नी न होय तो वह दुहिता धनको लेतीहै जिसका विवाह न हुआहो—और इस वचनसे भी यह प्रतीत होताहै कि अपुत्रके धनको पत्नी वा दुहिता ग्रहणकरती है—और ये न होयँ तो पिता—माता—और भ्राता—भ्राताके पुत्र ग्रहणकरते हैं—इन सब पूर्वोक्त वचनोंमें पत्नीकोही सबसे प्रथम धनका अधिकार कहा है ॥

इन पूर्वोक्त संपूर्ण वचनोंके विरुद्ध भी अनेक वचन मिलतेहैं कि नारदऋषिने इन वचनोंसे यह कहा है कि यदि भाइयोंमेंसे कोई भाई अपुत्रमरजाय अथवा संन्यासी होजाय तो शेषभाई स्त्रीधन को छोड़कर उसके धनका विभाग करलें—और इसभाई की उन स्त्रियोंका मरणपर्यंत पालन करें जो अपने पतिकी शय्याकीरक्षकहों अर्थात् पतिव्रताहों और इतरोंसे तो धनकोछीनलें इन वचनोंसे पत्नी के होते भी भाइयोंको धनकाग्रहण—और पत्नियोंका पालनकहाहै और मनुजी भी इस वचन से पिता—और भ्राताओंको धनकाग्रहण कहआये हैं पत्नीको नहीं और इस स्मृतिके वचनमें भी माता और पितामहीको अपुत्रधनका अधिकार कहाहै कि संतानहीन पुत्रके दायको माता प्राप्तहोतीहै—और माताके मरे पीछे पितामही धनकाग्रहण करै और शंख, लिखित, पैठीनसि, यम, इन चारों ऋषियों ने भी भ्राता और पिताके पीछे पत्नीका अधिकार कहा है कि मरेहुये अपुत्रकाधन भाई को प्राप्तहोताहै—और उसके अभावमें पिता माता ग्रहणकरतेहैं—और वे भी न होयँ तो ज्येठी (मुख्य) पत्नी ग्रहणकरतीहै—और देवल ऋषिने भी भ्राता आदिके अभावमें ही इस वचनसे पत्नी का अधिकार कहा है कि पुत्रहीनके दायका सहोदर भाई विभाग करलें अथवा दुहिता वा जीवता हुआ पिता अथवा सजातीय भाई और भार्या धनको ग्रहणकरते हैं इसवचन में भ्राता शब्दसे भिन्नोदर भाई लेने—क्योंकि सहोदर भाई तो पृथक् पढ़ेहैं और कात्यायन ऋषिने तो इस वचनमें पत्नीका नाम भी नहीं पढ़ा कि विभक्तभाई मरजाय तो पुत्रके अभावमें उसके पिताकेही क्रमसे पिता भ्राता वा माता धनको ग्रहणकर्त्ता है ॥

१ अपुत्रस्यधनंपत्न्यभिगामितदभावेदुहितृगामि तदभावेपितृगामि तदभावेमातृगामि तदभावेभ्रातृगामि तदभावेभ्रातृपुत्रगामि तदभावेबंधुगामि तदभावेसकुल्यगामितदभावेशिष्यगामि तदभावेसहाध्यायिगामितदभावेब्राह्मणधनवर्ज्जंराजगामि ॥

२ पत्नीपत्युर्द्धनहरीयास्यादव्यभिचारिणी । तदभावेतुदुहितायद्यनूढाभवत्तदा ॥

३ अपुत्रस्याथकुलजापत्नीदुहितरोपिवा । तदभावेपितामाताभ्रातापुत्राश्चकीर्तिताः ॥

४ भ्रातॄणामप्रजाःप्रेयात्कश्चिच्चेत्प्रव्रजेतवा । विभजेरन्धनंतस्यशेषास्तेस्त्रीधनंविना ॥ भरणंचास्यकुर्वीरन्स्त्रीणामाजीवनक्षयात् । रक्षंतिशय्यांभर्तुश्चेदाच्छिन्द्युरितरासुतु ॥

५ पिताहरेदपुत्रस्यरिक्थंभ्रातरएवच ॥

६ अनपत्यस्यपुत्रस्यमातादायमवाप्नुयात् । मातर्य्यपिचवृत्तायांपितुर्माताहरेद्धनम् ॥

७ ततोदायमपुत्रस्यविभजेयुःसहोदराः।तुल्यादुहितरोवापिध्रियमाणःपितापिवा॥सवर्णाभ्रातरोमाताभार्याचेतियथाक्रमम्॥

८ विभक्तेसंस्थितंद्रव्यंपुत्राभावेपिताहरेत् । भ्रातावाजननीवाथमातावातात्पिताक्रमात् ॥

इन परस्पर विरुद्ध वचनोंकी धारेश्वरने इसप्रकार व्यवस्थाकी है कि यदि विभक्त(पृथक्‌रहता) और असंसृष्ट (जिसका किसी द्रव्यमें साझानहो) अपुत्र भाईकी पत्नी नियोगका अंगीकारकरै तो पतिके धनको प्राप्तहो और यदि नियोगकी इच्छा न करै अर्थात् क्षेत्रज पुत्रको पैदाकरना न चाहै तो भरण (पालन) मात्रकोही प्राप्तहोतीहै इससे नियोग द्वाराही पतिके धनमें स्वामिनी (मालिकिनी) होती है और अनेक स्मृतियोंमें अपत्यके द्वाराही उसको धनका सम्बन्ध कहा है कि गौतम ऋषिने इस वचनसे यहकहाहै कि पिंड गोत्र ऋषियोंके सम्बन्धमें जोहैं वे अपुत्र धनको बांटलें और यदि बीजकी इच्छाकरै तो स्त्री धनको ग्रहणकरै— उक्त गौतमके वचनमें वाशब्दका यदि अर्थहै और मनुने भी इस वचनसे यहकहा है कि जो भाई मृतक भाईके धन और स्त्रीकी पालनाकरै वहभाई के पुत्रको पैदाकरके उसकोही वह धनदेदे—इस मनुवचनसे विभक्त भाईकी स्त्रीको पुत्रके द्वाराही धनसम्बन्ध कहाहै—और विभागके अभावमें भी इस वचनसे अपत्यके द्वाराही धनका सम्बन्ध कहा है कि यदि छोटाभाई ज्येठेकी भार्यामें पुत्रको पैदाकरै तो छोटेभाई और पैदाकिये पुत्रका समान भागहोताहै इससे भी अपत्यके द्वाराही धनका सम्बन्धहै—और वसिष्ठजीने भी इस वचनसे यहकहा है कि धनके लोभसे स्त्रीको नियोग नहीं कहाहै अर्थात् जो नियोगको स्वीकारकरै तो धनका सम्बंध हो—तिससे पूर्वोक्त (भ्रातॄणां इत्यादि) वचनभी उसीस्त्रीको धनके निषेधकहैं जो नियोग न चाहतीहो—और याज्ञवल्क्यने भी इस वचनसे यहकहा है कि अंध—क्लीव—आदि भाइयोंकी जो साधु स्वभाव, अपुत्र, स्त्रीहैं उनकी पालनाकरै और व्यभिचारिणी और प्रतिकूल स्त्रियोंको निकासदे— इससे भी प्रत्यक्षहै कि पुत्रकेहीद्वारा अन्धआदिकोंकी स्त्रीको धनसम्बन्धहै तो संपूर्णस्त्रियोंको अपत्य के द्वाराही धनकासम्बन्ध है—और इस वचनसे भी यह प्रतीतहोताहै कि यज्ञकेलिये द्रव्यहोता है उसयज्ञके जो अधिकारीनहीं हैं वेसबधनकेभागी नहींहोते किन्तु भोजन वस्त्रकेही योग्यहोतेहैं इससे यज्ञके अधिकारहीन विधवाओंको धनका अधिकार नहीं है ॥

इस धारेश्वरकी व्यवस्थाको मिताक्षराकार नहीं मानते—क्योंकि याज्ञवल्क्यके—पत्नी इत्यादि— वचनोंमें नियोगका कथन नहीं है और नियोगका प्रकरण भी नहीं—दूसरे धारेश्वरसे यह प्रष्टव्य है कि स्त्रीको धनका अधिकार नियोगसे कहतेहो वा अपत्य होनेसे—इनदोनोंमें प्रथममानोगे तो जिस के पुत्रनहींहुआ उसको भी नियोगके स्वीकारमात्रसेही धनका अधिकार होजायगा—और पत्नीकोही धनका स्वामित्व (मालिकपन) होनेसे नियोगसे उत्पन्न पुत्रको न होगा—और दूसरा मानोगे तो अपत्यको तो अन्य वचनोंसेही धनका सम्बन्ध सिद्धता पुनः—पत्नी—यह याज्ञवल्क्यका वचन व्यर्थ होजायगा ॥

पत्नी—इसवचनको कोई इसप्रकार सफल बताते हैं कि स्त्रियोंको धनका सम्बन्ध पतिके द्वाराही है और किसीप्रकारसे नहीं—और पतिके जीवतेहुये पतिके द्वाराहै और पतिकेमरेपीछे अपत्यकेद्वारा

१ पिंडगोत्रर्षिसंबद्धारिक्थंभजेरन । स्त्रीवानपत्यस्यबीजंवालिप्सेत ॥
२ धनंयोबिभृयाद्भ्रातुर्मृतस्यस्त्रियमेववा । सोऽपत्यंभ्रातुरुत्पाद्यदद्यात्तस्यैवतद्धनम् ॥
३ कनीयानज्येष्ठभार्यायां पुत्रमुत्पादयेद्यदि । समस्तत्रविभागःस्यादितिधर्मोव्यवस्थितः ॥
४ रिक्थलोभान्नास्तिनियोगः ॥
५ अपुत्रायोषितश्चैषां भर्तव्याःसाधुवृत्तयः । निर्वास्याव्यभिचारिण्यःप्रतिकूलास्तथैवच ॥
६ यज्ञार्थंद्रव्यमुत्पन्नं तत्रानधिकृतास्तुये । अरिक्थभाजस्तेसर्वे ग्रासाच्छादनभाजनाः ॥

भीहै यह जतानेकेलिये नियोगकी इच्छावाली पत्नीको धनका सम्बन्ध बोधनकेलिये—पत्नी—यहव-चनहै—यहभी ठीकनहीं है क्योंकि अध्यग्निआदि स्त्रीधनका अधिकार नियोगके विना भी स्त्रीकोहै—कदाचित् कोईकहै कि भर्ताके धनमें पूर्वोक्त दोप्रकारसेही स्त्रीका सम्बन्ध होताहै—यह कहना भी ठीकनहीं क्योंकि पतिके जीवते जो पतिके धनमें सम्बन्ध है वह इससेही है कि विवाहहोनेसे स्त्री पुरुपका सहत्व (एकता) होजानेसेही वह धनका सम्बन्ध इसै गौतमके वचनानुसार सिद्धरहा—और पतिके मरेपीछे नियोगसेही होनेवाला धनका सम्बन्ध क्षेत्रजपुत्रकाही हुआ—वहभी पहिले कहआयेहैं—इससे अपुत्र प्रकरणमें—पत्नी यहवचन क्योंपढ़ा ॥

और जो गौतमके वचनसे नियोगद्वाराही पत्नीको धनका सम्बन्धकहा वहभी अयुक्त है क्योंकि उक्त वचनका यहअर्थ नहीं होसक्ता कि यदि बीजकी इच्छाकरै तो धनकोप्राप्तहो पक्षान्तरके वाची वाशब्दका यदि अर्थनहीं होसकता—कदाचित् कोईकहै कि—धनकाग्रहण और बीजकीइच्छा येदोनों भिन्न२ अर्थके बोधकहैं इससे वाशब्दका विकल्प अर्थ असम्भवहै इससे यहां वाशब्दका यदि अर्थ होजायगा—यह कथन भी ठीकनहीं—बीजकी इच्छाकरै वा संयतारहै—प्रसंगसे इस धर्मांतरके उप-देश करनेसे विकल्पही अर्थ होसक्ताहै—तिससे गौतमका वचनभी नियोगविनाही पतिके धनका ग्रहण स्त्रीको बोधनकरता है ॥

और विधवा स्त्रीको नियोगका निपेधहोनेसे—अपुत्राःशयनं—इत्यादि वचनोंसे संयता स्त्रीकोही धनका अधिकार कहाहै—और निर्वास्याव्यभिचारिण्यः—इत्यादि वचनोंसे दुष्टस्त्रियोंको धनका अ-भाव कहाहै—और जो इनै वचनोंसे यहकहाहै कि स्त्रियोंको विभक्त और अविभक्त धनकासम्बन्ध अपत्य केही द्वाराहै—वहभी ठीकनहीं है क्योंकि अविभक्त—संसृष्टि—पतिके मरनेपर पुत्रद्वारा स्त्रीको धनका सम्बन्ध होनेपर धनके लोभसे नियोगका स्वीकार न करें यही उक्तवचनोंका तात्पर्यहै—इसीसे ना-रदमुनिने इसै वचनके अनुसार यहकहाहै कि संसृष्टि (इकट्ठे) भाइयोंका भाग पंडितजनोंने स्त्री को नहींकहा फिर सन्तानहीन स्त्रियोंका पालना करनाही कहाहै—और पूर्वोक्त अपुत्रायांपितः—इस वचनसे स्त्रियोंको अंशका अभाग कहाहै वह अन्धआदि स्त्रियोंकोही है—और जो धनको यज्ञार्थहोने से विधवास्त्रीको अंशका अनाधिकार कहाहै—वहभी अयुक्तहै क्योंकि उसवचनमें यज्ञपदसे दान हो-मादि सबकाग्रहण है जो केवल यज्ञही धनका प्रयोजन मानोगे तो दान होमादिकमें कोईनहीं लगा सकेगा और इनै वचनोंसे अर्थ कामोंमें भी धनका लगाना प्रतीत होताहै कि अपनी शक्तिके अनु-सार धर्म अर्थ कामको न त्यागे—और प्रातःकाल मध्याह्न अपराह्न इनको धर्म अर्थ कामकेविना निष्फल न खोवे—और स्त्रीको परतन्त्रता है परन्तु धनके ग्रहणकरनेमें कोई विरोध नहीं—और जो यज्ञकेलियेही धनको पैदाकरना कहाहै वह धर्ममें धनलगानेकी प्रशंसाकेलियेहै—इसीसे उक्त वचन से धर्मयुक्त स्थानोंमें धनलगाना कहाहै और स्त्री सर्व विधर्मियोंमें नहीं कहाहै ॥

मिताक्षराकार तो इसैवचनसे यहकहाहै कि यज्ञमेंधनके न लगानेसे पुरुपभास औरकाकहोताहै—

१ पाणिग्रहणाद्धिसहत्वं ॥
२ धनंयाविभृयाद्भ्रातुः कनीयानज्येष्ठभार्यायां स्त्रिधलोभान्नास्तिनियोगः ॥
३ संसृष्टानांतुयोभाग सतस्यानेप्यतेबुधैः ॥
४ धर्ममर्थंचकामंच यथाशक्तिनहापयेत् । पूर्वाह्णमध्यंदिनापराह्णानफलान्नकुर्यात्धर्मार्थकामेभ्यः ॥
५ यज्ञार्थंलब्धमददत् भापःकाकोपिवाभवेत् ॥

और फिर यहकहा है कि पिताके यज्ञकेलिये संचितकियेहुये धनको पुत्रादिक भी यज्ञमेंही लगावें–अन्यत्र न लगावें ॥

श्रीकिरादि तो यह कहतेहैं कि यदि भार्याके भरण पोषणके योग्यही धनहो तो वह सबको ग्रहणकरले और अधिकधन होय तो भाईआदि ग्रहणकरें–और संपूर्ण धनका ग्रहण जो कृत्स्नमंशंलभेत–इसवचन से कहाहै कि पोषणमात्र धनकाही बोधकहै–तिससे संपूर्ण वचनोंका विरोध नहीं यह श्रीकिरादिका कथन ठीकनहीं–क्योंकि एकही धनपदसे पत्नियोंको जीवनमात्र और भाइयोंको सब धन मिलना नहीं होसका क्योंकि एकरूपताके संभवमें विरूपताका होना अन्याय्यहै–और (कृत्स्नमंशंलभेतच) सबभागको पत्नी प्राप्तहो इस मनुके वचनमें कृत्स्नपद व्यर्थहोजायगा–और औरस पुत्रोंकी विद्यमानतामें भी इन वचनोंसे जब समान भाग पत्नियोंको कहाहै तो पुत्रोंके मरे पीछे जीवनके योग्यही धन उसको मिले यह महान् अनर्थ है–तिससे–पिताहरेदपुत्रस्य–अपुत्रके धनको पिता ग्रहणकरै इत्यादि वाक्योंमें तो क्रम नहीं है इससे ये वचन तो अपुत्र धनके अधिकारी मात्रोंकेही बोधक हैं और याज्ञवल्क्यका–पत्नी इत्यादि वचन तो क्रमसे पत्नी आदिकोंको धनके ग्रहणका बोधकहै इससे पत्नी आदि के अभाववमेंही पिता आदि धनके ग्राहक होतेहैं–और जिस पत्नीमें व्यभिचार की शंकाहो उसको इसै हारीत वचनके अनुसार जीवनमात्रही धनदेना कि जो विधवा स्त्री यौवनमें व्यभिचारिणी होजाय उसको तो अवस्था बिताने के लिये जीवनमात्र धनदे–अर्थात सुपात्र स्त्री पतिके सबधनको ग्रहणकरै और पूर्वोक्त (ज्येष्ठा वा पत्नी) इस शंख वचनमें गुणोंसे ज्येष्ठलेनी अवस्थासे नहीं और मनुजीने भी इसै वचनसे यही कहाहै कि यदि द्विज अपने और अन्य वर्ण की स्त्रियोंको विवाहें तो उनकी ज्येष्ठता पूजा घर वर्ण क्रमसे होती हैं अवस्था से नहीं–इससे विवाह और अवस्थासे छोटी भी सवर्णा स्त्री भिन्नवर्णा से ज्येष्ठा होती है और सवर्णाओंमें भी जो गुणवती है वही इन मनु वचनों के अनुसार उत्तम होती है कि पतिके शरीर की सेवा नित्यका धर्म कार्य सजातीय स्त्रीकरै विजातीय कभी न करै और जो पति अज्ञानसे सजातीयके रहते विजातीयसे सेवा आदि करवावे वह ब्राह्मणोंमें चांडालके समान होताहै और याज्ञवल्क्यने भी इसै वचनसे यह कहाहै कि सजातीय स्त्रियोंमें भी धर्म कार्य को ज्येष्ठाकरै इतर न करै–और सवर्णा के अभावमें तो इसै विष्णु वचनके अनुसार विजातीय अनंतर वर्ण की भी आपत्तिमें करै और शूद्रासे तो द्विज–धर्मकार्य न करावे–ब्राह्मण ब्राह्मणी के अभावमें–क्षत्रियासे–क्षत्रिय क्षत्रिया के अभावमें वैश्यासे–और वैश्य वैश्याही से–नतु शूद्रासे–धर्म कार्य करावें–और सुपात्र सजातीय स्त्री वर्ण के क्रमसे धनको ग्रहणकरके अन्य सपत्नियोंकी पालना करै–और जो समान वर्ण की बहुत स्त्री हैं वे यथोचित विभागकरके ग्रहणकरैं ॥

तिससे अपुत्र और भ्राताओं से पृथक् रहतेहुये असंसृष्ट (पृथक्) पतिके मरे पीछे साध्वी स्त्री

---

१ यदिकुर्यात्समानंशान्पत्न्यःकार्याःसमांशिकाः । पितुरूर्ध्वंविभजतांमाताप्यंशंसमंहरेत् ॥

२ विधवायौवनस्थाचेन्नारीभवतिकर्कशा । आयुषःक्षपणार्थंतुदातव्यंजीवनंतदा ॥

३ यदिस्वाश्चपराश्चैवविन्देरन्योषितोद्विजाः । तासांवर्णक्रमेणैवज्येष्ठ्यंपूजाचवेश्मच ॥

४ भर्तुःशरीरशुश्रूषांधर्मकार्यंचनैत्यकम् । स्वाचैवकुर्यात्सर्वेषांनासजातिकथंचन ॥ यस्तुतत्कारयेन्मोहात्सजात्यास्थितयान्यया । यथाब्राह्मणचाण्डालःपूर्वदृष्टस्तथैवसः ॥

५ सवर्णासुविधौधर्म्ये ज्येष्ठयानाविनेतराः ॥

६ सवर्णाभावेत्वनंतरैवायदिनत्वेवद्विजःशूद्रयाधर्मकार्यं ॥

संपूर्ण पतिके धनकी अधिकारिणी होती है-यदि पति पृथक् रहता होय और भ्राताओं में संसृष्टिहो अर्थात् जिसका व्यापार साझेमें होय तो साध्वी स्त्री को भी पोषणमात्रही (भ्रातॄणामप्रजा) इस नारद वचनके अनुसार अन्न वस्त्रही मिलताहै और व्यभिचारिणी स्त्रियोंको तो वह भी नहीं मिलता- और जो किसी ने इन वचनोंसे व्यभिचारिणीको भी वस्त्र भोजन देना लिखाहै कि पतित स्त्रियोंको भी अन्न वस्त्र दे और वे गृहके समीप बसें और उनके अधिकारको छीनले मलीन और तिरस्कृतरक्खे भोजनमात्रदे और शय्यासे नीचे रक्खे और बसावे यह भी प्रायश्चित्त पर्यंत है और पतिका धर्म है- और अपुत्र पदसे(पत्नी)इस याज्ञवल्क्यके वचनमें पुत्र और प्रपौत्रका भी ग्रहण है-क्योंकि ऋणका दूरकरना पुत्र और पौत्रको कहाहै और ऋण भी वही देसक्ता है जो दायको लेता है-यह बात इन वचनों से प्रतीत होतीहै-क्योंकि पुत्र-पौत्र-प्रपौत्र ये तीनों पार्वण विधिके अनुसार पिंड देने से पितरोंके समान उपकारी होतेहैं क्योंकि मनुने इस वचनसे यह कहाहै कि जल और पिंडका दान तीनको दियाजाताहै और चौथा देनेवाला होताहै और पांचवां कोई नहीं और बौधायन ऋषिने भी इस वचनसे यह कहा है कि प्रपितामह, पितामह, पिता, पिताके सोदरभाई, सवर्णा स्त्री का पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, अविभक्त इनको सपिंड कहते हैं-यदि विभक्त होजायँ तो सकुल्य कहाते हैं-और जब तक अंगजहो अर्थात् धनके स्वामी का।जिनमें अंग संबंधहो उनको ही धन मिलताहै-इस वचनका तात्पर्य यह है पिता आदि तीन पिंडके भोक्ता हैं और पुत्र आदि दाताहैं जो जीताहुआ पिंडकादाता है वह मरकर पिंडका भोक्ता है इसप्रकार मध्यमें स्थित पुरुष उससे छोटे जीवतेहुये पुत्र आदिकों के पिंडका संप्रदान है और मरोंके संग दौहित्र आदि के दियेहुये पिंडका भोक्ता होताहै इसप्रकार जिनका यह पिंडका देना वा लेना विभक्त (बटाहुआ) नहीं है वे अविभक्त दायाद सपिंड कहाते हैं- और पहिले पांचवें का मध्यम पांचवां न पिंडदाता है न भोक्ता है-इससे वृद्ध प्रपितामहसे लेकर तीन पुरुष और प्रणप्ता(प्रपौत्र)से लेकर अगिले तीन ये एक पिंडकेभोक्ता नहींहोसक्ते इससे विभक्त दायाद कहाते हैं अर्थात् मध्यमसे दोनों तरफ पंचम आदि विभक्त दायाद होते हैं-उनकोही सकुल्य कहते हैं यह सपिंड और सकुल्य दायभागमेंही मानेजातेहैं क्योंकि अशौच और विवाह में तो सातवीं पीढ़ीतक इन वचनोंके अनुसार सपिंडता होती है-कि चौथे से आदि तीन लेपभागी पिता से आदि लेकर तीन पिंडभागी और सातवां पिंडकादाता इसप्रकार सातवें पुरुष पर्यंत सपिंडता होती है-और वह सपिंडता सातवें पुरुषमें टिककर आठवें में निवृत्तहोजाती है-और पांचवें वा सातवें में माता पिताके कुल से आगे विवाह संबंधकरे और कात्यायन ऋषिने तो इन वचनों से पुत्र और

---

१ एवमेवविधिंकुर्यात्योषित्सुपतितास्वपि । वस्त्रान्नमासांदेयंतुवसेयुश्चगृहांतिके ॥ हृताधिकारांमलिनांपिंडमात्रोपजीविनीम् । परिभूतामधःशय्यांवासयेत्व्यभिचारिणीम् ॥

२ पुत्रपौत्रैऋणंदेयंरिक्थग्राहऋणंदाप्यः ॥

३ त्रयाणामुदकंकार्यंत्रिषुपिंडःप्रवर्तते । चतुर्थःसंप्रदातैषांपंचमोनोपपद्यते ॥

४ प्रपितामहः पितामहः पितास्वयं सोदर्याभ्रातरः सवर्णायाःपुत्रपौत्रः प्रपौत्र एतानविभक्तदायादान् सपिंडान् आचक्षते विभक्तदायादांश्चसकुल्यान् आचक्षते सत्स्वंगजेपुतत्गामिह्यर्थोभवति ॥

५ लेपभागभुजःचतुर्थाद्याःपित्राद्याःपिंडभागिनः। पिंडदःसप्तमस्तेषांसापिंड्यंसाप्तपौरुषम् ॥ सपिंडतातुपुरुषेसप्तमेविनिवर्तते। पंचमात्सप्तमादूर्ध्वंमातृतःपितृतस्तथा ॥

६ अविभक्तेमृतेपुत्रेतत्सुतंरिक्थभागिनम्। कुर्वीतजीवनंयेनलब्धंनैवपितामहात् ॥ लभेतांशंसपित्र्यन्तुपितृव्यात्तस्यवासुतात् । सएवांशस्तुसर्वेषांभ्रातॄणांन्यायतोभवेत् ॥ लभेततत्सुतोवापिनिवृत्तिःपरतोभवेत् ॥

पौत्र प्रपौत्रोंको धनका ग्रहणकरना कहाहै कि यदि अविभक्तपुत्र मरजाय तो उसके पुत्रको धनभाग दे जिसको पितामहसे जीवन न मिलाहो वह अपने पितृव्य वा पितृव्य के पुत्रसे अपने भागको ले ले और वही भाग लड़के का होगा जो न्यायसे भाइयोंका होताहै और लड़का भी मरजाय तो उसका लड़का(प्रपौत्र)धनको ग्रहणकरै—और उससे परे निवृत्तिहोजाती है अर्थात् सपिंडतानहीं रहती सिद्धांत यह है कि पुत्र आदि तीन पिता आदि तीनों के महान् उपकारक होते हैं--इससे पुत्र आदि तीनोंने ग्रहण कियेहुये धनसे स्वामी का उपकार किया इससे उपकार के संबंधसे वह धन स्वामी का होताहै--यह उपकार संबंध अत्यंत श्रेष्ठ है क्योंकि इस[1] वचनसे यह कहा है कि ज्येष्ठ पुत्र के पैदा होतेही मनुष्य पुत्रवाला और पितरोंके ऋणसे हीन होताहै--पिताको ऋण हीन करनेसे पुत्रने पिताका उपकारकिया इससे वही पिताके धनलेनेके योग्यहोताहै सिद्धांतयहहै कि इसदायभाग प्रकरण में चौथी पीढ़ीतकही सपिंडता होती है और वही धनकाभागी होताहै जिसको धनमिलनेसे उसीधन से पूर्वधनके स्वामीका श्राद्धआदि द्वारा उपकारहो अर्थात् वहधन परलोकमें भी कुछ उसके काम आवे—और जहांतक सम्बन्ध समीपहो वहांतकही धनपहुंचना है—और पुत्रआदिकोंको पिताआदिका महान् उपकारी श्रुति स्मृति—पुराणआदिकोंमें प्रसिद्धहै कि बह्वृच ब्राह्मणकी इस[2] श्रुतिसे हरिश्चंद्रोपाख्यानमें नारदमुनिसे यहपूछाहै कि इसपुत्रको जो प्राप्तहोतेहैं और जो जानते हैं और पुत्रसे क्या मिलताहै हे नारद सो मुझेकहो इसप्रकारकी गाथासे जब हरिश्चन्द्रने नारदमुनिको पूछा तब दश गाथा (इतिहास) ओंसे नारदमुनिने पुत्रका माहात्म्य वर्णनकिया—उनमें एक यह[3]श्रुति है कि पुत्र को पितरोंका ऋणदेताहै और पुत्रसे मुक्तहोता है—और जो पिता अपनेसे पैदाहुये पुत्रके मुखको देखले--और मनुभी पढ़ि—पुंनाम्नः—इस[4] वचनसे कहआये हैं कि जिससे पुंनाम नरकसे पिताकी रक्षा पुत्रकरता है—इससे ब्रह्माने स्वयंपुत्रकहा है और विष्णुके वचनको यहीआकारहै—और इस[5] वचनसे शंखलिखितने भी यहीकहाहै—कि पिता अपने जीवते समयमें पुत्रके मुखको देखकर पितरोंके ऋणसे छूटताहै और पुत्रको वह ऋणदेकर पुत्रसेही स्वर्गमें जाताहै और अग्निहोत्र तीनोंवेद—दक्षिणासहित यज्ञ ज्येष्ठपुत्रकी षोडश १६ कलाके भी योग्य नहीहोते—और मनु–लिखित—वसिष्ठ हारीतोंने भी इस[6] वचनसे यहकहाहै कि पुत्रसे लोकोंको जीतताहै पौत्रसे अनन्तलोक होते हैं और प्रपौत्रसे इन्द्रके स्थानको प्राप्तहोताहै—और याज्ञवल्क्यऋषिने भी इस[7] वचनसे पुत्र पौत्र प्रपौत्रोंसे अनन्तलोक और स्वर्गकी प्राप्तिकहीहै—और पुराणोंमें तो पुत्रकी प्रशंसाके बहुत आख्यान हैं ॥

तिससे यह सिद्धहुआ कि प्रपौत्रपर्यंत सन्तानके न होनेसे विभक्त और असंसृष्ट पतिका धन पत्नी कोही मिलताहै इसमें जीमूतवाहन यहकहते हैं कि पूर्वोक्त—(यद्विभक्ते)इस बृहस्पति वचनके विरोधसे

---

१ ज्येष्ठेनजातमात्रेणपुत्रीभवतिमानवः । पितृणामनृणश्चैवसतस्माल्लब्धुमर्हति ॥
२ यंत्विमंपुत्रमिच्छन्ति येविजानंतियेचन । किंस्वित्पुत्रेणविंदेततन्ममाचक्ष्वनारद ॥
३ ऋणमस्मिन्संनयति अमृतत्वंचगच्छति । पितापुत्रस्यजातस्य पश्येत्चेत्जीवतोमुखम् ॥
४ पुंनाम्नोनरकाद्यस्मात् पितरंत्रायतेसुतः । तस्मात्पुत्रइतिप्रोक्तःस्वयमेवस्वयंभुवा ॥
५ पितृणामनृणोजीवनदृष्ट्वापुत्रमुखंपिता । स्वर्गीसुतेनजातेनतस्मिन्सन्न्यस्यतदृणम् ॥ अग्निहोत्रंत्रयोवेदायज्ञाश्चैवसदक्षिणाः । ज्येष्ठपुत्रप्रसूतस्यकलांनार्हंतिषोडशीम् ॥
६ पुत्रेणलोकान्जयति पौत्रेणानन्त्यमश्नुते । अथपुत्रस्यपौत्रेणब्रध्नस्याप्नोतिविष्टपम् ॥
७ लोकानंत्यंदिवःप्राप्तिः पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः । यस्मात्तस्मात्स्त्रियःसेव्याःकर्त्तव्याश्चसुरक्षिताः ॥

यह व्यवस्था ठीकनहीं है–क्योंकि इनै वचनोंसे यह प्रतीतहोताहै कि जो भाई पृथक्‌होकर पुनः एकत्र होजाय तो दुबारा विभाग करनेमें उनमें ज्येष्ठता नहीं है–यदि कोईभाई मरजाय वा संन्यासी हो-जाय तो उसकाभाग नहीं माराजाता किंतु उसके सोदरभाईको दियाजाताहै और उसकी भगिनी को भी उसमेंसे भागकी योग्यताहै–और पुत्रहीन पिताका और भार्या और पिताहीनका यहधर्म है कि यदि संसृष्टोंमें कोईभाई विद्या और वीरतासे धनका संचयकरै तो उसको दोभागदे और शेष धनको सबभाई समान बांटलें–अर्थात् जीमूतवाहनने इनवचनोंसे यहकहा कि विभक्त संसृष्टपति के धनको पत्नीनहीं पासकती किन्तु सोदरभाइयोंको मिलताहै–क्योंकि उक्तवचनोंके प्रारम्भ और समाप्तिमें संसृष्टधनका वर्णनहै उनके बीचका जो (नलुप्यते) यहवचनहै वहभी संसृष्ट विषयकही अवश्य कहनापड़ेगा और उसवचनमें अपत्य और भार्या रहितका यहधर्म कहाहै इससे पुत्र दुहिता पत्नी पिता इनके अभावमेंही सोदर संसृष्ट भाइयोंका अधिकारहै पत्नीसे पहिले नहीं है–और (न-लुप्यते) इसका यहीअर्थ है कि उसके भागका लोपनहींहोता यह कहना भी उसीद्रव्यके भागका होसकताहै जो संसृष्ट अविभक्त अन्य भाइयोंका मिलगयाहो और उसका विभाग पुनः करतेहों–और जो धन अविभक्त असंसृष्ट भाइयोंकाहो उसके विभागमें लोपकी शंकाहीनहीं होसकती तिससे उक्तवचन संसृष्टधन विषयकही हैं–और पत्नीसे पहिले भाईके अधिकार बोधक जो शंखआदिके वचनहैं वे संसृष्ट अविभक्त भाइयोंकेही धन विषयकहैं यहबात किसी प्रकट वचनसे कहतेहो वा प्र-बल न्यायसे–प्रकट वचन तो कोई हैनहीं क्योंकि (संसृष्टिनः) यहवचन तो भाईके अधिकारमें विशेष कथनहै इससे पूर्वोक्तका बोधक नहीं है और बृहस्पतिका वचन भी पुत्रआदि पिता पर्यंतके संसृष्ट सोदरोंके अधिकारका बोधक नहींहै प्रत्युत असंसृष्ट विषयकहीहै–इससे प्रकट वचन तो नहीं है और प्रबल न्यायभी कोई नहींहै क्योंकि न्याय यही कहोगे अविभाग और संसर्ग में जो एकका धन होताहै वही दूसरेका होताहै उसमेंसे मृतक स्वत्व चलाजावो जीवतेका स्वत्वहोनेसे उसकोही मिलना चाहिये अन्य स्वामी (पत्नी)की कल्पना युक्तनहीं है–यह न्याययुक्त नहीं है क्योंकि अवि-भाग और संसर्गवालोंका भी स्वत्व प्रति नियत (निश्चित) आश्रयवाला स्वत्व ऐसाहै जिसकी एकदेशमें स्थिति नहीं जानीजाती न एकस्वत्वहै न सबकाहै न समग्रमें है क्योंकि अनेक स्वत्वोंकी उत्पत्ति और विनाशकी कल्पना करनी पड़ेगी–और पूर्वोक्त गौतम वचनसे–(पाणिग्रहणादि) पति के धनमें पत्नीका स्वत्व विवाहसेही होजाता है–वहस्वत्व अविभक्त संसृष्टभाईके मरनेपर नष्टहो जाय और विभक्त असंसृष्टभाईके मरनेपर नष्ट न हो इसकल्पनामें कोई प्रमाण नहीं है–पुत्रआदिके होनेपर जो पत्नीके उक्त स्वत्वका नाशहै वह पुत्रादिके अधिकारबोधक शास्त्रबलसे है–और पुत्रा-दिकोंको माताका भी उपकारक होनेसेहै–कदाचित् कोई यहकहै कि यहांभी भ्राताओंके अधिकार बोधकशास्त्रसे पत्नीके स्वत्वनाशकी कल्पना करेंगे–यहठीक नहीं क्योंकि अन्य तो कोई शास्त्र (व-चन) नहीं है और यह वचन पत्नीके स्वत्वनाशको इसलिये बोधन नहीं करसकता कि अन्योन्या-श्रय दोष इसमें है कि संसृष्ट अविभक्त भाईका मरण होजानेसे पत्नीके स्वत्वका नाश जबहोजाय

---

१ विभक्ताभ्रातरोयेचसंप्रीत्यैकत्रसंस्थिताः । पुनर्विभागकरणेतेषांज्यैष्ठ्यंनविद्यते ॥ यदाकश्चित्प्रमीयेतप्रव्रजेद्वाकथं-चन । नलुप्यतेतस्यभागः सोदरस्यविधीयते ॥ यातस्यभगिनीसातु ततोंशंलब्धुमर्हति । अनपत्यस्यधर्मोयमभार्यापितृकस्य च ॥ संसृष्टानांतुयःकश्चित् विद्याशौर्यादिनाधनम् । प्राप्नोतितस्यदातव्योद्व्यंशःशेषाःसमांशिनः ॥

तभी भ्राताओंके अधिकारका बोधक वचन संसृष्ट अविभक्त भाई विषयकहो—और जब उक्त शास्त्र (वचन) सिद्धहोले तब पत्नीके स्वत्वका नाशहो—भावार्थ उक्त शास्त्रको संसृष्ट अविभक्त भ्राताओं के विषयक होनेमें पत्नी के स्वत्वनाशकी अपेक्षा है और पत्नीके स्वत्वनाशको उक्त शास्त्र सिद्धिकी अपेक्षाहै इसप्रकार परस्पर अपेक्षा होनेसे अन्योन्याश्रय समझना—इसीसे याज्ञवल्क्य और विष्णु आदिके वचनोंमें पुत्रका अभावही कहाहै और विभक्त असंसृष्टत्व दोनों नहींकहे—कदाचित् कोई यहकहै कि विभाग तो कहदिया और संसृष्टियोंको आगे कहेंगे इससे यह वचन है अर्थात् विभक्त असंसृष्ट भी कहदिये—यह ठीकनहीं क्योंकि मुख्य गौणपुत्रोंका विभाग कहदिया इससे यह वचन अर्थात् अपुत्र विषयमें होजायगा फिर (अपुत्रस्य) यहपद भी न देनाचाहिये—अपुत्र धनके येही स्वामीहैं इसनियमके बाधक इनवचनोंको कहोगे तो इनमें भी तुल्यरीतिसे नियमार्थता होसकती है परन्तु विभागमें उक्तपर्यवसान तो न हुआ—और संसृष्टि वचन भाइयोंके अधिकारके समय विधि केलियेहै पत्नीआदिके निषेधकेलिये नहीं है यह कहहीआये हैं—और यदि शंखलिखित आदिके वचनोंको अविभक्त संसृष्ट भ्राता विषयक मानोगे तो अविभक्त संसृष्ट अपुत्र भाईकाधन संसृष्ट अविभक्त भाईको मिलता है उनके अभाव में माता पिताओं को मिलता है इसका क्या अर्थ करोगे क्योंकि इसमें यह विकल्प होसक्ताहै कि क्या विभक्त असंसृष्ट माता पिता उस धनको लें वा विभक्त संसृष्ट माता पिता लें—इन दोनोंमें पहिलापक्ष तो इससे नहीं मान सक्ते कि विभक्त असंसृष्ट माता पिताकी बाधक पत्नी होती है तो भाई के अभावमें पत्नी से पहिले माता पिताका कैसे अधिकार जानाजाताहै—और दूसरापक्ष इसलिये नहीं है कि अविभक्त संसृष्ट पिता माताके अधिकारको सब मानते हैं तो यह वचनही व्यर्थ होजायगा—और जैसे पिता और भ्राताका जो धन विभक्त असंसृष्ट है उसमें अपुत्र पिताका भाई से पहिले इसलिये अधिकार है कि इन वचनोंसे पुत्रको पिताकी आत्मा कहाहै और पुत्रकेदेह और धनमें पिताकीही प्रभुताहै और मृतक पुत्र भी पितामह प्रपितामह को पार्वण में अपने पिताके दिये दोनों पिंडोंका भोक्ता सपिंड होताहै और जीवते पुत्रोंको पार्वण पिंडदेने के अभावसे भ्राताओंसे पहिले माता पिताका अधिकार है तिसीप्रकार अन्यत्र भी माता पिताओंका भाइयों से पहिलेही अधिकार युक्त है और अविभाग और संसर्ग की अविशेषता से भी माता पिताका तुल्य अधिकार युक्तहै और माताके अभावमेंही पिताकाहो यहनहीं—और माता पिता दोनों अविभक्त संसृष्ट होभीनहीं सकते क्योंकि माताकेसंग न विभागहै और न संसृष्टताहै क्योंकि वेही संसृष्टहोते हैं जिनका विभागहोता है—अतएव बृहस्पतिने इस वचनसे यहकहा है कि जो विभक्त पिता चाचा वा भाईकेसंग एकत्र प्रीतिसे स्थितहोजाय वह उसका संसृष्ट कहाताहै—इसवचन से यहबात प्रकटहै कि जो पिता भाई पितृव्य पितृपितामहके संचितधनमें उत्पत्तिसेही अविभक्तहोते हैं वेही विभक्त (जुदे) होकर पुनः परस्पर प्रीतिसे पहिले विभागको नष्टकरके यहसम्मति करलें कि जो तेराधनहै वहमेराहै और जो मेराहै वहतेरा—और एकस्थानमेंही भोजन करतेहुये एक गृहस्थीके समानरहैं वेही संसृष्ट कहातेहैं और जो ऐसे सम्मति न करैं वे संसृष्ट नहीं कहाते अन्यथा द्रव्यके मेलसे व्यापारी भी संसृष्ट होजायँगे—इसीप्रकार वेभाई भी संसृष्ट नहीं होसकते जो प्रीति

---

१ विभक्तोयःपुनःपित्राभ्रात्राचैकत्रसंस्थितः । पितृव्येणाथवाप्रीत्यासतत्संसृष्टउच्यते

पूर्वक पूर्व प्रतिज्ञाको न करें और सुकृतकेवश द्रव्यको मिलाकर व्यवहारकरैं-तिससे माताको तो भाइयोंसे पहिले अवश्य अधिकार जीमूतवाहनके मतमें भी नहीं हटसकता ॥

इससे प्रपौत्र पर्यंतके अभावमें सर्वत्र पुत्रहीन मृतकपतिके समस्त धनमें पत्नीकाही अधिकार होताहै-क्योंकि प्रपौत्र पर्यंतके अभावमें पत्नीभी श्राद्धआदि करनेसे भर्त्ताकी उपकारक है और मनु के इस वचनसे और व्यासके इन वचनोंसे यही प्रतीतहोता है कि पत्नीही पतिको पिंडदे और उस के संपूर्णभागको ग्रहणकरै-पतिके मरेपीछे ब्रह्मचर्यमें टिकीहुई साध्वी स्त्री प्रतिदिन स्नान करके भर्त्ताको जलकी अंजलिदे और प्रतिदिन भक्तिसे देवता और अतिथियोंका पूजनकरै और अनुव्रत हुई विष्णुका पूजनकरै और पुण्यकी वृद्धिकेलिये मुख्य२ ब्राह्मणोंको दानदे और शास्त्रोक्त नाना-प्रकारके उपवासकरै हेशुभे हे वरानने (पार्वती) धर्ममें नित्य तत्पर वहनारी लोकान्तरमें टिकेहुये भर्त्ता और अपने आत्मा-इनदोनोंको तारतीहै-तिससे पत्नी पतिको नरकोंसे निस्तारती है-यदि धनहीन होकर अकार्य करेगी तो अपने पापसे पतिको भी नरकमें पटकती है क्योंकि इस वचनसे पत्नीको अर्द्धांग कहाहै और जिसकी भार्या मदिरापीवे उसके आधे शरीरको नरककहा है-इससे पत्नीका ग्रहणकिया धन स्वामीकेलिये होताहै इससे सबसे प्रथम पतिका धन पत्नीकोही ग्रहणक-रना उचितहै-और शंखआदिके वचनोंमें तो भिन्न २ योजना इसप्रकार करनी कि पुत्र पौत्र प्रपौत्र रहित जो स्वर्गमें गतकाधन सबसे पहिले श्रेष्ठ और ज्येष्ठपत्नीको मिलताहै और पत्नी दुहिता दौहित्र के अभावमें माता पिताको-और उनके अभावमें भ्राताको-अर्थात् मध्यमें पढ़ाहुआ (तदभावे) यह पद पूर्व और उत्तर दोनों के संग संबंधको प्राप्त होताहै-और (भ्रातृणामप्रजाःप्रेयात्) इत्यादि जो नारद आदि के वचन हैं उस स्त्रीको भोजन वस्त्रके वोधक हैं जो विवाही हो परंतु अपत्नी रूप (मो-लली) हो क्योंकि उनमें स्त्री शब्द पढ़ाहै और यहां पत्नी शब्द पढ़नेसे समस्तधनका अधिकार पत्नी को होताहै-इससे नारदके ही इस वचनमें यह लिखाहै कि धर्म में तत्पर राजा ब्राह्मणसे अन्यत्र पुत्रहीन मृतककी स्त्रियोंको जीवन (अन्न वस्त्र) दे यही दायकी विधि कही है-इस वचनसे जो ब्रा-ह्मण भिन्नकी स्त्री अपत्नी हैं उनको वर्तन योग्य (भोजन) ही देना कहा क्योंकि इसमें स्त्रीशब्द पढ़ा है-और ब्राह्मण से भिन्नकी भी जो स्त्री पत्नी हैं उनको इस वचनसे वृहस्पतिने संपूर्ण धनका अधि-कार कहा है कि जो क्षत्री वैश्य शूद्र-पत्नी भ्रातासे रहित हैं उनके धनको राजा ग्रहणकरै क्योंकि राजा सब का अधिपति होताहै इस वचनमें पत्नी भ्रातृ रहित यह पद सब्रह्मचारी पर्यंतों का भी वोधक है क्योंकि क्रमसे पढ़ेहुये पत्नी आदिकोंमें राजाका प्रवेश नहीं होसक्ता और पूर्वोक्त विष्णुके वचनमें भी सहाध्यायी पर्यंतोंको पढ़कर उनके अभावमें ब्राह्मण भिन्नकाधन राजाको मिलना कहा

---

१ पत्न्येवदद्यात्तत्पिंडं कृत्स्नमंशंलभेतच ॥

२ मृतेभर्तरिसाध्वीस्त्री ब्रह्मचर्येव्यवस्थिता । स्नातामतिदिनंभक्त्या भर्त्रेदद्याज्जलांजलीन ॥ कुर्याच्चानुदिनंभक्त्यादेवतातिथिपूजनम् । विष्णोराराधनंचैव कुर्यान्नित्यमनुव्रता ॥ दानानिविप्रमुख्येभ्योदद्यात्पुण्यविवृद्धये । उपवासांश्चविविधानकुर्याच्छास्त्रोदितानशुभे ॥ लोकांतरस्थंभर्तारमात्मानंचवरानने । तारयत्युभयंनारीनित्यंधर्मपरायणा ॥

३ पतत्यर्द्धंशरीरस्य यस्यभार्यासुरांपिवेत् ॥

४ अन्यत्रब्राह्मणात्किंतुराजाधर्मपरायणः । तत्स्त्रीणांजीवनंदद्यात्एषदायविधिःस्मृतः ॥

५ येऽपुत्राःक्षत्रविट्शूद्राःपत्नीभ्रातृविवर्जिताः । तेषांधनंहरेद्राजासर्वस्याधिपतिर्हिसः ॥

है यहं तत्त्वका विचार जीमूतवाहनने किया है कि विभक्त असंसृष्ट पतिके धनका अधिकार पत्नीको पुत्र पौत्र प्रपौत्रके अभावमें नहीं है किन्तु अविभक्त संसृष्ट पतिकेही धनका अधिकार पत्नीको होताहै ॥

इस जीमूतवाहनके तत्त्व विचारमें यह विचारने योग्य है कि नारद शंख आदि के पूर्वोक्त वचनों की जो अविभक्त संसृष्टि विषयक मानने की व्यवस्थाहै उसमें न्यायका विरोधहै वा वचनका विरोध है—न्याय विरोध तो नहीं कहसक्के क्योंकि कोई वाधक न्याय नहींहै प्रत्युत साधक न्याय है कि जब अविभक्त पति मरजाय तो पतिकाभागही नहीं हुआ था यह पत्नी किसका ग्रहणकरै और संसृष्ट मरजाय तो पैदाहुआ भी पत्नीका भाग पुनः साधारण स्वत्वके पैदाहोनेसे पत्नीका स्वत्व नष्टहोगया कदाचित् कोई कहै कि साधारण स्वत्ववाले धनमें पत्नीका भी अविभक्त भागहै—यह भी ठीक नहीं है क्योंकि जिस पतिका साधारण स्वत्वथा उसके मरने पर जिन भाइयोंका क्रमसे स्वत्वथा उनको धन मिलना उचित है अन्य (पत्नी) के स्वत्वकी कल्पना उचित नहीं है—कदाचित् कोई कहै कि इस गौतम वचनके अनुसार विवाह होतेही कर्म कर्म के फल और द्रव्यके ग्रहणमें पति और पत्नी की एकता होजाती है अतएव पत्नीका भी पतिके भागमें स्वत्व पैदा होजाता है उसका नाश पतिके नाश होनेपर कैसे कहतेहो—सो भी ठीक नहीं पत्नीका औपपत्तिक स्वत्व होताहै अर्थात् विवाह के होनेसे होताहै और भ्राताओंके समान तात्त्विक(यथार्थ) नहींहै क्योंकि पत्नीका पतिके धनमें स्वत्व ऐसा है जैसे मिलेहुये दूध और जल होतेहैं जिस स्वत्वसे पति और पत्नीका कर्मोंमें सह(मिलकर) अधिकार होताहै और भाइयों के समान परस्पर नहीं होता—अतएव भाइयोंका विभाग होताहै और स्त्री पुरुषका इस वचनके अनुसार नहीं होताहै—तिससे पतिके स्वत्वनाशसे पत्नीके स्वत्वका नाश आवश्यकहै—इससे पूर्वोक्त व्यवस्थाही ठीकहै जीमूतवाहनका तत्त्व विचार ठीकनहीं है ॥

अविभक्त पुत्रहीन पतिके तो संपूर्ण धनको इस कात्यायन वचनके विरोधसे पत्नी ग्रहण नहीं करसकती कि जिस स्वामीके धनका विभाग न हुआहो वह स्वामी स्वर्गगामी होजाय (मरजाय) तो पत्नी मरणपर्यंत भोजन वस्त्रकेयोग्य धनकी भागिनीहोतीहै अर्थात् जितनेधनसे मरणपर्यंत निर्वाहहो और आवश्यक कर्मोंको करसके उतनेही धनको प्राप्तहोतीहै भावार्थ यहहै कि पतिके संपूर्ण धनको प्राप्तनहींहोती कदाचित् कोई यह शंकाकरै कि उक्त वचनमें स्त्रीशब्दके पढनेसे पत्नी भिन्न स्त्रीकोही भोजन वस्त्रका बोधक यहवचन है—सो ठीकनहीं है क्योंकि अविभक्तपद व्यर्थ होजायगा विभक्त भर्ताके मरनेपर भी पुत्रहीन पत्नी भिन्नको भरणमात्रही कहाहै इससे बृहस्पतिने इस वचन से यहकहाहै कि विभाग कियेपीछे भी पत्नी को पिंड (भोजन) हीदे यदि वहचाहै तो क्षेत्रका कुछ भागदेदे—इसवचनका स्मृतिचन्द्रिकामें यहअर्थ लिखा है कि पिंडपदसे वस्त्र भोजन ग्रहण करने भोजन पर्याप्त (योग्य) धनदे अथवा जिससे भोजन वस्त्र चलसके उतना क्षेत्रकाभागदे परन्तु वह पत्नी भर्ताके भागयोग्य स्वच्छहो और उससे भिन्न विधवाको तो पतिके भाई आदि उक्त धनदें—

---

१ तदभावेब्राह्मणधनवर्जंराजगामि ॥
२ पाणिग्रहणाद्धिसहत्वंकर्मसुतत्फलेषुद्रव्यपरिग्रहेषुच ॥
३ जायापत्योर्नविभागोविद्यते ॥
४ स्वर्यातेस्वामिनीस्त्रीतुग्रासाच्छादनभागिनी । अविभक्तेधनांशन्तुप्राप्नोत्यामरणांतिकम् ॥
५ प्रदद्यात्त्वेवापिंडंतुक्षेत्रांशंवायदीच्छति ॥

नारदमुनिने इसँ वचनसे यहकहाहै कि जितनी साध्वी विधवास्त्री हैं उनकी ज्येष्ठभाई वा श्वशुर-वा अन्य कोई गोत्रज भोजन वस्त्रसे पालनाकरै और साध्वी यहकहनेसे सबजगह साध्वियोंकीही पालनाकरै और असाध्वी पत्नियोंके तो इस (आच्छिद्युरितरासुच) वचनके अनुसार भरण पोषण को भी छीनलें-अतएव साध्वीस्त्रियोंको श्वशुरआदिने जो दियाहो उसको इतर (देवरआदि) इसँ बृहस्पतिके वचनानुसार न छीनें-कि श्वशुरआदिने जो स्थावरआदि धन स्त्रियोंको दिया है उसको इतर दायकेभागी कदाचित् भी हरण न करैं और जो साध्वी नहीं हैं उनसे तो इनँ कात्यायन वाक्योंके अनुसार दियेहुयेको भी छीनले कि जो स्त्री श्वशुरआदिकी सेवामें तत्पर है वहदिये धनको भोगने योग्यहै और यदि सेवा न करै तो भोजन वस्त्रदे-और वहस्त्री धनकेयोग्य नहींहोती जो अपकारमें तत्परहो व्यभिचार करतीहो अथवा धनकानाश करतीहो-और जो स्त्रियोंको इसँ श्रुतिके अनुसार इसँ मनुकेही वचनमें अदायादकहा है वह उनस्त्रियोंको है जिनको स्पष्टरीतिसे धनका ग्रहण नहींकहा ॥

सिद्धान्त यहहै कि अपुत्र मृतकपतिके धनका ग्रहण वही पत्नी करसकतीहै जो साध्वी पतिव्रता गुणोंमें उत्तमहो-और पतिभी विभक्त और असंसृष्टहो-परन्तु जो धन स्थावर है वहस्त्रीको पूर्वोक्त बृहस्पतिके (यद्विभक्ते) इसवचनके और-(नस्त्रीस्थावरमर्हति) इसवचनके अनुसार नहीं मिलता क्योंकि स्त्रियोंको परतन्त्र कहाहै और धन उसकोही मिलताहै जिसको उसधनकी वृद्धि और रक्षा का सामर्थ्य होताहै अतएव स्त्रियोंको पराधीनता वर्णनकीहै और (जंगमंस्थावरं) इसवचनसे जो स्थावर धनका भी स्त्रीको ग्रहणकहाहै वह श्राद्धआदि करनेकेलिये स्वाधीन करनेके अर्थहीहै और स्त्रीको दान और विक्रय करनेका अधिकार नहीहै क्योंकि पूर्वोक्त कात्यायनके इस वचनसे प्रतीत होताहै कि पतिके मरेपीछे स्त्री भर्ताके भागको प्राप्तहोती है परन्तु उसधनमें पत्नीकी जीवनपर्यन्त स्वामिता होतीहै दान-आधमन विक्रयमें नहींहोती-और जिन वचनोंमें स्त्रीको स्थावर धनका भी ग्रहणकहाहै और जिनमें सबधनका ग्रहणकरना स्त्रीको कहाहै वह तबतकहीहै जबतक वहशुद्ध आचरणवालीरहै और जीवै और उसधनका आवश्यक कार्योंमेंही व्ययकरै और स्थावर धनका तो विक्रय दानआदि न करै-और जो स्त्री चरित्रसेहीनहैं उनको तो जीवनमात्र भी धननहीं मिलता क्योंकि जहांतहां उसस्त्रीकीही रक्षा धनग्रहण लिखा है जो पतिव्रताहो क्योंकि धन उसकोही मिलताहै जो पतिका उपकारकरै अतएव मृतक होनेपर भी वहधन पहिले धनस्वामीकोही भोगका दाता श्राद्धआदिसे उपकारकहो,यदि स्त्री पतिके निमित्त श्राद्धआदि न करै तो किसीप्रकार भी धन भागिनी नहीं होसकती ॥

---

१ यावत्योविधवासाध्व्योज्येष्ठनश्वशुरेणवा । गोत्रजेनापिवान्येनभर्तव्यास्त्राच्छादनाशनैः ॥

२ स्थावरादिधनंस्त्रीभ्योयद्दत्तंश्वशुरेणतु । नतच्छक्यमयाकर्तुंदायादैरिहकर्हिचित् ॥

३ भोक्तुमर्हतिकृप्तांशंगुरुशुश्रूषणेरता । नकुर्याद्यदिशुश्रूषांचैलपिण्डौनयोजयेत् ॥ अपकारक्रियायुक्तानिर्लज्जाचार्थनाशिका । व्यभिचाररतायाच स्त्रीधनंनचसार्हति ॥

४ तस्मात्स्त्रियोनिरिन्द्रियाअदायादाः ॥

५ अनिन्द्रियाह्यदायादाः स्त्रियोनित्यमितिस्थितिः ॥

६ मृतेभर्तरिभर्त्रंशं लभेतकुलपालिका । यावज्जीवंनहिस्वाम्यं दानाधमनविक्रये ॥

सारांश यहहै कि स्त्रीको जीवन श्राद्धआदिकेलिये जो धनमिलताहै उसमें पतिका श्राद्धआदिसे उपकारही हेतुहै और जीवन और श्राद्ध आवश्यकसे अधिक स्थावर धनका तो स्त्रीको अधिकारही नहीं है और उसका भी विक्रयआदि नहीं करसकती—इससे स्थावरसे भिन्न वा यत् किंचित् श्राद्धोपयोगी स्थावर वा इतरद्रव्य जो पुत्र पौत्र—प्रपौत्रहीन स्वामी (पति) काहै उसको सबसे प्रथम पूर्वोक्त पत्नी ग्रहण करतीहै ॥

इति पत्नीदायभागप्रकरणम् ॥

यदि पत्नी न होय तो विभक्त असंसृष्टि अपुत्र पिताके धनको दुहिता (पुत्री) ग्रहण करती हैं क्योंकि इस[1] पूर्वोक्त मनुके और इस[2] बृहस्पतिके वचनानुसार यही प्रतीतहोता है कि जैसा आत्मा वैसापुत्र होताहै और पुत्रकेसमान दुहिताहोतीहै इससे आत्माके समान दुहिताकेरहते अन्यमनुष्य किसप्रकार धनको लेसकताहै—दुहिता भी पुत्रकेसमान मनुष्योंके अंग२से पैदाहोतीहै जिससे अन्य मनुष्य पिताके धनको कैसे ग्रहण करसकता है—इनवचनोंमें दुहिताको पुत्रकी तुल्यता इसलिये कहीहै कि पुत्रमें पिताके अवयव अधिकहोते हैं और दुहिताओंमें—इस[3] वचनके अनुसार पत्नियोंके—इससे दुहिता पुत्र तुल्यहोती है—यद्यपि इनदोनों वचनोंमें औरसपुत्रके अभावमें पुत्रीकोही धनका ग्रहण प्रतीतहोता है तथापि गौणपुत्र और पत्नीकेपीछे दुहिता धनको ग्रहणकरै यह कैसान्यायहै—इसका यह समाधानहै कि नारदमुनिके इस[4] वचनोंसे यहप्रतीत होता है कि पुत्र और दुहिता ये दोनों पिताकी संतानके कारक हैं अर्थात् पुत्र पौत्रके द्वारा और पुत्री दौहित्रके द्वारा दोनों भी अपनी २ संतानके द्वारा पिताके उपकारी हैं इससे दुहिताको भी पुत्रकेसमानही पिताके धन में अधिकार है—और पौत्र और दौहित्र जो इनकी संतान हैं वे दोनों स्वरूपसे तुल्य नहीं हैं किंतु कार्य से तुल्य हैं और वह कार्य भी ऋणको दूरकरना और धनकाग्रहण रूप नहीं लेना क्योंकि इस[5] वचनोंसे पुत्र पौत्रोंकोही ऋणदेना लिखा है और पितामहके धनमें पुत्र और पौत्र की तुल्यता कही है इससे पौत्रके विद्यमान होते दौहित्रका अधिकार नहीं होता—इससे अदृष्ट कार्यही लेना—और वह यहां श्राद्धका करना समझना क्योंकि इस[6] विष्णु वचनसे पुत्रहीन पितरोंकेश्राद्ध करनेमें दौहित्रोंको भी पौत्र कहाहै—इससे दृष्ट(ऋणकीनिवृत्ति) और अदृष्ट (श्राद्ध आदि) से अपनी संतानके द्वारा पिताके उपकारक पुत्रसे—केवल अदृष्ट (श्राद्ध) कीही अपनी संतान द्वारा उपकारक दुहिता न्यून होती है इससे दोनों के उपकारक पुत्रको ही पिताका धन मिलता है दुहिता को तो केवल मानमात्रही मिलता है ॥

इसमें कोई यह कहते हैं कि पूर्वोक्त रीतिसे पुत्रके पीछेही दुहिताको धन मिलना तो उचितहै परंतु पत्नी से तो दुहिता समीप है और अपने से उत्पन्न होती है इससे पत्नीसे पहिले दुहिताकोही

---

१ यथैवात्मातथापुत्रः पुत्रेणदुहितासमा । तस्यामात्मनितिष्ठंत्यां कथमन्योधनंहरेत् ॥
२ अंगादंगात्संभवतिपुत्रवद्दुहितानृणाम् । तस्मात्पितृधनंत्वन्यःकथंगृह्णीतमानवः ॥
३ पुमान्पुंसोधिकेशुक्रे स्त्रीभवत्यधिकेस्त्रियाः ॥
४ पुत्राभावेतुदुहितातुल्यसंतानदर्शनात् । पुत्रश्चदुहिताचोभौ पितृसन्तानकारकौ ॥
५ पुत्रपौत्रैःऋणंदेयं—तत्रस्यात्सदृशंस्वाम्यंपितुःपुत्रस्यचैवहि ॥
६ पूर्वेषांतुस्वधाकारेपौत्रादौहित्रकामताः ॥

धनकाग्रहण उचित है पत्नीको नहीं—यह शंका ठीक नहीं—क्योंकि स्त्री पुरुषको अग्निहोत्र आदि कर्मोंमें सह (इकट्ठा) अधिकार होनेसे अग्निहोत्र आदि वेदोक्त कर्मोंकेद्वारा परलोकके और काम भोग संतान आदि इसलोक के उपकारकी करनेवाली और अर्द्धांगी पत्नीही केवल अदृष्टोपक दुहिता से उत्तम है—इससे पूर्वोक्त विष्णुवचन और याज्ञवल्क्यके (पत्नी) इस वचनके बलसे पूर्वोक्त—'पुत्राभावे दुहिता—इसवचनमें पुत्र पदसे पत्नीका भी उपलक्षण समझना अर्थात् दोनों लोकोंमें उपकारक पुत्र पत्नीके पीछे ही पुत्रहीन पिताके धनकाभाग दुहिताको मिलता है ॥

इसमें कोई यह शंकाकरतेहैं कि दुहितासे प्रथम पुत्रहीनके पिताको मिलना चाहिये क्योंकि पुत्र के कियेहुये श्राद्धमें पिता संप्रदान (जिसको दियाजाय) होने से स्वयं एव अदृष्ट उपकारका कर्ता है और दुहिता अपने पुत्रके द्वारा अदृष्ट उपकारक है इससे दुहितासे पिताही प्रत्यासन्न (समीपमें) है इससे इस[1] वचनके अनुसार अपुत्रके धनको पिताही लेगा दुहिता नहीं—यह शंका भी ठीक नहीं है—क्योंकि पूर्वोक्त (तस्यामात्मनितिष्ठंत्यां) इस वचनसे दुहिताको आत्माके समान कहनेसे शरीर की समीपता से दुहिताही पितासे प्रथम धनभागिनी उचित है—उसके अभावमें (पिताहरेत्) इसवचन से पिता अपुत्र धनका अधिकारी होताहै ॥

जीमूतवाहन तो यह कहते हैं कि वही दुहिता दायभागको प्राप्त होती है जो पुत्रवती हो वा होसकै क्योंकि संतानके द्वारा उपकारककोही धन मिलता है और उपकारक वही होताहै जो पिंड देने से सहायताकरै और विधवा बंध्या—जिसके पुत्रीहीहो वह धनकी अधिकारिणी नहीं होती—यह भी ठीक नहीं है क्योंकि इस[2] वचनसे कन्याको भी अधिकार कहाहै कि मृतक पुत्रहीन पिताके धनको कुमारी ग्रहणकरै और उसके अभावमें विवाहित पुत्री ग्रहणकरै ॥

धारेश्वर आदि तो यह कहते हैं कि (पिताहरेत्) इस वचनके संग विरोध निवृत्ति के अर्थ जितने वचनोंसे दुहिताको अधिकार पाताहै वे सब पुत्रिकाकोही अधिकारके बोधक हैं और पुत्रिका न होय तो पिता आदि को धनका अधिकार होताहै—यह अत्यंत निकृष्ट है—पुत्रिकाको तो इस[3] वचनसे औ-रसके समान और तृतीय पुत्रकहा है इससे गौण पुत्रोंमें मानीहुई पुत्रिकाको इस[4] वचनसे अधिकार सिद्धहीहै कि पिताके धनकोभाई और पिताके पिता नहीं लेसकते किंतु क्षेत्रज आदि पुत्रलेतेहैं इससे पत्नी के विद्यमान रहते भी पुत्रिकाको धनका ग्रहणसिद्धहै उसके लिये यह वचन व्यर्थ होजायगा—और दुहितापद जिनके मध्यमें पढ़ाहै उनमें दुहितापदका अर्थ पुत्रिकाकरनेमें कोई प्रमाण नहीं है और यदि दुहितापदसे पुत्रिकाका ग्रहणकरोगे तो—अंगात् इस वचनसे ही पुत्रिकाको धनका ग्रहण तुम्हारे मतके अनुसार बृहस्पति ने कहदियाथा पुनः इस[5] वचनसे बृहस्पतिने क्यों विधान किया कि जो कन्या सजातियहो और सजातीयसे विवाही हो और सेवा में तत्परहो चाहै वह पुत्रिकाहो वा नहो वह कन्या पिताके धनको ग्रहणकरतीहै—इससे दुहितापदसे सामान्य दुहिताही ग्रहणकरतेहैं ॥

---

१ पिताहरेदपुत्रस्यरिक्थंभ्रातरएवच ॥
२ अपुत्रमृतस्यकुमारीरिक्थंगृह्णीयात्तदभावेचोढा ॥
३ औरसोधर्मपत्नीजस्तत्समःपुत्रिकासुतः—तृतीयःपुत्रिकापुत्रः ॥
४ नभ्रातरोनपितरःपुत्रारिक्थहराःपितुः ॥
५ सदृशीसदृशेनोढासाध्वीशुश्रूषणेरता । कृताऽकृतावाऽपुत्रस्यपितुर्धनहरीतुसा ॥

कदाचित् कोई यह शंकाकरै कि पिता और भाई से रहित कन्यारूप (कुवारी) सब दुहिताओं को इसे नारदवचन के अनुसार धनका अधिकार नहीं है कि यदि पति पुत्रहीन पत्नीके दुहिता होय तो उस दुहिताके भरणपोषणके लिये जो पिताका धनहै उसमें से उसके विवाह के लिये धनको ग्रहण करै और विवाह के पीछे उसका पति उस दुहिताकी पालनाकरै यदि उसके भरण के लिये जो धन था उसमें से कुछ शेषहोय तो उसको भी ग्रहणकरले—जब दुहिताको धनका निषेध है तो जितने वचनोंसे दुहिताको धनपाता है उन सब में दुहिता पदसे पुत्रिकाकाही ग्रहणकरना—तिससे धारेश्वर आदि की व्यवस्था ठीक है—यह शंका ठीक नहीं है क्योंकि नारदका पूर्वोक्त वचन विभक्त विषयक नहीं है किन्तु पूर्व और पर वचनोंके अनुरोधसे संसृष्ट अविभक्त विषयक है तिससे विभक्त (बटे) धनमें पत्नी के अभावमें संपूर्ण दुहिताओंको पिताके धनमें अधिकारके बोधक सब वचन हैं ॥

दुहिताओंमें प्रथम उस दुहिताको मिलताहै जो अप्रत्तहो अर्थात् जिसका विवाह न हुआहो उसके अभावमें विवाही हुई—उसके अभावमें अप्रतिष्ठिता (निर्धन) हो और उसके भी अभावमें प्रतिष्ठिता धनको ग्रहणकरती है क्योंकि गौतम ऋषिके इसे वचनसे यह प्रतीत होताहै कि बिना विवाही और निर्धन दुहिताओंको ही स्त्रीधन मिलता है—इसइलोकमें स्त्री धनसे पिताके धनका भी ग्रहण है ॥

(सदृशीसदृशेनोढा) इस बृहस्पतिके वचनका तो स्मृतिचंद्रिकामें यह अर्थ किया है कि—सदृशी (सजातीय) सदृशेनोढा (सजातीयसे विवाही) साध्वी—सेवामें रत—ऐसी जो दुहिता वह तो पत्नी के अनंतर धनको ग्रहण करती है—और पुत्रिका कीहुई वा न कीहुई पुत्रिका तो पत्नी से पूर्वही धनको ग्रहण करतीहै—तिससे पत्नीसे पीछे सजातीय और सजातीयसे विवाही साध्वी और सेवाकरनेयोग्य ऐसीचार कन्याहोयँ कि विनाविवाही—विवाही—प्रतिष्ठित - अप्रतिष्ठित—तो विना विवाहीकोमिले क्योंकि इसे वचनके अनुसार पत्नीकेपीछे बिना विवाहीको धनकहाहै और वहपिता के पालनेयोग्य होतीहै—उसके अभावमें जो निर्धन विवाहीहो उसकोमिले—क्योंकि उसके भी पति को भरण पोषणका सामर्थ्य नहींथा—उसके अभावमें प्रतिष्ठिता भी ग्रहण करतीहै यदि बहुत एक प्रकारकीहोयँ तो समानभागसे धनका विभागकरलें—इसवचनमें दुहितरः यह बहुवचन इसलिये दियाहै कि सजातीय दुहिताओंको समानभाग और विजातीय दुहिताओंको वर्णके क्रमसे भाग देना चाहिये ॥

सिद्धान्त यहहै कि विभक्त असंसृष्ट पिताके धनको माताके अभावमें दुहिताही ग्रहणकरतीहै—

इतिदुहितृभागनिरूपणम् ॥

पूर्वोक्त याज्ञवल्क्यके वचनमें (दुहितरश्चैव) चशब्द पढ़नेसे दुहिताके अभावमें दौहित्र धनको ग्रहण करताहै क्योंकि इसे विष्णुवचनके अनुसार पुत्र पौत्रहीन सन्तानमें दौहित्रोंकोही धनकी प्राप्तिकहीहै क्योंकि पुरुषाओंके श्राद्धमें पौत्र और दौहित्र समानहोते हैं और मनुजी भी कहआये हैं

---

१ स्यात्तुचेद्दुहितातस्याःपित्र्योंशोभरणेमतः । असंस्काराद्भरेद्भागंपरतोबिभृयात्पतिः ॥
२ स्त्रीधनंदुहितॄणामप्रत्तानामप्रतिष्ठितानांच ॥
३ पत्नीपत्युर्धनहरीयास्यादव्यभिचारिणी । तदभावेतुदुहितायद्यनूढाभवेत्तदा ॥
४ अपुत्रपौत्रसन्तानेदौहित्राधनमाप्नुयुः । पूर्वेषान्तुस्वधाकारेपौत्रादौहित्रकामताः ॥

कि पुत्रिकाकीहुई वा नकीहुई दुहिता सजातियवर्णके पुरुषसे जिसपुत्रको पैदाकरै उसपुत्रसे माता-मह (नाना) पौत्रवाला होताहै वह दौहित्रपिंडदे और धनको ग्रहणकरै अर्थात् जैसे पुत्रके अभाव में पौत्रको धनाधिकार होताहै इसीप्रकार दुहिताके अभावमें दौहित्रको होता है क्योंकि बृहस्पतिने इसै वचनसे यहकहा है कि जैसे पिताके धनमें पिताआदि बन्धुओंके विद्यमान रहते भी दुहिता स्वामिनी होतीहै अर्थात् दुहिताको मिलताहै उसीप्रकार उसका पुत्रभी माता और मातामहके धन में स्वामीहोताहै और मनुजीभी इनै वचनोंसे यह कहआयेहैं कि पुत्रहीन माताके पिताकेसबधनको दौहित्रग्रहणकरै और वह अपनेपिता और मातामहको दोपिंडदे क्योंकि जगत्में पौत्र और दौहित्रमें धर्मके अनुसार विशेषता नहीं है—क्योंकि उनदोनोंके माता पिता तिसकेदेहसे उत्पन्न होतेहैं ॥

इससे दुहिताके अनन्तर दौहित्रही मातामहके धनमें अधिकारी होताहै ॥

इतिदौहित्रभागनिरूपणम् ॥

दौहित्रोंके अभावमें माता पिता धनकेभागी होतेहैं यद्यपि इसवचनमें—पितरौ यहशब्द पढ़ा है उसमें पितामात्रा माताकेसंग कहनेमें पिता विकल्प करके शेषरहै—इस पाणिनिसूत्रके अनुसार पितृपद रहजाताहै और मातृशब्दका लोप होजाताहै और जो शेषरहताहै वह लुप्तपदके भी अर्थको कहताहै इसीसे पितरौ इसपदसे माता पिता दोनोंका बोधहोताहै इससे यहसंदेह होताहै कि पुत्र-हीन पुत्रकाधन प्रथम माताको मिलना चाहिये वा पिताको—इसविषयमें मिताक्षराकार यहकहते हैं कि द्वन्द्वसमास वहां होताहै जहां युगपत् अनेक पदार्थोंको शब्दकहते हैं अतएव द्वन्द्वका अपवाद एकशेष भी वहांही होताहै—तथापि माताच पिताच पितरौ इस विग्रहवाक्यमें माताशब्दही प्रथम कहाजाताहै और इसै वचनसे माताका गौरव पितासे दशगुणा होताहै इसलिये प्रथम माताही पुत्र हीन पुत्रके धनको ग्रहणकरती है—और पिताके तो विजातीय भी पुत्र होसकते हैं और माताका तो पुत्र सजातियही होताहै इससे माताका अनन्तर पुत्रही होताहै और इसीसे अनन्तरको धन ग्रहण मनुजीने कहाहै अर्थात् पुत्रका सामीप्य मातामें अधिक होता है इससे पितासे पहिले माताकोही धनका ग्रहण उचितहै ॥

स्मृतिचन्द्रिकाकार इसमें यह कहतेहैं कि एकशेषमें कोई क्रमनहीं जानाजाता किन्तु द्विवचन से माता पिता इनदोनोंका बोध पूर्वोक्त पाणिनिसूत्रके अनुसार होताहै इससे माता पिता दोनोंही मिलकर समानभागसे ग्रहण करलें—और यहकहना ठीकनहीं है कि पिता पुत्रांतरों में साधारण है और माता इसमें असाधारण है इससे समीपहोनेसे माताही प्रथम धनको ग्रहणकरती है क्योंकि माता और पिताओंका पुत्रोंमें प्रत्यासत्ति (समीपता) का न्यूनाधिक भावनहीं है अन्य पुत्रोंका जो जनकहै वह इसकाभी जनकहै इससे पिता भी माताके तुल्यही है—कदाचित् कहो कि पिताकाधन अन्यपुत्रोंको भी मिलताहै और माताका तो सहोदर भाइयोंकोही मिलताहै इससे माताको प्रथम धनग्रहण करना उचितहै सोभी ठीकनहीं है क्योंकि यह प्रत्यासत्ति भाई भगिनियोंके विभागमें कह

१ यथापितृधनेस्वाम्यंतस्याःसत्स्वपिबन्धुषु । तथैवतत्सुतोपीष्टेमातृमातामहेधने ॥

२ दौहित्रोह्यखिलंरिक्थमपुत्रस्यपितुर्हरेत् । सएवदद्याद्द्वौपिंडौपित्रेमातामहायच ॥ पौत्रदौहित्रयोर्लोकेनविशेषोस्तिधर्मतः । तयोर्हिमातापितरौसम्भूतौतस्यदेहतः ॥

३ सहस्रंतुपितॄन्माता गौरवेणातिरिच्यते । गर्भधारणपोषाभ्यांतेनमातागरीयसी ॥

सकतेहैं पितासे पहिले माताके धनग्रहणमें नहीं कहसकतेहैं इससे माता पिता दोनोंको तुल्यता होनेसे विभागकरके समान२ धनको दोनोंही ग्रहणकरें यह श्रीकरकामतहै ॥

यह स्मृतिचन्द्रिकाकारका मत अयुक्तहै माता और पिताको पृथक्२ अधिकार इन[१] वचनोंसे कहा है इससे मिलकर धनको ग्रहणनहीं करसकते अपुत्रके धनको पिता ग्रहणकरै—मृतक अपुत्रके धन को माताले—जैसे व्रीहि और यव परस्पर निरपेक्षही यज्ञआदिके साधनहोतेहैं मिलकर नहीं इसी प्रकार माता पिताभी परस्पर निरपेक्षही धनकाग्रहण करसकतेहैं मिलकर नहीं ॥

कोई यह कहतेहैं कि गर्भधारण पोषणआदिसे अत्यन्त उपकारकहोनेसे सहस्रगुण अधिक पिता की अपेक्षा माननीयहोनेसे प्रथम माताकोही अधिकारहै पिताको नहीं—यहभी तुच्छहै क्योंकि पिता भी संस्कार पठन पाठन आजीवनके संपादन आदि द्वारा,और इस[२] वचनके अनुसार बीजकी प्रधानतासे,माता और पिताओंके मध्यमें पिता श्रेष्ठ है—यदि गौरवसेही धनकाभाग मिलाकरै तो इस वचनसे पैदाकरनेवाले और वेदके पढ़ानेवाले पिताओंमें वेदके पाठकको गुरु (अतिश्रेष्ठ) कहा है इससे पितासे भी पहिले आचार्यको धन मिलजाया करेगा ॥

जीमूतवाहन तो यहकहते हैं कि पितरौ इसशब्द उच्चारण करतेही प्रथम पिताका बोधहोता है और पश्चात् एकशेषकी महिमासे माताका बोधहोताहै इससे पिताही प्रथम धनका ग्रहणकर्ता प्रतीतहोताहै और इसमें यह[३] विष्णुवचन भी अनुकूलहै कि अपुत्रकाधन दुहिताके अभावमें पिताको पिताके अभावमें माताको मिलताहै—और मिताक्षराकारने तो पहिले यही वचनलिखा और पीछे पितरौ यह पूर्वोक्त एकशेषके क्रमसे माताको अधिकार वर्णन कियाहै वह अत्यन्त मूर्खताका सूचक है—तिससे स्मृतिचन्द्रिका—मदनरत्न,कल्पतरु,रत्नाकर,पारिजात—आदि ग्रन्थकारोंका यही सिद्धान्त है कि माताही पितासे प्रथम धनकीभागिनी होतीहै—वाचस्पतिने तदभावे मातृगामी ऐसापाठ बृहद्विष्णुवचनका मानकर प्रथम माताका अधिकार कहाहै वह ठीकनहीं है क्योंकि उक्तपाठ किसी पुस्तकमें नहीं है ॥

और विग्रहवाक्य (माताचपिताच) में माताके पूर्वनिपातसे माताकोही प्रथम अधिकारहै यहभी मिताक्षराका कथन ठीकनहीं क्योंकि व्याकरणकीरीतिसे समासमें पूर्वनिपातका नियम है विग्रहमें नहीं—परन्तु वह मिताक्षराग्रन्थ भी इसप्रकार ठीकहै कि वचनाधिकरण वार्तिक तन्त्ररत्नमें द्वन्द्वकी युगपत् अधिकरण वचनताका खण्डनकियाहै तिससे पितरौ धनभाजौ यहां शब्दकी शक्तिकेद्वाराही युगपत् अन्वयहोताहै तिससे उनके क्रमसे अन्वयमें भी वाक्य दोषनहीं—और जहां एकशेषनहीं(मातापितरौ) वहां माताशब्दही प्रथम सुनाजाताहै और समास और एकशेषमें तुल्यही बोधहोताहै—इससे यहां भी प्रथम माताकाही बोधसमझना—यद्यपि विग्रहमें माताके पूर्वनिपातका बोधक कोई सूत्र नहीं है तथापि व्याख्याताओंका यही संप्रदायहै कि माताचपिताचपितरौ यही विग्रह करते हैं पिताच माताचपितरौ यहनहीं—रहा पूर्वोक्त बृहद्विष्णु वचनका विरोध—उस विरोधका यह परिहार है कि

---

१ पिताहरेदपुत्रस्यरिक्थंभ्रातरएवच । स्वयोनस्यह्यपुत्रस्यमाताप्यंशंसमंहरेत् ॥
२ तयोरपिपिताश्रेयान् बीजप्राधान्यदर्शनात् ॥
३ तदभावेपितृगामि तदभावेमातृगामि ॥

माताके गौरव (बडाई) के प्रतिपादक जो वेवचनहैं और पिताके भी गौरवके प्रतिपादक ये वचन हैं और पिताकी आज्ञासे परशुरामजीने माताके शिरका छेदन करदियाहै—श्रीरामचन्द्रजी कौशल्याके मनेकरनेपर भी पिताकी आज्ञासे वनमें चलेगयेहैं—निदान माता पिता दोनोंकेही गौरव और अधिकार के बोधकवचनहैं उनके विरोधका परिहार इसप्रकार करना कि जिस पितामें इस याज्ञवल्क्यके वचनानुसार महागुरुके लक्षणहों वह गुरुहोताहै जो गर्भाधानआदि यज्ञोपवीत पर्यन्त वेदपढ़ावे—और माता पिताकी आज्ञा पालनआदि पतिव्रताके लक्षणोंसे रहितहो वहां तो पिताही माताकी अपेक्षा अधिक माननीयहै—और जहां माता अरुन्धतीआदिके समान पतिव्रताके समस्त गुणोंसे सम्पन्नहै और पिता केवल जन्मकाही दाताहै वहां माताही पिताकी अपेक्षा अधिक मान्यहै इससे पूर्वोक्त मनुआदिके वचनोंमें जो कहीं माताको प्रथम अधिकारहै और कहीं पिताको और मिताक्षरा में पहिले माताको जो अधिकारकहा है और कहीं दोनोंको तुल्यभाग कहा है उसकी यहव्यवस्था समझनी कि जहां माता पिताकी अपेक्षा अधिक माननेयोग्यहै वहां माताकोही प्रथम अधिकार है और जहां माता पिताकी अपेक्षा न्यूनमानके योग्यहै वहां पिताहीको प्रथम अधिकार है और यही युक्तभीहै कि भरण पोषणको न करतेहुये पिताकी अपेक्षा माताको अधिक उपकारक होनेसे पिता से प्रथम धनकाग्रहणहै और भरण पोषणके करनेवाले पिताको जीवनपर्यन्त उपकारकहोनेसे माता से प्रथम पिताकोही धनका ग्रहणहोताहै—इसरीतिसे किसी स्मृति और ग्रन्थोंका विरोध नहीं है ॥

इतिमातृपितृदायभागनिरूपणम् ॥

माता पिताके अभावमें भ्राताओंको अपुत्रके धनका अधिकारहोताहै—यद्यपि शंख पैठीनसी मनु के इन वचनोंसे पितासे प्रथम भाइयोंको धनका अधिकार प्रतीतहोताहै कि अपुत्रका धन भ्राताको मिलताहै—मृतक अपुत्रका धन भ्राताको मिलताहै और भ्राताके अभावमें माता पिताको और इन मनु बृहस्पति के वचनोंसे भ्रातासे प्रथम पितामहीको धनका अधिकार प्रतीतहोता है कि माताके मरेपीछे अपुत्रके धनको पिताकी माताग्रहणकरै मृतक पुत्रकाधन माताको वा माता की आज्ञासे भ्राताको पत्नी पुत्रसेरहित मिलताहै निदान इनवचनोंसे कहीं किसीको और कहीं किसीको धनकाअधिकार प्रतीतहोताहै तथापि क्रमके बोधक याज्ञवल्क्य और बृहद्विष्णुके पूर्वोक्त वचनोंके अनुसार येसब वचन क्रमके बोधकनहीं किंतु धनके अधिकारमात्रके बोधकहैं इसीसे मनुने(भ्रातरएववा)और पैठीनसीने (ज्येष्ठावापत्नी) यह वा शब्दपढ़ाहै—कल्पतरुकार तो यहकहतेहैं कि जहां पत्नी और भाई दोहों वहां श्राद्धआदिकी अधिकारिणी पत्नीकोही प्रथमभागमिलताहै और जो श्राद्धआदिकी अधिकारिणी न हो उसको भ्राता और पिताके अनन्तर भाग मिलताहै—और जहां पिता और भ्राता येदोहों वहां जो धन पितृ पितामहआदिसे चलाआयाहै और पुत्रको पृथक् पहुंचगयाहै वह अपुत्रका धन माता

१ सहस्रंतुपितुर्मातागौरवेणातिरिच्यते । गर्भधारणपोषाभ्यांतेनमातागरीयसी ॥

२ तयोरपिपिताश्रेयान् बीजप्राधान्यदर्शनात् ॥

३ सगुरुर्यःक्रियाःकृत्वावेदमस्मैप्रयच्छति ॥

४ अपुत्रधनंभ्रातृगामि—अपुत्रस्यस्वर्यातस्यभ्रातृगामीद्रव्यंतदभावेपितरौ ॥

५ अनपत्यस्यपुत्रस्यमातादायमवाप्नुयात् मातर्यपिचवृत्तायां पितुर्माताहरेद्धनम् ॥ भार्यासुतविहीनस्यतनयस्यमृतस्यच। मातारिक्थहरीज्ञेया भ्रातावातदनुज्ञया ॥

पिताका होताहै—और जो धन उस अपुत्रने स्वयं संचित कियाहै और उसके संचयमें पिताके द्रव्य का व्ययनहींहुआ है वहधन भ्राताओंका होताहै ॥

वीरमित्रोदयकार तो यहकहतेहैं कि मनुके इसवचनसे माताके मरेपीछे पिताकी माता धनको ग्रहणकरै और शंखपैठीनसीके वचेनों में पत्नीके अभावमें माता पिता ग्रहणकरें और इन देवलके वचनोंमें यहकहाहै कि अपुत्रके दायको सहोदर ग्रहणकरै वा तुल्य दुहिता—वा विद्यमान पिता वा सजातीय भाई वा माता और भार्या यथाक्रमसे ग्रहणकरें—और इनके भी अभावमें कुलके सहवासी ग्रहणकरें इनसब वचनोंमें सर्वत्र भी वृत्तायां—तदभावे—यथाक्रमं—आदिपदोंसे क्रम प्रतीत होता है तो योगीश्वर और बृहद्विष्णुवचन (पत्नी० तदभावे०) ही क्रम प्रतीतहोता है इनसे इतर सबवचन अधिकारमात्रकेही बोधकहैं क्रमक नहीं यह समाधान ठीकनहीं है किन्तु यही समाधान ठीकहै कि जैसे क्षेत्रजआदि पुत्रोंमें स्मृतियोंके क्रमकी विपरीतता मानीहै अर्थात् औरसके अनुकूल गुणवान् पिताका उपकारी क्षेत्रजधनका भागीहोता है और प्रतिकूल निर्गुण पिताका विरोधी नहींहोता तिसीप्रकार यहां भी जो भ्राता गुणवान् भाईका अनुकूल है वही पिता मातासे प्रथम धनकाभागी होताहै और इतर पिताआदिके मरेपीछे होताहै ॥

भाइयोंमें भी प्रथम सहोदर धनकेभागी होतेहैं क्योंकि इसी (अनन्तरः) वचनसे मनुने और इसे वचनसे बृहस्पतिने यहकहाहै कि जिसके बहुतसे ज्ञाति—सकुल्य—बांधवहों उनमें जो अनंतर (समीपका) है वही पुत्रहीनके धनको ग्रहणकरै—क्योंकि जहां विशेष वचन नहीं वहां प्रत्यासत्तिसेही धनका ग्रहण होताहै और भिन्नोदरोंको मातासे व्यवधान है—और सोदरके अभावमें भिन्नोदर भी धनकेभागी होतेहैं क्योंकि संग्रहकारने इसे वचनसे स्पष्टकहा है कि यदि सोदर और भिन्नोदर भाई दोनोंप्रकारकेहोयँ तो भिन्नोदर भाइयोंके विद्यमान रहते भी सोदरभाईही धनकेभागी होतेहैं ॥

इतिभ्रातृदायभागाधिकारः ॥

भ्राताओंके अभावमें भाइयोंके पुत्र धनकेभागी होतेहैं—इसमें कोई यह कहतेहैं कि योगीश्वर याज्ञवल्क्यके वचनमें तथा तत्सुता यहपाठ है अर्थात् भ्राताओंके सदृश जो भाइयोंके पुत्र वे और भाई दोनोंही धनके अधिकारी होने चाहिये और जिनके पिता भिन्न२ हैं उनको पिताके अनुसार भागहोताहै—अर्थात् भाई और भाईके पुत्र मिलकर अपुत्रके धनको बांटलें—यहकहना ठीकनहीं है क्योंकि विष्णुवचनके विरोधसे तथा शब्दका सदृश अर्थ नहीं है किन्तु चशब्दार्थ(पुनः)है—अन्यथा तथा शब्दका(भ्रातरस्तथा) पूर्वत्र भी अन्वय होसकताहै तो भाई और पिता भी विभागकरके समान धनको ग्रहण करलेंगे—जब (अनेकपितृकाणां) इसवचनसे भाइयोंके अभावमें उनके पुत्रोंका अधिकार होगया और उनमेंसे कोई अपुत्रभाई मरगया और विद्यमान सबभाइयोंका उसके धनमें सम्बन्ध होगया और दैववश उनमेंसे भी विभागसे पहिले कोई मरगया तब उनके पुत्रोंका पितृव्योंके संग सम

---

१ मातर्यपिचवृत्तायां पितुर्माताहरेद्धनम् ॥

२ तदभावेमातापितरौ ॥

३ ततोदायमपुत्रस्य विभजेरन्सहोदराः । तुल्यादुहितरोवापि ध्रियमाणःपितापिवा ॥ सवर्णाभ्रातरोमाता भार्याचेति यथाक्रमम् । तेषामभावेगृह्णीयुः कुल्यानांसहवासिनः ॥

४ बहवोज्ञातयोयस्य सकुल्याबांधवास्तथा । यस्त्वासन्नतरस्तेषां सोनपत्यधनंहरेत् ॥

५ सोदर्याःसंत्यसोदर्याः भ्रातरोद्विविधायदि । विद्यमानेप्यसोदर्ये सोदर्याधनभागिनः ॥

विभाग होना चाहिये था परंतु अपने२ पिताओंके ही भागको वे ग्रहणकरैं और पितृव्योंके समान ग्रहण न करैं इसलिये (अनेकपितृकाणां) यह वचनहै क्योंकि भाइयोंके विद्यमान रहते उनके पुत्रोंका पितृव्यके धनमें कुछ अधिकार नहीं है–और भाइयों के पुत्रोंमें भी प्रथम सोदरभाइयोंके पुत्र और पीछे भिन्नोदरभाइयोंके पुत्र लेतेहैं क्योंकि उनमें ही अधिक सामीप्य होताहै और यह बात युक्त भी है असोदरभाई का पुत्र सोदरभाई के पुत्रसे इसलिये निकृष्ट होताहै कि धनके स्वामीकी माताको छोड़कर अपनी पितामहीसहित जो धनीकापिता उसको पिंडदेताहै इससे सोदरभाईके पुत्रसे पीछे धनका भागी होताहै–और सोदरभाई धनीकी माता विशिष्ट धनी के पिताको पिंडदेताहै इससे वह उत्तम होताहै–इसमें कोई यह कहते हैं कि सपत्नीक (पत्नियों सहित) तीनों (पिता पितामह प्रपितामह) श्राद्धके देवताहैं इससे सपत्नियोंको भी पिंड मिलताहै अतएव भिन्नोदरका दिया पितामह को जो पिंडहै वह धनीकी माताको मिलजायगा–सो ठीक नहीं है क्योंकि माता पितामही प्रपितामही शब्दसे अपनी जननी–पिताकी जननी पितामहकी जननीही क्रमसे लीजातीहैं और इसीरूप से अपने २ पतियोंके संग ये श्राद्धको भोगतीहैं–और इसमें यह वचन भी प्रमाण है कि अपने पति के संग माता और अपने२ पतियोंके संग पितामही प्रपितामही श्राद्धको भोगती हैं इससे सपत्नमाता नहीं आसक्ती–और जो स्त्री वा पुरुष पुत्रहीन मरगये हैं उनको भी एकोद्दिष्टदे पार्वण नहीं यही इस वचनसे प्रतीत होताहै–और श्राद्ध सपत्नीकोंको दियाजाता है और पुत्र आदि उसके अधिकारी होते हैं और सपत्नमाता आदि अनित्य हैं अर्थात् कहीं होती हैं कहीं नहीं–नित्य अनित्यका संयोग नहीं होसका–इससे माता आदि की अपेक्षासेही पिता आदि सपत्नीक होसकेहैं सपत्नी सहित नही सिद्धांत यह है कि भिन्नोदरोंसे पहिले सहोदरही उक्त धनको ग्रहण करते हैं ॥

इतिभ्रातृपुत्रदायाधिकारनिरूपणम् ॥

भ्रातृपुत्रोंके अभावमें गोत्रज धनके भागी होते हैं–पूर्वोक्त पिता भ्राता भ्राताकेपुत्र–इनसे भिन्न गोत्रज ग्रहणकरने और वे पितामही–सपिंड–समानोदक होते हैं–सबसे प्रथम पितामही धनकीभागिनी होती है–यद्यपि इस मनुके वचनसे ही माताके पीछे पितामही का अधिकार प्रतीत होता है तथापि पत्नी आदि भ्रातृसुत पर्यंत जो क्रमसे पढ़े हैं उनके बीचमें पितामही नहीं घुससक्ती इससे भ्राताके पुत्रोंके अनंतर पितामही उक्त धनको ग्रहण करती है–और पितामहीके अनंतर पितामह आदि गोत्रज और सपिंड धनके भागी होते हैं क्योंकि जो भिन्नगोत्रहैं वे बंधु होते हैं और जो पिता के संतान में कोई न होय तो पितामही–पितामह–पितृव्य–पितृव्य के पुत्र क्रमसे धनके भागी समझने–और यदि पितामहकी संतान में भी कोई न होय तो प्रपितामही प्रपितामह–प्रपितामह का भ्राता और उसके पुत्र क्रम से धनके भागी होते हैं इसप्रकार सप्तम पर्यंत समानगोत्र सपिंड धनके भागी होते हैं–और सपिंड न होयँ तो समानोदक धनके भागी होते हैं वे सपिंडों से ऊपर के सात होते हैं अथवा जहां तक जन्म और नामका ज्ञानहो वहां तक होते हैं क्योंकि मनुजी ही इनै

१ अनेकपितृकाणांतुपितृतोभागकल्पना ॥

२ स्वेनभर्त्रासहश्राद्धंमाताभुंक्तेस्वधाकरम् । पितामहीचस्वेनैवस्वेनैवप्रपितामही ॥

३ अपुत्रायमृताःकेचित्पुरुषावास्त्रियोपिवा । तेषामपिचदेयंस्यादेकोद्दिष्टंनपार्वणम् ॥

४ मातर्यपिचवृत्तायांपितुर्माताहरेद्धनम् ॥

५ सपिंडतातुपुरुषेसप्तमेविनिवर्तते । समानोदकभावस्तुनिवर्तेताचतुर्दशात् ॥ जन्मनाम्नोःस्मृतेरेकेतत्परंगोत्रमुच्यते ॥

वचनोंसे यह कहआये हैं कि सपिंडता सातवीं पीढ़ीसे और चतुर्दश १४ पीढ़ीसे आगे समानोदक भाव निवृत्त होताहै—और समानोदकभी प्रत्यासत्ति (समीपता) के क्रमसेही धनकेअधिकारी होतेहैं ॥

इतिगोत्रजअधिकारनिरूपणम् ॥

गोत्रजों के अभावमें बांधव उक्त धनके भागी होते हैं और वे बांधव तीनप्रकारके होते हैं अपने बंधु—पिताके बंधु—और माताके बंधु—क्योंकि इसं स्मृति के अनुसार वे बंधु ये होते हैं कि अपनेपिताकी स्वसा (भगिनी) के और अपनी माताकी स्वसाके और अपने मामाके जो पुत्र ये तीनों आत्मबंधु होतेहैं—और पिताके पिताकी स्वसाके—पिताकी माताकी स्वसाके और पिताके मातुल (मामा) के जो पुत्र वे पिताके बंधु होतेहैं—और माताके पिताकी स्वसाके माताकी माताकी स्वसा के और माताके मातुलके जो पुत्र वे माताके बंधु होतेहैं—इन तीनोंमें प्रथम अपने बंधु उसके अनंतर पिताके और उसके अनंतर माताके बंधु सामीप्य होनेसे धनको ग्रहण करते हैं यद्यपि मनुजी ने इसी वचनमें अनंतर सपिंडसे पीछे सकुल्य आचार्य शिष्य इनको धनको ग्रहणकहाहै तथापि इस वचनमें सकुल्य पदसे समानोदक (मातुल आदि) और तीनों बंधुओंका भी ग्रहण है और पत्नी० इसवचनमें भी मातुलका उपलक्षणहै अन्यथा मातुलको धनका ग्रहण न होगा—और उनके पुत्रोंको होगा तो महान् अनुचित होगा ॥

इतिबन्धुअधिकारनिरूपणम् ॥

बन्धुओंके अभावमें आचार्य धनकाभागी होताहै—यद्यपि पत्नी० इस याज्ञवल्क्यके वचनमें आचार्य नहींपढ़ा तथापि शिष्यके पढ़नेसेही आचार्यका भी शिष्यसे उत्तमहोनेसे ग्रहणसमझना क्योंकि इसी मनुके वचनमें और इसं आपस्तंबके वचनमें शिष्यसे प्रथमही आचार्यको धनका अधिकार कहाहै इससे याज्ञवल्क्यके वचनमें शिष्यपदसे आचार्यका भी ग्रहणहै कि—पुत्रके अभावमें समीपका सपिंड—उसके अभावमें आचार्य और आचार्यके अभावमें शिष्य धनका अधिकारी होताहै ॥

इत्याचार्यशिष्याधिकारनिरूपणम् ॥

शिष्यके अभावमें सब्रह्मचारी (सहपाठी) धनकाभागी होताहै सब्रह्मचारी उसको कहते हैं कि जिन दो मनुष्योंके एक गुरुसे यज्ञोपवीत और पढ़नाहो वे दोनों सब्रह्मचारी होते हैं ॥

यदि सब्रह्मचारी न होय तो ब्राह्मण से भिन्नके धनको राजा ग्रहणकरे क्योंकि पूर्वोक्त वसिष्ठजी के इसं वचनसे यह प्रतीत होताहै कि सहाध्यायी के अभावमें ब्राह्मण से भिन्नका धन राजा को पहुंचता है ॥

और सबके अभावमें इनं मनुकेही वचनोंके अनुसार ब्राह्मण धनकेभागी होतेहैं कि सबके अभा-

---

१ आत्मपितृष्वसुःपुत्राआत्ममातृष्वसुःसुताः । आत्ममातुलपुत्राश्चविज्ञेयाह्यात्मबांधवः ॥ पितुःपितृष्वसुःपुत्राःपितुर्मातृष्वसुःसुताः । पितुर्मातुलपुत्राश्चविज्ञेयाःपितृबांधवाः ॥ मातुःपितृष्वसुःपुत्रामातुर्मातृष्वसुःसुताः । मातुर्मातुलपुत्राश्चविज्ञेया मातृबांधवाः ॥

२ तदभावेसकुल्यःस्यादाचार्यःशिष्यएववा ॥

३ पुत्राभावेप्रत्यासन्नःसपिंडस्तदभावेआचार्यस्तदभावेऽन्तेवासी ॥

४ तदभावेब्राह्मणवर्जंराजगामि ॥

५ सर्वेषामप्यभावेतुब्राह्मणारिक्थभागिनः । त्रैविद्याःशुचयोदांतास्तथाधर्मोनहीयते ॥ अहार्यंब्राह्मणधनंराज्ञानित्यमितिस्थितिः । इतरेषांतुवर्णानांसर्वाभावेहरेन्नृपः ॥

वर्में वेदत्रयी के पाठी शुद्ध–दान्त (इंद्रियोंके दमनकर्ता) ब्राह्मण धनके भागी होतेहैं क्योंकि ऐसे करने से धर्म में हानि नहीं होती और ब्राह्मणका धन राजाको अग्राह्य होताहै और इतर वर्णों के धनको तो सबके अभावमें राजा ग्रहणकरै–और इस[1] गौतमके वचनानुसार सब्रह्मचारी पर्यंतके अभाव में ब्राह्मणके द्रव्यको वेदपाठी ग्रहणकरै और उसके अभावमें उक्त मनु वचनके अनुसार सामान्य ब्राह्मण भी ग्रहणकरै और नारदमुनि ने भी इस[2] वचनसे यह कहा है कि यदि ब्राह्मण के मरने पर कोई दायकाभागी न होय तो राजा ब्राह्मण कोही देदे स्वयं ग्रहणकरै तो पापी होताहै–और यदि वानप्रस्थ यति ब्रह्मचारी ये तीनों पुत्रहीन मरजायँ तो इनके धनको आचार्य–श्रेष्ठ शिष्य और धर्मका भ्राता एकतीर्थी–इस[3] याज्ञवल्क्यके वचनानुसार ग्रहणकरें परन्तु इस वचनमें ब्रह्मचारी यतिके संग पढ़नेसे नैष्ठिकलेना इससे उपकुर्वाण ब्रह्मचारीके धनको पुत्रआदिका तो असम्भव है उसके पिताआदिकही उक्तरीतिसे ग्रहणकरें–और क्रमभी विपरीत समझना अर्थात् नैष्ठिकका धन आचार्य–यतिका धन उत्तमशिष्य और वानप्रस्थका धन धर्मभ्राता एकतीर्थी अर्थात् जो एकआश्रममें वसताहो और धर्मकाभाईहो–ग्रहणकरै–और मदनरत्नकारने तो श्लोकके पाठक्रमसे वानप्रस्थकाधन आचार्यकोकहाहै क्योंकि इस[4]वसिष्ठके वचनानुसार यही प्रतीतहोताहै ॥

इसमें कोई यहशंका करतेहैं कि इस[5] वसिष्ठवचनके अनुसार गृहस्थाश्रमसे अन्य आश्रमोंके निवासी अंश (धन) से हीनहोतेहैं तो धनके असम्भवसे उनके धनका विभाग याज्ञवल्क्यने क्योंकहा–कदाचित् कोईकहै कि उक्त वसिष्ठके वचनसे उनको दायधनके ग्रहणका तो निषेधहै परन्तु प्रकारांतरसे जो धन उनके समीप होजाय उसके विभागकेलिये यह याज्ञवल्क्यका वचनहै–यह कहनाभी ठीकनहीं है क्योंकि इस[6] स्मृतिमें यति और ब्रह्मचारीको पक्वान्नकेही स्वामी कहाहै इससे ब्रह्मचारी को प्रतिग्रह आदिका भी निषेधहै वा नहींहै–परन्तु पूर्वोक्त शंका ठीकनहीं है क्योंकि इस[7] वचनके अनुसार वानप्रस्थ एकदिन–मास–षण्मास–वर्ष–केलिये अन्नका संचयकरै और संचितमें आवश्यक व्ययसे जो शेषरहजाय उसको आश्विनकेमासमें त्यागदे–अर्थात् भूखोंकोदेदे–और यतिके भी इस[8] वचनके अनुसार कौपीन आच्छादनका वस्त्र योग संभार (सामग्री के भेद) और चरणपादुका (खड़ाऊँ) होतीहैं और नैष्ठिकके भी शरीर यात्राकेलिये धनका सम्बन्ध आवश्यक है–इससे इन तीनोंके भी जो पूर्वोक्त यत्किंचित् धनहै उसको इनके मरेपीछे कौनग्रहणकरै–इसलिये यह याज्ञवल्क्यका वचनहै–कि इनके धनको दायाद कोई न ले किन्तु आचार्यआदिही ग्रहणकरें ॥

पर्यवसानमें अपुत्र धनके विभागका यह पूर्वोक्त क्रमहै कि सबसे पहिले धर्मपत्नी उसके अभाव में विना विवाही कन्या–उसके अभावमें विवाहीहुई निर्द्धन कन्या–उससे पीछे धनवती विवाही

१ श्रोत्रियाब्राह्मणस्यानपत्यस्यरिक्थंभजेरन् ॥
२ ब्राह्मणार्थस्यतन्नाशेदायादश्चेन्नकश्चन । ब्राह्मणस्यैवदातव्यमेनस्वीस्यान्नृपोऽन्यथा ॥
३ वानप्रस्थयतिब्रह्मचारिणांरिक्थभागिनः । क्रमेणाचार्यसच्छिष्यधर्मभ्रात्रेकतीर्थिनः ॥
४ वानप्रस्थधनंआचार्योगृह्णीयाच्छिष्योवा ॥
५ अनंशास्त्वाश्रमांतरगताः ॥
६ ब्रह्मचारीयतिश्चैवपक्वान्नस्वामिनावुभौ ॥
७ अह्नोमासस्यषण्णांवातथासंवत्सरस्यवा । अर्थस्यनिचयंकुर्यात्कृतमाश्वयुजेत्यजेत् ॥
८ कौपीनाच्छादनार्थंहिवासोवैबिभृयाद्यतिः । योगसम्भारभेदाश्चगृह्णीयात्पादुकेतथा ॥

कन्या–उसकेपीछे दौहित्र–और दौहित्रके अनन्तर माता वा पिता अर्थात् इनदोनोंमें जो अत्यन्त पुत्र का उपकारीहो वह–उसकेपीछे सोदरभाई–उसकेपीछे भिन्नोदर–उनकेपीछे सोदरभाइयोंके पुत्र–और उसके अनन्तर भिन्नोदर भाइयोंके पुत्र–उसकेपीछे गोत्रज अर्थात् पितामही सपिंड समानोदक–उनकेपीछे अपने बन्धु अर्थात् अपनी फूफी(बूआ) मौसी मामा इनके पुत्र–उनकेपीछे पिता के बन्धु–और उनकेपीछे माताके बन्धु–उनकेपीछे शिष्य–और उसकेपीछे सब्रह्मचारी (सहपाठी) ग्रहण करते हैं–इसमें जो विशेष देखनाहोय तो तिस२ के निरूपणमें देखनेयोग्य है १८७ ॥

सर्वेषामप्यभावेतुब्राह्मणारिक्थभागिनः।त्रैविद्याःशुचयोदान्तास्तथाधर्मोनहीयते१८८

प० । सर्वेषां अपि अभावे तु ब्राह्मणाः रिक्थभागिनः त्रैविद्याः शुचयः दान्ताः तथा धर्मः न हीयते ॥

यो० । सर्वेषां (पत्न्यादिसब्रह्मचारिपर्यंतानां) अभावे त्रैविद्याः शुचयः दान्ताः ब्राह्मणाः रिक्थभागिनः भवन्ति तथा धर्मः न हीयते (न नश्यति) ॥

भा० । ता० । पत्नीआदि सहाध्यायी पर्यंतों के अभावमें वेदत्रयीके पाठी–बाह्य और भीतरसे शुद्ध–जितेन्द्रिय जो ब्राह्मण वे धनकेभागी होतेहैं और वेही पिंडके दाता होते हैं क्योंकि इसप्रकार पुत्रहीन भी मरेहुये धनीके श्राद्धआदि धर्मकी हानि नहींहोती १८८ ॥

अहार्यंब्राह्मणद्रव्यंराज्ञानित्यमितिस्थितिः। इतरेषांतुवर्णानांसर्वाभावेहरेन्नृपः १८९ ॥

प० । अहार्यं ब्राह्मणद्रव्यं राज्ञा नित्यं इति स्थितिः इतरेषां तु वर्णानां सर्वाभावे हरेत् नृपः ॥

यो० । राज्ञा ब्राह्मणद्रव्यं अहार्यं भवति इति नित्यं स्थितिः (मर्यादा) अस्ति–इतरेषां (क्षत्रियादीनां) सर्वेषां (पत्न्यादीनां) अभावे नृपः हरेत् (धनंगृह्णीयात्) ॥

भा० । ता० । संपूर्ण पत्नीआदिके अभावमें पुत्रहीन ब्राह्मणके धनको राजा कदाचित् भी ग्रहण न करे यह शास्त्रकी मर्यादाहै अर्थात् वेदपाठी ब्राह्मणोंकोदेदे और क्षत्रियआदिका जो पूर्वोक्त धनहै उसको सबके अभावमें राजा ग्रहणकरै १८९ ॥

इतिअपुत्रधनविभागप्रकरणम् ॥

संस्थितस्यानपत्यस्यसगोत्रात्पुत्रमाहरेत्।तत्रयद्रिक्थजातंस्यात्तत्तस्मिन्प्रतिपादयेत्१९०

प० । संस्थितस्य अनपत्यस्य सगोत्रात् पुत्रं आहरेत् तत्र यत् रिक्थजातं स्यात् तत् तस्मिन् प्रतिपादयेत् ॥

यो० । अनपत्यस्य संस्थितस्य (मृतस्य) भार्या सगोत्रात् (देवरादेःसकाशात्) पुत्रं आहरेत् (उत्पादयेत्) यत् रिक्थजातं (धनसमूहः) तत्र स्यात् तत् तस्मिन् (क्षेत्रजपुत्रे) प्रतिपादयेत् (समर्पयेत्) ॥

भा० । पुत्रहीन मनुष्यकी पत्नी सगोत्र मनुष्यसे पुत्रको पैदाकरले और जो कुछ पतिकाधनहो वह उस क्षेत्रज पुत्रकोदेदे–परन्तु यह कलियुगमें निषिद्धहै ॥

ता० । सन्तानहीन मृतक पुरुषकी जो पत्नीहै वह अपने पतिके समानगोत्र पुरुषसे गुरुआदिके पूर्वोक्त नियोग विधिसे पुत्रको पैदाकरै और अपने पतिका जो धनसमुदायहो वह उस क्षेत्रजपुत्रकेही अर्पणकरदे अर्थात् क्षेत्रकेही आधीनकरदे–क्योंकि देवर वा सपिंडसेही नियोगधर्मसे प्रजाकी

उत्पत्तिकहीहै औरसगोत्रसे पैदाकरना इसलिये कहाहै कि सगोत्रसे पैदाहुआ पुत्रही धनका अधिकारी होसकताहै इसका विवेचन करआयेहैं १९० ॥

अथस्त्रीधनविभागः ॥

द्वौतुयौविवदेयातांद्वाभ्यांजातौस्त्रियाधने । तयोर्यद्यस्यपित्र्यंस्यात्तत्सगृह्णीतनेतरः १९१ ॥

प० । द्वौ तु यौ विवदेयातां द्वाभ्यां जातौ स्त्रियाः धने तयोः यत् यस्य पित्र्यं स्यात् तत् सः गृह्णीत न इतरः ॥

यो० । यदि द्वाभ्यां (पतिभ्यां) जातौ द्वौ (औरस पौनर्भवपुत्रौ) स्त्रियाःधने विवदेयातां तर्हि यत् धनं यस्य पित्र्यं स्यात् तयोर्मध्ये सःएव तत् धनं गृह्णीत इतरः न गृह्णीत ॥

भा० । यदि दोपिताओं से पैदाहुये दोपुत्र स्त्रीके धनमें विवादकरैंतो जिसके पिताका जो धनहो उसकोही वह ग्रहणकरै इतर न करै ॥

ता० । औरस और क्षेत्रजपुत्रके विभागका वर्णन करआये हैं यह वचन औरस और पौनर्भवपुत्र के विभागकेलिये है-यदि औरसपुत्रको पैदाकरके पति मरगयाहो और वह औरस बालकहोय और पतिकाधन पत्नीके आधीनहो और फिरभी वहपत्नी पुनः स्वीकारकिये पतिसे अन्यपुत्रको पैदाकरले और वहभी पतिमरजाय और उसका धनभी उसस्त्रीकेही आधीनहोय-उक्तस्त्रीके आधीन उक्त धनमें यदि वेदोनों औरस और पौनर्भव पुत्र विवादकरैं तो उसधनमें उनदोनोंमें जिसके पिताका जो धनहो उसकोही वहपुत्र ग्रहणकरै इतरके धनको इतर ग्रहण न करै १९१ ॥

जनन्यांसंस्थितायांतुसमंसर्वेसहोदराः । भजेरन्मातृकंरिक्थंभगिन्यश्चसनाभयः १९२

प० । जनन्यां संस्थितायां तु समं सर्वे सहोदराः भजेरन् मातृकं रिक्थं भगिन्यः च सनाभयः ॥

यो० । जनन्यां संस्थितायां सत्यां सर्वे सहोदराः चपुनः सनाभयः भगिन्यः मातृकं रिक्थं समं भजेरन् ॥

भा० । माताके मरेपीछे सबसोदरभाई और सोदरभगिनी माताकेधनको समरीतिसे बांटिलें ॥

ता० । यदि माता मरजाय तो संपूर्ण सोदरभाई और सोदर भगिनी (जिनका विवाह न हुआहो) वे माताके धनको समानरीतिसे (बराबर) विभागकरें-और जो कन्या विवाही हुई हों और अविवाहित वे तो इस[1] बृहस्पतिके वचनानुसार मानमात्रहीको प्राप्तहोतीहैं कि स्त्रीधन पुत्रोंका होताहै और पुत्रहीन दुहिता भी उसकी भागिनी होतीहैं और विवाही कन्या तो मानमात्रको प्राप्त होतीहैं अर्थात् माताके भागमें से चौथाभाग सन्मानके लिये उनको भी दियाजाताहै देवलऋषिने तो इस[2] वचनसे यह कहाहै कि मृतक स्त्रीका धन सामान्य रीतिसे पुत्र और कन्याओंका होताहै-और यदि वह स्त्री संतानसे हीन मरजाय तो उस धनको पति, माता, भ्राता, पिता, क्रमसे ग्रहणकरैं इस वचनसे भी पुत्र और कन्याओंका समान अधिकार प्रतीत होताहै और यह वचन अन्वाधेय और प्रीतिदत्त जो स्त्रीधन है उस विषयक है-और कात्यायन ऋषिने भी इस[3] वचनसे यह कहा है कि वे भगिनी भी

---

१ स्त्रीधनंस्यादपत्यानां दुहितावनदंशिनी । अपुत्ताचेत्समूढातु लभतेमानमात्रकम् ॥

२ सामान्यंपुत्रकन्यानां मृतानांस्त्रीधनंस्त्रियाम् । अप्रजायांहरेत्तद्भर्त्ता माताभ्रातापितापिवा ॥

३ भगिन्यश्चभ्रातरःसार्द्धं विभजेरन्सभर्तृकाः ॥

अपने भाइयों के सहित माताके धनको बांटिलें जो सौभाग्यवतीहों इस मनुके वचनमें सोदरपदसे यह जानना कि भिन्नोदरभाई धनके भागी नहीं होते १९२ ॥

यास्तासांस्युर्दुहितरस्तासामपियथार्हतः।मातामह्याधनात्किञ्चित्प्रदेयंप्रीतिपूर्वकम् १९३

प० । याः तासां स्युः दुहितरः तासां अपि यथार्हतः मातामह्याः धनात् किंचित् प्रदेयं प्रीतिपूर्वकम् ॥

यो० । तासां (दुहितॄणां) याः दुहितरः स्युः तासां अपि मातामह्याः धनात् किंचित् धनं प्रीतिपूर्वकं यथार्हतः प्रदेयम् ॥

भा० । जो उन दुहिताओंकी लड़कीहों उनको भी मातामही (नानी) के धनमें से कुछ धन प्रसन्नता और यथोचित रीतिसे देना ॥

ता० । उन दुहिताओंकी जो कन्याहों उनको भी मातामही (नानी) के धनमेंसे किंचित् धनप्रीतिसे यथायोग्य देना उचित है अर्थात् उपयोग और दारिद्रकी अपेक्षा उनको भी कुछदेना योग्यहै– इसमें कोई यह शंकाकरते हैं कि दुहिताओं की कन्याओंका मातामही के धनमें कोई स्वत्व तबतक पैदा नहीं होता जबतक दुहिता विद्यमानहों इसका यह समाधान है कि जैसे पिताके धनमें पुत्रोंका स्वत्वहोताहै और पुत्रोंके विद्यमानहोते कन्याओंको भी चौथाभाग देना लिखाहै इसीप्रकार माताके धनमें भी दुहिताकी पुत्रियोंको प्रीतिपूर्वक मानमात्रका अधिकारहै–और जो माताका यौतुक अर्थात् विवाहके समय वेदीके समीप पट्टपरबैठेहुये वधूवरके समयमें कन्याको मिलनाहै वह धन तो कन्याओंकाही होताहै यह बात इसी अध्यायके १३१ के श्लोकमें वर्णन करआये हैं–और यौतुक धनका विशेष विचार वहां पर भी करआये हैं–और गौतम ऋषिने भी इस[1] वचनसे यह कहाहै कि स्त्रीधन विना विवाही और अप्रतिष्ठित (निर्धन) दुहिताओं का होताहै १९३ ॥

अथ स्त्रीधनस्वरूपम् ॥

अध्यग्न्यध्यावाहनिकंदत्तंचप्रीतिकर्मणि।भ्रातृमातृपितृप्राप्तंषड्विधंस्त्रीधनंस्मृतम् १९४

प० । अध्यग्नि अध्यावाहनिकं दत्तं च प्रीतिकर्मणि भ्रातृमातृपितृप्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम् ॥

यो० । अध्यग्नि अध्यावाहनिकं चपुनः प्रीतिकर्मणि दत्तं भ्रातृमातृपितृप्राप्तं एतत् षड्विधं मन्वादिभिः स्त्रीधनंस्मृतम् ॥

भा० । अध्यग्नि–अध्यावाहनिक–प्रीतिदत्त–भ्राता माता–पिता इनसे जो मिले यह छः प्रकार का स्त्री धन मनु आदिकोंने कहा है ॥

ता० । यह छः प्रकारका मनु आदिकों ने स्त्रीधन कहाहै कि अध्यग्नि–अध्यावाहनिक–प्रीतिदत्त–भ्रातासे प्राप्त–मातासेप्राप्त–पितासेप्राप्त इसमें षड्विधपदसे यह समझना कि छःप्रकारसे कम नहीं हैं–और यह नहीं समझना कि अधिक नहीं हैं–क्योंकि योगीश्वर याज्ञवल्क्य ऋषिने पूर्वोक्त छः प्रकार के स्त्री धनोंको वर्णन करिके आद्यपद पढ़कर इस[2] वचनसे अधिक भी स्त्रीधन सूचित किया है कि पिता माता भाई इन्होंने दियाहो अध्यग्नि–(जो विवाहके समय अग्निके समीप मिलाहो)

१ स्त्रीधनंदुहितॄणां अप्रत्तानामप्रतिष्ठितानांच ॥
२ पितृमातृपतिभ्रातृदत्तमध्यग्न्युपागतम् । आधिवेदनिकाद्यंचस्त्रीधनंपरिकीर्तितम् ॥

और आधिवेदनिक जो पतिने द्वितियविवाहकरणार्थ पहिली स्त्रीकी प्रसन्नता के लिये दियाहो और आदि शब्दसे रिक्थ (दाय) क्रय संविभागसे जो मिलाहो यह स्त्रीधन कहाहै—और विष्णुने भी इस वचनमें छः से अधिक स्त्रीधन कहा है कि पिता माता पुत्र पति इनसे जो मिले—अध्यग्नि—आधिवेदनिक—बंधुदत्त—शुल्क—अन्वाधेय—यह ९ नवप्रकारका स्त्रीधनहोताहै और नारदमुनिनेभी इस वचन में छःप्रकारका कहाहै—कि अध्यग्नि अध्यावहनिक—पतिकादाय भ्राता—माता पिता—इनकादिया हुआ—और यह स्त्रीधन शब्द यौगिकहै अर्थात् स्त्रीहै स्वामिनी (मालिकनी) जिसकी ऐसाधन—और पारिभाषिक स्त्री धनशब्द नहीं है अर्थात् यहनहीं है कि पूर्वोक्तप्रकारके धनोंका स्त्री धनशब्दसे वोध होताहै—क्योंकि जहांतक यौगिकहोसके पारिभाषिक मानना अन्याय्यहै—इसमें कोई यहशंका करते हैं कि यदि यौगिकहोता तो इस स्त्रीधनका निषेध कात्यायनके इस वचनसे कैसेहोगा क्योंकि जो योगके बलसे स्त्रीकी स्वामिता होती है उसको दूरकरना कठिनहै कि जोधन स्त्रीको उपधि (उत्सव) में वा किसी योगवश पति भाई पिताने दियाहो वह स्त्रीधन नहींहोता और वह इसप्रकार दिया जाताहै कि उत्सवआदिमेंही इसस्त्रीको भूषणआदिका धारणकरना सर्वदानहीं वहधन उपधिदत्त कहाताहै और जो धन कन्याअवस्थामें दियाजाय वहधन कैसे विभक्तहोगा—और शिल्पप्राप्त धनको भी इस वचनसे कात्यायननेही विभागके अयोग्यकहाहै कि जो धन स्त्रीको शिल्पविद्यासे प्राप्तहो—अथवा प्रसन्नतासे किसीअन्यसे मिलाहो उसधनमें भी पतिका स्वामित्व होताहै और इससे भिन्न स्त्रीधन होताहै—और जो स्त्री धनशब्दको पारिभाषिक मानोगे तो उसका निषेध होसकताहै—इस शंकाका यह समाधान है कि कुछ स्त्रीके धनत्वका निषेध नहीं है किन्तु स्त्रीधनके विभागकरनेका निषेधहै इसीसे पिछले श्लोकमें पतिकास्वामित्व वर्णनकियाहै—और पहिले श्लोकमें तो पतिके स्वामित्वका निषेध भी होसकताहै क्योंकि उपधि और योगसे जो दियाजाता है उसमें स्वत्वनहीं होता—इससेही पीछे इन वचनोंसे मनुजी यह कहआये हैं कि योग आधमन विक्रीत योग दान—प्रतिग्रह और उपधि—इनको राजा जिस व्यवहारमेंदेखे उसकोलौटादे अर्थात् सत्य न माने और भार्या पुत्र दास येतीनों निर्धनकहेहैं जो धन इनको मिलताहै वहधन उसकाही होताहै जिसके ये होते हैं यहवचन भी भार्याके विषयमें उसीधनमें भर्ताके स्वत्वकावोधकहै जो शिल्पविद्यासे भार्याने संचित कियाहो—अध्यग्निआदि स्त्रीधनका स्वरूप कात्यायनऋषिने (इनवचनोंसे) कहाहै कि विवाहकेसमय अग्निके समीप जो धन स्त्रियोंको दियाजाताहै वहधन सत्पुरुषोंने अध्यग्निनामका स्त्रीधन कहा है

१ पितृमातृसुतभ्रातृदत्तमध्यग्न्युपागतम् । अधिवेदनिकंबन्धुदत्तंशुल्कमन्वाधेयम् ॥

२ अध्यग्न्यध्यावहनिकंभर्तृदायस्तथैवच । भ्रातृदत्तंपितृभ्यांचषड्विधंस्त्रीधनंस्मृतम् ॥

३ तत्रसोपधियद्दत्तंयच्चयोगवशेनवा । पित्राभ्रात्राथवापत्यानतत्स्त्रीधनमुच्यते ॥

४ प्राप्तंशिल्पैस्तुयत्किंचित्प्रीत्याचैवयदन्यतः । भर्तुःस्वाम्यंतदातत्रशेषंतुस्त्रीधनंस्मृतम् ॥

५ योगाधमनविक्रीतयोगदानप्रतिग्रहम् । यत्रचाप्युपधिंपश्येत्तत्सर्वंविनिवर्तयेत् ॥ भार्यापुत्रश्चदासश्चत्रयएवाधनाःस्मृताः । यत्तेसमधिगच्छन्तियस्यैतेतस्यतद्धनम् ॥

६ विवाहकालेयत्स्त्रीभ्योदीयतेह्यग्निसंनिधौ । तदध्यग्निकृतंसद्भिःस्त्रीधनंपरिकीर्तितम् ॥ यत्पुनर्लभतेनारीनीयमानंपितुर्गृहात् । अध्यावहनिकंनामस्त्रीधनंतदुदाहृतम् ॥ प्रीत्यादत्तंतुयत्किंचित् श्वश्र्वावाश्वशुरेणवा । पादवन्दनिकञ्चैवप्रीतिदत्तंतदुच्यते ॥ विवाहात्परतोयत्तुलब्धंभर्तृकुलात्स्त्रिया । अन्वाधेयन्तुतत्प्रोक्तंयल्लब्धंस्वकुलात्तथा ॥ गृहोपस्करवाह्यानांदोह्याभरणकर्मणाम् । मूल्यंलब्धंतुयत्किंचित्तच्छुल्कंपरिकीर्तितम् ॥ ऊढयाकन्ययावापिपत्युःपितृगृहेपिवा । भ्रातुःसकाशात् पित्रोर्वालब्धंसौदायिकंस्मृतम् ॥

और पिताके घरसे लेजाते समय जो धन स्त्रीकोमिलताहै वह अध्यावहनिक नामका स्त्रीधन कहाता है—और जो धन प्रसन्नतासे श्वश्रू(सास)वा श्वशुर अपनीवधूकोदेदें उस धनकोपादवंदनिक वा प्रीतिदत्त नामका स्त्रीधनकहतेहैं और विवाहकेपीछे जो धनस्त्रीकोपतिके वा अपने कुलसे मिलताहै उसको अन्वाधेय नामकास्त्रीधनकहतेहैं—और घरकीसामग्री वा बाहिरकीदुहने भूषणआदिका मूल्य जो उठे उसको शुल्ककहते हैं और विवाहीहुई कन्याको जो धनपति वा पिताकेघरमेंभाई वा मातापिताकेसकाशसे मिले वह धन सौदायिकनामका स्त्रीधन कहा है—इन श्लोकोंमें जो शुल्कपद कहाहै उसका मदनरत्नकारने तो यह अर्थ कराहै कि घरकी सामग्रियोंका मूल्य जो कन्याके अर्पण (देने) के लिये वर आदिसे लियाजाताहै वह शुल्क होताहै—और मिताक्षरामें यह लिखाहै कि जिस धनकोलेकर कन्या विवाहीजाय वह धन शुल्क होताहै इन दोनोंमें यह प्रतिज्ञा होनी चाहिये कि यह धन कन्याकाहै—अन्यथा कन्याका स्वत्व न होगा तो स्त्रीधन न होगा—जीमूतवाहन तो यह कहते हैं कि कर्मणांपाठ नहीं है किंतु कर्मिणां पाठहै इससे गृह आदि कर्म के कर्ताओंने उक्त कर्म के करने से पतिकी प्रेरणा से जो स्त्रीको उत्कोच (रिसवत) दीजाती है अर्थात् पति किसी मनुष्य द्वारा अपनेसंग विवाह के लिये जो कन्याको देताहै वह शुल्क होताहै और उसकोही मूल्य शब्दसे कात्यायनने कहाहै और यह वचन भी कहा है कि भर्ताके घरमें लेजानेके लिये जो धन दियाजाताहै वह शुल्क कहाताहै ये दोनों प्रकार के धनमें भी स्त्रीका स्वत्व होसक्ता है क्योंकि ये दोनों स्त्रीकोही दिये जाते हैं—आधिवेदनिक वह होताहै कि पहिली स्त्रीको दूसरी स्त्री विवाहने के लिये जो दियाजाताहै क्योंकि याज्ञवल्क्यऋषिने इस वचनसे यह कहाहै कि द्वितीय विवाहकरनेवाला मनुष्य अधिविन्न स्त्री (पहिली जिसपर दूसरा विवाह किया जाय) को उतना धनदे जितना धन द्वितीय विवाह में लगै परंतु उनको दे जिनको स्त्रीधन न दिया हो—यदि स्त्रीधन दिया होय तो पूर्वोक्त धनसे आधा धन दे—कात्यायनऋषिने तो इस वचनसे विशेष कहाहै कि पिता माता पति भ्राता ज्ञाति इनमेंसे कोई स्त्रीको दोसहस्त्रपर्यंत स्त्रीधनको यथाशक्ति देसक्ताहै परन्तु स्थावर धनको नहीं देसक्तेहैं—और व्यासजीने भी इसे वचनसे यह कहाहै कि स्त्रियोंको धनकादाय पर से पर दोसहस्त्र देना अर्थात् इससे अधिक दाय धनी भी स्त्रीको न दें—और यह नियम भी प्रतिवर्ष वारंवार देनेमें समझना और यदि अनेक वर्षोंमें दोसहस्त्र से अधिक भी दियाजाय तो दोष नहीं है क्योंकि स्त्रीके जीवनार्थ देना होताहै और दोसहस्त्रसे जीवनपर्यंत निर्वाह होना असंभव है और स्त्री अपने भी धनमेंसे पतिकी आज्ञाके विना व्यय नहीं करसक्ती यह मनुजी कहेंगे—परन्तु सौदायिक धनमें इन वचनोंसे कात्यायनने विशेष कहाहै कि सौदायिक धनमें स्त्रियोंका स्वातंत्र्यहै क्योंकि सौदायिक धन पिता आदिकोंने दोषके अभावार्थ दिया है और सौदायिक धनमें स्त्रियोंका विक्रय दानकरनेमें स्थावर धनमें भी स्वातंत्र्य कहाहै और नारद

---

१ यदानेतुंभर्तृगृहेशुल्कंतत्परिकीर्तितम् ॥

२ अधिविन्नास्त्रियैदद्यादाधिवेदनिकंसमम् । नदत्तंस्त्रीधनंयासांदत्तेत्वर्द्धंप्रकीर्तितम् ॥

३ पितृमातृपतिभ्रातृज्ञातिभिःस्त्रीधनंस्त्रियै । यथाशक्त्याऽऽद्विसाहस्राद्दातव्यंस्थावरादृते ॥

४ द्विसहस्रःपरोदायः स्त्रियैदेयोधनस्यतु ॥

५ सौदायिकंधनंप्राप्यस्त्रीणांस्वातंत्र्यमिष्यते । यस्मात्तदानृशंस्यार्थंतैर्दत्तमुपजीवनम् ॥ सौदायिकेसदास्त्रीणांस्वातंत्र्यं परिकीर्तितम् । विक्रयेचैवदानेचयथेष्टंस्थावरेष्वपि ॥

मुनिने तो इस वचनसे यह कहाहै कि पतिने जो धन प्रसन्नतासे दिया है उस धनको वह स्त्री यथेच्छ भोगे वा दे परन्तु स्थावरके विना अर्थात् स्थावरको नहीं देसक्तीहै अर्थात् स्थावर धनमें स्त्रीको निवास आदि का उपभोगही है विक्रय और दान नहीं कहे हैं—और पुरुषोंका भी किसी प्रकारके भी स्त्री धनमें स्वामित्व के अभावसे स्वातंत्र्य नहीं है क्योंकि इन वचनोंसे कात्यायनने यह कहा है कि पति—पुत्र—पिता—भाई ये सब स्त्रीधन के ग्रहणकरने—देने में प्रभु (समर्थ) नहीं हैं—यदि इनमें से एक भी कोई बलसे स्त्रीधनको भोगे तो राजा उससे वृद्धि (सूद) सहित दिवादे और दंडदे—और यदि स्त्रीकी आज्ञा और प्रीतिसे भक्षण करै तो उसके धनवान् होनेपर मूलकोही दिवादे—यदि स्त्री धनके लेनेवाले पतिके दो स्त्री हों और पति उस स्त्रीको न भोगता होय तो स्त्रीके दियेहुये धनका भी प्रतिदान (लौटाय लेना) बलसे करादे—और जहां स्त्रीके भोजन वस्त्रका अभावहो वहां स्त्री अपने और अन्यदायके भागियोंके भी भागको ग्रहणकरले—यदि वह स्त्री सुपात्र होय तो पूर्वोक्त धनकी स्वामिनी होती है और जो दुष्टाहोय तो नहीं क्योंकि कात्यायनने ही इस वचनसे यह कहा है कि जो स्त्री अपकारकी करनेवाली—निर्लज्ज—धनकी नाशक—व्यभिचारिणी होय वह स्त्री धनके योग्य नहीं होती अर्थात् उसके दियेहुये भी स्त्री धनको छीनले—और देवलऋषि ने इस वचनसे यह कहा है कि वृद्धि (सूद) भूषण—शुल्क—लाभ (गौरी आदि की प्रीतिके लिये जो दिया जाय) यह स्त्रीधन होताहै इसको स्त्री स्वयं ही भोग सक्तीहै आपत्तिके विना पति नहीं लेसक्ता—और वृथादान और भोगमें ग्रहण भी करले तो वृद्धि सहित देदे—और आपत्तिके समय तो स्त्रीधनके ग्रहणकरने में दोष नहीं है—अर्थात् पुत्र आदि के दुःख निवृत्तिके लिये स्त्री धनको पति भी भोगसक्ता है—इसीसे योगीश्वर याज्ञवल्क्य ऋषिने इस वचनसे यह कहाहै कि दुर्भिक्ष—धर्मकार्य—व्याधि—दंडके लिये राजाके किये अवरोध (कारागृह निवास) इनमें ग्रहण कियेहुये स्त्री धनको पति विना अपनी इच्छाके नहीं देसक्ता अर्थात् स्त्री बलसे नहीं लेसक्ती—पति चाहै तो देदे—और जिस धनके देने की प्रतिज्ञा स्त्रीके निमित्त पतिने करली होय और दैव वश पति मरजाय तो पुत्र उस धनको इसप्रकार दें जैसे पिता के ऋणको देतेहैं—क्योंकि वाचस्पतिने इस वचनसे यही कहाहै—और इससे भी यह सूचित होताहै कि यद्यपि स्त्री धनमें पुत्रोंका जन्मसेही स्वत्व होताहै तथापि जबतक माता जीवे तबतक पुत्रों की प्रभुता उसके धनमें नहीं होती और न वे उस धनका विभाग करसक्ते १९४ ॥

इति स्त्रीधनस्वरूपनिरूपणम् ॥

अन्वाधेयंचयद्दत्तंपत्याप्रीतेनचैवयत् । पत्यौजीवतिवृत्तायाःप्रजायास्तद्धनंभवेत् १९५

---

१ भर्त्राप्रीतेनयद्दत्तंस्त्रियैतस्मिन्मृतेपितत् । सायथाकाममश्नीयाद्दद्याद्वास्थावराद्दृते ॥

२ नभर्तानैवचसुतोनपितानभ्रातरोनच । आदानेवाविसर्गेवास्त्रीधनेप्रभविष्णवः ॥ यदित्वेकतरोप्येषांस्त्रीधनंभक्षयेद्बलात् । सवृद्धिकंसदाप्यःस्याद्दंडंचैवसमाप्नुयात् ॥ तदेवयद्यनुज्ञाप्यभक्षयेत्प्रीतिपूर्वकम् । मूलमेवनदादाप्यःयदासधनवान्भवेत् ॥ अथचेत्सद्विभार्यःस्यान्नचतांभजतेपुनः । प्रीत्याविसृष्टमपिचेत्प्रतिदाप्यःसतद्बलात् ॥ ग्रासाच्छादनवासानामुच्छेदोयत्रयोपितः । तत्रस्वमाददीतस्त्रीविभागंरिक्थिनांतथा ॥

३ अपकारक्रियायुक्तानिर्लज्जाचार्थनाशिका । व्यभिचाररतायाचस्त्रीधनंनतुसार्हति ॥

४ वृद्धिराभरणंशुल्कंलाभश्चस्त्रीधनंभवेत् । भोक्त्रीनत्स्वयमेवेदंपतिर्नार्हत्यनापदि ॥ वृथामोक्षेचभोगेचास्त्रियैदद्यात्सवृद्धिकम् ॥

५ दुर्भिक्षेधर्मकार्येचव्याधौसंप्रतिरोधके । गृहीतंस्त्रीधनंभर्तानाकामोदातुमर्हति ॥

६ भर्त्राप्रतिश्रुतंदेयं ऋणवत्स्त्रीधनंसुतैः ॥

प० । अन्वाधेयं च यत् दत्तं पत्या प्रीतेन च एव यत् पत्यौ जीवति वृत्तायाः प्रजायाः तत् धनं भवेत् ॥

यो० । अन्वाधेयं-चपुनः प्रीतेन पत्यौ यत् दत्तं-धनं अस्ति पत्यौ जीवतिसतिवृत्तायाः(मृतायाः)तत् धनं प्रजायाः भवेत् ॥

भा० । स्त्रीका जो अन्वाधेय (जोविवाहकेपीछे पतिकेकुलमेंमिले) और प्रसन्नतासे पतिका दियाहुआ जो धनहै वहधन उसस्त्रीका प्रजाका होताहै जो पतिके विद्यमान रहते मृत्युको प्राप्तहुईहो अर्थात् सौभाग्यवती मरीहो ॥

ता० । पूर्वोक्त अन्वाधेय और पतिने प्रसन्नहोकर दिया जो स्त्रीधनहै वह उस स्त्रीकाधन प्रजाका अर्थात् पुत्र और पुत्रियोंका सामान्यरीतिसे होता है जो पतिके जीवतहुये मृत्युको प्राप्तहुईहो अथवा जीवति यह सप्तमी विभक्ति इस[1] पाणिनिसूत्रके अनुसार अनादरमें है अर्थात् जीवते भी पति का अनादर करके (विना पूछे) उसका पुत्र पुत्रियोंको देदे-क्योंकि पतिका उस धनमें अधिकार नहीं होता और प्रजाया इससामान्य वचनसे पुत्र और पुत्रियोंका समानभाग उसमें होताहै और प्रथम भगिनियोंका भाग नहीं होता १९५ ॥

ब्राह्मदैवार्षगान्धर्वप्राजापत्येषुयद्वसु । अप्रजायामतीतायांभर्तुरेवतदिष्यते १९६ ॥

प० । ब्राह्मदैवार्षगान्धर्वप्राजापत्येषु यत् वसु अप्रजायां अतीतायां भर्तुः एव तत् इष्यते ॥

यो० । ब्राह्मदैवार्षगान्धर्व प्राजापत्येषु पंचसु विवाहेषु यत् स्त्रियाः वसु (धनं) अस्ति अप्रजायां अतीतायां सत्यां तत् षड्विधं अपि स्त्रीधनं भर्तुः एव इष्यते ॥

भा० । ब्राह्म-दैव-आर्ष-गांधर्व-प्राजापत्य इनपांचों विवाहोंमें मिलाहुआ जो स्त्रीधनहो वह प्रजाहीन स्त्रीके मरनेपर भर्त्ताका होताहै ॥

ता० । ब्राह्म-दैव-आर्ष-गान्धर्व-प्राजापत्य इनपांचों विवाहोंमें स्त्रीको जो छःप्रकारका स्त्रीधन मिलाहो वह उससमयमें भर्त्ताकाहोता है जो प्रजाहीन स्त्री मृत्युको प्राप्तहोगईहो-और योगिश्वर याज्ञवल्क्यने भी इस[2] वचनसे यहकहाहै कि यदि प्रजाहीन स्त्रीका धनहोय तो ब्राह्मआदि चारविवाहोंमें और गांधर्वविवाहमें मिलाहुआ धन भर्त्ताका होता है और शेष विवाहोंमें पिता और माताको प्राप्त होताहै-यदि वहस्त्री सन्तानवतीहोय तो दुहिताओंका होताहै-और यदि भर्त्तानहोय तो उसके समीपवर्तियोंका होताहै-और जो धन बन्धु और और शुल्कसे मिलाहो वा अन्वाधेयहो वह प्रजाहीन स्त्रीकाधन इस[3] याज्ञवल्क्यके वचनानुसार बांधवोंका होताहै-अर्थात् स्त्रीधनके अधिकारी जो बांधव हैं उनका होताहै १९६ ॥

यत्त्वस्याःस्याद्धनंदत्तंविवाहेष्वासुरादिषु।अप्रजायामतीतायांमातापित्रोस्तदिष्यते१९७

प० । यत् तु अस्याः स्यात् धनं दत्तं विवाहेषु आसुरादिषु अप्रजायां अतीतायां मातापित्रोः तत् इष्यते ॥

यो० । अस्याः यत् धनं आसुरादिषु विवाहेषु दत्तं(भवेत्) अप्रजायां अतीतायां सत्यां तत् धनं मातापित्रोः इष्यते ॥

---

१ षष्ठीसप्तम्यौचानादरे-अनादराधिक्येभावलक्षणे षष्ठीसप्तम्यौविभक्तीस्तःइत्यर्थः ॥

२ अप्रजस्त्रीधनंभर्तुःब्राह्मादिषुचतुर्ष्वपि । दुहितृणांप्रसूताचेच्छेषेषुपितृगामितत् ॥

३ बन्धुदत्तंयथाशुल्कमन्वाधेयकमेवच । अतातायामप्रजसिबांधवास्तदवाप्नुयुः ॥

भा०। आसुरआदि विवाहोंमें जो धन इसस्त्रीको दियाहो संतानसेहीन स्त्रीके मरनेपर वहधन माता पिताका होताहै ॥

ता०। आसुरआदि विवाहोंमें जो स्त्रीकाधनहो प्रजाहीन स्त्रीके मरनेपर वहधन माता पिताका होताहै—अर्थात् प्रथम माताका पश्चात् पिताका उसधनमें अधिकारहोता है इस मनुवचनके अनुसार पूर्वोक्त (शेपेसुपितृगामितत्) इस याज्ञवल्क्यके वचनमेंभी (माताचपिताचपितरौ पित्रोःगामि पितृगामि) इसप्रकार एकशेपसे प्रथम माताकाही अधिकार समझना और बौधायनऋषिने तो इसे वचनसे यहकहाहै कि मृतक कन्याका दाय सोदर ग्रहणकरैं और उनके अभावमें माता और माताके अभावमें पिता ग्रहणकरैं—और माता पिताके अभावमें उसके समीपाधिकारी ग्रहणकरैं—विज्ञानेश्वरने तो सबप्रकारका स्त्रीधन मिताक्षरामें पुत्रआदिके विद्यमान रहते प्रथम दुहिता—और दौहित्र और दौहित्रीका होताहै तदनन्तर पुत्रआदिको प्राप्तहोताहै क्योंकि इसे याज्ञवल्क्यके वचनसे यहप्रतीत होताहै कि माताके ऋणसे शेप जो माताका धनहै उसको ग्रहणकरै—और दुहिता न होय तो दुहिताके वंशमें जोहोयँ वेग्रहणकरैं अर्थात् दौहित्री और दौहित्र और नारदमुनिने भी इसे वचनसे यहीकहाहै कि यदि माताकी दुहिता न होय तो दुहिताका अन्वय (दौहित्री और दौहित्र) ग्रहणकरिले—और यदि वहस्त्री पुत्रवतीहोयँ तो पुत्र और पुत्री दोनोंमिलकर पूर्वोक्त मनुवचन १९२ श्लोकके अनुसार सोदरभाई भगिनी समानरीतिसे बांटिलें और यहांपर भी प्रथम विनाविवाही दुहिता उसके अभावमें विवाहहिुई और उनमें भी प्रथम निर्धन और उसके अभावमें धनवती माताके धनको ग्रहणकरैं—यहबात पूर्वोक्त इसे गौतमवचनसे प्रतीतहोतीहै—और जो स्त्रीधन शुल्करूपहोय वह सोदरभाइयोंकाही माताके मरेपीछे इसे गौतमवचनके अनुसार होता है—यदि दुहिता भिन्न२ जातिकी मातासे उत्पन्नहोयँ तो अपनी२ माताओंके अनुसार भागको इसे गौतमके वचनानुसार ग्रहणकरलें—सिद्धान्त यहहै कि स्त्रीधन सबसे प्रथम दुहिताका होताहै और दुहिताके अभावमें दौहित्री और उसके अभावमें दौहित्र—और उनके अभावमें पुत्र,पुत्रोंके अभावमें पौत्र और पौत्रोंके अभावमें भर्त्ताआदि बांधवधनके अधिकारी होतेहैं—क्योंकि पितामहीके ऋणके दूरकरनेमें पौत्रोंको अधिकारहोनेसे पितामहीके धनके लेनेका अधिकार इसे गौतमवचनके अनुसार प्रतीतहोता है कि जो दायके भागी हैं वेही ऋणको दूरकरैं १९७ ॥

स्त्रियास्तुयद्भवेद्वित्तंपित्रादत्तंकथंचन। ब्राह्मणीतद्धरेत्कन्यातदपत्यस्यवाभवेत् १९८ ॥

प०। स्त्रियाः तु यत् भवेत् वित्तं पित्रा दत्तं कथंचन ब्राह्मणी तत् हरेत् कन्या तदपत्यस्य वा भवेत् ॥

यो०। यत् पित्रादत्तं वित्तं स्त्रियाः कथंचनभवेत् तत्वित्तं ब्राह्मणीकन्या हरेत् वा तदपत्यस्य (ब्राह्मणीकन्यापुत्रादेः) भवेत् ॥

१ रिक्थंमृतायाःकन्यायागृह्णीयुःसोदरा स्वयम् । तदभावेभवेन्मातुस्तदभावेभवेत्पितुः ॥
२ मातुःदुहितरश्शेपं ऋणात्ताभ्यःऋतेन्वयः ॥
३ मातुर्दुहितरोभावे दुहितॄणांतदन्वयः ॥
४ स्त्रीधनंदुहितॄणामप्रत्तानामप्रतिष्ठितानांच ॥
५ भगिनीशुल्कंसौदर्याणामूर्ध्वंमातुः ॥
६ प्रतिमातृवास्ववर्गेभागविशेषः ॥
७ रिक्थभाजऋणंप्रतिकुर्युः—पुत्रपौत्रैःऋणंदेयं ॥

भा० । पिताका दियाहुआ जो किसीप्रकारका धनस्त्रीकाहै उसको भिन्नजातिकी स्त्रीकाधन होने परभी ब्राह्मणी कन्या ग्रहणकरै अथवा उसकी सन्तान ग्रहणकरै अर्थात् अधमवर्णकी कन्या ग्रहण न करै ॥

ता० । पिताका दियाहुआ जो किसीप्रकारका भी धन स्त्रीकाहोता है उसधनको ब्राह्मणी कन्या अथवा ब्राह्मणिकन्याकी सन्तान ग्रहणकरै–ब्राह्मणीकन्याकोही धनका ग्रहणकरना वोधनकरनेसे यह प्रतीतहोताहै कि नानाजातिकी जो ब्राह्मणकीस्त्रीहैं उनमेंसे क्षत्रियआदिकीस्त्री सन्तानहीन मर जाय तो उसके पिताका दियाहुआ जो धनहै सजातीय विजातीय कन्या और पुत्रके विद्यमान रहते भी ब्राह्मणिकन्याही ग्रहणकरै और इसमें ब्राह्मणीपद उत्तमजातिका उपलक्षणहै अर्थात् संतानहीन वैश्याका धन क्षत्रियापुत्री और संतानहीन शूद्राका धन वैश्यापुत्री ग्रहणकरतीहैं अर्थात् प्रजा हीन स्त्रीकेधनको जो भर्त्ताका ग्रहणकरना १९६ के वचनमें कहआयेहैं उसका यहवचन वाधकहै–तिससे स्त्रीधनमें पहिले दुहिताका अधिकारहै उसकेअनन्तर उसकी सन्तानका और उसकेपीछे पुत्रआदिकोंकाअधिकारहै यहांतक मिताक्षराका तात्पर्य वर्णनकिया ॥

जीमूतवाहन तो यहकहतेहैं कि सोदरभाई और भगिनियोंको समरीतिसे स्त्रीधनका ग्रहणकरना युक्तहै क्योंकि यदि केवल दुहिताओंकाही अधिकारहोता तो यौतुकधनमें पृथक् विशेषकर कुमारीका भाग क्योंकहते–तिससे पुत्र और पत्नीका अध्यग्निआदि स्त्रीधनमें तुल्य अधिकार है वहधन पुत्र और पुत्रीका समानहोता है और यौतुकधनमें पुत्री और माताका अधिकारहै इसीसे वहधन पुत्री कोही मिलताहै–और जिन २ वचनोंमें अन्वाधेयादि पदपढ़ाहै वे इतर धनके भी उपलक्षणहैं ॥

इसविषयमें वीरमित्रोदयकार यह कहतेहैं कि अन्वाधेयादि पदोंको उपलक्षण माननेमें कोई प्रमाणनहीं इससे अन्वाधेय और यौतुकसे भिन्न जो माताका स्त्रीधनहै उसमें प्रथम दुहिताका और पीछे पुत्रका अधिकारहै और यौतुकधनमें विशेषता इसलियेहै कि वह यौतुकधन कुमारीका होताहै विवाहीका नहींहोता यह आशय स्मृतिचन्द्रिकाकार आदिकोंकाहै–मिताक्षराका तो यह अभिप्रायहै कि जो वचन सामान्यरीतिसे स्त्री धनमात्रका दुहिताके अधिकारके वोधकहैं उनसे मनुआदिके वचनका संकोचकरना उचितथा और जो वचन भिन्न २ अधिकारके वोधकहैं उनमें संकोच करना उचित नहीं–इससे पुत्रसे पहिले दुहिता उसके अनन्तर दौहित्र और उसके अनन्तर पुत्रका अधिकार होताहै यहवात मदनरत्नकार आदिकोंको भी सम्मतहै–इससे जीमूतवाहनका पूर्वोक्त कथन ठीक नहीं है १९८ ॥

नर्निर्हारंस्त्रियःकुर्युःकुटुम्बाद्बहुमध्यगात्। स्वकादपिचवित्ताद्धिस्वस्यभर्तुरनाज्ञया १९९

प० । न निर्हारं स्त्रियः कुर्युः कुटुंबात् बहुमध्यगात् स्वकात् अपि च वित्तात् हि स्वस्य भर्तुः अनाज्ञया ॥

यो० । स्त्रियः बहुमध्यगात् कुटुंबात् चपुनः स्वकात् अपि वित्तात् स्वस्य भर्तुः अनाज्ञया निर्हारं (व्ययं–धनसंचयं वा) न कुर्युः ॥

भा० । स्त्री वहुत कुटुंबियोंके साधारण धनमेंसे और अपने भी धनमें से पतिकी आज्ञाके विना व्यय नहीं करसकीं–अर्थात् पतिके परतंत्र रहती हैं ॥

ता० । भ्राता आदि बहुतोंका जो कुटुंबका धनहै उसमेंसे अथवा अपने धनमेंसे स्त्री अपने पति की आज्ञाके विना निर्हार (व्यय) न करैं अथवा रत्न आदि जटित अलंकार के लिये धनका संचय न करैं–भावार्थ यह है कि स्त्री सर्वदा परतंत्र होती हैं इससे पतिकी आज्ञाके विना अपने वित्तमेंसे वृद्धि आदिकेद्वारा धनसंचय नहीं करसक्तीं–और कुटुंबके साधारण धनमेंसे तो कैसेकरसक्तीहैं १९९॥

पत्यौजीवतियःस्त्रीभिरलंकारोधृतोभवेत् । नतंभजेरन्दायादाभजमानाःपतन्तिते २००

प० । पत्यौ जीवति यः स्त्रीभिः अलंकारः धृतः भवेत् न तं भजेरन् दायादाः भजमानाः पतंति ते ॥

यो० । पत्यौ जीवति सति यः अलंकारः स्त्रीभिः धृतः भवेत्–तं दायादाः न भजेरन् कुतः भजमानाः ते पतंति ॥

भा० । भर्ता के जीवति हुये भर्ता आदि के संमतसे जो भूषण स्त्रियों ने धारण करलियाहो उस अलंकार का कोई भी दायाद विभाग न करैं क्योंकि उसका विभाग करनेवाले दायाद पापी होते हैं ॥

ता० । स्त्री धनके विभागका सारांशयहहै कि पूर्वोक्त स्त्रीधन यदि माताकाहोय तो सोदरभाई सोदर भगिनियोंका बराबर होताहै–और यदि उस स्त्रीके संतान न होय तो भर्त्ता, माता, भ्राता, और पिता इनका क्रमसे होताहै–और जो धन अन्वाधेय और पतिने प्रीतिसे दिया है वह धन पतिके जीवन समयमें भी दुहिता आदिकों का होताहै–और जो धन यौतुक है वह कुमारी कन्याका होताहै परंतु माताके धनमें से माताके ऋणको देकर जो कुछ बचे वही दुहिताओंका होताहै–और दुहिता न होय तो उसकी कन्या वा पुत्रका होताहै और जो ऐसी स्त्रीकाधनहो जिसकी भिन्न २ जातिकी अन्य भी सपत्निहोयँ तो वह धन यदि निजकी संतान न होय तो उस दुहिताका होताहै जो उत्तम वर्ण की स्त्रीमें पैदाहुई हो–और ब्राह्म आदि पांच विवाहोंमें मिलाहुआ जो स्त्रीधन वह दुहिता आदि प्रजा का होताहै और शेष विवाहोंमें पिताका होताहै और यदि वह प्रजाहीन होय तो भर्त्ताका होताहै–और जो कन्याका स्त्रीधन है वह सोदरभाइयोंका होताहै और जो धन माता पिताने अपनी दुहिता को स्थावर देदियाहो वह इस[1] कात्यायन ऋषिके वचनानुसार प्रजाहीन दुहिता के मरने पर भ्राताओं का होताहै और जो शुल्क धनहै वह इस[2] गौतमके वचनानुसार सोदर भाइयों का होता है सोदर भी न होयँ तो माताका होताहै–और बंधुओंका दियाहुआ धन बंधुओंका होताहै बंधुओंके अभावमें इस[3] कात्यायन के वचनानुसार भर्त्ताका होताहै–यदि प्रजाहीन स्त्रीके धनका दुहिता– आदि कोई अधिकारी न होय तो उस धनके अधिकारी इस[4] वृहस्पतिके वचनानुसार ये होतेहैं कि माताकी भगिनी–मातुलानी–पितृव्यकीस्त्री–पिताकी भगिनी–श्वश्रू–जेठानी–और ये सब माताके तुल्य कही हैं यदि औरस पुत्र वा पौत्र और दौहित्र और दौहित्रका पुत्र इनको और ये न होयँ तो पूर्वोक्त माताकी स्वसा आदि उक्त धनको ग्रहणकरैं २०० ॥

इतिस्त्रीधनविभागनिरूपणम् ॥

---

१ पितृभ्यांचैवयद्दत्तं दुहितुःस्थावरंधनम् । अतीतायामप्रजसिभ्रातृगामितुसर्वदा ॥

२ भगिनीशुल्कंसोदर्याणाम् ॥

३ बन्धुदत्तंतुबन्धूनामभावेभर्तृगामितत् ॥

४ मातृष्वसामातुलानीपितृव्यस्त्रीपितृष्वसा । श्वश्रूःपूर्वजपत्नीचमातृतुल्याःप्रकीर्तिताः ॥ यदासामौरसोनस्यात्सुतोदौहित्रएववा । तत्सुतोवाधनंतासांस्वस्त्रीयाद्याःसमाप्नुयुः ॥

अथ विभागानधारिप्रकरणम् ॥

अनंशौक्लीबपतितौजात्यन्धबधिरौतथा। उन्मत्तजडमूकाश्चयेचकेचिन्निरिंद्रियाः २०१

प० । अनंशौ क्लीबपतितौ जात्यंधबधिरौ तथा उन्मत्तजडमूकाः च ये च केचित् निरिंद्रियाः ॥

यो० । क्लीबपतितौ तथा जात्यंधबधिरौ अनंशौ स्तः चपुनः उन्मत्तजडमूकाः चपुनः ये केचित् निरिंद्रियाः ते अपि अनंशाः (दायहीनाः) भवंति ॥

भा० । क्लीब पतित–जन्मांध–बधिर–उन्मत्त–जड–मूक–(गूंगा) और कर चरण आदि इंद्रियों से जो हीन हैं ये सब भागके योग्य नहीं होते ॥

ता० । नपुंसक पतित–जन्मांधबधिर–उन्मत्त–जड मूक और इंद्रियोंसे हीन अर्थात् कर चरणादिसे हीन जो हैं ये सब दायके हीन होतेहैं किंतु भोजन वस्त्रकेही अधिकारी होतेहैं–इस श्लोक में इंद्रियोंसे रहित वे लेने जो व्याधिसे इंद्रियसे रहित होगये हों अन्यथा क्लीबपद व्यर्थ होजाता–और याज्ञवल्क्यने भी इस वचनसे यह कहाहै कि क्लीब पतित पतित का पुत्र–पंगु–उन्मत्त–जड–अंध जिसकी चिकित्सा न होसके ऐसा रोगी ये सब दायभागके अयोग्य और पालनाके योग्य होतेहैं और संन्यास आदि आश्रममें चलेगये हों वे भी इस वसिष्ठके और नारदके वचनानुसार अंशसे रहित होतेहैं कि अन्य आश्रममें स्थित अंशहीन होते हैं और पिताका वैरी–पतित–नपुंसक–उपपातकी–औरस भी ये पुत्र अंशके भागी नहीं होते क्षेत्रज तो कैसे होसक्ते हैं–और देवल ऋषिने भी इस वचनसे यह कहाहै कि पिताके मरे पीछे क्लीब कुष्ठी उन्मत्त जड अंध–पतित–पतितकापुत्र–संन्यासी–ये सब दायके भागी नहीं होते और पतितको छोड़कर इन सबको भोजन वस्त्र दिया जाता है और दोषसे हीन इनके पुत्र दायके भागी होतेहैं–और पतित शब्दसे पतित का पुत्र भी लेना क्योंकि इस श्रुतिके अनुसार पतित की संतान स्त्री (कन्या)को छोड़कर पतित होतीहै क्योंकि कन्या तो पर घर जानेवाली होनेसे पतित नहीं होसक्ती और पिताके मरे पीछे से इस कथनका यह आशयहै कि विभाग के समय ये सब विभाग के अयोग्य होतेहैं क्योंकि पिताके जीवते समय के विभागमें भी इनको भागहीन कहाहै–और कात्यायन ऋषिने भी इस वचनसे यह कहा है कि जो स्त्री विपरीत क्रमसे विवाहीहो उनका पुत्र अर्थात् हीन वर्णकी और फिर उत्तम वर्णकी उनके जो नियोग के विना सगोत्र से क्षेत्रज पुत्र पैदाहो वह और संन्यासी ये भागके योग्य नहीं होते–और यदि अक्रमोढा

---

१ क्लीबोथपतितस्तज्जःपंगुरुन्मत्तकोजडः । अंधोऽचिकित्स्यरोगाद्याभर्तव्याःस्युर्निरंशकाः ॥

२ अनंशास्त्वाश्रमांतरगताः ॥

३ पितृद्विट्पतितःषंढोयश्चस्यादौपपातिकः । औरसाअपिनैतेंशंलभेरन्क्षेत्रजाःकुतः ॥

४ मृतेपितरिनक्लीबकुष्ठ्युन्मत्तजडांधकाः । पतितःपतितापत्यंलिंगीदायांशभागिनः ॥ तेषांपतितवर्जेभ्योभक्तंवस्त्रंचदीयते । तत्सुताःपितृदायांशंलभेरनदोषवर्जिताः ॥

५ पतितापत्यंपतितमेवान्यत्रस्त्रियाः साहियागामिनीभवति ॥

६ अक्रमोढासुतश्चैव सगोत्राद्यश्चजायते । प्रवज्यावसितश्चैव नरिक्थंतेषुचार्हति ॥ अक्रमोढासुतस्त्वृक्थीसवर्णश्चयदापितुः । असवर्णप्रसूतस्तुक्रमोढायांचयोभवेत् ॥ प्रतिलोमप्रसूतायास्तस्याःपुत्रोनरिक्थभाक् । ग्रासाच्छादनमात्रंतुदेयंतद्बंधुभिर्मितम् ॥ बंधूनामप्यभावेतुपित्र्यंद्रव्यंतदाप्नुयात् । स्वपित्र्यंतद्धनंप्राप्तंदायनीयानबांधवाः ॥

(प्रतिकूल क्रमसे विवाही) का पुत्र पिताका सजातीय होय और क्रमसे विवाही का पुत्र पिता का सजातीय न होय तो प्रतिलोम विधिसे संतानवाली का पुत्र धनका भागी नहीं होता किन्तु बंधु उसको परिमित (तुला) भोजन वस्त्रदें यदि बंधु न होयँ तो वह पिताके द्रव्यकाभागी होताहै उसको पिताके धनमिलनेपर बन्धुओंको दण्डनदे—और आपस्तंब ऋषिने भी इस वचनसे यहकहा है कि जो मनुष्य जलपानसे पतित करदियाहो उसका दाय पिंड जल ये निवृत्त होजाते हैं और बृहस्पति ने भी इन वचनोंसे यहकहा है कि सजातीय स्त्रीसे पैदाहुआ भी निर्गुण पुत्र पिताके धनकाभागी नहींहोता—उसको पिंडदेनेवाले जो श्रोत्रिय (वेदपाठी) हैं उनका वहधन होता है—उत्तमर्ण और अधमर्णोंसे पुत्र पिताकी रक्षाकरता है इससे विपरीत पुत्रसे क्याप्रयोजनहै वहगौ क्याकरेगी जो न दूधदे और न गर्भवतीहो जो पुत्र विद्वान् और धार्मिकनहो उसके पैदाहोनेसे क्याप्रयोजन होसकता है जो पुत्र शास्त्र शूरवीरता—धन तप ज्ञान आचार इनसे हीनहै वह मूत्र और विष्ठाके समानहोता है—अर्थात् माता पिता आदिके और्ध्वदेहिक श्राद्धकाकर्ता असंस्कृत भी पुत्र श्रेष्ठ होताहै और वेदका पारगामी भी पूर्वोक्त कर्म का अकर्ता श्रेष्ठ नहीं होता अर्थात् जोपुत्रके करने योग्य कर्म (श्राद्ध) करताहै उसको ही पिताका धनरूप वेतन मिलता है और जो नहीं करै उसको वेतनकैसे मिलसक्ता है—और मनुजी ने भी निंदित कर्म में स्थित भाइयोंको इस वचन से धनका अधिकार नहीं कहा २०१ ॥

सर्वेषामपितुन्याय्यंदातुंशक्त्यामनीषिणा।ग्रासाच्छादनमत्यंतंपतितोह्यददद्भवेत्२०२

प० । सर्वेषां अपि तु न्याय्यं दातुं शक्त्या मनीषिणा ग्रासाच्छादनं अत्यंतं पतितः हि अददत् भवेत् ॥

यो० । सर्वेषां अपि (क्लीबादीनां) मनीषिणा ग्रासाच्छादनं अत्यंतं शक्त्या दातुं योग्यं—हि (यतः) अददत् पुरुषः पतितः भवेत् ॥

भा० । क्लीब आदि सबको बुद्धिमान् मनुष्य भोजन वस्त्र शक्तिके अनुसार जीवनपर्यंतदे क्योंकि जो नहीं देता वह पतित होताहै ॥

ता० । पूर्वोक्त क्लीब आदि सबको बुद्धिमान् मनुष्य अपनी शक्तिके अनुसार जीवन पर्यंत भोजन वस्त्र अवश्य दे क्योंकि यदि न दे तो पतित होताहै—और जो पतित और उपपातकीहैं वे तो प्रायश्चित्त के करने के पीछे भागके अधिकारी होजातेहैं यदि अपनी उद्धततासे प्रायश्चित्त न करैं तो दायके भागी नहीं होते और जो ये विभागसे पहिले दूषित होजायँ तो दाय के अयोग्य होतेहैं पीछे नहीं क्योंकि दियेहुये दायके हरने में कोई प्रमाण नहीं होता—यदि औषध आदि से पूर्वोक्त रोग भी दूर होजाय तो भाग मिलसक्ता है यह मिताक्षराकार कहते हैं—क्योंकि विभागका अवरोधक (रोकने

---

१ अवपात्रितस्यरिक्थपिंडोदकानिनिवर्तंते ॥

२ सवर्णजोप्यगुणवान्नार्हःस्यात्पैतृकंधनं । तत्पिंडदाः श्रोत्रियायेतेषांतदभिधीयते ॥ उत्तमर्णाधमर्णेभ्यःपितरंत्रायते सुतः। अतस्तद्विपरीतेननास्तितेनप्रयोजनम् ॥ तयागवाकिंक्रियतेयानधेनुर्नगर्भिणी ।कोर्थःपुत्रेणजातेनयोनविद्वान्नधार्मिकः॥ शास्त्रशौर्यार्थरहितस्तपोज्ञानविवर्जितः । आचारहीनपुत्रस्तुमूत्रोच्चारसमःस्मृतः ॥

३ सर्वएवविकर्मस्था नार्हन्तिभ्रातरोधनम् ॥

वाला) दोषही था–और इसे याज्ञवल्क्यके वचनानुसार क्लीब आदिकोंके जो दोषरहित पुत्रहैं वे भागके योग्य होतेहैं तिनमें क्लीबके क्षेत्रज और इतरों के औरस भी पुत्र होसक्ता है २०२ ॥

यद्यर्थितातुदारैःस्यात्क्लीबादीनांकथंचन। तेषामुत्पन्नतन्तूनामपत्यंदायमर्हति २०३ ॥

प० । यदि अर्थिता तु दारैः स्यात् क्लीबादीनां कथंचन तेषां उत्पन्नतंतूनां अपत्यं दायं अर्हति ॥

यो० । यदि क्लीबादीनां कथंचन दारैः अर्थिता स्यात् तर्हि उत्पन्नतंतूनां तेषां अपत्यं दायं अर्हति ॥

भा० । जो पूर्वोक्त नपुंसक आदि पुत्रोंको विवाह करने की किसीप्रकार इच्छा होय तो इनसे पैदाहुआ पुत्र दाय के योग्य होताहै ॥

ता० । यदि किसीप्रकार क्लीब आदिकोंको भी विवाहकरनेकी अभिलाषा होय तो क्लीबका क्षेत्रज पुत्र और इतरोंके उत्पन्नहुये औरस पुत्र भी दाय के योग्य होतेहैं और जो इनकी दुहिताहों उनकी भी पालना तबतक करै जबतक विवाह नहो और जो इनकी स्त्री साधु स्वभाव और पुत्रहीन हैं उनकी भी पालना करै और जो व्यभिचारिणी और प्रतिकूल (विरुद्ध) हों उनका निकासदे क्योंकि योगीश्वर याज्ञवल्क्यने इसै वचनसे यही कहा है २०३ ॥

इति विभागानधिकारनिरूपणम् ॥

यत्किंचित्पितरिप्रेतेधनंज्येष्ठोऽधिगच्छति। भागोयवीयसांतत्रयदिविद्यानुपालिनः२०४ ॥

प० । यत् किंचित् पितरि प्रेते धनं ज्येष्ठः अधिगच्छति भागः यवीयसां तत्र यदि विद्यानुपालिनः॥

यो० । पितरि प्रेतेसति यत् किंचित् धनं ज्येष्ठः अधिगच्छति तत्र (धने) यवीयसां भागः भवति यदि यवीयांसः विद्यानुपालिनः (भवंति) ॥

भा० । ता० । पिताके मरे पीछे भ्राताओंके संग रहताहुआ ज्येठाभाई जो कुछधन अपने पुरुषार्थ वा विद्यासे संचयकरै तो उस धनमें उन छोटे भाइयोंका भी भाग होताहै जो विद्या में अभ्यास करनेवाले हैं २०४ ॥

अविद्यानांतुसर्वेषामीहातश्चेद्धनंभवेत्। समस्तत्रविभागस्यादपित्र्यइतिधारणा २०५ ॥

प० । अविद्यानां तु सर्वेषां ईहातः चेत् धनं भवेत् समः तत्र विभागः स्यात् अपित्र्ये इति धारणा॥

यो० । चेत् (यदि) सर्वेषां अविद्यानां ईहातः धनं भवेत् तर्हि अपित्र्ये तत्र धने समः विभागः स्यात् इतिधारणा ॥

भा० । ता० । यदि विद्याहीन सब भाइयोंकी कृषि आदि व्यापारकी चेष्टासे धनकी वृद्धिहोजाय तो पिताके संचित धनकोछोड़कर उसधनमें सबका समानभागहोताहै–यह शास्त्रका निश्चयहै २०५॥

अथ अभिभाज्यप्रकरणम् ॥

विद्याधनंतुयद्यस्यतत्तस्यैवधनंभवेत्। मैत्र्यमौद्वाहिकंचैवमाधुपर्किकमेवच २०६ ॥

---

१ औरसाक्षेत्रजास्त्वेषां निर्दोषाभागहारिणः ।

२ सुताश्चैषांप्रभर्त्तव्यायावद्वैभर्तृसात्कृता । अपुत्रायोषितश्चैषांभर्त्तव्याःसाधुवृत्तयः ॥ निर्वास्याव्यभिचारिण्यःप्रतिकूलास्तथैवच ॥

प० । विद्याधनं तु यत् यस्य तत् तस्य एव धनं भवेत् मैत्र्यं औद्वाहिकं च एव माधुपर्किकं एव च॥

यो० । यस्य (भ्रातुः) यत् विद्याधनं मैत्र्यं औद्वाहिकं चपुनः माधुपर्किकं धनं भवति तत्धनं तस्यैव भवेत् ॥

भा० । जिस भाई को जो धन विद्यासंचित मित्रसे लब्ध वा विवाहमें प्राप्त और मधुपर्क की पूजामें मिलाहो वह धन उसी का होताहै अर्थात् विभागके योग्य नहीं होता ॥

ता० । जिस मनुष्यका जो विद्याधन है अथवा मित्रसे लब्ध और विवाह में और मधुपर्क के समय पूजामें मिला जो धनहै वह उसी का होताहै–जो उस धनके संचयकरनेवालाहो–और याज्ञवल्क्य ऋषिने भी इन[1] वचनोंसे यह कहाहै कि पिताके द्रव्यको व्यय किये विना जो धनका संचय कियाहो वा मित्रसे वा विवाह में मिलाहो वह धन दायादोंका नहीं होता और जो धन पिता और पितामहसे किसी के ऊपर ऋणका चलाआयाहो और वे उस धनको न लेसके हों और कोई भाई अपनी चतुराई से धनको ग्रहण (वसूल) करिले उस धनको और विद्यासे मिले धनको दायके भागियोंको न दे–परंतु इस[2] नारदवचन के अनुसार विद्यापढतेहुये भाई के जो कुटुंबकी पालना करैं उस विद्याहीन भाई को भी विद्यासे मिलेहुये धनमेंसे भाग मिलता है–और विद्याधन कात्यायन ऋषिने इन[3] वचनोंसे वर्णन किया है कि पर के अन्नको भोजनकरिकै जो अन्नसे विद्यापढीहै अर्थात् न पिताका द्रव्य व्यय कियाहो और न पितासे पढीहो ऐसी विद्यासे मिला जो धन उसको विद्याधन कहते हैं–और जो धन विद्या से पणपूर्वक मिलाहो अर्थात् किसीकी कार्य सिद्धिमें निबंध (ठहराना) कर लियाहो वह भी विद्याधनहोताहै अथवा शिष्यसेयज्ञकराने प्रश्नसंदिग्ध वस्तुके निर्णयसे अज्ञात वस्तुके बताने से और प्राज्य (यजमान) से जो धन मिलाहो वह भी विद्याधन कहा है यह सबप्रकारका विद्याधन दायादोंको विभाग करनेके अयोग्य होताहै–और शंख ऋषिने भी इस[4] वचन से यह कहाहै कि पहिले पुरुषों की नष्टहुई भूमिको जो कोई एक भाई निकासले तो निकासनेवाले को चौथाभाग देकर और भाई समान भाग बांटलें–और लौगाक्षिने भी इस[5] वचनसे यह कहाहै कि क्षेम, पूर्त्त, योग, इष्ट (यज्ञके पात्र) और प्रचार अर्थात् गृह आदि के प्रवेशका मार्ग और शय्या आसन ये सब विभागके अयोग्य होते हैं २०६ ॥

भ्रातॄणांयस्तुनेहेतधनंशक्तःस्वकर्मणा।सनिर्भाज्यःस्वकादंशात्किंचिद्दत्वोपजीवनम् २०७

प० । भ्रातॄणां यः तु न ईहेत धनं शक्तः स्वकर्मणा सः निर्भाज्यः स्वकात् अंशात् किंचित् दत्वा उपजीवनम् ॥

यो० । यः भ्रातॄणां मध्ये स्वकर्मणा शक्तः धनं न ईहेत सः स्वकात् अंशात् किंचित् उपजीवनं-दत्वा निर्भाज्यः पृथक्कर्तव्यः ॥

---

१ पितृद्रव्याविरोधेनयदन्यत्स्वयमर्ज्जितम् । मैत्रमौद्वाहिकंचैवदायादानाञ्चतद्भवेत् ॥ क्रमादभ्यागतंद्रव्यंहृतमभ्युद्धरेत्तु यः । दायादेभ्योनतद्दद्यात्विद्ययालब्धमेवच ॥

२ कुटुम्बम्बिभृयात्भ्रातुःयोविद्यामधिगच्छतः । भागंविद्याधनात्तस्मात्सलभेताश्रुतोपिसन् ॥

३ परभक्तप्रदानेनप्राप्ताविद्यायदान्यतः । तयाप्राप्तंचविधिनाविद्याप्राप्तंतदुच्यते ॥ उपन्यस्तेचयल्लब्धंविद्ययापणपूर्वकम् । विद्याधनंतुतद्विद्याद्विभागेनविभज्यते ॥ शिष्यादार्त्विज्यतःप्रश्नात्संदिग्धप्रश्ननिर्णयात् । अज्ञानशंसनाद्वादाल्लब्धंप्राज्यधनाच्चयत् ॥ विद्याधनंतुतत्प्राहुर्विभागेनविभज्यते ॥

४ पूर्वनष्टान्तुयोभूमिमेकश्चेदुद्धरेत्क्रमात् । यथाभागंलभंतेन्येदत्वांशन्तुतुरीयकम् ॥

५ क्षेमम्पूर्त्तंयोगमिष्टमित्याहुस्तत्त्वदर्शिनः । अविभाज्येचतेप्रोक्तेशयनासनमेवच ॥

भा० । अपनी आजीविकामें समर्थ जोभाई संपूर्ण भाइयोंके धनकीइच्छा न करै उसको अपने धनमेंसे कुछ उपजीवनमात्र देकर विभागको करिलें ॥

ता० । संपूर्ण भाइयोंके मध्यमें जो भाई अपने कर्ममें शक्त (समर्थ) होकर अर्थात् राजाआदि धनियोंके समागमसे धनसंचय करनेमें समर्थ होकर पिताके साधारण धनकी इच्छा न करै उसको यत्किंचित् धनको अपने अंशमेंसे जीवनमात्र देकर वह सबभाइयोंको पृथक् करने योग्यहै—याज्ञवल्क्यऋषिने भी इस वचनसे यहीकहाहै कि जो भाई धनसंचय करनेमें समर्थहै उसको यत्किंचित् धनदेकर विभागकरै—क्योंकि इसप्रकार न करनेसे कालान्तरमें उसके पुत्र उसधनमें विवाद करने लगेंगे इससे कुछद्रव्य उसको देकर विभागकरना उचितहै २०७ ॥

अनुपघ्नन्पितृद्रव्यंश्रमेणयदुपार्जितम्।स्वयमीहितलब्धंतन्नाकामोदातुमर्हति २०८

प० । अनुपघ्नन् पितृद्रव्यं श्रमेण यत् उपार्जितं स्वयं ईहितलब्धं तत् न अकामः दातुं अर्हति ॥

यो० । पितृद्रव्यं अनुपघ्नन् (अनाशयन्) सन् यत्धनं श्रमेण उपार्जितं वा स्वयं ईहितलब्धं (अस्ति) तत् अकामः दातुं न अर्हति ॥

भा० । ता० पिताके द्रव्यको नष्टनकरके अपने परिश्रमसे जो धन संचितकियाहै उसको अपनी इच्छाके विना दायके भागियोंको न दे और अपनी चेष्टासे लब्धधन भी देनेयोग्यनहीं है २०८ ॥

पैतृकंतुपिताद्रव्यमनवाप्तंयदाप्नुयात्।नतत्पुत्रैर्भजेत्सार्द्धमकामःस्वयमर्जितम् २०९

प० । पैतृकं तु पिता द्रव्यं अनवाप्तं यत् आप्नुयात् न तत् पुत्रैः भजेत् सार्द्धं अकामः स्वयं अर्जितम् ॥

यो० । यः पिता अनवाप्तं पैतृकं यत् द्रव्यं अवाप्नुयात् स्वयं अर्जितं तत् धनं पुत्रैः सार्द्धं अकामः न भजेत् ॥

भा० । ता० । पिताने अपने पिताका अलब्ध जोधन संचित करलियाहो अर्थात् पिताकी असामर्थ्यसे न मिलाहो और उसने अपनी बुद्धिमानीसे उसधनको लेलियाहो अपने संचित उसधनको पुत्रोंकेसंग पिता विभाग न करै यदि पिताकी इच्छाहोय तो विभागकरदे परन्तु पितामहका द्रव्य समझकर पुत्र उसद्रव्यका विभाग नहीं करासकते २०९ ॥

अथसंसृष्टिधनविभागः ॥

विभक्ताःसहजीवन्तोविभजेरन्पुनर्यदि।समस्तत्रविभागःस्याज्ज्यैष्ठ्यंतत्रनविद्यते २१०

प० विभक्ताः सह जीवंतः विभजेरन् पुनः यदि समः तत्र विभागः स्यात् ज्यैष्ठ्यं तत्र न विद्यते ॥

यो० । विभक्ताः भ्रातरः पुनः सहजीवन्तः यदि धनं विभजेरन् तत्र विभागः समः स्यात् तत्र ज्यैष्ठ्यंनविद्यते ॥

भा० । प्रथम विभक्तहुये भाई पुनः एकत्र रहकर यदि विभागकरें तो उससमय समान विभाग होताहै ज्येष्ठको उद्धारभाग नहींहोता ॥

ता० । उद्धारसहित वा उद्धारसे रहितकियाहै विभाग जिन्होंने ऐसेभाई यदि फिर सह जीवतेहों अर्थात् पुनः एकत्रहोगयेहों और पुनः विभाग कियाचाहैं तो उनका विभाग सम (बराबर) होता

१ शक्तस्यानीहमानस्य किंचिद्दत्वापृथक्क्रिया ॥

है उसविभागमें ज्येष्ठता नहींहोती अर्थात् ज्येठेभाईको उद्धार विभाग नहीं मिलता—याज्ञवल्क्यऋषि ने तो इस वचनसे यहकहाहै कि जो मनुष्य पुत्रहीन मरगयाहो और वह अपने पिता भाई वा पितृव्यके संग संसृष्टहोय तो उसके धनको वही संसृष्टिलेता है जिसकेसंग वह पुनः एकत्ररहताहो अर्थात् पत्नीआदि उसधनके भागी नहींहोते और बृहस्पतिने इस वचनसे संसृष्टि उसकोही कहाहै जो विभक्तहोकर पुनः पिता—भ्राता—वा पितृव्यके संग प्रीतिसे एकत्र रहताहो—यदि विभाग के समय संसृष्टिकी स्त्री गर्भवतीहोय और वहगर्भ अज्ञातहोय तो विभागके पीछे पैदाहुये पुत्रको वह धनदेदे पुत्रनहोय तो संसृष्टिही ग्रहणकरें—और यदि संसृष्टिहोनेके अनन्तर संसृष्टिका सोदर पैदा होजाय अर्थात् सोदर संसृष्टिके पुत्रहोजाय तो उसको संसृष्टिके धनकोदेदें अर्थात् पैदाहुये संसृष्टि को भागदेदे और मरेभये संसृष्टिके धनको ग्रहणकरिले और यदि सोदर और असोदर दोसंसृष्टिहोयँ तो सोदर संसृष्टिही धनका अधिकारी होताहै भिन्नोदर नहीं यदि पुत्रहीन संसृष्टि मरजाय तो और उसका संसृष्टि भिन्नोदरहो और सोदर संसृष्टिसे भिन्नहोय तो भिन्नोदर संसृष्टिही धनको ग्रहणकरै और पुत्र न करै—इससे भिन्नोदरके धन ग्रहणमें संसृष्ट रहनाही कारणहै—और असंसृष्टि भी सोदर होय तो धनको ग्रहणकरै और भिन्नोदर असंसृष्टि धनको ग्रहण न करें—अर्थात् भिन्नोदर संसृष्टि और सोदर असंसृष्टि येदोनों मिलकर धनको ग्रहणकरें यहबात मिताक्षरामें विज्ञानेश्वरने वर्णनकी है क्योंकि एकमें सोदरता और दूसरेमें संसृष्टिता धनलेनेके कारण विद्यमान हैं—इसीबातको अगिले दोनों श्लोकोंसे मनुजी वर्णनकरेंगे—और बृहस्पतिने इस वचनसे यहकहाहै कि संसृष्टियोंके मध्यमें जो संसृष्टि विद्या और अपनी शूरवीरतासे अधिक धनका संचय करिले तो उसको दोभाग और शेष संसृष्टियोंका समानभाग होताहै २१० ॥

येषांज्येष्ठःकनिष्ठोवाहीयेतांशप्रदानतः। म्रियेतान्यतरोवापितस्यभागोनलुप्यते २११

प० । येषां ज्येष्ठः कनिष्ठः वा हीयेत अंशप्रदानतः म्रियेत अन्यतरः वा अपि तस्य भागः न लुप्यते ॥

यो० । येषां (संसृष्टिनां) भ्रातृणांमध्ये ज्येष्ठः वा कनिष्ठः अंशप्रदानतः हीयेत—वा म्रियेत तस्यभागः न लुप्यते—(ननश्यति) ॥

भा० । जिन संसृष्टियोंमें ज्येष्ठ वा कनिष्ठ संन्यासी पतितआदि होनेसे विभागहीन होजाय वा मरजाय तो उसकाभाग लोपको प्राप्तनहीं होता किन्तु ॥

ता० । जिन संसृष्टि भ्राताआदिकोंमें यदि ज्येष्ठ वा कनिष्ठ अंशप्रदान (दाय) से हीनहोजाय अर्थात् संन्यासआदिसे विभागके अयोग्य होजाय अथवा मृत्युको प्राप्तहोजाय तो उसके भागकालोप नहींहोता अर्थात् उसके भागको पृथक् रखदें वहधन प्रथम तो उसके पुत्रोंकोदें और पुत्रनहोयँ तो उसके अधिकारीये होतेहैं कि २११ ॥

सोदर्याविभजेरंस्तंसमेत्यसहिताःसमम्।भ्रातरोयेचसंसृष्टाभगिन्यश्चसनाभयः २१२

प० । सोदर्याः विभजेरन् तं समेत्य सहिताः समं भ्रातरः ये च संसृष्टाः भगिन्यः च सनाभयः ॥

---

१ संसृष्टिनस्तुसंसृष्टिःसोदरस्यतुसोदरः । दद्यादपहरेच्चांशंजातस्यचमृतस्यच ॥ अन्योदर्यस्तुसंसृष्टिर्नान्योदर्योधनंहरेत् । असंसृष्ट्यपिवादद्यात्संसृष्टोनान्यमातृजः ॥

२ विभक्तोयःपुनःपित्राभ्रात्रावैकत्रवैस्थितः । पितृव्येणाथवैप्रीत्या सतत्संसृष्टउच्यते ॥

३ संसृष्टिनांतुयःकश्चित्विद्याशौर्यादिनाधिकं । प्राप्नोतितस्यदातव्यो द्व्यंशःशेषाःसमांशिनः ॥

यो० । तं (पूर्वोक्तं संसृष्टिधनं) सोदर्याः भ्रातरः समेत्य (इतस्तत आगत्य) सहिताः (मिलिताः) समं विभजेरन्—चपुनः ये संसृष्टाः (भ्रात्रादयः) चपुनः सनाभयः (सोदर्याः) भगिन्यः समं विभजेरन् ॥

भा० । उस संसृष्टीके धनका सम्पूर्ण सोदरभाई और संसृष्टभाई और सोदर भगिनी एकत्रहोकर समरीतिसे विभाग करलें ॥

ता० । पूर्वोक्त उस संसृष्टीके धनको देशान्तरआदिसे आयेहुये सब सोदरभाई और संसृष्ट सपत्न भ्राताआदि और सोदर भगिनी ये सब एकत्र (इकट्ठे) होकर समरीतिसे बांटलें—सिद्धान्त यहहै कि सबप्रथम तो वहधन संसृष्टी के पुत्रकाहोताहै और पुत्र न होय तो संसृष्टी वा असंसृष्टी जो सोदरभाई आदि उसका—होताहै और यदि भिन्नोदर भाई भी संसृष्टहों और सोदर भगिनी भी होयँ तो ये सब इकट्ठेहोकर उसधनको सम (बराबर) ग्रहणकरलें—यदि संसृष्टी कोईनहो और न सोदर भ्राताहोयतो असंसृष्टी भिन्नोदरही उसधनको ग्रहण करें उसके अभावमें असंसृष्ट पिता उसके अभावमें पत्नी ग्रहणकरै क्योंकि शंखऋषिने इस[१] वचनसे यहकहाहै कि पुत्रहीन मृतक संसृष्टीकाधन भ्राताको मिलताहै उसके अभावमें पिताको पिताके अभावमें ज्येष्ठ पत्नीको नारदऋषिने तो इस[२] वचनसे यहकहाहै कि संसृष्टी पतिके मरनेपर पतिके भ्राता पिता माता इनसे हीन जोपत्नी वे और सम्पूर्ण सपिंड अंशके अनुसार धनको बांटलें—अर्थात् ये क्रमसे उक्त धनके अधिकारी होतेहैं कि संसृष्टीके भ्राता पिता माता और पत्नी और सपिंड—और पत्नीभी न होय तो इस[३] बृहस्पतिके वचनानुसार पुत्र भार्या पितासेहीन उसकाधन भगिनीको मिलताहै यदि भगिनीभी न होय तो पुत्र भ्राता पिताहीन संसृष्टीके धनको सबसपिंड इस[४] बृहस्पतिके वचनानुसार यथा विभाग ग्रहणकरें—कोई तो यह कहतेहैं कि पिताआदिके धनमें पुत्रत्वही स्वत्वका कारण होताहै परन्तु जोपुत्र पतित न हो और संसृष्टित्व स्वत्वका जनक नहीं है—इससे संसृष्ट और असंसृष्ट पुत्रआदि सम्पूर्ण अपने२ अधिकारके अनुसार उसधनको ग्रहणकरें और विभागहोनेसे कुछ पिताका स्वत्व नहीं जातारहता अन्यथा सबपुत्रोंके विभक्त असंसृष्टी होनेपर भार्याआदिकाही उसधनमें अधिकार होजायगा—और आपस्तंब और हारीतने तो प्रत्युत इस[५] वचनसे यहकहाहै कि विभागके पीछे भी पिता पुत्रोंका धन में अधिकारहै पिता अपने जीते समयमें विभागकरके वनमें चलाजाय वा संन्यासी होजाय अथवा स्वल्पधनका विभाग करके और कुछ भूमिको अपने आधीन रखकर बसै और पिताकेपास कुछनरहे तो उनसे फिर धनकोलेले—और पुत्रोंको क्षीणदेखै तो अपने द्रव्यमेंसे पुनः देदे—और पुत्रोंके विभाग कियेपीछे जो पुत्र पैदाहोजाय तो इस[६] बृहस्पतिके वचनानुसार उसभ्राताके विभागमें प्रथम विभक्त भाई समर्थ नहींहोते—इससे पुत्रोंके पृथक्हुये पीछे जो धन पिताने संचित कियाहो वह सबधन

---

१ स्वर्यातस्यह्यपुत्रस्य भ्रातृगामिद्रव्यं तदभावेपितरौहरेयातांज्येष्ठावापत्नी ॥

२ मृतेपत्यौतुयाभार्याअभ्रातृपितृमातृका । सर्वेसपिंडास्तुधनंविभजेयुर्यथांशतः ॥

३ यातस्यभगिनीसातुततोंशंलब्धुमर्हति । अनपत्यस्यधर्मोयमभार्यापितृकस्यच ॥

४ मृतोऽनपत्योभार्यश्चेदभ्रातृपितृमातृकः । सर्वेसपिंडास्तद्दायंविभजेरन्यथांशतः ॥

५ जीवन्नेववाविभज्यवनमाश्रयेत् वृद्धाश्रमंवागच्छेत् स्वल्पेनवासंविभज्यभूपृष्ठमादायवसेत् यद्युपदस्येत् पुनस्तेभ्योगृह्णीयात् क्षीणांश्चविभजेत् ॥

६ अनीशाःपूर्वजाःपित्रोर्भ्रातुर्भागेविभक्तजः । पुत्रैःसहविभक्तेनपित्रायत्स्वयमर्जितं ॥ विभक्तजस्यतत्सर्वमनीशाःपूर्वजाः स्मृताः । यथाधनेतथार्णेचदानाधानक्रयेषुच । परस्परमनीशास्तेमुक्त्वाशौचोदकक्रियाम् ॥

विभागसे पीछे उत्पन्न पुत्रकाही होताहै और पहिले भाई पिताके धन ऋण दान आधान (गिरवी) क्रय–में समर्थ नहींहोते किंतु पिताके अशौच और जलदानकेही अधिकारी होतेहैं–और संसृष्टीके धनको जो ग्रहणकरै वह उसकी स्त्री और कन्याओंकी भी इनै शंख और नारदऋषिके वचनानुसार पालनाकरै कि यदि कोई संसृष्टी भाई सन्तानहीन मरजाय वा संन्यासी होजाय तो उसके धनको शेषभाई स्त्रीधनको छोडकर ग्रहणकरैं और जीवनपर्यंत उसकी उनस्त्रियोंकी पालनाकरैं जो पतिव्रताहों और व्यभिचारिणियोंसे तो धनको छीनलें–और जो उसकी कन्याहों उनको भी पिताके भाग मेंसे भरण पोषणका भागदेना तबतक कहाहै जबतक उनका विवाह न हो–और विवाहके अनन्तर उनकीरक्षा पतिकरै और संसृष्टीके धनको लेनेवालाही उनका विवाहकरै २१२ ॥

इतिसंसृष्टिधनविभागः ॥

योज्येष्ठोविनिकुर्वीतलोभाद्भ्रातॄन्यवीयसः।सोऽज्येष्ठःस्यादभागश्चनियन्तव्यश्चराजभिः २१३

प० । यः ज्येष्ठः विनिकुर्वीत लोभात् भ्रातॄन् यवीयसः सः अज्येष्ठः स्यात् अभागः च नियन्तव्यः च राजभिः ॥

यो० । यः ज्येष्ठः लोभात् यवीयसः भ्रातॄन् विनिकुर्वीत–सः अज्येष्ठः अभागः चपुनः राजभिःनियंतव्यः (दंड्यः) स्यात् ॥

भा० । ता० । जो ज्येठाभाई लोभके वशहोकर छोटेभाइयोंकी वंचनाकरै अर्थात् उनके भागसे न्यूनभागदे उसको राजादण्डदें और उद्धारभागका अधिकारी भी वह नहींहोता २१३ ॥

सर्वएवविकर्मस्थानार्हन्तिभ्रातरोधनम्। नचादत्वाकनिष्ठेभ्योज्येष्ठःकुर्वीतयौतुकम् २१४

प० । सर्वे एव विकर्मस्थाः न अर्हंति भ्रातरः धनं न च अदत्वा कनिष्ठेभ्यः ज्येष्ठः कुर्वीत यौतुकम् ॥

यो० । विकर्मस्थाः सर्वेएवभ्रातरः धनं न अर्हंति चपुनः ज्येष्ठः कनिष्ठेभ्यः अदत्वा यौतुकं (आत्माधीनं) धनंनकुर्वीत ॥

भा० । ता० । निंदित कर्ममें टिकेहुये भाई अर्थात् द्यूत वेश्याआदिका संगकरनेवाले धनके भागी नहींहोते और छोटेभाइयोंको विभागदिये विना ज्येठाभाई सबधनको अपने आधीन न करै २१४ ॥

भ्रातॄणामविभक्तानांयद्युत्थानंभवेत्सह। नपुत्रभागंविषमंपितादद्यात्कथंचन २१५ ॥

प० । भ्रातॄणां अविभक्तानां यदि उत्थानं भवेत् सह न पुत्रभागं विषमं पिता दद्यात् कथंचन ॥

यो० । यदि अविभक्तानां भ्रातॄणां सह उत्थानंभवेत् तर्हि पिता कथंचन अपि विषमं पुत्रभागं न दद्यात् ॥

भा० । ता० । यदि पिताकेसंग एकजगह रहतेहुये सम्पूर्ण भाई धन संचयकेलिये इकट्ठे होकर उद्योगकरैं तो पिता कदाचित् भी उनपुत्रोंको विषम (न्यूनाधिक) भागनदे अर्थात् सबपुत्रोंका समानरीतिसे विभागकरै २१५ ॥

ऊर्ध्वंविभागाज्जातस्तुपित्र्यमेवहरेद्धनम्।संसृष्टास्तेनवायेस्युर्विभजेतसतैःसह२१६ ॥

प० । ऊर्ध्वं विभागात् जातः तु पित्र्यं एव हरेत् धनं संसृष्टाः तेन वा ये स्युः विभजेत सः तैः सह ॥

यो० । विभागात् ऊर्ध्वंजातः पुत्र पित्र्यं एवधनंहरेत् वा ये तेन (पित्रा) संसृष्टाःस्युः सः तैस्सह विभजेत ॥

[1] भ्रातॄणामप्रजाःप्रेयात्कश्चिच्चेत्प्रव्रजेतवा । विभजेरन्धनंतस्यशेषास्तेस्त्रीधनंविना ॥ भरणंचास्यकुर्वीरन् स्त्रीणामाजीवनक्षयात् । रक्षंतिशय्यांभर्तुश्चेत्आच्छिन्द्युरितरासुच ॥ यातस्यदुहितातस्याःपित्र्योंऽशोभरणेमतः । असंस्काराद्भरेद्भागंपरतोबिभृयात्पतिः ॥

भा० । विभागसे पीछे पैदाहुआ पुत्र पिताकेही धनको ग्रहणकरै अथवा पिताके संग जो भाई संसृष्ट होगये हों उनके संग सब धनको मिलाकर विभाग करें ॥

ता० । यदि जीवतेहुये पिताने अपनीइच्छासे पुत्रोंका विभाग करदियाहोय और विभागसे पीछे अन्यपुत्र पैदाहोजाय तो वहपुत्र पिताके धनकोही ग्रहणकरै यदि पिताकेसंग कोईभाई संसृष्टहोगयेहों तो उनकेसंग संपूर्ण धनका वह पुत्र विभाग करिले जो विभागकेपीछे पैदाहुआहो याज्ञवल्क्य ऋषि ने तो इसे वचनसे यह कहा है कि विभागके पीछे सजातीय स्त्रीमें जो पुत्र पैदाहुआ है वह माता पिताके भागकाही अधिकारी होताहै और माताके भागको जभी प्राप्तहोताहै जब दुहिता न होय–और जो पुत्र विजातीय स्त्री में होय वह केवल पिताके भागकोही प्राप्त होताहै क्योंकि इसे वचनसे यह कहा है कि विभागसे पैदाहुआ पहिलापुत्र माता पिताके भागमें और विभागसे पीछे पैदाहुआ पहिले भाइयों के भागमें अधिकारी नहीं होता क्योंकि इसे वचनसे कहाहै कि पुत्रोंसे पृथक् होकर पिताने जो धन संचित किया है वह उसी का होताहै जो विभागके पीछे पैदाहो और पहिले पुत्र उसके स्वामी नहीं होते–यदि पिताने भाइयोंका विभाग करिदियाहोय और उससमय माताका गर्भ प्रकट न होय और पिता मरजाय और फिर पुत्र पैदाहोय तो उसका भाग आय–और व्ययसे शुद्धकियेहुये दृश्य (दीखते) धनमें से होताहै अर्थात् पहिले भाइयोंने प्रतिदिन, प्रतिमास, प्रतिवर्ष, जो पिता के दिये धनसे पैदा कियाहो और जो कुछ पिताके ऋण आदि के दूरकरने में व्ययहुआहो इन दोनोंको देखकर जितना जितना धन सब भाइयों के पासदीखे उसमें से कुछ २ भाग इसप्रकार उसको दें जिसप्रकारसे सब भाइयोंके समान धन उसके पास भी होजाय–और यही रीति संपूर्ण भाई उस समयमें करें जब पुत्रहीन मरेहुये भाई के जो पुत्र पैदाहोय और विभागके समय उसकी स्त्रीके गर्भ प्रकट न होय–और यदि भाई के मरने के समय उसकी स्त्री के गर्भ प्रकट होय तो जबतक बालक पैदा न होय तबतक इसे वसिष्ठके वचनानुसार विभाग न करें २१६ ॥

अनपत्यस्यपुत्रस्यमातादायमवाप्नुयात् । मातर्यपिचवृत्तायांपितुर्माताहरेद्धनम् २१७॥

प० । अनपत्यस्य पुत्रस्य माता दायं अवाप्नुयात् मातरि अपि च वृत्तायां पितुः माता हरेत् धनम् ॥

यो० । अनपत्यस्य पुत्रस्य दायं माता अवाप्नुयात् मातरि अपि वृत्तायां सत्यां पितुः माता धनं हरेत् ॥

भा० । पुत्रहीन मनुष्यका दाय माताको प्राप्त होताहै और माताके मरे पीछे पितामही उसके धनको ग्रहणकरती है ॥

ता० । संतान हीन पुत्रके धनको माता ग्रहणकरै पहिले मनुजी १८५ श्लोक में पिताको धन का ग्रहणकरना कहआये हैं और यहां माताको धनका ग्रहण वर्णन किया इससे यह प्रतीत होताहै कि माता पिता दोनों मिलकर उक्त धनको ग्रहणकरें क्योंकि मिताक्षरामें भी दोनोंको ही ग्रहणक-रना लिखाहै और याज्ञवल्क्य ऋषिने पितरौ–यह एक शेष किया है–अर्थात् माता पिताकोही धन

---

१ विभक्तेपुत्रसुतोजातःसवर्णायांविभागभाक् । दृश्याद्वातद्विभागःस्यादायव्ययविशोधितात् ॥
२ अनीशःपूर्वजःपित्र्येभ्रातुर्भागेविभक्तजः ॥
३ पुत्रैःसहविभक्तेनपित्र्यायत्स्वयमर्जितं । विभक्तजस्यतत्सर्वंअनीशाःपूर्वजाःस्मृताः ॥
४ अथभ्रातृणांदायविभागोयाश्चानपत्याःस्त्रियः । तासामापुत्रलाभात्गृहीतगर्भाणामाप्रसवात्प्रतीक्षणं ॥

का ग्रहण वर्णन किया है और विष्णुने भी इसे वचनसे यह कहा है कि अपुत्रका धन पत्नीको पत्नी के अभावमें दुहिताको और दुहिताके अभावमें माता पिताको मिलताहै यदि माता मरजाय और पत्नी पिता–भाई–भाइयों के पुत्र न होय तो पिताकी माता (पितामही) धनको ग्रहणकरती है–इसका विशेष विचार अपुत्रधन विभाग में करचुके हैं २१७ ॥

ऋणेधनेचसर्वस्मिन्प्रविभक्तेयथाविधि । पश्चाद्दृश्येतयत्किञ्चित्तत्सर्वंसमतांनयेत् २१८ ॥

प० । ऋणे धने च सर्वस्मिन् प्रविभक्ते यथाविधि पश्चात् दृश्येत यत् किंचित् तत् सर्वं समतां नयेत् ॥

यो० । सर्वस्मिन ऋणे चपुनः धने यथाविधि प्रविभक्ते सति यत् किंचित् धनं पश्चात् दृश्येत सर्वं तत् धनं समतां नयेत् ॥

भा० । पिता के संपूर्ण ऋण और धनके यथार्थ विभाग करने पर जो कुछ ऋण वा धन पीछे प्रतीत हो उस सबको समान रीतिसे विभाग करलें ॥

ता० । पिताके ऋण और धनका शास्त्रोक्त रीतिसे विभाग होने के अनंतर जो कुछ पिताका ऋण वा धन पीछे से प्रतीतहो उस सबको संपूर्ण भाई समान विभाग करलें अर्थात् ज्येष्ठको उद्धार आदि न दें–और इसे याज्ञवल्क्यके वचनानुसार विभाग हुये पीछे जो कुछ परस्पर का चुरायाहुआ धन किसी भाई के समीप प्रतीतहोजाय तो उसधनको वे सब भाई समान भागोंसे विभागकरलें क्योंकि इसे श्रुतिसे यह प्रतीत होताहै कि जो भाई किसी के भागका नाशकरता है अर्थात् छल से वा बल से उसके भागको नहीं देता जिसको भाग नहीं मिला वह भाग नष्टकरनेवालेको नष्टकरताहै अर्थात् उस पाप से वह नष्ट होजाता है और जो उसको नष्ट नहीं करेगा तो उसके पुत्र वा पौत्र को नष्ट करता है–परंतु भाई राजाको निवेदन न करें कि अमुक भाई ने इतना भाग चुरालिया है और यदि निवेदन करें भी तो राजा शांति पूर्वक उपायों से दिवावे क्योंकि अन्यथा दिवाने से भाइयों की प्रीतिका भंग होजाता है और यह भी न कहें कि विभागसे पहिले इसने अधिक भोगा और इसने न्यून क्योंकि बंधुओंके न्यूनाधिक भोगको कोई भी निवारण नहीं करसक्ता–और यदि राजाकी प्रार्थना से न दें तो राजा चोर दंडदे यही विषय कात्यायन ऋषिने इसे वचनसे वर्णनकियाहै २१८ ॥

वस्त्रंपत्रमलंकारंकृतान्नमुदकंस्त्रियः । योगक्षेमंप्रचारंचनविभाज्यंप्रचक्षते २१९ ॥

प० । वस्त्रं पत्रं अलंकारं कृतान्नं उदकं स्त्रियः योगक्षेमं प्रचारं च न विभाज्यं प्रचक्षते ॥

यो० । वस्त्रं–पत्रं–(वाहनं) अलंकारं–कृतान्नं (सिद्धान्नं) उदकं–स्त्रियः योगक्षेमं चपुनः प्रचारं–एतत्सर्वं बुधाः अविभाज्यं प्रचक्षते (कथयंति) ॥

भा० । वस्त्र–वाहन–भूषण–पक्वान्न–कूपआदि–जलकेस्थान–दासीआदि स्त्री और योग क्षेम अर्थात् राजमन्त्री पुरोहित वा छत्र चामर उपानहआदि और घरआदिके प्रवेशका मार्ग यहसब मनु आदि ऋषियोंने विभाग करनेके अयोग्य कहेहैं ॥

---

१ अपुत्रस्यधनंपत्न्यभिगामीतदभावे दुहितृगामितदभावेपितृगामि ॥
२ अन्योन्यापहृतंद्रव्यंविभक्तेयत्रदृश्यते । तत्पुनस्तेसमैरंशैःविभजेरन्निति स्थितिः ॥
३ योवैभागिनंभागान्नुदतेचयतेनसः । अथचैतंनचयतेथपुत्रमथपौत्रंचयते ॥
४ बंधुनापहृतंद्रव्यंबलान्नैवमदापयेत् । बंधूनामविभक्तानांभोगंनैवनिवर्तयेत् ॥

ता० । वस्त्र—वाहन—भूषण—सत्तू आदि सिद्धान्न—दासी आदि स्त्री उदक अर्थात् जलका आधार कूप आदि और योगक्षेमके प्रचारकर्त्ता राजा मंत्री पुरोहित आदि ये सब मनु आदिकों ने विभाग करने के अयोग्य कहे हैं—इन सब में जो वस्त्र जिसने धारण करलिया है वह उसकाही होताहै यदि बहु मूल्य विना धारण किया वस्त्र होय तो विक्रय करके विभाग के योग्य होताहै—पक्वान्नको भी तोलकर न बांटे यदि बहुमूल्य मोदक आदि होयँ तो इसे बृहस्पतिके वचनानुसार किसी कच्चे अन्न आदि वस्तुके बदलेसे पक्वान्न विभाग करने योग्य है—और उदक कूप आदि को न बांटें किंतु भागके अनुसार उसको वर्तें—और स्त्री (दासी) इनका भी विभाग न करें किन्तु पर्य्याय (क्रम) से कार्य उनसे करालें—और जो दासी पिताकी अवरुद्ध (बँधीहुई) हों वे चाहे सम भी हों तथापि इसे गौतम वचनके अनुसार उनकाविभाग न करें और योगक्षेम (यज्ञपूर्त) अर्थात् उसके फलकाविभाग नहींहोसकता इससे इनका ग्रहण दृष्टान्तकेलिये है इसीसे पूर्वोक्त लौगाक्षिके(क्षेमंपूर्तं०)इसवचनसे इनको विभागके अयोग्य वर्णन करचुकेहैं अतएव कोई आचार्य योग क्षेम शब्दसे राजमन्त्री पुरोहितआदि को और कोई शस्त्र चामर उपानत् आदिको लेतेहैं और प्रचारपदसे घर आरामआदिका प्रवेश मार्ग भी विभागके अयोग्यहै और पिताका धारणकियाहुआ जो वस्त्र भूषण शय्या वाहनआदिहै उससब को इसे बृहस्पतिके वचनानुसार श्राद्धके भोक्ता ब्राह्मणके अर्पणकरदे (देदे) और जो भूषण पति के जीवते स्त्रियोंने धारलियाहो उसको भी दायके अधिकारी इसे वचनके अनुसार विभाग न करें यदिकरें तो पतितहोतेहैं—और जो वस्त्र वा भूषण किसी पुत्रको पिताने प्रसन्नहोकर देदियेहों उनकोभी इसे वचनके अनुसार वही भोगसकताहै जिसको दियेहों—और माता पिताने जो जिसपुत्रको धनदेदियाहो वह इसे वचनसे उसीकाहोता है २१९॥

अथदायभागफलम्॥

जबतक दायका विभाग नहींहोता तबतक विना सम्मतिसे कोई व्यापार नहीं करसकते और जब विभाग होजाताहै तो इसे नारदवचनके अनुसार अपने२ सबकामोंको स्वतन्त्ररीतिसे करसकतेहैं कि यदि एकसे पैदाहुये अनेक पुत्रोंका धर्म कर्म पृथक्२ होय और कर्मका फलभी पृथक्होय तो चाहे वेकार्योंमें सम्मतनभीहोय तोभी अपनेभागोंको देसक्तेहैं और बेचसक्तेहैं और यथेष्ट अपने व्यवहारोंको करसकतेहैं क्योंकि वे अपने२ धनके स्वामीहोतेहैं—और एकपाकसे एकत्रबसतेहुये पुत्र पितर देवता द्विजआदिकोंका पूजन एकघरमें करसकते हैं और विभागहुये पीछे वही पूजन इसे

---

१ कृतान्नंचाकृतान्नेनपरिवर्त्यविभज्यते ॥
२ स्त्रीष्ववरुद्धासुनाविभागः ॥
३ वस्त्रालंकारशय्यादि पितुर्यद्वाहनादिकं । गन्धमाल्यैःसमभ्यर्च्य श्राद्धभोक्त्रेतदर्पयेत् ॥
४ पत्यौजीवतियःस्त्रीभिः अलंकारोधृतोभवेत् । नतंभजेरन्दायादाः भजमानाःपतंतिते ॥
५ पितृप्रसादाद्भुज्यंते वस्त्राण्याभरणानिच ॥
६ पितृभ्यांयस्ययद्दत्तं तत्तस्यैवधनंभवेत् ॥
७ यद्येकजाताबहवः पृथक्धर्माःपृथक्क्रियाः । पृथक्कर्मगुणोपेताः नचेत्कार्येषुसम्मताः ॥ स्वभागान्यदिदद्युस्ते विक्रीणीयुरथापिवा । कुर्युर्यथेष्टंतत्सर्वमीशास्तेस्वधनस्यहि ॥
८ एकपाकेनवसतां पितृदेवद्विजार्चनं । एकंभवेद्विभक्तानां तदेवस्याद्गृहेगृहे ॥

बृहस्पतिके वचनानुसार घरघरमें होताहै—और बृहस्पतिने इसे वचनसे विभक्त वा अविभक्त सब सपिंडोंको स्थावरधनमें समान और एककोदेने आधि वा विक्रयकरनेमें असमर्थ कहाहै उसका यह अभिप्रायहै कि विभक्तहुये भाइयोंकी अनुमतिके विना व्यवहारकी शुद्धिनहीं होसकती क्योंकि स्थावरधन चिरकालतक रहताहै—यदिनियत साक्षीनरहेंतोविभाग और अविभागका निर्णयनहोसकेगा—यदि सबकी अनुमतिसे दिया लियाजायगा तो सुगमरीतिसे व्यवहार शुद्धहोजायगा और यदि कोई भाई अपनी इच्छासे विभागको स्वीकारकरले फिर उसमें विषमवाद (झगड़ा) होजाय तो राजा उसको इसे बृहस्पतिके वचनानुसार उसकेही भागपर टिकावें—और यदि वो आग्रह (हठ) करै तो राजा उसको दण्डदे ॥

यदि विभागमें संदेह होजाय तो इसे याज्ञवल्क्यके वचनानुसार विभागका निर्णयकरें कि यदि कोईभाई विभागके होनेपर विभागको छिपावे तो ज्ञाति—बन्धु—साक्षी और लेख (हस्ताक्षरसहित विभागकापत्र) और पृथक्२ कियेहुये घर और खेतआदिसे विभागका निर्णयकरें और नारदऋषिने भी इने वचनोंसे यहकहाहै कि यदि दायादोंके विभागमें संदेहहोय तो ज्ञाति विभागकालेख और कृषिआदिकार्योंके पृथक्होनेसे निर्णय करना—और विभक्तहुये भाइयोंका देना लेना पशु—अन्न—घर—क्षेत्र—परिग्रह(पतिग्रह)पाक(रसोई)धर्म—व्यय येसबपृथक्२होतेहैं—साक्षी—प्रतिभाव्य(जामनी) दान—ग्रहण इनसबको वेहीभाईकरैं जिनका विभाग होगयाहो—जिनकाविभाग न हुआहो वे कदाचित् भी न करें—और जोभाई अविभक्तहैं उनका धर्म (वैश्वदेवादि) एकहोताहै और विभागहोने पर वहीधर्म पृथक्२ होजाता है जिनभाइयोंके ये सब पूर्वोक्तकर्म अपने धनके व्ययसे होतेहैं उनको विना विभागके लेखभी विभक्तहुये बुद्धिमान् मनुष्य जानले—और बृहस्पतिने इसे वचनसे यहकहा है कि जहां राजाको साक्षी न मिले तो वहांपर इतनी वस्तुओंको अनुमानसे जानले कि साहस (स्थावर—न्यास—और धनवालोंका विभाग और जिनका आय (आमदनी) व्यय—धन ये पृथक्२ हों कुसीद—(सूदपररुपयादेना) और परस्पर व्यापारकरैं वेभाई विभक्त जानने अर्थात् एकभाई उत्तमर्णहो और दूसरा अधमर्णहो और एकविक्रय करताहो और एक मोललेताहो विभागके विना न होनेवाले इत्यादि चिह्नोंसे विभागका अनुमानकरै—यदि अनुमानसे विभागका निर्णय न होसके तो वहां दिव्य शपथों (सौगन्द) से निर्णयकरै क्योंकि इसे वचनसे यहकहा है कि यदि युक्तियोंसे निर्णय न होसके तो शपथोंसे निर्णयकरै और जहां कोई निर्णयका कर्त्ता मनुष्य न होय और न उत्तमयुक्तिहो और वादी प्रतिवादीको दिया शपथका निश्चय न होय तो ऐसेस्थलमें इसेमनुवचन

---

१ विभक्तावाअविभक्तावासपिंडाःस्थावरेसमाः । एकोह्यनीशःसर्वत्रदानाधमनविक्रये ॥

२ स्वेच्छागतविभागोयः पुनरेवविसंवदेत् । सराज्ञांशेस्वकेस्थाप्यः शासनीयोऽनुबन्धकृत् ॥

३ विभागनिह्नवेज्ञाति बन्धुसाक्ष्यभिलेखितैः । विभागभावनाज्ञेया गृहक्षेत्रैश्चयौतकैः ॥

४ विभागधर्मसंदेहे दायादानांविनिर्णयः । ज्ञातिभिर्भागलेख्येन पृथक्कार्यप्रवर्त्तनात् ॥ दानग्रहणपशवन्नगृहक्षेत्रपरिग्रहाः । विभक्तानांपृथक्ज्ञेयाः पाकधर्मागमव्ययाः ॥ साक्षित्वंप्रातिभाव्यंच दानंग्रहणमेवच । विभक्ताभ्रातरःकुर्युः नाविभक्ताःकथंचन ॥ येषामेताक्रियालोके प्रवर्त्तन्तेस्वरिक्थतः । विभक्तानवगच्छेयुर्लेख्यमप्यन्तरेणताम् ॥

५ साहसंस्थावरंन्यासः प्रागविभागश्चरिक्थिनां । अनुमानेनविज्ञेयं नस्यातांयत्रसाक्षिणौ ॥ पृथगायव्ययधनांकुसीदंच परस्परं । वणिक्पथंचयेकुर्युः विभक्तास्तेनसंशयः ॥

६ युक्तिष्वप्यसमर्थासु शपथैरेवमर्दयेत् ।

७ विभागेयत्रसंदेहो दायादानांपरस्परं । पुनर्विभागःकर्तव्यःपृथक्स्थानस्थितैरपि ॥

के अनुसार पुनः विभागकरै कि जहां दायके भागियोंको विभागमें परस्पर संदेहहोय वहांपर पृथक्[२] रहतेहुये भी भाई पुनः विभागकरैं–यद्यपि पीछे मनुजीने इसवचनसे यहकहाहै कि भागकामिलना कन्याकादान और इतर वस्तुओंका दान येतीन वस्तु एकवारही होतीहैं इससे पुनः विभागकरना अयोग्यहै तथापि यहवचन तभी मानने योग्यहै जब विभागकी परावृत्ति (लौटाना) का कोई कारण न होय–औरसगोत्रियोंके विभागमें संदेहहोय और गोत्रजोंको भी विभागहोनेका ज्ञान न होय तो ऐसेस्थलमें कुल (कुटुम्ब) ही इस[२] शंखवचनके अनुसार साक्षीके योग्यहोताहै २१९ ॥

इतिमन्वर्थभास्करेदायभागप्रकरणंसमाप्तम् ॥

अयमुक्तोविभागोवःपुत्राणांचक्रियाविधिः । क्रमशःक्षेत्रजादीनांद्यूतधर्मंनिबोधत २२० ॥

प० । अयं उक्तः विभागः वः पुत्राणां च क्रियाविधिः क्रमशः क्षेत्रजादीनां द्यूतधर्मं निबोधत ॥

यो० । क्षेत्रजादीनां पुत्राणां क्रमशः क्रियाविधिः (विभागप्रकारः) एषः विभागः वः (युष्माकं) उक्तः–इदानीं द्यूतधर्मं यूयं निबोधत (शृणुत) ॥

भा० । ता० । क्षेत्रज आदि पुत्रोंके दायभागका यह प्रकार तुमको कहा अर्थात् धन आदि के विभागकी विधि वर्णनकी अब तुम द्यूत धर्मको सुनो अर्थात् द्यूत (जूवे) की व्यवस्था सुनो २२० ॥

द्यूतंसमाह्वयंचैवराजाराष्ट्रान्निवारयेत् । राजान्तकरणावेतौद्वौदोषौपृथिवीक्षिताम् २२१ ॥

प० । द्यूतं समाह्वयं च एव राजा राष्ट्रात् निवारयेत् राजांतकरणौ एतौ द्वौ दोषौ पृथिवीक्षिताम् ॥

यो० । राजा द्यूतं चपुनः समाह्वयं राष्ट्रात् (देशात्) निवारयेत्–यत. पृथिवीक्षितां एतौ द्वौ दोषौ राजांतकरणौ भवतः ॥

भा० । ता० । राजा अपने राज्यमेंसे द्यूत और समाह्वय दोनोंका निवारणकरै क्योंकि राजाओं के ये दोनों दोष राजाओं के नाश करनेवाले होतेहैं २२१ ॥

प्रकाशमेतत्तास्कर्यंयद्देवनसमाह्वयौ । तयोर्नित्यंप्रतीघातेनृपतिर्यत्नवान्भवेत् २२२ ॥

प० । प्रकाशं एतत् तास्कर्यं यत् देवनसमाह्वयौ तयोः नित्यं प्रतीघाते नृपतिः यत्नवान् भवेत् ॥

यो० । यत् देवनसमाह्वयौ स्तः एतत् प्रकाशं तास्कर्यं भवति–अतः नृपतिः तयोः द्यूतसमाह्वययोः प्रतीघाते नित्यं यत्नवान् भवेत् ॥

भा० । ता० । जो ये दोनों द्यूत और समाह्वयहैं ये दोनों प्रत्यक्ष तस्करता (चोरी) है इससे राजा इन दोनों के निवारणकरनेमें प्रतिदिन यत्नकरै २२२ ॥

अप्राणिभिर्यत्क्रियतेतल्लोकेद्यूतमुच्यते । प्राणिभिःक्रियतेयस्तुसविज्ञेयःसमाह्वयः २२३ ॥

प० । अप्राणिभिः यत् क्रियते तत् लोके द्यूतं उच्यते प्राणिभिः क्रियते यः तु सः विज्ञेयः समाह्वयः ॥

यो० । यत् अप्राणिभिः क्रियते तत् लोके द्यूतं उच्यते–तुपुनः यः प्राणिभिः (मेषादिभिः) क्रियते सः लोके समाह्वयः विज्ञेयः बुधैरितिशेषः ॥

---

१ सकृदंशोनिपतति सकृत्कन्याप्रदीयते । सकृदाहददानीति त्रीण्येतानिसकृत्सकृत् ॥
२ गोत्रभागविभागार्थे संदेहेसमुपस्थिते । गोत्रजैश्चापिविज्ञाते कुलंसाक्षित्वमर्हति ॥

भा० । ता० । अक्षके क्रीडामें कुशल मनुष्य जिसको अप्राणि (प्राणहीन) योंसे करैं उसको जगत्में द्यूत कहते हैं—और जो द्यूत मेष कुक्कुट आदि प्राणियों से किया जाताहै और उसमें जय पराजयमें मुद्रा आदि देने की प्रतिज्ञा की जातीहै उसको समाह्वय कहते हैं—यद्यपि ये दोनों लोक में प्रसिद्ध हैं तथापि इनके लक्षण का यहां पर कथन इन दोनोंकी निवृत्ति के लिये है २२३ ॥

द्यूतंसमाह्वयंचैवयःकुर्यात्कारयेतवा । तान्सर्वान्घातयेद्राजाशूद्रांश्चद्विजलिंगिनः २२४ ॥

प० । द्यूतं समाह्वयं चं एवं यः कुर्यात् कारयेत् वा तान् सर्वान् घातयेत् राजा शूद्रान् च द्विजलिंगिनः ॥

यो० । यः पुरुषः द्यूतं चपुनः समाह्वयं कुर्यात् वा कारयेत तान्सर्वान् चपुनः द्विजलिंगिनः शूद्रान् राजा घातयेत् (मारयेत्) ॥

भा० । ता० । जो मनुष्य द्यूत को अथवा समाह्वयको करै वा करवावै उन सबको और द्विज के चिह्न (यज्ञोपवीत आदि) धारण करने वाले शूद्रोंको राजा मरवायदे अर्थात् द्यूतवालोंको अपराधकी अपेक्षा हस्तछेदन आदि का दंड दे २२४ ॥

कितवान्कुशीलवान्क्रूरान्पाखण्डस्थांश्चमानवान् ।
विकर्मस्थान्शौण्डिकांश्चक्षिप्रंनिर्वासयेत्पुरात् २२५ ॥

प० । कितवान् कुशीलवान् क्रूरान् पाखंडस्थान् च मानवान् विकर्मस्थान् शौंडिकान् च क्षिप्रं निर्वासयेत् पुरात् ॥

यो० । राजा—कितवान—कुशीलवान्—क्रूरान् चपुनः पाखंडस्थान् मानवान विकर्मस्थान् चपुनः शौंडिकान् पुरात् क्षिप्रं निर्वासयेत् ॥

भा० । ता० । द्यूत आदि करनेवाले कितव—नर्तक और गानेवाले—क्रूर और पाखंडी वेदके विरोधी और विकर्म में स्थित अर्थात् श्रुति और स्मृतिसे बाह्य व्रतके धारी—और शौंडिक (मद्यप) इन सबको राजा अपने पुरमें से निकास दे २२५ ॥

एतेराष्ट्रेवर्त्तमानाराज्ञःप्रच्छन्नतस्कराः । विकर्मक्रिययानित्यंबाधन्तेभद्रिकाःप्रजाः २२६ ॥

प० । एते राष्ट्रे वर्तमानाः राज्ञः प्रच्छन्नतस्कराः विकर्मक्रियया नित्यं बाधंते भद्रिकाः प्रजाः ॥

यो० । राज्ञः राष्ट्रेवर्तमानाः प्रच्छन्नतस्कराः एते विकर्मक्रियया नित्यं भद्रिकाः (श्रेष्ठाः) प्रजाः बाधंते (पीडयंति) ॥

भा० । ता० । राजाके राज्य में बसते हुये ये सब (द्यूतकारक आदि) गुप्त चोर विरुद्ध (कपट आदि) कर्मसे सदैव सज्जनोंको पीडा देते हैं—इससे ही इस द्यूतके प्रकरण में इन सब का निषेध कहा है २२६ ॥

द्यूतमेतत्पुराकल्पेदृष्टंवैरकरंमहत् । तस्माद्द्यूतंनसेवेतहास्यार्थमपिबुद्धिमान् २२७ ॥

प० । द्यूतं एतत् पुराकल्पे दृष्टं वैरकरं महत् तस्मात् द्यूतं न सेवेत हास्यार्थं अपि बुद्धिमान् ॥

यो० । एतत् द्यूतं पुराकल्पे महत् वैरकरं दृष्टं तस्मात् हास्यार्थं अपि बुद्धिमान् द्यूतं न सेवेत ॥

भा० । ता० । पहिले कल्पमें भी इस द्यूतको महान् (अत्यंत) वैरका कारक देखा है इससे बुद्धिमान् मनुष्य हँसीके लिये भी द्यूतकी सेवा न करै अर्थात् न खेलै २२७ ॥

प्रच्छन्नंवाप्रकाशंवातन्निषेवेतयोनरः । तस्यदण्डविकल्पःस्याद्यथेष्टंनृपतेस्तथा २२८ ॥

प० । प्रच्छन्नं वा प्रकाशं वा तं निषेवेत यः नरः तस्य दंडविकल्पः स्यात् यथेष्टं नृपतेः तथा ॥

यो० । यः नरः प्रच्छन्नं वा प्रकाशं तं (द्यूतं) निषेवेत तस्य नरस्य नृपतेः यथा इष्टं भवति तथा दंडविकल्पः स्यात्-राज्ञास्वेच्छानुसारेणसदंड्यइत्यर्थः ॥

भा० । ता० । जो मनुष्य प्रत्यक्ष अथवा गुप्तरीतिसे उस द्यूतको करताहै उसको राजाकी इच्छा के अनुसार दंडहोताहै अर्थात् राजा अपनी इच्छाके अनुसार उसे दंड दे २२८ ॥

क्षत्रविट्शूद्रयोनिस्तुदण्डंदातुमशक्नुवन् । आनृण्यंकर्मणागच्छेद्विप्रोदद्याच्छनैःशनैः २२९ ॥

प० । क्षत्रविट्शूद्रयोनिः तु दंडं दातुं अशक्नुवन् आनृण्यं कर्मणा गच्छेत् विप्रः दद्यात् शनैः शनैः ॥

यो० । दंडं दातुं अशक्नुवन् क्षत्रविट्शूद्रयोनिः पुरुषः कर्मणा (भृत्यादिना) आनृण्यं गच्छेत् विप्रः (ब्राह्मणः) शनैः शनैः दद्यात् ॥

भा० । ता० । निर्धन होनेसे दंडदेनेको असमर्थ क्षत्रिय वैश्य और शूद्र उसदंडके योग्यसेवा आदि काम करने से अनृणता (दंडशुद्धि) को प्राप्त होजाय- अर्थात् दंडके बदले में कामको करदे-और ब्राह्मण तो अपने लाभ के अनुसार शनैः २ दंडके द्रव्यको देदे २२९ ॥

स्त्रीबालोन्मत्तवृद्धानांदरिद्राणांचरोगिणाम् । शिफाविदलरज्ज्वाद्यैर्विदध्यान्नृपतिर्दमम् २३० ॥

प० । स्त्रीबालोन्मत्तवृद्धानां दरिद्राणां च रोगिणां शिफाविदलरज्ज्वाद्यैः विदध्यात् नृपतिः दमम् ॥

यो० । नृपतिः स्त्रीबालोन्मत्तवृद्धानां--दरिद्राणां--चपुनः रोगिणां शिफाविदलरज्ज्वाद्यैः दमं(दंडं) विदध्यात् (कुर्यात्)॥

भा० । ता० । स्त्री--बालक--उन्मत्त--वृद्ध--दरिद्री--और रोगी इन सबको राजा शिफवासकादल रज्जु आदि से दंडदे क्योंकि इनसे दंड देनेमें अल्पपीडा होतीहै २३० ॥

येनियुक्तास्तुकार्येषुहन्युःकार्याणिकार्यिणाम् । धनोष्मणापच्यमानास्तान्निःस्वान्कारयेन्नृपः २३१

प० । ये नियुक्ताः तु कार्येषु हन्युः कार्याणि कार्यिणाम् धनोष्मणा पच्यमानाः तान् निःस्वान् कारयेत् नृपः ॥

यो० । धनोष्मणा पच्यमानाः कार्येषु नियुक्ताः ये राजपुरुषाः कार्यिणां कार्याणि हन्युः तान् नृपः निःस्वान् कारयेत्॥

भा० । ता० । धनकी उष्मा तेज वा बलसे राजकार्यमें नियुक्त जो पुरुष अर्थात् जिन विवेकहीन पुरुषोंको राजपदवी मिलगईहो वे कार्यवालोंके कार्योंको नष्टकरदें तो राजा उनको धनहीन करदे-अर्थात् उनके सर्वस्वको छीनले २३१ ॥

कूटशासनकर्तॄंश्चप्रकृतीनांचदूषकान् । स्त्रीबालब्राह्मणघ्नांश्चहन्याद्द्विट्सेविनस्तथा २३२ ॥

प० । कूटशासनकर्तॄन् च प्रकृतीनां च दूषकान् स्त्रीबालब्राह्मणघ्नान् च हन्यात् द्विट्सेविनः तथा॥

यो० । कूटशासनकर्तॄन्--प्रकृतीनांदूषकान् चपुनः स्त्रीबालब्राह्मणघ्नान् तथा द्विट्सेविनः राजा हन्यात् ॥

भा० । ता० । राजाकी आज्ञाके झूठेलेखक और अमात्यआदि मंत्रियोंके भेदक (फोड़नेवाले) और स्त्री बालक और ब्राह्मण इनके घातक (हिंसक) और राज शत्रुओंके सेवक इनसबको राजा मारदे २३२ ॥

यत्तीरितंचानुशिष्टंयत्रक्वचनयद्भवेत् । कृतंतद्धर्मतोविद्यान्नतद्भूयोनिवर्त्तयेत् २३३ ॥

प० । यत् तीरितं च अनुशिष्टं यत्र क्वचन यत् भवेत् कृतं तत् धर्मतः विद्यात् न तत् भूयः निवर्त्तयेत्॥

यो० । यत्कचन यत् तीरितं चपुनः अनुशिष्टंभवेत् तत् धर्मतः कृतंविद्यात् भूयः राजा तत् न निवर्त्तयेत् ॥

भा० । जिसकिसी व्यवहारमें जो कार्य धर्मके अनुसार समाप्त करदियाहो अथवा किसीको दंड देदियाहोय तो उसको कियाहुआही समझै पुनः (दुबारा) उसको न करै ॥

ता० । जिसकिसी ऋण आदानआदि व्यवहारमें जो कार्य धर्मके अनुसार शास्त्रकी व्यवस्थासे समाप्तकरदियाहोय उसको और किसी दण्डदेने योग्य पुरुषको यथोचित दंडदेदियाहोय तो उसकार्यको राजा कृत (कियाहुआ) समझै विना किसी प्रबल कारणके उसको फिर निवृत्त न करै अर्थात् उसव्यवहारको द्वितीयवार न करै–और यदि प्रबलकारणहोय तो उसको लौटायदे २३३ ॥

अमात्याःप्राड्विवाकोवायत्कुर्युःकार्यमन्यथा।तत्स्वयंनृपतिःकुर्यात्तान्सहस्रंचदंडयेत् २३४

प० । अमात्याः प्राड्विवाकः वा यत् कुर्युः कार्यं अन्यथा तत् स्वयं नृपतिः कुर्यात् तान् सहस्रं च दण्डयेत् ॥

यो० । अमात्याः(मंत्रिणः) वा प्राड्विवाकः यत्कार्यं अन्यथाकुर्युः तत्कार्यं नृपतिः स्वयंकुर्यात् चपुनः तान् सहस्रं दण्डयेत् ॥

भा० । ता० । मंत्री और प्राड्विवाक (वकील) जिसकार्यको अन्यथाकरदें अर्थात् शास्त्रके अनुसार न करैं उसकार्यको राजा स्वयंकरै और उनको सहस्रपण दण्डदे २३४ ॥

ब्रह्महाचसुरापश्चस्तेयीचगुरुतल्पगः। एतेसर्वेपृथक्ज्ञेयामहापातकिनोनराः २३५॥

प० । ब्रह्महा च सुरापः च स्तेयी च गुरुतल्पगः एते सर्वे पृथक् ज्ञेयाः महापातकिनः नराः ॥

यो० । ब्रह्महा सुरापः स्तेयी चपुनः गुरुतल्पगः एतेसर्वेनराः पृथक् पातकिनः ज्ञेयाः ॥

भा० । ता० । ब्रह्महत्यारा और पैष्टि मदिराका पीनेवाला द्विजाति और पैष्टि–माध्वी–गौडी इन तीनोंप्रकारकी मदिराका और ब्राह्मणके सुवर्णका चौर और गुरुपत्नीके संगगमनका कर्त्ता ये सम्पूर्ण मनुष्य महापातकी जानने २३५ ॥

चतुर्णामपिचैतेषांप्रायश्चित्तमकुर्वताम्।शारीरंधनसंयुक्तंदण्डंधर्म्यंप्रकल्पयेत् २३६

प० । चतुर्णां अपि च एतेषां प्रायश्चित्तं अकुर्वतां शारीरं धनसंयुक्तं दण्डं धर्म्यं प्रकल्पयेत् ॥

यो० । प्रायश्चित्तं अकुर्वतां चतुर्णां अपि एतेषां धनसंयुक्तं धर्म्यं शारीरं दंडं प्रकल्पयेत् (कुर्यात्) ॥

भा० । ता० । प्रायश्चित्तको न करतेहुये इनचारों (ब्रह्महाआदि) को धर्मके अनुसार शरीरके विषय दंडदे–अर्थात् उक्त अपराध जिससे प्रतीतहोय ऐसा शरीरमें चिह्न करदे कि २३६ ॥

गुरुतल्पेभगःकार्यःसुरापानेसुराध्वजः। स्तेयेचश्वपदंकार्यंब्रह्महण्यशिराःपुमान् २३७

प० । गुरुतल्पे भगः कार्यः सुरापाने सुराध्वजः स्तेये च श्वपदं कार्यं ब्रह्महणि अशिराः पुमान् ॥

यो० । गुरुतल्पेसति–भगः–सुरापानेसति सुराध्वजः–कार्यः स्तेयेसति श्वपदं कार्यं ब्रह्महणिसति पुमान् अशिराः कर्त्तव्यः ॥

भा० । ता० । आगे मनुजी मस्तकपर चिह्नका निषेध कहेंगे इससे मस्तकही चिह्नका स्थान जानना जो मनुष्य गुरुकी पत्नीकेसंग गमनकरै उसके मस्तकपर लोहेको तपाकर भगकाचिह्न राजा करिदे और जो मदिराका पानकरै उसके मस्तकपर सुराध्वजका चिह्नकरै और जो ब्राह्मणके सुवर्ण

को चुरावे उसके मस्तकपर श्वानके चरणका चिह्नकरै और जो ब्राह्मणकी हत्याकरै उसको शिरसे हीनकरै अर्थात् उसके शिरको छेदनकरदे २३७ ॥

असंभोज्याह्यसंयाज्याअसंपाठ्याविवाहिनः।चरेयुःपृथिवींदीनाःसर्वधर्मबहिष्कृताः २३८

प० । असंभोज्याः हि असंयाज्याः असंपाठ्याविवाहिनः चरेयुः पृथिवीं दीनाः सर्वधर्मबहिष्कृताः ॥

यो० । हि (निश्चयेन) असंभोज्याः असंयाज्याः असंपाठ्याविवाहिनः दीनाः सर्वधर्मबहिष्कृताःएतेपृथिवींचरेयुः ॥

भा० । ता० । एकपंक्तिमें अन्नआदिके भोजनकराने अयोग्य और यज्ञकराने अयोग्य और पढ़ाने और कन्यादानके सम्बन्ध करनेके अयोग्य और सम्पूर्ण धर्मोंसे वर्जित ये पूर्वोक्त चारों दीनहुये पृथिवीपर विचरैं २३८ ॥

ज्ञातिसम्बन्धिभिस्त्वेतेत्यक्तव्याःकृतलक्षणाः।निर्दयानिर्नमस्कारास्तन्मनोरनुशासनम् २३९

प० । ज्ञातिसम्बन्धिभिः तु एते त्यक्तव्याः कृतलक्षणाः निर्दयाः निर्नमस्काराः तत् मनोः अनुशासनम् ॥

यो० । कृतलक्षणाः निर्दयाः निर्नमस्काराः एते चत्वारः ज्ञातिसम्बन्धिभिः त्यक्तव्याः तत्मनोः अनुशासनं (आज्ञा) अस्ति ॥

भा० । ता० । कियाहै चिह्नजिनके और दयाकरनेके और नमस्कारकरनेअयोग्य इनचारोंको ज्ञाति औ सम्बन्धि त्यागदें यही मनुकी आज्ञाहै २३९ ॥

प्रायश्चित्तंतुकुर्वाणाःसर्ववर्णायथोदितम् ।नांक्याराज्ञाललाटेस्युर्दाप्यास्तूत्तमसाहसम् २४०

प० । प्रायश्चित्तं तु कुर्वाणाः सर्ववर्णाः यथोदितं न अंक्याः राज्ञा ललाटे स्युः दाप्याः तु उत्तमसाहसम्

यो० । यथोदितं प्रायश्चित्तं कुर्वाणाः सर्ववर्णाः राज्ञा ललाटे अंक्याःनस्युः किंतु उत्तमसाहसं दाप्याः(दंडनीयाः) ॥

भा० । ता० । शास्त्रोक्त प्रायश्चित्त करनेवाले सम्पूर्णवर्णोंके मस्तकपर राजा चिह्न न करै किंतु पूर्वोक्त उत्तम साहस दंडदे २४० ॥

आगस्सुब्राह्मणस्यैवकार्योमध्यमसाहसः।विवास्योवाभवेद्राष्ट्रात्सद्रव्यःसपरिच्छदः २४१

प० । आगस्सु ब्राह्मणस्य एवं कार्यः मध्यमसाहसः विवास्यः वा भवेत् राष्ट्रात् सद्रव्यः सपरिच्छदः ॥

यो० । अकामतः आगस्सु (अपराधेषुसत्सु) ब्राह्मणस्य एव मध्यमसाहसःदण्डःकार्यः वा सद्रव्यः सपरिच्छदः ब्राह्मणः राष्ट्रात् विवास्यः (निष्कास्यः) ॥

भा० । ता० । अज्ञानसे पूर्वोक्त अपराध होनेपर ब्राह्मणकोही मध्यम साहसदण्डदे और यदि जानकर पूर्वोक्त अपराध ब्राह्मणकरै तो धनधान्य सामग्री सहित ब्राह्मणको राजा अपने देशसे बाहिर निकालदे—इससे पूर्वोक्त उत्तम साहसदण्ड निर्गुण ब्राह्मणको समझना २४१ ॥

इतरेकृतवन्तस्तुपापान्येतान्यकामतः।सर्वस्वहारमर्हन्तिकामतस्तुप्रवासनम् २४२ ॥

प० । इतरे कृतवंतः तु पापानि एतानि अकामतः सर्वस्वहारं अर्हंति कामतः तु प्रवासनम् ॥

यो० । अकामतः एतानि पापानि कृतवंतः इतरे (क्षत्रियादयः) सर्वस्वहारं अर्हंति कामतः कृतवंतस्तु प्रवासनं (वधं) अर्हंति ॥

भा० । अज्ञानसे इन पापोंको करतेहुये क्षत्री आदि तीनों वर्णोंका सर्वस्वहरण राजा करै और यदि जानकर पूर्वोक्त अपराधकरें तो वधके योग्य होतेहैं ॥

ता० । अज्ञानसे इनपापोंको करतेहुये क्षत्रीआदि इतरवर्ण सर्वस्वहरणके योग्यहोते हैं अर्थात् राजा उनके सर्वस्वको छीनले और यदि जानकर उक्त पापोंकोकरें तो प्रवासन(वध)के योग्य होतेहैं यह सर्वस्वहरणकादण्ड और पूर्वोक्तउत्तम साहसकादण्ड ब्राह्मणकीजीविका और गुणीऔरनिर्गुणीकी अपेक्षाकी व्यवस्थासे देना और इसश्लोकमें प्रवासन शब्दसे इसअभिधानके अनुसार वधकाग्रहणहै कि प्रवासन परासन–निषूदन–निसंघन–ये भी वधके पर्याय शब्द हैं २४२ ॥

नाददीतनृपःसाधुर्महापातकिनोधनम्। आददानस्तुतल्लोभात्तेनदोषेणलिप्यते२४३॥

प० । न आददीत नृपः साधुः महापातकिनः धनं आददानः तु तत् लोभात् तेन दोषेण लिप्यते ॥

यो० । साधुः नृपः महापातकिनः धनं न आददीत लोभात् तत् धनं आददानः राजा तेन दोषेण लिप्यते ॥

भा० । ता० । धार्मिक राजा महापातकी के धनको ग्रहण न करै जो राजा लोभसे उक्त धनको ग्रहणकरताहै वह महापातक दोषसे लिप्त होताहै अर्थात् महापातकी होताहै किंतु २४३ ॥

अप्सुप्रवेश्यतंदण्डंवरुणायोपपादयेत्। श्रुतवृत्तोपपन्नेवाब्राह्मणेप्रतिपादयेत् २४४ ॥

प० । अप्सु प्रवेश्य तं दंडं वरुणाय उपपादयेत् श्रुतवृत्तोपपन्ने वा ब्राह्मणे प्रतिपादयेत् ॥

यो० । राजा तं दंडं अप्सु प्रवेश्य वरुणाय उपपादयेत् वा श्रुतवृत्तोपपन्ने ब्राह्मणे प्रतिपादयेत् ॥

भा० । ता० । महापातकी के उस दंडके धनको नदी आदि के जल में फेककर वरुणको देदे–अथवा वेद–और सदाचारसे युक्त ब्राह्मणको देदे २४४ ॥

ईशोदण्डस्यवरुणोराज्ञांदण्डधरोहिसः। ईशःसर्वस्यजगतोब्राह्मणोवेदपारगः २४५ ॥

प० । ईशः दंडस्य वरुणः राज्ञां दंडधरः हि सः ईशः सर्वस्य जगतः ब्राह्मणः वेदपारगः ॥

यो० । हि (यतः) सः वरुणः दंडस्य ईशः राज्ञां दंडधरः (अस्ति) वेदपारगः ब्राह्मणः सर्वस्य जगतः ईशः (अस्ति) अतः तौ उक्त दंडधनं अर्हतः ॥

भा० । ता० । जिससे वह राजा वरुण दंडके धनका स्वामी और राजाओं को दंड देनेवाला है–और वेदका पारगामी ब्राह्मण संपूर्ण जगत्का स्वामी होताहै इससे पूर्वोक्त महापातकी के दंड धन को वरुण और वेदपाठी ब्राह्मणही लेने योग्य होतेहैं २४५ ॥

यत्रवर्जयतेराजापापकृद्भ्योधनागमम्। तत्रकालेनजायन्तेमानवादीर्घजीविनः २४६
निष्पद्यन्तेचसस्यानियथोप्तानिविशांपृथक्। बालाश्चनप्रमीयन्तेविकृतंनचजायते २४७

प० । यत्र वर्जयते राजा पापकृद्भ्यः धनागमं तत्र कालेन जायंते मानवाः दीर्घजीविनः ॥

प० । निष्पद्यंते च सस्यानि यथोप्तानि विशां पृथक् बालाः च न प्रमीयंते विकृतं न च जायते ॥

यो० । राजा यत्र पापकृद्भ्यः धनागमं वर्जयते तत्र मानवाः कालेन दीर्घजीविनः जायंते विशां सस्यानि यथोप्तानि पृथक् निष्पद्यंते–चपुनः बालाः न प्रमीयंते चपुनः विकृतं न जायते ॥

भा० । ता० । जिस देशमें पूर्वोक्त महापातकी के धनको राजा वर्जता है अर्थात् ग्रहण नहीं करता–उस देशमें मनुष्य पूर्णकालमें पैदा होतेहैं और दीर्घजीवी होतेहैं–और वैश्योंने गोधूम आदि अन्नोंको जिसप्रकार बोयाहो उसीप्रकार खेतों में पृथक् २ उत्पन्न होतेहैं और बालकोंकी मृत्यु नहीं

होती और कोई वस्तु विकृत पैदा नहीं होती अर्थात् कुछ की कुछ नहीं जन्मती जैसा कि पंगु कुब्ज आदि मनुष्यों का जन्म २४६ । २४७ ॥

ब्राह्मणान्बाधमानंतुकामादवरवर्णजम् । हन्याच्चित्रैर्वधोपायैरुद्वेजनकरैर्नृपः २४८ ॥

प० । ब्राह्मणान् बाधमानं तु कामात् अवरवर्णजं हन्यात् चित्रैः वधोपायैः उद्वेजनकरैः नृपः ॥

यो० । नृपः कामात् ब्राह्मणान् बाधमानं अवरवर्णजं (शूद्रं) उद्वेजनकरैः चित्रैः वधोपायैः हन्यात् ॥

भा० । ता० । जान बूझकर ब्राह्मणोंको शरीर पीडा धनग्रहण आदि से दुःख देतेहुये शूद्रको उद्वेग करनेवाले और अनेक प्रकार के मारनेके उपायों से राजा वधकरै अर्थात् छेदन आदि से नष्ट करदे २४८ ॥

यावानवध्यस्यवधेतावान्वध्यस्यमोक्षणे । अधर्मोनृपतेर्दृष्टोधर्मस्तुविनियच्छतः २४९ ॥

प० । यावान् अवध्यस्य वधे तावान् वध्यस्य मोक्षणे अधर्मः नृपतेः दृष्टः धर्मः तु विनियच्छतः ॥

यो० । अवध्यस्य वधे यावान् अधर्मः (भवति) वध्यस्य मोक्षणे तावान् अधर्मः नृपतेः दृष्टः विनियच्छतः तु नृपतेः धर्मः दृष्टः ॥

भा० । ता० । मारने के अयोग्य ब्राह्मण आदि के वधमें जितना पाप राजाको होताहै उतनाही अधर्म मारने के योग्य शूद्र आदि के छोडनेमें होताहै और शास्त्रके अनुसार दंड देनेवाले राजाको तो धर्म होताहै तिससे राजा दंड देने योग्यको अवश्य दंडदे २४९ ॥

उदितोऽयंविस्तरशोमिथोविवदमानयोः । अष्टादशसुमार्गेषुव्यवहारस्यनिर्णयः २५० ॥

प० । उदितः अयं विस्तरशः मिथः विवदमानयोः अष्टादशसु मार्गेषु व्यवहारस्य निर्णयः ॥

यो० । अष्टादशसु मार्गेषु मिथः विवदमानयोः (पुरुषयोः) अयं व्यवहारस्यनिर्णयः विस्तरशः मया उदितः कथितः ॥

भा० । ता० । पूर्वोक्त ऋणादान आदि अष्टादश (अठारह) मार्गोंमें परस्पर विवादकरतेहुये मनुष्योंके व्यवहार का यह निर्णय विस्तारसे हमने वर्णन किया २५० ॥

एवंधर्म्याणिकार्याणिसम्यक्कुर्वन्महीपतिः । देशानलब्धांल्लिप्सेतलब्धांश्चपरिपालयेत् २५१ ॥

प० । एवं धर्म्याणि कार्याणि सम्यक् कुर्वन् महीपतिः देशान् अलब्धान् लिप्सेत लब्धान् च परिपालयेत् ॥

यो० । धर्म्याणि कार्याणि एवं कुर्वन् महीपतिः अलब्धान् देशान् लिप्सेत चपुनः लब्धान् परिपालयेत् (रक्षेत्) ॥

भा० । ता० । इस पूर्वोक्त प्रकार से धर्म के अनुसार कार्यों को भलीप्रकार करताहुआ राजा जो देश अलब्धहों अर्थात् अपने आधीन न हुये हों उनको तो स्वाधीन करने की इच्छाकरै—और जो अपने आधीनहों उनकी पालनाकरै २५१ ॥

सम्यङ्निविष्टदेशस्तुकृतदुर्गश्चशास्त्रतः । कण्टकोद्धरणेनित्यमातिष्ठेद्यत्नमुत्तमम् २५२

प० । सम्यङ्निविष्टदेशः तु कृतदुर्गः च शास्त्रतः कंटकोद्धरणे नित्यं आतिष्ठेत् यत्नं उत्तमम् ॥

यो० । सम्यङ्निविष्टदेशः शास्त्रतः कृतदुर्गः राजा कंटकोद्धरणे नित्यं उत्तमं यत्नं आतिष्ठेत् (कुर्यात्) ॥

भा० । ता० । पूर्वोक्त (जांगलसस्यसंपन्न) देशमें स्थित और शास्त्रके अनुसार दुर्ग (किला) बनाकर कंटकों (चौर साहसिकआदि) के उद्धार(नाश)करनेमें प्रतिदिन उत्तम प्रयत्नकरै २५२ ॥

रक्षणादार्यवृत्तानांकण्टकानांचशोधनात् । नरेन्द्रास्त्रिदिवंयान्तिप्रजापालनतत्पराः २५३ ॥

प० । रक्षणात् आर्यवृत्तानां कंटकानां च शोधनात् नरेंद्राः त्रिदिवं यांति प्रजापालनतत्पराः ॥

यो० । प्रजापालनतत्पराः नरेन्द्राः आर्य वृत्तानां रक्षणात् चपुनः कंटकानां शोधनात् त्रिदिवं (स्वर्ग) यांति (प्राप्नुवन्ति) ॥

भा० । ता० । प्रजाकी पालनामें तत्पर जो राजा होतेहैं वे आर्यवृत्तों (साधुआचरण) की रक्षा और कंटकोंके शोधन (नाश) करनेसे स्वर्गमें जाते हैं–तिससे कंटकों के उद्धार करनेमें अवश्य यत्नकरै २५३ ॥

अशासंस्तस्करान्यस्तुबलिंगृह्णातिपार्थिवः । तस्यप्रक्षुभ्यतेराष्ट्रंस्वर्गाच्चपरिहीयते २५४ ॥

प० अशासन् तस्करान् यः तु बलिं गृह्णाति पार्थिवः तस्य प्रक्षुभ्यते राष्ट्रं स्वर्गात् च परिहीयते ॥

यो० । यः पार्थिवः तस्करान् अशासन् सन् बलिं गृह्णाति–तस्य राष्ट्रं प्रक्षुभ्यते चपुनः सः राजा स्वर्गात् परिहीयते (स्वर्गनगच्छति) ॥

भा० । ता० । जो राजा–तस्करोंका निराकरण न करके षड् (छठा) भाग आदि बलिको ग्रहण करताहै उसका देश क्षोभकरताहै अर्थात् बिगड़जाताहै और वहराजा स्वर्गमें भी नहींजाताहै अर्थात् इसपापसे उसके अन्यकर्मोंसे संचित भी स्वर्ग नष्ट होजाताहै २५४ ॥

निर्भयंतुभवेद्यस्यराष्ट्रंबाहुबलाश्रितम् । तस्यतद्वर्द्धतेनित्यंसिच्यमानइवद्रुमः २५५ ॥

प० । निर्भयं तु भवेत् यस्य राष्ट्रं बाहुबलाश्रितम् तस्य तत् वर्द्धते नित्यं सिच्यमानः इव द्रुमः ॥

यो० । यस्य बाहुबलाश्रितं राष्ट्रं निर्भयं भवेत् तस्य तत् राष्ट्रं सिच्यमानः द्रुमः इव नित्यं वर्द्धते ॥

भा० । ता० जिस राजाकी भुजा बलके आश्रयसे राष्ट्र (देश) निर्भय होताहै उसराजाका वह देश इसप्रकार बढ़ताहै जैसा सींचनेसे वृक्ष बढ़ताहै २५५ ॥

द्विविधांस्तस्करान्विद्यात्परद्रव्यापहारकान् । प्रकाशांश्चाप्रकाशांश्चचारचक्षुर्महीपतिः २५६

प० । द्विविधान् तस्करान् विद्यात् परद्रव्यापहारकान् प्रकाशान् च अप्रकाशान् च चारचक्षुः महीपतिः ॥

यो० । चारचक्षुः महीपतिः प्रकाशान् चपुनः अप्रकाशान् परद्रव्यापहारकान् द्विविधान् तस्करान् विद्यात् (जानीयात्) ॥

भा० । ता० । दूतही हैं नेत्र जिसके ऐसा राजा परद्रव्यके चुराने वाले तस्करोंको प्रकाश और अप्रकाश (प्रकट अप्रकट) के भेदसे दोप्रकार के जाने २५६ ॥

प्रकाशवञ्चकास्तेषांनानापण्योपजीविनः । प्रच्छन्नवञ्चकास्त्वेतेयेस्तेनाटविकादयः २५७

प० । प्रकाशवंचकाः तेषां नानापण्योपजीविनः प्रच्छन्नवंचकाः तु एते ये स्तेनाटविकादयः ॥

यो० । तेषां (तस्कराणां) मध्ये नानापण्योपजीविनः प्रकाशवंचकाः तु ये स्तेनाटविकादयः एते प्रच्छन्नवंचकाःसंति ॥

भा० । अनेक प्रकार की बेचने योग्य वस्तुओंको बेचकर जो जीतेहैं वे प्रत्यक्ष वंचक और चोर और वनमें वसनेवाले (भील आदि) गुप्त वंचक होतेहैं ॥

ता० । तिन चोरोंके मध्यमें जो नानाप्रकारके पण्य (बेचने योग्य हिरण्यादि) से जीविकाकरते हैं वे प्रत्यक्ष वंचक (ठगहैं) अर्थात् पराये धनको तुला आदि के छलसे ग्रहणकरनेवाले प्रकट चोर

होतेहैं और स्तेन जो अच्छे वेष से अपने स्वरूपको छिपाते हैं-और गुप्तहोकर वन आदि में रहकर धनियोंके धनको ग्रहण करते हैं वे प्रच्छन्न (गुप्त) वंचक होतेहैं २५७ ॥

उत्कोचकाश्चौपधिकावञ्चकाःकितवास्तथा। मंगलादेशवृत्ताश्चभद्राश्चेक्षणिकैःसह २५८
असम्यक्कारिणश्चैवमहामात्राश्चिकित्सकाः।शिल्पोपचारयुक्ताश्चनिपुणाःपण्ययोषितः २५९
एवमादीन्विजानीयात्प्रकाशाँल्लोककण्टकान्।निगूढचारिणश्चान्याननार्यानार्यलिंगिनः २६०

प० । उत्कोचकाः चँ औपधिकाः वंचकाः कितवाः तथा मंगलादेशवृत्ताः चँ भद्राः चँ ईक्षणिकैः सह ॥

प० । असम्यक्कारिणः चँ एवँ महामात्राः चिकित्सकाः शिल्पोपचारयुक्ताः चँ निपुणाः पण्ययोषितः ॥

प० । एवमादीन् विजानीयात् प्रकाशान् लोककंटकान् निगूढचारिणः चँ अन्यान् अनार्यान् आर्यलिंगिनः ॥

यो० । उत्कोचकाः चपुनः औपधिकाः-वंचकाः-तथाकितवाः चपुनः मंगलादेशवृत्ताः चपुनः ईक्षणिकैः सह भद्राः चपुनः असम्यक्कारिणः महामात्राश्चिकित्सकाः चपुनः शिल्पोपचारयुक्ताः निपुणाः पण्ययोषितः एवमादीन्-चपुनः आर्यलिङ्गिनः अनार्यान् निगूढचारिणः प्रकाशान् लोककंटकान् राजा दूतैर्विजानीयात् ॥

भा० । उत्कोचके ग्राहक भयदिखाकर धनलेनेवाले-वंचक-(सुनारआदि) द्यूतखेलनेवाले-शास्त्रहीन ज्योतिषी आकारमें श्रेष्ठ अंतःकरणमें मलीन हाथकी रेखाओंके देखनेवाले-अनुचित शिक्षादेनेवाले पीलवान् अनुचित करनेवाले वैद्य शिल्पविद्यासे जीनेवाले और चतुर वेश्या इत्यादिकोंको और ब्राह्मण आदि के वेषको धारकर गुप्त विचरनेवाले शूद्र आदिकोंको प्रत्यक्ष जगत् के कंटक दूतोंके द्वारा राजा जाने ॥

ता० । उत्कोच (रिशवत) के लेनेवाले अर्थात् जो कार्यवालों से धनको लेकर अनुचित कार्यको करतेहैं-और औपधिक जो कार्यवाले को भयदिखाकर धनको लेतेहैं और वंचक जो स्वच्छ सुवर्ण आदि द्रव्यको लेकर अपद्रव्यके प्रक्षेपसे (खोट मिलाकर) ठगतेहैं-और कितव जो पूर्वोक्त द्यूत वा समाह्वयसे खेलते हैं-और मंगलादेशवृत्त-जो किसी को धन पुत्रलाभ आदि मंगलको वृथाबताकर दूसरेके धनको ठगतेहैं-और भद्र-जिनका आकार शुद्धदीखे और यथार्थ में होयँ पापी और ईक्षणिक जो हाथकी रेखाको देखकर शुभ वा अशुभ फल बताने से जीवतेहैं-और असम्यक्(अयथार्थ)शिक्षा देनेवाले महामात्र अर्थात् हस्तियोंको अनुचित शिक्षा देनेवाले पीलवान् और असम्यक् करनेवाले चिकित्सक (वैद्य) और शिल्पोपचारयुक्त अर्थात् चित्रलेख आदि उपाय से जीनेवाले वे भी निंदित चित्रामकी वृथा प्रशंसासे दूसरे के धनको छीनते हैं-और निपुण पण्यस्त्री अर्थात् परपुरुष को वश करने में चतुर वेश्या इत्यादिकों को और ब्राह्मण आदि का चिह्न धारणकरके गुप्त विचरनेवाले शूद्र आदि अन्यों को भी राजा प्रत्यक्ष जगत् के कंटक जाने २५८ । २५९ । २६० ॥

तान्विदित्वासुचरितैर्गूढैस्तत्कर्मकारिभिः।चारैश्चानेकसंस्थानैःप्रोत्साद्यवशमानयेत् २६१

प० । तान् विदित्वा सुचरितैः गूढैः तत्कर्मकारिभिः चारैः चँ अनेकसंस्थानैः प्रोत्साद्य वशं आनयेत् ॥

यो० । तत्कर्मकारिभिः गूढैः सुचरितैः चपुनः अनेकसंस्थानैः चारैः तान् विदित्वा प्रोत्साद्य राजा वशं आनयेत् ॥

भा० । ता० । उस कर्म केही करनेवाले गुप्त उत्तम चरित्रवाले सभासदोंसे और अनेकस्थानोंमें टिकेहुये चारोंसे उन पूर्वोक्त वंचकोंको जानकर और उचित ताडना देकर अपने वशमें करै २६१ ॥

तेषांदोषानभिख्याप्यस्वेस्वेकर्मणितत्त्वतः । कुर्वीतशासनंराजासम्यक्सारापराधतः २६२

प० । तेषां दोषान् अभिख्याप्य स्वे स्वे कर्मणि तत्त्वतः कुर्वीत शासनं राजा सम्यक् सारापराधतः ॥

यो० । राजा स्वे स्वे कर्मणि तत्त्वतः तेषां दोषान् अभिख्याप्य (प्रकटय्य) सारापराधतः सम्यक् शासनं कुर्वीत ॥

भा० । ता० । उन कंटकों के अपने २ कर्म में अर्थात् जो जिसने कर्म किया होय उसीमें अपराधोंको जगत्मेंविदितकरिकै उनके देहकेसामर्थ्य और अपराधोंकेअनुसार भलीप्रकार दंडकोदें २६२

नहिदण्डादृतेशक्यःकर्तुंपापविनिग्रहः । स्तेनानांपापबुद्धीनांनिभृतंचरतांक्षितौ २६३ ॥

प० । न हि दंडात् ऋते शक्यः कर्तुं पापविनिग्रहः स्तेनानां पापबुद्धीनां निभृतं चरतां क्षितौ ॥

यो० । पापबुद्धीनां निभृतं क्षितौ चरतां स्तेनानां पापविनिग्रहः दंडात् ऋते कर्तुं न हि शक्यः ॥

भा० । ता० । पाप के आचरण में है बुद्धि जिनकी और पृथ्वी पर उत्तम वेषधारों० विचरतेहुये चोरोंके पाप का विनिग्रह अर्थात् चोरीकरनेका नियम करना दंडके विना अशक्यहै अर्थात् दंडसेही चोर चोरीको छोड़सक्ता है अन्यथा नहीं २६३ ॥

सभाप्रपापूपशालावेश्ममद्यान्नविक्रयाः । चतुष्पथाश्चैत्यवृक्षाःसमाजाःप्रेक्षणानिच२६४
जीर्णोद्यानान्यरण्यानिकारुकावेशनानिच । शून्यानिचाप्यगाराणिवनान्युपवनानिच २६५॥
एवंविधान्नृपोदेशान्गुल्मैःस्थावरजंगमैः । तस्करप्रतिषेधार्थंचारैश्चाप्यनुचारयेत्२६६

प० । सभाप्रपापूपशालावेश्ममद्यान्नविक्रयाः चतुष्पथाः चैत्यवृक्षाः समाजाः प्रेक्षणानि च ॥

प० । जीर्णोद्यानानि अरण्यानि कारुकावेशनानि च शून्यानि च अपि अगाराणि वनानि उपवनानि च ॥

प० । एवंविधान् नृपः देशान् गुल्मैः स्थावरजंगमैः तस्करप्रतिषेधार्थं चारैः च अपि अनुचारयेत्॥

यो० । सभाप्रपापूपशालावेश्ममद्यान्नविक्रयाः चतुष्पथाः चैत्यवृक्षाः समाजाः चपुनः प्रेक्षणानि जीर्णोद्यानानि अरण्यानि कारुकावेशनानि चपुनः शून्यानि अगाराणि वनानि चपुनः उपवनानि एवंविधान् देशान् नृपः स्थावरजंगमैः दूतैः गुल्मैः वा चपुनः चारैः तस्करप्रतिषेधार्थं अनुचारयेत् ॥

भा० । ता० । तस्करोंके निषेध (नाश) के लिये राजा इसप्रकारके देशोंमें स्थावर जंगम अर्थात् एकजगह रहनेवाले वा विचरनेवाले अपने दूतोंको अथवा चारोंकोभेजे कि सभा (ग्राम वा नगरमें जनोंकी बैठक-प्रपा-(प्याऊ) अपूपशाला (जहां मालपूये बिकतेहोयँ) और वेश्याकागृह मदिरा और अन्नके विक्रयका स्थान-चतुष्पथ (चौराहा) और विख्यात वृक्षोंकेमूल और जनसमूहका स्थान और प्रेक्षण (मेले) और जीर्णउद्यान (पुरानीवाटिका) बड़े२ वन और शिल्पकेगृह (कारीगरोंकेस्थान) और मनुष्यआदिकोंसे शून्यघर और वन और उपवनआदिमें २६४ ।२६५ । २६६ ॥

तत्सहायैरनुगतैर्नानाकर्मप्रवेदिभिः । विद्यादुत्सादयेच्चैवनिपुणैःपूर्वतस्करैः २६७ ॥

प० । तत्सहायैः अनुगतैः नानाकर्मप्रवेदिभिः विद्यात् उत्सादयेत् च एव निपुणैः पूर्वतस्करैः ॥

यो० । तत्सहायैः अनुगतैः नानाकर्मप्रवेदिभिः निपुणैः पूर्वतस्करैः तान् तस्करान् विद्यात् चपुनः उत्सादयेत्(नाशयेत्) ॥

भा० । ता० । उन तस्करोंकी सहायताको प्राप्तहुये और उनके चरित्रोंके अनुवर्ती और सन्धिच्छेद आदिनानाकर्मोंके कर्तव्योंके ज्ञाता जो पुरानेचोर उनसे अर्थात् उनकोही चारबनाकर नवीनतस्करों को राजा जानले और फिर नष्टकरदे २६७ ॥

भक्ष्यभोज्योपदेशैश्चब्राह्मणानांचदर्शनैः।शौर्यकर्मापदेशैश्चकुर्युस्तेषांसमागमम् २६८

प० । भक्ष्यभोज्योपदेशैः च ब्राह्मणानां च दर्शनैः शौर्यकर्मापदेशैः च कुर्युः तेषां समागमम् ॥

यो० । ते (पूर्वचौराः) भक्ष्यभोज्योपदेशैः चपुनः ब्राह्मणानांदर्शनैः चपुनः शौर्यकर्मोपदेशैः तेषां (नवीनचौराणाम्) राजपुरुषैः सह-समागमं कुर्युः ॥

भा० । भक्ष्य भोज्यकेमिससे-वा ज्योतिषीआदि ब्राह्मणोंके दर्शन-युद्धभूमि आदिके दर्शनके मिससे उन नवीनचोरोंको वे पुरानेचोर दंडदेनेवाले राजपुरुषोंका समागम कराकर पकड़वायदें ॥

ता० । दूत वा चारबनेहुये वे पूर्व चोर उननये चोरोंको इसप्रकार राजाके दण्डधारी पुरुषोंके संग समागम कराकर पकड़वायदें कि हमारे घरचलो वहां सबमिलकर मोदक और पायसआदि भक्षण करावेंगे इसप्रकार भक्ष्य भोज्यके मिससे-और हमारे देशमेंचलो वहां एकऐसा ब्राह्मणहै वह ऐसा मुहूर्त वा यत्न बताता है जिससे चोरोंके वांछितअर्थकी सिद्धि होती है इसप्रकार ब्राह्मणों के दर्शनसे-और चलो एकमनुष्य ऐसा बलवानहै अनेक मनुष्योंके संग एकाकी युद्धकरता है उसका दर्शन करेंगे-इस शूरवीरता कर्तव्यके बहानेसे-उनचोरोंको पकड़वायदें २६८ ॥

येतत्रनोपसर्पेयुर्मूलप्रणिहिताश्चये।तान्प्रसह्यनृपोहन्यात्समित्रज्ञातिबान्धवान् २६९

प० ये तत्र न उपसर्पेयुः मूलप्रणिहिताः च ये तान् प्रसह्य नृपः हन्यात् समित्रज्ञातिबांधवान् ॥

यो० । ये नवीनचौराः तत्र न उपसर्पेयुः चपुनः येमूलप्रणिहिताः संति-समित्रज्ञातिबांधवान् तान् नृपः प्रसह्य हन्यात्॥

भा० । ता० । जो नवीन पकड़नेकी शंकासे पूर्वोक्त स्थानोंमें न जायँ-अथवा जो राजनियुक्त पुराण चोरोंके पकड़नेमें सावधान रहैं अर्थात् वशमें न आवें-मित्र और ज्ञाति और बांधवों सहित उनको राजा बलात्कारसे मारदे २६९ ॥

नहोढेनविनाचौरंघातयेद्धार्मिकोनृपः।सहोढंसोपकरणंघातयेदविचारयन् २७० ॥

प० । न होढेन विना चौरं घातयेत् धार्मिकः नृपः सहोढं सोपकरणं घातयेत् अविचारयन् ॥

यो० । धार्मिकः नृपः होढेन विना चौरं न घातयेत् सहोढं सोपकरणं चौरं अविचारयन सन घातयेत् ॥

भा० । ता० । धार्मिक राजा होढके विना अर्थात् द्रव्यका हरण संधिकाछेदन उपकरण (चोरी कासामान) आदि तिरस्कारके विना चोरको न मरवावे और होढ-और उपकरण सहित चोरको देखकर तो विचारको छोड़कर मरवायदे २७० ॥

ग्रामेष्वपिचयेकेचिच्चौराणांबलदायकाः।भाण्डावकाशदाश्चैवसर्वांस्तानपिघातयेत् २७१

प० । ग्रामेषु अपि च ये केचित् चौराणां बलदायकाः भाण्डावकाशदाः च एव सर्वान् तान् अपि घातयेत् ॥

यो० । ये केचित् ग्रामेषु अपि चौराणां बलदायकाः चपुनः भाण्डावकाशदाः (सन्ति)तान् अपि सर्वान् घातयेत् ॥

भा० । ता० । ग्रामोंमें भी जो कोई मनुष्य चोरोंके बल देनेवाले हैं अर्थात् भोजन वस्त्रआदिसे

चोरोंके सहायकहैं अथवा जो चोरोंको चोरीके उपयोगी शस्त्र भाण्ड और घरआदिमें निवास देते हैं उनसबको भी मरवायदे २७१ ॥

राष्ट्रेषुरक्षाधिकृतान्सामन्तांश्चैवचोदितान् ।अभ्याघातेषुमध्यस्थाञ्छिष्याच्चौरानिवद्रुतम् २७२

प० । राष्ट्रेषु रक्षाधिकृतान् सामंतान् च एव चोदितान् अभ्याघातेषु मध्यस्थान् शिष्यात् चौरान् इव द्रुतम् ॥

यो० । अभ्याघातेषुमध्यस्थान राष्ट्रेषु रक्षाधिकृतान् चपुनः चोदितान् सामंतान् अपि चौरान् इव द्रुतं शिष्यात् ॥

भा० । ता० । जो देशकी रक्षामें नियुक्त पुरुष और राज्यकी समीपर वसनेवाले राजसेवक सामंत चोरीकरानेमें मध्यस्थहों अर्थात् उदासीनरहैं उनको भी चोरोंके समानही शीघ्रदण्डदे २७२ ॥

यश्चापिधर्मसमयात्प्रच्युतोधर्मजीवनः । दण्डेनैवतमप्योषेत्स्वकाद्धर्माद्धिविच्युतम् २७३

प० । यः च अपि धर्मसमयात् प्रच्युतः धर्मजीवनः दंडेन एव तं अपि ओषेत् स्वकात् धर्मात् हि विच्युतम् ॥

यो० । यः धर्मजीवनः अपि धर्मसमयात् प्रच्युतः भवति स्वकात् धर्मात् विच्युतं तं अपि दंडेन एव ओषेत् ॥

भा० । ता० । यज्ञकराने और प्रतिग्रहलेनेसे धर्मपूर्वक जीविका करनेवाला जो ब्राह्मणहै वहभी यदि धर्मकी मर्यादासे रहितहोजाय अर्थात् शास्त्रोक्तरीतिसे यज्ञआदि न करावे तो अपने धर्मसे पतित उसको भी राजा दंडसेही ताडनादे २७३ ॥

ग्रामघातेहिताभंगेपथिमोषाभिदर्शने । शक्तितोनाभिधावन्तोनिर्वास्याःसपरिच्छदाः २७४

प० । ग्रामघाते हिताभंगे पथि मोषाभिदर्शने शक्तितः न अभिधावन्तः निर्वास्याः सपरिच्छदाः ॥

यो० । ग्रामघाते-हिताभंगे-पथि मोषाभिदर्शनेसति ये शक्तितः न अभिधावन्तःसन्ति ते सपरिच्छदाः राज्ञानिर्वास्याः॥

भा० । ता० । जो पुरुष चोरोंसे ग्रामके लूटनेपर और जलके सेतुओंके टूटनेपर और मार्गमें चोरोंके दीखनेपर समीपमें टिकनेपर भी अपनी शक्तिके अनुसार नहीं दौड़ते अर्थात् रक्षानहीं करते शय्या गौ-अश्वआदि सामग्री सहित उनको भी अपने देशमेंसे निकासदे २७४ ॥

राज्ञःकोशापहर्तॄंश्चप्रतिकूलेषुचस्थितान् । घातयेद्विविधैर्दण्डैररीणांचोपजापकान् २७५

प० । राज्ञः कोशापहर्तॄन् च प्रतिकूलेषु च स्थितान् घातयेत् विविधैः दंडैः अरीणां च उपजापकान् ॥

यो० । राज्ञः कोशापहर्तॄन् चपुनः प्रतिकूलेषु स्थितान् चपुनः अरीणां उपजापकान् राजा विविधैः दंडैः घातयेत् ॥

भा० । ता० । जो पुरुष राजाके कोशमेंसे धनको चुरातेहैं अथवा राजाकी आज्ञाका अवलंघन करतेहैं और जो राजाके शत्रुओंके वैरको राजाके संग बढ़ाते हैं इनसबको विविध दंडोंसे अर्थात् कर चरण जिह्वा छेदनआदिसे मरवायदे २७५ ॥

संधिंछित्वातुयेचौर्यंरात्रौकुर्वंतितस्कराः । तेषांछित्वानृपोहस्तौतीक्ष्णेशूलेनिवेशयेत् २७६॥

प० । सन्धिं छित्वा तु ये चौर्यं रात्रौ कुर्वंति तस्कराः तेषां छित्वा नृपः हस्तौ तीक्ष्णे शूले निवेशयेत् ॥

यो० । ये तस्कराः संधिं छित्वारात्रौ चौर्यं कुर्वंति नृपः तेषां हस्तौछित्वा तीक्ष्णे शूले निवेशयेत् ॥

भा० । ता० । रात्रिके समय भीति वा किवाड़आदिको छेदनकरके जोचोर चोरीको करतेहैं राजा उनके हाथोंको छेदनकरके तीक्ष्ण शूलीपर प्रवेशकरदे २७६ ॥

अंगुलीर्ग्रन्थिभेदस्यछेदयेत्प्रथमेग्रहे। द्वितीयेहस्तचरणौतृतीयेवधमर्हति २७७॥

प० अंगुलीः ग्रंथिभेदस्य छेदयेत् प्रथमे ग्रहे द्वितीये हस्तचरणौ तृतीये वधं अर्हति ॥

यो० । ग्रंथिभेदस्यप्रथमेग्रहे अंगुलीः द्वितीयेहस्तचरणौ छेदयेत् तृतीये अपराधेसति वधं अर्हति ॥

भा० । ता० । पटप्रान्तः १ (पिटयारी) आदिमें रक्खेहुये सुवर्णादिकको ग्रंथि खोलकर जो चुराताहै उसको ग्रन्थिभेद कहतेहैं उस ग्रन्थिभेदके प्रथमग्रहमें अर्थात् पूर्वोक्त सुवर्णचुरानेके प्रथम अपराधमें अंगुलियोंको अर्थात् इस याज्ञवल्क्यके वचनानुसार अँगूठा और तर्जनीको छेदनकरै और दूसरेमें हाथ और चरण और तीसरे अपराधमें वधके योग्यहोताहै २७७ ॥

अग्निदान्भक्तदांश्चैवतथाशस्त्रावकाशदान्। संनिधातृंश्चमोषस्यहन्याच्चौरमिवेश्वरः २७८

प० । अग्निदान् भक्तदान् च एवं तथा शस्त्रावकाशदान् संनिधातॄन् च मोषस्य हन्यात् चौरं इव ईश्वरः ॥

यो० । अग्निदान्- भक्तदान्—तथा शस्त्रावकाशदान्—चपुनः मोषस्य (चोरधनस्य) संनिधातॄन्—ईश्वरः (राजा) चौरं इव हन्यात् (मारयेत्) ॥

भा० । ता० । अग्निके देनेवाले और चोरोंको भोजन के दाता—और चोरोंके शस्त्रों और चोरीके धनको अपनेपास रखनेवाले—इनको भी राजा चोरोंके समानही मारदे—अर्थात् चोरोंको जो दंड होताहै वही उनको भी दे २७८ ॥

तडागभेदकंहन्यादप्सुशुद्धवधेनवा। यद्वापिप्रतिसंस्कुर्याद्दाप्यस्तूत्तमसाहसम् २७९ ॥

प० । तडागभेदकं हन्यात् अप्सु शुद्धवधेन वा यत् वा अपि प्रतिसंस्कुर्यात् दाप्यः तु उत्तमसाहसम्॥

यो० । राजा तडागभेदकं अप्सु वा शुद्धवधेन हन्यात्- यद्वा तडागं प्रतिसंस्कुर्यात् तर्हि उत्तमसाहसं दाप्यः (दंडनीयः) ॥

भा० । ता० । जो मनुष्य स्नान जलपानके उपकारी तड़ागको सेतु (मर्यादा) के भेदन आदिसे नष्टकरताहै उसको जल में डुबाकर वा शुद्धवधसे राजा मारदे और यदि वह तडागका पुनः संस्कार करदे अर्थात् ज्योंका त्यों करदे तो राजा उस मनुष्यको उत्तमसाहस दंड दे २७९ ॥

कोष्ठागारायुधागारदेवतागारभेदकान्। हस्त्यश्वरथहर्तॄंश्चहन्यादेवाविचारयन्२८०॥

प० । कोष्ठागारायुधागारदेवतागारभेदकान् हस्त्यश्वरथहर्तॄन् च हन्यात् एव अविचारयन् ॥

यो० । कोष्ठागारायुधागारदेवतागारभेदकान् चपुनः हस्त्यश्वरथहर्तॄन् पुरुषान् राजा अविचारयन् सन् हन्यात् (मारयेत्) ॥

भा० । ता० । राजा का कोठार आयुध का और देवताका स्थान इनकोजो नष्टकर्ता हैं और हाथी अश्व रथ इनके जो चोर हैं उन मनुष्योंको भी विना विचारे मरवाय दे—इसी वचनसे जो आगे प्रतिमाके भेदकको पंचशत ५०० पणदंडकहेंगे वह मिट्टीकीप्रतिमाके भेदकको दंडदेना जानना २८०॥

---

१ उत्क्षेपकग्रंथिभेदौ करसंदंशहीनकौ ॥

यस्तुपूर्वनिविष्टस्यतडागस्योदकंहरेत्।आगमंवाप्यपांभिद्यात्सदाप्यःपूर्वसाहसम् २८१

प० । यः तु पूर्वनिविष्टस्य तडागस्य उदकं हरेत् आगमं वा अपि अपां भिंद्यात् सः दाप्यः पूर्व-साहसम् ॥

यो० । यः पुरुषः पूर्व निविष्टस्य तडागस्य उदकं हरेत् वा अपां (जलानां) आगमं भिद्यात् सः पुरुषः राज्ञा उत्तमसाहसं दाप्यः (दंड्यः) ॥

भा० । ता० । जो मनुष्य प्रथम से किसी के बनायेहुये तडाग के जलको चुरावे अथवा जल आने के मार्ग को सेतु (पुल) आदि को बांधकर नष्टकर(रोक)दे–उस मनुष्यको राजा पूर्वसाहस दंड दे–और संपूर्ण तड़ागके नाशकरनेमें तो वधका दंड पहिले कहचुके हैं २८१ ॥

समुत्सृजेद्राजमार्गेयस्त्वमेध्यमनापदि। सद्वौकार्षापणौदद्यादमेध्यंचाशुशोधयेत् २८२

प० । समुत्सृजेत् राजमार्गे यः तु अमेध्यं अनापदि सः द्वौ कार्षापणौ दद्यात् अमेध्यं च आशु शोधयेत् ॥

यो० । यः पुरुषः राजमार्गे अनापदि अमेध्यं (अपवित्र विष्ठा आदि) समुत्सृजेत् सः पुरुषः राज्ञे द्वौ कार्षापणौ दद्यात् चपुनः अमेध्यं आशु शोधयेत् ॥

भा० । ता० । जो मनुष्य राजमार्ग में अपवित्र विष्ठा आदि वस्तुको विना आपत्तिके समय डाल दे वह पुरुष राजाको दो सुवर्ण दंड दे और अपवित्र वस्तुको उठवाकर मार्गको शुद्धकरदे २८२ ॥

आपद्गतोऽथवावृद्धोगर्भिणीबालएववा। परिभाषणमर्हंतितच्चशोध्यमितिस्थितिः २८३॥

प० । आपद्गतः अथवा वृद्धः गर्भिणी बालः एव वा परिभाषणं अर्हंति तत् च शोध्यं इति स्थितिः॥

यो० । आपद्गतः अथवावृद्धः गर्भिणी–वा बालः एव एते परिभाषणं अर्हंति चपुनः तत् अमेध्यं एतैः शोध्यं इति स्थितिः (शास्त्रमर्यादा) अस्ति ॥

भा० । ता० । यदि राजमार्ग में अपवित्र वस्तुको रोगी वृद्ध–गर्भवती स्त्री बालक–ये डालें तो परिभाषण (निंदा वा झिड़कना) के योग्य होतेहैं अर्थात् बुराकिया यही कहने योग्य होतेहैं और उस अपवित्र वस्तुको दूरकराकर मार्ग को शुद्धकरदें २८३ ॥

चिकित्सकानांसर्वेषांमिथ्याप्रचरतांदमः। अमानुषेषुप्रथमोमानुषेषुतुमध्यमः २८४॥

प० । चिकित्सकानां सर्वेषां मिथ्याप्रचरतां दमः अमानुषेषु प्रथमः मानुषेषु तु मध्यमः ॥

यो० । मिथ्याप्रचरतां सर्वेषां चिकित्सकानां अमानुषेषु प्रथमः साहसः मानुषेषु तु मध्यमः साहसः दंडः स्यात् इति स्थितिः (शास्त्रमर्यादा) अस्ति ॥

भा० । ता० । जो चिकित्सक (वैद्य) मनुष्य भिन्नोंमें मिथ्या चिकित्सा अर्थात् कुछ रोगकी कुछ करें उनको प्रथम साहस दंड होताहै और जो वैद्य मानुषोंकी पूर्वोक्त चिकित्सा करें उसको मध्यम साहस दंड होताहै २८४ ॥

संक्रमध्वजयष्टीनांप्रतिमानांचभेदकः। प्रतिकुर्याच्चतत्सर्वंपंचदद्याच्छतानिच २८५॥

प० । संक्रमध्वजयष्टीनां प्रतिमानां च भेदकः प्रतिकुर्यात् च तत् सर्वं पंच दद्यात् शतानि च ॥

यो० । संक्रमध्वजयष्टीनां चपुनः प्रतिमानां भेदकः पुरुषः तत् (संक्रमादिकं) सर्वं प्रतिकुर्यात् चपुनः पंचशतानि पणानि दंडं दद्यात् ॥

भा० । ता० । संक्रम (जलके ऊपरसे जाने का काष्ठ वा शिलाका मार्ग) ध्वज (राजद्वारकाचिह्न) यष्टि अर्थात् पुष्करणी आदि में पूजन का स्तंभ और मिट्टीकी क्षुद्र प्रतिमा इनका जो भेदक है वह पांचसौ ५०० पण दंड दे—और विनाश कियेहुये संक्रम आदिकोंको पुनः नवीन बनवायदे २८५ ॥

अदूषितानांद्रव्याणांदूषणेभेदनेतथा । मणीनामपवेधेचदण्डःप्रथमसाहसः २८६ ॥

प० । अदूषितानां द्रव्याणां दूषणे भेदने तथा मणीनां अपवेधे च दंडः प्रथमसाहसः ॥

यो० । अदूषितानां द्रव्याणां दूषणे तथाभेदने चपुनः मणीनां अपवेधे प्रथमसाहसः दंडः कार्यः ॥

भा० । ता० । यथार्थ द्रव्योंको निंदित द्रव्य मिलाकर दूषितकरने और माणिक्य आदि मणियों के भेदनकरने अथवा अयोग्य स्थानमें बींधने पर प्रथमसाहस दंडको राजा दे—और दूसरेके द्रव्यनाशकरनेपर उसकीप्रसन्नताकरनी अर्थात् द्रव्यान्तरदेकरउसकासंतोषकरना सबजगहसमझना २८६ ॥

समैर्हिविषमंयस्तुचरेद्वैमूल्यतोऽपिवा । समाप्नुयाद्दमंपूर्वंनरोमध्यममेववा २८७ ॥

प० । समैः हि विषमं यः तु चरेत् वै मूल्यतः अपि वा समाप्नुयात् दमं पूर्वं नरः मध्यमं एव वा ॥

यो० । यः पुरुषः समैः सह विषमंचरेत् वा मूल्यतः विषमं चरेत् सः नरः पूर्वदमं वा मध्यमं एव दमं समाप्नुयात् ॥

भा० । ता० । जो मनुष्य समानमूल्य देनेवालोंके संग उत्कृष्ट वा अपकृष्ट द्रव्योंको देकर विषम व्यवहार करताहै अर्थात् किसीको अच्छा और किसीको निकृष्टदेताहै अथवा समान मूल्यके द्रव्यको देकर किसीसे अधिकमूल्य और किसीसे अल्पमूल्य लेताहै उसमनुष्यको प्रथम साहस अथवा मध्यमसाहस दण्ड द्रव्यके अनुसार होताहै २८७ ॥

बन्धनानिचसर्वाणिराजामार्गेनिवेशयेत् । दुःखितायत्रदृश्येरन्विकृताःपापकारिणः २८८

प० । बंधनानि च सर्वाणि राजा मार्गे निवेशयेत् दुःखिताः यत्र दृश्येरन् विकृताः पापकारिणः ॥

यो० । राजासर्वाणि बंधनानि मार्गे निवेशयेत् यत्र दुःखिताः विकृताः-पापकारिणः जनैः दृश्येरन् ॥

भा० । ता० । राजा सबबन्धनोंके आगारों (गृहों) को मार्गमें बनवावे क्योंकि वहां विकृतरूप वाले दुःखित पापियोंको अनेकजनदेखें जिससे कोई भी पापमें प्रवृत्तनहो २८८ ॥

प्राकारस्यचभेत्तारंपरिखाणांचपूरकम् । द्वाराणांचैवभंक्तारंक्षिप्रमेवप्रवासयेत् २८९ ॥

प० । प्राकारस्य च भेत्तारं परिखाणां च पूरकं द्वाराणां च एव भंक्तारं क्षिप्रं एव प्रवासयेत् ॥

यो० । राजा प्राकारस्यभेत्तारं चपुनः परिखाणां पूरकं चपुनः द्वाराणां भंक्तारं क्षिप्रं एवप्रवासयेत् ॥

भा० । ता० । राजगृह वा पुरीके प्राकार (परकोटा) भेदक और परिखा (खाई) ओंके पूरणकरने वाले राजगृह वा पुरीके द्वारोंके तोडनेवालोंको शीघ्रही देशसे निकासदे २८९ ॥

अभिचारेषुसर्वेषुकर्तव्योद्विशतोदमः । मूलकर्मणिचानाप्तेःकृत्यासुविविधासुच २९० ॥

प० । अभिचारेषु सर्वेषु कर्तव्यः द्विशतः दमः मूलकर्मणि च अनाप्तेः कृत्यासु विविधासु च ॥

यो० । सर्वेषु अभिचारेषु चपुनः मूलकर्मणि चपुनः विविधासु कृत्यासु फले अनाप्तेःसति द्विशतः दमःकर्तव्यः ॥

भा० । सम्पूर्ण अभिचारके कर्मों और जड़काटनेके कर्मोंमें और अनेकप्रकारकी उच्चाटन आदि कृत्याओंमें भी दोसौपण दंड अपराधीको देना ॥

ता० । सम्पूर्ण अभिचार (मारने) होमआदि शास्त्रोक्त उपायोंमें और मूलकर्म अर्थात् जड़का खोदना अथवा किसीके पैरकेनीचेकी धूलिको ग्रहणकरनेपर यदि मरणरूपी फल न होय तो दोसै पणदंडदेना और मरणहोजाय तो मारनेका दण्डहोताहै इसीप्रकार अनेकप्रकारकी कृत्याओंमें भी अर्थात् किसीको मोहितकरिकै धन छीननेकेलिये वशीभूतकरना अथवा किसीके उच्चाटनआदिकोंमें दोसौपण दण्डसमझना २९० ॥

अबीजविक्रयीचैवबीजोत्कृष्टंतथैवच । मर्यादाभेदकश्चैवविकृतंप्राप्नुयाद्वधम् २९१ ॥

प० । अबीजविक्रयी चै एवँ बीजोत्कृष्टं तथा एवँ चँ मर्यादाभेदकः चँ एवँ विकृतं प्राप्नुयात् वधम् ॥

यो० । अबीजविक्रयी चपुनः तथैव बीजोत्कृष्टं यः विक्रीणाति—चपुनः यः पुरुषः मर्यादाभेदकः अस्ति सः पुरुषः विकृतं यथा स्यात्तथा वधं प्राप्नुयात् ॥

भा० । ता० । जो मनुष्य उपजने के अयोग्य बीजको वेचताहै अथवा यत् किंचित् श्रेष्ठ बीजको मिलाकर सबकोही उत्तमबताकर जो विक्रय करै (वेचै) और ग्राम आदि की सीमाका जो भेदनकरै वह नासिका कर चरण कर्ण आदि के छेदन रूप वध (हिंसा) को प्राप्त होताहै २९१ ॥

सर्वकण्टकपापिष्ठंहेमकारंतुपार्थिवः । प्रवर्तमानमन्यायेछेदयेल्लवशःक्षुरैः २९२ ॥

प० । सर्वकंटकपापिष्ठं हेमकारं तु पार्थिवः प्रवर्तमानं अन्याये छेदयेत् लवशः क्षुरैः ॥

यो० । पार्थिवः अन्याये प्रवर्तमानं सर्वकंटकपापिष्ठं हेमकारं क्षुरैः लवशः छेदयेत् ॥

भा० । ता० । तोलका छल—निंदित वस्तु (खोट) का मिलाव—आदि से अन्याय सोने की चोरी का कर्ता जो सब कंटकों में अत्यंत पापी सुवर्णकार (सुनार) है उसके देहका छेदन राजा छुरियोंसे लेश २ करै—अर्थात् अपराधके अनुसार सब अंगका वा प्रत्येक अंगका छेदनकरै २९२ ॥

सीताद्रव्यापहरणेशस्त्राणामौषधस्यच । कालमासाद्यकार्यंचराजादण्डंप्रकल्पयेत् २९३

प० । सीताद्रव्यापहरणे शस्त्राणां औषधस्य चँ कालं आसाद्य कार्यं चँ राजा दंडं प्रकल्पयेत् ॥

यो० । सीताद्रव्यापहरणे—शस्त्राणां—चपुनः औषधस्य—हरणे—कालं—आसाद्य (दंडदानं) कार्यं दंडं राजा प्रकल्पयेत् (कुर्यात्) ॥

भा० । ता० । हल कुदाल आदि जो भूमिको जोतने के द्रव्य उनकी चोरी और खड्ग आदि शस्त्रों औषधकी चोरी में—समयके अनुसार राजा दंड की कल्पना करै अर्थात् पूर्वोक्त वस्तुओं की आवश्यकता समय अधिक और अनावश्यकताके समय में अल्प दंडदे २९३ ॥

स्वाम्यमात्यौपुरंराष्ट्रंकोशदण्डौसुहृत्तथा । सप्तप्रकृतयोह्येताःसप्तांगंराज्यमुच्यते २९४ ॥

प० । स्वाम्यमात्यौ पुरं राष्ट्रं कोशदंडौ सुहृत् तथा सप्त प्रकृतयः हि एताः सप्तांगं राज्यं उच्यते ॥

यो० । स्वाम्यमात्यौ—पुरं—राष्ट्रं—कोशदंडौ—तथासुहृत् (मित्र) एताः सप्त प्रकृतयः (अंगानि) भवंति बुधैः राज्यं सप्तांगं उच्यते ॥

भा० । राजा—मंत्री—पुर—देश—कोश—सेना—मित्र—ये सात अंग होतेहैं और इनसेही राज्यको सप्तांग (सात अंगवाला) कहते हैं ॥

ता० । स्वामी-(राजा) अमात्य (मंत्री आदि) पुर (जिसमें राजा का बनायाहुआ दुर्गहो ऐसा नगर) राष्ट्र (देश)—कोश (जिसमें संचित धनरहै—खजाना) और दंड (हाथी अश्व रथ आदि) अर्थात् सेना और सुहृत् सातवें अध्यायमें कहेहुये तीनप्रकारके मित्र ये सात प्रकृति (अंग) होतेहैं और राज्य इनसेही सप्तांग कहाताहै २९४ ॥

सप्तानांप्रकृतीनांतुराज्यस्यासांयथाक्रमम् । पूर्वंपूर्वंगुरुतरंजानीयाद्व्यसनंमहत् २९५

प० । सप्तानां प्रकृतीनां तु राज्यस्य आसां यथाक्रमं पूर्वं पूर्वं गुरुतरं जानीयात् व्यसनं महत् ॥

यो० । आसां सप्तानां राज्यस्य प्रकृतीनां मध्ये—यथाक्रमं पूर्वं पूर्वं गुरुतरं महत् व्यसनं जानीयात् ॥

भा० । राज्यके इन सात प्रकृतियों में पूर्व २ व्यसनको यथाक्रम महान् और अतीव गुरु जाने इससे प्रथम २ की रक्षापूर्वक उत्तर २ की रक्षा में यत्नकरै ॥

ता० । इन पूर्वोक्त सातों राज्यकी प्रकृतियों के मध्यमें पूर्व पूर्व प्रकृतिके नाशका जो दुःख है उसको महान् (बड़ा) गुरु जानै अर्थात् मित्रके व्यसनसे सबलका व्यसन गुरुतर अत्यंत गुरु है—क्योंकि जो बलसे संपन्न है वही अनुग्रह करनेमें समर्थ होताहै—इसीप्रकार बलसे कोशका व्यसन गुरुतर है क्योंकि कोशके नाशमें बलका भी नाश होजाताहै—कोशसे राष्ट्रका व्यसन गुरुतरहै क्योंकि राष्ट्रके नाशमें कोशकी उत्पत्ति कैसे होसक्ती है—राष्ट्रके नाशसे दुर्गका व्यसन गुरुतर है—क्योंकि अन्न यवस इंधन आदि से संपन्न दुर्गसेही राज्यकी रक्षा होसक्तीहै—दुर्ग के व्यसनसे मंत्रीका व्यसन गुरुहै क्योंकि प्रधानमंत्रीके नाशपर राज्यके सब अंगोंमें व्याकुलता होजातीहै—और मंत्रीके व्यसन से स्वामी (राजा) का व्यसन गुरुतरहै क्योंकि राजाही सबकी रक्षाकाकारण होताहै—तिससे प्रथम २ की रक्षाको उत्तर २ की अपेक्षासे बड़े २ यत्नसे करैं २९५ ॥

सप्तांगस्येहराज्यस्यविष्टब्धस्यत्रिदण्डवत् । अन्योन्यगुणवैशेष्यान्नकिंचिदतिरिच्यते २९६

प० । सप्तांगस्य इह राज्यस्य विष्टब्धस्य त्रिदंडवत् अन्योन्यगुणवैशेष्यात् न किंचित् अतिरिच्यते ॥

यो० । त्रिदंडवत् विष्टब्धस्य सप्तांगस्य राज्यस्य अन्योन्यगुणवैशेष्यात् किंचित् न अतिरिच्यते ॥

भा० । संन्यासीके तीन दंडों के समान परस्पर मिलाहुआ जो सप्तांग राज्य उसमें परस्पर अंग की अपेक्षासे कोई अंग अधिक नहीं होता ॥

ता० । त्रिदंडके समान परस्पर संबद्ध (मिलित) जो सप्तांग राज्य उसके परस्पर उपकारकहो-नेसे कोई अंग अधिक नहीं होता अर्थात् ये सब परस्पर ऐसे सापेक्ष हैं कि एकके विना दूसरे की उन्नति में अंतर आजाताहै यद्यपि पूर्व श्लोकमें पूर्व २ अंगकी अधिकता कहीहै तथापि इन अंगों में कोई अंग अन्य अंगके अपकार को नहीं करसक्ता इससे पूर्व पूर्व अंगका उत्तर उत्तर अंगकी अपेक्षा करनी इसलिये पूर्व पूर्व अंगकी अधिकता का निषेधहै—और वे अंग इसप्रकार अधिक नहीं होते जैसे चार अंगुलके गोवालोंसे बँधेहुये संन्यासी के तीनोंदंड परस्पर संबद्ध होते हैं और उनमेंसे एक भी अंग अधिक नहीं होता तिसीप्रकार राज्यके अंगों में भी कोई अंग अधिक नहीं होता २९६ ॥

तेषुतेषुतुकृत्येषुतत्तदंगंविशिष्यते । येनयत्साध्यतेकार्यंतत्तस्मिन्श्रेष्ठमुच्यते २९७ ॥

प० । तेषु तेषु तु कृत्येषु तत् तत् अंगं विशिष्यते येन यत् साध्यते कार्यं तत् तस्मिन् श्रेष्ठं उच्यते ॥

यो० । तुपुनः तेषु तेषु कृत्येषु तत् तत् अंगंविशिष्यते येन अंगेन यत् कार्यं साध्यते तस्मिन् कार्ये तत् अंगं श्रेष्ठं उच्यते।।

भा० । ता० । तिस २ कार्य में वही २ अंग श्रेष्ठ होताहै जो कार्य जिस अंगसे सिद्धहो उसकार्य के लिये वही अंग उत्तम होताहै अर्थात् कार्य की साधकतासेही उत्तमताहै और सब अंगोंमें परस्पर गुण विशेष होने से कोई भी अंग अधिक नहींहोता २९७ ॥

चारेणोत्साहयोगेनक्रिययैवचकर्मणाम्। स्वशक्तिंपरशक्तिंचनित्यंविद्यान्महीपतिः २९८

प० । चारेण उत्साहयोगेन क्रियया एवं च कर्मणां स्वशक्तिं परशक्तिं च नित्यं विद्यात् महीपतिः

यो० । महीपतिः चारेण उत्साहयोगेन चपुनः कर्मणां क्रियया स्वशक्तिं चपुनः परशक्तिं नित्यं विद्यात् ॥

भा० । ता० । कापटिक आदि सातवें ७ अध्याय में उक्त चार से और उत्साह के योगसे—और हस्तिबंध वणिक्पथ आदि कर्मों के करनेसे पैदाहुई अपनी शक्तिको और प्रतिपक्षी राजा की शक्ति को नित्य राजा जाने २९८ ॥

पीडनानिचसर्वाणिव्यसनानितथैवच। आरभेततत:कार्यंसंचिन्त्यगुरुलाघवम् २९९

प० । पीडनानि च सर्वाणि व्यसनानि तथा एवं च आरभेत ततः कार्यं संचिंत्य गुरुलाघवम् ॥

यो० । सर्वाणि पीडनानि तथैव व्यसनानि—गुरुलाघवं संचिंत्य—ततः राजा कार्यं आरभेत—(कार्यारम्भः कुर्वीत) ॥

भा० । ता० । मारकआदि सम्पूर्ण पीडा और काम क्रोधसे पैदाहुये सम्पूर्ण दुःखोंको और अपने और पराये देशमें उन पीडनआदि का गुरुलाघव (न्यूनाधिकभाव) को प्रथम विचारकर पीछे से कार्यों का प्रारम्भ राजाकरै २९९ ॥

आरभेतैवकर्माणिश्रान्तःश्रान्तःपुनःपुनः। कर्माण्यारभमाणंहिपुरुषंश्रीर्निषेवते ३०० ॥

प० । आरभेत एवं कर्माणि श्रांतः श्रांतः पुनः पुनः कर्माणि आरभमाणं हि पुरुषं श्रीः निषेवते॥

यो० । हि (यतः) कर्माणि आरभमाणं पुरुषं श्रीः निषेवते अत. श्रांतः श्रांतः (थकितः) राजा पुनः पुनः कर्माणि आरभेत एव—नविरमेत इत्यर्थः ॥

भा० । श्रान्त (थका) हुआ भी राजा पुनः पुनः कार्यों का प्रारम्भकरै अर्थात् एकदोबार कार्य की सिद्धि न होनेसे उदासीन नहो—क्योंकि कार्यों का आरम्भकरनेवाले मनुष्यकोही लक्ष्मी सेवती है—अर्थात् वही धनी होताहै जो वारंवार कार्यों का प्रारम्भ करताहै ॥

ता० । अपने राज्यकी वृद्धि और परराज्य की हानि के करनेवाले कार्योंको—यह कार्य छलआदि के आरम्भ करनेपर भी क्यों न हुआ इसप्रकार खिन्नहुआभी राजा वारंवार उन्हीं कार्योंका आरम्भ करै क्योंकि वारंवार कार्योंका प्रारम्भकरतेहुये पुरुषकी लक्ष्मी निरन्तर सेवाकरती है और इसशास्त्र की आज्ञाके अनुसार भी राजा उदासीन न रहै कि जो ब्राह्मण का भक्त नहीं जिसका कोई प्रबल आश्रयनहीं, उसके यहां श्री (लक्ष्मी) नहींहोती—और होतीभी है तो नष्टहोजाती है और उसकेकिये कर्म भी तिस २ युगके अनुसार नहींफलते—क्योंकि ३०० ॥

कृतंत्रेतायुगंचैवद्वापरंकलिरेवच। राज्ञोवृत्तानिसर्वाणिराजाहियुगमुच्यते ३०१ ॥

प० । कृतं त्रेतायुगं च एवं द्वापरं कलिः एवं च राज्ञः वृत्तानि सर्वाणि राजा हि युगं उच्यते ॥

---

१ नाब्राह्मणेनानाश्रयेश्रीरस्तीतिप्ररोहितापिशोषमेति नचयुगानुरूपेणकर्माणिफलंतीतिराज्ञोदासीतव्यम् ॥

यो० । कृतं-चपुनः त्रेतायुगं-द्वापरं चपुनः कलिः एतानि सर्वाणि राज्ञः वृत्तानि भवंति हि (हेतौ) राजा मन्वादिभिः युगं उच्यते ॥

भा० । ता० । सतयुग त्रेता द्वापर और कलियुग ये सब चारोंयुग राजाकेही आचरण विशेष हैं इसीसे मनुआदिकों ने राजाको युगकहा है—और इनचेष्टाओं को करताहुआ राजा तिस २ युगका रूप होता है ३०१ ॥

कलिःप्रसुप्तोभवतिसजाग्रद्द्वापरंयुगम्।कर्मस्वभ्युद्यतस्त्रेताविचरंस्तुकृतंयुगम् ३०२ ॥

प० । कलिः प्रसुप्तः भवति सः जाग्रत् द्वापरं युगं कर्मसु अभ्युद्यतः त्रेता विचरन् तु कृतं युगम् ॥

यो० । प्रसुप्तः सः राजा कलिः—जाग्रत् द्वापरंयुगं—कर्मसु अभ्युद्यतः त्रेता—विचरन् सः कृतयुगं भवति ॥

भा० । उद्यमरहित राजा कलियुग—और जानकरभी कार्योंका न करनेवाला द्वापर और कार्योंका उद्योगी त्रेता—और कार्यों को करताहुआ अपने देश में विचरनेवाला सत्ययुग होताहै ॥

ता० । जब राजा सोता है अर्थात् अज्ञान आलस्य आदिसे उद्यमको नहीं करताहै उस समय कलियुग होताहै और जब जागताहै अर्थात् जानकर भी कर्मोंको नहीं करताहै उस समय द्वापर—और जब कार्योंके करने में उद्योगी होता है उससमय त्रेता—और जब शास्त्रोक्तरीति से कार्यों को करताहुआ अपने देशमें विचरता है उससमय सत्ययुग—रूपहोताहै—इससे यहकहा कि राजा कार्यों के करने में तत्पररहै कुछ वास्तविक कलियुगादि रूपही राजाको वर्णन नहींकिया ३०२ ॥

इन्द्रस्यार्कस्यवायोश्चयमस्यवरुणस्यच।चन्द्रस्याग्नेःपृथिव्याश्चतेजोवृत्तंनृपश्चरेत् ३०३

प० । इन्द्रस्य अर्कस्य वायोः च यमस्य वरुणस्य च चन्द्रस्य अग्नेः पृथिव्याः च तेजोवृत्तं नृपः चरेत् ॥

यो० । नृपः इन्द्रस्य—अर्कस्य—वायोः—यमस्य चपुनः वरुणस्य—चन्द्रस्य—अग्नेः—चपुनः पृथिव्याः तेजोवृत्तं चरेत् ॥

भा० । ता० । इन्द्र—सूर्य—वायु—यमराज—वरुण—चन्द्रमा—अग्नि और पृथिवी—इनआठोंके तेज से युक्त आचरण को राजाकरै अर्थात् इनके कर्त्तव्योंके अनुसार वर्त्तै कि ३०३ ॥

वार्षिकांश्चतुरोमासान्यथेन्द्रोऽभिप्रवर्षति।तथाभिवर्षेत्स्वंराष्ट्रंकामैरिन्द्रव्रतंचरन् ३०४

प० । वार्षिकान् चतुरः मासान् यथा इंद्रः अभिप्रवर्षति तथा अभिवर्षेत् स्वं राष्ट्रं कामैः इंद्रव्रतं चरन् ॥

यो० । इन्द्रव्रतं चरन् राजा—यथा इंद्रः वार्षिकान् चतुरः मासान् अभिप्रवर्षति तथा स्वंराष्ट्रं कामैः अभिवर्षेत्—प्रजा कामान् पूरयेत् इत्यर्थः ॥

भा० । ता० । कंटकों के उद्धार करने से प्रताप और अनुरागसे इसप्रकार इन्द्रके समान आचरणकरै कि—जैसे श्रावणआदि वर्षा के चारमासों में सस्यआदिकी सिद्धिकेलिये वर्षताहै इन्द्रचरित को करताहुआ राजा भी इसीप्रकार अपनेदेशको कामनाओं से पूर्णकरै ३०४ ॥

अष्टौमासान्यथादित्यस्तोयंहरतिरश्मिभिः।तथाहरेत्करंराष्ट्रान्नित्यमर्कव्रतंहितत् ३०५

प० । अष्टौ मासान् यथा आदित्यः तोयं हरति रश्मिभिः तथा हरेत् करं राष्ट्रात् नित्यं अर्कव्रतं हि तत् ॥

यो० । यथा आदित्यः अष्टौ मासान् रश्मिभिः तोयंहरति तथा राजा राष्ट्रात् नित्यं करं हरेत्—तत् हि (निश्चयेन) अर्कव्रतं भवति ॥

भा० । ता० । जैसे सूर्य आठमासपर्यंत अपनी किरणोंसे जलको हरता (पीता) है इसीप्रकार राजा भी अपने देशमेंसे नित्य करका ग्रहणकरै यह अर्कव्रत होता है अर्थात् सूर्यके समान आचरण करता है ३०५ ॥

प्रविश्यसर्वभूतानियथाचरतिमारुतः । तथाचारैःप्रवेष्टव्यंव्रतमेतद्धिमारुतम् ३०६ ॥

प० । प्रविश्य सर्वभूतानि यथा चरति मारुतः तथा चारैः प्रवेष्टव्यं व्रतं एतत् हि मारुतम् ॥

यो० । यथा सर्वभूतानि प्रविश्य मारुतः चरति तथा राज्ञा चारैः प्रवेष्टव्यं एतत् मारुतं व्रतं भवति ॥

भा० । ता० । जैसे प्राणरूपवायु सबप्राणियोंके भीतर प्रविष्ट होकर विचरताहै इसीप्रकार राजा भी अपने और पराये मण्डलों में अपने कर्त्तव्यों के ज्ञानार्थ प्रवेशकरै यह मारुत (पवन) का व्रत होता है ३०६ ॥

यथायमःप्रियद्वेष्यौप्राप्तेकालेनियच्छति । तथाराज्ञानियन्तव्याःप्रजास्तद्धियमव्रतम् ३०७

प० । यथा यमः प्रियद्वेष्यौ प्राप्ते काले नियच्छति तथा राज्ञा नियंतव्याः प्रजाः तत् हि यमव्रतम् ॥

यो० । यथा यमः काले प्राप्तेसति प्रियद्वेष्यौ नियच्छति तथा राज्ञा प्रजाः नियंतव्याः हि (निश्चयेन) तत् यमव्रतं भवति ॥

भा० । ता० जैसे यमराज अपने शत्रु और मित्रोंको अर्थात् अपने निंदक और पूजकों को काल की प्राप्ति (मरण) के समय दंड देता है अर्थात् मारता है इसीप्रकार राजा भी अपराध के समय शत्रु और मित्रभावको छोडकर प्रजाको दंडदे यही राजाका यमव्रत है ३०७ ॥

वरुणेनयथापाशैर्बद्धएवाभिदृश्यते । तथापापान्निगृह्णीयाद्व्रतमेतद्धिवारुणम् ३०८ ॥

प० । वरुणेन यथा पाशैः बद्धः एव अभिदृश्यते तथा पापान् निगृह्णीयात् व्रतं एतत् हि वारुणम् ॥

यो० । यथा वरुणेन पाशैः बद्धः एव जनः दृश्यते तथा राजा पापान् निगृह्णीयात् हि एतत् वारुणं व्रतं भवति ॥

भा० । ता० । जो मनुष्य वरुणकी पाश (रज्जु) से बांधनेयोग्य है उसको वरुणपाशमें बँधेहुये कोही देखता है इसीप्रकार राजा पापी मनुष्यों को शंकाहीन होकर तबतक शिक्षादे जबतक पापसे निवृत्तनहों–यह वारुण व्रत होता है ३०८ ॥

परिपूर्णंयथाचन्द्रंदृष्ट्वाहृष्यन्तिमानवाः।तथाप्रकृतयोयस्मिन्सचान्द्रव्रतिकोनृपः ३०९॥

प० । परिपूर्णं यथा चन्द्रं दृष्ट्वा हृष्यन्ति मानवाः तथा प्रकृतयः यस्मिन् सः चांद्रव्रतिकः नृपः ॥

यो० । यथा परिपूर्णं चन्द्रं दृष्ट्वा मानवाः हृष्यन्ति तथा यस्मिन् दृष्टे सति प्रकृतयः हृष्यन्ति स नृपः चांद्रव्रतिकः भवति॥

भा० । ता० । जिसप्रकार परिपूर्ण चन्द्रमा को देखकर मनुष्य प्रसन्न होते हैं–इसी प्रकार जिस राजा को देखकर सम्पूर्णप्रजा प्रसन्नहो वहराजा चन्द्रव्रतवालाहै अर्थात् चन्द्रमाके समानहै ३०९ ॥

प्रतापयुक्तस्तेजस्वीनित्यंस्यात्पापकर्मसु । दुष्टसामन्तहिंस्रश्चतदाग्नेयंव्रतंस्मृतम् ३१० ॥

प० । प्रतापयुक्तः तेजस्वी नित्यं स्यात् पापकर्मसु दुष्टसामन्तहिंस्रः च तत् आग्नेयं व्रतं स्मृतम् ॥

यो० । राजा पापकर्मसु नित्यं प्रतापयुक्तः तेजस्वी–चपुनः दुष्टसामन्तहिंस्रः स्यात् तत् व्रतं आग्नेयं स्मृतम् (कथितम्)

भा० । ता० । पापकर्ता मनुष्यों को सदा दंडदेकर प्रतापी और तेजस्वी (आलस्यहीन) राजा रहै और प्रतिकूल मन्त्रियों की हिंसा में तत्पररहै यह राजाका अग्निसम्बन्धी व्रत है ३१० ॥

यथासर्वाणिभूतानिधराधारयतेसमम् । तथासर्वाणिभूतानिबिभ्रतःपार्थिवंव्रतम् ३११

प० । यथा सर्वाणि भूतानि धरा धारयते समं तथा सर्वाणि भूतानि बिभ्रतः पार्थिवं व्रतम् ॥

यो० । यथा सर्वाणि भूतानि धरा समं धारयते तथा सर्वाणि भूतानि बिभ्रतः राज्ञः पार्थिवं व्रतं भवति ॥

भा० । ता० । जैसे पृथिवी छोटे बड़े स्थावर जंगम ऊंचे नीचे सब भूतोंको सम रीतिसे धारती है उसीप्रकार जो राजा संपूर्ण विद्वान्, धनी, गुणियोंको और दीन अनाथ भूतोंकी धनदेने आदि से पालना करताहै वह राजा पार्थिव व्रत (पृथ्वी के समान आचरण करनेवाला) कहाता है ३११ ॥

एतैरुपायैरन्यैश्चयुक्तोनित्यमतन्द्रितः । स्तेनान्राजानिगृह्णीयात्स्वराष्ट्रेपरएवच ३१२॥

प० । एतैः उपायैः अन्यैः च युक्तः नित्यं अतंद्रितः स्तेनान् राजा निगृह्णीयात् स्वराष्ट्रे परे एव च ॥

यो० । एतैः उपायैः चपुनः अन्यैः नित्यं युक्तः अतंद्रितः राजा स्वराष्ट्रे चपुनः परराष्ट्रे स्तेनान् निगृह्णीयात् (दंडयात्)॥

भा० । ता० । इन पूर्वोक्त उपायों से और अपनी बुद्धिसे विचारेहुये अन्य उपायोंसे संयुक्त और आलस्य हीन राजा अपने देशमें वसतेहुये चोरोंका और जो अन्यके देशमें वसकर राजाके देश को आकर लूटतेहों उन सब चोरोंका प्रतिदिन निग्रहकरै अर्थात् दंडदे ३१२ ॥

परामप्यापदंप्राप्तोब्राह्मणान्नप्रकोपयेत् । तेह्येनंकुपिताहन्युःसद्यःसबलवाहनम् ३१३॥

प० । परां अपि आपदं प्राप्तः ब्राह्मणान् न प्रकोपयेत् ते हि एनं कुपिताः हन्युः सद्यः सबलवाहनम्॥

यो० । परां आपदं अपि प्राप्तः राजा ब्राह्मणान् न प्रकोपयेत् हि (यतः) कुपिताः ते ब्राह्मणाः सबलवाहनं एनं (राजानं) सद्यः हन्युः ॥

भा० । ता० । कोशके क्षय आदि से परम आपत्तिको प्राप्तहुआ भी राजा ब्राह्मणों को कुपित न करै क्योंकि कोपको प्राप्तहुये वे ब्राह्मण, सेना, और वाहन सहित इस राजाको शाप आदि देकर शीघ्रही नष्ट करदेते हैं ३१३ ॥

यैःकृतःसर्वभक्ष्योऽग्निरपेयश्चमहोदधिः । क्षयीचाप्यायितःसोमःकोननश्येत्प्रकोप्यतान् ३१४

प० । यैः कृतः सर्वभक्ष्यः अग्निः अपेयः च महोदधिः क्षयी च आप्यायितः सोमः कः न नश्येत् प्रकोप्य तान् ॥

यो० यैः ब्राह्मणैः अग्निः सर्वभक्ष्यः चपुनः महोदधिः अपेयः कृतः चपुनः क्षयी सोमः आप्यायितः कृतः तान् प्रकोप्य कः न नश्येत् अपितु सर्वोपि नश्येत् इत्यर्थः ॥

भा० । ता० । जिन ब्राह्मणों ने अग्निको सर्व भक्षक समुद्रकोपीनेके अयोग्य करदिया और क्षय से नष्टहुये चंद्रमाको पुनः पूरितकरदिया अर्थात् उसके क्षयरोगको दूरकरदिया ऐसे ब्राह्मणोंको कोप कराकर ऐसा कौनहै जो नष्ट न होय ३१४ ॥

लोकानन्यान्सृजेयुर्येलोकपालांश्चकोपिताः । देवान्कुर्युरदेवांश्चकःक्षिण्वंस्तान्समृध्नुयात् ३१५

प० । लोकान् अन्यान् सृजेयुः ये लोकपालान् च कोपिताः देवान् कुर्युः अदेवान् च कः क्षिण्वन् तान् समृध्नुयात् ॥

यो० । ये ब्राह्मणाः कोपिताः संतः अन्यान् लोकान् चपुनः लोकपालान् सृजेयुः चपुनः देवान् अदेवान् कुर्युः तान् क्षिण्वन् सन् कः समृध्नुयात्—न कोपीत्यर्थः ॥

भा० । ता० । कोपको प्राप्तहुये जो ब्राह्मण, लोक और लोकपालोंको अन्य (दूसरे) रच सके हैं अर्थात् ब्रह्माकी रचनासे दूसरीरचना बनासके हैं और देवताओंको मनुष्य कर सके हैं ऐसे ब्राह्मणों को पीड़ादेकर कौन पुरुष वृद्धिको प्राप्त होसका है अर्थात् कोई नहीं होसका ३१५ ॥

यानुपाश्रित्यतिष्ठन्तिलोकादेवाश्चसर्वदा । ब्रह्मचैवधनंयेषांकोहिंस्यात्तान्जिजीविषुः३१६ ॥

प० । यान् उपाश्रित्य तिष्ठन्ति लोकाः देवाः च सर्वदा ब्रह्म च एव धनं येषां कः हिंस्यात् तान् जिजीविषुः ॥

यो० । यान् ब्राह्मणान् उपाश्रित्य लोकाः चपुनः देवाः सर्वदा तिष्ठंति चपुनः येषां धनं ब्रह्म (वेदः) अस्ति कः जिजीविषुः तान् ब्राह्मणान् हिंस्यात् न कोपीन्यर्थः ॥

भा० । ता० । यज्ञकरने और करानेवाले जिन ब्राह्मणों के आश्रयसे संपूर्ण पृथिवी आदि लोक और इंद्र आदि देवता टिकतेहैं और जिनका धन भी वृद्धिका कारण होनेसे वेदही है अर्थात् यज्ञ आदि कराने से जो वेदद्वाराही धनसंचय करते हैं ऐसे ब्राह्मणों की हिंसाको ऐसा कौन है जो जीवन का अभिलाषी होकर करेगा—इससे यह न समझे कि विद्वान् ब्राह्मणकीही सेवाकरै क्योंकि ३१६ ॥

अविद्वांश्चैवविद्वांश्चब्राह्मणोदैवतंमहत् । प्रणीतश्चाप्रणीतश्चयथाग्निर्दैवतंमहत् ३१७॥

प० । अविद्वान् च एव विद्वान् च ब्राह्मणः दैवतं महत् प्रणीतः च अप्रणीतः च यथा अग्निः दैवतं महत् ॥

यो० । यथा प्रणीतः (आहितः) चपुनः अप्रणीतः अग्निः महत् दैवतं भवति—तथा अविद्वान् चपुनः विद्वान् ब्राह्मणः महत् दैवतं भवति ॥

भा० । ता० । शास्त्रोक्त विधिसे स्थापनकीहुई वा नहीं स्थापनकीहुई अग्नि जैसे महान्देवता होती है इसप्रकार मूर्ख अथवा पण्डित ब्राह्मण भी परम देवतारूप होता है—इससे किसी प्रकारके ब्राह्मण का भी अपमान न करै ३१७ ॥

श्मशानेष्वपितेजस्वीपावकोनैवदुष्यति । हूयमानश्चयज्ञेषुभूयएवाभिवर्द्धते ३१८ ॥

प० । श्मशानेषु अपि तेजस्वी पावकः न एव दुष्यति हूयमानः च यज्ञेषु भूयः एव अभिवर्द्धते ॥

यो० । तेजस्वी पावकः श्मशानेषु अपि नैव दुष्यति यज्ञेषु हूयमानः भूयः एव अभिवर्द्धते ॥

भा० । ता० । तेजवाला अग्नि श्मशान में शवको दग्धकरताहुआ भी दूषित नहींहोता अर्थात् उसही अग्निमें यज्ञका होम कियाजाय तो पुनःवृद्धि को प्राप्तहोजाता है—इसप्रकार अनिष्टकर्मों में वर्त्तमानभी ब्राह्मणों की सदैव पूजाकरै ३१८ ॥

एवंयद्यप्यनिष्टेषुवर्तन्तेसर्वकर्मसु । सर्वथाब्राह्मणाःपूज्याःपरमंदैवतंहितत् ३१९ ॥

प० । एवं यद्यपि अनिष्टेषु वर्तन्ते सर्वकर्मसु सर्वथा ब्राह्मणाः पूज्याः परमं दैवतं हि तत् ॥

यो० । यद्यपि ब्राह्मणाः एवं अनिष्टेषु सर्वकर्मसु वर्त्तंते तथापि ब्राह्मणाः सर्वथा पूज्याःभवंति—हि (यतः) तत् (ब्राह्मण रूपं) परमं दैवतं अस्ति ॥

भा० । ता० । यद्यपि ब्राह्मण कुत्सितकर्मोंको चाहेकरैं तथापि सबप्रकारसे पूजनेयोग्यहैं क्योंकि वे ब्राह्मण परमदेवतारूपहैं—इसवचनको ब्राह्मणोंकी स्तुतिका बोधकहोनेसे यथाश्रुतअर्थमें विरोधकी शंका न करनी ३१९ ॥

क्षत्रस्यातिप्रवृद्धस्यब्राह्मणान्प्रतिसर्वशः । ब्रह्मैवसंनियन्तृस्यात्क्षत्रंहिब्रह्मसंभवम् ३२०

प० । क्षत्रस्य अतिप्रवृद्धस्य ब्राह्मणान् प्रति सर्वशः ब्रह्म एव संनियंतृ स्यात् क्षत्रं हि ब्रह्मसंभवम् ॥

यो० । ब्राह्मणान्प्रति अतिप्रवृद्धस्य सर्वशः क्षत्रस्य-संनियंतृ ब्रह्म (ब्राह्मणः) एवस्यात्हि (यतः) क्षत्रं ब्रह्मसंभवं भवति ॥

भा० । ता० । ब्राह्मणों की पीडामें प्रवृत्तहुये क्षत्रियके नियामक अर्थात् शाप वा अभिचार से शिक्षा वा दंडके दाता ब्राह्मणही होतेहैं क्योंकि ब्राह्मणोंसेही क्षत्रियकी उत्पत्तिहुईहै अर्थात् ब्रह्माकी भुजा से उत्पन्नहुये क्षत्रिय का ब्राह्मणही शिक्षकहै ३२० ॥

अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मतःक्षत्रमश्मनोलोहमुत्थितम् । तेषांसर्वत्रगंतजःस्वासुयोनिषुशाम्यति ३२१

प० । अद्भ्यः अग्निः ब्रह्मतः क्षत्रं अश्मनः लोहं उत्थितं तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति

यो० । अद्भ्यः अग्निः-ब्रह्मतः क्षत्रं-अश्मनः लोहं-उत्थितं-सर्वत्रगं तेषां तेजः स्वासुयोनिषु शाम्यति ॥

भा० । जल-ब्राह्मण-पाषाण-इनसे अग्नि-क्षत्रिय और लोहा क्रमसे उत्पन्न होते हैं और सर्वत्र इनका तेज कार्यकारी होताहै परंतु अपने पैदाकरनेवाले पूर्वोक्तों में शांत होजाता है अर्थात् कार्यकारी नहीं होता ॥

ता० । जलसे अग्निकी-ब्राह्मण से क्षत्रियकी-और अश्म (पत्थर) से लोहे (शस्त्रों) की उत्पत्ति होतीहै-इनका जो तेज सर्व व्यापि अर्थात् सर्वत्र दहन अभिभवच्छेदन आदि कार्योंको करता हैं परंतु इनके जो कारण जल और ब्राह्मण-पाषाणों में दहन-अभिभवच्छेदनरूप कार्य को नहीं करता-अर्थात् अग्नि सबको दग्ध करसक्ती है परंतु जलमें स्वयं शांत होजाती है इसीप्रकार क्षत्री सबका अभिभव करताहै परंतु ब्राह्मणका तिरस्कार करनेसे स्वयं नष्ट होजाताहै इसीप्रकार लोहे के शस्त्र सबको छेदन करतेहैं परंतु पाषाणमें स्वयं कुंठित होजातेहैं ३२१ ॥

नाब्रह्मक्षत्रमृध्नोतिनाक्षत्रंब्रह्मवर्द्धते । ब्रह्मक्षत्रंचसंपृक्तमिहचामुत्रवर्द्धते ३२२ ॥

प० । न अब्रह्म क्षत्रं ऋध्नोति न अक्षत्रं ब्रह्म वर्द्धते ब्रह्म क्षत्रं च संपृक्तं इह च अमुत्र वर्द्धते ॥

यो० । अब्रह्म क्षत्रं न ऋध्नोति अक्षत्रं ब्रह्म न वर्द्धते चपुनः संपृक्तं ब्रह्म क्षत्रं इह चपुनः अमुत्र वर्द्धते ॥

भा० । ब्राह्मणके विना-क्षत्रिय और क्षत्रियके विना ब्राह्मण नहीं बढ़सक्ता और मिलेहुये ब्राह्मण और क्षत्री दोनों लोकोंमें बढ़तेहैं ॥

ता० । ब्राह्मणके विना क्षत्रिय वृद्धिको प्राप्त नहीं होता अर्थात् ब्राह्मणके विना शांतिक और पुष्टि के जनक कर्म और व्यवहार का दर्शन आदि धर्म के न होनेसे क्षत्रीके प्रताप वृद्धि नहीं होती इसी प्रकार क्षत्रियके विना ब्राह्मणकी वृद्धि नहीं होती-क्योंकि क्षत्रीकी रक्षाके विना याग आदि कर्म ब्राह्मण स्वतंत्र होकर नहीं करसक्ता-और परस्पर मिलेहुयेही ब्राह्मण और क्षत्रिय पूर्वोक्त कर्मकी संपत्तिसे धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की प्राप्ति के द्वारा इसलोक और परलोक में वृद्धिको प्राप्तहोतेहैं-दंडप्रकरणमें यह ब्राह्मणकी स्तुति इसलिये है कि यदि ब्राह्मणही राजाहोय तो भी ब्राह्मण को लघु दंड दे ३२२ ॥

दत्त्वाधनंतुविप्रेभ्यःसर्वदण्डसमुत्थितम् । पुत्रेराज्यंसमासृज्यकुर्वीतप्रायणंरणे ३२३ ॥

प० । दत्त्वा धनं तु विप्रेभ्यः सर्वं दंडसमुत्थितं पुत्रे राज्यं समासृज्य कुर्वीत प्रायणं रणे ॥

यो० । विप्रेभ्यः दंडसमुत्थितं सर्वं धनं दत्त्वा पुत्रे राज्यं समासृज्य राजा–रणे प्रायणं (मरणं) कुर्वीत ॥

भा० । राजा मरणकी समीप अवस्था में दंडसे पैदाहुये संपूर्ण धनको ब्राह्मणोंके अर्पण और राज्यको पुत्रके अर्पण करके रणमें प्राणोंको त्यागे ॥

ता० । जिससमय राजाको उत्तम ज्ञानहो अथवा चिकित्साके अयोग्य व्याधि होजाय उससमय मृत्युको समीप देखकर महापातकी के दंडसे भिन्न जो संपूर्ण दंडका धन उसको ब्राह्मणों के अर्पण करके और पुत्रको राज्यका भार देकर उत्तम फलकी प्राप्तिके लिये संग्राम में अपने प्राणोंका त्याग राजाकरै यदि संग्राम न होय तो अनशन व्रतसे अर्थात् भोजनको त्यागकर प्राणोंको त्यागे ३२३ ॥

एवंचरन्सदायुक्तोराजधर्मेषुपार्थिवः।हितेषुचैवलोकस्यसर्वान्भृत्यान्नियोजयेत् ३२४ ॥

प० । एवं चरन् सदा युक्तः राजधर्मेषु पार्थिवः हितेषु च एव लोकस्य सर्वान् भृत्यान् नियोजयेत् ॥

यो० । राजधर्मेषु सदा युक्तः पार्थिवः एवं चरन्सन् लोकस्य हितेषु सर्वान् भृत्यान् नियोजयेत् ॥

भा० । ता० । इसप्रकार पूर्वोक्त राजधर्मों के अनुसार सदैव यत्नसे आचरण करताहुआ राजा अपने भृत्योंको संपूर्ण जगत्के कल्याण में नियुक्तकरै ३२४ ॥

एषोऽखिलःकर्मविधिरुक्तोराज्ञःसनातनः। इमंकर्मविधिंविद्यात्क्रमशोवैश्यशूद्रयोः ३२५

प० । एषः अखिलः कर्मविधिः उक्तः राज्ञः सनातनः इमं कर्मविधिं विद्यात् क्रमशः वैश्यशूद्रयोः ॥

यो० । अखिलः सनातनः राज्ञः एषः कर्मविधिः उक्तः वैश्यशूद्रयोः क्रमशः कर्मविधिं इमं विद्यात् ॥

भा० । ता० । यह संपूर्ण राजाके कर्मोंका सनातन (परंपरासे आगत) कर्त्तव्य वर्णन किया– और वैश्य शूद्रके इस कर्म विधानको क्रमसे तुम सुनो ३२५ ॥

वैश्यस्तुकृतसंस्कारःकृत्वादारपरिग्रहम्। वार्तायांनित्ययुक्तःस्यात्पशूनांचैवरक्षणे ३२६

प० । वैश्यः तु कृतसंस्कारः कृत्वा दारपरिग्रहं वार्तायां नित्ययुक्तः स्यात् पशूनां च एव रक्षणे ॥

यो० । कृतसंस्कारः वैश्यः दारपरिग्रहं कृत्वा वार्तायां चपुनः पशूनां रक्षणे नित्ययुक्तः स्यात् ॥

भा० । ता० । हुये हैं यज्ञोपवीत आदि संस्कार जिसके ऐसा वैश्य विवाहको करके वार्ता (कृषि गो रक्षा आदि) में और विशेषकर पशुओं की रक्षामें सदैव युक्त रहै ३२६ ॥

प्रजापतिर्हिवैश्यायसृष्ट्वापरिददेपशून्। ब्राह्मणायचराज्ञेचसर्वाःपरिददेप्रजाः ३२७ ॥

प० । प्रजापतिः हि वैश्याय सृष्ट्वा परिददे पशून् ब्राह्मणाय च राज्ञे च सर्वाः परिददे प्रजाः ॥

यो० । हि (यतः) प्रजापतिः पशून् सृष्ट्वा वैश्याय परिददे ब्राह्मणाय चपुनः राज्ञे सर्वाः प्रजाः सृष्ट्वापरिददे ॥

भा० । ता० । क्योंकि ब्रह्माने पशुओंको रचकर रक्षाके लिये वैश्यको दिया इससे वैश्य पशुओं की रक्षा अवश्य करै और ब्राह्मणको और क्षत्रियको और रचना करके संपूर्ण प्रजाको दिया इससे ब्राह्मण राजा दोनों मिलकर संपूर्ण प्रजाकी रक्षाकरें ३२७ ॥

नचवैश्यस्यकामःस्यान्नरक्षेयंपशूनिति। वैश्येचेच्छतिनाऽन्येनरक्षितव्याःकथंचन ३२८

प० । नँ चँ वैश्यस्यँ कामँः स्याँत् नँ रँक्षेयं पशूनँ इँति वैँश्ये चँ इच्छँति नँ अन्येनँ रक्षितव्याँः कथंचनँ ॥

यो० । अहं पशून् न रक्षेयं इति वैश्यस्य कामः न स्यात् वैश्ये पशु रक्षणं इच्छति सति अन्येन पशवः कथंचन अपि न रक्षितव्याः ॥

भा० । ता० । मैं पशुओं की रक्षा न करूंगा ऐसी इच्छाको वैश्य न करै और जबतक पशुओंकी रक्षाको वैश्य चाहै तबतक अन्य वर्णसे पशुओंकी रक्षाको राजा न करावे ३२८ ॥

मणिमुक्ताप्रवालानांलोहानांतान्तवस्यच।गन्धानांचरसानांचविद्यादर्घबलाबलम् ३२९

प० । मणिमुक्ताप्रवालानां लोहानां तान्तवस्य चँ गंधानां चँ रसानां चँ विद्यात् अर्घबलाबलम् ॥

यो० । वैश्यः मणिमुक्ताप्रवालानां लोहानां चपुनः तान्तवस्य गंधानां चपुनः रसानां अर्घबलाबलं विद्यात् ॥

भा० । ता० । मणि—मोती—मूंगा—लोहा—वस्त्र और कर्पूर आदि गंध और लवण आदि रस इन सबके मूल्यका बलाबल (न्यूनाधिक) भावको वैश्यही जाने ३२९ ॥

बीजानामुप्तिविच्चस्यात्क्षेत्रदोषगुणस्यच।मानयोगंचजानीयात्तुलायोगांश्चसर्वशः ३३०

प० । बीजानां उप्तिवित् चँ स्यात् क्षेत्रदोषगुणस्य चँ मानयोगं चँ जानीयात् तुलायोगान् चँ सर्वशः ॥

यो० । बीजानां उप्तिवित् चपुनः क्षेत्रदोषगुणस्य वेत्ता वैश्यः स्यात् चपुनः मानयोगं सर्वशः तुलायोगान् वैश्यः जानीयात् ॥

भा० । बीजों के बोने का समय खेतकेदोष और गुण और मानके उपाय और तोलने के योग इनसबको वैश्य यथार्थ रीतिसे जानै ॥

ता० । बीजों के बोने की विधिका ज्ञाता वैश्यहो अर्थात् यहबीज इसकालमें बोने से अच्छा जमताहै और इसकाल में अच्छा नहींजमता—यह विचारकरै इसीप्रकार क्षेत्रकेभी दोष और गुणों को वैश्यजानै अर्थात् यह खेत ऊषर है और यह खेत अन्नकापैदाकरनेवालाहै यहध्यानरक्खै और प्रस्थ और द्रोण आदि जो मानके उपाय हैं और जो तोलके उपाय हैं उनसबको इसलिये वैश्यजाने कि अन्य कोई मनुष्य ठग न ले ३३० ॥

सारासारंचभाण्डानांदेशानांचगुणागुणान्।लाभालाभंचपण्यानांपशूनांपरिवर्द्धनम् ३३१

प० । सारासारं चँ भांडानां देशानां चँ गुणागुणान् लाभालाभं चँ पण्यानां पशूनां परिवर्द्धनम् ॥

यो० । भांडानां सारासारं—चपुनः देशानां गुणागुणान्—पण्यानां लाभं—पशूनां परिवर्द्धनम् वैश्यः जानीयात् ॥

भा० । पात्रों के सार वा असारको—देशों के गुण अपगुणको—और विक्रेय (बेचनेयोग्य) वस्तु के लाभ अलाभको—और पशुओं की वृद्धिको—वैश्य जानै ॥

ता० । एकजातिके भी पात्रोंका सार असार अर्थात् यहपात्र उत्कृष्ट है और यह निकृष्ट है इस विशेषको—और प्राक्और पश्चिमआदि देशोंके गुण अपगुणको अर्थात् अमुकदेशमें अल्पमूल्यहै और अमुकदेश में अधिक इसको—और पण्य (विक्रय) के योग्य द्रव्योंके लाभ और अलाभ को अर्थात् इतनेकाल में यह व्ययकरनेसे हानिहोगी या वृद्धि इसको—और पशुओंकी वृद्धि अर्थात् इसदेश वा समय में इसतृण वा जल से पशुओंकी वृद्धिहोतीहै और इससे हानि इनसबको वैश्य जानै ३३१ ॥

भृत्यानांचभृतिंविद्याद्भाषाश्चविविधान्नृणाम् । द्रव्याणांस्थानयोगांश्चक्रयविक्रयमेवच ३३२

प० । भृत्यानां चँ भृतिं विद्यात् भाषाः चँ विविधाः नृणाम् द्रव्याणां स्थानयोगान् चँ क्रयविक्रयं एवँ चँ ॥

यो० । भृत्यानां भृतिं—चपुनः नृणां विविधाः भाषाः द्रव्याणां स्थानयोगान्—चपुनः क्रयविक्रयं—वैश्यः विद्यात् (जानीयात्) ॥

भा० । भृत्यों का वेतन अनेकप्रकारकी मनुष्यों की भाषा और द्रव्योंके रखनेके उपाय और क्रय विक्रय इनसबको वैश्यजाने ॥

ता० । गोपालआदि भृत्यों को इतनेकाल में इतना वेतनदेना योग्यहै इसप्रकार कार्यके अनुरूप वेतनकी और गौड दक्षिणीआदि मनुष्योंकी अनेकप्रकार की भाषा (बोली) ओंको क्योंकि देशांतर में विक्रय के लिये वेभी काम आती हैं और द्रव्योंकेस्थान और योगोंको अर्थात् यहद्रव्य इसप्रकार रक्खाजाताहै इसद्रव्यको मिलाकर रक्खाजाता है तो चिरकालतक रहता है और क्रय विक्रय को अर्थात् यहद्रव्य अमुक देश में इतनेकाल में इतना बिकताहै इनसबको वैश्यजाने ३३२ ॥

धर्मेणचद्रव्यवृद्धावातिष्ठेद्यत्नमुत्तमम् । दद्याच्चसर्वभूतानामन्नमेवप्रयत्नतः ३३३ ॥

प० । धर्मेण चँ द्रव्यवृद्धौ आतिष्ठेत् यत्नं उत्तमं दद्यात् चँ सर्वभूतानां अन्नं एवँ प्रयत्नतः ॥

यो० । धर्मेण द्रव्यवृद्धौ उत्तमं यत्नं वैश्यः आतिष्ठेत् चपुनः सर्वभूतानां प्रयत्नतः अन्नंएव दद्यात् ॥

भा० । ता० । विक्रयआदि में धर्मपूर्वकही द्रव्यकी वृद्धिमें उत्तमयत्नको वैश्यकरै—और सम्पूर्ण भूतोंको प्रयत्नसे अन्नकाही दानकरै—अर्थात् सुवर्णआदि की अपेक्षा विशेषकर अन्नदे ३३३ ॥

विप्राणांवेदविदुषांगृहस्थानांयशस्विनाम् । शुश्रूषैवतुशूद्रस्यधर्मोनैश्रेयसःपरः ३३४॥

प० । विप्राणां वेदविदुषां गृहस्थानां यशस्विनां शुश्रूषा एवँ तुँ शूद्रस्य धर्मः नैश्रेयसः परः ॥

यो० । वेदविदुषां विप्राणां चपुनः यशस्विनां गृहस्थानां शुश्रूषाएव शूद्रस्य परः नैश्रेयसः धर्मः (अस्ति)

भा० । वेदके ज्ञाता ब्राह्मणों की और अपने २ धर्म के आचरण से यशवाले गृहस्थियों की सेवा करनाही स्वर्गआदि का दाता शूद्रका परमधर्महै ३३४ ॥

शुचिरुत्कृष्टशुश्रूषुर्मृदुवागनहंकृतः । ब्राह्मणाद्याश्रयोनित्यमुत्कृष्टांजातिमश्नुते ३३५ ॥

प० । शुचिः उत्कृष्टशुश्रूषुः मृदुवाक् अनहंकृतः ब्राह्मणाद्याश्रयः नित्यं उत्कृष्टां जातिं अश्नुते ॥

यो० । शुचिः उत्कृष्ट शुश्रूषुःमृदुवाक् अनहंकृतः नित्यं ब्राह्मणाद्याश्रयः शूद्रः उत्कृष्टांजातिं अश्नुते—उत्तमोभवति इत्यर्थः ॥

भा० । ता० । देह और मनसे शुद्ध और अपने से उत्तमजाति का सेवक मृदुवचनकावक्ता अहंकारका त्यागी और ब्राह्मणआदि तीनोंवर्णोंका आश्रित (सेवक) अर्थात् विशेषकर ब्राह्मणकी और उसके अभावमें क्षत्रीकी और उसके अभावमें वैश्यकी सेवाकरताहुआ शूद्र भी उत्तमजाति को प्राप्त होताहै अर्थात् उत्तम होजाताहै ३३५ ॥

एषोऽनापदिवर्णानामुक्तःकर्मविधिःशुभः । आपद्यपिहियस्तेषांक्रमशस्तन्निबोधत ३३६॥

इतिमानवेधर्मशास्त्रेभृगुप्रोक्तायांसंहितायांनवमोऽध्यायः ९ ॥

प० एषः अनापदि वर्णानां उक्तः कर्मविधिः शुभः आपदि अपि हि यः तेषां क्रमशः तं निबोधत

यो० । वर्णानां अनापदि एषः शुभकर्मविधिः उक्तः—आपदि अपि तेषां (वर्णानां) यः कर्मविधिः तं क्रमशः यूयं निबोधत (श्रणुत) ॥

भा० । ता० अनापत्ती के समय में चारोंवर्णों का यहकर्मविधान हमनेकहा और आपत्तिकाल का भी चारों वर्णोंका जो धर्म है उसको तुम क्रमसे सुनो ३३६ ॥

इति मन्वर्थभास्करे नवमोऽध्यायः ९ ॥

अथ दशमोध्याय ॥

अधीयीरंस्त्रयोवर्णाःस्वकर्मस्थाद्विजातयः । प्रब्रूयाद्ब्राह्मणस्त्वेषांनेतराविति निश्चयः १ ॥

प० । अधीयीरन् त्रयः वर्णाः स्वकर्मस्थाः द्विजातयः प्रब्रूयात् ब्राह्मणः तु एषां न इतरौ इति निश्चयः ॥

यो० । स्वकर्मस्थाः द्विजातयः त्रयः वर्णाः वेदं अधीयीरन् तुपुनः एषां मध्ये ब्राह्मणः प्रब्रूयात् (वेदाध्ययनंकुर्यात्) इतरौ (क्षत्रियवैश्यौ) न प्रब्रूयाताम् इति निश्चयः ॥

भा० । अपने कर्म में टिकेहुये तीनों द्विजाति वर्ण वेदको पढ़ें और इनको ब्राह्मणही पढ़ावें और क्षत्रिय वैश्य न पढ़ावें यह शास्त्रकी मर्यादा है ॥

ता० । वैश्य और शूद्रके धर्मोंके कथनके पीछे संकीर्णों का धर्म कहना उचित है परंतु वर्णोंसेही संकीर्ण जाति उत्पन्न हुई हैं इससे प्रथम तीनों वर्णोंका प्रधान धर्म अध्ययन है और ब्राह्मण का प्रधान धर्म अध्यापन अर्थात् वेदका पढ़ना और पढ़ाना इसका वर्णन करते हैं वेदके पढ़नेसे जाने हुये अपने २ कर्मको करनेवाले ब्राह्मण आदि तीनोंवर्ण वेदको पढ़ें और इनतीनोंके मध्यमें ब्राह्मण ही वेदका अध्यापन (पढ़ाना) करावे और क्षत्रिय और वैश्य वेदको न पढ़ावें यह शास्त्रकी मर्यादाहै इस वचनमें ब्राह्मणही पढ़ावे यह कहनेसे सूचित किया कि क्षत्रिय वैश्य न पढ़ावें यह निषेध सिद्ध था फिर दुबारा क्षत्रिय वैश्य न पढ़ावें यह निषेध जो कहाहै उसका यह अभिप्रायहै कि यदि क्षत्रिय वैश्य पढ़ावें तो प्रायश्चित्त के भागी होजायँगे १ ॥

सर्वेषांब्राह्मणोविद्याद्वृत्त्युपायान्यथाविधि । प्रब्रूयादितरेभ्यश्चस्वयंचैवतथाभवेत् २ ॥

प० । सर्वेषां ब्राह्मणः विद्यात् वृत्त्युपायान् यथाविधि प्रब्रूयात् इतरेभ्यः च स्वयं च एव तथा भवेत् ॥

यो० । ब्राह्मणः सर्वेषां यथाविधि वृत्त्युपायान् विद्यात् चपुनः इतरेभ्यः प्रब्रूयात् स्वयं च (अपि) तथा भवेत् ॥

भा० । ता० । संपूर्ण वर्णोंकी वृत्तीके उपायोंको अर्थात् जीविकाके उद्योगोंको शास्त्रके अनुसार ब्राह्मण जाने और इतर वर्णोंको उपदेश करै और आप भी शास्त्रोक्त नियम पर ही टिके २ ॥

वैशेष्यात्प्रकृतिश्रैष्ठ्यान्नियमस्यचधारणात् । संस्कारस्यविशेषाच्चवर्णानांब्राह्मणःप्रभुः ३ ॥

प० । वैशेष्यात् प्रकृतिश्रैष्ठ्यात् नियमस्य च धारणात् संस्कारस्य विशेषात् च वर्णानां ब्राह्मणः प्रभुः ॥

यो० । वैशेष्यात्—प्रकृतिश्रैष्ठ्यात्—नियमस्य धारणात् चपुनः संस्कारस्य विशेषात् वर्णानां प्रभुः ब्राह्मणः अस्ति ॥

भा० । जातिकी विशेषता और उन्नतिकी श्रेष्ठता और वेदका पठन और पाठन गर्भाधान आदि संस्कारोंकी अधिकतासे चारोंवर्णोंका ईश्वर ब्राह्मण है ॥

ता० । जातिकी विशेषता और प्रकृति (कारण) की श्रेष्ठता अर्थात् ब्रह्माके उत्तम अंग (मुख) से उत्पन्न होना और नियमका धारण अर्थात् वेदकापठन और पाठन व्याख्यानकरना और संस्कारों की विशेषता इनसे ब्राह्मणही चारोंवर्णोंका ईश्वर है इसश्लोकमें नियमपदसे वेदकाग्रहणहै क्योंकि पहिले भी—ब्रह्मणश्चैवधारणात्—इस श्लोकमें वेदके धारणसेही ब्राह्मणकी उत्तमता कही है गोविंदराजने तो नियमपदसे स्नातकके व्रतलिये हैं सो ठीक नहीं है क्योंकि क्षत्री और वैश्यके साधारण यज्ञोपवीत संस्कारहोनेसे क्षत्री आदि की अपेक्षा अग्न्याधान आदि स्नातकके व्रतोंकेकहनेमें विरोध आवेगा अर्थात् ये सब नियम तीनों द्विजातियोंको कर्त्तव्य हैं इससे यही ठीक है कि वर्णोंको वेदपढ़ाना और जीविकाका उपदेश करना इनसेही ब्राह्मणको तीनोंवर्णोंका ईश्वर कहना उचित है ३ ॥

ब्राह्मणःक्षत्रियोवैश्यस्त्रयोवर्णाद्विजातयः। चतुर्थएकजातिस्तुशूद्रोनास्तितुपञ्चमः ४॥

प० । ब्राह्मणः क्षत्रियः वैश्यः त्रयः वर्णाः द्विजातयः चतुर्थः एकजातिः तु शूद्रः न अस्ति तु पंचमः ॥

यो० । ब्राह्मणः क्षत्रियः वैश्यः एते त्रयोवर्णाः द्विजातयः संति चतुर्थः शूद्रस्तु एक जातिः अस्ति पंचमस्तु न अस्ति॥

भा० । ता० । ब्राह्मण और क्षत्री वैश्य ये तीनों वर्ण द्विजाती होतेहैं क्योंकि ये तीनों यज्ञोपवीत में दुबारा पैदा होतेहैं और चौथा वर्ण शूद्र तो एक जाति होताहै क्योंकि इसको यज्ञोपवीतका अधिकार न होनेसे एकबारही जन्म होताहै और पांचवां कोई वर्ण पृथिवी पर नहीं है और संकीर्ण जाति तो माता और पिता से भिन्नही जाति होती हैं जैसे अश्व गधी के संगसे खिच्चर ४ ॥

सर्ववर्णेषुतुल्यासुपत्नीष्वक्षतयोनिषु। आनुलोम्येनसंभूताजात्याज्ञेयास्तएवते ५ ॥

प० । सर्ववर्णेषु तुल्यासु पत्नीषु अक्षतयोनिषु आनुलोम्येन संभूताः जात्या ज्ञेयाः ते एव ते ॥

यो० । सर्ववर्णेषु अक्षतयोनिषु तुल्यासु पत्नीषु आनुलोम्येन संभूताः ते (ब्राह्मणादयः) ते एव ज्ञेयाः ॥

भा० । संपूर्ण वर्णोंमें अक्षतयोनि सजातीय पत्नियों में क्रमसे पैदाहुये ब्राह्मण आदि चारोंवर्ण ब्राह्मण आदि जातिवालेही होतेहैं ॥

ता० । ब्राह्मण आदि चारोंवर्णोंमें शास्त्रके अनुसार विवाहीहुई अक्षतयोनि (विवाहसे पहिले जिनको पुरुषका संबंध न हुआहो) पत्नियोंमें अनुलोमरीतिसे (अर्थात् ब्राह्मणसे ब्राह्मणी में और क्षत्रीसे क्षत्रियामें—इसक्रमसे पैदाहुये जो ब्राह्मण आदि वर्णहैं वे जातिसे ब्राह्मण आदिही जानने इस श्लोकसे ब्राह्मण आदि वर्णोंका लक्षण मनुजीने कहा है क्योंकि जैसे गौ आदि पशुओंके अवयवोंकी विशेषतासे जातिका भेद जानाजाताहै इसीप्रकार का कोई अवयव ब्राह्मण आदि वर्णों में नहीं है जिससे ब्राह्मण आदि जाति भिन्न २ जानीजायँ और इस वचनमें पत्नीके ग्रहणसे मनुजी ने यह बोधनकियाहै कि अन्यकी पत्नीमें पैदाहुये ब्राह्मण आदि भी नहीं कहातेहैं किंतु उनकी भिन्न जातिही होजाती है क्योंकि देवलऋषिने इस[1] वचनसे यह कहा है कि जो पुत्र समान वर्णकी स्त्रीमें दूसरे वर्णसे पैदाहो उसे अवावट कहते हैं और वह जातिसे शूद्र होताहै और स्वतंत्र (व्यभिचारिणी)स्त्रियोंमें सजातीय पुरुषसे कियेहुये पुत्र भी यज्ञोपवीत संस्कारोंसे रहित होतेहैं और वे आर्यों के

---

१ द्वितीयेनतुयःपित्रासवर्णायांप्रजायते। अवावटइतिख्यातःशूद्रधर्मासजातितः॥ व्रतहीनानसंस्कार्याःस्वतंत्रास्वपियेसुताः। उत्पादिताःसवर्णेनजात्याइवबहिष्कृताः॥

समान जातिसे बाहिर होतेहैं और व्यासजी ने भी इसे वचनसे यह कहा है कि जो पुत्र सजाति स्त्रियोंमें व्यभिचारसे पैदाहुये हैं वे संस्कारके योग्य होतेहैं और याज्ञवल्क्य ऋषिने भी इने वचनों से यह कहा है कि सजाति स्त्रियोंमें सजाति पुरुषों से पैदाहुये पुत्र वेही सजातीय होतेहैं जो शास्त्रोक्तरीतिसे विवाही स्त्रीमें पैदाहुये हों ५ ॥

स्त्रीष्वनन्तरजातासुद्विजैरुत्पादितान्सुतान् । सदृशानेवतानाहुर्मातृदोषविगर्हितान् ६

प० । स्त्रीषुं अनंतरजाँतासु द्विजैः उत्पादितान् सुतान् सदृशान् एव तान् आहुः मातृदोषविगर्हितान् ॥

यो० । अनन्तरजातासु स्त्रीषु द्विजैः उत्पादितान् सुतान् मातृदोषविगर्हितान् तान् मन्वादयः सदृशान् एव आहुः ॥

भा० । अपनेसे अनन्तर वर्णकी स्त्रियोंमें द्विजोंने जो पुत्र पैदाकियेहों उनको पिताके तुल्य और माताके दोषसे निंदित मन्वादिकोंने कहाहै ॥

ता० । अनुलोमसे अव्यवहितवर्ण की स्त्रियोंमें द्विजातियोंने जो पुत्र पैदाकियेहों जैसे ब्राह्मणने क्षत्रियामें और क्षत्री ने वैश्यामें उनपुत्रों को माताके दोषसे निंदित और पिताके सदृश मन्वादिकों ने कहा है अर्थात् वे पिताकेतुल्य होते हैं पिताके सजातीय नहींहोते और पिताकेतुल्य कहनेसे मनुजीका यह अभिप्राय है कि माताकी जातिसे उत्तम और पिताकी जातिसे निकृष्टजानने और याज्ञवल्क्यऋषिने इनके नाम क्रमसे ये कहेहैं कि मूर्द्धाभिषिक्त—माहिष्य—कर्ण—और इनकीवृत्ति ये कही हैं कि हाथी घोड़े रथ इनकी शिक्षा और अस्त्रोंका धारण ये वृत्ति मूर्द्धाभिषिक्तकी और माहिष्य की वृत्ति नृत्य, गीत, नक्षत्रोंसे जीवन, और खेतकीरक्षा, और पारशव, उग्र, और कर्ण इनकीवृत्ति धन, और अन्नकी अध्यक्षता और राजाकी सेवा और अन्तःपुर की रक्षा होती है ६ ॥

अनन्तरासुजातानांविधिरेषसनातनः । द्व्येकान्तरासुजातानांधर्म्यंविद्यादिमंविधिम् ७

प० । अनंतरासुं जातानां विधिः एषः सनातनः द्व्येकान्तरासु जातानां धर्म्यं विद्यात् इमं विधिम् ॥

यो० । अनंतरासु जातानां पुत्राणां एषः सनातनः विधिः उक्तः द्व्येकान्तरासु जातानां इमं विधिं धर्म्यं विद्यात् ॥

भा० । ता० । अनंत वर्णकी स्त्रीमें पैदाहुये पुत्रोंकी यह सनातन विधिकही और दोवर्णोंके अंतर की स्त्रियोंमें पैदाहुये पुत्रोंकी इस (जो आगे कहेंगे) विधिको धर्म के अनुकूल जाने जैसे ब्राह्मण से वैश्या वा शूद्रामें और क्षत्रीसे शूद्रामें उत्पन्नोंकी यह विधि जाननी कि ७ ॥

ब्राह्मणाद्वैश्यकन्यायामम्बष्ठोनामजायते । निषादःशूद्रकन्यायांयःपारशवउच्यते ८ ॥

प० । ब्राह्मणात् वैश्यकन्यायां अम्बष्ठः नाम जायते निषादः शूद्रकन्यायां यः पारशवः उच्यते ॥

यो० । ब्राह्मणात् वैश्यकन्यायां अम्बष्ठः जायते ब्राह्मणात् शूद्रकन्यायां सः निषादः जायते यः बुधैः पारशवः उच्यते ॥

भा० । ता० । विवाही हुई वैश्यकी कन्यामें ब्राह्मणसे जो उत्पन्नहो उसे अम्बष्ठ कहते हैं और विवाही हुई शूद्रकन्यामें जो पैदाहो उसे निषाद कहते हैं और उसीको पारशव कहते हैं और इस

---

१ येतुजाताःसमानासुसंस्कार्याःस्युरतोऽन्यथा ॥

२ सवर्णेभ्यःसवर्णासुजायंतेहिसजातयः - विन्नास्वेषविधिःस्मृतः ॥

श्लोक में यद्यपि वैश्य और शूद्रकी कन्याओंकाही ग्रहण है तथापि इसे याज्ञवल्क्य के वचनके अनुसार विवाही हुई कन्या समझनी ८ ॥

क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायांक्रूराचारविहारवान्।क्षत्रशूद्रवपुर्जन्तुरुग्रोनामप्रजायते ९ ॥

प०। क्षत्रियात् शूद्रकन्यायां क्रूराचारविहारवान् क्षत्रशूद्रवपुः जंतुः उग्रः नाम प्रजायते ॥

यो०। क्षत्रियात् शूद्रकन्यायां क्रूराचारविहारवान् क्षत्रशूद्रवपुः उग्रः नाम जंतुः प्रजायते ॥

भा०। ता०। क्षत्री से विवाही हुई शूद्रकी कन्यामें कठोर आचरण और कर्मवाला क्षत्री और शूद्रका स्वभाव उग्रहै नाम जिसका ऐसा जंतु पैदा होताहै ९ ॥

विप्रस्यत्रिषुवर्णेषुनृपतेर्वर्णयोर्द्वयोः। वैश्यस्यवर्णेचैकस्मिन्षडेतेऽपसदाःस्मृताः १० ॥

प०। विप्रस्य त्रिषु वर्णेषु नृपतेः वर्णयोः द्वयोः वैश्यस्य वर्णे च एकस्मिन् षट् एते अपसदाः स्मृताः॥

यो०। विप्रस्य त्रिषु वर्णेषु--नृपतेः द्वयोः वर्णयोः--चपुनः वैश्यस्य एकस्मिन् वर्णे उत्पन्नाः एते षट् अपसदाः मन्वादिभिः स्मृताः ॥

भा०। ता०। ब्राह्मणसे तीनोंवर्णकी स्त्रियोंमें क्षत्रीसे दोवर्णकी स्त्रियोंमें और वैश्यसे एकःवर्णकी स्त्रीमें जो पुत्रपैदाहोतेहैं वे छओंमनु आदिकोंने निकृष्टकहेहैं अर्थात् सजातीयपुत्रोंसे अधमहोतेहैं १०॥

क्षत्रियाद्विप्रकन्यायांसूतोभवतिजातितः। वैश्यान्मागधवैदेहौराजविप्रांगनासुतौ ११॥

प०। क्षत्रियात् विप्रकन्यायां सूतः भवति जातितः वैश्यात् मागधवैदेहौ राजविप्रांगनासुतौ ॥

यो०। विप्रकन्यायां क्षत्रियात् जातितः सूतः भवति वैश्यात् राजविप्रांगनासुतौ मागधवैदेहौ भवतः ॥

भा०। ता०। अनुलोमसे पैदाहुये पुत्रोंको कहकर प्रतिलोमसे पैदाहुये पुत्रोंको कहतेहैं कि क्षत्री से ब्राह्मणकी कन्यामें जातिसे सूत होताहै और वैश्यसे क्षत्रीकी कन्यामें मागध (भाट) और ब्राह्मण कन्यामें वैदेह होताहै इनकी वृत्ति मनुजी कहेंगे ११ ॥

शूद्रादायोगवःक्षत्ताचण्डालश्चाधमोनृणाम्।वैश्यराजन्यविप्रासुजायंतेवर्णसंकराः१२

प०। शूद्रात् आयोगवः क्षत्ता चण्डालः च अधमः नृणां वैश्यराजन्यविप्रासु जायन्ते वर्णसंकराः॥

यो०। शूद्रात् वैश्यराजन्यविप्रासु नृणां अधमः आयोगवः क्षत्ता चपुनः चंडालः क्रमेण वर्णसंकराः पुत्राः जायंते ॥

भा०। ता०। शूद्रसे वैश्य— क्षत्रिय—और ब्राह्मणकी कन्याओंमें क्रमसे पैदाहुये पुत्र आयोगव—क्षत्ता—और चण्डाल होतेहैं और ये मनुष्यों में नीच और वर्णसंकर होते हैं १२ ॥

एकान्तरेत्वानुलोम्यादम्बष्ठोग्रौयथास्मृतौ।क्षत्तृवैदेहकौतद्वत्प्रातिलोम्येऽपिजन्मनि १३

प०। एकान्तरे तु आनुलोम्यात् अंबष्ठोग्रौ यथा स्मृतौ क्षत्तृवैदेहकौ तद्वत् प्रातिलोम्ये अपि जन्मनि॥

यो०। यथा आनुलोम्यात् एकान्तरे अंबष्ठोग्रौस्मृतौ तद्वत् प्रातिलोम्ये अपिक्षत्तृवैदेहकौस्मृतौ ॥

भा०। अनुलोम विधिसे एक वर्णके व्यवधान में पैदाहुये अंबष्ठ—और उग्र जैसे स्पर्श के योग्य कहेहैं इसीप्रकार प्रतिलोम विधिसे पैदाहुये क्षत्ता और वैदेह को भी स्पर्शके योग्य मनु आदिकों ने कहा है ॥

---

१ विप्रास्वेषविधिःस्मृतः ॥

ता० । जैसे एक वर्णके व्यवधान में ब्राह्मणसे वैश्यकी कन्यामें अंबष्ठ और क्षत्रीसे शूद्रकी कन्या में उग्र होतेहैं अर्थात् ये दोनों जैसे स्पर्शके योग्य होते हैं इसीप्रकार एक वर्णके व्यवधान में अनुलोम जन्ममें भी अर्थात् शूद्रसे क्षत्रियामें क्षत्ता और वैश्यसे ब्राह्मणी में वैदेह ये दोनों भी स्पर्श के योग्य होतेहैं एकवर्णके व्यवधान में जब स्पर्शकी आज्ञाहै तो अनन्तर वर्णमें पैदाहुये पुत्रोंको स्पर्श करने में कुछ दोष नहीं है इससे एक चांडालही स्पर्श करने के अयोग्य होताहै १३ ॥

पुत्रायेऽनन्तरस्त्रीजाःक्रमेणोक्ताद्विजन्मनाम् ।ताननन्तरनाम्नस्तुमातृदोषात्प्रचक्षते १४

प० । पुत्राः ये अनन्तरस्त्रीजाः क्रमेण उक्ताः द्विजन्मनां तान् अनन्तरनाम्नः तु मातृदोषात् प्रचक्षते ॥

यो० । ये पुत्राः क्रमेण अनन्तरस्त्रीजाः द्विजन्मनां उक्ताः तान् मातृदोषात् अनन्तरनाम्नः प्रचक्षते ॥

भा० । ता० । अनन्तरवर्णकी स्त्रियों में क्रमसे पैदाहुये जो पुत्र द्विजातियोंके कहे हैं उनको माताके दोषसे जिस अनन्तर वर्णकी स्त्रियों में पैदाहुये हों उन स्त्रियों केही जातिवाले कहते हैं यद्यपि ये माता पिताकी जातिसे भिन्न संकीर्ण जाति होतेहैं तथापि इनको माताकी जातिवाले इसलिये कहाहै कि इनके संस्कार माताकी जातिकेही अनुसार होतेहैं १४ ॥

ब्राह्मणादुग्रकन्यायामावृतोनामजायते । आभीरोऽम्बष्ठकन्यायामायोगव्यांतुधिग्वणः १५

प० । ब्राह्मणात् उग्रकन्यायां आवृतः नाम जायते आभीरः अंबष्ठकन्यायां आयोगव्यां तु धिग्वणः

यो० । ब्राह्मणात् उग्रकन्यायां आवृतः नाम-अंबष्ठकन्यायां आभीरः आयोगव्यां धिग्वणः जायते ॥

भा० । ता० । ब्राह्मणसे उग्रकन्यामें अर्थात् क्षत्रीसे शूद्रामें पैदाहुई कन्यामें जो पुत्र पैदाहोता है उसे आवृत कहते हैं और ब्राह्मणसे अंबष्ठकन्या (ब्राह्मण से वैश्यामें पैदाहुई) में पैदाहुआ पुत्र आभीर होताहै और आयोगवी (शूद्रसे वैश्या में पैदाहुई) कन्यामें ब्राह्मणसे पैदाहुआपुत्र धिग्वण होताहै १५ ॥

आयोगवश्चक्षत्ताचचण्डालश्चाधमोनृणाम् । प्रातिलोम्येनजायन्तेशूद्रादपसदास्त्रयः १६

प० । आयोगवः च क्षत्ता च चंडालः च अधमः नृणां प्रातिलोम्येन जायंते शूद्रात् अपसदाः त्रयः ॥

यो० । शूद्रात् प्रातिलोम्येन आयोगवः-क्षत्ता-चपुनः नृणां अधमः चंडालः एतेत्रयः अपसदाः (नीचशूद्राः) जायंते ॥

भा० । ता० । शूद्रसे वैश्य-क्षत्री-और ब्राह्मण इनकी कन्याओं में प्रतिलोम विधिसे पैदाहुये मनुष्यों में नीच आयोगव-क्षत्ता-और चंडाल-ये तीनोंनीच शूद्र होतेहैं-यद्यपि पहिलेभी ये तीनों वर्णसंकर कहे हैं तथापि इनका पुनः इसलिये कथनहै कि ये तीनों पुत्र कार्य के योग्य होते हैं इसी प्रकार अगले श्लोकमें भी जानना १६ ॥

वैश्यान्मागधवैदेहौक्षत्रियात्सूतएवतु । प्रतीपमेतेजायन्तेपरेऽप्यपसदास्त्रयः १७ ॥

प० । वैश्यात् मागधवैदेहौ क्षत्रियात् सूतः एव तु प्रतीपं एते जायंते परे अपि अपसदाः त्रयः ॥

यो० । वैश्यात् क्षत्रियायां चपुनः ब्राह्मण्यां क्रमेण उत्पन्नौ—मागधवैदेहौ तुपुनः क्षत्रियात् ब्राह्मण्यां उत्पन्नः सूतः परे अपि एते त्रयः प्रतीपं अपसदाः जायंते ॥

भा० । ता० । वैश्य से क्षत्रीकी कन्यामें पैदाहुआ और ब्राह्मण की कन्यामें पैदाहुआ वैदेह और

क्षत्रीसे ब्राह्मणीमें पैदाहुआ सूत प्रतिलोम विधिसे पैदाहुये ये तीनोंभी नीचहोतेहैं अर्थात् पुत्रकार्य करनेमें किंचित् योग्य होतेहैं १७॥

जातोनिषादाच्छूद्रायांजात्याभवतिपुक्कशः। शूद्राज्जातोनिषाद्यांतुसवैकुक्कुटकःस्मृतः १८

प०। जातः निषादात् शूद्रायाँ जात्या भवति पुक्कशः शूद्रात् जातः निषाद्यां तु सः वै कुक्कुटकः स्मृतः॥

यो०। निषादात् शूद्रायां जातः पुत्रः जात्या पुक्कशः भवति शूद्रात् निषाद्यां जातः यः पुत्रः सः मन्वादिभिः कुक्कुटकः स्मृतः॥

भा०। ता०। निषादसे शूद्रकी कन्यामें पैदाहुआ पुत्र जातिसे पुक्कशहोता है और शूद्रसे निषाद की कन्यामें पैदाहुआ जो पुत्र वह मन्वादिकों ने कुक्कुटककहा है ये दोनों अत्यन्त निकृष्टजाति होते हैं १८॥

क्षत्तुर्जातस्तथोग्रायांश्वपाकइतिकीर्त्यते। वैदेहकेनत्वम्बष्ठ्यामुत्पन्नोवेणउच्यते १९॥

प०। क्षत्तुः जातः तथा उग्रायाँ श्वपाकः इति कीर्त्यते वैदेहकेन तु अंबष्ठ्याँ उत्पन्नः वेणः उच्यते॥

यो०। तथा क्षत्तुः सकाशात् उग्रायांजातः पुत्रः श्वपाकः इतिकीर्त्यते वैदेहकेन अंबष्ठ्यां उत्पन्नः पुत्रः वेणः उच्यते॥

भा०। ता०। शूद्रसे वैश्यकीकन्यामें उत्पन्नको क्षत्ता और क्षत्रीसे शूद्रामें पैदाहुई कन्याको उग्रा कहतेहैं क्षत्तासे उग्राकन्या में जो पैदाहो उसको श्वपाक कहते हैं—और वैदेहसे अंबष्ठ (ब्राह्मण से वैश्या में पैदाहुई) कन्यामें उत्पन्नहुये पुत्रको वेणकहते हैं १९॥

द्विजातयःसवर्णासुजनयन्त्यव्रतांस्तुयान्। तान्सावित्रीपरिभ्रष्टान्व्रात्यानितिविनिर्दिशेत् २०

प०। द्विजातयः सवर्णासु जनयन्ति अव्रतान् तु यान् तान् सावित्रीपरिभ्रष्टान् व्रात्यान् इति विनिर्दिशेत्॥

यो०। द्विजातयः सवर्णासु यान् पुत्रान् जनयन्ति सावित्रीपरिभ्रष्टान् अव्रतान् तान् व्रात्यान् इति विनिर्दिशेत्॥

भा०। ता०। तीनोंद्विजाति अपने २ वर्णकी स्त्रियोंमें जिनपुत्रों को पैदाकरतेहैं यदि वे यज्ञोपवीत संस्कारसेहीन और गायत्रीसे रहितहों तो उनपुत्रोंको व्रात्य कहतेहैं यद्यपि इसश्लोकसे व्रात्य का लक्षण पहिले भी कहआयेहैं तथापि इससंकीर्ण प्रकरणमें इसलिये पुनः व्रात्यका लक्षणकहा है कि प्रतिलोमविधिसे पैदाहुये पुत्रके समान व्रात्यपुत्र भी पिताका उपकारी नहींहोता २०॥

व्रात्यात्तुजायतेविप्रात्पापात्माभूर्जकण्टकः। आवन्त्यवाटधानौचपुष्पधःशैपएवच २१॥

प०। व्रात्यात् तु जायते विप्रात् पापात्मा भूर्जकंटकः आवन्त्यवाटधानौ च पुष्पधः शैपः एव च॥

यो०। व्रात्यात् विप्रात् ब्राह्मण्यां पापात्मा भूर्जकंटकः आवन्त्यवाटधानौ पुष्पधः चपुनः शैपः जायते॥

भा०। ता०। व्रात्यब्राह्मण से ब्राह्मणी में पापी भूर्जकंटक और आवन्त्यवाटधान—पुष्पध और शैषहोताहै अर्थात् देशों के भेदसे उसके भूर्जकंटकआदि पांचनाम होतेहैं २१॥

झल्लोमल्लश्चराजन्याद्व्रात्यान्निच्छिविरेवच। नटश्चकरणश्चैवखसोद्राविडएवच २२

१ अतऊर्ध्वंत्रयोप्येते यथाकालमसंस्कृताः सावित्रीपतिताव्रात्या भवंत्यार्यविगर्हिताः॥

प० । झल्लः मल्लः चँ राजन्यात् व्रात्यात् निच्छिविः एवँ चँ नटः चँ करणः चँ एवँ खसः द्रविडः एवँ चँ ॥

यो० । व्रात्यात् राजन्यात् सजातीयायां झल्लः—मल्लः—निच्छिविः—नटः—करणः खसः चपुनः द्रविडः जायते ॥

भा० । ता० । व्रात्य क्षत्री से सजातीय स्त्रीमें पैदाहुआ पुत्र झल्ल मल्ल—नट—करण—खस—और द्रविड—होताहै अर्थात् देश के भेदसे उसके झल्लआदि सातनाम होतेहैं २२ ॥

वैश्यात्तुजायतेव्रात्यात्सुधन्वाचार्यएवच । कारूषश्चविजन्माचमैत्रःसात्वतएवच२३ ॥

प० । वैश्यात् तुँ जायँते व्रात्यात् सुधन्वा चार्यः एवँ चँ कारूषः चँ विजन्मा चँ मैत्रः सात्वतः एवँ चँ ॥

यो० । व्रात्यात् वैश्यात् सवर्णायां उत्पन्नः पुत्रः सुधन्वा चार्यः कारूषः—विजन्मा—मैत्रः—चपुनः सात्वतः जायते ॥

भा० । ता० । व्रात्य वैश्य से सजातीय स्त्रीमें (विवाहीहुई) पैदाहुये पुत्रको सुधन्वा चार्य—कारूष, विजन्मा—मैत्र और सात्वत कहते हैं अर्थात् देशोंके भेदसे उसके ये नाम होते हैं २३ ॥

व्यभिचारेणवर्णानामवेद्यावेदनेनच । स्वकर्मणांचत्यागेनजायन्तेवर्णसंकराः २४ ॥

प० । व्यभिचारेणँ वर्णानाँ अवेद्यावेदनेनँ चँ स्वकर्मणाँ चँ त्यागेनँ जायँते वर्णसंकराः ॥

यो० । वर्णानां व्यभिचारेण अवेद्यावेदनेन चपुनः स्वकर्मणां त्यागेन वर्णसंकराः जायंते ॥

भा० । ता० । ब्राह्मणआदि वर्णोंके व्यभिचार (परस्पर स्त्रीकेगमनसे) और अपनेगोत्रकीकन्या के विवाहसे वर्णसंकर पैदाहोतेहैं इससे इससंकीर्णप्रकरण में व्रात्योंका वर्णन भी उचित है २४ ॥

संकीर्णयोनयोयेतुप्रतिलोमानुलोमजाः । अन्योन्यव्यतिषक्ताश्चतान्प्रवक्ष्याम्यशेषतः२५ ॥

प० । संकीर्णयोनयः ये तुँ प्रतिलोमानुलोमजाः अन्योन्यव्यतिषक्ताः चँ तान् प्रवक्ष्यामि अशेषतः

यो० । प्रतिलोमानुलोमजाः चपुनः अन्योन्यव्यतिषक्ताः ये संकीर्णयोनयः संति तान् अशेषतः प्रवक्ष्यामि ॥

भा० । ता० । प्रतिलोम अनुलोमसे और अनुलोमविधिद्वारा परस्पर सम्बंधसे जो संकीर्णयोनि पैदाहोतेहैं उनसम्पूर्णों को मैं कहताहूं २५ ॥

सूतोवैदेहकश्चैवचण्डालश्चनराधमः । मागधःक्षत्तृजातिश्चतथाऽऽयोगवएवच २६ ॥

प० । सूतः वैदेहकः चँ एवँ चंडालः चँ नराधमः मागधः क्षत्तृजातिः चँ तथा आयोगवः एवँ चँ ॥

यो० । सूतः, वैदेहकः, चपुनः नराधमः चंडालः मागधः क्षत्तृजातिः—तथा आयोगवः एते संकीर्णयोनयो भवंति ॥

भा० । ता० । सूत—वैदेहक—मनुष्यों में नीच चंडाल—मागध—और क्षत्ता—आयोगव ये छः संकीर्ण योनि होतेहैं २६ ॥

एतेषट्सदृशान्वर्णान्जनयन्तिस्वयोनिषु । मातृजात्यांप्रसूयन्तेप्रवरासुचयोनिषु२७ ॥

प० । एते षट् सदृशान् वर्णान् जनयँन्ति स्वयोनिषुँ मातृजात्यां प्रसूयँन्ते प्रवरासुँ चँ योनिषुँ ॥

यो० । एते षट् स्वयोनिषु सदृशान् वर्णान् जनयंति मातृजात्यां चपुनः प्रवरासु योनिषु प्रसूयंते ॥

भा० । ये पूर्वोक्त सूतआदि छः अपनी २ योनियों में और अपनेसे उत्तमयोनियोंमें अपनेसमान पुत्रोंको पैदाकरतेहैं और उनपुत्रोंकी वहीजाति होतीहै जो माताकी होतीहै अर्थात् पिताकी जातिसे भी नीच इनकी संतान होती है ॥

ता० । प्रतिलोमसे पैदाहुये ये सूतआदि छः अपनी २ योनि (जाति) योंमें अपने समान पुत्रों को पैदाकरतेहैं शूद्रसे वैश्यामें आयोगव होताहै और आयोगवी में माताकी वैश्यजाति में और उत्तम क्षत्रिया ब्राह्मणीमें ये पूर्वोक्त छओं पैदाहोतेहैं और शूद्रजातिमें भी अपने सदृश पैदाहोते हैं अर्थात् इनसे जो सन्तान होतीहै वह माता की सदृश होती है पिताकी सदृशनहीं किंतु माताकी जाति में पितासे अधिक निंदितपुत्रकी उत्पत्ति आगे मनुजी कहेंगे इससे येभी माताकेतुल्य पितासेहीन पुत्रों को पैदाकरतेहैं नीचवर्णसे उत्तमवर्णकी स्त्रीमें प्रतिलोमविधिसे पैदाहुये आयोगवआदि दुष्टकर्मवाले होते हैं और दुष्टकर्मवाले माता पिताओंसे पैदाहुआ जो आयोगव वह इसप्रकार अधिकदुष्ट होता है जैसे ब्रह्महत्यारे माता पिताओंसे पैदाहुआ ब्रह्महत्यारापुत्र–और शुद्धब्राह्मणजाति की स्त्री में पैदा हुआ जो पुत्र वहचाहे दुष्टकर्मा माता पिताओंसे भी पैदाहो तोभी माता पिताओंसे अधिक दुष्टनहीं होसक्ता क्योंकि उसके माता पिताओं की जाति बनी रहती है और सत्संगआदि से वह उत्तम भी होसक्ताहै २७ ॥

यथात्रयाणांवर्णानांद्वयोरात्मास्यजायते।आनन्तर्यात्स्वयोन्यांतुतथाबाह्येष्वपिक्रमात् २८

प० । यथा त्रयाणां वर्णानां द्वयोः आत्मा अस्य जायते आनंतर्यात् स्वयोन्यां तु तथा बाह्येषु अपि क्रमात् ॥

यो० । यथा त्रयाणां वर्णानां द्वयोः वर्णयोः आनंतर्यात् स्वयोन्यां अस्य (ब्राह्मणस्य) आत्माजायते तथा बाह्येषु अपि क्रमात् अस्य आत्माजायते ॥

भा० । तीनोंवर्णों की अथवा दोनोंवर्णों की स्त्रियों में और अपनीयोनियों में ब्राह्मण का जैसा आत्मा (द्विज) होताहै अर्थात् विजातीय स्त्रीके पुत्रमें जितनी हीनता पिताकी अपेक्षा होतीहै उतनीही हीनता क्षत्री और वैश्योंमें भी क्षत्री और वैश्यसे ब्राह्मणी और क्षत्रियामें पैदाहुये पुत्रोंमें भी होतीहै ॥

ता० । जैसे क्षत्री वैश्य शूद्र इनतीनोंवर्णोंकी और क्षत्री वैश्य इनदोनोंवर्णों की स्त्रियों में अनुलोमविधि से और अपनी और सजातिय ब्राह्मणीमें इसब्राह्मणका आत्मा पैदा होताहै तिसीप्रकार क्षत्रिय और वैश्यसे वा वैश्य और क्षत्री से क्षत्रिया ब्राह्मणीमें पैदाहुये पुत्रोंमेंभी वैसाही क्षत्री और वैश्यका आत्माहोताहै अर्थात् पिताकी जातिसे उनपुत्रोंमें उतनी जातिकी उत्तमता नहींरहती जितनी इनके पिताकी जातिमें थी यहवचन इसलियेहै कि शूद्रसे पैदाहुये प्रतिलोमकी अपेक्षा द्विजों से पैदाहुआ प्रतिलोम श्रेष्ठहोताहै मेधातिथिने तो यहकहाहै कि यहवचन इसलियेहै कि येभी द्विज होते हैं इनका यज्ञोपवीत संस्कारभी होताहै सो ठीकनहीं क्योंकि इस गौतमऋषि के वचनसे प्रतिलोम से पैदाहुये पुत्रोंको यज्ञोपवीत से हीनकहाहै इससे इनके संस्कार का निषेध है २८ ॥

तेचापिबाह्यान्सुबहूंस्ततोऽप्यधिकदूषितान्। परस्परस्यदारेषुजनयन्तिविगर्हितान्२९॥

प० । ते च अपि बाह्यान् सुबहून् ततः अपि अधिकदूषितान् परस्परस्य दारेषु जनयन्ति विगर्हितान् ॥

यो० । ते आयोगवादयः अपिषट् ततः अपि अधिकदूषितान् विगर्हितान् सुबहून् पुत्रान् परस्परस्य दारेषु जनयंति ॥

भा० । ता० । वेआयोगवआदि छः परस्पर जातिकी स्त्रियोंमें अपनेसेभीअधिक दूषितऔर सत्कर्म

से बहिर्भूत बहुतसे पुत्रोंको अनुलोमविधिसेभी पैदाकरतेहैं जैसे आयोगवक्षत्ताकी कन्यामें वा क्षत्ता आयोगवकी कन्यामें अपनेसे भी अत्यन्त निकृष्टपुत्रों को पैदाकरतेहैं २९ ॥

यथैवशूद्रोब्राह्मण्यांबाह्यंजन्तुप्रसूयते। तथाबाह्यतरंबाह्यश्चातुर्वर्ण्येप्रसूयते ३० ॥

प० । यथा एवं शूद्रः ब्राह्मण्यां बाह्यं जन्तुं प्रसूयते तथा बाह्यतरं बाह्यः चातुर्वर्ण्ये प्रसूयते ॥

यो० । यथा शूद्रः ब्राह्मण्यां बाह्यं जंतुं प्रसूयते तथा बाह्यः चातुर्वर्ण्ये (चंडालादिचतुष्टये) बाह्यतरं प्रसूयते (जनयति)

भा० । ता० । जैसे शूद्र ब्राह्मणी में बाह्य (नीच) चण्डालरूप प्राणी को पैदाकरता है इसी प्रकार बाह्य भी चण्डालआदि चारोंवर्णों में बाह्यतर (अपने से भी नीच) प्राणिको पैदाकरता है इसीको विस्तारपूर्वक अगिले श्लोकमें वर्णन करतेहैं कि ३० ॥

प्रतिकूलंवर्तमानाबाह्याबाह्यतरान्पुनः। हीनाहीनान्प्रसूयन्तेवर्णान्पञ्चदशैवतु ३१ ॥

प० । प्रतिकूलं वर्त्तमानाः बाह्याः बाह्यतरान् पुनः हीनाः हीनान् प्रसूयंते वर्णान् पंचदश एव तु ॥

यो० । प्रतिकूलं वर्तमानाः बा ह्याः, बाह्यतरान् पुनः हीनः हीनान् पंचदशवर्णान् प्रसूयंते ॥

भा० । प्रतिलोम विधिसे चारोंवर्णोंकी और अपनी जातिकी स्त्रियों में वर्तते हुये चंडाल आदि नीच अपने से भी निकृष्ट (अत्यंत नीच) पंद्रहप्रकार के पुत्रोंको पैदा करतेहैं ॥

ता० । इसश्लोक का मेधातिथि गोविंदराज ने यह अर्थ कियाहै कि चारोंवर्णों से बाह्य अर्थात् शूद्रसे पैदाहुये चण्डाल–क्षत्ता–और आयोगव–ये तिनों प्रतिलोमविधिसे चारोंवर्णों की स्त्रियों में गमनकरतेहुये अपने से अत्यन्त नीच ऐसे पन्द्रह १५ जाति के वर्णोंको पैदाकरतेहैं जिनकीपरस्पर उत्तमता और नीचताहोतीहै जैसे कि चण्डाल शूद्रामें अपनेसेहीन और चण्डालसे वैश्या और क्षत्रिया और ब्राह्मणीमें पैदाहुये पुत्रोंसे उत्तमपुत्रको पैदा करताहै–इसीप्रकार वही चण्डाल वैश्या में जिसपुत्रको पैदाकरताहै वहशूद्रामें पैदाहुयेसे नीच और क्षत्रिया ब्राह्मणीमें पैदाहुये पुत्रोंसे उत्तम होताहै और वही चंडाल क्षत्रियामें जिस पुत्रको पैदा करता है वह वैश्यामें पैदाहुये पुत्रसे नीच और ब्राह्मणी में पैदाहुये पुत्रसे उत्तम होताहै और वही चंडाल ब्राह्मणी में जिस पुत्रको पैदा करताहै वह पुत्र क्षत्रियामें पैदाहुये पुत्रसे नीच होताहै इस रीतिसे चंडालसे चारोंवर्णकी स्त्रियों में ये चार अत्यंत नीच पैदाहोतेहैं–इसीप्रकार चार क्षत्तासे और चार आयोगवसे समझलेने और वे चंडाल क्षत्ता और आयोगवशूद्रसे भिन्न जातिके होतेहैं अर्थात् शूद्र नहीं होते इससे इनचारों वर्णोंकी स्त्रियोंमें ये बारहप्रकार के पुत्रहुये और तीन इनके पिता (चंडाल–क्षत्ता आयोगव) इससे ये शूद्रसे पंद्रह १५ वर्ण (जाति) पैदा होतेहैं–इसीप्रकार जो निकृष्टजाति वैश्य क्षत्री–और ब्राह्मण से पैदाहुई हैं उनके भी प्रत्येक में पंद्रह २ भेद होतेहैं इससे सब मिलकर साठि जातिहुई और चारोंवर्णोंके मिलाने से जातियोंके चौंसठि भेद होतेहैं और ये परस्पर स्त्रियोंके संगमसे नानाप्रकार के वर्णोंको पैदाकरते हैं–यह मेधातिथि गोविंदराजका अर्थ उत्तम नहीं है क्योंकि पहिले श्लोक में सूत आदि प्रतिलोमसे पैदाहुये छओंका प्रकरण है उसकेही विस्तार के लिये यह श्लोकहै और इस श्लोकमें भी यह कहा है कि प्रतिलोमसे वर्तते हुये बाह्योंसे अत्यंत हीन पैदा होतेहैं इससे प्रतिलोमसे जो पैदाहुये हों उनकेही वर्णन में तात्पर्यहै और अनुलोमसे पैदाहुयोंके वर्णनमें नहीं है इससे

वैश्य क्षत्री–और ब्राह्मण इनसे पैदाहुये पंद्रह २ होतेहैं इससे साठिहुये यह कहना संगत नहीं है और कदाचित् कोई कहै कि संभवमात्रसे यह साठि होसक्ते हैं और दृष्ट तो वेही पंद्रह १५ होतेहैं जो शूद्र के पुत्र आयोगव–क्षत्ता–चंडाल और जो इन तीनोंसे बारह पैदा होते हैं यह कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि शूद्रसे प्रतिलोम विधिसे पैदाहुये निकृष्ट इन तीनोंकी संतान जैसे निकृष्ट कही इसीप्रकार प्रतिलोम विधिसे पैदाहुये भी तीन हीन होतेहैं और उन चारोंवर्णोंकी स्त्रियोंमें पैदाहुये अत्यंत हीन कहने युक्त थे और मनुजी ने इसी अध्यायके ३० श्लोकमें यह कहा है कि नीच वर्ण चारोंवर्णोंकी स्त्रियोंमें अत्यंत नीचको पैदा करताहै और उस ३० श्लोकका अर्थ मेधातिथि ने भी यही कहा है और चौंसठि संख्यामें चारों वर्णो की गणना भी अनुचित है क्योंकि इस संकीर्णप्रकरणमें शुद्ध चारोंवर्णोंकी गणना अनुचितहै और यह इसमें युक्त नहीं है कि प्रथम आयोगव--क्षत्ता–चंडाल ये तीनों पंद्रह १५ प्रकारके वर्णोंको पैदा करते हैं यह प्रतिज्ञाकरिके बारह उनके पुत्र कहे फिर उन तीनों (चंडाल क्षत्ता आयोगव) को मिलाकर पंद्रह की संख्या पूर्ण करनी और कोई अपनेसहित पंद्रह वर्णोंका संपादन करते हैं यह भी संगत नहीं हैं क्योंकि जबतक बारह पुत्र नहीं तबतक वे पंद्रह प्रकार के नहीं होसक्ते और इसमें (आत्मनासह) अपने सहित इसको ऊपर से मिलाना पड़ेगा यह भी एक दोषहै–इससे मेधातिथि और गोविंदराजका अर्थ सर्वथा असंगतहै तिससे इस श्लोकका यह अर्थ ठीक है कि प्रतिलोम वर्ततेहुये प्रतिलोमज बाह्य अर्थात् द्विजोंसे पैदा हुये प्रतिलोमजों से निकृष्ट और शूद्रसे पैदाहुये आयोगव क्षत्ता चंडाल ये तीनों चारवर्णोंकी अपनी जातिकी स्त्रियों में अत्यंत निकृष्ट पंद्रहप्रकारके पुत्रोंको पैदा करतेहैं अर्थात् जैसा निकृष्ट पुत्र इनसे चारोंवर्णोंकी स्त्रियों में होताहै वैसाही अपनीजातिमें होताहै क्योंकि इसी अध्यायके सत्ताईसवेंश्लोकमें सजातीय स्त्रीमें पैदाहुआ भी पुत्र पितासे निकृष्ट कहाहै जैसे आयोगवसे चारोंवर्णोंकी और आयोगवी इन पांचों स्त्रियों में अपनेसे निकृष्ट पांचपुत्र पैदा होते हैं इसीप्रकार क्षत्ता और चंडाल इन दोनोंसे भी प्रत्येक पांच २ पुत्र पैदा होतेहैं इसप्रकार ये तीनों बाह्य (नीच) अत्यंत नीच पंद्रह पुत्रोंको पैदाकरतेहैं और इसीप्रकार अनुलोमजोंसे हीन वैश्य–क्षत्रियसे पैदाहुये मागध वैदेह सूत ये तीनों भी चारोंवर्णोंकी और अपनी सजातीय स्त्रियोंमें अपनेसे नीच पंद्रहपुत्र पैदाकरतेहैं इससे ये सब मिलकर अत्यंत नीच तीसजाति होती हैं–अथवा इस श्लोकका यह तात्पर्यहै कि बाह्य और हीन शब्दसे प्रतिलोमसे पैदाहुये लेने अर्थात् चंडाल क्षत्ता आयोगव–वैदेह–मागध–सूत ये छःओं बाह्य प्रतिलोम विधिसे स्त्रियों में वर्तते हुये अत्यंत नीच पंद्रह पुत्रोंको पैदा करते हैं जैसे चंडाल क्षत्तृ आदि पांच स्त्रियों में और क्षत्ता अयोगव आदि चार स्त्रियों में और आयोगव वैदेही आदि तीन स्त्रियों में और वैदह मागधी और सूती स्त्रियों में और सूतीमें सूत इसप्रकार पंद्रह पुत्रोंको पैदाकरतेहैं–और इस श्लोकमें पुनः इसपढ़नेसे यह प्रतीत होताहै कि उलटी गणनासे सूत आदि चंडाल पर्यंत जो नीच हैं वे अनुलोम विधिसे भी अर्थात् सूतसे–मागध–वैदेह–आयोगव–क्षत्ता–चंडाल इनकी कन्याओंमें पांच और मागधसे वैदेह आयोगव क्षत्ता चंडालकी कन्याओं में चार–और वैदेह से आयोगव क्षत्ताकी कन्याओंमें तीन–और आयोगवसे क्षत्ता चंडालकी कन्यामें दो–और क्षत्तासे चंडालकी कन्यामें एक–इन पुत्रोंको पैदाकरते हैं इसरीति से ये सब मिलकर तीसप्रकारके अत्यंत नीच होते हैं ३१ ॥

प्रसाधनोपचारज्ञमदासंदासजीवनम् । सैरिन्ध्रंवागुरावृत्तिंसूतेदस्युरयोगवे ३२ ॥

प० । प्रसाधनोपचारज्ञं अदासं दासजीवनं सैरिन्ध्रं वागुरावृत्तिं सूते दस्युः अयोगवे ॥

यो० । दस्युः अयोगवे (अयोगव्यां) प्रसाधनोपचारज्ञं अदासं दासजीवनं वागुरावृत्तिं सैरिन्ध्रं सूते ॥

भा० । ता० । दस्यु (जो आगे कहेंगे) शूद्रसे वैश्यामें पैदाहुई आयोगव कन्यामें केश और चरणों का प्रसाधन (धोना) और अंगका संवाहन (दाबना) इनको जाननेवाला और सेवाहै जीवन जिसका और दाससे भिन्न और पाशमें मृगोंको मारनेसे है जीविका जिसकी ऐसे सैरिन्ध्रको पैदाकरता है परंतु इसके मृगोंका मारना पितर और औषधके लिये होताहै अपने भक्षणके लिये नहीं ३२ ॥

मैत्रेयकंतुवैदेहोमाधूकंसंप्रसूयते । नॄन्प्रशंसत्यजस्रंयोघण्टाताडोऽरुणोदये ३३ ॥

प० । मैत्रेयकं तु वैदेहः माधूकं संप्रसूयते नॄन् प्रशंसति अजस्रं यः घंटा ताडः अरुणोदये ॥

यो० । वैदेहः आयोगव्यां माधूकं तंमैत्रेयकं संप्रसूयते यः घंटा ताडः सन् अरुणोदये अजस्रं नॄन् प्रशंसति ॥

भा० । ता० । वैश्यसे ब्राह्मणी में पैदाहुआ वैदेह पूर्वोक्त आयोगवकी कन्यामें मधुर वचन बोलनेवाले मैत्रेयकको पैदा करताहै जो मैत्रेयक अरुणोदयके समय घंटाबजाकर मनुष्यों (राजा आदि) की निरंतर प्रशंसा (स्तुति) करता है ३३ ॥

निषादोमार्गवंसूतेदासंनौकर्मजीविनम् । कैवर्त्तमितियंप्राहुरार्यावर्तनिवासिनः ३४ ॥

प० । निषादः मार्गवं सूते दासं नौकर्मजीविनं कैवर्तं इति यं प्राहुः आर्यावर्तनिवासिनः ॥

यो० । निषादः आयोगव्यां दासं नौकर्मजीविनं मार्गवं सूते यं आर्यावर्तनिवासिनः कैवर्त्तं इति आहुः ॥

भा० । ता० । ब्राह्मणसे शूद्रामें पैदाहुआ निषाद पूर्वोक्त आयोगवीमें दासहै नाम जिसका और नावोंके व्यवहारसे जीनेवाले मार्गवको पैदाकरताहै और आर्यावर्त देशनिवासी जिसको कैवर्त्त कहते हैं ३४ ॥

मृतवस्त्रभृत्सुनारीषुगर्हितान्नाशनासुच।भवन्त्यायोगवीष्वेतेजातिहीनाःपृथक्त्रयः ३५

प० । मृतवस्त्रभृत्सु नारीषु गर्हितान्नाशनासु च भवंति आयोगवीषु एते जातिहीनाः पृथक् त्रयः ॥

यो० । जातिहीना एतेत्रयः मृतवस्त्रभृत्सु चपुनः गर्हितान्नाशनासु आयोगवीषु नारीषु पृथक् भवंति ॥

भा० । ता० । जातिसेहीन (नीच) ये तीनों (सैरिन्ध्र–मैत्रेय–मार्गव) मृतकके वस्त्र धारणेवाली और क्रूरस्वभाव और उच्छिष्टका भक्षण करनेवाली आयोगव जातिकी स्त्रियोंमें पिताकेभेदसे भिन्न२ जाति होतेहैं ३५ ॥

कारावरोनिषादात्तुचर्मकारःप्रसूयते । वैदेहिकादन्ध्रमेदौबहिर्ग्रामप्रतिश्रयौ ३६ ॥

प० । कारावरः निषादात् तु चर्मकारः प्रसूयते वैदेहिकात् अंध्रमेदौ बहिर्ग्रामप्रतिश्रयौ ॥

यो० । निषादात् वैदेह्यां कारावरः चर्मकारः प्रसूयते वैदेहिकात् कारावरः निषादयोः स्त्रियोः बहिर्ग्रामप्रतिश्रयौ अंध्रमेदौ जायेते ॥

भा० । निषादसे वैदेही में कारावर नामका चमार पैदा होताहै और वैदेहकसे कारावर और निषादकी कन्यामें ग्रामसे बाहिर रहनेवाले अंध्र और मेद पैदा होतेहैं ॥

ता०। अगिले श्लोकमें वैदेही पदपड़ाहै इस श्लोकमें भी वही लियाजाता है निषादसे वैदेही कन्यामें चामके छेदन करनेवाला कारावर नामका चमार होताहै क्योंकि उशना ऋषिने कारावरों की चर्म छेदनसेही जीविका कही है और वैदेहकसे कारावर और निषादकी स्त्रियों में ग्रामसे बाहिर वसनेवाले अंध्र और मेद होतेहैं जिनको वैदेहक और सैरिन्ध्रकहतेहैं क्योंकि वैदेहकसे वैदेहककी कन्यामें जो वैदेहक पैदा होताहै वह भी निंदित होताहै ३६ ॥

चण्डालात्पाण्डुसोपाकस्त्वक्सारव्यवहारवान्।आहिण्डकोनिषादेनवैदेह्यामेवजायते ३७॥

प०। चंडालात् पांडुसोपाकः त्वक्सारव्यवहारवान् आहिंडकः निषादेन वैदेह्यां एव जायते ॥

यो०। चंडालात् वैदेह्यां त्वक्सारव्यवहारवान् पांडुसोपाकः जायते वैदेह्यां एव निषादेन आहिंडकः जायते ॥

भा०। ता०। चंडालसे वैदेहकी कन्यामेंवासोंके व्यवहारसे जीनेवाला पांडुसोपाक पैदा होताहै और निषादसे वैदेहकी कन्यामें आहिंडक होताहै और इस आहिंडककी जीविका बंधन (कैद) के स्थानोंमें बाहिरकी रक्षा (पहिरा देना) उशनाऋषिने कही है यद्यपि कारावर आहिंडकके मातापिता समान होतेहैं तथापि जीविकाके भेदसे ये भिन्न कहलाते हैं ३७ ॥

चण्डालेनतुसोपाकोमूलव्यसनवृत्तिमान्।पुक्कस्यांजायतेपापःसदासज्जनगर्हितः ३८॥

प०। चंडालेन तु सोपाकः मूलव्यसनवृत्तिमान् पुक्कस्यां जायते पापः सदासज्जनगर्हितः ॥

यो०। चंडालेन पुक्कस्यां मूलव्यसनवृत्तिमान पापः सदासज्जनगर्हितः सोपाकः जायते ॥

भा०। ता०। निषादसे शूद्रकी कन्यामें पैदाहुई जो पुक्कसी उसमें चंडालसे पापी और सदैव साधुओंसे निंदित राजाकी आज्ञासे अपराधियोंको मारने (फांसी देना) की है वृत्ति जिसकी ऐसा सोपाक पैदा होताहै ३८ ॥

निषादस्त्रीतुचण्डालात्पुत्रमन्त्यावसायिनम्।श्मशानगोचरंसूतेबाह्यानामपिगर्हितम् ३९

प०। निषादस्त्री तु चंडालात् पुत्रं अंत्यावसायिनं श्मशानगोचरं सूते बाह्यानां अपि गर्हितम् ॥

यो०। निषादस्त्री चंडालात् श्मशानगोचरं बाह्यानां अपि गर्हितं अंत्यावसायिनं पुत्रं सूते ॥

भा०। ता०। निषादकी स्त्री चंडाल से श्मशानमें वसनेवाले और बाह्योंमें भी निंदित अंत्याव-सायि पुत्रको पैदा करतीहैं अर्थात् उसे अंत्यावसायी कहते हैं ३९ ॥

संकरेजातयस्त्वेताःपितृमातृप्रदर्शिताः।प्रच्छन्नावाप्रकाशावावेदितव्याःस्वकर्मभिः ४०

प०। संकरे जातयः तु एताः पितृमातृप्रदर्शिताः प्रच्छन्नाः वा प्रकाशाः वा वेदितव्याः स्वकर्मभिः॥

यो०। संकरे पितृमातृप्रदर्शिताः एताः जातयः प्रच्छन्नाः वा प्रकाशाः स्वकर्मभिः वेदितव्याः ॥

भा०। ता०। वर्णसंकरोंमें पिता और माताओंसे दिखाईहुई ये पूर्वोक्त जाति गूढ़ (छिपीहुई) वा प्रकटहों अपने २ कर्मोंसे जानलेनी ४० ॥

सजातिजानन्तरजाःषट्सुताद्विजधर्मिणः।शूद्राणांतुसधर्माणःसर्वेऽपध्वंसजाःस्मृताः ४१

प०। सजातिजानंतरजाः षट् सुताः द्विजधर्मिणः शूद्राणां तु सधर्माणः सर्वे अपध्वंसजाः स्मृताः॥

यो०। सजातिजानंतरजाः षट्सुताः द्विजधर्मिणः (उपनेयाः) संति शूद्राणांतु सर्वे सधर्माणः अपध्वंसजाः स्मृताः ॥

भा० । द्विजातियोंसे सजातीय और अनंतर वर्णोंकी स्त्रियोंमें पैदाहुये छः पुत्रोंका यज्ञोपवीत संस्कार होताहै और द्विजातियोंसे अनुलोम विधिसे पैदाहुये सूत आदि पुत्रोंका यज्ञोपवीत संस्कार आदि नहीं होता ॥

ता० । तीनों द्विजातियों की सजातयि स्त्रियों में पैदाहुये तीन और अनुलोम विधिसे पैदाहुये तीन ब्राह्मणसे क्षत्रिया वैश्यामें दो और क्षत्री से वैश्यामें एक ये छओंपुत्र द्विजधर्मी होते हैं अर्थात् इन छओंका यज्ञोपवीत संस्कार होताहै पहिले जो (तान् अनंतर नाम्नः) इसी अध्यायके चौदहवें श्लोकमें कहाहै उनके नामके लिये है और संस्कारके लिये नहीं है इससे उनको भी द्विजाति संस्कारके लिये यह वचन है और जो पुत्र प्रतिलोम विधिसे द्विजातियोंमें पैदा होतेहैं (सूत आदि) वे सब शूद्रके समान धर्म वाले होतेहैं अर्थात् उनका यज्ञोपवीत संस्कार नहीं होता ४१ ॥

तपोबीजप्रभावैस्तुतेगच्छन्तियुगेयुगे। उत्कर्षंचापकर्षंचमनुष्येष्विहजन्मतः ४२ ॥

प० । तपोबीजप्रभावैः तु ते गच्छंति युगे युगे उत्कर्षं च अपकर्षं च मनुष्येषु इह जन्मतः ॥

यो० । ते (पूर्वोक्ताः षट्सुताः) तपोबीजप्रभावैः मनुष्येषु इहजन्मतः उत्कर्षं चपुनः अपकर्षं युगे युगे गच्छंति ॥

भा० । ता० । वे पूर्वोक्त द्विजातियों के छओं पुत्र तप—और बीजके प्रभावसे युग २ में जन्मकी अपेक्षा मनुष्यों में उत्तमता और नीचताको प्राप्त होजातेहैं जैसे कि तपके प्रभावसे क्षत्रीसे विश्वामित्र ब्राह्मण होगये और बीजके प्रभाव से ऋष्यशृंग तिरछी योनिसे ब्रह्मर्षि होगये और इन कारणोंसे नीचताको प्राप्त होजाते हैं कि ४२ ॥

शनकैस्तुक्रियालोपादिमाःक्षत्रियजातयः। वृषलत्वंगतालोकेब्राह्मणादर्शनेनच ४३ ॥

प० । शनकैः तु क्रियालोपात् इमाः क्षत्रियजातयः वृषलत्वं गताः लोके ब्राह्मणादर्शनेन च ॥

यो० । इमाः वक्ष्यमाणाः क्षत्रियजातयः क्रियालोपात् चपुनः ब्राह्मणा दर्शनेन शनकैः लोके शूद्रतां गताः ॥

भा०। ता०। ये क्षत्रियोंकी जाति यज्ञोपवीत आदि कर्मोंकेलोप और पठन पाठन और प्रायश्चित्त बताने के लिये ब्राह्मणोंके न दीखनेसे इस जगत्में शूद्रभावको प्राप्त होगईं अर्थात् शूद्रहोगये ४३ ॥

पौण्ड्रकाश्चौड्रद्रविडाःकाम्बोजायवनाःशकाः।पारदाःपाह्लवाश्चीनाःकिरातादरदाःखसाः४४

प० । पौंड्रकाः च औड्रद्रविडाः कांबोजाः यवनाः शकाः पारदाः पाह्लवाः चीनाः किराताः दरदाः खसाः ॥

यो० । पौंड्रकाः औड्रद्रविडाः कांबोजाः यवनाः शकाः पारदाः पाह्लवाः चीनाः किराताः दरदाः खसाः एते क्षत्रियाः शूद्रत्वंगताः ॥

भा०। ता०। पौंड्रक—औड्र—द्रविड—कांबोज—यवन—शक पारद—पाह्लव—चीन—किरात—दरद और खस इन देशोंके नामसे प्रसिद्ध इतने क्षत्रिय पूर्वोक्त कारणों से शूद्र होगये ४४ ॥

मुखबाहूरुपज्जानांयालोकेजातयोबहिः। म्लेच्छवाचश्चार्यवाचःसर्वेतेदस्यवःस्मृताः४५॥

प० । मुखबाहूरुपज्जानां याः लोके जातयः बहिः म्लेच्छवाचः च आर्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः ॥

यो० । लोके मुखबाहूरुपज्जानां याः बहिः जातयः म्लेच्छवाचः चपुनः आर्यवाचः संति ते सर्वे दस्यवः मन्वादिभिः स्मृताः ॥

भा०। ता०। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इनचारों वर्णोंकी जो २ जाति वर्णोंसे बाह्य जगत् में हैं वे चाहे म्लेच्छोंकी वाणी बोलें चाहे आर्योंकी परन्तु वे सब मनुआदिकोंने चोरकहेहैं ४५॥

येद्विजानामपसदायेचापध्वंसजाःस्मृताः। तेनिन्दितैर्वर्तयेयुर्द्विजानामेवकर्मभिः ४६॥

प०। ये द्विजानां अपसदाः ये च अपध्वंसजाः स्मृताः ते निंदितैः वर्तयेयुः द्विजानां एव कर्मभिः॥

यो०। द्विजानांमध्ये ये अपसदाः (नीचाः) संति चपुनः ये अपध्वंसजाः स्मृताः ते सर्वे निंदितैः द्विजानां एव कर्मभिः वर्तयेयुः (जीवनं कुर्युः)॥

भा०। ता०। जो द्विजों में नीचहैं और जो अपध्वंस से पैदाहुये हैं वे सब उनकर्मोंसेही अपना निर्वाह करें जो द्विजातियों के उपकारी हैं अर्थात् अनुलोम वा प्रतिलोम विधिसे उत्पन्नोंको द्विजोंके कर्मों का अधिकार नहींहै ४६॥

सूतानामश्वसारथ्यमम्बष्ठानांचिकित्सनम्। वैदेहकानांस्त्रीकार्यंमागधानांवणिक्पथः ४७॥

प०। सूतानां अश्वसारथ्यं अंबष्ठानां चिकित्सनम् वैदेहकानां स्त्रीकार्यं मागधानां वणिक्पथः॥

यो०। सूतानां अश्वसारथ्यम् (अश्वदमनयोजनादिरथसारथ्यंजीवनार्थंकर्म) भवतीतिशेषः अम्बष्ठानां चिकित्सनम् (कायशल्यादिचिकित्सा) कर्म भवति—वैदेहकानां स्त्रीकार्यं जीवनार्थं भवति—मागधानां वणिक्पथः (स्थलपथवणिज्या) जीवनार्थंकर्म भवति॥

भा०। ता०। सूतों का कर्म यहहै कि घोड़ोंका दमन (साधना) और योजन (जोतना) और अंबष्ठों का चिकित्साकरना—वैदेहकों का स्त्रियोंका काम अर्थात् अन्तःपुरकी रक्षाकरनी और मागधों को स्थल के मार्गसे व्यापार करना—कर्म होता है ४७॥

मत्स्यघातोनिषादानांत्वष्टिस्त्वायोगवस्यच। मेदान्ध्रचुंचुमद्गूनामारण्यपशुहिंसनम् ४८॥

प०। मत्स्यघातः निषादानां त्वष्टिः तु आयोगवस्य च मेदांध्रचुंचुमद्गूनां आरण्यपशुहिंसनम्॥

यो०। निषादानां मत्स्यघातः आयोगवस्यत्वष्टिः—मेदांध्रचुंचुमद्गूनां आरण्यपशुहिंसनं कर्म अस्ति॥

भा०। ता०। निषादोंका कर्म मत्स्योंकामारना—और आयोगवका कर्मकाष्ठका तक्षण (छीलना) और मेद—अंध्र—चुंचु—मद्गु—इनका कर्म वनके पशुओं की हिंसाहै—इनमें चुंचु और मद्गु वे कहाते हैं जो वन्दीजनों की स्त्री (उग्रकन्या) में ब्राह्मणसे पैदाहुयेहों ४८॥

क्षत्त्रुग्रपुक्कसानांतुबिलौकोवधबन्धनम्। धिग्वणानांचर्मकार्यंवेणानांभाण्डवादनम् ४९॥

प०। क्षत्त्रुग्रपुक्कसानां तु बिलौको वधबंधनम् धिग्वणानां चर्मकार्यं वेणानां भांडवादनम्॥

यो०। क्षत्त्रुग्रपुक्कसानां बिलौकोवधबंधनं—धिग्वणानां चर्मकार्यं—वेणानांभांडवादनं कर्म अस्तीति शेषः॥

भा०। ता०। क्षत्ता—उग्र—और पुक्कस इनका कर्म यहहै कि ये बिलमें बसनेवाले (गोधाआदि) जीवों के वध और बंधनसे जीवें—और धिग्वणों का कर्म चर्मका (बेचना) काम है और वेणों का कर्म कांसी और मुरसे पैदाहुये भांडोंका बजानाहै ४९॥

चैत्यद्रुमश्मशानेषुशैलेषूपवनेषुच। वसेयुरेतेविज्ञातावर्तयन्तःस्वकर्मभिः ५०॥

प०। चैत्यद्रुमश्मशानेषु शैलेषु उपवनेषु च वसेयुः एते विज्ञाताः वर्तयंतः स्वकर्मभिः॥

यो०। स्वकर्मभिः वर्तयंतः विज्ञाताः एते चैत्यद्रुम श्मशानेषु—वनेषु चपुनः उपवनेषु वसेयुः॥

भा० । ता० । अपने २ कामोंसे जीविका करतेहुये और प्रकाशरीति से ये सबग्रामों के समीप चैत्यद्रुम (प्रसिद्धवृक्ष) के नीचे और श्मशानों में और वन वा उपवनों में वासकरें ५० ॥

चण्डालश्वपचानांतुबहिर्ग्रामात्प्रतिश्रयः। अपपात्राश्चकर्तव्याधनमेषांश्वगर्दभम् ५१
वासांसिमृतचेलानिभिन्नभाण्डेषुभोजनम् ।कार्ष्णायसमलंकारःपरिव्रज्याचनित्यशः५२॥

प० । चंडालश्वपचानां तु बहिः ग्रामात् प्रतिश्रयः अपपात्राः च कर्तव्याः धनं एषां श्वगर्दभम् ॥

प० । वासांसि मृतचेलानि भिन्नभांडेषु भोजनं कार्ष्णायसं अलंकारः परिव्रज्या च नित्यशः ॥

यो० । चंडालश्वपचानांतु ग्रामात् बहिः प्रतिश्रयः कर्तव्यः-चपुनः एते अपपात्राः कर्तव्याः एषां धनं श्वगर्दभं भवति मृतचेलानि वासांसि-भिन्नभांडेषु भोजनम्-अलंकारः कार्ष्णायसम्-चपुनः नित्यशः परिव्रज्या (गमनं) भवति ॥

भा० । ता० । चंडाल और श्वपच इनका निवास ग्रामसे बाहिर होता है और ये पात्रोंसे रहित करने चाहियें अर्थात् जिस लोहेआदि के पात्रमें ये भोजनकरलें उसपात्रकोसंस्कार (शुद्धि) करके भी ग्रहण न करै और श्वान (कुत्ते) और गधे इनकाधन होता है बैलआदि नहींहोता-और इनके वस्त्र मृतक के वस्त्र (कप्फन) होतेहैं और भिन्न (फूटेशरावआदि) पात्रोंमें इनका भोजन कहा है और लोहेके (वलयआदि) भूषण इनके होतेहैं और सदैव भ्रमणकरना इनका कर्महै ५१ । ५२ ॥

नतैःसमयमन्विच्छेत्पुरुषोधर्ममाचरन् । व्यवहारोमिथस्तेषांविवाहःसदृशैःसह ५३ ॥

प० । न तैः समयं अन्विच्छेत् पुरुषः धर्मं आचरन् व्यवहारः मिथः तेषां विवाहः सदृशैः सह ॥

यो० । धर्मआचरन् पुरुषः तैः सह समयं न अन्विच्छेत्-तेषां व्यवहारः मिथः-सदृशैः सह विवाहः भवेत् ॥

भा० । ता० । धर्मको करताहुआ मनुष्य तिन (चंडालश्वपाक) के संग संभाषण न करै और इनका व्यवहार (लेनदेन) और विवाह सदृशों (तुल्यों) के संगही होता है अन्यों के संग नहीं होता ५३ ॥

अन्नमेषांपराधीनंदेयंस्याद्भिन्नभाजने।रात्रौनविचरेयुस्तेग्रामेषुनगरेषुच ५४॥

प० । अन्नं एषां पराधीनं देयं स्यात् भिन्नभाजने रात्रौ न विचरेयुः ते ग्रामेषु नगरेषु च ॥

यो० । एषां अन्नं पराधीनं भवति-भिन्नभाजने देयंस्यात्-ते ग्रामेषु चपुनः नगरेषु रात्रौ न विचरेयुः ॥

भा० । ता० । इनकाअन्न दूसरों के आधीन होता है और वहअन्न भिन्न (टूटा) पात्रमें इनको देनेयोग्य होताहै और ये चंडाल और श्वपच रात्रिके समय ग्राम वा नगरोंमें न विचरें ५४ ॥

दिवाचरेयुःकार्यार्थंचिह्निताराजशासनैः । अबान्धवंशवंचैवनिर्हरेयुरितिस्थितिः ५५ ॥

प० । दिवा चरेयुः कार्यार्थं चिह्निताः राजशासनैः अबांधवं शवं च एव निर्हरेयुः इति स्थितिः ॥

यो० । राजशासनैः ग्रामादिषु कार्यार्थं चिह्निताः संतः दिवाचरेयुः चपुनः अबांधवशवं निर्हरेयुः इतिस्थितिः शास्त्र मर्यादा अस्ति ॥

भा० । ता० । अपके कार्य के लिये राजाकी आज्ञासे चिह्नोंको धारणकरके दिनके समय ग्राम आदिमें भी विचरें-और जिसके कोई बंधुनहो उसशवके निर्हरण (श्मशान में लेजाना) को करें-यहशास्त्र की मर्यादाहै ५५ ॥

वध्यांश्चहन्युःसततंयथाशास्त्रंनृपाज्ञया।वध्यवासांसिगृह्णीयुःशय्याश्चाभरणानिच ५६

प० । वध्यान् चँ हन्युँः सततं यथाशास्त्रं नृपाज्ञया वध्यवासांसि गृह्णीयुँः शय्याः चँ आभरणानि चँ

यो० । यथाशास्त्रं नृपाज्ञया वध्यान सततं हन्युः—वध्यवासांसि चपुनः शय्याः आभरणानि गृह्णीयुः ॥

भा० । ता० । शास्त्र के अनुसार राजाकी आज्ञासे वध्य (मारनेयोग्य) मनुष्यों को शूलीपर चढ़ाकर निरन्तरमारें और उन वध्य मनुष्यों के वस्त्र शय्या और भूषण इनको ग्रहण करें ५६ ॥

वर्णापेतमविज्ञातंनरंकलुषयोनिजम् । आर्यरूपमिवानार्यंकर्मभिःस्वैर्विभावयेत् ५७

प० । वर्णापेतं अविज्ञातं नरं कलुषयोनिजम् आर्यरूपं इवँ अनार्यं कर्मभिः स्वैः विभावयेत् ॥

यो० । वर्णापेतं अविज्ञातं—कलुषयोनिजम् आर्यरूपंइव अनार्यंनरं—स्वैः कर्मभिः विभावयेत् (चिनुयात्) ॥

भा० । ता० । जो मनुष्य वर्णोंसे पतित हो और जगत् में प्रसिद्ध न हो और सज्जनके समान दीखता हो और वस्तुतः हो दुर्जन—उस मनुष्यको उसके निंदित कर्मों से जानले कि ५७ ॥

अनार्यतानिष्ठुरताक्रूरतानिष्क्रियात्मता । पुरुषंव्यञ्जयन्तीहलोकेकलुषयोनिजम् ५८

प० । अनार्यता निष्ठुरता क्रूरता निष्क्रियात्मता पुरुषं व्यञ्जयन्ति इहँ लोके कलुषयोनिजम् ॥

यो० । इहलोके कलुषयोनिजंपुरुषं अनार्यता निष्ठुरता क्रूरता निष्क्रियात्मता व्यञ्जयन्ति ॥

भा० । ता० । इस जगत् में संकर जातिमें पैदा हुये मनुष्य को असज्जनता और निठुर स्वभाव क्रूरपन और विहित कर्म को न करना ये सब प्रकट कर देते हैं क्योंकि ५८ ॥

पित्र्यंवाभजतेशीलंमातुर्वोभयमेववा । नकथंचनदुर्योनिःप्रकृतिंस्वांनियच्छति ५९

प० । पित्र्यं वाँ भजते शीलं मातुः वाँ उभयं एवँ वाँ नँ कथंचन दुर्योनिः प्रकृतिं स्वां नियच्छति ॥

यो० । दुर्योनिः पित्र्यं शीलं वा मातुः वा उभयं भजते कथंचन स्वां प्रकृतिं न नियच्छति ॥

भा० । ता० । पूर्वोक्त दुष्टयोनि मनुष्य अपने पिता के वा माताके दोनों के स्वभाव को प्राप्त होता है कदाचित् अपनी (प्रकृति कारण) को गुप्त नहीं करसकता अर्थात् उसकी प्रकृति प्रकट होजाती है ५९ ॥

कुलेमुख्येऽपिजातस्ययस्यस्याद्योनिसंकरः । संश्रयत्येवतच्छीलंनरोऽल्पमपिवाबहु ६०

प० । कुले मुख्ये अपि जातस्य यस्य स्यात् योनिसंकरः संश्रयति एवँ तच्छीलं नरः अल्पं अपि वाँ बहु ॥

यो० । मुख्ये कुले अपि जातस्य यस्य योनिसंकरः स्यात् सः नरः अल्पं अपि वा बहु तच्छीलं संश्रयति एव ॥

भा० । ता० । मुख्य कुल में उत्पन्न हुये भी जिस मनुष्य का योनिसंकर होजाय अर्थात् माता पिता भिन्न २ योनिके होजायँ वह मनुष्य अल्प वा अधिक अपने पैदा करने वालों के स्वभाव को प्राप्त होता है ६० ॥

यत्रत्वेतेपरिध्वंसाज्जायन्तेवर्णदूषकाः । राष्ट्रिकैःसहतद्राष्ट्रंक्षिप्रमेवविनश्यति ६१

प० । यत्र तु एते परिध्वंसात् जायन्ते वर्णदूषकाः राष्ट्रिकैः सह तत् राष्ट्रं क्षिप्रं एवँ विनश्यति ॥

यो० । यत्र (राष्ट्रे) एते वर्णदूषकाः परिध्वंसात् जायन्ते तत् राष्ट्रं राष्ट्रिकैः सह क्षिप्रं एव विनश्यति ॥

भा० । ता० । जिस देश में वर्णों के संकर से ये वर्णों के दूषित करनेवाले पैदा होते हैं वह देश देश के निवासियों सहित शीघ्रही नष्ट होजाता है तिससे राजाको अपने राज्य में से वर्णोंका संकर दूर करना चाहिये ६१ ॥

ब्राह्मणार्थेगवार्थेवादेहत्यागोऽनुपस्कृतः।स्त्रीबालाभ्युपपत्तौचबाह्यानांसिद्धिकारणम् ६२

प० । ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा देहत्यागः अनुपस्कृतः स्त्रीबालाभ्युपपत्तौ च बाह्यानां सिद्धिकारणम् ॥

यो० । ब्राह्मणार्थे वा गवार्थे चपुनः स्त्रीबालाभ्युपपत्तौ अनुपस्कृतः देहत्यागः बाह्यानां सिद्धिकारणं भवति ॥

भा० । ता० । ब्राह्मण-गौ-स्त्री-बालक-इनकी रक्षा के लिये किसी दृष्ट प्रयोजन की अपेक्षा से जो न कियाजाय ऐसा प्राणों का त्याग प्रतिलोम से पैदाहुये बाह्यों की सिद्धिका कारण होता है अर्थात् ब्राह्मण आदि की रक्षाके लिये देह को त्यागकरि स्वर्ग में जाते हैं ६२ ॥

अहिंसासत्यमस्तेयंशौचमिन्द्रियनिग्रहः।एतंसामासिकंधर्मंचातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः ६३

प० । अहिंसा सत्यं अस्तेयं शौचं इन्द्रियनिग्रहः एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्ये अब्रवीत् मनुः ॥

यो० । अहिंसा-सत्यं-अस्तेयं-शौचं-इन्द्रियनिग्रहः एतं धर्मं सामासिकं चातुर्वर्ण्ये मनुः अब्रवीत् ॥

भा० । ता० । हिंसाका त्याग-सत्यभाषण- चोरी का त्याग-शौच-अर्थात् मट्टी और जल से देह की शुद्धि इन्द्रियों का संयम यह धर्म चारों वर्णों का मनुजीने संक्षेपसे कहा है और संकीर्णों के प्रकरण से संकीर्णों का भी जानना ६३ ॥

शूद्रायांब्राह्मणाज्जातःश्रेयसाचेत्प्रजायते।अश्रेयान्श्रेयसींजातिंगच्छत्यासप्तमाद्युगात् ६४

प० । शूद्रायां ब्राह्मणात् जातः श्रेयसा चेत् प्रजायेत अश्रेयान् श्रेयसीं जातिं गच्छति आसप्तमा-त् युगात् ॥

यो० । चेत् (यदि) शूद्रायां ब्राह्मणात् जातः श्रेयसा प्रजायेत (श्रेष्ठास्त्री यदि भवेत्) तदा अश्रेयान् आसप्तमात् युगात् श्रेयसीं जातिं गच्छति ॥

भा० । ब्राह्मणसे शूद्रा में पैदा हुआ पारशव यदि उत्तम स्त्री होजाय तो वह अनुत्तम भी पारशव सातवें जन्म में ब्राह्मण होजाता है ॥

ता० । पहिले यह कह आये हैं कि सम्पूर्ण वर्णोंमें सजातीय स्त्रियोंमेंही पैदा हुये पुत्र सजातीय होते हैं अब विजातीय स्त्री में भी ब्राह्मणसे पैदाहुआ ब्राह्मण होसकता है यह कहते हैं कि शूद्रा में ब्राह्मणसे पैदाहुआ वर्ण अर्थात् पारशव यदि श्रेष्ठ स्त्री होजाय अर्थात् शूद्रामें ब्राह्मणसे कन्या पैदा हो उस कन्या को ब्राह्मण विवाहै उस कन्यासे भी ब्राह्मणसे कन्याहोहो फिर उस कन्या को भी कोई और ब्राह्मण विवाहै फिर उसके भी कन्याहो इस रीति से सातवीं कन्याके विवाहने वाले ब्राह्मणसे जो सन्तान पैदा होगी वह बीज की प्रधानतासे ब्राह्मणत्व को प्राप्त होती है अर्थात् सातवें जन्म में वह पारशव जाति ब्राह्मण होजाता है क्योंकि मनुजीने सातवेंयोग (सम्बन्ध) में अश्रेष्ठ को भी श्रेष्ठ जाति की प्राप्ति कही है ६४ ॥

शूद्रोब्राह्मणतामेतिब्राह्मणश्चैतिशूद्रताम्।क्षत्रियाज्जातमेवंतुविद्याद्वैश्यात्तथैवच ६५

प० । शूद्रः ब्राह्मणतां एति ब्राह्मणः च एति शूद्रतां क्षत्रियात् जातं एवं तु विद्यात् वैश्यात् तथा एव च ॥

यो० । शूद्रः ब्राह्मणतां एति चपुनः ब्राह्मणः शूद्रतांएति एवं तु (एव) क्षत्रियात् तथैव वैश्यात् जातं विद्यात् ॥

भा० । शूद्रब्राह्मण होजाताहै और ब्राह्मण शूद्रहोजाता है और इसीप्रकार क्षत्री से और वैश्यसे पैदाहुये भी शूद्र वा क्षत्रिय वैश्य पूर्वोक्तप्रकार से होजातेहैं ॥

ता० । इस प्रकार पूर्वोक्त रीति से शूद्र ब्राह्मणताको और ब्राह्मण शूद्रताको प्राप्त होता है— इसश्लोक में शूद्रामें ब्राह्मणसे उत्पन्न पारशवहीका ब्राह्मणपदसे ग्रहणहै यदि वहपारशव विवाहीहुई शूद्रामें पुरुषको पैदाकरताहै फिर वहपुरुष शूद्राको विवाहकर पुरुषको पैदाकरै इसरीतिसे वहमूल ब्राह्मण सातवें जन्ममें शूद्रताको प्राप्त होजाता है इसीप्रकार क्षत्रिय और वैश्यसे शूद्रामें जो पुत्र पैदाहोतेहैं उनकी भी उत्तमता जाननी परन्तु यहजातिकी निकृष्टतासे जातिकी उत्तमता सातवें वा पांचवें जन्ममें इस याज्ञवल्क्य के वचनानुसार होतीहै अर्थात् क्षत्रीसे शूद्रामें पैदाहुये की उत्तमता वा नीचता पांचवें जन्ममें जाननी और उक्तयाज्ञवल्क्य के वचन में अपिशब्द पढ़नेसे वैश्यसे शूद्रा में पैदाहुये की उत्तमता वा नीचता तीसरेजन्म में जाननी और इसीरीतिसे ब्राह्मणसे वैश्यामें पैदा हुये की उत्तमता वा नीचता पांचवेंजन्ममें और क्षत्रियामें पैदाहुयेकी तीसरेजन्म में जाननी और क्षत्रीसे वैश्यामें पैदाहुये की उत्तमता और नीचता तीसरेही जन्ममें जाननी ६५ ॥

अनार्यायांसमुत्पन्नोब्राह्मणात्तुयदृच्छया।ब्राह्मण्यामप्यनार्यात्तुश्रेयस्त्वंक्वेतिचेद्भवेत् ६६

प० । अनार्यायां समुत्पन्नः ब्राह्मणात् तु यदृच्छया ब्राह्मण्यां अपि अनार्यात् तु श्रेयस्त्वं क्व इति चेत् भवेत् ॥

यो० । एकः ब्राह्मणात् अनार्यायां समुत्पन्नः अपरः अनार्यात् ब्राह्मण्यां समुत्पन्नः अनयोः द्वयोः मध्ये श्रेयस्त्वं क इति चेत् संशयः भवेत् तर्हि ॥

भा० । एकब्राह्मण से विना विवाही शूद्रामें पैदाहुआ और दूसरा शूद्रसे ब्राह्मणी में पैदाहुआ इनदोनों में कौनसा श्रेष्ठहै यदि यह संशयहो तो ॥

ता० । एकपुत्र तो यदृच्छासे अर्थात् अकस्मात् विना विवाही शूद्रामें ब्राह्मणसे पैदाहुआ और एकअन्य ब्राह्मणी में शूद्रसे पैदाहुआ इनदोनों के मध्यमें श्रेष्ठकौनसाहोता है यदि यह संशयहो और इससंदेह का कारण यहहै कि जैसे बीजकी उत्तमतासे शूद्रामें ब्राह्मण से पैदाहुआ साधु शूद्र होताहै इसीप्रकार क्षेत्र (ब्राह्मणी) की उत्तमतासे शूद्रसे ब्राह्मणी में पैदाहुआ भी साधु शूद्र क्यों न होना चाहिये इसमें निर्णय कहतेहैं कि ६६ ॥

जातोनार्यामनार्यायामार्यादार्योभवेद्गुणैः।जातोऽप्यनार्यादार्यायामनार्यइतिनिश्चयः६७

प० । जातः नार्यां अनार्यायां आर्यात् आर्यः भवेत् गुणैः जातः अपि अनार्यात् आर्यायां अनार्यः इति निश्चयः ॥

---

१ जात्युत्कर्षोयुगेज्ञेयः सप्तमेपंचमेपिवा ॥

यो० । अनार्यायां नार्यां (शूद्रास्त्रियां) आर्यात् ब्राह्मणात् जातः अपि गुणैः आर्यः भवेत्-आर्यायां (ब्राह्मण्यां) अनार्यात् (शूद्रात्) जातः अपि अनार्यः भवेत् इतिनिश्चयः (शास्त्रमर्यादा) अस्ति ॥

भा० । ता० । शूद्रास्त्रीमें ब्राह्मण से पैदाहुआ पुत्र यदि स्मृतियों में कहेहुये पाकयज्ञ आदि गुणों से युक्तहोय तो आर्य (ब्राह्मण) ही होताहै और शूद्रसे ब्राह्मणी में भी पैदाहुआ पुत्र प्रतिलोमज होनेसे अनार्य इसलिये होताहै कि शूद्रके धर्मकरनेमें भी उसका अधिकार नहींहोना-यहशास्त्रकी मर्यादा है ६७ ॥

तावुभावप्यसंस्कार्याविति धर्मोव्यवस्थितः।वैगुण्याज्जन्मनःपूर्वउत्तरःप्रतिलोमतः ६८

प० । तौ उभौ अपि असंस्कार्यौ इति धर्मः व्यवस्थितः वैगुण्यात् जन्मनः पूर्वः उत्तरः प्रतिलोमतः

यो० । उभौ अपि तौ असंस्कार्यौ इति धर्मः व्यवस्थितः अस्ति-पूर्वः जन्मनः वैगुण्यात् उत्तरः प्रतिलोमतः असंस्कार्यः ज्ञेयः ॥

भा० । ता० । वे दोनों भी पारशव और चांडाल यज्ञोपवीत कराने के योग्य नहींहोते-यहशास्त्र की व्यवस्था है-पहिला (पारशव) जन्म (शूद्रासे उत्पत्ति) की दुष्टतासे और दूसरा (चांडाल) प्रतिलोमज होनेसे अर्थात् शूद्रसे ब्राह्मणीमें पैदाहोनेसे यज्ञोपवीत के योग्य नहींहोता ६८ ॥

सुबीजंचैवसुक्षेत्रेजातंसंपद्यतेयथा। तथाऽर्याज्जातआर्यायांसर्वंसंस्कारमर्हति ६९

प० । सुबीजं च एवं सुक्षेत्रे जातं संपद्यते यथा तथा आर्यात् जातः आर्यायां सर्वं संस्कारं अर्हति ॥

यो० । सुक्षेत्रे जातं सुबीजं यथा संपद्यते तथा आर्यायां आर्यात् जातः सर्वसंस्कारं अर्हति ॥

भा० । ता० । अच्छे क्षेत्रमें पैदाहुआ बीज जैसे भलीप्रकार वृद्धिकोप्राप्तहोताहै इसीप्रकार द्विजातियों से द्विजाति स्त्रियों में पैदाहुआ पुत्रभी वर्णोंके सम्पूर्ण संस्कारों के योग्य होताहै और पारशव और चांडाल कभी नहींहोते ६९ ॥

बीजमेकेप्रशंसंतिक्षेत्रमन्येमनीषिणः। बीजक्षेत्रेतथैवान्येतत्रेयंतुव्यवस्थितिः ७० ॥

प० । बीजं एके प्रशंसन्ति क्षेत्रं अन्ये मनीषिणः बीजक्षेत्रे तथा एव अन्ये तत्र इयं तु व्यवस्थितिः

यो० । एकेबीजं अन्येमनीषिणः क्षेत्रं-तथैव अन्येबीजक्षेत्रे प्रशंसन्ति तत्रव्यवस्थितिः इयं (वक्ष्यमाणा) ज्ञेया ॥

भा० । ता० । कोई परिडत बीजकी प्रशंसा करतेहैं क्योंकि हरिणी से उत्पन्न ऋष्यशृंग ब्रह्मर्षि होगये कोई क्षेत्र की प्रशंसाकरतेहैं क्योंकि क्षेत्रके स्वामीका पुत्रहोताहै और कोई परिडत बीज और क्षेत्र दोनोंकी प्रशंसाकरतेहैं क्योंकि उत्तमक्षेत्रमें बोयेहुये बीजकी समृद्धि होतीहै इनसबमें व्यवस्था और युक्ति शास्त्रसे यहजाननी कि ७० ॥

अक्षेत्रेबीजमुत्सृष्टमन्तरैवविनश्यति। अबीजकमपिक्षेत्रंकेवलंस्थण्डिलंभवेत् ७१

प० । अक्षेत्रे बीजं उत्सृष्टं अन्तरा एव विनश्यति अबीजकं अपि क्षेत्रं केवलं स्थंडिलं भवेत् ॥

यो० । अक्षेत्रे (ऊपरभूमौ) उत्सृष्टं बीजं अन्तराएव विनश्यति अबीजकं केवलं क्षेत्रं अपि स्थंडिलं भवेत् ॥

भा० । ता० । ऊपर भूमिमें बोयाहुआ बीज फलके विनादिये बीचमेंही नष्टहोजाताहै और बीज से रहित अच्छाभी क्षेत्र केवल स्थंडिलही होजाता है इससे परस्पर सहायक होनेसे और सहायक के विना प्रत्येक की निंदासे दोनोंही प्रधान होतेहैं ७१ ॥

यस्माद्बीजप्रभावेणतिर्यग्जाऋषयोऽभवन्।पूजिताश्चप्रशस्ताश्चतस्माद्बीजंप्रशस्यते ७२

प० । यस्मात् बीजप्रभावेण तिर्यग्जाः ऋषयः अभवन् पूजिताः च प्रशस्ताः च तस्मात् बीजं प्रशस्यते ॥

यो० । यस्मात् तिर्यग्जाः बीजप्रभावेण पूजिताः चपुनः प्रशस्ताः ऋषयः अभवन् तस्मात् बीजं बुधैः प्रशस्यते ॥

भा० । ता० । अबबीजकी प्रधानतामें दृष्टांत कहतेहैं जिससे तिरछीयोनि से पैदाहुये ऋष्यशृंग आदि नमस्कार योग्यहोनेसे पूजित—और वेदज्ञाताहोनेसे प्रशस्त बीजकेप्रभावसे ऋषिहोगये तिससे पण्डितजन बीजकीही प्रशंसा करतेहैं यहभी बीजकी प्रधानता का सिद्धांत इसलिये है कि बीजऔर योनिके मध्यमें बीजसे उत्तम जो जाति वही प्रधानहै ७२ ॥

अनार्यमार्यकर्माणमार्यंचानार्यकर्मिणम् । संप्रधार्याब्रवीद्धातानसमौनासमाविति७३ ॥

प० । अनार्यं आर्यकर्माणं आर्यं च अनार्यकर्मिणं संप्रधार्य अब्रवीत् धाता न समौ न असमौ इति

यो० । आर्यकर्माणं अनार्यं चपुनः अनार्यकर्मिणं आर्यं धाता सम्प्रधार्य न समौ न असमौ इति अब्रवीत् ॥

भा० । द्विजातियों के कर्मकरनेवाला शूद्र और शूद्रके कर्मकरनेवाला द्विजाति इनदोनों को विचारकर ब्रह्मा ने यहकहाहै कि ये दोनों न समहैं न असम ॥

ता० । द्विजोंके कर्मकरनेवाला शूद्र—और शूद्रोंके कर्मकरनेवाले द्विजाति—इनदोनों को विचार कर ब्रह्माने यहकहा है कि न ये दोनों सम (तुल्य) और न असम (अतुल्य) हैं अर्थात् द्विजातियों के कर्मोंका करनेवाला भी शूद्र द्विजातियों के समान नहींहोता क्योंकि उसको द्विजातियों के कर्म करने का अधिकार न था इससे द्विजातियों के कर्मोंके आचरण करनेपर भी द्विजातियों की समता नहींहोसक्ती—इसीप्रकार शूद्रके कर्मोंको करनेवाला द्विजाति शूद्रकेसमान नहींहोता क्योंकि निषिद्ध कर्मके करनेसे उसकी जातिकीउत्तमता नष्टनहींहोसक्ती अर्थात् वह ब्राह्मणहीरहताहै—और ये दोनों असम भी नहीं हैं क्योंकि निषिद्ध के आचरण से दोनों समान हैं अर्थात् निषिद्धकर्म की महिमा से दोनों निंदित हैं—तिससे जिसजातिको जो धर्मशास्त्रसे निषिद्धहै वहजाति उसकर्मको न करै ७३ ॥

ब्राह्मणाब्रह्मयोनिस्थायेस्वकर्मण्यवस्थिताः।तेसम्यगुपजीवेयुःषट्कर्माणियथाक्रमम् ७४

प० । ब्राह्मणाः ब्रह्मयोनिस्थाः ये स्वकर्मणि अवस्थिताः ते सम्यक् उपजीवेयुः षट् कर्माणि यथाक्रमम् ॥

यो० । ब्रह्मयोनिस्थाः स्वकर्मणि अवस्थिताः ये ब्राह्मणाः संति ते षट् कर्माणि यथाक्रमं सम्यक् उपजीवेयुः ॥

भा० । ता० । जो ब्राह्मण ब्रह्मकी प्राप्तिके साधन ब्रह्मध्यानमें तत्पर हैं और अपने कर्ममें स्थित हैं वे क्रमसे छः कर्मोंसे अपनी जीविका को भलीप्रकारकरें उनछःकर्मोंको वर्णनकरतेहैं कि ७४ ॥

अध्यापनमध्ययनंयजनंयाजनंतथा। दानंप्रतिग्रहश्चैवषट्कर्माण्यग्रजन्मनः ७५ ॥

प० । अध्यापनं अध्ययनं यजनं याजनं तथा दानं प्रतिग्रहः च एव षट् कर्माणि अग्रजन्मनः ॥

यो० । अध्यापनं—अध्ययनं तथा यजनं याजनं चपुनः दानं प्रतिग्रहः इमानिषट् अग्रजन्मनः कर्माणि ज्ञेयानि ॥

भा० । ता० । ब्राह्मणों के ये छःकर्म जानने कि अंगोंसहित वेदकापढ़ना और पढ़ाना और यज्ञ करना और कराना और दानदेना और लेना ७५ ॥

षणांतुकर्मणामस्यत्रीणिकर्माणिजीविका । याजनाध्यापनेचैवविशुद्धाच्चप्रतिग्रहः ७६

प० । षणां तुँ कर्मणां अस्ये त्रीणि कर्माणि जीविको याजनाध्यापने चँ एवँ विशुद्धातूँ चँ प्रतिग्रहः

यो० । षण्णां कर्मणांमध्ये अस्य (ब्राह्मणस्य) याजनाध्यापने चपुनः विशुद्धात् प्रतिग्रहः इमानि त्रीणिकर्माणि जीविका अस्ति ॥

भा० । ता० । पूर्वोक्त छः कर्मोंके मध्यमें इसब्राह्मणके ये तीनोंकर्म जीविका होते हैं अर्थात् इन तीनोंकर्मोंसेही ब्राह्मण अपनी जीविकाकोकरै कि यज्ञकराना औरपढ़ाना और विशुद्ध (द्विजाति) से प्रतिग्रहलेना ७६ ॥

त्रयोधर्मानिवर्त्तन्तेब्राह्मणात्क्षत्रियंप्रति । अध्यापनंयाजनंचतृतीयश्चप्रतिग्रहः ७७

प० । त्रयः धर्माः निवर्त्तंते ब्राह्मणात् क्षत्रियं प्रति अध्यापनं याजनं चँ तृतीयः चँ प्रतिग्रहः ॥

यो० । ब्राह्मणात् क्षत्रियंप्रति अध्यापनं चपुनः याजनं चपुनः तृतीयः प्रतिग्रहः एतेत्रयः धर्माः निवर्त्तंते ॥

भा० । ता० । ब्राह्मणकी अपेक्षा क्षत्रीके ये तीनधर्म निवृत्ति होजातेहैं अर्थात् क्षत्री इनतीनों धर्मों को न करै कि पढ़ाना और यज्ञकराना और तीसरा प्रतिग्रहलेना ७७ ॥

वैश्यंप्रतितथैवैतेनिवर्तेरन्नितिस्थितिः । नतौप्रतिहितान्धर्मान्मनुराहप्रजापतिः ७८

प० । वैश्यं प्रति तथाँ एवँ एते निवर्तेरन्ँ इति स्थितिः नँ तौ प्रति हिँ तान् धर्मान् मनुः आह प्रजापतिः ॥

यो० । तथैव वैश्यंप्रति एते (पूर्वोक्ताः) धर्माः निवर्तेरन् इतिस्थितिः (मर्यादा) अस्ति हि (यतः) तौ प्रति तान् धर्मान् प्रजापतिः मनुः न आह ॥

भा० । ता० । जैसे क्षत्रीको ब्राह्मणकी अपेक्षा पढ़ाना यज्ञकराना और प्रतिग्रहलेना इनका निषेध है इसीप्रकार वैश्यको भी ये तीनोंकर्म न करने यही शास्त्रकी मर्यादाहै—क्योंकि क्षत्री और वैश्य के लिये वे धर्म प्रजाकेपति मनुने नहींकहे इससे क्षत्री और वैश्यके पढ़ना—यज्ञकरना—दानदेना ये तीनहीं कर्म हैं ७८ ॥

शस्त्रास्त्रभृत्त्वंक्षत्रस्यवणिक्पशुकृषिर्विशः । आजीवनार्थंधर्मस्तुदानमध्ययनंयजिः ७९

प० । शस्त्रास्त्रभृत्त्वं क्षत्रस्य वणिक्पशुकृषिः विशः आजीवनार्थं धर्मः तुँ दानं अध्ययनं यजिः ॥

यो० । क्षत्रस्य आजीवनार्थं शस्त्रास्त्रभृत्त्वं विशः (वैश्यस्य) आजीवनार्थं वणिक्पशुकृषिः अस्ति द्वयोः धर्मस्तुदानं अध्ययनं यजिः ॥

भा० । ता० । क्षत्रीकी आजीविकाकेलिये शस्त्र (खड्गआदि) अस्त्र (वाणआदि) इनकाधारण करना है और वैश्यकी जीविका के लिये वाणिज्य (लेनदेन) और पशुओं की रक्षा और खेती का करना है और इनदोनों का धर्म तो दानदेना—पढ़ना—यज्ञकरनाहै ७९ ॥

वेदाभ्यासोब्राह्मणस्यक्षत्रियस्यचरक्षणम् । वार्ताकर्मैववैश्यस्यविशिष्टानिस्वकर्मसु ८०

प० । वेदाभ्यासः ब्राह्मणस्य क्षत्रियस्य चँ रक्षणं वार्ता कर्म एवँ वैश्यस्य विशिष्टानि स्वकर्मसु ॥

यो० । ब्राह्मणस्य वेदाभ्यासः चपुनः क्षत्रियस्य रक्षणं वैश्यस्य वार्ता कर्मएव इमानि कर्माणि स्वकर्मसु विशिष्टानि (श्रेष्ठानि) भवंति ॥

भा०। ता०। इनतीनों के अपने २ कर्मोंमें यहकर्म श्रेष्ठ होतेहैं अर्थात् जीविकाके लिये यह श्रेष्ठ है कि ब्राह्मण को वेदका अभ्यास क्षत्रीको प्रजाकी रक्षा-और वैश्यको वाणिज्य और पशुओं की पालना ८० ॥

अजीवंस्तुयथोक्तेनब्राह्मणःस्वेनकर्मणा। जीवेत्क्षत्रियधर्मेणसह्यस्यप्रत्यनन्तरः ८१ ॥

प०। अजीवन् तु यथोक्तेन ब्राह्मणः स्वेन कर्मणा जीवेत् क्षत्रियधर्मेण सः हि अस्य प्रत्यनंतरः ॥

यो०। यथोक्तेन स्वेनकर्मणा अजीवन् ब्राह्मणः क्षत्रियधर्मेण जीवेत् हि (यतः) सः क्षत्रियः अस्य (विप्रस्य) प्रत्यनंतरः (संनिकृष्टः) अस्ति ॥

भा०। ता०। शास्त्रोक्त अपने कर्म से नहींजीवताहुआ ब्राह्मण अर्थात् अपने नित्यके-कर्म-और कुटुम्बकी पालनाको न करताहुआ क्षत्रीके धर्मसेही जीविकाको करै क्योंकि वह क्षत्री इसब्राह्मणके समीप का वर्ण है ८१ ॥

उभाभ्यामप्यजीवंस्तुकथंस्यादितिचेद्भवेत्। कृषिगोरक्षमास्थायजीवेद्वैश्यस्यजीविकाम् ८२

प०। उभाभ्यां अपि अजीवन् तु कथं स्यात् इति चेत् भवेत् कृषिगोरक्षं आस्थाय जीवेत् वैश्यस्य जीविकाम् ॥

यो०। चेत् (यदि) कथंचित् उभाभ्यां अजीवन् स्यात् तर्हि कृषिगोरक्षं वैश्यस्यजीविकां आस्थाय जीवेत् ॥

भा०। ता०। यदि ब्राह्मण किसीप्रकार से पूर्वोक्त दोनों वृत्तियों से न जीसके तो कृषि और गौओं की रक्षारूप वैश्यकी जीविकासे जीवै अर्थात् वैश्योंके कर्मोंसेही अपना निर्वाह करै ८२ ॥

वैश्यवृत्त्यापिजीवंस्तुब्राह्मणःक्षत्रियोऽपिवा। हिंसाप्रायांपराधीनांकृषिंयत्नेनवर्जयेत् ८३

प०। वैश्यवृत्त्या अपि जीवन् तु ब्राह्मणः क्षत्रियः अपि वा हिंसाप्रायां पराधीनां कृषिं यत्नेन वर्जयेत् ॥

यो०। वैश्यवृत्त्या अपि जीवन् ब्राह्मणः वा क्षत्रियः हिंसाप्रायां पराधीनां कृषिं यत्नेन वर्जयेत् ॥

भा०। ता०। वैश्यकी वृत्तिसे जीवताहुआ ब्राह्मण और क्षत्रिय-प्रायः भूमिके जंतुओंकीहै हिंसा जिसमें और पराधीन अर्थात् बैल और वर्षा आदि के आधीन खेतीको यत्नसे वर्जदे अर्थात् पशुओंकी पालना न होने पर ही खेतीकरनी और क्षत्रिय भी अपनी वृत्तिके न होने पर ही वैश्य की वृत्ति से जीवै ८३ ॥

कृषिंसाध्वितिमन्यन्तेसावृत्तिःसद्विगर्हिता। भूमिंभूमिशयांश्चैवहन्तिकाष्ठमयोमुखम् ८४

प०। कृषिं साधु इति मन्यंते सा वृत्तिः सद्विगर्हिता भूमिं भूमिशयान् च एव हंति काष्ठं अयोमुखम्॥

यो०। केचित् इदं जीवनं साधु इति मन्यंते-किंतु सा (कृषिः) वृत्तिः सद्विगर्हिता अस्ति-यतः अयोमुखं काष्ठं भूमिं पुनः भूमिशयान् हंति ॥

भा०। ता०। कोई मनुष्य खेतीकी जीविका को श्रेष्ठ मानते हैं परंतु यह खेतीकी जीविका सज्जनोंने निंदित कही है क्योंकि लोहे का है मुख जिसका ऐसा हल भूमि और भूमिमें सोनेवाले जीवोंको नष्ट करदेता है ८४ ॥

इदंतुवृत्तिवैकल्यात्त्यजतोधर्मनैपुणम्। विट्पण्यमुद्धृतोद्धारंविक्रेयंवित्तवर्धनम् ८५

प० । इदं तु वृत्तिवैकल्यात् त्यजतः धर्मनैपुणं विट्पण्यं उद्धृतोद्धारं विक्रेयं वित्तवर्द्धनम् ॥

यो० । वृत्तिवैकल्यात् इदं धर्मनैपुणं त्यजतः विप्रस्य वा क्षत्रियस्य उद्धृतोद्धारं वित्तवर्धनं विक्रेयं विट्पण्यं कर्त्तव्यम् ॥

भा० । ता० । यदि अपनीवृत्तिके अभावमें अपने धर्म में निष्ठाको ब्राह्मण वा क्षत्री त्यागदें तो वैश्य के बेचने योग्य और वित्त (धन) का वर्धक निषिद्ध वस्तुओंसे रहित वस्तुओंके बेचने को करें परंतु इनको वर्जदें कि ८५ ॥

सर्वान्रसानपोहेतकृतान्नंचतिलैःसह । अश्मनोलवणंचैवपशवोयेचमानुषाः ८६

प० । सर्वान् रसान् अपोहेत कृतान्नं च तिलैः सह अश्मनः लवणं च एव पशवः ये च मानुषाः ॥

यो० । सर्वान् रसान् चपुनः तिलैः सह कृतान्नं अश्मनः चपुनः लवणं चपुनः येमानुषाः पशवः तान् अपोहेत (वर्ज्जयेत्) ॥

भा० । ता० । संपूर्ण रस कृतान्न (पूरी आदि) और तिल पाषाण और लवण और मनुष्यों के उपकारी पशु (बैल आदि) इनको वर्जदे यद्यपि लवण भी रसोंमें है तथापि पृथक् उसका निषेध अधिक दोष युक्त प्रायश्चित्त के लिये जानना इसीप्रकार अन्यत्र भी समझना ८६ ॥

सर्वंचतान्तवंरक्तंशाणक्षौमाविकानिच । अपिचेत्स्युररक्तानिफलमूलेतथौषधीः ८७

प० । सर्वं च तान्तवं रक्तं शाणक्षौमाविकानि च अपि चेत् स्युः अरक्तानि फलमूले तथा औषधीः ॥

यो० । सर्वरक्ततान्तवं चपुनः शाणक्षौमाविकानि चेत् अरक्तानि अपिस्युः तानि तथा फलमूले औषधीः अपोहेत (वर्ज्जयेत्) ॥

भा० । ता० । कुसुम आदि से रंगहुये सबप्रकारके वस्त्र शण, रेशम, भेडकी ऊन, इनकेवस्त्र चाहे रंगेहों वा न रंगेहों उनको—फल और मूल और गिलोह आदि औषधी इनको वर्जिदें ८७ ॥

अपःशस्त्रंविषंमांसंसोमंगन्धांश्चसर्वशः । क्षीरंक्षौद्रंदधिघृतंतैलंमधुगुडंकुशान् ८८

प० । अपः शस्त्रं विषं मांसं सोमं गंधान् च सर्वशः क्षीरं क्षौद्रं दधि घृतं तैलं मधु गुडं कुशान् ॥

यो० । अपः (जलानि) शस्त्र—विष—मांसं—सोमं—चपुनः सर्वशः गंधान् क्षीरं क्षौद्रं दधि घृतं तैलं मधु गुडं कुशान् अपोहेत (वर्ज्जयेत्) ॥

भा० । ता० । जल—शस्त्र—विष—मांस—सोम (अमृत लता) और संपूर्ण कपूर आदि गंध—दूध—क्षौद्र (सहत) दधि—घी—तेल—मधु—(मदिरा वा मीठा) और गुड—कुशा इनको भी क्रमसे वर्जदें—अर्थात् ब्राह्मण क्षत्री इनको न बेचें ८८ ॥

आरण्यांश्चपशून्सर्वान्दंष्ट्रिणश्चवयांसिच । मद्यंनीलींचलाक्षांचसर्वांश्चैकशफांस्तथा८९

प० । आरण्यान् च पशून् सर्वान् दंष्ट्रिणः च वयांसि च मद्यं नीलीं च लाक्षां च सर्वान् च एकशफान् तथा ॥

यो० । सर्वान् आरण्यान् पशून्—दंष्ट्रिणः चपुनः वयांसि (पक्षिणः) मद्यं—नीलीं चपुनः लाक्षां—तथा सर्वान् एकशफान् वर्जयेत् ॥

भा० । ता० । वनके संपूर्ण पशु (हाथी आदि) और दंष्ट्री (सिंह आदि) और पक्षी (जल के वा अंडज) मदिरा—नील—लाख—और एक खुरवाले संपूर्ण पशु—इनको भी वर्जदें अर्थात् न बेचें ८९ ॥

काममुत्पाद्यकृष्यांतुस्वयमेवकृषीवलः । विक्रीणीततिलान्शुद्धान्धर्मार्थमचिरस्थितान् ९०

प० । कामं उत्पाद्य कृष्यां तु स्वयं एवं कृषीवलः विक्रीणीत तिलान् शुद्धान् धर्मार्थं अचिरस्थितान् ॥

यो० । कृषीवलः कृष्यां स्वयं एव तिलान् उत्पाद्य द्रव्यान्तरमिश्रान् शुद्धान् धर्मार्थं अचिरस्थितान् कामं विक्रीणीत ॥

भा० । ता० । अपनीखेती में स्वयं तिलोंको किसी अन्नके संग पैदाकरके और धर्म (होम आदि) के लिये बहुत शीघ्रही वह किसान बेचदे जो आपत्तिके समय ब्राह्मण और क्षत्रिय भी होकर खेती को करनेलगाहो—यद्यपि तिलोंका बेचना निषिद्ध है तथापि धर्म के लिये दूषित नहीं है ९० ॥

भोजनाभ्यञ्जनाद्दानाद्यदन्यत्कुरुतेतिलैः।कृमिभूतःश्वविष्ठायांपितृभिःसहमज्जति ९१

प० । भोजनाभ्यंजनात् दानात् यत् अन्यत् कुरुते तिलैः कृमिभूतः श्वविष्ठायां पितृभिः सह मज्जति ॥

यो० । भोजनाभ्यंजनात्—दानात् अन्यत् यत्कर्म तिलैः कुरुते सः कृमिभूतः सन् श्वविष्ठायां पितृभिः सह मज्जति ॥

भा० । ता० । जो ब्राह्मण वा क्षत्रिय—भोजन—अभ्यंजन (उबटना) और दानसे अन्य (विक्रय आदि) कामको तिलोंसे करताहै वह कृमिहोकर कुत्तेके विष्ठा (मल) में अपने पितरों सहित डूबताहै इससे तिलोंको कदाचित् लाभ के निमित्त न बेचै ९१ ॥

सद्यःपततिमांसेनलाक्षयालवणेनच। त्र्यहेणशूद्रीभवतिब्राह्मणःक्षीरविक्रयात् ९२

प० । सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च त्र्यहेण शूद्रीभवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात् ॥

यो० । ब्राह्मणः मांसेन—लाक्षया—चपुनः लवणेन सद्यः पतति—क्षीरविक्रयात् त्र्यहेण शूद्रीभवति(शूद्रजातिंप्राप्नोति॥)

भा० । ता० । मांस—लाख—लवण इनके बेचनेसे ब्राह्मण उसीसमय पतित होताहै—यदि मांस का बेचनाही पतितकरनेका हेतु है तो भक्षण से तो अत्यंत पतित होजातेहैं इससे कभी भी मांसका भक्षण न करै—और दूधके बेचनेसे तो ब्राह्मण तीनदिनमें शूद्रहोजाताहै अर्थात् दूधका बेचना अत्यंत दूषितहै ९२ ॥

इतरेषांतुपण्यानांविक्रयादिहकामतः ।ब्राह्मणःसप्तरात्रेणवैश्यभावंनियच्छति ९३ ॥

प० इतरेषां तु पण्यानां विक्रयात् इह कामतः ब्राह्मणः सप्तरात्रेण वैश्यभावं नियच्छति ॥

यो० । इह इतरेषां पण्यानां कामतः विक्रयात् ब्राह्मणः सप्तरात्रेण वैश्यं भावं नियच्छति (गच्छति) ॥

भा० । ता० । पूर्वोक्त मांस आदिकों से इतर निषिद्ध बेचने योग्य वस्तुओं के इच्छापूर्वक बेचने से सात रात्रि में ब्राह्मण वैश्य भावको प्राप्त होजाताहै अर्थात् वैश्य के कर्मों को करनेवाला ब्राह्मण निषिद्ध पदार्थों को कभी न बेचै ९३ ॥

रसारसैर्निमातव्यानत्वेवलवणंरसैः । कृतान्नंचाकृतान्नेनतिलाधान्येनतत्समाः ९४ ॥

प० । रसाः रसैः निमातव्याः न तु एवं लवणं रसैः कृतान्नं च अकृतान्नेन तिलाः धान्येन तत्समाः ॥

यो० । मनुष्यैः रसाः रसैः निमातव्याः तुपुनः लवणं रसैः ननिमातव्यं—कृतान्नं (सिद्धान्नं) कृतान्नेन निमातव्यं— तत्समाः तिलाः धान्येन (अन्नेन) निमातव्याः (परिवर्तनीयाः) ॥

भा० । ता० । मनुष्य गुड आदि रसोंको घृत आदि रसोंसे परिवर्तन (बदलना) करलें परंतु लव-

णको इतर रसोंसे न बदलें—और कृतान्न (बनाहुआ पूरी आदि) को अकृतान्न (कच्चा) से और अन्नके समान तिलोंको अन्नसे बदललें ९४ ॥

जीवेदेतेनराजन्यःसर्वेणाप्यनयंगतः । नत्वेवज्यायसींवृत्तिमभिमन्येतकर्हिचित् ९५ ॥

प० । जीवेत् एतेन राजन्यः सर्वेण अपि अनयं गतः न तु एव ज्यायसीं वृत्तिं अभिमन्येत कर्हिचित् ॥

यो० । अनयंगतः राजन्यः (क्षत्रियः) एतेन सर्वेण अपि जीवेत्—तुपुनः कर्हिचित् अपि ज्यायसीं वृत्तिं न अभिमन्येत (न स्वी कुर्यात्) ॥

भा० । ता० । आपत्तिको प्राप्तहुआ क्षत्रिय भी इस पूर्वोक्त संपूर्ण निषिद्ध भी रस आदिके विक्रय से जीविकाकरै परंतु ब्राह्मणकी जीविका की अभिलाषा कभी भी न करै—और यह काम केवल क्षत्रियकाही नहीं किंतु वैश्य भी आपत्तिके समय ब्राह्मण की वृत्तिकी अभिलाषा न करै ९५ ॥

योलोभादधमोजात्याजीवेदुत्कृष्टकर्मभिः । तंराजानिर्धनंकृत्वाक्षिप्रमेवप्रवासयेत् ९६ ॥

प० । यः लोभात् अधमः जात्या जीवेत् उत्कृष्टकर्मभिः तं राजा निर्धनं कृत्वा क्षिप्रं एव प्रवासयेत् ॥

यो० । यःजात्या अधमः लोभात् उत्कृष्टकर्मभिःजीवेत् राजा तंनिर्धनं कृत्वा क्षिप्रं एव प्रवासयेत् (निःसारयेत्) ॥

भा० । ता० । जो जातिसे अधम मनुष्य लोभसे उत्कृष्ट जातिके कर्मोंसे जीविका करताहै—राजा उस मनुष्यको निर्धनकरके उसीसमय अपने देशमें से निकास दे ९६ ॥

वरंस्वधर्मोविगुणोनपारक्यःस्वनुष्ठितः । परधर्मेणजीवन्हिसद्यःपततिजातितः ९७ ॥

प० । वरं स्वधर्मः विगुणः न पारक्यः स्वनुष्ठितः परधर्मेण जीवन् हि सद्यः पतति जातितः ॥

यो० । विगुणः स्वधर्मः वरं (श्रेष्ठः) भवति स्वनुष्ठितः पारक्यः धर्मः वरं न भवति—हि (यतः) परधर्मेण जीवन् पुरुषः जातितः पतति ॥

भा० । ता० । विगुण भी अपनाधर्म (उत्तमरीतिसे न कियाहो) श्रेष्ठ होताहै—और भलीप्रकारसे किया भी अन्य का धर्म श्रेष्ठ नहीं होता—क्योंकि परधर्म से जीवताहुआ मनुष्य जातिसे उसीसमय पतित होताहै इससे अन्यके धर्म को कभी न करै ९७ ॥

वैश्योऽजीवन्स्वधर्मेणशूद्रवृत्त्यापिवर्तयेत् । अनाचरन्नकार्याणिनिवर्तेतचशक्तिमान् ९८ ॥

प० । वैश्यः अजीवन् स्वधर्मेण शूद्रवृत्त्या अपि वर्तयेत् अनाचरन् अकार्याणि निवर्तेत च शक्तिमान् ॥

यो० । स्वधर्मेण अजीवन् वैश्यः अकार्याणि अनाचरन् सन् शूद्रवृत्त्या अपि वर्तयेत्—शक्तिमान् चेत् शूद्रवृत्तितः निवर्तेत ॥

भा० । ता० । अपनी वृत्तिसे नहीं जीवताहुआ वैश्य शूद्रके कर्मोंसे जीविकाकरै परंतु उच्छिष्ट भोजन आदि निषिद्ध कर्मोंको न करै—और फिर शक्तिमान् (समर्थ) होने पर शूद्रकी वृत्तिसे निवृत्त होजाय अर्थात् त्यागदे ९८ ॥

अशक्नुवंस्तुशुश्रूषांशूद्रःकर्तुंद्विजन्मनाम् । पुत्रदारात्ययंप्राप्तोजीवेत्कारुककर्मभिः ९९ ॥

प० । अशक्नुवन् तु शुश्रूषां शूद्रः कर्तुं द्विजन्मनाम् पुत्रदारात्ययं प्राप्तः जीवेत् कारुककर्मभिः ॥

यो० । द्विजन्मनां शुश्रूषां कर्तुं अशक्नुवन् पुत्रदारात्ययं प्राप्तः शूद्रः कारुककर्मभिः जीवेत् ॥

भा० । ता० । द्विजातियोंकी सेवाकरनेको असमर्थ—और क्षुधासे नष्टताको प्राप्त होतेहैं पुत्र और स्त्री जिसके ऐसा शूद्र कारुककर्मो (सूपकार वा कारीगरी) से जीविकाकरै ९९ ॥

यैःकर्मभिःप्रचरितैःशुश्रूष्यन्तेद्विजातयः।तानिकारुककर्माणिशिल्पानिविविधानिच १००

प० । यैः कर्मभिः प्रचरितैः शुश्रूष्यंते द्विजातयः तानि कारुककर्माणि शिल्पानि विविधानि च ॥

यो० । यैः प्रचरितैः कर्मभिः द्विजातयः शुश्रूष्यंते तानि (तक्षणादीनि) कर्माणि चपुनः विविधानि शिल्पानि (चित्रलिखितादीनि) शूद्रः कुर्यात् ॥

भा० । ता० । जिन कर्मोंसे द्विजातियों की सेवाकरसके उन कारुककर्मों (तक्षण आदि) को और चित्र लिखित आदि नानाप्रकारके शिल्प कर्मोंको शूद्र करै १०० ॥

वैश्यवृत्तिमनातिष्ठन्ब्राह्मणःस्वेपथिस्थितः।अवृत्तिकर्शितःसीदन्निमंधर्मंसमाचरेत् १०१

प० । वैश्यवृत्तिं अनातिष्ठन् ब्राह्मणः स्वे पथि स्थितः अवृत्तिकर्शितः सीदन् इमं धर्मं समाचरेत् ॥

यो० । स्वेपथिस्थितः अवृत्तिकर्शितः सीदन् ब्राह्मणः वैश्यवृत्तिं अनातिष्ठन् सन् इमं धर्मं समाचरेत् ॥

भा० । ता० । जीविकाके अभावसे पीडित और दुःखको प्राप्तहुआ अपने धर्म में स्थित ब्राह्मण वैश्यकी वृत्ति में नहीं टिककर इसी (वक्ष्यमाण) धर्म को करै अर्थात् दुःख अवस्था में क्षत्री और वैश्य वृत्तिको धारणकरै और विगुण भी अपनाधर्म इसी अध्यायके ९७ श्लोकमें उत्तम कहा है उसमें टिकाहुआ ब्राह्मण इस धर्म को करै क्योंकि यदि विगुण प्रतिग्रह—आदि अपनी वृत्ति न मिलसके तभी परवृत्ती का आश्रय लेना ठीक है कि १०१ ॥

सर्वतःप्रतिगृह्णीयाद्ब्राह्मणस्त्वनयंगतः । पवित्रंदुष्यतीत्येतद्धर्मतोनोपपद्यते १०२ ॥

प०।सर्वतः प्रतिगृह्णीयात् ब्राह्मणः तु अनयं गतः पवित्रं दुष्यति इति एतत् धर्मतः न उपपद्यते॥

यो० । पवित्रं दुष्यति इति एतत् धर्मतः यतः न उपपद्यते अतःकारणात् अनयंगतः ब्राह्मणः सर्वतः प्रतिगृह्णीयात् ॥

भा० । ता० । आपत्तिको प्राप्तहुआ ब्राह्मण अत्यंत निंदित भी सबसे प्रतिग्रहको ले क्योंकि पवित्रवस्तु किसी अपवित्रसे (जैसे गंगा निषिद्ध जलके मिलने से) दूषित होतीहै यह बात शास्त्रकी मर्यादासे सिद्ध नहीं होसक्ती क्योंकि १०२ ॥

नाध्यापनाद्याजनाद्वागर्हिताद्वाप्रतिग्रहात् । दोषोभवतिविप्राणांज्वलनाम्बुसमाहिते १०३

प० । न अध्यापनात् याजनात् वा गर्हितात् वा प्रतिग्रहात् दोषः भवति विप्राणां ज्वलनाम्बुसमाः हि ते ॥

यो० । गर्हितात्—अध्यापनात्—याजनात्—वाप्रतिग्रहात्—विप्राणां दोषो न भवति हि (यतः) ते (विप्राः) ज्वलनाम्बुसमाः भवंति ॥

भा० । ता० । आपत्तिके समय निंदित पढ़ाने और निंदित यज्ञकराने और निंदित प्रतिग्रह से ब्राह्मणोंको दोष (अधर्म) नहीं होता क्योंकि वे ब्राह्मण अग्नि और जलके समान स्वभावसे पवित्र होतेहैं १०३ ॥

जीवितात्ययमापन्नोयोऽन्नमत्तियतस्ततः । आकाशमिवपंकेननसपापेनलिप्यते १०४ ॥

प० । जीवितात्ययं आपन्नः यः अन्नं अत्ति यतः ततः आकाशं इव पंकेन न सः पापेन लिप्यते ॥

यो० । जीवितात्ययं आपन्नः यः ब्राह्मणः यतः ततः अन्नं अत्ति सःब्राह्मणः पंकेन आकाशं इव न लिप्यते ॥

भा० । ता० । प्राणोंके नाशको प्राप्तहुआ जो ब्राह्मण जहां तहां (प्रतिलोमज आदि) से अन्नको भक्षण करताहै वह इसप्रकार लिप्त नहीं होता जैसे पंक (कीच) से आकाश १०४ ॥

अजीगर्तःसुतंहन्तुमुपासर्पद्बुभुक्षितः। नचालिप्यतपापेनक्षुत्प्रतीकारमाचरन् १०५॥

प० । अजीगर्तः सुतं हंतुं उपासर्पत् बुभुक्षितः न च अलिप्यत पापेन क्षुत्प्रतीकारं आचरन् ॥

यो० । बुभुक्षितः अजीगर्तः सुतं (शुनःशेफं) हंतुं उपासर्पत् चपुनः क्षुत्प्रतीकारं आचरन् सन् पापेन न अलिप्यत ॥

भा० । ता० । भूखा अजीगर्त ऋषि अपनेपुत्र शुनःशेफके मारनेको उसके समीप जाता भया यद्यपि उसने उस पुत्रको बेचदियाथा तथापि यज्ञमें सौ गौओंके लाभके लिये हिंसकहोकर उसके मारने को उद्यत भया और क्षुधाका प्रतीकार (निवारण) करताहुआ वह अजीगर्त पापसे लिप्त न हुआ अर्थात् पापका भागी न हुआ यह बात बह्वृच ब्राह्मणके विषय शुनःशेफके आख्यान में प्रकट कही है १०५ ॥

श्वमांसमिच्छन्नार्तोत्तुंधर्माधर्मविचक्षणः। प्राणानांपरिरक्षार्थंवामदेवोनलिप्तवान् १०६॥

प० । श्वमांसं इच्छन् आर्तः अत्तुं धर्माधर्मविचक्षणः प्राणानां परिरक्षार्थं वामदेवः न लिप्तवान् ॥

यो० । धर्माधर्मविचक्षणः आर्तः वामदेवः श्वमांसं प्राणानां परिरक्षार्थं अत्तुंइच्छन् पापेन न लिप्तवान् ॥

भा० । ता० । धर्म और अधर्म का ज्ञाता क्षुधासे पीडित वामदेव ऋषि श्वमांसकेखानेकीइच्छा प्राणोंकी रक्षाके लिये करताहुआ पापसे लिप्त न हुआ अर्थात् दोषका भागी न हुआ १०६ ॥

भरद्वाजःक्षुधार्तस्तुसपुत्रोविजनेवने। बह्वीर्गाःप्रतिजग्राहवृधोस्तक्ष्णोमहातपाः १०७॥

प० । भरद्वाजः क्षुधार्तः तु सपुत्रः विजने वने बह्वीः गाः प्रतिजग्राह वृधोः तक्ष्णः महातपाः ॥

यो० । क्षुधार्तः सपुत्रः महातपाः भरद्वाजः मुनिः विजनेवने वृधोः तक्ष्णः बह्वीः गाः प्रतिजग्राह ॥

भा० । ता० । पुत्रोंसहित और क्षुधासे पीडित महान् तपस्वी भरद्वाज मुनि विजनवन (मनुष्यों रहित) में वृधुनामातक्षा (बढ़ई) की बहुतसी गौओंका प्रतिग्रह लेताभया १०७ ॥

क्षुधार्तश्चात्तुमभ्यागाद्विश्वामित्रःश्वजाघनीम्। चण्डालहस्तादादायधर्माधर्मविचक्षणः१०८

प०। क्षुधार्तः च अत्तुं अभ्यागात् विश्वामित्रःश्वजाघनीं चण्डालहस्तात् आदाय धर्माधर्मविचक्षणः॥

यो० । क्षुधार्तः धर्माधर्मविचक्षणः विश्वामित्रः चंडालहस्तात् आदाय श्वजाघनीं अत्तुं अभ्यागात् ॥

भा० । ता० । क्षुधासे पीडित धर्म और अधर्मका ज्ञाता विश्वामित्रऋषि चंडालके हाथसे ग्रहण करके कुत्तेकी जंघाके मांसके भक्षण करने को उद्यत होतेभये १०८ ॥

प्रतिग्रहाद्याजनाद्वातथैवाध्यापनादपि। प्रतिग्रहःप्रत्यवरःप्रेत्यविप्रस्यगर्हितः १०९ ॥

प० । प्रतिग्रहात् याजनात् वा तथा एव अध्यापनात् अपि प्रतिग्रहः प्रत्यवरः प्रेत्य विप्रस्य गर्हितः ॥

यो० । प्रतिग्रहात् वायाजनात् तथैव अध्यापनात् विप्रस्य प्रेत्य गर्हितः प्रतिग्रहः प्रत्यवरः (निकृष्टः) अस्ति ॥

भा०।ता०। निंदित प्रतिग्रह—याजन—और अध्यापन—इनतीनोंमें ब्राह्मणको प्रतिग्रह अत्यन्त नि-

कृष्ट है क्योंकि प्रतिग्रह परलोक में नरकका हेतु होताहै इससे आपत्तिके समय प्रथम निंदित पढ़ाने और यज्ञ कराने में प्रवृत्तहो और यदि वे न मिलें तो निंदित प्रतिग्रह से निर्वाह करै क्योंकि १०९॥

याजनाध्यापनेनित्यंक्रियेतेसंस्कृतात्मनाम्। प्रतिग्रहस्तुक्रियतेशूद्रादप्यन्त्यजन्मनः११०

प०। याजनाध्यापने नित्यं क्रियेते संस्कृतात्मनां प्रतिग्रहः तु क्रियते शूद्रात् अपि अंत्यजन्मनः ॥

यो०। याजनाध्यापने नित्यं संस्कृतात्मनां क्रियेते प्रतिग्रहस्तु अंत्यजन्मनः शूद्रात् अपि क्रियते ॥

भा०। ता०। यज्ञकराना और वेद पढ़ाना ये दोनों सदैव अर्थात्—आपत्तिके विना और आपत्ति के समय उनकेही किये जाते हैं जिन द्विजातियों का यज्ञोपवीत संस्कार होताहै और प्रतिग्रह तो निकृष्ट जाति शूद्रसे भी लियाजाता है इससे उन दोनोंसे प्रतिग्रह निंदित है ११० ॥

जपहोमैरपैत्येनोयाजनाध्यापनैःकृतम्। प्रतिग्रहनिमित्तंतुत्यागेनतपसैवच १११ ॥

प०। जपहोमैः अपैति एनः याजनाध्यापनैः कृतं प्रतिग्रहनिमित्तं तु त्यागेन तपसा एव च ॥

यो०। ब्राह्मणस्य याजनाध्यापनैः कृतंएनः जपहोमैः अपैति (नश्यति) प्रतिग्रहनिमित्तंतुएनः त्यागेन चपुनः तपसा अपैति ॥

भा०। ता०। निषिद्ध यज्ञ कराने और पढ़ाने से पैदाहुआ ब्राह्मणका पाप जप और होम करने से नष्ट होजाता है और प्रतिग्रहसे पैदाहुआ तो पाप प्रतिग्रह लिये द्रव्यके त्यागसे और महीने भर तक गोशालामें तपकरने सेही दूरहोताहै १११ ॥

शिलोञ्छमप्याददीतविप्रोऽजीवन्यतस्ततः।प्रतिग्रहाच्छिलःश्रेयांस्ततोप्युञ्छःप्रशस्यते ११२

प०। शिलोञ्छं अपि आददीत विप्रः अजीवन् यतः ततः प्रतिग्रहात् शिलः श्रेयान् ततः अपि उञ्छः प्रशस्यते ॥

यो०। अजीवन्विप्रः यतः ततः शिलोंछं अपि आददीत प्रतिग्रहात् शिलः श्रेयान भवति ततः (शिलात्) अपि उञ्छः बुधैः प्रशस्यते ॥

भा०। ता०। अपनी वृत्तिसे नहीं जीवताहुआ ब्राह्मण जहां तहांसे शिलोंछको भी ग्रहण करै अर्थात् शिलोंछ मिलसकै तो निषिद्ध प्रतिग्रह न ले क्योंकि प्रतिग्रहसे शिलाश्रेष्ठ होताहै और शिले से उंछको विद्वानोंने उत्तम कहा है—खेतमेंसे एक २ अन्नकी मंजरी (बाली) बीनकरि लाना उसे शिल कहते हैं और एक२ अन्नके दानेको बीनकर लाना उसे उंछ कहते हैं ११२ ॥

सीदद्भिःकुप्यमिच्छद्भिर्धनंवापृथिवीपतिः। याच्यःस्यात्स्नातकैर्विप्रैरदित्सन्त्यागमर्हति ११३ ॥

प०। सीदद्भिः कुप्यं इच्छद्भिः धनं वा पृथिवीपतिः याच्यः स्यात् स्नातकैः विप्रैः अदित्सन् त्यागं अर्हति ॥

यो०। सीदद्भिः कुप्यं धनं इच्छद्भिः स्नातकैः विप्रैः पृथिवीपतिः धनंयाच्यः स्यात् अदित्सन् राजात्यागं अर्हति—नयाच्य इत्यर्थः ॥

भा०। ता०। कुटुम्बकी पीड़ासे दुःखित और धनकी इच्छा करनेवाले स्नातक ब्राह्मणराजा से अन्न और वस्त्रकी अथवा यज्ञके उपयोगी सोने चांदी आदि धनकी याचना करें और जो राजा वा क्षत्रिय दिया न चाहताहो अथवा जिसे वे कृपण समझतेहों उसको त्यागिदें अर्थात् उसपर न मांगें

मेधातिथि गोविंदराज तो यह कहते हैं कि वह त्यागके योग्य है अर्थात् उसके राज्यमें न बसें ११३ ॥

अकृतंचकृतात्क्षेत्राद्गौरजाविकमेवच । हिरण्यंधान्यमन्नंचपूर्वंपूर्वमदोषवत् ११४ ॥

प० । अकृतं चँ कृतात् क्षेत्रात् गौः अजाविकं एवँ चँ हिरण्यं धान्यं अन्नं चँ पूर्वं पूर्वं अदोषवत् ॥

यो० । कृतात् क्षेत्रात् अकृतं क्षेत्रं-गौः-अजाविकं-हिरण्यं-धान्यं-चपुनः अन्नं-एषु प्रतिग्रहे पूर्वं पूर्वं अदोषवत् भवति ॥

भा० । ता० । जिसमें सस्य बोआहो उस क्षेत्रसे जिसमें न बोआहो वह क्षेत्र प्रतिग्रह में अदुष्ट है और गौ-बकरी-भेड़-सोना धान्य और अन्न (सरसों आदि) इनमें पहिला २ प्रतिग्रह में अदुष्ट होताहै अर्थात् पहिले २ के न मिलने पर ही पिछले २ का प्रतिग्रह ले ११४ ॥

सप्तवित्तागमाधर्म्यादायोलाभःक्रयोजयः । प्रयोगःकर्मयोगश्चसत्प्रतिग्रहएवच ११५

प० । सप्त वित्तागमाः धर्म्याः दायः लाभः क्रयः जयः प्रयोगः कर्मयोगः चँ सत्प्रतिग्रहः एवँ चँ ॥

यो० । दायः-लाभः-क्रयः जयः प्रयोगः कर्मयोगः चपुनः सत्प्रतिग्रहः एते सप्त वित्तागमाः धर्म्याः भवंति ॥

भा० । दाय-लाभ-क्रय-जय-प्रयोग-कर्मयोग-और उत्तम प्रतिग्रह-ये सात धनकी प्राप्तिके उपाय धर्म के अनुकूल होतेहैं ॥

ता० । दाय आदि सात धनकी प्राप्तिके कारण अपने २ अधिकार के अनुसार धर्म के अनुकूल होतेहैं अर्थात् दूषित नहीं होते-जिन सातोंमें दाय (वंशकी परंपरा से आयाहुआ धन) लाभ (निधि आदि का वा मित्र आदिसे मिलाहुआ धन) क्रय (मोललेना) ये तीनों चारों वर्णोंके लिये धर्म से होतेहैं-और जय (जो विजयसे मिले) का धन क्षत्रिय के लिये धर्म से है प्रयोग (वृद्धि वा व्याज) परधन देना और कर्म योग (खेती लेन देन) ये सब वैश्यके लिये धर्मसे होते हैं-और उत्तमसे प्रतिग्रह यह ब्राह्मण के लिये धर्म से होताहै अर्थात् ये सब यथासंभव द्विजातियों के मुख्य धर्म हैं-और इनको धर्म्य कहने से यह तात्पर्य है कि इनके न मिलने परही शास्त्र विहित इतर कर्मोंमें विना आपत्तिके समय में द्विजाति प्रवृत्तहों और वे इतर कर्म भी न मिलें तो आपत्कालमें कहेहुये धर्मों में ही प्रवृत्तहोकर अपना निर्वाह करें ११५ ॥

विद्याशिल्पंभृतिःसेवागोरक्ष्यंविपणिःकृषिः । धृतिर्भैक्ष्यंकुसीदंचदशजीवनहेतवः ११६ ॥

प० । विद्या शिल्पं भृतिः सेवा गोरक्ष्यं विपणिः कृषिः धृतिः भैक्ष्यं कुसीदं चँ दश जीवनहेतवः ॥

यो० । विद्या-शिल्पं भृतिः सेवा-गोरक्ष्यं-विपणिः कृषिः धृतिः-भैक्ष्यं-चपुनः कुसीदं-एते दशजीवनहेतवः भवंति ॥

भा० । वेदविद्या-शिल्प-वेतन-सेवा-गौओंकी रक्षा-लेनदेन-खेती-धैर्य-भिक्षा-सूदपर धन देना-ये दश जीविकाके हेतु होतेहैं ॥

ता० । विद्या (वेद विद्या) और वेदसे भिन्न वैद्य-तर्क-विषका दूरकरना-आदि जो विद्याहैं वे भी आपत्तिके समय जीवनके लिये दूषित नहीं होतीहैं-और शिल्प (चित्राम वा गंधयुक्त आदि का करना) भृतिः (सेवा) अर्थात् दासभाव से वेतनका ग्रहण-सेवा (दूसरे की आज्ञाका संपादन) गौओंकी रक्षा अर्थात् पशुओंकी पालना-विपणि (लेनदेन)-कृषि (खेती) अर्थात् स्वयं खेती को करना-धृति (संतोष) क्योंकि संतोष होय तो अल्पसे भी जीवन होसक्ता है-और भिक्षा-और कुसीद (सूदपर धनदेना) इन दश कर्मोंसे आपत्तिके समय जीवन होसक्ता है इससे ये दश जीवन के हेतु होते हैं-

परंतु यह आपत्तिका प्रकरण है और इन दशों कर्मोंको जीवनका हेतु कहाहै इससे इन दशोंमें जिस वृत्तिसे आपत्ति में जो जीविकाकरै वह उस वृत्तिसे विना आपत्ति के समय भी करले तो दूषित नहीं होता जैसा ब्राह्मण भृति वा सेवा आदि से—इसीप्रकार शिल्प आदि में भी समझना ११६ ॥

ब्राह्मणःक्षत्रियोवापिवृद्धिंनैवप्रयोजयेत् । कामंतुखलुधर्मार्थंदद्यात्पापीयसेऽल्पिकाम् ११७ ॥

प० । ब्राह्मणः क्षत्रियः वा अपि वृद्धिं न एव प्रयोजयेत् कामं तु खलु धर्मार्थं दद्यात् पापीयसे अल्पिकाम् ॥

यो० । ब्राह्मणः वा क्षत्रियः वृद्धिं नैव प्रयोजयेत्—किंतु धर्मार्थं पापीयसे अल्पिकां कामं दद्यात् ॥

भा० । ता० । ब्राह्मण वा क्षत्रिय—आपत्ति के समय में भी सूदके लिये धनको न दे किंतु निकृष्ट कर्म से धर्म के लिये अत्यंत अल्प सूदको दे वा ले ११७ ॥

चतुर्थमाददानोऽपिक्षत्रियोभागमापदि । प्रजारक्षन्परंशक्त्याकिल्बिषात्प्रतिमुच्यते ११८॥

प० । चतुर्थं आददानः अपि क्षत्रियः भागं आपदि प्रजाः रक्षन् परं शक्त्या किल्बिषात् प्रतिमुच्यते ॥

यो० । आपदि चतुर्थं भागं आददानः अपि क्षत्रियः शक्त्या परं प्रजाः रक्षन् सन् किल्बिषात् प्रतिमुच्यते (पापभागी न भवति) ॥

भा० । आपत्ति के समय चौथेभाग को ग्रहणकरिकै अपनीशक्ति से प्रजाकी रक्षा करताहुआ राजा पापसे छूटता है ॥

ता० । अब राजाओंका आपत्तिका धर्मकहतेहैं कि राजाको अन्नआदिकोंमेंसे आठवांभाग ग्रहण करना धर्मसे कहाहै यदि वह राजा आपत्तिके समय धान्यआदि का चौथाभाग भी अपनेकरमें ग्रहण करिले और अपनी उत्तमशक्तिसे प्रजाकीरक्षाकरै तो उस अधिककरिकै ग्रहणकरनेका जो पाप उस से छूटजाता है क्योंकि आपत्ति के समय में भी राजाको प्रजाकी रक्षा शास्त्रकारोंने कही है ११८ ॥

स्वधर्मोविजयस्तस्यनाहवेस्यात्पराङ्मुखः । शस्त्रेणवैश्यान्रक्षित्वाधर्म्यमाहारयेद्बलिम् ११९

प० । स्वधर्मः विजयः तस्य न आहवे स्यात् पराङ्मुखः शस्त्रेण वैश्यान् रक्षित्वा धर्म्यं आहारयेत् बलिम् ॥

यो० । तस्य (राज्ञः) विजयः स्वधर्मः अस्ति राजा आहवे (युद्धे) पराङ्मुखः नस्यात् वैश्यान् शस्त्रेण रक्षित्वा धर्म्यं बलिं आहारयेत् ॥

भा० । ता० । विजयकरना राजाका स्वधर्महै और संग्राम में राजा पराङ्मुखनहो और शस्त्रोंसे वैश्योंकीरक्षा अर्थात् चोरोंको नष्टकरताहुआ राजा धर्मके अनुकूल बलि(कर)को ग्रहणकरै ११९ ॥

धान्येऽष्टमंविंशांशुल्कंविंशंकार्षापणावरम् । कर्मोपकरणाःशूद्राःकारवःशिल्पिनस्तथा १२०॥

प० । धान्ये अष्टमं विंशं शुल्कं विंशं कार्षापणावरं कर्मोपकरणाः शूद्राः कारवः शिल्पिनः तथा ॥

यो० । धान्ये विंशां अष्टमं—कार्षापणावरं विंशं शुल्कं भवति शूद्राः कारवः तथा शिल्पिनः कर्मोपकरणाः भवंति॥

भा० । राजा आपत्ति के समय अन्नका आठवां और सुवर्णादि में बीसवांभागकरले और शूद्र कारीगर—बढ़ई—इनसे कर न ले किंतु महीने में एक वा दोदिन वेतन दिये विना इनसे अपना काम कराले ॥

ता० । धान्य (अन्न) में वैश्यों से आठवांभागकरकाले यद्यपि पहिले बारहवांभागकहाहै तथापि आपत्ति के समय आठवां और अत्यन्त आपत्तिमें पूर्वोक्त चौथेभागको ग्रहणकरै और कार्षापण (सुवर्ण आदि) कोंमें बीसवांभागकर ग्रहणकरै और राजाको इसै वचनसे पशु और सुवर्णमें पचासवां भाग करलेना लिखाहै परन्तु आपत्तिके समय बीसवांभागग्रहणकरै और शूद्र—कारु (सूपकारआदि) शिल्पी (बढ़ईआदि) इनसे आपत्ति के समयमें भी राजा करको ग्रहण न करै क्योंकि ये अपने २ कामसेही राजाका उपकार विना वेतनलिये करें १२० ॥

शूद्रस्तुवृत्तिमाकांक्षन्क्षत्रमाराधयेद्यदि । धनिनंवाप्युपाराध्यवैश्यंशूद्रोजिजीविषेत् १२१ ॥

प० । शूद्रः तु वृत्तिं आकांक्षन् क्षत्रं आराधयेत् यदि धनिनं वा अपि उपाराध्य वैश्यं शूद्रःजिजीविषेत् ॥

यो० । अजीवन् शूद्रः यदि वृत्तिं आकांक्षन् भवति तर्हि क्षत्रं आराधयेत् वा शूद्रः धनिनं वैश्यं उपाराध्य जिजीविषेत्

भा० । ता० । ब्राह्मणकी सेवासे नहींजीवताहुआ शूद्र यदि जीविकाकी इच्छाकरै तो क्षत्री की सेवाकरै और क्षत्रीके न मिलनेपर धनवाले वैश्यकी सेवाकरके जीवै और यदि तीनों द्विजातियों की सेवाकरने का सामर्थ्य न होय तो पूर्वोक्त कर्मोंकोकरै १२१ ॥

स्वर्गार्थमुभयार्थंवाविप्रानाराधयेत्तुसः । जातब्राह्मणशब्दस्यसाह्यस्यकृतकृत्यता १२२

प० । स्वर्गार्थं उभयार्थं वा विप्रान् आराधयेत् तु सः जातब्राह्मणशब्दस्य सा हि अस्य कृतकृत्यता

यो० । सः (शूद्रः) स्वर्गार्थं वा उभयार्थं विप्रान् आराधयेत् हि (यतः) जातब्राह्मणशब्दस्य अस्य सा (विप्राराधना) कृतकृत्यता अस्ति ॥

भा० । ता० । स्वर्गकी प्राप्तिकेलिये अथवा अपनी जीविका के लिये वा दोनोंके लिये शूद्र ब्राह्मणोंकी सेवाकरै क्योंकि ब्राह्मणोंके आश्रयके लिये पैदाहुये इसशूद्रकी वहब्राह्मणों की आराधनाही कृतकृत्यता होतीहै अर्थात् ब्राह्मणों की सेवासेही कृतकृत्यहोताहै क्योंकि १२२ ॥

विप्रसेवैवशूद्रस्यविशिष्टंकर्मकीर्त्यते । यदतोऽन्यद्धिकुरुतेतद्भवत्यस्यनिष्फलम् १२३॥

प० । विप्रसेवा एव शूद्रस्य विशिष्टं कर्म कीर्त्यते यत् अतः अन्यत् हि कुरुते तत् भवति अस्य निष्फलम् ॥

यो० । शूद्रस्य विप्रसेवाएव विशिष्टंकर्म बुधैः कीर्त्यते हि (यतः) अतः (सेवायाः) अन्यत् यत् कर्म कुरुते तत् अस्य निष्फलं भवति ॥

भा० । ता० । शूद्रके इतरकर्मोंसे ब्राह्मणकी सेवाही श्रेष्ठकर्म शास्त्रकारोंने कहाहै क्योंकि सेवासे भिन्न जो कर्म यहकरताहै वह निष्फलहोताहै यहश्लोक इसलिये है कि विप्रकी सेवा शूद्रका मुख्य कर्म है इसलिये नहींहै कि इतरकर्म (पाकयज्ञादि) उसके निष्फल होतेहैं १२३ ॥

प्रकल्प्यातस्यतैर्वृत्तिःस्वकुटुम्बाद्यथार्हतः । शक्तिंचावेक्ष्यदाक्ष्यंचभृत्यानांचपरिग्रहम् १२४ ॥

प० । प्रकल्प्या तस्य तैः वृत्तिः स्वकुटुंबात् यथार्हतः शक्तिं च अवेक्ष्य दाक्ष्यं च भृत्यानां च परिग्रहम्

यो० । तैः (ब्राह्मणैः) तस्य (शूद्रस्य) स्वकुटुंबात् शक्ति—दाक्ष्यं चपुनः भृत्यानां परिग्रहं अवेक्ष्य यथार्हतः वृत्तिः प्रकल्प्या (कर्तव्या) ॥

---

१ पंचाशद्भागआदेयोराज्ञापशुहिरण्ययोः ॥

भा० । ता० । वे ब्राह्मण उसशूद्रकी अपने कुटुम्ब से उसकी सेवाका सामर्थ्य—कर्म में उत्साह और पुत्रस्त्रीआदि का प्रमाण देखकर यथायोग्य अर्थात् उसके कुटुम्बके भरण पोषणके अनुरूप जीविका को नियतकरदें जिससे निश्चिंत हुआ वह सेवाको कियाकरै १२४ ॥

उच्छिष्टमन्नंदातव्यंजीर्णानिवसनानिच । पुलकाश्चैवधान्यानांजीर्णाश्चैवपरिच्छदाः १२५॥

प० । उच्छिष्टं अन्नं दातव्यं जीर्णानि वसनानि च पुलकाः च एव धान्यानां जीर्णाः च एव परिच्छदाः ॥

यो० । ब्राह्मणैः तस्मै (शूद्राय) उच्छिष्टं अन्नंदातव्यं चपुनः जीर्णानि वसनानि धान्यानां पुलकाः चपुनः जीर्णाः परिच्छदाः दातव्याः ॥

भा० । ता० । ब्राह्मण उस अपने सेवक शूद्रको भोजन से शेषअन्नको और जीर्णवस्त्रों को और अन्नके पुलक (निकृष्टअन्न) और जीर्ण परिच्छद (गृहकीसामग्री) दे इसश्लोकमें शूद्रको उच्छिष्ट अन्नदेना लिखाहै इससे पूर्वोक्त इस श्लोकमें शूद्रको उच्छिष्टका जो निषेधहै वह उसी शूद्रकोहै जो अपनी सेवा न करताहो १२५ ॥

नशूद्रेपातकंकिञ्चिन्नचसंस्कारमर्हति । नास्याधिकारोधर्मेऽस्तिनधर्मात्प्रतिषेधनम् १२६॥

प० । न शूद्रे पातकं किंचित् न च संस्कारं अर्हति न अस्य अधिकारः धर्मे अस्ति न धर्मात् प्रतिषेधनम् ॥

यो० । शूद्रे किंचित् पातकं न अस्ति शूद्रः संस्कारं न अर्हति अस्यधर्मे अधिकारः धर्मात् प्रतिषेधनं न अस्ति ॥

भा०। ता०। शूद्रको लशुनआदिके भक्षणमें कुछ पातकनहीं है अर्थात् ब्रह्मवधआदिमें अवश्य पातक है क्योंकि अहिंसाआदि धर्म चारोंवर्णो के साधारण रीतिसे कहे हैं और शूद्र यज्ञोपवीत संस्कार के योग्यनहींहोता और अग्निहोत्रआदि धर्मोंमेंभी शूद्रको अधिकारनहीं और शास्त्रविहित पाकयज्ञादिक शूद्रके धर्मोंका निषेध भी शूद्रको नहींहै १२६ ॥

धर्मेप्सवस्तुधर्मज्ञाःसतांवृत्तमनुष्ठिताः । मन्त्रवर्ज्यंनदुष्यन्तिप्रशंसांप्राप्नुवन्तिच १२७ ॥

प० । धर्मेप्सवः तु धर्मज्ञाः सतां वृत्तं अनुष्ठिताः मंत्रवर्ज्यं न दुष्यंति प्रशंसां प्राप्नुवंति च ॥

यो० । धर्मेप्सवः धर्मज्ञाः सतांवृत्तं अनुष्ठिताः शूद्राः मंत्रवर्ज्यं पंचयज्ञादि धर्मान् कुर्वाणाः न दुष्यंति चपुनः प्रशंसां प्राप्नुवंति ॥

भा० । ता० । जो शूद्र अपने धर्म के अभिलाषी वा ज्ञाता हैं और सत्पुरुषोंके उत्तम आचरणमें आश्रित हैं अर्थात् द्विजातियोंके सेवकहैं वे वेदोक्त मंत्रोंको छोड़कर अर्थात् इस याज्ञवल्क्यके वचनानुसार नमस्कार मंत्रसे पंचयज्ञादि धर्मोंकोकरतेहुये दूषित नहीं होतेहैं और जगत् में प्रशंसा (कीर्ति) को प्राप्त होतेहैं १२७ ॥

यथायथाहिसद्वृत्तमातिष्ठत्यनसूयकः । तथातथेमंचामुंचलोकंप्राप्नोत्यनिन्दितः १२८ ॥

प० । यथा यथा हि सद्वृत्तं आतिष्ठति अनसूयकः तथा तथा इमं च अमुं च लोकं प्राप्नोति अनिंदितः ॥

यो० । यथा यथा अनसूयकः शूद्रः सद्वृत्तं आतिष्ठति तथा तथा अनिंदितः सन् इमं चपुनः अमुंलोकं प्राप्नोति ॥

---

१ नशूद्रायमतिंदद्यान्नोच्छिष्टंनहविष्कृतम् ॥

२ नमस्कारेणमंत्रेणपंचयज्ञान्नहापयेत् ॥

भा० । ता० । अन्यके गुणोंकी निंदाको नहीं करताहुआ शूद्र जैसे २ द्विजातियोंकी सेवाको करताहै तैसेही तैसे निंदा रहित होकर इसलोक और परलोक को प्राप्त होताहै अर्थात् दोनों लोकोंके सुखको प्राप्त होताहै १२८ ॥

शक्तेनापिहिशूद्रेणनकार्योधनसंचयः । शूद्रोहिधनमासाद्यब्राह्मणानेवबाधते १२९

प० । शक्तेन अपि हि शूद्रेण न कार्यः धनसंचयः शूद्रः हि धनं आसाद्य ब्राह्मणान् एव बाधते ॥

यो० । शक्तेन अपि शूद्रेण धनसंचयः न कार्यः हि (यतः)शूद्रः धनं आसाद्य ब्राह्मणान् एव बाधते ॥

भा० । ता० । धनके संचय में समर्थ भी शूद्र धनके संचयको न करै अर्थात् जितने से अपनेकुटुंबका भरण पोषण और पंचयज्ञादि उचित कर्म होसकें उससे अधिक धनके संचय में तत्पर नहो क्योंकि शूद्र धनको प्राप्त होकर ब्राह्मणोंकोही पीडा देताहै क्योंकि शास्त्रका इसको ज्ञान नहीं होता और धनके मदसे ब्राह्मणोंकी सेवा नहीं करेगा १२९ ॥

एतेचतुर्णांवर्णानामापद्धर्माःप्रकीर्तिताः।यान्सम्यगनुतिष्ठन्तोव्रजन्तिपरमांगतिम्१३०

प० । एते चतुर्णां वर्णानां आपद्धर्माः प्रकीर्तिताः यान् सम्यक् अनुतिष्ठंतः व्रजंति परमां गतिम् ॥

यो० । चतुर्णां वर्णानां एते आपद्धर्माः मयाप्रकीर्तिताः यान् सम्यक् अनुतिष्ठंतः सर्वे वर्णाः परमांगतिं व्रजंति ॥

भा० । ता० । चारों वर्णों के आपत्ति में करने योग्य ये धर्म मैंने तुमको कहे जिन धर्मोंको भली प्रकार करतेहुये अर्थात् विहित कर्म क करने और निषिद्ध कर्म के न करनेसे निष्पापहुये चारों वर्ण ब्रह्मज्ञानके लाभसे परमगति (मोक्ष) को प्राप्त होते हैं १३० ॥

एषधर्मविधिःकृत्स्नश्चातुर्वर्ण्यस्यकीर्तितः अतःपरंप्रवक्ष्यामिप्रायश्चित्तविधिंशुभम् १३१॥

इतिमानवेधर्मशास्त्रेभृगुप्रोक्तायांसंहितायांदशमोऽध्यायः १० ॥

प० । एषः धर्मविधिः कृत्स्नः चातुर्वर्ण्यस्य कीर्तितः अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविधिं शुभम् ॥

यो० । चातुर्वर्ण्यस्य एषः कृत्स्नः धर्मविधिः मयाकीर्तितः अतः परं शुभं प्रायश्चित्तविधिं प्रवक्ष्यामि ॥

भा० । ता० । चारों वर्णोंका यह संपूर्ण धर्म का विधान मैंने तुमको कहा इससे आगे उत्तम प्रायश्चित्त का विधान कहूंगा १३१ ॥

इति मन्वर्थभास्करे दशमोऽध्यायः १० ॥

अथ एकादशोऽध्याय प्रारंभः ॥

सान्तानिकंयक्ष्यमाणमध्वगंसर्ववेदसम् । गुर्वर्थंपितृमात्रर्थंस्वाध्यायार्थ्युपतापिनः १ ॥

नवैतान्स्नातकान्विद्याद्ब्राह्मणान्धर्मभिक्षुकान् । निःस्वेभ्योदेयमेतेभ्योदानंविद्याविशेषतः २॥

प० । सांतानिकं यक्ष्यमाणं अध्वगं सर्ववेदसम् गुर्वर्थं पितृमात्रर्थं स्वाध्यायार्थ्युपतापिनः ॥

प० । नव एतान् स्नातकान् विद्यात् ब्राह्मणान् धर्मभिक्षुकान् निःस्वेभ्यः देयं एतेभ्यः दानं विद्याविशेषतः ॥

यो० । सांतानिकं यक्ष्यमाणं अध्वगं सर्ववेदसम् गुर्वर्थं पितृमात्रर्थं स्वाध्यायार्थ्युपतापिनः एतान् नव स्नातकान् ब्राह्मणान् धर्मभिक्षुकान् विद्यात् निःस्वेभ्यः एतेभ्यः विद्याविशेषतः दानंदेयम् ॥

भा० । विवाह और यज्ञके अभिलाषी मार्गगामी–सर्वस्वदेकर विश्वजित् का कर्ता–गुरु पिता माता इनतीनों के लिये याचक–वेदपाठी–और रोगी इननवधर्म के भिक्षुक ब्राह्मणों को स्नातक (ब्रह्मचारी) जानै और निर्धनी इनको विद्याके अनुसार दानदे ॥

ता० । जो ब्राह्मण ब्रह्मचारी सान्तानिकहो अर्थात् सन्तानहै फलजिसका ऐसे विवाहका अभिलाषीहो और आवश्यक ज्योतिष्टोमआदि यज्ञ कियाचाहताहो–और जो अध्वगःमार्ग में गमनकरता हो–और जिसने अपना सर्वस्वदेकर विश्वजित् यज्ञकियाहो और जो विद्यापढ़ानेवाले अपने गुरुके लिये भोजन वस्त्रकी याचना करताहो और जो पिताके माताके भोजन वस्त्रकेलिये याचनाकरै और जो वेदपढ़ने के समय भोजन वस्त्रकी याचनाकरै ऐसा ब्रह्मचारी और जो रोगीहो–इननवप्रकारके ब्रह्मचारी ब्राह्मणको धर्मभिक्षुकजानै इनकोही स्नातक कहतेहैं यदि ये नवनिर्धनहों तो इनकोविद्या के अनुसार गौ–सुवर्णआदि दानकोदे–इसमें कोई यह शंकाकरतेहैं कि पहिले यहप्रतिज्ञा करिआये हैं कि इससे आगे प्रायश्चित्त का विधान कहूंगा फिर इन श्लोकों में इनको दान देना यहदान का वर्णन पूर्वप्रतिज्ञा के विरुद्ध मनुजीने किसप्रकारकिया यह शंकाकरना उनका ठीकनहीं है मनुजी यह पहिले कहिआयेहैं कि (दानेनाकार्यकारिणः) कि निंदित कर्मकरनेवाले दानसे शुद्धहोते हैं और आगे भी मनुजी यहकहैंगे (दानेनवधनिर्णेकं सर्पादीनामशक्नुवन्) कि जो सर्पआदिकों के वधका प्रायश्चित्त न करसकै वहदान से शुद्धहोताहै इससे उत्तम प्रायश्चित्त रूपदानके पात्रोंकाकहना इस प्रायश्चित्त प्रकरणकी आदि में असंगत नहीं है और इसीप्रकार वर्णआश्रमके धर्मसे भिन्न प्रायश्चित्त के निमित्तधर्मों के वर्णनकरनेकेलिये यहअध्याय है इससे किसी निमित्तसे किसी अन्यधर्म का लिखना भी असंगतनहीं है १–२ ॥

एतेभ्योहिद्विजाग्र्येभ्योदेयमन्नंसदक्षिणम् । इतरेभ्योबहिर्वेदिकृतान्नंदेयमुच्यते ३ ॥

प० । एतेभ्यः हि द्विजाग्र्येभ्यः देयं अन्नं सदक्षिणं इतरेभ्यः बहिर्वेदि कृतान्नं देयं उच्यते ॥

यो० । एतेभ्यः (पूर्वोक्त नवभ्यः) द्विजाग्र्येभ्यः अन्तर्वेदिसदक्षिणं अन्नंदेयं इतरेभ्यः कृतान्नं बहिर्वेदिदेयं मन्वादिभिः उच्यते ॥

भा० । ता० । इनपूर्वोक्त ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ नव ९ ब्राह्मणोंको वेदीकेभीतर बुलाकरि दक्षिणासहित सिद्धान्नको दे और इनसे अन्यब्राह्मणों को वेदीसे बाहिर सिद्धान्नकोदेना मनुआदिकोंने कहाहै ३ ॥

सर्वरत्नानिराजातुयथार्हंप्रतिपादयेत् । ब्राह्मणान्वेदविदुषोयज्ञार्थंचैवदक्षिणाम् ४ ॥

प० । सर्वरत्नानि राजा तु यथार्हं प्रतिपादयेत् ब्राह्मणान् वेदविदुषः यज्ञार्थं च एव दक्षिणाम् ॥

यो० । राजा सर्वरत्नानि यज्ञार्थं धनं चपुनः दक्षिणां वेदविदुषः ब्राह्मणान् यथार्हं प्रतिपादयेत् ॥

भा० । ता० । राजा मणिमुक्ताआदि सम्पूर्ण रत्न यज्ञके उपयोगी धन और दक्षिणा वेदके ज्ञाता ब्राह्मणों को स्वीकार करावै अर्थात् दे ४ ॥

कृतदारोऽपरान्दारानभिक्षित्वायोऽधिगच्छति।रतिमात्रंफलंतस्यद्रव्यदातुस्तुसंततिः५

प०। कृतदारः अपरान् दारान् भिक्षित्वा यः अधिगच्छति रतिमात्रं फलं तस्य द्रव्यदातुः तु संततिः॥

यो०। यः कृतदारः अपरान् दारान् भिक्षित्वा अधिगच्छति तस्य रतिमात्रं फलं भवति सन्ततिस्तु द्रव्यदातुः भवति॥

भा०। ता०। जो मनुष्य एकस्त्रीके विद्यमानसन्ते अन्यस्त्रियोंको द्रव्यकीयाचनाकरिके विवाहता है अर्थात् दूसरीस्त्री विवाहा चाहताहै उस दूसरी स्त्रीके संग रतिकरनाही विवाहका फल होताहै वह सन्तान तो उसकीही होती है जिससे धनलेकर विवाह कियाहो इससे इसप्रकार धनकी याचना करके द्वितीयविवाहको न करै और न इसप्रकार विवाहकरनेवालेकोधनदे क्योंकि यह द्वितीयविवाह अत्यन्त निंदित है ५॥

धनानितुयथाशक्तिविप्रेषुप्रतिपादयेत् । वेदवित्सुविविक्तेषुप्रेत्यस्वर्गंसमश्नुते ६॥

प०। धनानि तु यथाशक्ति विप्रेषु प्रतिपादयेत् वेदवित्सु विविक्तेषु प्रेत्य स्वर्गं समश्नुते॥

यो०। यः वेदवित्सु विविक्तेषु विप्रेषु धनानि यथाशक्ति प्रतिपादयेत् सः प्रेत्य स्वर्गं समश्नुते॥

भा०। ता०। जो मनुष्य वेदपाठी और पुत्र स्त्री आदिकोंमें आसक्त ब्राह्मणों को अपनी शक्तिके अनुसार धनों (गो भूआदि) को देताहै वहमनुष्य मृत्युके अनन्तर स्वर्गको भोगता है ६॥

यस्यत्रैवार्षिकंभक्तंपर्याप्तंभृत्यवृत्तये । अधिकंवापिविद्येतससोमंपातुमर्हति ७॥

प०। यस्य त्रैवार्षिकं भक्तं पर्याप्तं भृत्यवृत्तये अधिकं वा अपि विद्येत सः सोमं पातुं अर्हति॥

यो०। यस्य पुरुषस्य त्रैवार्षिकं वा अधिकं भक्तं भृत्यवृत्तये पर्याप्तं विद्येत सः पुरुषः सोमं पातुं अर्हति॥

भा०। ता०। जिसमनुष्य के घरमें तीनवर्ष के लिये वा तीनवर्ष से अधिक भोजनकी सामग्री सेवक और अपने कुटुम्बकी पालना के लिये पर्याप्त (पूर्ण) हो वही मनुष्य सोमयज्ञ करनेके योग्य होताहै—यह सोमयज्ञ का निषेध नहीं है क्योंकि यह सोमयज्ञ वर्ष के अन्तमें इस वचनके अनुसार नित्यकर्त्तव्य मनुजी कहआये हैं इससे गृहस्थी अपने कुटुम्ब के निर्वाह में चाहै संकोचकरले परन्तु इसयज्ञका परित्याग न करै ७॥

अतःस्वल्पीयसिद्रव्येयःसोमंपिबतिद्विजः।सपीतसोमपूर्वोऽपिनतस्याप्नोतितत्फलम्८॥

प०। अतः स्वल्पीयसि द्रव्ये यः सोमं पिबति द्विजः सः पीतसोमपूर्वः अपि न तस्य आप्नोति तत् फलम्॥

यो०। अतः कारणात् यः द्विजः स्वल्पीयसि द्रव्येसति सोमं पिबति पीतसोमपूर्वः अपिसः तस्य तत्फलं न आप्नोति

भा०। ता०। जो द्विज तीनवर्षकेलिये पर्याप्तधनसे अल्पधनहोनेपर सोमयज्ञको करताहै पहिले कियाहै सोमयज्ञ जिसने ऐसाभी वहद्विज उसप्रथम सोमयज्ञको प्राप्तनहींहोता अर्थात् उसकापहिला यज्ञभी सम्पन्न नहींहोता दूसरा तो सफल कहांसेहो ८॥

शक्तःपरजनेदातास्वजनेदुःखजीविनि । मध्वापातोविषास्वादःसधर्मप्रतिरूपकः ९॥

प०। शक्तः परजने दाता स्वजने दुःखजीविनि मध्वापातः विषास्वादः सः धर्मप्रतिरूपकः॥

---

१ समाप्तेसोमकेमखेः॥

यो० । यः शक्तः स्वजने दुःखजीविनिसति परजने दाता भवति मध्वापातः विषास्वादः सः धर्मप्रतिरूपकः—अस्ति ॥

भा० । ता० । जो दाता अपने पिता माता ज्ञातिआदिके जनोंको दुर्गतिसे दुःखित होनेपर अपने यशकेलिये अन्यजनों को देताहै मीठेसे प्रारम्भकरिके अन्तमें विषको भक्षण करनेवाला वह धर्मका प्रतिरूपक डिंबधारी है अर्थात् पछिसे नरक में जाताहै इसमें ऐसा न करना चाहिये ९ ॥

भृत्यानामुपरोधेनयत्करोत्यौर्द्ध्वदैहिकम् । तद्भवत्यसुखोदर्कंजीवतश्चमृतस्यच १० ॥

प० । भृत्यानां उपरोधेन यत् करोति और्द्ध्वदैहिकं तत् भवति असुखोदर्कं जीवतः च मृतस्य च ॥

यो० । यत् औद्ध्र्वदैहिकं भृत्यानां उपरोधेन करोति जीवतः चपुनः मृतस्य तत्—औद्ध्र्वदैहिकं असुखोदर्कं भवति ॥

भा० । ता० । पुत्र स्त्री भृत्य आदि अपने पालने योग्योंकी पीडासे जो और्द्ध्व दैहिक (पारलौकिक) कर्म अर्थात् धर्म दान आदि को करताहै वह धर्म आदि जीवते और मरे मनुष्यको दुःखदायी होताहै १० ॥

यज्ञश्चेत्प्रतिरुद्धःस्यादेकेनांगेनयज्वनः । ब्राह्मणस्यविशेषेणधार्मिकेसतिराजनि ११ ॥
योवैश्यःस्याद्बहुपशुर्हीनक्रतुरसोमपः । कुटुम्बात्तस्यतद्द्रव्यमाहरेद्यज्ञसिद्धये १२ ॥

प० । यज्ञः चेत् प्रतिरुद्धः स्यात् एकेन अंगेन यज्वनः ब्राह्मणस्य विशेषेण धार्मिके सति राजनि ॥

प० । यः वैश्यः स्यात् बहुपशुः हीनक्रतुः असोमपः कुटुंबात् तस्य तत् द्रव्यं आहरेत् यज्ञसिद्धये ॥

यो० । चेत् यदि यज्वनः विशेषेण ब्राह्मणस्य यज्ञः धार्मिके राजनि सति एकेन अंगेन प्रतिरुद्धः स्यात्—तर्हि—यः वैश्यः बहुपशुः हीनक्रतुः असोमपः स्यात् तस्य कुटुंबात् यज्ञसिद्धये तत् द्रव्यं आहरेत् ॥

भा० । ता० । यदि क्षत्रिय आदि यज्ञकरनेवाले का और विशेषकर ब्राह्मणका यज्ञ संपूर्ण अंगों की पूर्णता होनेपर किसी एक अंगसे असंपूर्ण रहजाय और धार्मिक राजा होय तो—जिस वैश्य के यहां बहुत पशुहों और जो वैश्य यज्ञसे हीन और सोमपान रहित हो उसके कुटुंबसे यज्ञकी सिद्धि के लिये उतने द्रव्यको राजा ग्रहणकरले जितने से वह यज्ञका अंग पूर्ण हो ११ । १२ ॥

आहरेत्त्रीणिवाद्वेवाकामंशूद्रस्यवेश्मनः । नहिशूद्रस्ययज्ञेषुकश्चिदस्तिपरिग्रहः १३ ॥

प० । आहरेत् त्रीणि वा द्वे वा कामं शूद्रस्य वेश्मनः न हि शूद्रस्य यज्ञेषु कश्चित् अस्ति परिग्रहः ॥

यो० । शूद्रस्य वेश्मनः सकाशात् त्रीणि अंगानि वा द्वे अंगे कामं आहरेत् (बलात् गृह्णीयात्) हि (यतः) शूद्रस्य कश्चित् अर्थे परिग्रहः न अस्ति ॥

भा० । ता० । जो यज्ञके तीनवादो अंगोंकी विकलता होय और वैश्यके यहांसे धन न मिलसकै तो शूद्रके घरमें से तीनवादो अंगोंको राजाबलात् कारसे ग्रहणकरिले क्योंकि शूद्रका यज्ञोंके विषे कोई संबन्ध नहीं होता—और इस वचनसे जो यज्ञके लिये शूद्रसे धनका निषेध है वह प्रतिग्रहका निषेध है और बलसे धनलेनेका नहीं है १३ ॥

योऽनाहिताग्निःशतगुरयज्वाचसहस्रगुः । तयोरपिकुटुम्बाभ्यामाहरेदविचारयन् १४ ॥

प० यः अनाहिताग्निः शतगुः अयज्वा च सहस्रगुः तयोः अपि कुटुंबाभ्यां आहरेत् अविचारयन् ॥

---

१ नयज्ञार्थंधनंशूद्राद्विप्रोभिक्षेत ॥

यो० । यः शतगुः अनाहिताग्निः-चपुनः यः सहस्रगुः अयज्वा तयोः अपिकुटुम्बाभ्यां त्रीणिद्वेअङ्गानिवाद्वे अंगे अविचारयन् सन् आहरेत् ॥

भा० । ता० । सौहैं गौ जिसके ऐसा मनुष्य यदि अनाहिताग्निहो अर्थात् अग्निहोत्र न करताहो और सहस्र गौ होनेपर जो यज्ञनकरताहो इनदोनों के कुटुम्बोंमेंसे भी तीन वा दोअंगोंको विनाविचारे बलसे ग्रहणकरिले अर्थात् ब्राह्मण और क्षत्रीके कुटुम्बमेंसे धनको ग्रहणकारिले और क्षत्री को ब्राह्मण के घरसे धनके ग्रहणकरने का निषेध आगे मनुजी कहेंगे १४ ॥

आदाननित्याच्चादातुराहरेदप्रयच्छतः । तथायशोऽस्यप्रथतेधर्मश्चैवप्रवर्धते १५ ॥

प० । आदाननित्यात् च आदातुः आहरेत् अप्रयच्छतः तथा यशः अस्य प्रथते धर्मः च एवं प्रवर्धते ॥

यो० । आदातुः अप्रयच्छतः आदाननित्यात् (ब्राह्मणादेः) त्रीणि वा द्वेअंगे आहरेत् तथा कृतेसति अस्य (अपहर्तुः) यशः प्रथते चपुनः धर्मः प्रवर्धते ॥

भा० । ता० । प्रतिग्रहआदि से जिसके धनको ग्रहणकरसक्ते हैं यदि वह यज्ञ और पूर्तमें दान न देताहो और यज्ञके लिये याचनाकरनेपर धनको न दे उसके यहांसेभी बलात्कार वा चोरीसे दो वा तीनयज्ञ के अंगोंको ग्रहणकरै ऐसा करनेपर उसहरणकरनेवाले की कीर्त्तिकाप्रकाश और धर्मकीवृद्धि होतीहै १५ ॥

तथैवसप्तमेभक्तेभक्तानिषडनश्नता । अश्वस्तनविधानेनहर्तव्यंहीनकर्मणः १६ ॥

प० । तथा एवं सप्तमे भक्ते भक्तानि षट् अनश्नता अश्वस्तनविधानेन हर्त्तव्यं हीनकर्मणः ॥

यो० । तथा एव षट् भक्तानि अनश्नता पुरुषेण सप्तमे भक्ते हीनकर्मणः सकाशात् अश्वस्तनविधानेन एकदिन पर्याप्तं धनं हर्त्तव्यं ॥

भा० । ता० । जिसमनुष्यको छःसमयतक भोजन न मिलाहो अर्थात् तीनउपवास होचुकेहों वह मनुष्य सातवें भोजन के समय अर्थात् चौथेदिन प्रातःकाल के समय हीनकर्मा मनुष्य से भी अश्वस्तन विधिसे अर्थात् जितने धनमें एकदिन का निर्वाहहोसकै उतनाधन चोरीआदिसेभी ग्रहण करले १६ ॥

खलात्क्षेत्रादगाराद्वायतोवाप्युपलभ्यते । आख्यातव्यंतुतत्तस्मैपृच्छतेयदिपृच्छति १७

प० । खलात् क्षेत्रात् अगारात् वा यतः वा अपि उपलभ्यते आख्यातव्यं तु तत् तस्मै पृच्छते यदि पृच्छति ॥

यो० । खलात् क्षेत्रात् वा अगारात् वा यतः उपलभ्यते तत् धनं तस्मै (हीनकर्मणे) आख्यातव्यं यदि सः हीनकर्मा पृच्छति ॥

भा० । ता० । खलियानमें से -क्षेत्रसे-वा घर-वा अन्य किसीस्थानमेंसे हीनकर्माके जिसधन को चोरीआदि से ग्रहणकरै और यदि धनका स्वामी उसधनको पूछे तो उसको कहदे अर्थात् यदि किसलिये किसप्रकार मेरे धनको ग्रहणकिया ऐसे पूछे तो भोजन के लिये चोरीसे ग्रहणकिया यह कहदे १७ ॥

ब्राह्मणस्वंनहर्तव्यंक्षत्रियेणकदाचन । दस्युनिष्क्रिययोस्तुस्वमजीवन्हर्तुमर्हति १८॥

प० । ब्राह्मणस्वं न हर्त्तव्यं क्षत्रियेण कदाचन दस्युनिष्क्रिययोः तु स्वं अजीवन् हर्तुं अर्हति ॥

यो० । क्षत्रियेण ब्राह्मणस्वं नहर्त्तव्यं दस्युनिष्क्रिययोः (ब्राह्मणक्षत्रिययोः) स्वं तु अजीवन् क्षत्रियः हर्तुं अर्हति ॥

भा० । ता० । ब्राह्मणके धनको क्षत्री कदाचित्भी ग्रहण न करै अर्थात् पूर्वोक्त विपत्तियोंके होने पर भी ब्राह्मण के धनको चोरिआदि से न ले और इसीप्रकार वैश्य शूद्र भी ब्राह्मण क्षत्री से न लें और यदि चौर और शास्त्रोक्तकर्मके त्यागी ब्राह्मण क्षत्रियहोयँ तो आपत्तियों के समय उनके धनको ग्रहणकरिले १८ ॥

योऽसाधुभ्योऽर्थमादायसाधुभ्यःसंप्रयच्छति । सकृत्वाप्लवमात्मानंसंतारयतितावुभौ १९ ॥

प०। यः असाधुभ्यः अर्थं आदाय साधुभ्यः सम्प्रयच्छति सः कृत्वा प्लवं आत्मानं संतारयति तौ उभौ॥

यो० । यः पुरुषः असाधुभ्यः सकाशात् अर्थं आदाय साधुभ्यः सम्प्रयच्छति सः आत्मानं प्लवं कृत्वा तौ उभौ संतारयति ॥

भा० । ता० । जो मनुष्य हीनकर्म मनुष्योंसे धनको लेकरि अर्थात् पूर्वोक्तयज्ञ आदिकी सिद्धिके लिये यज्ञके उपयोगी धनको लेकरि साधुओं (ऋत्विगादि) को देताहै वहमनुष्य अपनी आत्माको नावबनाकर उनदोनों को संसारके दुःखसे पारकरताहै अर्थात् जिसके धनको हरताहै उसकेपापको और जिसको देताहै उसकी दुर्गति (दरिद्रता) को नष्टकरताहै १९ ॥

यद्धनंयज्ञशीलानांदेवस्वंतद्विदुर्बुधाः । अयज्वनांतुयद्वित्तमासुरस्वंतदुच्यते २० ॥

प० । यत् धनं यज्ञशीलानां देवस्वं तत् विदुः बुधाः अयज्वनां तु यत् वित्तं आसुरस्वं तत् उच्यते॥

यो० । यज्ञशीलानां यद्धनं भवति तत् बुधाः देवस्वं विदुः तुपुनः अयज्वनां यत्वित्तं तत् बुधैः आसुरस्वं उच्यते ॥

भा० । ता० । यज्ञकरनेवालों का जो धन है वहधन पंडितों ने देवताओंका कहाहै और यज्ञके न करनेवाले का जो धन है उसको पंडितोंने राक्षसों का धनकहाहै—इससे राक्षस धनकोभी देवताओं का धन बनाकर यज्ञकरना अत्यन्त श्रेष्ठ है २० ॥

नतस्मिन्धारयेद्दण्डंधार्मिकःपृथिवीपतिः । क्षत्रियस्यहिबालिश्याद्ब्राह्मणःसीदतिक्षुधा २१

प० । न तस्मिन् धारयेत् दंडं धार्मिकः पृथिवीपतिः क्षत्रियस्य हि बालिश्यात् ब्राह्मणः सीदति क्षुधा ॥

यो० । धार्मिकः पृथिवीपतिः तस्मिन् दंडं न धारयेत् हि (यतः) क्षत्रियस्य बालिश्यात् ब्राह्मणः क्षुधासीदति ॥

भा० । ता० । धार्मिक राजा चोरिआदि से यज्ञकरनेवाले मनुष्यको दंडनदे क्योंकि क्षत्रीकीही मूर्खतासे ब्राह्मण क्षुधासे पीडित होताहै इससे क्षत्री ब्राह्मणकी इसप्रकार रक्षाकरै कि २१ ॥

तस्यभृत्यजनंज्ञात्वास्वकुटुम्बान्महीपतिः । श्रुतशीलेचविज्ञायवृत्तिंधर्म्यांप्रकल्पयेत् २२ ॥

प० । तस्य भृत्यजनं ज्ञात्वा स्वकुटुम्बात् महीपतिः श्रुतशीले च विज्ञाय वृत्तिं धर्म्यां प्रकल्पयेत्॥

यो० । महीपतिः तस्य भृत्यजनं ज्ञात्वा चपुनः श्रुतशीले विज्ञाय स्वकुटुम्बात् धर्म्यां वृत्तिं प्रकल्पयेत् ॥

भा० । ता० । राजा उसब्राह्मणके अवश्य पालनेयोग्य पुत्रआदि जनोंको और ब्राह्मणकी विद्या और स्वभावको जानकर अपने कुटुम्बमेंसे धर्मके अनुसार उसब्राह्मणकी जीविकाको नियतकरै २२॥

कल्पयित्वाऽस्यवृत्तिंचरक्षेदेनंसमन्ततः।राजाहिधर्मषड्भागंतस्मात्प्राप्नोतिरक्षितात् २३ ॥

प०। कल्पयित्वा अस्य वृत्तिं च रक्षेत् एनं समंततः राजा हि धर्मषड्भागं तस्मात् प्राप्नोति रक्षितात्

यो० । राजा अस्य ब्राह्मणस्य वृत्तिं कल्पयित्वा एनं समंततः रक्षेत् हि (यतः) रक्षितात् तस्मात् धर्मषड्भागं प्राप्नोति ॥

भा० । ता० । राजा ब्राह्मणकी जीविकाको नियतकरके इस ब्राह्मणकी चारोंतरफसे रक्षाकरै क्योंकि ब्राह्मणकी रक्षाकरनेसे धर्म के छठेभागको राजा प्राप्त होताहै अर्थात् ब्राह्मणके कियेहुये धर्म का छठाभाग राजाको मिलता है २३ ॥

नयज्ञार्थंधनंशूद्राद्विप्रोभिक्षेतकर्हिचित् ।यजमानोहिभिक्षित्वाचाण्डालःप्रेत्यजायते २४ ॥

प० । नं यज्ञार्थं धनं शूद्रात् विप्रः भिक्षेतं कर्हिचित् यजमानः हि भिक्षित्वा चाण्डालः प्रेत्य जायते ॥

यो० । विप्रः शूद्रात् यज्ञार्थं धनं कर्हिचित् न भिक्षेत हि (यतः) भिक्षित्वा यजमानः प्रेत्य चाण्डालः जायते ॥

भा० । ता० । ब्राह्मण यज्ञकी सिद्धिके लिये शूद्रसे कदाचित् भी याचना न करै क्योंकि शूद्रसे धनकी याचनाकरके यज्ञकरताहुआ ब्राह्मण मरनेके अनंतर कुत्तेकी योनिको प्राप्तहोताहै—यदि विना याचनाके शूद्रसे धन मिलजाय तो उस धनसे यज्ञकरताहुआ ब्राह्मण दूषित नहीं होता २४ ॥

यज्ञार्थमर्थंभिक्षित्वायोनसर्वंप्रयच्छति ।सयातिभासतांविप्रःकाकतांवाशतंसमाः २५॥

प० । यज्ञार्थं अर्थं भिक्षित्वा यः न सर्वं प्रयच्छति सः याति भासतां विप्रः काकतां वा शतं समाः॥

यो० । यः विप्रः यज्ञार्थं अर्थं भिक्षित्वा सर्वं न प्रयच्छति सः (विप्रः) भासतां वा काकतां शतं समाः याति ॥

भा० । ता० । जो ब्राह्मण यज्ञके लिये धनकी याचना करके संपूर्ण धनको नहीं देता अर्थात् याचनासे संचय कियेहुये संपूर्ण धनको यज्ञमें नहीं लगाता वह ब्राह्मण सौवर्ष तक भास वा काक की योनिको प्राप्त होताहै २५ ॥

देवस्वंब्राह्मणस्वंवालोभेनोपहिनस्तियः। सपापात्मापरेलोकेगृध्रोच्छिष्टेनजीवति२६॥

प० । देवस्वं ब्राह्मणस्वं वा लोभेन उपहिनस्ति यः सः पापात्मा परे लोके गृध्रोच्छिष्टेन जीवति॥

यो० । यः (पुरुषः) देवस्वं ब्राह्मणस्वं लोभेन वा उपहिनस्ति सः पापात्मा परलोके गृध्रोच्छिष्टेन जीवति ॥

भा० । ता० । जो मनुष्य देवता के वा ब्राह्मणके धनको लोभसे हरताहै वह पापात्मा परलोक में गीधोंके उच्छिष्टसे जीता है विष्णु आदि की मूर्त्तिके लिये अर्पणकिया जो द्रव्य उसको देव द्रव्य कहते हैं २६ ॥

इष्टिंवैश्वानरींनित्यंनिर्वपेदब्दपर्यये। क्लृप्तानांपशुसोमानांनिष्कृत्यर्थमसम्भवे २७ ॥

प० । इष्टिं वैश्वानरीं नित्यं निर्वपेत् अब्दपर्यये क्लृप्तानां पशुसोमानां निष्कृत्यर्थं असंभवे ॥

यो० । क्लृप्तानां पशुसोमानां असंभवे निष्कृत्यर्थं अब्दपर्यये वैश्वानरीं इष्टिं नित्यं निर्वपेत् ॥

भा० । ता० । वर्षके पर्ययमें अर्थात् प्रथम वर्षकी समाप्ति और द्वितीय वर्ष के प्रारंभ में सदैव वैश्वानर यज्ञको करै यदि शास्त्र विहित पशु और सोमयज्ञ न होसके तो उनके दोषकी निवृत्तिके लिये वैश्वानर यज्ञको शूद्र आदि से धनलेकर भी करदे २७ ॥

आपत्कल्पेनयोधर्मंकुरुतेऽनापदिद्विजः।सनाप्नोतिफलंतस्यपरत्रेतिविचारितम् २८ ॥

प० । आपत्कल्पेन यः धर्मं कुरुते अनापदि द्विजः सः न आप्नोति फलं तस्य परत्र इति विचारितम् ॥

यो० । यः द्विजः अनापदि आपत्कल्पेन धर्मं कुरुते सः तस्य धर्मस्य फलं परत्र न आप्नोति इति विचारितम् ॥

भा० । ता० । जो द्विज विना आपत्ति के समयमें भी आपत्कालकी विधिसे धर्मको करताहै वह द्विज परलोक में उस धर्म के फलको प्राप्त नहीं होता यह मनु आदिकोंने विचार किया है २८ ॥

विश्वैश्चदेवैःसाध्यैश्चब्राह्मणैश्चमहर्षिभिः।आपत्सुमरणाद्भीतैर्विधेःप्रतिनिधिःकृतः २९

प० । विश्वैः चँ देवैः साध्यैः चँ ब्राह्मणैः चँ महर्षिभिः आपत्सुँ मरणात् भीतैः विधेः प्रतिनिधिः कृतः ॥

यो० । मरणात् भीतैः विश्वैः देवैः चपुनः साध्यैः चपुनः महर्षिभिः ब्राह्मणैः आपत्सु विधेः प्रतिनिधिः कृतः ॥

भा० । ता० । मरनेसे भयभीत विश्वेदेवा और साध्य और महर्षि ब्राह्मणोंने विधिका प्रतिनिधि अर्थात् सोमयागके असंभव में वैश्वानरयज्ञ आपत्कालके समयमें ही किया है इससे जबतक मुख्य कर्म होसके तबतक प्रतिनिधि कर्म को द्विज कदाचित् भी न करै २९ ॥

प्रभुःप्रथमकल्पस्ययोऽनुकल्पेनवर्तते । नसाम्परायिकंतस्यदुर्मतेर्विद्यतेफलम् ३० ॥

प० । प्रभुः प्रथमकल्पस्य यः अनुकल्पेन वर्तते नँ सांपरायिकं तस्य दुर्मतेः विद्यते फलम् ॥

यो० । यः प्रथमकल्पस्य प्रभुः सन् अनुकल्पेनवर्तते तस्यदुर्मतेः सांपरायिकं फलं न विद्यते ॥

भा० । ता० । मुख्य कर्म के करने में समर्थ होकर भी जो मनुष्य आपत्काल में करने योग्य विधिसे कर्म को करताहै उस दुर्मतिको परलोकमें जाकर प्रतापका उदयरूप और पापका नाशरूप फल नहीं होता यद्यपि (आपत्कल्पेन) इस श्लोकसेही यहबात कहआये थे तथापि शास्त्रके आदरके लिये पुनः कही है ३० ॥

नब्राह्मणोऽवेदयतकिञ्चिद्राजनिधर्मवित्।स्ववीर्येणैवतान्शिष्यान्मानवानपकारिणः ३१

प० । नँ ब्राह्मणः ऽवेदयतँ किंचित् राजँनि धर्मवित् स्ववीर्येणँ एवँ तान् शिष्यात् मानवान् अपकारिणः ॥

यो० । धर्मवित् ब्राह्मणः राजनि किंचित् नऽवेदयत किंतु तान् अपकारिणः मानवान् स्ववीर्येण एव शिष्यात् ॥

भा० । ता० । धर्म के जाननेवाला ब्राह्मण किंचित् भी किसीके अपराध का निवेदन न करै किंतु अपने पराक्रमसेही उन अपराधी मनुष्योंको दंडदे अर्थात् यदि कोई मनुष्य अपने धर्म के विरोधसे निकृष्ट अपराधकरै तो उसके अभिचार (हिंसाआदि) करनेमें दोष नहीं ऐसे अभिचार करनेवालोंको ब्राह्मण स्वयं दंडदे और अधिक अपराधियोंको तो अवश्य राजाको कहै ३१ ॥

स्ववीर्याद्राजवीर्याच्चस्ववीर्यंबलवत्तरम्।तस्मात्स्वेनैववीर्येणनिगृह्णीयादरीन्द्विजः ३२

प० । स्ववीर्यात् राजवीर्यात् चँ स्ववीर्यं बलवत्तरं तस्मात् स्वेनँ एवँ वीर्येणँ निगृह्णीयात् अरीन् द्विजः ॥

यो० । स्ववीर्यात् चपुनः राजवीर्यात् स्ववीर्यं बलवत्तरं भवति तस्मात् द्विजः स्वेनैववीर्येण अरीन् निगृह्णीयात् ॥

भा० । ता० । अपनावीर्य (सामर्थ्य) और राजाका वीर्य इन दोनोंमें अपनावीर्य अत्यंत बलवान् होताहै—क्योंकि राजाका वीर्य पराधीन है और अपनावीर्य स्वाधीन होताहै तिससे अपनेही वीर्यसे ब्राह्मण शत्रुओं को दंडदे वह ब्राह्मणका वीर्य यह है कि ३२ ॥

श्रुतीरथर्वांगिरसीःकुर्यादित्यविचारयन्।वाक्शस्त्रंवैब्राह्मणस्यतेनहन्यादरीन्द्विजः ३३

प० । श्रुतीः अथर्वाङ्गिरसीः कुर्यात् इति अविचारयन् वाक्शस्त्रं वै ब्राह्मणस्य तेन हन्यात् अरीन् द्विजः ॥

यो० । द्विजः इति (हेतोः) अविचारयन् (सन्) अथर्वाङ्गिरसीः श्रुतीः कुर्यात् वै (निश्चयेन) ब्राह्मणस्य वाक्शस्त्रं भवति तेन (वाक्शस्त्रेण) द्विजः अरीन् हन्यात् ॥

भा० । ता० । इससे अथर्वण वेदकी अंगिरा ऋषिकी कहीहुई जो दुष्टोंके अभिचार (मारना)की श्रुतिहैं उनको करै अर्थात् शत्रुओंके मारने के लिये अभिचार कर्म को करै क्योंकि अभिचार मंत्रका उच्चारणरूप वाणीही ब्राह्मणका शस्त्र होताहै अर्थात् शस्त्र के कामको देसक्ताहै तिस शस्त्रसे ब्राह्मण शत्रुओं को नष्टकरै ३३ ॥

क्षत्रियोबाहुवीर्येणतरेदापदमात्मनः । धनेनवैश्यशूद्रौतुजपहोमैर्द्विजोत्तमः ३४ ॥

प० । क्षत्रियः बाहुवीर्येण तरेत् आपदं आत्मनः धनेन वैश्यशूद्रौ तु जपहोमैः द्विजोत्तमः ॥

यो० । क्षत्रियः आत्मनः आपदं बाहुवीर्येण तरेत् वैश्यशूद्रौ धनेन तरेताम् द्विजोत्तमः जपहोमैः आपदं तरेत् ॥

भा० । ता० । क्षत्री अपनी भुजाओंके बलसे शत्रुओंसे तिरस्काररूप आपत्तियोंको दूरकरै और वैश्य शूद्र धनसे और ब्राह्मण अभिचार के जप और होमसे अपनी आपत्तियोंको दूरकरै ३४ ॥

विधाताशासितावक्तामैत्रोब्राह्मणउच्यते । तस्मैनाकुशलंब्रूयान्नशुष्कांगिरमीरयेत् ३५

प० । विधाता शासिता वक्ता मैत्रः ब्राह्मणः उच्यते तस्मै न अकुशलं ब्रूयात् न शुष्कां गिरं ईरयेत् ॥

यो० । शास्त्रविहितकर्मणां विधाताशासिता वक्ता ब्राह्मणः मैत्रः उच्यते तस्मै (ब्राह्मणाय) अकुशलं न ब्रूयात्—शुष्कां गिरं न ईरयेत् ॥

भा० । ता० । शास्त्रविहित कर्मोंका स्वयंकरनेवाला और शास्त्रोक्तकर्मकी पुत्र और शिष्यआदिकों को शिक्षादेनेवाला और प्रायश्चित्तआदि कर्मों का उपदेशकरनेवाला ब्राह्मण सम्पूर्ण प्राणियों का मित्र कहाहै—उस ब्राह्मणको अकुशल (इसको बांधलो) वचन न कहै और शुष्क अर्थात् निंदा और वाग्दण्ड और धिग्दण्डरूप वाणीको न कहै ३५ ॥

नवैकन्यानयुवतिर्नाल्पविद्योनबालिशः । होतास्यादग्निहोत्रस्यनार्तोनासंस्कृतस्तथा ३६

प० । न वै कन्या न युवतिः न अल्पविद्यः न बालिशः होता स्यात् अग्निहोत्रस्य न आर्तः न असंस्कृतः तथा ॥

यो० । कन्या युवतिः—अल्पविद्यः—बालिशः आर्तः—तथा असंस्कृतः अग्निहोत्रस्य होता न स्यात् ॥

भा० । ता० । कन्या, और युवति, (जवानस्त्री) और अल्पविद्यावान् मूर्ख, रोगपीडित, और अनुपनीत (जिसका यज्ञोपवीत न हुआहो) ये सब सायंकाल और प्रातःकालकरनेके योग्य वेदोक्त होमों के होता (आहुतिके दाता) न बनें ३६ ॥

नरकेहिपतन्त्येतेजुह्वन्तःसचयस्यतत् । तस्माद्वैतानकुशलोहोतास्याद्वेदपारगः ३७ ॥

प० । नरके हि पतंति एते जुह्वंतः सः च यस्य तत् तस्मात् वैतान कुशलः होता स्यात् वेदपारगः ॥

यो० । जुह्वतः एते चपुनः यस्य अग्निहोत्रं सः हि (निश्चयेन) नरकेपतंति तस्मात् वैतान कुशलः वेदपारगः होता स्यात् ॥

भा० । ता० । होमको करतेहुये ये कन्याआदि और जिस यजमानके होमको करतेहों वह यजमान नरकमें निश्चयपड़तेहैं तिससे वेदोक्तकर्ममें कुशल और सम्पूर्णवेदका पढ़नेवाला होता होताहै ३७ ॥

प्राजापत्यमदत्त्वाश्वमग्न्याधेयस्यदक्षिणाम्।अनाहिताग्निर्भवतिब्राह्मणोविभवेसति ३८

प० । प्राजापत्यं अदत्त्वा अश्वं अग्न्याधेयस्य दक्षिणां अनाहिताग्निः भवति ब्राह्मणः विभवे सति ॥

यो० । ब्राह्मणः विभवेसति अग्न्याधेयस्यदक्षिणां प्राजापत्यं अश्वं अदत्त्वा अनाहिताग्निः भवति ॥

भा० । ता० । जोब्राह्मण धनकी सम्पत्तिहोनेपर अग्निकेआधानकी दक्षिणारूप प्रजापति देवता के लिये अश्व (घोड़े) को न देकर अग्न्याधान (अग्निहोत्र का ग्रहण) करताहै वह अनाहिताग्नि होताहै अर्थात् आधान के करनेपरभी आधानके फलकाभागी नहींहोता तिससे अग्न्याधानके समय अश्वकी दक्षिणा अवश्यदे ३८ ॥

पुण्यान्यन्यानिकुर्वीतश्रद्दधानोजितेन्द्रियः । नत्वल्पदक्षिणैर्यज्ञैर्यजेतेहकथंचन ३९

प० । पुण्यानि अन्यानि कुर्वीत श्रद्दधानः जितेंद्रियः न तु अल्पदक्षिणैः यज्ञैः यजेत इह कथंचन ॥

यो० । श्रद्दधानः जितेंद्रियः ब्राह्मणः अन्यानि पुण्यानि कुर्वीत अल्पदक्षिणैः यज्ञैः तु कथंचन इह न यजेत ॥

भा० । ता० । जीतीहैं इन्द्रिय जिसने ऐसा श्रद्धावान् ब्राह्मण यज्ञसे अन्य तीर्थयात्रादि कर्मोंको करे परन्तु शास्त्रोक्त दक्षिणासे न्यूनहै दक्षिणा जिनमें ऐसीयज्ञोंसे कदाचित्भी यजन न करै क्योंकि दक्षिणाही यज्ञका उपकारक होताहै और शक्तिसे अधिक दीहुई दक्षिणा उद्वेगका हेतु होतीहै ३९ ॥

इन्द्रियाणियशःस्वर्गमायुःकीर्तिंप्रजाःपशून्।हन्त्यल्पदक्षिणोयज्ञस्तस्मान्नल्पधनोयजेत्४०

प० । इन्द्रियाणि यशः स्वर्गं आयुः कीर्तिं प्रजाः पशून् हंति अल्पदक्षिणः यज्ञः तस्मात् न अल्पधनः यजेत् ॥

यो० । यस्मात् अल्पदक्षिणः यज्ञः इन्द्रियाणि यशः स्वर्गं आयुः—कीर्तिं—प्रजाः पशून् हंति तस्मात् अल्पधनः न यजेत् ॥

भा० । ता० । अल्पहै दक्षिणा जिसमें ऐसा यज्ञ नेत्रआदिइंद्रिय यश, स्वर्ग—अवस्था—और कीर्त्ति—प्रजा पशु इनको नष्टकरताहै तिससे अल्पधनी मनुष्य यज्ञ न करै—अर्थात् यज्ञमें अल्पदक्षिणा न दे जीतेहुये मनुष्यकी ख्यातिको यश, और मरने के अनन्तर ख्यातिको कीर्त्ति कहतेहैं ४० ॥

अग्निहोत्र्यपविध्याग्नीन्ब्राह्मणःकामकारतः। चांद्रायणंचरेन्मासंवीरहत्यासमंहितत्४१

प० । अग्निहोत्री अपविद्ध्य अग्नीन् ब्राह्मणः कामकारतः चांद्रायणं चरेत् मासं वीरहत्यासमं हि तत् ॥

यो० । अग्निहोत्री ब्राह्मणः कामकारतः अग्नीन् अपविद्ध्य मासं चांद्रायणं चरेत् हि (यतः) तत् वीरहत्यासमं भवति ॥

भा० । ता० । अग्निहोत्रकरनेवाला ब्राह्मणअपनइच्छासे अग्नियोंका त्यागकरिके अर्थात् सायंकाल और प्रातःकाल के होमको न करके मासपर्यंत चांद्रायणव्रतकोकरै क्योंकि वह अग्निहोत्र का

त्याग इस श्रुतिके अनुसार पुत्रहत्या के समान होताहै कि जो ब्राह्मण अग्निको त्यागताहै वह देवताओं की दृष्टिमें पुत्रका हतनेवाला होताहै और कोई आचार्य यह कहते हैं कि एकमासपर्यंत यदि अग्निहोत्रको त्यागै तो चांद्रायणव्रतकरै ४१ ॥

येशूद्रादधिगम्यार्थमग्निहोत्रमुपासते। ऋत्विजस्तेहिशूद्राणांब्रह्मवादिषुगर्हिताः४२॥

प० । ये शूद्रात् अधिगम्य अर्थं अग्निहोत्रं उपासते ऋत्विजः ते हि शूद्राणां ब्रह्मवादिषु गर्हिताः

यो० । ये ब्राह्मणाः शूद्रात् अर्थं अधिगम्य अग्निहोत्रं उपासते शूद्राणां हि निश्चयेन ऋत्विजः ते ब्राह्मणाः ब्रह्मवादिषु गर्हिताः भवंति ॥

भा० । ता० । जो ब्राह्मण शूद्रसे धनको ग्रहणकरके अग्निहोत्रकी उपासना करते हैं अर्थात् यज्ञ वा दान से शूद्रकेधनको ग्रहणकरके अग्न्याधान करतेहैं निश्चयसे शूद्रोंकी यज्ञकरानेवाले वे ब्राह्मण ब्रह्मवादियों में निंदितहोतेहैं अर्थात् उस अग्निहोत्र के फलभागी नहींहोते ४२ ॥

तेषांसततमज्ञानांवृषलाग्न्युपसेविनाम्। पदामस्तकमाक्रम्यदाताद्दुर्गाणिसंतरेत् ४३

प० । तेषां सततं अज्ञानां वृषलाग्न्युपसेविनां पदा मस्तकं आक्रम्य दाता दुर्गाणि संतरेत् ॥

यो० । वृषलाग्न्युपसेविनां अज्ञानां तेषां मस्तकं पदा आक्रम्य दाता (शूद्रः) दुर्गाणि सततं संतरेत् ॥

भा० । ता० । शूद्रकी अग्निके सेवनकरनेवाले, और मूर्ख उनब्राह्मणों के मस्तकपर चरणकोरखकर दानका देनेवाला शूद्र परलोकमें निरन्तर दुःखोंसे पार होता है अर्थात् उस यज्ञकाफल धनदेनेवाले शूद्रको होताहै ब्राह्मणोंको नहीं ४३ ॥

अकुर्वन्विहितंकर्मनिन्दितंचसमाचरन्। प्रसक्तश्चेन्द्रियार्थेषुप्रायश्चित्तीयतेनरः ४४॥

प० । अकुर्वन् विहितं कर्म निंदितं च समाचरन् प्रसक्तः च इंद्रियार्थेषु प्रायश्चित्तीयते नरः ॥

यो० । विहितं कर्म अकुर्वन् चपुनः निंदितं समाचरन् चपुनः इंद्रियार्थेषु प्रसक्तः नरः प्रायश्चित्तीयते ॥

भा० । शास्त्रोक्त कर्म को नहीं करता और निंदित कर्म को करताहुआ विषयों में आसक्त पुरुष प्रायश्चित्त के योग्य होताहै ॥

ता० । शास्त्रसे विहित सन्ध्योपासन आदि नित्यकर्म और शवस्पर्श आदि में स्नानआदि नैमित्तिक कर्मों को न करताहुआ और हिंसाआदि निषिद्धकर्मोंको करताहुआ इंद्रियों के विषयोंमें अत्यंत आसक्त मनुष्य प्रायश्चित्तके योग्य होताहै—कदाचित् कोई यह शंकाकरै कि सम्पूर्ण इंद्रियोंके विषयों में इच्छासे आसक्तनहो इसवचनसे इंद्रियोंमें आसक्तिको निंदितकहाहै निंदितपदसेही वहभी आय जाता फिर पृथक् इंद्रियार्थ प्रसक्त को प्रायश्चित्त का भागी कैसेकहा इसका यह समाधानहै कि यह स्नातकके व्रतों में पढ़ाहै इससे स्नातकके व्रतोंकी यह विधिहै निषेध नहीं कदाचित् कोई यह कहै कि शास्त्रविहित कर्म को न करताहुआ इससेही इसका ग्रहणहोजाता फिर पृथक् क्यों कहा सोभी ठीक नहीं क्योंकि स्नातकसे भिन्नको भी इन्द्रियों के विषयमें प्रसक्ति प्रायश्चित्तके योग्य होती है इसलिये पृथक् लिखी है ४४ ॥

---

१ वीरहावाएषदेवानांभवति योऽग्निमुद्वासयते ॥
२ इंद्रियार्थेषुसर्वेषु नप्रसज्येतकामतः ॥

अकामतःकृतेपापेप्रायश्चित्तंविदुर्बुधाः। कामकारकृतेऽप्याहुरेकेश्रुतिनिदर्शनात् ४५ ॥

प० । अकामतः कृते पापे प्रायश्चित्तं विदुः बुधाः कामकारकृते अपि आहुः एके श्रुतिनिदर्शनात् ॥

यो० । अकामतः पापे कृतेसति बुधाः प्रायश्चित्तं विदुः एके (आचार्याः) कामकारकृते अपि पापे श्रुतिनिदर्शनात् प्रायश्चित्तं आहुः ॥

भा० । अज्ञानसे कियेहुये पापका प्रायश्चित्त पंडितोंने कहाहै कोई आचार्य श्रुतिमें देखिकर जानकरि कियेहुये पापका भी प्रायश्चित्त कहते हैं ॥

ता० । अज्ञानसे कियेहुये पापका प्रायश्चित्त पंडितों ने कहाहै और जानकर किये पापका प्रायश्चित्त नहीं है और कोई आचार्य श्रुतिकेनिदर्शन (देखना) से जानकर कियेहुये पापका भी प्रायश्चित्त कहते हैं क्योंकि इस श्रुतिमें जानकर कियेहुये पापका भी प्रायश्चित्त कहाहै कि इंद्रने संन्यासियोंको जानकर कुत्तोंको सौंपदिया उस इंद्रको कठोर वाणीने आनकर कहा कि प्रायश्चित्तकर वह इंद्र ब्रह्माके समीप गया ब्रह्माने उसकी उपहव्य (हवन विशेष) कर्म प्रायश्चित्तकरना बताया इससे स्पष्ट है कि जानकर कियेहुये पापका भी प्रायश्चित्त है ४५ ॥

अकामतःकृतंपापंवेदाभ्यासेनशुद्ध्यति।कामतस्तुकृतंमोहात्प्रायश्चित्तैःपृथग्विधैः ४६

प० । अकामतः कृतं पापं वेदाभ्यासेन शुद्ध्यति कामतः तु कृतं मोहात् प्रायश्चित्तैः पृथक् विधैः ॥

यो० । अकामतः कृतं पापं वेदाभ्यासेन शुद्ध्यति तुपुनः मोहात् कामतः कृतं पापं पृथक्विधैः प्रायश्चित्तैः शुद्ध्यति ॥

भा० । अज्ञानसे कियाहुआ पाप वेदके अभ्याससे और मोहसे जानकर कियाहुआ पाप नाना प्रकार के प्रायश्चित्तों से नष्ट होताहै ॥

ता० । अज्ञानसे कियाहुआ पाप वेदके अभ्याससे नष्टहोजाताहै यद्यपि अन्य प्रायश्चित्तों से भी अज्ञानसे कियेहुये पापका नाश कहाहै तथापि वेदका अभ्यास उन प्रायश्चित्तों से लघु है जो जानिकर कियेहुये पापोंके धर्मशास्त्र में कहे हैं इससे वेदका अभ्यास उनका भी उपलक्षण है जो अज्ञान से कियेहुये पापोंके प्रायश्चित्त कहे हैं और रागद्वेषसे मूढ मनुष्य ने जो जानकर पापकिया है वह नानाप्रकारके विद्या, धन, तप, आदि प्रायश्चित्तोंसे नष्टहोताहै अर्थात् पूर्वोक्त प्रायश्चित्तोंसे गुरुहोताहै यद्यपि अधिकारी का निरूपण और प्रायश्चित्त आगे कहेंगे तथापि अज्ञानसे पापका कर्ता लघु प्रायश्चित्त का अधिकारी होताहै—और जानकर पाप का कर्ता गुरु प्रायश्चित्त का अधिकारी होताहै इसलिये अधिकारी के निरूपण केही लिये यह वचन है ४६ ॥

प्रायश्चित्तीयतांप्राप्यदैवात्पूर्वकृतेनवा। नसंसर्गंव्रजेत्सद्भिःप्रायश्चित्तेऽकृतेद्विजः ४७ ॥

प० । प्रायश्चित्तीयतां प्राप्य दैवात् पूर्वकृतेन वा न संसर्गं व्रजेत् सद्भिः प्रायश्चित्ते अकृते द्विजः ॥

यो० । द्विजः दैवात् वा पूर्वकृतेन कर्मणा प्रायश्चित्तीयतां प्राप्य प्रायश्चित्ते अकृतेसति सद्भिः सह संसर्गं न व्रजेत् ॥

भा० । ता० । द्विज दैवसे अथवा पूर्व जन्म में कियाहुआ जो पाप (जो क्षय रोग आदि से प्रतीत होताहै) से प्रायश्चित्त की योग्यताको प्राप्त होकर विना प्रायश्चित्त किये सज्जनों का यज्ञादि में संग न करै ४७ ॥

---

१ इंद्रोयतीन्शालावृकेभ्यःप्रायच्छत्तमश्लीलावागत्यावदत्सप्रजापतिमुपाधावत्तस्माउपहव्यंप्रायच्छत् ॥

इहदुश्चरितैःकेचित्केचित्पूर्वकृतैस्तथा।प्राप्नुवन्तिदुरात्मानोनरारूपविपर्ययम् ४८ ॥

प० । इहँ दुश्चरितैः केचिँत् केचिँत् पूर्वकैतैः तथाँ प्राप्नुवंति दुरात्मानः नराः रूपविपर्ययम् ॥

यो० । केचित् दुरात्मानो नराः इह दुश्चरितैः तथापूर्वकृतैः दुश्चरितैः रूपविपर्ययं प्राप्नुवंति ॥

भा० । ता० । दुष्ट स्वभाववाले कोई मनुष्य इस जन्मके ही निषिद्ध आचरणसे और कोई मनुष्य पूर्वजन्मके निषिद्ध आचरणसे रूपके विपर्यय (कुनख आदि) को प्राप्त होते हैं अर्थात् किये हुये पापसे देहके अंग विपरीत होजाते हैं उनकाही वर्णन करते हैं कि ४८ ॥

सुवर्णचौरःकौनख्यंसुरापःश्यावदन्तताम्।ब्रह्महाक्षयरोगित्वंदौश्चर्म्यंगुरुतल्पगः ४९
पिशुनःपौतिनासिक्यंसूचकःपूतिवक्रताम्।धान्यचौरोऽङ्गहीनत्वमातिरैक्यंतुमिश्रकः ५०
अन्नहर्त्तामयावित्वंमौक्यंवागपहारकः ।वस्त्रापहारकःश्वैत्र्यंपंगुतामश्वहारकः ५१ ॥
एवंकर्मविशेषेणजायन्तेसद्विगर्हिताः।जडमूकान्धबधिराविकृताकृतयस्तथा ५२ ॥

प० । सुवर्णचौरः कौनख्यं सुरापः श्यावदन्ततां ब्रह्महा क्षयरोगित्वं दौश्चर्म्यं गुरुतल्पगः ॥

प० । पिशुनः पौतिनासिक्यं सूचकः पूतिवक्रतां धान्यचौरः अंगहीनत्वं आतिरैक्यं तु मिश्रकः ॥

प० । अन्नहर्त्ता आमयावित्वं मौक्यं वागपहारकः वस्त्रापहारकः श्वैत्र्यं पंगुतां अश्वहारकः ॥

प० । एवं कर्मविशेषेण जायंते सद्विगर्हिताः जडमूकांधबधिराः विकृताकृतयः तथा ॥

यो० । सुवर्णचौरः कौनख्यं सुरापः श्यावदन्ततां ब्रह्महा क्षयरोगित्वं गुरुतल्पगः दौश्चर्म्यं पिशुनः पौतिनासिक्यं सूचकः पूतिवक्रतां धान्यचौरः अंगहीनत्वं मिश्रकः आतिरैक्यं अन्नहर्त्ता आमयावित्वं वागपहारकः मौक्यं वस्त्रापहारकः श्वैत्र्यं अश्वहारकः पंगुतां प्राप्नोति एवं कर्मविशेषेण सद्विगर्हिताः जडमूकांधबधिराः तथा विकृताकृतयः जायन्ते ॥

भा० । ता० । ब्राह्मणके सुवर्णका चौर कुत्सित नखोंको, और मदिरा पीनेवाला कालेदांतोंको, ब्रह्महत्यारा क्षयरोगको, गुरुकी स्त्री का गामी दौश्चर्म्य (शिथिलइंद्रिय होना) को, और पिशुन (जो किसीके सच्चे दोषोंको वर्णनकरे) नासिकामें दुर्गंधिको, और सूचक (जो झूठे दोषोंको कहे) मुखमें दुर्गंधिको, धान्यका चौर हीन अंगको, और धान्यमें निन्दित वस्तु मिलानेवाला अधिक अंग को, अन्नका चौर मन्दाग्नि को गुरुकी आज्ञाके विना जो पढ़े वह मूकता (गूंगा) को, वस्त्रोंका चौर श्वेत कुष्ठको, अश्वका चौर पंगु (लंगड़ा) ताको, प्राप्तहोताहै इसी प्रकार कर्मकी विशेषतासे अर्थात् पूर्वजन्ममें कियेहुये पापके शेषसे सज्जनों में निन्दित जड़–मूक–अन्ध–बधिर और विकल हैं आकार जिनका ऐसे होते हैं अर्थात् इस वचनके अनुसार दीपकका चौर अंधा दीपक बुझानेवाला काणा हिंसा करनेवाला सदारोगी और परस्त्रीका गामी वातांग (वातरोगी) होता है इससे अज्ञान वा ज्ञानसे कियेहुये पापोंका प्रायश्चित्त अवश्य करना चाहिये कि ४९।५०।५१।५२ ॥

चरितव्यमतोनित्यंप्रायश्चित्तंविशुद्धये।निन्द्यैर्हिलक्षणैर्युक्ताजायन्तेऽनिष्कृतैनसः ५३

प०।चरितव्यं अतः नित्यं प्रायश्चित्तं विशुद्धये। निन्द्यैः हि लक्षणैः युक्ताः जायन्ते अनिष्कृतैनसः

यो० । अतः विशुद्धये नित्यं प्रायश्चित्तं चरितव्यं हि (यतः) अनिष्कृतैनसः पुरुषाः निंद्यैः लक्षणैः जायंते ॥

---

(१) दीपहर्त्ताभवेदंधः काणोनिर्वापकस्तथा । हिंसारुचिःसदारोगीवातांगःपारदारकः ॥

भा० । इससे पाप नाशके लिये सदैव प्रायश्चित्त करै क्योंकि जिन्होंने प्रायश्चित्त नहीं किया वे देहमें पूर्वोक्त निंदित चिह्नोंसे युक्त होतेहैं ॥

ता० । जिससे नहीं कियाहै प्रायश्चित्त जिन्होंने ऐसे मनुष्य परलोकमें भोगेहुये पापके शेषसे पूर्वोक्त निंदित लक्षणोंसे युक्त होतेहैं तिससे विशुद्धि (पापनाश) के लिये सदैव प्रायश्चित्तको करै यहां प्रायश्चित्त निमित्तमात्रसे नहीं है किन्तु शुद्धिके लिये प्रायश्चित्तकरनाहै– जिन्होंने प्रायश्चित्त नहीं किया वे निंदित चिह्नोंसे युक्त होतेहैं इत्यादि वर्णनसे पापके क्षयका जो अभिलाषी है उसका ही प्रायश्चित्तमें अधिकारहै– यही दिखातेहैं कि प्रायश्चित्तं चरितव्यं अर्थात् प्रायश्चित्तकरैं इस विधिमें जब अधिकारीकी अपेक्षाभई तब अति रात्रि सत्रन्यायसे इसी श्लोकमें विशुद्धये अर्थात् शुद्धि के लिये यह फल अधिकारी का विशेषण मानना युक्तहै अर्थात् शुद्धिका अभिलाषी सदैव प्रायश्चित्त करै इसी विषयको याज्ञवल्क्यऋषि ने इन[1] वचनों से स्फुट कियाहै किविहित कर्मके न करनेसे और निंदित कर्मके करनेसे और इंद्रियोंको वशमें न रखनेसे मनुष्य पापको प्राप्त होता है तिससे पाप नाशके लिये प्रायश्चित्त को करै और मनुजी भी इस[2] वचनसे आगे यह वर्णन करेंगे कि महापातकी मनुष्य बहुत वर्षोंतक इन घोर नरकोंको प्राप्तहोकर पापके क्षयहोनेके अनंतर संसारमें जन्म लेतेहैं तिससे प्रायश्चित्त केवल निमित्तमात्रसे नहीं किंतु ब्रह्मवध आदि से पैदाहुये पाप के नाशके लिये है और पूर्वोक्त पापियोंकाही प्रायश्चित्त करने में अधिकार है ५३ ॥

ब्रह्महत्यासुरापानंस्तेयंगुर्वंगनागमः । महान्तिपातकान्याहुःसंसर्गश्चापितैःसह ५४ ॥

प० । ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वंगनागमः महांति पातकानि आहुः संसर्गः च अपि तैः सह ॥

यो० । ब्रह्महत्या, सुरापानं, स्तेयं, गुर्वङ्गनागमः, एतानि चपुनः तैः सहसंसर्गः महांति पातकानि बुधाः आहुः ॥

भा० । ब्रह्महत्या–सुराकापान–सुवर्ण की चोरी–गुरुकी स्त्री का गमन इन कर्मोंके करनेवालों के संगमें पांच पंडित जनोंने महापातक कहेहैं ॥

ता० । ब्राह्मणके प्राण वियोगके व्यापारको ब्रह्महत्या कहते हैं–कुछ साक्षात् ब्राह्मणके मारने को ब्रह्महत्यानहीं कहते तिसीप्रकार गौ हिरण्य आदि के ग्रहणके लिये ब्राह्मणका मरण होनेपर भी ब्रह्महत्या कहातीहै कदाचित् इसमें कोई यह शंकाकरै कि जिस वाणसे ब्राह्मण माराहो उस वाणके बनानेवालेको और मारनेवाले के गाली आदि से क्रोधको पैदाकरनेसे मरनेवाले ब्राह्मणको भी ब्रह्महत्या होनी चाहिये क्योंकि उनमें भी वाण और क्रोधकी उत्पत्ति रूप जो व्यापारहै वह ब्राह्मण के प्राण वियोगका जनक है–यह शंका ठीक नहीं है क्योंकि जो शास्त्रके द्वारा ब्राह्मणका हंता प्रतीतहोताहै उसीको ब्रह्महत्या लगती है–अतएव शातातप ऋषिने यह[3] कहा है कि गौ, भूमि, सुवर्ण इनके ग्रहणार्थ और स्त्री संबंधके लिये जिसके उद्देशसे प्राणोंको त्यागे उसीको ब्रह्मघातक कहते हैं और इसीप्रकार अन्य भी ब्राह्मण वधके कारण शास्त्रोक्त जानने वे येहैं कि इस[4] वचनसे ब्राह्मणके

१ विहितस्याननुष्ठानान्निंदितस्यचसेवनात् । अनिग्रहाच्चेंद्रियाणांनरःपतनमृच्छति ॥ तस्मात्तेनेहकर्त्तव्यंप्रायश्चित्तं विशुद्धये ॥

२ बहून्वर्षगणान्घोराननरकान्प्राप्यतत्क्षयात् । संसारान्प्रतिपद्यंतेमहापातकिनस्त्विमान् ॥

३ गोभूहिरण्यग्रहणेस्त्रीसंबंधकृतेपिवा । यमुद्दिश्यत्यजेत्प्राणांस्तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥

४ रागाद्द्वेषात्प्रमादाद्वास्वतःपरतएववा । ब्राह्मणंघातयेद्यस्तुतमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥

मारनेमें जो प्रयोजक है अर्थात् सम्मतिका दाताहै वह भी ब्रह्मघातक है–कि जो मनुष्य राग, द्वेष, प्रमाद, से स्वयं वा किसी द्वारा ब्राह्मणको मरवादे उसको ब्रह्मघातक कहते हैं–और मदिराकापान, और ब्राह्मणके सुवर्ण का हरण, और गुरुकी भार्य्याका गमन इन चारोंके कर्म के करनेवालों का संग, ये पांच महापातक पंडितजनोंने कहे हैं–और इनका महापातक नाम इसलिये है कि आगे कियेहुये उपपातक इनसे लघु पाप हैं ५४ ॥

अनृतंचसमुत्कर्षेराजगामिचपैशुनम् । गुरोश्चालीकनिर्बंधःसमानिब्रह्महत्यया ५५ ॥

प० । अनृतं चँ समुत्कँर्षे राजगाँमि चँ पैशुँनं गुरोः चँ अलीकनिर्बँधः समाँनि ब्रह्महत्ययाँ ॥

यो० । समुत्कर्षेच अनृतं चपुनः राजगामि पैशुनं चपुनः गुरोः अलीकनिर्बंधः इमानि ब्रह्महत्यया समानि भवंति ॥

भा० । ता० । जातिकी बड़ाई के लिये झूठबोलना जैसे अब्राह्मण अपने को ब्राह्मण कहै और ऐसा चुगुलपन जो राजाके पास पहुंचे और जिससे चौर आदिकोंका मरणहो और गुरुके आगे मिथ्याबोलकर हठकरना ये तीनों ब्रह्महत्या के समान कहेहैं क्योंकि गौतम ऋषिने इस वचनसे गुरु के मिथ्याभिशंसनको ब्रह्महत्या के समान कहा है ५५ ॥

ब्रह्मोज्झतावेदनिन्दाकौटसाक्ष्यंसुहृद्वधः।गर्हितानाद्ययोर्जग्धिःसुरापानसमानिषट् ५६॥

प० । ब्रह्मोज्झता वेदनिंदा कौटसाक्ष्यं सुहृद्वधः गर्हितानाद्ययोः जग्धिः सुरापानसमानि षट् ॥

यो० । ब्रह्मोज्झता, वेदनिंदा, कौटसाक्ष्य–सुहृद्वधः गर्हितानाद्ययोः जग्धिः इमानि षट् सुरापान समानि (भवंति) ॥

भा० । ता० । पढ़ेहुये वेदकाअनभ्याससे विस्मरण और निंदित शास्त्रके माननेसे वेदकी निंदा और झूठी साक्षी और मित्रकावध और निंदित (लशुन आदि) और अनाद्य (पुरीष आदि) अर्थात् टोकनी के अन्नकी जलन ये छः मदिरापानके तुल्य होतेहैं–मेधातिथि तो अनाद्यपदसे उसको लेते हैं कि त्यागीहुई वस्तुका पुनः भक्षण करना ५६ ॥

निक्षेपस्यापहरणंनराश्वरजतस्यच । भूमिवज्रमणीनांचरुक्मस्तेयसमंस्मृतम् ५७ ॥

प० । निक्षेपस्य अपहरणं नराश्वरजतस्य चँ भूमिवज्रमणीनां चँ रुक्मस्तेयसमं स्मृतम् ॥

यो० । निक्षेपस्य नराश्वरजतस्य चपुनः भूमिवज्रमणीनां अपहरणं रुक्मस्तेयसमं बुधैः स्मृतम् ॥

भा० । ता० । निक्षेप (धरोहर) और मनुष्य घोड़ा चांदी भूमि वज्र (हीरा) मणि इनकी चोरी सुवर्ण की चोरी के समान पंडितजनोंने कही है ५७ ॥

रेतःसेकःस्वयोनीषुकुमारीष्वन्त्यजासुच । सख्युःपुत्रस्यचस्त्रीषुगुरुतल्पसमंविदुः ५८॥

प० । रेतःसेकः स्वयोनीषुँ कुमारीषुँ अंत्यजासुँ चँ सख्युः पुत्रस्यँ चँ स्त्रीषुँ गुरुतल्पसमं विदुः ॥

यो० । स्वयोनीषु कुमारीषु अंत्यजासु सख्युः चपुनः पुत्रस्य स्त्रीषु रेतःसेकः बुधाः गुरुतल्पसमं विदुः ॥

भा० । सहोदर भगिनी, चाण्डाली, मित्र और पुत्रकी वधू इनमें वीर्य के त्यागको गुरुकी स्त्रीकी शय्यागमन के समान पंडित जनोंने कहा है ॥

---

१ गुरोरनृताभिशंसनंमहापातकम् ॥

ता० । सोदर भगिनी चांडाली और मित्र और पुत्रकी स्त्री इनके विषय वीर्य का सेचन अर्थात् इनके संग रमण गुरु स्त्री के गमन के समान हैं इन सबको महापातकोंके तुल्य जो कहना इसलिये है कि जिस महापातकका प्रायश्चित्त है उसके तुल्य पातकका भी वही प्रायश्चित्त है और झूठीसाक्षी और मित्रके वधका सुरापान के तुल्य वर्णन इसलिये है कि उसमें ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त कहेंगे उसके संग विकल्प मानाजाय—और गुरुके संग मिथ्यावादका जो ब्रह्महत्या के तुल्य वर्णन है वह ब्रह्महत्या का जो प्रायश्चित्त है उससे कुछ न्यून प्रायश्चित्त के लिये है क्योंकि जगत् में भी राजा के तुल्य मंत्री है इस वर्णनसे मंत्रीमें न्यूनता प्रतीत होतीहै इससे जो प्रधान पातकोंमें प्रायश्चित्त है उससे न्यून प्रायश्चित्त महापातकों के समानों में होताहै ५८ ॥

गोवधोऽयाज्यसंयाज्यपारदार्यात्मविक्रयाः । गुरुमातृपितृत्यागःस्वाध्यायाग्न्योःसुतस्यच ५९
परिवित्तितानुजेऽनूढेपरिवेदनमेवच । तयोर्दानंचकन्यायास्तयोरेवचयाजनम् ६० ॥
कन्यायादूषणंचैववार्द्धुष्यंव्रतलोपनम् । तडागारामदाराणामपत्यस्यचविक्रयः ६१ ॥
व्रात्यताबान्धवत्यागोभृत्याध्यापनमेवच। भृताच्चाध्ययनादानमपण्यानांचविक्रयः ६२॥
सर्वाकरेष्वधीकारोमहायन्त्रप्रवर्तनम्।हिंसौषधीनांस्त्र्याजीवोऽभिचारोमूलकर्मच ६३
इन्धनार्थमशुष्काणांद्रुमाणामवपातनम् । आत्मार्थंचक्रियारम्भोनिन्दितान्नादनंतथा ६४ ॥
अनाहिताग्नितास्तेयमृणानामनपक्रिया।असच्छास्त्राधिगमनंकौशीलव्यस्यचक्रिया ६५॥
धान्यकुप्यपशुस्तेयंमद्यपस्त्रीनिषेवणम्।स्त्रीशूद्रविट्क्षत्रवधोनास्तिक्यंचोपपातकम्६६

प० । गोवधः अयाज्यसंयाज्यपारदार्यात्मविक्रयाः गुरुमातृपितृत्यागः स्वाध्यायाग्न्योः सुतस्य च ॥
प० । परिवित्तिता अनुजे अनूढे परिवेदनं एवं च तयोः दानं च कन्यायाः तयोः एवं च याजनम् ॥
प० । कन्यायाः दूषणं च एवं वार्द्धुष्यं व्रतलोपनं तडागारामदाराणां अपत्यस्य च विक्रयः ॥
प० । व्रात्यता बांधवत्यागः भृत्याध्यापनं एवं च भृतात् च अध्ययनादानं अपण्यानां च विक्रयः ॥
प० । सर्वाकरेषु अधीकारः महायंत्रप्रवर्त्तनं हिंसा औषधीनां स्त्र्याजीवः अभिचारः मूलकर्म च ॥
प० । इंधनार्थं अशुष्काणां द्रुमाणां अवपातनं आत्मार्थं च क्रियारंभः निंदितान्नादनं तथा ॥
प० । अनाहिताग्निता स्तेयं ऋणानां अनपक्रिया असच्छास्त्राधिगमनं कौशीलव्यस्य च क्रिया ॥
प० । धान्यकुप्यपशुस्तेयं मद्यपस्त्रीनिषेवणं स्त्रीशूद्रविट्क्षत्रवधः नास्तिक्यं च उपपातकम् ॥

यो० । गोवधः अयाज्यसंयाज्यपारदार्यात्म विक्रयाः गुरु मातृ पितृ त्यागः स्वाध्या याग्न्योः चपुनः सुतस्यत्यागः अनुजे अनूढे सति परिवित्तिता चपुनः परिवेदनं चपुनः तयोः कन्यायाः दानं चपुनः तयोः एव याजनं कन्यायाः दूषणं वार्द्धुष्यं व्रतलोपनं तडागारामदाराणां चपुनः अपत्यस्यविक्रयः व्रात्यता बांधव त्यागः चपुनः भृत्याध्यापनं चपुनः भृतात् अध्ययनादानं चपुनः अपत्यानां विक्रयः सर्वाकरेषु अधिकारः महायन्त्रप्रवर्त्तनं औषधीनां हिंसा स्त्र्याजीवः अभिचारः मूलकर्म अशुष्काणां द्रुमाणां इंधनार्थं अवपातनं चपुनः आत्मार्थं क्रियारम्भः तथा निंदितान्नादनं अनाहिताग्निता स्तेयं ऋणानां अनपाक्रिया असच्छास्त्राधिगमनं चपुनः कौशीलव्यस्यक्रिया धान्यकुप्यपशुस्तेयं मद्यपस्त्री निषेवणं स्त्री शूद्र विट्क्षत्रवधः चपुनः नास्तिक्यं एतत् गोवधादि नास्तिक्यपर्य्यंतं उपपातकं भवति ॥

भा० । ता० । गौकावध और जाति वा कर्मसे दुष्ट जो यज्ञकराने के अयोग्य उनको यज्ञ कराना, और परस्त्रीगमन और अपने आत्माका विक्रय माता पिता गुरु इनका और स्वाध्याय और अग्नि-

होत्र इनका त्याग यहांपर स्वाध्याय पढ़ने ब्रह्मयज्ञ लेते हैं क्योंकि वेदके विस्मरणकात्याग ब्रह्मोज्झ- ता इस श्लोकसे कह आये हैं और अग्निपदसे स्मार्त अग्निलेते हैं क्योंकि श्रौत अग्नि का त्याग अग्निहोत्र्यपविद्धयाग्नीन् इस श्लोकसे कहआये हैं और सुतके त्यागसे उसका संस्कार और भ- रण पोषण का निषेधलेना बड़े भाईसे पहिले विवाह करनेवाला छोटा भाई परिवेत्ता होताहै बड़ा परिवित्ति होताहै—और ये (दोनों परिवित्तिता और परिवेदन) और इन दोनोंको कन्या देना और यज्ञकराना और कन्याको दूषितकरना अर्थात् अंगुलि प्रक्षेपसे दूषण लगाना और वृद्धि (व्याज) पर रुपया लगाना और व्रतको नष्टकरना अर्थात् ब्रह्मचर्य्य अवस्थामें मैथुनकरना और तलाव, आ- राम, (बाग) स्त्री, पुत्र इनका विक्रयकरना और यज्ञोपवीतके समयपर यज्ञोपवीत न होना और बन्धुओं (पितृव्यआदि) का त्याग अर्थात् उनकी आज्ञाकेअनुसार न चलना—भृतिलेकरपढ़ाना भृतिदेकर पढ़ना और विक्रयके योग्य तिलादिकोंको बेचना और सम्पूर्णआकरों (खान) में अधि- कारी होना और बड़े २ प्रवाहों के बंधनकरनेवाले यंत्रों (पुलआदि) की प्रवृत्तिकरना और ओष- धियों की हिंसा अर्थात् सामान्य जाति ओषधियोंको जानकर नष्टकरदेना और उत्तमजाति ओष- धियों की हिंसाका जो प्रायश्चित्त कहेंगे वह प्रायश्चित्तकी लघुताकेलियेहै और स्त्रियोंके व्यभिचार से और सेनादि यज्ञसे अपराधी को मारना और मूलकर्म (वशीकरण) और इंधनकेलिये विनासू- खे वृक्षोंको काटना और अपने भोजन के निमित्त पाकबनाना और निंदित (लशुनादि) अन्नका भक्षण और अग्निहोत्रका अग्रहण और चोरी और ऋणोंको न देना और श्रुति औरस्मृतिसे विरुद्ध शास्त्रोंकी शिक्षालेना नृत्यगीतवादित्र (बाजा) इनकीसेवा और अन्न, तांबा, लोहा, आदि पशु इनकी चोरीकरना और मदिरापनेवाली स्त्रीकासंगकरना स्त्री, शूद्र वैश्य और क्षत्री इनकावध नास्तिकता ये सब आठश्लोकोंमें कहेहुये गोवधआदि उपपातकहैं—इनमें बांधवत्याग इसपदसेही माताआदिकों का त्याग आजाता पृथक् वचन निंदाके लियेहै अर्थात् माताआदिके त्यागमें पितृव्यआदिके त्यागसे दोष और प्रायश्चित्त अधिक होतेहैं ५९।६०।६१।६२।६३।६४।६५।६६ ॥

ब्राह्मणस्यरुजःकृत्याघ्रातिरघ्रेयमद्ययोः । जैह्म्यंचमैथुनंपुंसिजातिभ्रंशकरंस्मृतम् ६७ ॥

प० । ब्राह्मणस्य रुजः कृत्या घ्रातिः अघ्रेयमद्ययोः जैह्म्यं च मैथुनं पुंसि जातिभ्रंशकरं स्मृतम् ॥

यो० । ब्राह्मणस्य रुजः कृत्या अघ्रेयमद्ययोः घ्रातिः जैह्म्यं चपुनः पुंसि मैथुनं एतत् सर्वं जातिभ्रंशकरं बुधैः स्मृतम् ॥

भा० । ता० । दण्ड हाथआदि से ब्राह्मणको पीडादेना और अत्यन्त दुर्गंधि लशुन वा पुरीषआदि का और मदिराका घ्राण (सूंघना) कुटिलता और पुरुष के संग मैथुन ये सम्पूर्ण ऋषियोंने जाति भ्रष्टकरनेवाले कहेहैं अर्थात् इनके करनेसे मनुष्यजातिसे पतित होजाताहै ६७ ॥

खराश्वोष्ट्रमृगेभानामजाविकवधस्तथा । संकरीकरणंज्ञेयंमीनाहिमाहिषस्यच ६८ ॥

प० । खराश्वोष्ट्रमृगेभानां अजाविकवधः तथा संकरीकरणं ज्ञेयं मीनाहिमहिषस्य च ॥

यो० । खराश्वोष्ट्रमृगेभानां वधः तथा अजाविकवधः चपुनः मीनाहिमहिषस्यवधः बुधैः संकरीकरणं ज्ञेयम् ॥

भा० । ता० । खर—घोड़ा—ऊंट—मृग इभ (हाथी) छाग मेष (मेढ़ा) मत्स्य सर्प महिष इनका वध संकरीकरण जानना अर्थात् इनके वधकरनेवाला वर्णसंकरहोजाताहै ६८ ॥

निन्दितेभ्योधनादानंवाणिज्यंशूद्रसेवनम् । अपात्रीकरणंज्ञेयमसत्यस्यचभाषणम् ६९

प० । निंदितेभ्यः धनादानं वाणिज्यं शूद्रसेवनं अपात्रीकरणं ज्ञेयं असत्यस्य च भाषणम् ॥

यो० । निंदितेभ्यः धनादानं—वाणिज्यं शूद्रसेवनं—चपुनः असत्यस्यभाषणं एतत् सर्वं बुधैः अपात्रीकरणं ज्ञेयम् ॥

भा० । ता० । निंदितों (जिनसे धनलेनानिषिद्धहै) से प्रतिग्रहलेना वाणिज्य (व्यापारकरना) शूद्रकीसेवा और मिथ्याबोलना ये सम्पूर्ण पंडितजनों को अपात्रिकरण जानने अर्थात् इनका करने वाला प्रतिग्रह देनेके योग्य नहींरहता ६९ ॥

कृमिकीटवयोहत्यामद्यानुगतभोजनम् । फलैधःकुसुमस्तेयमधैर्यंचमलावहम् ७० ॥

प० । कृमिकीटवयोहत्या मद्यानुगतभोजनं फलैधः कुसुमस्तेयं अधैर्यं च मलावहम् ॥

यो० । कृमिकीटवयोहत्या मद्यानुगतभोजनं फलैधः कुसुमस्तेयं चपुनः अधैर्यं एतत् सर्वं प्रत्येकंमलावहं ज्ञेयम् ॥

भा० । क्षुद्रजीव, कीट, पक्षी, इनकीहत्या मदिरा के संग लायेहुये पदार्थका भोजन फल इंधन फूल इनकी चोरी और अधीरताये सम्पूर्ण मलिनीकरणजानने ॥

ता० । कृमि (छोटे २ जीव) कीट (कृमियोंसे कुछबड़े) पक्षी इनकीहत्या और मद्यानुगतभोजन अर्थात् जो शाक और पाकआदि भोजनकरने योग्य भी उसपात्र में रखकर लायागयाहो जिस में मदिरा भी रक्खीगईहो उसका भोजन इसपदका मेधातिथि ने तो यहअर्थ किया है कि जिसके संग मदिराका स्पर्शहुआहो सो ठीकनहीं क्योंकि उसके भोजनकरनेमें तो अधिक प्रायश्चित्त होताहै और फल इंधन फूल इनकीचोरी और अधैर्य अर्थात् यत्किंचित् धनआदिकी हानिहोनेपरभी अत्यंत व्याकुलहोना ये सम्पूर्ण प्रत्येक मलावह (मलिनीकरण) पंडितजनों ने कहे हैं अर्थात् इनके करने से निर्मल भी मलीन होजाता है ७० ॥

एतान्येनांसिसर्वाणियथोक्तानिपृथक्पृथक् । यैर्यैर्व्रतैरपोह्यन्तेतानिसम्यङ्निबोधत ७१ ॥

प० । एतानि एनांसि सर्वाणि यथोक्तानि पृथक् पृथक् यैः यैः व्रतैः अपोह्यंते तानि सम्यक् निबोधत ॥

यो० । यथोक्तानि एतानि सर्वाणि पृथक् २ एनांसि यैः यैः व्रतैः अपोह्यंते तानि व्रतानि यूयं सम्यक् निबोधत ॥

भा० । ता० । भिन्न भिन्न वर्णन कियेहुये ये सम्पूर्ण ब्रह्महत्याआदि पाप जिन २ व्रतोंसे दूरकिये जातेहैं उन उन व्रतों (प्रायश्चित्त) को यथार्थ रीतिसे तुमसुनो ७१ ॥

ब्रह्महाद्वादशसमाःकुटींकृत्वावनेवसेत् । भैक्षाश्यात्मविशुद्ध्यर्थंकृत्वाशवशिरोध्वजम् ७२

प० । ब्रह्महा द्वादशसमाः कुटीं कृत्वा वने वसेत् भैक्षाशी आत्मविशुद्ध्यर्थं कृत्वा शवशिरोध्वजम् ॥

यो० । ब्रह्महा भैक्षाशी सन् शवशिरोध्वजं कृत्वा कुटीं कृत्वा आत्मविशुद्ध्यर्थं द्वादशसमाः वनेवसेत् ॥

भा० । ब्रह्महत्यारा कुटीबनाकर १२ वर्ष पर्यंत वनमें वसै और अपनी शुद्धिके लिये भिक्षा का भोजन करै और शवके शिरके चिह्नको धारण करै ॥

ता० । ब्राह्मणकी हत्याकरनेवाला ब्राह्मण वनमें कुटीको बनाकर और शव (मुर्दा) के शिर (कपाल) का अथवा किसी अन्यके कपाल का चिह्न धारणकरके भिक्षाके अन्नका भोजनकरता

हुआ अपनेपापकी शुद्धिकेलिये द्वादशवर्ष पर्यंत वनमें वसै और इसवचनके अनुसार केशोंकामुंडन कराकर वसै और भिक्षा भी इनयमके वचनानुसार इसप्रकार ग्रहणकरै कि नहीं निश्चय कियेहुये अर्थात् प्रतिदिन नये २ अपूर्व सातघरोंमें उससमय शनैः २ प्रवेशकरै जिससमय घरके मनुष्य भोजन करचुकेहों और अपने पापको प्रकटकरके विचरै और यहकहै कि मैं ब्रह्महत्याराहूं मुझे भिक्षा दो और उस भिक्षाको भी एकही समय मांगे यदि भिक्षा न मिलै तो जलकाही पानकरले और यह बारह १२ वर्षका प्रायश्चित्त ब्राह्मणका वधकरनेमेंहै क्योंकि आगे मनुजी इसवचनसे यहकहैंगे कि यह प्रायश्चित्त अज्ञानसे ब्राह्मणको ब्राह्मण के मारनेपरकहा और क्षत्री, वैश्य, शूद्रोंको तो क्रम से द्विगुण–त्रिगुण और चतुर्गुण प्रायश्चित्त करना इसै भविष्यपुराण के वचनानुसार होताहै कि क्षत्रियों के ब्राह्मणसे दूने वैश्यके तिगुने और शूद्रोंको चौगुने प्रायश्चित्त होते हैं और वे प्रायश्चित्त महात्माओंकी सभाके कहनेसे करने क्योंकि पापकर्मोंकी शुद्धिके लिये सभाका कहाहुआ व्रत होता है–और सभा भी जितने ब्राह्मणों की होती है उससे दूने क्षत्रियोंकी तिगुने वैश्यों की व्यवहार देखनेके लिये होती है और क्षत्री–वैश्य–शूद्र इनका व्रत भी ब्राह्मणसे दूना तिगुना चौगुना होताहै–और मनुके कहेहुये ये प्रायश्चित्त भी वहां ही समझने जहां गुणवान् ब्राह्मणने निर्गुण को हताहो क्योंकि इसै वचनों से यह वर्णन किया है कि यदि गुणवाले शूरवीर ब्राह्मणने निर्गुण ब्राह्मणको अज्ञानसे हताहो तो अश्वमेधके स्नानको करिकै मनुके कहेहुये प्रायश्चित्तोंको करै और ब्रह्महत्यारा बारह १२ वर्षतक कुटी बनाकर वनमें वसै अथवा अश्वमेधके अवभृथ (यज्ञान्त स्नान) को करै–यदि अज्ञानसे निर्गुणका वध कियाहो–यदि जानकर ब्रह्म वध कियाहो तो जाति–शक्ति–गुण–इनके अनुसार और पाप के संबन्धके अनुकूल प्रायश्चित्त करै क्योंकि इसै विश्वामित्रके वचनसे अधिक प्रायश्चित्त भी कहा है–यदि जानकर ब्राह्मण का वध ब्राह्मणने कियाहोय तो इसै अंगिरा ऋषिके वचनानुसार पूर्वोक्तरीतिसे चौबीस वर्षतक वनमें वसै कि अज्ञानसे कियेहुये पापका प्रायश्चित्त है और ज्ञानसे कियेहुये पापका प्रायश्चित्त नहीं और अज्ञान से कियेहुये पापका जो प्रायश्चित्त है ज्ञानसे किये पापका उससे दूना प्रायश्चित्त होताहै ७२ ॥

लक्ष्यंशस्त्रभृतांवास्याद्विदुषामिच्छयात्मनः।प्रास्येदात्मानमग्नौवासमिद्धेत्रिरवाक्शिराः ७३

प० । लक्ष्यं शस्त्रभृतां वा स्यात् विदुषां इच्छया आत्मनः प्रास्येत् आत्मानं अग्नौ वा समिद्धे त्रिः अवाक्शिराः ॥

---

१ कृतवपनोनिवसेत् ॥

२ सप्तागाराण्यपूर्वाणि यान्यसंकल्पितानिच। संविशंस्तानिशनकैर्विधूमेभुक्तवज्जने ॥ भ्रूणघ्नेदेहिमेभिक्षामेनोविख्याप्य संचरेत् । एककालंचरेद्भैक्ष्यंतदलब्धोदकंपिबेत् ॥

३ इयंविशुद्धिरुदिता प्रमाप्याकामतोद्विजम् ॥

४ द्विगुणाःक्षत्रियाणांतु वैश्यानांत्रिगुणाःस्मृतः । चतुर्गुणास्तुशूद्राणांपर्षदुक्तामहात्मनाम्॥पर्षदुच्यव्रतंप्रोक्तं शुद्ध्येपाप कर्मणाम् ॥

५ हताचेत्गुणवान्वीरःअकामान्निर्गुणोहतः । कर्त्तव्यानिमनूक्तानिकृत्वावैआश्वमेधिकम् ॥ ब्रह्महाद्वादशाब्दानिकुटीं कृत्वावनेवसेत् । गच्छेदवभृथंवापिअकामान्निर्गुणेहते ॥

६ जातिशक्तिगुणापेक्षं सकृद्बुद्धिकृतंतथा । अनुबंधादिविज्ञायप्रायश्चित्तंप्रकल्पयेत् ॥

७ अकामतःकृतेपापेप्रायश्चित्तंनकामतः ।स्यात्त्वकामकृतेयत्तुद्विगुणंबुद्धिपूर्वके ॥

यो० । आत्मनः इच्छया विदुषां शस्त्रभृतांलक्ष्यं स्यात् वा समिद्धे अग्नौ अवाक्शिराः सन् त्रिः (त्रिवारं) आत्मानं प्रास्येत् (प्रक्षिपेत्) ॥

भा० । ब्राह्मणकी हत्याकरनेवाला क्षत्री अपनी इच्छासे जाननेवाले शस्त्रधारियों का लक्ष्यहोजाय—अथवा जलतीहुई अग्निमें नीचेको शिरकरिके अपने देहकोगेरिदे ॥

ता० । ब्रह्महत्यारा जाननेवाले शस्त्रधारियों का लक्ष्य (निशाना) अपनी इच्छासे बनै अर्थात् धनुषवाण धारणकरनेवाले जिसको ऐसे जानतेहों कि यहब्राह्मण वधके प्रायश्चित्तार्थ हमारे वाणों का लक्ष्य (निशाना) हुआहै और उसकी शुद्धि इस[1] याज्ञवल्क्य के वचनानुसार तभीहोतीहै जब वह मरजाय अथवा मरनेके तुल्य होजाय कि लक्ष्य बनिकर संग्राममें मरकर शुद्धहोताहै अथवा वाणों के प्रहारसे मृतकके समान दुःखीहुआ जीवताभी शुद्धहोताहै—अथवा प्रज्वलित अग्निमें नीचेकोमुख करके तीनवार इस[2]आपस्तम्बके वचनानुसार शरीरकोडालदे जैसे मृत्युकोप्राप्तहोजाय ये दोनों और इनसे आगे अश्वमेधयज्ञका प्रायश्चित्त उसक्षत्री के लियेहै जिसने जानकर ब्राह्मणका वधकियाहो क्योंकि मनुके इसीवचनको लिखकर भविष्यपुराण में इन[3] वचनोंसे यहकहाहै कि ब्राह्मणके मारने वाला क्षत्री अश्वमेध यज्ञकरै वा अपनी इच्छासे शस्त्रधारियोंका लक्ष्य होजाय अथवा जलतीहुई अग्निमें अपनी देहको तीनवार गेरदे ये तीनों प्रायश्चित्त क्षत्रीके कहे हैं कि निर्गुण क्षत्री वेदके पारगामी धीर ब्राह्मणको इच्छासे हतकर शस्त्रधारी शूरवीरों का लक्ष्य होजाय अथवा चार वेद का ज्ञाता—धीर—अग्निहोत्री—ब्राह्मणको इच्छासे हतकर नीचेको शिरकर कर अपने देहको अग्नि में गेरदे—और गुणवाला और भूपति क्षत्री निर्गुण ब्राह्मणको इच्छासे मारकर अश्वमेध यज्ञ करने से शुद्ध होताहै ७३ ॥

यजेतवाश्वमेधेनस्वर्जितागोसवेनवा। अभिजिद्विश्वजिद्भ्यांवात्रिवृताग्निष्टुतापिवा ७४ ॥

प० । यजेत वा अश्वमेधेन स्वर्जिता गोसवेन वा अभिजिद्विश्वजिद्भ्यां वा त्रिवृता अग्निष्टुता अपि वा ॥

यो० । वा, अश्वमेधेन, स्वर्जिता,—वा गोसवेन, अभिजिद्विश्वजिद्भ्यां, वा त्रिवृता, अग्निष्टुता, यजेत ॥

भा० । अज्ञानसे ब्राह्मणका मारनेवाला क्षत्री अश्वमेध यज्ञकरै वा स्वर्जित वा गोसव वा अभिजित् वा विश्वजित् वा तीनवार अग्निष्टोम यज्ञकरै ॥

ता० । अथवा पूर्वोक्त क्षत्री अश्वमेध, स्वर्जित, अथवा गोसव, अथवा अभिजित्, अथवा तीनवार अग्निष्टोम यज्ञको करै ये अज्ञानसे ब्राह्मणके वधके ही प्रायश्चित्त हैं और तीनों वर्णोंमें भविष्यपुराणके इस[4] वचनानुसार इनका विकल्प है—कि अज्ञानपूर्वक ब्राह्मणका वध होनेपर तीनोंद्विजाति स्वर्जित आदि यज्ञोंको करैं ७४ ॥

---

१ संग्रामेवाहतोलक्ष्यभूतःशुद्धिमवाप्नुयात् । मृतकल्पःप्रहारार्तो जीवन्नपिविशुद्ध्यति ॥

२ तथा प्रास्येत यथाम्रियेत ॥

३ लक्ष्यंशस्त्रभृतांवास्याद्विदुषामिच्छयात्मनः । प्रास्येदात्मानमग्नौवासमिद्धेत्रिरवाक्शिराः ।यजेतवाश्वमेधेन क्षत्रियोविप्रघातकः । प्रायश्चित्तत्रयंह्येतत्क्षत्रियस्यप्रकीर्तितम् २ क्षत्रियोनिर्गुणोधीरंब्राह्मणंवेदपारगम् । निहत्यकामतोवीरःलक्ष्यःशस्त्रभृतोभवेत् । चतुर्वेदविदंधीरंब्राह्मणंचाग्निहोत्रिणम् । निहत्यकामादात्मानंक्षिपेदग्नाववाक्शिराः ॥ निर्गुणंब्राह्मणंहत्वाकामतो गुणवान्नृप । यष्टव्याश्वमेधेनक्षत्रियोयोमहीपतिः ॥

४ स्वर्जितादेश्चयद्वीरकर्मणापृतनापते । अनुष्ठानंद्विजातीनांवधेब्रह्मणःपूर्वके ॥

जपन्वान्यतमंवेदंयोजनानांशतंव्रजेत् । ब्रह्महत्यापनोदायमितभुङ्नियतेन्द्रियः ७५ ॥

प० । जपन् वा अन्यतमं वेदं योजनानां शतं व्रजेत् ब्रह्महत्यापनोदाय मितभुक् नियतेन्द्रियः ॥

यो० । वा मितभुक् नियतेंद्रियः ब्रह्महत्यापनोदाय अन्यतमं वेदंजपन् सन् योजनानां शतं व्रजेत् ॥

भा० । अथवा कोई से वेदको जपताहुआ और अल्प भोजन और इंद्रियोंको वशमें करके ब्रह्म-हत्या दूर करनेके लिये सौ योजन तक गमन करै ॥

ता० । अल्प आहार करताहुआ इंद्रियोंको वशमें करके चारों वेदोंमें किसी एक वेदको जपता हुआ ब्रह्महत्याको दूरकर सौ १०० योजन तक गमन करै—यह प्रायश्चित्त भी अज्ञानसे जातिमात्र ब्राह्मणके मारने पर तीनों वर्णों के लिये साधारण है क्योंकि भविष्यपुराण में यही श्लोकमें पढ़ा है और इस प्रकार अर्थ लिखा है—कि वेदकाज्ञाता और अग्निहोत्री द्विजाति यदि जातिमात्र ब्राह्मण का अज्ञानसे वधकरदे तो यही प्रायश्चित्त करै जो इस श्लोक में कहा है ७५ ॥

सर्वस्वंवेदविदुषेब्राह्मणायोपपादयेत् । धनंवाजीवनायालंगृहंवासपरिच्छदम् ७६ ॥

प० । सर्वस्वं वेदविदुषे ब्राह्मणाय उपपादयेत् धनं वा जीवनाय अलं गृहं वा सपरिच्छदम् ॥

यो० । अथवा—वेदविदुषे ब्राह्मणाय सर्वस्वं वा जीवनाय अलं धनं वा सपरिच्छदं गृहं उपपादयेत् ॥

भा० । वेदके जाननेवाले ब्राह्मणको सर्वस्वदानदे अथवा जीवने योग्य धन वा अन्न आदि सा-मग्री सहित घरको दे ॥

ता० । वेदके ज्ञाता ब्राह्मणको सर्वस्वदे अथवा ब्राह्मणके जीवन योग्य धनको अथवा सामग्री सहित गृहको दे अर्थात् धन, अन्न, ईंधन आदि से पूर्ण ऐसे गृहको दे जो ब्राह्मणके जीवन पर्यंत पर्याप्तहो और उससे अल्प न दे यह प्रायश्चित्त उस ब्राह्मणके लिये है जिसने जातिमात्र ब्राह्मणका वध किया हो क्योंकि भविष्यपुराण में इन वचनों से यह कहा है कि हे गुरु जो ब्राह्मण वेदके अ-भ्याससे हीन और धनवान् अग्निहोत्रसे रहित होकर जातिमात्र ब्राह्मणका वध करिदे तो पाप की शुद्धिके लिये यह प्रायश्चित्त करे कि ब्राह्मणको जन्मभरि के लिये सर्वस्व अथवा जीवन योग्य धन अथवा अन्न ईंधनसे पूर्ण घर दानकरिदे ७६ ॥

हविष्यभुग्वाऽनुसरेत्प्रतिस्रोतःसरस्वतीम् । जपेद्वानियताहारस्त्रिर्वैवेदस्यसंहिताम् ७७

प० । हविष्यभुक् वा अनुसरेत् प्रतिस्रोतः सरस्वतीं जपेत् वा नियताहारः त्रिः वै वेदस्य संहिताम्

यो० । अथवा हविष्यभुक् सरस्वतीं प्रतिस्रोतः अनुसरेत् वा नियताहारः सन् वेदस्यसंहितां त्रिःजपेत् ॥

भा० । नीवारआदि हविष्यको खाताहुआ सरस्वतीके तीर २ गमनकरै अथवा परिमित भोजन करताहुआ तीनवार वेदकी संहिताको जपे ॥

ता० । अथवा नीवारआदि हविष्य का भक्षण करताहुआ सरस्वती के तीर तीर अर्थात् पश्चिम से लेकर पूर्वतक जहां जहां सरस्वती बहतीहो वहां वहां गमनकरै—यह प्रायश्चित्त भी उसके लिये

---

१ जातिमात्रंयदाविप्रंहन्यादमतिपूर्वकम् । वेदविद्याग्निहोत्रीचतदातस्यभवेदिदम् ॥

२ जातिमात्रंयदाहन्याद्ब्राह्मणंब्राह्मणोगुरु । वेदाभ्यासविहीनोवैधनवाननग्निवर्जितः । प्रायश्चित्तंतदाकुर्यात्इदंपापविशु-द्धये । धनंवाजीवनायालंगृहंवासपरिच्छदम् ॥

है जो जानकर जातिमात्र ब्राह्मण का वधकरै क्योंकि भविष्यपुराण में इनै वचनोंसे यहकहाहै कि हे देवेन्द्र जानकर जातिमात्र ब्राह्मण के मारनेपर जो मारनेवाला वेदसेहीन और धनीहो तब इस प्रायश्चित्त को करै कि हविष्यका भोजनकरताहुआ सरस्वती के तीर २ पर गमनकरै अथवा परिमित भोजनकरताहुआ तीनवार वेदकी संहिताकोपढ़े अथवा ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, इनको वह पढ़े जिसने अत्यन्त गुणी ब्राह्मणका जानकर वधकियाहो ७७ ॥

कृतवापनोनिवसेद्ग्रामान्तेगोव्रजेऽपिवा । आश्रमेवृक्षमूलेवागोब्राह्मणहितेरतः ७८॥

प० । कृतवापनः निवसेत् ग्रामांते गोव्रजे अपि वा आश्रमे वृक्षमूले वा गोब्राह्मणहितेरतः ॥

यो० । अथवा कृतवापनः सन् ग्रामांते वा गोव्रजे आश्रमे वा वृक्षमूले गोब्राह्मणहितेरतः (सन्) निवसेत् ॥

भा० । मुंडनकराकर गौ, और ब्राह्मणका उपकार करताहुआ ग्रामके समीप, गोशाला, आश्रम, वा वृक्षके मूल (नीचे) विषे वसै ॥

ता० । अब उसके लिये विशेष प्रायश्चित्त कहते हैं जिस द्वादशवर्ष के प्रायश्चित्तवाले को इसै वचनसे यहकहाहै कि बारहवर्ष की समाप्ति होनेपर यही कहाहै कि केश, नख, श्मश्रु, इनकामुंडन कराकर गौ और ब्राह्मणके हितमें रत अर्थात् इनका उपकारकरताहुआ ग्रामकेसमीपमें अथवा गोशाला अथवा पवित्रदेश अथवा वृक्षकेमूलमें वसै ७८ ॥

ब्राह्मणार्थेगवार्थेवासद्यःप्राणान्परित्यजेत्।मुच्यतेब्रह्महत्यायागोप्तागोर्ब्राह्मणस्यच ७९

प० । ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा सद्यः प्राणान् परित्यजेत् मुच्यते ब्रह्महत्यायाः गोप्ता गोब्राह्मणस्य च ॥

यो० । यः ब्राह्मणार्थे वा गवार्थे प्राणान् परित्यजेत् सः चपुनः गोब्राह्मणस्य गोप्ता ब्रह्महत्यायाः सकाशात् मुच्यते ॥

भा० । ता० । जो ब्रह्महत्यारा अग्नि, जल, वा किसीहिंसक से ब्राह्मण और गौकी रक्षाके लिये शीघ्रही प्राणोंकोत्यागै वह ब्रह्महत्याके पापसे छूटताहै ७९ ॥

त्रिवारंप्रतिरोद्धावासर्वस्वमवजित्यवा।विप्रस्यतन्निमित्तेवाप्राणालाभेविमुच्यते ८०॥

प० । त्रिवारं प्रतिरोद्धा वा सर्वस्वं अवजित्य वा विप्रस्य तन्निमित्ते वा प्राणालाभे विमुच्यते ॥

यो० । विप्रस्य सर्वस्वं त्रिवारं प्रतिरोद्धा वा अवजित्य वा तन्निमित्ते प्राणालाभे सति ब्रह्महत्यापापात् मुच्यते ॥

भा० । ब्राह्मणके सर्वस्वको तीनवार रोकनेवाला वा जीतनेवाला अथवा उसके निमित्त प्राणों का त्यागनेवाला मनुष्य ब्रह्महत्याके पापसे छूटताहै ॥

ता० । यदि चौरआदि ब्राह्मणके सर्वस्वको हरिकरलेजातेहों उसके लौटानेकेलिये विना व्याज जो यथाशक्ति यत्नकोकरै और वहां तीनवार युद्धकोकरता सर्वस्व के विना लौटाये भी ब्रह्महत्या के पापसे छूटताहै अथवा प्रथमवारही उक्त ब्राह्मणके हरेहुये सर्वस्वको जो जीतिकर अर्प्पणकरिदे

---

१ जातिमात्रेहतेविप्रेदेवेंद्रमतिपूर्वकम्।हंतायदावेदहीनोधनेनचभवेद्धतः॥तदैतत्कल्पयेत्तस्यप्रायश्चित्तंनिबोधमे । हविष्यभुक्चरेद्वापिप्रतिस्रोतःसरस्वतीम् ॥अथवापरिमिताहारस्त्रीन्वारान्वेदसंहिताम् । जातिमात्रंतुयोहन्याद्विप्रंत्वमतिपूर्वकम् । ब्राह्मणोत्यन्तगुणवान्तेनेदंपरिकल्पयेत् । जपेद्वानियताहारस्त्रिर्वेदस्यसंहिताम् । ऋचोयजूंषिसामानित्रैविद्याख्यंसुरोत्तम ॥

२ समाप्तेद्वादशवर्षे—

वहभी ब्रह्महत्या के पापसे छुटता है—अथवा धनके हरनेवाला चोर यदि पश्चात्तापसे ब्राह्मण की तृप्तिकेलिये अपने मरने में प्रवृत्तहो अथवा किसीदायादसे हरेहुये ब्राह्मणके धनकोदिलाकर ब्राह्मण के जीवनमें प्रवृत्तहो और उससमय उसके प्राणोंका लाभ न भी होय अर्थात् मरभीजाय तोभी ब्रह्महत्याके पापसे छुटताहै ८० ॥

एवंदृढव्रतोनित्यंब्रह्मचारीसमाहितः । समाप्तेद्वादशेवर्षेब्रह्महत्यांव्यपोहति ८१ ॥

प० । एवं दृढव्रतः नित्यं ब्रह्मचारी समाहितः समाप्ते द्वादशे वर्षे ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥

यो० । एवंनित्यंदृढव्रतः ब्रह्मचारी समाहितः पुरुषः द्वादशे वर्षे समाप्ते सति ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥

भा० । ता० ।इसप्रकार प्रतिदिन दृढहै संकल्पजिसका और ब्रह्मचारी अर्थात् स्त्रीकेसंगसे रहित और संयत (वशीभूत) है मन जिसका ऐसामनुष्य बारहवर्ष की समाप्ति होनेपर ब्रह्महत्या को दूर करताहै ८१ ॥

शिष्ट्वावाभूमिदेवानांनरदेवसमागमे । स्वमेनोऽवभृथस्नातोहयमेधेविमुच्यते ८२ ॥

प० । शिष्ट्वा वा भूमिदेवानां नरदेवसमागमे स्वं एनः अवभृथस्नातः हयमेधे विमुच्यते ॥

यो० । वा नरदेवसमागमे स्वंएनः भूमिदेवानां शिष्ट्वाहयमेधे अवभृथस्नातः ब्रह्महत्यायाः विमुच्यते ॥

भा० । अश्वमेधयज्ञके विषे ब्राह्मण और राजाओं के समागम में अपने पापको निवेदनकरने के अनन्तर अवभृथ स्नानसे ब्रह्महत्यारा शुद्धहोताहै ॥

ता० । अश्वमेधयज्ञ में ब्राह्मण और राजाओंके समागम में अपनेपापको निवेदन करने के अनन्तर अवभृथस्नानकरनेसे ब्रह्महत्या से छूटताहै—क्योंकि भविष्यपुराणमें इसवचनसे यहकहाहै कि जो गुणवान् ब्राह्मण निर्गुणब्राह्मण का वध अज्ञानसे करिके अश्वमेधके अवभृथस्नानकोकरै ८२ ॥

धर्मस्यब्राह्मणोमूलमग्रंराजन्यउच्यते।तस्मात्समागमेतेषामेनोविख्याप्यशुद्ध्यति ८३

प० । धर्मस्य ब्राह्मणः मूलं अग्रं राजन्यः उच्यते तस्मात् समागमे तेषां एनः विख्याप्य शुद्ध्यति ॥

यो० । ब्राह्मणः धर्मस्य मूलं राजन्यः अग्रं (मन्वादिभिः उच्यते) तस्मात् तेषां समागमे (अश्वमेधे) एनः विख्याप्य शुद्ध्यति ॥

भा० । ता० । क्योंकि ब्राह्मण धर्म का कारण होताहै और ब्राह्मणके उपदेश किये धर्म के करने व करानेसे क्षत्री धर्मका अग्र होताहै—तिससे ब्राह्मण और क्षत्री से मूलसे अग्र पर्यंत धर्म वृक्षकी निष्पत्ति होतीहै इससे ब्राह्मण, क्षत्रियोंका है समागम जिसमें ऐसे अश्वमेध यज्ञमें अपने पाप के निवेदन करने के अनंतर अवभृथ स्नान करने से ब्रह्महत्यारा शुद्ध होताहै ८३ ॥

ब्राह्मणःसंभवेनैवदेवानामपिदैवतम् । प्रमाणंचैवलोकस्यब्रह्मात्रैवहिकारणम् ८४ ॥

प० । ब्राह्मणः संभवेन एव देवानां अपि दैवतं प्रमाणं च एव लोकस्य ब्रह्म अत्र एव हि कारणम् ॥

यो० । ब्राह्मणः संभवेन एव देवानां अपि दैवतं चपुनः लोकस्य प्रमाणं (अस्ति) हि (यतः) ब्रह्म (वेद) एव अत्रकारणं अस्तीत्यर्थः ॥

---

१ यदातुगुणवान्विप्रोहत्वाविप्रंतुनिर्गुणम् । अकामतस्तदागच्छेत्स्नानंचैवाश्वमेधिकम् ॥

भा० । ता० । ब्राह्मण उत्पत्तिसेही देवताओं का दैवत (पूज्य) होताहै और मनुष्योंका तो अवश्यही पूज्यहोताहै और सम्पूर्ण मनुष्योंको उसका उपदेश प्रमाणहोताहै—इससे सबको प्रमाणहोता है—और उसके उपदेशमें वेदमूलहोनेसे वेदही कारण होताहै ८४ ॥

तेषांवेदविदोब्रूयुस्त्रयोऽप्येनःसुनिष्कृतिम्॥सातेषांपावनायस्मात्पवित्राविदुषांहिवाक्॥८५॥

प० । तेषां वेदविदः ब्रूयुः त्रयः अपि एनःसुनिष्कृतिं सा तेषां पावना यस्मात् पवित्रा विदुषां हि वाक् ॥

यो० । तेषां (ब्राह्मणानां) मध्ये त्रयः वेदविदः एनः सुनिष्कृतिं ब्रूयुः यस्मात् विदुषांवाक् पवित्रा अस्ति सा तेषां वाक् पावना अस्ति ॥

भा० । ता० । तिनब्राह्मणोंके मध्यमें वेदकेज्ञाता तीनब्राह्मण पापके प्रायश्चित्तका उपदेशकरें—क्योंकि विद्वान् ब्राह्मणों की वाणी पवित्रहोतीहै इससे वहवाणी पापियोंको पवित्रकरनेवाली होती है तिससे प्रकट प्रायश्चित्त के लिये विद्वानों की सभाको राजा अवश्यकरै और एकांतके प्रायश्चित्तमें सभाकी आवश्यकता नहीं ८५ ॥

अतोऽन्यतममास्थायविधिंविप्रःसमाहितः । ब्रह्महत्याकृतंपापंव्यपोहत्यात्मवत्तया॥८६॥

प० । अतः अन्यतमं आस्थाय विधिं[2] विप्रः समाहितः ब्रह्महत्याकृतं पापं व्यपोहति आत्मवत्तया[3]

यो० । समाहितः विप्रः अतः (अस्मात् प्रायश्चित्तगणात्) अन्यतमं विधिं आस्थाय (कृत्वा) आत्मवत्तया ब्रह्महत्याकृतं पापं व्यपोहति ॥

भा० । ब्राह्मण सावधानहोकर इनपूर्वोक्त प्रायश्चित्तोंमेंसे किसीएक प्रायश्चित्तकी विधिकोकरिके और आत्मविचारमें मनको रखकर ब्रह्महत्या से पैदाहुये पापको नष्टकरताहै ॥

ता० । सावधान होकर ब्राह्मण इनपूर्वोक्त प्रायश्चित्तों में से किसीएक प्रायश्चित्त को करके और आत्मज्ञानी होकर ब्रह्महत्यासे पैदाहुये पापको दूरकरताहै—और यह ब्रह्मवधके प्रायश्चित्त की विधि एकवार पापकरनेपर है—और यदि पापकी पुनः आवृत्तिहोय तो प्रायश्चित्तकी भी आवृत्ति समझनी क्योंकि गौतमऋषिने इस वचनसे यहकहाहै कि गुरु पाप की निवृत्ति गुरु (अधिक) प्रायश्चित्तोंसे होतीहै और लघुप्रायश्चित्तों की निवृत्ति लघुप्रायश्चित्तसे होतीहै—और यदि अस्थि से हीन मारेहुये जीवोंसे शकट पूर्णहोजाय तो शूद्रहत्याका प्रायश्चित्त करै—इस वचनसे मनुजी आगे प्रायश्चित्त की अधिकता कहेंगे—और गौतमऋषिने इस वचनसे यहकहाहै कि पहिले प्रायश्चित्तकीविधिसे दूसरे में दूनी और तीसरेमें तिगुनी कहीहै और यदिगृहमें अग्निलगने से अनेक ब्राह्मणों की हत्याहोजाय तो इनवचनोंसे भविष्यपुराण में कहेहुये प्रायश्चित्तको करै कि यदि एकब्राह्मण एकब्राह्मणको वा दोब्राह्मण अनेक ब्राह्मणों को एकवार अज्ञानसे नष्टकरिदें तो एकही ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्तकरै और

---

१ एनसिगुरूणिगुरूणिलघुनिलघूनि ॥

२ पूर्णेचानस्थनस्थ्नांतशूद्रहत्याव्रतंचरेत् ॥

३ विधेःप्राथमिकादस्मात् द्वितीयेद्विगुणंस्मृतम् । तृतीयेत्रिगुणंप्रोक्तं ॥

४ ब्राह्मणोब्राह्मणंवीरब्राह्मणौवाबहूनगुह । निहत्ययुगपत्वीरएकंमाणान्तिकंचरेत्॥कामतस्तुयदाहन्यात्ब्राह्मणान्सुरसत्तम । तदात्मानंदहेत्अग्नौविधिनायेनतच्छृणु ॥ अकामतःयदाहन्यात्ब्राह्मणान्ब्राह्मणोगुह । चरेद्व्रतंतथाघोरंयावत्माणपरिक्षयम् ॥

यदि जानकरि अनेक ब्राह्मणोंको नष्टकरिदे तो अपनेदेहको अग्निमें दग्धकरिदे—और अज्ञानसे जो ब्राह्मण अनेक ब्राह्मणों का एकवार वधकरै तो घोरवनमें तबतक विचरे जबतक प्राणों का क्षयहो—और यदि क्रमसे अनेक ब्राह्मणोंकीहत्याकरै तो दूसरेमेंदूना और तीसरेमें तिगुनाप्रायश्चित्तकरे८६॥

हत्वागर्भमविज्ञातमेतदेवव्रतंचरेत् । राजन्यवैश्यौचेजानावात्रेयीमेवचास्त्रियम् ८७ ॥

प० । हत्वा गर्भं अविज्ञातं एतत् एवं व्रतं चरेत् राजन्यवैश्यौ च ईजानौ आत्रेयीं एवं च स्त्रियम् ॥

यो० । अविज्ञातं गर्भं चपुनः ईजानौ राजन्यवैश्यौ चपुनः आत्रेयीं एव स्त्रियं हत्वा एतत् एव व्रतंचरेत् ॥

भा० । अज्ञात गर्भको और यज्ञकरतेहुये क्षत्री और वैश्यको और आत्रेयी स्त्रीको हतकर यही ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त करै ॥

ता० । स्त्री, वा पुरुषस्वभावसे नहींजानेहुये ब्राह्मणके गर्भको और यज्ञकरतेहुये क्षत्री और वैश्यको और आत्रेयी (ऋतुवाली) स्त्रीको हतकरि ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्तकरै इसश्लोकमें आत्रेयीपदसे ब्राह्मणी का ग्रहण इस[1] यमराज के वचनसे है और आत्रेयीपदसे इस[2] वसिष्ठवचन के अनुसार वह रजस्वला स्त्री लेते हैं जिसने ऋतुकालका स्नानकियाहो और आत्रेयी से भिन्न ब्राह्मणी के वधमें तीनवर्षका उपपातक होताहै—और अगिले श्लोकमें जो स्त्रीवधका प्रायश्चित्तकहाहै वह अग्निहोत्री ब्राह्मणकी भार्या के विषय समझना क्योंकि अंगिराऋषि ने इस[3] वचनसे यह कहाहै कि अग्निहोत्री ब्राह्मणकी पतिव्रता स्त्रीको और आत्रेयी स्त्रीको हतकर ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त करै ८७ ॥

उक्त्वाचैवानृतंसाक्ष्येप्रतिरुध्यगुरुंतथा । अपहृत्यचनिःक्षेपंकृत्वाचस्त्रीसुहृद्वधम् ८८॥

प० । उक्त्वा च एवं अनृतं साक्ष्ये प्रतिरुध्य गुरुं तथा अपहृत्य च निःक्षेपं कृत्वा च स्त्रीसुहृद्वधम्॥

यो० । साक्ष्ये अनृतं उक्त्वा—तथा गुरुं प्रतिरुध्य—चपुनः निःक्षेपं अपहृत्य—चपुनः स्त्रीसुहृद्वधंकृत्वा—इयं विशुद्धिः उदिता मन्वादिभिः—अग्रिमश्लोकेनसंबंधः ॥

भा० । ता० । सुवर्ण और भूमि आदि की साक्षी में अनृत (झूंठ) बोलकर—और गुरुको मिथ्या अभिशाप (दोष) लगाकर और ब्राह्मण सुवर्ण से अन्य चांदी आदि के निःक्षेप (धरोहर) को हरकर—और स्त्री और ब्राह्मणसे भिन्न मित्र को मारकर ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त करै ८८ ॥

इयंविशुद्धिरुदिताप्रमाप्याकामतोद्विजम् । कामतोब्राह्मणवधेनिष्कृतिर्नविधीयते८६॥

प० । इयं विशुद्धिः उदिता प्रमाप्य अकामतः द्विजम् कामतः ब्राह्मणवधे निष्कृतिः न विधीयते ॥

यो० । अकामतः द्विजं प्रमाप्य इयं विशुद्धिः उदिता—कामतः ब्राह्मणवधे निष्कृतिः(प्रायश्चित्त)शास्त्रेण न विधीयते॥

भा० । ता० । अज्ञानसे ब्राह्मण वधहोने पर यह प्रायश्चित्त की शुद्धि कही है और जानकर ब्राह्मणके वधका प्रायश्चित्तही शास्त्रने नहीं कहा यह नहीं है किंतु दूना वा मरणरूप प्रायश्चित्त होताहै कुछ सर्वथा प्रायश्चित्त का अभाव नहीं है क्योंकि इस[4] पूर्वोक्त वचनसे जानकर किये ब्राह्मणके वध

---

१ तथात्रेयींचब्राह्मणीम् ॥
२ रजस्वलांऋतुस्नातांआत्रेयीं ॥
३ आहिताग्नेःब्राह्मणस्य हत्वापत्नीमनिंदिताम् । ब्रह्महत्याव्रतंकुर्यादात्रेयीघ्नस्तथैवच ॥
४ कामतस्तुकृतंमोहात्प्रायश्चित्तैःपृथग्विधैः ॥

का यह प्रायश्चित्त कहा है कि जानकर अज्ञानसे किये ब्राह्मण वधका दोष पृथक् २ प्रायश्चित्तों से दूर होताहै ८९ ॥

सुरांपीत्वाद्विजोमोहादग्निवर्णांसुरांपिबेत्।तयासकायेनिर्दग्धेमुच्यतेकिल्बिषात्ततः ९०

प० । सुरां पीत्वा द्विजः मोहात् अग्निवर्णां सुरां पिबेत् तया सः काये निर्दग्धे मुच्यते किल्बिषात् ततः ॥

यो० । द्विजः मोहात् सुरां पीत्वा अग्निवर्णां सुरां पिबेत्–तया (सुरया) काये निर्दग्धे सति सः द्विजः ततः (तस्मात्) किल्बिषात् मुच्यते ॥

भा० । द्विज मोहसे जानबूझकर मदिराको पीकर अग्निके समान है वर्ण जिसका ऐसी मदिरा का पानकरै उस मदिरासे जब शरीर दग्ध होजाय तब वह उस पापसे छूटताहै अर्थात् परलोक में उस पापके फलको नहीं भोगता ॥

ता० । यहां पर सुराशब्द पैष्टी (जो यव आदि के चूनसे बनतीहै) सुरामें रूढहै और गौडी और माध्वीमें नहीं है अर्थात् जो गुड और मधुसे बनती हैं उनका बोधक नहीं है क्योंकि तीनों में एक साधारणरूप नहीं है–यदि प्रत्येकमें पृथक् २ शक्ति मानोगे तो तीन शक्तियोंकी कल्पना करने में गौरवहोगा–और गौडी आदि मदिराओंमें गौणवृत्तिसे भी सुराशब्दका प्रयोग होसक्ताहै इसीसे भविष्यपुराणमें इस[1] वचनसे यह कहा है कि पैष्टी सुरा मुख्य होती है इतर दोनोंमदिरा उसके तुल्य नहीं होती और पैष्टी सुराके पानका जो प्रायश्चित्तहै वही सब मदिराओंके पीने का प्रायश्चित्त है और इस[2] वचनसे यमऋषिने भी यह कहाहै कि हे महाबाहो मदके संबंधसे सब मदिरा समान हैं–और भविष्यपुराण के वचनमें (एतासां) यह निर्द्धारण अर्थ में षष्ठी है अर्थात् इन गौडी माध्वी पैष्टी तीनोंमदिराओंके मध्यमें पैष्टीके पीनेका यह प्रायश्चित्त है जो मनुजी ने इसी श्लोकमें कहाहै–मुख्य जो पैष्टी सुरा उसको द्विज राग आदि में व्यामोहको प्राप्तहो और पीकर अग्निके समान है वर्ण जिसका ऐसी मदिराका पानकरै जब उससे शरीर दग्ध होजाय तब वह द्विज उस पापसे छूटता है और यह प्रायश्चित्त भी गुरुहोनेसे उसही सुरापान का है जो जानकर पीहो क्योंकि वृहस्पति ने इस[3] वचनसे यह वर्णन किया है कि जानकर जो मदिरा पीहोय तो जलतीहुई मदिराको मुख में डालले जब उससे मुख दग्ध होजाय तब मरने से शुद्धिको प्राप्त होताहै ९० ॥

गोमूत्रमग्निवर्णंवापिबेदुदकमेववा।पयोघृतंवामरणाद्गोसकृद्रसमेववा ९१ ॥

प० । गोमूत्रं अग्निवर्णं वा पिबेत् उदकं एव वा पयः घृतं वा आमरणात् गोसकृद्रसं एव वा ॥

यो० । वा अग्निवर्णं गोमूत्रं–उदकं–पयः (दुग्धं)–घृतं वा गोसकृद्रसं आमरणात् पिबेत् ॥

भा० । ता० । अथवा अग्निके समान है वर्ण जिनका ऐसे गोमूत्र–जल–दूध–घृत–गौके गोबर का रस–इनमें से किसी एक को तबतक पीवे जबतक मर न जाय ९१ ॥

कणान्वाभक्षयेदब्दंपिण्याकंवासकृन्निशि।सुरापानापनुत्यर्थंवालवासाजटीध्वजी ९२॥

---

१ सुरात्रपैष्टीमुख्योक्तानतस्यास्त्वितरेसमे । पैष्ट्याःपानेनचैतासांप्रायश्चित्तंनिबोधत ॥

२ महाबाहोसमाःसर्वामदिरामदयोगतः ॥

३ सुरापानेकामकृतेज्वलंतींतांविनिःक्षिपेत् । मुखेतयासनिर्दग्धःमृतःशुद्धिमवाप्नुयात् ॥

प० । कणान् वा भक्षयेत् अब्दं पिण्याकं वा सकृत् निशि सुरापानापनुत्यर्थं वालवासाः जटी ध्वजी ॥

यो० । अथवा सुरापानापनुत्यर्थं अब्दं कणान् वा पिण्याकं-निशि वालवासाः जटी ध्वजी सन् सकृत् भक्षयेत् ॥

भा० । ता० । अथवा मदिरापानके दोष की निवृत्ति के लिये वर्षदिन पर्यंत विकृत (मलीन) वस्त्र और जटा और सुरापीनेका चिह्न रूप ध्वजा इनको धारण करके कण (चावलोंके सूक्ष्म २ अवयव) और पिण्याक (तिलोंकी खल) रात्रिके समय एकबार पीवे-यह प्रायश्चित्त लघु होनेसे उसही सुरापानका है जो अज्ञानसे पीहो ९२ ॥

सुरावैमलमन्नानांपाप्माचमलमुच्यते । तस्माद्ब्राह्मणराजन्यौवैश्यश्चनसुरांपिबेत् ९३ ॥

प० । सुरा वै मलं अन्नानां पाप्मा च मलं उच्यते तस्मात् ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यः च न सुरां पिबेत् ॥

यो० । यस्मात् सुरा वै (विरचयेन) अन्नानां मलं-उच्यते-मलं च पाप्मा (पापं) उच्यते-तस्मात् ब्राह्मणराजन्यौ चपुनः वैश्यः सुरां न पिबेत् ॥

भा० । ता० । जिससे मदिरा तंडुल आदि अन्नोंका मल कहाताहै और मल पापको कहते हैं तिससे ब्राह्मण क्षत्री और वैश्य ये तीनों मदिरा को न पीवें-जब मदिरा पानका यह निषेध है तो इसके अवलंघन करनेवाले द्विजको पूर्वोक्त प्रायश्चित्त होताहै ९३ ॥

गौडीपैष्टीचमाध्वीचविज्ञेयात्रिविधासुरा । यथैवैकातथासर्वानपातव्याद्विजोत्तमैः ९४ ॥

प० । गौडी पैष्टी च माध्वी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा यथा एव एका तथा सर्वाः न पातव्याः द्विजोत्तमैः ॥

यो० । गौडी-पैष्टी-चपुनः माध्वी त्रिविधा सुरा बुधैः विज्ञेया-यथा एका तथा सर्वाः भवंति अतः द्विजोत्तमैः न पातव्याः ॥

भा० । गौडी पैष्टी और माध्वी तीनप्रकारकी सुराजाननी-इनतीनों में जैसी एक पैष्टी होती है वैसीही सब होती हैं इससे द्विजोंमें उत्तमों को तीनोंभी नहीं पीनी ॥

ता० । जो मदिरा गुडसे बनाईजाय वह गौडी-और जो पिष्ट(चूर्ण)से बनाईजाय वह पैष्टी और जो मधुक (महुवा) वृक्षके पुष्पोंसे बनाईजाय वह माध्वी-कहाती है इसप्रकार तीनप्रकारकी सुरा जाननी-इन सबको मुख्य सुराके तुल्य कहना इसलिये है कि ब्राह्मणको पैष्टी और माध्वी सुराके पनि में अधिक प्रायश्चित्त है-इन तीनों मदिराओंमें जैसी एक (पैष्टी) है वैसीही गौडी और माध्वी हैं इससे द्विजोंमें उत्तमों के पीने योग्य नहीं हैं ९४ ॥

यक्षरक्षःपिशाचान्नंमद्यंमांसंसुरासवम् । तद्ब्राह्मणेननात्तव्यंदेवानामश्नताहविः ९५ ॥

प० । यक्षरक्षःपिशाचान्नं मद्यं मांसं सुरासवम् तत् ब्राह्मणेन न अत्तव्यं देवानां अश्नता हविः ॥

यो० । मद्यं मांसं सुरासवं-यक्षरक्षः पिशाचान्नं भवति-तत् (मद्याद्यन्नं) देवानां हविः अश्नता ब्राह्मणेन न अत्तव्यं (नभक्षणीयम्) ॥

भा० । मद्य-मांस-सुरा-आसव ये चारों यक्ष राक्षस पिशाचों के अन्न (भक्षणयोग्य) होते हैं इससे देवताओं की हविः (साकल्य) को भक्षणकरताहुआ ब्राह्मण इनचारोंको भक्षण न करै ॥

ता० । इसश्लोक में पैष्टी गौडी और माध्वीसे व्यतिरिक्त (भिन्न) नवप्रकार का निषिद्धपदार्थ (मद) मद्य शब्दसे ग्रहणकरना—क्योंकि पुलस्त्यऋषिने इसवचनसे यहकहाहै कि ये ग्यारहप्रकार के मद्य द्विजातियोंको सामान्यसे निषिद्ध कहे हैं कि पानस (जो पनसवृक्षसे बने)और द्राक्ष (जो दाखसे बने) माध्वीक (जो महुवेसे बने) खार्जूर (जो खजूरसेबने) ताल (जोताडकेफलसेबने) ऐक्षव (जोईखसेबने) माध्वीक (जोमीठेसेबने) टांक (जो टंकसुहागाआदिसेबने) मार्द्वीक (जो बडीदाखसेबने) और मैरेय (जो मीरासेबने) और सुरा और आसव (सार) और इनग्यारह से अन्य जो बारहवां सुरामद्य है वह सबजातियोंको अधमकहाहै—यह मद्य और मांस—सुरा तीनप्रकार की मदिरा और आसव (मद्योंकी एकअवस्था) अर्थात् जो मद्यमें कोई सुगन्धआदि वस्तुमिलाकर बनायाजाय और उसका मदकारी स्वभाव न बदले उसे आसवकहतेहैं—उसीमद्यपीनेका प्रायश्चित्त पुलस्त्यऋषिने इसे वचनसे यहकहाहै कि दाख ईख टंक खजूर पनस इनका जो सद्योजात (ताजा) रस उसको पीकर द्विजोत्तम तीनदिन में शुद्ध होता है—इसप्रकार मद्यआदि चारों यक्ष राक्षस और पिशाचों का अन्न होताहै अर्थात् इनकेही भक्षण के योग्य होताहै तिससे देवताओंकी हविकोभक्षण करनेवाला ब्राह्मण इनचारों का भक्षण न करै—पूर्वही निषिद्धकीहुई सुराका यहांपर पुनः उपादान इसलिये है कि सुरा भी यक्ष राक्षस पिशाचोंका अन्नहोनेसे निंद्यहै—और इसवचनमें कोई यहकहते हैं कि ब्राह्मणेन—इसपदसे पुरुषही ब्राह्मणको मदिराका निषेधहै स्त्रीको नहीं—वह उनकाकथन ठीक नहीं है क्योंकि याज्ञवल्क्यऋषिने इसवचनसे यहकहाहै कि जो ब्राह्मणी मदिराका पानकरतीहै वह पतिके लोकमें नहींजाती किंतु इसी मनुष्यलोकमें कुत्ती—गधिनी—सूकरी होती है ९५ ॥

अमेध्येवापतेन्मत्तोवैदिकंवाप्युदाहरेत् । अकार्यमन्यत्कुर्याद्वाब्राह्मणोमदमोहितः ९६॥

प०। अमेध्ये वा पतेत् मत्तः वैदिकं वा अपि उदाहरेत् अकार्यं अन्यत् कुर्यात् वा ब्राह्मणः मदमोहितः

यो० । मदमोहितः ब्राह्मणः मत्तः सन् अमेध्ये पतेत् वा वैदिकं अपि उदाहरेत् वा अन्यत् अकार्यं कुर्यात् ॥

भा०। ता०। मदसे मोहको प्राप्तहुआ उन्मत्त ब्राह्मण अशुद्धस्थानमें पतितहोगा वा वेदके वाक्य कोही अशुद्धअवस्था में उच्चारण करनेलगेगा अथवा औरही कोई अकार्य(ब्रह्महत्यादि) करने लगेगा—इससे ब्राह्मण मद्यकापान न करै ९६ ॥

यस्यकायगतंब्रह्ममद्येनाप्लाव्यतेसकृत् । तस्यव्यपैतिब्राह्मण्यंशूद्रत्वंचसगच्छति ९७ ॥

प० । यस्य कायगतं ब्रह्म मद्येन आप्लाव्यते सकृत् तस्य व्यपैति ब्राह्मण्यं शूद्रत्वं च सः गच्छति ॥

यो० । यस्य ब्राह्मणस्य कायगतं ब्रह्म मद्येन सकृत् आप्लाव्यते तस्य ब्राह्मण्यं व्यपैति चपुनः सः शूद्रत्वं गच्छति ॥

भा० । ता० । जिस ब्राह्मणके देहमें स्थित जीवात्मा एकवार भी मद्य (मदिरा) से आप्लावित होताहै अर्थात् भीगताहै भावार्थ यहहै कि जो ब्राह्मण एकवारभी मदिराकोपीताहै उसका ब्राह्मणत्व नष्टहोजाताहै और वह शूद्रत्व को प्राप्तहोजाताहै ९७ ॥

---

१ पानसंद्राक्षमाध्वीकंखार्जूरंतालमैक्षवम् ।माध्वीकंटांकमार्द्वीकंमैरेयंनारिकेरजम् ॥ सामान्यानिद्विजातीनांमद्यान्येकादशैवतु । द्वादशंतुसुरामद्यंसर्वेषामधमंस्मृतम् ॥

२ द्राक्षक्षुटंकखर्जूरपनसादेश्चयोरसः । सद्योजातंतुतंपीत्वात्र्यहाच्छुद्धोद्विजोत्तमः ॥

३ पतिलोकंनसायातिब्राह्मणीयासुरांपिबेत् । इहैवसाशुनीगृध्रीसूकरीचोपजायते ॥

एषाविचित्राभिहितासुरापानस्यनिष्कृतिः।अतऊर्ध्वंप्रवक्ष्यामिसुवर्णस्तेयनिष्कृतिम् ९८ ॥

प० । एषा विचित्रा अभिहिता सुरापानस्य निष्कृतिः अतः ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि सुवर्णस्तेयनिष्कृतिम्

यो० । सुरापानस्य एषा विचित्रा निष्कृतिः अभिहिता (कथिता) अतः ऊर्ध्वं सुवर्णस्तेयनिष्कृतिं प्रवक्ष्यामि ॥

भा० । ता० । यह मदिरा के पानका प्रायश्चित्त नानाप्रकारसे कहा अब इससे आगे सुवर्ण की चोरीके प्रायश्चित्त को कहूंगा ९८ ॥

सुवर्णस्तेयकृद्विप्रोराजानमभिगम्यतु। स्वकर्मख्यापयन्ब्रूयान्मांभवाननुशास्त्विति ९९॥

प० । सुवर्णस्तेयकृत् विप्रः राजानं अभिगम्य तु स्वकर्म ख्यापयन् ब्रूयात् मां भवान् अनुशास्तु इति

यो० । सुवर्णस्तेयकृत् विप्रः राजानं अभिगम्य स्वकर्म ख्यापयन् सन् भवान् मां अनुशास्तु इति राजानंप्रति ब्रूयात्- (कथयेत्) ॥

भा० । ब्राह्मण के सुवर्ण का चुरानेवाला ब्राह्मण राजाके समीप जाकर अपनेकर्म (चोरी) को कहताहुआ यहकहै कि तुम मुझे दंडदो ॥

ता० । यद्यपि इसवचन में सुवर्ण की चोरीकरनेवाला ब्राह्मण राजाके समीपजाकर और अपनी चोरीके कर्मको कहताहुआ राजासे यहकहै कि तुम मुझे दंडदो इतनाहीकहाहै और ब्राह्मणकानाम नहींपढ़ा तथापि इसशातातपऋषिके वचनसे सुवर्णचुरानेवाले ब्राह्मणकाही ग्रहणकरना कि ब्राह्मण के सुवर्णहरनेवाला ब्राह्मण राजाके समीप जाकर उक्तप्रकार से निवेदनकरै-और ब्राह्मणका ग्रहण भी केवल दिखाने के लिये समझना किन्तु उक्तसुवर्णका चोर मनुष्यमात्र ग्रहणकरना क्योंकि इसै वचनसे मनुष्यमात्रको प्रायश्चित्तकरना कहाहै ९९॥

गृहीत्वामुसलंराजासकृद्धन्यात्तुतंस्वयम्।वधेनशुद्ध्यतिस्तेनोब्राह्मणस्तपसैवतु १००

प० । गृहीत्वा मुसलं राजा सकृत् हन्यात् तु तं स्वयं वधेन शुद्ध्यति स्तेनः ब्राह्मणः तपसा एव तु ॥

यो० । राजा मुसलं गृहीत्वा तं (चोरं) सकृत् स्वयं हन्यात्-स्तेनः (ब्राह्मणेतरः) वधेन शुद्ध्यति-ब्राह्मणस्तु तपसा एव शुद्ध्यति ॥

भा० । राजा मुसलको ग्रहणकरके उसको स्वयं हतै यदि वह चोर ब्राह्मणसे भिन्नहोय तो वधसे शुद्धहोताहै और ब्राह्मण तो तपसेही शुद्धहोताहै-वह तप यह है कि ॥

ता० । जब वह चोर अपने कंधेपर मुसललेकर जाय क्योंकि (स्कंधेनादायमुसलं) इसवचनसे कंधेपर मुसलधरकर जानालिखाहै-उससमय राजा मुसलको उससे लेकर एकवार स्वयं मुसलसे हते (मारे) उसमुसलसे मृत्युको प्राप्तहुआ वह चोर शुद्ध होता है और इसै याज्ञवल्क्य ऋषिके बचनानुसार यदि मुसलके प्रहारसे बच भी जाय तो भी शुद्धहोताहै अर्थात् मुसलके प्रहारसे मरजाय वा मरेके समान होजाय तो उस सुवर्ण की चोरीके पापसे छूटता है-और ब्राह्मण तो

---

१ अपहृत्यसुवर्णंतु ब्राह्मणस्ययतःस्वयम् ॥
२ प्रायश्चित्तीयतेनरः ॥
३ मुक्तोवापिशुचिः ॥

तपसेही शुद्धहोताहै और तपसैव इस एव–पदके देनेसे यह सूचित किया कि इसै वचनके अनुसार कि कभी भी सबपापोंमें स्थित ब्राह्मणको न मारै इससे ब्राह्मणकी तो तपसेही शुद्धिहोतीहै इसीसे मनुके अर्थ की व्याख्याकरनेवाले भविष्यपुराण में इनै वचनोंसे यह कहाहै कि जो मनुमें यह वचनहै कि ब्राह्मण तपसेही शुद्धहोताहै हे सुराधिप उस वचनमें एवपदके देनेसे यह सूचित किया है कि ब्राह्मणके वधका निषेध है और तपसैववा इस वा पदके देनेसे यह भी सूचित कियाहै कि क्षत्रिय आदिकी भी तपसे शुद्धिहोतीहै अर्थात् ब्राह्मणके लिये केवल तपही शुद्धिहै और इतरोंकेलिये तप भी है और पूर्वोक्त मुसल से वध तो है ही–क्योंकि भविष्यपुराणमें इसै वचनसे यह कहाहै कि हे विभो ब्राह्मणसे भिन्नोंके लिये भी कुछ तपका निषेध नहीं है–और वह तप यह है कि १०० ॥

तपसाऽपनुनुत्सुस्तुसुवर्णस्तेयजंमलम्।चीरवासाद्विजोऽरण्येचरेद्ब्रह्महणोव्रतम् १०१

प० । तपसा अपनुनुत्सुः तु सुवर्णस्तेयजं मलं चीरवासाः द्विजः अरण्ये चरेत् ब्रह्महणः व्रतम् ॥

यो० । तपसा सुवर्णस्तेयजं मलं अपनुनुत्सुः द्विजः चीरवासाः सन् अरण्ये ब्रह्महणः व्रतं चरेत् ॥

भा० । सुवर्ण की चोरी के दोषको दूरकरनेकी वांछाकरताहुआ द्विज चीरवस्त्रोंको धारणकर और वनमें वसकर ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त करै ॥

ता० । सुवर्णकी चोरीसे उत्पन्नहुये पापको दूरकरनेकी इच्छा करताहुआ द्विज–चीर(जीर्ण)वस्त्रों को धारणकरके उस व्रतको वनमें करै जो ब्रह्महत्यारे को कहाहै–और यह व्रतद्वादश १२ वर्षपर्यंत करना कहाहै और यह प्रायश्चित्त ब्राह्मणों के सुवर्ण की चोरीका है क्योंकि इसमें क्लेश अधिक है और क्षत्रिय आदिकोंको तो इस पापका प्रायश्चित्त मरण भी कहा है–और सुवर्ण का प्रमाण इसै वचनके अनुसार यह होताहै कि पांच कृष्णलका एकमाष और सोलह माषोंका एक सुवर्ण होताहै और इससे न्यून (कम) प्रमाणका ग्रहण नहीं है क्योंकि परिमाण के अनुसार मनुके परिमाण का ग्रहणही युक्त है और जो भविष्यपुराण में अधिक परिमाण इसै वचनसे वर्णन किया है कि यदि निर्गुण क्षत्रिय आदि तीनोंवर्ण गुणवान् ब्राह्मणके पांच अथवा एकादश ११ निष्कोंकी चोरीकरें तो अग्निमें अपने देहको दग्धकरके शुद्धहोतेहैं और आत्माकी शुद्धिके लिये इसव्रतको करैं–वह भविष्य पुराणका प्रायश्चित्त उतनेही प्रमाणके सुवर्ण की चोरीका समझना जितना भविष्यपुराण में कहा है–और सुवर्ण रूप प्रमाणको चोरी में नहीं १०१ ॥

एतैर्व्रतैरपोहेतपापंस्तेयकृतंद्विजः।गुरुस्त्रीगमनीयंतुव्रतैरेभिरपानुदेत् १०२ ॥

प० । एतैः व्रतैः अपोहेत पापं स्तेयकृतं द्विजः गुरुस्त्रीगमनीयं तु व्रतैः एभिः अपानुदेत् ॥

यो० । द्विजः स्तेयकृतं पापं एभिः व्रतैः अपोहेत–गुरुस्त्रीगमनीयं तु पापं एभिः व्रतैः अपानुदेत् ॥

---

१ नजातुब्राह्मणंहन्यात्सर्वपापेष्ववस्थितम् ॥

२ यदेतद्वचनंवीरब्राह्मणस्तपसैववा । तत्रैवकारणाद्विद्धिब्राह्मणस्यसुराधिप। तपसैवेत्यनेनेहप्रतिषेधोवधस्यतु ॥

३ इतरेषामपिविभोतपोनप्रतिषिध्यते ॥

४ पंचकृष्णलकोमाषस्तेसुवर्णस्तुषोडश ॥

५ क्षत्रियाद्यास्त्रयोवर्णानिर्गुणाश्चथतत्पराः । गुणाढ्यस्यतुविप्रस्यपंचनिष्कान्हरंतिचेत् ॥ निष्कानेकादशतथादग्ध्वात्मानं तुपावके । शुद्ध्येयुर्मरणाद्वीरचरेद्ब्रह्मात्मशुद्धये ॥

भा० । ता० । ब्राह्मणके सुवर्ण की चोरीके पापको द्विज इनव्रतों (पूर्वोक्त) से दूरकरै—यहां व्रत और तप दोनों कहेहैं इससे और एतैः (इन) इस बहुवचनके देनेसे मनुका कहा भी प्रायश्चित्त समझना—और गुरुकी स्त्रीकेसंग गमनका पाप तो इन (जो आगे कहते हैं) प्रायश्चित्तोंसे दूरकरै १०२ ॥

गुरुतल्प्यभिभाष्यैनस्तप्तेस्वप्यादयोमये।सूर्मींज्वलन्तींस्वाश्लिष्येन्मृत्युनासविशुद्ध्यति१०३

प० । गुरुतल्पी अभिभाष्य एनः तप्ते स्वप्यात् अयोमये सूर्मीं ज्वलंतीं स्वाश्लिष्येत् मृत्युना सः विशुद्ध्यति ॥

यो० । गुरुतल्पी एनः अभिभाष्य तप्ते अयोमये (शयने) स्वप्यात्—ज्वलंतीं सूर्मीं (स्त्रीप्रतिकृतिं) अयोमयीं स्वाश्लिष्येत् एवं मृत्युना सः (गुरुतल्पगामी) विशुद्ध्यति ॥

भा० । ता० । निषेकआदि कर्मोंका जो करनेवाला पिता वह गुरु होता है और तल्प भार्या को कहतेहैं उस (माता) के संग गमनकरनेवाला अपने पापको विदितकरके अग्निसेतप्त लोहेकीशय्या पर शयनकरै अथवा लोहेकी स्त्री प्रतिकृति (मूर्त्ति) बनाकर ज्वलतीहुई उसकाआलिंगन (स्पर्श) करके मृत्युसे विशुद्ध होताहै १०३ ॥

स्वयंवाशिश्नवृषणावुत्कृत्याधायचाञ्जलौ।नैर्ऋतींदिशमातिष्ठेदानिपातादजिह्मगः१०४ ॥

प० । स्वयं वा शिश्नवृषणौ उत्कृत्य आधाय च अंजलौ नैर्ऋतीं दिशं आतिष्ठेत् आनिपातात् अजिह्मगः ॥

यो० । अथवा स्वयं शिश्नवृषणौ उत्कृत्य चपुनः अंजलौ आधाय आनिपातात् अजिह्मगः सन नैर्ऋतीं दिशं आतिष्ठेत् (गच्छेत) ॥

भा० । ता० । अथवा अपनेलिंग इंद्रिय और अण्डकोशोंको स्वयं छेदनकरके और अपनी अंजली में रखकर मरणपर्यंत कुटिलस्वभावको त्यागकर नैर्ऋतदिशामें गमनकरै—ये दोनों प्रायश्चित्त गुरु होनेसे समानवर्णकी जो गुरुभार्या उसकेसंगगमन जानकर वीर्यपात पर्यंत मैथुनमेंसमझने१०४ ॥

खट्वाङ्गीचीरवासावाश्मश्रुलोविजनेवने।प्राजापत्यंचरेत्कृच्छ्रमब्दमेकंसमाहितः१०५ ॥

प० । खट्वांगी चीरवासाः वा श्मश्रुलः विजने वने प्राजापत्यं चरेत् कृच्छ्रं अब्दं एकं समाहितः ॥

यो० । वा खट्वांगी चीरवासाः श्मश्रुलः सन समाहितः भूत्वा विजने वने एकं अब्दं प्राजापत्यं कृच्छ्रं चरेत् ॥

भा० । ता० । अथवा ब्रह्महत्या का चिह्न जो खट्वांग उसको धारण और केश नख लोम श्मश्रु इनको धारणकरके निर्जनवनमें एकवर्ष पर्यंत प्राजापत्य कृच्छ्रको सावधानी से करै—और जो प्रायश्चित्त आगे कहेंगे वह लघुहोनेसे उस गुरुभार्या गमन का समझना जो अज्ञानसे अपनीस्त्री समझ कर कियाहो १०५ ॥

चान्द्रायणंवात्रीन्मासानभ्यसेन्नियतेन्द्रियः।हविष्येणयवाग्वावागुरुतल्पापनुत्तये१०६ ॥

प० । चांद्रायणं वा त्रीन् मासान् अभ्यसेत् नियतेंद्रियः हविष्येण यवाग्वा वा गुरुतल्पापनुत्तये ॥

यो० । वा गुरुतल्पापनुत्तये नियतेंद्रियः सन त्रीन् मासान् हविष्येण वायवाग्वा चांद्रायणं अभ्यसेत् (चरेत्) ॥

भा० । ता० । अथवा गुरुभार्यागमनके पाप दूरकरनेकेलिये इंद्रियोंको वशमेंकरके फलमूलआदि हविष्य अन्नसे अथवा नीवारआदि की यवागू (लप्सी) से तीनमास पर्यंत चांद्रायण व्रतको करै

अर्थात् पूर्वोक्त फलआदि को भक्षणकरके चांद्रायणव्रतको करै—यह भी प्रायश्चित्त लघु होने से उस गुरुस्त्रीगमनकाहै जो साध्वी और अपने समानवर्णकी नहो १०६ ॥

एतैर्व्रतैरपोहेयुर्महापातकिनोमलम्। उपपातकिनस्त्वेवमेभिर्नानाविधैर्व्रतैः १०७ ॥

प० । एतैः व्रतैः अपोहेयुः महापातकिनः मलं उपपातकिनः तु एवं एभिः नानाविधैः व्रतैः ॥

यो० । महापातकिनः एतैः व्रतैः मलं (पापं)—उपपातकिनः तु एभिः (वक्ष्यमाणैः) नानाविधैः व्रतैः पापं निर्हरेयुः ॥

भा० । ता० । महापातक करनेवाले मनुष्य इन पूर्वोक्त व्रतोंसे—और गोवध आदि उपपातक करनेवाले इन वक्ष्यमाण नानाप्रकारके व्रतोंसे पापको दूरकरें १०७ ॥

उपपातकसंयुक्तोगोघ्नोमासंयवान्पिबेत्। कृतवापोवसेद्गोष्ठेचर्मणातेनसंवृतः १०८ ॥
चतुर्थकालमश्नीयादक्षारलवणंमितम्।गोमूत्रेणाचरेत्स्नानंद्वौमासौनियतेन्द्रियः १०९
दिवानुगच्छेद्गास्तास्तुतिष्ठन्नूर्ध्वंरजःपिबेत्। शुश्रूषित्वानमस्कृत्यरात्रौवीरासनंवसेत् ११० ॥
तिष्ठन्तीष्वनुतिष्ठेत्तुव्रजन्तीष्वप्यनुव्रजेत् । आसीनासुतथासीनोनियतोवीतमत्सरः १११ ॥
आतुरामभिशस्तांवाचौरव्याघ्रादिभिर्भयैः।पतितांपङ्कलग्नांवासर्वोपायैर्विमोचयेत् ११२ ॥
उष्णेवर्षतिशीतेवामारुतेवातिवाभृशम् । नकुर्वीतात्मनस्त्राणंगोरकृत्वातुशक्तितः ११३ ॥
आत्मनोयदिवान्येषांगृहेक्षेत्रेऽथवाखले।भक्षयन्तींनकथयेत्पिबन्तंचैववत्सकम् ११४॥
अनेनविधिनायस्तुगोघ्नोगामनुगच्छति।सगोहत्याकृतंपापंत्रिभिर्मासैर्व्यपोहति ११५

प० । उपपातकसंयुक्तः गोघ्नः मासं यवान् पिबेत् कृतवापः वसेत् गोष्ठे चर्मणा तेन संवृतः ॥

प० । चतुर्थकालं अश्नीयात् अक्षारलवणं मितं गोमूत्रेण आचरेत् स्नानं द्वौ मासौ नियतेंद्रियः ॥

प० । दिवा अनुगच्छेत् गाः ताः तु तिष्ठन् ऊर्ध्वं रजः पिबेत् शुश्रूषित्वा नमस्कृत्य रात्रौ वीरासनं वसेत् ॥

प० । तिष्ठंतीषु अनुतिष्ठेत् तु व्रजंतीषु अपि अनुव्रजेत् आसीनासु तथा आसीनः नियतः वीतमत्सरः ॥

प० । आतुरां अभिशस्तां वा चौरव्याघ्रादिभिः भयैः पतितां पंकलग्नां वा सर्वोपायैः विमोचयेत् ॥

प० । उष्णे वर्षति शीते वा मारुते वाति वा भृशं न कुर्वीत आत्मनः त्राणं गोः अकृत्वा तु शक्तितः ॥

प० । आत्मनः यदि वा अन्येषां गृहे क्षेत्रे अथवा खले भक्षयंतीं न कथयेत् पिबंतं च एव वत्सकम् ॥

प० । अनेन विधिना यः तु गोघ्नः गां अनुगच्छति सः गोहत्याकृतं पापं त्रिभिः मासैः व्यपोहति ॥

यो० । अष्टश्लोकानां कुलकं उपपातकसंयुक्तः गोघ्नः मासं यवान् पिबेत्—तेन चर्मणा (गव्येन) संवृतः कृतवापःसन् गोष्ठे वसेत् + मितं अक्षारलवणं चतुर्थकाले अश्नीयात्—नियतेंद्रियः सन् द्वौमासौ गोमूत्रेण स्नानं आचरेत् + तुपुनः दिवा ताः (गाः) अनुगच्छेत्—ऊर्ध्वं तिष्ठन् सन् रजः पिबेत् शुश्रूषित्वा नमस्कृत्य रात्रौ वीरासनं वसेत् + तुपुनः तिष्ठंतीषु अनुतिष्ठेत् व्रजंतीषु अनुव्रजेत् तथा आसीनासु आसीनः नियतः वीतमत्सरः सन् + आतुरां वा चौरव्याघ्रादिभिः भयैः अभिशस्तां पतितां वा पंकलग्नां गां सर्वोपायैः विमोचयेत् + उष्णे वा शीते—वर्षति—वा मारुते भृशं वाति सति शक्तितः गोः त्राणं अकृत्वा आत्मनः त्राणं न कुर्वीत + आत्मनः वा अन्येषां क्षेत्रे अथवा खले भक्षयंतीं गां चपुनः पिबंतं वत्सकं न कथयेत् + यः गोघ्नः अनेन विधिना गां अनुगच्छति सः त्रिभिः मासैः गोहत्याकृतं पापं व्यपोहति ॥

भा० । ता० । अबसे आगे आठ श्लोकोंका एक अन्वय और अर्थ है—उपपातक से संयुक्त गोहत्यारा मनुष्य एक मासतक यवको पीवे—और मुंडन कराकर उस गौके चर्मको पहिनकर तीनमास पर्यन्त गोष्ठ (गोशाला) में वसै+और चौथेकाल में क्षार और लवणको छोड़कर परिमित भोजनकरै और इंद्रियों को वश में करके दोमास पर्यंत गोमूत्रसे स्नानकरै + और दिनमें उन गौओंके अनु(पीछे)गमनकरै और उनगौओंके खुरोंसे ऊपरको उड़ीहुई रज(धूल)कोपीवे अर्थात् रजकास्वादले—और रात्रिके समय गौओंकी सेवा और नमस्कार करके वीरासनसे वसै अर्थात् किसी भीतिके आश्रय होकर खड़ारहै+और यदि गौ खड़ी होजाय तो पीछे से आप भी खड़ाहोजाय और चलती गौके पीछे गमनकरै और बैठीहुई के पीछे नियम से और क्रोधको त्यागकर बैठजाय+यदि गौ व्याधितहो अथवाचौर और व्याघ्रआदिकोंके भयसे आक्रांतहो वा भूमिमें पतितहो अथवा पंक(कीच)में लग्न (धसी) हो तो उस गौको संपूर्ण उपायोंसे छुटावे+और उष्ण (सूर्य) तपताहो अथवा शीत पड़ताहो वा अत्यंत पवन चलताहो अथवा मेघ बरसताहो तो शक्तिके अनुसार गौकी रक्षाकरै विना अपनीरक्षा न करै+अपने अथवा किसी अन्यके गृह—क्षेत्र अथवा खलमें अन्न आदि को भक्षणकरतीहुई गौको न कहै (न बतावे) और दूधपीतेहुये बछड़ेको भी न बतावे+इस विधिसे जो गोहत्यारा गौकी सेवा करता है वह गोहत्याके कियेहुये पापको तीन मासमें नष्टकरताहै१०८ । ११५ ॥

वृषभैकादशागाश्चदद्यात्सुचरितव्रतः।अविद्यमानेसर्वस्वंवेदविद्भ्योनिवेदयेत् ११६ ॥

प० । वृषभैकादशाः गाः च दद्यात् सुचरितव्रतः अविद्यमाने सर्वस्वं वेदविद्भ्यः निवेदयेत् ॥

यो० । सुचरितव्रतः गोघ्नः वृषभैकादशाः गाः दद्यात् अविद्यमाने सति वेदविद्भ्यः सर्वस्वं निवेदयेत् ॥

भा० । ता० । भलीप्रकार पूर्वोक्त किया है व्रत जिसने ऐसा गोहत्यारा एक वृष और दश गौओं का दान करै—यदि इतना धन न होय तो वेदके ज्ञाताओंको सर्वस्व (जो कुछ अपने समीप हो) निवेदनकरै ११६ ॥

एतदेवव्रतंकुर्युरुपपातकिनोद्विजाः।अवकीर्णिवर्ज्यंशुद्ध्यर्थंचान्द्रायणमथापिवा ११७॥

प० । एतत् एव व्रतं कुर्युः उपपातकिनः द्विजाः अवकीर्णिवर्ज्यं शुद्ध्यर्थं चांद्रायणं अथ अपि वा॥

यो० । अवकीर्णिवर्ज्यं उपपातकिनः द्विजाः शुद्ध्यर्थं एतत् एव व्रतं अथवा चांद्रायणं कुर्युः ॥

भा० । ता० । इतर उपपातकी भी अवकीर्णी को छोड़कर पापकी निवृत्तिके लिये यही प्रायश्चित्त (जो गोवधका वर्णन किया है) करें अथवा चांद्रायण व्रतको करें—और चांद्रायण प्रायश्चित्त वही करै जिसने लघु उपपातक कियाहो अथवा जो शक्तिहीन गुणी श्रेष्ठ जाति हो ११७ ॥

अवकीर्णीतुकाणेनगर्दभेनचतुष्पथे । पाकयज्ञविधानेनयजेतनैर्ऋतिंनिशि ११८ ॥

प० । अवकीर्णी तु काणेन गर्दभेन चतुष्पथे पाकयज्ञविधानेन यजेत नैर्ऋतिं निशि ॥

यो० । तुपुनः अवकीर्णी काणेन गर्दभेन चतुष्पथे पाकयज्ञविधानेन नैर्ऋतिं देवतां निशि यजेत ॥

भा० । ता० । जो व्रत में टिकाहुआ द्विजाति जानकर वीर्यको सींचे वह अवकीर्णी चतुष्पथ (चौराहा) में काणे गधेकी व पाको पकाकर उससे पाकयज्ञकी विधिसे रात्रिके समय नैर्ऋतिदेवताका पूजनकरै ११८ ॥

हुत्वाग्नौविधिवद्धोमानन्ततश्चसमेत्यृचा॥वातेन्द्रगुरुवह्नीनांजुहुयात्सर्पिषाहुतीः ११९

प० । हुत्वा अग्नौ विधिवत् होमान् अंततः च समा–इतिऋचा वातेंद्रगुरुवह्नीनां जुहुयात् सर्पिषा आहुतीः ॥

यो० । विधिवत् अग्नौहोमान् हुत्वा अंततः समा इतिऋचा–वातेंद्रगुरुवह्नीनां सर्पिषा आहुतीः जुहुयात् ॥

भा० । ता० । विधिवत् पूर्वोक्त होमकरनेके पीछे–समासिंचन्तुमारुत–इसऋचासे मरुत इन्द्र बृहस्पति अग्नि इनके निमित्त अग्निमें घीसे आहुतिदे ११९ ॥

कामतोरेतसःसेकंव्रतस्थस्यद्विजन्मनः । अतिक्रमंव्रतस्याहुर्धर्मज्ञाब्रह्मवादिनः १२०॥

प० । कामतः रेतसः सेकं व्रतस्थस्य द्विजन्मनः अतिक्रमं व्रतस्य आहुः धर्मज्ञाः ब्रह्मवादिनः ॥

यो० व्रतस्थस्य द्विजन्मनः कामतः रेतसः सेकं व्रतस्य अतिक्रमं धर्मज्ञाः ब्रह्मवादिनः आहुः ॥

भा० । ता० । जो व्रतमें टिकाहुआ द्विजाति इच्छासे वीर्यका सेचनकरै अर्थात् स्त्रीका संगकरै वह जो स्त्रीकीयोनिमें वीर्यका सींचनाहै धर्मकेज्ञाता ब्रह्मवादियोंने उसको व्रतका अतिक्रम (अवलंघन) कहाहै क्योंकि इस[1] वचनसे अवकीर्णीका यह लक्षण कहाहै कि ब्रह्मचारी स्त्रीका संगकरके अवकीर्णी होताहै १२० ॥

मारुतंपुरुहूतंचगुरुंपावकमेवच । चतुरोव्रतिनोऽभ्येतिब्राह्मंतेजोऽवकीर्णिनः १२१ ॥

प० । मारुतं पुरुहूतं च गुरुं पावकं एव च चतुरः व्रतिनः अभ्येति ब्राह्मं तेजः अवकीर्णिनः ॥

यो० । व्रतिनः अवकीर्णिनः ब्राह्मं तेजः मारुतं पुरुहूतं गुरु चपुनः पावकं–एतान् चतुरः अभ्येति ॥

भा० । ता० । व्रतवाले अवकीर्णीका ब्राह्मतेज पवन–इन्द्र–बृहस्पति और अग्नि–इनचारोंको प्राप्तहोजाताहै अर्थात् वेदके पठन और नियमोंके करनेसे पैदाहुआ तेज इन देवताओंको मिलताहै इससे इनके निमित्त घीकीआहुतिदे १२१ ॥

एतस्मिन्नेनसिप्राप्तेवसित्वागर्दभाजिनम्॥सप्तागारांश्चरेद्भैक्षंस्वकर्मपरिकीर्तयन् १२२

प० । एतस्मिन् एनसि प्राप्ते वसित्वा गर्दभाजिनं सप्त आगारान् चरेत् भैक्षं स्वकर्मपरिकीर्तयन् ॥

यो० । एतस्मिन् एनसि (पापे) प्राप्तेसति गर्दभाजिनं वसित्वा स्वकर्म परिकीर्तयन् सन् सप्तआगारान् भैक्षंचरेत् ॥

भा० । ता० । यदि मनुष्यसे यह अवकीर्णरूप प्रायश्चित्त होजाय तो पूर्वोक्त गधेका यज्ञकरके और गधेके चर्मको धारणकिये[2] औरमें अवकीर्णीहूं इसप्रकार अपने कर्मको प्रकट करताहुआ सात घरोंसे प्रतिदिन भिक्षाकोमांगे–क्योंकि हारीतऋषिने इस वचनसे गधेकेचर्मका धारणकहाहै १२२ ॥

तेभ्योलब्धेनभैक्षेणवर्तयन्नेककालिकम् । उपस्पृशंस्त्रिषवणंत्वब्देनसविशुद्ध्यति १२३

प० । तेभ्यः लब्धेन भैक्षेण वर्तयन् एककालिकं उपस्पृशन् त्रिषवणं तु अब्देन सः विशुद्ध्यति ॥

यो० । तेभ्यः सप्तआगारेभ्यः लब्धेन भोजनेन एककालिकं वर्तयन् (भुंजन्) सन् त्रिषवणं उपस्पृशन् सन् सः (अवकीर्णी) अब्देन विशुद्ध्यति ॥

---

१ अवकीर्णीभवेद्गत्वाब्रह्मचारीयषोषितम् ॥
२ गर्दभचर्मपरिधाय ॥

भा० । ता० । उन तात्पर्योंमेंसे मिलेहुये भोजनको एकसमय करता और त्रिकाल स्नानकरता हुआ वह अवकीर्णी एकवर्षमें शुद्ध होता है १२३ ॥

जातिभ्रंशकरंकर्मकृत्वान्यतममिच्छया । चरेत्सांतपनंकृच्छ्रंप्राजापत्यमनिच्छया १२४

प० । जातिभ्रंशकरं कर्म कृत्वा अन्यतमं इच्छया चरेत् सांतपनं कृच्छ्रं प्राजापत्यं अनिच्छया ॥

यो० । जातिभ्रंशकरं अन्यतमं कर्म इच्छया कृत्वा सांतपनं कृच्छ्रं—अनिच्छयाकृत्वा प्राजापत्यं कृच्छ्रं द्विजः चरेत् (कुर्यात्) ॥

भा० । ता० । पूर्वोक्त जातिभ्रंश करनेवाले कर्मोंमेंसे किसीभी कर्मको अपनी इच्छासे करके सांतपन कृच्छ्रकोकरै और अज्ञानसेकरै तो प्राजापत्य कृच्छ्रकरै १२४ ॥

संकरापात्रकृत्यासुमासंशोधनमैन्दवम् । मलिनीकरणीयेषुतप्तःस्याद्यावकैस्त्र्यहम् १२५

प० । संकरापात्रकृत्यासु मासं शोधनं ऐंदवं मलिनीकरणीयेषु तप्तः स्यात् यावकैः त्र्यहम् ॥

यो० । संकरापात्रकृत्यासु मासं ऐंदवं शोधनं अस्ति—मलिनीकरणीयेषु कर्मसु यावकैः त्र्यहंतप्तः स्यात् ॥

भा० । संकर और अपात्र करनेवाले कर्मोंमें एकमास पर्यन्त चान्द्रायणसे और मलिनीकरण कर्मोंके करनेसे तीनदिनतक तपीहुई यवागू (लप्सी) का भक्षणकरनेसे शुद्धिहोतीहै ॥

ता० । संकरकरनेवाले कर्मोंमें अर्थात् पूर्वोक्त गधा अश्व ऊंट इनकी हिंसाकरनेमें—और अपात्र करनेवाले कर्मोंमें अर्थात् निंदितोंसे धनको ग्रहणकरनेमें एकमासपर्यन्त चान्द्रायणव्रतकी शुद्धिकही है—और मलिनीकरण कर्मोंमें अर्थात् कृमि कीट पक्षियोंकी हत्याकरनेमें तीनदिनतक तप्तकीहुई यवागूकोपीवे—इन सबकर्मोंको जानकर करनेमें ये प्रायश्चित्त समझने १२५ ॥

तुरीयोब्रह्महत्यायाःक्षत्रियस्यवधेस्मृतः । वैश्येऽष्टमांशोवृत्तस्थेशूद्रेज्ञेयस्तुषोडशः १२६

प० । तुरीयः ब्रह्महत्यायाः क्षत्रियस्य वधे स्मृतः वैश्ये अष्टमांशः वृत्तस्थे शूद्रे ज्ञेयः तु षोडशः ॥

यो० । क्षत्रियस्य वधे ब्रह्महत्यायाः तुरीयः भागः—वृत्तस्थे वैश्ये मारितेसति अष्टमांशः—शूद्रेमारितेसति षोडशः भागः बुधैः स्मृतः (कथितः) ॥

भा० । क्षत्रियके जानकर वधमें ब्रह्महत्याका चौथाभाग—साधुआचारी वैश्यके वधमें आठवां-भाग और शूद्रके वधमें षोडशभाग व्रतकरना प्रायश्चित्त मनुआदिने कहाहै ॥

ता० । क्षत्रियकी हत्यामें ब्रह्महत्याके प्रायश्चित्तका चौथाभाग अर्थात् ब्रह्महत्याका जो बारहवर्ष का प्रायश्चित्तहै उसका चौथाई तीनवर्षपर्यन्त प्रायश्चित्त करना कहाहै—और साधुआचरण करने वाले वैश्यकेवधका प्रायश्चित्त ब्रह्महत्यासे अष्टमभागहै अर्थात् डेढ़वर्षकाहै—और सदाचार करनेवाले शूद्रकेवधमें ब्रह्महत्याका षोडश १६ भाग प्रायश्चित्तहै अर्थात् नव ९ मासकाव्रतहै १२६ ॥

अकामतस्तुराजन्यंविनिपात्यद्विजोत्तमः । वृषभैकसहस्रागादद्यात्सुचरितव्रतः १२७ ॥

प० । अकामतः तु राजन्यं विनिपात्य द्विजोत्तमः वृषभैकसहस्राः गाः दद्यात् सुचरितव्रतः ॥

यो० । द्विजोत्तमः अकामतः राजन्यं (क्षत्रियं) विनिपात्य (हत्वा) सुचरितव्रतः सन् वृषभैकसहस्राः गाः दद्यात् ॥

भा० । ता० । द्विजोंमें उत्तम (ब्राह्मण) अज्ञानसे क्षत्रियका वधकरके एकवृष और एकसहस्र १००० गौओंको भलीप्रकार वृतकोकरके ब्राह्मणोंकोदे १२७ ॥

त्र्यब्दंचरेद्वानियतोजटीब्रह्महणोव्रतम् । वसन्दूरतरेग्रामाद्वृक्षमूलनिकेतनः १२८ ॥

प० । त्र्यब्दं चरेत् वा नियतः जटी ब्रह्महणः व्रतं वसन्दूरतरे ग्रामात् वृक्षमूलनिकेतनः ॥

यो० । वा ग्रामात् दूरतरे वसन्—वृक्षमूलनिकेतनः जटी सन् त्र्यब्दं ब्रह्महणः व्रतं—चरेत् (कुर्यात्) ॥

भा० । अथवा इन्द्रियोंको वशमें रखकर और जटाधारणकरके ग्रामसेदूर वृक्षकेनीचे वसताहुआ ब्राह्मण ब्रह्महत्याके व्रतको तीनवर्षपर्यन्त क्षत्रियके वधमेंकरै ॥

ता० । अथवा इन्द्रियोंको वशमेंकरके और जटाधारीहोकर ग्रामसे दूरदेशमें किसी वृक्षकेनीचे कुटीबनाकर जो ब्रह्महत्यारेको इसे वचनके अनुसार बारहवर्षका व्रतकहाहै उसको तीनवर्षपर्यन्त करै—कदाचित् कोई यह शंकाकरै कि इसे वचनके अनुसार क्षत्रियके वधमें जो चौथाई प्रायश्चित्त कहाहै उसकेसंग पुनरुक्तिदोष होजायगा यहशंका ठीकनहीं है क्योंकि यह प्रायश्चित्त अज्ञानसे क्षत्रियके वधका है और इसमें शवके शिरकी ध्वजाआदिका धारण भी नहीं है इसीसे यह प्रायश्चित्त लघुहै १२८ ॥

एतदेवचरेदब्दंप्रायश्चित्तंद्विजोत्तमः । प्रमाप्यवैश्यंवृत्तस्थंदद्याच्चैकशतंगवाम् १२९ ॥

प० । एतत् एव चरेत् अब्दं प्रायश्चित्तं द्विजोत्तमः प्रमाप्य वैश्यं वृत्तस्थं दद्यात् च एकशतं गवाम् ॥

यो० । द्विजोत्तमः वृत्तस्थं वैश्यं प्रमाप्य एतत् एवव्रतं अब्दंचरेत् चपुनः एकशतं गवां दद्यात् ॥

भा० । ता० । साधुआचरणमें स्थित वैश्यका वधकरके भी द्विजोंमें उत्तम (ब्राह्मण) इसीव्रतको एकवर्ष पर्यन्तकरै और एकसौएक गौदे १२९ ॥

एतदेवव्रतंकृत्स्नंषण्मासाञ्छूद्रहाचरेत् । वृषभैकादशावापिदद्याद्विप्रायगाःसिताः १३० ॥

प० । एतत् एव व्रतं कृत्स्नं षण्मासान् शूद्रहा चरेत् वृषभैकादशाः वा अपि दद्यात् विप्राय गाः सिताः ॥

यो० । शूद्रहा (ब्राह्मणः) एतत् एव कृत्स्नं व्रतं षण्मासान् चरेत्—वा वृषभैकादशाः सिताः गाः विप्राय दद्यात् ॥

भा० । ता० । शूद्रका वधकरनेवाला ब्राह्मण भी इसी संपूर्णव्रतको छःमास पर्यंतकरै अथवा एकवृषभ और दशश्वेतगौ ब्राह्मणकोदे १३० ॥

मार्जारनकुलौहत्वाचाषंमण्डूकमेवच । श्वगोधोलूककाकांश्चशूद्रहत्याव्रतंचरेत् १३१ ॥

प० । मार्जारनकुलौ हत्वा चाषं मंडूकं एव च श्वगोधोलूककाकान् च शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ॥

यो० । मार्जारनकुलौ—चाषं चपुनः मंडूकं चपुनः श्वगोधोलूककाकान् हत्वा शूद्रहत्याव्रतंचरेत् ॥

भा० । बिलाव नोला—चाष मेंडक—कुत्ता गोधा—उल्लू—काक इनको हतकर शूद्र हत्याका व्रतकरै ॥

---

१ ब्रह्महाद्वादशसमाः कुटींकृत्वावनेवसेत् ॥
२ जटीदूरतरेग्रामाद्वृक्षमूलनिकेतनः ॥

ता० । बिलाव—नोला—चाष—मेंडक—कुत्ता—गोधा—उल्लू—और काक इनको मारकर शूद्रहत्याका प्रायश्चित्तकरै अर्थात् चांद्रायणकरै और जो शूद्रके वधमें षोडशभाग कहाहै वह न करै क्योंकि यह पाप लघु है और यह चांद्रायण भी उसीको करना जिसने जानकर वा पुनः २ मार्जार आदि का वध कियाहो १३१ ॥

पयःपिबेत्त्रिरात्रंवायोजनंवाऽध्वनोव्रजेत्।उपस्पृशेत्स्रवन्त्यांवासूक्तंवाब्दैवतंजपेत् १३२

प० । पयः पिबेत् त्रिरात्रं वा योजनं वा अध्वनः व्रजेत् उपस्पृशेत् स्रवंत्यां वा सूक्तं वा अब्दैवतं जपेत् ॥

यो० । वा त्रिरात्रं पयःपिबेत्— वा अध्वनः योजनं व्रजेत् —वा स्रवंत्यां (नद्यां) उपस्पृशेत् (स्नायात्) वा अब्दैवतं सूक्तं जपेत् —

भा० । बिलाव आदि के वधमें तीनरात्र तक दूधपीवे अथवा एक योजन तक गमनकरै—अथवा तीनदिन तक नदीमें स्नान करै अथवा आपोहिष्ठा इस मंत्रको तीनदिनतक जपे ॥

ता० । यदि अज्ञानसे बिलाव आदि का वधहोजाय तो तीनरात्रितक दूधपीवे—यदि मंदाग्नि होनेसे दुग्ध न पीसके तो तीन रात्रतक एक योजन (४ कोश) पर्यंत गमनकरै—यदि इसके करनेमें भी असमर्थ होय तो तीनदिन नदी में स्नानकरै यदि नदी में स्नान भी न करसके तो जल है देवता जिसका ऐसे सूक्त को तीन रात्रतक जपै—इन प्रायश्चित्तों में यथाक्रम उत्तर उत्तर को लघु होनेसे पूर्व २ न होसके तो उत्तर २ को ग्रहणकरै और विकल्प नहीं है अर्थात् अपनी इच्छाके अनुसार चाहै जिसको न करै १३२ ॥

अभ्रिंकार्ष्णायसींदद्यात्सर्पंहत्वाद्विजोत्तमः।पलालभारकंषण्ढेसैसकंचैकमाषकम् १३३

प० । अभ्रिं कार्ष्णायसीं दद्यात् सर्पं हत्वा द्विजोत्तमः पलालभारकं षंढे सैसकं च एकमाषकम् ॥

यो० । द्विजोत्तमः सर्पंहत्वा कार्ष्णायसीं अभ्रिं (लोहदण्डं) दद्यात्— षंढेहते पलालभारकं चपुनःएकमाषकं सैसकं-ब्राह्मणाय दद्यात् —

भा० । ता० । ब्राह्मण सर्पको हतकर ब्राह्मणको लोहेका दंडदे—और नपुंसक को मारकर एकपलाल (पयार) का भार और एक मापा सीसादे १३३ ॥

घृतकुम्भंवराहेतुतिलद्रोणंतुतित्तिरौ । शुकेद्विहायनंवत्संक्रौञ्चंहत्वात्रिहायनम् १३४

प० । घृतकुंभं वराहे तु तिलद्रोणं तु तित्तिरौ शुके द्विहायनं वत्सं क्रौंचं हत्वा त्रिहायनम् ॥

यो० । वराहेहते घृतकुंभं-तित्तिरौहते तिलद्रोणं—शुकेहतेद्विहायनं वत्सं—क्रौंचंहत्वा त्रिहायनं वत्सं ब्राह्मणाय दद्यात् ।

भा० । ता० । वराह (शूकर) के मारने पर घृतका घट—और तित्तिरके मारने पर द्रोणभर तिल शुक (तोता) के मारने पर दोवर्षका वत्स (बछडा)—और क्रौंच पक्षीके मारने पर तीनवर्षका बछडा ब्राह्मणको दानकरके दे १३४ ॥

हत्वाहंसंबलाकांचबकंबर्हिणमेवच।वानरंश्येनभासौचस्पर्शयेद्ब्राह्मणायगाम् १३५ ॥

प० । हत्वा हंसं बलाकां च बकं बर्हिणं एव च वानरं श्येनभासौ च स्पर्शयेत् ब्राह्मणाय गाम् ॥

---

१ ॐआपोहिष्ठामयोभुवस्तानः ऊर्जेदधातन: महेरणायचक्षसे योवःशिवतमोरसः तस्यभाजयतेहनः उशतीरिवमातरः तस्माअरंगमामव यस्यक्षयायजिन्वथ आपोजनयथाचनः ॥

यो० । हंसं-बलाकां-बकं-बर्हिणं-वानरं-चपुनः श्येनभासौ हत्वा ब्राह्मणाय गां स्पर्शयेत् (दद्यात्) ॥

भा० । ता० । हंस-बगलोंकी पंक्ति-बगला-मोर-वानर-श्येन (बाज) और भास इनको मारकर ब्राह्मणको एक गौ दे १३५ ॥

वासोदद्याद्धयंहत्वापञ्चनीलान्वृषान्गजम् । अजमेषावनड्वाहंखरंहत्वैकहायनम् १३६ ॥

प० । वासः दद्यात् हयं हत्वा पंच नीलान् वृषान् गजं अजमेषौ अनड्वाहं खरं हत्वा एकहायनम् ॥

यो० । हयंहत्वावासः-गजंहत्वा पंचनीलानवृषान्-अनडुवाहंहत्वा अजमेषौ-खरंहत्वा एकहायनं वत्सं-दद्यात् ॥

भा० । ता० । घोडेको हतकर वस्त्रको-हाथी को हतकर पांच नीले वृषों (बैल) को और वृषको हतकर बकरी वा भेडको-और गधेको हतकर एक वर्षके वत्सको-ब्राह्मणको दे १३६ ॥

क्रव्यादांस्तुमृगान्हत्वाधेनुंदद्यात्पयस्विनीम् । अक्रव्यादान्वत्सतरीमुष्ट्रंहत्वातुकृष्णलम् १३७

प० । क्रव्यादान् तु मृगान् हत्वा धेनुं दद्यात् पयस्विनीं अक्रव्यादान् वत्सतरीं उष्ट्रं हत्वा तु कृष्णलम् ॥

यो० । क्रव्यादान् मृगान् हत्वा पयस्विनीं धेनुं दद्यात् अक्रव्यादान मृगानहत्वा वत्सतरीं-उष्ट्रं हत्वा कृष्णलं दद्यात् ॥

भा० । ता० । कच्चेमांसके भक्षण करनेवाले व्याघ्रआदि मृगोंको मारकर अधिक दूधदेती गौको दे-और कच्चेमांसके भक्षणको न करनेवाले हरिणआदि मृगोंको मारकर वत्सतरी (जो ब्याईनहो परन्तु समर्थहो) और ऊंटको हतकर सुवर्णका कृष्णल (एकरत्ती) दे १३७ ॥

जीनकार्मुकबस्तावीन्पृथग्दद्याद्विशुद्धये । चतुर्णामपिवर्णानांनारीर्हत्वाऽनवस्थिताः १३८

प० । जीनकार्मुकबस्तावीन् पृथक् दद्यात् विशुद्धये चतुर्णां अपि वर्णानां नारीः हत्वा अनवस्थिताः ॥

यो० । चतुर्णां अपि वर्णानां अनवस्थिताः (व्यभिचारिणीः) नारीः हत्वा जीनकार्मुकबस्तावीन विशुद्धये पृथक् २ दद्यात् ॥

भा० । ता० । जो ब्राह्मणआदि चारोंवर्णोंकी स्त्री उत्तम अधम मनुष्योंके संग व्यभिचारसे दुष्टहों उनको मारकर ब्राह्मणआदि क्रमसे जीन (चर्मकापुट) धनुष-बकरी-और भेड़-इनचारोंकोदे अर्थात् ब्राह्मणीको हतकर जीन-क्षत्रियाको हतकर धनुष-वैश्याको हतकर बकरी-और शूद्राको हतकर भेड़कोदे १३८ ॥

दानेनवधनिर्णेकंसर्पादीनामशक्नुवन् । एकैकशश्चरेत्कृच्छ्रंद्विजःपापापनुत्तये १३९ ॥

प० दानेन वधनिर्णेकं सर्पादीनां अशक्नुवन् एकैकशः चरेत् कृच्छ्रं द्विजः पापापनुत्तये ॥

यो० । सर्पादीनां वधनिर्णेकं दानेन अशक्नुवन् द्विजः पापापनुत्तये एकैकशः कृच्छ्रं चरेत् ॥

भा० । ता० । लोहदण्ड आदिके न हांनेसे सर्पआदिकी हत्याके प्रायश्चित्तके करनेको असमर्थ द्विज एक२ के वधमें प्राजापत्य कृच्छ्रको पापको दूरकरनेकेलिये करै १३९ ॥

अस्थिमतांतुसत्त्वानांसहस्रस्यप्रमापणे । पूर्णेचानस्यनस्थ्नांतुशूद्रहत्याव्रतंचरेत् १४० ॥

प० । अस्थिमतां तु सत्त्वानां सहस्रस्य प्रमापणे पूर्णे च अनसि अनस्थ्नां तु शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ॥

यो० । अस्थिमतां सत्त्वानां सहस्रस्यप्रमापणेसति चपुनः प्रमापितानां अनस्थ्नां अनसिपूर्णेसति शूद्रहत्याव्रतंचरेत् ॥

भा० । ता० । अस्थि (हड्डी) वाले रुकलाख (कर्केटाआदि) क्षुद्रजीवोंको एकसहस्र मारनेपर और जो अस्थिवाले नहीं हैं उनको एकगाडेभर नष्टकरके शूद्रहत्याका प्रायश्चित्तकरै १४० ॥

किञ्चिदेवतुविप्रायदद्यादस्थिमतांवधे । अनस्थ्नांचैवहिंसायांप्राणायामेनशुद्ध्यति १४१ ॥

प० । किंचित् एवं तु विप्राय दद्यात् अस्थिमतां वधे अनस्थ्नां चै एवं हिंसायां प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥

यो० । अस्थिमतांवधे किंचित् एवदद्यात् चपुनः अनस्थ्नां हिंसायां प्राणायामेनशुद्ध्यति ॥

भा० । अस्थिवाले जीवोंके वधमें ब्राह्मणको यत्किंचित्हीदे और जिनमें अस्थिनहीं हैं उनकी हिंसाकरनेपर प्राणायाम करनेसे शुद्धिहोतीहै ॥

ता० । अस्थिवाले कर्केटाआदि जो क्षुद्रजीव हैं उनके वधमें यत्किंचित्ही ब्राह्मणकोदे अर्थात् इस[1] वचनके अनुसार सुवर्णका एकपणदे और जिनजीवोंके देहमें अस्थिनहीं हैं ऐसे जूं और मच्छर आदिकी हिंसामें प्राणायाम करनेसे शुद्धहोताहै अर्थात् इस[2] वसिष्ठजीके वचनानुसार ७ व्याहृति ॐकार और शिरोमन्त्र सहित गायत्रीको प्राणोंको रोककर तीनबार पढ़नेसे शुद्धहोताहै १४१ ॥

फलदानांतुवृक्षाणांछेदनेजप्यमृक्शतम् । गुल्मवल्लीलतानांचपुष्पितानांचवीरुधाम् १४२॥

प० । फलदानां तु वृक्षाणां छेदने जप्यम् ऋक्शतम् गुल्मवल्लीलतानां चै पुष्पितानां चैवीरुधाम्॥

यो० । फलदानां वृक्षाणां चपुनः गुल्मवल्लीलतानां चपुनः पुष्पितानां वीरुधांछेदनेसति ऋक्शतं जप्यम्(जपनीयम्)

भा० । फलदेनेवाले वृक्ष—गुल्म—वल्ली—लता—और पुष्पवाले कूष्माण्डआदि वीरुध इनसबके छेदनमें गायत्रीआदि ऋचाओंको एकशतवारजपै ॥

ता० । फलदेनेवाले वृक्ष (आम्रआदि) और गुल्म (कुब्जक) अंगूरआदि वल्ली (गिलोह आदि) और लता वृक्षआदिकी शाखापर चढ़नेवाली (गिलोहआदि) और पुष्पवाले वीरुध (कूष्माण्डआदि इनसबके छेदनकरनेमें गायत्रीआदि ऋचाओंको एकशतवारजपै यद्यपि इस[3] वचनसे इंधनकेलिये हरेवृक्षके काटनेको उपपात कहाहै और उसका प्रायश्चित्त भी अधिककहाहै तथापि इन फलदेनेवाले वृक्षोंके छेदनका यहलघु प्रायश्चित्त अज्ञानसे एकबार छेदनकरनेमें समझना १४२॥

अन्नाद्यजानांसत्वानांरसजानांचसर्वशः । फलपुष्पोद्भवानांचघृतप्राशोविशोधनम् १४३ ॥

प० । अन्नाद्यजानां सत्वानां रसजानां चै सर्वशः फलपुष्पोद्भवानां चै घृतप्राशः विशोधनम् ॥

यो० । अन्नाद्यजानां चपुनः रसजानां चपुनः फलपुष्पोद्भवानां सत्वानां सर्वशः वधेसति घृतप्राशः विशोधनं भवति ॥

भा० । ता० । अन्नआदिमें उत्पन्न औररस(गुडआदि)फल (गूलरआदि) और फूल (महुआआदि) इनमें उत्पन्न जीवोंके वधकी शुद्धि घृतभक्षण कहीहै १४३ ॥

---

१ अस्थिमतांवधे पणोदेयः सुवर्णस्य ॥

२ (सव्याहृतिकांसप्रणवांसावित्रींशिरसासह । त्रिःपठेदायतप्राणःप्राणायामःसउच्यते) अर्थात् ॐभूः ॐभुवः ॐस्वः ॐमहः ॐजनः ॐतपः ॐसत्यं ॐतत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्यधीमहिधियोयोनःप्रचोदयात् ॐआपोज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवःस्वरोम् ॥

३ इन्धनार्थमशुष्काणांद्रुमाणामवपातनम् ॥

कृष्टजानामोषधीनांजातानांचस्वयंवने। वृथालम्भेनुगच्छेद्गांदिनमेकंपयोव्रतः १४४ ॥

प०। कृष्टजानां ओषधीनां जातानां च स्वयं वने वृथालंभे अनुगच्छेत् गां दिनं एकं पयोव्रतः ॥

यो०। कृष्टजानां चपुनः वनेस्वयंजातानां ओषधीनां वृथालंभेसति पयोव्रतःसन एकंदिनं गांअनुगच्छेत् ॥

भा०। ता०। कर्षण (जोतना)से उत्पन्न और वनमें स्वयंउत्पन्न औषधियोंके वृथा छेदनकरनेमें एकदिन पयोव्रत (दूधहीको पीना) होकर गौकेपीछे गमनकरै (अर्थात्चुगावे) १४४ ॥

एतैर्व्रतैरपोह्यंस्यादेनोहिंसासमुद्भवम्। ज्ञानाज्ञानकृतंकृत्स्नंशृणुतानाद्यभक्षणे १४५ ॥

प०। एतैः व्रतैः अपोह्यं स्यात् एनः हिंसासमुद्भवम् ज्ञानाज्ञानकृतं कृत्स्नं शृणुत अनाद्यभक्षणे ॥

यो०। ज्ञानाज्ञानकृतं हिंसासमुद्भवं कृत्स्नं एनः (पापं) एभिः (पूर्वोक्तैः) व्रतैः अपोह्यं (निवर्तनीयं) स्यात्-अनाद्य (अभक्ष्य) भक्षणे प्रायश्चित्तं यूयं शृणुत ॥

भा०। ता०। ज्ञान अथवा अज्ञानसे कीहुई हिंसासे उत्पन्नहुआ जो पापहै उस संपूर्णको इन पूर्वोक्त व्रतोंसे दूरकरै— अब अभक्ष्य भक्षणका प्रायश्चित्त तुमसुनो १४५ ॥

अज्ञानाद्वारुणींपीत्वासंस्कारेणैवशुद्ध्यति। मतिपूर्वमनिर्देश्यंप्राणान्तिकमितिस्थितिः १४६

प०। अज्ञानात् वारुणीं पीत्वा संस्कारेण एव शुद्ध्यति— मतिपूर्वं अनिर्देश्यं प्राणांतिकं इति स्थितिः ॥

यो०। मनुष्यः अज्ञानात् वारुणीं पीत्वा संस्कारेण एव शुद्ध्यति—मतिपूर्वं मद्यपाने प्राणांतिकं अनिर्देश्यं इतिस्थितिः (शास्त्रमर्यादा) अस्ति ॥

भा०। अज्ञानसे वारुणी मदिराको पीकर संस्कारके करनेसेही शुद्धहोता है और यदि जानकर मदिराका पानकरै तो विनाकहे प्राणान्तिक (मरण) प्रायश्चित्तहै यही शास्त्रकी मर्यादाहै ॥

ता०। महापातकप्रकरणके व्यवधानसे यहवचन पढ़ाहै इससे यहवचन मुख्यपैष्टी सुराविषयक नहींहै किंतु पैष्टीसेइतर सुराका निषेधकहै—तिन सुराओंमें इसे वचनसे सब सुराओंकी साम्यता जो कहीहै वह इतर मदिराओंकी अपेक्षा ब्राह्मणका प्रायश्चित्तकी अधिकताकेलिये है—और गौडी माध्वी मदिराको पीकर गौतमऋषिके कहेहुये तप्तकृच्छ्र करनेकेअनंतर पुनः संस्कारसे शुद्धिहोती है क्योंकि गौतमऋषिने इसे वचनसे यहकहाहै कि अज्ञानसे मदिराके पीनेमें प्रतिदिन दूध-घी-जल- वायु इनके भक्षणसे तप्तकृच्छ्र करावे औरफिर इस पीनेवालेका संस्कारकरै— और भविष्य पुराणमैंभी यही व्याख्यान इसे वचनसेकियाहै किहेराजन् अज्ञानसे गौडी और माध्वी मदिराओं के पानकरनेमें गौतमऋषिके वचनानुसार तप्तकृच्छ्रकरै और जानकर पैष्टीमदिरासे इतर मदिरा के पीनेमें प्राणांतिक अनिर्देश्य प्रायश्चित्तहै अर्थात् विनाकहे मरणही प्रायश्चित्तहै यही शास्त्रकीमर्यादाहै और तिसीप्रकार गौडी और माध्वी मदिराओंको ज्ञानसे पीकर मरणका निषेध है और इतर मदिराओंकी अपेक्षा गुरुप्रायश्चित्तहोनेसे वही मनुका कहाहुआ प्रायश्चित्त करना जो इसेवचनसे

---

१ यथैवैकातथासर्वा ॥

२ अमत्यामद्यपाने पयोघृतमुदकंवायुं प्रत्यहंतप्तकृच्छ्रः ततोस्यसंस्कारः ॥

३ अकामतःकृतेपानेगौडीमाध्व्योर्नराधिप। तप्तकृच्छ्रविधानंस्याद्गौतमेनयथोदितम् ॥

४ कणान्वाभक्षयेदब्दम् ।

वर्षपर्यंत कणोंका भक्षण कहाहै इसीसे ज्ञानकर गौडी और माध्वीके वारंवार पीनेमें भविष्यपुराण में इस वचनसे यह प्रायश्चित्त कहाहै कि इसमें भी मनुकाकहाही प्रायश्चित्त करै वा एकवर्ष पर्यंत तंडुलोंके कण वा तिलोंकी खल रात्रिमें एकवार भक्षणकरै और मदिरापीनेके पाप दूरकरनेकेलिये बालोंकेवस्त्र जटा और ध्वजा इनको धारणकरै–और पैष्टी–गौडी–माध्वीसे भिन्न जो पुलस्त्यऋषि की कहीहुई ९ प्रकारकी (पानसआदि) मदिराओंके पानमें संस्कारमात्रही लघु प्रायश्चित्त करना अथवा अन्य कोई लघुप्रायश्चित्त करना ब्राह्मणको युक्तहै और जानकर पानसआदि मदिराओंके पानमें इस भविष्यपुराणके वचनानुसार यह प्रायश्चित्तकरै कि हे गुहजानकर सुराको पीकर कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र और पुनः संस्कारको करै–अथवा इतर मुनियोंके कहेहुये प्रायश्चित्तको करै १४६ ॥

अपःसुराभाजनस्थामद्यभाण्डस्थितास्तथा॥पञ्चरात्रंपिबेत्पीत्वाशङ्खपुष्पीश्रितंपयः १४७॥

प० । अपः सुराभाजनस्थाः मद्यभाण्डस्थिताः तथा पंचरात्रं पिबेत् पीत्वा शंखपुष्पीश्रितं पयः ॥

यो० । सुराभाजनस्थाः तथामद्यभांडस्थिताः अपः पीत्वा–शंखपुष्पीश्रितंपयः (दुग्धं) पंचरात्रं पिबेत् ॥

भा०।सुरा तथा मद्यके पात्रमें स्थितजलोंको पीकर शंखपुष्पीसे पकेहुये दूधकोपांचरात्रतकपीवे॥

ता० । पैष्टीसुराके पात्रमें अथवा पैष्टीसे इतर मदिराके पात्रमें स्थित और मदिराके रस वा गंध से वर्जित जलको पीकर शंखपुष्पी औषधिको डारकर पय (दूध) को पांचरात्रितक पीवे–इसश्लोक में पयःपदसे इस बौधायनऋषिके वचनानुसार दूधका ग्रहणहै कि शंखपुष्पीसे पकेहुये दूधसेवर्तै–सुरा और मदिरा इनदोनोंका प्रायश्चित्त सर्वत्र क्रमसे गुरु और लघुहै यहांभी ज्ञान और अज्ञानके भेदसे प्रायश्चित्तकी न्यूनता वा अधिकता समझनी–और मेधातिथिने तो यहकहाहै कि वही प्राय-श्चित्तकरै जो शास्त्रके वचनोंसे प्रतीतहो १४७ ॥

स्पृष्ट्वादत्वाचमदिरांविधिवत्प्रतिगृह्यच । शूद्रोच्छिष्टाश्चपीत्वापःकुशवारिपिबेत्त्र्यहम् १४८॥

प० । स्पृष्ट्वा दत्वा च मदिरां विधिवत् प्रतिगृह्य च शूद्रोच्छिष्टाः च पीत्वा अपः कुशवारि पिबेत् त्र्यहम् ॥

यो० । ब्राह्मणः मदिरां स्पृष्ट्वा–दत्वा –चपुनः विधिवत् प्रतिगृह्य– चपुनः शूद्रोच्छिष्टाः अपः पीत्वा– त्र्यहं कुशवारिपिबेत्॥

भा० । ता० । ब्राह्मण मदिराका स्पर्श और दानकरके और विधिसे प्रतिग्रहलेकर और शूद्रके उच्छिष्टजलको पीकर कुशाओंसे पकेहुये जलको तीनदिनपर्यन्त पीवे १४८ ॥

ब्राह्मणस्तुसुरापस्यगन्धमाघ्रायसोमपः।प्राणानप्सुत्रिरायम्यघृतंप्राश्यविशुद्ध्यति १४९ ॥

प० ।ब्राह्मणः तु सुरापस्य गंधं आघ्राय सोमपः प्राणान् अप्सु त्रिः आयम्य घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति॥

यो० । सोमपः ब्राह्मणः सुरापस्य गंधं आघ्राय–अप्सु प्राणान त्रिः आयम्य–घृतंप्राश्य विशुद्ध्यति ॥

भा० । ता० । सोमयज्ञ करनेवाला ब्राह्मण सुरापीनेवालेके मुखकी गन्धको सूंघकर तीनवार जलोंमें प्राणायामकरनेके अनन्तर घृतके भक्षणसे शुद्धहोताहै १४९ ॥

---

१ यद्वास्मिन्नेवविषयेमानवीयंमकल्पयेत् । कणान्वाभक्षयेदब्दंपिण्याकंवासकृन्निशि ॥ सुरापापापनुत्यर्थं बालवासा जटीध्वजी ॥

२ मतिपूर्वसुरापानेकृतेवैज्ञानतोगुह । कृच्छ्रातिकृच्छ्रौभवतःपुनःसंस्कारएवहि॥

३ शंखपुष्पीविपक्वेनक्षीरेणवर्त्तयेत् ॥

अज्ञानात्प्राश्यविण्मूत्रंसुरासंस्पृष्टमेवच।पुनःसंस्कारमर्हन्तित्रयोवर्णाद्विजातयः १५० ॥

प० । अज्ञानात् प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंस्पृष्टं एवं च पुनः संस्कारं अर्हंति त्रयः वर्णाः द्विजातयः ॥

यो० । द्विजातयः त्रयः वर्णाः अज्ञानात् विण्मूत्रं चपुनः सुरासंस्पृष्टं प्राश्य (भक्षयित्वा) पुनः संस्कारं अर्हंति ॥

भा० । ता० । तीनों द्विजातिवर्ण अज्ञानसे विष्ठा अथवा मूत्र और जिसमें सुराका स्पर्शहुआहो वह पदार्थ भक्षणकरके पुनः संस्कार (जनेउ) के योग्यहोतेहैं १५० ॥

वपनंमेखलादण्डोभैक्षचर्याव्रतानिच।निवर्तन्तेद्विजातीनांपुनःसंस्कारकर्मणि १५१ ॥

प० । वपनं मेखला दंडः भैक्षचर्या व्रतानि चं निवर्तंते द्विजातीनां पुनः संस्कारकर्मणि ॥

यो० । द्विजातीनां पुनः संस्कारकर्मणि वपनं मेखला दंडः भैक्षचर्या–चपुनः व्रतानि–निवर्तंते (न भवंति) ॥

भा० । ता० । तीनों द्विजातियोंके पुनः संस्काररूप कर्म में वपन (शिरका मुंडन) मेखला और दंडका धारण–भिक्षा का आचरण और मधु मांस–स्त्रीका त्याग आदि जो व्रत ब्रह्मचारी को कहेहैं वे सब व्रत–अर्थात् प्रायश्चित्त निवृत्त होजाते हैं अर्थात् पुनः उपनयन में इनको न करै किंतु केवल होम और गायत्री का उपदेश ही होताहै १५१ ॥

अभोज्यानांतुभुक्त्वान्नंस्त्रीशूद्रोच्छिष्टमेवच।जग्ध्वामांसमभक्ष्यंचसप्तरात्रंयवान्पिबेत् १५२ ॥

प० । अभोज्यानां तुं भुक्त्वा अन्नं स्त्रीशूद्रोच्छिष्टं एवं चं जग्ध्वा मांसं अभक्ष्यं चं सप्तरात्रं यवान् पिबेत् ॥

यो० । अभोज्यानां अन्नं चपुनः स्त्रीशूद्रोच्छिष्टं भुक्त्वा चपुनः अभक्ष्यं मांसं जग्ध्वा सप्तरात्रं यवान् पिबेत् ॥

भा० । जिनका अन्न अभक्ष्य है उनके अन्नको और द्विजातियों की स्त्री और शूद्रके उच्छिष्टको– और शूकर आदि के अभक्ष्य मांसको भक्षण करके सातरात्रि तक जौ को पीवे ॥

ता० । जिनका अन्न भक्षण के योग्य नहीं है उनके अन्नका और द्विजातियों की स्त्री और शूद्र इनके उच्छिष्टका भक्षण करके क्योंकि इस[1] वचनसे वेदपाठी से भिन्नकी कीहुई यज्ञमें भोजन का निषेध है–और कच्चेमांस के भक्षक शूकर ऊंट आदि के अभक्ष्य मांसका भक्षण करके सातरात्र तक यवोंको पीवे अर्थात् जल मिले सत्तू अथवा जौकी लप्सी पीवे और चौथे अध्यायमें इसका प्रायश्चित्त यह कहा है कि जानकर इनका भक्षण करै तो कृच्छ्रकरै[2] उसके संग इस प्रायश्चित्तका विकल्प है अर्थात् करनेवाले की शक्ति के अनुसार इनमें से एक कोई प्रायश्चित्त कराना १५२ ॥

शुक्तानिचकषायांश्चपीत्वामेध्यान्यपिद्विजः।तावद्भवत्यप्रयतोयावत्तन्नव्रजत्यधः१५३॥

प० । शुक्तानि चं कषायान् चं पीत्वा मेध्यानि अपि द्विजः तावत् भवति अप्रयतः यावत् तत् न व्रजति अधः ॥

यो० । मेध्यानि अपि शुक्तानि चपुनः कषायान् द्विजः पीत्वा तावत् अप्रयतः (अशुद्धः) भवति यावत् तत् अधः न व्रजति ॥

---

१ नाऽश्रोत्रियकृतेयज्ञे ॥
२ मत्याभुक्त्वाचरेत्कृच्छ्रम् ॥

भा० । ता० । जो स्वभावसे मधुर रस काल के योगसे अम्ल होजायँ उनको शुक्त कहते हैं उनको और विभीतक (बहेडा) आदि के कषायों (क्वाथ) को द्विज—पीकर तबतक अशुद्ध होताहै जबतक वह नीचे नहीं गिरता अर्थात् जठराग्निसे पककर मूत्रहोकर नहीं निकसता १५३ ॥

विड्वराहखरोष्ट्राणांगोमायोःकपिकाकयोः । प्राश्यमूत्रपुरीषाणिद्विजश्चान्द्रायणंचरेत् १५४॥

प० । विड्वराहखरोष्ट्राणां गोमायोः कपिकाकयोः प्राश्य मूत्रपुरीषाणि द्विजः चांद्रायणं चरेत् ॥

यो० । द्विजः विड्वराहखरोष्ट्राणां कपिकाकयोः मूत्रपुरीषाणि प्राश्य—चांद्रायणं चरेत् (कुर्यात्) ॥

भा० । ता० । ग्रामका सूकर—खर—ऊंट—वानर—काक—इनके मूत्र और विष्ठाको भक्षण करके द्विज चांद्रायणव्रत करै—और इसे वचनसे जानकर वराहके भक्षणको करके सांतपन कृच्छ्र पांचवें अध्यायमें जो कहा है वह अभ्यास (वारंवार) के विषय है और अज्ञानसे एकवार भक्षण में है इससे कुछ विरोध नहीं है १५४ ॥

शुष्काणिभुक्त्वामांसानिभौमानिकवकानिच । अज्ञातंचैवसूनास्थमेतदेवव्रतंचरेत् १५५ ॥

प० । शुष्काणि भुक्त्वा मांसानि भौमानि कवकानि च अज्ञातं च एवं सूनास्थं एतत् एवं व्रतं चरेत् ॥

यो० । शुष्काणि मांसानि चपुनः भौमानि कवकानि—चपुनः अज्ञातं सूनास्थं मांसं भुक्त्वा द्विजः एतत् एव (चांद्रायणं) व्रतं चरेत् (कुर्यात्) ॥

भा० । ता० । वायु आदि से शुष्क मांस और भूमिमें पैदाहुये कवक (छत्राक) और भक्ष्य है वा अभक्ष्य है इसप्रकारसे नहीं जानाजाय वह सूना (हिंसक की दुकान) में रक्खाहुआ मांस—इन सब को भक्षण करके द्विज यही चांद्रायण व्रत करै—यहां छत्राक सबप्रकार का लेना क्योंकि इसे वचनसे यही प्रतीत होताहै कि भूमि वा वृक्षपर पैदाहुये छत्राक का जो भक्षण करते हैं उनको ब्रह्महत्यारे जाने १५५ ॥

क्रव्यादसूकरोष्ट्राणांकुक्कुटानांचभक्षणे । नरकाकखराणांचतप्तकृच्छ्रंविशोधनम् १५६ ॥

प० । क्रव्यादसूकरोष्ट्राणां कुक्कुटानां च भक्षणे नरकाकखराणां च तप्तकृच्छ्रं विशोधनम् ॥

यो० । क्रव्यादसूकरोष्ट्राणां चपुनः कुक्कुटानां चपुनः नरकाकखराणां भक्षणे तप्तकृच्छ्रं विशोधनं भवति ॥

भा० । ता० । कच्चेमांसके भक्षणकरनेवाले पक्षी सूकर—ऊंट—कुक्कुट (मुरगा) और मनुष्य—काक—खर—इनके जानकर भक्षणका विशोधन (प्रायश्चित्त) तप्तकृच्छ्रहै १५६ ॥

मासिकान्नंतुयोऽश्नीयादसमावर्तकोद्विजः । सत्रीण्यहान्युपवसेदेकाहंचोदकेवसेत् १५७ ॥

प० । मासिकान्नं तु यः अश्नीयात् असमावर्तकः द्विजः सः त्रीणि अहानि उपवसेत् एकाहं च उदके वसेत् ॥

यो० । यः असमावर्तकः (ब्रह्मचारी) द्विजः मासिकान्नं अश्नीयात् सः त्रीणि अहानि उपवसेत् चपुनः एकाहं उदके वसेत् ॥

---

१ छत्राकंविड्वराहंच ॥

२ भूमिजंवावृक्षजंवाछत्राकंभक्षयंतिये।ब्रह्मघ्नांस्तान्विजानीयात् ॥

भा० । ता० । जो ब्रह्मचारी द्विज मासिकश्राद्धका अन्न भक्षण–सपिंडी करनेसे पहिले करताहै वह तीनरात्र उपवासकरै और उनही तीनदिनोंमेंसे एकदिन जलमेंवसै १५७ ॥

ब्रह्मचारीतुयोऽश्नीयान्मधुमांसंकथंचन । सकृत्वाप्राकृतंकृच्छ्रंव्रतशेषंसमापयेत् १५८ ॥

प० । ब्रह्मचारी तु यः अश्नीयात् मधु मांसं कथंचन सः कृत्वा प्राकृतं कृच्छ्रं व्रतशेषं समापयेत् ॥

यो० । यः ब्रह्मचारी कथंचन मधु मांसं–अश्नीयात् सः प्राकृतंकृच्छ्रंकृत्वा व्रतशेषं समापयेत् ॥

भा० । ता० । जो ब्रह्मचारी कथंचन (किसीप्रकार अज्ञानसे) आपत्कालमें–मधु (सहत) और मांसको भक्षणकरै–वह प्राकृत (प्राजापत्य) कृच्छ्रको करके–ब्रह्मचर्यके शेष व्रतको समाप्त करै १५८ ॥

बिडालकाकाखूच्छिष्टंजग्ध्वाश्वनकुलस्यच । केशकीटावपन्नंचपिबेद्ब्रह्मसुवर्चलाम् १५९ ॥

प० । बिडालकाकाखूच्छिष्टं जग्ध्वा श्वनकुलस्य च केशकीटावपन्नं च पिबेत् ब्रह्मसुवर्चलाम् ॥

यो० । ब्रह्मचारी बिडालकाकाखूच्छिष्टं चपुनः श्वनकुलस्य उच्छिष्टं चपुनः केशकीटावपन्नं–जग्ध्वा ब्रह्मसुवर्चलां पिबेत् ॥

भा० । ता० । बिडाल काक–मूसा–कुत्ता–नौला–इनके उच्छिष्ट (जूंठा) को और केश और कीटसे जो अवपन्न (दुष्ट) हो उसअन्नको–मिट्टी भस्मआदिके गेरनेसे शुद्धिकियेविना भक्षणकरके ब्रह्मसुवर्चला औषधके क्वाथका जलपीवे १५९ ॥

अभोज्यमन्नंनात्तव्यमात्मनःशुद्धिमिच्छता । अज्ञानभुक्तंतूत्तार्यंशोध्यंवाऽप्याशुशोधनैः १६० ॥

प० । अभोज्यं अन्नं न अत्तव्यम् आत्मनः शुद्धिं इच्छता अज्ञानभुक्तं तु उत्तार्यं शोध्यं वा अपि आशु शोधनैः ॥

यो० । आत्मनः शुद्धिं इच्छता द्विजेन अभोज्यं अन्नं न अत्तव्यं–अज्ञानभुक्तं तु उत्तार्यं (वमनीयं) वा शोधनीयैः आशु शोध्यं ॥

भा० । ता० । अपनी शुद्धिको चाहताहुआ द्विज अभोज्य (निषिद्ध) अन्नको भक्षण न करै–यदि अज्ञानसे भक्षण करलियाहोय तो वमनकरदे–यदि वमन न होसके तो प्रायश्चित्तोंसे उसीसमय शुद्धकरै–और वमनकरनेमें तो लघु प्रायश्चित्तकरै–और जानकर भक्षण कियाहोय तो पूर्वोक्त प्रायश्चित्तकरै १६० ॥

एषोऽनाद्यादनस्योक्तोव्रतानांविविधोविधिः । स्तेयदोषापहर्तॄणांव्रतानांश्रूयतांविधिः १६१ ॥

प० । एषः अनाद्यादनस्य उक्तः व्रतानां विविधः विधिः स्तेयदोषापहर्तॄणां व्रतानां श्रूयतां विधिः ॥

यो० । अनाद्यादनस्य व्रतानां विविधः एषः विधिः मयाउक्तः–स्तेयदोषापहर्तॄणां व्रतानां विविधः विधिः श्रूयताम् ॥

भा० । ता० । अभक्ष्यपदार्थ भक्षण के जितने प्रायश्चित्त हैं उनकी यह अनेकप्रकार की विधि मैंने कही–अब चोरीके दोषके हरनेवाले व्रतोंका विधान तुमसुनो १६१ ॥

धान्यान्नधनचौर्याणिकृत्वाकामाद्द्विजोत्तमः । स्वजातीयगृहादेवकृच्छ्राब्देनविशुद्ध्यति १६२ ॥

प० । धान्यान्नधनचौर्याणि कृत्वा कामात् द्विजोत्तमः स्वजातीयगृहात् एव कृच्छ्राब्देन विशुद्ध्यति

यो० । द्विजोत्तमः स्वजातीयगृहात् एव धान्यान्नधनचौर्याणि कामात् कृत्वा कृच्छ्राब्देनविशुद्ध्यति ॥

भा० । ता० । ब्राह्मण—ब्राह्मणकेही घरसे—धान्य अन्न धन इनकी चोरी को जानकर करके एक वर्ष पर्यंत कृच्छ्र (प्राजापत्यव्रत) करनेसे शुद्ध होताहै—और यह प्रायश्चित्त देश काल द्रव्य इनके प्रमाण और गुणोंके अनुसार न्यून वा अधिक समझना—और इसीप्रकार अग्रिम प्रायश्चित्तों में भी समझना १६२ ॥

मनुष्याणांतुहरणेस्त्रीणांक्षेत्रगृहस्यच । कूपवापीजलानांचशुद्धिश्चान्द्रायणंस्मृतम् १६३ ॥

प० । मनुष्याणां तुं हरणे स्त्रीणां क्षेत्रगृहस्य चं कूपवापीजलानां चं शुद्धिः चांद्रायणं स्मृतम् ॥

यो० । मनुष्याणां स्त्रीणां—क्षेत्रगृहस्य—चपुनः कूपवापीजलानां—हरणे कृते सति चांद्रायणं शुद्धिः मनुआदिभिः स्मृतम् ॥

भा० । ता० । मनुष्य—स्त्री—खेत—घर और कूप—बावड़ीकाजल—इनकी चोरीकरनेकी शुद्धि मनु आदिकों ने चांद्रायण कहीहै १६३ ॥

द्रव्याणामल्पसाराणांस्तेयंकृत्वाऽन्यवेश्मतः।चरेत्सांतपनंकृच्छ्रंतन्निर्यात्यात्मशुद्धये १६४ ॥

प० । द्रव्याणां अल्पसाराणां स्तेयं कृत्वा अन्यवेश्मतः चरेत् सांतपनं कृच्छ्रं तत् निर्यात्य आत्मशुद्धये ॥

यो० । अल्पसाराणां द्रव्याणां अन्यवेश्मतः स्तेयं कृत्वा तत् निर्यात्य (प्रत्यर्प्य) आत्मशुद्धये सांतपनं कृच्छ्रं चरेत् (कुर्यात्) ॥

भा० । ता० । अल्पहै मूल्य वा प्रयोजन जिनका ऐसे द्रव्यों (लाख सीसाआदि) की अन्य के घरमेंसे चोरीकरके उसद्रव्य का प्रत्यर्पण (लौटाना) करके अर्थात् द्रव्यके स्वामीको देकर अपनी शुद्धिके लिये सांतपनकृच्छ्र को करै—और यह स्वामी को द्रव्यका लौटाना सब द्रव्यों की चोरी में समझना १६४ ॥

भक्ष्यभोज्यापहरणेयानशय्यासनस्यच।पुष्पमूलफलानांचपञ्चगव्यंविशोधनम् १६५

प० । भक्ष्यभोज्यापहरणे यानशय्यासनस्य चं पुष्पमूलफलानां चं पंचगव्यं विशोधनम् ॥

यो० । भक्ष्यभोज्यापहरणे चपुनः यानशय्यासनस्य चपुनः पुष्पमूलफलानां अपहरणे कृते सति—पंचगव्यं विशोधनं भवति ॥

भा० । ता० । भक्ष्य (मोदकआदि) और भोज्य (पायस—खीर आदि) यान (सवारी रथआदि) शय्या आसन—पुष्प—मूल—और फल इनकीचोरीमें पंचगव्य पीनाही शुद्धिकहीहै १६५ ॥

तृणकाष्ठद्रुमाणांचशुष्कान्नस्यगुडस्यच । चैलचर्मामिषाणांचत्रिरात्रंस्यादभोजनम् १६६ ॥

प० । तृणकाष्ठद्रुमाणां चं शुष्कान्नस्य गुडस्य चं चैलचर्मामिषाणां चं त्रिरात्रं स्यात् अभोजनम् ॥

यो० । तृणकाष्ठद्रुमाणां—शुष्कान्नस्य—गुडस्य—चपुनः चैलचर्मामिषाणां—अपहरणे सति त्रिरात्रं अभोजनं प्रायश्चित्तं स्यात् ॥

भा० । ता० । तृण—काठ—वृक्ष—शुष्कअन्न—गुड़—वस्त्र—चर्म और मांस इनमेंसे एककी भी चोरी करने का प्रायश्चित्त तीनरात्र (दिन) उपवास है १६६ ॥

मणिमुक्ताप्रवालानांताम्रस्यरजतस्यच । अयःकांस्योपलानांचद्वादशाहंकणान्नता १६७॥

प० । मणिमुक्ताप्रवालानां ताम्रस्य रजतस्य चं अयःकांस्योपलानां चं द्वादशाहं कणान्नता ॥

यो० । मणिमुक्ताप्रवालानां—ताम्रस्य—चपुनः रजतस्य—चपुनः अयःकांस्योपलानां हरणे द्वादशाहं कणान्नता प्रायश्चित्तं भवेत् ॥

भा० । ता० । मणि—मोती—मूंगा—तांबा—चांदी—लोहा—कांसी—पत्थर—इनकी प्रत्येक चोरी का प्रायश्चित्त बारह दिन पर्यंत तंदुल के कणोंका भक्षण होताहै—और सबके प्रायश्चित्त में—देशकाल द्रव्य-स्वामी—के गुण दोषके अनुसार प्रायश्चित्त का भी न्यूनाधिक भाव समझना १६७ ॥

कार्पासकीटजोर्णानांद्विशफैकशफस्यच।पक्षिगन्धौषधीनांचरज्ज्वाश्चैवत्र्यहंपयः १६८

प० । कार्पासकीटजोर्णानां द्विशफैकशफस्य चं पक्षिगंधौषधीनां चं रज्ज्वाः चं एवं त्र्यहं पयः ॥

यो० । कार्पासकीटजोर्णानां—द्विशफैकशफस्य—पक्षिगंधौषधीनां—चपुनः रज्ज्वाः प्रत्येकं हरणे त्र्यहं पयः पानं शोधनं भवति ॥

भा० । ता० । कपडे—रेशम—ऊन—दोखुरोंवाले (गौ आदि) और एकखुरवाले (घोडा आदि) पशु और पक्षी गंध—और औषधी—और रज्जु इनकी चोरी करनेसे तीनदिनतक दूधका आहारकरै—यहां भी स्वामी और द्रव्यके गुण दोषके अनुसार प्रायश्चित्त की न्यूनाधिकता समझनी १६८ ॥

एतैर्व्रतैरपोहेतपापंस्तेयकृतंद्विजः। अगम्यागमनीयंतुव्रतैरेभिरपानुदेत् १६९ ॥

प० । एतैः व्रतैः अपोहेत पापं स्तेयकृतं द्विजः अगम्यागमनीयं तुं व्रतैः एभिः अपानुदेत् ॥

यो० । द्विजः स्तेयकृतं पापं एतैः (पूर्वोक्तैः) अपोहेत (दूरीकुर्वीत) अगम्यागमनीयं पापं तु एभिः (वक्ष्यमाणैः) व्रतैः अपानुदेत् ॥

भा० । ता० । चोरीसे पैदाहुये पापको द्विज इन पूर्वोक्त व्रतोंसे दूरकरै—और गमनकरनेके अयोग्य स्त्रीके संग गमनकरनेसे पैदाहुये पापको तो इन व्रतों (जो आगे कहते हैं) से दूरकरै १६९ ॥

गुरुतल्पव्रतंकुर्याद्रेतःसिक्त्वास्वयोनिषु।सख्युःपुत्रस्यचस्त्रीषुकुमारीष्वन्त्यजासुच १७०

प० । गुरुतल्पव्रतं कुर्यात् रेतः सिक्त्वा स्वयोनिषु सख्युः पुत्रस्य चं स्त्रीषुं कुमारीषुं अंत्यजासुं चं॥

यो० । स्वयोनिषु—चपुनः सख्युः वा पुत्रस्य स्त्रीषु—कुमारीषु चपुनः अंत्यजासु—रेतः (वीर्य) सिक्त्वा गुरुतल्पव्रतं कुर्यात् ॥

भा० । सोदरभगिनी—मित्र और पुत्रकी स्त्री—कुमारी—चांडाली इनमें वीर्य को सींचकर गुरुकी स्त्रीके गमनका जो प्रायश्चित्त है वह करै ॥

ता० । अपनी सोदर (सगी) भगिनी—और मित्र और पुत्रकी स्त्री—और कुमारी (जिसका विवाह न हुआ हो) और चांडाली इन प्रत्येक में वीर्यको सींचकर अर्थात् संगकरके वह प्रायश्चित्त करै जो गुरुकी स्त्रीके संग गमनका होताहै इस प्रायश्चित्त में भी जानकर वा वारंवार करनेपर मरणपर्यंत प्रायश्चित्त करना लिखा है क्योंकि यमऋषिने इस[1] वचनसे यह लिखाहै कि कुमारी चांडाली अंत्यजा—सपिंड और पुत्रकी स्त्री इनमें वीर्यको सींचकर प्राणोंका त्याग कहाहै और अज्ञानसे करै तो पूर्वोक्त प्रायश्चित्त से शुद्धि होती है १७० ॥

---

१ रेतःसिक्त्वाकुमारीषुचांडालीष्वंत्यजासुच । सपिंडापत्यदारेषुप्राणत्यागोविधीयते ॥

पैतृष्वसेयींभगिनींस्वस्त्रीयांमातुरेवच।मातुश्चभ्रातुस्तनयांगत्वाचान्द्रायणंचरेत् १७१ ॥

प० । पैतृष्वसेयीं भगिनीं स्वस्त्रीयां मातुः एवं च मातुः च भ्रातुः तनयां गत्वा चांद्रायणं चरेत् ॥

यो० । पैतृष्वसेयीं चपुनः मातृष्वसुः दुहितरं–भगिनीं–स्वस्त्रीयां (भागिनीपुत्रीं) मातुः चपुनः भ्रातुः तनयां (पुत्रीं) गत्वा चांद्रायणं चरेत् ॥

भा० । ता० । पिता और माताकी भगिनी और पुत्री और भगिनी की पुत्री–और माता और सोदरभाई की पुत्री इनके संग गमनकरके चांद्रायण व्रतकरै १७१ ॥

एतास्तिस्रस्तुभार्यार्थेनोपयच्छेत्तुबुद्धिमान्।ज्ञातित्वेनानुपेयास्ताःपततिह्युपयन्नधः १७२॥

प० । एताः तिस्रः तु भार्यार्थे न उपयच्छेत् तु बुद्धिमान् ज्ञातित्वेन अनुपेयाः ताः पतति हि उपयन् अधः ॥

यो० । एताः तिस्रः भार्यार्थे बुद्धिमान् न उपयच्छेत् (न उद्वहेत्) हि (यतः) ज्ञातित्वेन अनुपेयाः ताः उपयन् सन् अधः (नरके) पतति ॥

भा० । ता० । इन पूर्वोक्त पैतृष्वस्त्रेयी आदि तीनोंको बुद्धिमान् मनुष्य भार्यार्थ स्वीकार न करै अर्थात् इनको न विवाहै क्योंकि ये तीनों अपनी ज्ञातिहोनेसे विवाहनेके योग्य नहीं होतीं इससे इनको विवाहताहुआ मनुष्य नरक में जाताहै–यद्यपि इनके संग विवाहका निषेध पूर्वोक्त असपिंडा इस वचनसेही सिद्धथा पुनः इसलिये निषेध कहाहै कि दक्षिण देशमें जो इनके संग विवाहका प्रचार है वह ठीक नहीं है १७२ ॥

अमानुषीषुपुरुषउदक्यायामयोनिषु ।रेतःसिक्त्वाजलेचैवकृच्छ्रंसान्तपनंचरेत् १७३ ॥

प० । अमानुषीषु पुरुषः उदक्यायां अयोनिषु रेतः सिक्त्वा जले च एवं कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥

यो० । पुरुषः अमानुषीषु–उदक्यायां–अयोनिषु चपुनः जले रेतः सिक्त्वा सांतपनं कृच्छ्रं चरेत् ॥

भा० । ता० । मानुषीसे भिन्न (घोडी आदि) में और रजस्वलामें और योनिसे भिन्नमें–और जल में मनुष्य वीर्य को सींचकर सांतपन कृच्छ्रकरै–यहां मानुषीसे भिन्न घोडी आदि का ग्रहण है और गौ का नहीं–क्योंकि गौओंमें वीर्य सींचनेका प्रायश्चित्त इस वचनसे शंखलिखितने गुरु (अधिक) कहाहै कि गौओंमें वीर्य को सींचनेवाला एक वर्ष पर्यंत प्राजापत्य व्रतकरै १७३ ॥

मैथुनंतुसमासेव्यपुंसियोषितिवाद्विजः । गोयानेऽप्सुदिवाचैवसवासाःस्नानमाचरेत् १७४॥

प० । मैथुनं तु समासेव्य पुंसि योषिति वा द्विजः गोयाने अप्सु दिवा च एवं सवासाः स्नानं आचरेत् ॥

यो० । द्विजः पुंसि वा योषिति–गोयाने–अप्सु–चपुनः दिवा मैथुनं समासेव्य सवासाः स्नानं आचरेत्–(सचैलंस्नानं कुर्यात्) ॥

भा० । ता० । द्विजाति–जिस किसी स्थानमें पुरुषमें और स्त्री गौओंका यान–(रथ आदि) जल और दिन–में मैथुन का सेवनकरके वस्त्रों समेत स्नानकरै १७४ ॥

चण्डालान्त्यस्त्रियोगत्वाभुक्त्वाचप्रतिगृह्यच।पतत्यज्ञानतोविप्रोज्ञानात्साम्यंतुगच्छति १७५

प० । चंडालांत्यस्त्रियः गत्वा भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च पतति अज्ञानतः विप्रः ज्ञानात् साम्यं तु गच्छति ॥

यो० । विप्रः अज्ञानतः चंडालांत्यस्त्रियः गत्वा–भुक्त्वा–चपुनः प्रतिगृह्य पतति ज्ञानात् गत्वा–भुक्त्वा–प्रतिगृह्य तु–साम्यं गच्छति ॥

भा० । ता० । ब्राह्मण जानकर चांडाल–अंत्यजोंकी स्त्रियोंके संग गमनकरके अथवा इनके अन्न को भक्षणकरके अथवा इनसे प्रतिग्रह लेकर पतित होताहै अर्थात् इस पापके प्रायश्चित्त से पुनः ब्राह्मण होसक्ता है और यह भी गुरुहोनेसे वहां समझना जहां वारंवार भोजन आदि किये हों–और जानकर तो इनके संगकोकरके इनकेही समानहोजाताहै–यह भी अधिक प्रायश्चित्तकेलिये है १७५ ॥

विप्रदुष्टांस्त्रियंभर्त्तानिरुन्ध्यादेकवेश्मनि । यत्पुंसःपरदारेषुतच्चैनांकारयेद्व्रतम् १७६ ॥

प० । विप्रदुष्टां स्त्रियं भर्ता निरुंध्यात् एकवेश्मनि यत् पुंसः परदारेषु तत् च एनां कारयेत् व्रतम् ॥

यो० । भर्त्ता विप्रदुष्टां स्त्रियं एकवेश्मनि निरुंध्यात् चपुनः पुंसः परदारेषु यत् व्रतं उक्तं तत् व्रतं एनां कारयेत् ॥

भा० । ता० । विशेषकर दुष्टस्त्री (व्यभिचारिणी) को भर्त्ता एकघरमें धारणकरै (रोकै) क्योंकि इस वचनसे यहकहाहै कि पति स्त्री कार्योंसे निवृत्तकरके नियमसे बँधीहुई के समान रक्खै–और जो प्रायश्चित्त पुरुषको सजातीय स्त्रीगमनमें कहाहै वही प्रायश्चित्त इससेकरावे–और वसिष्ठआदिकोंने जो इस वचनसे आधाप्रायश्चित्त कहाहै वह अज्ञानसे व्यभिचारमें करै १७६ ॥

साचेत्पुनःप्रदुष्येत्तुसदृशेनोपयन्त्रिता । कृच्छ्रंचान्द्रायणंचैवतदस्याःपावनंस्मृतम् १७७ ॥

प० । सा चेत् पुनः प्रदुष्येत् तु सदृशेन उपयंत्रिता कृच्छ्रं चांद्रायणं च एव तत् अस्याः पावनं स्मृतम् ॥

यो० । चेत् (यदि) सदृशेन–उपयंत्रिता सती सा स्त्री पुनः प्रदुष्येत् तत् (तदा) कृच्छ्रं चपुनः चांद्रायणं अस्याः पावनं मन्वादिभिः स्मृतम् ॥

भा० । ता० । यदि सजातीय गमनसे एकवार दूषित वह स्त्री–सजातीयकी प्रार्थनासे पुनः दूषित होजाय तो उससमय इसका प्रायश्चित्त मनुआदिकों ने कृच्छ्र वा चांद्रायण कहाहै १७७ ॥

यत्करोत्येकरात्रेणवृषलीसेवनाद्द्विजः । तद्भैक्षभुग्जपन्नित्यंत्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति १७८ ॥

प० । यत् करोति एकरात्रेण वृषलीसेवनात् द्विजः तत् भैक्षभुक् जपन् नित्यं त्रिभिः वर्षैः व्यपोहति ॥

यो० । द्विजः एकरात्रेण वृषलीसेवनात् यत्पापंकरोति तत् पापं भैक्षभुक् नित्यं जपन् (सन्) त्रिभिः वर्षैःव्यपोहति ॥

भा० । एकरात्र चांडाली के सेवनसे जिसपापको ब्राह्मणकरताहै उसपापको भिक्षामांगकर तीन वर्षतक भोजन और गायत्री का जपकरताहुआ दूरकरताहै ॥

ता० । यहां वृषलीशब्दसे चांडाली का ग्रहणहै क्योंकि यहप्रायश्चित्त गुरु है एकरात्रमें चांडाली के गमनसे जिसपापको ब्राह्मण करताहै उसपापको भिक्षाके भोजनको खाकर नित्यगायत्री आदि को जपताहुआ तीनवर्ष में दूरकरताहै क्योंकि आपस्तंबऋषिने इस वचनसे यहकहाहै कि कृष्णवर्ण (चंडाल) को एकरात्र सेवताहुआ ब्राह्मण जो पापकरताहै उसपापको चौथेकाल में जलके विषे गायत्री को जपताहुआ तीनवर्षमें दूरकरताहै और मेधातिथि ने भी यहीअर्थ कहा है–गोविंदराज ने

१ भर्तानिरुन्ध्यात्सर्वेकार्येभ्योनिष्कृत्यनियतबद्धामिव ॥

२ स्त्रीणामर्द्धंप्रदातव्यं ॥

३ यदेकरात्रेणकरोतिपापं कृष्णंवर्णंब्राह्मणःसेवमानः चतुर्थकालोदकअभ्यस्यजापि त्रिभिर्वर्षैस्तदपोहतिपापं ॥

तो इसवचन को उसशूद्रा गमनके प्रायश्चित्तका बोधककहाहै जो ब्राह्मणी आदिके क्रमको छोड़कर प्रथम शूद्राही विवाहीहो १७८ ॥

एषापापकृतामुक्ताचतुर्णामपिनिष्कृतिः।पतितैःसंप्रयुक्तानामिमाःशृणुतनिष्कृतीः १७९

प० । एषा पापकृतां उक्ता चतुर्णाम् अपि निष्कृतिः पतितैः संप्रयुक्तानां इमाः शृणुत निष्कृतीः॥

यो० । चतुर्णां अपि पापकृतां वर्णानां एषानिष्कृतिः उक्ताः पतितैः संप्रयुक्तानां इमाः निष्कृती यूयं शृणुत ॥

भा०। ता०। चारप्रकारके पापोंके करनेवालोंका अर्थात् हिंसा अभक्ष्यभक्षण—चोरी—अगम्यागमन इनके करनेवालों का यहप्रायश्चित्तकहा अब साक्षात् पापकरनेवालोंके जो संसर्गी हैं उनके इनप्रायश्चित्तों को सुनो १७९ ॥

संवत्सरेणपततिपतितेनसहाचरन्। याजनाध्यापनाद्यौनान्नतुयानासनाशनात्१८०॥

प० । संवत्सरेण पतति पतितेन सह आचरन् याजनाध्यापनात् यौनात् न तु यानासनाशनात्॥

यो० । पतितेनसह यानासनाशनात् संसर्गं आचरन् सन् संवत्सरेण पतति तुपुनः याजनाध्यापनात् यौनात् संवत्सरेण नपतति—किंतु सद्य एव पतति इत्यर्थः ॥

भा० । एकयान—एकआसन—एकपंक्तिभोजनको पतितके संग करताहुआ द्विज एकवर्षमें पतित होताहै और याजन, पढ़ाना, विवाह, को करनेसे तो शीघ्रही पतित होताहै ॥

ता० । पतितके संग एकयान में गमन एकआसनपर उपवेशन (बैठना) एकपंक्तिमें भोजन—रूप संसर्गोंको करताहुआ द्विज एकवर्ष में पतित होता है और याजन—और अध्यापन—और यौन (विवाह) इनके करनेसे संवत्सर में पतित नहींहोता किंतु उसी समय पतित होता है—और इस श्लोकमें अध्यापनसे यज्ञोपवीतके अनन्तर गायत्रीकी सुनानालेतेहैं और यज्ञकराने—और पढ़ाने और विवाहको शीघ्रही पतितकरने का कारण इसवचनसे[1] देवलऋषिने कहा है—याजन—योनिसम्बन्ध—स्वाध्याय और सहभोजन को पतितके संग करतेहुये ये द्विज शीघ्रही पतितहोते हैं और इस[2] वचनसे विष्णुऋषि ने कहाहै कि पतितके संग आचरण एकयान और एकआसनपर बैठना करताहुआ द्विज एकवर्षमें पतितहोताहै—और योनिसम्बन्धसे तो उसी समय पतित होता है—और बौधायनऋषि ने इस[3] वचनसे यहकहाहै कि पतित के संग याजन—अध्यापन—और योनिसंबन्ध करनेसे उसी समय पतित होताहै और शयन और भोजनकरनेसे एकवर्ष में पतितहोताहै—निदान एकयान एकआसन एकपंक्तिभोजन पतित के संग करनेसे एकवर्षमें—और याजन—अध्यापन—योनिसम्बन्धसे उसीसमय पतित होताहै यह इसमनुके श्लोकका तात्पर्य्य है—और गोविंदराजने तो यह अर्थलिखाहै कि याजन पढ़ाना—विवाह ये तीनोंको पतित के संग करनेसे एकवर्षमें पतित होताहै—और एकयान—आदिकों को तो संवत्सर से अधिककरनेसे पतित होता है—इससे बहुत ऋषियों के अनुसार होनेसे हमारी व्याख्या ठीकहै गोविंदराज का अर्थ ठीकनहीं १८० ॥

योयेनपतितेनैषांसंसर्गंयातिमानवः। सतस्यैवव्रतंकुर्यात्तत्संसर्गविशुद्धये १८१ ॥

प० । यः येन पतितेन एषां संसर्गं याति मानवः सः तस्य एव व्रतं कुर्यात् तत्संसर्गविशुद्धये ॥

१ याजनयोनिसंबंधस्वाध्यायसहभोजनं कृत्वासद्यःपतत्येवपतितेननसंशयः ॥

२ आसंवत्सरात्पतति पतितेनसहाचरन् सहयानासनाभ्यासं यौनात्तुसद्यएवहि ॥

३ संवत्सरेणपतति पतितेनसहाचरन् याजनाध्यापनाद्यौनात् सद्योनशयनासनादिति ॥

यो० । एषां पतितानांमध्ये येनपतितेनसह यः मानवः संसर्गं याति सः तत्संसर्गविशुद्धये तस्य एवं व्रतं कुर्यात् ॥

भा० । इन पतितोंमेंसे जिस पतितके संग जो मनुष्य संसर्ग करै वह मनुष्य उस संसर्ग की शुद्धिके निमित्त उसी उस पापके प्रायश्चित्त को करै ॥

ता० । इसश्लोक में पतितशब्द पापकाकारी है क्योंकि सामान्यसे सकलपापी–एषां–इसपदसे पढ़ेहैं इनपतितोंके मध्यमें जिसपाप करनेवालेके संग जो मनुष्य पूर्वोक्त प्रकारसे संसर्गकरताहै वह पापी पतित के संसर्ग की शुद्धिकेलिये उसीपापका प्रायश्चित्तकरै और मरणपर्यंत न करै–और उस व्रतको भी पतितका संसर्गी उससे चतुर्थांश कमकरै जो ब्रह्महत्यारेको वारह वर्ष का प्रायश्चित्त कहा है क्योंकि व्यासजीने इस[1] वचनसे यह कहाहै कि जो मनुष्य जिस पतितके संग एक वर्ष पर्यंत संसर्ग करै वह भी उस पतितके समान होताहै और वह भी संसर्गी द्विज उस२ पापका जो२ व्रत है उसको चतुर्थांश हीनकरै १८१ ॥

पतितस्योदकंकार्यंसपिण्डैर्बान्धवैर्बहिः।निन्दितेऽहनिसायाह्नेज्ञात्यृत्विग्गुरुसन्निधौ १८२॥

प० । पतितस्य उदकं कार्यं सपिंडैः बांधवैः बहिः निंदिते अहनि सायाह्ने ज्ञात्यृत्विग्गु रुसंनिधौ ॥

यो० । सपिंडैः बांधवैः निंदिते अहनि सायाह्ने ज्ञात्यृत्विग्गुरुसंनिधौ बहिः पतितस्य उदकं कार्यम् ॥

भा० । ता० । जीवतेहुये ही महापातकी को सपिंड बांधव नवमीतिथिको संध्याके समय ज्ञाति ऋत्विज गुरु इनके समीप में ग्रामसे वाहिर उदककरैं अर्थात् जीवतेकोही जलदान देदें १८२ ॥

दासीघटमपांपूर्णंपर्यस्येत्प्रेतवत्पदा।अहोरात्रमुपासीरन्नशौचंबान्धवैःसह १८३ ॥

प० । दासी घटं अपां पूर्णं पर्यस्येत् प्रेतवत् पदा अहोरात्रं उपासीरन् अशौचं बांधवैः सह ॥

यो० । अपां पूर्णं घटं दासी पदा प्रेतवत् पर्यस्येत्–सपिंडाः अहोरात्रं बांधवैः सह अशौचं उपासीरन् ॥

भा० । ता० । सपिंड और समानोदकोंके कहनेसे दासी जल से पूर्ण घटको अपने चरणसे प्रेत के समान फेंकदे अर्थात् दक्षिणको मुखकरके फेंके–और सब सपिंड अपने बांधवों समेत अहोरात्र अशौचको करैं एवं करनेसे वह पतित निरुदक (जलके संबंधसे हीन) होजाता है १८३ ॥

निवर्तेरंश्चतस्मात्तुसंभाषणसहासने।दायाद्यस्यप्रदानंचयात्राचैवहिलौकिकी १८४॥

प० । निवर्तेरन् च तस्मात् तु संभाषणसहासने दायाद्यस्य प्रदानं च यात्रा च एव हि लौकिकी॥

यो० । तस्मात् संभाषणसहासने–दायाद्यस्य प्रदानं चपुनः लौकिकीयात्रा–निवर्तेरन् ॥

भा० । ता० । उस पतितसे सपिंड आदिकोंके संभाषण और एक आसनपर बैठना–और उसको दायका देना–और लौकिक यात्रा (व्यवहार) अर्थात् सांवत्सरिक (वार्षिक) श्राद्ध आदि में निमंत्रण आदि का देना–ये सब निवृत्त होजाते हैं–निदान पतितके संग इन कर्मोंको न करै १८४ ॥

ज्येष्ठताचनिवर्तेतज्येष्ठावाप्यंचयद्धनम्।ज्येष्ठांशंप्राप्नुयाच्चास्ययवीयानगुणतोऽधिकः १८५॥

प० । ज्येष्ठता च निवर्तेत ज्येष्ठावाप्यं च यत् धनम् ज्येष्ठांशं प्राप्नुयात् च अस्य यवीयान् गुणतः अधिकः ॥

---

१ योयेनसंसृजेद्वर्षंसोपितत्समतामियात् । पादन्यूनंचरेत्सोपितस्यतस्यव्रतंद्विजः ॥

यो० । ज्येष्ठता चपुनः ज्येष्ठावाप्यं यत् धनं तत् अपि निवर्तेत—चपुनः अस्य ज्येष्ठांशं गुणतः अधिकः यवीयान् प्राप्नुयात् (लभेत) ॥

भा० । ता० । और इसकी ज्येष्ठता निवृत होजाती है अर्थात् छोटेभाई इसका प्रत्युत्थान आदि न करें—और ज्येष्ठके मिलने योग्य अर्थात् बीसवें भागका उद्धार भी निवृत्त होजाता है—और इसके ज्येष्ठभागको गुणों में अधिक छोटाभाई प्राप्तहो १८५ ॥

प्रायश्चित्तेतुचरितेपूर्णकुम्भमपांनवम् । तेनैवसार्द्धंप्रास्येयुःस्नात्वापुण्येजलाशये १८६ ॥

प० । प्रायश्चित्ते तु चरिते पूर्णकुंभं अपां नवं तेन एव सार्द्धं प्रास्येयुः स्नात्वा पुण्ये जलाशये ॥

यो० । प्रायश्चित्ते चरिते सति तेन सार्द्धं एव अपां पूर्णं नवं घटं पुण्ये जलाशये स्नात्वा प्रास्येयुः (प्रक्षिपेयुः) ॥

भा० । ता० । प्रायश्चित्तके किये पीछे सब सपिंड और समानोदक किया है प्रायश्चित्त जिसने ऐसे उस पतितको साथलेकर जलोंसे पूर्ण नवीन घटको पवित्र जलाशय (नदीआदि)में स्नानकरके फेंकदें १८६ ॥

सत्वप्सुतंघटंप्रास्यप्रविश्यभवनंस्वकम् ।सर्वाणिज्ञातिकार्याणियथापूर्वंसमाचरेत् १८७

प० । सः तु अप्सु तं घटं प्रास्य प्रविश्य भवनं स्वकं सर्वाणि ज्ञातिकार्याणि यथापूर्वं समाचरेत् ॥

यो० । कृतप्रायश्चित्तः सः तं घटं प्रास्य—स्वकं भवनं प्रविश्य—सर्वाणि ज्ञातिकार्याणि यथा पूर्वं समाचरेत् (कुर्यात्) ॥

भा० । ता० । वह पतित प्रायश्चित्त किये पीछे उस घटको फेंककर और अपने घरमें प्रवेशकरके संपूर्ण जाति संबंधी कार्योंको पूर्व के समान करै १८७ ॥

एतदेवविधिंकुर्याद्योषित्सुपतितास्वपि ।वस्त्रान्नपानंदेयंतुवसेयुश्चगृहान्तिके १८८ ॥

प० । एतत् एव विधिं कुर्यात् योषित्सु पतितासु अपि वस्त्रान्नपानं देयं तु वसेयुः च गृहांतिके ॥

यो० । पतितासु योषित्सु अपि एतत् एव विधिं कुर्यात्—आभ्यः स्त्रीभ्यः वस्त्रान्नपानं बांधवैः देयं—स्त्रियः गृहांतिके वसेयुः ॥

भा० । ता० । पतित स्त्रियोंको भी यही पूर्वोक्त विधि है अर्थात् पतितको उदकदान आदि पति आदि करै और वस्त्र,अन्न,पान पतित स्त्रियोंको दे—और वे स्त्री घरके समीप कुटीमें वासकरें १८८ ॥

एनस्विभिरनिर्णिक्तैर्नार्थंकिंचित्सहाचरेत् ।कृतनिर्णेजनांश्चैवनजुगुप्सेतकर्हिचित् १८९ ॥

प० । एनस्विभिः अनिर्णिक्तैः न अर्थं किंचित् सह आचरेत् कृतनिर्णेजनान् च एव न जुगुप्सेत कर्हिचित् ॥

यो० । अनिर्णिक्तैः एनस्विभिः सह किंचित् अर्थं न आचरेत् चपुनः कृतनिर्णेजनान् कर्हिचित् न जुगुप्सेत ॥

भा० । ता० । जिन पापियोंने प्रायश्चित्त न कियाहो उनके संग दान, प्रतिग्रह आदि कोई काम न करै और जिन्होंने प्रायश्चित्त करलियाहो उनकी कदाचित् भी निंदा न करै अर्थात् पूर्व के समान उनके संग व्यवहार करै १८९ ॥

बालघ्नांश्चकृतघ्नांश्चविशुद्धानपिधर्मतः ।शरणागतहन्तॄंश्चस्त्रीहन्तॄंश्चनसंवसेत् १९० ॥

प० । बालघ्नान् च कृतघ्नान् च विशुद्धान् अपि धर्मतः शरणागतहंतॄन् च स्त्रीहंतॄन् च न संवसेत् ॥

यो० । धर्मतः विशुद्धान् अपि बालघ्नान् कृतघ्नान् शरणागतहंतॄन् चपुनः स्त्रीहंतॄन् न संवसेत् ॥

भा० । ता० । बालकके हत्यारे कृतघ्न (जो उपकार करने पर भी अपकार करें) और शरणागत भी स्त्रीके हत्यारे ये सब चाहे यथार्थ प्रायश्चित्त भी करचुकेहों तथापि इनके संग संसर्ग न करै अर्थात् सह भोजनादि व्यवहार न करै १९० ॥

येषांद्विजानांसावित्रीनानुच्येतयथाविधि।तांश्चारयित्वात्रीन्कृच्छ्रान्यथाविध्युपनाययेत्१९१

प० । येषां द्विजानां सावित्री न अनुच्येत यथाविधि तान् चारयित्वा त्रीन् कृच्छ्रान् यथाविधि उपनाययेत् ॥

यो० । येषां द्विजानां यथाविधि सावित्री न अनुच्येत तान् त्रीन् कृच्छ्रान् चारयित्वा यथाविधि उपनाययेत् ॥

भा० । ता० । जिन द्विजोंको गायत्री का उपदेश मुख्य वा गौणकालमें शास्त्रोक्तरीतिसे न हुआ हो उनपर तीनप्राजापत्य कृच्छ्रकराकर शास्त्रोक्तरीतिसे गायत्रीकाउपदेश (यज्ञोपवीत) करावे यद्यपि याज्ञवल्क्यऋषि ने इनको व्रात्यस्तोम यज्ञकरनाकहा है तथापि जाति और शक्तिको देखकर उसके संग इस प्रायश्चित्तका विकल्पसमझना अर्थात् शक्तिकेअनुसार उसको वा इसप्रायश्चित्तकोकरैं १९१

प्रायश्चित्तंचिकीर्षन्तिविकर्मस्थास्तुयेद्विजाः।ब्रह्मणाचपरित्यक्तास्तेषामप्येतदादिशेत् १९२

प० । प्रायश्चित्तं चिकीर्षन्ति विकर्मस्थाः तु ये द्विजाः ब्रह्मणा च परित्यक्ताः तेषां अपि एतत् आदिशेत् ॥

यो० । विकर्मस्थाः चपुनः ब्रह्मणा परित्यक्ताः ये द्विजाः प्रायश्चित्तं चिकीर्षन्ति तेषां अपि एतत् एव आदिशेत् ॥

भा० । ता० । निषिद्ध शूद्रान्नके भोक्ता और वेदसेहीन जो उपनीतभी द्विज प्रायश्चित्त कियाचाहते हैं उनको भी इनतीन प्राजापत्यों का उपदेशकरै १९२ ॥

यद्गर्हितेनार्जयन्तिकर्मणाब्राह्मणाधनम्।तस्योत्सर्गेणशुद्ध्यन्तिजप्येनतपसैवच १९३

प० । यत् गर्हितेन अर्जयन्ति कर्मणा ब्राह्मणाः धनं तस्य उत्सर्गेण शुद्ध्यंति जप्येन तपसा एव च ॥

यो० । यत् धनं ब्राह्मणा गर्हितेन कर्मणाः अर्जयन्ति तस्य (धनस्य) उत्सर्गेण जप्येन चपुनः तपसा शुद्ध्यन्ति ॥

भा० । ता० । जो धन ब्राह्मणोंने निंदितकर्मसे इकट्ठाकियाहो अर्थात् निषिद्ध दुष्ट, प्रतिग्रहआदिसे संग्रहकियाहो उसधनके त्यागसे अथवा गायत्री का जप और तपसे वे ब्राह्मण शुद्धहोतेहैं धनकेत्याग से जो प्रायश्चित्तकहा इससे मनुजीने यह सूचित किया कि अधिकमूल्य के हाथी-और अश्वआदि और अल्पमूल्यके लोहाआदिके प्रतिग्रहमें सामान्य प्रायश्चित्तसेही शुद्धिहोतीहै और यही प्रायश्चित्त अयोग्य वस्तुके बेचनेमें भी समझना १९३ ॥

जपित्वात्रीणिसावित्र्याःसहस्राणिसमाहितः।मासंगोष्ठेपयःपीत्वामुच्यतेऽसत्प्रतिग्रहात् १९४

प० । जपित्वा त्रीणि सावित्र्याः सहस्राणि समाहितः मासं गोष्ठे पयः पीत्वा मुच्यते असत्प्रतिग्रहात् ॥

यो० । समाहितः ब्राह्मणः त्रीणि सहस्राणि सावित्र्याः जपित्वा गोष्ठेमासंपयःपीत्वा असत् प्रतिग्रहात् मुच्यते ॥

भा० । ता० सावधानी से तीनसहस्र गायत्रीको जपकर और गोशालामें एकमासतक दूधकाही आहारकरिके निंदितवस्तु प्रतिग्रहके पापसे ब्राह्मण छूटताहै-और यहीप्रायश्चित्त शूद्रसे उत्तमवस्तु के प्रतिग्रह में समझना क्योंकि द्रव्यके दोषसे और दाताके दोषसे प्रतिग्रह दूषित होताहै १९४ ॥

उपवासकृशंतंतुगोव्रजात्पुनरागतम् । प्रणतंप्रतिपृच्छेयुःसाम्यंसौम्येच्छसीतिकिम् १९५ ॥

प० । उपवासकृशं तं तु गोव्रजात् पुनः आगतं प्रणतं प्रतिपृच्छेयुः साम्यं सौम्य इच्छसि इति किम्

यो० । उपवासकृशं गोव्रजात् पुनः आगतं प्रणतं तं बांधवाः हेसौम्य अस्माभिः सह किं साम्यं इच्छसि इतिप्रतिपृच्छेयुः॥

भा० । ता० । एकमास के उपवास से दुर्बल, नम्र, और गोशालासेआयेहुये उसको उसके बांधव यह पूंछें कि हे सौम्य क्या हमारी समानता चाहताहै फिर तो निंदित प्रतिग्रह नहींकरेगा १९५ ॥

सत्यमुक्त्वातुविप्रेषुविकिरेद्यवसंगवाम् । गोभिःप्रवर्तितेतीर्थेकुर्युस्तस्यपरिग्रहम् १९६ ॥

प० । सत्यं उक्त्वा तु विप्रेषु विकिरेत् यवसं गवां गोभिः प्रवर्तिते तीर्थे कुर्युः तस्य परिग्रहम् ॥

यो० । सः विप्रेषु सत्यं उक्त्वा गवां यवसं विकिरेत् बांधवाः गोभिः प्रवर्तिते तीर्थे तस्यपरिग्रहं कुर्युः ॥

भा० । ता० । वह निंदित प्रतिग्रहलेनेवाला ब्राह्मणों को इसप्रकार सत्यप्रतिज्ञाकरिके कि फिर निंदित प्रतिग्रह ग्रहणनहींकरूंगा—गौओंकोघासदे जिसदेशमें उसघासको गौ भक्षणकररहीहों गौओंसे पवित्र किये तीर्थरूप उसदेशमें बांधव उसकापरिग्रहकरें अर्थात् उसदिनसे उसकेसंग सहभोजनादि व्यवहार करें १९६ ॥

व्रात्यानांयाजनंकृत्वापरेषामन्त्यकर्मच । अभिचारमहीनंचत्रिभिःकृच्छ्रैर्व्यपोहति १९७ ॥

प० । व्रात्यानां याजनं कृत्वा परेषां अंत्यकर्म च अभिचारं अहीनं च त्रिभिः कृच्छ्रैः व्यपोहति ॥

यो० । ब्राह्मणः व्रात्यानां याजनं चपुनः परेषां अंत्यकर्म अभिचारं चपुनः अहीनं कृत्वा त्रिभिः कृच्छ्रैःव्यपोहति ॥

भा० । व्रात्योंकोयज्ञ, पिताआदि से अन्यका कर्मकाण्ड, अभिचार, और अहीनयज्ञकराकर तीन कृच्छ्रकरनेसे ब्राह्मण शुद्धहोताहै ॥

ता० । जिनका मुख्य वा गौणकालमें यज्ञोपवीत न हुआहो उनव्रात्योंको यज्ञकराकर और माता पिता, गुरु—आदिसे भिन्नोंकाअंतेष्टि (कर्मकाण्ड) कर्मकराकर और श्येनआदि अभिचार यज्ञ कराकर जो शत्रुके मारनेके लिये कियाजाताहै—और अहीनयज्ञ जो तीनरात्रमें होताहै इसे श्रुतिके अनुसार अशुद्धिका जनक है—इनसबके करनेसे जो पाप होताहै उसपापको ब्राह्मण तीन कृच्छ्र करने से दूरकरताहै अर्थात् शुद्धहोताहै १९७ ॥

शरणागतंपरित्यज्यवेदंविप्लाव्यचद्विजः । संवत्सरंयवाहारस्तत्पापमपसेधति १९८ ॥

प० । शरणागतं परित्यज्य वेदं विप्लाव्य च द्विजः संवत्सरं यवाहारः तत् पापं अपसेधति ॥

यो० । द्विजः शरणागतं परित्यज्य चपुनः वेदं विप्लाव्य संवत्सरं यवाहारः सन् तत् पापं अपसेधति ॥

भा० । ता० । शरणागत (रक्षाकेलिये आगत) का परित्याग, और वेदकानाश, अर्थात् दुष्टको पढ़ाकर एकवर्ष पर्यंत यवको भोजनकरिकै उसपापको दूरकरताहै १९८ ॥

श्वसृगालखरैर्दष्टोग्राम्यैःक्रव्याद्भिरेवच । नराश्वोष्ट्रवराहैश्चप्राणायामेनशुद्ध्यति १९९

प० । श्वसृगालखरैः दष्टः ग्राम्यैः क्रव्याद्भिः एव च नराश्वोष्ट्रवराहैः च प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥

यो० । श्वसृगालखरैः चपुनः नराश्वोष्ट्रवराहैः दष्टः द्विजः प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥

---

१ अहीनयजनमशुचिकरं ॥

भा० । ता० । कुत्ता, सृगाल, (गीदड़) खर—और कच्चेमांस के भक्षणकरनेवाले मार्ज्जारआदि नर, अश्व, ऊंट—वराह—इनका डसाहुआ ब्राह्मण अर्थात् जिसको इन्होंनेकाटाहो वह ब्राह्मण प्राणायामोंसे शुद्धहोताहै १९९ ॥

षष्ठान्नकालतामासंसंहिताजपएववा।होमाश्चसकलानित्यमपांक्त्यानांविशोधनम्२००॥

प०। षष्ठान्नकालता मासं संहिताजपः एवं वा होमाः च सकलाः नित्यं अपांक्त्यानां विशोधनम्॥

यो० । मासं, षष्ठान्नकालता, वा संहिताजपः—नित्यं सकलाः होमाः अपांक्त्यानां विशोधनं (भवति) ॥

भा० । ता० । जो पंक्ति से बाह्य हैं (पतित—स्तेन—क्लीब आदि) वे मास पर्यंत षष्ठकालमें (तीसरे दिन सायंकाल) में भोजन अथवा संहिताका जप अथवा नित्य संपूर्ण—इन मंत्रोंसे होमकरें यही उनकी विशुद्धि है २०० ॥

उष्ट्रयानंसमारुह्यखरयानंतुकामतः । स्नात्वातुविप्रोदिग्वासाःप्राणायामेनशुद्ध्यति २०१ ॥

प० । उष्ट्रयानं समारुह्य खरयानं तु कामतः स्नात्वा तु विप्रः दिग्वासाः प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥

यो० । विप्रः उष्ट्रयानं तुपुनः खरयानं कामतः समारुह्य चपुनः दिग्वासाः (नग्नः) कामतः स्नात्वा प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥

भा० । ता० । ऊंटोंसे युक्त यान और खरोंसे युक्त यान पर चढ़कर और नग्नहोकर जलमें स्नान करके ब्राह्मण प्राणायाम करनेसे शुद्ध होताहै २०१ ॥

विनाद्भिरप्सुवाप्यार्तःशारीरंसन्निवेश्यच । सचैलोबहिराप्लुत्यगामालभ्यविशुद्ध्यति २०२॥

प० । विना अद्भिः अप्सु वा अपि आर्तः शारीरं सन्निवेश्य च सचैलः बहिः आप्लुत्य गां आलभ्य विशुद्ध्यति ॥

यो० । अद्भिः विना वा अप्सु (जलेषु) आर्तः पुरुषः शारीरं (मूत्रं वा पुरीषं) संनिवेश्य (कृत्वा) सचैलः आप्लुत्य बहिः गां आलभ्य (स्पृष्ट्वा) विशुद्ध्यति ॥

भा० । ता० । जलके विना अथवा जलोंके बीचमें शरीरके मल मूत्रको रोगी मनुष्य त्यागकर—सचैल स्नानकरै और जलोंसे बाहिर आकर गौका स्पर्श करके शुद्ध होताहै २०२ ॥

वेदोदितानांनित्यानांकर्मणांसमतिक्रमे । स्नातकव्रतलोपेचप्रायश्चित्तमभोजनम् २०३ ॥

प० । वेदोदितानां नित्यानां कर्मणां समतिक्रमे स्नातकव्रतलोपे च प्रायश्चित्तं अभोजनम् ॥

यो० । नित्यानां वेदोदितानां कर्मणां समतिक्रमे सति—चपुनः स्नातकव्रतलोपेसति—अभोजनं प्रायश्चित्तं भवति ॥

भा० । ता० । यदि नित्यकरने योग्य वेदोक्त कर्मोंका अवलंघन (लोप) होजाय और स्नातकके व्रतोंका लोप होजाय तो एक दिन उपवास प्रायश्चित्त होताहै २०३ ॥

हुङ्कारंब्राह्मणस्योक्त्वात्वङ्कारंचगरीयसः।स्नात्वाऽनश्नन्नहःशेषमभिवाद्यप्रसादयेत्॥२०४॥

प० । हुंकारं ब्राह्मणस्य उक्त्वा त्वंकारं च गरीयसः स्नात्वा अनश्नन् अहःशेषं अभिवाद्य प्रसादयेत्॥

यो० । ब्राह्मणस्य हुंकारं—चपुनः गरीयसः त्वंकारं उक्त्वा—स्नात्वा अहःशेषं अनश्नन् सन् प्रसादयेत् ॥

भा० । ता० । ब्राह्मणको हुंकार कहकरि अर्थात् तूष्णीं बैठेरहो यह आक्षेप कहकर अपनेसे विद्या

---

१ देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि ॥

में अधिक को स्वंकार कहकर स्नानकरनेके अनंतर शेषदिनके भोजन को न करिके और ब्राह्मणके चरणको नमस्कार करके प्रसन्नकरै २०४ ॥

ताडयित्वातृणेनापिकण्ठेवाबध्यवाससा । विवादेवाविनिर्ज्जित्यप्रणिपत्यप्रसादयेत् २०५ ॥

प० । ताडयित्वा तृणेन अपि कण्ठे वा आबध्य वाससा विवादे वा विनिर्ज्जित्य प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥

यो० । तृणेन अपि ब्राह्मणं ताडयित्वा वा वाससा कण्ठे आबध्य वा विवादे विनिर्ज्जित्य प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥

भा० । ता० । तृणसे भी ब्राह्मणकी ताडना करके अथवा ब्राह्मणके कण्ठ में वस्त्र बांधकर अथवा विवादमें ब्राह्मणको जीतकर ब्राह्मणके चरणोंको नमस्कार करके ब्राह्मणकी प्रसन्नता करै २०५ ॥

अवगूर्य्यत्वब्दशतंसहस्रमभिहत्यच । जिघांसयाब्राह्मणस्यनरकंप्रतिपद्यते २०६ ॥

प० । अवगूर्य्य तु अब्दशतं सहस्रं अभिहत्य च जिघांसया ब्राह्मणस्य नरकं प्रतिपद्यते ॥

यो० । ब्राह्मणस्य जिघांसया अवगूर्य्य अब्दशतं चपुनः अभिहत्य सहस्रं नरकं प्रतिपद्यते ॥

भा० । ता० । ब्राह्मणके मारने की इच्छासे दंडको उठाकर सौवर्षतक—और दंडसे प्रहारकरके सहस्र वर्ष तक नरकको भोगता है २०६ ॥

शोणितंयावतःपांशून्संगृह्णातिमहीतले । तावन्त्यब्दसहस्राणितत्कर्तानरकेवसेत् २०७ ॥

प० । शोणितं यावतः पांशून् संगृह्णाति महीतले तावन्ति अब्दसहस्राणि तत्कर्ता नरके वसेत् ॥

यो० । ब्राह्मणस्य शोणितं महीतले यावतः पांशून् संगृह्णाति तावन्ति अब्दसहस्राणि तत्कर्ता (शोणितोत्पादकः) नरके वसेत् ॥

भा० । ता० । ब्राह्मणके शरीरमें से निकलाहुआ रुधिर पृथिवीके जितने पांशु (रजके कणका) ओंको ग्रहण करै (भिगोदे) उतनेही सहस्र वर्ष पर्यंत रुधिर निकासनेवाला नरकमें बसताहै २०७ ॥

अवगूर्यचरेत्कृच्छ्रमतिकृच्छ्रंनिपातने । कृच्छ्रातिकृच्छ्रौकुर्वीतविप्रस्योत्पाद्यशोणितम् २०८ ॥

प० । अवगूर्य चरेत् कृच्छ्रं अतिकृच्छ्रं निपातने कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ कुर्वीत विप्रस्य उत्पाद्य शोणितम् ॥

यो० । ब्राह्मणं अवगूर्य कृच्छ्रं विप्रस्य निपातने अतिकृच्छ्रं-शोणितं उत्पाद्य कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ-कुर्वीत ॥

भा० । ता० । ब्राह्मणके मारने के लिये दंड उठाकर कृच्छ्र—और ब्राह्मणके दंड मारकर अति कृच्छ्र और ब्राह्मणके शरीरमें रुधिरको निकासकर कृच्छ्र और अति कृच्छ्र करै २०८ ॥

अनुक्तनिष्कृतीनांतुपापानामपनुत्तये । शक्तिंचावेक्ष्यपापंचप्रायश्चित्तंप्रकल्पयेत् २०९ ॥

प० । अनुक्तनिष्कृतीनां तु पापानां अपनुत्तये शक्तिं च अवेक्ष्य पापं च प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत् ॥

यो० । अनुक्तनिष्कृतीनां पापानां अपनुत्तये-शक्तिं चपुनः पापं अवेक्ष्य प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत् ॥

भा० । ता० । जिन पापोंका (प्रतिलोमका वध आदि) प्रायश्चित्त नहीं कहा उन पापोंके दूरकरने के लिये शक्ति और पापको देखकर प्रायश्चित्तकी कल्पना करै अर्थात् प्रायश्चित्तकरनेवाले को धन वा देह की शक्तिके अनुसार प्रायश्चित्तको बतावै २०९ ॥

यैरभ्युपायैरेनांसिमानवोव्यपकर्षति।तान्वोऽभ्युपायान्वक्ष्यामिदेवर्षिपितृसेवितान् २१० ॥

प० । यैः अभ्युपायैः एनांसि मानवः व्यपकर्षति तान् वः अभ्युपायान् वक्ष्यामि देवर्षिपितृसेवितान् ॥

यो० । मानवः यैः अभ्युपायैः एनांसि व्यपकर्षति देवर्षिपितृसेवितान् तान् अभ्युपायान् वः (युष्माकं) वक्ष्यामि ॥

भा० । ता० । जिन उपायोंसे मनुष्य पापोंको दूर (नष्ट) करता है–देवता ऋषि–पितरोंके किये हुये उन उपायोंको तुमसे कहताहूं २१० ॥

त्र्यहंप्रातस्त्र्यहंसायंत्र्यहमद्यादयाचितम्।त्र्यहंपरंचनाश्नीयात्प्राजापत्यंचरन्द्विजः २११॥

प० । त्र्यहं प्रातः त्र्यहं सायं त्र्यहं अद्यात् अयाचितं त्र्यहं परं च न अश्नीयात् प्राजापत्यं चरन् द्विजः ॥

यो० । प्राजापत्यं चरन् द्विजः त्र्यहं प्रातः–त्र्यहं सायं–त्र्यहं अयाचितं–अद्यात्–परं त्र्यहं च न अश्नीयात् (उपवासं कुर्यात्) ॥

भा० । प्राजापत्य करनेवाला द्विज–तीनदिन प्रातःकाल–तीनदिन सायंकाल–और तीनदिन अयाचित (जो विनामांगे मिले) का भक्षणकरै और तीनदिन उपवासकरै ॥

ता० । प्राजापत्य कृच्छ्रको करताहुआ द्विज तीन दिन प्रातःकालकोही भोजन करै–और फिर तीन दिन सायंकालको–फिर तीन दिन अयाचित (जो विना मांगे मिले) को भोजन करै और पिछले तीन दिनों में भोजन को न करै अर्थात् उपवास करै–इस वचनमें प्रातः शब्दसे प्रातःकाल के भोजन का समय लेना–क्योंकि वसिष्ठजीने इस[1] वचनसे यह कहाहै कि तीन दिन,दिनमें तीन दिन रात्रिमें भोजन करै और तीन दिन अयाचित व्रतकरै और तीन दिन भोजन न करैयहकृच्छ्रहोताहै–और आपस्तंब ऋषिने भी इस[2] वचनसे यह कहा है कि तीन दिन रात्रिमें तीन दिन–दिनमें भोजन करै और तीन दिन अयाचितका भक्षण करै–फिर तीन दिन कुछ भी भक्षण न करै–यह द्वादशदिन के कृच्छ्र की विधि है–और इसमें ग्रासों का प्रमाण इस[3] वचनसे पराशरजीने यह कहाहै कि सायंकालको बत्तीसग्रास और प्रातःकालको बीसग्रास–और अयाचितमें चौबीसग्रास–और पिछले तीनदिनों में भोजनका त्यागकहाहै–और ग्रासकाप्रमाण कुक्कुटके अंडेके समान अथवा जितना मुख मेंआवे उतना–होताहै शुद्धिकेलिये पापकाशोधन इसग्रासकोजाने–और रात्रिकेसमानदिनमें भी हविष्य (यवआदि) अन्नको भक्षणकरै–तीन २ दिन और अयाचितमें शास्त्रोक्त गिनती के ग्रास भक्षणकरै और तीनदिन उपवासकरै २११ ॥

गोमूत्रंगोमयंक्षीरंदधिसर्पिःकुशोदकम्।एकरात्रोपवासश्चकृच्छ्रंसान्तपनंस्मृतम् २१२ ॥

प० । गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकं एकरात्रोपवासः च कृच्छ्रं सान्तपनं स्मृतं ॥

---

१ त्र्यहंदिवाभुंक्तेनक्तमतिचत्र्यहं । त्र्यहमयाचितव्रतंत्र्यहंनभुंक्तेइतिचकृच्छ्रः ॥

२ त्र्यहंनक्ताशीदिवाशीचततस्त्र्यहं । त्र्यहमयाचितव्रतस्त्र्यहंनाश्नातिकिंचन ॥ इतिकृच्छ्रद्वादशरात्रस्यविधिः ॥

३ सायंद्वात्रिंशतिर्ग्रासाःप्रातःषड्विंशतिस्तथा । अयाचितेचतुर्विंशत्परंचानशनंस्मृतं॥ कुक्कुटाण्डप्रमाणंस्याद्यावान्वाप्रविशेन्मुखं । एवंग्रासंविजानीयाच्छुद्ध्यर्थंपापशोधनं ॥ हविष्यंचान्नमश्नीयात्यथारात्रौतथादिवा। [illegible] ग्रासान्संख्याकृतान्यथा ॥ अयाचितंतथैवाद्यादुपवासस्त्र्यहंभवेत् ॥

यो० । गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकं (एतत्सर्वं एकीकृत्य भुंजीत) पुनः अग्रिमदिने एकरात्रोपवासः कर्त्तव्यः एतत्सांतपनंकृच्छ्रं मन्वादिभिः स्मृतम्॥

भा० । गोमूत्र—गोमय—दूध—दही—घी—कुशाकाजल—इनको प्रथमदिनखाकर दूसरेदिन उपवास करै यह सांतपनकृच्छ्रकहाहै ॥

ता० । गोमूत्र—गोमय—दूध—दही—घी—कुशाकाजल इनसबको मिलाकर प्रथमदिन भक्षण करै और उससे अग्रिमदिनमें एकरात्र उपवासकरै यहसांतपनकृच्छ्रकहाहै—और जब गोमूत्रआदि प्रत्येक छओंपदार्थ छःदिनमें एक २ भक्षण कियेजायँ और सातवेंदिन उपवासकियाजाय तो वह महासांतपनकृच्छ्र होताहै क्योंकि इसे वचनसे याज्ञवल्क्यऋषिने यहकहाहै किकुशाकाजल—गौकादूध—दही—गोमूत्र—गोमय—घी—इनको प्रथमदिन भक्षणकरके अग्रिमदिनमें उपवासकरै यहसांतपनकृच्छ्र होता है—और सांतपनकृच्छ्र के पृथक् २ द्रव्योंको छःदिनतक भक्षणकरै और एकदिन उपवासकरै तो वह महासांतपन कहाहै २१२ ॥

एकैकंग्रासमश्नीयात्त्र्यहाणित्रीणिपूर्ववत्।त्र्यहंचोपवसेदन्त्यमतिकृच्छ्रंचरन्द्विजः २१३ ॥

प० । एकैकं ग्रासं अश्नीयात् त्र्यहाणि त्रीणि पूर्ववत् त्र्यहं च उपवसेत् अंत्यं अतिकृच्छ्रं चरन् द्विजः॥

यो० । अतिकृच्छ्रं चरन् द्विजः त्र्यहाणि पूर्ववत् त्रीणि (प्रातः सायं—अयाचितानि) एकैकं ग्रासं अश्नीयात् (भुंजीत) अंत्यं त्र्यहं उपवसेत् ॥

भा०। ता०। अतिकृच्छ्रको करताहुआद्विज प्रथम तीनदिनपर्यंत—तीनोंके भोजनमें अर्थात् प्रातः-काल सायंकाल औरअयाचितमें—एक२ग्रासकोभक्षणकरै—और अंत्यके तीनदिनोंमेंउपवासकरै२१३

तप्तकृच्छ्रंचरन्विप्रोजलक्षीरघृतानिलान्। प्रतित्र्यहंपिबेदुष्णान्सकृत्स्नायीसमाहितः२१४॥

प० । तप्तकृच्छ्रं चरन् विप्रः जलक्षीरघृतानिलान् प्रतित्र्यहं पिबेत् उष्णान् सकृत्स्नायी समाहितः॥

यो० । विप्रः तप्तकृच्छ्रं चरन् सन् उष्णान् जलक्षीरघृतानिलान् सकृत्स्नायी समाहितः भूत्वा प्रतित्र्यहं पिबेत् ॥

भा० । तप्तकृच्छ्रकेकरनेवाला ब्राह्मण जल—दूध—घी—वायु इनचारोंकोउष्णकरके एकबार स्नान और सावधानताकरके—पीवे ॥

ता० । तप्तकृच्छ्र को और एकबार स्नानको करताहुआद्विजसावधान होकर तीनदिन उष्णजल-तीनदिन उष्णदूध—और तीनदिन उष्णघृत—और तीनदिन उष्णवायु इनको पीवे—और इसमें इसे वचनसे पराशरने यह विशेषकहा है कि छःपलजल—तीनपलदूध एकपल घी को पीवे यह तप्तकृच्छ्र कहाहै २१४ ॥

यतात्मनोऽप्रमत्तस्यद्वादशाहमभोजनम् । पराकोनामकृच्छ्रोऽयंसर्वपापापनोदनः २१५ ॥

प० । यतात्मनः अप्रमत्तस्य द्वादशाहं अभोजनम् पराकः नाम कृच्छ्रः अयं सर्वपापापनोदनः ॥

यो० । यतात्मनः अप्रमत्तस्य द्वादशाहं यत् अभोजनं—अयं पराको नाम कृच्छ्रः सर्वपापापनोदनः (सर्वपापनाशकः) भवति ॥

---

१ कुशोदकंचगोक्षीरंदधिमूत्रंसकृत्पृतं। जग्ध्वापरेह्न्युपवसेत्कृच्छ्रंसान्तपनंचरम् ॥ पृथक्सांतपनद्रव्यैःषडहःसोपवासकः । सप्ताहेनतुकृच्छ्रोयं महासांतपनस्मृतम् ॥

२ षट्पलंतुपिबेदम्भः त्रिपलन्तुपयःपिबेत् । पलमेकंपिबेत्सर्पिःतप्तकृच्छ्रंविधीयते ॥

भा० । ता० । सावधान और जितेंद्रिय मनुष्यका जो बारहदिनपर्यंत भोजनका न करना है वह पराक नामका कृच्छ्र सबपापोंका दूरकरनेवाला होताहै—और एकबार अथवा पुनः करनेसे यहप्रायश्चित्त गुरुलघुपापों को नष्टकरताहै २१५ ॥

एकैकंह्रासयेत्पिंडंकृष्णेशुक्लेचवर्द्धयेत् । उपस्पृशंस्त्रिषवणमेतच्चान्द्रायणंस्मृतम् २१६ ॥

प० । एकैकं ह्रासयेत् पिंडं शुक्ले कृष्णे च वर्द्धयेत् उपस्पृशन् त्रिषवणं एतत् चांद्रायणं स्मृतम् ॥

यो० । त्रिषवणं उपस्पृशन् (स्नानं कुर्वन्) सन् कृष्णे एकैकं पिंडं (ग्रासं) ह्रासयेत् चपुनः शुक्ले एकैकं वर्द्धयेत् एतत् चान्द्रायणं मन्वादिभिः स्मृतम् ॥

भा० । कृष्णपक्षमें एक २ ग्रासकमकरै और शुक्लपक्षमें एक २ ग्रासबढ़ावे और प्रतिदिन त्रिकाल स्नानको करै—यह चांद्रायणव्रत कहाहै ॥

ता० । सायंकाल प्रातःकाल और मध्याह्नकालमें स्नानकरताहुआ मनुष्य पूर्णिमाको १५ पंद्रह ग्रासोंको भक्षणकरके कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे एक २ ग्रासको प्रतिदिन कमकरै इसरीतिसे १४ चतुर्दशी को एकग्रास का भक्षण होगा—फिर अमावास्याको उपवासकरके शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे एकएक ग्रास बढ़ाताजाय इसरीतिसे पूर्णिमाको पन्द्रहग्रास भक्षणकरनापाया—यह मनुआदिकोंने चांद्रायण कहाहै और इसको पिपीलिकामध्य चांद्रायण कहते हैं २१६ ॥

एतमेवविधिंकृत्स्नमाचरेद्यवमध्यमे । शुक्लपक्षादिनियतश्चरंश्चान्द्रायणंव्रतम् २१७ ॥

प० । एतं एव विधिं कृत्स्नं आचरेत् यवमध्यमे शुक्लपक्षादिनियतः चरन् चांद्रायणं व्रतम् ॥

यो० । शुक्लपक्षादिनियतः चांद्रायणं व्रतंचरन् सन् यवमध्यमे चांद्रायणे एतं एव कृत्स्नं विधिं (ह्रास वृद्धिरूपं) आचरेत् (कुर्यात्) ॥

भा० । शुक्लपक्षकी आदिसे चांद्रायण व्रतको करताहुआ मनुष्य यवमध्यम चांद्रायणमें भी इसी पूर्वोक्त सम्पूर्ण विधिकोकरै ॥

ता० । शुक्लपक्षकी आदिसे चान्द्रायण व्रतको करताहुआ मनुष्य इसी सम्पूर्ण विधिको (अर्थात् ग्रासोंकी हानि और वृद्धि और त्रिकाल स्नानको) यवमध्यम नामके चांद्रायण में—करै—उसका प्रकार यहहै कि शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे एक २ ग्रासको इसप्रकार बढ़ावे जैसे पूर्णिमाको पंद्रह १५ ग्रासहोजायँ—फिर कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे एक २ ग्रासको इसप्रकार कमकरै जैसे अमावास्याको उपवासहोजाय—यह चांद्रायण यवमध्यम होताहै २१७ ॥

अष्टावष्टौसमश्नीयात्पिण्डान्मध्यन्दिनेस्थिते । नियतात्माहविष्याशीयतिचान्द्रायणंचरन् २१८

प० । अष्टौ अष्टौ समश्नीयात् पिंडान् मध्यंदिने स्थिते नियतात्मा हविष्याशी यतिचान्द्रायणं चरन् ॥

यो० । यति चांद्रायणं चरन् मनुष्यः नियतात्मा हविष्याशी सन् मध्यंदिने स्थितेसति अष्टौ अष्टौ पिंडान् (ग्रासान्) समश्नीयात् (भुंजीत) ॥

भा० । ता० । यति चांद्रायणको करताहुआ मनुष्य जितेंद्रिय और हविष्यका भोक्ता—होकर म-

ध्याह्नकाल में आठआठ ग्रासोंको भक्षण करै—मध्याह्नकालमें इसलिये कहाहै कि यति और ब्रह्मचारी को सायंकालमें भोजन निषिद्ध है २१८ ॥

चतुरःप्रातरश्नीयात्पिण्डान्विप्रःसमाहितः। चतुरोऽस्तमितेसूर्येशिशुचान्द्रायणंस्मृतम् २१९॥

प० । चतुरः प्रातः अश्नीयात्—पिंडान् विप्रः समाहितः चतुरः अस्तं इते सूर्ये शिशुचांद्रायणं स्मृतम् ॥

यो० । समाहितः चतुरः पिंडान् प्रातः—चतुरः अस्तमिते सूर्ये अश्नीयात्—एतत् शिशुचांद्रायणं मन्वादिभिः स्मृतम् ॥

भा० । ता० । ब्राह्मण सावधान होकर चार ग्रास प्रातःकालके भोजन समय में और चारग्रास सूर्यास्तके समयमें एकमास पर्यंत भोजन करै यह शिशुचांद्रायण मनु आदिकोंने कहा है २१९ ॥

यथाकथञ्चित्पिण्डानांतिस्रोऽशीतीःसमाहितः।मासेनाश्नन्हविष्यस्यचन्द्रस्यैतिसलोकताम् २२०

प० । यथाकथंचित् पिंडानां तिस्रः अशीतीः समाहितः मासेन अश्नन् हविष्यस्य चंद्रस्य एति-सलोकताम् ॥

यो० । समाहितः पुरुषः हविष्यस्य पिंडानां तिस्रः अशीतीः यथाकथंचित् (अनियमेन) मासेन अश्नन् मनुः चंद्रस्य सलोकतां एति (प्राप्नोति) ॥

भा० । सावधान हुआ मनुष्य जिस तिसप्रकार से हविष्य अन्नके दोसौचालीस २४० ग्रास एक मासमें भक्षण करके चंद्रमा के लोकको प्राप्त होताहै ॥

ता० । नीवार आदि हविष्य अन्न के तीनगुने अस्सी अर्थात् दोसौचालीस २४० ग्रासोंकोयथा-कथंचित् अर्थात् कभी सोलह कभी उपवास आदि की रीतिसे सावधान होकर भक्षण करता हुआ मनुष्य चंद्रमाके लोकको प्राप्त होताहै यह पापनाश और प्रताप वृद्धिके लिये कहा है इसीसे इसै वचनसे याज्ञवल्क्यऋषिने यह कहा है कि जो मनुष्य धर्म के लिये इस व्रतको करता है वह चंद्रमा के लोकको प्राप्त होताहै और सुखकी कामनासे जो कृच्छ्रकरताहै वह बडी श्रीको प्राप्तहोताहै इससे याज्ञवल्क्य ऋषिने यह भी कहा है कि प्राजापत्य आदि कृच्छ्रोंका भी अभ्युदय (प्रताप की वृद्धि) फल है २२० ॥

एतद्रुद्रास्तथादित्यावसवश्चाचरन्व्रतम्। सर्वाकुशलमोक्षायमरुतश्चमहर्षिभिः २२१ ॥

प० । एतत् रुद्राः तथा आदित्याः वसवः च आचरन् व्रतम् सर्वाकुशलमोक्षाय मरुतः च महर्षिभिः॥

यो० । रुद्राः तथा आदित्याः चपुनः महर्षिभिःसह मरुतः एतत् व्रतं सर्वाकुशलमोक्षाय आचरन् ॥

भा० । ता० । रुद्र और आदित्य और महर्षि और मरुत—ये भी इस व्रतको संपूर्ण(लघु वा गुरु) पापोंकी निवृत्ति के लिये इसही व्रतको करते भये २२१ ॥

महाव्याहृतिभिर्होमःकर्तव्यःस्वयमन्वहम् । अहिंसासत्यमक्रोधमार्जवंचसमाचरेत् २२२ ॥

प० । महाव्याहृतिभिः होमः कर्तव्यः स्वयं अन्वहं अहिंसां सत्यं अक्रोधं आर्जवं च समाचरेत् ॥

---

१ धर्मार्थंयश्चरेदेतच्चंद्रस्यैतिसलोकतां । कृच्छ्रकृच्छ्रमकामस्तुमहतींश्रियमाप्नुयात् ॥

यो० । ब्राह्मणेन महाव्याहृतिभिः अन्वहं होमः स्वयं कर्तव्यः–चपुनः अहिंसां–सत्यं–अक्रोधं–आर्जवं–ब्राह्मणः समाचरेत् ॥

भा० । ता० । भूः भुवः स्वः इन महाव्याहृतियोंसे प्रतिदिन स्वयं घीका होमकरै क्योंकि इस परिशिष्टवचन में घीकाही होम कहा है कि जिन होमों में हविका नाम नहीं कहा वहां आज्यही हवि लेना–और हिंसाका त्याग सत्य–क्रोधकात्याग–नम्रता–इनका सदैव आचरण करै २२२ ॥

त्रिरह्नस्त्रिर्निशायांचसवासाजलमाविशेत् । स्त्रीशूद्रपतितांश्चैवनाभिभाषेतकर्हिचित् २२३ ॥

प० । त्रिः अह्नः त्रिः निशायां च सवासाः जलं आविशेत्–स्त्रीशूद्रपतितान् च एव न अभिभाषेत–कर्हिचित् ॥

यो० । त्रिः अह्नः चपुनः त्रिः निशायां सवासाः जलं आविशेत् चपुनः स्त्रीशूद्रपतितान् कर्हिचित् न अभिभाषेत ॥

भा० । रात्रि और दिन में तीन ३ वार सचैल स्नान करै और व्रतकी समाप्ति पर्यंत स्त्री शूद्र पतितों के संग संभाषण न करै ॥

ता० । दिन और रात्रिके आदि मध्य अंतमें स्नानके लिये वस्त्रों सहित जलमें प्रवेश करै और यह विधि पिपीलिका मध्य–यवमध्य चांद्रायणसे भिन्न चांद्रायणमें समझनी क्योंकि उनमें तीन बार स्नानकी विधि कहआयेहैं और स्त्री शूद्र पतित–इनके संग जबतक व्रतकी समाप्तिहो तबतक संभाषण न करै २२३ ॥

स्थानासनाभ्यांविहरेदशक्तोऽधःशयीतवा । ब्रह्मचारीव्रतीचस्याद्गुरुदेवद्विजार्चकः २२४ ॥

प० । स्थानासनाभ्यां विहरेत् अशक्तः अधः शयीत वा ब्रह्मचारी व्रती च स्यात् गुरुदेवद्विजार्चकः ॥

यो० । स्थानासनाभ्यां विहरेत्–वा अशक्तः अधः शयीत–चपुनः ब्रह्मचारी व्रती गुरुदेवद्विजार्चकः स्यात् ॥

भा० । पूर्वोक्त व्रतोंका कर्ता खडारहै वा बैठा अथवा भूमिपर सोवै और स्त्रीके संग को त्यागै–और मौंजी और दंड आदि का धारण करै और गुरुदेव द्विज इनका पूजनकरै ॥

ता० । दिन–और रात्रिमें उत्थित (खड़ा) रहै अथवा बैठारहै और शयन न करै–यदि सामर्थ्य न होय तो अधः (भूमिपर) शयनकरै खट्वापर नहीं–और ब्रह्मचारी (स्त्रीके संभोगसे रहित) और व्रती (मौंजी और दंड आदि से युक्त) रहै–क्योंकि यमने इस वचनसे यह कहा है कि ढांकके दंडको और मूंजकी मेखलाको धारण करै–और गुरु देवता द्विज इनका पूजन करै २२४ ॥

सावित्रींचजपेन्नित्यंपवित्राणिचशक्तितः ।सर्वेष्वेवव्रतेष्वेवंप्रायश्चित्तार्थमादृतः २२५॥

प० । सावित्रीं च जपेत्–नित्यं पवित्राणि च शक्तितः सर्वेषु एव व्रतेषु एवं प्रायश्चित्तार्थं आदृतः ॥

यो० । आदृतः मनुष्यः सर्वेषु एवव्रतेषु प्रायश्चित्तार्थं एवं सावित्रीं चपुनः पवित्राणि स्तोत्राणि शक्तितः नित्यं जपेत् ॥

भा० । ता० । बड़े आदरसे प्रायश्चित्त के लिये संपूर्ण चांद्रायणादि व्रतोंमें इसी पूर्वोक्त प्रकारसे गायत्रीको और अघमर्षण आदि पवित्र मंत्रोंको यथाशक्ति जपै २२५ ॥

एतैर्द्विजातयःशोध्याव्रतैराविष्कृतैनसः।अनाविष्कृतपापांस्तुमन्त्रैर्होमैश्चशोधयेत् २२६ ॥

प० । एतैः द्विजातयः शोध्याः व्रतैः आविष्कृतैनसः अनाविष्कृतपापान् तु मंत्रैः होमैः च शोधयेत् ॥

---

१ आज्यंहविरनादेशेजुहोतिषुविधीयते ॥

२ पालाशंधारयेद्दंडंमुंचिमौंजींचमेखलां ॥

यो० । आविष्कृतैनसः द्विजातयः एतैः व्रतैः शोध्याः तुपुनः अनाविष्कृतपापान् द्विजातीन् मंत्रैः चपुनः होमैः शोधयेत्॥

भा० । जिनका पाप प्रकट है उनकी शुद्धि इन पूर्वोक्त प्रायश्चित्तोंसे करनी और जिनका पाप प्रकट नहीं उनकी शुद्धि मंत्र और होमों से होती है ॥

ता० । जगत् में विदित है पाप जिनका ऐसे तीनों द्विजातियोंको इन व्रतोंसे अर्थात् पूर्वोक्त प्रायश्चित्तोंसे वह सभा जो (आगे कहेंगे) शुद्धकरले अर्थात् सभाके कहनेसे वे पूर्वोक्त प्रायश्चित्तकरैं और जिन पापियोंका पाप प्रकाशित नहीं है उनको सभा मंत्र और होमोंसे शुद्धकरै यद्यपि सभामें निवेदनसे रहस्यत्वका नाश होताहै अर्थात् पापकी प्रकटता होजाती है तथापि इसप्रकार सभा में प्रश्नकरै कि अमुक पापकरनेवालेको क्या प्रायश्चित्त करना चाहिये इसप्रकार पूछनेसे पापकी प्रकटता न होगी और पापी सभाके कहेहुये प्रायश्चित्त को करके शुद्ध होजायगा २२६ ॥

ख्यापनेनानुतापेनतपसाऽध्ययनेनच । पापकृन्मुच्यतेपापात्तथादानेनचापदि २२७॥

प० । ख्यापनेन अनुतापेन तपसा अध्ययनेन च पापकृत् मुच्यते पापात् तथा दानेन च आपदि॥

यो० । पापस्यख्यापनेन अनुतापेन-तपसा-चपुनः अध्ययनेन-तथा आपदि दानेन पापकृत् पापात् मुच्यते ॥

भा० । पापके प्रकटकरने-पश्चात्ताप-तप-अध्ययन-और विपत्तिके समय दान, से-पापी अपने कियेहुये पापोंसे मुक्तहोताहै ॥

ता० । पापकाकर्ता अपने पापोंके विदित करनेसे-अथवा मुझ पापकरनेवालेको धिक्कारहै इस प्रकार पश्चात्ताप करनेसे-और गायत्रीके जपआदि उग्रतपसे अथवा वेदके अध्ययनसे और आपत्ति के समय दानसे पापी अपने पापोंसे मुक्तहोताहै और यह पापोंका विदितकरना प्रकाश प्रायश्चित्त का अंगहै-रहस्य (गुप्त) प्रायश्चित्तका अंगनहीं-अन्यथा वह रहस्य न रहेगा-और पश्चात्ताप प्रकाश रहस्य दोनों प्रायश्चित्तों का अंगहै २२७ ॥

यथायथानरोऽधर्मस्वयंकृत्वानुभाषते । तथातथात्वचेवाहिस्तेनाधर्मेणमुच्यते २२८॥

प० । यथा यथा नरः अधर्मं स्वयं कृत्वा अनुभाषते-तथा तथा त्वचा इव अहिः तेन अधर्मेण मुच्यते ॥

यो० । नरः अधर्मंकृत्वा यथा यथा स्वयं-अनुभाषते तथा तथा त्वचा अहिः इव तेन अधर्मेण मुच्यते ॥

भा० । ता० । मनुष्य स्वयं अधर्म (पापों)को करके जैसे जैसे प्रकटकरताहै तैसे२ ही उस अधर्मसे इसप्रकार छूटताहै जैसे त्वचा (कांचली) से सर्प छूटताहै २२८ ॥

यथायथामनस्तस्यदुष्कृतंकर्मगर्हति । तथातथाशरीरंतत्तेनाधर्मेणमुच्यते २२९॥

प० यथा यथा मनः तस्य दुष्कृतं कर्म गर्हति-तथा तथा शरीरं तत् तेन अधर्मेण मुच्यते ॥

यो० । तस्य (पापकर्तुः) मनः यथा यथा दुष्कृतं कर्म गर्हति-तथा तथा तत् शरीरं तेन पापेन मुच्यते-पापहीनं भवतीत्यर्थः ॥

भा० । ता० । उस पापकरनेवालेका मन जैसे२ निंदितकर्मकी निंदाकरताहै तैसे तैसेही उस पापीका जीवात्मा उसअधर्मसे छूटताहै २२९ ॥

कृत्वापापंहिसंतप्यतस्मात्पापात्प्रमुच्यते । नैवंकुर्यांपुनरितिनिवृत्त्यापूयतेतुसः २३० ॥

प० । कृत्वा पापं हि सन्तप्य तस्मात् पापात् विमुच्यते न एवं कुर्यां पुनः इति निवृत्त्या पूयते तु सः ॥

यो० । मनुष्यः पापं कृत्वा संतप्य तस्मात् पापात् विमुच्यते एवं पुनः न कुर्यां इति निवृत्त्यातु सः पूयते ॥

भा० । मनुष्य पापकरनेपर पश्चात्ताप करनेसे उसपापसे मुक्तहोताहै—और ऐसा फिर न करूंगा इस निवृत्तिरूप संकल्पसे तो वहपापी भलीप्रकार पवित्रहोताहै ॥

ता० । मनुष्य पापकोकरके फिर उसपापका सन्तापकरके अर्थात् मैंने अनुचितकिया यह पश्चात्ताप करके उसपापसे भलीप्रकार छुटताहै—और जबवह पश्चात्ताप इसप्रकार संकल्पसे कियाजाता है कि फिर ऐसाकभीनहीं करूंगा—तब वहपापी उसपापसे भलीप्रकार पवित्रहोताहै—और यहवचन निवृत्तिरूप इस संकल्पके प्रकाश और अप्रकाशरूप प्रायश्चित्तके अंगका बोधकहै २३० ॥

एवंसंचिंत्यमनसाप्रेत्यकर्मफलोदयम् । मनोवाङ्मूर्तिभिर्नित्यंशुभंकर्मसमाचरेत् २३१ ॥

प० । एवं संचिंत्य मनसा प्रेत्य कर्मफलोदयं मनोवाङ्मूर्तिभिः नित्यं शुभं कर्म समाचरेत् ॥

यो० । प्रेत्यकर्मफलोदयं एवं मनसासंचिंत्य मनोवाङ्मूर्तिभिः नित्यं शुभंकर्म समाचरेत् ॥

भा० । ता० । शुभ और अशुभकर्मकी फलप्राप्तिको परलोकमें इसप्रकार मनसे विचारकर मन—वाणी—काया—से प्रतिदिन शुभकर्मकोही करै क्योंकि शुभकर्मही इष्टफलको देताहै—और नरकआदि दुःखदाता कर्मको कभी न करै २३१ ॥

अज्ञानाद्यदिवाज्ञानात्कृत्वाकर्मविगर्हितम् ।तस्माद्विमुक्तिमन्विच्छन्द्वितीयंनसमाचरेत् २३२

प० । अज्ञानात् यदि वा ज्ञानात् कृत्वा कर्म विगर्हितं तस्मात् विमुक्तिं अन्विच्छन् द्वितीयं न समाचरेत् ॥

यो० । अज्ञानात् यदि वा ज्ञानात् विगर्हितं कर्मकृत्वा तस्मात् (कर्मणः) विमुक्तिं अन्विच्छन् सन् द्वितीय तत् कर्म न कुर्यात् ॥

भा० । ता० । प्रमादसे अथवा अपनी इच्छासे निषिद्धकर्मको करके उसपापसे मुक्तिको चाहता हुआ मनुष्य पुनः उसकर्मको न करै क्योंकि पुनः करनेमें इसे देवलऋषीके वचनानुसार दूना प्रायश्चित्त होताहै २३२ ॥

यस्मिन्कर्मण्यस्यकृतेमनसःस्यादलाघवम् ।तस्मिंस्तावत्तपःकुर्याद्यावत्तुष्टिकरंभवेत् २३३ ॥

प० । यस्मिन् कर्मणि अस्य कृते मनसः स्यात् अलाघवं तस्मिन् तावत् तपः कुर्यात् यावत् तुष्टिकरं भवेत् ॥

यो० । यस्मिन् कर्मणि कृते सति अस्य (पापिनः) मनसः अलाघवंस्यात् तस्मिन् तावत् तपः कुर्यात् यावत् तुष्टिकरं भवेत् ॥

भा० । ता० । जिस प्रायश्चित्तरूप कर्मके करनेपर इसपापीके मनको अलाघवहो अर्थात् संतोष न होय उसमें उतनेही प्रायश्चित्तको पुनः पुनः करै जितनेसे इसके मनकी प्रसन्नताहो २३३ ॥

तपोमूलमिदंसर्वंदैवमानुषिकंसुखम् । तपोमध्यंबुधैःप्रोक्तंतपोऽन्तंवेददर्शिभिः २३४ ॥

प० । तपोमूलं इदं सर्वं दैवमानुषिकं सुखं तपोमध्यं बुधैः प्रोक्तं तपोन्तं वेददर्शिभिः ॥

---

१ विधेःप्राथमिकादस्माद्द्वितीयेद्विगुणंभवेत् ॥

यो० । इदं सर्वं दैवमानुषिकंसुखं वेददर्शिभिः बुधैः तपोमूलं तपोमध्यं तपोन्तं प्रोक्तम् ॥

भा० । देवता वा मनुष्यों का जितना सुख है उस सम्पूर्ण का मूल—मध्य—और अन्त वेदके देखनेवाले विद्वानोंने तपकोही कहाहै—अर्थात् देवता और मनुष्योंके सुखका आदि मध्य अन्त तप केही आधीनहै ॥

ता० । देवता और मनुष्योंका जो यह संपूर्ण सुखहै उसका तपही कारण है और तपही उसका मध्यहै अर्थात् तपसेही उसकी स्थितिहै और तपही उसका अन्तहै अर्थात् जितना तपहोताहै उतनीही दैव—और मानुषिक सुखकी अवधीहोती है—और वहतप पूर्वोक्त प्राजापत्य आदि होताहै—यह सबवेदके देखनेवाले विद्वानोंने कहाहै २३४ ॥

ब्राह्मणस्यतपोज्ञानंतपःक्षत्रस्यरक्षणम्।वैश्यस्यतुतपोवार्तातपःशूद्रस्यसेवनम् २३५॥

प० । ब्राह्मणस्य तपः ज्ञानं तपः क्षत्रस्य रक्षणं वैश्यस्य तु तपः वार्ता तपः शूद्रस्य सेवनम् ॥

यो० । ब्राह्मणस्य ज्ञानं तपः—क्षत्रस्यरक्षणंतपः-वैश्यस्यवार्तातपः—शूद्रस्यसेवनंतपः (अस्ति) ॥

भा० । ता० । ब्राह्मणका तप ज्ञान है अर्थात् ब्रह्मचारीके धर्म के बोधक वेदका ज्ञान है—और क्षत्री का तप प्रजाकी रक्षा है और वैश्यका तप वार्ता (कृषि व्यापार गोरक्षा आदि) है—और शूद्रका तप ब्राह्मणकी सेवा है २३५ ॥

ऋषयःसंयतात्मानःफलमूलानिलाशनाः।तपसैवप्रपश्यन्तित्रैलोक्यंसचराचरम् २३६ ॥

प० । ऋषयः संयतात्मानः फलमूलानिलाशनाः तपसा एव प्रपश्यंति त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥

यो० । फलमूलानिलाशनाः संयतात्मानः ऋषयः तपसा एव सचराचरं त्रैलोक्यं प्रपश्यंति ॥

भा० । ता० । वाणी—मन—देह—इनके संयम में टिकेहुये फल मूल वायुको भक्षण करतेहुये ऋषि एक स्थानमें बैठकरही स्थावर जंगम रूप त्रिलोकी को भलीप्रकार तपसेही देखते हैं—अर्थात् तपसे परे और कोई उत्तम पदार्थ नहीं है २३६ ॥

औषधान्यगदोविद्यादैवीचविविधास्थितिः।तपसैवप्रसिध्यन्तितपस्तेषांहिसाधनम् २३७॥

प० । औषधानि अगदः विद्या दैवी च विविधा स्थितिः तपसा एव प्रसिध्यंति तपः तेषां हि साधनम् ॥

यो० । औषधानि अगदः विद्या चपुनः दैवी विविधा स्थितिः एतानि तपसा एव प्रसिध्यंति हि (यतः) तेषांसाधनं तपः अस्ति ॥

भा० । औषध—नीरोगता—विद्या—और देवताओंकी अनेकप्रकारकी स्थिति—ये सब तपसेही प्राप्त होते हैं क्योंकि इनका साधन तपही है ॥

ता० । रोगके दूरकरनेवाली औषध—और अगद (नीरोगता) और विद्या—अर्थात् ब्रह्मधर्म का आचरण जिससे हो ऐसा वेदांतका ज्ञान और दैवी विविध स्थिति अर्थात् देवताओं के योग्य नानाप्रकारके स्वर्ग आदि लोकों में स्थिति—ये सब तपसेही प्राप्त होतेहैं—क्योंकि इनकी प्राप्तिका निमित्त तपही है २३७ ॥

यद्दुस्तरंयद्दुरापंयद्दुर्गंयच्चदुष्करम् । सर्वंतुतपसासाध्यंतपोहिदुरतिक्रमम् २३८ ॥

प० । यत् दुस्तरं यत् दुरापं यत् दुर्गं यत् च दुष्करं सर्वं तु तपसा साध्यं तपः हि दुरतिक्रमम् ॥

यो० । यत् दुस्तरं—यत् दुरापं—यत् दुर्गं—चपुनः यत् दुष्करं भवति—तत्सर्वं तपसा साध्यं भवति हि (यतः) तपः दुरतिक्रमं अस्ति ॥

भा० । जो वस्तु दुस्तर है—जो दुराप है—जो दुर्ग है—जो दुष्कर है—वह सब तपसे सिद्धकरने योग्यहै क्योंकि तपही दुष्कर कर्म का साधक होताहै ॥

ता० । जो दुस्तर है अर्थात् ग्रह प्रारब्ध आदि से सूचित विपत्ति आदि दुःखसे तरीजाय—जो वस्तु दुराप हो—अर्थात् दुःखसे मिलसके जैसे क्षत्रिय आदि को उसी शरीरसे ब्राह्मणत्व का मिलना—जो स्थान दुःखसे गमनकरने योग्य हो जैसे मेरु पर्वत की शिखर—जो कर्म दुःखसे किया जाय जैसे गौ आदि का प्रचुरदान—ये सब तपसेही होसक्ते हैं क्योंकि दुष्कर भी कर्म का कारण तप होताहै २३८॥

महापातकिनश्चैवशेषाश्चाकार्यकारिणः।तपसैवसुतप्तेनमुच्यन्तेकिल्बिषात्ततः २३९॥

प० महापातकिनः च एव शेषाः च अकार्यकारिणः तपसा एव सुतप्तेन मुच्यंते किल्बिषात् ततः ॥

यो० । महापातकिनः चपुनः शेषाः अकार्यकारिणः सुतप्तेन तपसा एव ततः किल्बिषात् मुच्यंते ॥

भा० । ता० । ब्रह्महत्या आदि महापातकोंके कर्ता—और अन्य भी अकार्यों (उपपातक आदि)के कर्ता—पूर्वोक्त रीतिसे कियेहुये तपसेही उस पापसे मुक्त होतेहैं २३९ ॥

कीटाश्चाहिपतंगाश्चपशवश्चवयांसिच । स्थावराणिचभूतानिदिवंयान्तितपोबलात् २४० ॥

प० । कीटाः च अहिपतंगाः च पशवः च वयांसि च स्थावराणि च भूतानि दिवं यांति तपोबलात्॥

यो० । कीटाः अहिपतंगाः पशवः वयांसि—चपुनः स्थावराणि भूतानि तपोबलात् दिवं यांति ॥

भा० । कीट—सर्प—पतंग—पशु—पक्षी और स्थावर भूत—ये भी तपके बल से स्वर्गमें जाते हैं ॥

ता० । कीट—सर्प—पतंग—पशु—पक्षी और स्थावरभूत (वृक्ष गुल्मलताआदि) ये सब तपकेही माहात्म्यसे स्वर्गमें जातेहैं—क्योंकि कपोतआदि के इतिहासों में पक्षीआदिकों का भी अग्निमें प्रवेश आदि तप सुनाजाता है और कीटआदिकों को जो जातिसेही दुःखका सहना है वहीतप है उससेही पापरहित होकर स्वर्गमें उस पुण्यसे जातेहैं जो किसी अच्छेजन्मांतरमें कियाथा २४० ॥

यत्किञ्चिदेनःकुर्वन्तिमनोवाङ्मूर्त्तिभिर्जनाः । तत्सर्वंनिर्दहंत्याशुतपसैवतपोधनाः २४१ ॥

प० । यत् किंचित् एनः कुर्वंति मनोवाङ्मूर्तिभिः जनाः तत् सर्वं निर्दहंन्ति आशु तपसा एव तपोधनाः॥

यो० । जनाः मनोवाङ्मूर्तिभिः यत् किंचित् पापं कुर्वंति—तत् सर्वं पापं तपोधनाः तपसाएव आशु निर्दहंति (नाशयंति)

भा० । ता० । मन वाणी देहसे जो कुछ पाप मनुष्य करते हैं उससम्पूर्ण पापको तपकरनेसेही उसी समय नष्टकर देतेहैं २४१ ॥

तपसैवविशुद्धस्यब्राह्मणस्यदिवौकसः । इज्याश्चप्रतिगृह्णन्तिकामान्संवर्धयन्तिच २४२ ॥

प० । तपसा एव विशुद्धस्य ब्राह्मणस्य दिवौकसः इज्याः च प्रतिगृह्णंति कामान् संवर्धयंति च ॥

यो० । तपसा विशुद्धस्य एव ब्राह्मणस्य यज्ञे दिवौकसः इज्याः (हवींषि) प्रतिगृह्णंति—चपुनः कामान् संवर्धयंति ॥

भा० । ता० । प्रायश्चित्तरूप तपसे नष्टहोगया है पाप जिसका ऐसे ब्राह्मण के यज्ञकी हवि को देवता ग्रहणकरतेहैं और ब्राह्मणकी कामनाओं को पूर्णकरतेहैं २४२ ॥

प्रजापतिरिदंशास्त्रंतपसैवासृजत्प्रभुः । तथैववेदानृषयस्तपसाप्रतिपेदिरे २४३ ॥

प० । प्रजापतिः इदं शास्त्रं तपसा एव असृजत् प्रभुः तथा एव वेदान् ऋषयः तपसा प्रतिपेदिरे ॥

यो० । प्रभुः (समर्थः) प्रजापतिः (ब्रह्मा) इदं शास्त्रं तपसा एव असृजत्—तथा एव ऋषयः (वसिष्ठादयः) तपसा वेदान् प्रतिपेदिरे (वेदज्ञाः संपन्नाः) ॥

भा० । ता० । सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्ति—पालन और प्रलयकरने में प्रभु (समर्थ) ब्रह्माने इस ग्रन्थको तपसेही रचा—और वसिष्ठआदि ऋषि भी तपसेही वेदके ज्ञाताहुये २४३ ॥

इत्येतत्तपसोदेवामहाभाग्यंप्रचक्षते।सर्वस्यास्यप्रपश्यन्तस्तपसःपुण्यमुत्तमम् २४४ ॥

प० । इति एतत् तपसः देवाः महाभाग्यं प्रचक्षते सर्वस्य अस्य प्रपश्यंतः तपसः पुण्यं उत्तमम् ॥

यो० । सर्वस्य अस्य जंतोः उत्तमं पुण्यं (दुर्ल्लभजन्म) तपसः सकाशात् प्रपश्यंतःदेवाः इति एतत् तपसः महाभाग्यं प्रचक्षते ॥

भा० । ता० । सम्पूर्ण इनजीवों के उत्तमपुण्य (दुर्ल्लभजन्म) को तपसेही उत्पन्न जानतेहुये देवताओंने यहपूर्वोक्त तपका माहात्म्यकहाहै—अर्थात् सबकामूलकारण तपकोही वर्णनकियाहै २४४ ॥

वेदाभ्यासोऽन्वहंशक्त्यामहायज्ञक्रियाक्षमा।नाशयन्त्याशुपापानिमहापातकजान्यपि २४५ ॥

प० । वेदाभ्यासः अन्वहं शक्त्या महायज्ञक्रिया क्षमा नाशयंति आशु पापानि महापातकजानि अपि ॥

यो० । अन्वहं शक्त्या वेदाभ्यासः महायज्ञक्रिया क्षमा एतानि महापातकजानि अपि पापानि आशु नाशयंति ॥

भा० । ता० । यथाशक्ति प्रतिदिन वेदकाअभ्यास और पांचमहायज्ञोंका करना और क्षमा अर्थात् किसीके अपराधको सहना ये सबमहापातक से पैदाहुये भी पापोंको शीघ्रनष्टकरतेहैं २४५ ॥

यथैधस्तेजसावह्निःप्राप्तंनिर्दहतिक्षणात् । तथाज्ञानाग्निनापापंसर्वंदहतिवेदवित् २४६ ॥

प० । यथा एधः तेजसा वह्निः प्राप्तं निर्दहति क्षणात् तथा ज्ञानाग्निना पापं सर्वं दहति वेदवित् ॥

यो० । यथावह्निः प्राप्तं एधः क्षणात् निर्दहति तथा वेदवित् ज्ञानाग्निना सर्वं पापं दहति ॥

भा० । ता० । जैसे अग्नि प्राप्तहुये काष्ठको क्षणमात्र में भस्मकरदेता है इसीप्रकार वेदकाज्ञाता ब्राह्मण सम्पूर्ण पापोंको नष्टकरदेता है २४६ ॥

इत्येतदेनसामुक्तंप्रायश्चित्तंयथाविधि।अतऊर्ध्वंरहस्यानांप्रायश्चित्तंनिबोधत २४७ ॥

प० । इति एतत् एनसां उक्तं प्रायश्चित्तं यथाविधि अतः ऊर्ध्वं रहस्यानां प्रायश्चित्तं निबोधत ॥

यो० । इति एतत् एनसां प्रायश्चित्तं यथाविधि उक्तं अतः ऊर्ध्वं रहस्यानां प्रायश्चित्तं निबोधत ॥

भा० । ता० । ब्रह्महत्यादि जो प्रकाश पापहैं उनका यह प्रायश्चित्त विधिपूर्वक कहा इससे आगे रहस्य (गुप्त) पापोंके प्रायश्चित्तको तुमसुनो २४७ ॥

सव्याहृतिप्रणवकाःप्राणायामास्तुषोडश । अपिभ्रूणहणंमासात्पुनन्त्यहरहःकृताः २४८ ॥

प० । सव्याहृतिप्रणवकाः प्राणायामाः तु षोडश अपि भ्रूणहणं मासात् पुनंति अहरहः कृताः ॥

यो० । अहरहः कृताः सव्याहृतिप्रणवकाः षोडश प्राणायामाः भ्रूणहणं अपि मासात्—पुनंति ॥

भा० । प्रतिदिन कियेहुये ७ व्याहृति और ओंकार गायत्री आदि सहित सोलह प्राणायाम एक मास में भ्रूणहत्यारे को भी पवित्र करते हैं ॥

ता० । भू आदि व्याहृति ओंकार गायत्री और शिरः मंत्र इनसे युक्त और पूरक, कुंभक, रेचक आदि विधिसे प्रतिदिन कियेहुये सोलह प्राणायाम एक मासमें ब्रह्महत्यारेको भी पवित्र करते हैं— और अपि शब्दसे उसको भी पवित्र करते हैं जो ब्रह्महत्याके शास्त्रोक्त प्रायश्चित्तका अधिकारी है और यह प्रायश्चित्त तीनों द्विजातियोंकोही कर्त्तव्य है क्योंकि स्त्री—और शूद्रों को तो वेद के मंत्र में अनधिकार है २४८ ॥

कौत्संजप्त्वापइत्येतद्वासिष्ठंचप्रतीत्यृचम् । माहित्रंशुद्धवत्यश्चसुरापोऽपिविशुद्ध्यति २४९ ॥

प० । कौत्सं जप्त्वा अपइतिएतत् वासिष्ठं च प्रतिइतिऋचम् माहित्रं शुद्धवत्यः च सुरापः अपि विशुद्ध्यति ॥

यो० । अपि इति एतत् कौत्सं—प्रति इति वासिष्ठं ऋचं—माहित्रं—चपुनः शुद्धवत्यः (तिस्रः ऋचः) जप्त्वा सुरापः अपि विशुद्ध्यति—शुद्धोभवतीत्यर्थः ॥

भा० । कौत्स ऋषि की कहीहुई अप इस ऋचाको—और वसिष्ठकी कही प्रति इस ऋचा को—और माहित्र सूक्तको—और शुद्धवती तीन ऋचाओंको प्रतिदिन मास पर्यंत सोलहवार भी जपकर मदिरा पीनेवाला भी शुद्ध होता है ॥

ता० । कौत्सऋषि के कहेहुये—अपनः शोशुचदघं—इससूक्तको—और वसिष्ठऋषि की कहीहुई— प्रतिस्तोमेतिरुपमनुशिष्य—इस ऋचाको—और—महित्रीणामवोस्तु—इत्यादि सूक्तको—और शुद्धवत्य एतोन्विंद्रंस्तवामशुद्धं—इनतीन ऋचाओंको—एकमास पर्यंत प्रतिदिन सोलहवार भी जपकर सुराप (मदिरा का पीनेवाला भी शुद्धहोताहै—और अपिशब्दसे वह भी शुद्धहोताहै जो सुरापान के प्रायश्चित्त का अधिकारीहै २४९ ॥

सकृज्जप्त्वास्यवामीयंशिवसंकल्पमेवच । अपहृत्यसुवर्णंतुक्षणाद्भवतिनिर्मलः २५० ॥

प० । सकृत् जप्त्वा अस्यवामीयं शिवसंकल्पं एव च अपहृत्य सुवर्णं तु क्षणात् भवति निर्मलः ॥

यो० । सुवर्णं अपहृत्य—अस्यवामीयं (सूक्तं) चपुनः शिवसंकल्पं सकृत् जप्त्वा क्षणात् निर्मलः भवति ॥

भा० । अस्य वामके सूक्तको और शिवसंकल्पको मासपर्यन्त एकवार भी जपकर ब्राह्मणके सुवर्णकी चोरी करनेवाला शुद्धहोताहै ॥

ता० । ब्राह्मणके सुवर्णको चुराकर—अर्थात् जो ब्राह्मणके सुवर्णकी चोरीकरै वह एकमास पर्यंत अस्यवाम (पलित) ऋषिके कहेहुये सूक्तको प्रतिदिन एकवार भी जपकर अथवा शिवसंकल्प (यज्जाग्रतोदूरमुदैतिदैवं—इत्यादि वाजसनेयीमें पठित सूक्तको जपकर उसीक्षणमें शुद्धहोताहै २५० ॥

हविष्यन्तीयमभ्यस्यनतमंहइतीतिच । जपित्वापौरुषंसूक्तंमुच्यतेगुरुतल्पगः २५१ ॥

प० । हविष्यंतीयं अभ्यस्य नतंमहइतीति च जपित्वा पौरुषं सूक्तं मुच्यते गुरुतल्पगः ॥

यो० । गुरुतल्पगः (गुरुस्त्रीगामी) हविष्यंतीयं—चपुनः नतं अंह इति अष्टौऋचः—पौरुषंसूक्तं जपित्वा—पापान्मुच्यते ॥

भा० । हविष्यंतीय २१ ऋचाओं को—और नतंमंह इनआठ ऋचाओंको और सहस्रशीर्षा इस पुरुषसूक्तको एकमास पर्यंत प्रतिदिन एकवार जपकर—गुरुस्त्रीका गमनकरनेवाला शुद्धहोताहै ॥

ता० । जो मनुष्य गुरु (पिता वा उपाध्याय) की स्त्रीकेसंग गमनकरै वह—हविष्यांगमजरंस्व-र्विदाम इत्यादि इक्कीस २१ ऋचाओंको—अथवा—नतंमंहोनदुरितं—इनआठ ऋचाओंको अथवा तन्मेमनः शिवसंकल्पमस्तु—इससूक्तको अथवा सोलहऋचाके पौरुष (सहस्रशीर्षा) सूक्तको एकमास पर्यंत एकवार प्रतिदिन जपकर—गुरुस्त्री गमनके पापसे छूटताहै २५१ ॥

एनसांस्थूलसूक्ष्माणांचिकीर्षन्नपनोदनम् । अवेत्यृचंजपेदब्दंयत्किञ्चेदमितीतिवा २५२ ॥

प० । एनसां स्थूलसूक्ष्माणां चिकीर्षन् अपनोदनम् अवइतिऋचं जपेत् अब्दं यत्किंचेदंइति इति वा ॥

यो० । स्थूलसूक्ष्माणां एनसां (पापानां) अपनोदनं (नाशं) चिकीर्षन् पुरुषः अवइतिऋचं—वा यत्किंचेदंइति अब्दं जपेत् ॥

भा० । छोटे—बडे पापोंका नाशचाहनेवाला मनुष्य अव इसऋचाको वा यत्किंचेदं इसऋचा को वर्षभर एकवार जपे ॥

ता० । महापातकआदि स्थूलपापोंका और उपपातकआदि सूक्ष्मपापोंका नाशचाहताहुआ मनुष्य अवतेहेलोवरुणनमोभिः—इसऋचाको अथवा—यत्किंचेदंवरुणदैव्येजने—इसऋचा को अथवा—मेमनः शिवसंकल्पमस्तु—इससूक्तको—एकवर्षपर्यंत प्रतिदिन एकवार जपे २५२ ॥

प्रतिगृह्याप्रतिग्राह्यंभुक्त्वाचान्नंविगर्हितम्।जपंस्तरत्समन्दीयंपूयतेमानवस्त्र्यहात् २५३॥

प० । प्रतिगृह्य अप्रतिग्राह्यं भुक्त्वा च अन्नं विगर्हितं जपन् तरत्समंदीयं पूयते मानवः त्र्यहात् ॥

यो० । अप्रतिग्राह्यं प्रतिगृह्य चपुनः विगर्हितं अन्नं भुक्त्वा मानवः तरत् समंदीयं जपन् सन् त्र्यहात् पूयते ॥

भा० । प्रतिग्रह के अयोग्य का प्रतिग्रहलेकर अथवा निषिद्ध अन्नको भक्षणकरके तरत्समंदीय ऋचाके तीनदिनतक जपकरनेसे मनुष्य शुद्धहोताहै ॥

ता० । प्रतिग्रहलेने अयोग्यवस्तु का प्रतिग्रहलेकर और स्वभाव वा कालसे प्रतिग्रह के संबन्धसे दुष्टअन्नको भक्षणकरके तरत्समंदीधावति इनचार ऋचाओंके तीनदिन जपकरनेसे अथवा अर्य्यमा-वरुणं-मित्रंच—इसऋचाको पढ़कर स्नानकरनेसे मनुष्य शुद्धहोताहै २५३ ॥

सोमारौद्रंतुबह्वेनामासमभ्यस्यशुद्ध्यति।स्रवन्त्यामाचरन्स्नानमर्यम्णामितिचत्यृचम् २५४॥

प० । सोमारौद्रं तु बह्वेनाः मासं अभ्यस्य शुद्ध्यति स्रवंत्यां आचरन् स्नानं अर्यम्णां इति च त्यृचं ॥

यो० । बह्वेनाः (मनुष्यः) सोमारौद्रं चपुनः अर्यम्णां इतित्यृचं मासं अभ्यस्य स्रवंत्यां स्नानं आचरन् सन् शुद्ध्यति ॥

भा० । बहुतपाप करनेवाला मनुष्य मासपर्यंत सोमारौद्रके अथवा अर्यमा वरुण इसऋचा के मासभर जपनेसे अथवा बहतीहुई नदीमें स्नानकरनेसे शुद्धहोताहै ॥

ता० । जिसमनुष्यने अनेकपापकियेहों वह मनुष्य एकमास पर्यंत—सोमारुद्राधारयेत् स्यामस्वयं इनचार ऋचाओंका, अथवा अर्यमा मित्रंवरुणंच—इनदोऋचाओंका एकमास पर्यंत अभ्यास (जप) करनेसे और बहतीहुईनदीमें स्नानकरनेसे शुद्धहोताहै—अर्थात् इनतीनों प्रायश्चित्तोंमेंसे एकभी प्राय-श्चित्तके मासभरकरनेसे बहुतपापकरनेवाला भी मनुष्य शुद्धहोताहै यहवचन इसबातको जनाताहै कि बहुतपापोंमें भी तंत्रसे एकप्रायश्चित्त होताहै २५४ ॥

अब्दार्धमिन्द्रमित्येतदेनस्वीसप्तकंजपेत् । अप्रशस्तंतुकृत्वाप्सुमासमासीतभैक्षभुक् २५५ ॥

प० । अब्दार्धं इंद्रंइतिएतत् एनस्वी सप्तकं जपेत् अप्रशस्तं तु कृत्वा अप्सु मासं आसीत भैक्ष-भुक् ॥

यो० । एनस्वी (पापी) इंद्रं इतिएतत् सप्तकं अब्दार्धं जपेत् तुपुनः अप्सु अप्रशस्तं (मलमूत्रं) कृत्वा मासं भैक्षभुक् आसीत ॥

भा० । ता० । पापीमनुष्य इंद्रं इत्यादि सातऋचाओंको छःमहीने पर्यंत जपै और जलमें मल मूत्रका त्यागकरिके मासपर्यंत भिक्षामांगकर भोजनकरै २५५ ॥

मन्त्रैःसाकलहोमीयैरब्दंहुत्वाघृतंद्विजः।सुगुर्वप्यपहन्त्येनोजप्त्वावानमइत्यृचम् २५६

प० । मंत्रैः साकलहोमैः यैः अब्दं हुत्वा घृतं द्विजः सुगुरु अपि अपहंति एनः जप्त्वा वा नमः इति ऋचं ॥

यो० । द्विजः साकलहोमैः यैः मंत्रैः अब्दं घृतंहुत्वा वानमः इति ऋचंजप्त्वा सगुरु अपि एनः अपहंति ॥

भा० । ता० । साकल होमके मंत्रोंसे (देवकृतस्यइत्याः) एकवर्ष पर्यंत घीकाहोमकरके अथवा नमः इंद्रश्च इसऋचाको जपकर भारीसे भारी भी पापको नष्टकरताहै २५६ ॥

महापातकसंयुक्तोऽनुगच्छेद्गाःसमाहितः।अभ्यस्याब्दंपावमानीर्भैक्षाहारोविशुद्ध्यति २५७॥

प०। महापातकसंयुक्तः अनुगच्छेत् गाः समाहितः अभ्यस्य अब्दं पावमानीः भैक्षाहारः विशुद्ध्यति॥

यो० । यः महापातकसंयुक्तः पुरुषः समाहितः सन् भैक्ष्याहारः अब्दं गाः अनुगच्छेत्—सः पुरुषः पावमानीः अभ्यस्य विशुद्ध्यति ॥

भा० । ता० । जो ब्रह्महत्यादि महापातकीहो वह भिक्षाका अन्न भक्षणकरताहुआ एकवर्षपर्यन्त गौओंका अनुगमन करनेसे और पावमानी (पुनन्तुदेवजना इत्यादि) ऋचाओंका अभ्यास (जप) करनेसे शुद्धहोताहै २५७ ॥

अरण्येवात्रिरभ्यस्यप्रयतोवेदसंहिताम्।मुच्यतेपातकैःसर्वैःपराकैःशोधितास्त्रिभिः२५८ ॥

प० । अरण्ये वा त्रिः अभ्यस्य प्रयतः वेदसंहितां मुच्यते पातकैः सर्वैः पराकैः शोधितः त्रिभिः॥

यो० । त्रिभिः पराकैः शोधितः द्विजः अरण्ये प्रयतः सन् वेदसंहितां त्रि. (त्रिवारं) अभ्यस्य सर्वैः पातकैः मुच्यते॥

भा० । ता० । तीन पराकव्रतों से शुद्धहुआ द्विज वनमें जाकर सावधानीसे तीनवार वेदकी सं-हिताका अभ्यासकरके सम्पूर्ण महापातकोंसे छुटताहै २५८ ॥

त्र्यहंतूपवसेद्युक्तस्त्रिरह्नोऽभ्युपयन्नपः।मुच्यतेपातकैःसर्वैस्त्रिर्जपित्वाऽघमर्षणम् २५९ ॥

प० । त्र्यहं तु उपवसेत् युक्तः त्रिः अह्नः अभ्युपयन् अपः मुच्यते पातकैः सर्वैः त्रिः जपित्वा अघमर्षणं ॥

यो० । यः पुरुषः अह्नः त्रिः (त्रिकालं) अपः अभ्युपयन् सन् त्रिः अघमर्षणं जपित्वा युक्तः सन् त्र्यहं उपवसेत् सः सर्वैः पातकैः मुच्यते ॥

भा० । ता० । जो मनुष्य प्रतिदिन त्रिकालस्नान करताहुआ और प्रत्येक स्नानकेसमय तीन२

वार अघमर्षणको जपताहुआ सावधानहोकर तीनदिनतक उपवास करताहै वह संपूर्णपापोंसे छुटताहै यह प्रायश्चित्त गुरु, लघु, पाप और पुरुषकी शक्तिके अनुसार एक—दो—आदि वारकराना २५९॥

यथाऽश्वमेधःक्रतुराट्सर्वपापापनोदनः । तथाऽघमर्षणंसूक्तंसर्वपापापनोदनम् २६० ॥

प० । यथा अश्वमेधः क्रतुराट् सर्वपापापनोदनः तथा अघमर्षणं सूक्तं सर्वपापापनोदनं ॥

यो० । यथा—क्रतुराट् अश्वमेधः सर्वपापापनोदनो भवति तथा अघमर्षणंसूक्तंसर्वपापापनोदनं भवति ॥

भा० । ता० । जैसे संपूर्ण यज्ञोंमें श्रेष्ठ—अश्वमेध संपूर्ण पापोंकोदूरकरताहै इसीप्रकार अघमर्षण सूक्तभी संपूर्ण पापोंको दूरकरताहै २६० ॥

हत्वालोकानपीमांस्त्रीनश्नन्नपियतस्ततः।ऋग्वेदंधारयन्विप्रोनैनःप्राप्नोतिकिञ्चन२६१॥

प० । हत्वा लोकान् अपि इमान् त्रीन् अश्नन् अपि यतः ततः ऋग्वेदं धारयन् विप्रः न एनः प्राप्नोति किंचन ॥

यो० । इमान् त्रीन् अपि लोकान् हत्वा यतस्ततः अपि अश्नन् विप्रः ऋग्वेदं धारयन् किंचन एनः नमाप्नोति ॥

भा०। ता०। तीनोंभी इनलोकोंको हतकर और जहांतहां भोजनको करताहुआ ब्राह्मण जो ऋग्वेदका धारण (अभ्यास) करताहै वह किंचित् भी पापको नहीं प्राप्तहोता है २६१ ॥

ऋक्संहितांत्रिरभ्यस्ययजुषांवासमाहितः । साम्नांवासरहस्यानांसर्वपापैःप्रमुच्यते २६२ ॥

प० । ऋक्संहितां त्रिः अभ्यस्य यजुषां वा समाहितः साम्नां वा सरहस्यानां सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

यो० । ऋक्संहितां वा यजुषां वा सरहस्यानां साम्नां संहितां समाहितः त्रिः अभ्यस्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

भा० । ता० । ऋग्वेदकी मन्त्र और ब्राह्मणरूप संहिताको अथवा यजुर्वेदकी संहिताको अथवा रहस्योंसहित अर्थात् ब्राह्मण और उपनिषदोंसेयुक्त सामवेदकी संहिताको सावधानीसे तीनवार अभ्यास करके द्विज सम्पूर्ण पापोंसे मुक्तहोताहै २६२ ॥

यथामहाह्रदंप्राप्यक्षिप्तंलोष्टंविनश्यति। तथादुश्चरितंसर्वंवेदेत्रिवृतिमज्जति २६३॥

प० । यथा महाह्रदं प्राप्य क्षिप्तं लोष्टं विनश्यति तथा दुश्चरितं सर्वं वेदे त्रिवृति मज्जति ॥

यो० । यथा क्षिप्तं लोष्टं महाह्रदं प्राप्य विनश्यति तथा सर्वं दुश्चरितं त्रिवृति वेदे मज्जति ॥

भा०। ता०। जैसे फेंकाहुआ लोष्ट (मट्टीकाडेला) महाह्रद (जलकुंडमें)प्रविष्टहोकर नष्टहोजाता है तिसीप्रकार त्रिवृतवेदमें सम्पूर्णपाप नष्टहोताहै २६३ ॥

ऋचोयजूंषिचान्यानिसामानिविविधानिच । एषज्ञेयस्त्रिवृद्वेदोयोवेदैनंसवेदवित् २६४॥

प० ऋचः यजूंषि च अन्यानि सामानि विविधानि च एषः ज्ञेयः त्रिवृत् वेदः यः वेद एनं सः वेदवित् ॥

यो० । ऋचः यजूंषि—चपुनः विविधानि सामानि चपुनः अन्यानि मंत्र ब्राह्मणानि एषः सर्वः त्रिवृत् वेदज्ञेयः यः ब्राह्मणः एनं वेद सः वेदवित् भवति ॥

भा० । ता० । ऋग्वेदकेमन्त्र और यजुर्वेदकेमन्त्र और बृहद्रथन्तरआदि नानाप्रकारके सामवेद

और मन्त्र इनतीनोंके पृथक् पृथक् मन्त्र—ब्राह्मण—यह त्रिवृत्वेद जानना इस त्रिवृत्वेदको जो ब्राह्मण जानताहै वही वेदवित् होताहै २६४ ॥

आद्यंयत्त्र्यक्षरंब्रह्मत्रयीयस्मिन्प्रतिष्ठिता ।सगुह्योऽन्यस्त्रिवृद्वेदोयस्तंवेदसवेदवित् २६५ ॥

इतिमानवेधर्मशास्त्रेभृगुप्रोक्तायांसंहितायामेकादशोऽध्यायः ११ ॥

प० । आद्यं यत् त्र्यक्षरं ब्रह्म त्रयी यस्मिन् प्रतिष्ठिता सः गुह्यः अन्यः त्रिवृत् वेदः यः तं वेद सः वेदवित् ॥

यो० । यत् त्र्यक्षरं आद्यं ब्रह्म (अस्ति) यस्मिन् त्रयी प्रतिष्ठिता (भवति)सः अन्यः त्रिवृत् वेदः गुह्यः अस्ति यः तं गुह्यं वेदं वेद सः वेदवित् भवति ॥

भा० । जो सबवेदोंकी आदिहै और जिसमें तीनअक्षरहैं और जो ब्रह्मरूप है और जिसमें तीनों वेदस्थितहैं वहदूसरा त्रिवृत्वेद गुप्तकरने योग्यहै जो उस ॐकारको जानताहै वहीवेदको जानताहै॥

ता० । जो सम्पूर्ण वेदोंका आद्यहै—और सम्पूर्ण वेदोंकासार ब्रह्महै और जिसमें अकार, उकार, मकार,तीनअक्षरहैं वह जो अन्य त्रिवृत्वेद अर्थात् ॐकाररूप वहगुह्य है अर्थात् सम्पूर्ण वेदके मंत्रोंमें श्रेष्ठहोनेसेऔरपरमार्थ(ब्रह्म)काबोधकहोनेसे—और इससिस्मरण,और जपसे मोक्षका जनकहोने से गुप्तकरने योग्यहै उसत्रिवृत् ॐकारके स्वरूप और अर्थको जो जानता है वही वेदके तत्त्वको जानताहै २६५ ॥

इतिमन्वर्थभास्करे एकादशोऽध्यायः ११ ॥

अथद्वादशोऽध्यायः ॥

चातुर्वर्ण्यस्यकृत्स्नोऽयमुक्तोधर्मस्त्वयानघ । कर्मणांफलनिर्वृत्तिंशंसनस्तत्त्वतःपराम् १ ॥

प० । चातुर्वर्ण्यस्य कृत्स्नः अयं उक्तः धर्मः त्वया अनघ कर्मणां फलनिर्वृत्तिं शंस—नः तत्त्वतः पराम् ॥

यो० । हे अनघ (पापरहित) अयं चातुर्वर्ण्यस्य धर्मः त्वया उक्तः-संप्रति कर्मणां परां फलनिर्वृत्तिं नः (अस्माकं) त्वं शंस (कथय) ॥

भा० । ता० । ब्राह्मणआदि चारोंवर्णों का और अन्तरप्रभवोंका यह धर्म आपने कहा—अब शुभ अशुभकर्मों की निर्वृत्ति (फल) जिसकर्म करनेसे जन्मांतरमें जो फल मिलताहै वहनिर्वृत्ति हमसे कहो—यहसब महर्षियों ने भृगुजीसे कहा १ ॥

सतानुवाचधर्मात्मामहर्षीन्मानवोभृगुः । अस्यसर्वस्यशृणुतकर्मयोगस्यनिर्णयम् २ ॥

प० । सः तान् उवाच धर्मात्मा महर्षीन् मानवः भृगुः अस्य सर्वस्य शृणुत कर्मयोगस्य निर्णयम् ॥

यो० । सः धर्मात्मा मानवः भृगुः तान् महर्षीन्—अस्य सर्वस्य कर्मयोगस्य निर्णयं यूयं शृणुत इति उवाच ॥

भा० । ता० । वह धर्मात्मा—मनुकापुत्र भृगु उनमहर्षियों के प्रति यहबोले कि इससम्पूर्ण कर्म योग के निर्णयको अर्थात् कर्मफलके निश्चयको तुमसुनो २ ॥

शुभाशुभफलंकर्ममनोवाग्देहसंभवम् । कर्मजागतयोनॄणामुत्तमाधममध्यमाः ३ ॥

प० । शुभाशुभफलं कर्म मनोवाग्देहसंभवं कर्मजाः गतयः नृणां उत्तमाधममध्यमाः ॥

यो० । मनोवाग्देहसम्भवं कर्म-शुभाशुभफलं भवति-नृणां उत्तमाधममध्यमाः गतयः कर्मजाः भवंति ॥

भा० । मन वाणी देहसेंपैदाहुये कर्मकाफल शुभ वा अशुभहोताहै और मनुष्योंको उत्तम मध्यम अधम जन्मोंकी प्राप्ति भी कर्मसे होती है ॥

ता० । मन वाणी और देहसे पैदाहुये कर्मकाफल शुभ अथवा अशुभहोताहै और मनुष्योंकी जो उत्तम अधम मध्यम गतिहै अर्थात् उत्तम मध्यम अधम जन्मान्तरों की प्राप्तिहैं वेभी कर्मसेही उत्पन्न होतीहैं और यहां कर्मशब्दसे केवल शरीरकी चेष्टाहीका ग्रहणनहीं है किंतु यह मेराधनहै इससंकल्प और ध्यान योगआदि क्रियामात्र का ग्रहणहै ३ ॥

तस्येहत्रिविधस्यापित्र्यधिष्ठानस्यदेहिनः । दशलक्षणयुक्तस्यमनोविद्यात्प्रवर्तकम् ४ ॥

प० । तस्य इह त्रिविधस्य अपि त्र्यधिष्ठानस्य देहिनः दशलक्षणयुक्तस्य मनः विद्यात् प्रवर्तकम् ॥

यो० । त्र्यधिष्ठानस्य त्रिविधस्य अपि तस्य—देहिनः (जीवसंबंधिनः) दशलक्षणयुक्तस्य कर्मणः प्रवर्तकं मनः विद्यात् (जानीयात्) ॥

भा० । मनवाणी देह इनतीनोंमें स्थित और उत्तम मध्यम भेदसे तीनप्रकार और दशलक्षण उस जीवात्माके कर्म का प्रवर्त्तक मनकोही जाने ॥

ता० । उत्तम मध्यम अधम भेदसे तीनप्रकार के और मन वाणी देह इनतीनों में आश्रित और वक्ष्यमाण दशलक्षणों से युक्त उसदेही (जीवात्मा) के कर्मका प्रवर्तक मनकोही जाने क्योंकि इसे तैत्तिरीय उपनिषद्के अनुसार जो मनका संकल्प है वही कहाजाता है और वही कियाजाता है कि तिससे यहमनुष्य जो मनसे जानताहै उसीको वाणीसे कहताहै और उसीको कर्मसे करता है और वे दशप्रकार के कर्म ये हैं कि ४ ॥

परद्रव्येष्वभिध्यानंमनसानिष्टचिंतनम् । वितथाभिनिवेशश्चत्रिविधंकर्ममानसम् ५ ॥

प० । परद्रव्येषु अभिध्यानं मनसा अनिष्टचिंतनम् वितथाभिनिवेशः च त्रिविधं कर्म मानसम् ॥

यो० । परद्रव्येषु अभिध्यानं, मनसा अनिष्टचिंतनं, पुनः वितथाभिनिवेशः एतत् त्रिविधं कर्ममानसं भवति ॥

भा० । ता० । परके द्रव्योंका अभिध्यान अर्थात् यहचिंताकरनी कि अन्यायसे परकाद्रव्य किसी तरह मिलै और मनसे अनिष्ट (ब्रह्मवधआदि) की चिंताकरनी और मिथ्याअभिनिवेश (आग्रह) अर्थात् परलोकनहीं है शरीरही आत्माहै—यहचिंताकरनी इसरीतिसे तीनप्रकार का और अशुभफल का दाता मानसकर्म होता है और इनतीनों से विपरीत जो तीनप्रकार का मानसकर्म है वहशुभ फलकादाता है ५ ॥

पारुष्यमनृतंचैवपैशून्यंचापिसर्वशः । असंबद्धप्रलापश्चवाङ्मयंस्याच्चतुर्विधम् ६ ॥

प० । पारुष्यं अनृतं च एव पैशून्यं च अपि सर्वशः असंबद्धप्रलापः च वाङ्मयं स्यात् चतुर्विधम् ॥

---

१ तस्माद्यत्पुरुषोमनसाभिगच्छतितद्वाचावदतितत्कर्मणाकरोतीति ॥

यो० । पारुष्यं, चपुनः अनृतं, सर्वशः पैशून्यं, चपुनः अ/संबद्धप्रलापः एतत् चतुर्विधं वाङ्मयं कर्मस्यात् ॥

भा० । कठोर–मिथ्यावचन और अन्यके दूष/गों का कथन और असंबद्ध (निष्प्रयोजन) वर्णन यहचारप्रकार का वाङ्मयकर्म होताहै ॥

ता० । अप्रिय (कठोरवचनकहना) और मिथ्याभाषण और पैशून्य अर्थात् पछिपरके दूषणकहने और राजा, देश, वा पुरवासियोंकी सत्यवार्ताको भी निष्प्रयोजन वर्णनकरना–इसरीतिसे चारप्रकार का और अशुभफलका देनेवाला वाचिककर्म (वाणीका) होता है और इससे विपरीत प्रिय और सत्यवचन परगुणकथन और श्रुति और पुराणोंमें राजादिकं चरित्रोंका वर्णन जो कर्म वह शुभफल का जनक होताहै ६ ॥

अदत्तानामुपादानंहिंसाचैवाविधानतः । परदारोपसेवाचशारीरंत्रिविधंस्मृतम् ७ ॥

प० । अदत्तानां उपादानं हिंसा चँ एवँ अविधानतः परदारोपसेवा चँ शारीरं त्रिविधं स्मृतम् ॥

यो० । अदत्तानां उपादानं चपुनः अविधानतः हिंसा चपुनः परदारोपसेवा एतत् त्रिविधं शारीरं कर्म स्मृतम् ॥

भा० । ता० । विनादिये परायेधनको ग्रहणकरना और शास्त्रोक्त विधिके विना हिंसा और पराई स्त्रीकी सेवा यह तीनप्रकार का अशुभकर्म शरीर से होताहै–और इससे विपरीत तीनप्रकारका कर्म शुभहोताहै ७ ॥

मानसंमनसैवायमुपभुंक्तेशुभाशुभम् । वाचावाचाकृतंकर्मकायेनैवचकायिकम् ८ ॥

प० । मानसं मनसा एवँ अयं उपभुंक्ते शुभाशुभम् वाचा वाचाकृतं कर्म कायेन एवँ चँ कायिकम् ॥

यो० । मानसं शुभाशुभं मनसाएव, वाचाकृतंकर्म वाचा, कायिकं कर्म कायेन एव, अयंजनः उपभुंक्ते ॥

भा० । मनके कियेहुये शुभ अशुभ कर्मको मनसे वाणीके कियेहुये उक्त कर्मको वाणीसे–और कायाके कियेहुये कर्मको कायासे यहप्राणी भोगताहै ॥

ता० । जो सुकृत अथवा दुष्कृतकर्म मनसे कियाहो उसके सुख वा दुःखरूप फलको इसजन्ममें अथवा जन्मांतर में मनसेही यहप्राणी भोगताहै इसीप्रकार वाणीसेकियेहुये शुभ अशुभकर्मको वाणी से भोगताहै अर्थात् मधुरवचन बोलनेवालेकी वाणी मधुर और कठोरवचन बोलनेवालेकी गद्गद (तोतली) होतीहै–इसीप्रकार शरीरसे कियेहुये शुभ अशुभकर्मको शरीरकेद्वारा भोगता है अर्थात् शुभकर्मसे पुष्प माला चन्दनआदि प्रियभोग और अशुभकर्मसे व्याधिआदिको भोगताहै तिससे धर्मसेहीन–मन वाणी और शरीरके कर्मोंको त्यागदे ८ ॥

शरीरजैःकर्मदोषैर्यातिस्थावरतांनरः । वाचिकैःपक्षिमृगतांमानसैरन्त्यजातिताम् ९ ॥

प० । शरीरजैः कर्मदोषैः याति स्थावरतां नरः वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैः अन्त्यजातिताम् ॥

यो० । नरः शरीरजैः कर्मदोषैः स्थावरतां–वाचिकैः पक्षिमृगतां–मानसैः अंत्यजातितां–याति ॥

भा० । शरीर से पैदाहुये कर्मदोषोंसे मनुष्य स्थावर और वाणीसे पैदाहुये कर्मदोषोंसे पक्षी वा मृग और मनसे पैदाहुये कर्मदोषोंसे अन्त्यज होताहै ॥

ता० । बहुधा शरीरकी क्रिया (चेष्टा) से पैदाहुये पापोंसेयुक्त मनुष्य वृक्षयोनिको प्राप्त होताहै

और बहुधा वाणीसे पैदाहुये पापोंसे संयुक्त मनुष्य पक्षी और मृगयोनिको–और बहुधा मनसे पैदाहुये पापोंसे संयुक्त मनुष्य चांडालयोनिको प्राप्तहोताहै–यद्यपि सबपापियोंके पाप काया वाणी मन इनतीनोंसेही उत्पन्न होते हैं तथापि वहप्राणी यदि अधर्महीं केवलकरै और धर्मको अल्पहीकरै इस बाहुल्यके अभिप्रायसे इसवचनका अर्थ वर्णन किया है–अर्थात् जिससे जिसपापको बहुधा करता है उसकाही कार्य होताहै ९॥

वाग्दण्डोऽथमनोदण्डःकायदण्डस्तथैवच।यस्यैतेनिहिताबुद्धौत्रिदण्डीतिसउच्यते १०

प०। वाग्दण्डः अथ मनोदण्डः कायदण्डः तथा एव च यस्य एते निहिताः बुद्धौ त्रिदण्डी इति सः उच्यते॥

यो०। वाग्दण्डः अथ–मनोदंडः चपुनः तथैव कायदंडः एते त्रयः दंडाः यस्य बुद्धौ निहिताः (स्थिताः) सः पुरुषः त्रिदंडी इति मन्वादिभिः उच्यते॥

भा०। ता०। वाणीका दण्ड (कठोरवचनकात्याग) और मनकादण्ड (असत्संकल्पकात्याग) और देहकादण्ड (निषिद्धआचरणका त्याग) ये तीनोंदण्ड जिसकी बुद्धिमें स्थितहैं उसको मनुआदिकोंने त्रिदण्डी (तीनदण्डवाला) कहाहै–केवल दण्डग्रहणसे दण्डी नहींहोताहै यहप्रशंसा भीतर के तीनों दण्डोंकीहै १०॥

त्रिदण्डमेतन्निक्षिप्यसर्वभूतेषुमानवः।कामक्रोधौतुसंयम्यततःसिद्धिंनियच्छति ११॥

प०। त्रिदंडं एतत् निक्षिप्य सर्वभूतेषु मानवः कामक्रोधौ तु संयम्य ततः सिद्धिं नियच्छति॥

यो०। मानवः एतत् त्रिदंडं सर्वभूतेषु निक्षिप्य (दत्त्वा) तुपुनः कामक्रोधौ संयम्य–ततः सिद्धिं नियच्छति(प्राप्नोति)॥

भा०। ता०। मनुष्य इनतीनों दण्डोंको सम्पूर्ण भूतोंमें देकर अर्थात् निषिद्ध वाणीआदिकोंको सबप्राणियोंमें त्यागकरके और काम क्रोधको रोककर तिसके अनन्तर सिद्धिको प्राप्तहोताहै ११॥

योस्यात्मनःकारयितातंक्षेत्रज्ञंप्रचक्षते। यःकरोतितुकर्माणिसभूतात्मोच्यतेबुधैः १२॥

प०। यः अस्य आत्मनः कारयिता तं क्षेत्रज्ञं प्रचक्षते यः करोति तु कर्माणि सः भूतात्मा उच्यते बुधैः॥

यो०। अस्य आत्मनः यः कारयिता तं क्षेत्रज्ञं बुधाः प्रचक्षते तुपुनः यः कर्माणि करोति सः बुधैः भूतात्मा उच्यते॥

भा०। ता०। इसलोक प्रसिद्ध आत्मा (शरीर) को जो कर्मोंमें प्रवृत्त करता है उसजीवको पण्डितजन क्षेत्रज्ञकहतेहैं–और जो शरीर सम्पूर्णकर्मोंको करताहै उसको पण्डितजन भूतात्मा कहते हैं क्योंकि पृथिवीआदि पांचभूतों से इसकी उत्पत्ति होतीहै १२॥

जीवसंज्ञोऽन्तरात्माऽन्यःसहजःसर्वदेहिनाम्। येनवेदयतेसर्वंसुखंदुःखंचजन्मसु १३॥

प०। जीवसंज्ञः अंतरात्मा अन्यः सहजः सर्वदेहिनां येन वेदयते सर्वं सुखं दुःखं च जन्मसु॥

यो०। येन सर्वं सुखं चपुनः दुःखं सर्वजन्मसु अंतरात्मा वेदयते सः सर्वदेहिनां सहजः अन्तरात्मा–जीवसंज्ञः अन्यः अस्ति)॥

भा० । जिससे यह प्राणी प्रतिजन्ममें सम्पूर्ण सुख दुःखको जानताहै अर्थात् भोगता है सम्पूर्ण देहियों का सहज (स्वाभाविक) अन्तरात्मा और जीव (महान्) नामक अन्यहै ॥

ता० । इसश्लोकमें जीवशब्द महान्का बोधकहै क्योंकि येन यह करणमें तृतीयाहै—औरअगिले श्लोकमेंभी तत्शब्द से महान् और क्षेत्रज्ञ दोनोंका ग्रहण है—अहंकार—इंद्रियआदि रूपसे परिणाम को प्राप्तहुये जिसमहत्तत्त्व रूपकरणसे यह क्षेत्रज्ञ प्रतिजन्ममें सुख और दुःखको भोगता है—सम्पूर्ण देहियोंका—अन्तरात्मा और स्वाभाविक जीवरूप वह अन्यहै अर्थात् वह महान् क्षेत्रज्ञके सुख दुःखों का प्रतिजन्म सम्पादक है १३ ॥

तावुभौभूतसंपृक्तौमहान्क्षेत्रज्ञएवच । उच्चावचेषुभूतेषुस्थितंतंव्याप्यतिष्ठतः १४ ॥

प० । तौ उभौ भूतसम्पृक्तौ महान् क्षेत्रज्ञः एव च—उच्चावचेषु भूतेषु स्थितं तं व्याप्य तिष्ठतः ॥

यो० । महान् चपुनः क्षेत्रज्ञः भूतसंपृक्तौ तौ उभौ उच्चावचेषु भूतेषु स्थितं तं—(परमात्मानं)व्याप्य(आश्रित्य) तिष्ठतः॥

भा० । ता० । पृथिवीआदि पांचभूतों से संपृक्त (मिलेहुये) महान् और क्षेत्रज्ञ ये दोनों छोटेबड़े भूतोंमें स्थित—और सर्व लोक—वेद—स्मृति—पुराणादिकों में प्रसिद्ध उस परमात्मा के आश्रय से टिकतेहैं १४ ॥

असंख्यामूर्तयस्तस्यनिष्पतन्तिशरीरतः। उच्चावचानिभूतानिसततंचेष्टयन्तियाः १५॥

प० । असंख्याः मूर्तयः तस्य निष्पतंति शरीरतः उच्चावचानि भूतानि सततं चेष्टयंति याः ॥

यो० । याः उच्चावचानि भूतानि सततं चेष्टयंति ताः असंख्याः मूर्तयः तस्य शरीरतः निष्पतंति ॥

भा० । उस परमात्मा के शरीरसे वे असंख्यमूर्त्ति (जीव) निकसती हैं जो उत्तम अधम देहधारियोंको सदैव कर्मोंमें प्रेरतीहैं ॥

ता० । वे असंख्यमूर्त्ति (जीव) उस परमात्मा के शरीरसे निकसती हैं जो उत्कृष्ट और अपकृष्ट भूतोंको अर्थात् देव मनुष्यादिरूप शरीरोंको सबकालमें कर्मोंमें प्रेरतीहैं- और वे मूर्त्ति क्षेत्रज्ञ शब्दसे वेदान्तमें कहीहैं और उनकीउत्पत्तिभी इसप्रकारकहीहै कि जैसे अग्निमेंसे अग्निकेस्फुलिंग (कणिके) अर्थात् जैसे अग्निकास्फुलिंग अग्निरूपहै—इसीप्रकार परमात्माके अंशजीवभी परमात्मारूपहैं १५ ॥

पञ्चभ्यएवमात्राभ्यःप्रेत्यदुष्कृतिनांनृणाम्।शरीरंयातनार्थीयमन्यदुत्पद्यतेध्रुवम् १६॥

प० । पंचभ्यः एव मात्राभ्यः प्रेत्य दुष्कृतिनां नृणां शरीरं यातनार्थीयं अन्यत् उत्पद्यते ध्रुवम् ॥

यो० । दुष्कृतिनां नृणां पंचभ्यः एवमात्राभ्यः यातनार्थीयं अन्यत् शरीरं प्रेत्य ध्रुवं उत्पद्यते ॥

भा० । ता० । पृथिवीआदि पंचभूतोंसेही पापीमनुष्यों का अन्य (जरायुजादि से भिन्न) शरीर यातना के लिये अर्थात् यमराज के दियेहुये दुःखभोगने के लिये निश्चयकरिके उत्पन्न होताहै १६ ॥

तेनानुभूयतायामीःशरीरेणेहयातनाः । तास्वेवभूतमात्रासुप्रलीयन्तेविभागशः १७ ॥

प० । तेन अनुभूय ताः यामीः शरीरेण इह यातनाः तासु एव भूतमात्रासु प्रलीयन्ते विभागशः ॥

यो० । तेन शरीरेण इह (यमलोके) ताः यामीः यातनाः अनुभूय तासु भूतमात्रासु विभागशः प्रलीयंते ॥

भा० । ता० । उस यातना के अन्यशरीरसे यमलोक में यमराज की दीहुई यातना (दुःख) ओं को भोगकर वे पापी उन्हीं पांचभूतों की मात्राओं में यथायोग्य लीनहोजातेहैं अर्थात् स्थूल शरीरके नाशहोनेपर देहके उत्पादक पंचभूतोंमें संयुक्त होकर टिकतेहैं १७ ॥

सोऽनुभूयासुखोदर्कान्दोषान्विषयसंगजान्। व्यपेतकल्मषोऽभ्येतितावेवोभौमहौजसौ१८

प० । सः अनुभूय असुखोदर्कान् दोषान् विषयसंगजान् व्यपेतकल्मषः अभ्येति तौ एव उभौ महौजसौ ॥

यो० । सः असुखोदर्कान् विषयसंगजान् दोषान् अनुभूय व्यपेतकल्मषः सन् महौजसौ तौ एव उभौ अभ्येति ॥

भा० । ता० । भूत सूक्ष्मआदि लिंगशरीर विशिष्ट वहजीव दुःखहै अधिक जिनमें ऐसे शब्दस्पर्श गंधआदि विषयों के पैदाहुये दुःखोंको भोगकर नष्टहुआ है पाप जिसका ऐसाहुआ उन्हीं दोनोंमहान् वीर्यवाले महत् परमात्माका आश्रयलेता है–अर्थात् उनदोनोंकेही आधीन होताहै १८ ॥

तौधर्मंपश्यतस्तस्यपापंचातन्द्रितौसह।याभ्यांप्राप्नोतिसंपृक्तःप्रेत्येहचसुखासुखम्१९

प० । तौ धर्मं पश्यतः तस्य पापं च अतंद्रितौ सह याभ्यां प्राप्नोति संपृक्तः प्रेत्य इह च सुखासुखम् ॥

यो० । अतंद्रितौतौ (महत्परमात्मानौ) तस्य धर्मं चपुनः पापं सहपश्यतः–याभ्यां (धर्माधर्माभ्यां) संपृक्तः (जीवः प्रेत्य चपुनः इह सुखासुखं प्राप्नोति ॥

भा० । ता० । वे दोनों महत् और परमात्मा आलस्यको छोडकर उसजीव के धर्मको और पाप को मिलकर देखतेहैं जिन धर्म और अधर्मसे संयुक्त जीव इसलोक और परलोकमें सुख और दुःख को प्राप्तहोता (भोगता) है १९ ॥

यद्याचरतिधर्मंसप्रायशोऽधर्ममल्पशः । तैरेवचावृतोभूतैःस्वर्गेसुखमुपाश्नुते २० ॥

प० । यदि आचरति धर्मं सः प्रायशः अधर्मं अल्पशः तैः एव च आवृतः भूतैः स्वर्गे सुखं उपाश्नुते ॥

यो० । सः जीवः यदि प्रायशः धर्मं अल्पशः अधर्मं आचरति तदा तैः एव भूतैः आवृतः सन् स्वर्गे सुखं उपाश्नुते॥

भा० । ता० । यदि वह जीव मनुष्यदशामें अधिकता से धर्मको और अल्पपापको करता है तब स्थूलशरीर के परिणामको प्राप्तहुये उन्हीं पृथिवीआदि पांचभूतों से युक्तहोकर स्वर्ग सुखको भोगता है २० ॥

यदितुप्रायशोऽधर्मंसेवतेधर्ममल्पशः । तैर्भूतैःसपरित्यक्तोयामीःप्राप्नोतियातनाः२१॥

प० । यदि तु प्रायशः अधर्मं सेवते धर्मं अल्पशः तैः भूतैः सः परित्यक्तः यामीः प्राप्नोति यातनाः॥

यो० । यदि सः प्रायशः अधर्मं–अल्पशः धर्मं सेवते तदा तैः भूतैः परित्यक्तः सः (जीवः) यामीः यातनाः प्राप्नोति॥

भा० । ता० । यदि वहजीव मनुष्यदशामें अधिकतासे पापको और अल्पपुण्यको करता है–तब मनुष्यदेह के परिणामको प्राप्तहुये उन्हींभूतों से त्यागाहुआ (मृत) वहजीव पूर्वोक्तरीति से यातना के योग्य देहको प्राप्तहोकर यमराजकी दीहुई पीडाओंको भोगताहै–अर्थात् नरकदुःख भोगेहै २१ ॥

यामीस्तायातनाःप्राप्यसजीवोवीतकल्मषः।तान्येवपञ्चभूतानिपुनरभ्येतिभागशः२२

प० । यामीः ताः यातनाः प्राप्य सः जीवः वीतकल्मषः तानि एव पंचभूतानि पुनः अभ्येति भागशः ॥

यो० । यामीः ताः यातनाः प्राप्य वीतकल्मषः सः जीवः पुनः तानि एव पंचभूतानि भागशः अभ्येति (प्राप्नोति) ॥

भा० । ता० । यमराज की दीहुई उनपीडाओं को उसी कठिन नरककेदेह से भोगकर नष्टहुआ है पापजिसका ऐसा वहजीव—फिर भी उन्हीं पांचभूतों के भागोंको प्राप्त होता है जो जरायुज आदि शरीरके उत्पादक हैं अर्थात् मनुष्य देहको ग्रहणकरताहै २२ ॥

एताद्दृष्ट्वास्यजीवस्यगतीःस्वेनैवचेतसा ।धर्मतोऽधर्मतश्चैवधर्मेदध्यात्सदामनः २३ ॥

प०। एताः दृष्ट्वा अस्य जीवस्य गतीः स्वेन एव चेतसा धर्मतः अधर्मतः च एव धर्मे दध्यात् सदा मनः ॥

यो० । । अस्य जीवस्य एताः गतीः धर्मतः चपुनः अधर्मतः स्वेन एव चेतसा दृष्ट्वा धर्मे एव सदा मनः दध्यात् ॥

भा० । ता० । धर्म और अधर्म से उत्पन्नहुये (पूर्वोक्त) इसजीवकी गती देखकर अर्थात् स्वर्ग और नरक के भोगोंके योग्य प्रिय और अप्रिय देहोंकी प्राप्ति अपनेही अन्तःकरणसे देखकर धर्म के करनेमेंही सदैव मनको लगावे २३ ॥

सत्वंरजस्तमश्चैवत्रीन्विद्यादात्मनोगुणान् ।यैर्व्याप्येमान्स्थितोभावान्महान्सर्वानशेषतः २४

प० । सत्वं रजः तमः च एव त्रीन् विद्यात् आत्मनः गुणान् यैः व्याप्य इमान् स्थितः भावान् महान् सर्वान् अशेषतः ॥

यो० । सत्वं रजः तमः एतान् त्रीन् आत्मनः गुणान् विद्यात्—यैः गुणैः इमान् अशेषतः सर्वान् भावान् व्याप्य महान् स्थितः ।।

भा० । ता० । सत्व रज तम ये तीन आत्मा (महान) के गुण जानने क्योंकि ये तीनोंआत्मा के उपकारक हैं और जिनगुणोंसे संयुक्तहोकर महान् इनसम्पूर्ण स्थावर जंगम रूपभावों (पदार्थों) को व्याप्तहोकर स्थित है अर्थात् पूर्वोक्त तीनोंगुणोंसे उत्पन्न देहोंमें महान् व्यापकहै २४ ॥

योयदैषांगुणोदेहेसाकल्येनातिरिच्यते ।सतदातद्गुणप्रायंतंकरोतिशरीरिणम् २५ ॥

प० । यः यदा एषां गुणः देहे साकल्येन अतिरिच्यते सः तदा तद्गुणप्रायं तं करोति शरीरिणम् ॥

यो० । एषां गुणानां मध्ये यदा यः गुणः देहे साकल्येन अतिरिच्यते (अधिकोभवति) सः गुणः तदा तं शरीरिणं तद्गुणप्रायं करोति ॥

भा० । ता० । जिससमय इनतीनोंगुणोंमेंसे जो गुण मनुष्यके देहमें सम्पूर्णरूपसे अधिक होता है—उससमय वहगुण उस जीवात्माको प्रायसे उसीगुणवाला करदेताहै अर्थात् वहीगुण अधिकतासे दीखताहै २५ ॥

सत्वंज्ञानंतमोऽज्ञानंरागद्वेषौरजःस्मृतम् । एतद्व्याप्तिमदेतेषांसर्वभूताश्रितंवपुः २६ ॥

प० । सत्वं ज्ञानं तमः अज्ञानं रागद्वेषौ रजः स्मृतम् एतत् व्याप्तिमत् एतेषां सर्वभूताश्रितं वपुः ॥

यो० । सत्वं ज्ञानं—तमः अज्ञानं—बुधैः स्मृतम्—रागद्वेषौ रजः स्मृतं—सर्वभूताश्रितं एतत् वपुः एतेषां (सत्वादिगुणानां) व्याप्तिमत् भवति ॥

भा० । ज्ञान सत्वरूप और अज्ञान तमोरूप—और रागद्वेष रजोगुणरूप पंडितजनोंनेकहाहै—और

इन तीनों गुणों का व्यापक लक्षण यहहै कि सम्पूर्ण भूतों से उत्पन्न देह में ये तीनों गुण स्थित हैं ॥

ता० । यथार्थ जो वस्तुकी प्रतीति उसे सत्वगुण कहतेहैं और सत्वका लक्षणभी वहीहै और अयथार्थ वस्तुकी जो प्रतीति उसे तमोगुणकहतेहैं और वही तमोगुणकालक्षणहै और रागद्वेष (विषाद) की जो प्रतीति वह रजोगुण कहाताहै और वही रजोगुणकालक्षणहै—और सत्वगुण—रजोगुण—तमोगुण इनतीनों का स्वरूप तो क्रमसे प्रीति—अप्रीति विषादरूप है क्योंकि ये तीनोंगुण प्रीति अप्रीति विषादरूप मनकी प्रकाशवृत्ति के नियमार्थ—परस्परगुण के तिरस्कारकर्ता और मिथुनवृत्ति (दोगुणों का मिलना) से होतेहैं—इनतीनों का लक्षण आग्रिमश्लोक से कहेंगे—और इनतीनोंगुणोंकी व्यापकता इसशरीरमें है अर्थात् इनतीनोंगुणोंका व्यापक लक्षणयहहै कि इनगुणों के ज्ञानआदि सम्पूर्ण प्राणियों में व्यापक हैं २६ ॥

तत्रयत्प्रीतिसंयुक्तंकिंञ्चिदात्मनिलक्षयेत्।प्रशान्तमिवशुद्धाभंसत्वंतदुपधारयेत् २७॥

प० । तत्र यत् प्रीतिसंयुक्तं किंचित् आत्मनि लक्षयेत् प्रशांतं इव शुद्धाभं सत्वं तत् उपधारयेत् ॥

यो० । तत्र आत्मनि यत् किंचित् प्रीतिसंयुक्तं लक्षयेत्—प्रशांतं इव शुद्धाभं तत् सत्वं उपधारयेत् (जानीयात्)॥

भा० । ता० । उस आत्मामें जो कुछभी प्रीतिसेसंयुक्त (ज्ञानआदि) अर्थात् क्लेशरहित सुखआदि को देखै तो भलीप्रकार शांत—और शुद्धकांति (निर्मल) वाले उसको सत्वगुणजाने २७ ॥

यत्तुदुःखसमायुक्तमप्रीतिकरमात्मनः । तद्रजोप्रतिपंविद्यात्सततंहारिदेहिनाम् २८ ॥

प० । यत् तु दुःखसमायुक्तं अप्रीतिकरं आत्मनः तत् रजः प्रतिपं विद्यात् सततं हारि देहिनाम् ॥

यो० । यत् आत्मनः अप्रीतिकरं—दुःखसमायुक्तं लक्षयेत्—देहिनां सततं हारितत् प्रतिपं रजः विद्यात् ॥

भा० । ता० । और जो कुछज्ञान आत्माकी अप्रसन्नताका कारक और दुःखसेसंयुक्त अर्थात् आत्मा की प्रीति का अजनक—दीखै—देहधारियों को विषयकी निरंतर इच्छा पैदाकरनेवाले उसको आत्मा के सत्वका नाशकहोनेसे प्रतिप (शत्रु) जानै २८ ॥

यत्तुस्यान्मोहसंयुक्तमव्यक्तंविषयात्मकम्।अप्रतर्क्यमविज्ञेयंतमस्तदुपधारयेत् २९ ॥

प० । यत् तु स्यात् मोहसंयुक्तं अव्यक्तं विषयात्मकम् अप्रतर्क्यं अविज्ञेयं तमः तत् उपधारयेत् ॥

यो० । तुपुनः यत् मोहसंयुक्तं—अव्यक्तं—विषयात्मकं—अप्रतर्क्यं—अविज्ञेयं स्यात् तत् तमः उपधारयेत् ॥

भा० । जो ज्ञान मोहसेसंयुक्त—अव्यक्त विषयात्मक—तर्कणाकेअयोग्य—और जाननेके अयोग्यहै—उस गुणको तमोगुण जानै ॥

ता० । जो मोहसे संयुक्तहो अर्थात् सत् असत् का विवेक जिसमें नहो और जो अव्यक्तहो जिसके विषयकाआकार प्रकट न होसके—और तर्कणाकरनेयोग्यनहो—और जो अविज्ञेयहो अर्थात् अन्तःकरण और बाह्य इंद्रियोंसे जिसकाज्ञान न होसकै—निदान जिसके स्वरूपकी यथार्थ प्रतीति न होसके—ऐसा जो आत्मामें ज्ञान उसको तमोगुण जानै अर्थात् तमोगुण की वृद्धिमेंही ऐसी दशाहोती है—इनतीनों गुणोंकास्वरूप इसलिये वर्णनकियाहै कि यहज्ञातव्यहै कि सत्वगुणकी वृत्तिकेसमय ऐसारहना चाहिये जिसमें रजोगुण तमोगुण न आसकैं २९ ॥

त्रयाणामपिचैतेषांगुणानांयःफलोदयः । अग्र्योमध्योजघन्यश्चतंप्रवक्ष्याम्यशेषतः ३०

प० । त्रयाणां अपि च एतेषां गुणानां यः फलोदयः अग्र्यः मध्यः जघन्यः च तं प्रवक्ष्यामि अशेषतः ॥

यो० । एषां त्रयाणां अपि गुणानां—अग्र्यः मध्यः चपुनः जघन्यः यः फलोदयः तं अशेषतः अहं प्रवक्ष्यामि (कथयिष्यामि) ॥

भा० । ता० । इनतीनों गुणोंका जो उत्तम मध्यम अधमरूप फलका उदय है अर्थात् फलजनक सामग्री है उसको विशेषकरके मैं कहताहूं ३० ॥

वेदाभ्यासस्तपोज्ञानंशौचमिन्द्रियनिग्रहः।धर्मक्रियात्मचिन्ताचसात्विकंगुणलक्षणम् ३१

प०। वेदाभ्यासः तपः ज्ञानं शौचं इंद्रियनिग्रहः धर्मक्रिया—आत्मचिंता च सात्विकं गुणलक्षणम्॥

यो० । वेदाभ्यासः तपः—ज्ञानं—शौचं—इंद्रियनिग्रहः—धर्मक्रिया—चपुनः आत्मचिंता (आत्मविचारः) एतत् सात्विकं गुणलक्षणं—ज्ञेयम् ॥

भा० । ता० । वेदका अभ्यास अर्थात् पठनपाठन प्राजापत्यआदि तपको करना शास्त्रके अर्थको जानना मिट्टी और जलसे शुद्धरहना विषयोंसे इन्द्रियोंको रोकना धर्मको करना आत्माके ध्यानमें तत्पररहना—येसब सात्विकगुणके लक्षणहैं अर्थात् सत्वगुणके कार्यहैं ३१ ॥

आरम्भरुचिताधैर्यमसत्कार्यपरिग्रहः । विषयोपसेवाचाजस्रंराजसंगुणलक्षणम् ३२ ॥

प० । आरम्भरुचिता अधैर्यं असत्कार्यपरिग्रहः विषयोपसेवा च अजस्रं राजसं गुणलक्षणम् ॥

यो० । आरम्भरुचिता—अधैर्यं—असत्कार्यपरिग्रहः चपुनः अजस्रं विषयोपसेवा एतत् राजसं गुणलक्षणं (ज्ञेयं) ॥

भा० । ता० । फलके अर्थ कर्मकरनेमें रुचि—अधैर्य—अर्थात् अल्प अर्थकेलिये व्याकुलता निषिद्ध कर्मका आचरण और निरन्तर विषयोंका उपभोग ये रजोगुणके लक्षणहैं अर्थात् रजोगुणसे उत्पन्न होतेहैं ३२ ॥

लोभःस्वप्नोऽधृतिःक्रौर्यंनास्तिक्यंभिन्नवृत्तिता।याचिष्णुताप्रमादश्चतामसंगुणलक्षणम् ३३

प०।लोभः स्वप्नः अधृतिः क्रौर्यं नास्तिक्यं भिन्नवृत्तिता याचिष्णुता प्रमादः च तामसं गुणलक्षणम्॥

यो० ।लोभः—स्वप्नः—अधृतिः—क्रौर्यं—नास्तिक्यं—भिन्नवृत्तिता याचिष्णुता चपुनः प्रमादः एतत्सर्वं तामसं गुणलक्षणं ज्ञेयम् ॥

भा० । ता० । लोभ—(अधिकधनकीइच्छा) स्वप्न (निद्रा) कृपणता क्रूरता (चुगुलपन) परलोकको न मानना भिन्नवृत्ति—अर्थात् आचारका लोप याचनाका स्वभाव—धर्मआदिके करनेमें असावधानी ये सब तमोगुणके लक्षणहैं अर्थात् तमोगुणसे होतेहैं ३३ ॥

त्रयाणामपिचैतेषांगुणानांत्रिषुतिष्ठताम्।इदंसामासिकंज्ञेयंक्रमशोगुणलक्षणम् ३४ ॥

प० । त्रयाणां अपि च एतेषां गुणानां त्रिषु तिष्ठतां इदं सामासिकं ज्ञेयं क्रमशः गुणलक्षणम् ॥

यो०। त्रिषु (भूतभविष्यत् वर्तमानेषु) तिष्ठतां त्रयाणां अपि एतेषां गुणानां क्रमशः इदं सामासिकं गुणलक्षणंज्ञेयम्॥

भा०। ता०। भूत—भविष्यत् वर्त्तमानकालमें विद्यमान जो ये सत्वादि तीनोंगुण उनका संक्षेप और क्रमसे यह गुणलक्षण जानना ३४ ॥

यत्कर्मकृत्वाकुर्वंश्चकरिष्यंश्चैवलज्जति।तज्ज्ञेयंविदुषासर्वंतामसंगुणलक्षणम् ३५ ॥

प०।यत् कर्म कृत्वा कुर्वन् च करिष्यन् च एव लज्जति तत् ज्ञेयं विदुषा सर्वं तामसं गुणलक्षणम्॥

यो० । यत्कर्म कृत्वा चपुनः कुर्वन् चपुनः करिष्यन् लज्जति तत्सर्वं विदुषा तामसंलक्षणंज्ञेयम् ॥

भा० । ता० । जिसकर्मके करनेसे करतेहुये अथवा करनेके अनन्तर लज्जाहो वह सम्पूर्ण तामसगुणका लक्षण विद्वानोंको जानना ३५ ॥

येनास्मिन्कर्मणालोकेख्यातिमिच्छतिपुष्कलाम्।नचशोचत्यसंपत्तौतद्विज्ञेयंतुराजसम् ३६ ॥

प०। येन अस्मिन् कर्मणा लोके ख्यातिं इच्छति पुष्कलां न च शोचति असंपत्तौ तत् विज्ञेयं तु राजसम् ॥

यो०। येनकर्मणा अस्मिन्लोके पुष्कलां ख्यातिं इच्छति (प्राप्नोति) चपुनः असंपत्तौ सत्यां नशोचति तत्राजसं विज्ञेयम् ॥

भा०। ता०। जिसकर्मके करनेसे इसलोकमें पुष्कल (अधिक) ख्यातिको प्राप्तहो और जिस कर्मके फलकी सिद्धिके न होनेपर दुःखी न हो वह राजसगुणका लक्षण जानना अर्थात् वहकर्म रजोगुणसे कियागयाहै ३६ ॥

यत्सर्वेणेच्छतिज्ञातुंयन्नलज्जतिचाचरन्।येनतुष्यतिचात्मास्यतत्सत्वगुणलक्षणम् ३७

प०। यत् सर्वेण इच्छति ज्ञातुं यत् न लज्जति च आचरन् येन तुष्यति च आत्मा अस्य तत् सत्वगुणलक्षणम् ॥

यो०। सर्वेण यत् कर्म ज्ञातुं इच्छति यत् आचरन् सन् न लज्जति चपुनः येन अस्य आत्मा तुष्यति तत् सत्वगुण लक्षणं ज्ञेयम् ॥

भा०। ता०। जो कर्म सबप्रकारसे वेदार्थके जाननेकी इच्छाको पैदाकरे और जिसके करनेपर तीनोंकालमें लज्जितनहो और जिसकर्मके करनेसे इसके मनमें संतोष पैदाहो वह सत्वगुणका लक्षण जानना ३७ ॥

तमसोलक्षणंकामोरजसस्त्वर्थउच्यते। सत्वस्यलक्षणंधर्मःश्रैष्ठ्यमेषांयथोत्तरम् ३८॥

प०। तमसः लक्षणं कामः रजसः तु अर्थः उच्यते सत्वस्य लक्षणं धर्मः श्रैष्ठ्यं एषां यथोत्तरम् ॥

यो०। कामः तमसः लक्षणं रजसः लक्षणं अर्थः सत्वस्यलक्षणं धर्म. उच्यते एषां यथोत्तरं श्रैष्ठ्यंज्ञेयं—बुधैरितिशेषः॥

भा०। ता०। कामनाको मुख्य समझना तमोगुणका लक्षणहै और धनमें निष्ठारखनी रजोगुण का धर्महै—और धर्मको प्रधान समझना सत्त्वगुणका लक्षण है—और ये तीनों उत्तरोत्तर (क्रमसे) श्रेष्ठ होते हैं ३८ ॥

येनयांस्तुगुणेनैषांसंसारान्प्रतिपद्यते।तान्समासेनवक्ष्यामिसर्वस्यास्ययथाक्रमम् ३९॥

प०। येन यान् तु गुणेन एषां संसारान् प्रतिपद्यते तान् समासेन वक्ष्यामि सर्वस्य अस्य यथाक्रमम्॥

यो०। एषां गुणानांमध्ये येन गुणेन यान् संसारान् जनः प्रतिपद्यते अस्य सर्वस्य (जगतः) तान् सर्वान् यथाक्रमं समासेन वक्ष्यामि ॥

भा०। ता०। इन सत्वादिक गुणोंके मध्यमें जिसगुणसे जिन २ गतियोंको यहजीव प्राप्तहोताहै वे संपूर्ण इसजगत्‌कीगति संक्षेप और क्रमसे तुमको कहताहूं ३९ ॥

देवत्वंसात्विकायान्तिमनुष्यत्वंचराजसाः।तिर्यक्त्वंतामसानित्यमित्येषात्रिविधागतिः ४०

प०। देवत्वं सात्विकाः यान्ति मनुष्यत्वं च राजसाः तिर्यक्त्वं तामसाः नित्यं इति एषा त्रिविधा गतिः ॥

यो०। सात्विकाः देवत्वं—राजसाः मनुष्यत्वं—तामसाः तिर्यक्त्वं—यांति—एषा नित्यं त्रिविधागतिः (जन्मान्तरप्राप्तिः) अस्ति—त्रिभिर्गुणैस्तत् तत् अनुरूपं जन्म भवतीत्यर्थः ॥

भा०। ता० सत्वगुणी मनुष्य देवयोनिको और रजोगुणी मनुष्य योनिको—और तमोगुणी तिर्यक् (तिरछी) योनिको प्राप्तहोतेहैं यह तीनप्रकारकी गति सर्वदासे होतीहै ४० ॥

त्रिविधात्रिविधैषातुविज्ञेयागौणिकीगतिः।अधमामध्यमाग्र्याचकर्मविद्याविशेषतः ४१

प० । त्रिविधा त्रिविधा एषा तु विज्ञेया गौणिकी गतिः अधमा मध्यमा अग्र्या च कर्मविद्याविशेषतः ॥

यो० । एषा त्रिविधा गौणिकी गतिः (कर्मविद्याविशेषतः) अधमा मध्यमा चपुनः अग्र्या (मुख्या) कर्मविद्या विशेषतः त्रिविधा विज्ञेया—बुधैरितिशेषः ॥

भा०। ता०। सत्वआदि गुणोंके निमित्तसे पैदाहुई यह पूर्वोक्त तीनप्रकारकी जो गति है वहकर्म और देशकाल विद्याआदिकी विशेषतासे अधम मध्यम और उत्तमभेदसे पुनः भी त्रिविधा (तीन प्रकार की) जाननी ४१ ॥

स्थावराःकृमिकीटाश्चमत्स्याःसर्पाःसकच्छपाः।पशवश्चमृगाश्चैवजघन्यातामसीगतिः ४२ ॥

प० । स्थावराः कृमिकीटाः च मत्स्याः सर्पाः सकच्छपाः पशवः च मृगाः च एव जघन्या तामसी गतिः ॥

यो० । स्थावराः चपुनः कृमिकीटाः मत्स्याः सकच्छपाः सर्पाः पशवः चपुनः मृगाः एषा जघन्या गतिः तामसीज्ञेया॥

भा० । ता० । वृक्षआदि स्थावर और कृमि–(सूक्ष्मप्राणी) और उनसे कुछ स्थूल कीट और मत्स्य–सर्प–कच्छप–पशु और मृग–यह तमोगुणसे पैदाहुई जघन्य (निकृष्ट) है अर्थात् सबजन्मों में ये निकृष्ट जन्महैं ४२ ॥

हस्तिनश्चतुरङ्गाश्चशूद्राम्लेच्छाश्चगर्हिताः।सिंहाव्याघ्रावराहाश्चमध्यमातामसीगतिः ४३

प० । हस्तिनः च तुरंगाः च शूद्राः म्लेच्छाः च गर्हिताः सिंहाः व्याघ्राः वराहाः च मध्यमा तामसी गतिः ॥

यो०। हस्तिनः तुरंगाः शूद्राः चपुनः गर्हिताः म्लेच्छाः सिंहाः व्याघ्राः चपुनः वराहाः एषा तामसीगतिः मध्यमाज्ञेया॥

भा० । ता० । हाथी–अश्व शूद्र–और निंदित म्लेच्छ–सिंह व्याघ्र (भिडा) और सूकर–यह तमोगुणसे पैदाहुई मध्यमगति जाननी अर्थात् मध्यम तमोगुणी मनुष्य इनयोनियोंमें जन्मतेहैं ४३ ॥

चारणाश्चसुपर्णाश्चपुरुषाश्चैवदाम्भिकाः।रक्षांसिचपिशाचाश्चतामसीषूत्तमागतिः ४४

प०।चारणाः च सुपर्णाः च पुरुषाः च एव दांभिकाः रक्षांसि च पिशाचाः च तामसीषु उत्तमा गतिः॥

यो० । चारणाः सुपर्णाः चपुनः दांभिकाः पुरुषाः–रक्षांसि–चपुनः पिशाचाः एषा तामसीषु उत्तमागतिः विज्ञेया ॥

भा० । ता० । चारण (नटआदि) सुपर्ण (पक्षी) और दांभिक मनुष्य–राक्षस और पिशाच यह तामसीगतियोंमें उत्तमगति जाननी अर्थात् अल्प तमोगुणियोंका जन्म चारणआदि जातियोंमें होताहै ४४ ॥

झल्लामल्लानटाश्चैवपुरुषाःशस्त्रवृत्तयः।द्यूतपानप्रसक्ताश्चजघन्याराजसीगतिः ४५ ॥

प० । झल्लाः मल्लाः नटाः च एव पुरुषाः शस्त्रवृत्तयः द्यूतपानप्रसक्ताः च जघन्या राजसी गतिः॥

यो० । झल्लाः मल्लाः नटाः चपुनः शस्त्रवृत्तयः पुरुषाः चपुनः द्यूतपानप्रसक्ताः एषा राजसीगतिः जघन्याज्ञेया ॥

भा० । ता० । झल्ल और मल्ल अर्थात् समयपर यज्ञोपवीत संस्कारहीन क्षत्रियसे जो क्षत्रिया स्त्रीमें पैदाहुयेहों वे–उनमें भी झल्ल वेहोतेहैं जो लाठोंसे लडतेहैं और मल्ल वेहोतेहैं जो भुजाओं

से लड़तेहैं और रंगनेवाले नट शस्त्रसे जीविका करनेवाले और द्यूत और मदिरापानमें आसक्त–ये सबगति रजोगुणसे पैदाहुई जघन्यहै अर्थात् अत्यन्तरजोगुणसे ये पैदाहोतेहैं ४५ ॥

राजानःक्षत्रियाश्चैवराज्ञांचैवपुरोहिताः।वादयुद्धप्रधानाश्चमध्यमाराजसीगतिः ४६ ॥

प० । राजानः क्षत्रियाः च एव राज्ञां च एव पुरोहिताः वादयुद्धप्रधानाः च मध्यमा राजसी गतिः॥

यो० । राजानः–क्षत्रियाः चपुनः राज्ञां पुरोहिताः–चपुनः वादयुद्धप्रधानाः एषा मध्यमा राजसी गतिः ज्ञेया ॥

भा० । ता० । जो राजपदवीपर अभिषिक्त राजा वे और क्षत्रिय और राजाकेपुरोहित–और जिनको शास्त्रार्थका कलह प्याराहो वे–यह रजोगुणकीगति मध्यम जाननी अर्थात् ये मध्यम रजोगुण से पैदा होते हैं ४६ ॥

गन्धर्वागुह्यकायक्षाविबुधानुचराश्चये।तथैवाप्सरसःसर्वाराजसीषूत्तमागतिः ४७ ॥

प० । गंधर्वाः गुह्यकाः यक्षाः विबुधानुचराः च ये तथा एव अप्सरसः सर्वाः राजसीषु उत्तमा गतिः ॥

यो० । गंधर्वाः गुह्यकाः यक्षाः चपुनः ये विबुधानुचराः ते–तथा एव सर्वाः अप्सरसः एषा गतिः राजसीषु गतिषु उत्तमा ज्ञेया ॥

भा० । ता० । गंधर्व–गुह्यक–यक्ष (ये सबजातिविशेष) और देवताओं के अनुचर–और सम्पूर्ण अप्सरा ये सब राजसीगतियोंमें उत्तम राजसीगति जाननी अर्थात् ये सब अल्प रजोगुण से उत्पन्न होते हैं ४७ ॥

तापसायतयोविप्रायेचवैमानिकागणाः।नक्षत्राणिचदैत्याश्चप्रथमासात्विकीगतिः ४८

प० । तापसाः यतयः विप्राः ये च वैमानिकाः गणाः नक्षत्राणि च दैत्याः च प्रथमा सात्विकी गतिः ॥

यो० । तापसाः (वानप्रस्थाः) यतयः(भिक्षवः) ब्राह्मणाः–चपुनः ये वैमानिकागणाः ते नक्षत्राणि चपुनः दैत्याः एषा सात्विकीगतिःप्रथमाज्ञेया ॥

भा० । ता० । तपस्वी (वानप्रस्थ)संन्यासी–ब्राह्मण और पुष्पकआदि विमानमें विचरनेवाले, नक्षत्र–और दैत्य यहसात्विकीगति प्रथमजाननी–अर्थात् ये अल्पसत्वगुणसे उत्पन्नहोतेहैं ४८ ॥

यज्वानऋषयोदेवावेदाज्योतींषिवत्सराः।पितरश्चैवसाध्याश्चाद्वितीयासात्विकीगतिः ४९

प० । यज्वानः ऋषयः देवाः वेदाः ज्योतींषि वत्सराः पितरः च एव साध्याः च द्वितीया सात्विकी गतिः ॥

यो० । यज्वानः (यज्ञशीलाः) ऋषयः देवाः वेदाः ज्योतींषि वत्सराः पितरः चपुनः साध्याः–एषासात्विकीगतिः द्वितीया ज्ञेया ॥

भा० । ता० । यज्ञकरनेवाले ऋषि देवता और वेदके अभिमानी देवता जो इतिहासों में प्रसिद्ध हैं और ध्रुवआदिज्योति और वत्सराभिमानी देवता (जो इतिहासोंमें प्रसिद्धहैं) सोमपाआदि पितर साध्य (देवयोनिविशेष) यह सात्विकीगति द्वितीया (मध्यम) जाननी अर्थात् ये मध्यमसत्वगुण से उत्पन्नहोतेहैं ४९ ॥

ब्रह्माविश्वसृजोधर्मोमहानव्यक्तमेवच।उत्तमांसात्विकीमेतांगतिमाहुर्मनीषिणः ५० ॥

प० । ब्रह्मा विश्वसृजः धर्मः महान् अव्यक्तं एव च उत्तमां सात्विकीं एतां गतिं आहुः मनीषिणः ॥

यो० । ब्रह्मा–विश्वसृजः (मरीच्यादयः) महान् चपुनः अव्यक्तं एतांसात्विकींगतिं मनीषिणः उत्तमां आहुः ॥

भा० । ता० । ब्रह्मा–और मरीचिआदि विश्वकेरचनेवाले और देहधारीधर्म–महान् और अव्यक्त अर्थात् सांख्यशास्त्र में प्रसिद्ध ये दोनोंतत्व अथवा इनदोनों तत्वों के अधिष्ठाता दोनों देवता ये सब पंडितजनोंने सत्वगुणकी उत्तमगति कहेहैं अर्थात् उत्तमसत्वगुण से उत्पन्न होतेहैं ५० ॥

एषसर्वःसमुद्दिष्टस्त्रिप्रकारस्यकर्मणः।त्रिविधस्त्रिविधःकृत्स्नःसंसारःसार्वभौतिकः ५१॥

प० । एषः सर्वः समुद्दिष्टः त्रिप्रकारस्य कर्मणः त्रिविधः त्रिविधः कृत्स्नः संसारः सार्वभौतिकः ॥

यो० । त्रिप्रकारस्यकर्मणः एषः सर्वः त्रिविधः त्रिविधः कृत्स्नः सार्वभौतिकः संसारः समुद्दिष्टः–(वर्णितः) ॥

भा० । तीनप्रकारके कर्मका जो तीनप्रकारका फल और उस तीनप्रकारके फलका जो तीनप्रकार का सबप्राणियों का यह संसार वह तुमकोकहा ॥

ता० । मन–वाणी–देह–भेदसे उत्पन्नहुये कर्मका त्रिविधफल अर्थात् सत्वगुण–रजोगुण–तमोगुणके भेदसे तीनप्रकार के फलका पुनः प्रथम मध्यम उत्तम भेदसे तीनप्रकार की जो गति विशेष अर्थात् सम्पूर्ण प्राणियोंके भोगनेयोग्य सम्पूर्ण संसार है वह निश्शेषरूपसे तुमकोकहा–और जोगति यहांपर नहींकहीगई वेभी जाननी क्योंकि पूर्वोक्तगति दिखानेमात्रहै अर्थात् अन्यगतियोंकी भी उपलक्षक है ५१ ॥

इन्द्रियाणांप्रसंगेनधर्मस्यासेवनेनच।पापान्संयान्तिसंसारानविद्वांसोनराधमाः ५२ ॥

प० । इंद्रियाणां प्रसंगेन धर्मस्य असेवनेन च पापान् संयांति संसारान् अविद्वांसः नराधमाः ॥

यो० । अविद्वांसः नराधमाः इंद्रियाणां प्रसंगेन चपुनः धर्मस्य असेवनेन पापान् संसारान् संयांति ॥

भा० । ता० । मनुष्यों में नीच और मूर्खजन विषयोंमें इंद्रियोंके प्रसंगसे अर्थात् निषिद्धके आचरणसे और धर्मके न करनेसे निंदितगतिको प्राप्तहोतेहैं ५२ ॥

यांयांयोनिंतुजीवोऽयंयेनयेनेहकर्मणा।क्रमशोयातिलोकेऽस्मिंस्तत्तत्सर्वंनिबोधत ५३ ॥

प० । यां यां योनिं तु जीवः अयं येन येन इह कर्मणा क्रमशः याति लोके अस्मिन् तत् तत् सर्वं निबोधत ॥

यो० । अयं जीवः इह (संसारे) क्रमेन येन येन कर्मणा यां यां योनिं–अस्मिन् लोके याति तत् तत् सर्वं यूयं निबोधत (शृणुत) ॥

भा० । ता० । यहजीव इसलोक में कियेहुये कर्मोंसे जिस जिस योनिको जगत्में प्राप्त होता है–उस २ कर्मको और योनिको तुम सुनो ५३ ॥

बहून्वर्षगणान्घोरान्नरकान्प्राप्यतत्क्षयात्।संसारान्प्रतिपद्यन्तेमहापातकिनस्त्विमान् ५४

प०। बहून् वर्षगणान् घोरान् नरकान् प्राप्य तत्क्षयात् संसारान् प्रतिपद्यन्ते महापातकिनः तु इमान् ॥

यो० । महापातकिनः इमान् घोरान् नरकान् बहून् वर्षगणान् प्राप्य–तत्क्षयात् (नरकभोग्यकर्मनाशात्) इमान् संसारान् (जन्मविशेषान्) प्रतिपद्यंते (प्राप्नुवंति) ॥

भा०। ता०। संपूर्ण महापातकी बहुतवर्षोंतक घोरनरकोंकोप्राप्तहोकर अर्थात् घोरनरकोंकोभोगकर इन (जो आगे कहेंगे) जन्मोंको उस दूषितकर्मके नाशहोनेपर प्राप्तहोतेहैं अर्थात् इन दुष्टयोनियोंमें जन्मतेहैं ५४ ॥

श्वसूकरखरोष्ट्राणांगोजाविमृगपक्षिणाम्। चण्डालपुक्कसानांचब्रह्महायोनिमृच्छति ५५॥

प० । श्वसूकरखरोष्ट्राणां गोजाविमृगपक्षिणाम् चंडालपुक्कसानां चँ ब्रह्महा योनिं ऋच्छति ॥

यो० । ब्रह्महा श्वसूकरखरोष्ट्राणां–गोजाविमृगपक्षिणां–चपुनः चंडालपुक्कसानां योनिं ऋच्छति (प्राप्नोति) ॥

भा० । ता० । ब्रह्महत्यारा–कुत्ता–सूकर–गर्दभ–ऊंट–गौ–अजा (बकरी) मृग–पक्षी–और चांडाल–पुक्कस (जो निषादसे शूद्रामें पैदाहो) इनकी योनिको प्राप्तहोताहै–और इनमें भी जैसापाप देश, काल, होताहै वैसीही योनि क्रमसे मिलतीहै ५५ ॥

कृमिकीटपतङ्गानांविड्भुजांचैवपक्षिणाम् । हिंस्राणांचैवसत्त्वानांसुरापोब्राह्मणोव्रजेत् ५६ ॥

प०। कृमिकीटपतंगानां विड्भुजां चँ एवँ पक्षिणां हिंस्राणां चँ एवँ सत्त्वानां सुरापः ब्राह्मणः व्रजेत्॥

यो० । सुरापः ब्राह्मण कृमिकीटपतंगानां चपुनः विड्भुजां पक्षिणां चपुनः हिंस्राणां सत्त्वानां–योनिं व्रजेत् (गच्छेत्)॥

भा० । ता० । जो ब्राह्मण मदिराका पान करता है वह कृमि–कीट–पतंग–और विष्ठाके भक्षण करने वाले पक्षी–और हिंसाकरनेवाले जीव (सिंहआदि) इनकी योनिको प्राप्तहोताहै ५६ ॥

लूताहिसरटानांचतिरश्चांचाम्बुचारिणाम्।हिंस्राणांचपिशाचानांस्तेनोविप्रःसहस्रशः ५७ ॥

प० ।लूताहिसरटानां चँ तिरश्चां चँ अंबुचारिणाम् हिंस्राणां चँ पिशाचानां स्तेनः विप्रः सहस्रशः॥

यो० । स्तेनः विप्रः–लूताहिसरटानां–चपुनः अंबुचारिणां तिरश्चां (कुम्भीरादीनां) चपुनः हिंस्राणां पिशाचानां सहस्रशः योनिं–व्रजेत् ॥

भा० । ता० । जो ब्राह्मण चोरी करताहै वह–लूता (ऊर्णनाभी वा मकडी) सर्प सरट (करकेंटा) और जलमें विचरनेवाले तिर्यक् (कुम्भीरआदि तिरछीयोनि) और हिंसाकरनेवाले पिशाच आदि–इनकी योनिको सहस्रोंवार प्राप्तहोताहै ५७ ॥

तृणगुल्मलतानांचक्रव्यादांदंष्ट्रिणामपि । क्रूरकर्मकृतांचैवशतशोगुरुतल्पगः ५८ ॥

प० । तृणगुल्मलतानां चँ क्रव्यादां दंष्ट्रिणां अँपि क्रूरकर्मकृतां चँ एवँ शतशः गुरुतल्पगः ॥

यो० । गुरुतल्पगः (गुरुस्त्रीगामी) तृणगुल्मलतानां–क्रव्यादां चपुनः दंष्ट्रिणां–चपुनः क्रूरकर्मकृतां–योनिं शतशः प्राप्नोति ॥

भा०। ता० । जो मनुष्य गुरुकी स्त्रीकेसंग गमनकरताहै वह दूर्वाआदि तृण–गुल्म (जिनपर प्रकांड डाले) नहींहोते और गिलोहआदि लता–और आम (कच्चा) मांसके भक्षक पक्षी (गीधआदि) और सिंहआदि दंष्ट्री (डाढवाले) जीव–और क्रूरकर्म करनेवाले व्याघ्रआदि–इनकी योनि को सैकडोंवार प्राप्तहोताहै ५८ ॥

हिंस्राभवन्तिक्रव्यादाःकृमयोऽभक्ष्यभक्षिणः।परस्परादिनःस्तेनाःप्रेतान्त्यस्त्रीनिषेविणः ५९

प० । हिंस्राः भवन्ति क्रव्यादाः कृमयः अभक्ष्यभक्षिणः परस्परादिनः स्तेनाः प्रेताः अन्त्यस्त्रीनिषेविणः ॥

यो० । ये हिंस्राः ते क्रव्यादाः ये अभक्ष्यभक्षिणः ते कृमयः—ये स्तेनाः ते परस्परादिनः ये अन्त्यस्त्रीनिषेविणः ते प्रेताः भवन्ति ॥

भा० । हिंसाकरनेवाले मनुष्य—क्रव्याद—और अभक्ष्य भक्षण करनेवाले—कृमि—और चौर—परस्पर मांस भक्षक—और चांडाल स्त्रियोंके गामी प्रेत होतेहैं ॥

ता० । जो मनुष्य हिंसकहैं अर्थात् प्राणियोंकी हिंसाकरनेमेंही जिनका स्वभाव होताहै वे आम (कच्चे) मांसको भक्षणकरनेवाले (मार्जारआदि) होतेहैं—और जो अभक्ष्य वस्तुका भक्षण करतेहैं वे कृमि(सूक्ष्म) होतेहैं—जो महापातकियोंसे भिन्न चोरहोते हैं वे परस्परके मांसभक्षक होते हैं—और जो चांडालकी स्त्रीकेसंग गमनकरतेहैं वे प्रेतहोतेहैं—इसश्लोकके—प्रेतान्त्यस्त्रीनिषेविणः—इसपदमें व्याकरणकीरीतिसे—प्रेताअन्त्यस्त्रीनिषेविणः—यहपदहोना चाहताथा—परन्तु स्मृतियोंकोभी वेदकीतुल्यता है इससे सबविधि छन्दमें विकल्पसे होतीहैं इस वचनकी महिमासे विसर्गवायका लोपहोनेपर भी (अकःसवर्णेदीर्घः) इससूत्रसे दीर्घहोजाता है इससे प्रेतान्त्यस्त्रीनिषेविणः यहपद भी शुद्धबन सकताहै ५९ ॥

संयोगंपतितैर्गत्वापरस्यैवचयोषितम् । अपहृत्यचविप्रस्वंभवतिब्रह्मराक्षसः ६० ॥

प० । संयोगं पतितैः गत्वा परस्य एव च योषितम् अपहृत्य च विप्रस्वं भवति ब्रह्मराक्षसः ॥

यो० । पतितैःसह संयोगं चपुनः परस्य योषितं—गत्वा—चपुनः ब्रह्मस्वं अपहृत्य—ब्रह्मराक्षसः भवति ॥

भा० । ता० । जितने समयमें पतितोंके संयोगसे पतित होताहै उतने समय तक ब्रह्महत्यारे आदि चारोंका संसर्ग करके और अन्यकी स्त्रीका संगकरके और सुवर्ण से अन्य ब्राह्मणके धनको चुराकर ब्रह्मराक्षस होताहै अर्थात् इनमेंसे एक २ कर्मकरने से भी ब्रह्मराक्षसकी योनि होतीहै ६० ॥

मणिमुक्ताप्रवालानिहृत्वालोभेनमानवः। विविधानिचरत्नानिजायतेहेमकर्तृषु ६१ ॥

प० । मणिमुक्ताप्रवालानि हृत्वा लोभेन मानवः विविधानि च रत्नानि जायते हेमकर्तृषु ॥

यो० । मानवः लोभेन मणिमुक्ताप्रवालानि—चपुनः विविधानि रत्नानि हृत्वा—हेमकर्तृषु जायते ॥

भा० । ता० । मनुष्य—लोभसे माणिक्य आदि मणि और मोती मूंगा और नानाप्रकार के रत्न (वैडूर्य हीरा आदि) हरके अर्थात् मणि आदि की चोरी करके हेमकर्त्ता (सुनार) ओंकी योनिमें पैदा होताहै और कोई पंडित हेमकर्त्ता पदसे हेमकार पक्षी लेतेहैं ६१ ॥

धान्यंहृत्वाभवत्याखुःकांस्यंहंसोजलंप्लवः।मधुदंशःपयःकाकोरसंश्वानकुलोघृतम् ६२ ॥

प०। धान्यं हृत्वा भवति आखुः कांस्यं हंसः जलं प्लवः मधु दंशः पयः काकः रसं श्वा नकुलः घृतम् ॥

यो० । धान्यं हृत्वा आखुः, कांस्यं हृत्वा हंसः, जलंहृत्वा प्लवः—मधु हृत्वा दंशः—पयः हृत्वा काकः—रसंहृत्वाश्वा—घृतं हृत्वा नकुलः—भवति—इतिसर्वत्रयोज्यम्—

भा० । ता० । अन्नकी चोरीकरनेवाला मनुष्य मूषक और कांसीकी चोरीकरनेवालाहंस, जलकी चोरीकरनेवाला प्लव (मुर्गाई) मधु (सहत) की चोरीकरनेवालादंश (डांस) और दूधकी चोरी करनेवाला काक—और लवणादिसे भिन्नरसकी चोरीकरनेवाला श्वा (कुत्ता) घृतकीचोरीकरनेवाला नकुल होताहै ६२ ॥

---

१ सर्वेविधयःछंदसिविकल्प्यंते ॥

मांसंगृध्रोवपांमद्गुस्तैलंतैलपकःखगः।चीरीवाकस्तुलवणंबलाकाशकुनिर्दधि ६३ ॥

प० । मांसं गृध्रः वपां मद्गुः तैलं तैलपकः खगः चीरीवाकः तु लवणं बलाका शकुनिः दधि ॥

यो० । मांसं हृत्वा गृध्रः वपांहृत्वा मद्गुः, तैलंहृत्वा तैलपकःखगः–लवणंहृत्वा चीरीवाकः दधिहृत्वा बलाका शकुनिः जायते ॥

भा० । ता० । मांसकी चोरीकरनेवाला मनुष्य गीधहोताहै –और वपाकी चोरीकरनेवाला मद्गु (एकजलचरजीव) और तैलकी चोरीकरनेवाला तैलपकनामपक्षी–और लवणकी चोरीकरनेवाला चीरीवाक (एकऊंचेस्वर करनेवाला कीट) और दहीकी चोरीकरनेवाला बलाकापक्षीहोताहै ६३ ॥

कौशेयंतित्तिरिर्हत्वाक्षौमंहत्वातुदर्दुरः।कार्पासतान्तवंक्रौञ्चोगोधागांवाग्गुदोगुडम् ६४

प०। कौशेयं तित्तिरिः हृत्वा क्षौमं हृत्वा तु दर्दुरः कार्पासतांतवं क्रौंचः गोधा गां वाग्गुदः गुडम्॥

यो०। कौशेयं हृत्वा तित्तिरिः, क्षौमंहृत्वादर्दुरः, कार्पासतान्तवंहृत्वा क्रौंचः, गांहृत्वागोधा, गुडंहृत्वा वाग्गुदः जायते॥

भा० । ता० । रेशम के वस्त्रको चुराकर तीतर, और क्षौमके वस्त्रको चुराकर मेंडक, और कपास के वस्त्रको चुराकर क्रौंच, और गौको चुराकर गोधा (गोह) और गुडकोचुराकर वाग्गुदनामकापक्षी होताहै जिसको खुटबढइया कहते हैं ६४ ॥

छुच्छुन्दरिःशुभान्गन्धान्पत्रशाकंतुबर्हिणः । श्वाविल्कृतान्नंविविधमकृतान्नंतुशल्यकः ६५ ॥

प० । छुच्छुंदरिः शुभान् गंधान् पत्रशाकं तु बर्हिणः श्वावित् कृतान्नं विविधं अकृतान्नं तु शल्यकः॥

यो० । शुभान् गंधान् हृत्वा छुच्छुंदरिः पत्रशाकं हृत्वा बर्हिणः–विविधं कृतान्नं हृत्वा श्वावित्–अकृतान्नं तु हृत्वा शल्यकः जायते ॥

भा० । ता० । कस्तूरीआदि सुगंधिद्रव्योंकी चोरीकरनेवाला छुच्छुंदरी होताहै–वास्तूक (बथुआ) आदि पत्तोंका शाक चुरानेवाला मोर–नानाप्रकार का कृतान्न (बनाहुआ मोदकआदि भोजन) को चुरानेवाला–श्वावित्–और अकृतान्न (कच्चाअन्न) को चुरानेवाला शल्यक (शेह) होता है ६५ ॥

बकोभवतिहृत्वाग्निंगृहकारीह्युपस्करम् । रक्तानिहृत्वावासांसिजायतेजीवजीवकः ६६ ॥

प० । बकः भवति हृत्वा अग्निं गृहकारी हि उपस्करं रक्तानि हृत्वा वासांसि जायते जीवजीवकः ॥

यो० । अग्निं हृत्वा बकः भवति– उपस्करं हृत्वा गृहकारी– रक्तानि वासांसि हृत्वा जीव जीवकः– जायते ॥

भा० । ता० । अग्निकोचुरानेवालाबक (बगला) होताहै–और घरकेउपस्कर (शूर्पमुशलआदि) का चुरानेवाला गृहकारी होताहै अर्थात् भित्तिआदि में मिट्टीसे घरबनानेवाला पंखोंसे युक्त वह कीट होता है जिसे भंजनहारीकहतेहैं और कुसुंभआदिसेरँगेहुये रक्तवस्त्रोंके चुरानेवाला जीवजीवक(चकोर) पक्षी होताहै ६६ ॥

वृकोमृगेभंव्याघ्रोऽश्वंफलमूलंतुमर्कटः । स्त्रीमृक्षःस्तोककोवारियानान्युष्ट्रःपशूनजः ६७ ॥

प० । वृकः मृगेभं व्याघ्रः अश्वं फलमूलं तु मर्कटः स्त्रीं ऋक्षः स्तोककः वारि यानानि उष्ट्रः पशून् अजः ॥

यो० । मृगेभं हृत्वा वृकः–अश्वं हृत्वा व्याघ्रः–फलमूलं हृत्वा मर्कटः– स्त्रींहृत्वा ऋक्षः–वारिहृत्वा स्तोककः–यानानि हृत्वा उष्ट्रः–पशून्हृत्वा अजः—जायते ॥

भा० । ता० । मृग और हाथीकोचुराकर वृक (भिडा) होताहै—और घोड़ेकोचुरानेवाला व्याघ्र होताहै और फलमूल चुराकर वानरहोता है—स्त्रीको चुरानेवाला रीछ होताहै—जलको चुरानेवाला स्तोकक (चातक) होताहै—और यान (रथआदि) का चोर ऊंटहोताहै—और पशुओंकी चोरीकरने वाला छाग (बकरी) होताहै ६७ ॥

यद्वातद्वापरद्रव्यमपहृत्यबलान्नरः । अवश्यंयातितिर्यक्त्वंजग्ध्वाचैवाहुतंहविः ६८ ॥

प० । यत् वा तत् वा परद्रव्यं अपहृत्य बलात् नरः अवश्यं याति तिर्यक्त्वं जग्ध्वा च एव अहुतं हविः ॥

यो० । नरः यद्वा तद्वा (असारंअपि) परद्रव्यं बलात् अपहृत्य—चपुनः अहुतं हविः जग्ध्वा अवश्यं तिर्यक्त्वं याति (प्राप्नोति) ॥

भा० । ता० । मनुष्य यद्वा तद्वा (तुच्छ) भी पराये द्रव्यको बलसे चुराकर—और नहीं किया है होमजिसका ऐसी हवि (साकल्य) का भक्षणकरके अवश्य तिरछी (सर्पआदि) योनिको प्राप्तहोता है ६८ ॥

स्त्रियोऽप्येतेनकल्पेनहृत्वादोषमवाप्नुयुः । एतेषामेवजन्तूनांभार्यात्वमुपयान्तिताः ६९॥

प० । स्त्रियः अपि एतेन कल्पेन हृत्वा दोषं अवाप्नुयुः एतेषां एव जंतूनां भार्यात्वं उपयांति ताः ॥

यो० । स्त्रियः अपि एतेन कल्पेन परद्रव्यं हृत्वा दोषं अवाप्नुयुः—ताः स्त्रियः एतेषां एव जन्तूनां भार्यात्वं उपयांति (प्राप्नुवंति) ॥

भा० । ता० । स्त्रीभी अपनीइच्छासे परके धनआदिको चुराकर दोषकोप्राप्तहोती हैं और उनपापों से वे स्त्री इनही पूर्वोक्त जीवोंकी भार्या होतीहैं ६९ ॥

स्वेभ्यःस्वेभ्यस्तुकर्मभ्यश्च्युतावर्णाह्यनापदि । पापान्संसृत्यसंसारान्प्रेष्यतांयान्तिशत्रुषु ७०

प० । स्वेभ्यः स्वेभ्यः तु कर्मभ्यः च्युताः वर्णाः हि अनापदि पापान् संसृत्य संसारान् प्रेष्यतां यांति शत्रुषु ॥

यो० । स्वेभ्यः स्वेभ्यः कर्मभ्यः अनापदि च्युताः वर्णाः (ब्राह्मणादयः) पापान् संसारान् संसृत्य—शत्रुषु प्रेष्यतां यांति ॥

भा० । ता० । विना आपत्काल के अपने २ कर्मोंसे च्युत (गिरनेवाले) ब्राह्मणआदि चारोंवर्ण निंदितयोनियों को प्राप्तहोकर फिर जन्मांतरमें शत्रुओंके सेवक (नौकर) होतेहैं ७० ॥

वान्ताश्युल्कामुखःप्रेतोविप्रोधर्मात्स्वकाच्च्युतः । अमेध्यकुणपाशीचक्षत्रियःकटपूतनः ७१ ॥

प० । वांताशी उल्कामुखः प्रेतः विप्रः धर्मात् स्वकात् च्युतः अमेध्यकुणपाशी च क्षत्रियः कटपूतनः ॥

यो० । स्वकात् धर्मात् च्युतः विप्रः वांताशी—उल्कामुखः प्रेतः जायते—चपुनः क्षत्रियः अमेध्यकुणपाशी कटपूतनः प्रेतो जायते ॥

भा० । ता० । अपने धर्मकात्यागी ब्राह्मण—वमनका भक्षणकरनेवाला और ज्वाला (अग्नि) के समान है मुख जिसका ऐसा प्रेत होताहै और अपनेधर्मका त्यागी क्षत्रिय—पुरीषशवभोजी कटपूतन नामका प्रेत होताहै ७१ ॥

मैत्राक्षज्योतिकःप्रेतोवैश्योभवतिपूयभुक् । चैलाशकश्चभवतिशूद्रोधर्मात्स्वकाच्च्युतः ७२ ॥

प० । मैत्राक्षज्योतिकः प्रेतः वैश्यः भवति पूयभुक् चैलाशकः च भवति शूद्रः धर्मात् स्वकात् च्युतः ॥

यो० । स्वकात् धर्मात् च्युतः वैश्यः पूयभुक् मैत्राक्षज्योतिकः प्रेतः भवति चपुनः स्वकात् धर्मात् च्युतः शूद्रः चैलाशकः प्रेतः भवति ॥

भा० । अपने धर्मसे भ्रष्ट वैश्य पूयकाभक्षक–मैत्राक्षज्योतिक नाम प्रेतहोताहै और अपने धर्मसे भ्रष्ट शूद्र तो चैलाशकनामका प्रेतहोताहै ॥

ता० । अपने कर्मोंसे च्युत (भ्रष्ट) वैश्य पूय (राध) का भक्षक जन्मान्तरमें मैत्राक्ष ज्योतिक नाम प्रेतहोताहै अर्थात् मैत्र (गुदा) में है ज्योतिःप्रकाश जिसका ऐसा प्रेतबनताहै–पृषोदरादि होनेसे ज्योतिष्शब्दके षकारका लोपहोताहै और अपने कर्मोंसे भ्रष्टहुआ शूद्र तो चैलाशकनामका प्रेत होताहै अर्थात् चैल (वस्त्र) संबन्धी यूका (जूं) के भक्षणकरनेवाला प्रेत बनताहै–गोविंदराजने तो चैलाशकनामका कीटकहाहै वह ठीकनहीं है क्योंकि प्रेतनामके प्राणियोंकाही प्रकरणहै ७२ ॥

यथायथानिषेवन्तेविषयान्विषयात्मकाः । तथातथाकुशलतातेषांतेषूपजायते ७३ ॥

प० । यथा यथा निषेवन्ते विषयान् विषयात्मकाः तथा तथा कुशलता तेषां तेषु उपजायते ॥

यो० । विषयात्मकाः पुरुषाः यथा यथा विषयान् निषेवंते तथा तथा तेषां तेषु कुशलता उपजायते ॥

भा० । ता० । विषयोंमें लोलुप मनुष्य जैसे जैसे विषयोंको भोगते हैं तैसेही तैसे उनविषयोंमें उनकीकुशलता (अत्यन्तरुचि) होतीजातीहै अर्थात् विषयोंका सेवनहीविषयोंमें रुचिकोबढ़ाताहै७३॥

तेऽभ्यासात्कर्मणांतेषांपापानामल्पबुद्धयः।संप्राप्नुवन्तिदुःखानितासुतास्विहयोनिषु ७४ ॥

प० । ते अभ्यासात् कर्मणां तेषां पापानां अल्पबुद्धयः संप्राप्नुवंति दुःखानि तासु तासु इह योनिषु ॥

यो० । अल्पबुद्धयः ते (पुरुषाः) तेषां पापानां कर्मणां अभ्यासात् तासु तासु योनिषु इह (संसारे) दुःखानि संप्राप्नुवंति ॥

भा० । ता० । फिर अल्पबुद्धि वे मनुष्य उन पापजनक कर्मोंके अभ्याससे अर्थात् वारंवार करनेसे तिन२ योनियोंमें अर्थात् निंदित, अतिनिंदित, और अत्यन्त निंदित, तिर्य्यक्आदि योनियोंमें दुःखों को भोगतेहैं ७४ ॥

तामिस्रादिषुचोग्रेषुनरकेषुविवर्तनम्।असिपत्रवनादीनिबन्धनच्छेदनानिच ७५ ॥

प० । तामिस्रादिषु च उग्रेषु नरकेषु विवर्त्तनं असिपत्रवनादीनि बंधनच्छेदनानि च ॥

यो० । उग्रेषु तामिस्रादिषु नरकेषु विवर्त्तनं चपुनः असिपत्रवनादीनि, बन्धनच्छेदनानि–(संप्राप्नुवन्ति) एतत् पदं उत्तरत्राप्यनुवर्त्तनीयम् ॥

भा० । ता० । तामिस्रआदि घोरनरकोंमें दुःखोंको और असिपत्र वनआदि नरकोंको और बंधन और छेदनके दुःखोंको प्राप्तहोतेहैं–अर्थात् निषिद्ध विषयोंके भोगनेसे इनदुःखोंको भोगतेहैं ७५ ॥

विविधाश्चैवसंपीडाःकाकोलूकैश्चभक्षणम् ।करम्भवालुकातापान्कुम्भीपाकांश्चदारुणान् ७६

प० । विविधाः च एव संपीडाः काकोलूकैः च भक्षणं करंभवालुकातापान् कुंभीपाकान् च दारुणान् ॥

यो० । चपुनः विविधाः संपीडाः चपुनः काकोलूकैः भक्षणं करंभवालुकातापान् चपुनः दारुणान् कुंभीपाकान् (नरकान्) संप्राप्नुवन्ति ॥

भा० । ता० । अनेकप्रकारकी अत्यन्त पीडा काक और उलूकोंसे देहका भक्षण और तपेहुये बालूमें ताप और कुम्भीपाकआदि दारुण नरक–इनको प्राप्तहोतेहैं ७६ ॥

संभवांश्चवियोनीषुदुःखप्रायासुनित्यशः।शीतातपाभिघातांश्चविविधानिभयानिच७७

प० । संभवान् चँ वियोनीषुँ दुःखप्रायाँसु नित्यशः शीतातपाभिघातान् चँ विविधानि भयानि चँ ॥

यो० । चपुनः दुःखप्रायासु वियोनीषु नित्यशः सम्भवान् चपुनः शीतातपाभिघातान् चपुनः विविधानि भयानि संप्राप्नुवन्ति ॥

भा० । ता० । और दुःखहै बहुधा जिनमें ऐसी तिरछीयोनियोंमें जन्मोंको और शीत और आतपआदिके दुःखोंको और अनेकप्रकारके भयको प्राप्तहोतेहैं ७७ ॥

असकृद्गर्भवासेषुवासंजन्मचदारुणम् । बन्धनानिचकाष्ठानिपरप्रेष्यत्वमेवच७८ ॥

प० । असकृत् गर्भवासेषु वासं जन्म चँ दारुणं बंधनानि चँ काष्ठानि परप्रेष्यत्वं एवँ चँ ॥

यो० । असकृत् गर्भवासेषु वासं चपुनः दारुणं जन्म संप्राप्नुवंति चपुनः उत्पन्नाः बंधनानि काष्ठानि चपुनः परप्रेष्यत्वं संप्राप्नुवन्ति ॥

भा० । ता० । पुनः पुनः गर्भस्थानों में और दारुण दुःखके देनेवाले योनियन्त्रसे जन्मको और उत्पन्नभयेपीछे काष्ठकी शृंखलाआदिसे बन्धन दुःखोंको—और पराये दासभावको प्राप्तहोतेहैं ७८ ॥

बन्धुप्रियवियोगांश्चसंवासंचैवदुर्जनैः।द्रव्यार्जनंचनाशंचमित्रामित्रस्यचार्जनम् ७९॥

प०। बन्धुप्रियवियोगान् चँ संवासं चँ एवँ दुर्जनैः द्रव्योर्जनं चँ नाशं चँ मित्रामित्रस्य चँ अर्जनम् ॥

यो० । बंधुप्रियवियोगान् चपुनः दुर्जनैःसह संवासं द्रव्यार्जनं चपुनः नाशं चपुनः मित्रामित्रस्य अर्जनं (संप्राप्नुवन्ति) ॥

भा० । ता० । बांधव—और प्यारोंके वियोगोंको और दुर्जनोंके संग सहवासको द्रव्यके संचयमें परिश्रम और द्रव्यके नाशसे दुःखको और कष्टसे मित्रकीप्राप्ति और शत्रुकी प्रकटताको विषयोंमें आसक्त मनुष्य प्राप्तहोतेहैं ७९ ॥

जरांचैवाप्रतीकारांव्याधिभिश्चोपपीडनम् । क्लेशांश्चविविधांस्तांस्तान्मृत्युमेवचदुर्जयम् ८०॥

प० । जरां चँ एवँ अप्रतीकारां व्याधिभिः चँ उपपीडनं क्लेशान् चँ विविधान् तान् तान् मृत्युं एवँ चँ दुर्जयम् ॥

यो० । अप्रतीकारां जरां चपुनः व्याधिभिः उपपीडनं चपुनः तान् तान् विविधान् क्लेशान् चपुनः दुर्जयं मृत्युं संप्राप्नुवन्ति ॥

भा० । ता० । जिसका प्रतीकार (चिकित्सा) नहीं है उसवृद्ध अवस्थाको और रोगोंसे पैदाहुई पीडाको और क्षुधा और पिपासाआदि तिन तिन नानाप्रकारके क्लेशोंको और दुर्जय(जो हटनसके) मृत्युको पूर्वोक्त मनुष्य प्राप्तहोते हैं ८० ॥

यादृशेनतुभावेनयद्यत्कर्मनिषेवते । तादृशेनशरीरेणतत्तत्फलमुपाश्नुते ८१ ॥

प० । यादृशेन तुँ भावेन यत् यत् कर्म निषेवते तादृशेन शरीरेण तत्तत्फलं उपाश्नुते ॥

यो० । मनुष्यः यादृशेन भावेन यत् यत् कर्म निषेवते तादृशेन शरीरेण तत्तत्फलं उपाश्नुते ॥

भा० । ता० । जैसे जैसे भावसे अर्थात् सत्वगुणी रजोगुणी तमोगुणी मनसे जिस जिस स्नान—

दान योगआदि कर्मको मनुष्य करताहै वैसेही वैसे शरीरको प्राप्तहोकर उस उसकर्मके फलको भोगताहै ८१ ॥

एषसर्वःसमुद्दिष्टःकर्मणांवःफलोदयः । नैश्श्रेयसकरंकर्मविप्रस्येदंनिबोधत ८२ ॥

प० । एषः सर्वः समुद्दिष्टः कर्मणां वः फलोदयः नैश्श्रेयसकरं कर्म विप्रस्य इदं निबोधत ॥

यो० । एषः सर्वकर्मणां फलोदयः वः (युष्माकं) समुद्दिष्टः विप्रस्य नैश्श्रेयसकरं कर्म इदं यूयं निबोधत ॥

भा० । ता० । कर्तव्य और निषिद्धकर्मोका यह सम्पूर्ण फलोदय तुमकोकहा–अब ब्राह्मणके निश्श्रेयस (कल्याणकारी) इसकर्मको तुमसुनो ८२ ॥

वेदाभ्यासस्तपोज्ञानमिंद्रियाणांचसंयमः । अहिंसागुरुसेवाचनिश्श्रेयसकरंपरम् ८३ ॥

प० । वेदाभ्यासः तपः ज्ञानं इंद्रियाणां च संयमः अहिंसा गुरुसेवा च निश्श्रेयसकरं परम् ॥

यो० । वेदाभ्यासः–तपः ज्ञानं चपुनः इंद्रियाणां संयमः चपुनः अहिंसा चपुनः गुरुसेवा एतत् सर्वं ब्राह्मणस्यपरं निःश्रेयसकरं (भवति) ॥

भा० । ता० । उपनिषद्आदि वेदका अर्थसहित अभ्यास तप (कृच्छ्रादि) ब्रह्मविषयकज्ञान–और इन्द्रियोंका संयम (रोकना) और अहिंसा (हिंसाकात्याग) गुरुकीसेवा येसब ब्राह्मणके अत्यन्त कल्याण करनेवाले कर्महैं ८३ ॥

सर्वेषामपिचैतेषांशुभानामिहकर्मणाम् । किञ्चिच्छ्रेयस्करतरंकर्मोक्तंपुरुषंप्रति ८४ ॥

प० । सर्वेषां अपि च एतेषां शुभानां इह कर्मणां किंचित् श्रेयस्करतरं कर्म उक्तं पुरुषं प्रति ॥

यो० । सर्वेषां अपि एतेषां शुभानां इह कर्मणां किंचित् कर्म पुरुषं प्रति श्रेयस्करतरं उक्तम् ॥

भा० । ता० । इसलोकमें कियेहुये इनसंपूर्ण कर्मोंके मध्यमें किंचित् कर्म अर्थात् एककर्म पुरुषकेलिये अत्यन्त कल्याण करनेवाला मनुआदि ऋषियोंने कहाहै ८४ ॥

सर्वेषामपिचैतेषामात्मज्ञानंपरंस्मृतम् । तद्ध्यग्र्यंसर्वविद्यानांप्राप्यतेह्यमृतंततः ८५ ॥

प० । सर्वेषां अपि च एतेषां आत्मज्ञानं परं स्मृतं तत् हि अग्र्यं सर्वविद्यानां प्राप्यते हि अमृतं ततः ॥

यो० । सर्वेषां अपि एतेषां मध्ये मन्वादिभिः आत्मज्ञानं परंस्मृतं हि (यतः) तत् सर्वविद्यानां अग्र्यं (मुख्यं) स्मृतं हि (यत) ततः (आत्मज्ञानात्) अमृतं (मोक्षः) प्राप्यते ॥

भा० । ता० । इनसम्पूर्ण वेदाभ्यासआदि छःओंके मध्यमें उपनिषदोंमें कहाहुआ आत्मज्ञान मनुआदिकोंने उत्तमकहाहै–और वहसम्पूर्ण विद्याओंमेंमुख्यहै क्योंकि उसीसे मोक्षकीप्राप्तिहोती है८५ ॥

षण्णामेषांतुसर्वेषांकर्मणांप्रेत्यचेहच । श्रेयस्करतरंज्ञेयंसर्वदाकर्मवैदिकम् ८६ ॥

प० । षण्णां एषां तु सर्वेषां कर्मणां प्रेत्य च इह च श्रेयस्करतरं ज्ञेयं सर्वदा कर्म वैदिकम् ॥

यो० । एषां सर्वेषां कर्मणां षण्णां मध्ये प्रेत्य चपुनः इह वैदिकं कर्म सर्वदा श्रेयस्करतरं ज्ञेयम् ॥

भा० । पूर्वोक्त इनसम्पूर्ण वेदाभ्यास आदि छःओंकर्मोंके मध्यमें वेदोक्तकर्म सदैव अत्यंत कल्याणकरनेवाला जानना ॥

ता० । इनपूर्वोक्त वेदाभ्यासआदि छःओंकर्मोंके मध्यमें वेदोक्तकर्म अर्थात् परमार्थ ज्ञान इसलोकमें और परलोक में अत्यन्तही कल्याणका करनेवाला जानना–पिछले श्लोकमें आत्मज्ञानको मोक्ष

का हेतुकहा है और इसश्लोक में इसलोक और परलोक के कल्याण का हेतुकहाहै—इससे पुनरुक्ति दोषनहीं है क्योंकि जो उपासक हैं वे संशय के उदयपर्यंतही उपासना ब्रह्मकी करते हैं—और जब संशय का नामनहींरहता उस समय उपासना करनेवाले का उपासना करने में कामचार होता है अर्थात् करै चाहै न करै—गोविंदराज तो इसश्लोकका यहअर्थकरतेहैं कि वेदाभ्यासआदि धर्मशास्त्रोक्त छःओंकर्मोंकी अपेक्षासे वैदिककर्म निश्श्रेयसका साधनहै—अर्थात् परलोकमें सबसेअधिक सुखकीर्त्ति और स्वर्गकोदेता है यह गोविंदराजका अर्थ ठीकनहीं है क्योंकि वेदाभ्यासआदि छःओंकर्म वेदोक्तहैं और उनछःओंमें कोई तो धर्मशास्त्रोक्तके अनुसारहो और कोई न होय यह नहींहोसक्ता—और एषां षण्णां यहनिर्धारणमें षष्ठीविभक्ति जो इसैपाणिनीयसूत्रके अनुसारहोतीहै वह किसप्रकारहोगी इससे जो अर्थ हमने कियाहै वही ठीकहै ८६ ॥

वैदिकेकर्मयोगेतुसार्वाण्येतान्यशेषतः।अन्तर्भवन्तिक्रमशस्तस्मिंस्तस्मिन्क्रियाविधौ ८७

प०। वैदिके कर्मयोगे तु सर्वाणि एतानि अशेषतः अंतर्भवंति क्रमशः तस्मिन् तस्मिन् क्रियाविधौ ॥

यो०। वैदिके कर्मयोगेतु अशेषतः एतानि सर्वाणि कर्माणि तस्मिन् तस्मिन् क्रियाविधौ क्रमशः अंतर्भवंति ॥

भा०। वेदोक्तकर्म के योगमें ये सम्पूर्ण निश्शेष (सब) कल्याण तिस २ उपासना की विधिमें क्रमसे अन्तर्गतहोजातेहैं अर्थात् परमात्मा की उपासना के ये सबअंग होजातेहैं ॥

ता०। और वेदोक्तकर्मयोगमें अर्थात् परमात्मा की उपासनारूप कर्म में ये सम्पूर्ण पूर्वश्लोकमें कहेहुये इसलोक और परलोकके सम्पूर्णकल्याण तिस२ उपासनाकीविधिमें क्रमसे अन्तर्गतहोजाते हैं अथवा इसश्लोक का यहअर्थहै कि वेदोक्त परमात्मा के ज्ञानमें वेदाभ्यासआदि छःओंकर्म अन्तर्गत होजातेहैं क्योंकि इसै श्रुतिमेंयहकहाहै कि वेदकापठन—यज्ञ—दान—और जो नष्ट न होसके ऐसा तप इनसे ब्राह्मणलोग ब्रह्मके जाननेकी इच्छाकरते हैं ८७ ॥

सुखाभ्युदयिकंचैवनैश्श्रेयसिकमेवच । प्रवृत्तंचनिवृत्तंचद्विविधंकर्मवैदिकम् ८८॥

प०। सुखाभ्युदयिकं च एव नैश्श्रेयसिकं एव च प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम् ॥

यो०। सुखाभ्युदयिकं चपुनः नैश्श्रेयसिकं प्रवृत्तं चपुनः निवृत्तं वैदिकं कर्म द्विविधं ज्ञेयम् ॥

भा०। जिससे सुखकी उत्पत्तिहो उसे सुखाभ्युदयिक और जिससे मोक्षकी उत्पत्तिहो उसे नैश्श्रेयसिक कहतेहैं इनदोभेदोंसे प्रवृत्त और निवृत्तरूप वैदिककर्म दोप्रकारकाहै ॥

ता०। वेदोक्तकर्म अर्थात् ज्योतिष्टोमआदियज्ञ और ब्रह्मोपासनादि—सुखाभ्युदयिक—और नैश्श्रेयसिक होनेसे प्रवृत्त और निवृत्तरूप भेदसे दोप्रकारका जानना उनदोनोंमें ज्योतिष्टोमआदि यज्ञको स्वर्गआदि सुखकी प्राप्तिका साधन और जन्ममरणका सम्पादकहोनेसे प्रवृत्तकर्मकहतेहैं और प्रतीक (ब्रह्म) उपासना को मोक्षकासाधन और जन्म मरणरूप संसारकी निवृत्तिका जनकहोनेसे निवृत्त कहतेहैं अर्थात् प्रवृत्ति के जनकको प्रवृत्त और निवृत्ति के जनकको निवृत्तकर्म कहतेहैं ८८ ॥

इहचामुत्रवाकाम्यंप्रवृत्तंकर्मकीर्त्यते। निष्कामंज्ञानपूर्वंतुनिवृत्तमुपदिश्यते ८९ ॥

---

१ यतश्चनिर्धारणं—जातिगुणक्रियासंज्ञाभिः समुदायादेकस्यपृथक्करणंनिर्धारणं—यतःततःषष्ठीस्यात् ॥

२ तमेतंवेदानुवचनेनब्राह्मणाविविदिषन्ति यज्ञेनदानेनतपसानाशकेन ॥

प० । इहँ चँ अमुत्रँ वाँ काम्यं प्रवृत्तं कर्मं कीर्त्यंते निष्कामं ज्ञानपूर्वं तुँ निवृत्तं उपदिश्यंते ॥

यो० । इह वा अमुत्र यत् कर्म काम्यं तत् प्रवृत्तं कीर्त्यते—यत् कर्म ज्ञानपूर्वं निष्कामं भवति तत् निवृत्तं उपदिश्यते—मन्वादिभिरितिशेषः ॥

भा० । इसलोकके वा परलोकके सुखकी जिससे इच्छाहो उसे प्रवृत्त और जिससे किसीफल की कामना न हो और ज्ञानही जिसमें प्रथमहो उसे निवृत्त—कर्म कहतेहैं ॥

ता० । इसलोककी कामनाका जो साधनहै जैसे कि वर्षाकाहेतु कारीरियागादि—और परलोक की कामनाका जो साधनहै जैसे स्वर्गका साधन ज्योतिष्टोम यज्ञआदि—इन दोनोंप्रकारके काम्यकर्मोको मनुआदिने प्रवृत्त कहाहै क्योंकि येदोनों संसारमें प्रवृत्तिकेही जनकहैं—और जोकर्म दृष्ट और अदृष्ट फल (इसलोक और परलोकके)की कामनासे रहितहै अर्थात् ब्रह्मज्ञान के अभ्याससे संसारकी निवृत्तिका हेतुहै अर्थात् जन्म मरणका निवर्तकहै उसको निवृत्त कहतेहैं ८९ ॥

प्रवृत्तंकर्मसंसेव्यदेवानामेतिसाम्यताम् । निवृत्तंसेवमानस्तुभूतान्यत्येतिपञ्चवै ९० ॥

प० । प्रवृत्तं कर्म संसेव्य देवानां एति साम्यताम् निवृत्तं सेवमानः तु भूतानि अत्येति पंच वै ॥

यो० । मनुष्यः प्रवृत्तं कर्म संसेव्य देवानां साम्यतां एति—निवृत्तं सेवमानः तु पुरुषः पंचभूतानि अत्येति ॥

भा० । प्रवृत्तकर्मकी सेवाकरके देवताओंकी तुल्यताको और निवृत्तकर्मकी सेवाकरके पांचोंभूतों के अवलंघन (मोक्ष) को प्राप्तहोताहै ॥

ता० । प्रवृत्तकर्मकी सेवाको मनुष्य भलीप्रकार करके देवताओं के समान गतिको प्राप्त होता है यहबात भी दिखानेमात्रही है क्योंकि अन्यफलकी अभिलाषासे कियेहुये प्रवृत्तकर्मसे फलान्तरकी भी प्राप्ति होसकती है—और निवृत्तकर्मका अभ्यास करताहुआ मनुष्य तो पांचोंभूतोंका अवलंघन करता है अर्थात् देहके उत्पादक पृथिवी जल तेज वायु आकाश—पांचोंसे पैदाहुये देहको धारण न करके मोक्षको प्राप्तहोताहै ९० ॥

सर्वभूतेषुचात्मानंसर्वभूतानिचात्मनि । समंपश्यन्नात्मयाजीस्वाराज्यमधिगच्छति ९१ ॥

प० । सर्वभूतेषु चँ आत्मानं सर्वभूतानि चँ आत्मनि समं पश्यन् आत्मयाजी स्वाराज्यं अधिगच्छति ॥

यो० । सर्वभूतेषु आत्मानं चपुनः सर्वभूतानि आत्मनि पश्यन् आत्मयाजी पुरुषः स्वाराज्यं (मोक्षं) अधिगच्छति (प्राप्नोति) ॥

भा० । जो सबभूतोंमें चैतन्यरूप ब्रह्म (आत्मा) को देखताहै और आत्मामें सबभूतोंको एकरस देखताहै आत्मयाग करनेवाला वह मनुष्य मोक्षको प्राप्तहोताहै ॥

ता० । स्थावर जंगमआदि सम्पूर्ण भूतोंमें जोमनुष्य इसप्रकार आत्माको देखताहै कि मैंही सब भूतोंमें आत्मरूपसे स्थितहूं अर्थात् सबमें ब्रह्मरूपसे व्यापकहूं—और जो आत्मामें इसप्रकार सबभूतोंको देखताहै कि परमाणुके समान है प्रमाण जिनका ऐसे सबभूत मुझ परमात्मामेंही स्थित हैं अर्थात् कारण और व्यापकरूप मेरेसे पृथक् नहीं हैं—निदान इसप्रकार जो जीवनपर्यंत एकरस देखताहै ब्रह्मार्पण[1] बुद्धिसे ज्योतिष्टोमआदि यज्ञको करताहुआ वह मनुष्य स्वाराज्य (ब्रह्मभाव) को

१ ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविः ब्रह्माग्नौब्रह्मणाहुतं—ब्रह्मैवतेनगंतव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥

प्राप्तहोताहै अर्थात् (स्वेन ब्रह्मरूपेण राजते इति स्वराट् ब्रह्म तस्यभावः स्वाराज्यं ब्रह्मत्वं) जो अपनेहीरूपसे प्रकाशितरहै जिसको सूर्यआदि अन्य प्रकाशकी अपेक्षानहो उसे स्वराट् कहते हैं उसमें जो वर्तमान धर्म वह स्वाराज्य कहाता है ऐसा ब्रह्महा होसकताहै—अर्थात् ब्रह्मत्वको प्राप्त होता है जीवभावको छोडकर ब्रह्मभावको प्राप्तहोताहै क्योंकि इन श्रुतियों में यहलिखा है कि यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्मरूपहै इसकी शांत रूपहोकर उपासनाकरै—और जो सबभूतोंको आत्मामें और आत्माको सबभूतोंमें पूर्वोक्तरीतिसे देखताहै वह निंदाको प्राप्तनहींहोता ९१ ॥

यथोक्तान्यपिकर्माणिपरिहायद्विजोत्तमः।आत्मज्ञानेशमेचस्याद्वेदाभ्यासेचयत्नवान्९२॥

प० । यथोक्तानि अपि कर्माणि परिहाय द्विजोत्तमः आत्मज्ञाने शमे च स्यात् वेदाभ्यासे च यत्नवान् ॥

यो० । द्विजोत्तमः यथोक्तानि अपि कर्माणि परिहाय(त्यक्त्वा)आत्मज्ञाने–शमे–चपुनः वेदाभ्यासे–यत्नवान् स्यात् ॥

भा० । ब्राह्मण शास्त्रोक्त कर्मोंको त्यागकर भी–आत्मज्ञान–इन्द्रियोंकाजय–और वेदकाअभ्यास इनमें यत्नवान्हो अर्थात् विशेषकर इनमें तत्पर रहै ॥

ता० । ब्राह्मण शास्त्रोक्त अग्निहोत्रआदि कर्मोंको त्यागकर भी अर्थात् उनमेंही अत्यन्त आसक्त न होकर भी ब्रह्मकाध्यान और शम (इन्द्रियोंकापराजय) और उपनिषद्आदि वेदोंका अभ्यास–इन तीनोंमें यत्नवान्हो अर्थात् विशेषकर इनमेंही मनको लगावे–यहश्लोक इसलियेहै कि इनतीनोंको मोक्षका उपायहोनेसे विशेषकर इनकी रक्षाकरै और कुछ यहअभिप्राय नहीं है कि सर्वथा अग्निहोत्र आदिको छोडदे किन्तु निष्काम बुद्धिसे उनको भी करतारहै ९२ ॥

एतद्धिजन्मसाफल्यंब्राह्मणस्याविशेषतः।प्राप्यैतत्कृतकृत्योहिद्विजोभवतिनान्यथा ९३

प० । एतत् हि जन्मसाफल्यं ब्राह्मणस्य विशेषतः प्राप्य एतत् कृतकृत्यः हि द्विजः भवति न अन्यथा ॥

यो० । हि (यतः) ब्राह्मणस्य विशेषतः जन्मसाफल्यं एतत् भवति–अतः द्विजः एतत् प्राप्य हि (निश्चयेन) कृतकृत्यः (कृतार्थः) भवति–अन्यथा न भवति ॥

भा० । ता० । जिससे ब्राह्मणका जन्म साफल्य(जन्मकीसफलता) यही है कि वेदाभ्यासआदि में तत्पररहना–इससे द्विज इस (वेदाभ्यास) को प्राप्तहोकर अर्थात् करके कृतार्थहोताहै और अन्य प्रकारसे नहींहोता निदान ब्राह्मणके जन्मका फल वेदाभ्यासहीहै ९३ ॥

पितृदेवमनुष्याणांवेदश्चक्षुःसनातनम्।अशक्यंचाप्रमेयञ्चवेदशास्त्रमितिस्थितिः९४

प० । पितृदेवमनुष्याणां वेदः चक्षुः सनातनम् अशक्यं च अप्रमेयं च वेदशास्त्रं इति स्थितिः ॥

यो० । वेदः पितृदेवमनुष्याणां सनातनं चक्षुः भवति–अशक्यं–चपुनः अप्रमेयं वेदशास्त्रं इतिस्थितिः (शास्त्रव्यवस्था) अस्ति ॥

भा० । पितर देवता मनुष्य–इनकाचक्षुः (नेत्र) सनातन वेदहीहै–और वेदको कोई बनानहीं सक्ता और न प्रमाणकरसक्ता यही व्यवस्थाहै ॥

ता० । अब वेदसेही ब्रह्मजानना यह दिखानेकेलिये वेदकी प्रशंसाका वर्णनकरते हैं–कि–पितर

---

१ सर्वंखल्विदंब्रह्म–यजनादिभिः शांतउपासीत–यस्तुसर्वाणिभूतानि आत्मन्येवानुपश्यतिसर्वभूतेषुचात्मानं ततोनविजुगुप्सते ॥

देवता मनुष्य इनके हव्यकव्य अन्न दानआदि में वेदही चक्षुः (नेत्र) है अर्थात् वेदसेही इन हव्य आदिकों का ज्ञान होताहै—और वेदही सनातन (नाशरहित) है क्योंकि हव्यआदि के देनेमें वेदही प्रमाण है और जिन कव्यआदिकों का फल असंनिकृष्ट (अदृश्य) है उनमें नित्यरूप वेद के विना अन्यप्रमाण नहींहोसक्ता—और वेदशास्त्र अशक्यहै अर्थात् इसको कोई वनानहींसका अर्थात् अपौरुषेय है किसीपुरुषका कथित नहींहै—और वेदशास्त्र अप्रमेय है अर्थात् मीमांसा न्यायआदि शास्त्रों की इसे अपेक्षानहींहै इससे वेदकाअर्थ केवल उनसे नहींजानाजाताहै—यह व्यवस्थाहै—तिससे मीमांसा व्याकरणआदि अंगोंसे सर्व ब्रह्मरूप वेदकेअर्थको जाने ९४ ॥

यावेदबाह्याःस्मृतयोयाश्चकाश्चकुदृष्टयः। सर्वास्तानिष्फलाःप्रेत्यतमोनिष्ठाहिताःस्मृताः ९५

प० । याः वेदबाह्याः स्मृतयः याः च काः च कुदृष्टयः सर्वाः ताः निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठाः हि ताः स्मृताः ॥

यो० । याः स्मृतयः वेदबाह्याः—चपुनः याः काः कुदृष्टयः संति—तमोनिष्ठाः ताः सर्वाः प्रेत्य निष्फलाः स्मृताः मन्वादिभिः इतिशेषः ॥

भा० । जो स्मृति वेदबाह्य है और जो शास्त्र कुदृष्टिहैं वे सब परलोकमें निष्फल हैं क्योंकि मनु आदिकोंने उनको नरक का साधन कहाहै ॥

ता० । जिन स्मृतियों का मूल वेदनहींहै अर्थात् जो ऐसे २ आधुनिक वाक्यहैं कि चैत्यकीवंदना[1] से स्वर्गहोताहै और जो कुदृष्टिहैं अर्थात् असत्तर्क जिनकामूलहै और जो देवता अपूर्वआदिके निराकरण करनेवाले वेदसे विरुद्ध चार्वाकआदिके शास्त्र हैं वे सम्पूर्ण परलोकमें निष्फल हैं क्योंकि मनु आदिकों ने उनसबका फल नरककहाहै अर्थात् नरकके साधनहोनेसे वेदविरुद्धकर्मोंको न करै ९५॥

उत्पद्यन्तेच्यवन्तेचयान्यतोऽन्यानिकानिचित्।तान्यर्वाक्कालिकतयानिष्फलान्यनृतानिच ९६

प० । उत्पद्यंते च्यवंते च यानि अतः अन्यानि कानिचित् तानि अर्वाक्कालिकतया निष्फलानि अनृतानि च ॥

यो० । यानि कानिचित् अतः (वेदात्) अन्यानि शास्त्राणि संति—तानि अर्वाक्कालिकतया निष्फलानि चपुनः अनृतानि भवंति चपुनः उत्पद्यंते च्यवंते (नश्यंति) ॥

भा० । ता० । जो कुछ शास्त्र इसवेदके मूलसे अन्यहैं अर्थात् जिनमें वेदकामूल नहीं है—वे सब किसी न किसी पुरुषसे उत्पन्न होतेहैं और इसीसे शीघ्रनष्टहोजातेहैं और वे आधुनिकहोनेसे निष्फल और असत्य (झूंठे) रूपहोतेहैं और स्मृतिआदिकोंको तो वेदमूल होनेसेही प्रामाण्यहै ९६ ॥

चातुर्वर्ण्यंत्रयोलोकाश्चत्वारश्चाश्रमाःपृथक्।भूतंभव्यंभविष्यंचसर्ववेदात्प्रसिद्ध्यति ९७॥

प० । चातुर्वर्ण्यं त्रयः लोकाः चत्वारः च आश्रमाः पृथक् भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति ॥

यो० । चातुर्वर्ण्यं—त्रयः लोकाः चत्वारः पृथक्आश्रमाः चपुनः भूतं भव्यं भविष्यं एतत्सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति (प्रकटीभवति) ॥

भा० । चारोंवर्ण तीनोंलोक और पृथक् पृथक् चारोंआश्रम और भूत भविष्यत् वर्त्तमान ये सब वेदसेही सिद्धहोतेहैं ॥

---

१ चैत्यवंदनात्स्वर्गोभवति ॥

ता० । चारोंवर्ण वेदसेही प्रतीतहोतेहैं अर्थात् इसश्रुतिके अनुसार चारोंवर्णोंकी उत्पत्ति वेदसेही जानीजातीहै कि ब्राह्मण परमात्माके मुखसे क्षत्रियभुजासे वैश्यजंघाओंसे शूद्रपैरोंसे उत्पन्नहुआ—और इनके उपकारक स्वर्गआदि लोकभी वेदसेही प्रतीतहोतेहैं और ब्रह्मचर्यआदि चारोंआश्रम भी पृथक् पृथक् वेदसे जानेजातेहैं और भूत भविष्यत् वर्त्तमान ये सब वेदसे प्रतीतहोतेहैं—अर्थात् तीनोंकालों का फल इसे पूर्वोक्तरीतिके अनुसार वेदसे जानाजाताहै—कि अग्निमेंदीहुई आहुति सूर्यको पहुंचती है—सूर्यसे वृष्टि वृष्टिसे अन्न अन्नसे प्रजा होती है ९७ ॥

शब्दःस्पर्शश्चरूपंचरसोगंधश्चपंचमः । वेदादेवप्रसूयन्तेप्रसूतिगुणकर्मतः ९८॥

प० । शब्दः स्पर्शः च रूपं च रसः गंधः च पंचमः वेदात् एव प्रसूयंते प्रसूतिगुणकर्मतः ॥

यो० । शब्दः स्पर्शः रूपं रसः चपुनः पंचमः गंधः एते प्रसूतिगुणकर्मतः वेदात् एव प्रसूयंते ॥

भा० । ता० । शब्द—स्पर्श रूप रस और पांचवांगंध ये सबउत्पादक और सत्वगुण रजोगुण तमोगुण ये तीनोंगुण इनगुणोंके आधीन वेदोक्तकर्मकेहेतु होनेसे वेदसेही प्रसिद्धहोतेहैं अर्थात् जैसे जैसे शब्दादि विषयोंको मनुष्य सेवताहै वैसी वैसीही वेदोक्तकर्म में रुचिहोती है ९८ ॥

बिभर्तिसर्वभूतानिवेदशास्त्रंसनातनम् । तस्मादेतत्परंमन्येयज्जन्तोरस्यसाधनम् ९९॥

प० । बिभर्ति सर्वभूतानि वेदशास्त्रं सनातनं तस्मात् एतत् परं मन्ये यत् जन्तोः अस्य साधनम् ॥

यो० । सनातनंवेदशास्त्रं सर्वभूतानि यस्मात् विभर्त्ति तस्मात् अस्यजंतोः एतत् (वेदशास्त्रं) परं साधनं अहं मन्ये ॥

भा० । जिससे यह सनातन वेदशास्त्र सम्पूर्णभूतोंकी धारणा करता है तिससे मैं यहमानताहूं कि यह वेदशास्त्र इसप्राणीके परमपुरुषार्थ (मोक्ष) का साधनहै ॥

ता० । जिससे सनातन (नित्य) यह वेदशास्त्र सम्पूर्णभूतोंको धारणाकरताहै क्योंकि इसब्राह्मण ग्रन्थसे यह प्रतीत होता है कि अग्निमें हविःका होम होताहै वह वेदोक्त अग्नि उसहविःको सूर्यको पहुंचातीहै सूर्य उसहविको जलरूपसे अपनी किरणोंद्वारा वर्षाताहै उसवर्षासे अन्नहोताहै उसअन्न से प्राणियोंकी उत्पत्ति और स्थिति होतीहै फिर व्रीहिआदि हविःहोती हैं—तिससे मैं यहमानताहूं कि वेदशास्त्र इसवेदोक्त कर्माधिकारी जन्तुका सर्वोत्तम पुरुषार्थ (मोक्ष) का साधनहै ९९ ॥

सेनापत्यंचराज्यंचदण्डनेतृत्वमेवच । सर्वलोकाधिपत्यंचवेदशास्त्रविदर्हति १००

प० । सेनापत्यं च राज्यं च दंडनेतृत्वं एव च सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रवित् अर्हति ॥

यो० । सेनापत्यं—राज्यं चपुनः दंडनेतृत्वं चपुनः सर्वलोकाधिपत्यं—एतत्सर्वं वेदशास्त्रवित् अर्हति ॥

भा० । ता० । सेनाकापति—राजा—दंडकादेनेवाला और संपूर्ण लोकोंका अधिपति—येसब वेदशास्त्रकेज्ञाताही होसकतेहैं क्योंकि वेदशास्त्रकाज्ञाताही इनपदवियोंका काम धर्म बुद्धि और न्यायसे करसकताहै इतर नहीं १०० ॥

---

१ ब्राह्मणोस्यमुखमासीत् बाहूराजन्यःकृतः ऊरूतदस्ययद्वैश्यःपद्भ्यांशूद्रोअजायत ॥

२ अग्नौप्रास्ताहुतिःसम्यक् आदित्यमुपतिष्ठते । आदित्याज्जायतेवृष्टिःवृष्टेरन्नंततःप्रजा ॥

३ हविरग्नौहूयतेसोग्निरादित्यमुपसर्पति वेदःतत्सूर्योरश्मिभिःवर्षति तेनान्नंभवति अथेहभूतानामुत्पत्तिस्थितिरित्येतिहविर्जायते ॥

यथाजातबलोवह्निर्दहत्यार्द्रानपिद्रुमान् । तथादहतिवेदज्ञःकर्मजंदोषमात्मनः १०१ ॥

प० । यथा जातबलः वह्निः दहति आर्द्रान् अपि द्रुमान् तथा दहति वेदज्ञः कर्मजं दोषं आत्मनः ॥

यो० । जातबलः वह्निः यथा आर्द्रान् अपि द्रुमान् दहति-तथा वेदज्ञः कर्मजं आत्मनः दोषं दहति ॥

भा० । ता० । उत्पन्न हुआहै बल जिसको ऐसी (वृद्ध) अग्नि आर्द्र (हरे) भी वृक्षोंको दग्ध कर देती है-इसप्रकार वेदकाज्ञाता भी निषिद्ध आचरणसे पैदाहुये अपने पापको भी दग्ध(नष्ट) करदेताहै-इससे वेदशास्त्र केवल स्वर्ग और मोक्षकाही हेतुनहीं है किन्तु निवृत्तिकाभी हेतुहै १०१॥

वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञोयत्रतत्राश्रमेवसन् । इहैवलोकेतिष्ठन्सब्रह्मभूयायकल्पते १०२ ॥

प० । वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः यत्र तत्र आश्रमे वसन् इह एव लोके तिष्ठन् सः ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

यो० । यः वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ भवति-यत्रतत्र आश्रमे वसन् इह एव लोके तिष्ठन् सः ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

भा० । ता० । जो मनुष्य वेद-और वेदकेअर्थको जानता है वह मनुष्य नित्य और नैमित्तिक कर्मके करनेसे उत्पन्न ब्रह्मज्ञानके द्वारा जिसकिसी आश्रममें वसताहुआ और इसीलोकमें टिकता हुआ ब्रह्मज्ञानको प्राप्तहोताहै १०२ ॥

अज्ञेभ्योग्रन्थिनःश्रेष्ठाग्रन्थिभ्योधारिणोवराः।धारिभ्योज्ञानिनःश्रेष्ठाज्ञानिभ्योव्यवसायिनः १०३

प० । अज्ञेभ्यः ग्रंथिनः श्रेष्ठाः ग्रंथिभ्यः धारिणः वराः धारिभ्यः ज्ञानिनः श्रेष्ठाः ज्ञानिभ्यः व्यवसायिनः ॥

यो० । अज्ञेभ्यः ग्रंथिनः श्रेष्ठाः ग्रंथिभ्यः धारिणः वराः धारिभ्यः ज्ञानिनः-ज्ञानिभ्यः व्यवसायिनः श्रेष्ठाः भवंति ॥

भा० । अज्ञोंसे ग्रन्थोंके पाठक-और ग्रन्थियोंसे धारी और धारियोंसे ज्ञानी और ज्ञानियोंसे व्यवसायी (कर्मकेकर्ता) श्रेष्ठ होतेहैं ॥

ता० । जो यत्किंचित् अध्ययन करनेवालेहैं उनसे बडे२ ग्रंथोंके वे अध्ययन करनेवाले श्रेष्ठहोते हैं और जिनको पठितग्रन्थोंका यथार्थ ज्ञाननहींहोता और उनग्रंथियोंसे वेधारी श्रेष्ठहोते हैं जिनको पठित ग्रन्थका स्मरणरहताहै परन्तु अर्थज्ञान नहींहोता-और उनधारियोंसे वे श्रेष्ठहोते हैं जिनको पठितग्रन्थके अर्थकाभी ज्ञानहोताहै-परन्तु उसग्रन्थोक्त कर्मोंको जो नहीं करतेहों और उनज्ञानियोंसे वे व्यवसायी श्रेष्ठहोतेहैं जो ग्रन्थके अर्थको जानकर उसमें कहेहुये कर्मोंको भी करतेहैं १०३॥

तपोविद्याचविप्रस्यनिःश्रेयसकरंपरम् । तपसाकिल्बिषंहन्तिविद्ययाऽमृतमश्नुते १०४ ॥

प० । तपः विद्या च विप्रस्य निःश्रेयसकरं परं तपसा किल्बिषं हन्ति विद्यया अमृतं अश्नुते ॥

यो० । तपः विद्या एतत् उभयं विप्रस्य परं निःश्रेयसकरं भवति तपसा विप्रः किल्बिषं हंति-विद्यया अमृतं अश्नुते॥

भा० । कर्म और ब्रह्मज्ञान येदोनों ब्राह्मणके उत्तम मोक्षदाता हैं-और ब्राह्मण कर्मसे पापको नष्टकरताहै और ब्रह्मज्ञानसे मोक्षको प्राप्तहोताहै ॥

ता० । तप अर्थात् अपने धर्ममें प्रवृत्तहोकर आश्रम विहित कर्मको करना और विद्या (आत्मज्ञान) येदोनों ब्राह्मणके मोक्षसाधनहैं-उनदोनोंमें तपसे पापको नष्टकरताहै और ब्रह्मज्ञानसे मोक्ष को प्राप्तहोताहै अर्थात् तपकरनेसे पापनाश होनेपर शुद्ध अन्तःकरणमें उत्पन्नहुये ब्रह्मज्ञानकेद्वारा

मोक्षको प्राप्तहोताहै क्योंकि इस श्रुतिमें यहकहाहै कि विद्या ब्रह्मज्ञान इनदोनोंको ब्राह्मण एकबार जानकर और अविद्यासे मृत्युको अर्थात् मृत्युके दुःखदेनेवाले पापको तरकर अर्थात् नष्टकरके विद्या से मोक्षको प्राप्तहोताहै—इसी श्रुतिकाअर्थ मनुजीने इसश्लोकमें कहाहै १०४ ॥

प्रत्यक्षंचानुमानंचशास्त्रंचविविधागमम् । त्रयंसुविदितंकार्यंधर्मशुद्धिमभीप्सता १०५ ॥

प० । प्रत्यक्षं चँ अनुमानं चँ शास्त्रं चँ विविधागमं त्रयं सुविदितं कार्यं धर्मशुद्धिं अभीप्सता ॥

यो० । धर्मशुद्धिं अभीप्सता पुरुषेण प्रत्यक्षं-अनुमानं चपुनः विविधागमं शास्त्रं एतत् त्रयं सुविदितं कार्यं ॥

भा० । धर्मके स्वरूप ज्ञानकी इच्छावाले मनुष्यको येतीनों भलीप्रकार जानने कि प्रत्यक्ष, अनुमान, और अनेकप्रकारके धर्मआदिके बोधक आगम ॥

ता० । धर्मके तत्त्वज्ञानकी इच्छाकरनेवाला मनुष्य इनतीनोंको सुविदितकरै अर्थात् भलीप्रकार जाने कि प्रत्यक्ष (जो साक्षात् इन्द्रियोंसे जानाजाय) और अनुमान (अर्थात् हेतुसे साध्यकाज्ञान जैसे पर्वतमें धूमके देखनेसे अग्निका ज्ञान होताहै—और धर्मकासाधन विविध आगम और शास्त्र अर्थात् द्रव्य गुण, जाति, इनके तत्त्वज्ञानार्थ वेद और वेदमूलक धर्मशास्त्र और यही तीनप्रमाण अर्थात् प्रत्यक्ष अनुमान आगम मनुको अभीष्टहैं क्योंकि उपमान और अर्थापत्ति इनदोनोंका अनुमानमेंही अन्तरभावहै १०५ ॥

आर्षंधर्मोपदेशंचवेदशास्त्राऽविरोधिना । यस्तर्केणानुसंधत्तेसधर्मंवेदनेतरः १०६ ॥

प० । आर्षं धर्मोपदेशं चँ वेदशास्त्राऽविरोधिना यः तर्केण अनुसंधत्ते सः धर्मं वेद नँ इतरः ॥

यो० । यः आर्षं चपुनः धर्मोपदेशं वेदशास्त्राऽविरोधिना तर्केण अनुसन्धत्ते सः धर्मं वेद इतरः न वेद ॥

भा० । जो मनुष्य वेद और धर्मशास्त्रको वेदशास्त्रके अनुकूल तर्क (मीमांसा) से विचारताहै—वही धर्मको जानताहै इतर नहीं जानता ॥

ता० । जो मनुष्य ऋषियोंके देखेहुये वेदको और धर्मोपदेश (धर्मशास्त्र) को वेदशास्त्रके अविरोधी (अनुकूल) तर्कसे अर्थात् मीमांसादि न्यायसे अनुसन्धान (विचारना) करताहै वही मनुष्य धर्मको जानता है—और इतर मीमांसाका अनभिज्ञ नहीं जानता क्योंकि धर्ममें वेद करण है और मीमांसासे धर्मकी इति कर्त्तव्यता (करनेका प्रकार) जाना जाता है—क्योंकि भट्टवार्त्तिककारने इस वचनसे यहकहाहै—कि जब करणरूप वेदसे धर्मका प्रमाण होता है अर्थात् उसकी अवश्य कर्त्तव्यता प्रतीतहोतीहै उसमें इति कर्त्तव्यताभाग (करनेके प्रकारको) मीमांसा पूर्णकरदेतीहै १०६ ॥

नैश्श्रेयसमिदंकर्मयथोदितमशेषतः । मानवस्यास्यशास्त्रस्यरहस्यमुपदिश्यते १०७ ॥

प० । नैश्श्रेयसं इदं कर्म यथा उदितं अशेषतः मानवस्य अस्य शास्त्रस्य रहस्यं उपदिश्यते ॥

यो० । इदं नैश्श्रेयसंकर्म अशेषतः यथा उदितं अस्य मानवस्य शास्त्रस्य रहस्यं मया उपदिश्यते ॥

भा० । ता० । मोक्षका साधन यहसंपूर्ण कर्म यथार्थरीतिसे मैंनेकहा—अब इसमानवशास्त्रमें जो रहस्य (गुप्त) है उसका उपदेश करताहूं उसको तुमसुनो १०७ ॥

---

१ विद्यांचाविद्यांचयस्तद्वेदोभयंसह । अविद्ययामृत्युंतीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ॥

२ धर्मेप्रमीयमाणेहि वेदेनकरणात्मना । इतिकर्त्तव्यताभागं मीमांसापूरयिष्यति ॥

अनाम्नातेषुधर्मेषुकथंस्यादितिचेद्भवेत् । यंशिष्टाब्राह्मणाब्रूयुःसधर्मःस्यादशंकितः १०८ ॥

प० । अनाम्नातेषु धर्मेषु कथं स्यात् इति चेत् भवेत् यं शिष्टाः ब्राह्मणाः ब्रूयुः सः धर्मः स्यात् अशंकितः ॥

यो० । चेत् (यदि) अनाम्नातेषु धर्मेषु कथं धर्मः स्यात् इति संशयःभवेत् तर्हि शिष्टाः ब्राह्मणाः यं ब्रूयुः सः अशंकितः धर्मःस्यात् ॥

भा० । ता० । जो धर्म सामान्यविधिसे प्राप्तहैं और विशेषकर इसशास्त्रमें वर्णन नहींकिये वे कर्म किसप्रकारकरने यदि यहसंशयहोय तो जिसधर्मको शिष्टब्राह्मणकहैं वहीनिश्चयसे धर्महोताहै १०८॥

धर्मेणाधिगतोयैस्तुवेदःसपरिबृंहणः । तेशिष्टाब्राह्मणाज्ञेयाःश्रुतिप्रत्यक्षहेतवः १०९ ॥

प० । धर्मेण अधिगतः यैः तु वेदः सपरिबृंहणः ते शिष्टाः ब्राह्मणाः ज्ञेयाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः ॥

यो० । यैः ब्राह्मणैः सपरिबृंहणः वेदः धर्मेण अधिगतः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः ते ब्राह्मणाः शिष्टाः ज्ञेयाः ॥

भा० । ता० । ब्रह्मचर्यआदि धर्मसे जिन ब्राह्मणों ने अंग—मीमांसा धर्मशास्त्र और पुराणसहित वेदको जाना है श्रुतिके प्रत्यक्ष अर्थके उपदेश करनेवाले वे ब्राह्मण शिष्टजानने अर्थात् उनको शिष्ट कहतेहैं १०९ ॥

दशावरावापरिषद्यंधर्मपरिकल्पयेत् ।त्र्यवरावाऽपिवृत्तस्थातंधर्मनविचालयेत् ११० ॥

प० । दशावरा वा परिषत् यं धर्मं परिकल्पयेत् त्र्यवरा वा अपि वृत्तस्था तं धर्मं न विचालयेत् ॥

यो० । वा दशावरा वा वृत्तस्था त्र्यवरा परिषत् यं धर्मं परिकल्पयेत् तं धर्मं न विचालयेत् (न विसंवदेत्) ॥

भा० । ता० कमसेकम दशहैं विद्वानजिसमें वा कमसेकम तीनहैं सदाचारी पंडित जिसमें ऐसी सभा जिस धर्म का निश्चयकरदे उसधर्मको चलायमान न करे अर्थात् स्वीकार करिले ११० ॥

त्रैविद्योहेतुकस्तर्कीनैरुक्तोधर्मपाठकः । त्रयश्चाश्रमिणःपूर्वेपरिषत्स्याद्दशावरा १११ ॥

प० । त्रैविद्यः हेतुकः तर्की नैरुक्तः धर्मपाठकः त्रयः च आश्रमिणः पूर्वे परिषत् स्यात् दशावरा ॥

यो० । त्रैविद्यः हेतुकः तर्की नैरुक्तः धर्मपाठकः चपुनः पूर्वे त्रयः आश्रमिणः एषा दशावरा परिषत् स्यात् ॥

भा० । ता० । तीनोंवेदों की शाखापढ़नेवाले तीन और श्रुतिस्मृति के अविरोधी न्यायशास्त्रका ज्ञाता और मीमांसाका ज्ञाता और निरुक्तपाठी और मनुआदि धर्मशास्त्र का वेत्ता और पहिले तीनों आश्रमी अर्थात् वानप्रस्थ ब्रह्मचारी गृहस्थ ये तीनों—ये दश जिसमेंहों वहदशावरा कमसे कम दश विद्वानोंवाली परिषत् (सभा) होती है १११ ॥

ऋग्वेदविद्यजुर्विच्चसामवेदविदेवच । त्र्यवरापरिषज्ज्ञेयाधर्मसंशयनिर्णये ११२ ॥

प० । ऋग्वेदवित् यजुर्वित् च सामवेदवित् एव च त्र्यवरा परिषत् ज्ञेया धर्मसंशयनिर्णये ॥

यो० । ऋग्वेदवित् यजुर्वित् चपुनः सामवेदवित् धर्मसंशयनिर्णये एषा त्र्यवरा परिषत् ज्ञेया ॥

भा० । ता० । ऋग्वेद—यजुर्वेद सामवेद इनतीनों के ज्ञाता तीन जिससभामेंहों धर्म संशय के निर्णयमें वहसभा त्र्यवरा जाननी अर्थात् कमसे कम तीनविद्वानोंवाली जाननी—इनदोनों श्लोकों से दशावरा और त्र्यवरा सभाबनानेका प्रकार वर्णनकिया ११२ ॥

एकोऽपिवेदविद्धर्मंयंव्यवस्येद्द्विजोत्तमः।सविज्ञेयःपरोधर्मोनाज्ञानामुदितोऽयुतैः ११३।

प० । एकः अपि वेदवित् धर्मं यं व्यवस्येत् द्विजोत्तमः सः विज्ञेयः परः धर्मः न अज्ञानां उदितः अयुतैः ॥

यो० । एकः अपि वेदवित् द्विजोत्तमः यं धर्मं व्यवस्येत् सः धर्मःपरः विज्ञेयः अज्ञानां अयुतैः उदितः न विज्ञेयः ॥

भा० । वेदका ज्ञाता एकभी ब्राह्मण जिसधर्मका निश्चयकरदे वही परमधर्म जानना और दश सहस्र भी मूर्ख जिसका निश्चयकरें वहधर्म नहींजानना ॥

ता० । वेदार्थ और धर्मकाज्ञाता एकभी द्विजोंमें उत्तम जिसधर्मका निश्चयकरिदे वहीधर्म उत्तम जानना– और वेदके न जाननेवाले दशसहस्रभी जिसधर्मकोकहें वह उत्तम नहींजानना–इसश्लोक में वेदवित् शब्द वेदार्थधर्म के जाननेवाले का बोधक है और यह भी श्रेष्ठका उपलक्षक है–तिससे स्मृति पुराण मीमांसा न्यायकाज्ञाता और गुरु परंपरासे उपदेशके वेत्ताकाभी ग्रहणकरना और इसे वचनके अनुसार केवल शास्त्रके अनुसार भी धर्मका निर्णय नहींकरना–क्योंकि युक्तिहीन विचारमें धर्मकी हानि होतीहै–तिससे यदि बहुतस्मृतिका जाननेवालाभी यदि भलीप्रकार प्रायश्चित्तआदि धर्मको जानताहोय तो उसएक का कहाहुआ भी धर्म उत्तम जानना–क्योंकि यमराज ने इसेवचन से यहकहाहै कि धर्मशास्त्रके पढनेवाला एक दो वा तीन जिसधर्मकोकहें वहधर्म जानना–और इतर सहस्र मनुष्य जिसको कहें वहधर्म नहींजानना–निदान वेद धर्मशास्त्रके ज्ञाता जिसका निर्णयकरदें वही धर्मजानना ११३ ॥

अव्रतानाममन्त्राणांजातिमात्रोपजीविनाम्।सहस्रशःसमेतानांपरिषत्त्वंनविद्यते ११४॥

प० । अव्रतानां अमंत्राणां जातिमात्रोपजीविनाम् सहस्रशः समेतानां परिषत्त्वं न विद्यते ॥

यो० । सहस्रशः समेतानां अपि अव्रतानां अमंत्राणां–जातिमात्रोपजीविनां–परिषत्त्वं न विद्यते ॥

भा० । ता० । जो सावित्र्यआदि ब्रह्मचारीके व्रतोंसे हीनहैं और मंत्र (वेदाध्ययन) से रहितहैं और जो जातिमात्रकेही ब्राह्मण हैं वे चाहै सहस्र भी जिसमें एकत्रहों वहसभा नहींहोसक्ती क्योंकि उस सभाको धर्म निर्णयका सामर्थ्य नहींहोता ११४ ॥

यंवदन्तितमोभूतामूर्खाधर्ममतद्विदः। तत्पापंशतधाभूत्वातद्वक्तॄननुगच्छति ११५ ॥

प० । यं वदंति तमोभूताः मूर्खाः धर्मं अतद्विदः तत् पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तॄन् अनुगच्छति ॥

यो० । तमोभूताः अतद्विदः मूर्खाः यं वदंति–यत्प्रायश्चित्तादिकं उपदिशंतीत्यर्थः–तत्पापं शतधाभूत्वा तद्वक्तॄन् अनुगच्छति–भवति ॥

भा० । ता० । अधिक तमोगुणी (धर्ममें प्रमाणरूप वेदार्थके अज्ञाता) और प्रश्नविषयकधर्म के ज्ञानसे हीन मूर्ख–जिस प्रायश्चित्तआदि धर्मका पुरुषको उपदेश करते हैं उसका पाप सौगुणाहोकर उन उपदेश करनेवालोंकोही होताहै ११५ ॥

एतद्वोऽभिहितंसर्वंनिःश्रेयसकरंपरम्।अस्मादप्रच्युतोविप्रःप्राप्नोतिपरमांगतिम् ११६

---

१ केवलंशास्त्रमाश्रित्य नकर्तव्योविनिर्णयः । युक्तिहीनविचारेतुधर्महानिःप्रजायते ॥

२ एकोद्वौवात्रयोवापियद्ब्रूयुर्धर्मपाठकाः । सधर्मइतिविज्ञेयः नेतरेषांसहस्रशः ॥

प० । एतत् वः अभिहितं सर्वं निश्श्रेयसकरं परं अस्मात् अप्रच्युतः विप्रः प्राप्नोति परमांगतिम् ॥

यो० । एतत् परं निश्श्रेयसकरं सर्वं वः (युष्माकं) अभिहितं अस्मात् अप्रच्युतः विप्रः परमांगतिं प्राप्नोति (गच्छति)

भा० । ता० । परम (श्रेष्ठ) और मोक्षकासाधन यह धर्मआदिका सम्पूर्णवर्णन तुमकोकहा इस धर्मको करतेहुये ब्राह्मणआदि वर्ण परमगतिको अर्थात् स्वर्ग और मोक्षको प्राप्तहोतेहैं ११६ ॥

एवंसभगवान्देवोलोकानांहितकाम्यया । धर्मस्यपरमंगुह्यंममेदंसर्वमुक्तवान् ११७ ॥

प० । एवं सः भगवान् देवः लोकानां हितकाम्यया धर्मस्य परमं गुह्यं मम इदं सर्वं उक्तवान् ॥

यो० । सः भगवान् देवः मनुः लोकानां हितकाम्यया—इदं सर्वं धर्मस्य परमं गुह्यं मम उक्तवान् ॥

भा० । ता० । भगवान् (ऐश्वर्यआदि सम्पन्न) और प्रकाशरूप देवता वहमनु लोकों के हितकी कामनासे इससम्पूर्ण धर्मके परमगुह्य (गुप्तकरने योग्य)शास्त्रको सेवाकरनेवाले शिष्योंपर अगोपनीय जानकर मुझे सम्पूर्ण कहतेभये ११७ ॥

सर्वमात्मनिसंपश्येत्सच्चासच्चसमाहितः । सर्वंह्यात्मनिसंपश्यन्नाधर्मेकुरुतेमनः ११८ ॥

प० । सर्वं आत्मनि संपश्येत् सत् च असत् च समाहितः सर्वं हि आत्मनि संपश्यन् न अधर्मे कुरुते मनः ॥

यो० । समाहितः पुरुषः सत् चपुनः असत् सर्वं आत्मनि संपश्येत्—हि (यतः) आत्मनि सर्वं संपश्यन् मनुष्यः अधर्मे मनः न कुरुते ॥

भा० । सत् और असत् रूप सबको सावधानहोकर अपने आत्मा (अन्तःकरण) में देखै क्योंकि अपने आत्मा में सबको देखताहुआ मनुष्य अधर्म में मनको नहींकरताहै ॥

ता० । अब मनुजी सबशास्त्र का उपसंहार (समाप्ति) करके—महर्षियों के हितार्थ प्रथम वर्णन कियेहुये भी आत्मज्ञानको मोक्षका उपायजानकर पुनः पृथक् वर्णनकरतेहैं कि सत्भाव और असत् अभाव रूप इसपूर्वोक्त सम्पूर्ण शास्त्रके तत्त्वको सावधानहोकर ब्रह्मस्वरूपको आत्मा के विषे प्राप्त हुआ देखै अर्थात् एकाग्रमनसे ब्रह्मरूपही सम्पूर्ण कार्य कारण को देखै क्योंकि आत्मरूपसे सम्पूर्ण को देखताहुआ मनुष्य रागद्वेषहीन होनेसे अधर्म में मनको नहींकरता—यही स्पष्टकरके वर्णन करते हैं कि ११८ ॥

आत्मैवदेवताःसर्वाःसर्वमात्मन्यवस्थितम् ।आत्माहिजनयत्येषांकर्मयोगंशरीरिणाम् ११९ ॥

प० । आत्मा एव देवताः सर्वाः सर्वं आत्मनि अवस्थितं आत्मा हि जनयति एषां कर्मयोगं शरीरिणाम् ॥

यो० । सर्वाः देवताः आत्मा एव—आत्मनि सर्वं अवस्थितं—भवति—हि (निश्चयेन) एषां शरीरिणां कर्मयोगं आत्मा जनयति ॥

भा० । संपूर्ण देवता आत्माकाहीरूपहैं यहसंपूर्ण जगत् आत्माके विषेहीस्थित है और आत्माही इन शरीरियों (जीवों) को शुभ अशुभकर्मों में युक्तकरता है ॥

ता० । इन्द्रआदिसम्पूर्ण देवता आत्मा हैं क्योंकि आत्माही सम्पूर्ण स्वरूप है और यह सबजगत् आत्माके विषेही स्थित है क्योंकि आत्माकाही परिणामरूप यह जगत् होता है—और परमात्माही

इनक्षेत्रज्ञ जीवोंके कर्म संबन्धको उत्पन्न करताहै क्योंकि इस श्रुतिसे यह प्रतीतहोता है कि जिस जीवकी स्वर्गआदिमें लेजानेकी परमात्माकी इच्छाहै उसपर तो यह परमात्मा उत्तम कर्म कराता है—और जिसको नरकमें पहुंचानेकी इच्छाहै उसपर अधम कर्मकराताहै ११९ ॥

खंसंनिवेशयेत्स्वेषुचेष्टनस्पर्शनेऽनिलम्। पक्तिदृष्ट्योःपरंतेजःस्नेहेऽपोगांचमूर्त्तिषु १२०॥

मनसीन्दुंदिशःश्रोत्रेक्रान्तेविष्णुंबलेहरम्। वाच्यग्निंमित्रमुत्सर्गेप्रजनेचप्रजापतिम् १२१॥

प० । खं संनिवेशयेत् स्वेषु चेष्टनस्पर्शने अनिलं पक्तिदृष्ट्योः परं तेजः स्नेहे अपः गां च मूर्तिषु ॥

प० । मनसि इंदुं दिशः श्रोत्रे क्रांते विष्णुं बले हरं वाचि अग्निं मित्रं उत्सर्गे प्रजने च प्रजापतिम् ॥

यो० । स्वेषु खं (आकाशं) चेष्टनस्पर्शने अनिलं (वायुं) पक्तिदृष्ट्योः परं तेजः—स्नेहे अपः—मूर्तिषु गां—मनसि इंदुं (चंद्रं) श्रोत्रेदिशः क्रांते विष्णुं बलेहरं—वाचि अग्निं—उत्सर्गे मित्रं—चपुनः प्रजने प्रजापतिं—संनिवेशयेत् (कारणे लीनं एकत्वेन भावयेत्) ॥

भा० । हृदयआदिके छिद्रोंमें आकाशका, और देहकी वायुमें वायुका—उदर और दृष्टिके तेजमें उत्तमतेजका—देहका जलमें जलोंका—देहके पार्थिवभागोंमें पृथिवीआदिका संनिवेशकरै—मनमें चन्द्रमाका—श्रोत्रमें दिशाओंका—पादमें विष्णुका—बलमें हरका—वाणीमें अग्निका—उत्सर्ग (गुदा)में मित्रका—और लिंगइंद्रियमें प्रजापतिका संनिवेशकरै—अर्थात् एकताकी भावनाकरै ॥

ता० । अब जो आगे ब्रह्मध्यान वर्णनकरेंगे उसका उपयोगी जो देहके आकाशादिकों में बाह्य आकाशादिकोंका लय (नाश) उसको वर्णन करतेहैं—कि—बाह्य (महान्) आकाशको उदरआदि के शरीराकाशमें लीनसमझे—और चेष्टा और स्पर्शका कारण जो देहकी वायु उसमें बाह्य वायुको—और जठराग्नि और चाक्षुषतेज (सूर्य) इनमें प्रकृष्टतेजको—और देहसंबन्धी जलमें बाह्यजलोंको और पृथिवीआदिको शरीरके पार्थिवभागोंमें और मनमें चन्द्रमाको—श्रोत्रइंद्रियमें दिशाओंको—और पादइन्द्रियमें विष्णुको—बलमें हरको—वाक्इन्द्रियमें अग्निको—पायु (गुदा) इन्द्रियमें मित्रको—और लिंगइन्द्रियमें प्रजापतिको—संनिवेशकरै अर्थात् लीनहुये पूर्वोक्तोंकी एकताकी भावनाकरै—इसप्रकार लीनहुये भूतआदिकोंकी एकताकी भावना करके—जो यह अग्निआदिकोंको देहसंबन्धी नियमहै और जो नियमसे कर्मोंका फलहै वहसब परमात्मा है—क्योंकि इन वचनोंमें यहलिखा है कि इसपूर्वोक्त लयकरनेवालेका चक्षु और प्रशासन (शिक्षा) करनेमें वाणी तृप्तकरते हैं—और इस केहीभयसे अग्नि और सूर्य तपतेहैं और इसकेहीभयसे इन्द्र वायु और पांचवां मृत्यु मनुष्योंपर दौड़ताहै—अर्थात् इसकी और ब्रह्मकी एकताहोनेसे—यही सबका प्रेरकहोताहै १२० । १२१ ॥

प्रशासितारंसर्वेषामणीयांसमणोरपि। रुक्माभंस्वप्नधीगम्यंविद्यात्तंपुरुषंपरम् १२२॥

प० । प्रशासितारं सर्वेषां अणीयांसं अणोः अपि रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात् तं पुरुषं परम् ॥

यो० । सर्वेषां प्रशासितारं—अणोः अपि अणीयांसं—रुक्माभं—स्वप्नधीगम्यं—तं—परं पुरुषं—विद्यात् ॥

भा० । जो सबका नियन्ता है और जो सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म है और जिसकी सुवर्णके स-

---

१ एषह्येवसाधुकर्मकारयति यमूर्ध्वंनिनीषति—एषह्येवासाधुकर्मकारयतियमधोनिनीषति ॥

२ एतस्यचक्षुरस्यप्रशासनेगीस्तर्पयति—भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपतिसूर्यः भयादिंद्रश्चवायुश्च मृत्युर्धावतिपञ्चमः ॥

मान कान्तिहै–जो स्वप्नकेसमान बुद्धिसे जानाजाताहै–ऐसे परमात्माकी चिंता (विचार) करै ॥

ता० । जो सबका प्रशासिता है अर्थात् ब्रह्माआदि स्तंबपर्यन्त चेतन और अचेतन समूहका नियामकहै क्योंकि जो यह अग्निआदिका नियमहै कि अग्नि उष्णहोती है और सूर्य भ्रमणही करता है–और जो कर्मोंके फलका नियमहै कि अमुक कर्मकरनेसे अमुकफल मिलताहै यहसब परमात्मा केही आधीनहै–क्योंकि इसे उपनिषद्से यहीप्रतीत होता है कि इस परमात्माके भयसे अग्नि और सूर्यतपतेहैं और भयसेही इन्द्र वायु और पांचवां मृत्यु अपने २ कार्यमें दौड़ते (करते) हैं–और सर्वात्माहोनेसे सूक्ष्मसेभी सूक्ष्महै–क्योंकि इसे श्रुतिमें यहलिखा है कि बालके अग्रभागके सौभागोंमें से जो एकभाग वहजीव जानना और वेजीव अनन्तहोतेहैं–और जो परमात्मा रुक्माभ हे (सुवर्ण के समान जिसकारूपहै) यद्यपि इसे श्रुतिमें परमात्माके रूपका निषेधकहा है कि आत्मा अशब्द–अस्पर्श अरूप अव्ययहै–तथापि उपासना विशेषमें शुद्धसुवर्णके समान जिसकी कांति मानीहै इसी से इसे छान्दोग्य उपनिषद्में यहलिखाहै कि जो यहसूर्यमें सुवर्णमयी रूपहै वही परमात्माहै–और जो स्वप्नधीसे गम्य (जानाजाता) है अर्थात् स्वप्नबुद्धिके समान ज्ञानसे जिसका ज्ञानहोता है जैसे स्वप्नका ज्ञान चक्षुःआदि बाह्यइन्द्रियों के उपरम (नाश) होनेपरही होताहै इसीप्रकार आत्माका ज्ञानभी बाह्यइन्द्रियोंके विनाही होताहै इसीसे इसे वचनसे व्यासजी ने यहकहा है कि यह आत्मा नेत्रोंसे नहीं जानाजाता और न शेष (श्रोत्रआदि) इन्द्रियों से–किन्तु सूक्ष्मके देखनेवाले प्रसन्न (वासनारहित) मनसे आत्माको जानतेहैं–ऐसे परमात्माकी चिंता (विचार) करै १२२ ॥

एतमेकेवदंत्यग्निंमनुमन्येप्रजापतिम् । इन्द्रमेकेऽपरेप्राणमपरेब्रह्मशाश्वतम् १२३ ॥

प० । एतं एके वदन्ति अग्निं मनुं अन्ये प्रजापतिं इन्द्रं एके अपरे प्राणं अपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥

यो० । एके एतं अग्निं–अन्ये मनुंप्रजापतिं–एकेइंद्रं–अपरेप्राणं–अपरे शाश्वतं ब्रह्मवदन्ति ॥

भा० । कोई इसपरमात्माको अग्नि–कोई मनु कोई प्रजापति कोई इन्द्र कोई प्राण कोई सनातन ब्रह्मकहतेहैं ॥

ता० । यज्ञकरनेवाले कोई ऋषि इसपरमात्माकी अग्निरूपसे उपासना करतेहैं–और कोई रचनेवाले प्रजापति ब्रह्मा वा मनुरूपसे–और कोई ऐश्वर्यके संबन्धसे इन्द्ररूपसे–और कोई प्राणरूप से क्योंकि इसे श्रुतिमें यहकहाहै कि सम्पूर्ण ये भूत (जीव) प्राणमेंही प्रविष्टहोते हैं–और प्राणसेही बढ़तेहैं–और कोई प्रपंच (जगत्) भावसे रहित सर्वदा आनन्दरूप ब्रह्मभावसे इस परमात्माकी उपासना करतेहैं–इसप्रकार मूर्त और अमूर्तस्वरूप ब्रह्ममें सब उपासना श्रुति प्रसिद्धहैं १२३ ॥

---

१ भयादस्याग्निस्तपतिभयात्तपतिसूर्यः । भयादिंद्रश्चवायुश्च मृत्युर्धावतिपंचमः ॥
२ वालाग्रशतभागस्य शतधाकल्पितस्यच । भागोजीवेतिविज्ञेयः सचानन्त्यायकल्प्यते ॥
३ अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम् ॥
४ यएषोंतरादित्येहिरण्मयः ॥
५ नैवासौचक्षुषाग्राह्योनचशिष्टैरपींद्रियैः । मनसातुप्रसन्नेनगृह्यतेसूक्ष्मदर्शिभिः ॥
६ सर्वाणिभूरादीनि इमानिभूतानि प्राणमेवाभिसंविशन्ति प्राणमुज्जिहते ॥

एषसर्वाणिभूतानिपञ्चभिर्व्याप्यमूर्त्तिभिः । जन्मवृद्धिक्षयैर्नित्यंसंसारयतिचक्रवत् १२४ ॥

प० । एषः सर्वाणि भूतानि पंचभिः व्याप्य मूर्तिभिः जन्मवृद्धिक्षयैः नित्यं संसारयति चक्रवत् ॥

यो० । एष (आत्मा) पंचभिः मूर्तिभिः (पृथिव्यादि महाभूतैः) सर्वाणि भूतानि (प्राणिनः) व्याप्य—जन्मवृद्धि क्षयैः नित्यं चक्रवत् संसारयति (जन्मवंति करोति) ॥

भा० । यह आत्मा सबप्राणियों को पांचभूतों से उत्पन्नदेह संयुक्तकरके—जन्म वृद्धि और नाशसे चक्र के समान संसारमें भ्रमाताहै ॥

ता० । यह आत्मा सबप्राणियों को पृथिवीआदि पांचमहाभूतों से व्याप्तहोकर अर्थात् सबको देह सम्बन्ध युक्तकरके—पूर्वजन्म में संचितकर्म के अनुसार उत्पत्ति—पालन—और नाशोंसे रथके चक्रकी तुल्य संसारमें भ्रमाताहै अर्थात् कभी जन्म कभी मरणआदिसे मोक्षपर्यंत संयुक्त करता है १२४ ॥

एवंयःसर्वभूतेषुपश्यत्यात्मानमात्मना । ससर्वसमतामेत्यब्रह्माभ्येतिपरंपदम् १२५ ॥

प० । एवं यः सर्वभूतेषु पश्यति आत्मानं आत्मना सः सर्वसमतां एत्य ब्रह्म अभ्येति परं पदम् ॥

यो० । यः पुरुषः सर्वभूतेषु आत्मना (बुद्धया) आत्मानं एवं पश्यति (जानाति) सः सर्वसमतां एत्य परं पदं ब्रह्म अभ्येति (प्राप्नोति) ॥

भा० । ता० । अब मोक्षकादाताहोनेसे सबधर्मोमें श्रेष्ठ सर्वत्रपरमात्माको देखनावर्णनकरतेहैं कि जो मनुष्य सम्पूर्ण भूतोंमें अपनीबुद्धिसे इसप्रकार आत्माको व्यापक जानता है वह सबकी समता को प्राप्तहोकर परंपद (ब्रह्म) को प्राप्तहोताहै अर्थात् ब्रह्ममें लीन (मुक्त) होजाताहै १२५ ॥

इत्येतन्मानवंशास्त्रंभृगुप्रोक्तंपठन्द्विजः।भवत्याचारवान्नित्यंयथेष्टांप्राप्नुयाद्गतिम् १२६ ॥

इतिमानवेधर्मशास्त्रेभृगुप्रोक्तायांसंहितायांद्वादशोऽध्यायः १२ ॥
समाप्तैषामनुसंहिता ॥

प० । इति एतत् मानवं शास्त्रं भृगुप्रोक्तं पठन् द्विजः भवति आचारवान् नित्यं यथेष्टां प्राप्नुयात् गतिम् ॥

यो० । भृगुप्रोक्तं इति एतत् मानवं शास्त्रं पठन् द्विजः नित्यं आचारवान् भवति—चपुनः यथेष्टां गतिं आप्नुयात् ॥

भा० । ता० । इसश्लोक में इतिशब्द का समाप्ति अर्थहै भृगुके वर्णनकियेहुये और मनुकेकहेहुये इसधर्मशास्त्र को पढ़ताहुआद्विज—शास्त्रोक्तके करने और शास्त्रनिषिद्धके त्यागनेसे श्रेष्ठआचरणकरने वाला होताहै अर्थात् उत्तम आचरणमें प्रवृत्त होताहै और इसीसे वांछितगतिको प्राप्तहोताहै अर्थात् स्वर्ग वा मोक्षको प्राप्तहोताहै १२६ ॥

इतिमन्वर्थभास्करे द्वादशोऽध्यायः १२ ॥

लखनऊ मुन्शी नवलकिशोर (सी.आई.ई) के छापेखानेमें छपी ॥
नवम्बर सन् १८९० ई० ॥

मनुस्मृति सटीकका शुद्धाशुद्ध पत्र ॥

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
प्रतिलोम की	प्रतिलोमजों	१	१०
होके)	होके) के	१	११
धर्मों को हमारेप्रति क्रमसे	धर्मों (जातकर्म नाम		
(जातकर्म नामकर्म आदि)	कर्म आदि) को हमारेप्र-		
आप	तिक्रमसे आप	१	१४
धर्मके	धर्मका	१	१६
क्रिया ॥	क्रिया २॥	१	१७
पुनः	चपुनः	१	२४
अन्तरप्रभवाणां च	अन्तरप्रभवाणां	१	२४
अनुलोम	अनुलोमज	१	२५
प्रतिलोमों	प्रतिलोमजों	१	२५
योग्यहो ॥	योग्यहो २॥	१	२६
एकही जो वेद	एकही उस वेद (जोवेद	२	२
नहीं)	नहीं)	२	३
ऐसे इस प्रत्यक्षता से सुनो	और जो प्रत्यक्ष और सुने	२	४
विधिहो ऐसे वेद) के	विधिहो) के	२	४
श्रेष्ठहै २॥	श्रेष्ठहै ३॥	२	१०
अपरिमित	अपरिमित	२	२०
प्रायः से आचार्यो	प्रायः आचार्यो	२	२५
टीकहै ३ ॥	टीकहै ४॥	३	३१
तर्कणा	तर्कना	३	३४
रहा ४ ॥	रहा ५॥	४	५
मन	मन,	५	१
आदि)	आदि	५	३
यह परमात्मा नाना प्रकार	नाना प्रकारकी प्रजाओं के		
की प्रजाओं के रचनेकी है	रचनेकीहै इच्छा जिसको		
इच्छा जिसको ऐसाजलोंकी	ऐसायह परमात्मा जलोंको	५	१३
इस	इस—	५	१८
शब्दम्	शब्दम्—	५	१९
जलोंको	जल	६	१३
परिवत्सरम्	परिवत्सरम्	७	६
भूमिं (स्वर्गभूम्योर्मध्ये)	भूमिंव्योम (स्वर्गभूम्यो-		
व्योम	र्मध्ये	७	१०
(उद्धृतवान्)	(उद्धृतवान्)	७	२०
क्योंकि स्मृतिके बलसे एक	क्योंकि इस—प्रेमज्ञाना		
समयही प्रेमज्ञानानुत्पत्ति-	नुत्पत्तिर्मनसो लिंगम्—		
र्मनसो लिंगम्—ज्ञानों की	स्मृति के बलसे एक सम—		

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
उत्पत्ति के अभावसे मन	यहीयुगपद् सब ज्ञानोंकी		
असत् (झूठा) है१४ ॥	उत्पत्ति के अभाव से मन		
	सत्(सच्चा) और अ-		
	प्रत्यक्षहोनेसे असत् (झू-		
	ठा) है १४ ॥	८	४
एव	एव	८	५
शनैः	शनैः	८	७
शनैः	शनैःनिर्ममे	८	८
कर्मेन्द्रिय	कर्मेन्द्रियों को	८	१०
पैदाकी	पैदाकिया	८	११
मैंयह	मैंकोईयह	८	१७
मनीषिणः	मनीषिणः १७	९	१६
स्वभावका (जो	स्वभाव (जो	९	२२
सोलहों पांचों	सोलहों में पांचों	९	२९
स्वभाव को बुद्धिमान्	स्वभावकोही बुद्धिमान्,	९	३०
यम्	यम् १९	१०	१५
जितनी संख्यावाला	जितनी २ संख्या वाला	११	९
पृथक्संस्थाः	पृथक्संस्थाः च	११	१८
जिसके २	जिस २ के	११	२३
ज्ञानदीपक	दीन,दीपक	१२	२
राते	गते	१२	८
का	को	१२	२०
सिद्ध्यर्थं	सिद्ध्यर्थं	१२	२३
सिद्ध्यर्थं	सिद्ध्यर्थं	१२	२४
इच्छन्	इच्छन्	१३	१८
पूर्वेषः	पूर्वेषः २०	१४	३
वाली जो मात्रा कहीहै	वालीमात्रा कहीहैं	१४	७
वर्णों से क्रम	वर्णों के द्वारा क्रम	१५	२२
कोही है द्विजों में श्रेष्ठ	कोही उसे है द्विजों में		
उसे तुम जानो	श्रेष्ठ तुम जानो	१६	११
—है	—उसे है	१६	१३
पति	पतिये	१६	२०
रचे ॥	रचे कि ॥	१६	२१
वाले सातों—और देवता	वालेअन्य सातों—देवता	१७	५
सातों और देवों	सात देवों	१७	७
जहां अधिकार	जहां २ अधिकार	१७	९

नोट—२ से ५ श्लोक तक का मूल टीकाके नीचे होगयाहै उसको उन्हीं श्लोकोंका टीका समझना चाहिये—

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
वही	वही २	१०	८
गणान्	गणान् ३०	१०	११
उक्त महर्षि मरीचि आदिकोंने ही	उक्त मरीचि आदिक महर्षियोंने ही,	१८	५
०	३८	१८	७
एते	एतान्	१८	११
आदि	आदि)	१०	१४
हो	हों)	१८	१६
मच्छड़	मच्छर	१८	२६
मत्	मत्	१८	२८
) रचा	) इस जगत् को रचा	१८	२
को	का	१८	२
और जेरसे पैदा होनेवाले मनुष्य ये जरायुज कहाते हैं	और मनुष्य ये जरायुज (जेर से पैदा होनेवाले) कहाते हैं	१८	१८
तत्	इत्	१८	२३
च	४४	१८	२४
करकेंटा	करकेंटा	१८	२८
और	और जो	२०	१
ईदृयं किंचित्ईदृयं उष्मणः	किंचित् ईदृयं , एतानि उष्मणः	२०	६
है	हैं	२०	१८
जो	जो	२०	२२
है	हैं	२०	२२
ते	ये	२०	२६
से	ते	२०	२६
हैं	हों	२१	११
चैतन्य	चेतन	२१	२२
इनमें	इनको	२१	२३
वह ब्रह्मा फिर	वहप्रजापति इस जगत् कोऔर मुझकोरचकरफिर	२२	१०
को रचकर	को और मुझको रचकर	२२	११
ति	ति ५३	२२	२८
आत्मा यह परमात्मा	आत्मा परमात्मा	२३	१३
तब पूर्वोक्त आठ पुर्य्यष्टक	तब पुर्य्यष्टक	२४	५
। कब	। अब कब	२४	०
इससे मनु	इससे इसको मनु	२५	१३
भृगु ने मेरे	मेरे	२५	१८
यह	इस	२५	२१
मुनि	मुनि ने	२१	२१
जसः	जसः ६१	२६	४
मनुवे	मनु(स्वारोचिष आदि) वे	२६	११

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
अपु:	अपु: (रज्जु:)	२६	२३
होता	होजाता	२०	२४
(पचः	(पक्ष:)	२०	२६
पच:	(पक्ष:)	२०	२६
पितरोंरात	पितरों के रात	२०	२०
यनंरात्रि:	यत्र सा रात्रि:	२८	०
णं	या	२८	११
कालकेविभागको यद्यपि प्रकरण या इस	—यद्यपि कालके विभाग काहीप्रकरणथा तथापिइस	२८	१८
गाख्यः	युगाख्य:	२८	३२
चो	और	२८	२
१	*	२८	२४
०	* कृतंत्रेताद्वापरंच कलिश्चेति चतुर्युगं । प्रोच्यते तत्सहस्रन्तु ब्राह्मणो दिवसो मुने २	२८	३२
को	का	३०	५
इसी	इसी से	३०	१५
मनु	मन	३०	२३
सृष्टिकर्त्तापन	सृष्टिकेकर्तृत्व (कर्त्तापन)	३१	१
शब्द	स्पर्श	३१	२७
समाप्त:इत्यर्थ:	समाप्तेत्यर्थः	३२	१२
भु—भुव—	भुः—भुवः	३२	१८
एकत्तर	इकहत्तर ७१	३२	२२
इह	इस	३२	२३
गकत्तर	इकहत्तर	३२	२५
है	है,	३३	१०
सत्य	सत्य,	३३	२१
उत्पत्ति	(उत्पत्ति)	३३	३०
कृत	कृते	३४	१०
इनसे	इनकेद्वारा	३५	३०
रच	रचे	३५	३१
ब्राह्मणकोअग्नि	ब्राह्मणनेअग्नि	३५	३१
दृष्टि:दृष्ट	दृष्टिर्दृष्ट	३५	३३
पशूना	पशूनां	३६	२२
केवल	केवलका	३७	३
ब्राह्मणः	ब्राह्मणः	३०	१८
ये	ये ८४	३०	२७
कारण	कारणसे	३८	३०
वादिनः	वेदिन:	३८	३
कोविवेचना	की,	४०	२६
त:	त: १००	४२	२०

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
द्विजः	द्विजः १०८	४२	३०
अभिलाषोदस	अभिलाषोद्विजदस	४३	३
आत्मा	आत्म	४३	६
नेकिया	नेत्रहणकिया	४३	१८
प्रकार आचार से धर्मकी प्राप्ति	प्रकारसे आचारकेद्वाराही धर्मकीप्राप्ति	४३	१६
शौच	शौचं	४४	१४
क्रतु	क्रतु	४४	१०
योग्ययह	योग्यकार्ययह	४५	६
बहोसबसे	सबसे	४५	२०
मनुः ॥	मनुः ११८ ॥	४६	१
हैवेद	हैंकिवेद	४७	३
(कल्याण	(कल्याण)	४७	१५
तदुद्यति	तदुद्यति	४७	२६
प्रोक्ता	प्रोक्तो	४७	३२
इक्ष्वाको	इक्ष्वाका	४८	१०
के	का	४८	१०
क	का	४८	१०
है	है	४८	१०
में	का	४८	२४
संकल्प	संकल्पके	४८	२५
जाते	जाता	४८	२६
(यत्)	(यतः)	४९	४
व	वे	४९	८
ता	तान्	४९	१२
कामानश्नुते	कामान्समश्नुते	४९	१३
करो	करो	४९	१८
तुष्टिः	तुष्टिः	४९	२४
समुत्तिष्ठंतीत्यादि	समुपतिष्ठंतीत्यादि	४९	३०
पिताको	पितरोंको	५०	१२
अनुदेते	अनुदिते	५०	३३
विषेष	विषेषण	५१	४
हैं	हैंकि	५१	३१
यहपूर्वोक्तही	यहहैंकिपूर्वोक्त श्रुतिस्मृति सेविसद्धआचरणकायामही	५२	४
चतुर्विधंएतत्	एतत्चतुर्विधं	५२	२०
करें	करैं	५३	८
हो	हों	५३	२९
विरोध	विरोधे	५३	३२
होतो	होतीहै	५४	१
ये	ये *	५४	३
	*उदितेहोतव्यमइत्यादिका	५४	३२

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
देयं	तंदेयं	५४	१९
चारोंवर्ण और पाकरजातियों आचरण	चारोंवर्णऔरसंकर जातियों केजो परंपरा से चलेआये आचरण	५४	३०
यह	यहहै	५५	३
इव	एव	५५	१८
बसे	बसें	५६	१९
बसे	बसें	५६	२०
है	हैकि	५६	२२
यह	यहां	५६	३३
वर्ष	१ वर्ष	५७	३
को	के	५७	१८
हैं	हैं कि	५७	२०
जनेऊकेहोम	जनेऊदनमेकियेहोम	५७	२७
नाषकवेदोक्त	नाषकयेवेदोक्त	५८	१
कोकहतेहैं	कोकिमसेहा गाहेइसलिये यहकहतेहैं	५८	१
योग्य	योग्य,	५८	१०
ने	नेसे	५८	१८
पुरुषका	पुरुष (बालक)	५८	२४
करना	कराना	५८	२४
(१) अशौचकी निवृत्तिहुये पर नामकर्मकरें इसवचनके धचनानुसारबारवेंदिनही--	अशौचकी निवृत्ति हुयेपर नामकर्म करें—इस (१) शंख के वचनानुसार दश दिनकेबाद ग्यारवेंदिनही	५९	३
तम्	तम्--३१	५९	५
नाम	नामा,	५९	२२
निवत्र	निवत्र	५९	३२
वांच	वाचो	६०	४
लियेघरसेबाहर	लियेबाहर	६०	१२
कहने	करने	६०	१८
विर्षः	विषः	६१	१
आठमे	आठवें	६१	३
आठमे	आठवें	६१	५
बारहवें	बारहवेंवर्ष	६१	५
सेभीअष्टम	सेअष्टम	६१	६
बालके	बालकके	६१	१०
आचाध्याय	आचाराध्याय	६१	३३
विशेषकरब्राह्मणको	ब्राह्मणकोविशेषकर	६२	२
चौमादिकानि	चौमाविकानि	६२	२६
चौमादिकानि	चौमाविकानि	६२	२७
चौमादिकानि	चौमाविकानि	६३	१

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
घर्मां	चर्मोंको	६३	५
गयतान्तवी	अयातान्तवी ४२	६३	१०
तांगे	तागे	६३	१६
बंटना	बटना	६४	१३
बंटने	बटने	६४	१३
बंटदे	वहृदे	६४	१०
कोविद:	कोविदः ४६	६५	४
(		६५	१९
भुन्क्वा	भुक्त्वा	६०	६
सम्पृयेत्	संस्पृशेत् ५३	६०	६
भुन्क्वा	भुक्त्वा,	६०	७
ओ	और	६८	११
दनको	इनकों	७१	३०
फेककर	फेंककर	७१	३०
उन्क्वा	उक्त्वा	७४	२३
यतत्रिकं	एतत्त्रिकं	७६	१९
तीनोंयाम	तीनोंकायाम	७६	२३
सर्वामित्र	सबकामित्र	७९	२२
प्रवृत्तिदोष	प्रवृत्तिसेदोष	८१	१६
नयाम्यति	कामःनयाम्यति	८१	२५
श्रेष्ठसे	श्रेष्ठहै	८२	१३
यन्नर:	यःनरः	८३	६
मनुष्यरात्रिमें	मनुष्यकारात्रिमें	८४	२२
नमस्कारके	नमस्कारकरै	८८	१९
अवसे	अत्रसे	९२	२४
दीन	दूति	९४	१०
करके	करे	९५	२४
होताहै	होतेहैं	९६	२४
चढो	चढ़ा	९७	३१
अमंर	अमर	१०१	६
लियेजोमौंजी	लियेमौंजी	१०८	१
मन	मन	११४	२२
ब्रह्मचारीकाशय्या	ब्रह्मचारीकेशय्या	११५	११
हुयेजोगुरुके	हुये गुरु के	११६	७
गवं	गन	११६	१४
पहियान	पहिले यान	११६	२१
मुरो:	गुरोः	११७	७
आयेष	आर्येण	११८	२५
इनकेपंक्तिपाव्यकी	इनकी पंक्तियों	११८	३०
आगे	(आगे)	११८	३१
शिष्यको चरणोंमें	शिष्यचरणोंमें	११९	६
ब्रह्मचारी यदि	ब्रह्मचारीको यदि	१२१	९

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
ब्रह्मचारी दिनमें	ब्रह्मचारी को दिनमें	१२१	१३
मुनियोंको मनुके	मुनियोंके वचनसे मनुके	१२१	१४
संया	संध्या	१२१	२८
(मत) हैं	(मत) है	१२२	२२
प्राप्तिकारण	प्राप्तिके कारण	१२४	८
उपकुर्वीत्	उपकुर्वीत	१२८	१०
(आचार्य:) था	(आचार्यः) गया	१३२	९
अधर्व	अधर्म	१३५	२२
अग्रजन्मन:	स्वा अग्रजन्मनः	१३६	१३
धम्या	धर्म्या	१४०	१८
(संतान के	(संतान)के	१४८	१५
हुई	हुये	१५२	१९
(मनुष्ययज्ञ:	(मनुष्ययज्ञः)	१५३	२६
अग्निकाही विशेषणहोका	अग्निकोहीसेविशेषणकाही	१५८	८
होम	होममें	१५८	२०
गृहस्था	गृहस्थी	१६०	२७
गौतमऋषि	गौतमऋषि ने	१६०	२८
ब्राह्मण	ब्राह्मणको	१६१	१२
प्रतिदिन करतेहुये	प्रतिदिन होमकरतेहुये	१६२	१०
भोजनलिये	भोजन के लिये	१६५	१
प्रथमेवाशब्द:--	प्रथनेवावशब्दे—	१७१	५
क जिमानेको	के किमानेको	१०१	२२
एक एक निमित्त	एक एक के निमित्त	१०१	२६
उसको	उसको	१०२	४
पितरोंको	पितरों के	१०२	२३
समान	समान	१०३	१
लिये	लिये	१०३	३०
विद्वान्को	विद्वान्को	१०३	३१
वेदपाठीही	वेदपाठीही	१०५	१०
(अर्थात्मित्रताकरनी)करनी	(अर्थात्मित्रताकरनी)करना	१०५	२४
विद्वान्	विद्वेषी	१००	२३
ऐसा	ऐसे	१००	२८
कहते कि	कहतेहैं कि	१८०	३०
ब्राह्मण श्राद्धको	ब्राह्मण जिसके श्राद्धको	१८८	११
दैवश्राद्धे भोजनार्थं ब्राह्मणं न परीक्षेत	दैवश्राद्धमेंभोजनार्थब्राह्मण की परीक्षा न करै	१०८	३२
छोड़दिये	छोड़दिये सो	१८०	२०
कुंडाशी और	और कुंडाशी	१८२	१
और जो किसीकारणसे साधुओं को निंदाकरै	और जिसको किसीकारणसे साधु निन्दाकरै	१८४	१३
होजातीहै	होजाता है	१८५	२
न होता	नहीं होता	१८५	६

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
योo । कुण्ड--	योo । परदारेषुकुण्ड-	१८६	२२	राजाको	राजा	२३२	६
संख्याको कथन है	संख्याका कथन है	१८८	२५	महाधनी	महाधनीहै	२३२	६
शुद्राकागमन	शुद्राके गमन	१६२	१६	बालकोदंड	बालकादंड	२३३	६
उनसब	वे और सब	१६३	१३	दर्पने	दर्पोनिश्चयं	२३३	२०
ब्राह्मणों का	ब्राह्मणों को	१६२	११	उत्तरेतः	उत्तरेत्	२३६	१
विधिवत्	विधिवत्	१६८	२३	यद्यपिद्विजक	यद्यपिशूद्रोद्विजके	२४४	१३
र्षिभि:	दर्षिभिः	१६८	३	भोजनहै	भोजनहैं	२४४	१३
अन्नगुणों को	अन्नकेगुणोंको	२०२	२२	गव	गव	२४४	२०
पहुंचते हैं	पहुंचाते हैं	२०३	६	समगोचर	हामगोचर	२४४	३३
श्राद्धका	श्राद्धका	२०६	१	ब्रह्मआदि	ब्रह्मादी	२४२	२०
शक्तितः	शक्तितः	२०६	१०	मुनिकहतेहैं	मुनिवर्गमें कहतेहैं	२५०	१०
उनभाग	उनकाभाग	२०७	८	तारागणोंको	तारागणोंको	२५१	११
ताo । संपिंडीकर	ताo। सपिंडीकरण	२०७	१३	नाधर्म	धर्म	२५१	१५
श्राद्धप्रदेश	श्राद्धप्रदेश	२०७	१३	पढ़नकानिषध	पढ़नेकानिषेध	२५१	२४
प्रकरणपढ़ेहुये	प्रकरणमेंपढ़ेहुये	२०७	२४	फेर	फिर	२५५	२०
अन्न	अन्य	२०६	११	इसमें	इसके	२६५	३
देवतानिमित्त	देवताकेनिमित्त	२०६	१८	ब्राह्मणब्राह्म	ब्राह्मणकाब्राह्म	२७१	२
चपुन	चपुनः	२१०	६	नाप्नोतियते	नाप्नोतियाने	२८६	१६
ब्राह्मणों को	ब्राह्मणोंका	२१२	१२	राजकहाहै	राजानहींकहाहै	२८८	२३
दोहुंचांव	दोहुंचोंवि	२१२	३०	शनैःसंचिनुयात्	शनैःधर्म संचिनुयात्	२८५	२५
(श्राद्ध)	(श्राद्ध) यथा	२१६	११	(असह)	(बराह)	२६६	८
जलांसि जं। पितरों	जलांसिपितरो	२१८	१८	इसीप्रयोगों के	इसीप्रकारप्रयोगोंके	२६८	१६
ब्राह्मणजीने	ब्राह्मणजीवे	२२१	२८	नाथ	नाथ	२६६	१०
यत्रयत्रोपधर्मविद्यते	यत्रयत्रोपधर्मविद्यते	२२१	३१	निवर्तेत्	निवर्तेत	३०५	३
(प्रकृष्टमरना)	(प्रकृष्टमरना)	२२२	४	जाय	होजाय	३०५	६
स्वामीभिड़कने	स्वामीकेभिड़कने	२२२	१८	आदिमें अंगोंको पृथक् २	आदिसेपृथक् २	३०५	२३
चिनाये	चिनाये	२२२	२८	प्राप्तहै	प्राप्तहोताहै	३०६	२०
धान्यकहते हैं	धान्यककहतेहैं	२२२	२६	भोजनसे नहीं होता	भोजनसेप्राप्तनहींहोता	३०६	२१
भृत्यआदिके	भृत्यआदिकों	२२२	३०	जिसको	जिसका	३०७	२२
गृहस्थी इस	गृहस्थीकोइस	२२३	४	सपिंडोकोभाव	सपिंडोंकोभाव	३०७	२६
धान्यकहतेहैं	धान्यककहतेहैं	२२३	६	सपिंडादश	सपिंडोंमेंदश	३०७	३१
धान्यका	धान्यक	२२३	१३	ब्राह्मण शुद्धि	ब्राह्मणकीशुद्धि	३०८	३२
अन्नहोय	अन्नहोय,	२२३	१३	और उक्त	औरजोउक्त	३०८	४
कुशूलधान्यक	कुशूलधान्यक	२२३	१५	मनुष्य होताहै	मनुष्यशुद्धहोताहै	३०६	२१
निर्बाहइसे	निर्बाहहोइसे	२२३	१७	ऐसेबालक को	बालकको	३११	१६
इमांममनुनां	इमाममनुनां	२२३	३२	दिनदिनदिनके	तीनदिनके	३११	३०
व्याख्यान	व्याख्या	२२४	१६	कल्पः कीर्तित.	कल्पःसंनिधौकीर्तितः	३१३	१६
कर	करें	२२५	३१	विधायकहैं	विधायकवचनहैं	३१४	१५
२	१	२२६	३२	स्यात्	स्याताम्	३१४	२६
औशनश	औशनस	२२७	१२	व्यगातेतु	व्यगातेतु	३१४	३१
संन्यासिः	संन्यासि	२३१	१४	और चोरी	औरजोचोरी	३२३	१६
राजसे	राजासे	२३२	५	शुद्धिश्रेष्ठ होतीहैं	श्रेष्ठहोतीहै	३२५	८

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
द्रतने	द्रतनेलेने	३२६	१५
चपुन:नश्चपेनि	चपुन:लेप:मश्चपेनि	३२८	३०
घ्राणंकर्णाविट्	घ्राणकर्णाविट्	३३०	२५
ग्रहणकरनी	ग्रहणकरने	३३१	५
जिसश्चंगुलियोंके	जिससेश्चंगुलियोंके	३३१	१३
भौमिकः	भौमिर्केः	३३३	४
श्चौरयदि--	श्चौर वह यदि	३३३	२४
तोभोजन	तोघृतकाभोजन	३३३	२५
एकपत्नीनांश्चनुत्तमंय:धर्म:	एकपत्नीनांय:धर्म:	३३७	७
नभीकरके	नकरकेभी	३३७	२४
प्राप्तहोती	प्राप्तहोतीहै	३३८	६
शुद्धयेसेविता:गता:	शुद्धयेगता:	३४८	२७
सोधी	सोधा	३४६	८
श्च्यतिस्यकामि	श्च्यतिमेंस्यकामि	३४६	१२
होकरब्रह्मलोक	होकरब्राह्मणब्रह्मलोक	३४६	१६
(यज्ञकेपात्र)	(यज्ञकेपात्रविशेष)	३५५	२६
वदेल	वेदन	३५६	३
तीनोंप्राणायाम	तीनभीप्राणायाम	३६०	६
प्रत्याहारसंसर्गोको	प्रत्याहारसेहसर्गोको	३६०	२८
गतिकोदेखेजो	गतिकोजो	३६१	१३
आदिकरने	आदिके करने	३६२	१२
अनध्यात्मवित्हैअर्थात्	अनध्यात्मवित् अर्थात्	३६४	३१
ममताका	ममता के	३६५	४
ज्ञानका	ज्ञानके	३६५	१०
कहतेहैं	करतेहैं	३६५	१०
अर्थात्कहा	अर्थात् वृथाकहा	३६६	१४
श्लोकधर्म	श्लोककेधर्म	३६६	१४
तत्त्वजानना	तत्त्वकोजानना	३६६	२८
चारोंश्चारसेचलायमान	चारों श्चोरसे जय चलाय-मान—	३७०	१२
दण्डयथोचित	दण्डकोयथोचित	३७६	१५
मेंकहूंक्रमसे	मेंक्रमसे	३७८	१८
राजा—हस्ति	राजाश्चौरहस्ति	३७६	१५
ग्रामीका	ग्रामिका	३८०	१
ब्रह्मा	ब्रह्मविद्या	३८०	१८
देवहनहींहोता	वहनहींहोता	३८०	३१
दूनदोनों	जिसकोदूनदोनों	३८२	१२
विद्यांत्	विंद्यात्	३८२	२४
समूहसे	समूहमें	३८२	२६
श्चौरक्रूपदोष	क्रूपदोषश्चौर	३८३	७
विधेहुये	विंधेहुये	३८३	१४
मंत्रिसंमति	मंत्रिकोसमति	३८४	२२

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
होय) जोसंधि	होय)संधि	३८४	२३
पदादि- -दंड	पदातिभीदंड	३८४	२५
शून्य—जोहैं	शून्यहैं	३८६	११
दूतराजाका	राजाकादूत	३८७	४
श्चाधीनहै	श्चाधीनहैं	३८७	२६
संयुक्त श्चौर पदाति	संयुक्तपदाति	३८८	६
दुर्गोमें	दुर्गोमें	३८८	११
राजा	श्चौर	३८३	१३
यहधर्म	यहश्चधर्म	३८४	१२
कथनमेधातिथिका,	मेधातिथिकाकथन	३८५	४
नयहण	ग्रहणन	३८५	२०
जिसमें	जिसने	३८८	११
दूसका	दूसके	४००	१३
बनावे	बनाने	४००	१३
मेंभिकल्प	मेंयहविकल्प	४००	१३
ग्राममें	ग्रामकास्वामी ग्राममें	४००	२५
दूम	दूस	४०१	१५
तीन	दो	४०१	१७
	१ अष्टागवं धर्महन्नं षड्गवं जीवितार्थिनाम्—चतुर्गवं गृहस्थानांद्विगवंब्रह्मघाति-नाम्--	४०१	३२
भृत्यये	भृत्यहैये	४०२	१८
कुयात्	कुर्यात्	४०२	२३
रनिवास	रणवास	४०६	२४
रनिवास	रणवास	४०६	३०
शत्रुको	शत्रुका	४१२	१७
प्रकृतियोंकेहीश्चागे	प्रकृतियोंकेश्चागे	४१२	२०
कहतेहैं	कहाताहै	४१४	१६
षाड्गुण्य	षाड्गुण्य	४१५	३
क:गुणोंके गुणोंके	क:गुणोंके	४१५	८
श्चचारी	श्चनाचारी	४१७	५
कोसेनाको	काजासेनाको	४२०	६
राजासदायद्धेन	राजायद्धेन	४२०	२६
एकरहो--हो	एकरहोहो-	४२३	२८
संग्रामयुद्ध	संग्राममेंयुद्ध	४२४	२
दैवगतिश्चल्प	दैवगतिसेश्चल्प	४२४	३
पराजयनिश्चय	पराजयमेंनिश्चय	४२४	१४
नियम	नियम	४२५	५
करदेतुम	करदोकितुम	४२५	७
राजाकाजोपृष्ठवर्त्ती	राजाकापृष्ठवर्त्ती	४२६	१३
रनिवास	रणवास	४२८	२३

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
सेव्रन्नकोर्वाभिर्मंत्रित	सेव्रभिर्मंत्रित	४२८	२६
लियेहुये	लिपेहुये	४२९	७
फलहै	फलहैकि	४३१	१६
केद्द	सेयद्द	४३२	८
भूयिष्ठंवरतो	भूयिष्ठांव्यवादंचरतां	४३२	३२
आश्रित्य कार्य्यविनिर्णयं कुर्यात्	आश्रित्यकुर्य्यात्	४३२	३२
अन्यत्समं	अन्यत्समं	४३५	६
करनेवाले	करनेवालेको	४३५	१७
पापके	पापका	४३५	२२
नियतके	नियतकरै	४३५	२८
उसवर्णशूद्रका	औरशूद्रका	४३६	३
देहका	देहको	४३६	२६
अन्यथा	अन्यथा,	४३७	८
आदिहो	आदिमेंहो	४३७	२५
धनको	धनका	४३७	२५
स्त्रियोंमेंऔर	स्त्रियोंऔर	४३८	३
पौढ्केअधिकारी	पौढ्केकेअधिकारी	४३८	१३
दडसेयिवादे	दंडसेउनकोविवादे	४३८	१४
औरऔरजिनको	औरजिनको	४३८	२२
धनमेंसेचोर	धनमेंचोर	४३८	२२
निधानस्यअल्पीयसीं	निधानस्यसर्व्वायअल्पीयसीं	४४०	६
राजा	ब्राह्मण	४४०	२०
१ वचन	वचन	४४०	२०
सर्वस्वंब्राह्मणस्येदम्	(सर्वस्वंब्राह्मणस्येदम्)	४४०	२०
२ यद्द	१ यत्	४४०	२१
कि राजाके देनेयोग्य धनके निरायकेलियेहैऔरयहवचन	२ औदमवचनसे	४४०	२६
पुराणोंनिधिको	पुराणोंलिसर्तिनिको	४४१	२
अर्थनवप्राप्तंअर्थकथंचन	अर्थकथंचन	४४२	८
आपकार्यको	आपधनवलाभसेकार्यको	४४२	१२
कलंगाखर्ग	कलंगातोस्वर्ग	४४२	२६
कहेहैंमित्र	कहेहैंकिमित्र	४४३	२१
इतने	जितने	४४६	२
सत्यउस	सत्यकहैउस	४४६	१८
जात्यहो	जातिहो	४४६	२७
करेंगे	करेंगे	४४६	२९
ब्रह्मनिष्ठरसे	ब्रह्मनिष्ठरहैंरससे	४४७	२६
उन्मादि	उन्मादी	४४८	१८
चोरनकरनेमें	चोरकेनकरनेमें	४४८	२०
आर	और	४४८	२६
साक्षोपूर्वोक्त	साक्षीकेपूर्वोक्त	४४८	८
साक्षीसमय	साक्षीकेसमय	४४८	१७
विरोधमें राजाजो	विरोधमेंजो	४४९	२८
साक्षीने	साक्षीगोंने	४५०	१
व्यवहारयुक्ताहुआ	व्यवहारमेंयुक्ताहुआ	४५०	२३
बहव्य	बहव्यः	४५०	२८
स्त्रीद्दमलियेसाक्षी व्हणादान	स्त्रीव्हणादान	४५१	५
कठंदण्डमें	कठोरदण्डमें	४५१	६
विशुद्धकरे	विशुद्धकरै	४५१	१४
पूर्वं ६८	पूर्वं ६८कि	४५१	२२
अस्मिन्कार्येयत् अनयो:	अस्मिन्कार्येअनयोः	४५१	२६
मिथ.	मिथः	४५१	२६
(स्वामिनि)	(स्वामिनी)	४५३	५
स्वादुता	स्वादुता	४५४	१४
२ २ गर्गा कुक्कुत	२ ३ २ गर्गा मा कुक्कुत	४५४	१०
मनजा	मनजाय	४५४	२२
यथार्थकथनेसे	यथार्थकथनसे	४५४	२४
मनजा	मनजाय	४५४	२६
कुरुक्षेत्रके समान	कुरुक्षेत्रकोसमान	४५५	२७
परमात्मासंग	परमात्माकेसंग	४५५	२८
ब्रूयात्सा क्लिल्बिषी	ब्रूयात्सकिल्बिषी	४५५	११
साम्य	१ सौम्य	४५५	३०
दृयेनको	दूर्योको	४५६	४
पैदाहुये	पैदाओरनपैदाहुये	४५६	१६
(अतिरिच्यने)	(अतिरिच्यते)	४५७	२१
सत्यद्दोनेपर	सत्यकहनेपर	४५७	२२
चारो	चारों	४५८	२७
चारो	चारों	४५८	३०
केअधर्महोने	केहोने	४५८	३०
चारो	चारों	४५८	६
वरुणके	वरुणको	४५८	२०
यथयकोहैं	यथयकोहैंकिमैंविश्वामित्र केपुत्रनहींखाये ११० ॥	४५८	२०
मैंरस	मैंऔरदस	४६०	४
जानैतोयथार्थ	जानैतुयथार्थ	४६०	१८
तेरेसम्पूर्ण	तेरेकोसम्पूर्ण	४६०	२०
पेड	पैड	४६०	२७
वत्सकेरामकोभीसत्यसे	वत्सकेसत्यसे	४६१	९-१०
दुष्यतेतुआलिप्यात्	दुष्यतेतुपुनःआलिप्यात्	४६२	१२
औरजअग्नानसे	औरजोअज्ञानसे	४६२	१४
दोसेपणा	दोसौपणा	४६२	१४
टिकेहुयेब्राह्मण	टिकाहुयाहोब्राह्मण	४६२	३१

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
कहतेहैंप्रथम	कहते हैं कि प्रथम	४६३	१
देह्येदण्डदकेस्थानहै जिम अंगसे	देहजिसअंगसे	४६३	१५
दडदे जो	दंडदेयहबातकहेहयेऔरजो	४६३	२३
ताड़नाकिसी	ताड़ना या किसी	४६४	१५
चारो	चारों	४६४	२२
कारकोएष्टवीपर	कारगेलियेपृथ्वीपर	४६४	२०
मूल्यदेकर	मूल्यउसेदेकर	४६८	४
इनगे	इनकोभागे	४६८	१६
दूसरोंकोभोगताहुआ	भोगतेहुयेदूसरोंको	४६८	२६
अपीगंडनहो	अपौगंडहो	४६९	३
स्वामीकोही	स्वामीकेही	४६९	१४
आधिवृद्धिकोऔर	आधीवृद्धिकाछोड़देऔर	४६९	२२
वृद्धिकफल	यज्ञकेफल	४७०	१
बलीवर्द्द	बलीवर्द्द	४७०	१
नेकहाहै	नेकुसीदपथकहाहै	४७०	८
हुईउत्तमर्ण	हुईजोउत्तमर्ण	४७०	९
कहा	कहो	४७०	१९
करनाऔर	करनानिंदितहै और	४७१	१०
देनेकेलिये पिताने स्वीकार कियाहो	देनेकेलियेस्वीकारकियाहो	४७३	०
घटयादि	घाटयादि	४७३	८
अ २ १ या न ज्यायान्	अ २ २ या नं ज्यायान्	४७५	५
झूठे	झूठा	४७५	१८
कहे	कहा	४७५	१८
इसअकीर्ति	इसलोकमेंअकीर्ति	४७६	१३
सामर्थ	सामर्थ्य	४७६	२२
इन्द्रिनको	इन्द्रियोंको	४७६	२०
यमराजको	यमराजके	४७६	२८
आत्माको	आत्माके	४७७	२३
अपनेस्त्रण	अपनाऋण	४७७	२६
उसीरीति	जिसरीति	४७८	१४
हमकोदे	हमकोदो	४७९	५
पहिलेवोजो	पहिलेजो	४७९	१०
दोनोंजीवते	दोनोंकेजीवते	४७९	३०
क्योंकिजोउस	क्योंकिउस	४७९	३१
पिताकानदेनाअथवामरण	पिताकोनदेनेकेमरण(नष्ट)	४७९	३१
जीतेहैं निक्षेप	जीतेहोंयतोनिक्षेप	४७९	३२
निक्षेपोपनिधि:	निक्षेपोपनिधी	४८०	५
करे	करें	४८०	८
कर	करें	४८०	८
सौंपनेदत्र	सौंपनेवालेके पुत्र	४८०	१०

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
करे	करें	४८०	१२
देनेसक्त	देनेसेलक्त	४८०	२२
सेकहनेमें	सेकहनेमें	४८२	२२
सम्बन्ध न	सम्बन्धमेंन	४८३	२४
मनिषु	मनीषु	४८६	४
देनेपर अर्थात	देनेपरत्यागेअर्थात्	४८६	६
केआधी	सेआधी	४८७	५
धर्मार्थयदिदत्तंस्यात्	धर्मार्थंदत्तंस्यात्	४८७	९
धर्मकारी	धर्मकार्य	४८७	२३
कर्मोत्रम	कार्मोत्रत्	४८८	२३
समयव्यभिचारी	समयकेव्यभिचारी	४८८	२१
पश्चात्तापको	पश्चात्तापहोकि	४८९	२८
लेलेवहद्रव्यस्थिरार्त्त	लेलेपरन्तुवहद्रव्यस्थिरार्घ	४८९	२९
जिसका (लाभस्थिरहो)	(जिसकालाभस्थिरहो) हो		
लाभवहद्रव्यस्थिरहोअर्थात्	अर्थात्	४८९	२९
छमे	छ:मो	४९०	३
कहवरको	कहकरवरको	४९०	९
हुईकन्या	हुईभीअकन्या	४९०	२४
मनुष्यांकेइत्यादि	मनुष्योंकेविवाहकेइत्यादि	४९०	२५
का इन	कार्यवाहइन	४९०	३०
तीन अग्निसाक्षिपूर्वक	तीनोंवर्ण अग्निकी साक्षि- पूर्वक	४९१	२
करे	करें	४९१	२
निष्ठा:तृत्रिज्ञेया:	निष्ठातुत्रिज्ञेया	४९१	६
निष्ठा:	निष्ठा	४९१	७
त्रिज्ञेया:	त्रिज्ञेया	४९१	७
सप्तपदीअनन्तर	सप्तपदीकेअनन्तर	४९१	१४
पाले	पाला	४९१	२४
चौगिराणियोपाय	चौगिरायस्योपाय	४९१	३१
गोपाल्नं	गोपाल:	४९३	१४
ग्वालिया	ग्वालियानहीं	४९३	१०
पूर्वोक्ता:	पूर्वोक्तात्	४९३	२०
भूमि	भूमि	४९३	२६
परिहारको	परिहारके	४९४	४
मनुष्योंका	मनुष्योंके	४९६	१३
नेयत्	नयेत्	४९७	३
के	को	४९७	६
अर्थार्थ	अथार्थ	४९८	३
दोसे	दोसौ	४९८	८
बसनेवाला	बसनेवाले	४९८	१२
निर्णयकोकरें	निर्णयकाकरें	४९८	१३
मत्स्यासि	जोमत्स्योंसे	४९८	२६

मनुस्मृति सटीकका शुद्धाशुद्धपत्र ।

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
उभय मां	उभयामों	४६८	२८
उपयोगं	उपभोगं	५०४	१३
प्रकार अर्थात्	प्रकारउपभोगअर्थात्	५०४	१०
कर्तव्यः	कर्तव्य	५०५	१६
रीति अनुसार	रीतिकेअनुसार	५०६	३२
से राजा अभय	सेअभय	५०८	१०
छठाभाग राजाको मिलताहै	छठाभागमिलताहै	५०८	३२
दिलाने और	दिलानेमेंऔर	५०९	४
स्नेन विमुच्यते	स्तेनःविमुच्यते	५११	२०
मध्यक और	मंध्याऔर	५१२	८
आदिकों को भय	आदिकोंकोभय	५१३	११
इसगौतम	१ इसगौतम	५१७	४
राम	टास	५१७	२२
० ०	(१)यौगद्रुनस्पतीनांपुष्पाणि स्ववदाददीतफलानिचाप चरितृतानाम्	५१८	३२
नरः	नृपः	५१८	१२
भाजनो	भाजना	५१९	८
प्रवृत्तान्	प्रवृत्तान्न	५१९	३१
यजमान के मिलने	यजमानकेनमिलने	५२०	२
फेरे और और	फेरे और	५२०	८
समभना ब्राह्मणी	समभनाअब्राह्मणी	५२१	१२
कठमें	कटमें	५२५	२०
इस	२ इस	५२५	२८
० ०	(२)विप्रयत्नोहितदर्भैःक्षत्रियवरपर्वार्थमिष्यते ॥	५२५	३३
जो ब्राह्मणोंका	ब्राह्मणोंकाजो	५२६	८
कार्य	कारयन्	५३३	२०
देनेअर्थ	देनेकेअर्थ	५३४	१०
अर्चयत	अरचयत	५४०	१
सूपका	सूपका	५४०	३३
याद्गुणेन	यायाद्गुणेन	५४१	१६
निद्यतं	निद्यता	५४३	६
शालि	शाला	५४५	१६
मृग	मृगके	५४६	१०
(विवाहोयोग्या)	(विवाहायोग्यां)	५५८	११
आदिअसाधारण	आदिसेअसाधारण	५६९	२०
द्रव्यके	द्रव्यको	५७४	१२
मनुष्यशास्त्रके	मनुष्यनेशास्त्रके	५७५	२८
रूपकेव्यापारसे	रूपव्यापारसे	५७६	६
स्वामिनवनाश	स्वामीकेनाश	५८०	२

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
यानेडालना	पानेडालना	५८२	१६
इसमनुके	इसीमनुके	५८८	३
ज्येष्ठकेसग	ज्येष्ठकसग	५८८	१३
उसका	उनका	५९१	१०
उद्धृत	उद्धृत	५९१	१२
हैवस	हैंकेवस	५९८	१२
बीजिकक्षेत्र	बीजिक्षेत्र	५९९	२८
इन	२ इन	६०१	२४
० ०	(२)पतिराक्षेत्रांडोयिनगृह्णा तिनातिरावियोडायिनगृह्णाति	६०१	३४
स्वामीकेऔर	स्वामीऔर	६०७	२०
वरणादक्षिणा	वरणाकादक्षिणा	६१४	६
औरगोत	औरदोगोत्र	६१५	१२
लब्धजी	लब्धसकी	६१८	११
(संसार)तरताहुआ	(संसार) कोतरता हुआ	६२३	८
गर्जादनका	तीर्नादनका	६३३	२
मध्यमें	मध्यमेंप्रथमकहे	६३४	२१
प्रभः	प्रभुः	६३५	३६
भागकाकोताहै	भागकाभोक्ताहोताहै	६३०	६
समानभाग आदिइत्यादि वचनो से समानभागमनुजी कहआये हैं	समान भागमनुजी कह- आये हैं	६३८	१४
मक्ता	मुक्ता	६४३	३०
(बंगाली	(बंगाली)	६४४	३
मिताक्षराकारने	मिताक्षराकारनेता	६४८	३०
भाग:	भाग:	६४८	३२
धर्म	धर्म्य	६४८	३४
रवाप	रवाप	६४९	३५
यद्दुके	यद्दुकि	६५०	११
प्रणुमा	प्रणामा	६५०	२०
वचनको	वचनका	६५१	१८
दृष्टा	दृष्ट्वा	६५१	३२
याक्ने	याज्ञ	६५७	३१
अदृष्टोपक	अदृष्टोपकारक	६५८	३
तोदम	तोउत्पादकमस्मादात्रोगेही- यान्मस्मात्पिता	६६१	१०
होक्रम	मध्येक्रम	६६३	८
धनकोयहण	धनकायहण	६६५	११
सेत्रककी	क्षेत्रजकेकी	६६८	३१
वेमाताके	माताके	६६८	२२
मानं	माना	६७०	३०
येदोनों	इनदोनों	६७१	१४

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
औरऔरशुक्र	औरशुक्र	६७३	२३
दुहिताके	दुहिताको	६७५	२२
जीवति	जीवते	६७६	८
आदिके	आदिको	६७६	८
संमतसे	सम्मतिसे	६७६	८
साहियागामिनी	साहिपरगामिनी	६७७	२९
तद्धुंधुर्भिर्मितम्	तद्धुंधुर्भिर्मितम्	६८०	३२
तद्धुनं	तद्धुन	६८०	३२
दायनीयान	दापनीयान	६८०	३२
मरजायनोऔर	मरजायऔर	६८२	१०
नान्यगातृजः	नान्यमातृजः	६८२	३२
त्रिद्यासीर्या	विद्यार्थार्या	६८२	३४
सद्यप्रथम	सबसेप्रथम	६८३	७
तथार्णे	तथर्णे	६८३	३५
सक्रद्रंशो	सक्रुदंशो	६८९	२९
शिफवास	शिफावास	६९१	१६
पृथक्पातकिनः	पृथक्महापातकिनः	६९२	१०
औसम्बन्धि	औरसम्बन्धि	६९३	१४
भियात्	भियात्	७०२	४
अनाप्तेः	अनाप्ते	७०३	२८
अनाप्तेः	अनाप्ते	७०३	२९
सबलका	बलका	७०५	११
न रहे	नरहे	७०६	२०
राज्ञोदासितव्यम्	राज्ञोनोदासितव्यम्	७०६	३२
गुणियोंको	गणियोंको	७०९	५
आर	और	७११	२४
दशमोध्याय	दशमोध्यायः	७१५	७
प्रब्रूयाद्ब्रह्मण	प्रब्रूयाद्ब्राह्मण	७१५	८
वेदाध्ययनंकुर्यात्	वेदाध्यपनंकुर्यात्	७१५	११
द्रसको	द्रमका	७१६	१४
अनंतरवर्णकी	अनंतरवर्णकी	७१७	२२
अंबष्ठ	अंबष्ठा	७२०	१५
क्योंकिद्रस	क्योंकि द्रस[१]	७२२	२०
००	(१) प्रतिलोम जान्तुधर्म हीनाः	७२२	३४
कारावरः	कारावर	७२५	२८
संकर	सकरे	७२६	२६
मस्कार	संस्कार	७२७	८
आपके	आपने	७२९	२९
(प्रकृतिकारण)	प्रकृति(कारण)	७३०	२०
प्रतिलोमतः[१]	प्रतिलोमनः[अ]	७३३	८

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
जातसुबीजं	जातगवसुबीजं	७३३	१६
पणणं	षणणां	७३५	१
(प्रेष्ठान)	(प्रेष्ठान)	७३५	३२
क्रामिभूतः	क्रमीभूतः	७३८	७
क्रामिभूतः	क्रमीभूतः	७३८	८
क्रामिभूतः	क्रमीभूतः	७३८	१०
कृतान्नेन	अकृतान्नेन	७३८	३२
(बीलि)	(बाल)	७४२	२४
एकादशा	एकादशा	७४७	२४
अध्वगः	अध्वग	७४८	६
गुरूके	गुरूके	७४८	१०
पितःके	पिता	७४८	११
ब्राह्मणको	ब्राह्मणोंको	७४८	१३
दूनकों	दूनको	७४८	१३
सोमयज्ञको	सोमयज्ञकेफलको	७४९	२७
डिबधारी	(डिंबधारी)	७५०	४
तीनवादों	तीन वा दो	७५०	२५
तीनवादो	तीन वा दो	७५०	२६
ब्राह्मणस्वलोभना	वाब्राह्मणस्वलोभन	७५३	२०
वेदका	वेदके	७६१	१६
द्विगुणाः	द्विगुणा	७६५	३०
त्रिगुणाःस्मृतः	त्रिगुणास्मृता	७६५	३०
चतुर्गुणास्तु	चतुर्गुणात्	७६५	३०
जोगुणवान्	गुणवान्	७६९	१८
आत्रेयीं	आत्रेयी	७७१	१०
भोगताहि	भोगताहै	७७४	२८
प्रमाणको	प्रमाणको	७७६	२४
मासैव्यपोहति	मासैर्व्यपोहति	७८८	१५
उष्णो	उष्ण	७८८	३१
उपपात	उपपातक	७८९	२५
स्त्री	स्त्रीको	७९४	११
शृणुतानिष्कृतीः	शृणुतनिष्कृतीः	७९५	३
उक्ताः	उक्ता	७९५	५
निष्कृती	निष्कृतीः	७९५	५
गायत्रीकी	गायत्रीका	७९५	१८
पततयेते	पतंत्येते	७९५	३२
पतितशब्द	पतितशब्दसे	७९६	४
स्त्रियोंको	स्त्रियोंको	७९७	२१
चपुनः	चपुनःशाम्यःक्रयाद्विः	७९९	३०
बालि	बालिगांधके	८००	१
मति	मत्ति	८०२	२६
पड	पडु	८०२	३१

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
कक्कुटा	कुक्कुटा	८०२	३१	वाङ्मयं	वाङ्मयं	८१८	१
समाह्तिन:	समाहितःविप्र	८०५	६	इसलोक	इसलोकमें	८१९	२४
येभौर सबनको	येभी	८०७	२६	जगत्कीगति	जगत्कीगति	८२७	२८
पीनेवाला	पीनेवाला)	८१२	१९	भर्ताको	भर्ताको	८४०	१८
सूक्त	सूक्त)	८१२	२८	हैंऔर	हैं	८४१	२०
अयत:	प्रयत:	८१४	२३	अन्तर	अन्तर	८४२	१४
मध्यम	मध्यमअधम	८१०	१४				

इति ॥

इस मतबे में जितने प्रकारकी रामायण छपी हैं उनमें से कुछ इसमें लिखी हैं ॥

यह प्रसिद्धपुस्तक गोस्वामि तुलसीदासजीकी काव्य भारतवर्षमें है जिसके पढ़ने पढ़ाने से मनुष्य इस लोक में जीवन्मुक्त होकर अन्तमें मुक्तिपाताहै और इसके काण्ड पाठशालाओं मेंभी पढ़ाये जाते हैं और यहपुस्तक हरएकके घरमें होनीचाहिये और बहुतसे छापेखानोंमें यहपुस्तक लाखोंप्रति छपी है इस छापेखानेमें बहुतसेरूपोंमें यहपुस्तकछपी है सो नीचेलिखेकेअनुसार यहपुस्तकमिलैगी॥

रामायण मूल तुलसीकृत

जो बहुतसी प्रतियों से शुद्ध कीगई है कोई दोहा चौपाई रहने नहीं पाया और बड़े २ अक्षरोंमें सफेद चिकने कागज़ पर छापीगई है प्रत्येक काण्ड के आदि में चित्रभी युक्त हैं ॥

रामायण तुलसीकृत मूल छोटी

इसमें नवीन रीतिसे सूचीपत्र सहित चित्रों का रूपक बांधकर आदिमें सम्पूर्ण रामायण का सारांश दिखलाया गया है वह आदिमें युद्धकी ऐसी रचना आजतक किसी दूसरी रामायणों में नहीं देखीगई अवलोकनकर्ता पुरुष हाथमें लेतेही आनन्दमें डूबजावेंगे ॥

रामायण टीका रामचरणदासकृत किताबनुमा व पत्रानुमा

इस विस्तृत टीका को अयोध्या निवासि रामचरणदासजी टीकाकार ने निजदेश भाषा में करके रामायणको ऐसा सुगम करदिया कि जोथोड़ी भी विद्या रखतेहों वे रामायणका पूर्ण आशय समझ जावें और गूढ़ाशयों के समझने और भक्तिपक्ष बढ़ाने के लिये श्रुति पुराण और अन्य आचार्यों के श्लोकों से विभूषित करके अति सुन्दर मनोहर बनादिया कोई सन्देह अब तुलसीकृत रामायण की पुस्तकमें इस टीका के देखने से रह नहीं गया ऐसा विचित्र और विस्तृत टीका आजतक रामायणमें नहीं हुआ है अवलोकन करने से अतीवानन्द होगा ॥

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

पूरे सातोकाण्ड अयोध्यापाठशालाके द्वितीयाध्यापक पण्डित महेशदत्तकृत भाषा—यह वही पण्डित जी महाराजहैं जिन्होंने पहिले देवीभागवत और बिष्णुपुराणका उल्थाकिया है दो भागोंमें यथातथ्य सुगमरीति से परिपूर्ण श्लोक के अनुसार हुआ है कोई शब्द भी छूटने नहीं पाया और श्लोक के जाननेके लिये अंकभी लगादिये कि भ्रम न पड़े अक्षर टैपके बहुत पुष्ट डबलपैका अबके दूसरीबार बहुत होशियारी से छापीगई है ॥

रामायण टीका शुकदेव कृत किताबनुमा तथा पत्रानुमा

यह टीकाकार मैनपुरी के रहनेवाले हैं इस अक्षरार्थ और प्रति चौपाई दोहेवार टीका में उल्थकने रामायणके हरएक पदको स्पष्ट करके ठेठ खड़ी बोलीमें रचना कर और हरएक चौपाई दोहे के अर्थ के अन्तमें समझने के लिये अंक लगादिये, स्थान २ पर पुराण और अन्य मुनियों के श्लोकों से बिभूषित किया है ऐसा उत्तम टीकाहै कि आजतक देखा नहींगया और इसकी सांची किताबनुमा व पत्रानुमा दो प्रकारकी है

अध्यात्मरामायण सटीक

यह गुप्तरामायण श्री शिवजी महाराजने पहिले पार्व्वतीसे वर्णन की वही ज्ञानामृत ब्रह्माजीने नारदजी से उपदेशकिया और नारदजी से वाल्मीकि व्यास आदि ऋषियों ने प्राप्त किया व्यासजी से सूतजीने यह अध्यात्मज्ञानपाकर नैमिषारण्यमें शौनक आदि ऋषियोंको ब्रह्माण्डपुराणमें सुनाया जिससे इसदिव्य ज्ञानरूप रामायणका प्रचार लोकमें प्रसिद्धहुआ यह रामायण श्रीउमारूप महेश्वर वचनामृत है इसलिये अतिपुनीत है और बड़े बड़े बिचारी और बिवेकीलोग इसकापाठ मन्त्ररूप जानकर करतेहैं और इससे तन्त्र और वेदान्तकापूरा आशयरूप अमृत भी टपकताहै और श्रीरामचन्द्रादि चारोंभ्राताओंकी पूरीकथाका मानों सागर है जिसकी फर्रुखाबाद निवासि स्वर्गवासि पण्डित उमादत्तजीने प्रत्यक्षरका भाषामें टीकाकिया ॥

रामायण वैजनाथकृतटीका

इसमें प्रत्येक दोहा चौपाई छन्दका टीका अत्युत्तम लालित्यपदोंमें एक २ शब्दका सरलरीतिपर कियागया है और अधिकसे अधिक उत्तमता यहहै कि कठिन२ स्थलोंके गूढ़२ शब्दोंका आशय प्रत्येक पुराण, शास्त्र, उपनिषद् वेदादिके श्लोक, ऋचा सूत्रादिकोंके दृष्टान्त देकर ऐसासरल करदियागया है जिसे सब सहजमें समझसक्तेहैं और अवलोकन करनेके योग्यहै जो कोई सज्जन पण्डित महात्मा इस अद्वितीय तिलकको देखेंगे प्रसन्नहोंगे ॥

योगवाशिष्ठकाविज्ञापन ॥

उस ईश्वर सच्चिदानन्दघन परमात्माका धन्यवाद है कि, जिसने संसारको उत्पन्न करके अपने प्रकाशके लिये वेदान्त आदि विद्या बनाई जिनमें अनेकप्रकारके शास्त्र और मत प्रकटकिये हैं और जो अनेकप्रकारकी वार्त्तायें संयुक्तहैं । कोई तो कर्मकी प्रधानता मानते हैं कोई ज्ञानको श्रेष्ठ जानते हैं और कोई कहते हैं कि, उपासनाही मुक्तिकाहेतुहै परन्तु; इस पुस्तकमें कर्म और ज्ञान दोनोंकी प्रधानता लीगईहै । श्रीअगस्त्यजी महाराजने श्रीमुखसे वर्णनकिया है कि, नकेवल कर्मही मोक्षका कारणहै औरन केवल ज्ञानहीसे मोक्षहोताहै बल्किदोनों मिलकर मोक्ष सिद्धिहोतीहै क्योंकि ;अन्तः-करण निर्मलहुयेबिना केवल ज्ञानसेही मुक्ति नहीं होती । कर्म करके प्रथम अन्तःकरण शुद्धहोताहै फिरज्ञान उत्पन्नहोता तबमुक्तिहोती– जैसे पक्षी आकाशमें दोनोंपरोंसे उड़ताहै तैसेही मोक्षसाधन केलिये कर्म और ज्ञान दोनोंही आवश्यक हैं । इस पुस्तकमें विशेषकरके ज्ञानवार्त्ता विषयक परमा-त्मारूप दशरथकुमार आनन्दकन्द श्रीरामचन्द्र और जगत्गुरु श्रीवशिष्ठजीका संवादहै । इसके धारण करनेसे मुक्ति होतीहीहै मोक्षमार्गके दिखानेको यह पुस्तक दीपकरूपहै और ज्ञान और योगकी तो स्वरूपहीहै । इसके प्रीतवाक्य और प्रतिपदसे बोध होकर अन्तःकरण शुद्धहोजाताहै । कलियुगबासि योंके उद्धारके निमित्त आदिकवि विद्वच्छिरोमणि बाल्मीकिजीने इसको संस्कृत पद्यमें निर्माणकिया और इसके द्वारा संसार सागरके तरनेके निमित्त आत्मज्ञानरूप परमात्माको लखाया यहबातें इस पुस्तकके पढ़ने पढ़ानेसे विदित होतीहैं ॥

इस पुस्तकमें छःप्रकरणहैं १ वैराग्य, २ मुमुक्षु, ३ उत्पत्ति, ४ स्थिति, ५ उपशम और ६ निर्वाण। जिनमें नामसदृशही विषयभी हैं ॥

अब इसके भाषान्तर होनेकाहाल वर्णन कियाजाताहै । अनुमान डेढ़सौ वर्षके व्यतीतहुयेकि, पटियाला नगरनरेश श्रीयुत साहबसिंहजी बीरेशकी दो बहिनें विधवा होगईथीं इसलिये; उन्होंने साधु रामप्रसादजी निरंजनीसे कहा कि; श्रीयोगबाशिष्ठ जो अति ज्ञानामृतहै सुनाओतो अच्छाबात हो! निदान उन्होंने योगबाशिष्ठकी कथासुनाना स्वीकारकिया और उनदोनों बहिनोंने दोगुप्तलेखक बैठादिये ज्योंज्यों पंडितजी कथा कहतेथे वे प्रत्यक्षर लिखतेजातेथे । जब इसीतरह कुछ समयमेंकथा पूर्णहुई तो यह ग्रंथभी तय्यारहोगया । जोकि इसमें कथाकी रीतिथी कुछ उत्प्रेक्षा प्रकार नथाऔर पंजाबी शब्द मिलेहुयेथे प्रथम यह ग्रंथ ऐसाही मुम्बई नगरमें अगहन सम्वत् १९२२ में छपा । जब इसका इसभांति प्रचारहुआ और ज्ञानियोंको कुछ इसका सुख प्राप्तहुआ तो चारों ओरसे यहइच्छा हुई कि,यदि पंजाबी बोलियां और इबारत सुधारकर यहपुस्तक छापीजावे तोअति उत्तमहो । तथा च श्रीमान मुंशी नवलकिशोरजीने बैकुंठबासी प्यारेलालशर्मा कश्मीरी को आज्ञादी और उन्होंने बोलियां बदलकर और जहांतहांकी इबारत सुधारकर उनकी आज्ञाका प्रतिपालनकिया । परमशिष्ट पण्डित रामरत्न बाजपेयि के प्रबन्धसे यह ग्रंथ दोबार शुद्धतापूर्व्वक छपचुका है और अब कानपुर निवासी भगवानदासजी बर्म्माद्वारा सम्पादितहोकर फिर तीसरीबार प्रकाशहोनेका अवसर मिला है– आशाहै कि पाठकगण इसे देखकर बहुत प्रसन्नहोंगे । ईश्वर ऐसे उपकारक, दयालु, गुणग्राहक और आत्मनिष्ठ मुंशी नवलकिशोरजी सी–आई–ई अवधसमाचार पत्रसम्पादककी आयुरारोग्यऔर धनकी वृद्धिकरे जिनके उत्साहसे यह ग्रंथ पाठकोंके परमानन्दका कारणहुआ ॥

नरसिंहपुराण भाषा का विज्ञापन ॥

बास्तविक भगवान् वेदव्यासजीने द्वापरके अंतमें पुराणों को रचकर देशका बड़ा उपकारकिया—इनमें उन्होंने चारो वेदों और छहो शास्त्रोंका आशय लेकर उपासना, कर्मकाण्ड, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, नीति, ज्योतिष, वैद्यक इत्यादि२ अनेक उपकारक और आश्चर्य विषयोंको लिखाहै जिनके देखनेसे हमारे पूर्वजों के हजारों बरसों पहिलेके धर्म, कर्म, आचार, व्यवहार रहन, सहन के ढंग बहुत अच्छी तरह से मालूम होते हैं और धर्म विषयक आख्यानोंके पठनमात्रसे मनुष्य शुभकर्मों के आचरणसे उच्च और उत्तमपदवीको पहुँचसक्तेहैं। वेदव्यासजी ने इन पुराणों में अनेक ऋषियों, मुनियों, भक्तों, महाराजों और समराहों तथा गुणी और निर्गुणी, पराक्रमी और बीरोंके ऐसे अनेक इतिहास लिखेहैं जिनके पढ़नेहीसे भक्ति, श्रद्धा और संतोष एवम् उत्साहका अंकुर मनुष्यके हृदयमें उत्पन्न होता है और एक अति विचित्र आनन्द प्राप्त होता है ॥

इसके सिवाय उन्होंने इसमें भगवान् विष्णुके दशो अवतारों, अनेक देवी देवतों और तीर्थोंका वृत्तांत भी अतिविस्तार पूर्वकलिखाहै—एवम् दानोंका विधान, व्रतोंका माहात्म्य, पुण्योंके फल और पापोंके दण्ड, प्रायश्चित्तोंकेविधान और ब्राह्मणक्षत्रिय आदि वर्णों और गार्हस्थ्य आदि आश्रमोंके धर्म कर्म पृथक्२ वर्णन किये हैं। निदान सृष्टिसे लेकर प्रलयतक और जन्मसे मरण पर्यन्तके सभी वृत्तांत लिखे हैं और मरणके उपरान्त तथा मनुष्य शरीर धारण करने में क्या २ दुःख सुख भोगने पड़तेहैं एवम् किन उपायोंसे मनुष्य मुक्तिको प्राप्तहो अचल सुखका भागी होताहै—यह सब अति विस्तारपूर्वक वर्णन है ॥

भगवान्के दशों अवतारोंमेंसे नृसिंहावतारके भक्तोंके उपकारके लिये श्रीव्यासजीने इसनृसिंह पुराणको रचाहै और योंतो इसमें उन्होंने सर्ग, प्रतिसर्ग, मन्वन्तर तथा भगवान्के सब अवतारोंकी कथा और अनेक भक्तोंके चरित्र वर्णन किये हैं पर बिशेष करके नृसिंह भगवान्के चरित्रोंका अति विस्तार पूर्वक वर्णन है। इसके सिवाय सूर्य तथा सोमबंशी प्रधान समराहों के चरित्र ऐसे ढंगसे वर्णन किये हैं कि जिनके पढ़ने सुनने से मनुष्यके हृदयमें एक अति अपूर्व प्रकाश होकर अवश्यही भक्ति उत्पन्न होती है। भगवान् अपने भक्तोंकी रक्षा में कैसे तत्परहैं और कैसे सहाय करते हैं यह बात इसके पठन से अच्छी प्रकार दृष्टित होती है नृसिंह चौदश आदि व्रतोंका विधान और पूजन की युक्ति भी इसमें वर्णितहै ॥

बास्तविक इस पुराणके भाषानुवाद से सर्व साधारण और विशेषकर भगवान् नृसिंहके भक्तोंका-उपकारहुआ क्योंकि योंतो सभी पुराणों में नृसिंहावतार का थोड़ा बहुत वर्णन है पर इसमें विधिपूर्वक सबवृत्तांत वर्णन कियागयाहै और होजाने से सबलोग पढ़कर उसके आशयको समझसक्तेहैं॥ आशाहै कि सर्व साधारण इसे आदरपूर्वक ग्रहण करेंगे ॥

द० मैनेजर अवध अखबार
लखनऊ मुहल्ला हज़रतगंज